आवश्यक सूचनायें

(१) हमने प्रथम खण्ड की समाप्ति पर उसके साथ एक महाभारत-कालीन भारतवर्ष का प्रामाणिक सुन्दर मानचित्र भी देने की सूचना दी थी। इस सम्बन्ध में हम ग्राहकों को सूचित करते हैं कि पूरा महाभारत समाप्त हो जाने पर हम प्रत्येक ग्राहक को एक परिशिष्ट अध्याय बिना मूल्य भेजेंगे जिसमें महाभारत-सम्बन्धी महत्त्व-पूर्ण खोज, साहित्यिक आलोचना, चरित्र-चित्रण तथा विश्लेषण आदि रहेगा। उसी परिशिष्ट के साथ ही मानचित्र भी लगा रहेगा जिसमें पाठकों को मानचित्र देख कर उपरोक्त बातें पढ़ने और समझने आदि में पूरी सुविधा रहे।

(२) महाभारत के प्रेमी ग्राहकों को यह शुभ समाचार सुन कर बड़ी प्रसन्नता होगी कि हमने कानपुर, उन्नाव, काशी (रामनगर), कलकत्ता, ग़ाज़ीपुर, बरेली, मथुरा (वृन्दावन), जोधपुर, बुलन्दशहर, प्रयाग और लाहौर आदि में ग्राहकों के घर पर ही महाभारत के अङ्क पहुँचाने का प्रबन्ध किया है। अब तक ग्राहकों के पास यहीं से सीधे डाक-द्वारा प्रतिमास अङ्क भेजे जाते थे जिसमें प्रति अङ्क तीन चार आना खर्च होता था पर अब हमारा नियुक्त किया हुआ एजेंट ग्राहकों के पास घर पर जाकर अङ्क पहुँचाया करेगा और अङ्क का मूल्य भी ग्राहकों से वसूल कर ठीक समय पर हमारे यहाँ भेजता रहेगा। इस अवस्था पर ग्राहकों को ठीक समय पर प्रत्येक अङ्क सुरक्षित रूप में मिल जाया करेगा और वे डाक, रजिस्टरी तथा मनीआर्डर इत्यादि के व्यय से बच जायँगे। इस प्रकार उन्हें प्रत्येक अङ्क केवल एक रुपया मासिक देने पर ही घर बैठे मिल जाया करेगा। यथेष्ट ग्राहक मिलने पर अन्य नगरों में भी शीघ्र ही इसी प्रकार का प्रबन्ध किया जायगा। आशा है जिन स्थानों में इस प्रकार का प्रबन्ध नहीं है, वहाँ के महाभारतप्रेमी सज्जन शीघ्र ही अधिक संख्या में ग्राहक बन कर इस अवसर से लाभ उठावेंगे। और जहाँ इस प्रकार की व्यवस्था हो चुकी है वहाँ के ग्राहकों के पास जब एजेंट अङ्क लेकर पहुँचे तो ग्राहकों को रुपया देकर अङ्क ठीक समय पर ले लेना चाहिए जिसमें उन्हें ग्राहकों के पास बार बार आने जाने का कष्ट न उठाना पड़े। यदि किसी कारण उस समय ग्राहक मूल्य देने में असमर्थ हों तो अपनी सुविधानुसार एजेंट के पास से जाकर अङ्क ले आने की कृपा किया करें।

(३) हम हिन्दी-भाषा-भाषी सज्जनों से एक सहायता की प्रार्थना करते हैं। वह यही कि हम जिस विराट् आयोजन में संलग्न हुए हैं आप लोग भी कृपया इस पुण्य-पर्व में सम्मिलित होकर पुण्य-सञ्चय कीजिए, अपनी राष्ट्र-भाषा हिन्दी का साहित्य-भाण्डार पूर्ण करने में सहायक हूजिए और इस प्रकार सर्वसाधारण का हित-साधन करने का उद्योग कीजिए। सिर्फ़ इतना ही करें कि अपने दस-पाँच हिन्दी-प्रेमी इष्ट-मित्रों में से कम से कम दो स्थायी ग्राहक इस वेद-तुल्य सर्वाङ्गसुन्दर महाभारत के और बना देने की कृपा करें। जिन पुस्तकालयों में हिन्दी की पहुँच हो वहाँ इसे ज़रूर मँगवावें। एक भी समर्थ व्यक्ति ऐसा न रह जाय जिसके घर यह पवित्र ग्रन्थ न पहुँचे। आप सब लोगों के इस प्रकार साहाय्य करने से ही यह कार्य्य अग्रसर होकर समाज का हितसाधन करने में समर्थ होगा।

—प्रकाशक

विषय-सूची

शल्यपर्व

रङ्गीन चित्रों की सूची

महर्षि वेदव्यास-प्रणीत

महाभारत का अनुवाद

शल्यपर्व

शल्यवधपर्व

पहला अध्याय

सञ्जय का लौटकर धृतराष्ट्र से सब वृत्तान्त कहना और धृतराष्ट्र का शोकाकुल होना

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत्॥

जनमेजय ने वैशम्पायन से कहा—ब्रह्मन्, अर्जुन के हाथ से इस तरह वीर कर्ण के मारे जाने पर थोड़े से बच रहे कौरवों ने क्या किया? कुरुराज दुर्योधन ने जब देखा कि पाण्डवगण उनकी सेना को मारकर भगा रहे हैं तब उन्होंने उस समय के उपयुक्त क्या उपाय किया? हे तपोधन! यह वृत्तान्त सुनने के लिए मैं उत्सुक हो रहा हूँ, इसलिए आप कहिए। अपने पूर्व-पुरुषों के अद्भुत महत् चरित्र को मैं जितना सुनता हूँ उतना ही और भी सुनने को जी चाहता है, किसी तरह तृप्ति नहीं होती।

वैशम्पायन ने कहा—राजन्! वीर कर्ण के मारे जाने पर शोकसागर में डूबे हुए, अत्यन्त दुःख से "हाय कर्ण! हाय कर्ण!" कहकर बारम्बार विलाप करते हुए, कुरुराज दुर्योधन बड़े कष्ट से हतावशिष्ट राजाओं के साथ शिविर में गये। वास्तव में वे राज्य-सुख आदि सभी बातों से निराश हो गये। शिविर में पहुँचने पर विजय-वैभव चाहनेवाले मित्र राजा लोग

शास्त्रानुकूल युक्तियुक्त वचन कहकर दुर्योधन को बारम्बार समझाने और आश्वास देने लगे; किन्तु कर्ण का स्मरण करके वे किसी तरह शान्ति नहीं पा सके। अन्त में होनी को बड़ी प्रबल सोचकर, सबेरा होने पर, दुर्योधन ने फिर युद्ध की तैयारी की। विधि-पूर्वक नरश्रेष्ठ शल्य को सेनापति बनाकर, बचे हुए राजाओं को लेकर, वे फिर युद्ध करने के लिए शिविर से निकले। हे भरतश्रेष्ठ, कौरवदल और पाण्डवपक्ष के वीर योद्धा फिर देवासुर-संग्राम के समान भयानक युद्ध करने लगे। शल्य ने घोर युद्ध किया और शत्रुसेना के बहुत से वीरों को मारा। दोपहर
१० के समय धर्मराज ने शल्य को मार डाला। मित्रों के विनाश से विह्वल असहाय दुर्योधन, शल्य के मरने पर, शत्रुओं के भय से रणभूमि से भागकर एक सरोवर के भीतर घुस गये। तीसरे पहर पाण्डवों के सब महारथी दुर्योधन का पता पाकर उस सरोवर के पास पहुँचे। पाण्डवों के ललकारने पर दुर्योधन उस सरोवर से निकल आये और अन्त को भीमसेन ने गदायुद्ध में जाँघ तोड़कर उन्हें गिरा दिया। इस प्रकार दुर्योधन के मारे जाने पर क्रोधान्ध अश्वत्थामा, कृतवर्मा और कृपाचार्य, तीनों महाधनुर्द्धरों ने रात को जाकर शिविर में बेख़बर सो रहे पाण्डवों के सैनिकों और सब पाञ्चालों को मार डाला। दूसरे दिन सबेरे शोकाकुल महादुःखित सञ्जय शिविर से लौटकर हस्तिनापुर में पहुँचे। उन्होंने दीन भाव से काँपते हुए पुर में प्रवेश कर, राजा के भवन में जाकर, दोनों हाथ उठाकर कहा—"हा महाराज! हा महाराज! कुरुराज दुर्योधन के विनाश से हम लोग नष्ट हो गये। हाय, दैव बड़ा बली है! इन्द्र के समान पराक्रमी राजा लोग कौरवपक्ष में थे; किन्तु वे सब मारे गये!" यों कहकर सञ्जय रोने लगे। उस समय क्लेश से अभिभूत और विह्वल सञ्जय को देखकर वहाँ के बालक-बूढ़े सब, शोकाकुल और संज्ञाहीन उन्मत्त से, दौड़ते हुए सञ्जय के पास आने लगे। राज-भवन के सब लोग सञ्जय के मुँह से दुर्योधन के मरने की ख़बर सुनकर "हाय महाराज! हाय महाराज!" कहकर ज़ोर-ज़ोर से रोने और आर्तनाद करने लगे। सभी भय-विह्वल और उद्विग्न हो उठे।

२१ राजन्! अब सञ्जय विह्वल भाव से राज-भवन के उस अंश में पहुँचे, जहाँ अन्धे बूढ़े महाराज धृतराष्ट्र बैठे हुए कर्ण-वध का सोच कर रहे थे। देवी गान्धारी, सब बहुएँ, विदुर, अन्य हितचिन्तक, सुहृद्गण और सजातीय लोग उनके आसपास बैठे हुए थे। हे जनमेजय, रो रहे अत्यन्त विषण्ण सञ्जय ने भरे हुए स्वर से कहा—महाराज, मैं सञ्जय आपको प्रणाम करता हूँ। मद्रराज शल्य, सुबलनन्दन शकुनि, उलूक और दृढ़ पराक्रमी कैतव्य ये सब योद्धा मारे गये। सब संशप्तकगण, शक, काम्बोज, पहाड़ी म्लेच्छ, यवन और पूर्व-पश्चिम-दक्षिण-उत्तर दिशाओं के सब राजा और राजपुत्र, मय अपनी चतुरङ्गिणी सेनाओं के, मार डाले गये। शूर कर्ण-पुत्र महाबली वृषसेन भी मारे गये। पराक्रमी भीमसेन ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार कुरुराज दुर्योधन की जाँघ गदा से तोड़ डाली; वे ख़ून से तर होकर धूल में पड़े हुए हैं। उधर पाण्डव-पक्ष के महा-

सञ्जय ने यह समाचार जैसेही धृतराष्ट्र को सुनाया, वे मूर्छित हो कर पृथिवी पर गिर पड़े।

वीर धृष्टद्युम्न, अपराजित शिखण्डी, उत्तमौजा, युधामन्यु, सब प्रभद्रकगण, पाञ्चालगण और चेदिगण भी मार डाले गये। आपके सब पुत्र मारे गये। द्रौपदी के पाँचों पुत्र भी न बचने पाये। सब मनुष्य, हाथी, घोड़े, उनके सवार, रथी योद्धा और पैदल मार डाले गये। मतलब यह कि काल के कवल में पड़े हुए कौरवपक्ष के और पाण्डवपक्ष के प्रायः सभी वीर मर गये। दोनों ओर के शिविर ख़ाली हो गये हैं। काल के वश होकर मोहग्रस्त कौरवों और पाण्डवों के यहाँ स्त्रियाँ ही बच रही हैं। श्रीकृष्ण, सात्यकि और पाँचों पाण्डव उधर बच रहे हैं और इधर कृपाचार्य, कृतवर्मा तथा अश्वत्थामा ये तीन महारथी जीवित हैं। महाराज, अठारह अक्षौहिणी सेना दोनों ओर थी; उसमें इन दस मनुष्यों के सिवा और सभी मारे गये। कराल काल ने दुर्योधन के द्वारा प्रचण्ड युद्धाग्नि प्रज्वलित करके क्षत्रियों का संहार कर डाला। ३०

वैशम्पायन कहते हैं—हे जनमेजय! महाराज धृतराष्ट्र, सञ्जय के मुँह से यह अप्रिय समाचार सुनते ही, बेहोश होकर गिर पड़े। बुद्धिमान् यशस्वी विदुर, राजरानी गान्धारी और कौरवकुल की अन्य ललनाएँ इस घोर अशुभ वचन को सुनकर, शोक से व्याकुल होकर, महाराज धृतराष्ट्र के साथ ही दुःख के मारे पृथ्वी पर गिर पड़ीं। वहाँ पर उपस्थित सब राज-मण्डली संज्ञाहीन होकर पृथ्वी पर गिरकर विलाप करने लगी और चित्र-लिखित सी प्रतीत होने लगी। सब लोग "हाय, हम मारे गये! हमारा सर्वनाश हो गया!" कहकर विलाप करने लगे। पुत्र-शोक से अत्यन्त दुःखित महाराज धृतराष्ट्र को बड़े कष्ट से धीरे-धीरे होश आया। उनका शरीर उस समय भी काँप रहा था। वे दीन भाव से चारों ओर शून्य दृष्टि डालकर विदुर से कहने लगे—"हे भरतकुलश्रेष्ठ भाई विदुर, अब मैं पुत्रहीन अनाथ हूँ। हे महाप्राज्ञ, इस समय एक-मात्र तुम्हीं मेरी गति और आश्रय हो।" अब वे शोक से फिर बेहोश होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। उनके भाई-बन्धु लोग उन्हें अचेत और पृथ्वी पर पड़े देखकर उनके मुख पर शीतल जल छिड़कने, पङ्खा डुलाने, सेवा करने और इस तरह होश में लाने की चेष्टा करने लगे। बहुत देर के बाद महाराज धृतराष्ट्र कुछ सचेत और सुस्थ हुए। वे चुपचाप, घड़े में बन्द साँप की तरह, बारम्बार साँसें लेने और चिन्ता करने लगे। सञ्जय, यशस्विनी देवी गान्धारी और अन्य स्त्रियाँ महाराज धृतराष्ट्र को पुत्रशोक से अत्यन्त पीड़ित और आतुर देखकर रोने लगीं। ४०

बारम्बार मोह को प्राप्त हो रहे धृतराष्ट्र ने बहुत देर के बाद कहा—हे विदुर, मेरा चित्त अत्यन्त चञ्चल और हृदय विदीर्ण सा हो रहा है। इसलिए कह दो कि यशस्विनी गान्धारी सब स्त्रियों को लेकर यहाँ से रनिवास में चली जायँ। मेरे भाई-बन्धु और इष्ट-मित्र भी इस समय इस स्थान से हट जायँ। हे जनमेजय, विदुर ने धृतराष्ट्र की आज्ञा से सब स्त्रियों और पुरुषों को वहाँ से हटा दिया। वे भी काँपते जाते थे। स्त्रियाँ और सुहृद्गण सभी राजा धृत-राष्ट्र को व्याकुल और पुत्रशोक से पीड़ित देखकर धीरे-धीरे वहाँ से चले गये। होश में आये ५०

हुए धृतराष्ट्र की ओर सञ्जय ने देखा। विदुर ने सब स्त्रियों और पुरुषों को बाहर पहुँचाकर देखा कि महाराज धृतराष्ट्र शोक के वेग से आँसू बहाते और साँसें लेते हुए यही चिन्ता कर रहे हैं कि अब मेरी क्या गति होगी; कौन मुझे आश्रय देगा। राजा को सञ्जय भी हाथ जोड़कर समझा रहे हैं। उस समय सञ्जय और महात्मा विदुर, मधुर वचनों से, वृद्ध
५५ राजा को आश्वासन देने लगे।

दूसरा अध्याय

राजा धृतराष्ट्र का विलाप

वैशम्पायन कहते हैं कि हे जनमेजय! स्त्रियाँ जब दूसरी जगह चली गईं तब अत्यन्त दुःखित महाराज धृतराष्ट्र लगातार गर्म साँसें छोड़ते, हाथ पटकते और चिन्ता करते हुए इस प्रकार विलाप करने लगे—हे सञ्जय, बड़े खेद और दुःख की बात है जो मैं तुम्हारे मुँह से सुन रहा हूँ कि रण में पाण्डवों में से कोई नहीं मरा; वे लोग सकुशल हैं! अवश्य ही मेरा हृदय वज्र का बना हुआ है, जो पुत्रों के मरने का समाचार सुनकर इसके हजार टुकड़े नहीं हो जाते! हे सूत! जिन पुत्रों के मरने की ख़बर आज सुन रहा हूँ, उनकी बालक्रीड़ा और बातों की याद आ-आकर मेरे हृदय को विदीर्ण कर रही है। जन्म से ही अन्धा होने के कारण यद्यपि मैं अपने पुत्रों की सूरत कभी नहीं देख सका, तथापि उनके ऊपर मेरी ममता और पुत्र-स्नेह अत्यन्त प्रबल था। जब मेरे पुत्र सयाने हुए और उन्होंने राजलक्ष्मी प्राप्त की तब उस समाचार को सुनकर मुझे अपार हर्ष हुआ था। उन्हीं पुत्रों को आज ऐश्वर्य से भ्रष्ट और नष्ट सुनकर पुत्रशोक के कारण मुझे किसी तरह शान्ति नहीं प्राप्त होती।—हे राजेन्द्र वत्स दुर्योधन, हे मेरे बुढ़ापे की लकड़ी, हे महाबाहो! आओ बेटा, आओ। पुत्र! तुम्हारे बिना मेरी क्या दशा होगी? मुझ अनाथ को कौन आश्रय देगा? तात! तुम तो चक्रवर्त्ती राजा हो, फिर कैसे किसी साधारण राजा की तरह अपने आश्रित आये हुए राजाओं को छोड़कर, शत्रुओं के हाथ से मरकर, अकेले पृथ्वी
१० पर शयन कर रहे हो? तुम तो अपने जातिवालों, सुहृदों और इष्ट-मित्रों की एकमात्र गति और आश्रयदाता थे। फिर आज अपने अन्धे बूढ़े अनाथ बाप को ही छोड़कर इस समय कहाँ जा रहे हो? मेरे ऊपर तुम्हारी वह कृपा, वह भक्ति, वह सम्मान का भाव और वह प्रीति आज कहाँ चली गई? तुम तो कभी संग्राम में हारे ही नहीं; फिर आज पाण्डवों ने कैसे तुमको मार डाला बेटा? हे राजराजेश्वर, अब सवेरे उठने पर कौन मुझे "पिताजी! पिताजी! महाराज! लोकनाथ!" कहेगा? हे कौरव्य! तुम्हीं बताओ, अब मैं किसे गले से लगाकर, आँखों में स्नेह के आँसू भरकर, उपदेश दूँगा! बेटा, मैंने अनेक बार तुम्हारे मुँह से सुना था कि "हे

पिताजी, यह अधिकांश पृथ्वी मेरे अधिकार और पक्ष में है। जितने वीर मेरे पक्ष में हैं उतने पाण्डवों के पक्ष में नहीं हैं। हे लोकनाथ! वीरवर भगदत्त, कृपाचार्य, शल्य, अवन्तिनाथ, जयद्रथ, भूरिश्रवा, सोमदत्त, महाराज वाह्लीक, कर्ण, अश्वत्थामा, भोजराज कृतवर्मा, महाबली मगधराज, बृहद्बल, क्राथ, महाबली शकुनि, काशी के राजा, काम्बोजराज सुदक्षिण, त्रिगर्तराज सुशर्मा, भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, श्रुतायु, अयुतायु, शतायु, पराक्रमी जलसन्ध, सुवाहु, ऋष्यशृङ्गपुत्र, राक्षसराज अलायुध और अलम्बुष, सुबाहु, लाखों म्लेच्छ, शक, यवन और अन्य अनेक राजा और राजपुत्र मेरे लिए ऐश्वर्य तथा प्राणों का मोह छोड़कर पाण्डवों से युद्ध करेंगे। इन सबके बीच में अपने सौ भाइयों के साथ खड़े होकर मैं सब पाण्डवों, पाञ्चालों, चेदि देश के वीरों और द्रौपदी के पुत्रों से युद्ध करूँगा। हे महाराज! मैं क्रुद्ध होकर अकेला भी सात्यकि, कुन्तिभोज और राक्षसश्रेष्ठ घटोत्कच आदि पाण्डवपक्ष के अनेक वीरों को रोक सकता हूँ। फिर मेरे साथ तो पाण्डवों के वैरी अनेकानेक महारथी वीर योद्धा हैं, जो पाण्डवों से घोर युद्ध करेंगे और अवश्य ही उन्हें मार डालेंगे। ये सब वीर मेरे आज्ञापालक होकर पाण्डवों से लड़ेंगे। अकेले महारथी कर्ण ही मेरे साथ रहकर सब पाण्डवों को और उनकी सेना को मार डालेंगे। उस पर पाण्डवों के प्रधान सहायक महाबली श्रीकृष्ण मुझसे कह चुके हैं कि वे शस्त्र लेकर पाण्डवों की ओर से युद्ध नहीं करेंगे।" २०

हे सञ्जय, मैंने अनेक बार दुर्योधन के मुँह से ये बातें सुनी थीं और युक्ति के अनुसार विचार करने से मुझे यही सूझता था कि अवश्य पाण्डव मारे जायँगे। किन्तु इस समय उन सब अजेय महारथी वीरों के साथ रहने पर भी मेरे ही पुत्र मारे गये। इसका कारण भाग्य के सिवा और क्या हो सकता है? हमारे भाग्य ही खोटे हैं। सिंह को जैसे गीदड़ मार डाले वैसे ही शिखण्डी ने भीष्म पितामह को मार गिराया! सब अस्त्र-शस्त्रों के अद्वितीय ज्ञाता द्रोणाचार्य को पाण्डवों ने मार डाला! इसे भाग्यदोष के सिवा और क्या कहेंगे? दिव्य अस्त्रों के जाननेवाले महाबली अद्वितीय अजेय योद्धा कर्ण, भूरिश्रवा, सोमदत्त और वाह्लीक समर में पाण्डवों के हाथ से मारे गये, इसे दुर्भाग्य के सिवा और क्या कहें? गजयुद्ध में निपुण और इन्द्र के समान पराक्रमी महाराज भगदत्त, जयद्रथ, सुदक्षिण, पुरुवंशीय जलसन्ध, श्रुतायु, अयुतायु, सब शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ महाबली पाण्ड्यराज, बृहद्बल, मगधराज, उग्रायुध, धनुर्द्धरश्रेष्ठ अवन्ती के नरेश दोनों भाई विन्द और अनुविन्द, त्रिगर्तनरेश राजा सुशर्मा और उनकी अजेय संशप्तकसेना को जब पाण्डवों ने मार डाला तब इसे अपने दुर्भाग्य के सिवा और क्या कहूँ? राक्षसराज अलम्बुष और अलायुध, ऋष्यशृङ्ग के पुत्र, युद्ध-दुर्मद गोपालगण, असंख्य नारायणी सेना, बेशुमार पहाड़ी म्लेच्छों का दल, सुबलपुत्र शकुनि और महाबली कैतव्य अपने घुड़सवार योद्धाओं सहित पाण्डवों के हाथ से मारे गये—यह दुर्भाग्य का ही दोष है। इस तरह अनेक देशों से ३१ ४०

आये हुए, इन्द्र-तुल्य पराक्रमी, अजेय, शूर, परिघ-सदृश बाहुदण्डवाले, युद्ध-दुर्मद बहुत से क्षत्रिय राजा और राजपुत्र समर में मारे गये। इसका कारण दुर्भाग्य ही है। मेरे बेटे, पोते, भाई, सखा, इष्ट-मित्र आदि सब मरते ही चले गये। इसका कारण दुर्दैव के सिवा और कुछ नहीं हो सकता। इसमें सन्देह नहीं कि मनुष्य भाग्य के साथ ही जन्म लेता है और जिसका भाग्य अच्छा होता है उसी को शुभ और कल्याण प्राप्त होता है। मैं भाग्यहीन था, इसी लिए वृद्धावस्था में मेरे सब पुत्र मारे गये। अब मैं अन्ध-वृद्ध-अनाथ शत्रुओं के अधीन होकर किस दशा को प्राप्त हूँगा! मुझे अब वनवास के सिवा और कोई उपाय नहीं सूझता। सब जाति का नाश हो जाने के कारण मैं बन्धुहीन पुत्र-पौत्र-रहित हो गया हूँ, इसलिए अब वन को चला जाऊँगा। इसी में मेरा कल्याण है। उस पक्षी के समान मेरी बुरी अवस्था हो गई है जिसके पंख काट लिये गये हों। दुर्योधन, दुःशासन, विविंशति, महाबली विकर्ण और शकुनि आदि सब मारे जा चुके हैं। अब मैं समर में अपने सौ पुत्रों को मारनेवाले क्रूर भीमसेन के दुर्वचन ५९ नहीं सुन सकूँगा। दुर्योधन को मारकर भीमसेन सदा बारम्बार मेरे आगे अपने मुँह अपनी बड़ाई करेगा। उसके वे कठोर वाक्य मुझ पुत्रशोक-पीड़ित वृद्ध से कदापि न सुने जायँगे।

वैशम्पायन कहते हैं कि हे जनमेजय! पुत्रशोक से पीड़ित राजा धृतराष्ट्र ने इस तरह बड़ी देर तक विलाप किया। शत्रुओं से होनेवाली अपने पक्ष की पराजय को स्मरण करके, बारम्बार लम्बी साँसें छोड़ते हुए, वे फिर सञ्जय से इस प्रकार समर के समाचार पूछने लगे—हे सञ्जय! मेरे पक्ष के वीरों ने महारथी भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य और कर्ण की मृत्यु हो जाने पर किसे सेनापति का पद दिया? कौरवगण जिसे अपना सेनापति बनाते हैं वही शीघ्र पाण्डवों के हाथ से मारा जाता है। तुम लोगों के और राजाओं के सामने ही अर्जुन ने [शिखण्डी को आगे खड़ा करके] भीष्म पितामह को रथ से गिरा दिया और कर्ण को मार गिराया। उसी तरह प्रतापी द्रोणाचार्य को धृष्टद्युम्न ने मार डाला। पहले सब धर्मों के ज्ञाता ६० महामति विदुर ने मुझ से कहा था कि दुर्योधन के अपराध से सारी प्रजा का नाश होगा। उस समय मूढ़ कौरवों में से किसी ने उनके यथार्थ कथन पर ध्यान नहीं दिया। मैंने भी मोह में पड़कर विदुर की बात नहीं सुनी। इस समय उनकी सब बातें सच हुईं। दैव ने मेरी बुद्धि को हर लिया था और मैंने दुर्नीति का आश्रय लिया। हे सञ्जय, उस दुर्नीति का फल जो कुछ हुआ उसे तुम मेरे आगे कहो। वीर कर्ण के मारे जाने पर कौन वीर सेनापति बनाया गया? कौन महारथी सेना के आगे होकर श्रीकृष्ण और अर्जुन से युद्ध करने के लिए गया? महावीर शल्य जब सेनापति बनाये गये तब किन लोगों ने उनके दहने पहिये की रक्षा की, किन लोगों ने बायें पहिये की रक्षा की और पृष्ठ-रक्षक कौन लोग हुए? तुम सब मिलकर रक्षा करते रहे; तिस पर भी शल्य और मेरे पुत्र दुर्योधन को पाण्डवों ने किस तरह मारा? अनुचरों

सहित पाञ्चालगण, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी और द्रौपदी के पाँचों पुत्र कैसे मारे गये ? भरतवंश के वीरों और पाञ्चालों के इस सर्वनाश का वृत्तान्त तुम मुझसे कहो। पाँचों पाण्डव, श्रीकृष्ण, सात्यकि, कृतवर्मा, कृपाचार्य और अश्वत्थामा, ये दसों महारथी कैसे मृत्यु के मुख में जाने से बच गये ? हे सञ्जय, तुम वर्णन करने में बड़े निपुण हो। इसलिए जहाँ जब जिस तरह जैसा युद्ध हुआ, वह सब मैं सुनना चाहता हूँ। तुम वर्णन करो। ७०

तीसरा अध्याय

भाग रही सेना को लौटाकर दुर्योधन का फिर युद्ध के लिए उद्योग करना

सञ्जय ने कहा—हे महीपाल! कौरवों और पाण्डवों के परस्पर भिड़ने पर जैसा भारी जन-क्षय हुआ वह मैं कहता हूँ, आप सावधान होकर सुनिए। वीर कर्ण को जब अर्जुन मार चुके तब कौरवसेना बारम्बार डरकर भागने लगी। संग्राम में असंख्य राजाओं और सैनिक क्षत्रियों का दारुण संहार होने पर भी राजा दुर्योधन सेना को लौटाकर युद्ध करने के लिए उत्साहित करने लगे। भागी हुई सेना को फिर युद्ध करने के लिए लौटते देखकर महारथी अर्जुन ने घोर सिंहनाद किया। वह भयङ्कर शब्द सुनकर आपके पुत्रगण बहुत ही विह्वल हुए। वास्तव में कर्ण की मृत्यु हो जाने पर कौरवपक्ष का कोई भी वीर न तो सेना को ही लौटाकर सुश्रृङ्खला के साथ स्थापित कर सकता था और न आप ही पराक्रम प्रकट करने में समर्थ था। आपके पुत्रगण अत्यन्त भय-विह्वल और शत्रुओं के प्रहार से घायल हो चुके थे। अथाह समुद्र के बीच जहाज़ टूट जाने पर यात्री जैसे नौका, टापू या तटभूमि को पाने के लिए छटपटाते हैं वैसे ही कौरव-गण, अनाथ होकर, अपने आश्रयदाता को

खोज रहे थे। उनकी दशा सिंह-पीड़ित मृगों के झुण्ड की सी हो रही थी। जिनके सींग टूट गये हों उन साँड़ों की तरह, या जिनके दाँत तोड़ डाले गये हों उन नागों की तरह, अर्जुन से परास्त कौरवगण सन्ध्या के समय भागने लगे। कौरवसेना के श्रेष्ठ वीर कर्ण के मरने पर

तीक्ष्ण बाणों से छिन्न-भिन्न, कवचहीन, अचेतप्राय, एक दूसरे को गिराते और रौंदते हुए, विध्वंस को प्राप्त आपके पुत्रगण भागने लगे। उन्हें यह नहीं सूझता था कि किस ओर भागकर जायँ। डर के मारे वे लोग सब ओर देखते जाते थे; क्योंकि हर एक यही समझता था कि अर्जुन और
१० भीमसेन उसी की ओर आ रहे हैं। इसी घबराहट में अनेक लोग गिर पड़े और घायल हो गये। महारथी लोग हाथियों, घोड़ों और रथों को तेज़ी से हाँकते हुए—पैदलों को वहीं छोड़कर—डर के मारे भागे जा रहे थे। उस भगदड़ में हाथियों ने रथों को तोड़-फोड़ डाला, रथों ने घुड़सवारों को कुचल डाला और घोड़ों ने पैदलों को रौंद डाला। साँपों और डाकुओं से भरे हुए वन में, अपने साथियों से छूटे हुए, यात्री की जो दशा होती है वही दशा—कर्ण की मृत्यु के बाद—आपके पुत्रों की हुई। बहुत से हाथी सवारों से ख़ाली हो गये थे और बहुतों की सूँड़ें कट गई थीं। उस समय भय-विह्वल कौरवों को सब ओर अर्जुन ही दिखाई दे रहे थे।

महाराज दुर्योधन ने सबको भीमसेन के डर से भागते देखकर, सबको सुनाकर, ज़ोर से अपने सारथी से कहा—हे सारथी! मैं सेना के जघन-स्थल अर्थात् बीच में खड़ा होकर शत्रुओं से युद्ध करूँगा, इसलिए तुम झटपट घोड़ों को हाँककर वहाँ पर मेरा रथ ले चलो। धनुष हाथ में लेकर युद्ध कर रहे मुझको अर्जुन कभी नहीं हटा सकेगा, जैसे कि समुद्र का प्रवाह तटभूमि के उधर नहीं जा सकता। आज मैं कृष्ण सहित अर्जुन, अभिमानी भीमसेन और बचे हुए अन्य सब शत्रुओं को मारकर कर्ण का बदला लूँगा—मित्र के ऋण से छुटकारा पाऊँगा।

महाराज, दुर्योधन के ये—शूर और आर्य पुरुष के योग्य—वचन सुनकर सारथी उन सुवर्णजालभूषित श्रेष्ठ घोड़ों को धीरे-धीरे चलाने लगा। उस समय हाथियों, घोड़ों और रथों
२० की सेना से हीन पचीस हज़ार पैदल योद्धा धीरे-धीरे राजा के साथ आगे बढ़े। पराक्रमी भीमसेन और धृष्टद्युम्न ने कुपित होकर उन वीरों को, चतुरङ्गिणी सेना से रोककर, बाणों से मारना शुरू कर दिया। वे पैदल भी क्रोध से भीमसेन और धृष्टद्युम्न को, उनके नाम ले-लेकर, युद्ध के लिए ललकारते हुए उनसे युद्ध करने लगे। पैदलों को जमकर युद्ध करते देखकर भीमसेन को क्रोध चढ़ आया। वे क्षत्रिय के धर्म का ख़याल करके गदा हाथ में लेकर रथ से उतर पड़े और बाहुबल के भरोसे पैदल ही उनसे लड़ने लगे। कालदण्ड के तुल्य सुवर्णभूषित भारी गदा से काल-सदृश भीमसेन उन सबको मारने लगे। पैदल योद्धा भी जीवन और भाई-बन्धुओं का मोह छोड़कर क्रोध से भीमसेन की ओर ऐसे दौड़े जैसे पतङ्ग स्वयं जलने के लिए आग पर झपटते हैं। वे सब कुपित युद्धप्रिय पैदल योद्धा भीमसेन को देखकर वैसे ही गरजने लगे जैसे प्राणी यमराज को देखकर चिल्लाते हैं। भीमसेन ने भी बाज़ की तरह झपट-झपटकर खड्ग और गदा से उन पचीसों हज़ार को समाप्त कर दिया। महाबली भीमसेन उस पैदल सेना को मारकर धृष्टद्युम्न के साथ रण-भूमि में शोभायमान हुए।

उधर महावीर अर्जुन रथ-सेना की ओर वेग से बढ़े। महाबली सात्यकि और नकुल-सहदेव उत्साह के साथ झपटकर कौरवसेना का संहार करते हुए शकुनि के सामने पहुँचे। वे तीक्ष्ण बाणों से शकुनि के साथी घुड़सवारों को मारते हुए बड़े वेग से शकुनि की ओर चले। शकुनि के योद्धा भी बड़े वेग से उनकी ओर चले और घोर युद्ध होने लगा। अर्जुन भी त्रिलोक-प्रसिद्ध गाण्डीव धनुष का शब्द करते हुए रथ-सेना की ओर बढ़े। श्रीकृष्ण-सञ्चालित सफ़ेद घोड़ों से शोभित रथ पर अर्जुन को आते देखकर कौरवसेना के योद्धा डर के मारे भागने लगे। रथों, हाथियों और घोड़ों से हीन तथा बाणों से छिन्न-भिन्न जिन पचीस हज़ार पैदलों ने आक्रमण किया था, उन्हें शीघ्र ही मारकर धृष्टद्युम्न सहित महारथी भीमसेन भी वहीं पर आ गये। महा-धनुर्द्धर, श्रीमान्, शत्रुमद-मर्दन, महायशस्वी, पाञ्चालराज धृष्टद्युम्न को कोविदार-चिह्न-युक्त ध्वजा और अबलख़ घोड़ों से शोभित रथ पर आते देखकर कौरवसेना के लोग डरकर भागने लगे। शीघ्र शस्त्र चलानेवाले गान्धारराज शकुनि का पीछा कर रहे सात्यकि और नकुल-सहदेव भी शीघ्र ही वहीं देख पड़े। चेकितान, शिखण्डी और द्रौपदी के पाँचों पुत्र आपकी सेना को मार-कर अपने-अपने शङ्ख बजाने लगे। साँड़ को हराकर साँड़ जैसे उसका पीछा करता है, वैसे ही पाण्डवपक्ष के सब वीर आपकी सेना को विमुख करके उसका पीछा करने लगे। बची हुई कौरवसेना को युद्ध करने के लिए उद्यत देखकर महारथी अर्जुन क्रोध से अधीर हो उठे। वे बाण बरसाकर उसे पीड़ित करने लगे। उस समय सेना की दौड़-धूप से इतनी धूल उड़ी कि कुछ भी नहीं सूझता था। पृथ्वी पर बाण छा गये थे और आकाश में धूल छाई हुई थी, इससे सब ओर अँधेरा ही अँधेरा हो गया। सब कौरवसेना शङ्कित और उद्विग्न होकर भागने लगी। ३० ४०

हे कुरुराज, सबको भागते देखकर दुर्योधन बड़े वेग से शत्रुसेना की ओर बढ़े। राजा बलि ने जैसे देवताओं का सामना किया था वैसे ही अकेले दुर्योधन पाण्डवपक्ष के सब वीरों को युद्ध के लिए ललकारने लगे। वे लोग भी क्रुद्ध होकर, बारम्बार अनेक शस्त्र चलाते तथा भर्त्सना करते हुए, दुर्योधन की ओर दौड़े। उस समय हम लोगों ने आपके पुत्र का अद्भुत पौरुष देखा। पाण्डवपक्ष के अनेक वीर एक दुर्योधन को विमुख नहीं कर सके। दुर्योधन ने देखा कि उनकी सेना बेतरह घायल होकर थोड़ी ही दूर पर खड़ी है और भागना चाहती है, तब वे उसे सुश्रृङ्खला के साथ स्थापित और उत्साहित करने के लिए यों कहने लगे—हे योद्धाओ! मुझे वह स्थान नहीं देख पड़ता जहाँ जाने से तुम लोग बच सको। पृथ्वी पर, पहाड़ों में, वन में, जहाँ तुम जाओगे वहीं जाकर पाण्डव तुम्हें मारेंगे। फिर भागने से क्या लाभ? पाण्डवों की सेना थोड़ी ही रह गई है, कृष्ण और अर्जुन भी बेहद घायल हो रहे हैं—थक भी गये हैं। अगर हम सब मिलकर युद्ध करेंगे तो हमारी ही जीत होगी। अगर तुम पाण्डवों से वैर करके भागोगे तो वे पीछा करके तुम्हें मार डालेंगे। इसलिए सामने लड़ते-लड़ते युद्ध में मारा जाना ५०

ही उस तरह की दीन मृत्यु से अच्छा है। क्षत्रियधर्म के अनुसार युद्ध करते-करते युद्धभूमि में मरना बड़े ही सुख की बात है। इस तरह मरने से दुःख या मृत्यु की यन्त्रणा नहीं भोगनी पड़ती; परलोक में भी अनन्त स्वर्गसुख प्राप्त होता है। यहाँ पर उपस्थित सब क्षत्रियो, मेरी बात सुनो। अगर यों अलग होकर भागोगे तो अवश्य प्रबल शत्रु कुपित भीमसेन के हाथ में पड़ जाओगे। इसलिए उस धर्म को मत छोड़ो जिसका पालन तुम्हारे बाप-दादों ने किया है। क्षत्रिय के लिए रण से भागने की अपेक्षा अधिक अधर्म या पाप दूसरा नहीं है। हे कौरवो, युद्धधर्म से बढ़कर सहज और अच्छा स्वर्ग का मार्ग दूसरा नहीं है। युद्ध में मरनेवाला तत्काल उन दुर्लभ लोकों को प्राप्त होता है, जिन्हें और लोग बहुत दिन तक पुण्य और तप करके बड़ी कठिनाई से पाते हैं।

हे राजेन्द्र, सब महारथियों ने राजा दुर्योधन के ये वचन सुनकर उनकी प्रशंसा की। शत्रुओं से प्राप्त पराजय को न सह सकने के कारण फिर पराक्रम प्रकट करने के लिए दृढ़ निश्चय करके सब योद्धा पाण्डवों से लड़ने के लिए उनकी ओर चले। कौरव और पाण्डव फिर देवासुर-संग्राम के समान भयानक युद्ध करने लगे। आपके पुत्र दुर्योधन बची हुई सब सेना लेकर युधिष्ठिर आदि पाण्डवों की ओर बड़े वेग से बढ़े। ६१

चौथा अध्याय

कृपाचार्य का दुर्योधन को मेल कर लेने के लिए समझाना

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज! महात्मा वृद्ध कृपाचार्य ने चारों ओर दृष्टि डालकर उस रुद्र की क्रीड़ाभूमि (मसान) के समान रणभूमि को देखा कि कहीं पर टूटे हुए रथ और उनकी बैठकें पड़ी हुई हैं; कहीं पर ध्वजाएँ पड़ी हुई हैं; कहीं पर मारे गये पैदलों, हाथियों और घोड़ों के ढेर लगे हैं। कहीं पर राजाओं के सामान और चिह्न अस्त-व्यस्त पड़े हैं। कहीं पर सैकड़ों-हज़ारों वे राजा और राजपुत्र मरे पड़े हैं, जिनका—जिनके वंश का—नाम-निशान दुनिया से उठ गया है। उन्हें देख पड़ा कि आपके पुत्र राजा दुर्योधन शोक से अत्यन्त विह्वल हो रहे हैं; अर्जुन के पराक्रम को देखकर सैनिकगण अत्यन्त घबराये हुए, दुःखित और ध्यानमग्न से होकर सोच रहे हैं। तब पाण्डवों के प्रहार से पीड़ित और विनष्ट हो रही सेना की दुर्दशा देखकर तथा दारुण आर्तनाद सुनकर तेजस्वी सुशील कृपाचार्य कृपायुक्त होकर दुर्योधन के पास गये और कहने लगे—महाराज दुर्योधन, मैं जो तुमसे कहता हूँ उसे सुनो। सुनकर अगर रुचे, तो वैसा ही करो। हे राजेन्द्र, इसमें सन्देह नहीं कि युद्ध ही क्षत्रिय का धर्म है। हे क्षत्रियश्रेष्ठ, युद्ध करना ही क्षत्रिय के लिए श्रेय का मार्ग है और इसी क्षत्रियधर्म के अनुसार

तब पाण्डवों के प्रहार से पीड़ित..........कृपाचार्य कृपायुक्त होकर दुर्योधन के पास गये और कहने लगे—पृ० ३०१६

क्षत्रिय लोग अपने पिता, पुत्र, भाई, भानजे, मामा, सम्बन्धी और भाई-बन्धु आदि सबसे युद्ध करते हैं [; अगर वे अपने विरुद्ध खड़े होते हैं]। रण में मरने से क्षत्रिय परमधर्म का भागी होता है। वैसे ही रण से भागना उसके लिए महा अधर्म है। हम लोग जीविका के लिए उसी घोर क्षत्रियधर्म का पालन करते हुए स्वजनों से युद्ध कर रहे हैं। मैं भी मानता हूँ कि १० जीवन बचाने के लिए संग्राम से भागना ठीक नहीं। किन्तु मैं इस समय तुमसे जो हित की बात कहना चाहता हूँ, उसे ध्यान देकर सुन लो।

महारथी भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, कर्ण, जयद्रथ, दुःशासन आदि तुम्हारे भाई और प्रिय पुत्र राजकुमार लक्ष्मण प्रभृति स्वजन जब मारे जा चुके हैं तब रही क्या गया जिसके लिए हम जीना चाहें? जिन वीरों को संग्राम (या राज्य-शासन) का भार सौंपकर हम निष्कण्टक राज्य करने का विचार किये हुए थे वे सभी शूर शरीर त्यागकर ब्रह्मज्ञ लोगों की गति (स्वर्ग या ब्रह्मलोक) को पहुँच चुके हैं। उन गुणी महारथियों से रहित हम लोग (अगर जीते रहे तो) यहाँ बहुत से राजाओं का विनाश कराकर अत्यन्त दीन दुःखपूर्ण जीवन वितावेंगे। देखो, जब भीष्म, द्रोण, कर्ण आदि सब महारथी जीवित थे तब वे भी अर्जुन को नहीं परास्त कर सके। असल में अर्जुन के सहायक और सलाहकार महात्मा श्रीकृष्ण हैं और इसी लिए उन महाबाहु पाण्डव को देवगण भी नहीं जीत सकते। इन्द्रधनुष और वज्र के समान प्रकाशमान तथा इन्द्र की ध्वजा के समान ऊँची अर्जुन की वानर-युक्त ध्वजा को देखकर हमारी विशाल सेना विचलित हो उठती है। भीमसेन का सिंहनाद, श्रीकृष्ण की शङ्खध्वनि और अर्जुन के गाण्डीव धनुष की टङ्कार सुनते ही हमारे हृदय दहल उठते हैं। समर में मण्डलाकार घूम रहा गाण्डीव धनुष अलातचक्र की तरह दिखाई पड़ता है और उसकी प्रभा चमक रही बिजली की तरह आँखों में चकाचौंध पैदा कर देती है। अर्जुन का बाण-वर्षा कर रहा धनुष, मेघों के बीच बिजली की तरह, सब तरफ़ चमकता दिखाई देता है। श्रीकृष्ण-सञ्चालित अर्जुन के सफ़ेद घोड़े अर्जुन को लेकर हवा के उड़ाये बादलों की तरह बड़े वेग से जाते हैं, जान पड़ता है कि वे आकाश को ही उड़ जायँगे। २१ अस्त्रनिपुण अर्जुन ने उसी तरह आपकी सेना को बाण-वर्षा से नष्ट किया है, जिस तरह ग्रीष्म ऋतु में वन में लगी हुई आग सूखे तृणों को जलाती है। इन्द्र-सदृश प्रभावशाली वीर अर्जुन ने हमारी सेना में घुसकर उसी तरह सैनिकों को मथ डाला और राजाओं को डर से व्याकुल कर दिया है, जिस तरह कोई मस्त गजराज कमलवन को रौंदता और नष्ट-भ्रष्ट करता है। सिंह जैसे गरजकर मृगों के झुण्ड को भगा देता है वैसे ही हम लोगों ने देखा कि अर्जुन धनुष के शब्द से हमारे योद्धाओं में हलचल डाल रहे हैं। पृथ्वी के सर्वश्रेष्ठ योद्धा श्रीकृष्ण और अर्जुन कवच पहने सम्पूर्ण राजमण्डली में सबसे बढ़कर शोभा-युक्त देख पड़ते हैं। राजन्, इस अत्यन्त घोर संग्राम में दोनों दलों का युद्ध और नाश होते सोलह दिन बीत गये, आज सत्रहवाँ दिन है।

अर्जुन जिधर जाते हैं उधर ही तुम्हारी सेना, हवा से छिन्न-भिन्न शरद् ऋतु के मेघों की तरह, चारों ओर भागने लगती है। समुद्र में डूब रहा जहाज़ जैसे उलटने की दशा में हिलता-डुलता है, वैसे ही वीर अर्जुन ने अब तक तुम्हारी सेना को बारम्बार विचलित किया है। हे नरनाथ! जब वीर अर्जुन ने हम लोगों के सामने ही युद्ध कर रहे जयद्रथ को मार डाला था तब मैं, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, तुम, तुम्हारे मित्र कर्ण, कृतवर्मा, तुम्हारे दुःशासन आदि सब भाई कहाँ
३१ चले गये थे? वीर पाण्डव ने तुम्हारे सम्बन्धी, भाई, मामा, सहायक आदि सबको अपने पराक्रम से परास्त करके सबके सामने ही तो जयद्रथ को मारा था? हमारी मण्डली में अब कौन ऐसा पुरुष है, जो अर्जुन को जीतेगा? उन्हें अनेक दिव्य अस्त्र मालूम हैं। उनके गाण्डीव धनुष का शब्द हमारे धैर्य और बल-वीर्य को हर लेता है। सेनापति के मारे जाने से हमारी यह सेना वैसे ही शोभाहीन जान पड़ती है जैसे चन्द्रमा के अस्त हो जाने पर रात्रि और किनारे के वृक्ष टूटने तथा जल सूखने पर नदी। सेनापति के न रहने से अब अर्जुन, सूखी घास के ढेर में आग की तरह, हमारी सेना में घुसकर यथेष्ट रूप से उसको चौपट करेंगे। सात्यकि और भीमसेन का वेग पहाड़ों को भी फोड़ सकता है, सागरों को भी सुखा सकता है। पराक्रमी भीमसेन ने पहले कुरुसभा में जो कुछ कहा था उसे उन्होंने कर दिखाया और शेष प्रतिज्ञा को भी वे पूरा करेंगे। देखो, महावीर कर्ण जब सेनापति होकर युद्ध करने को खड़े हुए थे तब अर्जुन ने कैसे दुर्भेद्य व्यूह की रचना करके सहज में अपनी सेना की रक्षा की! हे दुर्योधन, तुमने साधुस्वभाव पाण्डवों के
४० साथ अकारण ही जो बुरे व्यवहार किये हैं, उन्हीं दुष्कर्मों का फल यह सामने आया है। तुमने अपने कार्य की सिद्धि (राज्य और विजय) के लिए यत्नपूर्वक सैन्य सहित अनेक नरपालों को यहाँ जमा किया था। किन्तु हे भरतश्रेष्ठ, वे सब प्राणों से हाथ धो बैठे। इस समय तुम्हारा जीवन भी बचता नहीं दिखाई देता। इसी लिए मैं तुमको समझाता हूँ कि अब तुम अपने प्राण बचाने का यत्न करो। जीवन रहने से सब कुछ प्राप्त हो सकता है। आधार-पात्र के टूट जाने पर उसमें रक्खी हुई वस्तु भी नष्ट हो जाती है। देखो, देवगुरु बृहस्पति ने यह नीति कही है कि अगर अपने को शत्रु से घटकर या बल में उसके समान देखे तो उससे सन्धि कर ले। हाँ, जब आप शत्रु से प्रबल हो तब युद्ध करे। इस समय बल और शक्ति में हमारा पक्ष पाण्डवों से घटकर है। इसी लिए मैं तुमको पाण्डवों से मेल कर लेने की नीति-सङ्गत सलाह दे रहा हूँ। हे प्रभो, जो राजा स्वयं अपने हित को नहीं जानता और हितचिन्तक के हितोपदेश का भी अनादर करता है वह शीघ्र ही राज्य से भ्रष्ट होता है; किसी तरह उसे कल्याण नहीं प्राप्त होता। हम इस समय अगर राजा युधिष्ठिर के आगे झुककर राज्य प्राप्त कर सकें तो उसी में हमारा कल्याण है। मूढ़ता करके पाण्डवों से परास्त होना और जीवन तथा राज्य दोनों गँवाना कदापि उचित नहीं। देखो, राजा युधिष्ठिर अत्यन्त कृपालु हैं। वे महाराज धृतराष्ट्र और श्रीकृष्ण के

कहने से अवश्य तुमको तुम्हारा, राज्य का, अंश दे देंगे। देखो, महात्मा कृष्ण जो कहेंगे उसे अजातशत्रु राजा युधिष्ठिर, भीमसेन और अर्जुन अवश्य ही मान लेंगे। यह स्पष्ट है कि कृष्णचन्द्र राजा धृतराष्ट्र की प्रार्थना को न टालेंगे और पाण्डवों सहित युधिष्ठिर कृष्णचन्द्र की राय के ख़िलाफ़ काम न करेंगे। इस प्रकार मैं इस समय यही उचित समझता हूँ कि तुम अब पाण्डवों के साथ युद्ध करना छोड़कर मेल कर लो। इसी में तुम्हारा और सबका भला है। मैं भय, दीनता अथवा प्राणों की रक्षा के विचार से ऐसा नहीं कहता। मैं तुम्हारे हित के लिए ही यह सलाह देता हूँ। इस समय अगर मेरा कहा न मानोगे तो पीछे शत्रुओं के हाथ से मारे जाने पर स्मरण करोगे कि कृपाचार्य का कहना ही ठीक था।

हे नरेन्द्र! वृद्ध कृपाचार्य दुर्योधन से यों कहकर, लम्बी गर्म साँसें लेकर, शोक और मोह से अत्यन्त अभिभूत हो उठे। ५१

पाँचवाँ अध्याय

दुर्योधन का उत्तर

सञ्जय कहते हैं कि राजन्! तपस्वी वृद्ध कृपाचार्य के ये वचन सुनकर, लम्बी और गर्म साँस लेकर, कुरुराज दुर्योधन चुप हो रहे। महामनस्वी आपके वीर पुत्र ने दम भर सोचकर कृपाचार्य से कहा—ब्रह्मन्, हितचिन्तक सुहृद् को जो कुछ कहना चाहिए वही आपने कहा है। प्राणों का मोह छोड़कर आप मेरी ओर से लड़े हैं और आपने सब तरह मेरी भलाई ही की है। सबने देखा है कि आप महातेजस्वी पाण्डवों और उनके पक्ष के महारथियों से ख़ूब लड़े हैं और शत्रुसेना के बड़े-बड़े झुण्डों में घुसकर अपना पराक्रम दिखाते रहे हैं। हे आचार्य! आपके ये वचन हितकर, युक्तियुक्त, हेतु-सङ्गत और उत्तम हैं। किन्तु मरनेवाले व्यक्ति को जैसे दवा नहीं रुचती वैसे ही आपकी यह सलाह मुझे नहीं रुचती। हे महाबाहो, हे विप्रवर! पाण्डवों से सन्धि होना असम्भव है। [कई कारणों से पाण्डव राज़ी नहीं होंगे और कई कारणों से मैं सन्धि का प्रस्ताव नहीं करूँगा। उन्हीं कारणों को कहता हूँ,] सुनिए, जिन राजा युधिष्ठिर को हमने जुए में जीता और राज्य लेकर वन को भेज दिया वे भला अब फिर कैसे हमारी बात पर विश्वास करेंगे? पाण्डवों के हितचिन्तक कृष्ण दूत बनकर, सन्धि का प्रस्ताव लेकर, जब आये थे तब हमने उनकी बात नहीं मानी और उनको पकड़ लेने का इरादा किया। हमारा यह काम अविचार-पूर्ण था। वही कृष्ण अब कैसे हमारी बात मान लेंगे? कुरुसभा में लाई गई द्रौपदी का विलाप और पाण्डवों का राज्य-हरण कृष्ण को अत्यन्त असह्य हो रहा है। पहले १० मैंने सुना था कि कृष्ण और अर्जुन एक प्राण दो देह हैं, एक के लिए दूसरा सब कुछ कर सकता

है। आज वही बात आँखों से देख रहा हूँ। कृष्ण का भानजा अभिमन्यु जिस दिन अन्याय से मारा गया उस दिन से उन्हें सुख की नींद नहीं आती। हम लोगों ने अभिमन्यु को मारकर उनका घोर अपराध किया है। तब वे उसे क्षमा करके मेरे हित के लिए सन्धि का प्रस्ताव कैसे मान लेंगे? अभिमन्यु की मृत्यु से अर्जुन को भी दारुण दुःख हुआ है। उसे हर घड़ी अभिमन्यु की मृत्यु का ख़याल बेचैन किये रहता है। अर्जुन ही प्रार्थना करने पर मेरे हित का प्रयत्न कैसे करेगा? मँझले पाण्डव महाबली भीमसेन का स्वभाव अत्यन्त उग्र है। ख़ासकर उसने मेरे वध की भीषण प्रतिज्ञा की है। वह कब सन्धि के लिए राज़ी होगा? उसके बारे में यह कहावत बिलकुल ठीक है कि टूट भले जाय पर झुक नहीं सकता। वह संग्राम में चाहे मार डाला जाय, किन्तु प्रतिज्ञा को पूरी करके ही रहेगा। लोहकवचधारी, खड्ग बाँधे हुए, वीर नकुल और सहदेव भी मुझसे बड़ा वैर मानते हैं। वे यम-तुल्य दोनों भाई मेरे दुर्व्यवहार से ऐसे रूठे हुए हैं कि कभी मेल हो जाना पसन्द न करेंगे। हे द्विजश्रेष्ठ, धृष्टद्युम्न और शिखण्डी भी मेरे पक्के वैरी हैं। वे ही कैसे मेरे हित का प्रयत्न कर सकते हैं? दुःशासन ने भरी सभा में, सब लोगों के सामने, एकवस्त्रधारिणी रजस्वला द्रौपदी को क्लेश पहुँचाया था। पाण्डवगण वस्त्रहीन द्रौपदी की उस दीन दशा को अब तक नहीं भूले हैं और इसी कारण कोई भी उनको संग्राम से नहीं रोक सकता। द्रौपदी ने क्लेश और दुःख पाकर उसी दिन से, मेरे नाश और पाण्डवों की विजय के लिए, उग्र तप करना आरम्भ कर दिया था। उसका व्रत है कि जब तक बदला न मिल जायगा तब तक वह ज़मीन पर ही सोवेगी। कृष्ण की बहन सुभद्रा, मान और दर्प को छोड़कर, दासी की तरह सदा द्रौपदी की सेवा करती है। इस तरह द्रौपदी के अपमान और अभिमन्यु के वध से जो ठान ठन गया है वह होकर ही रहेगा। उक्त दोनों घटनाओं से पाण्डवपक्ष के सब लोगों के हृदय में जो क्रोध की आग जल रही है वह सहज में नहीं बुझ सकती। इसी कारण पाण्डवों से मेल होना असम्भव है।

२१ इसके सिवा मैं आज तक इस सारी पृथ्वी का एकच्छत्र राज्य कर चुका हूँ, फिर अब पाण्डवों की कृपा से प्राप्त अधूरा राज्य लेकर क्या करूँगा? सब राजाओं के ऊपर सूर्य के समान तपनेवाला मैं अब युधिष्ठिर के पीछे नौकर की तरह कैसे चल सकता हूँ? मैंने स्वयं दुर्लभ सुख भोगे हैं और अपने अनुगत लोगों को बहुत सा धन दिया है। अब कैसे दीन जनों के साथ दीन भाव से रहकर पेट पालूँगा? हे आचार्य! मैं आपके, हित और स्नेह के ख़याल से कहे गये, वचनों को बुरा नहीं समझता। किन्तु मेरी समझ में यह समय पाण्डवों से सन्धि करने का नहीं है। मैं इस समय युद्ध को ही नीति-सङ्गत समझता हूँ। मुझे इस समय कायरों की तरह सन्धि का प्रस्ताव न करके वीरों की तरह युद्ध ही करना चाहिए। मैं बहुत से यज्ञ कर चुका हूँ, ब्राह्मणों को भारी दक्षिणाएँ दे चुका हूँ। मेरी सब इच्छाएँ पूरी हो चुकी हैं। वेद पढ़ चुका, शास्त्र सुन चुका। शत्रुओं

के सिर पर पैर रखकर राज्यभोग कर चुका। जो मेरे भृत्य थे उनका भरण-पोषण अच्छी तरह किया। दीन-दुखियों की सहायता की—दुःख दूर किया। मैं इस समय प्राण-रक्षा के लिए पाण्डवों से हीन वचन कहकर सन्धि का प्रस्ताव क्यों करूँ? मैंने शत्रुओं के राज्य जीते, अपने राज्य का पालन किया। विविध भोग भी भोग लिये। धर्म, अर्थ और काम का सेवन भी भरपूर कर लिया। पितरों के और क्षत्रियधर्म के ऋण से भी मैं उरिन हो चुका। अब किस लिए पाण्डवों से मेल की प्रार्थना करूँ? इस संसार में सुख सदा नहीं रहता। राष्ट्र और यश भी अस्थिर है। कीर्ति ही सदा बनी रहती है। मनुष्य को कीर्ति-स्थापन का ही प्रयत्न करना चाहिए। सो संग्राम करने और लड़कर मरने से ही मुझे वह कीर्ति प्राप्त होगी। क्षत्रियों की मृत्यु अगर घर में पड़े-पड़े हुई तो वह निन्दनीय मृत्यु और महा अधर्म है। जो क्षत्रिय बहुत से यज्ञ करके वन में या युद्ध में शरीर-त्याग करता है, वह महामहिमा (कीर्ति) और स्वर्ग का अधिकारी होता है। जो क्षत्रिय वृद्ध होकर, आर्त (रोगग्रस्त) होकर, विलाप कर रहे भाई-बन्धुओं के बीच रोता हुआ मरता है वह मर्द नहीं है। बड़े भाग्य की बात होगी अगर मैं युद्ध में मरकर उन लोगों की गति पाऊँगा, जो कि सब भोगों को छोड़कर मर्दानगी के साथ लड़कर स्वर्गवासी हुए हैं। आर्यचरित्र, संग्राम से विमुख न होनेवाले, बुद्धिमान्, सत्यप्रतिज्ञ, अनेक यज्ञ करनेवाले और शस्त्र प्रहार से प्राण त्यागनेवाले शूर पुरुष सहज में स्वर्गलोक को जाते और वहाँ रहते हैं। युद्ध के समय ऐसे वीर क्षत्रियों को अप्सराएँ आनन्दपूर्वक कौतूहल की दृष्टि से देखती हैं। युद्ध में मरे हुए वीरों को देव-समाज में सत्कार पाते और अप्सराओं की मण्डली में सुखपूर्वक आनन्दित होते देखकर पितृगण सन्तुष्ट होते हैं। संग्राम में विमुख न होकर मारे गये पितामह भीष्म, द्रोणाचार्य, महावीर कर्ण, जयद्रथ, दुःशासन आदि वीर जिस मार्ग से देवगण के साथ गये हैं उसी मार्ग से जाना मैं अपने लिए भाग्य की बात समझता हूँ। उत्तम अस्त्रों के ज्ञाता, मेरी विजय के लिए यत्न करनेवाले, यज्ञ करनेवाले, अनेक शूर योद्धा नरेन्द्र—शत्रुओं के बाणों से छिन्न-भिन्न और ख़ून से तर होकर—वीर-शय्या पर शयन कर रहे हैं। वे मेरे लिए लड़-मरकर इन्द्रलोक को गये हैं। उन्होंने पहले ही से जाकर हमारे लिए स्वर्ग-लोक की राह सुगम कर दी है। अगर मैं अभी न जाऊँगा तो सद्गति चाहनेवाले, वेग से स्वर्ग को जा रहे, वीरों के चले जाने पर वह मार्ग फिर दुर्गम हो जायगा। मेरे लिए जो वीर मरे हैं उनके प्रति कृतज्ञता दिखलाने और उनसे उरिन होने की इच्छा इतनी प्रबल हो रही है कि अब मैं राज्य करना नहीं चाहता। अगर मैं अपने मित्र कर्ण, हमजोली के भाई, पितामह आदि को रण में मरवाकर स्वयं जीवन की रक्षा करूँगा तो अवश्य ही सब लोग मेरी निन्दा करेंगे। भाइयों और मित्रों से हीन होकर, युधिष्ठिर से दबकर, अगर मैं राज्य प्राप्त भी करूँगा तो उससे मुझे सुख या प्रसन्नता न होगी। मैंने सम्पूर्ण जगत् को जीतकर अपने अधीन कर लिया था। इस

३०

४०

समय असंख्य क्षत्रिय मेरे ही लिए मारे गये हैं। अब मैं शत्रुओं से सम्मुख युद्ध करके, मरकर, स्वर्गलाभ से ही शान्ति पा सकूँगा। इसलिए हे द्विजश्रेष्ठ, मैं युद्ध ही करूँगा। मेल करके जान बचाना या राज्य प्राप्त करना मुझे नहीं रुचता। मेरा यह विचार अटल है।

महाराज! दुर्योधन के यों कहने पर सब राजा और क्षत्रिय उनकी प्रशंसा करने लगे। उस समय उनके हृदय से हारने की ग्लानि और सोच जाता रहा। वे लोग पराक्रम प्रकट करने का दृढ़ निश्चय करके युद्ध करने को तैयार हो गये। अपने वाहनों को विश्राम कराकर, युद्धभूमि से कुछ कम दो योजन पर जाकर, सब कौरव ठहरे। हिमाचल की तलहटी में, वृक्ष-रहित पवित्र स्थान में, अरुणा-सरस्वती के तट पर पहुँचकर सबने स्नान और जलपान किया। महाराज, आपके पुत्र दुर्योधन के कहने से उत्साहित और उत्तेजित वे सब क्षत्रिय युद्ध करने की दृढ़ प्रतिज्ञा करके उस रात को वहीं ठहर गये। सवेरे, काल के द्वारा प्रेरित, क्षत्रिय-
५२ गण फिर रणभूमि की ओर लौटे।

छठा अध्याय

अश्वत्थामा का शल्य को सेनापति बनाने की सलाह देना और दुर्योधन का शल्य से सेनापति बनने के लिए अनुरोध करना

सञ्जय कहते हैं—महाराज! युद्ध का अभिनन्दन करनेवाले शल्य, चित्रसेन, महारथी शकुनि, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, भोजराज कृतवर्मा, सुषेण, अरिष्टसेन, वीर्यशाली धृतसेन और जयत्सेन आदि सब राजा और योद्धा रात भर वहीं तलहटी में रहे। विजयी पाण्डवों ने कर्ण को मारकर कौरवों के मन में ऐसी धाक जमा दी थी कि हिमालय पर्वत के सिवा और कहीं आपके पुत्रों को चैन नहीं मिला। वहाँ पर सब योद्धा शल्य के सामने ही राजा दुर्योधन से सादर कहने लगे—राजन्, आप किसी एक को सेनापति बनाकर शत्रुओं से युद्ध कीजिए। हम लोग उसी सेनापति के बाहुबल से सुरक्षित होकर शत्रुओं को परास्त करेंगे। तब रथ पर स्थित दुर्योधन उन महारथी अश्वत्थामा के पास पहुँचे जो सब तरह के युद्धों में निपुण हैं, युद्ध में शत्रुओं के लिए काल के समान हैं, सुन्दर दर्शनीय अङ्गों से सुशोभित, प्रच्छन्न-मस्तक, शङ्ख सी ग्रीवावाले, प्रियवादी और कमलदल ऐसे विशाल नेत्रोंवाले हैं। अश्वत्थामा का मुख व्याघ्र के ऐसा और डील-डौल सुमेरु पर्वत के समान है। कन्धे, नेत्र, गति और स्वर में वे शङ्कर के नन्दीश्वर के समान हैं। उनकी भुजाएँ पुष्ट और चौड़ी हैं। इनकी छाती सुदृढ़ और विशाल है। बल और वेग में वे

दुर्योधन रथ से उतर कर हाथ जोड़ कर .... महापराक्रमी शल्य से
प्रार्थनापूर्वक कहने लगे।—पृ० ३०२३

गरुड़ और वायु के समान हैं। उनका तेज सूर्य के तुल्य, बुद्धि शुक्र की सी और कान्ति रूप १० तथा मुख की शोभा चन्द्रमा के समान है। उनके शरीर की सब सन्धियाँ सटी हुई और सोने की शिलाओं के ढेर के समान हैं। उनके उरु, जङ्घा, पैर, नख, उँगली आदि सब अङ्ग-प्रत्यङ्ग सुडौल और सुन्दर हैं। ब्रह्मा ने उनको बनाते समय मानो स्मरण कर-करके सब गुणों का समावेश उनमें कर दिया है। वे अच्छे लक्षणों से युक्त, निपुण, वेद-शास्त्र-विद्या-सम्पन्न, बलपूर्वक शत्रुओं को जीत लेनेवाले और शत्रुओं के लिए सर्वथा अजेय हैं। वे दस अङ्गों और चार चरणों से युक्त धनुर्वेद के पूर्ण तत्त्व को और चारों वेदों, उपवेदों और इतिहास को अच्छी तरह जानते हैं। अयोनिज महा-तपस्वी द्रोणाचार्य ने, उग्र व्रत और तप से शङ्कर की आराधना करके, उन्हें अपनी स्त्री अयोनिजा गौतमी के गर्भ से उत्पन्न किया है। उन्हीं अपूर्व कर्म करनेवाले, अद्भुतरूप, सब विद्याओं के पारङ्गत, गुणसागर, अनिन्दित अश्वत्थामा के पास जाकर दुर्योधन ने कहा—हे महामहिम गुरुपुत्र, इस समय आप ही हम सब की एक मात्र गति हैं। बताइए, आपकी आज्ञा से मैं किसे अपना सेनापति बनाऊँ? कृपापूर्वक ऐसे पुरुषश्रेष्ठ को बताइए, जिसे सेनापति बनाकर आगे करके हम पाण्डवों को जीत सकें।

महाबली अश्वत्थामा ने कहा—हे राजेन्द्र, ये मद्रराज शल्य अच्छे कुल में उत्पन्न और रूप यश तेज श्री आदि सब गुणों से सम्पन्न हैं। इसलिए दूसरे कार्त्तिकेय के समान ये प्रभावशाली महावीर ही हमारे सेनापति हों। ये धर्मज्ञ वीर कृतज्ञतावश अपने सगे भानजों को छोड़कर २० हमारे पक्ष में आ मिले हैं। देवताओं ने अजेय स्कन्द भगवान् को सेनापति बनाकर जैसे विजय प्राप्त की थी, वैसे ही हम भी इन्हें अपना सेनापति बनाकर विजय प्राप्त कर सकते हैं।

हे नरनाथ, अश्वत्थामा के यों कहने पर सब महारथी लोग शल्य को चारों ओर से घेर-कर जयजयकार करने लगे। वे लोग आवेश के साथ युद्ध के लिए उत्सुक हो उठे। तब महाराज दुर्योधन रथ से उतरकर, हाथ जोड़कर, रथ पर स्थित और भीष्म-द्रोण के समान योद्धा महापराक्रमी शल्य से प्रार्थनापूर्वक कहने लगे—हे मित्र-वत्सल मामाजी! यह वही विपत्तिकाल उपस्थित है, जिस समय समझदार लोग मित्र और शत्रु की परख करते हैं। आप हमारे बन्धु

और शूर पुरुष हैं, इसलिए हमारी सेना के रक्षक सेनापति का पद स्वीकार करें। आप जब हमारी सेना के सञ्चालक सेनापति होकर युद्ध करने चलेंगे तब अमात्यों सहित पाण्डव किंकर्तव्य-विमूढ़ हो जायँगे और पाञ्चालों का सारा उत्साह नष्ट हो जायगा।

दुर्योधन के वचन सुनकर राजमण्डली के बीच वाक्य-निपुण शल्य ने कहा—हे कुरुराज, तुमने जो कहा वही मैं करूँगा। मेरे प्राण, राज्य, धन आदि सब कुछ तुम्हारा प्रिय और हित करने के लिए ही है। दुर्योधन ने फिर कहा—मामाजी, आप सर्वथा अतुल हैं। मैं आपको अपना सेनापति बनाता हूँ। हे महारथी, कार्त्तिकेय ने जैसे देवगण की रक्षा की थी वैसे ही आप युद्ध में हम लोगों की रक्षा कीजिए। हे राजेन्द्र, देव-सेनापति स्कन्द की तरह अभिषिक्त होकर—
३० इन्द्र ने जैसे देवताओं के शत्रु दानवों को मारा था वैसे ही—हमारे शत्रुओं का संहार कीजिए।

सातवाँ अध्याय

शल्य का सेनापति-पद पर अभिषेक और श्रीकृष्ण का युधिष्ठिर को शल्य का वध करने के लिए उत्साहित करना

सञ्जय ने कहा कि महाप्रतापी मद्रराज शल्य ने दुर्योधन से कहा—हे कुरुराज! मैं जो कहता हूँ, उसे एकाग्र होकर सुनो। तुम एक रथ पर स्थित जिन श्रीकृष्ण और अर्जुन को महारथी योद्धा मानते हो वे किसी तरह बाहुबल में मेरे समान नहीं हैं। पाण्डवों की तो कोई बात ही नहीं, देवता-दानव-मनुष्य-सहित समग्र पृथ्वी के निवासी भी अगर रण में मेरे सामने आ जायँ तो भी कुपित होकर मैं अकेला ही अनायास उनका सामना कर सकता हूँ। मैं अवश्य तुम्हारा सेनापति होकर पाण्डवों और पाञ्चालों को परास्त करूँगा। हे दुर्योधन, मैं उस दुर्भेद्य व्यूह की रचना करूँगा जिसे तुम्हारे शत्रु लाख यत्न करके भी नहीं तोड़ सकेंगे।

राजन्! दुर्योधन ने शल्य के ये वचन सुनकर सब सेना के बीच में प्रसन्नतापूर्वक शास्त्रोक्त विधि से शल्य को सेनापति बनाया, उनका अभिषेक किया। उस समय कौरवसेना में वीरगण ऊँचे स्वर से सिंहनाद करने लगे, तरह-तरह के बाजे बजाने लगे। मद्रदेश के महारथी योद्धा और अन्य सब क्षत्रिय प्रसन्न होकर समर की शोभा बढ़ानेवाले शल्य की स्तुति करने लगे। वे लोग यों कहकर शल्य को उत्साहित करने लगे—राजन्! आपकी जय हो, आप बहुत दिनों तक जियें और सामने आये हुए शत्रुओं को मारें। महाबली महाराज दुर्योधन आपके बाहुबल के
१० प्रभाव से शत्रुओं को मारकर सम्पूर्ण पृथ्वी का निष्कण्टक राज्य भोगें। मनुष्य होने के कारण मृत्यु के वशवर्ती सृञ्जय-सोमक-पाञ्चाल आदि क्या चीज़ हैं, आप तो रण में मनुष्यों सहित सब देवताओं और दानवों को भी जीत सकते हैं।

महाराज ! शल्य इस तरह वीरों की की हुई अपनी स्तुति सुनकर, अकृतात्मा दुर्बल और कायर पुरुषों के लिए अत्यन्त दुर्लभ, हर्ष और उत्साह से परिपूर्ण हो उठे। उन्होंने उमङ्ग के साथ फिर दुर्योधन से कहा—महाराज, यह निश्चय है कि आज या तो मैं ही सब पाञ्चालों और पाण्डवों को मार डालूँगा और या वे ही मुझे मारकर स्वर्गलोक को भेज देंगे। आज सब लोग मुझे बिलकुल निडर होकर शत्रुसेना के बीच विचरते और उनका संहार करते देखेंगे। आज सब पाण्डव, श्रीकृष्ण, सात्यकि, पाञ्चालगण, चेदिगण, प्रभद्रकगण, द्रौपदी के पाँचों पुत्र, धृष्टद्युम्न और शिखण्डी, सिद्धगण और चारणगण मेरे अतुल पराक्रम, फुर्ती, अस्त्रबल, बाहुबल और धनुष के बल को देखेंगे। जैसा मेरा बाहुबल और अस्त्रबल है वह आज सब पर प्रकट हो जायगा। आज मेरा पराक्रम देखकर पाण्डवों के महारथी लोग उसके प्रतीकार के लिए तरह-तरह के उपाय करेंगे। आज तुम्हारा प्रिय करने के लिए मैं भीष्म, द्रोण और कर्ण से बढ़कर कार्य करता हुआ सेना के अगले भाग में विचरूँगा। २०

सञ्जय कहते हैं—हे राजेन्द्र, दुर्योधन ने जब इस तरह शल्य को सेनापति बनाया तब सब लोग कर्ण-वध के शोक को भूल गये। सब सैनिक यह समझकर प्रसन्न और उत्साहित हो उठे कि शल्य सब पाण्डवों को परास्त करके मार डालेंगे। आपकी सेना के सब लोग इस तरह हर्षयुक्त और उत्साहित होकर उस रात को बड़े सुख से वहाँ सोये। इधर धर्मराज युधिष्ठिर कौरवसेना के उस कोलाहल और सिंहनाद को सुनकर [और अपने जासूसों से सब समाचार पाकर] सब राजाओं के आगे कहने लगे—हे कृष्णचन्द्र, दुर्योधन ने धनुर्द्धरश्रेष्ठ और क्षत्रिय योद्धाओं में प्रशंसित मद्रराज शल्य को सेनापति बनाया है। यहाँ तुम्हीं हमारे नेता, रक्षक और सञ्चालक हो। इसलिए अब जो कर्तव्य समझो वही करो।

महात्मा श्रीकृष्ण ने कहा—हे धर्मराज, मद्रराज शल्य को मैं बहुत अच्छी तरह जानता हूँ। वे वीर्यशाली, महातेजस्वी, वीर, विचित्र युद्ध में निपुण, फुर्तीले और बाण तथा अस्त्र के युद्ध का पूर्ण अभ्यास किये हुए हैं। मैं तो उन्हें युद्ध में भीष्म, द्रोण और कर्ण के समान अथवा उनसे अधिक मानता हूँ। हे जनाधिप! बहुत सोचने पर भी मुझे, अपने पक्ष में, युद्ध कर रहे शल्य के समान योद्धा नहीं देख पड़ता। शिखण्डी, धृष्टद्युम्न, अर्जुन, भीमसेन और सात्यकि बाहुबल में शल्य के समान नहीं हैं। मस्त हाथी और सिंह के समान पराक्रमी महाराज मद्रराज रणभूमि में वैसे ही बेखटके विचरेंगे, जैसे अन्तकाल में काल प्रजा का संहार करता है। हे धर्मराज, आज त्रिभुवन में सिंह-सदृश पराक्रमी क्रुद्ध शल्य का सामना या वध करनेवाला अगर कोई है तो आप ही हैं। मद्रराज शल्य प्रतिदिन आपकी सेना का नाश और युद्ध कर रहे हैं। इसलिए अब आप शल्य को वैसे ही मारिए जैसे इन्द्र ने शंबर असुर को मारा था। कर्ण के मरने पर दुर्योधन ने अजेय जानकर सत्कारपूर्वक शल्य को सेनापति बनाया है। उनके मारे जाने ३०

पर सारी कौरवसेना मृतप्राय हो जायगी और आपकी ही जीत होगी। महाराज, मेरी बात मानकर महारथी मद्रराज से युद्ध कीजिए और जैसे इन्द्र ने नमुचि को मारा था वैसे ही शल्य को मारिए। शल्य को अपना मामा समझकर उन पर दया न कीजिए—क्षत्रियधर्म के अनुसार उन्हें भी मार डालिए। कर्ण रूप पाताल और भीष्म-द्रोण-रूप महासागर के पार होकर अब दया करके कहीं गोष्पद-तुल्य (गाय के पैर के गढ़े के बराबर) शल्य के पराक्रम में अनुचरों सहित न डूब जाइएगा! आप में जितना ४० तपोबल और क्षत्रिय का बल है वह सब दिखाकर रण में महारथी शल्य को मारिए।

महाराज, शत्रुदमन कृष्णचन्द्र युधिष्ठिर से यों कहकर पाण्डवों के मुँह से अपनी प्रशंसा सुनते हुए सन्ध्या के समय अपने शिविर को गये। उनके जाने पर धर्मराज युधिष्ठिर भी सब भाइयों, पाञ्चालों और सोमकों को विश्राम के लिए विदा करके—विशल्य गजराज की तरह—सुखशय्या पर आराम करने लगे। महाधनुर्द्धर पाञ्चाल और पाण्डवगण कर्ण के मारे जाने से अत्यन्त प्रसन्नता और आनन्द के साथ अपने-अपने शिविर में सो रहे। कर्ण-वध और विजय-लाभ से प्रसन्नचित्त ४६ सब सैनिकों ने भी सुख की नींद सोकर वह रात बिताई।

आठवाँ अध्याय

दोनों सेनाओं का व्यूह-रचना करके युद्ध के लिए निकलना

सञ्जय ने कहा—हे भरतश्रेष्ठ, रात बीतने पर राजा दुर्योधन ने अपनी सेना को आज्ञा दी कि सब महारथी योद्धा कवच पहनकर युद्ध के लिए तैयार हो जायँ। आज्ञा पाते ही सब सेना में युद्ध की तैयारी होने लगी। योद्धा लोग कवच आदि पहनने लगे। कुछ लोग औरों को तैयार होने की आज्ञा पहुँचाने के लिए, अथवा आवश्यक सामान लेने के लिए, दौड़-धूप करने लगे। कुछ लोग रथों को सजाने लगे। किसी तरफ़ हज़ारों हाथी सजाये जाने लगे। [किसी तरफ़ घोड़ों के साज और ज़ीनें कसी जाने लगीं।] किसी तरफ़ पैदल योद्धा कमर

कसकर तैयार होने लगे। चारों ओर बाजे बजने लगे। परस्पर उत्साह प्रकट कर रहे योद्धाओं का सिंहनाद सुनाई पड़ने लगा। इस तरह मरने से बची हुई चतुरङ्गिणी सेना मारने-मरने का और रण से न भागने का दृढ़ निश्चय करके युद्ध के लिए तैयार दिखाई पड़ने लगी। महारथियों ने शल्य को सेनापति बनाकर, सब सेना को अलग-अलग दलों में बाँटकर, सुश्रृङ्खला के साथ खड़ा किया। इसके बाद कृपाचार्य, कृतवर्मा, अश्वत्थामा, शल्य, शकुनि और अन्य बचे हुए राजाओं ने मिलकर यह प्रतिज्ञा की कि हम लोग मिलकर, एक दूसरे की रक्षा करते हुए, शत्रुओं से युद्ध करेंगे। हम में से कोई अकेला पाण्डवों से न लड़े। जो कोई अलग होकर अकेला पाण्डवों से लड़ेगा, या लड़ते समय साथियों को छोड़कर अकेला भाग खड़ा होगा, उसे पाँच महापातक और पाँच उपपातक लगेंगे।

हे राजेन्द्र! इस तरह परस्पर नियम करने के उपरान्त वे सब महारथी योद्धा, सेनापति मद्रराज शल्य को आगे करके, शीघ्र ही शत्रुसेना की ओर चले। उधर पाण्डव भी, अपनी सेना में व्यूह-रचना करके, शत्रुओं से युद्ध करने के लिए चल पड़े। अनेक रथों, हाथियों, घोड़ों और पैदलों से परिपूर्ण, क्षोभ को प्राप्त समुद्र के समान, पाण्डवसेना जिस समय चारों ओर से बाण बरसाती हुई कौरवों की ओर बढ़ी उस समय उसमें उमड़े हुए सागर के शब्द के समान घोर कोलाहल होने लगा। ११

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय! महावीर भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य और कर्ण के मारे जाने का वृत्तान्त तो मैं सुन चुका, अब शल्य और मेरे पुत्र दुर्योधन के वध का हाल मुझे सुनाओ। महा-पराक्रमी शल्य को युधिष्ठिर ने और महाबाहु दुर्योधन को भीमसेन ने किस तरह युद्ध में मारा?

सञ्जय ने कहा—राजन्! मनुष्यों, हाथियों और घोड़ों का विनाश जिसमें हुआ उस संग्राम का हाल मैं आपको सुनाता हूँ; स्थिर होकर सुनिए। हे कुरुराज! भीष्म, द्रोण और कर्ण के मारे जाने पर भी शल्य को सेनापति बनाकर आपके पुत्रों को प्रबल आशा हुई कि शल्य युद्ध में सब पाण्डवों और पाञ्चालों को अनायास मार डालेंगे। उसी आशा को हृदय में धारण करके आपके पुत्र दुर्योधन आश्वस्त हुए और समर में मद्रराज का आश्रय पाकर अपने को सनाथ समझने लगे।

वीर कर्ण के मारे जाने पर पाण्डवों का सिंहनाद सुनकर आपके पुत्र आदि कौरवगण बहुत ही विह्वल और भय से व्याकुल हो उठे थे। प्रतापी शल्य ने उन सबको ढाढ़स बँधाकर युद्ध के लिए तैयार और उत्साहित किया। शल्य ने सर्वतोभद्र नाम के दुर्भेद्य व्यूह की रचना की। वे स्वयं सिन्धुदेश के बढ़िया घोड़ों से युक्त और चतुर सारथी के द्वारा सञ्चालित विशाल रथ पर बैठकर वेगशाली विचित्र धनुष को लगातार बजाते हुए आगे स्थित हुए। आपके पुत्रों को निडर बनानेवाले, कवचधारी शूर शल्य व्यूह के मुख-स्थान में खड़े हुए। उनके साथ मद्र- २०

देश के श्रेष्ठ वीर, और दुर्जय कर्ण के कई पुत्र, थे। व्यूह के वाम भाग में त्रिगर्तदेश की सेना साथ लिये हुए कृतवर्मा और दक्षिण भाग में शकों और यवनों की सेना के साथ कृपाचार्य अवस्थित हुए। काम्बोज-सेना को साथ लिये वीरवर अश्वत्थामा व्यूह के पिछले भाग की रक्षा कर रहे थे। व्यूह के बीच में श्रेष्ठ कौरव-योद्धाओं से सुरक्षित महाराज दुर्योधन स्वयं थे। शकुनि और महारथी कैतव्य अपनी सारी घुड़सवार सेना लेकर पाण्डवों पर आक्रमण करने को वेग से चले। उधर शत्रुदमन महाधनुर्द्धर पाण्डवगण भी व्यूह-रचना करके बड़े वेग से शत्रुसेना की ओर बढ़े। उन्होंने अपनी सेना के तीन दल कर दिए। सात्यकि, शिखण्डी और धृष्टद्युम्न, एक-एक दल लेकर तीन ओर से शत्रुसेना पर हमला करने लगे। राजा युधिष्ठिर शल्य को
३० मार डालने का विचार करके, अपनी सेना साथ लेकर, उन्हीं की ओर वेग से चले। शत्रुओं का संहार करनेवाले वीर अर्जुन संशप्तकगण सहित कृतवर्मा की ओर वेग से चले। भीमसेन और महाधनुर्द्धर सोमकगण शत्रुसेना को मारते हुए कृपाचार्य की ओर चले। सेना सहित नकुल और सहदेव ने सैन्ययुक्त शकुनि और उनके पुत्र महारथी उलूक का सामना किया। इसी तरह आपके दल के हज़ारों योद्धा, विविध शस्त्र ताने हुए, क्रोध से पाण्डवों पर आक्रमण करने लगे। दोनों ओर की सेना और योद्धा भिड़ गये।

धृतराष्ट्र ने कहा—महाधनुर्द्धर भीष्म, द्रोण, कर्ण, जयद्रथ आदि के मरने पर पाण्डवों और कौरवों की सेना थोड़ी ही बच रही थी। मैं यह जानना चाहता हूँ कि शल्य ने जिस समय सेनापति होकर युद्ध का आरम्भ किया और पराक्रमी पाण्डव कुपित होकर पराक्रम प्रकट करने लगे उस समय दोनों ओर कितनी-कितनी सेना थी?

सञ्जय ने कहा—महाराज, जिस तरह दोनों दल युद्ध के लिए उपस्थित हुए और दोनों ओर बची हुई जितनी-जितनी सेना थी सो सब मैं कहता हूँ, सुनिए। हे भरतश्रेष्ठ! ग्यारह हज़ार रथ, दस हज़ार सात सौ हाथी, दो लाख घोड़े और तीन करोड़ पैदल आपकी सेना में
४० थे। और छः हज़ार रथ, इतने ही हाथी, दस हज़ार घोड़े और दो करोड़ पैदल पाण्डवपक्ष में थे। दोनों ओर इतने ही योद्धा—मय वाहनों के—बचे थे जो क्रुद्ध होकर, परस्पर एक-एक के विरुद्ध युद्ध करने को उपस्थित हुए। हे राजेन्द्र! हम लोग जय की आशा से उत्साहित और कुपित होकर, शल्यकृत व्यूहरचना के अनुसार स्थित होकर, पाण्डवों पर आक्रमण करने लगे। इसी तरह समर में विजय पाये हुए यशस्वी शूर पाण्डव और पाञ्चालगण प्रातःकाल अपनी सेना से शत्रुसेना पर हमला करने लगे। परस्पर वध करने को उद्यत होकर प्रहार कर
४५ रहे दोनों पक्ष के वीरों में भयानक युद्ध होने लगा।

नवाँ अध्याय

अठारहवें दिन के युद्ध का आरम्भ

सञ्जय ने कहा—हे नरेन्द्र! इस तरह दोनों ओर से देवासुर-संग्राम के समान महाभयङ्कर युद्ध का आरम्भ होने पर हज़ारों की संख्या में मनुष्य, रथ, हाथी, उनके सवार, घोड़े, उनके सवार और पैदल योद्धा परस्पर भिड़ गये। बड़े वेग से दौड़ रहे भीमरूप हाथियों के चिङ्घारने का शब्द वर्षाकाल में मेघों के गम्भीर गर्जन के समान सुनाई पड़ने लगा। दौड़ रहे हाथियों के वेग से कोई-कोई रथी, मय रथ के, उलट गये और मस्त हाथियों के पीछा करने से कुछ रथी योद्धा डरकर बड़े वेग से भागने लगे। हे भारत, सुशिक्षित रथी योद्धा बाण मारकर घोड़ों और उनके चरण-रक्षकों को हज़ारों की संख्या में यमपुर भेजने लगे। सुशिक्षित घुड़सवार योद्धा लोग महारथियों को घेरकर उन पर प्रास, शक्ति, ऋष्टि आदि शस्त्रों से प्रहार करते दिखाई पड़ने लगे। बहुत से धनुर्द्धर योद्धा कहीं पर एक महारथी को घेरकर मार डालते थे। कहीं पर महारथी-गण हाथियों और रथी योद्धाओं को मार रहे थे। कहीं पर कुपित हाथियों के झुण्ड अपने ऊपर बाण बरसा रहे कुपित रथी अथवा वेग से आक्रमण करने को आ रहे महारथी को घेरकर यमपुर भेज रहे थे। कहीं पर हाथी का सवार हाथी के सवार से भिड़कर और रथी रथी के सामने जाकर अपने शत्रु को शक्ति, तोमर और नाराचों के प्रहार से मार डालता था। रथ, हाथी और घोड़े रण में पैदलों के झुण्डों को रौंदते, कुचलते और हलचल डालते हुए दिखाई पड़ रहे थे। चामर-कलँगी से शोभित घोड़े हिमालय-शिखर पर स्थित हंसों की तरह शोभा दे रहे थे। वे गर्दन टेढ़ी किये इस तरह वेग से जाते थे कि जान पड़ता था मानों पृथ्वी को पी जायँगे। उन घोड़ों की टापों से खुदी हुई पृथ्वी, सुरति में नायक के नखों से घायल नागरी के समान, शोभा को प्राप्त हो रही थी। घोड़ों की टापों के शब्द, रथों के पहियों की घरघराहट, हाथियों की चिङ्घार, पैदलों की चिल्लाहट, घोड़ों की हिनहिनाहट, वीरों के सिंहनाद, शङ्खनाद और अनेक बाजों के शब्द से पृथ्वीतल प्रतिध्वनित हो उठा। ऐसा जान पड़ता था कि बारम्बार पृथ्वी पर वज्रपात हो रहा है। धनुषों की टङ्कार, चल रहे शस्त्रों की चमक और कवचों की प्रभा से लोगों के चित्त चकित हो गये और आँखें चौंधिया गईं। कहीं पर न तो कुछ सूझता था और न कुछ जान पड़ता था। हाथी की सूँड़ के समान बहुत सी कटी हुई वीरों की बाहुएँ दारुण वेग से इधर-उधर तड़पती दिखाई पड़ती थीं। वीरों के सिर कट-कटकर पृथ्वी पर गिरते थे और पके हुए ताड़ के फल के पृथ्वी पर गिरने का सा शब्द सुनाई पड़ता था। १०

महाराज! वीरों के कटे हुए, ख़ून से तर, सिर पृथ्वी पर खिले कमल से बिछे जान पड़ते थे। मरे हुए वीरों के अत्यन्त घायल मुख-मण्डल, आँखें बाहर निकल आने से, शरदृतु में

२० पृथ्वी पर खिले हुए कमल-वन की शोभा दिखा रहे थे। बहुमूल्य केयूर-समलङ्कृत, चन्दन-चर्चित, कटे हुए हाथ महेन्द्र की विशाल ध्वजाओं के समान पृथ्वीतल की शोभा बढ़ा रहे थे। युद्ध में कटी हुई, हाथियों की सूँड़ के समान मोटी और गोल, राजाओं की ऊरुओं से रणस्थल व्याप्त हो रहा था। सैकड़ों उठे हुए कबन्धों, छत्रों और चामरों से वह रणभूमि फूले हुए वन के समान शोभा को प्राप्त हो रही थी। वहाँ निधड़क विचरनेवाले योद्धा, ख़ून से तर होने के कारण, फूले हुए ढाक के वृक्ष से जान पड़ते थे। बाणों और तोमरों के प्रहार से पीड़ित होकर हाथियों के झुण्ड, हवा के वेग से फटे हुए मेघों की तरह, इधर-उधर भाग रहे थे। वे मेघवर्ण पर्वताकार हाथी, प्रलयकाल में वज्रपात से विदीर्ण पर्वतों की तरह, चारों ओर पृथ्वी पर गिर रहे थे। सवारों सहित पृथ्वी पर गिरे हुए घोड़ों के पर्वताकार ढेर चारों ओर लग गये। हे राजेन्द्र, उस समय वीरों के मन में हर्ष और कायरों के हृदय में भय का सञ्चार करनेवाली एक भयानक रक्त की नदी समर-भूमि में बहने लगी। रक्त उसका जल था, रथ उसके आवर्त (भँवर) थे, ध्वजा-पताकाएँ वृक्ष और हड्डियाँ कङ्कड़-पत्थर थीं। उसमें धनुष स्रोत से, भुजाएँ नक्र सी, ३० हाथी शैल से, घोड़े शिलाखण्ड से, छत्र हंस से और गदाएँ छोटी डोंगी सी दिखाई पड़ती थीं। मेदा और मज्जा की कीचड़ भरी थी। कवच और पगड़ियाँ फेनपुञ्ज के समान, चक्र चकवा पक्षियों के समान, रथ के त्रिवेणु साँपों के समान सर्वत्र उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। परिघ-तुल्य बाहु-दण्डवाले वीरगण वाहनरूप नौका के द्वारा उस परलोक-वाहिनी भयानक नदी के पार जाने का प्रयत्न करते दिखाई पड़ते थे।

इस तरह मर्यादाहीन देवासुर-संग्राम के समान महाभयानक युद्ध में चतुरङ्गिणी सेना का संहार होने के समय, जगह-जगह अनेक भयविह्वल और घायल लोग भाग रहे अपने भाई-बन्धुवों और स्वजनों को सहायता के लिए पुकारने लगे। किन्तु वे भय से व्याकुल होने के कारण प्रिय जनों की पुकार पर ध्यान न देकर भागे ही चले गये। महाराज! उस समय महाबली भीमसेन और महारथी अर्जुन ने अपने बलवीर्य से शत्रुओं को विशेष रूप से मोहित सा कर दिया। दोनों वीर सब का संहार कर रहे थे और सारी सेना मदिरा पीकर अचेत हुई स्त्री की तरह हो रही थी, किसी का हाथ ही नहीं उठता था। इस तरह सेना को मोहित करके भीमसेन और अर्जुन ज़ोर से सिंहनाद करने और शङ्ख बजाने लगे। उस महाशब्द को सुनकर युधिष्ठिर, धृष्टद्युम्न और शिखण्डी बड़े वेग से शल्य के रथ की ओर चले। उस समय हमने महाभयानक ४० आश्चर्यजनक संग्राम देखा। अनेक शूर अकेले शल्य से युद्ध कर रहे थे। युद्ध-निपुण, अस्त्रों के ज्ञाता, नकुल और सहदेव आपकी सेना को परास्त करने की इच्छा करके बड़े वेग से आगे बढ़ने लगे। विजयी पाण्डवों के बाणों से पीड़ित और छिन्न-भिन्न होकर आपकी सेना आपके पुत्रों के सामने ही चारों ओर भागने लगी। योद्धाओं में घोर हाहाकार मच गया। भाग रहे

लोग आर्तनाद कर रहे थे और पीछा करनेवाले लोग 'ठहरो ठहरो' कहकर चिल्ला रहे थे। युद्ध में परस्पर जय चाहनेवाले क्षत्रियगण भी पाण्डवों के प्रहार से विह्वल होकर भागने लगे। सब योद्धा अपने प्रिय पुत्र, भाई, पिता, पितामह, मामा, भानजे, वयस्य, इष्टमित्र आदि को छोड़-कर हाथियों और घोड़ों को तेज़ हाँकते चले जा रहे थे। हे भरतश्रेष्ठ, आपके योद्धाओं को उस समय आत्मरक्षा ही सूझ रही थी। ४७

दसवाँ अध्याय

नकुल के हाथ से कर्ण के तीनों पुत्रों का मारा जाना

सञ्जय कहते हैं कि महाराज, सेना को भागते देखकर प्रतापी शल्य ने सारथी से कहा—हे सूत! घोड़ों को वेग से हाँककर मेरा रथ वहाँ पर पहुँचाओ, जहाँ सामने सिर पर लगे हुए सफ़ेद छत्र से शोभायमान पाण्डव-श्रेष्ठ युधिष्ठिर हैं। वहाँ जल्द पहुँचाकर इस समय तुम मेरा बाहुबल देखो। युधिष्ठिर युद्ध में मेरे सामने कदापि नहीं ठहर सकते।

यह सुनकर सारथी ने वहीं पर उनका रथ पहुँचा दिया, जहाँ सत्यवादी राजा युधिष्ठिर थे। अकेले शल्य ने पाण्डवों की विशाल सेना को वैसे ही रोक दिया जैसे तटभूमि सागर के वेग को रोकती है। समुद्र का वेग जैसे पर्वत से टकराकर रुक जाता है वैसे ही पाण्डवों की सेना शल्य के सामने जाकर आगे बढ़ने में असमर्थ हो गई। मद्रराज को समर के लिए डटे हुए देखकर कौरव-सेना भी प्राणपण से युद्ध करने के लिए लौट पड़ी।

इस तरह जब कौरवों की व्यूहबद्ध सेना लौटकर सुश्रृङ्खला के साथ मरने-मारने का दृढ़ निश्चय करके डट गई तब घोर संग्राम होने लगा; चारों ओर ख़ून ही ख़ून नज़र आने लगा। रणोन्मत्त महावीर नकुल कर्ण के पुत्र वीर चित्रसेन से युद्ध करने लगे। विचित्र धनुष धारण किये हुए वे दोनों वीर, दक्षिण और उत्तर से आनेवाली जल बरसा रही दो घन-घटाओं की तरह, एक दूसरे पर बाण बरसाने लगे। उस समय नकुल और चित्रसेन में कोई किसी से कम नहीं १० जान पड़ता था। दोनों ही अस्त्रविद्या का अभ्यास रखनेवाले, बली, रथ-युद्ध में निपुण, परस्पर घात में लगे हुए और एक दूसरे को मारने के लिए यत्नशील थे। चित्रसेन ने तीक्ष्ण भल्ल बाण से नकुल के धनुष को बीच से काट डाला, घोड़ों को मार डाला और तीन बाणों से ध्वजा और सारथी को भी पृथ्वी पर गिरा दिया। फिर फ़ुर्ती के साथ नकुल के मस्तक में सुवर्णपुङ्खयुक्त तीन विकट बाण मारे। ललाट में लगे हुए उन बाणों से नकुल तीन शिखरों से शोभित पर्वत के समान जान पड़ने लगे। नकुल क्रोध से अधीर हो उठे। वे ढाल-तलवार लेकर, पर्वतशिखर से उतरनेवाले सिंह की तरह, रथ से कूद पड़े। महाबली चित्रसेन ने साहसी नकुल को पैदल ही अपने ऊपर झपटते देखकर लगातार असंख्य बाण मारकर रोकना चाहा। किन्तु विचित्र योद्धा अमित-परा-

क्रमी नकुल ने उस बाणवर्षा को ढाल पर रोककर व्यर्थ कर दिया। वे सारी सेना के सामने ही वेग से जाकर चित्रसेन के रथ पर चढ़ गये। उन्होंने चित्रसेन के मुकुट-कुण्डल-शोभित, सुन्दर नासिका तथा विशाल नेत्रों से दर्शनीय, सिर को चटपट खड्ग से काट डाला। सूर्यतुल्य तेजस्वी २० वीर चित्रसेन, नकुल के खड्ग से सिर कटने पर, मरकर रथ पर गिर पड़े। पाण्डव पक्ष के महारथीगण चित्रसेन का वध देखकर नकुल की बहुत प्रशंसा और सिंहनाद करने लगे।

महाराज! तब कर्ण के पुत्र महारथी सुषेण और सत्यसेन, अपने भाई की मृत्यु देखकर, क्रोधान्ध होकर, विविध बाण बरसाते हुए बड़े वेग से वैसे ही नकुल की ओर चले जैसे महागजराज को मारने की इच्छा से उस पर दो व्याघ्र महावन में आक्रमण करें। दोनों महारथी नकुल के निकटवर्ती होकर उनके ऊपर वैसे ही विविध बाण बरसाने लगे जैसे मेघ जल बरसावें। नकुल के सब अङ्ग बाणों से घायल हो गये तथापि वे हर्ष और उत्साह के साथ दूसरे रथ पर बैठकर, धनुष लेकर, उस बाणवर्षा को नष्ट करने लगे। उस समय उनका रूप कुपित काल के समान भयङ्कर दिखाई पड़ने लगा। अब वे दोनों भाई तीक्ष्ण बाणों से नकुल के रथ को काटने की चेष्टा करने लगे। यह देखकर, क्रोध से कुछ हँसकर, नकुल ने चार तीक्ष्ण बाणों से सत्यसेन के चारों घोड़े मार डाले और एक सुवर्णपुङ्खयुक्त शिलाशित नाराच बाण से उनका धनुष भी काट डाला। महारथी सत्यसेन अन्य रथ पर बैठकर और धनुष लेकर अपने भाई सुषेण के साथ नकुल की ओर वेग से चले। ३० यह देखकर नकुल तनिक भी नहीं घबराये। उन्होंने दोनों वीरों को दो-दो तीक्ष्ण बाणों से घायल कर दिया।

महारथी सुषेण ने अत्यन्त क्रोध से हँसकर एक क्षुरप्र बाण से नकुल का धनुष काट डाला। वीर नकुल ने अत्यन्त क्रोध से अन्य धनुष लेकर पाँच बाण सुषेण को मारे, एक बाण से उनकी ध्वजा काट डाली और फिर बलपूर्वक सत्यसेन के भी हस्तावाप (दस्ताने) और धनुष काट डाले। यह देखकर लोग चिल्लाने लगे। महावीर सत्यसेन ने शत्रुनाशन और ज़ोर को सह सकनेवाला एक और धनुष लेकर नकुल को असंख्य तीक्ष्ण बाणों से पीड़ित करना शुरू किया। नकुल ने सत्यसेन के उन बाणों को व्यर्थ करके उन दोनों भाइयों को दो-दो तीक्ष्ण
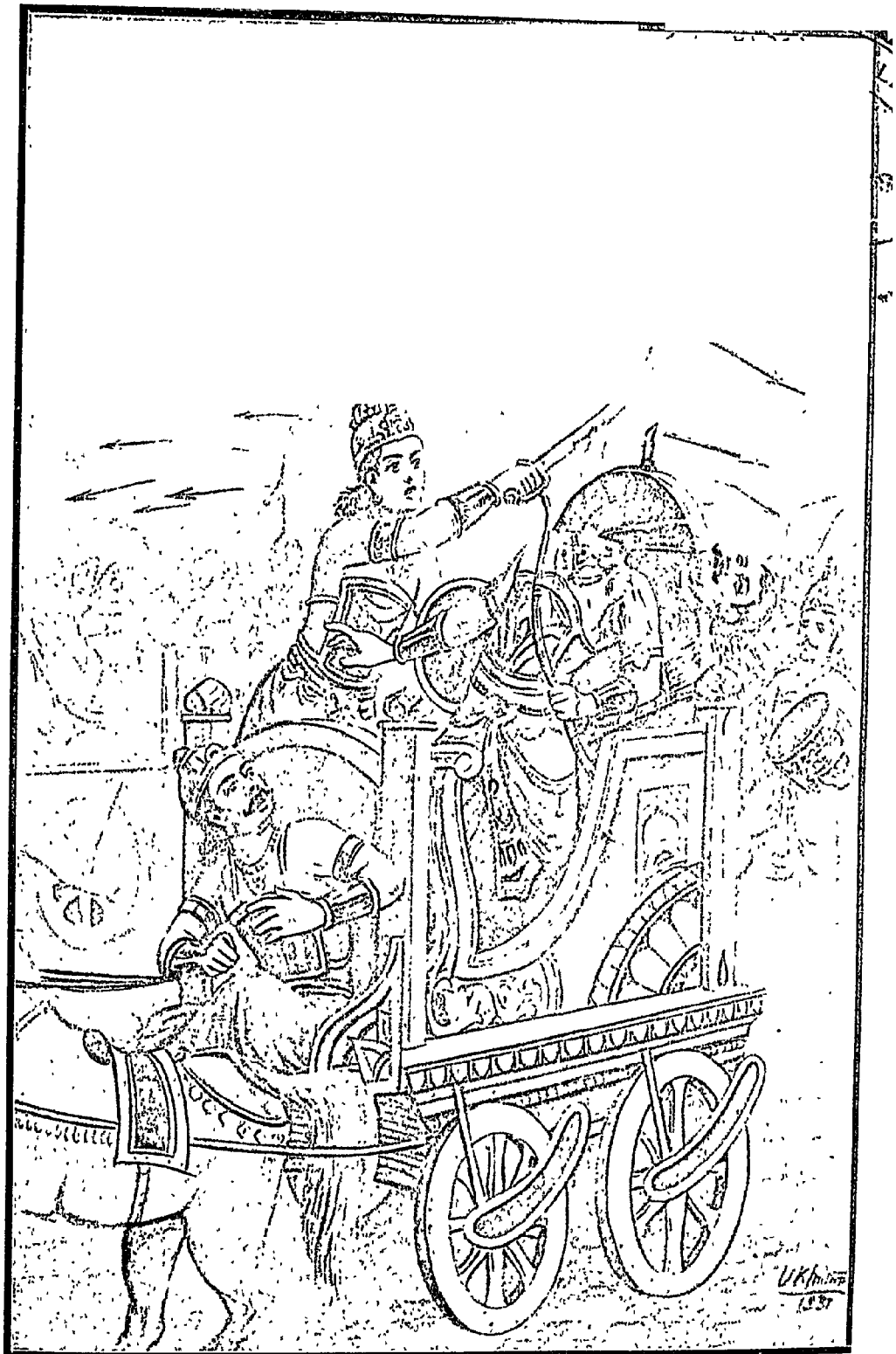
उन्होंने चित्रसेन के मुकुट-कुण्डल-शोभित............सिर को चटपट ढुगख से काट डाला—पृ० २०१२

शकुनि अपनी बची-खुची घोड़सवार सेना लेकर..............विशाल सेना पर आक्रमण करने लगे—पृ० २०७०

बाणों से पीड़ित किया। कर्ण के दोनों वीर पुत्र क्रोध से अधीर होकर सीधे जानेवाले विकट बाणों से अलग-अलग नकुल और उनके सारथी को घायल करने लगे। प्रतापी फुर्तीले सत्यसेन ने दो बाणों से नकुल का धनुष और उनके रथ का ईषादण्ड काट डाला। तब रथ पर स्थित अतिरथी नकुल ने सुनहरी मूठ से युक्त, तीक्ष्ण धारवाली, तेल से साफ़ की गई, निर्मल, विषबुझी, नाग-कन्या के समान लपलपाती हुई भयङ्कर रथशक्ति हाथ में लेकर सत्यसेन के ऊपर तानकर फेंकी। वह शक्ति नकुल के हाथ से छूटते ही सत्यसेन के हृदय में घुस गई। उस शक्ति से विदीर्ण-हृदय और प्राणहीन होकर सत्यसेन पृथ्वी पर गिर पड़े। ४०

भाई की मृत्यु देखकर वीरवर सुषेण क्रोध से अधीर हो उठे। उन्होंने चार बाणों से नकुल के चारों घोड़े मार डाले, पाँच बाणों से ध्वजा काट डाली और तीन बाणों से सारथी को मार डाला। नकुल जब पैदल हो गये तब सुषेण उन्हें बाणवर्षा से पीड़ित करते हुए ज़ोर से सिंहनाद करने लगे। द्रौपदी के पुत्र सुतसोम ने जब अपने पिता नकुल को रथ-हीन और पीड़ित देखा तब वह वेग से रथ बढ़ाकर उनकी सहायता करने को आगे बढ़ा। नकुल सुत-सोम के रथ पर चढ़ गये और पर्वत पर स्थित सिंह के समान शोभा को प्राप्त हुए। वे और धनुष लेकर सुषेण से युद्ध करने लगे। दोनों महारथी परस्पर बाण बरसाकर एक दूसरे को मार डालने का प्रयत्न करने लगे। कुपित सुषेण ने नकुल को तीन उग्र बाण मारे और सुत-सोम की छाती तथा हाथों में बीस बाण मारकर उन्हें भी विह्वल कर दिया। तब शत्रुदमन नकुल ने क्रुद्ध होकर सुषेण के चारों ओर बाणों की वर्षा करके उन्हें विह्वल कर दिया और फिर एक तीक्ष्ण अमोघ अर्धचन्द्र बाण धनुष पर चढ़ाकर, कान तक खींचकर, सुषेण को मारा। उस बाण ने सब सैनिकों के सामने ही सुषेण का सिर काटकर पृथ्वी पर गिरा दिया। नकुल का यह अद्भुत कर्म देखकर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। महाबली सुषेण नकुल के बाण से मर- ५० कर, नदी के वेग से उखड़े हुए किनारे पर के जीर्ण वृक्ष की तरह, गिर पड़े।

महाराज! सुषेण की मृत्यु और नकुल का पराक्रम देखकर कौरवों की सेना डर के मारे चारों ओर भागने लगी। सेनापति शल्य ने यह देखकर सब सेना को लौटाया और रक्षा करने का वचन देकर आश्वस्त किया। महावीर शल्य शत्रुसेना के सामने बेधड़क स्थित होकर सिंह-नाद करने और धनुष को बजाने लगे। शल्य के बाहुबल से सुरक्षित होने पर फिर कौरव-सेना निर्भय होकर लौटकर पाण्डव-सेना के सामने खड़ी हो गई। आपके पक्ष के योद्धा शल्य को घेर-कर शत्रुओं से युद्ध करने के लिए जब खड़े हुए तब उधर शत्रुदमन युधिष्ठिर को आगे करके सात्यकि, भीमसेन, नकुल और सहदेव भी सिंहनाद, शङ्खनाद और बाण शब्द से रणस्थल को प्रतिध्वनित करने लगे। पाण्डवपक्ष के योद्धा उछलकर, किलकारी मारकर, युद्ध के लिए अपना अपूर्व उत्साह प्रकट करने लगे।

अब फिर दोनों पक्ष के वीरगण घोर युद्ध करने लगे। वह युद्ध महाभयानक और कायरों के मन में भय उत्पन्न करनेवाला था। युधिष्ठिर को आगे किये हुए पाण्डवगण और शल्य को आगे किये हुए कौरवगण यमराष्ट्र को बढ़ानेवाला देवासुर-संग्राम सदृश युद्ध करने लगे। दोनों ओर के वीर मारने या मर जाने का दृढ़ निश्चय किये हुए और क्रोध से अधीर हो रहे थे। उधर वीर अर्जुन भी संशप्तक-सेना का संहार करके शल्य की सेना को मारने के लिए वेग से उसी ओर चले। धृष्टद्युम्न को आगे किये हुए पाण्डवपक्ष के अन्य वीर भी तीक्ष्ण बाण बरसाते हुए उधर ही आने लगे। पाण्डवों के घोर आक्रमण और बाणवर्षा से पीड़ित कौरव-सेना के लोग घबरा गये। उन्हें अपनी-पराई सेना का या दिशा-विदिशा का कुछ भी ज्ञान नहीं रहा। पाण्डवपक्ष के महारथी लोग और स्वयं पाण्डवगण चारों ओर से घेरकर कौरव-सेना को तीक्ष्ण बाणों से मारने और गिराने लगे। अनेक वीर मारे गये और बहुत सी सेना का विध्वंस हो गया। उसी तरह आपके पुत्र भी चारों ओर से तीक्ष्ण बाण बरसाकर पाण्डव-पक्ष के हज़ारों वीरों को मार-मारकर गिराने लगे। दोनों सेनाओं को दोनों सेनाएँ पीड़ित कर रही थीं। वर्षाकाल की नदियों के समान उमड़ी हुई दोनों सेनाएँ परस्पर के प्रहार और पराक्रम से अत्यन्त व्याकुल हो उठीं। उनमें हलचल सी मच गई। इस तरह घोर युद्ध होने पर पाण्डवपक्ष और कौरवपक्ष के योद्धा अत्यन्त भय-विह्वल हो उठे।

६१

६८

ग्यारहवाँ अध्याय

शल्य और पाण्डवों का युद्ध

सञ्जय कहते हैं—महाराज, इस तरह उस दिन प्रातःकाल दोनों सेनाएँ मथी जाने लगीं; योद्धा लोग एक दूसरे का वध करने लगे; मनुष्य हाथी और घोड़े इधर-उधर दौड़ने लगे; पैदल सिपाही चिल्लाते हुए परस्पर प्रहार और सिंहनाद करने लगे; हज़ारों घोड़े मार डाले गये; सब देहधारियों का दारुण संहार होने लगा; चारों ओर अनेकों शस्त्र चलने लगे; रथ और हाथी भिड़ गये; शूर वीर योद्धा हर्षित और उत्साहित हो उठे; कायर लोग डर गये; परस्पर मार डालने को उद्यत योद्धा बढ़कर वार करने लगे और प्राणों की बाज़ी लगाकर लोग महाघोर युद्ध का जुआ खेलने लगे। यमराष्ट्र को बढ़ानेवाले उस घोर संग्राम में पाण्डवगण कौरव-सेना को और कौरवदल के योद्धा पाण्डव-सेना को तीक्ष्ण बाणों से मारने लगे। उस सूर्योदय के समय में राजा युधिष्ठिर के पराक्रम से सुरक्षित लब्धलक्ष्य पाण्डवदल के योद्धा, जीवन की ममता छोड़कर, आपकी सेना से लड़ने लगे। महाबली दर्पपूर्ण प्रहार कर रहे पाण्डवों के पराक्रम से कौरव-सेना, दावानल से घिरी हुई मृगी की तरह, व्याकुल हो उठी। कीचड़ में फँसी हुई दुर्बल गाय

की तरह अपनी सेना को विवश देखकर उसका उद्धार करने के लिए वीर शल्य आगे बढ़े और क्रोधपूर्वक उत्तम धनुष लेकर, शस्त्र लेकर मारने को आ रहे, पाण्डवों की ओर वेग से चले। राजन्, विजयी पाण्डव भी पास आकर तीक्ष्ण बाणों से शल्य के शरीर को विदीर्ण करने लगे। महारथी शल्य क्रोध से अधीर होकर धर्मराज के सामने ही सैकड़ों तीक्ष्ण बाणों से पाण्डव-सेना को नष्ट करने लगे। १०

महाराज, उस समय युद्धस्थल में अनेक अनर्थसूचक उत्पात दिखाई पड़ने लगे। पर्वतों सहित पृथ्वी, शब्द करती हुई, बारम्बार काँपने लगी। दण्ड और शूल सहित बड़ी-बड़ी उल्काएँ आकाश से गिरने लगीं। वे सूर्यमण्डल को स्पर्श करके नीचे आती थीं और मार्ग में ही उनके प्रज्वलित अगले भाग फटकर चारों ओर छिटक जाते थे। मृग, भैंसे और अनेक पक्षी बारम्बार आपकी सेना के वाम भाग में फिरते दिखाई पड़ने लगे। शुक्र, मङ्गल और बुध, ये तीनों ग्रह पाण्डवों की ओर अपना पिछला हिस्सा करके सब राजाओं के सामने स्थित हुए। अर्थात् वे पाण्डवों के लिए शुभजनक और अन्य राजाओं के लिए अशुभजनक हुए। शस्त्रों के अगले भाग से आँखों को चौंधिया देनेवाली चमक निकलने लगी। कौए और उलूक पक्षी राजाओं की ध्वजाओं और मस्तकों पर मँडराने लगे।

उस समय दोनों सेनाओं के दल भिड़ गये और भयङ्कर युद्ध होने लगा। पाण्डवों की सेना को कौरव मारने लगे। शल्य भी बरस रहे इन्द्र की तरह युधिष्ठिर के ऊपर लगातार बाण बरसाने लगे। उन्होंने भीमसेन, नकुल, सहदेव, द्रौपदी के पाँचों पुत्र, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी और सात्यकि को दस-दस सुवर्णपुङ्खयुक्त तीक्ष्ण बाण मारे। फिर वे, वर्षाऋतु में इन्द्र के जल बरसाने की तरह, शत्रुसेना पर बाण बरसाने लगे। उस समय देख पड़ने लगा कि शल्य के बाणों से हज़ारों प्रभद्रक और सोमक गिर पड़े हैं और गिर रहे हैं। टीड़ीदल और भौंरों के झुण्ड की तरह, तथा बादल में बार-बार चमक रही बिजली की तरह, शल्य के बाण चारों ओर गिर रहे थे। हाथी, घोड़े, पैदल और रथी योद्धा शल्य के बाणों से घायल होकर गिरते, चक्कर खाते और चिल्लाते नज़र आते थे। काल-प्रेरित मृत्यु की तरह उग्र रूप धारण किये हुए मद्रराज शल्य क्रोध और आवेश से परिपूर्ण हो रहे थे। मेघ की तरह गरज-गरजकर अपना पौरुष दिखाते हुए वे शत्रुसेना को तीक्ष्ण बाणों से पीड़ित करने लगे। २०

महाराज, पाण्डवों की सेना जब इस तरह शल्य के हाथ से मारी जाने लगी तब भय से विह्वल होकर वह आत्मरक्षा के लिए धर्मपुत्र युधिष्ठिर के पास भागने लगी। फुर्तीले शल्य ने तीक्ष्ण बाणों की वर्षा से पाण्डव-सेना को मथ करके धर्मपुत्र युधिष्ठिर को भी बाणों से पीड़ित करना शुरू किया। क्रोध से विह्वल होकर राजा युधिष्ठिर ने अपनी ओर वेग से आ रहे पैदल सेना और अश्वसेना सहित शल्य को वैसे ही तीक्ष्ण बाणों के प्रहार से रोकना शुरू किया, जैसे ३०

अङ्कुश मारकर मस्त बड़ा हाथी रोका जाता है। शल्य ने एक आशीविष (जिसकी दृष्टि में विष होता है) सर्प के समान घोर वाण युधिष्ठिर को मारा। वह वाण वेग से धर्मराज को घायल करता हुआ पृथ्वी में घुस गया। तब भीमसेन ने क्रुद्ध होकर शल्य को सात वाण मारे। उनके साथ ही सहदेव ने पाँच और नकुल ने दस वाण मारे। द्रौपदी के पाँचों पुत्र तो शल्य के ऊपर लगातार ऐसे वाण वरसाने लगे जैसे वादल पहाड़ पर जल वरसाते हैं। कृतवर्मा और कृपाचार्य ने जब देखा कि पाण्डव और उनके पुत्र इस तरह चारों ओर से शल्य को रोक रहे हैं तब वे क्रुद्ध होकर वेग से उधर ही चले। शल्य को शत्रुओं के वाणों से अत्यन्त घायल देखकर महावीर्यशाली उलूक, शकुनि, महावली अश्वत्थामा और आपके पुत्र दुर्योधन आदि उनकी रक्षा करने लगे। कृतवर्मा ने वेग से आ रहे कुपित भीमसेन को तीन वाण मारे और फिर लगातार वाण वरसाकर उन्हें और धृष्टद्युम्न को भी आगे वढ़ने से रोक दिया। द्रौपदी के पुत्रों से शकुनि और नकुल तथा सहदेव से अश्वत्थामा युद्ध करने लगे। उग्र तेजस्वी वीरश्रेष्ठ दुर्योधन ने श्रीकृष्ण सहित अर्जुन के सामने जाकर उनको तीक्ष्ण वाण मारे।

हे राजेन्द्र, इस तरह आपके और शत्रुपक्ष के सैकड़ों योद्धा जगह-जगह भिड़कर भयङ्कर ४० विचित्र द्वन्द्व युद्ध करने लगे। भोजराज कृतवर्मा ने भीमसेन के रीछ के रङ्ग के घोड़ों को मार डाला। क्रुद्ध भीमसेन फ़ौरन् उस बिना घोड़ों के रथ से उतरकर, गदा हाथ में लेकर, दण्ड-पाणि काल की तरह युद्ध करने लगे। शल्य ने सामने खड़े सहदेव के घोड़े मार डाले। तब उन्होंने क्रोध करके तलवार से शल्य के पुत्र का सिर काट डाला। वृद्ध कृपाचार्य फिर धृष्टद्युम्न से युद्ध करने लगे। दोनों ही प्रयत्नशील और सावधान थे। अश्वत्थामा ने कुछ कुपित होकर, मुसकुराकर, द्रौपदी के पाँचों पुत्रों को दस-दस बाण मारे। भीमसेन दूसरे रथ पर बैठकर ज्योंही युद्ध करने लगे त्योंही अश्वत्थामा ने फिर उनके घोड़ों को मार डाला। महावली भीमसेन क्रोध से अधीर होकर उस बिना घोड़ों के रथ से उतर पड़े। वे गदा तानकर, दण्डपाणि यमराज की तरह, कृतवर्मा की ओर वेग से दौड़े। पास जाकर उन्होंने कृतवर्मा के रथ और घोड़ों को गदा से चूर्ण कर डाला। कृतवर्मा पहले ही रथ से कूदकर भाग खड़े हुए।

मद्रराज शल्य फिर क्रुद्ध होकर तीक्ष्ण वाणों से सोमकगण सहित पाण्डवों को मारने और युधिष्ठिर को पीड़ित करने लगे। यह देखकर भीमसेन क्रोध से विह्वल हो उठे और दाँतों से ओठ चवाने लगे। उन्होंने शल्य को मार डालने का इरादा कर लिया। अपनी यमदण्ड सदृश गदा तानकर वे शल्य की ओर दौड़े। भीमसेन की वह महागदा कालरात्रि की तरह हाथियों, घोड़ों ५० और मनुष्यों को चूर्ण करनेवाली थी और सुवर्ण की पट्टियाँ लगी होने से प्रज्वलित उल्का सी जान पड़ती थी। वह गदा बहुत भारी, ठोस, लोहे की बनी, वज्रतुल्य, नागिन की तरह अत्यन्त उग्र, वसा-मेदा से सनी हुई यमराज की जिह्वा के समान, चन्दन-अगुरु आदि के लगाये जाने से प्रिय

प्रिया के समान, बँधी हुई सैकड़ों घण्टियों के शब्द से युक्त, इन्द्र की अशनि के समान, मारे गये हाथियों के मद में नहाई हुई, केंचुल छोड़े हुए विषैले नाग के समान आकारवाली, सब प्राणियों को डरानेवाली, अपने पक्ष के लोगों को प्रसन्न करनेवाली, मनुष्य-लोक में प्रसिद्ध और पहाड़ के शिखरों को भी तोड़ डालनेवाली थी। महाबली भीमसेन ने उसी गदा को लेकर कैलास-भवन में, महादेव के सखा अलका-पति, क्रुद्ध कुबेर को युद्ध के लिए ललकारा था और जब सब के मना करने पर भी वे द्रौपदी का प्रिय कार्य करने के लिए सौगन्धिक पुष्प लेने को गन्धमादन पर्वत पर पहुँचे थे तब उसी गदा से उन्होंने बहुत से मायावी गर्वित गुह्यकों को मारा था। वही हीरा-मणि-मोती आदि विविध बहुमूल्य रत्नों से अलंकृत वज्र सी भारी गदा तानकर वे उस समय शल्य की ओर दौड़े। उसी गदा के प्रहार से उन्होंने शल्य के चारों वेगगामी श्रेष्ठ घोड़ों को मार डाला। यह देखकर शल्य क्रोध से विह्वल हो उठे। उन्होंने भीमसेन के विशाल वक्षःस्थल में एक तीक्ष्ण तोमर मारकर ज़ोर से सिंहनाद किया। शल्य का वह तोमर भीमसेन के कवच को तोड़ता हुआ छाती में घुस गया। उस तोमर के प्रहार से महाबली भीमसेन तनिक भी विचलित नहीं हुए। उन्होंने निर्भय भाव से वही

तोमर अपने शरीर से निकालकर शल्य के सारथी को मारा। उस तोमर के प्रहार से सारथी का हृदय फट गया। वह मुँह से रक्त उगलता हुआ मरकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। ६०

भीमसेन के अद्भुत पराक्रम और धैर्य को देखकर महावीर शल्य दङ्ग हो गये। वे रथ से उतरकर, गदा हाथ में लेकर, भीमसेन की ओर देखने लगे। भीमसेन का वह घोर कर्म देखकर पाण्डवगण प्रसन्नतापूर्वक उनकी प्रशंसा करने लगे। ६१

बारहवाँ अध्याय

शल्य और भीमसेन का गदा-युद्ध

सञ्जय ने कहा—महाराज! सारथी की मृत्यु देखकर वीर शल्य भी, लोहे की भारी गदा लेकर, भीमसेन से गदायुद्ध करने के लिए उनके सामने पर्वत के समान खड़े हो गये। [illegible]

भीमसेन शल्य को प्रज्वलित प्रलय-काल की आग के समान, पाश हाथ में लिये मृत्यु के समान, शिखरयुक्त कैलाश पर्वत के समान, वज्रपाणि इन्द्र के समान, शूलपाणि शिव के सदृश, शक्ति हाथ में लिये कार्त्तिकेय के समान, वन में खड़े मस्त हाथी की तरह, गदा हाथ में लिये खड़े देखकर अपनी भारी गदा तानकर बड़े वेग से उनकी ओर दौड़े। उस समय चारों ओर शूरों के हर्ष को बढ़ानेवाला सिंहनाद, शङ्खनाद और हजारों तुरही आदि बाजों का शब्द होने लगा। योद्धा लोग उन दोनों वीरों को, मस्त हाथियों की तरह युद्ध करने के लिए उद्यत देखकर, शाबाशी देकर उत्साहित करने लगे। हे राजेन्द्र, सिवा मद्रराज शल्य और यादवश्रेष्ठ बलभद्र के और कोई पुरुष युद्ध में भीमसेन की गदा के वेग को नहीं सह सकता था। वैसे ही शल्य की गदा के वेग को भी सिवा भीमसेन के और कोई नहीं सँभाल सकता था।

राजन्! वे दोनों वीर गदाएँ तानकर, साँड़ों की तरह गरज-गरजकर, मण्डलाकार गति से पैंतरे बदलने और प्रहार का मौक़ा देखने लगे। मण्डलाकार गति से पैंतरे बदलने और गदा-प्रहार करने में कोई किसी से कम नहीं देख पड़ता था। दोनों ही एक सा रण-कौशल और बाहुबल दिखाते हुए घोर युद्ध कर रहे थे। शल्य की गदा में लगी हुई सोने की पट्टियाँ, अग्नि १० की ज्वाला सी जान पड़ती थीं और उनकी चमक दर्शकों के मन में भय उत्पन्न कर रही थी। भीमसेन की गदा भी पैंतरे बदलने और चक्कर काटने के समय बादल में बिजली की तरह चमक रही थी। शल्य की गदा भीम की गदा पर पड़ने से और भीम की गदा शल्य की गदा पर पड़ने से चिनगारियाँ निकलने लगीं। यह देखकर दर्शकों को बड़ा आश्चर्य हुआ। दो हाथी जैसे दाँतों से, या दो साँड़ जैसे सींगों से, परस्पर प्रहार करते हैं वैसे ही वे दोनों वीर गदाओं से परस्पर प्रहार कर रहे थे। दोनों के शरीर गदाप्रहार से, घायल और ख़ून से तर हो जाने के कारण, फूले हुए ढाक के पेड़ों की तरह अत्यन्त दर्शनीय हो उठे। शल्य ने भीमसेन के दक्षिण और वाम पार्श्व में प्रहार किया; परन्तु वे पहाड़ की तरह अचल खड़े

रहे। भीमसेन ने भी, जैसे हाथी पहाड़ पर प्रहार करे वैसे ही, बारम्बार शल्य को गदा मारी; किन्तु शल्य तनिक भी व्यथित नहीं हुए। उन वीरों के बारम्बार गदा-प्रहार करने से

उत्पन्न वज्रपात का सा घोर शब्द चारों ओर दूर तक सुनाई पड़ रहा था। अब वे अलौकिक कर्म और असाधारण युद्ध करनेवाले दोनों वीर पुरुष दम भर विश्राम लेकर, फिर गदाएँ तानकर, मण्डलाकार गति से चक्कर काटने और प्रहार करने लगे। परस्पर मार डालने के लिए उद्यत दोनों वीर कभी आठ पग आगे बढ़कर प्रहार करते, कभी पीछे हटते और कभी मण्डलाकार गति से चक्कर काटते हुए अपनी शिक्षा, बल और कौशल दिखाने लगे। भूकम्प के समय २१ दो पहाड़ जैसे शिखरों से परस्पर टकराते हैं वैसे ही शल्य और भीमसेन परस्पर गदाओं से प्रहार कर रहे थे। इस तरह लड़ते-लड़ते परस्पर गदा-प्रहार से दोनों के शरीर घायल और ख़ून से तर हो गये। दोनों थककर, मर्मपीड़ा से विह्वल होकर, एक साथ इन्द्र की दो ध्वजाओं की तरह पृथ्वी पर गिर पड़े। यह देखकर दोनों ओर के लोग हाहाकार करने लगे। तब कृपाचार्य ने फ़ुर्ती से आकर शल्य को अपने रथ पर रख लिया। वे उन्हें रणभूमि से हटा ले गये। इधर पराक्रमी भीमसेन दम भर में उठ खड़े हुए और गदा हाथ में लेकर, मद पीने से विह्वल पुरुष की तरह, शल्य को युद्ध के लिए ललकारने लगे।

उधर अनेक शस्त्र हाथों में लिये हुए कौरवपक्ष के योद्धा पाण्डवसेना से युद्ध करने लगे। तरह-तरह के बाजों का शब्द समरभूमि में गूँज उठा। दुर्योधन आदि कौरवदल के वीर शस्त्र सहित हाथ उठाकर सिंहनाद और कोलाहल करते हुए पाण्डवों की ओर दौड़े। कौरवसेना को आते देखकर पाण्डव भी दुर्योधन आदि को मार डालने के लिए सिंहनाद करते हुए सामने आ गये। हे भरतश्रेष्ठ, पाण्डवपक्ष के वीरों को निकटवर्ती देखकर दुर्योधन ने चेकितान के ३० हृदय में वेग से प्रास मारा। महावीर चेकितान उस प्रास के प्रहार से प्राणहीन और ख़ून से तर होकर रथ के ऊपर गिर पड़े। उनकी मृत्यु होते देखकर पाण्डवगण अलग-अलग दलों में बाण बरसाने लगे। दर्शनीय रूपवाले विजयी पाण्डव और उनके योद्धा निर्भय भाव से शत्रुसेना का संहार करते हुए विचरने लगे। उन्हें कोई रोक नहीं पाता था। शल्य, कृपाचार्य, कृतवर्मा और महारथी शकुनि, ये चारों योद्धा मिलकर धर्मराज से युद्ध करने लगे। राजा दुर्योधन भी द्रोणाचार्य को मारनेवाले अमित वीर्यशाली महापराक्रमी धृष्टद्युम्न से युद्ध करने लगे। तीन हज़ार त्रिगर्त देश के महारथी योद्धा, दुर्योधन की आज्ञा से, अश्वत्थामा को आगे करके जय लाभ के लिए प्राणपण करके वीरश्रेष्ठ अर्जुन के साथ युद्ध करने लगे। इस तरह परस्पर वधाभिलाषी दोनों पक्ष के वीर योद्धा भिड़कर प्रसन्नतापूर्वक द्वन्द्वयुद्ध करने लगे। श्रेष्ठ वीरों का क्षय करनेवाला घोर युद्ध छिड़ने पर, ज़ोर से हवा चलने के कारण, चारों ओर धूल ही धूल छा गई। उस अँधेरे में राजा और क्षत्रिय योद्धा अपने-अपने नाम का उच्चारण करते हुए युद्ध करते थे; इसी से पता चलता था कि कौन किस पक्ष का है। योद्धा लोग ऐसी अवस्था में भी घबराये नहीं; वे निर्भय होकर युद्ध करते हुए रणभूमि में विचरने लगे। ४०

महाराज, उस समय अपार जनसंहार हुआ और इतना रक्त बहा कि दम भर में वह सब धूल बैठ गई और सब दिशाएँ निर्मल हो गईं।

इस तरह वह कायरों के लिए भयङ्कर संग्राम छिड़ने पर दोनों ओर का कोई ऐसा योद्धा नहीं देख पड़ा जो रण छोड़कर भागता। सब वीर क्षत्रिय धर्मयुद्ध करके, पराक्रम दिखाकर, विजय या ब्रह्मलोक प्राप्त करने का दृढ़ निश्चय किये हुए थे। अपने स्वामी के ऋण से उरिन होने का निश्चय करके सभी स्वामी का कार्य सिद्ध करना चाहते थे। इसी लिए स्वर्ग या विजय पाने की इच्छा से वे अत्यन्त दारुण युद्ध कर रहे थे। सब महारथी लाग-डाँट से परस्पर गरजते और तरह-तरह के शस्त्रों से प्रहार करते थे। कौरवों और पाण्डवों की सेना में चारों ओर "मारो, काटो, घायल करो, पकड़ लो!" यही शब्द सुनाई पड़ रहे थे।

महाराज! इसी समय वीरवर शल्य महारथी युधिष्ठिर को, मार डालने के लिए, अत्यन्त तीक्ष्ण बाणों से पीड़ित करने लगे। तब हँसकर मर्मज्ञ युधिष्ठिर ने शल्य के मर्मस्थलों में ताक-ताककर चौदह तीक्ष्ण बाण मारे। महाबली शल्य ने भी क्रुद्ध होकर बहुत से कङ्कपत्र-युक्त उग्र बाणों से युधिष्ठिर के शरीर को छिन्न-भिन्न कर डाला और फिर उन्हें मार डालने के लिए
५० सब सेना के सामने एक उग्र बाण धनुष पर चढ़ाकर छोड़ा। वह बाण आकर युधिष्ठिर को लगा। परन्तु युधिष्ठिर उससे तनिक भी विचलित नहीं हुए और धैर्य धारण करके कङ्कपक्ष तथा मयूरपक्ष से शोभित तीक्ष्ण बाण मारकर शल्य को घायल करने लगे। युधिष्ठिर ने शल्य के चक्ररक्षक चन्द्रसेन को सत्तर और द्रुमसेन को चौंसठ बाण मारे। वे दोनों मरकर गिर पड़े। फिर धर्मराज ने शल्य के सारथी को नव विकट बाण मारे। दोनों चक्ररक्षकों के मारे जाने पर महारथी शल्य क्रोध से प्रज्वलित हो उठे। उन्होंने चेदि-सेना के पचीस रथी योद्धाओं को मार डाला और फिर सात्यकि को पचीस, भीमसेन को पाँच तथा नकुल और सहदेव को पचास-पचास तीक्ष्ण बाण मारे। शल्य को इस तरह निडर होकर रणभूमि में विचरते देख युधिष्ठिर उन पर विषैले नाग के समान बाण बरसाने लगे। फिर युधिष्ठिर ने सामने उपस्थित शल्य की ध्वजा के अगले भाग को एक भल्ल बाण से काट डाला। महात्मा युधिष्ठिर के बाण से कटी हुई शल्य के रथ की ध्वजा हम लोगों के सामने ही, पहाड़ के फटे हुए शिखर की तरह, पृथ्वी पर गिर पड़ी। ध्वजा को गिरते और युधिष्ठिर को सामने ही खड़े देखकर शल्य को अपार क्रोध हो आया। मद्रराज शल्य वैसे ही युधिष्ठिर और अन्य क्षत्रियों के ऊपर तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे जैसे मेघ जल की धारा बरसाते हैं। उन्होंने सात्यकि, भीमसेन, नकुल और सहदेव को पाँच-पाँच बाणों से घायल करके फिर युधिष्ठिर को पीड़ित करना शुरू कर दिया। उस समय हमें युधिष्ठिर की छाती पर छाये हुए शल्य के बाण, आकाश में उमड़ी हुई घटा की तरह, दिखाई पड़ रहे थे। महारथी शल्य ने क्रोध से अधीर होकर युधिष्ठिर के चारों ओर

बाणों का जाल सा फैला दिया। उस बाण-जाल से राजा युधिष्ठिर अत्यन्त पीड़ित हो उठे और इन्द्र के पराक्रम से निश्चेष्ट जम्भ दानव की तरह उनका पराक्रम मानो किसी ने हर लिया। ६३

तेरहवाँ अध्याय

शल्य के पराक्रम का वर्णन

सञ्जय ने कहा—राजन्! शल्य ने जब इस तरह धर्मराज को पीड़ित कर दिया तब सात्यकि, भीमसेन, नकुल और सहदेव, ये चारों महारथी चारों ओर से घेरकर शल्य को पीड़ित करने लगे। अनेक महारथी अकेले शल्य को जब पीड़ित करने लगे और शल्य अकेले ही उन चारों का सामना करने लगे तब शल्य के अद्भुत पराक्रम को देखकर सब लोग उन्हें साधुवाद देने लगे, सिद्धगण और मुनिगण सन्तुष्ट होकर आश्चर्य प्रकट करने लगे। अपने पराक्रम से पाण्डवसेना के लिए शल्य हो रहे मद्रराज शल्य को भीमसेन ने पहले एक और फिर सात बाण मारे। सात्यकि ने भी धर्मराज को बचाने के लिए सौ बाण शल्य को मारकर ज़ोर से सिंहनाद किया। नकुल ने पाँच बाण मारे और सहदेव ने पहले पाँच और फिर सात बाण मारे। विजय के लिए यत्न कर रहे मद्रेश्वर शल्य को जब उन कई वीर महारथियों ने मिलकर इस तरह पीड़ित किया तब वे क्रोध से विह्वल हो उठे। उन्होंने बाहुबल को सहनेवाले सुदृढ़ धनुष को ज़ोर से खींचकर सात्यकि को पचीस, भीमसेन को सत्तर, नकुल को सात और सहदेव को इक्कीस बाण मारे और एक भल्ल बाण से उनका बाण सहित धनुष भी काट डाला। सहदेव ने दूसरे धनुष पर शीघ्र डोरी चढ़ाकर महातेजस्वी शल्य को विषैले साँप और प्रज्वलित अग्नि के समान भयङ्कर पाँच बाण मारे। अत्यन्त कुपित होकर सहदेव ने एक बाण से शल्य के सारथी १० को पीड़ित करके फिर शल्य को तीन बाणों से घायल किया। भीमसेन ने सत्तर, सात्यकि ने नव और धर्मराज ने साठ विकट बाण शल्य को मारे।

महाराज! उन महारथियों के बाणों से घायल शल्य के शरीर से रक्त की धाराएँ बह चलीं, जैसे वर्षा में पहाड़ से गेरू बहती है। शल्य ने क्रुद्ध होकर फिर एक साथ उन सब महारथियों को पाँच-पाँच बाण मारे। शल्य का यह अद्भुत कर्म और फुर्ती देखकर सबको बड़ा अचरज हुआ। फिर महारथी मद्रराज ने अन्य भल्ल बाण से युधिष्ठिर के धनुष को, मय डोरी के, काट डाला। पाण्डवश्रेष्ठ युधिष्ठिर ने फुर्ती से दूसरा धनुष लेकर शल्य को, मय घोड़े सारथी रथ और ध्वजा के, बाणों से पाट दिया। इस तरह धर्मपुत्र के बाणों से पीड़ित होने पर शल्य ने दस तीक्ष्ण बाण मारकर उन्हें अत्यन्त विह्वल कर दिया। युधिष्ठिर को बाणों से विह्वल देखकर सात्यकि को क्रोध चढ़ आया। उन्होंने कस-कसकर पाँच बाण शल्य को मारे।

शल्य ने एक क्षुरप्र बाण से सात्यकि के भारी और बड़े धनुष को काटकर भीमसेन आदि सब महारथियों को तीन-तीन बाणों से पीड़ित किया। तब सात्यकि ने अत्यन्त कुपित होकर एक सुनहरी डण्डी का तोमर शल्य के ऊपर फेंका। साथ ही भीमसेन ने नाग-सदृश एक प्रज्वलित

२० बाण छोड़ा। नकुल ने विकराल शक्ति, सहदेव ने विकट गदा और युधिष्ठिर ने भारी शतघ्नी से शल्य पर प्रहार किया। शल्य ने उन पाँचों वीरों के हाथ से छूटे हुए शस्त्रों को फुर्ती के साथ अनेक बाणों से व्यर्थ कर दिया। उन्होंने अपने वध के लिए सात्यकि के चलाये हुए तोमर को भल्ल बाणों से काट डाला, भीमसेन के स्वर्णभूषित नाराच को फुर्ती के साथ बीच से दो टुकड़े कर दिया, नकुल की सुवर्णदण्डयुक्त भयानक शक्ति और सहदेव की गदा को असंख्य बाणों से मार्ग में ही गिराकर युधिष्ठिर की शतघ्नी के भी दो बाणों से टुकड़े-टुकड़े कर डाले। इस तरह पाण्डवों के सामने ही उनके प्रहारों को व्यर्थ करके वे सिंह की तरह गरजने लगे। शत्रुविनाशन सात्यकि युद्ध में शत्रु की विजय को नहीं सह सके। क्रोध से विह्वल होकर, अन्य धनुष लेकर, उन्होंने शल्य को दो बाणों से और उनके सारथी को तीन बाणों से घायल कर दिया। महारथी शल्य ने पाँचों महारथियों को दस बाणों से वैसे ही पीड़ित किया, जैसे कोई बड़े हाथियों को अङ्कुश से मारे। महाराज, सात्यकि आदि पाँचों शत्रुनाशन महारथी योद्धा शल्य के बाणों से

३० विह्वल और निवारित होकर उनके सामने किसी तरह नहीं ठहर सके। राजा दुर्योधन ने शल्य का अद्भुत पराक्रम देखकर समझ लिया कि सम्पूर्ण पाण्डव, पाञ्चाल और सृञ्जयगण अब जीवित नहीं बच सकते। शल्य का पराक्रम उस समय ऐसा ही अलौकिक और उग्र था कि कोई मनुष्य उसे नहीं सह सकता था।

शल्य को प्रबल देखकर पराक्रमी भीमसेन फिर, प्राणों का मोह छोड़कर, उनके साथ युद्ध करने लगे। नकुल, सहदेव और महारथी सात्यकि भी चारों ओर से शल्य के ऊपर विकट बाण बरसाने लगे। इस तरह पाण्डवों के चार महारथी घेरे हुए थे और प्रतापी शल्य उन चारों से घोर युद्ध कर रहे थे। इसी बीच में धर्मराज ने क्षुरप्र बाण से शल्य के चक्ररक्षक को मार डाला। महारथी शूर चक्ररक्षक के मारे जाने पर शल्य और भी क्रोध से प्रज्वलित हो उठे और धर्मराज के सैनिकों को बाण-वर्षा से नष्ट करने लगे। अपने सैनिकों को शल्य के असंख्य बाणों से मरते और गिरते देखकर युधिष्ठिर सोचने लगे कि श्रीकृष्ण ने शल्य के पराक्रम के सम्बन्ध में जो कुछ कहा था वह अवश्य ही सत्य होगा। मामा शल्य क्रोध करके इसी तरह युद्ध करते रहे तो मेरी सारी सेना का संहार कर डालेंगे! महाबली मामा क्या हम सबको मार ही डालेंगे? मेरे हाथ से शल्य की मृत्यु होने की बात जो श्रीकृष्ण ने कही थी वह किस तरह कब सत्य होगी?

हे राजराजेश्वर! पाण्डवपक्ष के वीरगण बहुत सी चतुरङ्गिणी सेना के द्वारा चारों ओर से शल्य को घेरकर, शस्त्र बरसाकर, उन्हें पीड़ित करने लगे। किन्तु प्रबल प्रतापी मद्रराज उन बरस

रहे तरह-तरह के शस्त्रों में से एक को भी अपने पास तक नहीं आने देते थे। प्रबल आँधी जैसे मेघों को छिन्न भिन्न कर डाले, वैसे ही शल्य भी उस शस्त्रवर्षा को अपने बाणों से काट-काट-कर व्यर्थ करने लगे। हम लोगों ने आश्चर्य के साथ देखा कि शल्य के धनुष से लगातार निकल रहे सुवर्णपुङ्खयुक्त बाण आकाश में टीड़ीदल की तरह छा रहे हैं। शल्य के बाण शत्रुसेना में, पके हुए खेतों पर टीड़ीदल की तरह, गिर रहे थे। उन बाणों ने पक्षियों के झुण्ड की तरह सारे आकाश को छा लिया। उस लगातार बाणवर्षा के कारण रणभूमि में ऐसा अँधेरा छा गया कि पाण्डवसेना या कौरवसेना का कोई जीव अथवा सामान नहीं सूझ पड़ता था। फुर्तीले बली शल्य की बाणवर्षा से पाण्डवों की सागर-समान सेना को विचलित होते देखकर देवता, गन्धर्व, दानव आदि सभी दर्शकों को बड़ा आश्चर्य हुआ। वीरवर शल्य इस तरह प्रहार करनेवाले सब शत्रुओं को और युधिष्ठिर को असंख्य बाणों की वर्षा से ढककर, विह्वल और किं-कर्तव्य-विमूढ़ बनाकर, बारम्बार सिंह की तरह गरजने लगे। शल्य के बाणों से पाण्डवों के महारथी योद्धा ऐसे पोड़ित हुए कि शल्य के आगे जाने की अथवा उनसे युद्ध करने की हिम्मत ही उनमें न रही। किन्तु भीमसेन, युधिष्ठिर आदि महारथी साहस और धैर्य धारण करके शल्य के सामने डटे ही रहे और उन पर प्रहार करते ही रहे। ४० ४८

चौदहवाँ अध्याय

अर्जुन और अश्वत्थामा का युद्ध

सञ्जय ने कहा—महाराज, दूसरी ओर पराक्रमी अर्जुन को अश्वत्थामा और उनके अनुचर तीन हज़ार त्रिगर्त देश के महारथी योद्धा लोहमय बाणों से पीड़ित और घायल करने लगे। तब उन्होंने क्रोध करके तीन बाण अश्वत्थामा को और दो-दो बाण सब महारथियों को मारे और फिर उनपर असंख्य बाण बरसाना शुरू किया। वे सब वीर लगातार चलाये गये बाणों से छिदने-बिंधने और पीड़ित होने पर भी अर्जुन के सामने से नहीं हटे और प्राणपण से युद्ध करने लगे। अश्वत्थामा सहित वे वीर रथों से अर्जुन को घेरकर घोरतर युद्ध करने लगे। उन वीरों के चलाये हुए सुवर्ण-भूषित तीक्ष्ण बाण आ-आकर अर्जुन के रथ पर गिरने लगे। युद्ध-दुर्मद हर्पयुक्त वे वीर महाधनुर्द्धर और सब योद्धाओं में श्रेष्ठ श्रीकृष्ण तथा अर्जुन को घोर बाणों से घायल करने लगे। अर्जुन के रथ के कूबर, पहिये, ईषादण्ड, जोत, जुआ, अनुकर्ष आदि सब अङ्ग बाणमय हो गये। महाराज, उस समय आपके योद्धाओं ने और अर्जुन ने उनसे जैसा घोरतर युद्ध किया वैसा युद्ध हमने पहले कभी देखा या सुना नहीं था। अर्जुन का रथ, चारों ओर विचित्र बाणों से व्याप्त होने के कारण, सैकड़ों उल्काओं से प्रकाशित पृथ्वी पर स्थित देवविमान सा जान पड़ने लगा।

तब अर्जुन कुपित होकर कौरवसेना के ऊपर वैसे ही बाण बरसाने लगे जैसे बादल पर्वत १० पर जल-धारा बरसाता है। अर्जुन के नाम से अङ्कित बाणों के द्वारा मारे जा रहे कौरव-पक्ष के सैनिकों को सर्वत्र अर्जुन ही दिखाई देने लगे। कोप से प्रचण्ड, बाणरूप ज्वालाओं से युक्त और धनुष के शब्द की प्रचण्ड वायु से प्रबल हो रहे अग्निस्वरूप अर्जुन कौरव-सेना को ईंधन की तरह भस्म कर रहे थे। अर्जुन का रथ जिधर जाता था उसी मार्ग में कट-कटकर गिर रहे रथों के पहिये, युग, तूणीर, ध्वजा, पताका, रथ, ईषादण्ड, अनुकर्ष, त्रिवेणु, अक्ष, जोत, चाबुक, कुण्डल और पगड़ियों से शोभित सिर, भुजाएँ, कन्धे, छत्र, चँवर, मुकुट आदि के ढेर लग जाते थे। मांस और रक्त की कीच से रणभूमि अगम्य हो गई। रणभूमि रुद्र की क्रीड़ाभूमि मसान के समान वीरों के मन में हर्ष और कायरों के मन में भय उत्पन्न करने लगी। महाबली अर्जुन ने इस तरह अनुचरों सहित दो हज़ार रथ और रथी नष्ट कर दिये। भगवान् अग्नि जैसे जगत् को २० भस्म करके धूमरहित देख पड़ें वैसे ही अर्जुन भी क्रोध और तेज से प्रज्वलित हो रहे थे। उस समय महारथी अश्वत्थामा अर्जुन का पराक्रम देखकर, ऊँची ध्वजा से युक्त, रथ बढ़ाकर उन्हें रोकने के लिए उनके सामने आये। वे दोनों श्रेष्ठ धनुर्द्धर वीर, सफ़ेद घोड़ों से शोभित रथ पर बैठकर, परस्पर वध की इच्छा से युद्ध करने लगे। वर्षा ऋतु में दो मेघ जैसे लगातार जलधारा बरसावें वैसे ही अश्वत्थामा और अर्जुन दारुण बाण छोड़ने लगे। दो साँड़ जैसे परस्पर सींगों से प्रहार करें वैसे ही परस्पर लाग-डाँट रखनेवाले दोनों वीर तीक्ष्ण बाणों से एक दूसरे को घायल करने लगे। महाराज, बहुत देर तक दोनों ने समान रूप से युद्ध किया। उनके युद्ध में शस्त्रों की वर्षा सी हुई। अश्वत्थामा ने क्रोध करके सुवर्णपुङ्ख-युक्त अत्यन्त तीक्ष्ण बारह बाण अर्जुन को और दस बाण श्रीकृष्ण को मारे। तब अर्जुन ने हँसकर गाण्डीव धनुष को नचाते-नचाते दम भर गुरु-पुत्र का सम्मान किया अर्थात् उनके ऊपर प्रहार नहीं किया। फिर अश्वत्थामा के सारथी और घोड़ों को मारकर उनके रथ के टुकड़े-टुकड़े

कर डाले और पहले कोमल भाव से बारम्बार वे उनको बाण मारने लगे। उस बिना घोड़ों के रथ पर खड़े-खड़े अश्वत्थामा ने हँसकर एक लोहमय परिघ-तुल्य मूसल अर्जुन के ऊपर फेंका।

शत्रुनाशन अर्जुन ने अपनी ओर आ रहे उस सुवर्ण-पट्ट-भूषित मूसल के, बाणों से, सात टुकड़े कर डाले। मूसल के व्यर्थ हो जाने पर अत्यन्त क्रोध करके अश्वत्थामा ने एक पर्वत-शिखर-तुल्य घोर परिघ (बेलन) अर्जुन के ऊपर फेका। अर्जुन ने कुपित काल के समान आ रहे परिघ को फुर्ती से पाँच बाण मारकर काट डाला। उनके बाणों से कटा हुआ वह परिघ अपने घोर शब्द से राजाओं के दिल दहलाता हुआ पृथ्वी पर गिर पड़ा। अर्जुन ने अन्य तीन भल्ल बाण अश्वत्थामा को मारे। उन बाणों से अत्यन्त घायल होने पर भी, अपना पौरुष दिखा रहे, अश्वत्थामा विचलित नहीं हुए। इसी बीच में अश्वत्थामा ने सब क्षत्रियों के सामने ही पाञ्चाल देश के महारथी सुरथ को असंख्य बाण मारे। सुरथ भी कुपित होकर मेघ-गर्जन के समान शब्द कर रहे रथ को वेग से बढ़वाकर अश्वत्थामा की ओर चले। सब तरह के बोझ को सँभालनेवाला धनुष खींचकर वे अग्नि-शिखा और विषैले साँप के समान तीक्ष्ण बाण अश्वत्थामा को मारने लगे। महारथी सुरथ को क्रुद्ध होकर युद्ध के लिए आते और बाणों से प्रहार करते देखकर वीर अश्वत्थामा, चोट खाये हुए साँप के समान, क्रोध से विह्वल हो उठे। वे भौंहें टेढ़ी करके ओठ चाटते हुए सुरथ की ओर कुटिल दृष्टि से देखने लगे। फिर उन्होंने धनुष की डोरी को साफ़ करके यमदण्ड के समान प्रकाशमान एक तीक्ष्ण बाण सुरथ को मारा। इन्द्र के वज्र के समान वह बाण वेग से सुरथ के हृदय को चीरता हुआ पृथ्वी में घुस गया। उस बाण के प्रहार से मरकर वीरवर सुरथ, वज्रपात से फटे हुए पर्वत के शिखर की तरह, पृथ्वी पर गिर पड़े। इस तरह सुरथ को मारकर प्रतापी अश्वत्थामा जल्दी से उन्हीं के रथ पर सवार हो गये और इस प्रकार सुसज्जित होकर अर्जुन के साथ युद्ध करने लगे। बचे हुए संशप्तकगण भी अर्जुन को घेरकर पीड़ित करने लगे। उस समय दोपहरी हो गई थी। अर्जुन के सामने उपस्थित संशप्तकगण घोर युद्ध करने लगे। उन सबका पराक्रम वास्तव में आश्चर्यजनक था। वीरवर अर्जुन अकेले ही उन वीरों से युद्ध कर रहे थे। यह देखकर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। महाराज, इन्द्र ने जैसे पहले बहुत बड़ी दैत्य-सेना के साथ घोर युद्ध किया था वैसे ही कौरवों की संशप्तक-सेना के साथ अर्जुन भी भयङ्कर संग्राम कर रहे थे। ३० ४० ४८

पन्द्रहवाँ अध्याय

शल्य के पराक्रम का वर्णन

सञ्जय ने कहा—महाराज! राजा दुर्योधन और वीर धृष्टद्युम्न अनेक बाण, शक्ति आदि शस्त्रों से घोर युद्ध करने लगे। वर्षा के बादल जैसे जल बरसाते हैं वैसे ही दोनों वीर एक-दूसरे पर हज़ारों बाण छोड़ने लगे। राजा दुर्योधन ने द्रोणाचार्य का वध करनेवाले धृष्टद्युम्न को

पहले पाँच और फिर सात बाण मारे। बली धृष्टद्युम्न ने भी सत्तर बाण मर्मस्थल में मारकर दुर्योधन को बेहद घायल कर दिया। दुर्योधन को अत्यन्त पीड़ित देखकर, बहुत सी सेना साथ लेकर, उनके भाई दौड़ पड़े और धृष्टद्युम्न को चारों ओर से घेरकर पीड़ित करने लगे। अतिरथियों से घिरे शूर-शिरोमणि धृष्टद्युम्न कौरवसेना में बेधड़क विचरने और अस्त्र-बल का कौशल दिखाने लगे।

इधर प्रभद्रकगण को साथ लिये हुए शिखण्डी अपने प्रतिपक्षी महारथी कृतवर्मा और कृपाचार्य से युद्ध करने लगे। प्राणों की बाज़ी लगाकर लड़नेवाले वीर योद्धा वहाँ पर भी घमासान युद्ध करने लगे। महावीर शल्य भी चारों ओर बाण बरसाकर सात्यकि, भीमसेन और यमतुल्य १० नकुल-सहदेव से युद्ध करके वीर्य और अस्त्र-बल के प्रभाव से उन सबको पीड़ित करने लगे। शल्य के बाणों से पीड़ित पाण्डवपक्ष के योद्धाओं को अपनी रक्षा करनेवाला कोई नहीं देख पड़ता था।

नकुल ने देखा कि शल्य ने धर्मराज को बहुत ही पीड़ित कर रक्खा है। तब वे वेग से अपने मामा की ओर चले। उन्होंने दम भर में शल्य को तीक्ष्ण बाणों से व्याप्त कर दिया और ताक-ताककर उनकी छाती में दस तीक्ष्ण बाण मारे। शल्य अपने भानजे के बाणों से विह्वल हो उठे और कुपित होकर भानजे को भी, तीक्ष्ण बाण मार-मारकर, पीड़ित करने लगे। तब नकुल की रक्षा करने के लिए राजा युधिष्ठिर, भीमसेन, सात्यकि और सहदेव मद्रराज शल्य की ओर दौड़े। इन वीरों के रथों की घरघराहट से पृथ्वी काँप उठी और सब दिशा-उपदिशाएँ गूँज गईं। शत्रुदमन शल्य ने शीघ्र आ रहे इन वीरों को रोका। उन्होंने युधिष्ठिर को तीन, भीमसेन को पाँच, सात्यकि को सौ और सहदेव को तीन बाण मारे। फिर नकुल के बाण सहित धनुष को, क्षुरप्र बाण मारकर, बीच से काट डाला। नकुल ने वह कटा हुआ धनुष फेंककर दूसरा २१ धनुष हाथ में लिया और फुर्ती से शल्य के रथ को बाणों से छा दिया। इसी समय युधिष्ठिर और सहदेव ने शल्य की छाती में दस-दस बाण मारे। साथ ही भीमसेन ने साठ और सात्यकि ने दस कङ्कपत्रयुक्त बाण मारकर मद्रराज को पीड़ित किया। शत्रुओं के शर-प्रहार से शूर शल्य पीड़ित और कुपित हो उठे। उन्होंने सात्यकि को पहले नव और फिर सत्तर बाण मारकर उनका बाण-युक्त धनुष, पकड़ने की जगह से, काट डाला और उनके रथ के चारों घोड़े भी मार डाले। इस तरह सात्यकि को रथ-हीन करके उनको सौ बाण और मारे! फिर भीमसेन, नकुल, सहदेव और धर्मराज को भी दस-दस बाण मारे। उस समय हम लोगों ने क्रोधान्ध शल्य का अद्भुत पौरुष देखा। चारों पाण्डव और सात्यकि मिलकर भी उनसे पेश नहीं पाते थे।

पाण्डवों को पीड़ित और शल्य के वश हुए देखकर सात्यकि के क्रोध का ठिकाना नहीं रहा। वे दूसरे रथ पर बैठकर बड़े वेग से शल्य की ओर चले। सात्यकि को आते देखकर, मस्त हाथी जैसे मस्त हाथी पर झपटे वैसे ही, वीर शल्य भी अपना रथ बढ़वाकर उनकी ओर ३० चले। जैसे पहले इन्द्र और शम्बर दानव का घोर युद्ध हुआ था वैसे ही उस समय शूर

सात्यकि और महारथी शल्य अद्भुत युद्ध करने लगे। सात्यकि ने शल्य को सामने पाकर, खड़े रहो-खड़े रहो कहकर, दस बाण मारे। उन बाणों की चोट से पीड़ित शल्य ने कुपित होकर सात्यकि को अनेक तीक्ष्ण विचित्र पुङ्ख-युक्त बाण मारे। पाण्डवों ने सात्यकि के साथ अपने मामा को विकट युद्ध करते देखकर, उन्हें मार डालने की इच्छा से, शीघ्रता के साथ अपने रथ उनकी ओर बढ़ाये। महाराज, उस समय सिंह की तरह गरज-गरजकर युद्ध कर रहे शूरों ने रक्त की नदियाँ बहा दीं। मांस के लोभ से शिकार पर झपटते और गरजते हुए शेरों की तरह वीरगण परस्पर प्रहार करने लगे। उन वीरों के हज़ारों बाणों से अन्तरिक्ष व्याप्त हो गया और पृथ्वी पट गई। उनके बाण आकाश में बादल से छा गये और घोर घटा घिर आने का सा अँधेरा फैल गया। उस अँधेरे में केंचुल छोड़े हुए साँपों के समान, सुवर्ण-पुङ्ख-युक्त चमकीले बाण—विजलियों की तरह—दिशाओं को प्रकाशित कर रहे थे। शत्रुनाशन शल्य ने अनेक महारथियों ४० से लड़कर, उन्हें पीड़ित करके, वास्तव में बड़ा ही अद्भुत कार्य किया। उनके बाहुमण्डल से निकले हुए कङ्क-मयूर-पक्ष-शोभित, घोर, असंख्य बाणों के गिरने से पृथ्वी पट गई। शल्य का रथ असुर-सेना में विचर रहे इन्द्र के रथ के समान दिखाई पड़ रहा था। ४३

सोलहवाँ अध्याय

शल्य और युधिष्ठिर का युद्ध

सञ्जय ने कहा—हे नरनाथ, उस समय रण-मत्त कौरवसेना वीर शल्य को आगे करके फिर बड़े वेग से पाण्डवसेना की ओर चली। यद्यपि पाण्डवगण भी आपकी सेना को पीड़ित कर रहे थे तथापि आपकी सेना अधिक थी, इस कारण कौरवसेना पाण्डवसेना को मथने, मारने और भगाने लगी। श्रीकृष्ण और अर्जुन के सामने ही, भीमसेन के रोकने पर भी, पाण्डवसेना भागने लगी; क्योंकि वह शल्य के पराक्रम और कौरवसेना के आक्रमण से अत्यन्त पीड़ित हो रही थी। तब अर्जुन ने क्रोध करके सहायकों सहित कृपाचार्य और कृतवर्मा को बाणवर्षा से पीड़ित करना शुरू कर दिया। सेना सहित शकुनि को वीर सहदेव ने बाणों से छा दिया। नकुल उनके पास स्थित होकर शल्य से युद्ध करने लगे। द्रौपदी के पाँचों पुत्र अन्य अनेक नरेन्द्रों से युद्ध करने लगे। पाञ्चाल-राजकुमार शिखण्डी अश्वत्थामा का सामना करने लगे। गदा हाथ में लिये भीमसेन राजा दुर्योधन से भिड़ गये और सेना सहित शल्य से युधिष्ठिर युद्ध करने लगे। इस तरह जगह-जगह पर रण से विमुख न होनेवाले दोनों पक्ष के योद्धा द्वन्द्व युद्ध करने लगे।

मद्रराज शल्य को अकेले ही पाण्डवों की सब सेना से युद्ध करते देखकर, उनके इस अद्भुत अलौकिक कर्म से, सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। उस समय वीर शल्य, चन्द्रमा के निकट स्थित

१० क्रूर ग्रह शनैश्चर की तरह, राजा युधिष्ठिर के समीप दिखाई पड़ने लगे। वे विषैले साँप के समान बाणों से युधिष्ठिर को पीड़ित करके फिर बाण बरसाते हुए भीमसेन की ओर दौड़े। उनकी यह फुर्ती और अस्त्र चलाने का अभ्यास देखकर दोनों सेनाओं के योद्धा प्रशंसा करने लगे। पाण्डवों को शल्य ने अत्यन्त घायल करके बारम्बार पीड़ित करना शुरू किया, और वे युधिष्ठिर के लाख चिल्लाने पर भी रण छोड़कर भाग खड़े हुए। शल्य को इस तरह अपनी सेना का संहार करते देख युधिष्ठिर के क्रोध का ठिकाना न रहा। वे पौरुष और धैर्य धारण करके शल्य के ऊपर प्रहार करने लगे। उन्होंने निश्चय कर लिया कि या तो जय प्राप्त करेंगे या मर जायँगे।

युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण और अपने सब भाइयों को बुलाकर कहा—देखो, भीष्म, द्रोण, कर्ण और अन्य जितने राजा दुर्योधन के लिए पराक्रम प्रकट करके लड़े वे सब संग्राम में मारे गये। तुम लोग उत्साह के साथ अपने-अपने भाग में पड़े हुए शत्रु को मारकर पौरुष दिखा चुके हो। अब मेरे हिस्से के ये एक महारथी शल्य ही बच रहे हैं। सो मैं युद्ध करके इनको मारने की आशा करता हूँ। इस बारे में जो कुछ मैंने सोचा है वह तुम लोगों से कहता हूँ। नकुल और सहदेव मेरे रथ के दोनों पहियों की रक्षा करते हैं। इन दोनों शूरों को इन्द्र भी युद्ध में नहीं जीत सकते। ये दोनों माननीय सत्यप्रतिज्ञ वीर, क्षत्रिय-धर्म के अनुसार, ममता छोड़कर मेरे हित
२० के लिए अपने सगे मामा से युद्ध करें। तुम लोगों का भला हो। हे वीरो, मैं इस समय तुम्हारे आगे यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि रण में या तो शल्य को मैं मारूँगा और या शल्य मुझे मारेंगे। मैं जय या पराजय के लिए, क्षत्रियधर्म के अनुसार, मामा शल्य के साथ प्राणपण से युद्ध करूँगा; क्योंकि वे मेरे ही हिस्से में पड़े हैं। मेरे और उनके अस्त्र-शस्त्र और अन्य सभी सामान समान हैं। अब रथ तैयार करनेवाले लोग, शास्त्रोक्त विधि के अनुसार, मेरा रथ सुसज्जित करें। प्रधान चक्र-रक्षक नकुल-सहदेव के अलावा सात्यकि दाहने पहिये की और धृष्टद्युम्न बायें पहिये की रक्षा करें। वीर अर्जुन पीछे रहकर मेरी रक्षा करें और शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ महाबली भीमसेन मेरे रथ के आगे रहें। इस तरह सब ठीक होने पर मैं शल्य से अधिक और प्रबल हो जाऊँगा।

राजन्, राजा युधिष्ठिर के ये वचन सुनकर उनका हित और प्रिय करनेवाले अर्जुन आदि ने—उनकी आज्ञा के अनुसार—सब ठीक कर दिया। तब फिर पाण्डव-सेना में हर्ष छा गया; ख़ासकर पाञ्चालगण, सोमकगण और मत्स्य देश के वीरगण अत्यन्त आनन्दित होकर धर्मराज की प्रतिज्ञा की प्रशंसा करने लगे। पाञ्चालगण प्रसन्न होकर सैकड़ों शङ्ख, नगाड़े, तुरही, मृदङ्ग बजाने और सिंहनाद करने लगे। वे सब लोग कोप और हर्ष से उत्तेजित होकर सिंहनाद करते हुए शल्य की ओर वेग से दौड़े। हाथियों के घण्टे बजने लगे, शङ्खों और नगाड़ों
३० का शब्द गूँज उठा। उस शब्द से पृथ्वी काँप उठी। उन वीरों को आपके पुत्र दुर्योधन

भीम की उस रथशक्ति की चोट खाकर दुर्योधन विमोहित हो गया उन्हें उस अवस्था में देख कर महावीर भीम ने तुरन्तही उनके सारथी का मस्तक काट लिया ।

और वीर्यशाली शल्य ने उसी तरह रोका, जिस तरह उदयाचल और अस्ताचल दोनों पर्वत मेघों को रोक लें। समरप्रिय शल्य धर्मराज के ऊपर वैसे ही बाण बरसाने लगे, जैसे शम्बर दानव के ऊपर इन्द्र ने बाण-वर्षा की थी। कुरुराज दुर्योधन भी सुन्दर धनुष लेकर विचित्रता, फुर्ती और खूबसूरती के साथ बाण बरसाकर द्रोणाचार्य की दी हुई तरह-तरह की शिक्षाओं की खूबी दिखलाने लगे। रण में विचरण कर रहे दुर्योधन पर प्रहार करने का मौका कोई नहीं देख पाता था। मांस के लोभी दो सिंहों की तरह पराक्रम प्रकट करते हुए शल्य और युधिष्ठिर एक-दूसरे को तीक्ष्ण बाणों से छिन्न-भिन्न करने लगे। भीमसेन आपके पुत्र युद्ध-निपुण दुर्योधन से भिड़ गये। इसी तरह धृष्टद्युम्न, सात्यकि, नकुल और सहदेव, ये शकुनि आदि विरोधियों से युद्ध करने लगे। महाराज! यह सब आपकी कुमन्त्रणा का फल है, जो जय की इच्छा रखनेवाले दोनों पक्ष के वीर तुमुल युद्ध और जन-संहार करने में प्रवृत्त हुए।

दुर्योधन ने ललकारकर एक तीक्ष्ण बाण से भीमसेन की सुवर्ण-भूषित ध्वजा काट डाली। किङ्किणीजाल-मण्डित, दर्शनीय वह भीमसेन की ध्वजा उनके सामने ही पृथ्वी पर गिर पड़ी। ४० फिर राजा दुर्योधन ने तीक्ष्ण क्षुरप्र बाण से भीमसेन का, हाथी की सूँड़ के समान मोटा, विचित्र धनुष भी फुर्ती से काट डाला। तेजस्वी भीमसेन ने क्रोध करके रथ-शक्ति उठाकर दुर्योधन की छाती में वेग से मारी। उस शक्ति ने कुरुराज के हृदय को फाड़ डाला। वे विह्वल होकर रथ पर बैठ गये। इस तरह दुर्योधन जब बेहोश हो गये तब भीमसेन ने एक क्षुरप्र बाण से उनके सारथी का सिर भी काट डाला। सारथी के न रहने पर दुर्योधन के घोड़े रथ को लेकर इधर-उधर भागने लगे। उस समय कौरवसेना में हाहाकार मच गया। तब आपके पुत्र राजा दुर्योधन की रक्षा करने के लिए महारथी अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा दौड़े।

दुर्योधन की दशा देखकर सेना में हलचल मच गई, विशृङ्खला हो गई और राजा के अनुगामी योद्धा डर से विह्वल हो उठे। तब वीरवर अर्जुन गाण्डीव धनुष चढ़ाकर बाणों से उन सबको मारने लगे। राजा युधिष्ठिर भी अपने हाथ से, मन के समान वेग से जानेवाले, सफ़ेद घोड़ों को हाँककर शल्य की ओर चले। उस समय हमने युधिष्ठिर में यह अद्भुत बात देखी कि पहले सदा शान्त, कोमलहृदय, जितेन्द्रिय रहने पर भी उस समय उग्ररूप होकर वे दारुण कर्म करने लगे। क्रोध से उनकी लाल-लाल आँखें हो आईं और शरीर काँपने लगा। उन्होंने बाण-वर्षा करके उस समय सैकड़ों-हज़ारों योद्धाओं को काट डाला। जिस-जिस दल में युधिष्ठिर जाते थे वहाँ बाणों से, वज्र-विदीर्ण पर्वतों के समान, लाशों के ढेर लगा देते थे। ५० हवा जैसे सहज ही बादलों के टुकड़े-टुकड़े कर देती है वैसे उन्होंने अकेले ही अनायास घोड़े, सारथी, रथ, ध्वजा आदि सहित अनेक योद्धाओं को काट-काटकर गिरा दिया। कुपित रुद्र जैसे पशुओं का संहार करते हैं वैसे ही धर्मराज ने रणभूमि में हज़ारों घोड़ों, उनके सवारों और

पैदलों को मार डाला। इस तरह बाण-वर्षा से रणभूमि को ख़ाली करके राजा युधिष्ठिर शल्य के रथ की ओर वेग से चले और ठहरो-ठहरो कहकर गरजने लगे। भीमकर्मा युधिष्ठिर का वह दारुण कर्म देखकर सब लोग डर गये। किन्तु वीर शल्य ने निर्भय होकर उनका सामना किया। अत्यन्त कुपित दोनों वीर श्रेष्ठ शङ्खों को बजाकर परस्पर युद्ध के लिए ललकारने और बारम्बार भर्त्सना करते हुए लड़ने लगे। शल्य युधिष्ठिर को बाण-वर्षा से पीड़ित करने लगे और युधिष्ठिर शल्य को बाणों से घायल करने लगे। दोनों के शरीर कङ्कपत्र-युक्त बाणों से छिद गये, रक्त बहने लगा। दोनों ही वन में फूले हुए सेमर और ढाक के पेड़ से जान पड़ने लगे। दोनों को प्राणों की बाज़ी बदकर युद्ध का जुआ खेलते देखनेवाले योद्धा यह निश्चय नहीं कर सकते थे कि कौन विजय प्राप्त करेगा। सब सैनिक

सोचने लगे कि मालूम नहीं, आज शल्य को मारकर युधिष्ठिर पृथ्वी का राज्य प्राप्त करेंगे या शल्य युधिष्ठिर को मारकर दुर्योधन को निष्कण्टक साम्राज्य अर्पण करेंगे। महाराज, युद्ध के ६० समय सब शुभसूचक शकुन धर्मराज के दक्षिण भाग में प्रकट होकर विजय की सूचना देने लगे।

शल्य ने फुर्ती के साथ सौ बाण युधिष्ठिर को मारे और एक तीक्ष्ण बाण से उनका धनुष भी काट डाला। युधिष्ठिर ने तुरन्त दूसरा सुदृढ़ धनुष लेकर तीन सौ बाण शल्य को मारे और एक क्षुरप्र बाण से उनका धनुष काट डाला। इसके सिवा उनके चारों घोड़े मार डाले और तीक्ष्ण दो बाणों से दोनों पार्श्वरक्षकों को भी यमपुर भेज दिया। इसके बाद एक चमकीले बहुत ही पैने भल्ल बाण से सामने स्थित शल्य के रथ की ध्वजा भी काटकर गिरा दी। शल्य की यह दुर्दशा देखकर दुर्योधन की सेना डर के मारे भागने लगी। अश्वत्थामा ने जब शल्य को पीड़ित और रथ-हीन देखा तब वे दौड़कर उनके पास पहुँचे और उन्हें अपने रथ पर बैठाकर युधिष्ठिर के आगे से हटा ले गये। शल्य को विमुख करके युधिष्ठिर गरजने लगे। दम भर के बाद शल्य दूसरे रथ पर बैठकर युधिष्ठिर के सामने आ गये। वह रथ विधिपूर्वक सुसज्जित, मेघगर्जन के ६८ समान शब्द करनेवाला, सब शस्त्रों और सामानों से परिपूर्ण तथा शत्रुओं को डरानेवाला था।

सत्रहवाँ अध्याय

शल्य का और उनके भाई का मारा जाना

सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र, महारथी शल्य ने एक सुदृढ़ वेगपूर्ण धनुष हाथ में लेकर तीक्ष्ण बाणों की वर्षा से धर्मराज को घायल करके ज़ोर से सिंहनाद किया। क्षत्रियश्रेष्ठ शल्य फिर जलधारा बरसानेवाले मेघ की तरह क्षत्रियों के ऊपर लगातार बाण बरसाने लगे। उन्होंने सात्यकि को दस, भीमसेन को तीन और सहदेव को भी तीन बाण मारकर फिर युधिष्ठिर को पीड़ित करना शुरू किया। जलती हुई लकड़ी के प्रहार से जैसे हाथी विह्वल हो उठता है वैसे ही घोड़े-रथ-कूबर-सहित अन्यान्य धनुर्द्धर वीर शल्य के बाणों से व्याकुल हो उठे। श्रेष्ठ रथी शल्य हाथियों, घोड़ों, उनके सवारों और रथ सहित रथियों को मारने तथा गिराने लगे। उन्होंने अनेक योद्धाओं के सशस्त्र हाथ काट डाले; बहुतों की ऊँची ध्वजाएँ काटकर गिरा दीं। जिस तरह यज्ञवेदी पर कुश बिछाये जाते हैं उसी तरह शल्य ने रणभूमि पर योद्धाओं को बिछा दिया। शल्य को इस तरह यमराज के समान संहार करते देखकर पाण्डवों, पाञ्चालों और सोमकों ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर उन्हें चारों ओर से घेर लिया। महाबली भीमसेन, पराक्रमी सात्यकि, वीर नकुल और सहदेव ने राजा युधिष्ठिर से युद्ध कर रहे महाबली शल्य को घेर लिया। ये लोग उन्हें युद्ध के लिए ललकारने और उग्र वेगवाले तीक्ष्ण बाणों से पीड़ित करने लगे।

महाराज! भीमसेन, सात्यकि, नकुल और सहदेव के पराक्रम से सुरक्षित होकर राजा युधिष्ठिर शल्य के वक्षःस्थल में लगातार तीक्ष्ण बाण मारने लगे। रण में शल्य को इस तरह १० शत्रुओं की बाण-वर्षा से पीड़ित देखकर और दुर्योधन की आज्ञा पाकर कौरवपक्ष के श्रेष्ठ योद्धा भी, शल्य को अपने बीच में करके, उनकी रक्षा करते हुए शत्रुओं के प्रयत्न को व्यर्थ करने की चेष्टा करने लगे। तब महाबली शल्य ने शीघ्रता के साथ युधिष्ठिर को सात बाण मारे। युधिष्ठिर ने भी उनको नव बाण मारे। युधिष्ठिर और शल्य दोनों ही, उस समय, कान तक खींचकर छोड़े गये, तैल-धौत, तीक्ष्ण बाणों से एक दूसरे को आच्छादित करने लगे। दोनों महाबली, श्रेष्ठ राजा और शत्रुओं के लिए दुर्द्धर्ष थे। दोनों ही मौक़ा देखते हुए फुर्ती के साथ परस्पर प्रहार कर रहे थे। दोनों के धनुषों की डोरी हथेली में लगने से इन्द्र के वज्र का सा शब्द उत्पन्न होता था। महावन में मांस के लोभ से घूम रहे दो सिंह-शिशुओं के समान घूम-फिरकर वे दोनों श्रेष्ठ वीर, दाँतों से परस्पर प्रहार कर रहे दो मस्त हाथियों की तरह, तीक्ष्ण बाणों से एक दूसरे को घायल और छिन्न-भिन्न करने लगे। दोनों ही दर्प और क्रोध से परिपूर्ण हो रहे थे।

अब महारथी शल्य ने वीर युधिष्ठिर के हृदय में बड़े वेग से, सूर्य और अग्नि के समान प्रज्वलित, एक उग्र बाण मारा। उस बाण की चोट से युधिष्ठिर अत्यन्त व्यथित और विह्वल हो

गये, तथापि उन्होंने धैर्य के साथ धनुष पर एक विकट बाण चढ़ाकर शल्य को मारा। उस बाण के प्रहार से शल्य मूर्च्छित हो गये। यह देखकर युधिष्ठिर बहुत ही प्रसन्न हुए। दम भर में शल्य को होश आ गया। क्रोध के मारे उनकी आँखें लाल हो गईं। तब इन्द्र के समान प्रभावशाली शल्य ने फुर्ती के साथ युधिष्ठिर को सौ बाण मारे। धर्मराज ने भी क्रुद्ध होकर शल्य की छाती में नव बाण मारकर उनका सुवर्णालङ्कृत कवच काट डाला और फिर फुर्ती से २० छः बाण मारे। शल्य ने हर्ष के साथ धनुष खींचकर कई बाण युधिष्ठिर को मारे और दो बाणों से उनका विचित्र धनुष काट डाला। युधिष्ठिर ने जल्दी से दूसरा धनुष लेकर शल्य को वैसे ही अनेक बाणों से चारों ओर से घायल करना शुरू किया, जैसे इन्द्र ने तीक्ष्ण बाणों से नमुचि को पीड़ित किया था। तब शल्य ने नव बाणों से राजा युधिष्ठिर और भीमसेन के सुवर्ण-शोभित कवच काटकर उनकी भुजाओं में अनेक बाण मारे। फिर अग्नि और सूर्य के समान प्रज्वलित एक बाण से युधिष्ठिर का धनुष भी काट डाला। इसी समय कृपाचार्य ने छः बाणों से युधिष्ठिर के सारथी को मार डाला। वह युधिष्ठिर के सामने मरकर गिर पड़ा। शल्य ने चार बाणों से युधिष्ठिर के घोड़े मार डाले और फिर उनके योद्धाओं का संहार करना शुरू कर दिया। युधिष्ठिर की यह दशा देखकर भीमसेन ने एक वेगगामी बाण से शल्य का धनुष काटकर उनको दो उग्र बाण मारे। फिर एक बाण से उनके सारथी का सिर काटकर चारों घोड़ों को भी मार डाला। अत्यन्त कुपित भीमसेन ने क्षण भर में शल्य को भी रथ, घोड़ों और सारथी से रहित कर दिया। समरभूमि में सर्व-संहार करते विचर रहे धनुर्द्धरश्रेष्ठ शल्य की यह दशा करके भीमसेन ने उनको सौ बाण मारे। साथ ही नकुल और सहदेव भी शल्य के ऊपर तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे।

भीमसेन ने शल्य को बाण-प्रहार से मोहित और विह्वल देखकर अनेक बाणों से उनका सुवर्णालङ्कृत सुदृढ़ कवच भी काट डाला। भीमसेन के बाणों से कवच-हीन हो गये शल्य सहस्र-तारा-शोभित ढाल और खड्ग लेकर रथ से कूद पड़े और वेग से युधिष्ठिर की ओर दौड़े। उन्होंने उसी खड्ग से नकुल के रथ का ईषादण्ड काट डाला। फिर वे युधिष्ठिर

की ओर वेग से झपटे। शल्य को कुपित काल की तरह युधिष्ठिर की ओर आते देखकर धृष्ट- ३०
द्युम्न, शिखण्डी, सात्यकि और द्रौपदी के पाँचों पुत्र वेग से उन्हें रोकने के लिए चले। भीमसेन
ने नव बाणों से शल्य की बहुमूल्य ढाल काट डाली और फिर आपकी सेना के सामने ही गरज-
कर, मूठ की जगह से, उनका खड्ग भी भल्ल बाणों से काट डाला। भीमसेन का यह अद्भुत
कर्म देखकर पाण्डवों के श्रेष्ठ योद्धा लोग प्रसन्नतापूर्वक हँसने, सिंहनाद करने और शङ्ख बजाने
लगे। उस भयानक शब्द को सुनकर अत्यन्त दुर्द्धर्ष और सुरक्षित होने पर भी कौरवसेना
पसीने से तर, भय से विह्वल और अचेत सी हो गई। सब कौरवसेना को शत्रुओं के प्रहार से
घायल, खून से तर और विषादग्रस्त देखकर और भीमसेन सहित पाण्डवों के मुख्य योद्धाओं
के बाणों से आप भी अत्यन्त घायल होकर शल्य क्रोध के मारे विह्वल हो उठे। वे मृग को
दबोचने के लिए झपटनेवाले सिंह की तरह ख़ाली हाथ ही युधिष्ठिर की ओर दौड़े।

धर्मराज के भी घोड़े नष्ट हो चुके थे और सारथी मारा जा चुका था। शल्य को अपनी
ओर आते देखकर, क्रोध से प्रज्वलित होकर, वे भी वेग से शल्य की ओर दौड़े। उस समय
श्रीकृष्ण के वाक्य को स्मरण करके उन्होंने शीघ्र ही शल्य को मारने का दृढ़ निश्चय कर लिया
और रथ पर रक्खी हुई शक्ति उठा ली। शल्य का अद्भुत पराक्रम देखकर, उनको अपना ही
भाग अवशिष्ट समझकर और उन्हें मारने का दृढ़ निश्चय करके युधिष्ठिर ने वही किया जो
श्रीकृष्ण ने कहा था कि तुम अपने तपोबल और क्षत्रियबल के प्रभाव से शल्य को मारना।
धर्मराज ने मणिजटित, सुवर्णदण्डयुक्त और जगमगा रही शक्ति तानकर, क्रोध से लाल आँखें
निकालकर, शल्य की ओर पूर्ण दृष्टि से देखा। महाराज, मुझे तो यह आश्चर्य ही जान पड़ा कि
परम पवित्र पापहीन राजा युधिष्ठिर की कोपदृष्टि पड़ते ही शल्य भस्म नहीं हो गये। धर्मराज ४०
ने रुचिर और उग्र दण्ड से युक्त, मणि-रत्नों से उज्ज्वल, प्रज्वलित और प्रलयकाल में आकाश से
गिर रही भारी उल्का के समान वह शक्ति बड़े वेग से शल्य के ऊपर फेंकी। वह शक्ति
पाश हाथ में लिये हुए कालरात्रि के समान उग्र, यमराज की धात्री के समान भयङ्कर, ब्रह्मदण्ड
के समान अमोघ, प्रलयकाल के अग्नि के समान प्रज्वलित, अथर्वाङ्गिरसी कृत्या के समान अनि-
वार्य और घण्टा-पताका हीरा-वैडूर्य मणि-मुक्ता आदि से अलङ्कृत थी। पाण्डवगण नित्य यत्न-
पूर्वक चन्दन, माला, अग्रआसन, पान, भोजन आदि से उसकी पूजा करते थे। विश्वकर्मा ने
नियम के साथ वह शक्ति बनाई थी। हे राजेन्द्र, वह अमोघ शक्ति ब्रह्मद्रोही जीवों का नाश
करनेवाली और महा भयानक थी। उसके वेग को कोई भी किसी तरह नहीं रोक सकता था।
क्रोध से नृत्य सा कर रहे धर्मराज ने घोर मन्त्र पढ़ा और गरजकर, "यह मरा!" कहकर,
हाथ उठाकर वह शक्ति शल्य को मारने के लिए फेंकी। सब कौरवों ने देखा कि अन्धकासुर
को मारने के लिए रुद्र के छोड़े हुए बाण की तरह चिनगारियाँ उगल रही वह विकराल शक्ति

आकाशमार्ग से होकर शल्य की ओर चली आ रही है। युधिष्ठिर ने अपना पूरा बल लगाकर वह अनिवार्य अमोघ शक्ति फेंकी थी। पराक्रमी शल्य भी ख़ुशी के साथ छाती आगे करके उस शक्ति को वैसे ही ग्रहण करने के लिए उद्यत हुए, जैसे यज्ञकुण्ड का प्रज्वलित पावक अच्छी तरह छोड़ी गई घी की धार को ग्रहण करता है। वह शक्ति वेग से शल्य के कवच को तोड़कर, विशाल वक्षःस्थल को फाड़कर, उनके विशाल यश को जीवन के साथ ही हरती हुई पृथ्वीतल में ५० घुस गई। वह कहीं नहीं रुकी, मानों जल में घुसती हुई चली गई। कार्त्तिकेय की शक्ति से विदीर्ण क्रौञ्च पर्वत की तरह शल्य की छाती फट गई और उनके नाक, कान, मुख, आँख और घावों से रक्त बहने लगा, जिससे उनका शरीर भीग गया। ऐरावत-सदृश विशालकाय शल्य दोनों हाथ फैलाकर वज्रविदीर्ण पर्वतशिखर की तरह पृथ्वी पर गिर पड़े; क्योंकि युधिष्ठिर ने शक्ति-प्रहार से उनके मर्मस्थल को फाड़ दिया था। इन्द्र की ध्वजा के समान ऊँचे शल्य युधिष्ठिर के सामने गिर पड़े। ऐसा जान पड़ा कि राजा शल्य को, अपना पति समझकर, उनकी प्रिया भूमि ने प्रेम-पूर्वक अपने हृदय में धारण कर लिया। वे बहुत समय तक प्यारी कामिनी के समान पृथ्वी का उपभोग करके उस समय उससे अच्छी तरह लिपटकर सो रहे।

महाराज, धर्मात्मा शल्य धर्मयुद्ध में धर्मराज के हाथ से मरकर यज्ञ में प्रज्वलित होकर अन्त में बुझे हुए अग्निदेव के समान शोभायमान हुए। शक्ति लगने से हृदय फट गया था, ध्वजा और शस्त्र बिखरे पड़े थे, प्राण निकल गये थे, तथापि उनकी शोभा तनिक भी कम नहीं हुई थी। हे राजेन्द्र, इसके उपरान्त राजा युधिष्ठिर इन्द्र-धनुष के समान धनुष लेकर भल्ल बाणों से शत्रुओं का संहार करने लगे। ऐसा जान पड़ता था कि गरुड़ साँपों का नाश कर रहे हैं। उस समय युधिष्ठिर के बाणों से पीड़ित कौरवसेना के सैनिक चेष्टाहीन होकर आँखें मूँदकर खड़े-खड़े मरने ६० लगे। वे आपस में ही एक दूसरे को खींचते और गिराते हुए भागने की चेष्टा करने लगे। धर्मराज के अनेक शत्रु शस्त्रहीन प्राणहीन होकर गिर पड़े। उनके शरीरों से रक्त बह रहा था।

हे राजेन्द्र! शल्य के मारे जाने पर उनका छोटा भाई, जो सब गुणों में भाई के समान और नौजवान था, रथ पर बैठकर युधिष्ठिर के सामने आया। उसने भाई का बदला लेने के इरादे से फुर्ती के साथ अनेक बाण युधिष्ठिर को मारे। धर्मराज ने भी उसको छः बाण मारकर दो क्षुरप्र बाणों से ध्वजा और धनुष काट डाला। इसके बाद एक चमकीले सुदृढ़ तीक्ष्ण भल्ल बाण से उसका कुण्डल-शोभित सिर भी काट गिराया। पुण्य क्षय होने पर स्वर्ग से गिर रहे जीव की तरह उसका सिर और धड़ भी ख़ून से तर होकर रथ के नीचे गिर पड़ा।

इस तरह विचित्र कवचधारी मद्रराज के छोटे भाई की मृत्यु देखकर कौरवगण हाहाकार करते हुए भागने लगे। पाण्डवों के भय से विह्वल कौरवगण जीवन से निराश हो गये। बहुत से भागने में गिर पड़े और उनके अङ्ग धूलि-धूसरित हो गये। हे भरतश्रेष्ठ, इस तरह भाग रहे

कौरवों को सात्यकि बाण बरसाकर मारने लगे। महाधनुर्द्धर दुर्द्धर्ष दुरासद सात्यकि को कौरवों का पीछा करते देखकर निर्भय कृतवर्मा उनका सामना करने आये। वे दोनों ही श्रेष्ठ घोड़ों से युक्त रथों पर सवार, महारथी और प्रबल सिंह के समान पराक्रमी यादव वीर परस्पर भिड़कर सूर्य-किरण-तुल्य बाणों की वर्षा से एक दूसरे को ढकने लगे। दोनों ही सूर्य के समान तेजस्वी थे। दोनों वीर पूर्ण बाहुबल से असंख्य बाण छोड़ रहे थे और वे बाण आकाश में शीघ्रगामी पक्षियों के समान दिखाई पड़ रहे थे। कृतवर्मा ने सात्यकि को दस बाण और उनके घोड़ों को तीन बाण मारकर एक बाण से उनका धनुष भी काट डाला। उस कटे हुए धनुष को फेंककर सात्यकि ने चटपट मेघ की तरह गरजनेवाला दूसरा धनुष हाथ में लिया। सब धनुर्द्धर वीरों में श्रेष्ठ सात्यकि ने वह श्रेष्ठ धनुष लेकर कृतवर्मा की छाती में दस बाण मारे। फिर भल्ल बाणों से उनके युग और रथ की ईषा काटकर घोड़ों और पार्श्वरक्षकों को मार डाला। कृतवर्मा को रथहीन देखकर कृपाचार्य फुर्ती से उनके पास आये और उन्हें अपने रथ पर बिठाकर वहाँ से हटा ले गये। ७०

महाराज! कौरवपक्ष के योद्धा लोग शल्य के मरने से पहले ही भयातुर हो चुके थे, अब कृतवर्मा को भी रथहीन और परास्त देख शङ्कित होकर भागने लगे। रणस्थल में बहुत धूल उड़ने के कारण दोनों ओर के लोगों में से किसी को कुछ नहीं सूझ पड़ता था। कौरव-सेना के अधिकांश सैनिक मारे जा चुके थे। जो बचे थे वे भी त्रास के मारे रण छोड़कर भागने लगे। दम भर में वह धूल मारे गये सैनिकों और वाहनों के रक्त-प्रवाह से बैठ गई। ८० दुर्योधन ने देखा कि उनकी सेना उनके निकट ही भाग रही है और पाण्डवगण, धृष्टद्युम्न और सात्यकि आदि दुर्द्धर्ष योद्धा रथों पर बैठे उसका पीछा करते आ रहे हैं। तब वे अकेले ही बाण बरसाकर उन्हें रोकने लगे। आई हुई मृत्यु को जैसे मनुष्य नहीं रोक सकते वैसे ही पाण्डवों के सब रथी योद्धा भी उस समय दुर्योधन को हटाकर आगे बढ़ने में असमर्थ हो गये। इसी समय महावीर कृतवर्मा भी अन्य रथ पर बैठकर शत्रुसेना के सामने आ गये। राजा युधिष्ठिर ने फुर्ती के साथ चार बाणों से कृतवर्मा के चारों घोड़े मार डाले और कृपाचार्य को भी तीक्ष्ण छः भल्ल बाण मारे। अश्वत्थामा ने कृतवर्मा को घोड़ों और रथ से हीन देखकर अपने रथ पर बिठा लिया। वे शीघ्र ही उन्हें युधिष्ठिर के सामने से हटा ले गये। उस समय वृद्ध कृपाचार्य ने युधिष्ठिर को छः और उनके घोड़ों को आठ तीक्ष्ण बाण मारे।

राजन्, आपकी अनीति और आपके पुत्र की कुमन्त्रणा के कारण इस तरह अन्तिम दिन के युद्ध में बची हुई सेना का नाश हुआ। महाधनुर्द्धर शल्य को जब युधिष्ठिर ने मार डाला तब पाण्डव-गण एकत्र होकर बड़ी प्रसन्नता के साथ अलग-अलग शङ्ख बजाने लगे। पहले वृत्रासुर के मारे जाने पर देवताओं ने जैसे इन्द्र की प्रशंसा की थी, वैसे ही पाण्डवपक्ष के लोग युधिष्ठिर की प्रशंसा करने लगे। उनके यहाँ चारों तरफ़ तरह-तरह के बाजे बजने के शब्द से पृथ्वीतल प्रतिध्वनित हो उठा। ८१

अठारहवाँ अध्याय

संकुल युद्ध का वर्णन

सञ्जय ने कहा—महाराज, शल्य के मारे जाने पर उनके साथ के सात सौ महाबली रथी वीर वेग से शत्रुसेना के सामने चले। छत्र और सफ़ेद चामर से शोभित राजा दुर्योधन पर्वताकार हाथी पर बैठकर "मत जाओ, मत जाओ" कहकर उन मद्र देश के वीरों को अकेले इस तरह शत्रुसेना में घुसने से रोकने लगे। किन्तु वे वीर इतने कुपित थे कि दुर्योधन के बार-बार मना करने पर भी युधिष्ठिर को मार डालने की इच्छा से पाण्डवसेना के भीतर घुसते ही चले गये और युद्ध का दृढ़ निश्चय करके पाण्डवों से युद्ध करने लगे। शल्य को मरा हुआ और उनका बदला लेने के लिए उद्यत मद्र देश के महारथियों से युधिष्ठिर को पीड़ित सुनकर, वीर अर्जुन रथ के शब्द से सब दिशाओं को पूर्ण करते और गाण्डीव धनुष को नचाते हुए, वहाँ पर शीघ्रता के साथ आ गये। उस समय अर्जुन, भीमसेन, नकुल, सहदेव, सात्यकि, द्रौपदी के पाँचों पुत्र, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, पाञ्चालगण और सोमकगण ने चारों ओर से आकर युधिष्ठिर को अपने बीच में कर लिया। योद्धाओं से नरश्रेष्ठ पाण्डवों के चारों ओर घिर जाने पर भी वे आपकी सेना को उसी तरह मथने लगे जिस तरह कोई बड़ा मगर सागर के जल को मथता है। वृक्षों को जिस तरह प्रचण्ड आँधी हिलाती है उसी तरह वे योद्धा शत्रु-सेना को विदलित करने लगे। तूफ़ान के आगे की आँधी से जैसे महानदी गङ्गा क्षोभ को प्राप्त होती है वैसे ही पाण्डवों की सेना में उन योद्धाओं के पराक्रम से हलचल मच गई। वे महारथी इस तरह विशाल शत्रुसेना को नष्ट-भ्रष्ट करके चिल्लाने लगे कि राजा युधिष्ठिर कहाँ हैं! यहाँ उनके शूर भाई भी तो नहीं देख पड़ते!

इस तरह कहकर पाण्डवसेना का संहार कर रहे उन वीरों को धृष्टद्युम्न, महारथी शिखण्डी, सात्यकि, द्रौपदी के पाँचों पुत्र और पराक्रमी पाञ्चालगण तीक्ष्ण बाणों से मारने लगे। शल्य के अनुगामी उन वीरों में किसी की ध्वजा कट गई, किसी का रथ टूट गया, कुछ

बाणों से और कुछ चक्र आदि शस्त्रों से छिन्न-भिन्न होकर मरने और गिरने लगे। इतने पर भी पाण्डवों को सामने देखकर, वारम्वार दुर्योधन के मना करने पर ध्यान न देकर, वे वीर वेग से उन्हीं की ओर जाने लगे। दुर्योधन ने समझा-बुझाकर बहुत रोका, किन्तु उन महारथियों में से किसी ने उनकी आज्ञा नहीं मानी। तब गान्धारराज शकुनि राजा दुर्योधन से कहने लगे—हे कुरुराज, यह कभी युक्तिसङ्गत और उचित नहीं है कि आपके मौजूद रहते, हमारी आँखों के आगे, वीर मद्रक महारथी इस तरह शत्रुओं के हाथ से मारे जायँ। हम लोगों ने आपकी राय से यह नियम किया था कि सब लोग मिलकर शत्रुओं से युद्ध करेंगे। फिर इस समय क्यों आप शत्रुओं के हाथ से अपने २० सहायकों का संहार होते देखकर भी चुपचाप खड़े हैं? हे नरनाथ, अपने मामा शकुनि के ये वचन सुनकर दुर्योधन ने कहा—मामाजी, मैंने बार-बार इन्हें आगे बढ़ने से रोका, किन्तु इन्होंने मेरी बात नहीं मानी और एकाएक पाण्डवसेना में घुस पड़े। इसी कारण इनका नाश हो रहा है। तब शकुनि ने कहा—हे दुर्योधन, वीर पुरुष क्रोध के वश हो जाने पर प्रायः स्वामी की आज्ञा का पालन नहीं करते। इसलिए आप इन पर क्रोध न करें, इनके विनाश को उपेक्षा की दृष्टि से न देखें। हम सब लोग अपनी सेना लेकर, एकत्र होकर, इन शल्य के अनुगामी वीरों की रक्षा करने के लिए चलें और यत्न-पूर्वक एक दूसरे की रक्षा करते हुए शत्रुओं का सामना करें।

हे कुरुकुलतिलक, शकुनि की यह सलाह मानकर अपनी सेना लेकर दुर्योधन उन मद्र देश के वीरों की रक्षा करने के लिए चले। दुर्योधन के सिंहनाद से पृथ्वी प्रतिध्वनित हो उठी। उस समय कौरवसेना में "मारो, काट डालो, घायल करो, पकड़ो, प्रहार करो" इत्यादि कोलाहल सुनाई पड़ने लगा। पाण्डवों ने जब शल्य के साथी वीरों को बचाने के लिए कौरवों को एकत्र होकर आक्रमण करते देखा तब वे व्यूह के मध्यभाग में सिमटकर उनसे युद्ध करने लगे। दम भर में शल्य के साथी योद्धा शस्त्र छोड़कर बाहुयुद्ध करने लगे। पाण्डवगण इस तरह कौरवपक्ष के वीरों के पहुँचने के पहले ही मद्रकों का संहार करके आनन्द-कोलाहल करने लगे। उस समय चारों ओर वीरों के कबन्ध उठते दिखाई पड़ने लगे। सूर्यमण्डल से एक ३० बड़ी उल्का निकलकर पृथ्वी की ओर गिरने लगी। टूटे हुए रथ, युग, अक्ष, मारे गये महारथियों के शरीर और गिरे हुए घोड़ों से रणभूमि व्याप्त हो गई। सारथी के न रहने पर बहुत से योद्धाओं के रथों को लेकर उनके घोड़े वेग से इधर-उधर भागे जा रहे थे। कुछ रथों के पहिये टूट गये थे और कुछ रथों का आधा हिस्सा अलग हो गया था और घोड़े उन्हें उसी हालत में लेकर भागे जा रहे थे। रथी लोग रथों से गिर रहे थे और पुण्य क्षय होने पर आकाश से गिर रहे सिद्ध पुरुष से जान पड़ते थे।

मद्रराज के अनुगामी वीरों को मार चुकने पर पाण्डवों ने हम लोगों को आक्रमण करने के लिए आते देखा। विजयाभिलाषी, दृढ़ प्रहार करनेवाले पाण्डवगण शङ्ख बजाते और धनुष-

बाण की ध्वनि करते हुए हम लोगों के सामने आकर सिंहों की तरह गरजने लगे। दुर्योधन के सैनिकगण शल्य को और उनके साथी वीरों को मरा हुआ देखकर फिर संग्राम से भाग खड़े हुए। वे सब सैनिक विजयी पाण्डवों के बाणों की वर्षा से मारे जाकर, घबरा-
४० कर, प्राण बचाने के लिए भागने लगे।

उन्नीसवाँ अध्याय

कौरवसेना का भागना, दुर्योधन का उसे उत्साहित करके लौटाना और फिर युद्ध होना

सञ्जय ने कहा—हे नरेन्द्र, युद्ध में दुर्द्धर्ष महारथी शल्य के मारे जाने पर कौरवपक्ष के सब वीरगण और दुर्योधन आदि आपके पुत्र संग्राम से विमुखप्राय हो गये। अथाह समुद्र के बीच जहाज़ टूट जाने पर यात्री लोग जैसे, उस अपार स्थान में पार जाने के लिए, छटपटाते हैं वैसी ही दशा शूर शल्य के मारे जाने पर कौरवों की हुई। वे बाणों से अत्यन्त घायल, सिंह-पीड़ित मृगों की तरह डरे हुए और अनाथ हो रहे थे तथा अपनी रक्षा करनेवाले को ढूँढ़ रहे थे। युधिष्ठिर से परास्त होकर हम लोग, जिनके सींग टूट गये हों उन साँड़ों की तरह, अथवा जिनके दाँत गिर गये हों उन हाथियों की तरह, दोपहर के समय रणभूमि से भागने लगे। राजन्, उस समय किसी योद्धा में सेना को सुशृङ्खला के साथ स्थापित करने का अथवा युद्ध में पराक्रम दिखाने का साहस नहीं रह गया था। भीष्म, द्रोण और कर्ण के मारे जाने पर कौरवसेना को जो दुःख, भय और शोक हुआ था वही फिर लौट आया। महारथी शल्य के मारे जाने पर किसी को जय की आशा न रही। सेनापति-हीन, विध्वस्त और तीक्ष्ण बाणों से छिन्न-भिन्न योद्धा लोग भय से विह्वल होकर भागने लगे। कुछ योद्धा घोड़ों पर, कुछ हाथियों पर और कुछ रथों पर बैठकर वेग से भाग रहे थे। पैदल योद्धा वेग से पैदल ही भाग खड़े हुए थे। पर्वताकार दो हज़ार ख़ूनी हाथी, महावतों के अङ्कुश और अँगूठे का इशारा पाकर, वेग से भागने लगे। हमने
१० देखा कि बाणों से पीड़ित आपकी सेना के लोग हाँफते हुए बेतहाशा भाग रहे थे।

पाण्डवों और पाञ्चालों ने जब शत्रुओं को उत्साहरहित, पराजित और निहत होकर इस तरह भागते देखा तब वे पूर्ण विजय की इच्छा से उनका पीछा करने लगे। पाण्डवसेना के शूर-वीर लोग सिंहनाद, शङ्खनाद और धनुष-बाण के दारुण शब्द से अपना आनन्द और उत्साह प्रकट करने लगे। महाराज, कौरवसेना को इस तरह डरकर भागते देखकर पाञ्चालगण और पाण्डवपक्ष के अन्य लोग आपस में कहने लगे कि आज राजा युधिष्ठिर का कोई शत्रु न रह

जायगा और दुर्योधन राजलक्ष्मी से हीन हो जायँगे। आज राजा धृतराष्ट्र अपने पुत्र के मारे जाने का समाचार सुनकर अत्यन्त विह्वल और मूर्च्छित होकर गिर पड़ेंगे। आज उन्हें मालूम होगा कि अर्जुन सब धनुर्द्धर वीरों में श्रेष्ठ और अलौकिक शक्तिशाली हैं। पाण्डवों के साथ बुरा व्यवहार करनेवाले धृतराष्ट्र आज अवश्य अपनी दुर्बुद्धि की निन्दा और पछतावा करेंगे। आज वे अपने भाई विदुर के हितोपदेश को स्मरण करेंगे और सोचेंगे कि विदुर का कहना बिलकुल ठीक था। अब धर्मराज के अनुचर की तरह रहकर धृतराष्ट्र समझ सकेंगे कि क्लेश कैसा होता है और उनके कारण पाण्डवों ने कैसे क्लेश और दुःख सहे हैं। आज धृतराष्ट्र अर्जुन के गाण्डीव धनुष का घोर शब्द सुनेंगे और उनको कृष्णचन्द्र की महिमा मालूम हो जायगी। इन्द्र ने जैसे शम्बरासुर को मारा था वैसे ही जब भीमसेन युद्ध में दुर्योधन का वध करेंगे तब धृतराष्ट्र को उनके घोर बाहुबल और अस्त्र का परिचय प्राप्त होगा। दुःशासन-वध के समय भीमसेन ने जो घोर कर्म किया है उसे उनके सिवा और कौन कर सकता था? देवगण के लिए भी दुर्जय शल्य की मृत्यु का हाल सुनकर महाराज धृतराष्ट्र को मालूम होगा कि युधिष्ठिर इतने बड़े पराक्रमी हैं। आज माद्री के पुत्र वीर पाण्डव अवश्य ही शकुनि और सब गान्धार-सेना का संहार करके अपनी प्रतिज्ञा पूरी करेंगे और वह हाल सुनने पर धृतराष्ट्र सोचेंगे कि नकुल और सहदेव अत्यन्त दुःसह हैं। असल बात यह है कि जिधर अर्जुन, भीमसेन, सात्यकि, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, युधिष्ठिर और द्रौपदी के पुत्रगण आदि वीर लड़नेवाले हैं उस पक्ष की विजय क्यों न हो? त्रिलोकीनाथ कृष्णचन्द्र जिनके नाथ और रक्षक हैं और जो सदा धर्म का आश्रय ग्रहण किये हुए हैं, उन पाण्डवों को ही विजय प्राप्त होनी चाहिए। यशस्वी सत्यसन्ध श्रीकृष्णचन्द्र जिनके स्वामी और सहायक हैं उन धर्मराज युधिष्ठिर के सिवा और कौन पुरुष भीष्म पितामह, द्रोण, कर्ण, शल्य ऐसे दुर्जय महारथियों और अन्य सैकड़ों-हज़ारों वीर राजाओं को जीत सकता था? २०

राजन्, प्रसन्नचित्त पाण्डवपक्ष के योद्धा आपकी सेना को छिन्न-भिन्न और भागते देखकर उसका पीछा करते हुए इसी तरह आपस में बातें कर रहे थे। वीर्यशाली अर्जुन रथसेना का और नकुल, सहदेव तथा सात्यकि शकुनि का पीछा करने लगे। उस समय भीमसेन के डर से अपनी सेना को भागते देखकर विस्मित हो दुर्योधन ने सारथी से कहा—हे सूत, मैं यहाँ हाथ में धनुष लिये खड़ा हूँ और अर्जुन मुझे लाँघकर निकल जाने का यत्न कर रहा है। इसलिए तुम शीघ्र घोड़ों को हाँककर मेरा रथ सेना के बीच में ले चलो। वहाँ से मैं युद्ध करूँगा तो अर्जुन कभी मुझे लाँघकर आगे नहीं जा सकेगा, जैसे सागर का वेग तटभूमि को लाँघकर आगे नहीं बढ़ सकता। वह देखो, पाण्डवगण मेरी भाग रही सेना का पीछा कर रहे हैं। सैनिकों के दौड़ने से उड़ी हुई धूल चारों ओर छा गई है। पाण्डवों का घोर सिंहनाद ३०

बारम्बार सुनाई पड़ रहा है। इसलिए तुम सैन्य के मध्य भाग में धीरे-धीरे मेरा रथ ले चलो। वहाँ चलकर मैं सेना की रक्षा करूँगा। मैं जब खड़ा होकर पाण्डवों को आगे बढ़ने से रोकूँगा तब मेरी सेना भी अवश्य लौटकर प्राणपण से युद्ध करेगी।

महाराज, राजा दुर्योधन के ये शूरों के ऐसे श्रेष्ठ वचन सुनकर सारथी ने सुवर्णभूषित घोड़ों को धीरे-धीरे आगे बढ़ाया। उस समय रथों, हाथियों और घोड़ों की सेना से अलग जो इक्कीस हज़ार पैदल योद्धा थे वे, प्राणों का मोह छोड़कर, युद्ध करने के लिए डट गये। अनेक देशों के योद्धा अक्षय कीर्ति कमाने की इच्छा से युद्ध करने को उतारू हो गये। अब इधर और ४० उधर के वीर हर्ष के साथ परस्पर भिड़कर महाभयानक संग्राम करने लगे। भीमसेन और धृष्टद्युम्न चतुरङ्गिणी सेना साथ लेकर उन अनेक देशवासी कौरवदल के सैनिकों को रोकने और मारने लगे। वीरगति पाने की इच्छा रखनेवाले पैदल योद्धा हर्षपूर्वक गरजते, उछलते और ताल ठोंकते हुए भीमसेन की ओर दौड़ पड़े। आपके पुत्रगण और उनके सैनिकगण गरज-गरजकर चारों ओर से घेरकर भीमसेन के ऊपर प्रहार करने लगे। पैदलों के घेरने और बारम्बार प्रहार करने पर भी पराक्रमी भीमसेन, मैनाक पर्वत की तरह, अपनी जगह से हिले तक नहीं। कौरवदल के सैनिक क्रुद्ध होकर भीमसेन को पकड़ने की चेष्टा करने लगे तब भीमसेन ने उन्हें मार भगाया। वे रथ से कूद पड़े और दण्डपाणि यमराज की तरह, सुवर्ण-पट्ट-भूषित भारी गदा लेकर, आपके योद्धाओं का संहार करने लगे। रथों, हाथियों और घोड़ों की सेना से हीन उन इक्कीस हज़ार पैदलों को बली भीमसेन ने उस गदा से मार डाला। धृष्टद्युम्न सहित भीमसेन ५० शीघ्र ही उस पैदल सेना को मारकर उसके घेरे से निकल आये। रक्त से भीगे हुए पैदल योद्धा मर-मरकर पृथ्वी पर पड़े हुए थे। जान पड़ता था, जैसे आँधी ने फूले हुए कर्णिकार के वृक्षों को उखाड़कर पृथ्वी पर बिछा दिया है। मारे गये पैदल अनेक जातियों के थे, अनेक देशों से आये हुए थे, उनके शस्त्र और कानों के कुण्डल तरह-तरह के थे। ध्वजा-पताकाओं से ढकी और कट-पिटकर पृथ्वी पर पड़ी हुई वह पैदलों की विशाल सेना देखनेवालों के हृदय में अपने रौद्र रूप से घोर भय का सञ्चार कर रही थी। तब युधिष्ठिर आदि महारथीगण, कौरवपक्ष के वीरों को रण से विमुख देखकर, अपनी सेना साथ लेकर दुर्योधन की ओर दौड़े। उस समय हम लोगों ने दुर्योधन का अद्भुत पराक्रम देखा। पाण्डवगण मिलकर भी अकेले दुर्योधन के आगे से नहीं बढ़ सके।

उस समय दुर्योधन ने देखा कि उनकी सेना पाण्डवों की बाण-वर्षा से छिन्न-भिन्न और पीड़ित होकर कुछ पीछे हट गई है और भागना चाहती है। तब वे सब सैनिकों को सम्बोधन करके कहने लगे—हे वीरो, इस पृथ्वी पर बस्ती में या पर्वतों पर कोई ऐसी जगह मुझे नहीं देख पड़ती जहाँ जाने से पाण्डव तुम्हें न मारेंगे। फिर भागने से क्या लाभ? देखो, पाण्डवों

महाराज शल्य उसी महागज पर समारूढ़ हो कर उदयाचल पर विराजमान
सूर्य के समान शोभायमान होने लगे ।

की सेना बहुत ही कम रह गई है और कृष्ण सहित अर्जुन भी बेहद घायल हो चुके हैं। ऐसी दशा में अगर हम सब मिलकर डटे रहेंगे और लड़ेंगे तो हमारी ही जीत होगी। हे क्षत्रियो, तुम अलग-अलग होकर भागोगे तो पाण्डव खदेड़कर अवश्य मारेंगे; क्योंकि हम लोगों ने अप्रिय और अनिष्ट करके उन्हें चिढ़ा रक्खा है। इसलिए समर में सामने लड़ते-लड़ते मारा जाना ही हमारे लिए श्रेयस्कर है। यहाँ आये हुए वीर क्षत्रियो, मेरी बात सुनो और उस पर विचार करो। जब यह तय है कि एक दिन शूर और कायर दोनों की ही मृत्यु होगी तब ऐसा कौन मूढ़ होगा, जो क्षत्रिय और वीर होकर युद्ध में पीठ दिखावेगा? क्रुद्ध भीमसेन के सामने खड़े होकर संग्राम में मरना हमारे लिए सब तरह श्रेयस्कर और सुख की बात है। वृद्ध होकर, रोग भोगकर, मरने में ही बड़ा दुःख है। घर में भी कभी न कभी मनुष्य को मरना ही पड़ता है, इसलिए क्षत्रियधर्म के अनुसार युद्ध करके मरना ही उत्तम है। क्षत्रियों की मृत्यु सनातन से ही समर में होती आई है। युद्ध में शत्रु को मारा तो यहाँ सुख पाया और अगर आप मर गये तो स्वर्ग में अनन्त सुख के भागी हुए। हे कौरवो, युद्ध-धर्म से अच्छी और सहज स्वर्ग की दूसरी राह नहीं है। लोग जन्म भर कष्ट उठाकर यम-नियम-संयम करके जिन लोकों को पाते हैं वे दुर्लभ श्रेष्ठ लोक युद्ध में मारे जानेवाले पुरुष को तत्काल मिल जाते हैं। ६०

महाराज! सब राजा लोग दुर्योधन के ये वचन सुनकर, उनकी प्रशंसा करते हुए, फिर मारने के लिए उद्यत पाण्डवों की ओर लौटकर वेग से बढ़े। विजयाभिलाषा रखनेवाले कुपित पाण्डव भी झपट-झपटकर कौरव-सेना के वीरों पर आक्रमण करने लगे। अर्जुन त्रिलोक-प्रसिद्ध गाण्डीव धनुष को बजाते हुए रथ बढ़ाकर उनकी ओर चले। नकुल, सहदेव और महाबली सात्यकि भी प्रसन्नतापूर्वक—आपकी सेना को मारते हुए—शकुनि की ओर वेग से दौड़े। ६६

बीसवाँ अध्याय

शाल्व-वध का वर्णन

सञ्जय ने कहा—महाराज! दोनों ओर के योद्धा जब भिड़कर युद्ध करने लगे तब म्लेच्छराज शाल्व अत्यन्त कुपित होकर एक पर्वताकार, ऐरावत-सदृश, शत्रुसेना-मर्दन, सुसज्जित गजराज के ऊपर बैठकर बड़े वेग से पाण्डवसेना की ओर चला। उसका वह हाथी भद्र जाति का था। दुर्योधन उसका बड़ा आदर करते थे। उसको गज-विज्ञानशास्त्र के जानने-वाले महावतों ने अच्छी तरह रक्षा की शिक्षा दी थी। ऐरावत पर बैठे हुए इन्द्र जैसे दैत्यसेना को मारते और उनके मन में भय का सञ्चार करते हैं वैसे ही उस हाथी पर बैठकर शत्रुसेना का संहार कर रहा वीरवर शाल्व सबेरे उदयाचल पर विराजमान सूर्य के समान शोभायमान

हुआ। वह उस हाथी को बढ़ाकर वज्र-तुल्य घोर बाणों से शत्रुसेना को मारने और विदीर्ण करने लगा। पूर्व समय में दैत्य जैसे प्रहार कर रहे इन्द्र का कोई छिद्र (ग़फ़लत) नहीं देख पाते थे वैसे ही लगातार बाण बरसा रहे शाल्व पर प्रहार करने का मौक़ा अपना पराया कोई नहीं देख पाता था। पाण्डव, सोमक, सृञ्जय आदि वीरों को वह ऐरावत-सदृश एक ही हाथी हज़ारों हाथियों के समान फिरता हुआ दिखाई पड़ रहा था। हाथी के भय से भगदड़ पड़ गई। सारी पाण्डवसेना एक दूसरे को गिराती-रौंदती हुई प्राण लेकर भागने लगी। कोई भी उस हाथी के वेग को सँभालने का, उसके आगे ठहरने का, साहस नहीं कर सकता था। इस तरह वेगशाली हाथी के द्वारा जब शाल्व ने शत्रुसेना को मारना शुरू किया तब वह दृश्य देखकर, प्रसन्न १० होकर, कौरवपक्ष के मुख्य योद्धा लोग शङ्ख बजाने और शाल्व की प्रशंसा करने लगे।

कौरवों के उस हर्ष-सूचक शङ्खनाद को सुनकर पाण्डवों और पाञ्चालों के सेनापति धृष्टद्युम्न क्रोध से अधीर हो उठे। शत्रुओं का हर्ष असह्य होने के कारण धृष्टद्युम्न वेग से उस हाथी के सामने जाने लगे। उस समय विजयाभिलाषी पाञ्चाल-राजकुमार इन्द्र के ऐरावत हाथी पर झपट रहे जम्भासुर के समान शोभायमान हुए। महाराज, शाल्व ने धृष्टद्युम्न को सहसा आते देखकर उन्हें मार डालने के लिए उनकी ओर उस उत्तेजित ख़ूनी हाथी को वेग से बढ़ाया। धृष्टद्युम्न ने गजराज को वेग से अपनी ओर आते देखकर फुर्ती के साथ आग के समान, साफ़, तीक्ष्ण और उग्र तीन बाण तान-तानकर मारे। फिर और पाँच नाराच मस्तक में मारकर उन्होंने हाथी को विह्वल कर दिया। उन बाणों की वेदना से विह्वल होकर वह शाल्व का ख़ूनी मस्त हाथी भाग खड़ा हुआ। शाल्व ने बड़ा यत्न करके उसको रोका और अङ्कुश से उत्तेजित करके फिर धृष्टद्युम्न पर झपटाया। बलशाली धृष्टद्युम्न ने जब देखा कि क्रोधान्ध हाथी एकाएक सिर पर ही पहुँच गया तब वे डरकर गदा लेकर चटपट रथ से कूद गये। गजराज ने घोड़े-सारथी-सहित धृष्टद्युम्न के सुवर्णालंकृत रथ को सूँड़ से उठाकर धरती पर पटक दिया और पैरों से चूर्ण कर डाला। धृष्टद्युम्न को गज के ग्रास में पड़े देखकर—उन्हें बचाने के लिए—भीमसेन, शिखण्डी और सात्यकि वेग से दौड़े। इन वीरों ने चारों ओर से तीक्ष्ण बाण मारकर हाथी के वेग को २० रोक दिया। इन महारथियों की बाण-वर्षा से हाथी पीड़ित हो उठा। तब शाल्व चारों ओर शत्रुओं के ऊपर सूर्य-किरण-सदृश बाण बरसाने लगा। रथी योद्धाओं के झुण्ड उन बाणों से अत्यन्त पीड़ित होकर चारों ओर भागने लगे। उस समय शाल्व का वह घोर अद्भुत रण-कौशल देखकर सब पाञ्चाल और सृञ्जयगण हाहाकार करने लगे। पाण्डवपक्ष के श्रेष्ठ वीरों ने चारों ओर से शाल्व के हाथी को घेर लिया और प्रहार करने लगे। हे राजेन्द्र, इसी अवसर में शूर शत्रुनाशन धृष्टद्युम्न पर्वत-शिखर-तुल्य गदा लेकर गजराज पर झपटे। उन्होंने मेघ की तरह मद बहा रहे पर्वताकार हाथी के मस्तक में पूरे वेग से बारम्बार गदा मारना शुरू कर

दिया। इससे हाथी का मस्तक फट गया, उसके मुँह से खून बहने लगा, वह भूकम्प से टूटे पहाड़ की तरह चक्कर खाकर गिर पड़ा और मर गया। इस तरह हाथी को गिरते देखकर कौरव-सेना हाहाकार करने लगी। इसी बीच में वीर सात्यकि ने एक तीक्ष्ण भल्ल बाण से चटपट शाल्व का सिर काट डाला। महावीर शाल्व भी वज्र से फटे शैल-शिखर की तरह उस हाथी के साथ ही धरातल पर गिर पड़ा। २७

इक्कीसवाँ अध्याय

कृतवर्मा का सात्यकि से परास्त होना

सञ्जय ने कहा—महाराज! इस प्रकार शूर शाल्व के मारे जाने पर कौरवपक्ष के सैनिक, आँधी से उखड़े हुए वृक्ष की तरह, भागने लगे। यह देखकर महाबली कृतवर्मा अपना बल-वीर्य प्रकट करते हुए शत्रुसेना पर आक्रमण करने लगे। शत्रुओं के प्रहारों को सहकर पहाड़ की तरह अटल खड़े हुए कृतवर्मा को देखकर कौरवसेना फिर लौट पड़ी और दोनों पक्ष के वीर, मृत्यु का निश्चय करके, घमासान युद्ध करने लगे। उस समय अकेले कृतवर्मा ने उस दुर्द्धर्ष पाण्डव-सेना को रोककर बहुत ही अद्भुत रण-कौशल और बाहुबल दिखाया। कृतवर्मा के दुष्कर कर्म से उत्साहित और हर्षयुक्त होकर कौरवगण ऊँचे स्वर से सिंहनाद करने लगे। उस आकाश-व्यापी सिंहनाद को सुनकर पाञ्चालगण डर गये। तब उनकी रक्षा करने के लिए बड़े वेग से बढ़कर सात्यकि ने सात तीक्ष्ण बाणों से राजा क्षेमधूर्ति को मार गिराया। कृतवर्मा महाबाहु सात्यकि को आते और तीक्ष्ण बाण बरसाते देखकर बड़े वेग से उनके सामने आये।

यादवकुल के श्रेष्ठ वीर वे दोनों महारथी परस्पर झपटने और प्रहार करने लगे। पाण्डव, १० पाञ्चाल और अन्य सब योद्धा लोग उन दोनों वीरों का अद्भुत संग्राम देखने लगे। महारथी सात्यकि और कृतवर्मा दोनों—मस्त हाथियों की तरह—वत्सदन्त नाराच आदि बाणों से एक दूसरे को पीड़ित करते हुए, तरह-तरह से अपने-अपने रथ को बढ़ाते-हटाते-घुमाते हुए, अपना कौशल दिखा रहे थे। दोनों ही दोनों को बारम्बार बाण-वर्षा से छा रहे थे। उनके धनुषों के वेग से निकले हुए बाण आकाश में पक्षियों के झुण्डों की तरह सनसनाते हुए जाते दिखाई पड़ रहे थे। इसी बीच में रण-निपुण कृतवर्मा ने पास आकर सात्यकि के घोड़ों को चार तीक्ष्ण बाण मारे। महाबाहु सात्यकि ने भी, अङ्कुश के प्रहार से हाथी की तरह, क्रोध के वश होकर आठ तीक्ष्ण बाणों से कृतवर्मा को पीड़ित किया। कृतवर्मा ने कान तक खींचकर छोड़े गये तीन बाणों से सात्यकि को पीड़ित करके एक बाण से उनका धनुष काट डाला। महाधनुर्द्धर युयुधान (सात्यकि) धनुष के कटने पर क्रोध से प्रज्वलित हो उठे। उन्होंने कटा हुआ धनुष फेंककर

अन्य धनुष लेकर दस बाणों से कृतवर्मा के रथ की ध्वजा काट डाली और घोड़ों सहित सारथी २१ को भी यमपुर भेज दिया। अपने सुवर्ण-भूषित रथ को सारथी और घोड़ों से रहित देखकर क्रोध से प्रज्वलित कृतवर्मा ने एक भयानक त्रिशूल हाथ में लिया और सात्यकि को मार डालने की इच्छा से बड़े वेग से उन पर चलाया। सात्यकि ने फुर्ती के साथ तीक्ष्ण बाणों से बीच में ही उस शूल के कई टुकड़े कर डाले और एक विकट भल्ल बाण कृतवर्मा की छाती में मारा, जिससे वे विह्वल हो गये। इस तरह अस्त्र-विद्या-निपुण फुर्तीले सात्यकि ने जब द्वन्द्वयुद्ध में वीर कृतवर्मा को घोड़ों, सारथी और रथ से रहित कर दिया तब वे पृथ्वी पर खड़े हो गये। उनकी यह दशा देखकर कौरवसेना भय से विह्वल हो उठी। दुर्योधन भी चिन्तित हो गये। तब कृपाचार्य, सात्यकि को मारने के लिए, बड़े वेग से दौड़े और सब योद्धाओं के सामने जल्दी से कृतवर्मा को अपने रथ पर बिठाकर सात्यकि के सामने से हटा ले गये। कौरवपक्ष के वीरगण कृतवर्मा को रथहीन होकर रण से विमुख और सात्यकि को युद्ध के लिए सामने उपस्थित देख- ३० कर भयाकुल हो उठे; सारी सेना भागने लगी। किन्तु उड़ी हुई धूल ने ऐसा अँधेरा कर दिया कि शत्रुसेना को कौरवसेना के भागने का हाल नहीं मालूम हो सका।

राजन्, सिवा दुर्योधन के और सब लोग भाग खड़े हुए। सेना को अपने सामने ही भागते देखकर वे अकेले ही शत्रुपक्ष के महारथियों को रोकने का प्रयत्न करने लगे। निर्भय राजा दुर्योधन ने बढ़कर तीक्ष्ण बाणों की वर्षा से धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, द्रौपदी के पुत्र, पाण्डवगण, पाञ्चालगण, सोमकगण, सृञ्जयगण और केकय देश के सब योद्धाओं को विमुख कर दिया। उस समय उन्हें हटाकर कोई भी आगे नहीं बढ़ पाता था। महाराज! जैसे यज्ञ-वेदी में मन्त्र-पूत प्रज्वलित पावक प्रकाशित होता है वैसे ही उस समय दुर्योधन का भी तेज उग्र दिखाई पड़ने लगा। मनुष्य जैसे मृत्यु को नहीं टाल सकते वैसे ही शत्रुसेना के लोग न तो उन्हें हटा सके और न उनके आगे ठहर ही सके। इसी बीच में महावीर कृतवर्मा भी दूसरे रथ पर ३७ बैठकर रणभूमि में आ गये।

बाईसवाँ अध्याय

द्वन्द्वयुद्धों का वर्णन

सञ्जय कहते हैं—महाराज, रथ पर सवार आपके प्रतापी पुत्र दुर्योधन उस समय रुद्र के समान उग्र रूपधारी देख पड़ते थे। उनके हज़ारों बाणों से पृथ्वीतल व्याप्त हो गया। वे शत्रुसेना पर, पर्वत पर जलधारा गिरा रहे मेघ की तरह, बाणों की वर्षा कर रहे थे। उस समय पाण्डवों की सेना में ऐसा कोई मनुष्य, हाथी, घोड़ा या रथ नहीं देख पड़ता था, जो

दुर्योधन के बाणों से घायल न हुआ हो। राजन्! जिस योद्धा पर मेरी नज़र पड़ी उसी का शरीर दुर्योधन के विकट बाणों से छिदा हुआ देख पड़ा। जैसे उड़ी हुई धूल ने पाण्डवसेना को ढक रक्खा था वैसे ही दुर्योधन के बाणों ने भी। फुर्तीले धनुर्द्धर दुर्योधन ने पृथ्वी को बाणमय कर दिया। उस समय का पराक्रम देखकर मुझे मालूम पड़ा कि दोनों पक्षों के हज़ारों योद्धाओं में दुर्योधन के समान धनुर्द्धर दूसरा नहीं है। दुर्योधन ने ऐसा अद्भुत पराक्रम प्रकट किया कि देखनेवाले दङ्ग रह गये। पाण्डवपक्ष के अनेक योद्धा मिलकर आक्रमण करने पर भी अकेले दुर्योधन को परास्त नहीं कर सके।

इसी बीच में दुर्योधन ने युधिष्ठिर को सौ, भीमसेन को सत्तर, नकुल को चौंसठ, सहदेव और धृष्टद्युम्न को पाँच-पाँच, द्रौपदी के पाँचों पुत्रों को सात और सात्यकि को तीन बाण मारकर १० एक भल्ल बाण से सहदेव का धनुप काट डाला। प्रतापी सहदेव ने कटा हुआ धनुप फेंककर दूसरा धनुप लेकर दुर्योधन को दस बाण मारे। वीर नकुल भी नव घोर बाण मारकर सिंह की तरह गरजने लगे। सात्यकि ने एक तीक्ष्ण बाण मारा। इसी तरह द्रौपदी के पुत्रों ने तिहत्तर, धर्मराज ने पाँच और भीमसेन ने अस्सी बाण मारकर राजा दुर्योधन को पीड़ित किया। चारों ओर से इन सब महारथियों के बाण लगने पर भी वीर कुरुराज विचलित नहीं हुए। सब सेना और योद्धाओं ने देखा कि महाराज दुर्योधन की बाण चलाने की फुर्ती, लक्ष्यवेध की सफ़ाई और बाहुबल की विशेषता शत्रुपक्ष के सब महारथियों से अधिक है। कौरवपक्ष के जो योद्धा भागकर थोड़ी दूर गये थे वे मुड़कर, राजा को न देखकर, लौट पड़े। उन कवचधारी वीरों के लौटने पर वैसा ही कोलाहल सुनाई पड़ने लगा जैसे वर्षाकाल में क्षोभ को प्राप्त समुद्र की लहरों का घोर निर्घोप सुन पड़ता है। अपराजित राजा दुर्योधन के पास पहुँचकर कौरवसेना के सब योद्धा भी पाण्डवों से लड़ने को चले।

अश्वत्थामा ने कुपित होकर भीमसेन को रोका। उन लोगों ने चारों ओर इतने बाण २० बरसाये कि सब दिशाएँ और उपदिशाएँ बाणों से व्याप्त हो गईं। कौन दिशा कहाँ है या कौन वीर किधर है, यह कुछ भी नहीं सूझता था। महाराज, वे दोनों ही क्रूर कर्म करनेवाले और रण में दुःसह पराक्रम दिखानेवाले वीर घोर युद्ध करने लगे। एक जो कर्म करता था, वही दूसरा भी कर दिखाता था। बार-बार धनुप की डोरी की रगड़ से उनके हाथों की खाल कड़ी पड़ गई थी। उनका युद्ध देखनेवालों के मन में भय का सञ्चार हो रहा था। इसी तरह वीर शकुनि युधिष्ठिर को पीड़ित करने लगे। उन्होंने युधिष्ठिर के चारों घोड़ों को मारकर घोर सिंहनाद किया जिससे सब सैनिक क्रुद्ध हो उठे। इसी अवसर में प्रतापी सहदेव ने आकर धर्मराज को अपने रथ पर बिठा लिया और उन्हें वे रण से हटा ले गये। युधिष्ठिर दूसरे रथ पर बैठकर फिर आ गये। उन्होंने क्रम से नव और पाँच बाण शकुनि को मारकर घोर

सिंहनाद किया। उनके घोररूप विचित्र युद्ध को देखकर सिद्ध, चारणगण और अन्य सब दर्शक अत्यन्त प्रसन्न हुए और उनकी प्रशंसा करने लगे। उधर उलूक ने महाधनुर्द्धर नकुल के ऊपर चारों ओर से बाण बरसाना शुरू किया। अच्छे कुल में उत्पन्न दोनों महारथी परस्पर
३० क्रोधपूर्ण दृष्टि डालते हुए घोर युद्ध करने लगे। एक जो काम करता था, वही काम दूसरा भी करना चाहता था। शत्रुतापन सात्यकि और कृतवर्मा, इन्द्र और बलि की तरह, युद्ध करने लगे। दुर्योधन और धृष्टद्युम्न का युद्ध होने लगा। दुर्योधन ने धृष्टद्युम्न का धनुष काटकर उन्हें तीक्ष्ण बाणों से पीड़ित किया। धृष्टद्युम्न सब धनुर्द्धर योद्धाओं के सामने दूसरा दृढ़ धनुष लेकर राजा दुर्योधन के ऊपर प्रहार करने लगे। वन में दो मस्त हाथी जैसे लड़ते हैं वैसे ही वे दोनों वीर क्रुद्ध होकर घोर युद्ध करने लगे। कुपित कृपाचार्य ने महाबलशाली द्रौपदी के पाँचों पुत्रों को तीक्ष्ण बाणों से घायल करना शुरू किया। जैसे मनुष्य अपनी पाँचों इन्द्रियों को जीतने के लिए प्रयत्न करे वैसे ही उन राजकुमारों से कृपाचार्य युद्ध करने लगे। वे राजकुमार भी घोर मर्यादाहीन युद्ध करके उसी तरह कृपाचार्य को पीड़ित करने लगे, जिस तरह पाँचों इन्द्रियाँ मूर्ख मनुष्य को बार-बार ज़ोर पकड़कर दबाती हैं। कुपित कृपाचार्य के साथ उन राजकुमारों का युद्ध अत्यन्त विचित्र और दर्शनीय था।

राजन्, उस समय भयानक युद्ध होने लगा। पैदल पैदलों से, हाथी हाथियों से, घोड़े
४० घोड़ों से, रथ रथों से और उनके सवार अपने प्रतिद्वन्द्वी योद्धाओं से भिड़ गये। उस घोर विचित्र संग्राम में जगह-जगह योद्धा लोग भिड़कर परस्पर प्रहार करते हुए गरज रहे थे। उनके दौड़ रहे घोड़ों की टापों से, रथों के पहियों से, हाथियों की साँसों से और वायु के वेग से इतनी धूल उड़ी कि वह आकाश में सन्ध्याकाल के बादलों की तरह छा गई। उस धूल से पृथ्वी पर अँधेरा सा छा गया और सूर्य की प्रभा फीकी पड़ गई। सब शूर-वीर भी उस धूल में छिप गये। किन्तु दम भर में ही परस्पर प्रहार कर रहे वीरों के शरीरों से इतना रक्त बहा कि उससे वह घनी धूल बैठ गई। महाराज, फिर हमने देखा कि मध्याह्न के समय जगह-जगह पर वीर लोग यथाशक्ति दारुण द्वन्द्वयुद्ध कर रहे हैं। वीरों के सुवर्ण-भूषित कवच, सूर्य की किरणें पड़ने से, और भी चमकने लगे। चारों ओर गिर रहे बाणों से वैसा ही शब्द प्रकट हो रहा था, जैसी
४९ कि पर्वत पर बाँस के वन में आग लगने से चटचटाहट सुनाई पड़ती है।

तेईसवाँ अध्याय

संकुल युद्ध का वर्णन

सञ्जय ने कहा—महाराज! इस तरह युद्ध ने जब घोर रूप धारण किया तब पाण्डवों के पराक्रम से पीड़ित होकर आपकी सेना फिर भागने लगी। दुर्योधन ने बड़े यत्न से उन सबको

लौटाया और पाण्डवों की सेना से युद्ध शुरू कर दिया। आपके पुत्र की जय चाहनेवाले योद्धा लोग जब लौट पड़े तब फिर देवासुर-संग्राम के समान दारुण युद्ध होने लगा। उस समय दोनों सेनाओं में कोई रण से हटता नहीं देख पड़ता था। सब लोग परस्पर अनुमान से, और उच्चारण किये गये नाम सुन-सुनकर, प्रतिपक्षियों पर प्रहार कर रहे थे। धूल ने फिर उड़कर अँधेरा कर दिया था। दोनों सेनाओं के बेशुमार योद्धा और वाहन मारे जाने लगे।

तब राजा युधिष्ठिर क्रोध से अधीर हो उठे और दुर्योधन को तथा उनके सहायक राजाओं को परास्त करने की इच्छा से शत्रुसेना पर आक्रमण करने लगे। उन्होंने तीन सुवर्णपुङ्ख बाणों से कृपाचार्य को घायल करके चार बाणों से कृतवर्मा के घोड़े मार डाले। अश्वत्थामा फ़ौरन् यशस्वी कृतवर्मा को अपने रथ पर बिठाकर वहाँ से हटा ले गये। तब कृपाचार्य ने राजा युधिष्ठिर को आठ तीक्ष्ण बाण मारे। उस समय राजा दुर्योधन ने महाराज धर्मराज से युद्ध करने के लिए, उनके सामने, सात सौ रथी भेजे। वे सब रथी योद्धा वेग से धर्मराज के सामने अपने रथों को ले चले। मेघ जैसे सूर्य को छिपा लेते हैं वैसे ही उन लोगों ने बाण-वर्षा करके धर्मराज का रथ ढक दिया। शिखण्डी आदि महारथी युधिष्ठिर को पीड़ित देखकर उसे सहन ११ नहीं कर सके और क्रोध करके, धर्मराज की रक्षा करने के लिए, किङ्किणी-जाल-मण्डित श्रेष्ठ घोड़ों से युक्त अपने रथ दौड़ाते हुए उनकी ओर चले।

अब पाण्डव और कौरव यम-राष्ट्र की वृद्धि करनेवाला घोर युद्ध करने और रक्त की नदी बहाने लगे। मारने के लिए शस्त्र बरसाते आ रहे उन कौरवपक्ष के सात सौ रथी योद्धाओं को पाण्डवों तथा पाञ्चालों ने मिलकर नष्ट कर दिया। फिर कौरवसेना के अन्य वीरों से वे युद्ध करने लगे। उस समय दुर्योधन ने पाण्डवों के साथ ऐसा अपूर्व युद्ध किया जैसा हमने न पहले कभी देखा था और न सुना था। चारों ओर अव्यवस्थित युद्ध होने लगा। दोनों ओर के अनेक योद्धा मारे जाने लगे। धनुर्द्धर वीर लोग शङ्ख बजाकर, सिंहनाद कर, चिल्लाकर, गरजकर अपना उत्साह और पराक्रम प्रकट करने लगे। जय चाहनेवाले योद्धा दौड़-दौड़कर शत्रुओं के मर्मस्थलों को अमोघ प्रहारों से छिन्न-भिन्न करने लगे। बहुत सी कुल-ललनाएँ विधवा बना दी गईं। ऐसा भीषण संग्राम होने पर घोर अनर्थ और जन-क्षय की सूचना देनेवाले २० अनेक उत्पात, आकाशमण्डल और पृथ्वीतल में, दिखाई पड़ने लगे। पर्वतों और वनों सहित सारी पृथ्वी घोर शब्द के साथ बार-बार हिलने लगी और दण्ड तथा उल्मुक सहित उल्काएँ सूर्यमण्डल से निकलकर पृथ्वी की ओर आने लगीं। चारों ओर कङ्कड़ियाँ उड़ाती हुई प्रचण्ड आँधी उठने लगी। हाथी काँपने और आँसू बहाने लगे। इस तरह के घोर उत्पात देखकर भी क्षत्रियगण विचलित नहीं हुए। वे पुण्यस्थल रमणीय कुरुक्षेत्र में मरकर स्वर्ग जाने की इच्छा करके निर्भय भाव से फिर युद्ध करने लगे।

महाराज, शकुनि ने योद्धाओं से कहा—हे वीरो ! तुम लोग सामने रहकर पाण्डव-सेना से युद्ध करो, मैं पीछे से जाकर शत्रुओं पर आक्रमण करता हूँ। अब शकुनि ने सबको आगे बढ़ाया। मद्र देश के प्रबल योद्धा हर्ष से किलकारियाँ मारते हुए वेग से शत्रुसेना पर आक्रमण करने लगे। विजयी दुर्द्धर्ष पाण्डवगण हम सबको आते देखकर फिर धनुष चढ़ाकर बाण बरसाने लगे। शत्रुओं ने थोड़े ही समय में बची हुई मद्रसेना का संहार कर डाला। यह देखकर दुर्योधन की सेना डर के मारे रण से भागने लगी। गान्धारराज शकुनि ने उन भाग रहे योद्धाओं से कहा—हे वीरो, तुम क्षत्रियधर्म को क्या अच्छी तरह नहीं जानते ? भागो
३० मत; लौटकर प्राणपण से युद्ध करो।

शकुनि के साथ दस हज़ार प्रास-धारी घुड़सवार थे। वे उसी सेना को लेकर पीछे से पाण्डव-सेना पर आक्रमण करने लगे। आँधी जैसे बादलों को छिन्न-भिन्न कर डालती है वैसे ही शकुनि की सेना आक्रमण करके पाण्डव-सेना को भगाने लगी। युधिष्ठिर ने जब अपने सामने ही निकट की सेना को घबराकर भागते देखा तब अविचलित रहकर कहा—सहदेव ! देखो, दुर्मति शकुनि हमारी सेना को पीछे से जाकर पीड़ित कर रहा है। इसलिए तुम झटपट द्रौपदी के पुत्रों को साथ लेकर जाओ और घुड़सवारों सहित शकुनि को मारो। इधर मैं भी धृष्टद्युम्न की सहायता से रथसेना का संहार करूँगा। तुम अपने साथ सब हाथियों के सवारों, घुड़सवारों और तीन हज़ार पैदलों को ले जाओ।

हे राजेन्द्र ! तब वीरवर सहदेव और द्रौपदी के पाँचों पुत्र, अपने साथ धनुर्द्धर योद्धाओं से युक्त सात सौ हाथी, पाँच हज़ार घोड़े और तीन हज़ार पैदल लेकर, बड़े वेग से शकुनि पर
४० आक्रमण करने चले। उधर जय की इच्छा रखनेवाले प्रतापी शकुनि पीछे से पाण्डवसेना को मारने लगे। इधर पाण्डवों के घुड़सवार योद्धा कुपित होकर, शत्रुपक्ष के रथी योद्धाओं को लाँघकर, शकुनि की सेना में घुस गये और उन पर विकट बाण बरसाने लगे। शकुनि की और सहदेव की सेनाओं के वीरगण गदा, प्रास आदि शस्त्रों को तान-तानकर परस्पर प्रहार करते हुए घोर युद्ध करने लगे। उस समय प्रत्यञ्चाओं के शब्द रुक गये और रथ-योद्धा, दर्शक के तौर पर, घुड़सवारों का विचित्र संग्राम देखने लगे। कौरवों और पाण्डवों के वीर अपने-पराये का ख़याल न करके, समान पराक्रम से, शस्त्र चलाते हुए घमासान युद्ध कर रहे थे। शूरों के हाथों से छूटी हुई शक्तियाँ चमक-चमककर उल्काओं की तरह गिर रही थीं। जगह-जगह गिर रही चमकीली ऋष्टियों से आकाश जगमगा उठा। वीरों के उठे हुए और शत्रुओं के शरीरों पर गिर रहे प्रास आकाश में टीड़ीदल-से देख पड़ते थे। सैकड़ों-हज़ारों घोड़े, सवारों के साथ ही, ख़ून से तर होकर रणभूमि में गिरते दिखाई पड़ रहे थे। एक घोड़े को दूसरा घोड़ा गिरकर कुचल डालता था। असंख्य घोड़ों के अङ्ग छिन्न-भिन्न हो गये थे और उनके मुखों से रक्त

बह रहा था। उस समय अधिक दौड़-धूप के कारण बहुत धूल उड़ी, जिससे अँधेरा छा गया। हमने देखा कि उस अँधेरे से और शस्त्र-प्रहार से व्याकुल होकर बहुत से योद्धा, अपने घोड़ों को तेज़ हाँककर, वहाँ से भागने लगे। बहुत से योद्धा मुँह से रक्त बहाते हुए घायल होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। बहुत से योद्धा एक दूसरे को, केश पकड़कर, घोड़ों की पीठों पर से खींच रहे थे और बहुत से, केश पकड़े जाने के कारण, हाथ-पैर भी नहीं हिला सकते थे। बहुत लोग पहलवानों की तरह बाहुयुद्ध करने लगे। बहुत से मृत वीरों को घोड़े इधर-उधर खींचते फिरते थे। विजय की इच्छा से लड़नेवाले बहुत से शूर पुरुष घायल होकर पृथ्वी पर पड़े थे। ख़ून से तर हज़ारों वीरों से पृथ्वी पट गई। उन वीरों के हाथ कट गये थे और बाल बिखर गये थे। सवारों सहित मरे पड़े हुए घोड़ों ने उस भूमि को ऐसा दुर्गम बना रक्खा था कि कोई घोड़ा सहज में आगे नहीं बढ़ सकता था। जिनके कवच रक्त से भीग रहे थे और जो तरह-तरह के शस्त्र तानकर परस्पर वध के लिए उद्यत थे, ऐसे असंख्य योद्धा निकट-युद्ध में भिड़कर मर-मरकर गिर पड़े। महावीर शकुनि थोड़ी देर तक ऐसा निकट संग्राम करने के बाद, बचे हुए छः हज़ार घुड़सवारों को लेकर, वहाँ से चल खड़े हुए। ५०

इसी तरह पाण्डवपक्ष के, ख़ून से तर, बचे हुए छः हज़ार योद्धा भी, वाहनों के थक जाने पर, वहाँ से हट गये। रक्त से नहाये हुए पाण्डवों के घुड़सवार, प्राणों की ममता छोड़कर, लड़कर थक चुके थे। वे कहने लगे कि इस स्थान पर, हाथियों की कौन कहे, रथ भी नहीं चल सकते। इसलिए अब रथी वीर रथी लोगों से और हाथियों के सवार हाथियों के सवारों से जाकर युद्ध करें। शकुनि अपने रिसालों को लेकर भाग गया है; अब वह फिर युद्ध करने न आवेगा। ६०

घुड़सवारों के ये वचन सुनकर द्रौपदी के पाँचों पुत्र गज-सेना को लेकर महारथी पाञ्चाल-पति धृष्टद्युम्न के पास गये। सहदेव भी, धूल उठने पर, अकेले अपना रथ राजा युधिष्ठिर के पास ले गये। इस तरह इन लोगों के हट जाने पर शकुनि फिर अपना रिसाला लेकर बग़ल से धृष्टद्युम्न की सेना के ऊपर आक्रमण करने लगे। उस समय फिर दोनों ओर के सैनिक, जीवन की ममता छोड़कर, दारुण संग्राम करने लगे। उस भयङ्कर युद्ध में परस्पर वध करने के लिए योद्धा लोग क्रोधपूर्ण दृष्टि से अपने प्रतिपक्षियों को देखने और उन पर प्रहार करने लगे। सैकड़ों-हज़ारों योद्धा भिड़कर तलवारों के वार से शत्रुओं के सिर काटने लगे। उन सिरों के गिरने से पके हुए ताड़ के फल पृथ्वी पर गिरने का सा शब्द सुनाई पड़ने लगा। कटे हुए धड़, शस्त्र-युक्त हाथ और ऊरु आदि अङ्ग कट-कटकर गिरने से लोमहर्षण कटकट शब्द होने लगा। मांस के लिए लड़नेवाले पक्षियों की तरह योद्धा लोग अपने भाइयों, पुत्रों और मित्रों पर भी आक्रमण और तीक्ष्ण शस्त्रों से प्रहार कर रहे थे। कुपित वीरगण परस्पर स्पर्धा प्रकट करके, "मैं पहले वार करूँगा, मैं पहले प्रहार करूँगा" कहकर, बढ़-बढ़कर सैकड़ों-हज़ारों शत्रुओं का संहार कर ७०

रहे थे। वेग से घोड़ों को दौड़ाने के कारण बहुत से वीर उनकी पीठों पर से गिर पड़े। अनेक सवार और घोड़े धक्के और रेले से गिर पड़े और कुचलकर मर गये। कहीं शीघ्रगामी घोड़े घायल होकर पड़े तड़प रहे थे, कहीं घायल मनुष्य पड़े कराह रहे थे। रणभूमि बहुत ही भयानक हो उठी। शत्रुओं के मर्मस्थलों को विदीर्ण कर रहे शक्ति, ऋष्टि, प्रास आदि शस्त्रों का भयानक शब्द गूँज रहा था। आपके पक्ष के लोग थक गये, प्यास से व्याकुल हो गये और शस्त्रों से उनके अङ्ग कट-फट गये। यही दशा उनके वाहनों की भी हुई। बहुत से वीर पुरुष रक्त की गन्ध से अचेत हो गये और बहुत से लोग उससे उन्मत्तप्राय होकर सामने—अपना या पराया—जो पड़ा उसी को मारने लगे। बहुत से जयाभिलाषी वीर बाण-वर्षा से मरकर पृथ्वी पर गिर पड़े।

राजन्, इस प्रकार आपके पुत्र दुर्योधन के सामने ही कौरवसेना का बेतरह नाश होने लगा। इससे भेड़िये, गिद्ध, गीदड़ आदि मांसाहारी जीव अत्यन्त प्रसन्न हो उठे। मनुष्यों और घोड़ों की लाशों से परिपूर्ण तथा रक्त-प्रवाह से अगम्य होने के कारण रणभूमि कायरों के लिए अत्यन्त भयानक हो उठी। बारम्बार तलवार, पट्टिश, शूल आदि तीक्ष्ण शस्त्रों से छिन्न-भिन्न होने पर भी कौरव या पाण्डव रण से नहीं हटे। जब तक प्राण रहते थे तब तक यथा-शक्ति प्रहार करके, अन्त को घावों से रक्त बहाते हुए, योद्धा पृथ्वी पर गिर पड़ते थे। उठे हुए कबन्ध एक हाथ में रक्त-रञ्जित खड्ग लिये दूसरे हाथ से शत्रुओं के केश पकड़कर उनका सिर काटते दिखाई पड़ते थे। इस तरह अनेक कबन्ध उठने पर उनके प्रहार से पीड़ित और रक्त की गन्ध से विह्वल योद्धा लोग अचेत और किं-कर्तव्य-विमूढ़-से हो गये। ८८

अब रणभूमि में कोलाहल कम हो गया। शकुनि अपनी बची-खुची घुड़सवार सेना लेकर फिर पाण्डवों की विशाल सेना पर आक्रमण करने लगे। तब जय के लिए उद्योग कर रहे पाण्डवों ने सशस्त्र पैदलों, हाथियों और घोड़ों की सेना के द्वारा शकुनि को, मय घुड़सवारों के, चारों ओर से घेर लिया। युद्ध का अन्त कर डालने की इच्छा से वे, तरह-तरह के तीक्ष्ण शस्त्रों से, शकुनि और उनकी सेना पर प्रहार करने लगे। इस तरह शकुनि जब घिर गये तब उनकी रक्षा करने के लिए अन्य महारथी, चतुरङ्गिणी सेना लेकर, पाण्डवों की ओर बढ़ने लगे। कोई-कोई पैदल योद्धा, शस्त्र न रहने पर, पैरों और घूसों से शत्रुओं पर प्रहार करने लगे। पुण्यक्षय होने पर स्वर्ग के विमानों से गिरनेवाले सिद्धों की तरह रथी लोग रथों से और गजारोही योद्धा हाथियों की पीठ पर से पृथ्वी पर गिरने लगे। इस तरह उस प्रास, खड्ग, बाण आदि शस्त्रों की वर्षा से दारुण संग्राम में परस्पर भिड़े हुए वीरगण पिता, पुत्र, भाई, बन्धु, मित्र को भी मारकर घोर कर्म करने लगे। उस समय युद्ध ने बहुत ही अव्यवस्थित और मर्यादा-रहित घोर रूप धारण कर लिया। ९२

चौबीसवाँ अध्याय

अर्जुन का दुर्योधन की निन्दा करके कौरव-सेना का संहार करना

सञ्जय ने कहा—महाराज ! पाण्डवों ने जब कौरवसेना के धुर्रे उड़ा दिये और कोलाहल कम हो गया तब शकुनि, बचे हुए सात सौ सवार साथ लेकर, फिर कौरवसेना को बारम्बार युद्ध के लिए उत्साहित करने लगे। शकुनि ने क्षत्रियों से पूछा—वीरो, इस समय महाबली राजा दुर्योधन कहाँ हैं ? क्षत्रियों ने कहा—हे सुबलनन्दन! वह देखो, जहाँ पर पूर्ण चन्द्रमा के समान सुन्दर छत्र दिखाई पड़ रहा है, जहाँ पर कवचधारी रथी योद्धाओं की सेना है और मेघ-गर्जन के समान कोलाहल हो रहा है, वहीं पर राजा दुर्योधन हैं। वहाँ जाओ तो कुरुराज को देख पाओगे। क्षत्रियों के ये वचन सुनकर शकुनि शीघ्रता के साथ वहाँ गये, जहाँ विचित्र युद्ध में निपुण वीरों के साथ दुर्योधन थे। शकुनि ने दुर्योधन को देखकर अपने को कृतकार्य सा समझकर उनसे प्रसन्नतापूर्वक बातचीत की जिसे सुनकर कौरवदल के सब रथी योद्धा आनन्दित हो गये। शकुनि ने कहा—हे कुरुराज, मैं पाण्डवों के घुड़सवारों को नष्ट कर आया हूँ। अब आप इन वीरों की सहायता से शत्रुओं की रथसेना को नष्ट करने का यत्न कीजिए। जान पर खेलकर युद्ध किये बिना युधिष्ठिर को जीतना असम्भव है। पाण्डवों की रथसेना को अगर हम मार लेंगे तो फिर इन हाथियों की सेना और पैदलों को परास्त करना कठिन न होगा। १०

राजन्, यह सुनकर जय की इच्छा रखनेवाले कौरवगण उत्साहपूर्वक वेग से पाण्डव-सेना पर आक्रमण करने को चले। सुसज्जित रथों पर सवार, धनुष बजा रहे, कौरव वीर बढ़कर सिंह की तरह गरजने लगे। उनकी प्रत्यञ्चा और हथेली के संघर्षण से उत्पन्न शब्द बाणों की सनसनाहट से मिलकर लोगों के मन में भय का सञ्चार करने लगा। उनको धनुष ताने समीप पहुँचे देखकर अर्जुन ने कहा—हे कृष्णचन्द्र, आप बेखटके घोड़ों को हाँककर इस शत्रुसेना में मेरा रथ ले चलिए। मैं इस समय तीक्ष्ण बाण बरसाकर सभी शत्रुओं का अन्त कर डालूँगा। हमारे इस भयङ्कर संग्राम को होते आज अठारहवाँ दिन है। दैव की गति देखिए, कौरवों की सागर के समान अपार सेना मरते-कटते आज बहुत ही थोड़ी रह गई है। हे माधव, दुर्योधन की सागर-समान सेना हमारे आगे आकर गोष्पद-तुल्य (गाय के पैर के गढ़े के समान) हो गई। भीष्म पितामह के मारे जाने पर मैं चाहता था कि मेल हो जाय; परन्तु मूर्ख दुर्योधन ने मोह-वश मेल नहीं किया। २० भीष्म पितामह ने उस समय हित की जो यथार्थ बातें कही थीं उन्हें भ्रष्टबुद्धि दुर्योधन ने नहीं माना। अद्वितीय योद्धा भीष्म के गिरने पर, मालूम नहीं क्या समझकर, कौरवों ने युद्ध बन्द नहीं किया। मैं तो भीष्म के गिरने पर भी युद्ध करनेवाले दुर्योधन आदि को मूढ़ और मतिहीन ही समझता हूँ। उसके बाद वेदज्ञ श्रेष्ठ धनुर्द्धर द्रोणाचार्य, महारथी कर्ण और विकर्ण के मरने

पर भी युद्ध बन्द नहीं हुआ। कर्ण के मरने पर बहुत ही थोड़ी सेना बच रही थी, किन्तु फिर भी युद्ध नहीं बन्द हुआ। श्रुतायु, मगध देश के जलसन्ध, श्रुतायुध, भूरिश्रवा, शाल्व, शल्य, विन्द, अनुविन्द, जयद्रथ, राक्षसराज अलायुध, वाह्लीक, सोमदत्त, भगदत्त, काम्बोजराज, दुःशासन आदि की मृत्यु देखकर भी दुर्योधन युद्ध नहीं बन्द करता। मण्डलाधीश्वर बड़े-बड़े महारथी शूर बली अक्षौहिणी-पतियों को भीमसेन ने मार डाला, किन्तु फिर भी दुर्योधन लोभ या मोह के वश ३१ होकर युद्ध नहीं बन्द करता। हाय! दुर्मति दुर्योधन के सिवा क्षत्रिय-कुल में, ख़ासकर कौरववंश में, उत्पन्न कौन ऐसा पुरुष होगा, जो वृथा वैर करके ऐसा जन-क्षय करावेगा? जो मूढ़ न होगा—हित-अहित का ज्ञान रखता होगा—वह शत्रु को अपने से बल, शौर्य और गुणों में अधिक जानकर कभी उससे युद्ध नहीं करेगा। हे वासुदेव, युद्ध के पहले आपने मेल करने का प्रस्ताव ले जाकर दुर्योधन को समझाया था; मगर उसने न जाने क्या समझकर आपका प्रस्ताव नहीं माना। जब उसने अनादरपूर्वक आपकी बात नहीं मानी तब वह और किसकी सुनेगा? भीष्म, द्रोण, विदुर आदि हितैषियों ने मेल के लिए, युद्ध न करने के लिए, बहुत समझाया; परन्तु दुर्योधन ने किसी की नहीं मानी। अब उसकी दवा और क्या हो सकती है! उसका बचना असम्भव है। वृद्ध पिता ने बारम्बार समझाया, हित चाहनेवाली माता ने बहुत कुछ कहा-सुना, किन्तु दुर्योधन ने मूर्खता-वश उनका कहा नहीं माना। फिर अब वह किसके समझाने से मानेगा? अवश्य ही वह कुल का विनाश करने के लिए ही पैदा हुआ है। उसकी चेष्टा और नीति ऐसी ही देख पड़ती है। मुझे विश्वास है कि वह जीते-जी हम लोगों को हमारा हिस्सा नहीं फेर देगा। महामति विदुर मुझसे अनेक बार कह चुके हैं कि दुर्मति दुर्योधन जब तक जीता रहेगा तब तक तुमको राज्य नहीं देगा और निष्पाप निरपराध पाण्डवों का अनिष्ट करने की चेष्टा ४० में लगा रहेगा। चाचा विदुर ने यह भी कहा था कि युद्ध के सिवा और किसी तरह तुम लोग दुर्योधन से राज्य नहीं ले सकोगे।

हे श्रीकृष्ण, महात्मा विदुर के कहने के अनुसार ही बराबर दुर्योधन के सब कार्य दिखाई पड़ रहे हैं। जिस दुर्बुद्धि ने महात्मा परशुरामजी के मुँह से यथार्थ हितकर वचन सुनकर भी उनके प्रति उपेक्षा दिखलाई, उस दुष्ट दुर्योधन की मृत्यु अब अवश्य ही निकट आ गई है। दुर्योधन के पैदा होते ही सिद्ध पुरुषों ने बारम्बार कहा था कि इस दुष्ट के दोष से सम्पूर्ण क्षत्रिय-वंशों का विनाश होगा। सो उनके वे वचन सत्य हुए। दुर्योधन के कारण, उसकी सहायता करने को आये हुए, असंख्य राजा और क्षत्रिय योद्धा मारे जा चुके हैं। अब जो थोड़े से बच रहे हैं उन्हें भी मार डालूँगा। जब सब क्षत्रिय मारे जायँगे और शिविर ख़ाली कर दिया जायगा तब अवश्य ही दुर्योधन अपने वध के लिए ख़ुद हमसे युद्ध करने आवेगा। मैं अनुमान करता हूँ कि उसके अन्त के साथ ही यह वैर और युद्ध शान्त हो जायगा। हे हृषीकेश! विदुर

के कथन को सुनकर, दुर्योधन की चेष्टा देखकर और स्वयं अपनी बुद्धि से विचार कर, मैंने यही निश्चय किया है। इसलिए आप दुर्योधन की रथसेना के भीतर मेरा रथ ले चलिए। मैं तीक्ष्ण बाणों से शीघ्र ही दुर्योधन को और उसकी सेना को मारूँगा। दुर्योधन के सामने ही इस दुर्बल सेना को मारकर मैं महाराज युधिष्ठिर को निष्कण्टक कर दूँगा। ५०

सञ्जय कहते हैं कि राजन्, घोड़ों की रास हाथ में लिये महात्मा कृष्णचन्द्र—अर्जुन के वचन सुनकर—निर्भय भाव से बलपूर्वक उस शत्रुसेना के भीतर पहुँचे। कौरवसेना एक महावन के समान थी। उसमें धनुष डालियों के समान, शक्तियाँ कँटीले पेड़ों के समान, गदा-परिघ आदि पाषाण के समान, रथ-हाथी बड़े वृक्षों के समान और घुड़सवार तथा पैदल लताओं के समान प्रतीत होते थे। महापताका-युक्त रथ को लिये हुए श्रीकृष्ण उस वन में चारों ओर विचरने लगे। वे सफ़ेद घोड़े अर्जुन को लेकर, श्रीकृष्ण के द्वारा सञ्चालित होकर, वायु के वेग से चारों ओर जाते दिखाई पड़ने लगे। शत्रुदल-दलन अर्जुन, मेघ जैसे जलधारा बरसावें वैसे ही, तीक्ष्ण बाण बरसाते हुए शत्रुसेना के भीतर संग्राम-भूमि में घूमने लगे। अर्जुन के बाण धनुष से निकलने में और शत्रुसेना पर गिरने में घोर महान् शब्द उत्पन्न कर रहे थे। अर्जुन के गाण्डीव धनुष से निकले हुए वज्र-तुल्य बाण वीरों के कवचों को तोड़ते हुए पृथ्वीतल में घुस जाते थे। शब्द करते हुए बाण मनुष्यों, हाथियों और घोड़ों को विदीर्ण करते हुए टीड़ीदल-से गिरने लगे। गाण्डीव से निकले बाणों ने सर्वत्र रणभूमि को व्याप्त कर दिया। नहीं जान पड़ता था कि कौन दिशा या उपदिशा किधर है। सुवर्णपुङ्ख, तैलधौत, चमकीले और अर्जुन के नाम से अङ्कित बाणों से सारी रणभूमि परिपूर्ण हो गई। अग्नि से पीड़ित हाथियों की तरह, ६० अर्जुन के बाणों से घायल होने पर भी, शत्रुपक्ष के वीर उनके सामने से नहीं हटते थे और बाण लगने से प्राणहीन हो-होकर वीरगति को प्राप्त हो रहे थे। धनुष-बाण हाथ में लिये और प्रज्वलित सूर्य के समान प्रचण्ड रूप अर्जुन वैसे ही योद्धाओं को भस्म कर रहे थे जैसे दावानल सूखे वन को जलाता है। वनपालों की लगाई हुई आग जैसे घोर शब्द के साथ अनेक वृक्षों और सूखी लताओं से परिपूर्ण वन को जला देती है वैसे ही अर्जुन कुपित होकर नाराच और अन्य बाणों से शत्रुसेना को भस्म करने लगे। प्राण हरनेवाले उनके बाण किसी के कवच में नहीं रुकते थे और वे किसी मनुष्य, हाथी या घोड़े पर दूसरा बाण नहीं छोड़ते थे; क्योंकि एक ही बाण में उसका काम तमाम हो जाता था। महारथियों की सेना में घुसकर अकेले ही अर्जुन अनेक प्रकार के बाणों से, दैत्य-सेना को मारनेवाले इन्द्र की तरह, कौरव-सेना का नाश करने लगे। ६६

पच्चीसवाँ अध्याय

धृष्टद्युम्न से हारकर, घोड़े पर चढ़कर, दुर्योधन का रण-भूमि से भाग जाना

सञ्जय ने कहा—राजन्, रण में जमकर जय के लिए यत्न कर रहे आपके पक्ष के शूर पुरुषों के सङ्कल्प को अर्जुन ने व्यर्थ कर दिया। जलधारा बरसा रहे मेघ की तरह वे लगातार वेगशाली असह्य वज्र-तुल्य बाण बरसाते हुए दिखाई पड़ रहे थे। अर्जुन के बाणों से मर रही सेना आपके पुत्र के सामने ही डर के मारे रण छोड़कर भाग खड़ी हुई। लोग प्रिय पिता, पुत्र, भाई, मित्र आदि को छोड़कर भागने लगे। बहुत से रथों के घोड़े मर गये, बहुतों के सारथी मार डाले गये और बहुत से रथों के अक्ष, युग, चक्र, ईषा आदि टूट-फूट गये। बहुत से रथी योद्धाओं के बाण चुक गये, बहुत से बाणों से पीड़ित होकर और बहुत से, घावों से बच जाने पर भी, डर के मारे भागने लगे। बहुतों के अनेक भाई-बन्धु मार डाले गये, बहुतेरे पुत्रों को लेकर भागने लगे। बहुतों के वाहन नहीं रहे और वे सहायता के लिए पुत्र, पिता आदि सहायकों को पुकारने लगे। हे वीर! बहुत लोग अपने भाई, सम्बन्धी, बान्धव आदि को छोड़-छोड़कर चल दिये। बहुत से महारथी अर्जुन के बाणों की गहरी चोट से व्याकुल हो मूर्च्छित होकर लम्बी साँसें ले रहे थे। अन्य महारथी उन्हें अपने रथ पर बिठाकर, दम भर आश्वासन करके, स्वयं विश्राम लेकर और पानी पीकर, फिर युद्ध करने जा रहे थे। बहुत से युद्ध-दुर्मद योद्धा आपके पुत्र की आज्ञा का पालन करते हुए, अपने घायल साथियों और सम्बन्धियों १० को योंही छोड़कर, युद्ध करने जा रहे थे। बहुत से योद्धाओं ने खुद पानी पीकर, दम लेकर, वाहनों को सुस्थ करके कवच पहने और अपने पुत्र, पिता, भाई आदि घायलों को शिविर में पहुँचाकर उन्हें दिलासा दिया। फिर वे रथों को सुसज्जित कर युद्धभूमि में आ गये और पाण्डवसेना को घेरकर युद्ध करने लगे। वे किङ्किणी-जाल-शोभित शूरगण त्रैलोक्य-विजय के लिए उद्योगी दैत्य-दानवों के समान प्रतीत होते थे।

उस समय अनेक वीर योद्धा स्वर्ण-भूषित रथों को बढ़ाकर पाण्डवसेना में एकाएक आकर पाञ्चालकुमार धृष्टद्युम्न से युद्ध करने लगे। धृष्टद्युम्न, महारथी शिखण्डी और नकुल-नन्दन शतानीक उस रथसेना से युद्ध करने लगे। कौरवसेना से घिरे हुए वीर धृष्टद्युम्न क्रोध से अधीर होकर शत्रुसेना का संहार करने के लिए बड़े वेग से आगे बढ़े। कुरुराज दुर्योधन ने धृष्टद्युम्न को वेग से आते देखकर नाराच, अर्धनाराच, वत्सदन्त आदि तीक्ष्ण बाण मारकर उनके घोड़ों को मार डाला और उनकी छाती तथा हाथों में घाव कर दिये। धृष्ट-२१ द्युम्न अङ्कुश की चोट से चिढ़े हुए हाथी की तरह दुर्योधन के प्रहार से अत्यन्त कुपित हो उठे। उन्होंने भी दुर्योधन के चारों घोड़े मारकर सारथी का सिर काट डाला। कुरुराज

दुर्योधन रथ न रहने पर घोड़े पर सवार हो लिये और अपनी रथसेना को पराक्रमहीन, निरुत्साह और विमुख देखकर वहाँ से हट गये तथा थोड़ी दूर पर वहाँ चले गये जहाँ घुड़सवार सेना के साथ शकुनि थे।

रथसेना के नष्ट होने और भागने पर तीन हज़ार हाथियों के योद्धाओं ने पाण्डवसेना के रथी वीरों को घेर लिया। गजसेना से घिर जाने पर पाँचों पाण्डव तारागण के बीच स्थित ग्रहों के समान शोभायमान हुए। तब अचूक निशाना लगानेवाले महाबली अर्जुन श्रीकृष्ण-सञ्चालित रथ को बढ़वाकर, विमल तीक्ष्ण बाणों से पर्वताकार हाथियों को विदीर्ण करते हुए, गजसेना से युद्ध करने लगे। हमने देखा कि अर्जुन के एक ही एक बाण से विदीर्ण होकर हाथी गिर रहे हैं और बहुत से गिर पड़े हैं। मस्त हाथी के समान बली भीमसेन ने जब अपने चारों ओर हाथियों को देखा तो वे दण्डपाणि मृत्यु की तरह भारी गदा लेकर रथ से कूद पड़े। ३० महारथी भीम को गदा ताने देखकर आपकी सेना में खलबली मच गई, डर के मारे लोगों का मल-मूत्र निकल गया। भीम की गदा से मस्तक फट जाने पर पर्वताकार मस्त हाथी गिरने और आर्तनाद करते हुए भागने लगे। पङ्ख कटने पर गिरे हुए पर्वतों के समान अनेकों हाथी भीम की गदा की चोट से विह्वल होकर आर्तनाद करते हुए गिरने और भागने लगे। उनके इधर-उधर भागने से सब कौरवसेना भय-विह्वल हो गई। इसी समय युधिष्ठिर सहित नकुल और सहदेव भी गृध्रपत्रयुक्त तीक्ष्ण बाणों से गजारोही सेना का संहार करने लगे। उधर दुर्योधन को रथहीन कर चुकने पर धृष्टद्युम्न ने जब उन्हें नहीं देख पाया—क्योंकि वे घोड़े पर बैठकर वहाँ से भाग गये थे—और पाँचों पाण्डवों को गजसेना से घिरते देखा तब वे भी प्रभद्रकगण और पाञ्चालसेना को साथ लेकर उन हाथियों को मारने के लिए उसी ओर दौड़े।

उस तरफ़ महाबली अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा ने जब रथ-सेना में दुर्योधन को नहीं देखा तब वे ऊँचे स्वर से क्षत्रियों से पूछने लगे—भाइयो, महाराज दुर्योधन कहाँ गये? ४० उस जन-क्षय के समय राजा को न देखकर तीनों महारथियों ने समझा कि वे मार डाले गये। इससे उनके मुख फीके पड़ गये। वे बारम्बार सबसे पूर्वोक्त प्रश्न करने लगे। कुछ लोगों ने कहा कि रथ और सारथी न रहने पर वे धृष्टद्युम्न की उत्साहपूर्ण असह्य सेना को छोड़कर शकुनि के पास गये हैं। अत्यन्त घायल अन्य क्षत्रिय कहने लगे—अब दुर्योधन से क्या काम है? अगर जीते होंगे तो देख लेना। अब तो हम सबको मिलकर शत्रुओं से युद्ध करना चाहिए। राजा क्या कर लेंगे? महाराज, वे क्षत्रिय अत्यन्त घायल थे और बाणों से पीड़ित हो रहे थे तथा अधिकांश के वाहन भी मर चुके थे। सब लोग धीरे-धीरे आपस में कहने लगे—वह देखो, गजसेना का संहार करके पाण्डव इधर ही आ रहे हैं और निकट पहुँच गये हैं। आओ, हम सब मिलकर इस सेना का संहार करें, जो हमको घेर रही है।

महावीर अश्वत्थामा क्षत्रियों के मुँह से दुर्योधन का पता पाकर, कृपाचार्य और कृतवर्मा के साथ, धृष्टद्युम्न की उस सेना को—जिसने घेर रक्खा था—छिन्न-भिन्न करके शकुनि के पास जाने लगे। जब ये तीनों योद्धा कौरवसेना के रथी योद्धाओं को छोड़कर वहाँ से चले गये तब धृष्टद्युम्न सहित सब पाण्डव आपकी सेना का नाश करते हुए वहीं उपस्थित हुए। उन हर्ष-युक्त महारथियों को वेग से आते देखकर आपके पराक्रमी योद्धा जीवन से निराश हो गये; उनके चेहरे ५० फीके पड़ गये। मैंने जब देखा कि उनके शस्त्र नष्ट हो गये हैं और उनको रथी, गजारोही और घुड़सवार शत्रुसेना ने घेर लिया है तब हम पाँच योद्धा प्राणों का मोह छोड़कर पाञ्चालसेना से युद्ध करने लगे। अर्जुन के बाणों से अत्यन्त पीड़ित होने के कारण हम लोग वहाँ अर्जुन के सामने नहीं ठहर सके, जहाँ कृपाचार्य युद्ध कर रहे थे। तब महारौद्र रूप धारण किये हुए धृष्टद्युम्न के सामने जाकर उनसे हम युद्ध करने लगे। धृष्टद्युम्न से घोर युद्ध करके, परास्त होकर, हम लोग भाग खड़े हुए। इसी अवसर में महारथी सात्यकि, चार सौ रथी योद्धाओं के साथ, उधर ही आते दिखाई पड़े। धृष्टद्युम्न के घोड़े थक चुके थे, इसी कारण किसी तरह उनसे मैं छुटकारा पा सका। किन्तु अब वैसे ही सात्यकि के सामने पड़ गया, जैसे पापी नरक में पहुँचता है। दो घड़ी तक वहाँ सात्यकि से घोर युद्ध हुआ। उसके बाद महाबाहु सात्यकि ने मेरा रथ आदि सब सामान नष्ट करके मुझे जीते ही पकड़ लिया; क्योंकि मैं मूर्च्छित होकर गिर पड़ा था।

उधर भीमसेन ने गदा से और अर्जुन ने बाणों से हमारी गजसेना का संहार कर डाला। चारों ओर मरे हुए पर्वताकार हाथियों के ढेर लग जाने से पाण्डवों के रथों का आगे बढ़ना कठिन हो गया। तब महाबली भीम ने मरे हुए हाथियों को हटाकर रथ के लिए राह साफ़ कर ली। हे राजेन्द्र! इधर अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा, ये तीनों महारथी रथसेना में दुर्योधन को न देखकर उन्हें खोजने लगे। उस जन-क्षय में राजा को न देख पाने के कारण ६३ घबराकर, धृष्टद्युम्न को छोड़कर, ये लोग शकुनि के पास गये।

छब्बीसवाँ अध्याय

भीमसेन के हाथ से दुर्योधन के भाइयों का वध

सञ्जय ने कहा—राजन्! गजसेना का संहार और राजा दुर्योधन के ग़ायब होने पर भीमसेन कौरवसेना को पीड़ित करते हुए, दण्डपाणि प्राण हरनेवाले कुपित यमराज की तरह, गदा हाथ में लिये रणस्थल में विचरने लगे। तब आपके बचे हुए पुत्र वीर दुर्मर्षण, श्रुतान्त, जैत्र, भूरिबल, रवि, जयत्सेन, सुजात, दुर्विषह, दुर्विमोचन, दुष्प्रधर्ष और श्रुतर्वा ये मिलकर भीमसेन के सामने आये और उन पर प्रहार करने लगे। अब महावीर भीमसेन फिर अपने

रथ पर बैठकर उनके मर्मस्थलों में तीक्ष्ण बाण मारने लगे। भीमसेन के बाण बरसाकर पीड़ित करने पर भी वे राजकुमार उनकी ओर बढ़ने लगे। तब भीमसेन ने क्रोध करके एक क्षुरप्र बाण से दुर्मर्षण का और सब आवरणों को तोड़नेवाले भल्ल बाण से श्रुतान्त का सिर काट डाला। १० उन्होंने हँसकर एक बाण से जयत्सेन के प्राण हर लिये और रथ से नीचे गिरा दिया। तब श्रुतर्वा ने क्रोध करके भीम को गृध्रपत्रयुक्त सौ बाण मारे। भीमसेन ने क्रोध करके विष और अग्नि के समान तीन बाणों से जैत्र, भूरिवल और रवि इन तीनों राजकुमारों को मार डाला। वे वसन्त में फूले हुए, काट डाले गये, ढाक के पेड़ों की तरह रथों से गिर पड़े। फिर अन्य तीक्ष्ण भल्ल बाण से भीमसेन ने दुर्विमोचन को भी मार गिराया। वे पर्वतशिखर के, आँधी से उखड़े, बड़े पेड़ की तरह रथ से गिर पड़े। दो-दो बाणों से दुष्प्रधर्ष और सुजात को भी घायल करके गिरा दिया। वे गिरते ही मर गये। तब दुर्विषह वेग से भीम की ओर चले। भीम ने भल्ल बाण के प्रहार से उन्हें भी प्राणहीन कर दिया। वे सब सैनिकों के सामने रथ से गिर पड़े। अकेले भीमसेन के हाथ से अनेक भाइयों की मृत्यु देखकर क्रोध से २० प्रज्वलित श्रुतर्वा भीमसेन की ओर दौड़े और सुवर्णभूषित धनुष से विष और अग्नि के तुल्य बहुत से बाण बरसाने लगे। उन्होंने भीम का धनुष काटकर उनको बीस उग्र बाण मारे। महाबली भीम ने दूसरा धनुष लेकर उन पर असंख्य बाण बरसाना और ठहर-ठहर कहकर गरजना शुरू किया। उस समय वे दोनों वीर, पूर्व समय में होनेवाले इन्द्र और जम्भासुर के युद्ध के समान, भयानक विचित्र संग्राम करने लगे। उनके यमदण्ड-तुल्य तीक्ष्ण बाणों से पृथ्वी, आकाश, सब दिशा और उपदिशाएँ व्याप्त हो गईं। तब श्रुतर्वा ने क्रोध करके भीम की छाती और हाथों में अनेक तीक्ष्ण बाण मारे। आपके धनुर्द्धर पुत्र के बाणों से बेहद घायल होने पर भीमसेन, पर्वकाल में महासागर के समान, कोप से क्षोभ को प्राप्त हुए। उन्होंने तत्काल श्रुतर्वा के सारथी और चारों घोड़ों को मार डाला और लगातार बाण बरसाकर उन्हें ढक दिया। महाबली श्रुतर्वा भीम के बाणों से अश्व-रथ-हीन होने पर ढाल और तलवार लेकर रणभूमि में विचरने लगे। वीर भीम ने फुर्ती के साथ क्षुरप्र बाण से उन खड्ग-चर्म-धारी महावीर राज- ३० कुमार का सिर काट डाला। तब वे पृथ्वी को कम्पायमान करते हुए गिर पड़े।

श्रुतर्वा के मरने पर कौरवपक्ष के योद्धा, भय से मोहित होकर भी, युद्ध के इरादे से भीमसेन की ओर चले। प्रतापी भीमसेन उस कवचधारी हतावशिष्ट सैन्य के सागर से निकल-कर सामने आ रहे वीरों का सामना करने लगे। कौरवगण चारों ओर से घेरकर उन पर प्रहार करने लगे। कौरववीरों के बीच घिर जाने पर वीर भीमसेन वैसे ही उन्हें बाणों से पीड़ित करने लगे, जैसे इन्द्र ने असुरसेना का संहार किया था। इस तरह भीमसेन ने पाँच सौ महारथी, सात सौ हाथी, एक लाख पैदल और आठ सौ घोड़े, मय उनके सवारों के, मार डाले।

उस समय उनकी अपूर्व शोभा और तेज दिखाई पड़ने लगा। महाराज, इस तरह युद्ध में आपके अवशिष्ट पुत्रों को भी मारकर भीमसेन ने अपने को कृतकार्य और अपने जन्म को सार्थक समझा। कौरवपक्ष के योद्धा उस समय इस तरह युद्ध कर रहे और शत्रुओं को मार रहे भीमसेन की ओर देखने का भी साहस नहीं कर सकते थे। कौरवों और उनके सहायकों को मारकर, भगाकर, महावीर भीमसेन ताल ठोकने और बड़े-बड़े गजराजों को भय-विह्वल करने लगे। आपकी सेना के अधिकांश योद्धा मारे जा चुके थे और उस समय उन ४२ बचे हुए सैनिकों की दशा अत्यन्त दीन हो रही थी।

सत्ताईसवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण और अर्जुन की बातचीत, सुदर्श का भीम के हाथ से मरना

सञ्जय ने कहा कि महाराज, उस समय आपके पुत्रों में केवल सुदर्श और दुर्योधन बच रहे थे, जो घुड़सवारों में जाकर ठहरे थे। उस समय दुर्योधन को शकुनि की घुड़सवार-सेना में देखकर श्रीकृष्ण ने कहा—हे अर्जुन! अधिकांश शत्रु मारे गये और अपने पक्ष का बचाव हो गया। वह देखो, सञ्जय को पकड़कर सात्यकि भी लौटे आ रहे हैं। पापमति दुर्योधन आदि कौरवों और उनके अनुगामियों से युद्ध करके नकुल और सहदेव थक गये हैं। इस समय कृतवर्मा, अश्वत्थामा और कृपाचार्य, ये तीनों महारथी दुर्योधन से दूर हैं। परम शोभा-सम्पन्न धृष्टद्युम्न दुर्योधन की सेना का संहार करके प्रभद्रकगण सहित पास ही उपस्थित हैं। वह देखो, दुर्योधन शकुनि के सवारों के बीच खड़ा हुआ बार-बार इधर देख रहा है। उसके सिर पर सफ़ेद छत्र लगा है। वह बची-खुची सेना का व्यूह बनाकर युद्ध करने की इच्छा से खड़ा है। तुम उसे शीघ्र तीक्ष्ण बाणों से मारकर कृतकृत्य हो सकोगे। गजसेना को नष्ट और तुमको निकट आते देखकर, बहुत सम्भव है कि, दुर्मति दुर्योधन और उसके साथी भाग जायँ। इसलिए उनके भागने के पहले ही तुम दुर्योधन को मार डालो। किसी को भेज दो, वह जाकर धृष्टद्युम्न को शीघ्र यहाँ बुला लावे। इस समय दुर्योधन की सेना थक गई है। इसलिए अपने इस अप- १० राधी को किसी तरह जीता न छोड़ो। यह पापी तुम्हारी अधिकांश सेना को नष्ट कर चुका है और पाण्डवों को परास्तप्राय जानकर प्रसन्न है। जब पाण्डवों के पराक्रम से अपनी सेना को नष्ट और पीड़ित देखेगा तब आप अपने वध के लिए अवश्य युद्ध करने आवेगा।

यह सुनकर अर्जुन ने कहा—हे माधव, महाबली भीमसेन धृतराष्ट्र के सब पुत्रों को क़रीब-क़रीब मार चुके हैं। जो ये दोनों दुर्योधन और सुदर्श बच गये हैं, वे भी शीघ्र ही मारे जायँगे। भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, कर्ण, जयद्रथ और मद्रराज शल्य मारे जा चुके हैं। इस समय

शकुनि के पाँच सौ घोड़े, दो सौ रथ, डेढ़ सौ हाथी, तीन हज़ार पैदल, इतनी सेना और अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कृतवर्मा, त्रिगर्ताधिपति, शकुनि, उलूक और स्वयं दुर्योधन, इतने योद्धा कौरव-पक्ष में बच रहे हैं। सच है, पृथ्वी पर कोई भी प्राणी काल से नहीं बच सकता। यह बची हुई शत्रुसेना और ये योद्धा भी जीते न बचेंगे। देखिए तो, इस तरह प्रायः सारी सेना के मर जाने पर भी मूर्ख दुर्योधन युद्ध करने को खड़ा है। मैं सच कहता हूँ, आज ही अजातशत्रु महाराज निष्कण्टक हो जायँगे। मैं ख़याल करता हूँ कि आज शत्रुपक्ष का कोई भी मेरे हाथ से जीता न बचेगा। हे कृष्णचन्द्र, मैं सच कहता हूँ कि जो मदान्ध लोग आज समर छोड़कर भाग न जायँगे तो उन सबको, चाहे वे देवता ही क्यों न हों, मैं मार डालूँगा। बहुत दिनों से—ख़ास-कर युद्धारम्भ होने से—महाराज युधिष्ठिर चिन्ता के मारे रात को सोये नहीं हैं। आज रात को वे सुख की नींद सोवेंगे। दुरात्मा शकुनि ने कुरुसभा में द्यूतक्रीड़ा के समय कपट के पाँसों से जीतकर जो बहुमूल्य रत्न हम लोगों से ले लिये थे उन रत्नों को आज, तीक्ष्ण बाणों से शकुनि को मारकर, मैं फिर प्राप्त करूँगा। आज हस्तिनापुर में रहनेवाली कौरवों की स्त्रियों को मेरी शक्ति मालूम होगी, जब वे सुनेंगी कि उनके पति और पुत्र युद्ध में पाण्डवों के हाथ से मारे गये। हे कृष्णचन्द्र, आज मैं युद्ध का काम समाप्त कर डालूँगा। आज दुर्योधन प्राण और भारी राज-लक्ष्मी से हीन हो जायगा। अगर डर के मारे दुर्योधन रण से भागा नहीं तो अवश्य मारा जायगा। शकुनि के जिन घुड़सवारों में जाकर दुर्योधन जान बचाना चाहता है, या विजय की इच्छा रखता है, वे सवार मेरी प्रत्यञ्चा की ध्वनि और तलशब्द को नहीं सह सकते। अब आप शीघ्र रथ को बढ़ाइए, मैं अभी इन सबको मारे डालता हूँ। २०

हे राजेन्द्र, श्रीकृष्ण अर्जुन के वचन सुनकर दुर्योधन की सेना के सामने रथ को ले चले। शत्रुसेना को सामने देखकर अर्जुन, भीमसेन और सहदेव, ये तीनों सुसज्जित महारथी सिंहनाद करते हुए दुर्योधन को मारने के विचार से उधर ही चले। महाबली शकुनि ने जब धनुष तानकर वध करने के लिए उद्यत वेग से आ रहे पाण्डवों को देखा तब वे उनसे युद्ध करने चले। राज-कुमार सुदर्श महाबली भीमसेन से, सुशर्मा और शकुनि अर्जुन से और स्वयं दुर्योधन घोड़े पर बैठकर सहदेव से युद्ध करने लगे। दुर्योधन ने झपटकर सहदेव के सिर पर प्रास से प्रहार किया तो सहदेव ख़ून से तर और मूर्च्छितप्राय होकर विह्वल भाव से रथ पर बैठ गये। साँप की तरह तेज़ी से उनकी साँस चलने लगी। दम भर में सहदेव को होश आ गया। उन्होंने सम्हलकर और क्रुद्ध होकर तीक्ष्ण बाणों से राजा दुर्योधन को पाट दिया। अर्जुन भी, पराक्रम प्रकट करते हुए, बाणों से घुड़सवारों के सिर काटने लगे। अनेक बाणों से रिसाले को नष्टप्राय करके वे त्रिगर्त देश की रथसेना के सामने गये। त्रिगर्त देश के महारथी मिलकर अर्जुन और श्रीकृष्ण के ऊपर लगातार तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे। महायशस्वी अर्जुन ने सत्यकर्मा को क्षुरप्र बाण से ३०

विह्वल करके उनके रथ का धुरा काट डाला और फिर अन्य तीक्ष्ण क्षुरप्र बाण से उनका कुण्डल-मण्डित सिर धड़ से अलग कर दिया। इसके बाद, वन में मृग पर झपटनेवाले भूखे शेर की तरह, ४० सत्येषु के ऊपर आक्रमण किया और सब योद्धाओं के सामने उसको भी यमपुर भेज दिया। अर्जुन ने सुशर्मा के दोनों भाइयों को मारकर सुशर्मा को तीन विकट बाणों से विह्वल कर दिया और फिर त्रिगर्त देश के, सुवर्ण-भूषित रथों पर स्थित, सब योद्धाओं को घायल और नष्ट कर डाला। अब चिर-सञ्चित क्रोधविष को उगल रहे विषैले नाग के समान अर्जुन ने सौ उग्र बाणों से सुशर्मा के सब मर्मस्थलों को पीड़ित करके उनके रथ के चारों घोड़े मार गिराये और फिर हँसते-हँसते एक यमदण्ड-सदृश बाण सुशर्मा को मारा। क्रोध से प्रज्वलित धनुर्द्धर अर्जुन के उस बाण ने जाकर सुशर्मा के हृदय को चीर दिया। इससे वे मरकर पृथ्वी पर गिर पड़े। उनके मारे जाने से पाण्डव प्रसन्न और कौरव अत्यन्त व्यथित हुए। सुशर्मा को मारकर अर्जुन ने उनके महारथी पुत्रों को भी क्रमशः सात, आठ और तीस बाणों से यमपुर भेज दिया। फिर तीक्ष्ण बाणों की वर्षा से सुशर्मा के साथी सब महारथियों को मारकर वे बची हुई कौरवसेना को मारने के लिए उसकी ओर बढ़े।

उधर कुपित महाबली भीमसेन ने आपके पुत्र सुदर्श को बाण-वर्षा से अदृश्य कर दिया ५० और फिर क्रोध से हँसकर एक तीक्ष्ण क्षुर बाण से उनका सिर भी काट डाला। सुदर्श मरकर पृथ्वी पर गिर पड़े। वीर सुदर्श के मारे जाने पर उनके अनुगामी वीरगण भीमसेन को घेरकर उन पर विविध तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे। भीमसेन भी वज्र-तुल्य तीक्ष्ण बाणों से उस सेना को विदीर्ण करने लगे। उन्होंने क्षण भर में सबको मार डाला। उनका संहार होते देखकर महारथी सेनाध्यक्षगण भीम के पास जाकर उनसे युद्ध करने लगे। भीमसेन ने उन सबको और उन सबने भीम को असंख्य बाणों की वर्षा से पीड़ित करना शुरू किया। दोनों ओर के वीर परस्पर के प्रहार से व्याकुल हो उठे। आपस के प्रहार से गिर रहे योद्धा लोग मरने और बहुत ५७ से लोग अपने-अपने बान्धवों की मृत्यु के लिए शोक करने लगे।

अट्ठाईसवाँ अध्याय

शकुनि और उलूक का मारा जाना

सञ्जय ने कहा—राजन्! इस तरह संग्राम में हाथियों, घोड़ों और मनुष्यों का नाश होते देखकर शकुनि सहदेव के सामने पहुँचे। प्रतापी सहदेव भी पतङ्ग-सदृश शीघ्रगामी बाण शकुनि के ऊपर बरसाने लगे। भीमसेन को उलूक ने दस बाण मारे। शकुनि ने भीमसेन को तीन
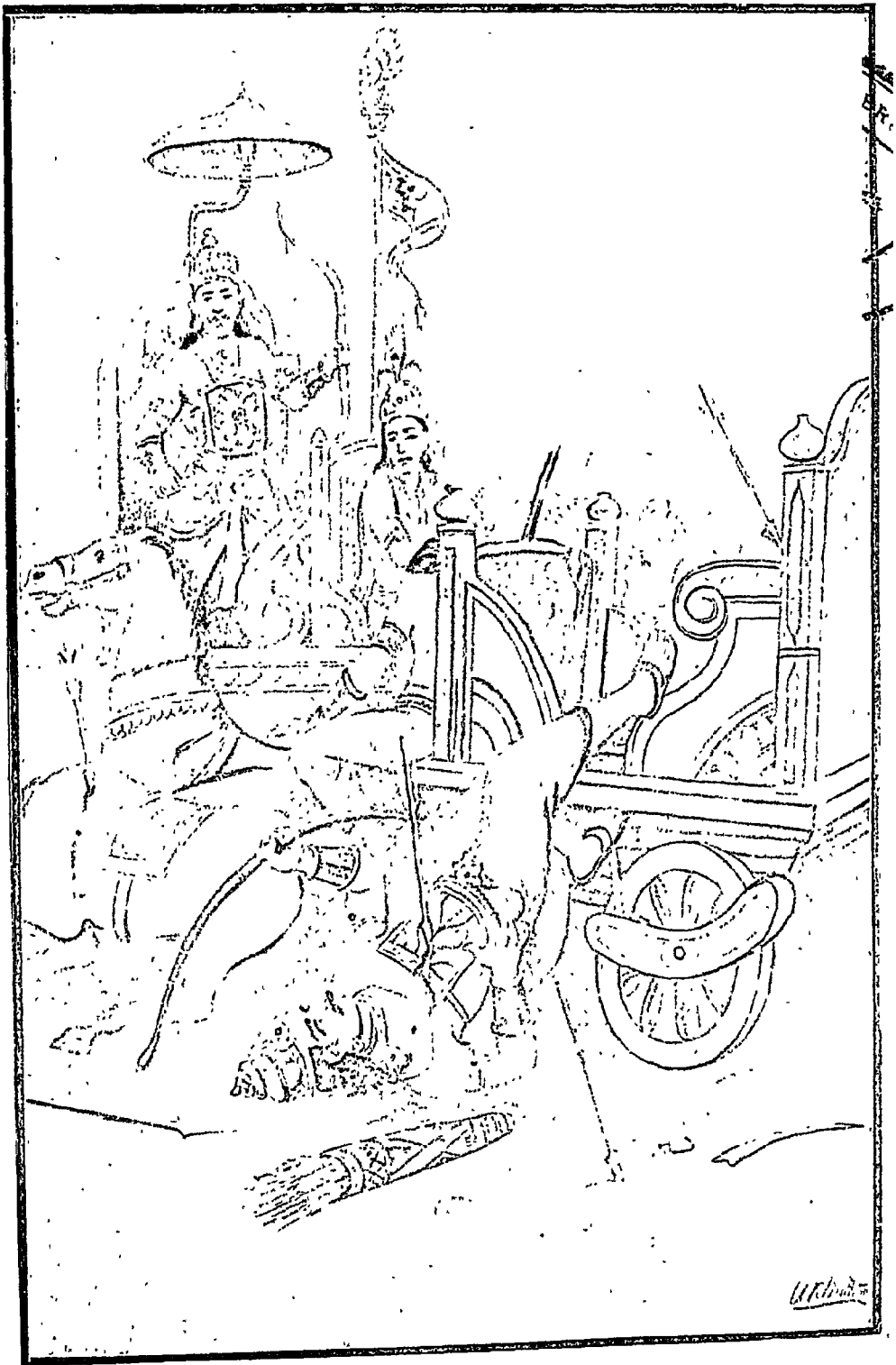
क्रोध से प्रज्वलित धनुर्धर अर्जुन के..............हृदय को चीर दिया—पृ० २०८०

आँखों में आँसू भरे हुए विदुर............फिर राज-भवन में गये—पृ० ३०८८

बाणों से घायल करके सहदेव को नब्बे तीक्ष्ण बाण मारे। वे शूर योद्धा आमने-सामने होकर कङ्कपत्र-युक्त, सुवर्णभूषित, तैलधौत, तीक्ष्ण और कान तक खींचकर छोड़े गये बाणों से परस्पर प्रहार करने लगे। मेघों से जलधारा की तरह उनके धनुष की डोरी से निकल रही लगातार बाण-वर्षा से सब दिशाएँ छा गईं। महाबली भीमसेन और सहदेव क्रोधपूर्वक सर्वत्र घूम-घूमकर घोर जन-संहार करने लगे। उनके असंख्य बाणों से जगह-जगह आकाश अन्धकार से व्याप्त हो गया। बाणों से घायल घोड़े मरकर लटके हुए सवारों को घसीटते भाग रहे थे और उनसे जगह-जगह रणभूमि अगम्य हो उठी। मारे गये घोड़े, घुड़सवार, कटे हुए प्रास, ऋष्टि, खड्ग, ढाल, शक्ति, परशु आदि शस्त्रों और सुवर्ण-मण्डित कवचों का जगह-जगह ढेर लग रहा था। उन्हें देखने से जान पड़ता था कि रणभूमि में तरह-तरह के फूल फूले हैं। योद्धा लोग क्रोध से भिड़कर परस्पर प्रहार करते और प्राण हरते हुए जगह-जगह घूम रहे थे। निकली हुई आँखों और क्रोध के कारण दाँतों से काटे जा रहे ओठों से भयङ्कर मुखवाले वीरों के कटे हुए पद्मपराग-सदृश, कुण्डल-शोभित सिरों से पृथ्वी पट गई। वीरों के, हाथी की सूँड़ के समान, हाथों का कट-कटकर जगह-जगह ढेर लग रहा था। अङ्गद (एक आभूषण), कवच और खड्ग, प्रास, परशु आदि शस्त्र उन भुजाओं की शोभा बढ़ा रहे थे। युद्धभूमि में वीरों के हज़ारों कबन्ध उठ-उठकर नाचते और युद्ध करते दिखाई पड़ने लगे। असंख्य गिद्ध, कौए आदि मांसाहारी जीव पटे पड़े थे। उस समय रणभूमि का रूप बहुत ही भयङ्कर हो रहा था। ११

राजन्, कौरवों की सेना क्रमशः कम होती जा रही थी और उत्साहित हर्षपूर्ण पाण्डव बढ़-बढ़कर ढूँढ़-ढूँढ़कर शत्रुओं को मार रहे थे। इसी अवसर में प्रतापी शकुनि ने एकाएक सहदेव के सिर पर प्रास से प्रहार किया। वे विह्वल होकर रथ पर बैठ गये। सहदेव की यह दशा देखकर महाबली भीमसेन क्रोध से प्रज्वलित हो उठे और अकेले ही बची-खुची शत्रुसेना का सामना करके बाणों से सैकड़ों-हज़ारों शत्रुओं को गिराते हुए बारम्बार विकट सिंहनाद करने लगे। उनके सिंहनाद को सुनकर शकुनि के साथी सैनिक भय से विह्वल हो उठे और उनके आगे से भागने लगे। सेना को भागते देखकर दुर्योधन कहने लगे—वीरो, क्या तुम क्षत्रिय-धर्म को नहीं जानते, जो रण में पीठ दिखा रहे हो? अरे डटकर लड़ो और मारो-मरो। भागने से क्या लाभ? जो धीर पुरुष रण में पीठ न दिखाकर लड़ते-लड़ते मरता है वह यहाँ कीर्त्ति छोड़ जाता है और परलोक में अनन्त सुख पाता है। २१

दुर्योधन के ये वचन सुनकर शकुनि के अनुचरगण, प्राणों की ममता छोड़कर, लौट पड़े और क्षोभ को प्राप्त समुद्र की तरह गरजते हुए चारों ओर से पाण्डवों पर आक्रमण करने को दौड़े। विजय के लिए उद्यत पाण्डवों ने जब शकुनि के अनुचरों को लौटकर सामने आते देखा तो फिर वे बढ़-बढ़कर उनका नाश करने लगे। उधर वीर सहदेव, जो शकुनि के प्रास-प्रहार से मूर्च्छित

हो गये थे, सचेत हो गये। उन्होंने शकुनि को दस और उनके घोड़ों को तीन बाण मारे और उनका धनुष भी काट डाला। युद्ध-दुर्मद शकुनि ने फ़ौरन् दूसरा धनुष लेकर नकुल को साठ और भीम को सात बाण मारे। शकुनि के पुत्र उलूक ने भी, पिता की सहायता करने के लिए, भीमसेन को सात और सहदेव को सत्तर बाण मारे। भीमसेन ने भी क्रोधपूर्वक शकुनि को चौंसठ ३० बाण मारकर उनके पार्श्व-रक्षक उलूक आदि वीरों को तीन-तीन बाण मारे। वे वीरगण भीम के तैलधौत बाणों की चोट खाकर, कुपित होकर, बिजली से शोभित और जल बरसा रहे बादलों की तरह, सहदेव के ऊपर बाण-वर्षा करने लगे। प्रतापी सहदेव ने आक्रमण कर रहे उलूक का सिर एक भल्ल बाण से काट डाला। उलूक ख़ून से तर और प्राणहीन होकर रथ से पृथ्वी पर गिर पड़े। यह देखकर पाण्डवों को अपार आनन्द हुआ।

अपने पुत्र की मृत्यु देखकर गान्धारेश्वर शकुनि शोक से व्याकुल हो उठे। आँखों में आँसू भरकर, विदुर के वाक्यों को स्मरण करके, वे बार-बार साँसें लेने लगे। क्षण भर शोक करके फिर क्रोध से प्रज्वलित होकर वे सहदेव के सामने आये। उन्होंने सहदेव को तीन बाण तानकर मारे। सहदेव ने कई बाणों से उन बाणों को काट करके शकुनि का धनुष काट डाला। धनुष कट जाने पर शकुनि ने एक तीक्ष्ण खड्ग सहदेव के ऊपर चलाया। सहदेव ने उस घोर खड्ग को हँसकर बीच से काट डाला। खड्ग को कटा हुआ देखकर शकुनि ने एक भारी गदा लेकर सहदेव के ऊपर फेंकी। सहदेव ने उसको भी बाणों से काटकर गिरा दिया। गदा को व्यर्थ होते देखकर कुपित शकुनि ने, कालरात्रि के समान भयानक, एक शक्ति तानकर सहदेव के ऊपर ४० फेंकी। सहदेव ने हँसकर सुवर्ण-भूषित बाणों से उस शक्ति के तीन टुकड़े कर डाले। वह शक्ति तीन टुकड़े होकर, आकाश से गिरी हुई बिजली की तरह, पृथ्वी पर गिर पड़ी। शक्ति का वार ख़ाली जाते देखकर शस्त्रहीन शकुनि भाग खड़े हुए। उनके साथ ही सब सैनिक भागने लगे। यह देखकर विजयी पाण्डव आनन्द से चिल्लाने और गरजने लगे। दुर्योधन के सभी योद्धा प्राय: विमुख हो गये। पराक्रमी सहदेव शत्रुओं को उत्साहहीन और खिन्न देखकर हज़ारों बाणों से उन्हें मारने लगे। जय के लिए यत्नशील और गान्धार देश के हट्टे-कट्टे घुड़सवारों से सुरक्षित शकुनि को आगे से भागते देखकर, और उन्हें अपना ही बचा हुआ अंश जानकर, वीरवर सहदेव सुवर्णशोभित रथ दौड़ाकर उनका पीछा करने लगे। जैसे कोई किसी हाथी को अंकुश मारे, वैसे ही कुपित सहदेव ने आगे से शकुनि को रोककर गृध्रपत्र-शोभित पैने बाण धनुष से बरसाकर बार-बार पीड़ित करना शुरू किया। बुद्धिमान् सहदेव शकुनि को ५० उसके पूर्वकृत कर्म का स्मरण कराते हुए कहने लगे—हे मूढ़ शकुनि, मर्द बन और क्षत्रिय-धर्म में स्थिर रहकर युद्ध कर। तूने कुरुसभा के बीच पाँसे हाथ में लेकर पाण्डवों के प्रति जिन दुर्वचनों का प्रयोग किया था, उनका और अपने कर्म का फल अब भोग। अरे दुर्मति नराधम, उस समय

जिन लोगों ने हमारा उपहास किया था वे सब मार डाले गये; अब कुलांगार दुर्योधन और उसका मामा तू, यही दो दुष्ट बच रहे हैं। मैं इस समय उसी तरह क्षुरप्र बाण से तेरा सिर काटूँगा जिस तरह लोग लग्गी से किसी वृक्ष का पका हुआ फल तोड़ते हैं।

महाराज, बलशाली सहदेव ने क्रोधान्ध होकर वेग से शकुनि पर आक्रमण किया। क्रोध से प्रज्वलित सहदेव ने पास पहुँचकर, ज़ोर से धनुष खींचकर, दस बाण शकुनि को मारे। फिर चार बाणों से उनके चारों घोड़ों को घायल करके कई बाणों से उनके छत्र, धनुष और ध्वजा को काट डाला और घोर सिंहनाद किया। इस तरह शकुनि छत्र-ध्वजा-धनुष से हीन और सब मर्मस्थलों में बाण लगने से अत्यन्त विह्वल हो उठे। प्रतापी सहदेव फिर शकुनि के ऊपर असह्य बाणों की वर्षा करने लगे। तब तो शकुनि भी क्रोध से अधीर हो उठे और अकेले ही एक सुवर्ण-भूषित प्रास लेकर सहदेव को मार डालने के इरादे से उन पर झपटे। सहदेव ने फुर्ती से तीन भल्ल बाण छोड़कर एक साथ शकुनि के प्रास और दोनों हाथों को काट डाला और घोर सिंहनाद किया। फिर जल्दी से, सब आवरणों को तोड़ डालनेवाले, तीक्ष्ण भल्ल बाण से शकुनि का सिर भी धड़ से अलग कर दिया। सहदेव के सूर्य-सम प्रज्वलित, सुवर्ण-भूषित, सुवर्ण-पुङ्ख-युक्त तीक्ष्ण बाण ने सब अनर्थों और कौरव-कृत अन्यायों की जड़ शकुनि का सिर काट डाला। दोनों भुजाएँ और सिर कट जाने पर शकुनि का रक्त से नहाया हुआ धड़ भी फड़कता हुआ रथ से पृथ्वी पर गिर पड़ा। महाराज, आपके योद्धाओं ने जब देखा कि शकुनि का सिर कट गया और वे रक्त से नहाये हुए पृथ्वी पर पड़े हुए हैं, तब डर के मारे उनका पराक्रम नष्टप्राय हो गया। वे लोग चारों ओर भागने लगे। गाण्डीव धनुष के शब्द को सुनकर दुर्योधन और उनके साथ की चतुरङ्गिणी सेना के मुख सूख गये। भय से विह्वल और संज्ञाहीन-से होकर रथी, घुड़सवार, गजारोही और पैदल सभी भागने लगे। इस तरह शकुनि को मारकर, रथ से गिराकर, अत्यन्त प्रसन्न श्रीकृष्ण सहित पाण्डवगण अपनी सेना को प्रसन्न करते हुए शङ्ख बजाने लगे। सब लोग सहदेव की प्रशंसा करते हुए कहने लगे—हे वीर, बड़ी बात जो आज रण में पुत्र सहित महारथी मायावी शकुनि तुम्हारे हाथ से मारा गया। ६०

६८

ह्रदप्रवेशपर्व

उनतीसवाँ अध्याय

सब सेना के नष्ट होने पर दुर्योधन का भागना और सञ्जय से बातें करके द्वैपायन-सरोवर में छिप रहना। युयुत्सु के साथ विदुर की बातचीत

सञ्जय ने कहा—महाराज! शकुनि के मरने पर उनके अनुगामी वीर सैनिक क्रोध करके, जीवन की ममता छोड़कर, चारों ओर से पाण्डवों पर आक्रमण करने लगे। तब तेजस्वी अर्जुन,

सहदेव और कुपित विषैले नाग के समान भीमसेन उन पर टूट पड़े। शक्ति, ऋष्टि, प्रास आदि शस्त्र हाथों में लिये वे वीर सैनिक सहदेव को मार डालना चाहते थे; किन्तु अर्जुन ने गाण्डीव धनुष से बाण बरसाकर उनके सङ्कल्प को व्यर्थ कर दिया। महावीर अर्जुन भल्ल बाणों से उन दौड़ रहे योद्धाओं के हाथों, सिरों और घोड़ों को काट-काटकर पृथ्वी पर गिराने लगे। विचरण कर रहे अद्वितीय वीर अर्जुन के बाणों से मर-मरकर वे घोड़े पृथ्वी को परिपूर्ण करने लगे। दुर्योधन ने जब इस तरह अपनी सेना का क्षय होते देखा तब वे क्रुद्ध होकर बचे हुए रथी, घुड़-सवार, गजारोही और पैदल सैनिकों को एकत्र करके उनसे कहने लगे—हे वीरो, तुम लोग मिलकर पाण्डवों पर हमला करो और मित्रों सहित पाण्डवों तथा सैन्य सहित धृष्टद्युम्न आदि पाञ्चालों को मारकर शीघ्र लौट आओ। हे राजेन्द्र, तब आपके पुत्र की आज्ञा को शिरोधार्य करके सब सेना पाण्डवों की ओर वेग से चली। बची हुई सेना को अपनी ओर आते देखकर पाण्डवगण उस पर विषैले नाग के समान प्राण हरनेवाले भयङ्कर बाण बरसाने
१० लगे। तब कवचधारी वीरगण अपने किसी रक्षक को न देखकर डर के मारे भागने लगे। घोड़ों के दौड़ने और भागने से उड़ी हुई धूल ने अँधेरा सा कर दिया। कोई दिशा या उपदिशा नहीं सूझती थी। पाण्डवसेना से अनेक वीर निकल-निकलकर आपके सैनिकों को मारने लगे। घड़ी भर में ही कौरवपक्ष की सारी सेना का सफ़ाया हो गया। राजन्, इस तरह पाण्डवों और पाञ्चालों ने आपके पुत्र की एकत्र की हुई ग्यारह अक्षौहिणी सेना का संहार कर डाला। कौरवपक्ष के हज़ारों महारथी राजाओं में एक राजा दुर्योधन ही उस समय वहाँ बचे हुए दिखाई पड़ते थे। वे भी अत्यन्त घायल होकर थक गये थे। दुर्योधन ने चारों ओर देखा कि रणभूमि ख़ाली पड़ी हुई है। कौरवपक्ष का कोई सैनिक या महारथी योद्धा नहीं देख पड़ता। सामने पाण्डवगण विजय के उल्लास से गरज रहे थे। सेना और वाहन से रहित वीर दुर्योधन शत्रुओं के सिंहनाद, शङ्खनाद और धनुष की टङ्कार सुनकर शोक, क्षोभ और निराशा से मूर्च्छितप्राय हो गये। उन्होंने उस समय उस दशा में वहाँ ठहरना ठीक नहीं समझा। वे रणभूमि से चल देने के लिए उद्यत हो गये।

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय, मेरे पक्ष की प्रायः सभी सेना जब नष्ट हो गई तब पाण्डवों
२० की कितनी सेना बच रही थी? अपने बल का क्षय देखकर अकेले रह गये अभिमानी दुर्योधन ने फिर क्या किया? मैं यह सब सुनना चाहता हूँ।

सञ्जय ने कहा—हे नरनाथ! उस समय पाण्डवों की सेना में दो हज़ार रथी, सात सौ गजारोही, पाँच हज़ार घुड़सवार और दस हज़ार पैदल बच रहे थे। इतनी सेना लेकर महावीर धृष्टद्युम्न उस समय समरभूमि में उपस्थित थे। हे भरतश्रेष्ठ! महारथी दुर्योधन जब अकेले रह गये, उन्हें कोई अपना सहायक नहीं देख पड़ा और सामने शत्रुगण गरजते हुए

नज़र आये, तब वे डर के मारे भाग खड़े हुए। उनका घोड़ा भी मर चुका था। ग्यारह अक्षौहिणी सेना के स्वामी तेजस्वी दुर्योधन उस समय अपनी गदा लेकर पैदल ही पूर्व की ओर, द्वैपायन-सरोवर की तरफ़, चल दिए। रणभूमि से कुछ दूर जाकर वे धर्मात्मा बुद्धिमान् विदुर की बातें याद करने लगे। दुर्योधन मन में कहने लगे कि दूरदर्शी विदुर ने पहले ही मेरे और सब क्षत्रियों के इस सर्वनाश का ठीक-ठीक अनुमान कर लिया था। उन्होंने जो कहा था वही हुआ।

राजन्, शोक से पीड़ित और पछता रहे दुर्योधन यों सोचते हुए द्वैपायन-सरोवर में प्रवेश करने के लिए तेज़ी से आगे बढ़ने लगे। इधर धृष्टद्युम्न सहित पाण्डव लोग क्रोधपूर्वक कौरवसेना को खोज-खोजकर मारते हुए वेग से बढ़ते आ रहे थे। पहले ही कह चुके हैं कि शक्ति, ऋष्टि, प्रास आदि शस्त्र लेकर गरज रहे कौरवपक्ष के सैनिकों को मारकर अर्जुन ने गाण्डीव धनुष के द्वारा शत्रुओं के सङ्कल्प को व्यर्थ कर दिया। अमात्य, अनुचर और बन्धु-बान्धवों सहित समग्र कौरवों को मारने के उपरान्त सफ़ेद घोड़ोंवाले रथ पर स्थित अर्जुन बहुत ही शोभायमान हुए। महाराज, हाथी-घोड़े-रथ सहित शकुनि के मारे जाने पर आपकी सेना कटे हुए महावन की तरह पृथ्वी पर बिछी हुई देख पड़ने लगी। दुर्योधन की सेना में कई लाख योद्धा थे; किन्तु उस समय कृपाचार्य, कृतवर्मा, अश्वत्थामा और दुर्योधन के सिवा और कोई महारथी जीता नहीं नज़र आता था। ३०

पाञ्चालराज धृष्टद्युम्न ने मुझे क़ैदी की हालत में देखकर हँसकर सात्यकि से कहा—इसे पकड़कर क्यों रख छोड़ा है? मार क्यों नहीं डालते? इसे जीवित रखने से क्या लाभ? धृष्टद्युम्न के वचन सुनकर ज्योंही सात्यकि ने मुझे मारने के लिए तीक्ष्ण तलवार तानी त्योंही महाप्राज्ञ महायोगी कृष्ण द्वैपायन व्यासदेव अकस्मात् वहाँ पर आ गये और कहने लगे—सञ्जय को जीवित ही छोड़ दो, मारो मत। सात्यकि ने हाथ जोड़कर व्यासदेव का सम्मान किया और मुझे छुटकारा देकर कहा—सञ्जय, तुम बेखटके चले जाओ; तुम्हारा कल्याण हो। महाराज! ४० इस तरह दोपहर ढलने के बाद मैं सात्यकि की अनुमति पाकर, कवच और शस्त्र त्यागकर,

नगर की ओर चला। मैं बेतरह घायल और खून से तर हो रहा था। नगर आते समय रणभूमि से कोस भर के फ़ासले पर मैंने अत्यन्त घायल, गदा हाथ में लिये, अकेले दुर्योधन को देखा। आँखों में आँसू भरे होने के कारण वे मुझको नहीं देख सके। मैं जब दीन भाव से वहाँ खड़ा हो गया तब उन्होंने मेरी ओर देखा। मैं भी अपने स्वामी दुर्योधन को अकेले इस दशा में देखकर दुःख और शोक से ऐसा विह्वल हो गया कि मेरे मुँह से बोल नहीं फूटा। दम भर के बाद सुस्थ होकर मैंने अपने पकड़े जाने और छूटने का सब वृत्तान्त उनसे कहा कि सात्यकि ने मुझे पकड़ लिया था और मार डालना चाहा था, किन्तु व्यासदेव की कृपा से मेरे प्राण बच गये। यह हाल सुनकर, दम भर सोचकर, सचेत हो उन्होंने अपने भाइयों का और सब सेना का हाल पूछा। मैंने आँखों देखा हुआ सब हाल उनसे कहा कि आपके सब भाई मार डाले गये और सेना भी प्रायः सब की-सब नष्ट हो गई। अब केवल अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा यही तीन बच रहे हैं। और, यह ख़बर मुझे जाते समय व्यासदेव ने दी है। हे राजेन्द्र, यह सुनकर लम्बी साँसें लेते हुए राजा दुर्योधन ने बारम्बार मुझे देखकर और मेरे शरीर पर स्नेह से हाथ फेरकर कहा—हे सञ्जय! इस समय तुम्हारे सिवा और कोई अपने पक्ष का जीवित मनुष्य मुझे नहीं देख पड़ता। उधर पाण्डव सब सकुशल और
५० सहाय-सम्पन्न हैं। ख़ैर, तुम प्रज्ञाचक्षु महाराज धृतराष्ट्र से जाकर कहना कि आपका पुत्र दुर्योधन, बेहद घायल और श्रान्त होकर किसी तरह रणभूमि से प्राण बचाकर, द्वैपायन-ह्रद में स्थित है। हाय! ऐसे सुहृद्गण, प्रिय पुत्र, भाई आदि से हीन होकर और पाण्डवों के द्वारा राज्य छिन जाने पर मुझ-सा मानी पुरुष कैसे जीता रह सकता है? तुम जाकर सब हाल सुना देना और कह देना कि मैं महारण से छुटकारा पाकर इस द्वैपायन-ह्रद में हूँ। मैं बहुत ही घायल और श्रान्त होकर भी जीवित हूँ और सरोवर में सुरक्षित रहूँगा।

महाराज, इतना कहकर राजा दुर्योधन उस सरोवर में घुस गये और जलस्तम्भन-विद्या के बल से उन्होंने सरोवर के जल को बाँध दिया। वे जब जल के भीतर चले गये तब मैंने देखा कि अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा उसी स्थान पर आ गये। वे लोग बेहद घायल हो रहे थे, उनके वाहन भी थक चुके थे। उन्होंने जब मुझे देखा तो शीघ्रता से घोड़ों को हाँककर मेरे पास आकर कहने लगे—हे सञ्जय! बड़े भाग्य की बात है कि तुम जीवित हो। हमारे राजा दुर्योधन तो जीवित और सकुशल हैं? तुम जानते हो तो बताओ, वे कहाँ हैं? मैंने कहा—महाराज सकुशल हैं और जीवित हैं। वे इसी सरोवर में छिपे हुए हैं। यह सुनकर, उस विशाल सरोवर
६० की ओर देखकर, स्वामिभक्त महात्मा अश्वत्थामा करुण स्वर से विलाप करने लगे। उन्होंने कहा—हमें धिक्कार है! बड़े दुःख की बात है कि वीर दुर्योधन को ख़बर

युद्ध से भाग कर कुरुराज ह्रद में प्रविष्ट हो गये और माया के प्रभाव से उसका जल स्तम्भित कर रक्खा ।

नहीं कि अभी हम तीन महारथी जीवित हैं। हम उनकी सहायता करते हुए शत्रुओं से अच्छी तरह युद्ध कर सकते हैं। अगर वे बाहर होते तो हम अवश्य उनको साथ लेकर शत्रुओं का सामना करते।

हे राजेन्द्र! इस तरह देर तक विलाप करके वे तीनों महारथी, पाण्डवों को रण में गरजते देखकर, वहाँ से चल दिए। मुझे भी कृपाचार्य ने अपने रथ पर बिठा लिया। मरने से बचे हुए तीनों योद्धा, सन्ध्या-समय से कुछ पहले, छावनी में पहुँच गये। उस समय सब शिविर-रक्षक सैनिक भी डरे हुए थे। आपके पुत्रों की मृत्यु का समाचार सुनकर शिविर के सब लोग शोक और दुःख के मारे चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगे। उस समय कौरवों की स्त्रियों के रक्षक वृद्ध पुरुष रानियों को लेकर नगर की ओर चल दिए। सैन्य-संहार का समाचार सुनकर सब स्त्रियाँ ज़ोर से रोने और चिल्लाने लगीं। कुररियों की तरह रो रही उन स्त्रियों के हाहाकार से वह स्थान प्रतिध्वनित हो उठा। शोक और हाहाकार कर रही स्त्रियाँ छाती और सिर पीटने लगीं, बाल नोचने लगीं। उनकी यह दशा देखकर दुर्योधन के वृद्ध अमात्यगण भी शोकाकुल हो उठे। उनकी भी आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई। दुर्योधन आदि की ७० स्त्रियों को लेकर वे लोग शिविर से नगर को चले। बेंत हाथों में लिये द्वारपालगण बहु-मूल्य सफ़ेद बिछौने और पलँग लेकर नगर को चले। अन्य लोग खच्चरों से युक्त रथों पर बैठकर, अपनी स्त्रियों को लेकर, नगर को चले। जिन नारियों को महलों में कभी सूर्य ने भी नहीं देखा होगा उन्हीं को नगर में जाते समय मार्ग में जनता ने देखा। हे भरतश्रेष्ठ! जिनके पति, पुत्र, भाई-बन्धु आदि स्वजन मारे जा चुके हैं, ऐसी सुकुमार स्त्रियाँ नगर को जाने लगीं। भीमसेन के भय से विह्वल लोग अहीरों और गड़रियों तक को देखकर डर के मारे भागने लगते थे। पाण्डवों का ऐसा भय उनको घेरे हुए था कि वे एक दूसरे को देखते हुए बड़े वेग से नगर की ओर भागे जा रहे थे।

इस तरह जब भगदड़ पड़ गई तब आपके पुत्र युयुत्सु ने, जो भाइयों के विनाश से अत्यन्त शोकाकुल हो रहे थे, यह समयोचित बात मन में विचारी कि "पराक्रमी पाण्डवों ने ग्यारह अक्षौहिणी सेना के स्वामी कुरुराज दुर्योधन को हराकर उनके सब भाइयों को और भीष्म-द्रोण-कर्ण सहित सब कौरवों को मार डाला है। सारी सेना भी नष्ट हो चुकी है। मैं पाण्डवों के पक्ष में हो गया था, इसी लिए उनके हाथों से बच गया; और, दैव मेरे अनुकूल था इसलिए कौरवपक्ष के महारथी मुझे नहीं मार सके। मतलब यह कि महाराज धृतराष्ट्र की सन्तति में भाग्यवश मैं ही बच रहा हूँ। इस समय दुर्योधन के शिविर के सभी लोग भाग ८० रहे हैं। जिन कुल-कामिनियों को पहले कभी किसी ने नहीं देखा था वे ही आज, अनाथ और शोकाकुल होकर, डर के मारे हरिणियों की तरह शङ्कित दृष्टि से चारों ओर देखती हुई जा

रही हैं। दुर्योधन के जो सचिव बच रहे थे वे राज-परिवार की स्त्रियों को लेकर नगर को जा रहे हैं। इस समय इन सबके साथ मुझे नगर में जाना चाहिए।"

राजकुमार युयुत्सु ने यों सोचकर युधिष्ठिर और श्रीकृष्ण से अपना अभिप्राय कहा और जाने की प्रार्थना की। परम कृपालु राजा युधिष्ठिर ने प्रसन्नतापूर्वक उनके विचार का अनुमोदन किया और स्नेहपूर्वक गले लगाकर उन्हें नगर जाने की आज्ञा दे दी। तब युयुत्सु ने रथ पर बैठकर वेग से घोड़े हाँक दिये और बहुत शीघ्र वे रानियों और अमात्यों के पास पहुँच गये। इस तरह कौरव-कुल की कामिनियों को लिये हुए वैश्या-पुत्र युयुत्सु उस समय हस्तिनापुर में पहुँचे जब सूर्य अस्त हो रहे थे। उनकी आँखों में आँसू भरे थे, कंठ रुँधा हुआ था। हस्तिनापुर में प्रवेश करने के बाद उन्हें विदुर मिले। विदुर उस समय राजा के पास से आ रहे थे। वे भी शोक से व्याकुल थे और आँखों में आँसू भरे हुए थे। युयुत्सु ने उनको प्रणाम किया। सत्यनिष्ठ महात्मा विदुर ने स्नेह के साथ युयुत्सु से कहा—पुत्र, कौरवों के इस भयङ्कर जनक्षय में तुम जीवित हो, यही बड़े भाग्य की बात है। किन्तु तुम्हारे साथ मैं राजा दुर्योधन को नहीं

९० देखता, इसका क्या कारण है? सब वृत्तान्त कहो।

युयुत्सु ने कहा—हे महाभाग! सजातीय-पुत्र-बान्धवों सहित शकुनि के मारे जाने पर राजा दुर्योधन का सब परिवार नष्ट हो गया। तब वे भय-विह्वल होकर, मरे हुए घोड़े को छोड़कर, अकेले ही पूर्व दिशा की ओर भाग खड़े हुए। राजा के भाग जाने पर शिविर के सब लोग डर-कर नगर की ओर भागने लगे। उस समय अन्तःपुराध्यक्ष अमात्यगण राजा की और उनके भाइयों की स्त्रियों को सवारियों पर विठाकर नगर की ओर भागे। तब मैं भी राजा युधिष्ठिर और श्रीकृष्ण से आज्ञा लेकर उनके साथ हस्तिनापुर को चला आया।

युयुत्सु के समयोचित वचन सुनकर सर्वधर्मज्ञ विदुर बहुत सन्तुष्ट हुए और उनकी प्रशंसा करके कहने लगे—वत्स, तुमने यह समयानुकूल कार्य करके अपने कुलधर्म की रक्षा की है। तुम्हारा यह कार्य दयापूर्ण और उचित हुआ है। सूर्य को देखकर जैसे प्रजा प्रसन्न होती है वैसे ही, वीरों का नाश करनेवाले, घोर संग्राम से तुमको सकुशल लौट आये देखकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ और इसे मैं बड़े भाग्य की बात समझता हूँ। मैंने बहुत बार समझाया और पाण्डवों ने भी शान्ति के लिए बहुत प्रार्थना की; परन्तु अदूरदर्शी, लोभी, अन्ध महाराज ने नहीं माना। मानते कैसे, दैव ने उनकी बुद्धि भ्रष्ट कर रक्खी थी। इस समय वे पुत्रशोक से

१०० पीड़ित हैं। तुम उनके लिए अन्धे की लकड़ी और सहारा होओगे। आज तुम यहीं विश्राम करो, सवेरे महाराज युधिष्ठिर के पास चले जाना।

आँखों में आँसू भरे हुए विदुर, गद्गद कण्ठ से, युयुत्सु से यों कहकर उनको साथ लिये हुए फिर राजभवन में गये। उस समय पुरवासी लोग अत्यन्त दुःख से हाहाकार मचा रहे

थे। राजभवन निरानन्द, श्रीहीन, शून्यप्राय और उजड़ा सा दिखाई दे रहा था। वहाँ की दशा देखने से दुःख और भी अधिक बढ़ जाता था। धर्मज्ञ विदुर ने शोक से साँसें लेते हुए व्याकुल भाव से धीरे-धीरे नगर में प्रवेश किया। युयुत्सु भी उस रात को अपने भवन में रहे। उनके स्वजन उन्हें युद्ध से बच आने की बधाई देने लगे। परन्तु महायुद्ध करके परस्पर किया जानेवाला कुरु-कुल का विनाश उन्हें किसी तरह नहीं भूलता था। बारम्बार उस सर्वनाश का स्मरण करके वे दुःखित ही बने रहे। १०५

गदायुद्धपर्व

तीसवाँ अध्याय

पाण्डवों को दुर्योधन का पता मिलना और अश्वत्थामा आदि से दुर्योधन का संवाद

धृतराष्ट्र ने पूछा—हे सञ्जय! पाण्डवों ने जब हमारे पक्ष की सारी सेना नष्ट कर डाली तब बचे हुए अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कृतवर्मा और मन्दमति दुर्योधन ने फिर क्या किया?

सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र! जब राजपत्नियाँ भाग गईं और सारा शिविर ख़ाली हो गया तब विजयी पाण्डवों के आनन्द-कोलाहल को निकट ही सुनकर अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा ने उस शून्य स्थान में रहना पसन्द नहीं किया। वे लोग वहाँ से द्वैपायन-ह्रद की ओर चल दिये। उधर भाइयों सहित राजा युधिष्ठिर प्रसन्नतापूर्वक, दुर्योधन को मारने के लिए, उस स्थान में पहुँचे जहाँ कौरवसेना ने संग्राम किया था। पूर्ण विजय प्राप्त करने की इच्छा से पाण्डवगण चारों ओर दुर्योधन को ढूँढ़ने लगे; परन्तु वे कहीं नहीं देख पड़े; क्योंकि वे तो पहले ही युद्ध छोड़कर पैदल चल दिए थे और माया से सरोवर के जल को बाँधकर उसके भीतर छिप रहे थे। पाण्डव लोग दुर्योधन को खोजते-खोजते थककर हैरान हो गये। तब वे लाचार होकर अपने शिविर को लौट गये और अपनी सेना के साथ विश्राम करने लगे।

पाण्डवों ने जब लौटकर शिविर में विश्राम किया तब अश्वत्थामा, कृतवर्मा और कृपाचार्य धीरे-धीरे उसी सरोवर के तट पर पहुँचे, जिसमें दुर्योधन छिपे हुए थे। उन्होंने वहाँ पहुँचकर जल में स्थित दुर्द्धर्ष दुर्योधन को सम्बोधन करके कहा—महाराज! उठो, हमारे साथ चलकर १० शत्रुओं से युद्ध करो। या तो उन्हें जीतकर पृथ्वी का राज्य करो और या उनके हाथ से मरकर स्वर्ग को जाओ। हे दुर्योधन, तुम पाण्डवों की भी बहुत सी सेना को नष्ट कर चुके हो।

जो थोड़ी सी सेना उधर बच रही है वह भी तुम्हारे बाणों से बेतरह घायल और इसी से निर्बल हो रही है। शत्रु लोग केवल तुम्हारे ही वेग को नहीं सह सकते; उस पर जब हम तीनों योद्धा प्राणों की ममता छोड़कर तुम्हारी रक्षा करेंगे तब वे कभी नहीं ठहर सकेंगे। इसलिए उठो।

दुर्योधन ने तीनों महारथियों के वाक्य सुनकर कहा—हे महारथियो, बड़े भाग्य की बात है कि मैं तुमको ऐसे जन-संहार से बचा हुआ और जीवित देख रहा हूँ। मैं आज विश्राम कर लेना चाहता हूँ। तुम लोग भी बहुत घायल हो और थक भी गये हो। उधर पाण्डव लोग प्रबल हैं, उनके पास सेना भी है। इसलिए आज युद्ध करना मैं पसन्द नहीं करता। कल हम लोग फिर शत्रुओं से युद्ध करेंगे। हे श्रेष्ठ वीरो, यह कोई आश्चर्य नहीं है जो तुम लोगों के ऐसे उच्च विचार हैं और तुम मुझे उत्साहित कर रहे हो। हम लोगों में युद्ध करने की श्रेष्ठ शक्ति तो है तथापि यह समय पराक्रम दिखाने और युद्ध करने का नहीं है। मैं रात भर विश्राम कर लूँ तो सवेरे अवश्य तुम लोगों के साथ चलकर शत्रुओं से युद्ध करूँगा।

सञ्जय कहते हैं कि तब वीर अश्वत्थामा ने दुर्योधन को सम्बोधन करके कहा—हे कुरुराज! उठो, तुम्हारा भला हो। हम लोग ही तुम्हारे शत्रुओं का संहार करेंगे। हे वीरवर! मैं इष्टापूर्त (कुवाँ, बावली, तालाब आदि की स्थापना के पुण्य), दान, सत्य और जप-तप की शपथ २० खाकर कहता हूँ कि अवश्य सब सोमकों (पाञ्चालों) का संहार करूँगा। मैं अगर प्रातःकाल के पहले ही शत्रुओं को न मार डालूँ तो मुझे सज्जनोचित यज्ञकर्ता लोगों की, पुण्यात्माओं की, प्रसन्नता और गति न प्राप्त हो। राजन्! सच कहता हूँ, आज सभी पाञ्चालों को मारे बिना मैं अपना कवच नहीं खोलूँगा। तुम उठो और चलो, मैं अवश्य अपनी प्रतिज्ञा पूरी करूँगा।

राजन्, महारथी लोग जिस समय इस तरह दुर्योधन से बातें कर रहे थे उसी समय कुछ शिकारी बहेलिये उस जगह दैवयोग से आ निकले। वे शिकार करके बहुत सा मांस लादे चले आ रहे थे और थककर पानी पीने सरोवर के तट पर आ पहुँचे। बहेलिये भीमसेन पर बड़ी भक्ति रखते थे और नित्य उनको मांस लाकर देते थे। वे वहाँ एकान्त में

बैठे-बैठे दुर्योधन के साथ अश्वत्थामा आदि की बातचीत सुनते रहे। उधर अश्वत्थामा आदि तीनों योद्धा युद्ध के लिए हठ कर रहे थे और दुर्योधन उस समय युद्ध नहीं करना चाहते थे। अश्वत्थामा का युद्ध के लिए आग्रह और दुर्योधन का उसे स्वीकार न करना, सब व्याधों ने सुन लिया। इससे उन्हें मालूम हो गया कि दुर्योधन सरोवर के जल में छिपे हुए हैं। पहले युधिष्ठिर ने दुर्योधन की खोज करते-करते उनसे भी दुर्योधन के बारे में पूछा था। इस समय अकस्मात् दुर्योधन का पता पाकर शिकारियों को बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने दुर्योधन के बारे में युधिष्ठिर के प्रश्न का स्मरण करके धीरे-धीरे आपस में कहा कि आओ चलें, राजा युधिष्ठिर ३० को दुर्योधन का पता बता दें; वे हमको पुरस्कार में बहुत सा धन देंगे। यह स्पष्ट है कि कुरुराज दुर्योधन इसी सरोवर में छिपे हैं। इसलिए आओ, हम लोग राजा युधिष्ठिर और भीमसेन को यह सूचित कर दें। वे हमको निहाल कर देंगे। फिर हमें नित्य कष्ट करके यह सूखा मांस नहीं लाना और लादना पड़ेगा। महाराज! वे लोभी व्याध इस तरह सलाह करके, मांस के बोझ लादकर, शीघ्रता के साथ पाण्डवों के शिविर की ओर चले।

उधर विजयी पाण्डवों ने जब समरभूमि में दुर्योधन को कहीं नहीं देखा तब अपने अपराधी मायावी पापमति दुर्योधन का पता लगाने के लिए चारों ओर गुप्तचर भेजे। [क्योंकि वे दुर्योधन को मारकर कलह की जड़ उखाड़ डालना चाहते थे।] जासूसों ने बहुत ढूँढ़ा, पर दुर्योधन का पता नहीं चला। अंत को हारकर लौटकर उन्होंने युधिष्ठिर से कहा—महाराज, राजा दुर्योधन का पता नहीं लगता; न जाने वे कहाँ भागकर चले गये हैं।

दूतों के ये वचन सुनकर युधिष्ठिर बहुत चिन्तित हुए। वे उदास होकर बारम्बार साँसें लेने लगे। इसी बीच में दीन चिन्तित पाण्डवों के पास शिविर में वे व्याध आ गये। ४० दुर्योधन का पता पाकर, धन पाने की आशा से, उनके हर्ष का ठिकाना नहीं था। पहरेदारों ने रोका भी, परन्तु वे नहीं रुके; सीधे भीमसेन के पास पहुँचे। उन्होंने जो कुछ देखा और सुना था, आद्योपान्त महाबली भीमसेन से कह दिया। दुर्योधन का पता पाकर भीमसेन ने उन्हें बहुत सा धन देकर सन्तुष्ट करके बिदा किया।

अब आनन्दमग्न भीमसेन ने धर्मराज के पास जाकर उनसे कहा कि राजा दुर्योधन का पता मेरे व्याध लगा लाये हैं। जिसके लिए आप इतने चिन्तित हो रहे हैं वह मायावी दुष्ट दुर्योधन, माया से जलस्तम्भन करके, द्वैपायन-सरोवर के भीतर छिपा हुआ है। भीमसेन के मुँह से ये प्रिय वचन सुनकर अजातशत्रु युधिष्ठिर और उनके भाई अत्यन्त प्रसन्न हुए। वीर दुर्योधन को जल में छिपा हुआ जानकर श्रीकृष्ण सहित पाण्डवगण फ़ौरन् वहाँ से सरोवर की ओर चल दिए। पाण्डव और पाञ्चालगण आनन्द की अधिकता से गरजने और किलकारियाँ मारने लगे। पाञ्चाल लोग कुलकते, उछलते और यह कहते हुए चले कि पापी दुर्योधन का पता लग

गया। तेज़ी से वाहनों और रथों को दौड़ाते चले जा रहे वीरों का तुमुल कोलाहल आकाश
५८ तक पहुँच गया। यद्यपि उन लोगों के वाहन थके हुए थे, किन्तु फिर भी वे प्रसन्नतापूर्वक दुर्योधन-वध के लिए युधिष्ठिर के साथ हो लिये। अर्जुन, भीमसेन, नकुल, सहदेव, पाञ्चाल-पति धृष्टद्युम्न, अपराजित शिखण्डी, उत्तमौजा, युधामन्यु, महारथी सात्यकि, द्रौपदी के पुत्र, बचे हुए पाञ्चालगण, घोड़ों के सवार, हाथियों के सवार, पैदल योद्धा आदि सब युधिष्ठिर के साथ उसी द्वैपायन-सरोवर को जाने लगे।

यथासमय राजा युधिष्ठिर उसी भयावने द्वैपायन-ह्रद के पास पहुँच गये जहाँ दुर्योधन छिपे हुए थे। वह सरोवर दूसरे सागर के समान था। उसमें मधुर शीतल जल भरा हुआ था और आसपास का दृश्य बड़ा ही मनोहर था। दैवी माया के प्रभाव से जलस्तम्भन करके उसी के भीतर गदा लिये दुर्योधन लेटे थे। कोई मनुष्य उनको नहीं देख सकता था। जल के भीतर स्थित राजा दुर्योधन ने पाण्डवसेना का वह मेघगर्जन-सदृश कोलाहल सुना। महाराज, इसी बीच में राजा युधिष्ठिर अपने भाइयों के साथ, दुर्योधन को मारने के लिए, उस सरोवर के पास पहुँच गये। पाण्डवसेना के शङ्खनाद और रथों की गति से उड़ी हुई धूल से आकाश
६० परिपूर्ण हो गया और पृथ्वीतल प्रतिध्वनित हो उठा। अश्वत्थामा, कृतवर्मा और कृपाचार्य, तीनों महारथी उस समय तक वहाँ मौजूद थे। युधिष्ठिर की सेना का कोलाहल समीप ही सुनकर उन्होंने दुर्योधन से कहा—राजन्, वह देखो, विजयी हर्षयुक्त पाण्डव इधर ही आ रहे हैं। आप अनुमति दीजिए, हम यहाँ से हट जाना चाहते हैं; क्योंकि इस समय हमारा यहाँ रहना ठीक नहीं है। सम्भव है, हमें यहाँ देखकर वे समझ जायँ कि आप यहीं छिपे हैं। हे राजेन्द्र, दुर्योधन ने उन महारथियों को जाने की आज्ञा देकर माया से जलस्तम्भन कर दिया। वे महारथी शोक से अत्यन्त व्याकुल होकर वहाँ से दूर चले गये। मार्ग में एक बड़ा बर्गद का वृक्ष देख-कर, उसी के नीचे बैठकर, अत्यन्त घायल और थके हुए अश्वत्थामा, कृतवर्मा और कृपाचार्य विश्राम और राजा दुर्योधन के बारे में चिन्ता करने लगे। वे लोग सोचने लगे कि दुर्योधन इधर जलस्तम्भन करके सरोवर में लेटे हुए हैं और उधर ख़बर पाकर, युद्ध की इच्छा रखनेवाले, पाण्डव वहाँ पहुँच गये हैं। पाण्डवगण किस तरह राजा दुर्योधन को पावेंगे? अगर वे राजा का पता पा गये तो किस तरह युद्ध होगा? राजा की क्या दशा होगी?

महाराज, इस तरह चिन्ता कर रहे उन तीनों वीरों ने रथ वहीं खड़े कर दिये, घोड़ों को
६८ खोल दिया और आप बैठकर विश्राम करने लगे।

———

इकतीसवाँ अध्याय

युधिष्ठिर और दुर्योधन की बातचीत

सञ्जय ने कहा—महाराज ! अश्वत्थामा आदि के चले जाने पर पाण्डव लोग उस सरोवर के किनारे पहुँचे जहाँ दुर्योधन छिपे हुए थे। हे कुरुश्रेष्ठ ! विशाल द्वैपायन-ह्रद के किनारे पहुँचकर पाण्डवों ने देखा कि दुर्योधन ने दैवी माया से जलस्तम्भन कर रक्खा है। तब धर्मराज ने कहा—हे श्रीकृष्ण ! देखो, दुष्ट दुर्योधन ने जल में माया का प्रयोग कर रक्खा है। वह जल को दैवी माया से रोककर उसके भीतर छिपा हुआ है; अब उसको मनुष्य से तनिक भी डर नहीं है। उस कपटी ने यद्यपि माया का सहारा लिया है तो भी मैं उसे जीता नहीं छोड़ूँगा। अगर साक्षात् वज्रपाणि इन्द्र भी दुर्योधन की सहायता करेंगे, तो भी उसे सब लोग युद्ध में मरा हुआ देखेंगे।

धर्मराज के वाक्य सुनकर श्रीकृष्ण ने कहा—हे युधिष्ठिर, मायावी को तो माया के ही द्वारा मारना चाहिए। आप भी माया (कौशल) से ही मायावी कुरुराज की इस माया को नष्ट करें। हे भरतश्रेष्ठ, शत्रु जिस ढङ्ग से जो करे उसे उसी ढङ्ग से (वह ढङ्ग चाहे धर्म के अनुकूल हो और चाहे प्रतिकूल) निष्फल करना चाहिए। मतलब यह कि छली और शठ को छल और शाठ्य से ही मारना राजनीति है। आप भी कोई ऐसा कौशल करें कि मायावी दुर्योधन सरोवर से बाहर निकल आवे। बस, तब उसे मार डालिएगा। देखिए, पूर्वसमय में इन्द्र ने कौशल से ही दैत्य-दानवों का संहार किया है। वामनावतार विष्णु ने प्रबल बलि दानव को कौशल से ही क़ैद किया और उससे त्रिलोकी का राज्य लेकर देवताओं को दिया है। महाबली वृत्रासुर और हिरण्यकशिपु आदि दानव कौशल से ही मारे गये हैं। मर्यादा-पुरुषोत्तम १० रामचन्द्र ने रावण को, मय बन्धु-बान्धवों के, कौशल से ही मारा है। मेरे कौशल से ही पूर्व समय में महाबली विप्रचित्ति दानव और तारकासुर, दोनों देवशत्रु मारे गये हैं। कौशल और उपाय से ही वातापि, इल्वल, त्रिशिरा, सुन्द और उपसुन्द नामक अजेय असुर मारे गये हैं। कौशल के बल से ही इन्द्र त्रिभुवन का राज्य कर रहे हैं; हज़ारों दैत्य, दानव और राक्षस मारे गये हैं। इसलिए आप भी इस समय कौशल से ही दुर्मति दुर्योधन का वध करें। हे धर्मराज ! कौशल और उपाय ही सबसे बढ़कर है, आप कौशल से काम लें।

सञ्जय कहते हैं कि तब युधिष्ठिर ने हँसकर, जल में स्थित, आपके पुत्र को सम्बोधन करके कहा—हे सुयोधन ! सब क्षत्रियों का और अपने कुल का नाश कराकर अब क्यों जल में छिपकर माया का आश्रय ले रहे हो ? तुम जीवन की रक्षा करने को सरोवर में घुसकर छिप रहे हो, किन्तु यह नहीं हो सकता। राजन्, बाहर निकलकर हम शत्रुओं से युद्ध करो। हे नर-

श्रेष्ठ, इस समय तुम्हारा वह दर्प और अभिमान कहाँ चला गया है, जो तुम डरकर—जलस्तंभन
२० करके—सरोवर के भीतर जा छिपे हो ? लोग जन-समाज में तुमको शूर कहा करते हैं; किन्तु
इस समय तुमको जान बचाने के लिए जल में छिपते देखकर जान पड़ता है कि वह तुम्हारा शूर
कहलाना व्यर्थ है। राजन्, तुम अच्छे कुल में उत्पन्न क्षत्रिय हो, इसलिए उठो और युद्ध
करो। ख़ासकर तुम कुरुकुल में उत्पन्न हुए हो, इसलिए रण से भागना कदापि तुम्हें नहीं
सोहता। अपने कुल और जन्म का ख़याल करो। तुम कौरववंश में उत्पन्न और आत्मश्लाघा
करनेवाले अभिमानी पुरुष होकर इस समय युद्ध से डरकर जल में छिपे हुए हो। संग्राम से
विमुख होकर छिपना क्षत्रिय का सनातन धर्म नहीं है; रण से भागना तो कायरों का काम है।
इससे निन्दा होती है, नरक में गिरना पड़ता है। समर-सागर से उत्तीर्ण हुए बिना ही तुम कैसे
जीवित रहना चाहते हो ? इन पुत्र, पिता, भाई, मित्र, सम्बन्धी, मामा, बन्धु-बान्धव आदि प्रिय
स्वजनों का नाश कराकर और उनको मृत देखकर भी कैसे तुम जल में जा छिपे हो ? हे दुर्मति !
तुम अपने को शूर समझते हो परन्तु वास्तव में शूर नहीं हो। सब लोगों के सामने अपने को
शूर कहकर तुम वृथा ही डींग मारते थे; क्योंकि शूर लोग शत्रुओं को देखकर जीते-जी कभी
नहीं भागते। अजी बतलाओ तो, तुमने किस लिए इस समय संग्राम का त्याग किया है ?
तुम वानप्रस्थ हो गये हो, या शस्त्रत्याग कर चुके हो अथवा नपुंसक हो ? यही लोग संग्राम
त्याग करते हैं। राज्यार्थी होने के कारण तुम वानप्रस्थ नहीं हो, गदा साथ रखने के कारण तुम
न्यस्तशस्त्र भी नहीं हो और अपने को नामर्द कहना भी तुम्हें नहीं सोहता। फिर क्यों युद्ध
छोड़ते हो ? मृत्यु का भय छोड़कर उठो और युद्ध करो। सब सेना को और भाइयों को मरवा-
कर अब तुमको, इस तरह छिपकर, जीवित रहने की इच्छा नहीं करनी चाहिए। तुम्हारे ऐसा
३० मानी और क्षत्रिय-धर्म का आश्रय ग्रहण करनेवाला पुरुष कभी यों जीना नहीं पसन्द करेगा।
पहले मोहवश कर्ण, शकुनि, दुःशासन आदि के बल पर तुमने हमारे साथ दुर्व्यवहार किया और
अन्त को सन्धि का प्रस्ताव भी नहीं स्वीकार किया। तुम समझते थे कि कोई तुम्हें जीत या
मार नहीं सकता; किन्तु यह तुम्हारी भूल थी। पहले जो भारी पाप किया है उसका फल तुमको
भोगना ही पड़ेगा, इसलिए उठकर युद्ध करो। तुम सरीखे वीर और मानी पुरुष को भागना
और छिपना न रुचना चाहिए। हे सुयोधन ! तुम्हारा वह पहले का मान, अभिमान,
पौरुष, पराक्रम और तर्जन-गर्जन कहाँ चला गया ? वह तुम्हारी अस्त्र-निपुणता कहाँ जाती
रही ? जलाशय में छिपे हुए क्या सो रहे हो ? उठो, क्षत्रिय-धर्मानुसार युद्ध करो। या तो
युद्ध में हमको परास्त करके पृथ्वी का राज्य करोगे या हमारे हाथ से मारे जाओगे।
विधाता ने तुम सरीखे क्षत्रियों का यही सनातन धर्म नियत किया है। तुम इस समय उसी
धर्म का पालन करो और अपना पौरुष दिखलाओ।

सञ्जय कहते हैं कि महाराज, जल में स्थित राजा दुर्योधन ने बुद्धिमान् युधिष्ठिर के ये वचन सुनकर कहा—हे युधिष्ठिर! बुरी हालत में, सङ्कट में पड़कर, प्राणियों के मन में भय का होना कोई आश्चर्य की बात नहीं। किन्तु सच जानो, मैं प्राणभय से भागकर नहीं छिपा हूँ। रण में मेरा रथ, तरकस, पार्श्वरक्षक, सारथी और कवच कुछ नहीं रहा। अपने को अकेला सैन्य-सामन्त-हीन और श्रान्त देखकर विश्राम करने के लिए ही मैं इस सरोवर में आकर लेटा हूँ। डर से, खेद से या प्राणरक्षा के ख़याल से मैं यहाँ नहीं छिपा हूँ। केवल थकन दूर करने और स्वस्थ ४० होने के लिए ही मैंने यह कार्य किया है। हे युधिष्ठिर! इसलिए आज तुम भी अपने अनुगामियों सहित विश्राम कर लो। कल सवेरे उठकर मैं तुम सबसे अकेला ही युद्ध करूँगा।

धर्मराज ने कहा—हे दुर्योधन, हम लोग अच्छी तरह विश्राम करके बहुत देर से तुम्हारी खोज कर रहे हैं। इसलिए अब तुम उठकर बाहर आओ और युद्ध करो। या तो पाण्डवों को मारकर विशाल राज्य प्राप्त करो, या हमारे हाथ से मरकर वीरलोक को जाओ। दुर्योधन ने कहा—हे युधिष्ठिर, जिन कौरवों और भाइयों के लिए मैं राज्य चाहता था वे सब समर में मरे पड़े हैं। सारी पृथ्वी क्षत्रिय वीरों और धन-धान्य से ख़ाली हो गई है। विधवा स्त्री के समान श्रीहीन इस पृथ्वी के राज्य को अब मैं नहीं चाहता। हे युधिष्ठिर, यद्यपि इस समय भी पाञ्चालों और पाण्डवों के उत्साह को नष्ट करके तुमको परास्त करने की मैं आशा रखता हूँ, तथापि इस समय मेरी युद्ध करने की इच्छा नहीं है। भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य और कर्ण की मृत्यु हो जाने के कारण मैं अत्यन्त शोकाकुल हूँ और इसी से युद्ध करने की अब मुझे रुचि नहीं है। राजन्, अब तुम अकेले निष्कण्टक पृथ्वी का राज्य करो। कौन राजा सहायहीन होकर राज्य करना चाहेगा? इस तरह के अनुगत प्रिय सुहृद्गण, पुत्र, भाई, पिता आदि मारे जा चुके और राज्य तुमने हर लिया। ऐसी अवस्था में मुझ सरीखा कौन पुरुष जीवित रहना चाहेगा? मैं मृगछाला पहन करके वन में जीवन बिताऊँगा; क्योंकि अपने सहायकों और अनुगामियों के मारे जाने से अब मुझे राज्य की चाह नहीं है। बान्धवों से, हाथी-घोड़े आदि की सेना से, ५० क्षत्रिय योद्धाओं से और धन-रत्नों से हीन यह पृथ्वी अब तुम्हारी ही है। तुम निष्कण्टक और निश्चिन्त होकर इस अनाथ पृथ्वी का राज्य करो।

सञ्जय कहते हैं कि महाराज, आपके पुत्र के ये करुण वचन सुनकर युधिष्ठिर ने कहा—हे कुरुराज, तुम जल के भीतर से आर्त प्रलाप मत करो। पक्षी के चिल्लाने के समान ये तुम्हारे दीन वाक्य मेरे हृदय में दया का सञ्चार नहीं कर सकते। हे सुयोधन! इस समय तो तुम पृथ्वी को देने में समर्थ नहीं हो, किन्तु यदि तुम समर्थ भी होते तो मैं तुम्हारी दी हुई पृथ्वी का राज्य कभी न लेता। दान लेना क्षत्रियों के लिए अधर्म है, इस कारण तुम्हारी दी हुई पृथ्वी को मैं अधर्म से कभी न लेता। तुम्हारी दी हुई पृथ्वी को न लेकर मैं युद्ध में तुमको

जीतकर पृथ्वी का शासन करूँगा। इस समय जब पृथ्वी देने में असमर्थ हो तब देना चाहते हो, किन्तु जब तुम इस पृथ्वी के स्वामी थे और हमको दे सकते थे तब सन्धि का प्रस्ताव किया जाने पर भी तुमने हमें हमारा राज्य नहीं दिया। अगर उस समय दे देते तो क्यों इस तरह कौरवकुल का और पृथ्वी के सब क्षत्रियों का सर्वनाश होता? पहले हम कुल की रक्षा के ६० लिए तुमसे धर्मानुसार अपना राज्य माँग रहे थे, तब तो तुमने श्रीकृष्ण को सूखा जवाब दे दिया और अब सारी पृथ्वी देना चाहते हो! इस समय तुम्हें कैसा चित्तभ्रम हो गया है? शत्रुओं के वशवर्त्ती होकर कौन राजा उन्हें पृथ्वी देने की इच्छा प्रकट करेगा? यह कैसी तुम्हारी मूर्खता है? हे कौरवनन्दन, इस समय तुम न तो ख़ुशी से पृथ्वी का राज्य दे सकते हो और न बलपूर्वक छीन ही सकते हो। ऐसी दशा में तुम्हारा यह कहना कि मैंने तुमको सारी पृथ्वी दे दी, पागलपन के सिवा और कुछ नहीं है। इसलिए अगर तुममें शक्ति है तो संग्राम में मुझे जीतकर इस पृथ्वी का पालन करो। पहले तो तुम सुई की नोक भर भी पृथ्वी मुझे देने को तैयार नहीं थे, फिर इस समय सम्पूर्ण पृथ्वी का राज्य कैसे दे रहे हो? इस तरह ऐश्वर्य को पाकर, चिरकाल तक राज्यशासन करके, फिर कौन मूढ़ मनुष्य शत्रु को पृथ्वी दे देना चाहेगा? तुम मूर्खता के कारण इस बात को समझकर भी नहीं समझते। कुछ भी हो, तुम ख़ुशी से पृथ्वी देना चाहते हो तो भी मेरे हाथ से जीते नहीं बचोगे। बस, यही हो सकता है कि या तुम हमें हराकर इस पृथ्वी का शासन करो और या युद्ध में हमारे हाथ से मरकर वीरों के योग्य श्रेष्ठ ब्रह्मलोक को जाओ। मैं और तुम, दोनों अगर जीते रहेंगे तो संसार को हमारी जय-पराजय का निश्चय नहीं होगा। इस समय तुम्हारा जीवन मेरे हाथ में है। मैं चाहूँ तो तुम्हें जीता छोड़ दूँ, पर तुम अपनी इच्छा से जीवित नहीं रह सकते। हे दुर्मति दुर्योधन! स्मरण करो, पहले तुमने हम लोगों को आग में जलाना चाहा था; साँपों से कटाकर—विष देकर—जल में डुबाकर—तरह-तरह से भीमसेन की हत्या करनी चाही थी; कपट के पाँसों से हमारा सर्वस्व और राज्य हर लिया; भरी सभा में दुर्वचन कहकर अपमान किया और द्रौपदी को सभा में लाकर केश पकड़कर असीम कष्ट दिया। हे पापी, इन्हीं सब कारणों से मैं तुम्हें जीता नहीं छोड़ूँगा। उठो-उठो, निकलकर युद्ध करो। युद्ध ही तुम्हारे लिए श्रेयस्कर होगा।

हे राजेन्द्र, युधिष्ठिर के सिवा अन्य पाण्डव और पाञ्चालगण भी तरह-तरह के निष्ठुर ७३ वचन कहकर दुर्योधन को पीड़ित करने लगे।

बत्तीसवाँ अध्याय

कटु वचनों से उत्तेजित दुर्योधन का जल के बाहर निकलना और युधिष्ठिर से बातचीत करना

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय, मेरा पुत्र दुर्योधन स्वभाव से ही अभिमानी और क्रोधी है। उसने कभी किसी की झिड़की नहीं सुनी। राजा होने के कारण सदा सब लोग उसका सम्मान करते थे। वह ऐसा अभिमानी था कि सिर पर छत्र लगने पर उसकी छाया को भी नहीं सह सकता था। उसे सूर्य का प्रताप भी असह्य था। उसने भला शत्रुओं के कठोर वचन कैसे सुने होंगे! हे सूत, तुमने प्रत्यक्ष देखा है कि म्लेच्छ, वनवासी और सम्पूर्ण पृथ्वी के लोग दुर्योधन की कृपा के भिखारी थे। बड़े-बड़े राजा उसकी कृपादृष्टि से निहाल हो जाते थे। जिसकी कृपा से सम्पूर्ण पृथ्वी का पालन होता था उस दुर्योधन ने, अपने भृत्यों से हीन होकर, बारम्बार शत्रुओं की—ख़ासकर पाण्डवों की—झिड़कियाँ, कठोर वचन और शत्रुओं का जयनाद सुनकर पाण्डवों से क्या कहा?

सञ्जय ने कहा कि भाइयों सहित युधिष्ठिर ने जब कटु वचन कहकर बारम्बार तिरस्कार किया तब सङ्कट में पड़े हुए, जल में स्थित, राजा दुर्योधन दुःख से गर्म लम्बी साँसें लेते हुए क्रोध के मारे हाथ मलने लगे। उन्होंने उत्तेजित होकर शत्रुओं से युद्ध करने का निश्चय कर लिया और फिर कहा—हे पाण्डवो! देखो तुम लोगों के सहायक सुहृद् सब मौजूद हैं; रथ, वाहन, शस्त्र की भी कमी नहीं है। इधर मैं अकेला, शस्त्रहीन और रथ-रहित हूँ। ऐसी अवस्था में रथ पर सवार, सशस्त्र तुम लोगों से पैदल शस्त्रहीन मैं अकेला कैसे युद्ध कर सकता हूँ? तुम लोग एक-एक करके मुझसे युद्ध करो; क्योंकि अत्यन्त घायल, कवचहीन, थके हुए, विपत्तिग्रस्त, वाहन और सैनिकों से रहित एक का एक साथ अनेक से युद्ध न्यायसङ्गत नहीं है। मैं न तो तुमसे डरता हूँ और न अर्जुन, भीमसेन, नकुल, सहदेव और सात्यकि सहित श्रीकृष्ण से डरता हूँ; मुझे धृष्टद्युम्न आदि पाञ्चालों और अन्य सब तुम्हारे सैनिकों से भी डर नहीं है। मैं क्रुद्ध होकर अकेला ही तुम सबको जीतने का दम रखता हूँ। हे जनाधिप, सज्जनों की कीर्ति धर्म से होती है। मैं उसी धर्म और कीर्ति की रक्षा करता हुआ कहता हूँ कि जल से निकलकर सबसे क्रमशः युद्ध करूँगा और युद्ध के लिए सामने उपस्थित हर एक शत्रु को मारूँगा। रथहीन होकर भी मैं आज तुम सशस्त्र रथ-वाहन-युक्त शत्रुओं को वैसे ही मारूँगा जैसे सवेरे सूर्यदेव अपने तेज से नक्षत्रों को नष्ट करते हैं। हे पाण्डवो! ठहरो, मैं अपने तेज और वेग से तुम पाँचों भाइयों को मारकर मारे गये बाह्लीक, द्रोण, भीष्म, कर्ण, जयद्रथ, भगदत्त, शल्य, भूरिश्रवा, अपने पुत्रगण, शकुनि आदि मित्रों, सुहृदों और बान्धवों का बदला लूँगा।

१०

२२

आपके पुत्र दुर्योधन इतना कहकर जब चुप हो रहे तब युधिष्ठिर ने कहा—हे सुयोधन, बड़े भाग्य की बात है कि तुम क्षत्रियधर्म को जानते और मानते हो और युद्ध ही करना चाहते हो। बड़ी बात है कि तुम संग्राम करना जाननेवाले शूर ही हो और अकेले ही क्रम से हम सबसे लड़ना चाहते हो। अच्छी बात है, मनमाने शस्त्र लेकर तुम अकेले हममें से किसी एक से युद्ध करो। हम सब दर्शक-रूप से तुम्हारा युद्ध देखेंगे। हे वीर, मैं तुमको यह इष्ट वर देता हूँ कि हम पाँचों भाइयों में से किसी एक को भी अगर तुम मार लोगे तो मैं अपने को परास्त समझकर राज्य का दावा छोड़ दूँगा; तुम्हीं राजा हो जाना।

दुर्योधन ने कहा—हे धर्मराज, यदि तुम एक-एक से युद्ध करने की मेरी इच्छा पूर्ण करते हो तो मैं इस अपनी प्रिय गदा से ही युद्ध करना पसन्द करता हूँ। मैं तुममें सबसे अधिक बली पाण्डव से ही युद्ध करना चाहता हूँ। तुम पाँचों भाइयों में जो अपने को मेरा वेग और पराक्रम सह सकनेवाला समझे वही एक, पैदल, गदा लेकर मुझसे युद्ध करने को सामने आवे। अत्यन्त विचित्र रथयुद्ध तो असंख्य हो चुके हैं, अब यह एक अत्यन्त अद्भुत गदायुद्ध हो। [लोग भोजन भी सदा एक सा ही नहीं करते, रुचि बदलने के लिए कभी-कभी दूसरी तरह का भोजन करते हैं; इसलिए] आज तुम्हारी अनुमति के अनुसार युद्ध भी बदलकर हो। हे महाबाहो! मैं इस गदा से तुमको, तुम्हारे भाइयों को और पाञ्चाल आदि तुम्हारे सब सैनिकों को परास्त करूँगा।

३०

निश्चय जानो, मैं रण में इन्द्र को भी क्रुद्ध होकर अपने साथ युद्ध के लिए उपस्थित देखकर डरने या घबरानेवाला नहीं हूँ। दुर्योधन के वचन सुनकर युधिष्ठिर ने कहा—हे दुर्योधन, उठो-उठो, जल से बाहर आओ और [अपनी इच्छा के अनुसार] हममें से एक के साथ मर्द बनकर गदायुद्ध करो। आज तुम इन्द्र की शरण में जाओ तो भी जीते नहीं बच सकते।

सञ्जय कहते हैं—राजन्! अभिमानी दुर्योधन बार-बार भर्त्सना, आक्षेप और युद्ध के लिए ललकारना न सह सके। वे बिल में स्थित महानाग की तरह जल के भीतर क्रोध के मारे लम्बी साँसें लेने लगे। अच्छी नस्ल का घोड़ा जैसे चाबुक नहीं सह सकता वैसे ही शत्रुओं के वारम्बार

वाक्य-बाणों की ताड़ना दुर्योधन से नहीं सही गई। वे भारी गदा लेकर जल को आन्दोलित करते, और महानाग की तरह फुफकारते, सरोवर के बाहर निकल आये। सूर्य की तरह तेजस्वी दुर्योधन, सुवर्ण-भूषित लोहे की भारी गदा कन्धे पर रक्खे, जब जल के बाहर निकले तब शिखर-युक्त पर्वत अथवा शूलपाणि कुपित रुद्र के समान शोभायमान हुए। गदा लेकर जल के बाहर निकले हुए, क्रोध से भयङ्कर रूप धारण किये, दुर्योधन को देखकर सब पाञ्चालों और प्राणियों ने समझा कि दण्ड हाथ में लिये साक्षात् यमराज या वज्र हाथ में लिये इन्द्र सामने खड़े हैं। ४०

दुर्योधन को जल के बाहर निकलते देखकर सब पाण्डव और पाञ्चालगण प्रसन्न हुए और तालियाँ पीटने लगे। उसको असहनशील दुर्योधन ने अपना उपहास और अपमान समझा। वे क्रोध से प्रज्वलित हो उठे और लाल आँखें निकालकर पाण्डवों की ओर इस तरह देखने लगे, मानों उनको भस्म कर डालेंगे। महाराज! क्रोध से अधीर दुर्योधन ने भौंहें टेढ़ी करके, दाँतों से ओठ चबाकर, श्रीकृष्ण सहित पाण्डवों से कहा—हे पाण्डवो, तुम शीघ्र ही इस उपहास का फल पाओगे और पाञ्चालों सहित मारे जाओगे।

सञ्जय कहते हैं—गदा हाथ में लेकर जल से निकले हुए दुर्योधन पाण्डवों के सामने खड़े हो गये। शरीर ख़ून से तर था और जल भी टपक रहा था, जिससे वे उस पर्वत के समान जान पड़ते थे जिससे झरने गिर रहे हों। गदा ताने खड़े हुए दुर्योधन पाण्डवों को, शूल हाथ में लिये, कुपित यमराज से प्रतीत होने लगे। वीर्यशाली दुर्योधन, हर्ष और उत्साह के साथ, मेघ के समान स्वर से साँड़ की तरह गरजकर पाण्डवों को गदायुद्ध के लिए ललकारने लगे। ५०

दुर्योधन ने कहा—हे युधिष्ठिर, मुझ एक के साथ एक-एक करके तुम लोग युद्ध करो; क्योंकि एक के साथ अनेक का युद्ध ठीक नहीं है। ख़ासकर मेरे पास कवच नहीं है; मैं अत्यन्त घायल, थका हुआ और पानी से भीगा हुआ हूँ; मेरे पास न तो वाहन हैं और न सैनिक ही हैं। इसलिए प्रतिज्ञा के अनुसार कोई एक मुझसे लड़ने आ जाय। मैं तुम सबसे इसी तरह युद्ध करूँगा। हे धर्मराज! तुम न्याय-अन्याय समझते हो, इसलिए न्यायानुसार मुझसे युद्ध करो।

युधिष्ठिर ने कहा—हे कुरुराज, जब युद्ध में एक अभिमन्यु बालक को अनेक महारथियों ने मिलकर मारा था तब तुम्हारी यह समझ कहाँ चली गई थी? असल बात यह है कि क्षत्रियधर्म अत्यन्त क्रूर और निष्ठुर है। वह किसी के साथ रिआयत नहीं करता। ऐसा न होता तो उस दशा में तुम लोग अभिमन्यु को कैसे मारते? कुछ तो तरस खाते। तुम सब लोग शूर, धर्मज्ञ और युद्ध में प्राण त्यागनेवाले थे। तुम जानते थे कि न्याय-युद्ध करनेवाले स्वर्ग-लोक को जाते हैं। यदि यही धर्म और न्याय है कि एक को अनेक मिलकर न मारें, तो फिर उस समय तुम्हारी अनुमति से अनेक महारथियों ने अकेले असहाय बालक अभिमन्यु को कैसे मारा? बात यह है कि सब लोग विपत्ति पड़ने पर धर्म और न्याय की दुहाई दिया करते

हैं और आराम के समय उधर देखते तक नहीं; यह नहीं समझते कि एक दिन हमें भी मरकर परलोक जाना पड़ेगा। ख़ैर, मैं अपनी बात का पालन अवश्य करूँगा। तुम अपने केश समेट-
६० कर बाँध लो, कवच हमसे लेकर पहन लो। और भी जो कुछ न हो, वह हमसे ले लो। हे वीर! प्रतिज्ञानुसार मैं यह भी वर देता हूँ कि पाँचों पाण्डवों में से जिससे चाहो उससे गदायुद्ध करो। उसे मार सको तो राज्यशासन करो और मारे जाओ तो स्वर्गलोक प्राप्त करो। हे सुयोधन! बोलो, जीवनदान के सिवा युद्ध में हम तुम्हारा और क्या प्रिय कर सकते हैं ?

सञ्जय कहते हैं कि राजन्, तब दुर्योधन ने सुवर्णालङ्कृत कवच और मणि-मुक्ता-भूषित शिर-स्त्राण पहना। गदापाणि दुर्योधन उस समय शिखरयुक्त शैलराज की तरह शोभायमान हुए। उन्होंने गदा तानकर कहा—हे पाण्डवो! इस समय तुममें से युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल या सहदेव, जो चाहे वह मुझसे आकर गदायुद्ध कर ले। मैं निःसन्देह उसे परास्त कर, मारकर, कृतकार्य होऊँगा। मैं एक के बाद एक तुम सबको मारकर वैर की आग बुझाऊँगा। शायद न्यायानुसार युद्ध करके तुममें से कोई मुझे नहीं हरा सकेगा; क्योंकि बाहुबल और गदायुद्ध के कौशल में कोई पाण्डव मेरे समकक्ष नहीं है। इस तरह के गर्वित वाक्य ख़ुद कहकर अपनी बड़ाई करना उचित नहीं है; किन्तु मैं यह सब सत्य ही कहता हूँ और शायद शीघ्र ही अपनी बात सत्य कर दिखाऊँगा। थोड़ी ही देर में मेरा कथन सच या झूठ हो जायगा। अब तुममें
७१ से जो कोई मुझसे युद्ध करना चाहे वह गदा लेकर सामने आ जाय।

महाभारत के स्थायी ग्राहक बनने के नियम

(१) जो सज्जन हमारे यहाँ महाभारत के स्थायी ग्राहकों में अपना नाम और पता लिखा देते हैं उन्हें महाभारत के अङ्कों पर २०) सैकड़ा कमीशन काट दिया जाता है। अर्थात् १।) प्रति अङ्क के बजाय स्थायी ग्राहकों को १) में प्रति अङ्क दिया जाता है। ध्यान रहे कि डाकख़र्च स्थायी और फुटकर सभी तरह के ग्राहकों को अलग देना पड़ेगा।

(२) साल भर या छः मास का मूल्य १२) या ६), दो आना प्रति अङ्क के हिसाब से रजिस्ट्री ख़र्च सहित १३॥) या ६॥।) जो सज्जन पेशगी मनीआर्डर-द्वारा भेज देंगे, केवल उन्हीं सज्जनों को डाकख़र्च नहीं देना पड़ेगा। महाभारत की प्रतियाँ राह में गुम न हो जायँ और ग्राहकों की सेवा में वे सुरक्षित रूप से पहुँच जायँ, इसी लिए रजिस्ट्री द्वारा भेजने का प्रबन्ध किया गया है।

(३) इसके प्रत्येक खंड के लिए अलग से बहुत सुन्दर जिल्दें भी सुनहले नाम के साथ तैयार कराई जाती हैं। प्रत्येक जिल्द का मूल्य ।॥) रहता है परन्तु स्थायी ग्राहकों को वे ॥) ही में मिलती हैं। जिल्दों का मूल्य महाभारत के मूल्य से बिलकुल अलग रहता है।

(४) स्थायी ग्राहकों के पास प्रतिमास प्रत्येक अङ्क प्रकाशित होते ही बिना विलम्ब वी० पी० द्वारा भेजा जाता है। बिना कारण वी० पी० लौटाने से उनका नाम ग्राहक-सूची से अलग कर दिया जायगा।

(५) ग्राहकों को चाहिए कि जब किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार करें तो कृपा कर अपना ग्राहक-नम्बर जो कि पता की स्लिप के साथ छपा रहता है और पूरा पता अवश्य लिख दिया करें। बिना ग्राहक-नम्बर के लिखे हज़ारों ग्राहकों में से किसी एक का नाम ढूँढ़ निकालने में बड़ी कठिनाई पड़ती है और पत्र की कार्रवाई होने में देरी होती है। क्योंकि एक ही नाम के कई-कई ग्राहक हैं। इसलिए सब प्रकार का पत्र-व्यवहार करते तथा रुपया भेजते समय अपना ग्राहक-नम्बर अवश्य लिखना चाहिए।

(६) जिन ग्राहकों को अपना पता सदा अथवा अधिक काल के लिए बदलवाना हो, अथवा पते में कुछ भूल हो, उन्हें कार्यालय को पता बदलवाने की चिट्ठी लिखते समय अपना पुराना और नया दोनों पते और ग्राहक-नम्बर भी लिखना चाहिए। जिससे उचित संशोधन करने में कोई दिक़्क़त न हुआ करे। यदि किसी ग्राहक को केवल एक दो मास के लिए ही पता बदलवाना हो, तो उन्हें अपने हलके के डाकख़ाने से उसका प्रबन्ध कर लेना चाहिए।

(७) ग्राहकों से सविनय निवेदन है कि नया आर्डर या किसी प्रकार का पत्र लिखने के समय यह ध्यान रक्खें कि लिखावट साफ़ साफ़ हो। अपना नाम, गाँव, पोस्ट और ज़िला साफ़ साफ़ हिन्दी या अँगरेज़ी में लिखना चाहिए ताकि अङ्क या उत्तर भेजने में दुबारा पूछ-ताछ करने की ज़रूरत न हो। "हम परिचित ग्राहक हैं" यह सोच कर किसी को अपना पूरा पता लिखने में लापरवाही न करनी चाहिए।

(८) यदि कोई महाशय मनी-आर्डर से रुपया भेजें, तो 'कूपन' पर अपना पता-ठिकाना और रुपया भेजने का अभिप्राय स्पष्ट लिख दिया करें, क्योंकि मनीआर्डरफ़ार्म का यही अंश हमको मिलता है।

सब प्रकार के पत्रव्यवहार का पता—

मैनेजर महाभारत विभाग, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

आवश्यक सूचनायें

(१) हमने प्रथम खण्ड की समाप्ति पर उसके साथ एक महाभारत-कालीन भारतवर्ष का प्रामाणिक सुन्दर मानचित्र भी देने की सूचना दी थी। इस सम्बन्ध में हम ग्राहकों को सूचित करते हैं कि पूरा महाभारत समाप्त हो जाने पर हम प्रत्येक ग्राहक को एक परिशिष्ट अध्याय बिना मूल्य भेजेंगे जिसमें महाभारत-सम्बन्धी महत्त्व-पूर्ण खोज, साहित्यिक आलोचना, चरित्र-चित्रण तथा विश्लेषण आदि रहेगा। उसी परिशिष्ट के साथ ही मानचित्र भी लगा रहेगा जिसमें पाठकों को मानचित्र देख कर उपरोक्त बातें पढ़ने और समझने आदि में पूरी सुविधा रहे।

(२) महाभारत के प्रेमी ग्राहकों को यह शुभ समाचार सुन कर बड़ी प्रसन्नता होगी कि हमने कानपुर, उन्नाव, काशी (रामनगर), कलकत्ता, ग़ाज़ीपुर, बरेली, मथुरा (वृन्दावन), जोधपुर, बुलन्दशहर, प्रयाग और लाहौर आदि में ग्राहकों के घर पर ही महाभारत के अङ्क पहुँचाने का प्रबन्ध किया है। अब तक ग्राहकों के पास यहीं से सीधे डाक-द्वारा प्रतिमास अङ्क भेजे जाते थे जिसमें प्रति अङ्क तीन चार आना ख़र्च होता था पर अब हमारा नियुक्त किया हुआ एजेंट ग्राहकों के पास घर पर जाकर अङ्क पहुँचाया करेगा और अङ्क का मूल्य भी ग्राहकों से वसूल कर ठीक समय पर हमारे यहाँ भेजता रहेगा। इस अवस्था पर ग्राहकों को ठीक समय पर प्रत्येक अङ्क सुरक्षित रूप में मिल जाया करेगा और वे डाक, रजिस्टरी तथा मनीआर्डर इत्यादि के व्यय से बच जायँगे। इस प्रकार उन्हें प्रत्येक अङ्क केवल एक रुपया मासिक देने पर ही घर बैठे मिल जाया करेगा। यथेष्ट ग्राहक मिलने पर अन्य नगरों में भी शीघ्र ही इसी प्रकार का प्रबन्ध किया जायगा। आशा है जिन स्थानों में इस प्रकार का प्रबन्ध नहीं है, वहाँ के महाभारतप्रेमी सज्जन शीघ्र ही अधिक संख्या में ग्राहक बन कर इस अवसर से लाभ उठावेंगे। और जहाँ इस प्रकार की व्यवस्था हो चुकी है वहाँ के ग्राहकों के पास जब एजेंट अङ्क लेकर पहुँचे तो ग्राहकों को रुपया देकर अङ्क ठीक समय पर ले लेना चाहिए जिसमें उन्हें ग्राहकों के पास बार बार आने जाने का कष्ट न उठाना पड़े। यदि किसी कारण उस समय ग्राहक मूल्य देने में असमर्थ हों तो अपनी सुविधा-नुसार एजेंट के पास से जाकर अङ्क ले आने की कृपा किया करें।

(३) हम हिन्दी-भाषा-भाषी सज्जनों से एक सहायता की प्रार्थना करते हैं। वह यही कि हम जिस विराट् आयोजन में संलग्न हुए हैं आप लोग भी कृपया इस पुण्य-पर्व में सम्मिलित होकर पुण्य-सञ्चय कीजिए, अपनी राष्ट्र-भाषा हिन्दी का साहित्य-भाण्डार पूर्ण करने में सहायक हूजिए और इस प्रकार सर्वसाधारण का हित-साधन करने का उद्योग कीजिए। सिर्फ़ इतना ही करें कि अपने दस-पाँच हिन्दी-प्रेमी इष्ट-मित्रों में से कम से कम दो स्थायी ग्राहक इस वेद-तुल्य सर्वाङ्गसुन्दर महाभारत के और बना देने की कृपा करें। जिन पुस्तकालयों में हिन्दी की पहुँच हो वहाँ इसे ज़रूर मँगवावें। एक भी समर्थ व्यक्ति ऐसा न रह जाय जिसके घर यह पवित्र ग्रन्थ न पहुँचे। आप सब लोगों के इस प्रकार साहाय्य करने से ही यह कार्य्य अग्रसर होकर समाज का हितसाधन करने में समर्थ होगा।

—प्रकाशक

विषय-सूची

रङ्गीन चित्रों की सूची

तैंतीसवाँ अध्याय

युधिष्ठिर के वर प्रदान पर श्रीकृष्ण का खेद प्रकट करना। भीमसेन का निश्चित रूप से दुर्योधन को मारने की आशा प्रकट करना। भीम और दुर्योधन की बातचीत

सञ्जय ने कहा कि महाराज! इस तरह दुर्योधन को बारम्बार गरजते देखकर श्रीकृष्ण ने, कुपित होकर, युधिष्ठिर से कहा—राजन्! आपने किस साहस से यह कह दिया कि हे दुर्योधन, हममें से एक को ही मारकर राज्य प्राप्त कर सकोगे? यह दुर्मति अगर आपसे, या अर्जुन, नकुल अथवा सहदेव से गदायुद्ध करना चाहे तो फिर क्या होगा? इनमें से कोई भी इससे गदा-युद्ध में पार नहीं पा सकता; क्योंकि इसने लोहे की भीमसेन की मूर्ति बनवाकर तेरह वर्ष तक लगातार उस पर गदा-प्रहार का अभ्यास किया है। यह भीमसेन को मारना चाहता था और इसी लिए इसने यह अभ्यास कर रक्खा है। हे नरोत्तम! आपने दया के वश होकर यह बड़े ही साहस का काम कर डाला। सिवा भीमसेन के और कोई इससे गदायुद्ध कर सकनेवाला मुझे नहीं देख पड़ता। किन्तु भीमसेन में भी यह कमी है कि उन्होंने इसके समान गदा चलाने का अभ्यास नहीं किया है। सो पहले जैसे शकुनि से आपने द्यूत खेला था वैसे ही इस समय फिर राज्य का जुआ खेलना शुरू कर दिया है। भीमसेन बली और समर्थ हैं, किन्तु दुर्योधन विशेष निपुण और अभ्यास किये हुए है। मैं बलवान् और कृती में कृती को ही अधिक अच्छा समझता हूँ। बली पुरुष निपुण और कृती को परास्त नहीं कर सकता। महाराज, आपने क्षमताशाली शत्रु को सुविधा देकर अपने को सङ्कट में डाल दिया है, जिससे हम लोग भी कष्ट और शोक को प्राप्त होंगे। कौन पुरुष ऐसी मूर्खता करेगा कि सब शत्रुओं को मारकर बचे हुए एकमात्र प्रबल प्रधान शत्रु को, जो केवल एक बाण से मारा जा सकता हो, इस तरह राज्य पाने की सुविधा देकर अपने को शोचनीय बनावेगा? मुझे पृथ्वी पर कोई ऐसा पुरुष नहीं देख पड़ता ११ जो धर्मयुद्ध से गदापाणि दुर्योधन को रण में गिरा सके। मनुष्य की तो बात ही नहीं, अमर देवता भी न्याय से गदायुद्ध में दुर्योधन को नहीं हरा सकते। मेरा ख़याल यही है और यही यथार्थ है कि गदा हाथ में लिये कृती राजा दुर्योधन को रण में न्याय से आप, भीम, अर्जुन, नकुल या सहदेव, कोई नहीं जीत सकता। फिर आप शत्रु से कैसे यह कह रहे हैं कि 'तुम गदा-युद्ध ही करो और केवल एक को मारकर राज्य प्राप्त करो'? भीमसेन से भी न्यायपूर्वक दुर्यो-धन का गदायुद्ध होने में हमारी जय में संशय है; क्योंकि दुर्योधन महाबली और कृताभ्यास है। मुझे जान पड़ता है कि पाण्डु और कुन्ती के पुत्र राज्य करने के लिए नहीं उत्पन्न हुए हैं। उनके भाग्य में तो सदा के लिए वनवास या भिक्षावृत्ति ही लिखी है।

महाराज, श्रीकृष्ण के ये वचन सुनकर महाबली भीमसेन ने उत्साहपूर्वक कहा—हे यदुनन्दन, आप इसके लिए चिन्ता न करें। मैं आज गदायुद्ध में दुर्योधन को अवश्य मारूँगा और बहुत दिन के वैर का अन्त कर डालूँगा। हे श्रीकृष्ण, धर्मराज की विजय निश्चित है। मेरी यह गदा शत्रु की गदा से ड्योढ़ी भारी और दृढ़ता आदि अन्य गुणों में श्रेष्ठ है। यही २० गदा लेकर मैं दुर्योधन से युद्ध करता हूँ। आप सब लोग बैठकर यह युद्ध देखें। हे श्रीकृष्ण! अनेक शस्त्र लिये हुए देवगण और अन्य सब त्रिभुवनवासी प्राणी अगर मुझसे लड़ने आवें, तो भी मैं इसी गदा को लेकर उनसे युद्ध कर सकता हूँ। दुर्योधन तो कोई चीज़ ही नहीं।

सञ्जय कहते हैं कि भीमसेन के वचन सुनकर हर्षपूर्वक श्रीकृष्ण ने उनकी प्रशंसा की और कहा—हे महाबाहो, आज तुम्हारे ही बाहुबल से धर्मराज का प्रधान शत्रु मारा जायगा और वे समृद्धिपूर्ण राजलक्ष्मी प्राप्त करेंगे। मुझे अब इसमें संशय नहीं है। तुमने रण में धृत-राष्ट्र के सब पुत्रों को मारा और असंख्य राजाओं, राजपुत्रों और हाथियों को गिराया है। कलिङ्ग, गान्धार, मगध और पूर्व दिशा के देशों के योद्धा तुम्हारे हाथ से मारे गये हैं। कुरु-वंश के अनेक अपराजित वीरों को तुमने यमपुर भेजा है। आज दुर्योधन को भी मार डालो और विष्णु ने जैसे इन्द्र को त्रिभुवन का राज्य, दैत्यों से छीनकर, दिया था वैसे ही सारी पृथ्वी का राज्य धर्मराज को अर्पण करो। पापी दुर्योधन तुम्हारे ही हाथ से मरेगा। तुम उसकी जाँघें तोड़कर अपनी प्रतिज्ञा पूरी करोगे। हे भीम! दुर्योधन कृती, बलवान् और युद्धनिपुण है; इसलिए उसके साथ तुम सावधानी के साथ, बच-बचकर, युद्ध करना।

महाराज! अब धर्मराज, सात्यकि, अन्य पाण्डव और पाञ्चालगण विविध वचनों से ३० भीमसेन की प्रशंसा करने लगे। तब सृञ्जय-पाञ्चालों के बीच बैठे हुए, सूर्य की तरह तप रहे, धर्मराज के सामने जाकर भीमसेन ने कहा—महाराज, मैं इस समय इस दुर्योधन से युद्ध करना चाहता हूँ। यह नराधम रण में किसी तरह मुझे परास्त न कर सकेगा। अर्जुन ने जैसे खाण्डव वन में अग्नि को छोड़ा था वैसे ही आज मैं अपने हृदय-निहित चिरसञ्चित क्रोध को दुर्योधन के ऊपर निकालूँगा। महाराज, बहुत दिनों से आपके हृदय में जो काँटा खटक रहा था, उसे आज मैं दूर करूँगा। गदा से दुरात्मा दुर्योधन की मृत्यु देखकर आज आप सुखी हों। आज मैं आपके गले में कीर्ति की माला पहनाऊँगा। आज दुर्योधन एक साथ प्राण, राज्य और लक्ष्मी से हीन होगा। राजा धृतराष्ट्र मेरे हाथ से अपने प्रिय पुत्र के मारे जाने का समाचार सुनकर, शकुनि की सलाह से किये गये, अपने दुर्व्यवहारों को स्मरण कर-करके पछतायँगे।

हे नरनाथ! वीर्यशाली भीमसेन यों कहकर, गदा तानकर, युद्ध के लिए खड़े हो गये। इन्द्र ने जैसे वृत्रासुर को युद्ध के लिए ललकारा था वैसे ही वे दुर्योधन को ललकारने लगे। मस्त हाथी जैसे मस्त हाथी पर झपटता है वैसे ही आपके पुत्र दुर्योधन वेग से भीमसेन के सामने आ

गये। गदा हाथ में लिये, युद्ध के लिए तैयार, दुर्योधन को पाण्डवों ने देखा कि वे शिखरयुक्त कैलास पर्वत के समान शोभायमान हो रहे हैं। अपने झुण्ड से बिछुड़े हुए अकेले मस्त हाथी के समान महाबली दुर्योधन को अकेले असहाय पाकर पाण्डवगण बहुत प्रसन्न हुए। दुर्योधन ४० यद्यपि अनेक शत्रुओं के सामने अकेले ही खड़े थे तथापि उस समय उनके हृदय में या मुखमण्डल पर भय, ग्लानि या व्यथा रत्ती भर नहीं थी। वे सिंह की तरह बेखटके खड़े थे। शिखरं-शोभित कैलास पर्वत की तरह गदा हाथ में लिये खड़े दुर्योधन को देखकर क्रोधान्ध भीमसेन ने कहा—हे दुर्योधन, तूने और राजा धृतराष्ट्र ने हमारे साथ जो बुरे व्यवहार किये हैं उन्हें इस समय स्मरण कर ले। तूने वारणावत में हमें जलाना चाहा था, शकुनि की सलाह से उसी के द्वारा द्यूतक्रीड़ा करके कपट के पाँसों से राजा युधिष्ठिर का राज्य ले लिया था, रजस्वला द्रौपदी को सभा में लाकर उसका अपमान किया था और इनके सिवा निरपराध पाण्डवों के साथ तूने जो-जो बुराइयाँ की थीं उन्हें इस समय स्मरण कर ले। उन्हीं पाप-कर्मों का परिणाम आज देख। हम सबके पूजनीय, महायशस्वी पितामह भीष्म तेरे ही कारण अधमरे होकर शर-शय्या पर पड़े हैं। तेरे ही लिए लड़कर गुरुवर द्रोणाचार्य, अद्वितीय योद्धा कर्ण, प्रतापी मातुल शल्य, वैर की आग सुलगानेवाला और शत्रुता की जड़ दुष्ट शकुनि, तेरे शूर भाई और पुत्र मारे गये हैं। रण से विमुख न होनेवाली असंख्य शूर राजाओं की मण्डली और उनकी सेना तेरे ही दोष से मारी गई है। अन्य बहुत से क्षत्रिय और द्रौपदी को क्लेश पहुँचानेवाला पापी प्रातिकामी यमपुर गया है। इस समय कुल का विनाश करानेवाला नराधम एक तू ही बच रहा है। सो अब इस गदा से तुझको भी मैं अवश्य मारूँगा। हे दुर्योधन, आज मैं तुझे पाण्डवों को सताने का मज़ा चखाऊँगा और ५० प्राणों के साथ ही तेरे दर्प और राज्य की आशा को भी सदा के लिए मिटा दूँगा।

दुर्योधन ने कड़ककर कहा—अरे भीम! अधिक बकबक करना व्यर्थ है। आ, मुझसे निपट ले। मैं शीघ्र ही तेरा युद्ध का शौक़ मिटा दूँगा। अरे पापी! क्या तू नहीं देखता कि मैं हिमाचल के शिखर-सी भारी गदा लेकर तेरे सामने युद्ध करने को खड़ा हूँ? मेरे हाथ में गदा रहते मुझे कौन शत्रु मार सकता है? न्याय के साथ युद्ध करके वज्रपाणि इन्द्र भी मुझे गदायुद्ध में नहीं जीत सकते, तेरी तो बिसात ही क्या है? हे कुन्ती के पुत्र! शरद् ऋतु के बादल जैसे बरसते नहीं, केवल गरजते ही हैं, वैसे ही वृथा मत गरज। अगर कुछ पौरुष है तो सामने आ जा। उसके बाद तो मैं तुझे मार ही डालूँगा।

दुर्योधन के इन वीरोचित वचनों को सुनकर विजयाभिलाषी पाण्डव और पाञ्चालगण प्रशंसा करने लगे। मस्त हाथी के समान खड़े हुए दुर्योधन को फिर शत्रुगण तालियाँ पीटकर हर्षित करने लगे। उस समय विजयाभिलाषी पाण्डवों के घोड़े हिनहिनाने लगे, हाथी गरजने और शस्त्र प्रज्वलित होकर चमकने लगे। ५८

चौंतीसवाँ अध्याय

युद्धारम्भ में बलदेव का आना, सबका उनको सत्कृत करके सादर बिठाना और फिर गदा-युद्ध का आरम्भ होना

सञ्जय ने कहा—महाराज, जिस समय सब पाण्डव और पाञ्चालगण सुखपूर्वक चारों ओर बैठ गये और उन दोनों वीरों का दारुण गदायुद्ध शुरू होने को हुआ उसी समय श्रीकृष्ण के बड़े भाई तालध्वज हलायुध बलदेवजी, अपने दो शिष्यों के युद्ध की ख़बर पाकर, वहाँ पर आ गये। उन्हें देखते ही श्रीकृष्ण और सब पाण्डव प्रसन्नतापूर्वक उठ खड़े हुए। सबने उन्हें सादर लाकर बैठने को कहा और विधिपूर्वक कुशल-प्रश्न किया तथा पूजा की। उनके बैठ जाने पर सबने कहा—हे यादवश्रेष्ठ, अपने दोनों शिष्यों के गदायुद्ध का कौशल और बाहुबल देखिए। वीरवर बलदेवजी ने युधिष्ठिर आदि पाण्डवों सहित श्रीकृष्ण को और गदा हाथ में लिये युद्ध करने को उद्यत दुर्योधन को देखकर कहा—आज मुझे तीर्थयात्रा के लिए निकले पूरे बयालीस दिन हुए। मैं पुष्य नक्षत्र में गया था और आज श्रवण नक्षत्र में लौटकर आया हूँ। हे माधव! मैं अपने दोनों शिष्यों का गदायुद्ध देखने के लिए ही आया हूँ।

अब राजा युधिष्ठिर ने बलदेवजी को प्रेमपूर्वक गले लगाकर उनका स्वागत किया और कुशल पूछी। श्रीकृष्ण और अर्जुन ने प्रसन्नतापूर्वक प्रणाम किया और बलदेवजी ने उन यशस्वी वीरों को १० गले से लगाया। शूर नकुल, सहदेव और द्रौपदी के पाँचों पुत्र बलदेवजी को प्रणाम करके उनके सामने खड़े हुए। बलवान् भीमसेन और दुर्योधन दोनों ने, वैसे ही गदा ताने हुए, बलदेवजी का सत्कार किया। इस तरह स्वागत करके सब लोग बलदेवजी से बारम्बार युद्ध देखने के लिए कहने लगे। उन्होंने सृञ्जयों सहित पाण्डवों को गले लगाकर उनसे और अन्य प्रतापी राजाओं से उनकी कुशल पूछी। राजाओं ने भी पास आकर कुशल-प्रश्न और सत्कार किया। महाराज! बलदेवजी ने इस तरह सब क्षत्रियों से, अवस्था और पद के अनुसार, कुशल-प्रश्न और वार्तालाप करके प्रेमपूर्वक श्रीकृष्ण और सात्यकि को गले लगाया और मस्तक सूँघकर कुशल पूछी। उन्होंने भी वैसे ही विधिपूर्वक अपने बड़े भाई की पूजा की जैसे इन्द्र और उपेन्द्र प्रसन्नतापूर्वक देवदेव ब्रह्माजी की पूजा करें।

इसके बाद धर्मराज ने कहा—हे बलरामजी, आप भी बैठकर यह मेरे भाइयों का अद्भुत युद्ध देखिए। तब श्रीमान् बलदेवजी प्रसन्नतापूर्वक, महारथियों के द्वारा पूजित होकर, उन लोगों के बीच में बैठ गये। नीले वस्त्र धारण किये हुए गौरवर्ण के बलदेवजी, नक्षत्रमण्डली के मध्यवर्ती चन्द्रमा की तरह, उन राजाओं के बीच में शोभायमान हुए। अब वैर का अन्त २२ करने के लिए उद्यत भीम और दुर्योधन का प्राणहारी लोमहर्षण घोर गदायुद्ध होने लगा।

पैंतीसवाँ अध्याय

जनमेजय का प्रश्न। प्रभास तीर्थ का वर्णन और माहात्म्य

जनमेजय ने वैशम्पायन से कहा—ब्रह्मन्, पहले कौरवों और पाण्डवों का युद्ध उपस्थित देखकर—श्रीकृष्ण से कहकर—यादवों सहित बलदेव तीर्थयात्रा को चले गये थे। उन्होंने श्रीकृष्ण से कहा था कि हे केशव, मैं न तो धृतराष्ट्र के पुत्रों की सहायता करूँगा और न पाण्डवों का पक्ष लूँगा। मैं जैसे आया था वैसे ही जाता हूँ। भगवन्, उस समय शत्रुनाशन बलदेव यही कहकर चले गये थे। फिर इस समय वे क्यों आ गये और किस तरह उन्होंने युद्ध देखा? आप कृपा करके बलदेव के सम्बन्ध का सारा हाल विस्तारपूर्वक कहिए।

वैशम्पायन ने कहा—हे जनमेजय, अज्ञातवास की अवधि पूर्ण होने पर पाण्डवों ने उपप्लव्य नगर से श्रीकृष्ण को धृतराष्ट्र के पास भेजा। उनका यह उद्देश्य था कि धृतराष्ट्र यों ही राजी-ख़ुशी उनका राज्य दे दें, युद्ध न हो और सब प्राणियों का कल्याण हो। श्रीकृष्ण ने हस्तिनापुर में जाकर धृतराष्ट्र से सन्धि का प्रस्ताव किया और विशेष रूप से शान्तिदायक हित की बातें कहीं। किन्तु पहले जैसा कह चुके हैं, राजा ने उनका कहा नहीं किया। पुरुषोत्तम कृष्ण, शान्ति और सन्धि स्थापित करने में असफल होकर, उपप्लव्य को लौट गये। दुर्योधन के लौटाये हुए श्रीकृष्ण ने पाण्डवों के सैन्य-शिविर में जाकर सब हाल युधिष्ठिर से कहा। हस्तिनापुर में जो कुछ हुआ और दुर्योधन ने कहा, वह सुनाकर श्रीकृष्ण ने कहा—हे धर्मराज, कौरवों के नाश का समय आ गया है इसी लिए वे मेरी बात नहीं मानते। अब आप लोग मेरे साथ पुष्य नक्षत्र में युद्ध के लिए यात्रा करें। इसके बाद जब वीर योद्धा लोग १० इच्छानुसार दोनों ओर शामिल होने लगे तब महामनस्वी बलदेव ने अपने भाई श्रीकृष्ण से कहा—हे माधव! कौरव भी अपने सम्बन्धी हैं, इसलिए उनकी भी कुछ सहायता करो; किन्तु श्रीकृष्ण ने बलदेव की यह बात नहीं मानी। इससे वे रुष्ट हो गये और मैत्र नक्षत्र में ही सब यादवों को साथ लेकर, तीर्थयात्रा के विचार से, सरस्वती-स्नान के लिए चल दिये। उनके तीर्थयात्रा करने पर शत्रुदमन वीर कृतवर्मा दुर्योधन के पक्ष में चले गये और सात्यकि सहित श्रीकृष्ण ने पाण्डवों का पक्ष लिया। पुष्य नक्षत्र के दिन पाण्डवों को लेकर कृष्णचन्द्र युद्ध के लिए कुरुक्षेत्र की ओर गये।

उधर बलराम ने जाते समय मार्ग में ही अपने अनुचरों और भृत्यों से कहा—तुम लोग शीघ्र द्वारका जाकर वहाँ से तीर्थयात्रा में काम आनेवाली सब सामग्री, अग्निहोत्र के अग्नि, याजक ब्राह्मण, सोना-चाँदी-रत्न, धन, वस्त्र, गायें और हाथी, घोड़े, रथ, ख़च्चर, ऊँट आदि वाहन लेकर सरस्वती तीर्थ में मुझसे आ मिलो। सैकड़ों श्रेष्ठ सुपात्र विद्वान् ब्राह्मणों और यज्ञ-

२० पूजा करानेवाले ऋत्विक् वेदपाठियों को भी लेते आना। महाराज, इस तरह अनुचरों को आज्ञा देकर यदुश्रेष्ठ बलराम सरस्वती तीर्थ अर्थात् प्रभासक्षेत्र को चले। उनके साथ ऋत्विक्, अन्य ब्राह्मण, अनेक सुहृद् यादव और सेवक लोग रथों, हाथियों, घोड़ों और बैल, ऊँट, ख़च्चर आदि से युक्त सवारियों पर सवार होकर चले। मार्ग में, हर एक देश में, थके-माँदे, अपाहिज, ग़रीब, बच्चे, बूढ़े, लँगड़े-लूले आदि जो मिलते थे और जो कुछ माँगते थे, उन्हें वही बलदेव देते थे। भूखों को बाँटने के लिए कच्चे और पके हुए अन्न के ढेर लगा दिये जाते थे। ब्राह्मणों में जो कोई जो कुछ खाने-पीने का सामान माँगता था उसे वही मिलता था। बलदेव की आज्ञा से भृत्यगण जगह-जगह पड़ावों पर खाने-पीने की सामग्रियों के ढेर लगा देते थे। ब्राह्मणों को बहुमूल्य वस्त्र, पलँग, बिछौने आदि देकर सब तरह से सुखी किया जाता था। ब्राह्मण लोग सोते और जागते समय सदा आवश्यक पदार्थ हाज़िर और काम-काज ठीक हुआ पाते थे। यात्रा में, और ठहरने पर, सबको सुखी रखने की पूरी चेष्टा की जाती थी। साथ चलनेवाले
३० को सवारी, प्यासे को पानी, भूखे को बढ़िया भोजन, नङ्गे और ग़रीब को वस्त्र तथा आभूषण बराबर दिये जाते थे। बलराम की आज्ञा से सब नौकर-चाकर ये सब सामग्रियाँ सबके आगे हाज़िर रखते थे। मतलब यह कि जो मनुष्य बलराम के साथ तीर्थयात्रा को गये उन्हें मार्ग में स्वर्ग का सा सुख मिला। यात्रा के समय राह में बाज़ार-हाट लग जाते थे और उनमें तरह-तरह का बिक्री का सामान भरा रहता था। अनेक वृक्ष-लता और रत्न आदि से वे बाज़ार सुशोभित किये जाते थे और प्रसन्नचित्त सैकड़ों मनुष्य वहाँ देख पड़ते थे।

राजन्, बलराम ने इस तरह सरस्वती-तट के पवित्र तीर्थों की यात्रा की। उन तीर्थों में उन्होंने यज्ञ किये और ब्राह्मणों को भारी दक्षिणाएँ दीं। बलराम ने उन तीर्थों में ब्राह्मणों को श्रद्धापूर्वक हज़ारों दुधार, सोने से मढ़े सींगोंवाली और बहुमूल्य झूलों से शोभित श्रेष्ठ गायें, विविध देशों के उत्तम घोड़े, रथ आदि सवारियाँ, दास, रत्न, मोती, मूँगे, मणि, सोना, चाँदी, लोहे और ताँबे के पात्र और अन्य अनेक प्रकार के द्रव्य दान में दिये। महाप्रभाव-शाली बलराम इस तरह क्रम से सब तीर्थों में होते हुए कुरुक्षेत्र में आ पहुँचे।

जनमेजय ने कहा—ब्रह्मन्! आप सरस्वती-तट के सब तीर्थों के गुण (रमणीयता आदि), उत्पत्ति, उन तीर्थों की यात्राविधि और वहाँ जाने का फल मुझे सुनाइए। आप ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ हैं। मैं आपसे क्रमपूर्वक सब तीर्थों का वर्णन सुनना चाहता हूँ। सुनने के लिए मुझे बड़ा कौतूहल हो रहा है। वैशम्पायन ने कहा—राजन्, मैं आपसे सब तीर्थों की उत्पत्ति, गुण,
४० विधि और फल कहता हूँ, सुनिए। यदुश्रेष्ठ बलराम ऋत्विक् सुहृद् और ब्राह्मणमण्डली के साथ पहले पवित्र प्रभास क्षेत्र में गये। पूर्व समय में चन्द्रदेव को यक्ष्मा का रोग हो गया था। वे दिन-दिन क्षीण होते चले जाते थे। हे नरेन्द्र, प्रभास क्षेत्र में ही स्नान करने से वे शापमुक्त

होकर फिर अपने पहले के तेज को प्राप्त हुए और अब तक समग्र जगत् को प्रकाशित करते हैं। प्रभास तीर्थ ने चन्द्रमा को फिर से प्रभापूर्ण बनाया, इसी से उसका नाम प्रभास पड़ा।

जनमेजय ने फिर पूछा—ब्रह्मन्! चन्द्रदेव को यक्ष्मा रोग क्यों हो गया था और तीर्थश्रेष्ठ प्रभास में किस तरह नहाकर वे शाप से मुक्त हुए? आप सब हाल विस्तार के साथ कहिए। वैशम्पायन ने कहा—राजन्, दक्ष प्रजापति के सत्ताईस सुन्दरी कन्याएँ थीं, जिनका ब्याह चन्द्रमा के साथ उन्होंने कर दिया था। वे कन्याएँ नक्षत्र हैं, जिनके द्वारा लोग समय-निरूपण करते हैं। शुभकर्मा सोम की वे सभी पत्नियाँ विशाल-लोचना और अलौकिक सुन्दरी थीं; किन्तु रोहिणी का रूप सबसे बढ़कर था। चन्द्रमा रोहिणी को सबसे अधिक चाहते थे। वे सदा उसी हृदयहारिणी के साथ रमण किया करते थे। तब अन्य स्त्रियाँ सोम से रुष्ट होकर अपने पिता प्रजापति के पास जाकर कहने लगीं—पिताजी, चन्द्रमा हम पर रत्ती भर भी अनुराग नहीं रखते। वे हमारे पास न रहकर सदा रोहिणी को ही भजते हैं। इसलिए हम सब आपके ही पास रहकर तपस्या करने के लिए आई हैं। ५१

कन्याओं का उलाहना सुनकर दक्ष ने सोम से कहा—देखो, तुम सब स्त्रियों पर समान प्रीति रक्खा करो; किसी एक का पक्षपात करने से तुम्हें अधर्म होगा। चन्द्र से यों कहकर उन्होंने कन्याओं से कहा—तुम सब चन्द्रमा के पास जाकर रहो। वे मेरी आज्ञा से तुम सब पर समान अनुराग रक्खेंगे। राजन्, वे स्त्रियाँ पिता की आज्ञा से स्वामी सोम के घर आकर रहने लगीं। किन्तु चन्द्रमा का व्यवहार बिलकुल नहीं बदला। वे पहले की ही तरह सदा प्रसन्नतापूर्वक रोहिणी के साथ रहने लगे। फिर सब स्त्रियाँ दक्ष के पास जाकर कहने लगीं—पिताजी, सोम हमारे पास नहीं रहते; आपकी आज्ञा न मानकर वे रोहिणी के ही पास बने रहते हैं। इसलिए हम सब आपके पास रहेंगी और आपकी सेवा करेंगी। उनके वचन सुनकर दक्ष ने फिर

चन्द्रमा से कहा—वत्स, मेरी सब बेटियों के साथ एक सा व्यवहार करो, नहीं तो मैं शाप देकर तुम्हारी कान्ति नष्ट कर दूँगा। हे नरनाथ, फिर भी प्रजापति के कथन की उपेक्षा करके चन्द्रमा

रोहिणी के ही पास रहते रहे। दक्ष की कन्याएँ कोप से अधीर होकर पिता के पास जाकर प्रणाम करके कहने लगीं—पिताजी, चन्द्रमा सदैव रोहिणी को प्यार करते और उसी के पास रहते हैं। वे आपकी आज्ञा का अनादर करके हमारे पास नहीं आते। आप इस दुःख से हमारी रक्षा करने का कोई उपाय कीजिए, जिससे चन्द्रमा हमारे पास रहने लगें। प्रजापति दक्ष, कन्याओं

६१ के वचन सुनकर, चन्द्रमा पर अत्यन्त कुपित हो उठे। उन्होंने चन्द्रमा के लिए यक्ष्मा (क्षय रोग) उत्पन्न किया। अब यक्ष्मा रोग से ग्रस्त चन्द्रमा दिन-दिन क्षीण होने लगे।

चन्द्रमा ने क्षय रोग से छुटकारा पाने के लिए अनेक प्रकार के यज्ञ आदि किये, परन्तु किसी तरह वह रोग दूर नहीं हुआ। शाप के कारण वे अधिकाधिक क्षीण ही होते चले गये। चन्द्रमा के क्षीण होने पर सब ओषधियाँ भी क्षीण और स्वाद-रस-वीर्य से हीन होने लगीं। ओषधियों के क्षीण और निर्वीर्य हो जाने पर प्राणियों का भी क्षय होने लगा। वे दुर्बल और वीर्य-बल से शून्य, अतएव नष्ट, होने लगे। तब सब देवता चन्द्रमा के पास जाकर बोले—हे चन्द्र, तुम्हारा रूप कैसा दिखाई पड़ता है? तुम इस तरह दिन-दिन क्षीण और कान्तिहीन क्यों होते जाते हो? [अपनी इस भयङ्कर दशा का कारण हमसे कहो।] कारण सुनकर हम उसके प्रतिकार का कोई उपाय करेंगे। देवताओं के ये वचन सुनकर चन्द्रमा ने अपने शाप-ग्रस्त और यक्ष्मा से पीड़ित होने का कारण कह सुनाया। चन्द्रमा से सब हाल सुनकर देवगण दक्ष प्रजापति के पास जाकर कहने लगे—भगवन्, प्रसन्न होकर आप चन्द्रमा का शाप से छुट-

७० कारा कर दीजिए। चन्द्रमा लगातार क्षीण हो रहे हैं, उनका कलेवर थोड़ा सा ही रह गया है। चन्द्रमा के क्षीण होने से लता, ओषधि और विविध बीज नष्टप्राय हो रहे हैं। उसका फल यह हुआ है कि अधिकांश प्रजा निर्बल, रोगग्रस्त और कृश होकर नष्ट हो रही है। प्रजा के अभाव से यज्ञ आदि का अभाव और यज्ञ न होने से हम लोगों का नाश होगा। हमारे नाश से सम्पूर्ण जगत् का अस्तित्व व्यर्थ हो जायगा। इन सब बातों का विचार करके चन्द्रमा पर कृपा करना और उन्हें शाप से छुटकारा देना ही आपका कर्तव्य है।

देवताओं के यों कहने पर दक्ष प्रजापति ने कहा—हे देवगण, मेरा वचन तो मिथ्या हो नहीं सकता। हाँ, एक उपाय है जिससे चन्द्रमा को शान्ति और कान्ति फिर मिल सकती है। वह उपाय यही है कि एक तो वे अपनी सब स्त्रियों पर समान अनुराग रखकर सबके पास रहें और दूसरे सारस्वत तीर्थ में स्नान करें। हे देवताओ, मैं सच कहता हूँ, इस उपाय से चन्द्रमा का कलेवर फिर वृद्धि को प्राप्त होगा। [किन्तु मेरा शाप पूर्ण रूप से नहीं मिट सकता।] चन्द्रमा महीने में पन्द्रह दिन घटेंगे और पन्द्रह दिन बढ़ेंगे। वे अभी पश्चिम समुद्र में जाकर, सरस्वती-सागर-सङ्गम पर, देवदेव शङ्कर की आराधना करें। इससे फिर उन्हें पहले की सी कान्ति प्राप्त हो जायगी।

राजन्, तब चन्द्रदेव ने प्रजापति दक्ष की आज्ञा के अनुसार अमावस को सरस्वती के प्रथम तीर्थ प्रभास में जाकर स्नान किया, जिससे उन्हें पहले का रूप मिल गया और वे अपनी शीतल अमल कान्ति से सारे जगत् को प्रकाशित करने लगे। सोम सहित सब सुरगण प्रसन्न होकर फिर दक्ष के पास आये। उन्होंने सब देवताओं को जाने की अनुमति देकर प्रसन्नता-पूर्वक कहा—हे चन्द्रमा, स्त्रियों और ब्राह्मणों का कभी अनादर न करना। जाओ, मेरी बात याद रक्खो और उसी के अनुसार काम करो। महाराज, दक्ष की आज्ञा पाकर चन्द्रमा अपने लोक को गये। सब प्रजागण भी, सोम के शापमुक्त होने से, प्रसन्न और पुष्ट होकर पहले की तरह यज्ञ आदि से देवताओं की आराधना करने लगे। भगवान् चन्द्रमा को जिस तरह शाप हुआ, जिस तरह वे शाप से छूटे और जिस कारण प्रभास तीर्थ सब तीर्थों में श्रेष्ठ समझा गया, सो सब मैंने आपको सुना दिया। अब तक चन्द्रदेव हर अमावस को उसी प्रभास तीर्थ में स्नान करके बढ़ते हैं और अपनी गई हुई कान्ति को प्राप्त करते हैं। चन्द्रमा ने वहाँ स्नान करके अपनी गई हुई प्रभा प्राप्त की, इसी से उस तीर्थ को प्रभास कहते हैं। ८०

बली बलदेवजी प्रभास में स्नान-दान करने के बाद चमसोद्भेद नामक तीर्थ को गये। वहाँ विधिपूर्वक स्नान और विशेष रूप से दान करके एक रात रहे और फिर कल्याणदायक आदि-तीर्थ उदपान में गये। हे राजेन्द्र! वहाँ की भूमि तर है और वृक्ष-ओषधियाँ विशेष रूप से हरी-भरी हैं। इसी से सिद्ध लोग जानते हैं कि वहाँ भूमि के भीतर, अन्तःसलिला, होकर सरस्वती बहती हैं। ६०

छत्तीसवाँ अध्याय

एकत, द्वित, त्रित ब्राह्मणों की कथा

वैशम्पायन ने कहा—राजन्! बलदेवजी महायशस्वी महर्षि त्रित के उदपान तीर्थ में जाकर वहाँ स्नान, विविध दान और ब्राह्मणों की पूजा करके बहुत प्रसन्न हुए। वहाँ महा-तपस्वी धर्मपरायण त्रित ठहरे थे। उन महात्मा ने कुएँ के भीतर ही सोमरस-पान किया था। उनके भाई एकत और द्वित साथ थे। किन्तु त्रित जब कुएँ में गिर पड़े तब उन्हें छोड़कर वे घर चले आये। इसी से त्रित ने कुपित होकर उनको शाप दे दिया।

जनमेजय ने कहा—हे तपोधन, उदपान तीर्थ की उत्पत्ति कैसे हुई? त्रित ब्राह्मण वहाँ कुएँ में कैसे गिरे? उनके भाई उन्हें छोड़कर घर क्यों चले गये? त्रित ने वहाँ यज्ञ कैसे किया, सोमरस कैसे पिया? ब्रह्मन्, यदि यह सब हाल मेरे सुनने योग्य समझिए तो कहिए।

वैशम्पायन ने कहा—पूर्व युग में सूर्य के समान तेजस्वी एकत, द्वित और त्रित नाम के तीन भाई थे। वे प्रजापति के समान, तप से ब्रह्मलोक को जीतनेवाले, ब्रह्मवादी, वेदपाठी और पुत्रयुक्त थे। उनके पिता धर्मात्मा गौतम थे, जो पुत्रों के तप, नियम और दम से अत्यन्त प्रसन्न थे। वे इस लोक में बहुत समय तक पुत्रों का सुख देखकर देहान्त होने पर अपने योग्य १० श्रेष्ठ लोक को गये। महात्मा गौतम जिन राजाओं के गुरु और यज्ञ करानेवाले आचार्य थे वे लोग, गौतम का स्वर्गवास होने पर, उनके पुत्रों का सम्मान करने लगे। तीनों भाइयों में कर्म और वेदपाठ आदि बातों में त्रित अपने पिता के समान श्रेष्ठ थे। सब महाभाग मुनि लोग भी, गौतम की ही तरह, पुण्य-लक्षणों से युक्त त्रित का सत्कार करते थे।

एक समय एकत और द्वित दोनों भाइयों ने यज्ञ कराने का विचार किया। यज्ञ के लिए धन की आवश्यकता थी। दोनों भाइयों ने विचार किया कि हम लोग त्रित को साथ लेकर धन के लिए अपने यजमानों के पास चलें। वहाँ पशु और धन पावेंगे, महाफलदायक यज्ञ करावेंगे, और उसमें प्रसन्नतापूर्वक सोमरस पियेंगे। दोनों भाई त्रित को साथ लेकर यजमानों के घर गये। वहाँ उन्होंने, उन्हें यज्ञ कराकर, दक्षिणा में धन और बहुत से पशु पाये। पशुओं को आगे करके तीनों महर्षि पूर्व दिशा को चले। प्रसन्नचित्त त्रित मुनि पशुओं के आगे चल रहे थे और शेष दोनों भाई पशुओं को हाँकते पीछे जा रहे थे। उस समय एकत और द्वित के मन में यह बेईमानी समाई कि ये सब गायें कैसे हमीं को मिल जायँ और २० त्रित को हिस्सा न देना पड़े। उन लोभी पापी ब्राह्मणों ने परस्पर यों बातचीत की कि त्रित यज्ञकुशल और वेदपाठी हैं; वे यजमानों को यज्ञ कराकर और बहुत सी गायें ले आवेंगे। इसलिए आओ, हम मिलकर बलपूर्वक गायें हाँककर चल दें। त्रित भी अकेले जहाँ जी चाहे वहाँ चले जायँ।

राजन्, रात को तीनों भाई गायें हाँके चले आ रहे थे। इसी समय राह में एक भेड़िया देख पड़ा। सरस्वती के तट पर वहीं एक बहुत गहरा कुआँ भी था। त्रित ने भेड़िये को जो

आगे खड़ा देखा और डर के मारे पीछे हटने लगे, तो उसी कूप में गिर पड़े। गहरे भयङ्कर कूप में गिरकर महामुनि त्रित आर्तनाद करने और सहायता के लिए भाइयों को पुकारने लगे। दोनों भाइयों ने आर्तनाद और पुकार सुनकर जाना कि त्रित कूप में गिर पड़े हैं, तथापि वे भेड़िये के भय से भाई को कूप में ही छोड़कर लोभ के मारे गायों को लेकर वहाँ से चल दिये। महातपस्वी त्रित को छोड़कर जब वे पशुलोभी भाई चले गये तब त्रित ने देखा कि वह कूप सूखा, धूल से भरा और तृण-लता-परिपूर्ण है और उसमें वे, नरक में पापी की तरह, पड़े हुए हैं। प्राज्ञ त्रित ने सोमरस नहीं पिया था, इस कारण वे और भी मुर्दे से हो रहे थे। वे सोचने लगे कि मैं यहाँ पड़ा रहकर कैसे सोमरस पी सकूँगा। ३०

महातपस्वी त्रित ने यों सोचते-सोचते देखा कि दैवयोग से एक लता उस कूप में लटक रही है। तब मुनि ने कूप को खोदकर जल निकाला और तपोबल से अग्नियों की कल्पना की। फिर अपने को होता, उसी लता को सोमलता, पत्थर को शर्करा और जल को आज्य कल्पित करके महातपस्वी मुनि ने सोमाभिषव का आरम्भ किया और देवताओं के लिए सोमरस के भाग निकालकर—ऋक्, यजुः, साम की ऋचाएँ पढ़कर—उच्च स्वर से उन्हें बुलाना शुरू किया। वेदपाठी मुनियों और आचार्यों की बताई हुई विधि के अनुसार महायज्ञ का आरम्भ करके जब महात्मा त्रित वेद की ऋचाएँ पढ़ने लगे और वह ध्वनि स्वर्ग में पहुँची तब, उसका कारण न जानने के कारण, देवता लोग घबरा उठे। उस तुमुल ध्वनि को सुनकर देवगुरु बृहस्पति ने सब देवताओं से कहा—हे देवगण! महात्मा त्रित यज्ञ कर रहे हैं, यह उन्हीं का आवाहन शब्द है। हम लोग शीघ्र वहाँ चलेंगे। वे महातपस्वी क्रोध करके अन्य देवताओं की भी सृष्टि कर सकते हैं।

यह सुनकर सब देवता उसी स्थान पर पहुँचे, जहाँ त्रित का यज्ञ हो रहा था। देवताओं ने देखा कि महात्मा तेजस्वी तपस्वी त्रित अन्धकूप के भीतर दीक्षा लेकर यज्ञ कर रहे हैं। देवताओं ने त्रित से कहा—हे महाभाग, हम सब देवता अपना भाग लेने के लिए तुम्हारे यज्ञ में आये हैं। ऋषि ने कहा—हे देवगण! देखो, मैं तो इस भयङ्कर अन्धकूप में पड़ा हूँ। मुझे इससे बाहर निकलने का कोई उपाय नहीं सूझता। अब मन्त्र पढ़कर उन्होंने देवताओं को उनके भाग दिये। विधिपूर्वक भाग पाकर, प्रसन्न होकर, देवताओं ने उनसे यथेष्ट वर माँगने को कहा। ऋषि ने कहा—हे देवताओ! एक तो इस कूप से बाहर निकालकर मेरी रक्षा करो, दूसरे यह वर दो कि जो कोई मनुष्य इस कूप के जल को स्पर्श करे उसे सोमरस पीनेवाले याज्ञिक की श्रेष्ठ गति प्राप्त हो। देवताओं ने तथास्तु कहकर ऋषि को यथेष्ट वर दिये। तुरन्त ही उस कूप के भीतर से वेग से सरस्वती की धारा निकली और उस धारा के वेग से त्रित भी ऊपर आ गये। देवताओं की प्रशंसा करके प्रसन्नचित्त त्रित मुनि अपने घर आये। वहाँ अपने ४१

भाई पापी एकत और द्वित को देखकर महातपस्वी त्रित ने क्रोध के मारे शाप देते हुए ये कठोर वचन कहे कि तुम दोनों, पशुओं के लोभ से, मुझे कूप में छोड़कर भाग आये, इसलिए तुम्हें उस पाप का यह फल मिलेगा कि तुम रौद्ररूप तीक्ष्ण दाढ़ोंवाले भेड़िये होकर वन में फिरोगे और तुम्हारी सन्तति में लंगूर, रीछ और वानर उत्पन्न होंगे। हे जनमेजय, सत्यवादी ऋषि के यों कहते ही वे तत्काल भेड़िये बन गये। ५०

उस उदपान तीर्थ में भी महापराक्रमी हलधर ने स्नान किया, ब्राह्मणों की पूजा की और उन्हें तरह-तरह के दान देकर सन्तुष्ट किया। इस तरह उदपान तीर्थ को देखकर, उसकी बार-म्बार प्रशंसा करते हुए, वीर बलराम सरस्वती के विनशन तीर्थ में गये। ५४

सैंतीसवाँ अध्याय

सरस्वती-तट के अनेक तीर्थों का वर्णन

वैशम्पायन ने कहा—राजन्, बलरामजी वहाँ से चलकर विनशन तीर्थ में पहुँचे। वहाँ बसनेवाले नीच शूद्रों और आभीरों (अहीरों) से बचने के लिए सरस्वती नदी नष्ट हो गई है, अर्थात् पृथ्वी में सरस्वती की धारा छिप गई है। इसी से ऋषिगण उस तीर्थ को विनशन तीर्थ कहते हैं। महाबली बलभद्र ने वहाँ स्नान-दान करके सरस्वती-तट पर स्थित सुभूमिक तीर्थ के लिए यात्रा की। उस तीर्थस्थान में सदा सुंदरी अप्सराएँ आकर क्रीड़ा किया करती हैं और अनेक विद्वान् तपस्वी ब्राह्मण रहते हैं। पवित्र सुभूमिक तीर्थ में हर महीने देवता और गन्धर्व आते हैं, सुखपूर्वक गन्धर्व गाते और अप्सराएँ नाचती हैं। देवगण, पितृगण और दिव्य ओषधियाँ उस स्थान को सुशोभित करती हैं और उन पर बारम्बार स्वर्गीय पुष्पों की वर्षा होती है। वह देवताओं और अप्सराओं के आमोद-प्रमोद का स्थान होने के कारण ही सुभूमिक नाम से प्रसिद्ध है। हलधर ने वहाँ स्नान किया, ब्राह्मणों को बहुत सा धन दिया और देव-गन्धर्व-राक्षस आदि की छायाएँ (अथवा शय्याएँ) देखीं। फिर अप्सराओं के दिव्य गीत और मृदङ्ग आदि बाजों के शब्द सुनकर वे गन्धर्व तीर्थ में गये। उस तीर्थस्थान में विश्वावसु आदि गन्धर्व और असंख्य अप्सराओं के गण मनोहर गीत गाते, मधुर बाजे बजाते और नाचते हैं। वहाँ भी हलधर ने ब्राह्मणों को यथेष्ट भोजन कराकर विविध द्रव्य; बकरी, भेड़, गाय, खच्चर, ऊँट आदि पशु और सुवर्ण-चाँदी आदि बहुमूल्य पदार्थ दिये। शत्रुदमन एक कुण्डलधारी महाबाहु बलदेव ब्राह्मणों और अन्य याचकों के मुँह से अपनी प्रशंसा सुनते हुए वहाँ से चल दिये और गर्गस्रोत नाम के तीर्थ में पहुँचे। १०

पृ० ३११२—उस तीर्थ में सदा सुन्दरी अप्सराएं आकर क्रीड़ा किया करती है।

गर्गस्रोत तीर्थ अत्यन्त पवित्र स्थान है। वहाँ पर वृद्ध गर्ग मुनि ने घोर तप करके काल की गति और नक्षत्र आदि ज्योतिर्मय पदार्थों के सम्बन्ध की बातें (अर्थात् ज्योतिष-विद्या) जानी थीं; शुभ शकुनों और अशुभ उत्पातों का ज्ञान भी वहीं प्राप्त किया था। इसी कारण सरस्वती-तट का वह शुभ तीर्थ उन्हीं के नाम से प्रसिद्ध है। उसी स्थान में अनेक मुनियों ने गर्ग मुनि से काल से सम्बन्ध रखनेवाली ज्योतिष-विद्या पढ़ी थी। गर्गस्रोत में जाकर श्वेत-चन्दन-चर्चित हलधर ने स्नान किया, ब्राह्मणों को भोजन कराया और बहुत सा धन मुनियों को दिया। वहाँ से वे शङ्खतीर्थ को गये, जहाँ महामेरु पर्वत के समान ऊँचा, कैलास के समान सफ़ेद, महाशङ्ख नाम का एक वृक्ष बलभद्र ने देखा। सरस्वती-तट पर स्थित उस महावृक्ष के नीचे अनेक ऋषि, यक्ष, विद्याधर, पराक्रमी राक्षस, महाबली पिशाच और हज़ारों सिद्ध पुरुष विचरते हैं। इन सबको मनुष्य नहीं देख पाते। पूर्वोक्त सिद्ध आदि सब अनेक व्रत-नियमों का पालन करते हुए निराहार रहकर निर्दिष्ट समय में उस वृक्ष के मधुर फलों को खाते हैं। हे वीर, वह बड़ा वृक्ष सर्वत्र पृथ्वीमण्डल में प्रसिद्ध है। उस पवित्र प्रसिद्ध सरस्वती-तट के तीर्थ में बलभद्र ने दुधार गायें, विविध वस्त्र, लोहे और ताँबे के बर्तन ब्राह्मणों को दिये। उन्होंने ब्राह्मणों की पूजा की और ब्राह्मणों ने उनका सत्कार किया। २०

वहाँ से चलकर बलदेवजी पवित्र द्वैतवन में आये। वहाँ अनेक देशों के विविध-वेषधारी मुनियों के दर्शन और स्नान करके उन्होंने ब्राह्मणों को विविध दान दिये, उनकी पूजा की। फिर सरस्वती के दक्षिण तट पर जाकर, थोड़ी ही दूर पर, धर्मात्मा बलभद्र ने नागधन्वा नामक पवित्र तीर्थ देखा। महातेजस्वी नागराज वासुकि और उसके अनुचर नाग वहीं रहते हैं। ३० चौदह हज़ार ऋषि उस स्थान पर घोर तप किया करते हैं। सब देवताओं ने वहाँ आकर नाग-श्रेष्ठ वासुकि का अभिषेक किया था और उसे नागों का राजा बनाया था। वहाँ अनेक सर्प रहते हैं, किन्तु वे किसी से बोलते-चालते नहीं। वहाँ भी विधि से स्नान-दान करके, ब्राह्मणों को असंख्य विविध रत्न देकर, बलदेवजी पूर्व दिशा को चले। मार्ग में उनको पग-पग पर पवित्र और प्रसिद्ध असंख्य तीर्थ मिले। बलभद्र ने ऋषियों की बताई हुई विधि के अनुसार उन सब तीर्थों में स्नान किया और ब्राह्मणों को अपरिमित धन और विविध दान दिये। संयमपूर्वक उपवास करनेवाले हलधर ने उन तीर्थों में रहनेवाले ऋषियों को प्रणाम और पूजन-सत्कार आदि से सन्तुष्ट किया।

महाराज, वहाँ से सरस्वती की धारा पूर्व की ओर लौट पड़ी है। जान पड़ता है, नैमिष-निवासी असंख्य मुनियों के दर्शन से अपने को कृतार्थ करने के लिए ही श्रेष्ठ नदी सरस्वती उधर मुड़ गई है। सरस्वती का वहाँ से लौटना देखकर बलभद्र को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे भी तीर्थश्रेष्ठ नैमिष को जाने के लिए सरस्वती के अनुगामी होकर लौटे।

जनमेजय ने कहा—हे तपोधन ! महानदी सरस्वती पूर्वाभिमुख होकर वहाँ से किसलिए लौटी ? और यादवश्रेष्ठ बलराम को किस बात पर बड़ा आश्चर्य हुआ ? यह विस्तार के
४० साथ आप मुझे सुनाइए। वैशम्पायन ने कहा—हे राजेन्द्र, पहले सत्ययुग में नैमिषारण्य में वहाँ के निवासी मुनियों ने बारह वर्ष में समाप्त होनेवाले महायज्ञ का आरम्भ किया था। उस यज्ञ में अनेक महाभाग ऋषि-मुनि आये और वहाँ बारह वर्ष तक रहे। वह यज्ञ समाप्त होने पर ऋषिगण तीर्थ-दर्शन की इच्छा से सरस्वती के दक्षिण तट पर उपस्थित हुए। वे असंख्य मुनि वहीं रहकर तप करने लगे, जिससे सरस्वती के दक्षिण और उत्तर तट के सब तीर्थों में नगरों की सी भीड़ हो गई। तीर्थवास के लालच से ऋषिगण नदी के किनारे-किनारे समन्त-पञ्चक तीर्थ की सीमा तक बस गये। उन मुनियों के हवन के समय अग्निहोत्रों का प्रकाश नदी को शोभायमान करता था, उनके वेदपाठ की ध्वनि से दिशाएँ गूँज उठती थीं। गङ्गातट को शोभित करनेवाले देवताओं के समान असंख्य मुनि सरस्वती-तट की शोभा बढ़ाने लगे। अनेक नियम धारण करके तपस्या करनेवाले वालखिल्य, अश्मकुट्ट (पत्थर से कूटकर अन्न या फल-मूल खानेवाले), दन्तोलूखली (दाँतों से ही चबानेवाले), संप्रख्यान, वायुभक्ष (हवा खाकर निराहार रहनेवाले), जलाहारी, पत्ते चबाकर तप करनेवाले और स्थण्डिलशायी (जाड़े, गर्मी, वर्षा में खुले मैदान में रहनेवाले) आदि असंख्य मुनि सरस्वती के किनारे रहने लगे। उन लोगों के बाद भी सैकड़ों याज्ञिक ऋषि, तपस्या और तीर्थवास के लिए, वहाँ आकर उपस्थित हुए। किन्तु सरस्वती के दोनों तट ख़ाली नहीं थे। कहीं ठहरने की जगह न देख-कर वे महाव्रतधारी मुनि पूर्व ओर पवित्र कुरुक्षेत्र में पहुँचे और वहाँ अपने यज्ञोपवीतों से भूमि को नापकर, उसी भूमि को सरस्वती तीर्थ कल्पित कर, अग्निहोत्र आदि विविध कर्म करने लगे। सरस्वती नदी उन ऋषियों को अपने जल के लिए चिन्तित और निराश देखकर, उनके
५० कार्य-साधन के लिए, उसी स्थान पर पहुँची। वहाँ अनेक गहरे स्थानों में सरस्वती का जल भर गया और वे पवित्र तीर्थ हो गये। इस तरह करुणावश उन ऋषियों की इच्छा पूर्ण करके सरस्वती फिर लौटी और पश्चिमाभिमुख होकर बहने लगी। महानदी सरस्वती का वहाँ जाना निष्फल नहीं हुआ। सरस्वती के इस अद्भुत कार्य से अनेक तीर्थ उत्पन्न हो गये। हे कुरु-श्रेष्ठ, कुरुक्षेत्र में जो कुण्ड सरस्वती के जल से भर गये थे वे नैमिषीय तीर्थ कहलाते हैं, क्योंकि नैमिषारण्य से लौटे हुए मुनियों पर कृपा करके सरस्वती उनमें बसी है। राजन्, ये कुण्ड परम पवित्र हैं; यहाँ तुम श्रद्धापूर्वक अपने महायज्ञ का सब कर्म करो। महाराज, बलराम ने उस स्थान में सरस्वती के जल से पूर्ण बहुत से कुण्डों को देखा और यह भी देखा कि सरस्वती फिर वहाँ से लौट गई है। इसी से उनको बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने उन तीर्थों में भी विधिपूर्वक स्नान किया और ब्राह्मणों को खाने-पीने की सामग्री, सुवर्ण-धन-रत्न और वस्त्र-पात्र

आदि देकर उनकी पूजा की। ब्राह्मण लोग बलदेवजी की प्रशंसा करते हुए तरह-तरह के शुभ आशीर्वाद देने लगे।

हे नरश्रेष्ठ, बलदेवजी वहाँ से सप्तसारस्वत तीर्थ में गये। वह स्थान अत्यन्त रमणीय, पवित्र और विविध पक्षियों से शोभित था। बेर, इङ्गुदी, श्यामाक, पाकर, पीपल, बहेड़े, कङ्कोल, पलाश, करीर, पीलुक, कलुप, बेल, आँवले, अतिमुक्तक, षण्ड, पारिजात आदि वृक्षों और कदली-वनों से वह स्थान बहुत ही दर्शनीय हो रहा था। वहाँ वायु-जल-फल-पत्ते आदि खाकर रहनेवाले, दन्तोलूखली, अश्मकुट्ट, वातेय आदि असंख्य मुनि रहते थे। चारों ओर वेद-पाठ की ध्वनि गूँजती थी, सैकड़ों मृगों के झुण्ड बेखटके विचरते थे। हिंसा-रहित, धार्मिक, सात्त्विक मनुष्यों और मुनियों से युक्त सप्तसारस्वत तीर्थ में ही महामुनि मङ्कणक ने घोर तपस्या करके सिद्धि पाई थी। ६० ६६

अड़तीसवाँ अध्याय

मङ्कणक मुनि का उपाख्यान

जनमेजय ने कहा—हे तपोधन, सप्तसारस्वत तीर्थ की उत्पत्ति कैसे हुई? उसका यह नाम क्यों पड़ा? मङ्कणक मुनि कौन थे? किस नियम और तप से उन्हें सिद्धि मिली? उन्होंने क्या-क्या पढ़ा था? वे किस वंश में पैदा हुए थे? यह सब वृत्तान्त मुझे सुनाइए।

वैशम्पायन ने कहा—राजन्! सरस्वती से सात शाखा-नदियाँ निकली हैं, जिन्होंने इस जगत् को व्याप्त कर रक्खा है। तपोबल अधिक रखनेवाले मुनियों ने, जहाँ-जहाँ सरस्वती को बुलाया है, वहाँ-वहाँ वह गई है। सरस्वती की सात शाखाओं के नाम ये हैं—सुप्रभा, काञ्चनाक्षी, विशाला, मनोरमा, ओघवती, सुरेणु और विमलोदका। सब लोकों के पितामह ब्रह्मा ने एक समय पुष्कर तीर्थ में महायज्ञ का आरम्भ किया और दीक्षा ली। उनकी यज्ञशाला में ब्राह्मणगण पुण्याहवाचन और वेदपाठ करने लगे। सब देवता लोग तरह-तरह के यज्ञ-सम्बन्धी कार्य करने में लग गये। उस यज्ञ में कामना की सब समृद्धियाँ देख पड़ने लगीं। धर्मार्थ-कुशल ब्राह्मणगण इच्छा करते ही सब पदार्थों को उपस्थित पाते थे। गन्धर्व गीत गाते और तरह-तरह के बाजे बजाते थे, अप्सराएँ नाचती थीं। मतलब यह कि उस यज्ञ की विशेषता अपूर्व थी। सर्व-काम-सम्पन्न सर्वाङ्गपूर्ण उस यज्ञ की सम्पत्ति से देवगण प्रसन्न हो गये। मनुष्यों की कौन कहे, देवताओं को भी वह यज्ञ देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। इस तरह यज्ञ हो रहा था, इसी समय परम प्रसन्न पितामह ब्रह्मा से ऋषियों ने कहा—भगवन्, यह यज्ञ अभी सर्वाङ्गपूर्ण और महागुणसम्पन्न कहने के योग्य नहीं है, क्योंकि नदियों में श्रेष्ठ सरस्वती यहाँ नहीं देख पड़ती। १०

ऋषियों के वचन सुनकर प्रसन्नचित्त ब्रह्मा ने उसी समय सरस्वती को याद किया। यज्ञ कर रहे प्रजापति ने पुष्कर तीर्थ में ज्योंही सरस्वती का आवाहन किया त्योंही वह, सुप्रभा नाम की शाखा से, वहाँ उपस्थित हो गई। पितामह का सम्मान रखने के लिए सरस्वती को वहाँ शीघ्र आते देखकर ऋषियों को बड़ा सन्तोष हुआ और उन्होंने उस यज्ञ को श्रेष्ठ माना। राजन्, वे लोग ब्रह्मा को धन्य-धन्य कहकर यज्ञ की प्रशंसा करने लगे। इस तरह भगवान् ब्रह्मा के बुलाने से, महर्षियों को सन्तुष्ट करने के लिए, सरस्वती नदी पुष्कर तीर्थ में प्रकट हुई और उसकी सुप्रभा नाम की शाखा वहाँ पर है।

दूसरी शाखा की उत्पत्ति यों हुई कि एक समय नैमिष वन में मुनि लोग एकत्र होकर, यज्ञ के बहाने, वेद से सम्बन्ध रखनेवाली विविध विचित्र कथाएँ और इतिहास कह-सुन रहे थे। स्वाध्याय करनेवाले मुनि जहाँ बैठे थे वहीं आने के लिए उन्होंने सरस्वती का स्मरण किया। एकत्र समागत याज्ञिक मुनियों के ध्यान करते ही, उन महात्माओं की सहायता करने के लिए, सरस्वती वहाँ उपस्थित हुई। सरस्वती की वह पवित्र शाखा काञ्चनाक्षी के नाम से प्रसिद्ध है। सत्रयाजी मुनियों के द्वारा पूजित सरस्वती की दूसरी शाखा नैमिष क्षेत्र में विराजमान है।

तीसरी शाखा की उत्पत्ति यों हुई कि राजा गय ने एक समय, गय नाम से प्रसिद्ध प्रदेश में, महायज्ञ किया था और वहाँ गय राजा तथा ऋषियों के बुलाने से सरस्वती ने जाकर महाराज गय के यज्ञ को सफल किया था। उस शाखा का नाम विशाला है।

२१

चौथी शाखा की उत्पत्ति यों हुई कि औद्दालकि ऋषि ने एक समय कोशल देश के उत्तर भाग में यज्ञ किया था। उस पवित्र यज्ञ में अनेक महात्मा मुनि एकत्र हुए थे। औद्दालकि ने अपने यज्ञ में सरस्वती का स्मरण किया। शीघ्रगामिनी सरस्वती, मुनि का मान करती हुई, हिमाचल के पार्श्व से बहती हुई वहाँ यज्ञस्थान में उपस्थित हुई। वल्कल और मृगछाला धारण करनेवाले मुनियों ने सरस्वती नदी की पूजा की। मुनियों ने मन से सरस्वती का वरण किया था, इसी लिए वह शाखा मनोरमा नाम से प्रसिद्ध हुई।

पाँचवीं शाखा की उत्पत्ति यों हुई कि एक समय महाराज कुरु ने कुरुक्षेत्र में यज्ञ किया था। वहाँ भी आचार्य वशिष्ठ ने दिव्य जलवाली श्रेष्ठ नदी सरस्वती का आवाहन किया और वह वहाँ उपस्थित होकर ओघवती नाम से प्रसिद्ध हुई।

छठी शाखा की उत्पत्ति इस तरह हुई कि एक समय दक्ष प्रजापति ने हरद्वार में धूमधाम से भारी यज्ञ किया था। वहाँ उन्होंने सरस्वती का आवाहन किया। शीघ्रगामिनी सरस्वती वहाँ भी उपस्थित हुई। वह शाखा सुरेणु के नाम से प्रसिद्ध हुई।

सातवीं शाखा की उत्पत्ति यों हुई कि पवित्र हिमालय पर्वत पर फिर एक समय ब्रह्माजी ने यज्ञ किया और सरस्वती को बुलाया। वहाँ भी सरस्वती उपस्थित हुई। उस शाखा का नाम विमलोदका पड़ा।

राजन्, सरस्वती की ये सातों शाखाएँ जहाँ पर एक में मिली हैं वही परम पवित्र सप्त-सारस्वत तीर्थ है। मैंने सप्त-सारस्वत तीर्थ और सरस्वती की सातों शाखाओं का हाल तुमको ३० सुना दिया। अब बाल-ब्रह्मचारी महर्षि मङ्कणक का उपाख्यान भी सुनो। एक समय महर्षि मङ्कणक सरस्वती में स्नान कर रहे थे। उसी समय उन्होंने देखा कि जल में एक विशाल नेत्रोंवाली सर्वाङ्गसुन्दरी स्त्री नङ्गी नहा रही है। उसका परम सुन्दर रूप और यौवन देखते ही महर्षि विचलित हो गये। उनका वीर्य जल में स्खलित हो गया। मुनि ने चट पट उस वीर्य को लेकर कलश में डाल दिया। दैववश वह वीर्य कलश में सात जगह बट गया। उस अमोघ वीर्य से कलश से ही सात ऋषि उत्पन्न हुए, जो मरुद्गण के पिता हुए, अर्थात् उन्हीं से उञ्चास प्राणवायुओं की सृष्टि हुई। उन सातों के नाम थे—वायुवेग, वायुबल, वायुहा, वायुमण्डल, वायुज्वाल, वायुरेता और वीर्यशाली वायुचक्र। राजन्, इससे भी अधिक आश्चर्यजनक महर्षि मङ्कणक का चरित्र सुनो। सुना जाता है कि सिद्धावस्था को प्राप्त मङ्कणक के हाथ में कभी कुश की नोक गड़

गई थी और उस घाव से रक्त की जगह शाक-रस बहने लगा। यह देखकर हर्ष के मारे महर्षि मङ्कणक नृत्य करने लगे। उनके नाचने से उनके तेज से मोहित सारा जगत् चक्कर खाने लगा। ४०

इससे उद्विग्न होकर ब्रह्मा आदि देवताओं और तपोधन ऋषियों ने देवादिदेव शङ्कर के पास जाकर कहा—देवदेव ! ऐसा उपाय कीजिए कि ये महातपस्वी अपना नृत्य बन्द करें, जिससे सब जगत् स्थिर हो। तब देवकार्य करने के लिए महादेव ने हर्षमग्न मङ्कणक मुनि के पास जाकर कहा—हे ब्रह्मन्, हे धर्मज्ञ ! तुमको ऐसा हर्ष क्यों है ? तुम तपस्वी और धर्ममार्ग में स्थित होकर भी इस तरह क्यों नाच रहे हो ? ऋषि ने ब्राह्मण-रूपधारी शङ्कर से कहा—ब्रह्मन्, क्या तुम नहीं देखते कि मेरे हाथ से रक्त की जगह शाक-रस निकल रहा है ? इसी से मुझे अपार हर्ष हो रहा है और मैं नृत्य कर रहा हूँ। यह सुनकर उन आनन्दमोहित महर्षि से शङ्कर ने हँसकर कहा—हे विप्रवर, इस घटना से मुझे तनिक भी विस्मय नहीं है। यह कौन आश्चर्य की बात है? मुझे देखो। हे जनमेजय, अब शङ्कर ने उँगली का सिरा अपने अँगूठे पर मारा तो उस घाव से बर्फ़ के समान सफ़ेद भस्म निकलने लगी। यह आश्चर्य देखकर मङ्कणक बहुत लज्जित हुए। वे समझ गये कि ये देवदेव शङ्कर ही हैं। विस्मित ब्राह्मण चटपट शङ्कर के चरणों पर गिरकर कहने लगे—हे देव ! मैं जान गया, आप देवादिदेव शङ्कर हैं। मैं रुद्र से बढ़कर और किसी देवता को नहीं ५० मानता। हे शूलपाणि, इस चराचर जगत् की एकमात्र गति आप ही हैं। पण्डितों का कहना है कि इस विश्व की सृष्टि करनेवाले आप ही हैं। प्रलयकाल में संहार के समय सब जगत् आप में ही लीन हो जाता है। भगवन् ! मैं क्या आपको जानूँगा, देवता भी आपके यथार्थ तत्त्व को नहीं जानते। जगत् में स्थित सभी भाव आपमें देख पड़ते हैं। हे निष्पाप, ब्रह्मादि सब देवगण आपकी ही उपासना करते हैं। हे वरदानी, आप ही देवताओं के सर्वस्व हैं। देवताओं की सृष्टि भी आपने ही की है। आप ही सबके कर्त्ता हैं। देवगण आपकी ही शक्ति से सब कार्य करते हैं। आपके ही अनुग्रह से देवगण निडर होकर स्वर्ग के सुख भोगते हैं।

हे जनमेजय, महातपस्वी मङ्कणक ने इस तरह स्तुति करके फिर शङ्कर से कहा—भगवन्, आप मुझ पर प्रसन्न हों। मेरी यही प्रार्थना है कि घाव से शाक-रस निकलता देखकर मैंने जो चञ्चलता दिखाई और सिद्धि का गर्व किया, उसके कारण मेरा तप क्षीण न हो। तब शङ्कर ने प्रसन्न होकर कहा—हे विप्र, मेरे प्रसाद से तुम्हारा तप क्षीण होने के बदले हज़ार गुना बढ़ जायगा। आज से मैं सदा तुम्हारे निकट इस पवित्र आश्रम में रहूँगा। जो कोई इस सप्तसारस्वत तीर्थ में मेरी पूजा करेगा उसे इस लोक और परलोक में कोई भी पदार्थ दुर्लभ न रह जायगा। वह निःसन्देह सारस्वतलोक (ब्रह्मलोक) प्राप्त करेगा।

महाराज ! इतना कहकर शिवजी अपने लोक को चले गये। महर्षि मङ्कणक, वायु के वीर्य द्वारा, सुकन्या के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। उन महातेजस्वी सिद्ध महर्षि का चरित्र ५९ आद्योपान्त मैंने तुमको सुना दिया।

उनतालीसवाँ अध्याय

बलरामजी का औशनस तीर्थ, रुशङ्गु के आश्रम और पृथूदक तीर्थ में जाना

वैशम्पायन कहते हैं—हे जनमेजय, बलरामजी मङ्कणक मुनि के प्रति प्रीतिभाव दिखाकर उस रात को सप्त-सारस्वत तीर्थ में ही रहे। उन्होंने आश्रमवासी ऋषियों की पूजा की और अनेक दान दिये। ब्राह्मणों ने भी यथोचित रूप से उनका सत्कार किया। सबेरे उठकर, स्नान करके, ब्राह्मणों से आज्ञा लेकर वे वहाँ से चल दिये और शीघ्रतापूर्वक औशनस तीर्थ में पहुँचे। उस तीर्थ को कपालमोचन भी कहते हैं। पहले वनवास के समय रामचन्द्रजी ने एक राक्षस का सिर बाण से काटकर दूर फेंक दिया था। वह सिर महोदर मुनि की जाँघ में आकर चिपक गया और किसी तरह उनकी जाँघ से अलग नहीं हुआ। उन मुनि ने जब इस तीर्थ में आकर स्नान किया तब वह सिर छूटा। इसी तीर्थ में दैत्यगुरु शुक्राचार्य ने तप किया था। उन्होंने यहीं रहकर दैत्य-दानवों के युद्ध के बारे में विचार किया था और शुक्रनीति की रचना की थी। महातेजस्वी बलरामजी ने औशनस तीर्थ में पहुँचकर विधिपूर्वक ब्राह्मणों को दान दिये।

जनमेजय ने कहा—भगवन्, इस तीर्थ का नाम कपालमोचन क्यों पड़ा? महर्षि महोदर ने किस तरह इस तीर्थ में जाँघ से चिमटे हुए राक्षस के कटे सिर से छुटकारा पाया? वह सिर उनकी जाँघ में क्यों चिमट गया था?

वैशम्पायन ने कहा—राजन्, त्रेता युग में रघुवंशी रामचन्द्र ने दण्डकारण्य में रहकर राक्षसों का संहार किया था। वे जब जनस्थान में थे तब उन्होंने तीक्ष्ण क्षुरप्र बाण से एक दुरात्मा राक्षस का सिर काटकर वन में दूर फेंक दिया। वह सिर, दैवयोग से, वन में घूम रहे महोदर मुनि की जाँघ में लगा और हड्डी तोड़कर जाँघ में ही रह गया। उस सिर से पीब ११ और रक्त बहता था। वेदना और बोझ के मारे देवालय और तीर्थस्थान आदि में जाना मुनि के लिए कठिन हो गया। हमने सुना है कि उस आपत्ति से छुटकारा पाने के लिए महोदर मुनि प्रायः पृथ्वी पर के सभी तीर्थों में गये, पर कहीं उस बला से उनका पीछा नहीं छूटा। उन्होंने सब नदियों और समुद्रों के किनारे जाकर ऋषियों से अपनी दुर्दशा का हाल कहा और उससे छुटकारा पाने का उपाय पूछा। मुनियों ने एकमत होकर यही सलाह दी कि सरस्वती के किनारे प्रसिद्ध औशनस तीर्थ सब पापों को मिटानेवाला श्रेष्ठ सिद्धिक्षेत्र है; वहाँ जाने और स्नान करने से यह सिर जङ्घा से अलग हो जायगा।

राजन्, महातपस्वी महोदर तब औशनस तीर्थ में गये। वहाँ स्नान करते ही वह जाँघ में लगा हुआ सिर जाँघ से अलग होकर जल में अदृश्य हो गया। मुनि भी पवित्र, प्रसन्न,

व्यथा-रहित और कृतकृत्य होकर अपने आश्रम को गये। उन्होंने आश्रम में जाकर ऋषियों
२१ से सब वृत्तान्त और उस तीर्थ के प्रभाव का वर्णन किया। उन ऋषियों ने प्रसन्न होकर उस तीर्थ का दूसरा नाम कपालमोचन रख दिया। तपोधन महोदर मुनि फिर पवित्र कपालमोचन तीर्थ में जाकर रहने लगे। वहाँ नहाने और जलपान करने से अन्त को उन्हें सिद्धि प्राप्त हुई।

हे जनमेजय! यादवश्रेष्ठ बलराम उस तीर्थ में स्नान और ब्राह्मणों को दान-मान से प्रसन्न करके ब्राह्मणों के साथ निकटवर्ती रुशंगु ऋषि के आश्रम में गये। उस आश्रम में महात्मा आर्ष्टिषेण ने घोर तप किया था। वहीं तप करके विश्वामित्रजी क्षत्रिय से ब्राह्मण हुए थे। सब इच्छाओं को पूर्ण करनेवाले उस आश्रम में मुनि और ब्राह्मण सदा रहते हैं। ब्राह्मणों सहित श्रीमान् बलदेवजी उस स्थान पर गये जहाँ रुशंगु ऋषि ने शरीर छोड़ा था। रुशंगु एक तपस्वी वृद्ध ब्राह्मण थे। उन्होंने जब अपने को अत्यन्त वृद्ध देखकर शरीरत्याग का निश्चय किया, तब अपने सब पुत्रों को बुलाकर कहा—मुझे पृथूदक तीर्थ पर ले चलो।

३० रुशंगु ऋषि को बहुत वृद्ध देखकर वे तपस्वी पुत्र उन्हें सरस्वती-तट पर ले गये। सैकड़ों तीर्थों से युक्त और ऋषि-ब्राह्मणों से सुशोभित पवित्र सरस्वती नदी के किनारे पहुँचकर महातपस्वी रुशंगु ने विधिपूर्वक स्नान किया और तीर्थ के श्रेष्ठ गुणों को सोचकर कहा—हे पुत्र, सरस्वती के उत्तर-तट पर स्थित इस तीर्थ के अथाह जल में जप करता हुआ जो पुरुष शरीर-त्याग करता है उसे फिर जन्म और मरण की यन्त्रणा नहीं भोगनी पड़ती। इतना कहकर उक्त ऋषि, शरीर छोड़कर, विष्णुलोक को चले गये।

धर्मपरायण बलदेवजी ने वहाँ स्नान-आचमन करके ब्राह्मणों को बहुत सा धन दिया। फिर वहाँ से चलकर उग्र तेजस्वी बलरामजी उस तीर्थ में गये, जहाँ ऋषिश्रेष्ठ आर्ष्टिषेण ने घोर तप करके ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था। वहीं तप करके लोक-पितामह भगवान् ने सब लोकों की सृष्टि की थी और मुनिवर सिन्धुद्वीप, राजर्षि देवापि तथा महातपा विश्वामित्र तपोबल के
३८ द्वारा क्षत्रिय से ब्राह्मण हो गये थे।

चालीसवाँ अध्याय

आर्ष्टिषेण, विश्वामित्र आदि के तप का वर्णन

जनमेजय ने कहा—हे मुनिवर, आर्ष्टिषेण ने कैसा घोर तप किया? सिन्धुद्वीप, देवापि और महात्मा विश्वामित्र किस तरह क्षत्रिय से ब्राह्मण हो गये? आप सब वृत्तान्त विस्तार के साथ कहिए। मुझे सुनने के लिए बड़ा कौतूहल हो रहा है।

वैशम्पायन ने कहा—राजन्, सत्ययुग में आर्ष्टिषेण नाम के एक ब्राह्मण गुरुकुल में रहकर वेद और विद्याएँ पढ़ते थे। वे लगातार बहुत दिन तक पढ़कर भी वेदपाठ और विद्याध्ययन को समाप्त नहीं कर सके। तब उन्होंने खिन्न और उदास होकर विद्यालाभ के लिए सरस्वती तीर्थ में घोर तप किया। उस तप के प्रभाव से शीघ्र ही सब वेद और विद्याएँ उन्हें भासित हो गईं। इस तरह पूर्ण विद्वान्, वेदज्ञ और सिद्ध होकर उन मुनिवर ने उस तीर्थ को तीन वर दिये। उन्होंने कहा—महानदी सरस्वती के इस तीर्थ में आज से जो नहावेगा उसे अश्वमेध यज्ञ का फल मिलेगा। इसके सिवा आज से यहाँ साँप का डर नहीं रहेगा और यहाँ थोड़े ही समय तक जप-तप करने से उसका बहुत अधिक फल प्राप्त होगा। महाराज, महातेजस्वी आर्ष्टिषेण मुनि इस तरह सिद्ध होकर स्वर्ग को गये।

उसी तीर्थ में प्रबल प्रतापी राजा सिन्धुद्वीप, राजर्षि देवापि और तपस्वी जितेन्द्रिय कौशिक विश्वामित्र, ये तीनों क्षत्रिय तप करके ब्राह्मण हो गये हैं। हे जनमेजय, विश्वामित्र के पिता का नाम गाधि था। वे कुशिक वंश में उत्पन्न, कान्यकुब्ज देश के राजा और महायोगी थे। उन्होंने जब विश्वामित्र का राज्याभिषेक करके देहत्याग के लिए वन जाना चाहा तब सब प्रजा प्रणत होकर उनसे बोली—महाराज! आप जायँ नहीं, यहीं रहकर सांसारिक महाभयों और आपत्तियों से हमारी रक्षा करें। प्रजा के वचन सुनकर गाधि ने उनसे कहा—तुम लोग घबराओ मत, मेरा पुत्र तुम्हारी और सारे विश्व की रक्षा करेगा। इतना कहकर महाराज गाधि वन को गये और यथासमय उनका स्वर्गवास हुआ। गाधि के उपरान्त विश्वामित्र राजा हुए। वे बहुत यत्न करने पर भी अच्छी तरह प्रजा की रक्षा नहीं कर पाते थे। उन्हें ख़बर मिली कि राक्षस बड़ा ऊधम मचाये हुए हैं, उनसे प्रजा को बड़ा भय है। तब विश्वामित्र चतुरङ्गिणी सेना लेकर राक्षसों का दमन करने को चले। नगर से दूर वशिष्ठ ऋषि के आश्रम में पहुँचकर उनकी सेना ने पड़ाव डाला। सैनिक लोग वहाँ के पुष्प-फल-युक्त वृक्ष तोड़ने और पशु-पक्षियों का शिकार आदि अन्य उत्पात करने लगे। ब्रह्मा के पुत्र भगवान् वशिष्ठ कहीं गये हुए थे। उन्होंने लौटकर देखा कि सेना के लोग चारों ओर उस आश्रम-वन को उजाड़ रहे हैं। तब क्रुद्ध होकर महर्षि ने अपनी होमधेनु नंदिनी से कहा—तू इन दुष्टों का नाश करने के लिए घोररूप शवर जाति को शीघ्र उत्पन्न कर। धेनु ने तत्काल अपनी देह से भीषणाकार शवरों की सृष्टि की। वे शवर विश्वामित्र की सेना पर आक्रमण करके उसे नष्ट-भ्रष्ट करने लगे तो सेना भाग खड़ी हुई। यह देखकर विश्वामित्र को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने बाहुबल की अपेक्षा तपोबल को ही श्रेष्ठ जानकर तप करने का दृढ़ निश्चय कर लिया। वे सरस्वती के इसी पवित्र तीर्थ में आकर एकाग्र होकर, नियमों और उपवासों से अपने शरीर को कृश करते हुए, घोर तपस्या करने लगे। केवल जल पीकर, हवा ही खाकर, पत्ते ही

११

२०

चबाकर, बारहों महीने खुले मैदान में जाड़े-गर्मी-वर्षा का कष्ट सहकर, और भी अनेक प्रकार के कठोर व्रत धारण कर उन्होंने घोर तपस्या की। देवताओं ने अनेक बार अनेक प्रकार से उनके तप में विघ्न डालने की चेष्टा की; किन्तु उन महात्मा का मन किसी तरह तप के नियमों से नहीं विचलित हुआ। इस तरह परम यत्न से तरह-तरह के तप करने पर विश्वामित्र का तेज सूर्य के समान हो गया। विश्वामित्र के तपो-बल से प्रसन्न भगवान् ब्रह्मा ने उनके सामने आकर कहा—मैं सन्तुष्ट हूँ; जो चाहो, वर माँगो। विश्वामित्र ने कहा—भगवन्, यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे ब्राह्मण कर दीजिए। सब लोकों के पितामह ब्रह्मा तथास्तु कहकर, उन्हें ब्रह्मर्षिपद देकर, अपने लोक को चले गये। इस तरह उग्र तप से ब्राह्मण होकर महायशस्वी देव-तुल्य विश्वामित्रजी यथेष्ट रूप से पृथ्वीमण्डल पर विचरने लगे।

हे जनमेजय, बलरामजी ने उस तीर्थ में ब्राह्मणों की पूजा करके उन्हें असंख्य दुधार गायें, पालकी आदि सवारियाँ, पलँग, वस्त्र, भूषण और खाने-पीने के पदार्थ दिये। फिर वहाँ से निकटवर्ती दल्भ ऋषि के पुत्र वक मुनि के आश्रम में गये। सुना जाता है, वहाँ वक-दाल्भ्य ऋषि ने कठोर तप किया था। उस तीर्थ का नाम अवाकीर्ण है। ३३

इकतालीसवाँ अध्याय

वक-दाल्भ्य मुनि के चरित्र का वर्णन

वैशम्पायन ने कहा—राजन्, महाबली बलदेवजी वेदध्वनि से परिपूर्ण वक ऋषि के आश्रम में गये। ब्राह्मणों से आकीर्ण (परिपूर्ण) होने के कारण उसको अवाकीर्ण तीर्थ भी कहते हैं। महातपस्वी वक-दाल्भ्य ने यज्ञ-पशुओं के कारण राजा धृतराष्ट्र पर कुपित होकर इसी आश्रम में घोर तप से अपने शरीर को कृश करते हुए मृत पशुओं के मांस की आहुतियों द्वारा धृतराष्ट्र के राष्ट्र का होम कर दिया था। उसका उपाख्यान सुनो। पूर्व समय में
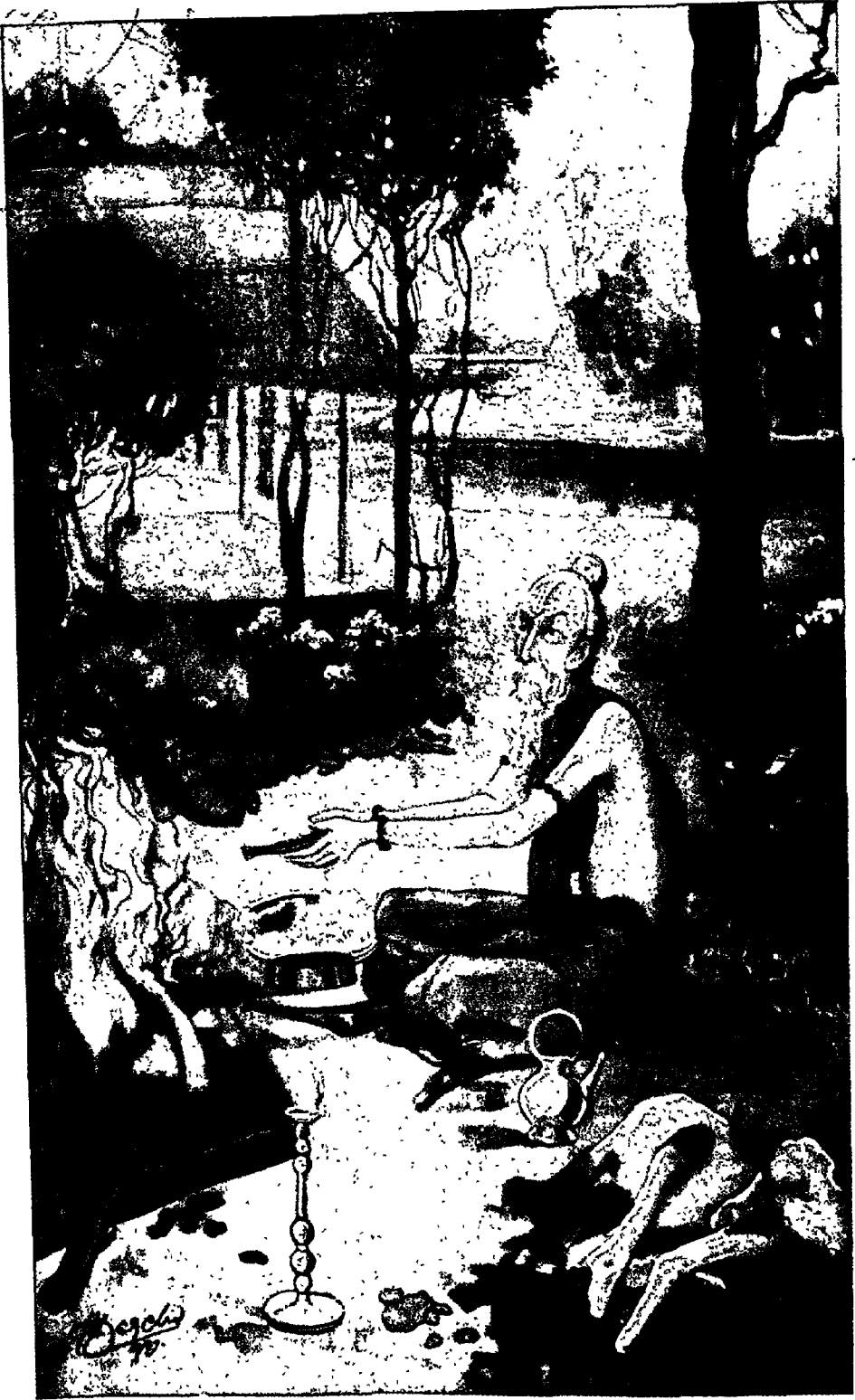
पृ० ३१२३—वक मुनि ने···नियम धारण-पूर्वक अग्नि प्रज्वलित करके इन्हीं मृत पशुओं का मांस काट-काट कर आहूति देना शुरू किया।

नैमिषारण्यवासी मुनियों ने बारह वर्ष में पूर्ण होनेवाला विश्वजित् यज्ञ किया था। उस यज्ञ के समाप्त होने पर यज्ञकर्ता मुनियों ने, ब्राह्मणों को दक्षिणा देने के लिए, कुरु-पाञ्चाल देश में जाकर वहाँ के राजा से बली, व्याधि-रहित इक्कीस बछड़े माँगने का विचार किया। वक-दाल्भ्य ऋषि भी उनके साथ थे। उन्होंने ऋषियों से कहा—तुम लोगों के पास पशु नहीं हैं, इसलिए मेरे ये पशु लेकर बाँट दो। मैं ही पाञ्चालराज धृतराष्ट्र के पास जाकर उनसे यज्ञ के लिए पशु माँग लूँगा। अब प्रतापी वक मुनि ने अपने पशु तो ऋषियों को दे दिये और आप राजा धृतराष्ट्र के पास जाकर उनसे पशु माँगे। वक मुनि की याचना से राजा धृतराष्ट्र क्रुद्ध हो उठे। उनके यहाँ कुछ गायें आप से मर गई थीं। राजा ने वक से कहा—हे ब्राह्मणाधम! अगर चाहो तो इन पशुओं को शीघ्र यहाँ से ले जाओ। धर्मज्ञ वक ऋषि क्रुद्ध होकर सोचने लगे कि बड़े खेद की बात है कि राजा ने भरी सभा में बहुत ही निन्दनीय बात कहकर मेरा अपमान किया। इस तरह दमभर सोचकर कुपित मुनिराज ने राजा धृतराष्ट्र के राष्ट्र को नष्ट करने का विचार कर लिया। महाराज, वक मुनि ने सरस्वती के अवाकीर्ण तीर्थ में १० जाकर नियमधारण-पूर्वक अग्नि प्रज्वलित करके उन्हीं मृत पशुओं का मांस काट-काट कर आहुति देना शुरू किया। इस तरह वह दारुण यज्ञ आरम्भ होने पर धृतराष्ट्र की प्रजा का नाश होने लगा। जिस तरह कुल्हाड़ी से काटा गया वन नष्ट होता है, उसी तरह राजा की प्रजा मरने लगी। राष्ट्र को नष्ट होते देखकर राजा धृतराष्ट्र बहुत ही चिन्तित हुए। उन्होंने ब्राह्मणों की सहायता से राज्यनाश की आपत्ति दूर करने का बहुत यत्न किया, किन्तु कुछ भी फल नहीं हुआ; प्रजा उसी तरह दिन-दिन क्षीण होने लगी। राजा और यज्ञ करानेवाले ऋषि अत्यन्त खिन्न हुए। राजा जब सब यत्न करके थक गये और अपनी प्रजा को नष्ट होने से नहीं बचा सके तब उन्होंने सब हाल कहकर ब्राह्मणों से उसका उपाय पूछा। ब्राह्मणों ने कहा—राजन्! आपने मृत पशु देकर जिन वक मुनि के साथ छल किया है वही मुनि, अपने अपमान से कुपित होकर, मृत मांस की आहुतियाँ डालकर, आपके राज्य का नाश २० कर रहे हैं। उनके हवन से ही राष्ट्र का क्षय हो रहा है। उन्हीं के तप का प्रभाव है कि आपकी प्रजा क्षीण होती जा रही है। यदि आप इसकी शान्ति चाहते हैं तो सरस्वती तीर्थ में जाकर उन्हीं ऋषि को प्रसन्न कीजिए।

तब राजा धृतराष्ट्र ने सरस्वती-तट पर अवाकीर्ण तीर्थ में जाकर, वक मुनि के चरणों पर सिर रखकर, हाथ जोड़कर कहा—भगवन्! मैं अत्यन्त दीन, लोभी और मूर्ख हूँ। मूर्खता-वश मैंने जो अपराध किया है उसे आप क्षमा करें। आप ही मेरे स्वामी और आश्रय-दाता हैं, इसलिए मुझ पर प्रसन्न हों। हे जनमेजय, राजा को इस तरह शोकाकुल और विलाप करते देखकर वक मुनि को दया आ गई। उन्होंने करुणावश प्रसन्न होकर हृदय से क्रोध दूर

कर दिया और राजा धृतराष्ट्र के राज्य को विनाश से बचाने के लिए शान्ति की आहुतियाँ छोड़ीं। राष्ट्र को आपत्ति से छुटकारा पाते देखकर राजा ने प्रसन्नतापूर्वक मुनिवर को बहुत से पशु दिये। उन पशुओं को लेकर बक मुनि प्रसन्न होकर यज्ञ करने के लिए फिर नैमिषारण्य को चले गये। धर्मात्मा राजा धृतराष्ट्र भी स्वस्थचित्त होकर अपनी राजधानी को लौट गये। उनका राष्ट्र फिर समृद्धि-पूर्ण हो गया और प्रजा सुखी होकर बढ़ने लगी।

राजन्, उसी तीर्थ में देवगुरु बृहस्पति ने भी देवताओं के अभ्युदय और असुरों के नाश के लिए यज्ञ करके उसमें मांस से हवन किया था। उस यज्ञ के प्रभाव से असुरों का नाश ३० हुआ और विजयी देवताओं ने भी उन्हें मारकर भगा दिया। हे जनमेजय! बलराम ने वहाँ भी स्नान करके ब्राह्मणों को हाथी, घोड़े, खच्चर, रथ, बहुमूल्य रत्न, धन-धान्य आदि देकर सन्तुष्ट किया। वहाँ से वे ययाति-तीर्थ में गये। उस तीर्थ में नहुष के पुत्र ययाति ने यज्ञ किया था। ययाति के यज्ञ में सरस्वती नदी में जल की जगह घी और दूध बहा था। उस यज्ञ में ब्राह्मणों को सरस्वती से ही यथेष्ट पदार्थ प्राप्त हुए थे। राजा ययाति वहाँ यज्ञ करके स्वर्ग-लोक को गये और सद्गति पाकर परम सुखी हुए। महाराज ययाति ने एक बार और उसी स्थान पर यज्ञ किया था और उदारतापूर्वक ब्राह्मणों को मुँहमाँगी वस्तुएँ दी थीं। यज्ञ में निमन्त्रित जो व्यक्ति जहाँ ठहरा था उसे वहीं श्रेष्ठ नदी सरस्वती से घर, उसकी पलँग आदि सामग्री, छः रसों से युक्त स्वादिष्ठ भोजन, धन, वस्त्र, आभूषण आदि सब कुछ मिलता था। वे लोग उसे राजा का ही दान और सत्कार जानकर उनकी प्रशंसा करते हुए उन्हें आशीर्वाद देने लगे। राजा ययाति के यज्ञ की सम्पत्ति और धूम-धाम देखकर देवता और गन्धर्व आदि प्रसन्न हुए थे और मनुष्यों को बड़ा आश्चर्य हुआ था। धृतात्मा, जितात्मा, कृतात्मा, धर्मकेतु, ४० तालकेतु बलरामजी वहाँ से चलकर वेग से बहनेवाले वशिष्ठापवाह तीर्थ में पहुँचे।

बयालीसवाँ अध्याय

वशिष्ठापवाह तीर्थ का इतिहास

जनमेजय ने पूछा—भगवन्, वशिष्ठापवाह तीर्थ के प्रवाह में इतना वेग क्यों है? सरस्वती नदी उस स्थान पर महर्षि वशिष्ठ को क्यों बहा ले गई, जिससे उसका नाम वशिष्ठापवाह पड़ा? विश्वामित्र और वशिष्ठ के वैर का कारण क्या था? हे महाप्राज्ञ! ये बातें मुझसे कहिए। सुनते-सुनते किसी तरह मुझे तृप्ति ही नहीं होती।

वैशम्पायन ने कहा—हे जनमेजय! महातपस्वी वशिष्ठ और विश्वामित्र में, परस्पर तप की होड़ के कारण ही, भारी विरोध हो गया। स्थाणु तीर्थ में पूर्व ओर वशिष्ठ का आश्रम था।

वहीं पश्चिम और विश्वामित्र का भी आश्रम था। भूतनाथ शङ्कर ने घोर तप और सरस्वती की पूजा जिस स्थान पर की थी, वही स्थाणु तीर्थ कहलाता है। उसी तीर्थ में देवताओं ने स्कन्द भगवान् को अपना सेनापति बनाया था। सरस्वती-तटवर्ती स्थाणु तीर्थ में ही महामुनि विश्वामित्र ने उग्र तप करके वशिष्ठ को, सरस्वती-प्रवाह के द्वारा, अपने आश्रम में मँगा लिया था। उस उपाख्यान का वर्णन मैं तुम्हारे आगे करता हूँ, सुनो।

विश्वामित्र और वशिष्ठ परस्पर लाग-डाँट से दिन-दिन उग्र से उग्र तप करने लगे। एक समय महर्षि वशिष्ठ के तपोबल और तेज को अपने से अधिक देखकर विश्वामित्र को बड़ा सन्ताप हुआ। वे चिन्तित होकर सोचने लगे कि मैं महानदी सरस्वती से कहूँ कि वह जप- १० परायण द्विजश्रेष्ठ वशिष्ठ को अपने वेग से यहाँ बहा लावे। फिर मैं यहाँ उनको मार डालूँगा। विश्वामित्र ने क्रोध के मारे यह निश्चय करके महानदी सरस्वती को स्मरण किया।

सरस्वती जानती थी कि महामुनि विश्वामित्र महाक्रोधी हैं और उनका तपोबल भी असीम है। इसी से वह, जिसका पति और पुत्र मर गया हो उस अनाथ विधवा स्त्री की तरह, मुनि के स्मरण करते ही व्याकुल हो उठी। उसका चेहरा उतर गया। लाचार होकर काँपती हुई हाथ जोड़े वह मुनि के सामने जाकर कहने लगी—हे तपोधन, कहिए क्या आज्ञा है? कुपित विश्वामित्र ने कहा—सरस्वती, तुम शीघ्र वशिष्ठ को मेरे पास यहाँ ले आओ; आज मैं उनको मार डालूँगा। यह सुनकर सरस्वती व्यथित होकर, आँधी से केले के वृक्ष की तरह, काँपने लगी। विश्वामित्र ने हाथ जोड़े खड़ी भय-विह्वल सरस्वती की दशा देखकर उससे फिर कहा—तुम सोच-विचार मत करो, बेखटके वशिष्ठ को मेरे पास ले आओ।

विश्वामित्र के बुरे अभिप्राय और वशिष्ठ के अप्रतिम प्रभाव को सोचकर सरस्वती बड़े असमञ्जस में पड़ गई। विश्वामित्र की बात टालने से वे शाप दे देंगे, और वशिष्ठ को लाने २० का उद्योग करने से वे भी शाप दे देंगे। दोनों तरह अपनी ख़राबी देखकर सरस्वती ने वशिष्ठ के पास जाकर उनसे सब हाल कह देना ही ठीक समझा। वह काँपती हुई, विवर्ण चिन्तित

मुख लिये, वशिष्ठ के सामने पहुँची। उसने विश्वामित्र का हाल उनसे कह दिया। धर्मात्मा वशिष्ठ ने सरस्वती की दशा देखकर कृपापूर्वक कहा—हे महानदी, तुम अपनी रक्षा करो और मुझे शीघ्र अपने वेग से विश्वामित्र के पास ले चलो। ऐसा न करोगी तो क्रोधी विश्वामित्र तुमको शाप दे देंगे। इसलिए सोच-विचार न करके उनकी आज्ञा का पालन करना ही तुम्हारे लिए श्रेयस्कर है। हे जनमेजय, कृपालु वशिष्ठ के ये वचन सुनकर सरस्वती सोचने लगी कि ऐसा उपाय करना चाहिए, जिससे विश्वामित्र का कहा तो हो जाय पर वशिष्ठ की हत्या न हो। वशिष्ठ ने मुझ पर अत्यन्त दया की है, इसलिए इनके प्राणों की रक्षा करनी ही चाहिए। इस तरह सोचकर सरस्वती ने जिस समय विश्वामित्र को अपने तट पर जप और हवन करते देखा उस समय, उस मौके को अच्छा जानकर, जहाँ वशिष्ठ बैठे थे वहाँ के कगारे को गिराकर वह वशिष्ठ को वेग से बहाती हुई विश्वामित्र के पास ले चली।

राजन्, उस समय सरस्वती के वेग में बह रहे वशिष्ठ मुनि इस प्रकार भक्तिपूर्वक सरस्वती की स्तुति करने लगे—हे देवी सरस्वती, तुम पितामह-निर्मित मानस सरोवर से प्रकट हुई हो। ३० तुम्हारे निर्मल जल ने इस जगत् को व्याप्त कर रक्खा है। तुम्हीं आकाशगामिनी होकर मेघों को जल से पूर्ण करती हो। सब जल तुम्हीं से प्रकट है। कभी-कभी अनावृष्टि से वेदपाठी ऋषियों के सम्प्रदाय के निर्मूल होने पर ब्राह्मणगण तुम्हीं से वेदों का अध्ययन करते हैं। पुष्टि, द्युति, कीर्ति, सिद्धि, वृद्धि, उमा, वाणी, स्वाहा आदि सब तुम्हीं हो। यह जगत् तुम्हारे ही अधीन है। तुम सूक्ष्मा, मध्यमा, वैखरी और पश्यन्ती, इन चार नाड़ियों के रूप से सभी प्राणियों में विद्यमान हो।

महाराज, वशिष्ठ की स्तुति से प्रसन्न सरस्वती उनको वेग से विश्वामित्र के आश्रम की ओर बहा ले चली। उसने विश्वामित्र से बारम्बार वशिष्ठ को ले आने का समाचार कहा तो क्रोध से अधीर विश्वामित्र वशिष्ठ को देखकर, उन्हें मार डालने के लिए, अस्त्र-शस्त्र ढूँढ़ने लगे। उनको क्रुद्ध देखकर, ब्रह्महत्या से डरकर, सरस्वती ने सोचा कि विश्वामित्र का कहा तो हो गया, अब मैं वशिष्ठ को यहाँ से हटा ले जाऊँ। बस, सरस्वती फिर वशिष्ठ को लेकर पूर्व की ओर बहने लगी। उसने दोनों की बात रखकर, विश्वामित्र को वञ्चित करके, वशिष्ठ को उनके आश्रम में पहुँचा दिया। वशिष्ठ को सरस्वती के द्वारा वहाँ से हट गया देखकर विश्वामित्र क्रोध से प्रज्वलित हो उठे। उन्होंने क्रोध करके सरस्वती से कहा—हे सरस्वती नदी! तू मुझे धोखा दे करके वशिष्ठ को यहाँ से हटा ले गई, इसलिए मैं तुझको शाप देता हूँ कि आज से तेरा जल राक्षसों के पीने योग्य रुधिर हो जाय।

विश्वामित्र के शाप से एक वर्ष तक सरस्वती में रक्त-मिश्रित जल बहता रहा। ऋषि, देवता, गन्धर्व, अप्सरा आदि सभी सरस्वती की यह दुर्दशा देखकर बहुत ही दुःखित

वशिष्ठ को सरस्वती के द्वारा वहाँ से हट गया देखकर विश्वामित्र क्रोध से........सरस्वती से कहा—पृष्ठ ३१२६

दधीचि मुनि ऋषियों की मण्डली में बैठे थे। वहाँ जाकर........सरस्वती ने कहा—पृष्ठ ३१४९

हुए। महाराज, वशिष्ठापवाह तीर्थ इस प्रकार उक्त नाम से प्रसिद्ध हुआ। एक वर्ष के बाद सरस्वती का वह वशिष्ठापवाह तीर्थ, शाप से मुक्त होकर, फिर ज्यों का त्यों हो गया। ४१

तैंतालीसवाँ अध्याय

ऋषियों का सरस्वती के रक्त-मिश्रित जल को तपोबल से शुद्ध करना। इन्द्र के ब्रह्महत्या से मुक्त होने का वर्णन

वैशम्पायन ने कहा—हे जनमेजय, इस तरह विश्वामित्र ने जब सरस्वती को शाप दिया तब उक्त तीर्थ के निर्मल जल में रक्त बहने लगा। राक्षस वहाँ आकर रक्त पीकर सुखपूर्वक रहने लगे। वे रक्त पीकर इस तरह नाचते-गाते-हँसते आनन्द मनाते रहते थे मानों उन सब ने स्वर्ग जीत लिया हो। कुछ दिन बीतने पर बहुत से प्रसन्नचित्त महाभाग्यशाली तपस्वी ऋषि तीर्थ-यात्रा करते हुए सरस्वती-तट के तीर्थों में नहाकर पुण्य के लोभ से वशिष्ठापवाह तीर्थ में पहुँचे। उन्होंने देखा कि वहाँ रक्त बह रहा है और असंख्य राक्षस उस रक्त को पीकर प्रसन्न हो रहे हैं। तब उन महाव्रतधारी ऋषियों ने सरस्वती के संशोधन का विचार करके सरस्वती को बुलाकर कहा—हे कल्याणी, यह तुम्हारा ह्रद रक्तपूर्ण क्यों है? कारण मालूम होने पर हम जल को शुद्ध करने का उपाय सोचेंगे। उनके वचन सुनकर काँपती हुई १० शोकाकुल सरस्वती ने सब हाल कह दिया।

सरस्वती को दुःखित देखकर दयालु मुनियों ने कहा—भद्रे, तुम्हारे जल के रक्त-दूषित होने का कारण हमने सुना और विश्वामित्र के दिये हुए शाप का हाल भी जाना।

अब मुनियों ने आपस में कहा कि हम सब मिलकर इस नदी के उद्धार का, शाप को शान्त करने का, उपाय सोचकर उसके लिए प्रयत्न करेंगे। वे सब मिलकर विविध नियम, यम, उपवास, कठिन व्रत और जप-तप से जगत्पति शङ्कर की उपासना करने लगे। उनकी आराधना से सन्तुष्ट होकर महादेव ने सरस्वती को मुनि के शाप से मुक्त कर दिया। सरस्वती का जल वैसा ही निर्मल हो गया जैसा पहले था।

सरस्वती को शुद्ध जल से पूर्ण देखकर सब भूखे राक्षस, हाथ जोड़कर, उन्हीं कृपालु मुनियों की शरण में आये और बारम्बार कहने लगे—महर्षियो, सनातन-धर्म से हीन हम लोग भूखों मर रहे हैं। हम अपनी इच्छा से पाप-कर्म नहीं करते। आप लोगों की अप्रसन्नता और अपने पूर्व जन्म के पापों से हम ब्रह्मराक्षस हुए हैं। स्त्रियों के योनिदोष-कृत पाप से राक्षस २०

होना पड़ता है। जो क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र लोग ब्राह्मणों से द्वेष रखते हैं और जो लोग आचार्य-ऋत्विक्-गुरु-वृद्ध आदि का अपमान करते हैं वे ही मरकर राक्षस योनि पाते हैं। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो, आप सब जगत् को तार सकते हैं, इसलिए हमारा भी इस राक्षस योनि से उद्धार कीजिए।

हे नरनाथ, उनके यों कहने पर वे दयालु मुनिगण उन राक्षसों को उस योनि से मुक्त करने के लिए महानदी सरस्वती की स्तुति करने लगे। मुनियों ने कहा—घुना हुआ, कीड़ों से युक्त, जूठा, जिसमें बाल पड़ा हुआ निकले, जिसे खाते-खाते हिचकियाँ आने लगें और जिसमें आँसू गिर पड़े हों, वह आहार राक्षसों का भाग है। इसलिए बुद्धिमान् पुरुष को इस तरह का आहार नहीं करना चाहिए। जो नर-नारी इस तरह का दूषित अन्न खाते हैं वे राक्षसान्न खाते हैं। हे जनमेजय! तपोधन ऋषियों ने जल को शुद्ध करके, स्तुति से प्रसन्न, सरस्वती से उन राक्षसों के उद्धार की प्रार्थना की। तब सरस्वती ने महर्षियों का मत जानकर वहाँ ब्रह्महत्या-पापनाशिनी अपनी शाखा अरुणा नदी को पहुँचा दिया। वे राक्षस ३० अरुणा में नहाकर राक्षस-शरीर छोड़कर स्वर्ग को चले गये। महाराज! अरुणा नदी ब्रह्महत्या के पाप को दूर करती है, यह जानकर कुछ समय के उपरान्त ब्रह्महत्या-पीड़ित इन्द्र ने वहाँ आकर स्नान किया और वे भी ब्रह्महत्या से मुक्त होकर सुखी हुए।

जनमेजय ने पूछा—हे तपोधन, इन्द्र को किस कारण ब्रह्महत्या लगी थी? और फिर किस तरह उक्त तीर्थ में नहाकर उन्हें उस पाप से छुटकारा मिला?

वैशम्पायन ने कहा—राजन्, पूर्व समय में इन्द्र के ब्रह्महत्या-ग्रस्त होने का उपाख्यान सुनो। जिस तरह इन्द्र ने नमुचि से विश्वासघात और नियम का उल्लङ्घन किया, वह मैं कहता हूँ। नमुचि दानव इन्द्र के डर से सूर्य की किरणों में जा छिपा। तब इन्द्र ने नमुचि से मित्रता करके यह कहा कि हे असुरश्रेष्ठ! मैं शपथ करके कहता हूँ कि तुम्हें रात को या दिन को, गीले या सूखे पदार्थ से, नहीं मारूँगा। ऐसी प्रतिज्ञा करके एक दिन इन्द्र ने, जिस समय कुहासा गिर रहा था उस समय, जल के फेने से नमुचि का सिर काट डाला। मित्र की हत्या करने से उन्हें हत्या ने घेर लिया और नमुचि का कटा हुआ सिर यह कहता हुआ इन्द्र के पीछे लग गया कि "अरे पापी, तूने मित्र की हत्या की, तुझे धिक्कार है!" इन्द्र हैरान होकर ब्रह्माजी के पास गये। उनसे सब हाल कहकर उन्होंने छुटकारा पाने का उपाय पूछा।

ब्रह्मा ने कहा—हे देवेन्द्र, सरस्वती की शाखा अरुणा नदी सब पापों और भयों को दूर करनेवाली है। उसमें विधिपूर्वक स्नान और यज्ञ करो, पाप से तुम्हारा छुटकारा हो जायगा। ४० हे शक्र! महर्षियों ने, जल का संशोधन करके, उसे पवित्र किया है। उस स्थान पर उसका आविर्भाव पहले किसी को मालूम नहीं था। सरस्वती ने आकर अरुणा को भर दिया और तभी से वह प्रसिद्ध हो गई। सरस्वती और अरुणा का सङ्गम-स्थल अत्यन्त पवित्र है। तुम वहाँ

स्नान, दान और यज्ञ करके इस घोर पाप से अवश्य मुक्त हो जाओगे। हे जनमेजय, प्रजापति ब्रह्मा के वचन सुनकर इन्द्र अरुणा नदी के तट पर पहुँचे। वहाँ विधिपूर्वक स्नान करने से उनकी ब्रह्महत्या दूर हो गई। वे प्रसन्न होकर अपने लोक को गये। दानवराज नमुचि का वह कटा हुआ सिर भी, इन्द्र के साथ, अरुणा में गोता लगाकर डूब गया और नमुचि को श्रेष्ठ लोक तथा अक्षय सुख प्राप्त हुआ।

वैशम्पायन कहते हैं—सत्कर्म करनेवाले बलरामजी ने अरुणा तीर्थ में स्नान और विविध दान से धर्म-सञ्चय करके सोम-तीर्थ की यात्रा की। पूर्व समय में चन्द्रदेव ने उस तीर्थ में राजसूय महा-यज्ञ किया था। उस यज्ञ में ब्रह्मा के पुत्र अत्रि ऋषि ने होता का कार्य किया था। उस यज्ञ के अन्त में दैत्य-दानव-राक्षसों के साथ देवताओं का घोर संग्राम हुआ था। वह युद्ध तारकासुर-संग्राम के नाम से प्रसिद्ध है। कार्त्तिकेय ने तारकासुर को मारा था। दैत्यनाशन महासेन कार्त्तिकेय को वहीं देवताओं ने अपना सेनापति बनाया था। वहाँ जो बड़ा भारी प्लक्ष (पाकर) का वृक्ष है, उसमें भगवान् कार्त्तिकेय सदा निवास करते हैं। ४९

चवालीसवाँ अध्याय

कुमार कार्त्तिकेय की उत्पत्ति का वर्णन

जनमेजय ने कहा—ब्रह्मन्! सरस्वती का प्रभाव तो यह आपने कहा, अब कुमार के अभिषेक का भी वर्णन कीजिए। कहाँ, कब, किस प्रकार, किन लोगों ने देव-सेनापति के पद पर कार्त्तिकेय का अभिषेक किया? कार्त्तिकेय ने किस तरह दैत्यों का संहार किया? सुनने के लिए मुझे बड़ा कौतूहल हो रहा है।

वैशम्पायन ने कहा—हे जनमेजय, तुम्हारा यह कौतूहल कुरु-कुल में उत्पन्न तुम सरीखे महानुभाव महाराज के योग्य ही है। उसे देखकर मुझे भी हर्ष हो रहा है। मैं कुमार के

अभिषेक और प्रभाव का वर्णन करता हूँ, सुनो। एक समय देवदेव शंकर का वीर्य अग्नि में गिर पड़ा। किन्तु अग्निदेव इतने तेजस्वी होकर भी उस तेजोमय वीर्य को भस्म नहीं कर सके। तब उन्होंने उसे, भगवान् ब्रह्मा की आज्ञा से, गंगा-जल में डाल दिया। सूर्य के समान तेजोमय उस दिव्य गर्भ को गंगा भी नहीं धारण कर सकीं। उन्होंने उसको देव-सेवित हिमालय के ऊपर सेठों के वन में रख दिया। वहीं पर उस वीर्य से एक अग्नि-सदृश कुमार की उत्पत्ति हुई। उधर से छहों कृत्तिकाएँ निकलीं। उस परम सुन्दर और अपने तेज से त्रिभुवन को व्याप्त करनेवाले अग्नि-गर्भ-संभूत कुमार को देखकर, पुत्र-प्राप्ति की इच्छा रखनेवाली, छहों कृत्तिकाएँ ११ "यह मेरा पुत्र है, यह मेरा पुत्र है" कहती हुई कुमार के पास आ गईं। पुत्र-स्नेह के मारे उनके स्तनों से दूध बहने लगा। भगवान् कुमार ने उन माताओं के स्नेह और आग्रह को देखकर, छः मुख करके, एक साथ छहों का दूध पीना शुरू कर दिया।

दिव्य-देह-धारिणी वे देवियाँ उस बालक का प्रभाव देखकर बहुत विस्मित हुईं। गंगा ने जिस शैल-शिखर पर शंकर के गर्भ को छोड़ दिया था वह सब, सुवर्णमय सा होकर, सुमेरु पर्वत के समान जगमगाने लगा। बढ़ रहे उस गर्भ के तेज से वहाँ की पृथ्वी प्रकाशित हो उठी। इसी कारण वह पर्वत ही सुवर्णमय सा प्रतीत होने लगा। महाबली कुमार पहले अग्नि-तनय, फिर गंगा-नन्दन और उसके बाद कार्त्तिकेय कहलाये। शम, तप और वीर्य से युक्त कुमार क्रमशः बढ़ने लगे। उनके चन्द्र-सदृश प्रियदर्शन होने के कारण सब लोग उन पर प्रीति रखने लगे। उस सुवर्ण-शिखर के ऊपर सेठों के वन में श्रीमान् कुमार शयन कर रहे थे। गन्धर्व और मुनिगण उनकी स्तुति करते थे। हज़ारों देव-कन्याएँ और बढ़िया गाना-बजाना-नाचना जाननेवाली अप्सराएँ नाचती हुई वहाँ उपस्थित हुईं। नदियों में श्रेष्ठ गंगा और अग्नि सब वहाँ उपस्थित २० हुए। दिव्य-रूप-धारिणी पृथ्वी कुमार को गोद में लेकर खिलाने लगी।

यथासमय देवगुरु बृहस्पति ने कुमार के जात-कर्म आदि आरम्भिक संस्कार किये। चारों वेद मूर्त्तिमान् होकर कुमार के पास आये। चारों विभागों से युक्त धनुर्वेद, सब अस्त्र, संग्रहशास्त्र और वाणी-विद्या-रूपिणी सरस्वती, ये सब प्रत्यक्ष होकर उपस्थित हुए। सैकड़ों भूत-गणों के साथ पार्वती सहित शंकर को महात्मा कुमार ने वहाँ पर देखा। उनके साथ के गण अत्यन्त अद्भुत थे। वे विकृत, विकृताकार, विकृत आभूषण और ध्वजा धारण किये हुए थे। उनके मुख और शरीर व्याघ्र, सिंह, रीछ, बिलाव, मगर, बैल, डाँस, हाथी, ऊँट, उलूक, गिद्ध, गीदड़, क्रौञ्च, कबूतर, रङ्कु, कुत्ते, शल्लकी, गोह, बकरी, गाय, भेड़िये आदि के ऐसे थे। वे पहाड़ और मेघ ऐसे ऊँचे और हाथों में चक्र, गदा, अलात (जलती लकड़ी) आदि अस्त्र-शस्त्र लिये हुए थे। कोई अञ्जन के ढेर की तरह काले और कोई कैलाश पर्वत-से सफ़ेद थे। सातों मातृगण, पुत्रों सहित ब्रह्मा, विष्णुदेव, इन्द्र, साध्यगण, विश्वेदेवा, मरुद्गण, वसुगण, पितृगण,

रुद्रगण, बारहों आदित्य, सिद्धगण, नागगण, दानवगण, पक्षी, नारद आदि देवर्षि, गन्धर्वगण, बृहस्पति आदि सिद्ध पुरुष, जगत् में श्रेष्ठ देवताओं के भी देवता अग्निष्वात्ता आदि देवपितर और त्रिभुवन के सब निवासी कुमार को देखने के लिए हिमाचल पर आये। ३२

महायोगबल से युक्त, बली और पराक्रमी कुमार भी उठकर शूलधारी पिनाकपाणि महादेव के पास आने लगे। उस समय भगवान् शंकर, देवी पार्वती, भगवती गंगा और अग्निदेव, इन चारों के मन में एक साथ यह भाव उत्पन्न हुआ कि यह बालक पहले किसके पास जायगा और किसे पितृ-मातृ-पद का गौरव देगा? फिर हर एक को यह ख़याल हुआ कि कुमार मेरे ही पास आवेगा। दिव्य ज्ञान से युक्त कुमार ने चारों के मन का भाव जान लिया। उन्होंने चारों की इच्छा-पूर्ति और सम्मान-रक्षा के लिए योगबल से एक ही रूप की चार मूर्तियाँ कर लीं। पीछे की तीनों मूर्तियाँ शाख, विशाख और नैगमेय नाम से प्रसिद्ध हुईं। चारों मूर्तियों के आकार-प्रकार आदि में तनिक भी अन्तर नहीं था। अद्भुतरूप कार्त्तिकेय स्वयं महादेव के पास, विशाख गिरिनन्दिनी उमा के निकट, दिव्यमूर्ति शाख अग्निदेव के निकट और पावक-तुल्य प्रभावशाली नैगमेय गंगादेवी के समीप उपस्थित हुए। एक कुमार का चार रूप रखकर चारों माता-पिताओं के निकट जाना वास्तव में बड़ी अद्भुत घटना थी। उस लोमहर्षण आश्चर्य को देखकर देव-दानव-राक्षस आदि की मण्डली घोर कोलाहल करने लगी। ४०

तब रुद्र सहित पार्वती, गंगा और अग्निदेव ने पूजनीय जगत्पितामह ब्रह्मा को प्रणाम करके कार्त्तिकेय का प्रिय करने की इच्छा से उनसे कहा—भगवन्, हमारी प्रसन्नता के लिए इस बालक को इसकी इच्छा के अनुसार इसके योग्य आधिपत्य दीजिए। उनकी प्रार्थना सुनकर ब्रह्मा ने विचारा कि इस बालक की कौन सा आधिपत्य मिलना चाहिए। उन्होंने कुमार को देवता, गन्धर्व, राक्षस, भूत, यक्ष, पक्षी, नाग आदि सबका अधिपति बनाने का विचार किया और समझ लिया कि वे इस महान् ऐश्वर्य के उपयुक्त हैं। राजन्! कमलयोनि ब्रह्मा ने यों क्षण-भर ध्यान करके, देवगण के कल्याण के विचार से, कुमार को सब प्राणियों का सेनापति बनाया

और देवताओं के अगुवों से उनका परिचय करा दिया। इसके उपरान्त ब्रह्मा आदि देवगण कुमार को लेकर उनका अभिषेक करने के लिए हिमाचल के उस स्थान पर आये, जहाँ समन्तपञ्चक तीर्थ है। वहाँ हिमालय से उत्पन्न, त्रिलोक-प्रसिद्ध, नदियों में श्रेष्ठ पवित्र सरस्वती नदी बहती है। अभिलाषा पूर्ण होने से प्रसन्न सब देवताओं और गन्धर्वों की मण्डली ५३ सब गुणों से युक्त उस स्थान पर कुमार को लाकर यथास्थान बैठी।

पंतालीसवाँ अध्याय

सेनापति-पद पर कुमार का अभिषेक किया जाना

वैशम्पायन कहते हैं—हे जनमेजय! अब देवगुरु बृहस्पति, शास्त्रानुसार सब अभिषेक-सामग्री मँगाकर, प्रज्वलित अग्नि में हवन करने लगे। उस समय महावीर्यशाली इन्द्र, विष्णु, सूर्य, चन्द्रमा, धाता, विधाता, अग्नि, वायु, पूषा, भग, अर्यमा, अंश, विवस्वान्, मित्र, वरुण, ग्यारहों रुद्र, आठों वसु, बारहों आदित्य, अश्विनीकुमार, विश्वेदेवा, उञ्चासों मरुद्गण, साध्यगण, पितृगण, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, राक्षस, नाग, असंख्य देवर्षि और ब्रह्मर्षि, वैखानस बालखिल्य, वायुभक्षी मरीचिप आदि नियमधारी मुनिगण, महात्मा भृगु और अङ्गिरा के वंशज और यतिगण, सर्प, विद्याधर, योग से सिद्ध हुए पुरुष, पितामह ब्रह्मा, महातपा पुलह, पुलस्त्य, कश्यप, १० अत्रि, मरीचि, भृगु, क्रतु, हर, प्रचेता, मनु, दक्ष आदि ब्रह्मा के पुत्रगण, ग्रह, तारागण आदि ज्योतिर्मय पदार्थ, सशरीर नदियाँ, सनातन चारों वेद और उपवेद, समुद्र, सरोवर, विविध तीर्थ, पृथ्वी, स्वर्ग, आकाश, दिशाएँ, वृक्ष, देवमाता अदिति, ह्री, श्री, स्वाहा, सरस्वती, उमा, शची, सिनीवाली, अनुमति, कुहू और राका (अमावस और पूनों), धिषणा (बुद्धि), और भी अनेक देवताओं की स्त्रियाँ, अनेक शिखर-युक्त हिमवान् विन्ध्याचल, सुमेरु आदि पर्वत, अनुचरों सहित ऐरावत नाग, चौंसठ कलाएँ, काष्ठा, मास, पक्ष, रात, दिन, ऋतुएँ, अश्वराज उच्चैःश्रवा, नागराज वासुकि, अरुण, गरुड़, ओषधियों सहित वृक्ष, धर्म, काल, यम, मृत्यु, यम के गण आदि और अन्यान्य सभी देवता, अभिषेक की मङ्गल-सामग्रियाँ लेकर, उपस्थित हुए। महाराज! असंख्य होने के कारण अन्य देवगणों का उल्लेख नहीं किया जा सका।

हिमाचल के दिये हुए श्रेष्ठ मणियों और दिव्य रत्नों से शोभित पवित्र उत्तम आसन पर कुमार विराजमान हुए। पूर्वोक्त देवताओं ने अपनी लाई हुई दिव्य सामग्रियों से, अभिषेक-भाण्ड में पड़ी हुई ओषधियों से और सुवर्ण-कलशों में भरे हुए सब तीर्थों के तथा सरस्वती के २० पवित्र जल से विधिपूर्वक सेनापति-पद पर कुमार का अभिषेक किया। जैसे पहले राजाधिराज बनाकर वरुण का अभिषेक किया गया था वैसे ही उस समय लोकपितामह ब्रह्मा, कश्यप आदि

लोक-प्रसिद्ध महापुरुषों ने कुमार का अभिषेक किया और असुरों का नाश करने के लिए उन्हें सेनापति बनाया।

पितामह ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर कुमार को—बली, वायुवेगगामी, यथेष्ट रूप और वीर्य धारण कर सकनेवाले—चार पारिषद दिये। उनके नाम हैं—नन्दिसेन, लोहिताक्ष, घण्टाकर्ण और कुमुदमाली। शङ्कर ने एक महातेजस्वी महापारिषद को स्कन्द का अनुचर बना दिया। वह सैकड़ों मायाओं का जाननेवाला, यथेष्ट वीर्य-बल से सम्पन्न, दैत्य-दल-दलन और महाभयङ्कर था। उस अकेले ने ही देवासुर-संग्राम में क्रुद्ध होकर केवल हाथों से चौदह प्रयुत (एक प्रयुत = दस लाख) दानवों का संहार किया था। देवताओं ने कुमार को विश्व-रूपिणी, अजेय और देव-शत्रुओं का नाश करनेवाली नैर्ऋत-सेना दी। इन्द्र सहित देवगण, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, मुनि, पितर आदि सब मिलकर कुमार का जय-जयकार करने लगे। उस समय यमराज ने काल तुल्य महावीर्य महातेजस्वी उन्माथ और प्रमाथ नाम के दो अनुचर कुमार को दिये। ३० प्रतापी सूर्य ने प्रीतिपूर्वक अपने अनुगामी सुभ्राज और भास्वर नाम के दो अनुचर दिये। चन्द्रमा ने कैलास-शिखर सदृश सफ़ेद और सफ़ेद चन्दन माला आदि से विभूषित मणि और सुमणि नाम के दो अनुचर दिये। अग्निदेव ने अपने पुत्र को शूर और शत्रुसेना का नाश करनेवाले ज्वालाजिह्व और ज्योति नाम के दो अनुचर दिये। अंश ने परिघ, वट, महाबली भीम, दहति और दहन नाम के पाँच प्रचण्ड वीर्यशाली अनुचर दिये। इन्द्र ने वज्र और दण्ड धारण करनेवाले उत्क्रोश और पञ्चक नाम के दो अनुचर दिये, जिन्होंने समर में इन्द्र के बहुत से शत्रुओं को मारा। महायशस्वी विष्णु ने चक्र, विक्रम और संक्रम नाम के तीन अनुचर दिये। वैद्यश्रेष्ठ अश्विनीकुमारों ने प्रीतिपूर्वक वर्धन और नन्दन नाम के दो अनुचर दिये। धाता ने कुन्द, कुसुम, कुमुद, डम्बर और आडम्बर नाम के पाँच अनुचर दिये। त्वष्टा ने महाबली महामायावी मेघचक्र के समान चक्र और अनुचक्र नाम के दो अनुचर दिये। मित्र ४० देवता ने तप और विद्या से सम्पन्न सुव्रत और सत्यसन्ध नाम के दो अनुचर दिये। विधाता ने दर्शनीय वरदानी, त्रिभुवन में प्रसिद्ध, महात्मा सुव्रत और शुभकर्मा नाम के दो अनुचर दिये। पूषा ने महामायावी पाणीतक और कालिक नाम के दो पार्षद दिये। वायु ने बड़े मुखवाले, बहुत बली बल और अतिबल नाम के दो पार्षद दिये। वरुण ने महाबली यम और अतियम नाम के दो अनुचर दिये, जिनका मुख महामत्स्य तिमि के ऐसा था। पर्वतराज सुमेरु ने काञ्चन, मेघमाली, स्थिर और अतिस्थिर ये चार अनुचर और हिमवान् ने सुवर्चा और अतिवर्चा नाम के दो अनुचर कुमार को दिये। ये सब गण महाबली और पराक्रमी थे। विन्ध्याचल ने भारी शिलाओं से युद्ध करनेवाले उच्छृङ्ग और अतिशृंग नाम के दो अनुचर दिये। ५० समुद्र ने गदाधारी संग्रह और विग्रह नाम के दो अनुचर दिये। देवी पार्वती ने उन्माद,

शंकुकर्ण और पुष्पदन्त नाम के तीन अनुचर और नागराज वासुकि ने जय और महाजय नाम के दो अनुचर (नाग) कुमार को दिये।

राजन्! इसी तरह साध्यगण, वसुगण, रुद्रगण, पितृगण, सागर, नदी, पर्वत आदि सब ने कुमार को अनेकानेक सेनाध्यक्ष गण दिये। वे शूल, पट्टिश आदि तरह-तरह के शस्त्र और तरह-तरह के वेष धारण किये हुए थे तथा विविध आयुधों, वस्त्रों और आभूषणों से शोभित थे। अब मैं संक्षेप से अन्य पार्षदों में से कुछ के नाम आपको सुनाये देता हूँ। वे नाम ये हैं—शंकुकर्ण, निकुम्भ, पद्म, कुमुद, अनन्त, द्वादशभुज, कृष्ण, उपकृष्ण, घ्राणश्रवा, कपिस्कन्ध, काञ्चनाक्ष, जलन्धम, अक्ष, सन्तर्जन, कुनदीक, तमोन्तकृत्, एकाक्ष, द्वादशाक्ष, एकजट, प्रभु, सहस्रबाहु, विकट, व्याघ्राक्ष, क्षितिकम्पन, पुण्यनामा, सुनामा, सुवक्त्र, प्रियदर्शन, परिश्रुत,
६० कोकनद, प्रियमाल्यानुलेपन, अजोदर, गजशिरा, स्कन्धाक्ष, शतलोचन, ज्वालाजिह्व, करालाक्ष, शितिकेश, जटी, हरि, कृष्णकेश, जटाधर, चतुर्दंष्ट्र, अष्टजिह्व, मेघनाद, पृथुश्रवा, विद्युताक्ष, धनुर्वक्त्र, जाठर, मारुताशन, उदाराक्ष, रथाक्ष, वज्रनाभ, वसुप्रभ, समुद्रवेग, शैलकम्पी, वृष, मेष, प्रवाह, नन्द, उपनन्द, धूम्र, श्वेत, कलिङ्ग, सिद्धार्थ, वरद, प्रियक, नन्द, गोनन्द, आनन्द, प्रमोद, स्वस्तिक, ध्रुवक, क्षेमवाह, सुवाह, सिद्धपात्र, गोव्रज, कनकापीड, गायन, हसन, बाण, खड्ग, वैताली, गतिताली, कथक, वातिक, हंसज, पङ्कदिग्धाङ्ग, समुद्रोन्मादन, रणोत्कट, प्रहास, श्वेतसिद्ध, नन्दन, कालकण्ठ, प्रभास, कुम्भाण्डकोदर, कालकाक्ष, सित, भूतमथन, यज्ञवाह,
७० देवयाजी, सोमप, यज्वान, महातेजा, क्रथ, क्राथ, तुहर, तुहार, चित्रदेव, मधुर, सुप्रसाद, किरीटी, महाबल, वत्सल, मधुवर्ण, कलशोदर, धर्मद, मन्मथकर, सूचीवक्त्र, श्वेतवक्त्र, सुवक्त्र, चारुवक्त्र, पाण्डुर, दण्डबाहु, सुबाहु, रज, कोकिलक, अचल, कनकाक्ष, बालरक्षक, संचारक, कोकनद, गृध्रपत्र, जम्बुक, लोहवक्त्र, अजवक्त्र, जवन, कुम्भवक्त्र, कुम्भक, स्वर्णग्रीव, कृष्णौजा, हंसवक्त्र, चन्द्रभ, पाणिकूर्चा, शम्बूक, पञ्चवक्त्र, शिक्षक, चाषवक्त्र, जम्बूक, शाकवक्त्र और कुञ्जल इत्यादि।

इनके सिवा भगवान् ब्रह्मा के दिये हुए ब्राह्मणप्रिय, योगाभ्यासी, बाल-वृद्ध-युवा पार्षद, हज़ारों की संख्या में, कुमार के पास आये। उक्त गणों के चेहरे तरह-तरह के थे। कुछ के मुख कच्छप, कुक्कुट, ख़रगोश, उलूक, गर्दभ और ऊँट के ऐसे थे। कुछ के मुख वराह,
८० बिलाव, नेवले और कौए के ऐसे थे। कुछ के मुख बहुत लम्बे थे। कुछ के मुख बभ्रुक, मूस, मोर, मछली, भेड़, बकरी, भैंस और भेड़िये के ऐसे थे। कुछ के मुख भालू, शार्दूल, हाथी, सिंह और भयङ्कर नक्र के ऐसे थे। कुछ के मुख गरुड़, कङ्क, गिद्ध, बैल, खच्चर, डाँस, कबूतर, कोयल, बाज, तीतर, गिरगिट, साँप और शूल के ऐसे थे। [बहुतों के पेट, पैर, हाथ आदि अङ्ग-प्रत्यङ्ग बेहद बड़े थे। किसी की आँखें तारे की तरह चमक रही थीं। किसी का मुख भयानक और किसी का दर्शनीय था।] बहुतों के पेट बड़े और अङ्ग दुबले

थे। बहुतों के अङ्ग बड़े और पेट पतले-छोटे थे। वे साँपों के आभूषण पहने हुए थे। किसी-किसी की गर्दन छोटी और कान बहुत बड़े थे। वे सफ़ेद कपड़े, गजचर्म, मृगचर्म, व्याघ्रचर्म आदि पहने थे। बहुत से दिगम्बर थे। कुछ के मुख कन्धे में, कुछ के मुख पेट में, कुछ के मुख ठोड़ी में, कुछ के जाँघों में, कुछ के बग़ल (पार्श्वदेश) में थे। इस तरह अनेक अङ्गों और स्थानों में उनके विचित्र मुख देख पड़ते थे। उन गणों के मुख अनेक कीट-पतङ्गों और पशु-पक्षियों के ऐसे थे। बहुतों के अनेक सिर और कई हाथ थे। किसी की भुजाएँ वृक्ष के आकार की थीं। किसी का मुख कमर में था। वे विविध स्थानों के निवासी और नाना प्रकार के माल्य, चन्दन, वस्त्र और वेष धारण किये थे। कुछ सुवर्ण-चित्रित वस्त्र धारण किये थे, कुछ वल्कल-चीर पहने थे, कुछ विविध चर्मों से शोभित थे। कोई पगड़ी, कोई मुकुट और कोई किरीट धारण किये थे। उनकी ग्रीवाएँ सुन्दर थीं और वे तेजस्वी थे। उनके बाल सुनहले थे। किसी के दो, किसी के तीन, किसी के पाँच और किसी के सात शिखाएँ थीं। कुछ के केश-पाश मयूरपुच्छ से शोभित थे। कुछ के बड़ी-बड़ी जटाएँ थीं। कुछ मुण्डे थे। कुछ विचित्र मालाएँ पहने हुए थे। किसी-किसी के चेहरे पर बाल ही बाल थे। वे सब युद्ध-प्रिय और अजेय थे। कुछ काले थे। कुछ के मुख मांसहीन और फैले हुए थे। कुछ की पीठ लम्बी और पेट पतले थे। कुछ की पीठ चौड़ी और कुछ की पीठ ज़रा सी थी। कुछ के पेट और मूत्रेन्द्रिय बहुत लम्बी थी। कुछ की भुजाएँ बड़ी और कुछ की छोटी थीं। कुछ के डील नाटे थे। कुछ बिलकुल ही बौने थे। कुछ कुबड़े थे। कुछ की जाँघें छोटी थीं। कुछ के कान, ग्रीवा और नाक हाथी की ऐसी थी। कुछ की नाक कछुवे और भेड़िये की ऐसी थी। कुछ विकराल, अधोमुख और लम्बी साँसें लेते थे। कुछ की जाँघें बहुत लम्बी-चौड़ी थीं। कुछ के दाँत और दाढ़ें बड़ी थीं और कुछ की छोटी। कुछ के चार दाढ़ें थीं। कुछ गण सुन्दर शरीरवाले, दीप्ति-सम्पन्न और मनोहर अलङ्कारों से शोभित थे और कोई दिग्गजाकार अति भयङ्कर थे। कुछ के नेत्र पिङ्गलवर्ण, नाक लाल और कान कील के से नुकीले थे। कुछ की दाढ़ें बड़ी और कुछ की चौड़ी थीं। कुछ के ओठ मोटे और लटके हुए थे। कुछ के बाल ताँबे के रङ्ग के थे। उनके पैर, ओठ, दाँत, हाथ, सिर आदि अङ्ग तरह-तरह के थे। वे अनेक प्रकार की खालें ओढ़े हुए परस्पर भिन्न-भिन्न देशों की भाषाओं में बातें कर रहे थे। इस तरह के हज़ारों महागण प्रसन्नतापूर्वक उस स्थान पर आ-आकर जमा होने लगे। ९० १०१

उनमें बहुतों के ग्रीवा, नख, पैर, सिर, भुजा, कान आदि अङ्ग बेहद लम्बे थे। किसी की आँखें कञ्जी थीं; किसी का पेट भेड़िये का सा विस्तृत था। कुछ नील-कण्ठ थे। कुछ का रङ्ग अञ्जन का [illegible] कुछ के नेत्र सफ़ेद और गर्दन लाल थी। कुछ चित्र [illegible] थे, कुछ मलिन [illegible] [illegible]छ के रोम चँवर के से सफ़ेद और

सफ़ेद और लाल मिले हुए थे। उनमें बहुत से एक रङ्ग के थे, बहुत से मोर के समान विचित्र कान्ति-सम्पन्न थे और बहुत से विविध वर्ण के थे। कुछ गर्दभमुख थे। कुछ मुँह फैलाये थे। कुछ की आँखें पीठ में थीं। वे लम्बे हाथों में पाश, शतघ्नी, चक्र, मुशल, खड्ग, मुद्गर, दण्ड, गदा, भुशुण्डि, तोमर, त्रिशूल आदि हज़ारों तरह के घोर शस्त्र लिये हुए थे। महाराज, अङ्गों में घण्टा और किंकिणी-जाल बाँधे हुए वे रणप्रिय महावेगशाली महाबली महा-पारिषदों के झुण्ड कुमार का अभिषेक होते देखकर हर्ष से नृत्य करने लगे। इस तरह देवताओं की आज्ञा के अनुसार ये और अन्य स्वर्ग, अन्तरिक्ष तथा पृथ्वी-तल के निवासी शूर महागण वहाँ आ गये और यशस्वी कुमार को घेरकर जयजयकार करने लगे। सेनापति कुमार के ११५ वे अनुचर, करोड़ों और अरबों की संख्या में, कुमार के चारों ओर शोभायमान हुए।

छियालीसवाँ अध्याय

तारकासुर का वध और क्रौञ्च पर्वत का विदीर्ण होना

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, अब कुमार की अनुचरी मातृकाओं का वर्णन सुनो। उनके नाम लेने से शत्रु-कुल निर्मूल होता है। उन यशस्विनी कल्याणदायिनी मातृकाओं ने तीनों लोकों को व्याप्त कर रक्खा है। उन मातृकाओं की नामावली यह है—प्रभावती, विशालाक्षी, पालिता, गोस्तनी, श्रीमती, बहुला, बहुपुत्रिका, अप्सुजाता, गोपाली, बृहत् अम्बालिका, जयावती, मालतिका, ध्रुवरत्ना, भयङ्करी, वसुदामा, दामा, विशोका, नन्दिनी, एकचूड़ा, महाचूड़ा, चक्रनेमि, उत्तेजनी, जयत्सेना, कमलाक्षी, शोभना, शत्रुञ्जया, क्रोधना, शलभी, खरी, माधवी, शुभवक्त्रा, तीर्थसेनी, गीतप्रिया, कल्याणी, रुद्ररोमा, अमिताशना, मेघस्वना, भोगवती, सुभ्रू, कनकावती, अलाताक्षी, वीर्यवती, विद्युज्जिह्वा, पद्मावती, सुनक्षत्रा, कन्दरा, बहुयोजना, सन्ता-१० निका, कमला, महाबला, सुदामा, बहुदामा, सुप्रभा, यशस्विनी, नृत्यप्रिया, शतोलूखलमेखला, शतघण्टा, शतानन्दा, भगनन्दा, भाविनी, वपुष्मती, चन्द्रशीता, भद्रकाली, ऋक्षा, अम्बिका, निष्कुटिका, वामा, चत्वरवासिनी, सुमङ्गला, स्वस्तिमती, बुद्धिकामा, जयप्रिया, धनदा, सुप्रसादा, भवदा, जलेश्वरी, एडी, भेडी, समेडी, वेतालजननी, कण्डूति, कालिका, देवमित्रा, वसुश्री, कोटरा, चित्रसेना, अचला, कुक्कुटिका, शङ्खलिका, शकुनिका, कुण्डारिका, कौकुलिका, कुम्भिका, शतोदरी, उत्क्राथिनी, जलेला, महावेगा, कङ्कणा, मनोजवा, कण्टकिनी, प्रघसा, पूतना, केशयन्त्री, त्रुटि, वामा, क्रोशना, तडित्प्रभा, मन्दोदरी, मुण्डी, कोटरा, मेघवाहिनी, सुभगा, लम्बिनी, लम्बा, ताम्रचूड़ा, विकाशिनी, ऊर्ध्ववेणीधरा, पिङ्गाक्षी, लोहमेखला, पृथुवक्त्रा, मधुलिका, मधुकुम्भा, २० पक्षालिका, मत्कुलिका, जरायु, जर्जरानना, दहदहा, धमधमा, खण्डखण्डा, पूषणा, मणिकुट्टिका,

अमोघा, लम्बपयोधरा, वेणुवीणाधरा, शशोलूकमुखी, खरजङ्घा, कृष्णा, महाजवा, शिशुमार-मुखी, श्वेता, लोहिताक्षी, विभीषणा, जटालिका, कामचरी, दीर्घजिह्वा, बलोत्कटा, कालेहिका, वामनिका, मुकुटा, महाकाया, हरिपिण्डा, एकत्वचा, सुकुसुमा, कृष्णकर्णी, क्षुरकर्णी, चतुष्कर्णी, कर्णप्रावरणा, चतुष्पथनिकेता, गोकर्णी, महिषानना, खरकर्णी, महाकर्णी, भेरीस्वन-महास्वना, शङ्खकुम्भश्रवा, भगदा, महाबला, गणा, सुगणा, भीति, कामदा, चतुष्पथरता, भूतितीर्था, अन्यगोचरी, पशुदा, वित्तदा, सुखदा, महायशा, पयोदा, गोमहिषदा, सुविशाला, प्रतिष्ठा, सुप्रतिष्ठा, रोचमाना, सुरोचना, नौकर्णी, मुखकर्णी, विशिरा, मन्थिनी, एक-चन्द्रा, मेघकर्णा, मेघमाला और विरोचना इत्यादि।

हे जनमेजय! इनके सिवा और भी अनेक नाना-रूपधारिणी मातृकाएँ कुमार के साथ थीं। उनमें अनेक दीर्घनख, दीर्घदन्त और दीर्घ मुखवाली थीं। इन सबमें चाहे जैसा रूप धारण कर लेने की शक्ति थी। प्रायः सभी बलवती, युवती, सुन्दरी, सुन्दर अलङ्कार धारण किये तथा कामचारिणी थीं। बहुत सी ऐसी भी थीं कि उनके अङ्गों में मांस ही न था। कोई सफ़ेद, कोई सुनहरी, कोई काले मेघ के रङ्ग की, कोई धुएँ के रङ्ग की और कोई लाल रङ्ग की थीं। बहुतों के केश बड़े, वस्त्र सफ़ेद, चोटी ऊपर उठी हुई, मेखला लम्बी, नेत्र पिङ्गलवर्ण और पेट, कान, स्तन आदि अङ्ग बहुत लम्बे थे। कुछ का रङ्ग ताँबे का सा था। कुछ की आँखें लाल थीं, कुछ की करञ्जी और कुछ की वानर की सी थीं। वे विविध यथेष्ट वर देनेवाली और नित्य प्रसन्न रहनेवाली थीं। उनमें कोई यम से, कोई रुद्र से, कोई सोम से, कोई कुबेर से, कोई वरुण से, कोई महेन्द्र से, कोई अग्नि से, कोई वायु से, कोई कुमार से, कोई ब्रह्मा से, कोई विष्णु से, कोई सूर्य से और कोई वराह भगवान् से उत्पन्न हुई थी। उनका रूप अप्सराओं का सा मनोहर था, वाणी कोकिला की सी और सम्पत्ति कुबेर की सी थी। वे युद्ध में इन्द्र के समान पराक्रम प्रकट करनेवाली, दीप्ति में अग्नि के समान और वेग में वायु के समान थीं। वे युद्ध में सदा शत्रुओं के लिए भयङ्कर थीं। उनका बल और पराक्रम अचिन्त्य था। वे वृक्ष, चबूतरे, चौराहे, कन्दरा, मसान, पहाड़, झरने आदि स्थानों में रहती थीं। उनके आभूषण, माला, वस्त्र, वेष और भाषाएँ विचित्र और तरह-तरह की थीं। शत्रुओं के लिए भयङ्कर वे असंख्य मातृकाएँ इन्द्र की अनुमति से कार्त्तिकेय के साथ हुईं।

३१

४०

तब इन्द्र ने असुर-संहार के लिए कुमार को महाशब्द-युक्त घण्टों से शोभित चमकीली उग्र शक्ति दी। पशुपति रुद्र ने, अरुण और सूर्य के समान प्रकाशमान, एक पताका और अपने गणों की—धनञ्जय नाम से प्रसिद्ध—अनेक शस्त्रों को धारण करनेवाली, तपोबल और बाहुबल से प्रबल, परास्त न होनेवाली सेना दी। उस सेना में रुद्र के ही समान बली तीस हज़ार योद्धा थे, जो रण से भागना जानते ही न थे। विष्णु भगवान् ने बल बढ़ानेवाली वैजयन्ती माला दी।

उमा ने सूर्य के समान तेजोमय निर्मल दो वस्त्र दिये। गङ्गा ने अमृतपूर्ण दिव्य कमण्डलु प्रस-
५० न्नतापूर्वक दिया। बृहस्पति ने दण्ड, गरुड़ ने अपना प्रिय पुत्र विचित्रबर्हभूषित मोर सवारी के लिए और अरुण ने पैरों से लड़नेवाला मुर्गा दिया। वरुण ने बलवीर्यशाली नाग दिया। ब्रह्मा ने ब्रह्मण्य कुमार को कृष्णाजिन और सब प्राणियों से युद्ध में विजय दी।

इस तरह देवताओं के सेनापति का पद पाकर महात्मा कार्त्तिकेय दूसरे प्रज्वलित अग्नि की भाँति शोभायमान हुए और देवताओं को प्रसन्न करते हुए, पार्षदों और मातृकाओं के साथ, दैत्यों का नाश करने के लिए चले। उस समय घण्टा और ऊँची पताकाओं से शोभित, शस्त्रास्त्र-युक्त और भेरी, शङ्ख, मुरज आदि बाजों के शब्द से प्रतिध्वनित वह भयङ्कर नैऋत-सेना, शरद-ऋतु में ज्योतिर्मण्डली से शोभित, आकाशमण्डल की तरह शोभा को प्राप्त हुई। देवगण और भूतगण निर्भय होकर असंख्य भेरी, शङ्ख, पटह, झर्झर, क्रकच, गोविषाण, गोमुख, आडम्बर, डिण्डिम आदि महाशब्दपूर्ण बाजे बजाने लगे। इन्द्र आदि देवता कुमार की स्तुति करने लगे। देव और गन्धर्व गाने लगे, अप्सराएँ नाचने लगीं। तब महासेन कुमार ने प्रसन्न होकर देवताओं को वर दिया कि हे देवगण! तुम्हारे शत्रुओं को, जो तुम्हें सताते और मारना चाहते हैं, मैं
६० युद्ध में मारूँगा। देवश्रेष्ठ स्कन्द भगवान् से यह यथेष्ट वर पाकर देवगण अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने समझ लिया कि अब उनके शत्रु मार डाले गये। महात्मा स्कन्द के वर देने पर सब प्राणियों ने जो हर्षनाद किया, उससे तीनों लोक परिपूर्ण और प्रतिध्वनित हो उठे। महासेन स्कन्द देवताओं की रक्षा और दैत्यों के नाश की इच्छा करके, उस अपरिमित सेना को साथ लिये, शत्रुओं पर आक्रमण करने चले। उद्योग, विजय, धर्म, सिद्धि, लक्ष्मी, धैर्य और स्मृति-शक्ति कुमार की सेना के आगे-आगे चलीं।

विचित्र आभूषण और कवच धारण किये तथा सिंह की तरह गरज रही वह भयङ्कर सेना हाथों में त्रिशूल, मुद्गर, जलती हुई लकड़ी, गदा, मूसल, नाराच, शक्ति, तोमर आदि असंख्य शस्त्र लेकर वेग से चली। कुमार भी सिंहनाद करते हुए उसके आगे चले। देवताओं के शत्रु दैत्य, दानव, राक्षस, असुर आदि सब उस सेना को आते देख, घबराकर डर से विह्वल हो, चारों ओर भागने लगे। विविध शस्त्र लिये हुए देवताओं ने उनका पीछा किया। तेज और बल से युक्त कुमार शत्रुओं को देखकर क्रुद्ध होकर उन पर बारम्बार भयङ्कर शक्ति का प्रयोग करने लगे। कुमार ने घी की आहुति से प्रज्वलित आग के समान प्रचण्ड अपना तेज शत्रुओं पर छोड़ा। स्कन्द जब बारम्बार शक्ति चलाने लगे तब आकाश से ज्वालामयी उल्काएँ
७० पृथ्वी पर गिरने लगीं, वज्रपात के शब्दों से पृथ्वीतल प्रतिध्वनित हो उठा। प्रलयकाल का सा घोर दृश्य उपस्थित हो गया। कुमार एक शक्ति चलाते थे और उससे वैसी ही करोड़ों शक्तियाँ प्रकट होकर शत्रुओं का संहार करती थीं।

समर्थ महाबली कुमार ने प्रसन्नतापूर्वक प्रधान दानवों को और उनकी सेना को मारना शुरू किया। महाबली दैत्येन्द्र तारकासुर के साथ एक लाख प्रबल दैत्य थे। महिषासुर के साथ आठ पद्म दानव-सेना थी। त्रिपाद दानव के पास एक करोड़ असुरों का दल था। ह्रदोदर दानव के अनुगामी दस निखर्व दैत्य थे। स्कन्द ने और उनके विविध शस्त्रधारी अनुचरों ने सैन्य सहित इन दानवों को तथा अन्य अनेक असुरों को मार डाला और घोर सिंहनाद किया। कुमार के अनुचर पार्षद और मातृगण आनन्द से हँसने, नाचने और गरजने लगे। उनके उस शब्द से दसों दिशाएँ गूँज उठीं। हे राजेन्द्र, कुमार की शक्ति से असंख्य शक्तियाँ और चिनगारियाँ निकलते देखकर सब त्रैलोक्य-निवासी भय से विह्वल हो उठे। हज़ारों दैत्य तो कुमार के सिंहनाद से ही मर-मरकर गिरने लगे। कोई पताका के झटके से, कोई घण्टानाद से और कोई शस्त्र-प्रहार से छिन्न-भिन्न होकर पृथ्वी पर गिरते और मर जाते थे। इस तरह महाबली कार्त्तिकेय ने ही असंख्य प्रबल आततायी (शस्त्र लेकर मारने को आ रहे) असुरों का संहार कर डाला। ८०

उस समय बलि का पुत्र महाबली बाणासुर क्रौञ्च पर्वत के गुप्त दुर्ग में छिपकर वहाँ से देवताओं पर प्रहार कर रहा था। महासेन कुमार उसे मारने के लिए जब वेग से चले तब वह क्रौञ्च पर्वत में जाकर छिप रहा। क्रौञ्च पक्षी के समान शब्द करनेवाले अथवा क्रौंच पक्षियों के शब्द से गूँज रहे उस पर्वत को कुपित कार्त्तिकेय ने अग्नि की दी हुई शक्ति के प्रहार से फोड़ डाला। उस पर्वत के शालवन टूट-टूटकर गिरने लगे; वानर, हाथी आदि जीव भय से विह्वल हो उठे; पक्षी घबराकर उड़ने लगे और बड़े-बड़े साँप निकल पड़े। सिंह, शरभ, भालू, लङ्गूर, मृग आदि चिल्लाते हुए भागने लगे। उनके शब्द से प्रतिध्वनित वह पर्वतराज इस तरह शोचनीय दशा में पड़कर भी अपूर्व शोभा से युक्त देख पड़ने लगा। पर्वत के शिखरों पर रहनेवाले विद्याधर, किन्नर आदि सिद्धगण शक्ति गिरने के शब्द से घबराकर इधर-उधर भागते दिखाई पड़ने लगे।

हे जनमेजय! पर्वत के फूटने पर उसमें से विचित्र आभूषण, वस्त्र और माला धारण किये हुए हज़ारों दैत्य निकलने लगे। कुमार के अनुचर गण भी आक्रमण करके उनका संहार करने लगे। इन्द्र ने जैसे वृत्रासुर को मारा था वैसे ही कुपित कुमार ने, शक्ति से क्रौंच पर्वत को फोड़कर, भाइयों सहित दैत्येन्द्र-सुत बाणासुर को मार डाला। वह दिव्य शक्ति जाकर शत्रुओं को मारती और फिर कुमार के हाथ में आ जाती थी। महाराज! शौर्य, तेज, यश और श्री से परिपूर्ण कार्त्तिकेय का ऐसा प्रभाव है। उन्होंने इस तरह क्रौञ्च पर्वत को विदीर्ण करके अपराजित शक्तिशाली दानवों का संहार किया। ९०

दैत्यों को नष्ट करके देवताओं के मुँह से अपनी स्तुति सुनते हुए स्कन्द भगवान् बहुत प्रसन्न हुए। उस समय देवगण प्रसन्न होकर दुन्दुभि, शङ्ख आदि बाजे बजाने लगे और अप्सराएँ योगीश्वर स्कन्द पर फूल बरसाने लगीं। हवा सुगंध लेकर डोलने लगी। गन्धर्व

और याज्ञिक वेदपाठी महर्षिगण उनकी स्तुति करने लगे। उस समय कुमार को किसी ने ब्रह्मा के ज्येष्ठ पुत्र योगीश्वर सनत्कुमार समझा, किसी ने महेश्वर का, किसी ने उमा का, किसी ने अग्नि का, किसी ने गङ्गा का और किसी ने कृत्तिकाओं का पुत्र माना। योगीश्वर स्कन्द को
१०० किसी ने एक, किसी ने दो और किसी ने चार रूप जाने।

राजन्, मैंने आपके आगे कुमार के अभिषेक का वर्णन कर दिया। अब सरस्वती के उस तीर्थ का माहात्म्य सुनो, जहाँ कार्त्तिकेय का अभिषेक किया गया था। कुमार के द्वारा दैत्यों का संहार होने पर वह तीर्थ द्वितीय स्वर्ग के समान पवित्र हो उठा। वहाँ स्थित होकर कुमार ने अपने गणों को, प्रधानता के अनुसार, अलग-अलग त्रिभुवन के अधिकार और ऐश्वर्य दिये। इस तरह देवताओं ने मिलकर दैत्यकुलान्तक देव-सेनापति कुमार का अभिषेक किया था। उसी तैजस तीर्थ में पहले देवताओं ने लोकपाल वरुण का राज्याभिषेक किया था। महात्मा बलराम ने उस तीर्थ में जाकर स्नान किया, स्कन्ददेव की पूजा की, ब्राह्मणों को सुवर्ण-वस्त्र आभूषण आदि दिये और एक रात निवास किया। वहाँ स्नान और तीर्थ की पूजा करने से हलधर को बड़ी प्रसन्नता हुई। महाराज, आपने जो पूछा था कि किस तरह देवताओं ने
१०८ कुमार का अभिषेक किया, सो मैंने आपको सुना दिया।

सैंतालीसवाँ अध्याय

वरुण का अभिषेक। बलरामजी का अग्नि तीर्थ और कौबेर तीर्थ में जाना

जनमेजय ने कहा—भगवन्, आपके मुँह से कुमार भगवान् के अभिषेक और दैत्यों के नाश का अद्भुत वृत्तान्त विस्तार के साथ सुनकर मेरा आत्मा पवित्र और अन्तःकरण प्रफुल्लित हो गया। आनन्द के मारे मुझे रोमाञ्च हो रहा है। अब आप यह वर्णन कीजिए कि देवताओं ने पहले वरुणदेव का अभिषेक किस तरह किया था। इस उपाख्यान को सुनने के लिए मैं उत्कण्ठित हो रहा हूँ।

वैशम्पायन ने कहा कि हे पृथ्वीनाथ, यह पुरातन विचित्र इतिहास भी सुनो। सत्ययुग के प्रारम्भ में देवताओं ने वरुण के पास जाकर कहा—हे देव, जैसे इन्द्र हमारे राजा होकर सदा भय से हमारी रक्षा करते हैं वैसे ही आप भी सब नदियों और जलाशयों के अधिपति होकर उनकी रक्षा कीजिए। आपका निवास सदा सागर में होगा और वह आपके वश में रहेगा। चन्द्रमा के साथ ही आपकी भी सागर के द्वारा घटती और बढ़ती होगी। वरुणदेव ने 'तथास्तु' कहकर देवताओं की प्रार्थना अङ्गीकार कर ली।

अब सब देवताओं ने [तैजस तीर्थ में] सागर-निवासी वरुण का विधिपूर्वक अभिषेक किया। वरुण को सब नदियों और जल-जन्तुओं का अधिपति बनाकर, उनकी पूजा करके, देवता अपने लोकों को चले गये। देवताओं के द्वारा राज्याभिषेक होने पर महात्मा वरुणदेव, इन्द्र की तरह, सब नद-नदी-सरोवर-सागर आदि जलाशयों की रक्षा करने लगे। १०

महात्मा बलदेव ने वहाँ भी स्नान और दान किया। वहाँ से चलकर वे अग्नि तीर्थ में पहुँचे। उस तीर्थ में अग्निदेव शमी वृक्ष के गर्भ में जा छिपे थे। उनके अदृश्य हो जाने से त्रिलोक प्रकाशहीन हो गया। देवता लोग घबराकर ब्रह्माजी के पास पहुँचे और कहने लगे—हे देवदेव! मालूम नहीं, अग्निदेव किस कारण कहाँ चले गये हैं। आप शीघ्र अग्नि की सृष्टि कीजिए, नहीं तो जगत् के प्राणियों का नाश हो जायगा।

जनमेजय ने पूछा—हे मुनिवर, भगवान् अग्नि किस कारण छिप रहे थे? देवताओं ने फिर किस तरह उनका पता लगाया? वैशम्पायन ने कहा—राजन्, महातपस्वी भृगु महर्षि ने कुपित होकर अग्नि को सर्वभक्षी होने का शाप दे दिया। उस शाप के भय से प्रतापी अग्निदेव शमीगर्भ में जाकर छिप रहे। अग्नि के न देख पड़ने से इन्द्र आदि देवता अत्यन्त दुःखित और उद्विग्न होकर इधर-उधर उनको ढूँढ़ने लगे। अन्त को सरस्वती के इसी तीर्थ में आकर देवताओं ने देखा कि अग्निदेव शमीगर्भ में छिपे हुए हैं। देवगुरु बृहस्पति सहित इन्द्र आदि देवता अग्नि को पाकर परम प्रसन्न हुए और अपने-अपने स्थान को चले गये। ब्रह्मवादी भृगु के शाप से अग्निदेव सर्वभक्षी हो गये सही; किन्तु उक्त तीर्थ में स्नान करने से वे ब्रह्मशाप से मुक्त हो गये अर्थात् सर्वभक्षी होने पर भी उनकी पवित्रता पहले की तरह बनी रही। तभी से वह तीर्थ अग्नि तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। २१

वहाँ स्नान-दान करके बलदेवजी ब्रह्मयोनि तीर्थ में पहुँचे। देवगण सहित ब्रह्मा ने उस तीर्थ में स्नान करके देवताओं और मनुष्यों के लिए विविध अन्नों की सृष्टि की थी। वहाँ भी स्नान और बहुत सा धन दान करके बलराम कौबेर तीर्थ में गये। वहीं घोर तप करके कुबेर धनाधीश हुए थे और सब निधियाँ, धन-रत्न आदि अनायास उनके निकट उपस्थित हुए थे। वहीं उनको नल-कूबर नाम का पुत्र प्राप्त हुआ था। वहीं देवताओं ने कुबेर का राज्याभिषेक किया था, उन्हें अमर और लोकपाल बनाया था। वहीं देवदेव शंकर ने उन्हें अपना मित्र बनाया था। वहीं देवताओं ने उनको हंसयुक्त मनोजव दिव्य पुष्पक विमान सवारी के लिए दिया था और यक्षों का राजा बनाया था। महात्मा बलदेव ने उस कुबेर के तीर्थ में भी स्नान किया और ब्राह्मणों को बहुत सा धन दिया। फिर वहाँ से वे बदरपाचन तीर्थ में पहुँचे। उस तीर्थ में सब तरह के जीव सुखपूर्वक रहते हैं और सब ऋतुओं के फल-फूलों से युक्त वृक्ष सदा उसकी शोभा बढ़ाते हैं। ३० ३३

अड़तालीसवाँ अध्याय

श्रुतावती और अरुन्धती का उपाख्यान

वैशम्पायन कहते हैं—हे जनमेजय, बदरपाचन तीर्थ में अनेक सिद्ध और तपस्वी रहते हैं। वहाँ महातपस्वी भरद्वाज मुनि की कन्या श्रुतावती ने, इन्द्र की पत्नी होने की इच्छा से, स्त्रियों के लिए अति दुष्कर विविध कठिन नियम और व्रत धारण करके तीव्र तप किया था। श्रुतावती बाल-ब्रह्मचारिणी और अलौकिक सुन्दरी थी। उसने पूर्वोक्त रीति से अनेक वर्ष तक तप किया तब उसके चरित्र, तप और भक्ति को देखकर इन्द्र बहुत प्रसन्न हुए और महर्षि वशिष्ठ का रूप रखकर उसके आश्रम में आ गये। श्रुतावती ने महर्षि वशिष्ठ को देखकर, तपस्वियों के योग्य शिष्टाचार से, उनका सत्कार करके कहा—भगवन्, मैं आपकी क्या सेवा करूँ, आज्ञा कीजिए। मैं यथा-शक्ति आपकी आज्ञा का पालन करने की चेष्टा करूँगी। हाँ, यदि आप मुझसे विवाह करने की इच्छा प्रकट करें, तो केवल उसे नहीं पूर्ण कर सकूँगी। क्योंकि इन्द्र के ऊपर मेरी दृढ़ भक्ति है और मैं उन्हीं को अपना पति बनाऊँगी। मैं तपस्या और कठिन नियमों के द्वारा त्रिलोकीनाथ इन्द्र को प्रसन्न करूँगी। मैं इसी उद्देश्य से यहाँ तप कर रही हूँ। १०

राजन्, ये वचन सुनकर वशिष्ठ-रूपधारी इन्द्र मुसकाये और तपस्विनी कन्या की ओर देखकर कहने लगे—हे सुव्रते, तुम्हारी कठोर तपस्या मुझसे छिपी नहीं है। तुम्हारी इच्छा को भी मैं जानता था। मैं सच कहता हूँ, जिस उद्देश्य से तुम यह कठोर नियम-पालन और तीव्र तप कर रही हो वह, तुम्हारे तप के प्रभाव से, शीघ्र पूरा होगा। हे कल्याणी, तपस्या ही महासुख देती है। तपोबल से ही देव-सेवित दिव्य लोक प्राप्त होते हैं। मनुष्य घोर तपोबल से ही देहान्त होने पर देव-पद पाते हैं। तुम इस समय ये पाँच बदरीफल (बेर) आग में चढ़ाकर पका रक्खो। यही मेरी आज्ञा है।

मुनि-रूपधारी इन्द्र अब पाँच बदरीफल देकर वहाँ से चल दिये। वहाँ से थोड़ी ही दूर पर एक स्थान है, जिसे इन्द्र तीर्थ कहते हैं। वहाँ जाकर इन्द्रदेव श्रुतावती की परीक्षा करने के लिए, बदरीफलों के पकने में विघ्न डालने के वास्ते, जप करने लगे। इधर ब्रह्मचारिणी श्रुतावती पवित्रता-पूर्वक एकाग्रभाव से मुनि की आज्ञा का पालन करने लगी। उसने उन फलों को पात्र में रखकर आग पर चढ़ा दिया। पकाते-पकाते बहुत समय हो गया, यहाँ तक कि सारा दिन बीत गया किन्तु वे फल नहीं पके। श्रुतावती ने आश्रम में जितना ईंधन जमा कर रक्खा था वह सब जल गया, किन्तु फल जैसे के तैसे कड़े बने रहे। ईंधन चुक जाने पर कन्या ने चूल्हे में ईंधन की जगह अपना शरीर जलाना शुरू कर दिया। उस सुन्दरी ने पहले अपने दोनों पैर आग में लगा दिये, क्योंकि वह सर्वथा महर्षि का प्रिय करना चाहती थी। उसने निश्चय कर

पृ० ३१४२—उस सुन्दरीने पहले अपने दोनों पर आगमें लगा दिये ।

लिया था कि चाहे जिस तरह हो, ये फल पकाऊँगी ही। पैर ज्यों-ज्यों जलते जाते थे त्यों-त्यों वह उन्हें आगे बढ़ाती जाती थी। पैरों के जलने पर भी उसके मुख पर चिन्ता, उदासी या क्लेश के चिह्न नहीं देख पड़ते थे। ऐसा जान पड़ता था कि वह आग में नहीं, बल्कि शीतल जल में बैठी है। वह किसी तरह फलों को पकाने से नहीं रुकी। इस तरह वह महर्षि की आज्ञा का पालन करने के लिए उन फलों को पकाने की चेष्टा करती रही, किन्तु इन्द्र की माया से वे फल किसी तरह नहीं पके। भगवान् अग्नि ने स्वयं परीक्षा लेने के लिए श्रुतावती के पैरों को जलाना शुरू किया, परन्तु उसे तनिक भी दुःख नहीं हुआ। उसने अविचलित चित्त से वह असह्य कष्ट सह लिया। अन्त को इन्द्रदेव श्रुतावती का असाधारण धैर्य और अद्भुत भक्ति देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। वे श्रुतावती के सामने अपने रूप से प्रकट होकर कहने लगे—हे ब्रह्मचारिणी! मैं तुम्हारी भक्ति, तपस्या और कठिन नियम देखकर तुम पर प्रसन्न हूँ। तुम्हारी अभिलाषा पूरी होगी। तुम इस शरीर को छोड़कर स्वर्ग में पत्नी रूप से मेरे पास रहोगी। यह स्थान आज से बदरपाचन तीर्थ के नाम से सदा त्रिभुवन में प्रसिद्ध रहेगा। हे महाभागे, इस सब पापों को हरनेवाले तीर्थ में ब्रह्मर्षिगण स्नान करते हैं। पहले इसी तीर्थ में अरुन्धती देवी ने सिद्धि पाई है। वह उपाख्यान भी मैं तुमसे कहता हूँ।

२१

३०

हे कल्याणी! एक बार महात्मा सप्तऋषि इसी तीर्थ में, आश्रम में अरुन्धती को छोड़कर, खाने-पीने के लिए कन्द-मूल-फल लेने हिमालय पर्वत पर गये। उस समय बारह वर्ष तक रहनेवाली अनावृष्टि का आरम्भ था। मुनियों को फल-मूल नहीं मिले। वे हिमालय पर ही आश्रम बनाकर रहने लगे। इधर कल्याणी अरुन्धती भी तप करने लगीं। कुछ समय के उपरान्त अरुन्धती के तीव्र तप से प्रसन्न होकर वरदानी शङ्कर, ब्राह्मण के रूप में, अरुन्धती के पास भिक्षा माँगने आये। सुन्दरी अरुन्धती ने विप्र-रूप महायशस्वी महादेव से कहा—हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! आश्रम में जो अन्न सञ्चित था वह चुक गया है, इसलिए इस समय ये बदरीफल ही आप खा लें। अरुन्धती के वचन सुनकर महादेव ने उनसे उन फलों को पकाने के लिए कहा। ४०

तपस्विनी अरुन्धती, ब्राह्मण का प्रिय करने के लिए, चूल्हे पर चढ़ाकर उन फलों को पकाने लगीं। उस समय महादेवजी वहीं बैठकर उनके आगे दिव्य मनोहर कथाएँ कहने लगे। अरुन्धती बेर पकाती जाती थीं और शङ्कर के मुँह से उन पवित्र कथाओं को भी सुनती थीं। इसी में बारह वर्ष की अनावृष्टि बीत गई। वे बारह वर्ष अरुन्धती को एक दिन के समान जान पड़े, क्योंकि शिव की कथाओं में उनका मन लग गया था। उन बारह वर्षों में एक दिन भी अरुन्धती ने कुछ खाया-पिया नहीं। उधर सप्तऋषि कन्द-मूल-फल लेकर हिमालय से लौट आये। तब शङ्कर ने प्रसन्नतापूर्वक अरुन्धती से कहा—हे धर्मज्ञे, तुम पहले की ही तरह इन ऋषियों के पास जाओ। मैं तुम्हारे नियम और तप को देखकर बहुत ही प्रसन्न हूँ। भगवान् त्रिलोचन ने अब अपना रूप प्रकट किया और फिर ऋषियों से कहा—हे महर्षियो, तुमने हिमालय पर जो तीव्र तप किया है वह अरुन्धती की तपस्या के बराबर नहीं है। इन्होंने अत्यन्त दुष्कर तपस्या की है—ये भूखी-प्यासी बारह वर्ष तक बदरीफल पकाती रही हैं।

शङ्कर ने ऋषियों से यों कहकर अरुन्धती से कहा—हे कल्याणी, तुम अपनी इच्छा के अनुसार मुझसे वर माँगो। अरुन्धती ने सप्तऋषियों के सामने ही महादेव से कहा—भगवन्, अगर आप प्रसन्न हैं तो यह वर दीजिए कि यह तीर्थ बदरपाचन के नाम से प्रसिद्ध हो। इस ५० तीर्थ को सिद्ध, देवता, ऋषि अपना प्रिय स्थान समझें। हे देवदेव, जो कोई पवित्र भाव से यहाँ तीन रात निवास और उपवास करे उसे बारह वर्ष तक उपवास और तप करने का फल प्राप्त हो। भगवान् शङ्कर ने अरुन्धती को यही वर दिया। सप्तऋषियों की पूजा स्वीकार करके वे अपने लोक को चले गये। सातों महर्षि अरुन्धती को—बारह वर्ष की भूखी-प्यासी होने पर भी—वैसे ही प्रसन्न, श्रान्तिहीन और कान्तियुक्त देखकर अत्यन्त विस्मित हुए।

हे ब्रह्मचारिणी श्रुतावती! पूर्व समय में इस प्रकार तुम्हारी ही तरह बदरीफल पकाते-पकाते अरुन्धती ने इस तीर्थ में सिद्धि प्राप्त की है। किन्तु तुमने अपना शरीर अग्नि को अर्पण करके उनसे भी कठोर तप किया है। मैं तुम्हारे नियम को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूँ। इसी से तुमको यह वर देता हूँ कि जो कोई इस तीर्थ में नहाकर संयम से एक ही रात यहाँ रहेगा उसको देहान्त के उपरान्त, तुम्हारे तेज के प्रभाव से, दुर्लभ स्वर्ग आदि श्रेष्ठ लोक प्राप्त होंगे।

६० हे जनमेजय, श्रुतावती को यह वर देकर इन्द्र देवलोक को चले गये। उस समय श्रुतावती पर देवलोक से पुष्पवर्षा होने लगी, धीमी-धीमी पवित्र सुगन्धित हवा चलने लगी और देव-दुन्दुभियाँ बजने लगीं। तपस्विनी श्रुतावती भी शरीर-त्याग के उपरान्त स्वर्ग में जाकर इन्द्र की पत्नी होकर इच्छानुसार सुखपूर्वक, तप के प्रभाव से, इन्द्र के साथ आनन्द करने लगी।

जनमेजय ने कहा—भगवन्, श्रुतावती की माता कौन थी? वे किस स्थान पर पली थीं? मैं यह सुनना चाहता हूँ।

वैशम्पायन ने कहा—एक समय विशाल नेत्रोंवाली परम सुन्दरी घृताची अप्सरा को आते देखकर भरद्वाज मुनि का वीर्य स्खलित हो गया। मुनि ने उस अमोघ वीर्य को हाथ में लेकर एक पत्ते के दोने में रख दिया। उसी से श्रुतावती का जन्म हुआ। महर्षि ने कन्या के जातकर्म आदि संस्कार करके देवताओं और ऋषियों के सामने ही उसका नाम श्रुतावती रक्खा और उसे अपने आश्रम में रक्खा। कुछ समय के बाद भरद्वाजजी तप करने को हिमालय के वनों में चले गये और श्रुतावती पूर्वोक्त रीति से तप करने लगी।

यादवश्रेष्ठ बलराम ने बदरपाचन तीर्थ में भी स्नान किया और ब्राह्मणों को विविध धन-रत्न दिये। फिर वहाँ से वे इन्द्र तीर्थ को चले। ६८

उनचासवाँ अध्याय

इन्द्र तीर्थ आदि तीर्थों के माहात्म्य का वर्णन

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, हलधर अब इन्द्र तीर्थ में पहुँचे। वहाँ स्नान करके उन्होंने ब्राह्मणों को बहुत सा धन और रत्न दिये। उस तीर्थ में इन्द्र ने विधिपूर्वक सौ अश्वमेध करके बृहस्पति को दक्षिणा में बहुत सा धन दिया था। तभी से इन्द्र का नाम शतक्रतु पड़ा। इन्द्र के यज्ञ करने से वह सब पापों को दूर करनेवाला तीर्थ इन्द्र तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। बलदेवजी ने उस तीर्थ में स्नान, ब्राह्मण-भोजन, धन-वस्त्र-दान आदि करके राम तीर्थ के लिए प्रस्थान किया। भगवान् परशुराम ने इक्कीस बार पृथिवी को क्षत्रियों से ख़ाली करके, अपने उपाध्याय मुनिवर कश्यप की सहायता से, उस तीर्थ में सौ वाजपेय और सौ अश्वमेध यज्ञ किये थे। उसके बाद आचार्य को दक्षिणा में बहु-धन-रत्न-सम्पन्न सम्पूर्ण पृथ्वी दे डाली और आप तप करने के लिए चले गये। बलरामजी ने उस देव-ब्रह्मर्षि-सेवित पुण्य-तीर्थ में धन-दान और मुनियों का सत्कार किया। वहाँ से वे यमुना तीर्थ को गये। अदिति के पुत्र महात्मा वरुण ने संग्राम में सब मनुष्य-दानव-गन्धर्व-राक्षस आदि को जीतकर उसी तीर्थ में राजसूय महायज्ञ किया था। उस यज्ञ का आरम्भ होने पर त्रैलोक्य को भय-विह्वल करनेवाला देवासुर-संग्राम हुआ था। उस संग्राम के समाप्त होने पर क्षत्रियों में परस्पर महाघोर युद्ध हुआ था; उसमें असंख्य क्षत्रिय मारे गये थे। हे जनमेजय! उस महातीर्थ में पहुँचकर बलराम ने स्नान-दान किया, मुनियों की पूजा की और याचकों को यथेष्ट धन दिया। मुनियों के मुँह से अपनी प्रशंसा सुनते हुए वहाँ से चलकर वे आदित्य तीर्थ में पहुँचे। उस स्थान पर यज्ञ करके भगवान् सूर्य ज्योतिर्मण्डली के अधिपति हुए और उन्हें ऐसा प्रभाव और माहात्म्य प्राप्त हुआ। उस तीर्थ में पवित्र कल्याणदायक सरस्वती-तट पर इन्द्र आदि देवता, विश्वेदेवा, मरुद्गण, गन्धर्व, १०

अप्सराएँ, व्यासदेव, शुकदेव, वासुदेव कृष्ण, हज़ारों योगसिद्ध पुरुष तथा यक्ष, राक्षस, पिशाच २० सदा रहते हैं। पूर्व समय में परम प्रतापी विष्णु ने महाबली मधु और कैटभ नाम के दो असुरों को मारकर उसी तीर्थ में स्नान किया था। महात्मा कृष्ण द्वैपायन व्यास भी उसी तीर्थ में स्नान और तप करके योगीश्वर और सिद्ध हुए हैं। महातपस्वी महर्षि असित देवल ने उसी २४ तीर्थ में योगाभ्यास करके सिद्धि और श्रेष्ठ योगबल प्राप्त किया है।

पचासवाँ अध्याय

देवल और जैगीषव्य मुनि के चरित्र का वर्णन

वैशम्पायन ने कहा—राजन्, पूर्व समय में एक असित देवल नाम के गृहस्थ मुनि उसी तीर्थ में रहते थे। वे धर्मात्मा, पवित्र, जितेन्द्रिय, महातपस्वी, यज्ञ-निरत और क्रोध-रहित थे। वे मन, वाणी और काया से कभी किसी जीव को कष्ट नहीं पहुँचाते थे। निन्दा और प्रशंसा से वे दुःखित या प्रसन्न नहीं होते थे। प्रिय और अप्रिय दोनों ही उनकी दृष्टि में समान थे। सोने और मिट्टी को वे एक सा समझते थे। सब तरह से समदर्शी महात्मा देवल मुनि उस तीर्थस्थान में रहकर नित्य देवता, ब्राह्मण, अतिथि की पूजा और सेवा करते हुए धर्म और ब्रह्मचर्य का पालन करते थे। कुछ दिनों के बाद जैगीषव्य नाम के एक योगी भिक्षावृत्ति मुनि उक्त तीर्थ में देवल के आश्रम में आकर रहने लगे। तेजस्वी महात्मा जैगीषव्य उस आश्रम में योगाभ्यास और तप करते-करते सिद्धि को प्राप्त हुए। महामति देवल के सामने ही जैगीषव्य सिद्ध हो गये, किन्तु देवल उस सिद्धि को नहीं प्राप्त कर सके। महाराज! देवल मुनि केवल आहार के समय जैगीषव्य को देख पाते थे, अन्य समय उनका पता नहीं रहता था। जब देवल के भोजन का समय होता था तब अतिथि रूप से भिक्षा ग्रहण करने के लिए योगिवर जैगीषव्य उनके पास आते थे और देवल भी गौरव के साथ प्रसन्नतापूर्वक, ऋषियों के सदाचार के अनुसार, ११ उनकी पूजा करते और उन्हें भोजन कराते थे। जैगीषव्य कभी देवल से बोलते नहीं थे, चुपचाप चले जाते थे। इस तरह बहुत वर्ष बीत गये।

एक दिन भिक्षा के समय महातेजस्वी मुनिवर जैगीषव्य को देखकर देवल सोचने लगे कि "यह भिक्षु बड़ा ही आलसी है! इतने दिन से मैं इसका सत्कार करता हूँ, पर यह आज तक मुझसे बोला तक नहीं!" इस तरह सोचते-सोचते देवल कलश लेकर, स्नान-सन्ध्या आदि नित्यकर्म करने के लिए, आकाश-मार्ग से सागर को चले। सागर-तट पर पहुँचकर देखा कि जैगीषव्य उनसे पहले ही पहुँचकर वहाँ बैठे हैं। देवल को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे सोचने लगे कि यह भिक्षु किस तरह इतनी जल्दी यहाँ पहुँच गया और स्नान करके गायत्री

जपने लगा! देवल ने स्नान-सन्ध्या गायत्री-जप आदि कर्मों से छुट्टी पाकर जल-पूर्ण कलश लेकर जब अपने आश्रम को जाने का उद्योग किया उस समय भी जैगीषव्य सागर-तट पर मौजूद थे। किन्तु देवल ने आश्रम में आकर देखा कि जैगीषव्य पहले से ही वहाँ भी मौजूद हैं। वे वहाँ काष्ठ के समान बैठे थे। उन्होंने सदा की तरह देवल को देखकर भी उनसे कुछ नहीं कहा। २० जैगीषव्य के तपोबल और योग के प्रभाव को देखकर देवल दङ्ग रह गये। वे सोचने लगे कि बड़े आश्चर्य की बात है, मैंने थोड़ी देर पहले इन्हें सागर-तट पर देखा था, अब इस समय आश्रम में देख रहा हूँ! ये मुझसे भी पहले आश्रम में कैसे आ गये!

मन्त्र-विद्या में निपुण देवल मुनि यों सोचते हुए, भिक्षु जैगीषव्य की परीक्षा लेने के लिए, तपोबल के प्रभाव से आश्रम से अन्तरिक्ष में पहुँचे। वहाँ देखा कि अन्तरिक्ष में विचरनेवाले सिद्धगण एकाग्र भाव से जैगीषव्य की पूजा कर रहे हैं और जैगीषव्य पहले से ही वहाँ उपस्थित हैं। उनको वहाँ भी देखकर देवल कुपित हो उठे। उन्होंने मन में पक्का इरादा कर लिया कि आज मैं जैगीषव्य की पूरी परीक्षा लिये बिना न रहूँगा—देखूँ, इनमें कितना तपोबल है और ये कहाँ तक जाते हैं। यों दृढ़ निश्चय करके महात्मा देवल ऊपर स्वर्ग को चले तो वहाँ भी उन्हें जैगीषव्य जाते हुए देख पड़े। क्रमशः पितृलोक, यमलोक, सूर्यलोक, सोमलोक में देवल गये पर वहाँ भी उन्होंने अपने से पहले ही जैगीषव्य को जाते देखा। फिर वहाँ से क्रमपूर्वक वे एकान्त २९ यज्ञ, अग्निहोत्र, दर्शपौर्णमास, पशुयज्ञ, चातुर्मास्य, अग्निष्टोम, अग्निष्टुत, वाजपेय, बहुसुवर्णक, राजसूय, पुण्डरीक, अश्वमेध, नरमेध, सर्वमेध, सौत्रामणि, द्वादशाह आदि विविध यज्ञ करनेवालों के उत्तरोत्तर उच्च लोकों में गये, किन्तु उन सभी लोकों में उन्होंने योगी जैगीषव्य को उपस्थित पाया और वहाँ के निवासियों को सादर उनकी पूजा करते देखा। देवल मुनि वहाँ से भी ऊपर क्रमशः मित्रावरुण के लोक, आदित्यलोक, रुद्रलोक, वसुलोक, बृहस्पति के लोक, गोलोक और ४० ब्रह्मसत्र करनेवालों के लोक में गये। वहाँ भी उन्हें योगी जैगीषव्य जाते देख पड़े। वहाँ से ऊपर अन्य तीन श्रेष्ठ लोकों को लाँघकर पतिव्रता स्त्रियों के लोक में पहुँचे तो वहाँ भी सब जगह जैगीषव्य पहले ही जाते देख पड़े। इसके बाद जैगीषव्य देवल को नहीं देख पड़े। वहाँ से जैगीषव्य को अदृश्य होते देखकर देवल को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे उनके प्रभाव और योगसिद्धि को सोचते हुए उस लोक के सिद्ध पुरुषों के पास गये और हाथ जोड़कर पूछने लगे—हे महानुभाव तपस्वी ब्रह्मचारियो! मुझे अब जैगीषव्य नहीं देख पड़ते, कृपा कर आप बताइए कि वे कहाँ गये। मुझे बड़ा विस्मय हो रहा है। तब उन सिद्ध महापुरुषों ने कहा—हे देवल, जैगीषव्य योगीश्वर यहाँ से शाश्वत अक्षय ब्रह्मलोक को गये हैं।

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्! उन ब्रह्मचारियों के वचन सुनकर देवल भी ब्रह्मलोक में जैगीषव्य के पास जाने की इच्छा से ऊपर को चले, किन्तु जा नहीं सके, गिर पड़े।

इक्यावनवाँ अध्याय

दधीचि और सारस्वत मुनि के चरित्र का वर्णन

वैशम्पायन ने कहा—राजन्, सोमतीर्थ में चन्द्रमा ने राजसूय महायज्ञ किया था। उस यज्ञ के समय ही तारकामय नाम से प्रसिद्ध घोर संग्राम हुआ था। उस तीर्थ में भी बलभद्र ने स्नान किया, विविध दान दिये। फिर वहाँ से बलरामजी सारस्वत मुनि के तीर्थ में गये। पूर्व समय में बारह वर्ष की घोर अनावृष्टि हुई थी। उस अनावृष्टि के अन्त में सारस्वत मुनि ने ब्राह्मणों को लुप्तप्राय वेद पढ़ाये थे।

जनमेजय ने पूछा—भगवन्, बारह वर्ष की अनावृष्टि समाप्त होने पर सारस्वत मुनि को ही कैसे वेद याद रहे? उन्होंने किस तरह ब्राह्मणों को वेदों का अध्ययन कराया?

वैशम्पायन ने कहा—महाराज! पहले दधीचि नाम से प्रसिद्ध एक महातपस्वी, असाधारण बुद्धिमान्, ब्रह्मचारी, जितेन्द्रिय महर्षि थे। उनके घोर तप को देखकर इन्द्र सदा डरा करते थे कि कहीं वे तपस्या के प्रभाव से मेरा पद न ले लें। इन्द्र ने कई बार तपस्या के फलस्वरूप तरह-तरह के वर देकर उन्हें तप से डिगाना चाहा, परन्तु वे लोभ के वश में नहीं हुए। उन्होंने जब किसी तरह तप करना नहीं छोड़ा तब इन्द्र ने एक और प्रबल प्रलोभन उनके आगे उपस्थित किया अर्थात् सब अप्सराओं में श्रेष्ठ, नेत्रों को लुभानेवाली, अलम्बुषा अप्सरा को मुनि के पास भेजा कि वह जाकर उनके तप में विघ्न डाले। महात्मा दधीचि सरस्वती नदी में देवताओं और पितरों का तर्पण कर रहे थे। उसी समय वह अप्सरा उनके सामने समीप ही जा खड़ी हुई। उसका दिव्य रूप देखकर मुनिवर का चित्त चलायमान हो गया और सरस्वती में वीर्य स्खलित होकर गिर पड़ा। नदी ने प्रसन्नतापूर्वक मुनि के वीर्य को अपनी कोख में धारण कर लिया। पुत्र-प्राप्ति के लिए सरस्वती ने उस वीर्य को गर्भ में धारण किया था। यथासमय उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उस तेजस्वी बालक को लेकर सरस्वती नदी मुनि के पास आई। १०

दधीचि मुनि ऋषियों की मण्डली में बैठे थे। वहाँ जाकर पुत्र को देती हुई सरस्वती ने कहा—हे ब्रह्मर्षि, यह आपका पुत्र है। आपकी भक्ति से मैंने इसे अपने गर्भ में धारण किया है। पूर्व समय में अलम्बुषा अप्सरा को देखकर जो आपका वीर्य मेरे जल में गिर पड़ा उसी से इस बालक की उत्पत्ति हुई है। आपका वीर्य निष्फल न हो, इसी ख़याल से मैंने वह वीर्य सादर धारण किया था। यह श्रेष्ठ पुत्र आपको मैं देती हूँ। आप इसको ग्रहण कीजिए।

महर्षि दधीचि ने महानदी के ये वचन सुनकर प्रीतिपूर्वक उस बालक को ले लिया। पिता के स्नेह की वृद्धि से उन्होंने बालक का मस्तक सूँघा और उसे छाती से लगा लिया। इसके बाद महामुनि ने सन्तुष्ट होकर सरस्वती को यह वर दिया कि हे भाग्यशालिनी, तुम्हारे जल में

तर्पण करने से विश्वेदेवा, पितृगण, गन्धर्व, अप्सराएँ तथा अन्य सब प्राणी अक्षय तृप्ति प्राप्त करेंगे। हे जनमेजय, इस तरह वर देकर वे महामुनि सरस्वती की स्तुति करने लगे। उन्होंने कहा—हे सरस्वती, तुम प्रजापति ब्रह्मा के मानस-सर से उत्पन्न हुई हो। महाव्रत महात्मा मुनि लोग तुम्हारी महिमा को जानते हैं और तुमको सबसे श्रेष्ठ नदी मानते हैं। हे प्रियदर्शने, इस बालक को गर्भ
२० में स्थान देकर तुमने मेरा प्रिय किया है। यह पुत्र महातपस्वी, तेजस्वी और तुम्हारे ही नाम से त्रिभुवन में 'सारस्वत' कहलावेगा। यह प्रतापी बालक बारह वर्ष की अनावृष्टि पड़ने पर श्रेष्ठ ब्राह्मणों को लुप्तप्राय वेदों का अध्ययन करावेगा। हे सरस्वती, मेरे प्रसाद और वरदान के प्रभाव से तुम सब पवित्र जलवाली नदियों से श्रेष्ठ और पवित्र समझी जाओगी। राजन्, महानदी सरस्वती इस तरह स्तुति और वर-प्राप्ति से प्रसन्न होकर, पुत्र को लेकर, वहाँ से चल दी।

कुछ समय के उपरान्त देवताओं और दानवों का विरोध उपस्थित हुआ। तब इन्द्र दानवों को नष्ट करनेवाले अमोघ शस्त्र की खोज करते हुए तीनों लोकों में विचरण करने लगे। परन्तु उन्हें कहीं वैसा श्रेष्ठ शस्त्र नहीं मिला। तब उन्होंने देवताओं से कहा—हे देवगण, दधीचि मुनि की हड्डियों के सिवा किसी शस्त्र से मैं दैत्यों का नाश नहीं कर सकूँगा। तुम लोग, कार्य-सिद्धि के लिए, मिलकर दधीचि मुनि के पास जाओ और उनसे उनकी हड्डियाँ माँगो। उन महात्मा की हड्डियों से बने हुए शस्त्र से हम दानवों को मारेंगे। इन्द्र की अनुमति से देवगण महात्मा दधीचि के पास आये और बोले—हे महाभाग, अपनी अस्थियाँ देकर हमारी सहायता कीजिए। दधीचि ने बिना ही सोच-विचार किये तत्काल शरीर-त्याग करके अपनी हड्डियाँ देवताओं को दे डालीं। देवताओं का प्रिय करने से दधीचि अविनाशी श्रेष्ठ ब्रह्मलोक
३० को गये। उधर प्रसन्नचित्त इन्द्र ने उन हड्डियों से गदा, वज्र, चक्र, दण्ड आदि अनेक शस्त्र-अस्त्र बनवाये। महाराज, मुनिवर दधीचि महर्षि भृगु के पुत्र थे। भृगु ने उग्र तपस्या करके अपने तेज से अतिकाय, तेजस्वी, पर्वत के समान भारी, उन्नतस्कन्ध, प्रसिद्ध पुत्र दधीचि को उत्पन्न किया था। दधीचि स्वयं भी तपोबल और तेज की मूर्ति थे और इन्द्र सदा उनसे डरते रहते थे। इन्द्र ने अपने लिए उन्हीं दधीचि की हड्डी से वज्र बनवाया। वह वज्र ब्रह्मतेज से अमोघ और मन्त्रों से अभिमन्त्रित था। इन्द्र ने क्रोधपूर्वक बारम्बार उस वज्र से प्रहार करके आठ सौ दस महाबली अजेय वीर दैत्यों को मारा।

इसके उपरान्त कुछ समय बीतने पर बारह वर्ष की अनावृष्टि पड़ी। लगातार बारह वर्ष वर्षा न होने से हाहाकार मच गया। भूख से तड़प रहे जीव आहार की खोज में सब तरफ़ दौड़ने लगे। सारस्वत मुनि भी जब आहार खोजने के लिए जाने को उद्यत हुए तब सरस्वती ने कहा—पुत्र, तुम यहाँ से आहार खोजने के लिए कहीं न जाओ; मैं तुमको भोजन के लिए यहीं बढ़िया मछलियाँ दूँगी। यह सुनकर सारस्वत मुनि वहीं रहकर मछलियों से ही नित्य

देव-ऋषि-पितरों को तृप्त करते हुए आप भी अपना पेट भरने लगे। इस तरह उन्हें अनावृष्टि नहीं खली। वे सुखपूर्वक जीते रहकर सदा वेदों का स्वाध्याय करते रहे। ४०

महाराज! जब अनावृष्टि बीत गई, वर्षा हुई, तब महर्षिगण फिर अपने-अपने आश्रम में आकर एकत्र हुए। अनावृष्टि में भूख और प्यास से पीड़ित होकर आहार की खोज में इधर-उधर दौड़-धूप करने के कारण उनमें से किसी को वेद नहीं याद रहे। स्वाध्याय न करने से सब ऋषि वेदों को भूल गये। जब सब लोग एकत्र हुए तब स्वाध्याय के लिए हर एक ऋषि दूसरे से वेदाध्ययन कराने के लिए कहने लगा। पर वहाँ तो सभी ऋषि वेदों को भूल गये थे, पढ़ाता कौन? बहुत स्मरण करने पर भी किसी को वेद नहीं उपस्थित हुए।

उनमें से एक ऋषि घूमते-फिरते सारस्वत ऋषि के आश्रम में पहुँच गया। वहाँ उसने देखा कि हृष्ट-पुष्ट सारस्वत ऋषि बैठे हुए वेदों का स्वाध्याय कर रहे हैं। उस ऋषि ने आकर सब ऋषियों से कहा कि निर्जन वन में एक देव-तुल्य ऋषि वेदों का स्वाध्याय कर रहे हैं। इस संवाद से ऋषियों की प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहा। वे सब सारस्वत ऋषि के आश्रम में आकर कहने लगे—हे महर्षिश्रेष्ठ, तुम हमें वेदाध्ययन कराओ। तब सारस्वत ऋषि ने उनसे कहा—तुम लोग विधिपूर्वक मेरे शिष्य होओ तो मैं तुमको वेदाध्ययन कराऊँ। इस पर वे ऋषि बोले—वत्स, तुम हमसे बहुत छोटे यानी बालक हो; हम तुम्हारे शिष्य कैसे हों? सारस्वत ने कहा—अगर मैं तुमको शिष्य किये बिना वेद पढ़ाऊँगा तो मेरा धर्म नष्ट होगा। जो कोई अधर्म से पढ़ाता है और जो कोई अधर्म से पढ़ता है, वे दोनों अध्यापक और छात्र शीघ्र ही या तो मर जाते हैं, या उनमें परस्पर वैर हो जाता है। इसके सिवा बालक होने पर भी मैं तुम्हारा गुरु हो सकता हूँ; क्योंकि ऋषियों के मत से कोई मनुष्य अधिक अवस्था होने से, केश पक जाने से, धन से या भाई-बन्धुओं की अधिकता से बड़ा-बूढ़ा नहीं होता। जो धर्म और विद्या में बड़ा है, षडङ्ग वेद को पढ़-पढ़ा सकता है, वही बड़ा है—बूढ़ा है—प्रधान है।

सारस्वत के ये वचन सुनकर वेदाध्ययन के लिए साठ हज़ार मुनियों ने उनका शिष्य होना स्वीकार किया और उन बालक विद्वान् गुरु के आसन के लिए मुट्ठी-मुट्ठी भर कुश लाकर सबने अर्पण किये। महाराज, श्रीकृष्ण के बड़े भाई हलधर ने उस तीर्थ में भी स्नान किया, ब्राह्मणों को बहुत सा धन दिया। फिर वहाँ से प्रसन्नतापूर्वक वृद्ध-कन्यका तीर्थ में गये। उस तीर्थ में वृद्धकन्या का आश्रम है, जहाँ एक कुमारी ने वृद्धावस्था तक अविवाहित रहकर दुष्कर तप किया था। ५१ ५३

बावनवाँ अध्याय

वृद्धकन्या के चरित्र का वर्णन

जनमेजय ने कहा—ब्रह्मन्, आपसे दधीचि और सारस्वत मुनि का अति दुष्कर चरित्र सुनकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ। अब कृपा कर वृद्धकन्या का वृत्तान्त कहिए। उस कुमारी ने किसलिए, किस नियम से, कैसा तप किया था?

वैशम्पायन ने कहा—हे पृथ्वीनाथ, पूर्व समय में गर्गवंश में उत्पन्न कुणि नाम के एक महायशस्वी तपस्वी थे। उन्होंने घोर तप करके एक परम सुन्दरी मानसी कन्या उत्पन्न की।

उस कन्या को देखकर मुनि अत्यन्त प्रसन्न हुए। कुछ समय के उपरान्त देहान्त होने पर वे मुनि स्वर्ग को गये। वह कमलनयनी कन्या श्रमपूर्वक उग्र तप और उपवास करती हुई देवता-पितरों की आराधना करने लगी। इस तरह तप करते-करते बहुत समय बीत गया। कुणि ऋषि जब जीवित थे तब उन्होंने उस कन्या का ब्याह कर देना चाहा था, किन्तु रूप और गुण में अपने अनुरूप वर को न पाकर कन्या ने ब्याह करना नहीं चाहा। ख़ैर, उग्र तप से अपने शरीर को कृश बनाती हुई वह कन्या उसी तरह निर्जन वन में देवता-पितरों की आराधना करती रही। तप करते-करते और वृद्धावस्था आ जाने से उस कन्या का शरीर शिथिल हो गया। यहाँ तक कि वह अपनी जगह से हिलकर एक पग चलने में भी असमर्थ हो गई। तब उसने शरीर त्यागकर परलोक जाने का विचार किया। उस समय नारद ने उसको शरीर-त्याग के लिए उद्यत देख वहाँ आकर कहा—हे कुमारी, जिसका विवाह-संस्कार नहीं हुआ वह कुमारी स्त्री किसी श्रेष्ठ लोक को नहीं जा सकती। मैंने देवलोक में यह बात सुनी है। तुमने केवल तप किया है। तुम्हें किसी लोक में जाने का अधिकार नहीं प्राप्त हुआ।

उस तपस्विनी ने देवर्षि नारद के वचन सुनकर ऋषिमण्डली के बीच यह बात कही कि हे महर्षियो, जो कोई मेरा पाणिग्रहण करेगा उसे मैं अपना आधा तप दे दूँगी। यह जानकर

रात्रि के समय अपनी तपस्या के बल से वह तपस्विनी........मुनि के पास आई—पृष्ठ ३१५२
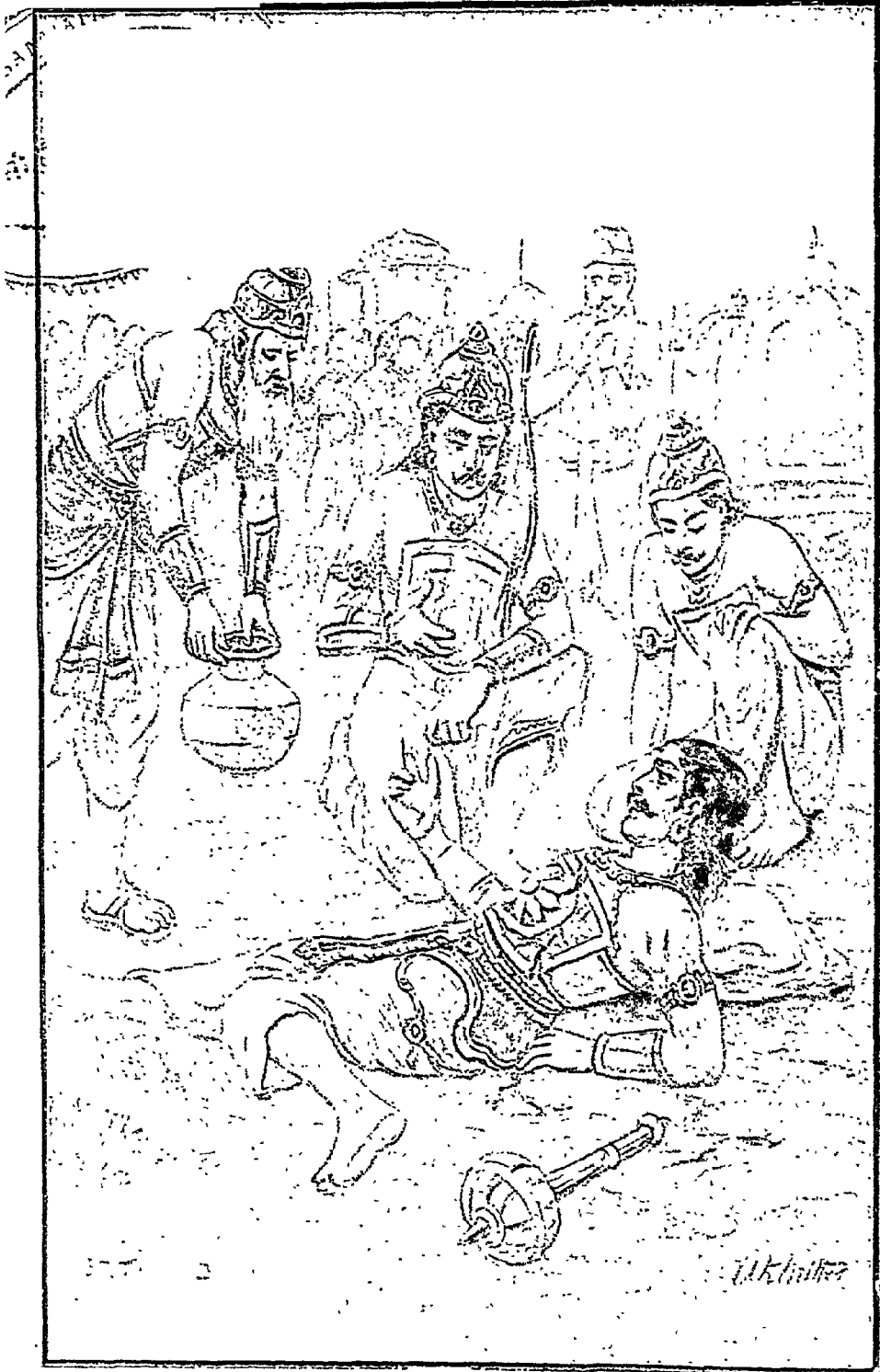
दुर्योधन ने कृपाचार्य से कहा—हे आचार्य आप शीघ्र जल-पूर्ण कलश लाइए—पृष्ठ २१८६

गालव के पुत्र महर्षि शृङ्गवान् उससे व्याह करने को तैयार हो गये। परन्तु उन्होंने यह नियम कर लिया कि केवल एक रात्रि उससे सहवास करेंगे। कन्या राज़ी हो गई। शृङ्गवान् ने यथाविधि अग्नि जलाकर हवन किया और अग्नि को साक्षी करके उस कन्या के साथ व्याह कर लिया। रात्रि के समय अपनी तपस्या के बल से वह तपस्विनी, युवती और दिव्य वस्त्र-आभूषण चन्दन माला आदि से अलंकृत होकर, मुनि के पास आई। लक्ष्मी के समान परम-सुन्दरी पत्नी को पाकर प्रसन्नतापूर्वक मुनिवर उसके पास एक रात रहे।

प्रातःकाल होने पर उठकर तपस्विनी ने शृङ्गवान् से कहा—हे विप्रवर, आपने जो एक रात सहवास का नियम किया था वह पूरा हो गया। अब आप मुझे जाने की आज्ञा दीजिए। मैं परलोक जाना चाहती हूँ। आपका भला हो। २०

महाराज, पति से विदा होकर स्वर्ग जाते समय उस तपस्विनी वृद्धकन्या ने फिर कहा कि जो कोई इस तीर्थ में एक रात रहेगा और देवता-पितरों का तर्पण करेगा, उसको अनायास अट्ठावन वर्ष के पूर्ण ब्रह्मचर्य-पालन का फल प्राप्त होगा। इतना कहकर वह तपस्विनी शरीर त्यागकर स्वर्ग को चली गई। मुनिवर शृङ्गवान् उसके रूप पर मोहित हो गये थे, इसलिए उन्होंने बड़े कष्ट से नियमानुसार आधा तप लेकर उसे स्वर्ग जाने की आज्ञा दी। अन्त को उन्होंने भी तपस्या से सिद्धि पाई। शरीर त्यागकर वे यथासमय स्वर्ग में अपनी पत्नी से जा मिले।

राजन्! मैंने यह वृद्धकन्या के चरित्र, ब्रह्मचर्य, तप के प्रभाव और सुरपुर-गमन का वृत्तान्त सुना दिया। वृद्धकन्या तीर्थ में ही बलदेवजी को शल्य के मारे जाने की ख़बर मिली। वहाँ भी स्नान और दान करके बलरामजी समन्तपञ्चक तीर्थ में पहुँचे। वहाँ उन्होंने ऋषियों से कुरुक्षेत्र का फल और माहात्म्य पूछा। महात्मा ऋषियों ने उनके प्रश्न के अनुसार कुरुक्षेत्र का इतिहास और माहात्म्य वर्णन किया। २९

तिरपनवाँ अध्याय

कुरुक्षेत्र की महिमा का वर्णन

ऋषियों ने बलराम से कहा—हे यदुनन्दन, यह समन्तपञ्चक क्षेत्र सनातन से प्रजापति की उत्तर वेदी कहलाता है। यहीं महावरदानी देवताओं ने पहले यज्ञ किया था। राजर्षिश्रेष्ठ कुरु ने बहुत वर्षों तक अमित तेज और यत्न के साथ इस क्षेत्र को हल से जोता है इसी लिए, कुरुराज के कर्षण के कारण, यह स्थान कुरुक्षेत्र के नाम से प्रसिद्ध है। बलराम ने पूछा—हे मुनियो, महाराज कुरु ने किसलिए इस क्षेत्र को जोता? ऋषियों ने कहा—पूर्व समय में जब

राजा कुरु यहाँ की पृथ्वी जोत रहे थे तब इन्द्र ने आकर उनसे पूछा—राजन्, बड़े यत्न के साथ लगकर यह क्या कर रहे हो? किस अभिप्राय से इस भूमि को जोत रहे हो? कुरु ने कहा—
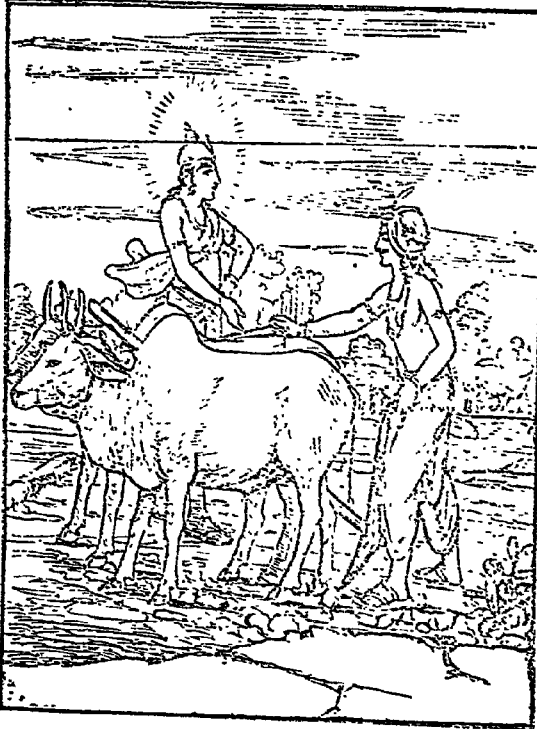
हे इन्द्र, मैं इस पृथ्वी का कर्षण और संशोधन इसलिए कर रहा हूँ कि जो पुरुष इस क्षेत्र में मृत्यु को प्राप्त होंगे वे पापहीन पुण्यात्माओं के श्रेष्ठ लोकों को अनायास जा सकेंगे।

कुरु के ये वचन सुनकर इन्द्र हँसकर चले गये। किन्तु महाराज कुरु ने इन्द्र के उस उपहास से बुरा नहीं माना। वे वैसे ही पृथ्वी का कर्षण करते रहे। इन्द्र उसी तरह बारम्बार आकर पृथ्वी के जोतने का कारण पूछते थे और राजा कुरु से वही एक उत्तर पाकर हँसते हुए चले जाते थे। राजा कुरु उनके उपहास की परवा न करके दृढ़ निश्चय और अध्यवसाय के साथ अपने काम में लगे हुए थे। अन्त को इन्द्र ने जब राजा का दृढ़ निश्चय देखा तब देवताओं से राजा का अभिप्राय कहा। देवताओं ने डरकर कहा—हे देवराज, राजा कुरु को किसी तरह वरदान देकर इस कार्य से रोकने में ही हम लोगों का भला है। तुमसे हो सके तो शीघ्र यही यत्न करो। देखो, लोग अगर इस भूमि में मरने से ही स्वर्ग पा जायँगे तो फिर वे यज्ञ आदि क्यों करेंगे? फल यह होगा कि न यज्ञ होंगे और न हमें यज्ञभाग प्राप्त होंगे।

तब इन्द्र ने फिर महाराज कुरु के पास आकर कहा—हे राजर्षि, तुम इतना परिश्रम क्यों करते हो? मेरी बात मानो और यह भूमि-कर्षण छोड़ दो। मैं तुम पर सन्तुष्ट होकर यह वर देता हूँ कि इस भूमि में जो पुरुष आलस्यहीन निराहार रहकर शरीर त्याग करेंगे, या युद्ध करके शस्त्र से मरेंगे, वे अवश्य स्वर्ग को जायँगे। यहाँ तक कि युद्ध के अवसर पर बाण लगने से कोई पशु-पक्षी भी मरेगा तो वह भी स्वर्गवास का अधिकारी होगा। हे बलराम! राजर्षि कुरु ने, इन्द्र के वरदान से सन्तुष्ट होकर, भूमि जोतना बन्द कर दिया। इन्द्र भी स्वर्ग को चले गये। पूर्व समय में इस अभिप्राय से यहाँ की भूमि जोती गई थी। महाराज कुरु ने भी इसी पुण्यक्षेत्र में प्राणत्याग करके श्रेष्ठ लोक प्राप्त किये। इन्द्र और ब्रह्मा आदि ने

कहा है कि पृथ्वी पर इस क्षेत्र से बढ़कर पवित्र स्थान दूसरा न होगा। इस स्थान में जो लोग तप करेंगे वे, देहान्त होने पर, ब्रह्मलोक को जायँगे। जो पुरुष इस पुण्यक्षेत्र में दान देंगे उन्हें उसका हज़ार गुना फल मिलेगा। जो पुरुष शुभ फल की इच्छा करके इस स्थान में रहेंगे वे कदापि घोर यमलोक में न जायँगे। जो लोग यहाँ श्रेष्ठ यज्ञ करेंगे वे तब तक स्वर्ग में रहेंगे जब तक यह पृथ्वी रहेगी। हे हलधर, स्वयं इन्द्र ने कुरुक्षेत्र की महिमा के सम्बन्ध में यह कहा है कि इस कुरुक्षेत्र की धूल भी हवा से उड़कर जिनके शरीर में छू जायगी वे, घोर पातकी होने पर भी, परमपद और सद्गति के भागी होंगे। २०

हे बलरामजी! अनेक देवताओं, ब्राह्मणों और नृग आदि श्रेष्ठ राजाओं ने कुरुक्षेत्र में यज्ञ किये हैं और वे शरीर त्यागकर श्रेष्ठ गति को प्राप्त हुए हैं। तरन्तुक, आरन्तुक, परशुराम-निर्मित ह्रद और मचक्रुक नाम के प्रदेशों के मध्य का स्थान ही कुरुक्षेत्र है। उसी को समन्त-पञ्चक और प्रजापति की उत्तर वेदी कहते हैं। यह स्थान कल्याणदायक, महापवित्र, देव-सम्मत और स्वर्गीय गुणों से युक्त है। इसलिए कुरुक्षेत्र में युद्ध में मारे गये राजा और क्षत्रिय अक्षय पुण्य लोकों को प्राप्त होंगे। हे बलदेवजी, ब्रह्मा आदि देवताओं के सामने स्वयं इन्द्र ने कुरुक्षेत्र की यह महिमा कही है और ब्रह्मा, विष्णु, महेश ने उसका अनुमोदन किया है। २६

चौवनवाँ अध्याय

मित्रावरुण के आश्रम में नारद से सब हाल सुनकर बलदेव का
गदायुद्ध देखने के लिए कुरुक्षेत्र में आना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज! अब बलदेवजी ने कुरुक्षेत्र को घूम-फिरकर देखा, ब्राह्मणों को बहुत सा धन दिया और फिर वहाँ से दिव्य आश्रम को गये। उस पवित्र आश्रम में असंख्य महुए, आम, पकरियाँ, गूलर, बेल, कटहल, अर्जुन आदि के वृक्ष थे। उस पुण्य-लक्षण-युक्त आश्रम को देखकर बलभद्र ने ऋषियों से पूछा—यह श्रेष्ठ आश्रम किसका है?

महर्षियों ने कहा—हे हलधर! पहले यह आश्रम जिसका था उसका हाल हम आपसे कहते हैं, सुनिए। इस आश्रम में पहले विष्णु भगवान् ने तप किया था। उन्होंने सब श्रेष्ठ यज्ञ यहीं विधिपूर्वक किये हैं। इसी स्थान में बाल-ब्रह्मचारिणी शाण्डिल्य ऋषि की कन्या वृद्धा तपस्विनी ने तप करके योगबल से स्वर्गलोक प्राप्त किया है। इस आश्रम में तप करने से उस तपस्विनी की देवताओं और महर्षियों ने प्रशंसा की। यह उसी का दिव्य आश्रम है।

महात्मा बलदेव महर्षियों के मुँह से यह वृत्तान्त सुनकर उनको प्रणाम और सन्ध्या-वन्दन करके हिमालय पर्वत के ऊपर चढ़े। थोड़ी दूर जाने पर उन्हें सरस्वती की उत्पत्ति का १०

स्थान प्लक्षप्रस्रवण तीर्थ मिला। उसे कारपवन भी कहते हैं। उस पुण्यतीर्थ के दर्शन करके बलरामजी को बड़ा आश्चर्य हुआ। वहाँ भी उन्होंने पवित्र जल में स्नान और देव-ऋषि-पितरों का तर्पण करके विविध दान दिये। यतियों और ब्राह्मणों के साथ वहाँ एक रात रहकर वे मित्रावरुण के पवित्र आश्रम में पहुँचे। उस आश्रम में पहले इन्द्र, अग्नि, अर्यमा आदि को परम प्रसन्नता और सिद्धि प्राप्त हुई है। कारपवन तीर्थ से वहाँ आकर बलरामजी ने स्नान किया। फिर प्रसन्नतापूर्वक ऋषियों और सिद्धों की मण्डली में बैठकर वे तरह-तरह की विचित्र पवित्र प्राचीन कथाएँ सुनने लगे।

बलदेवजी जिस समय ऋषि-समाज में बैठे हुए वार्तालाप कर रहे थे उसी समय कलह-प्रिय और संसार में कलह की जड़ कहलानेवाले तथा नाचने-गाने में निपुण देवर्षि नारद मधुर शब्द से मनोहर वीणा बजाते हुए वहाँ आ पहुँचे। महातपस्वी नारद सिर पर जटाजूट, शरीर
२० में स्वर्णचीर और हाथ में कमण्डलु धारण किये तथा बग़ल में सुवर्णदण्ड दबाये हुए थे। देवर्षि नारद को देखते ही बलदेवजी ने आसन से उठकर उनका स्वागत किया। विधिपूर्वक पूजा हो चुकने पर जब नारदजी सुखपूर्वक बैठ गये तब बलभद्र ने उनसे कौरव-पाण्डव-युद्ध का समाचार पूछा। नारद ने कौरव-कुल के नाश का सब वृत्तान्त कह सुनाया। तब शोकाकुल बलभद्र ने दीन गद्गद वाणी से कहा—भगवन्, उस युद्ध में क्षत्रियों की क्या दशा हुई? संक्षेप में सब हाल मैं पहले ही सुन चुका हूँ, परन्तु आपके मुँह से विस्तारपूर्वक सुनने के लिए मुझे बड़ा कौतूहल हो रहा है।

नारद ने कहा—हे बलराम! भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, जयद्रथ, कर्ण, उनके महारथी पुत्रगण, भूरिश्रवा, महारथी शल्य और अन्यान्य महाबली योद्धा मारे जा चुके हैं। दुर्योधन का प्रिय करने के लिए प्राणों की ममता छोड़कर समर से विमुख न होनेवाले हज़ारों राजा और राजपुत्र नष्ट हो चुके हैं। अब जो मरने से बच रहे हैं उनके नाम सुनो। दुर्योधन की सेना में केवल कृपाचार्य, कृतवर्मा और अश्वत्थामा जीवित हैं। परन्तु वे डर के मारे भाग गये हैं। सब सेना नष्ट हो जाने और पैदल सेना के भाग खड़े होने पर, अत्यन्त दुःखित होकर, राजा
३० दुर्योधन द्वैपायन-ह्रद के भीतर चले गये थे। श्रीकृष्ण सहित पाण्डवों ने वहाँ जाकर जल-स्तम्भन करके शयन कर रहे दुर्योधन को अत्यन्त कठोर वचन सुना-सुनाकर बहुत उत्तेजित किया। अभिमानी दुर्योधन उन वाक्य-बाणों को नहीं सह सके। वे गदा लेकर युद्ध करने के लिए ह्रद से बाहर निकल आये। इस समय दुर्योधन और भीम का गदा-युद्ध होनेवाला है। आपको कौतूहल हो तो शीघ्र जाकर अपने शिष्यों का गदा-युद्ध देखिए।

वैशम्पायन कहते हैं—नारद के वचन सुनकर बलदेव ने पूजा-सत्कार करके साथ के सब ब्राह्मणों को विदा किया। फिर अपने साथी यादवों तथा अन्य लोगों से द्वारका जाने के

लिए कहकर आप पर्वत से नीचे उतरे। प्लक्ष-प्रस्रवण से नीचे उतरकर तीर्थ-फल को सुन-करके बलभद्र ने कहा—सरस्वती तीर्थ में रहने से बढ़कर सुख और कहीं नहीं मिल सकता। सरस्वती-वास में अनेक गुण हैं। सरस्वती-किनारे रहनेवाले ही परम सुखी हैं। सरस्वती-तट के निवासी स्वर्गलोक को जाते हैं। इसलिए सदा सरस्वती का स्मरण करना चाहिए। सर-स्वती सब नदियों से श्रेष्ठ और पवित्र है। वह सदा लोगों को कल्याण देनेवाली है। यहाँ आकर लोग पाप और शोक से छूट जाते हैं और उन्हें दोनों लोकों में शोचनीय अवस्था नहीं प्राप्त होती। हे जनमेजय, बलदेवजी प्रसन्नतापूर्वक सरस्वती की महिमा का वर्णन करते और सरस्वती की ओर देखते हुए अश्वयुक्त सफ़ेद रथ पर सवार हुए। उस शीघ्रगामी रथ पर बैठ-कर, शिष्यों का युद्ध देखने के लिए, बलरामजी द्वैपायन-ह्रद पर पहुँचे। ४१

पचपनवाँ अध्याय

गदा-युद्ध के लिए उद्यत भीमसेन और दुर्योधन के रूप का वर्णन

वैशम्पायन ने कहा कि महाराज, अब राजा धृतराष्ट्र ने भीमसेन और दुर्योधन के होने-वाले घोर गदा-युद्ध का समाचार सुनकर दुःखित होकर कहा—हे सञ्जय, गदायुद्ध को देखने के लिए आये हुए बलराम के सामने मेरे पुत्र दुर्योधन ने भीमसेन से कैसा युद्ध किया?

सञ्जय ने कहा—महाराज! युद्धाभिलाषी महाबाहु दुर्योधन, बलराम को उपस्थित देखकर, बहुत प्रसन्न हुए। उधर धर्मराज युधिष्ठिर ने बलराम को देखकर प्रसन्नतापूर्वक उठकर उनका स्वागत किया, आसन देकर बिठलाया, पूजा की और कुशल पूछी। तब बलदेव ने युधिष्ठिर से धर्मसङ्गत, मधुर, शूरों के लिए हितकर ये वचन कहे—हे धर्मराज, मैंने महर्षियों से सुना है कि कुरुक्षेत्र परम पवित्र और स्वर्गदायक स्थान है। वहाँ ब्राह्मण, महात्मा, ऋषि और देवगण रहते हैं। उस स्थान में युद्ध करके जो लोग मरते हैं वे सहज ही देवलोक में जाकर इन्द्र के साथ सुख भोगते हैं। देवलोक में कुरुक्षेत्र अर्थात् समन्तपञ्चक प्रजापति की उत्तर-वेदी कह-लाता है। इसलिए आओ, हम लोग समन्तपञ्चक क्षेत्र में चलें और वहीं भीम और दुर्योधन का गदा-युद्ध हो। उस पवित्र, सनातन, त्रिलोक-प्रसिद्ध स्थान में जो युद्ध करके मरेगा वही स्वर्ग में जायगा। राजन्, युधिष्ठिर ने बलदेव का कहना मान लिया। बलदेव के साथ युधि- १० ष्ठिर आदि सब लोग समन्तपञ्चक की ओर चले। तेजस्वी, अभिमानी, क्रोध-विह्वल दुर्योधन भी भारी गदा लेकर पैदल ही पाण्डवों के साथ चले। कवच पहने गदापाणि दुर्योधन को इस तरह युद्ध के लिए जाते देखकर अन्तरिक्ष में स्थित देवगण साधुवाद देने लगे। आकाशचारी लोग और चारण लोग कुरुराज का युद्ध-वेष और उत्साह देखकर बहुत प्रसन्न हुए और उनकी

प्रशंसा करने लगे। महाराज, पाण्डवों के बीच में दुर्योधन मस्त हाथी की तरह वेधड़क जा रहे थे। उस समय शूरों के शङ्खनाद, सिंहनाद और भेरी आदि के शब्द से सब दिशाएँ परिपूर्ण हो गईं। सब वीर कुरुक्षेत्र में पहुँचकर, दुर्योधन के बताने के अनुसार, पश्चिम ओर चलकर सरस्वती के दक्षिण-तट पर समन्तपञ्चक तीर्थ में पहुँचे। वीरों को श्रेष्ठ गति देनेवाला वह स्थान ऊसर से ख़ाली था। वहीं पर सबने युद्ध होना पसन्द किया।

अब भीमसेन कवच पहनकर, तीक्ष्ण नोकोंवाली गदा लेकर, युद्धभूमि में वेगशाली गरुड़ के सदृश शोभायमान हुए। सिर पर शिरस्त्राण और शरीर में सुवर्ण-निर्मित कवच पहने हुए दुर्योधन भी सुमेरु के समान शोभा को प्राप्त हुए। दोनों वीर रणस्थल में पहुँचकर क्रोधोन्मत्त दो गजराजों के समान

२० आमने-सामने आये। चन्द्रमा और सूर्य के समान तेजस्वी दोनों भाई परस्पर वध के लिए उद्यत होकर एक-दूसरे को इस तरह देखने लगे मानों दृष्टि से ही भस्म कर देंगे। कुपित साँप की तरह दोनों बारम्बार साँसें ले रहे थे। उत्साह और हर्ष से युक्त राजा दुर्योधन की आँखें लाल हो रही थीं। वे ओठ चाटते और साँसें लेते हुए गदा लेकर भीम की ओर देखकर उसी तरह उन्हें युद्ध के लिए ललकारने लगे जिस तरह एक मस्त हाथी दूसरे मस्त हाथी को युद्ध के लिए बुलाता है। पराक्रमी भीमसेन भी पहाड़ सी भारी लोहे की गदा लेकर, वन में सिंह को जैसे सिंह ललकारता है वैसे ही, दुर्योधन को युद्ध के लिए बुलाने लगे।

दुर्योधन और भीम दोनों ही गदा ताने हुए शिखर-युक्त पर्वत के समान जान पड़ने लगे। दोनों क्रोध से अधीर हो रहे थे। दोनों भीमपराक्रमी और गदा-युद्ध में बलराम के शिष्य थे। दोनों ही पराक्रम में यमराज, इन्द्र, वरुण, कुबेर, श्रीकृष्ण, बलदेव, राम, रावण, बालि, सुग्रीव, मधु, ३१ कैटभ, सुन्द, उपसुन्द आदि वीरों के समान थे। शरद् ऋतु में एक हथिनी के लिए परस्पर झपटनेवाले दो मस्त हाथियों के समान आमने-सामने आकर वे झपटने लगे। साँप जैसे विष उगलते हैं वैसे ही दोनों, क्रोध-विष उगलते हुए, तीव्र दृष्टि से एक-दूसरे को देखने लगे। दोनों ही सिंह-समान पराक्रमी, और अजेय थे। दोनों नखदंष्ट्रायुधवाले व्याघ्रों के समान दुःसह और प्रलय-

काल में लोक-संहार के लिए क्षोभ को प्राप्त दो सागरों के समान दुस्तर थे। दोनों ही क्रोध के कारण अरुणमुख होने से दो मङ्गल ग्रहों के समान, प्रचण्ड अग्नि के तुल्य अथवा प्रचण्ड किरण-पूर्ण प्रलयकाल में उदित दो सूर्यों के सदृश जान पड़ने लगे। उस समय उन्हें देखने से प्रतीत होने लगा मानों पूर्व और पश्चिम से उठी हुई दो घटाएँ गरजकर घोर वर्षा करने को उद्यत हैं, दो व्याघ्र क्रोध से गरजकर परस्पर आक्रमण करने को उतारू हैं, दो सिंह अथवा दो मस्त हाथी लड़ने को उद्यत होकर गरज रहे हैं, श्रेष्ठ जाति के दो घोड़े हिनहिनाकर परस्पर हमला करना चाहते हैं अथवा दो साँड़ घोर गर्जन के साथ भिड़ने को तैयार हैं। क्रोध से दोनों के ओठ फड़क रहे थे। दोनों युद्ध के लिए उद्यत महाबली दो दैत्यों की तरह शोभायमान हो रहे थे। ४०

उस समय पाञ्चालों के बीच में तप रहे सूर्य के समान विराजमान तेजस्वी युधिष्ठिर के पास ही उनके चारों भाई, श्रीकृष्णचन्द्र, बलराम और केकय-चेदि-सृञ्जय आदि वीरगण उपस्थित थे। राजा दुर्योधन ने वीर की तरह निडर होकर युधिष्ठिर आदि से कहा—हे धर्मराज प्रभृति राजा लोगो! मेरा और भीमसेन का यह गदा-युद्ध पास ही बैठकर आप देखें। सदा से जिसके लिए मेरी इच्छा थी वही युद्ध इस समय उपस्थित है। मेरा और भीम का गदा-युद्ध बहुत पहले से ही निश्चित था। आप लोग निष्पक्ष होकर हम दोनों का बाहुबल और रण-कौशल देखें। यह सुनकर सब लोग वहीं बैठ गये। उस समय वह राजमण्डली आकाश में सूर्य के आसपास विराजमान ज्योतिर्मण्डल के समान शोभा को प्राप्त हुई। श्रीमान् बलदेवजी, उन सबके बीच में, रात्रि को नक्षत्रों के मध्यगत पूर्ण चन्द्र के समान शोभायमान हुए। अब गदा हाथ में लिये वीर दुर्योधन और भीमसेन पहले परस्पर उग्र अप्रिय वचन कहकर पीड़ा पहुँचाने लगे। दोनों ही वृत्रासुर और इन्द्र की तरह युद्ध के लिए उद्यत होकर परस्पर कोप की दृष्टि से देखने लगे। ५१

छप्पनवाँ अध्याय

भीमसेन और दुर्योधन का वाग्युद्ध

वैशम्पायन ने कहा कि राजन्, सञ्जय के मुँह से भीम और दुर्योधन के वाग्युद्ध और गदा-युद्ध के प्रारम्भ की बात सुनकर दुःखित धृतराष्ट्र ने कहा—सञ्जय! मनुष्य-जन्म को धिक्कार है, जिसका परिणाम ऐसा है! [हा, मनुष्य का जीवन, ऐश्वर्य, सम्पत्ति, सुख आदि कुछ भी स्थायी नहीं है!] ग्यारह अक्षौहिणी सेना दुर्योधन के एक इशारे पर प्राण देने को तैयार थी। वह सम्राट् था। उसने अकेले पृथ्वीमण्डल का निष्कण्टक राज्य किया था। बड़े-बड़े प्रतापी महाराज उसकी आज्ञा का पालन करते थे। वही दुर्योधन जगत् का नाथ होकर अन्त को अनाथ

की तरह अकेला गदा लेकर शत्रुओं से पैदल युद्ध करने गया। इसे भाग्य के सिवा और क्या कहें! मेरे पुत्र ने बड़ा दुःख सहा! शोकाकुल धृतराष्ट्र से और कुछ नहीं कहा गया।

सञ्जय ने कहा—महाराज, मेघ के समान स्वरवाले राजा दुर्योधन हर्ष से साँड़ की तरह गरजकर भीमसेन को युद्ध के लिए ललकारने लगे। जिस समय उन्होंने भीमसेन को ललकारा उस समय तरह-तरह के उत्पात प्रकट होने लगे। घोर शब्द करती हुई आँधी चलने और धूल बरसने लगी। सब दिशाओं में अँधेरा छा गया। रोंगटे खड़े करती हुई सैकड़ों उल्काएँ भारी शब्द और वायु के साथ पृथ्वी पर गिरने लगीं। उनसे ऐसा शब्द प्रकट होता था जैसे आकाश-मण्डल फटा जा रहा है। अमावस और प्रतिपदा की सन्धि न होने पर भी, असमय में ही, राहु ने सूर्य को ग्रस लिया। वन-पर्वत सहित पृथ्वी-मण्डल बड़े वेग से बार-बार हिलने लगा। पर्वतों के शिखर फट-फटकर गिरने लगे। कूप-जल एकाएक ऊपर तक बढ़ आये। गिदड़ियाँ अशुभ-सूचक दारुण शब्द करने लगीं। विविध आकार के मृग चारों ओर दौड़ते दिखाई पड़ने लगे। अशुभ शब्द करनेवाले पशु सूर्याभिमुख दौड़ने लगे। बिना मेघ के बिजली की कड़क सुन पड़ने लगी। चारों ओर घोर शब्द सुन पड़ने लगे, किन्तु यह नहीं देख पड़ता था कि वे शब्द किसके हैं।

महाबली भीमसेन ने इस प्रकार के उत्पात देखकर युधिष्ठिर से कहा—हे धर्मराज, दुर्मति दुर्योधन मुझे किसी तरह नहीं जीत सकेगा। अर्जुन ने जैसे खाण्डव वन में आग छोड़ी थी वैसे ही मैं आज अपने हृदय में चिरकाल से सञ्चित घोर क्रोध को दुर्योधन के ऊपर निकालूँगा। इस कुरुकुलान्तक पापी को गदा से मारकर आज मैं, आपके हृदय में बहुत दिनों से खटकने-वाला, कण्टक दूर करूँगा। आज इस पापी की जाँघ गदा से तोड़कर आपके कण्ठ में कीर्ति की माला डालूँगा। अब यह फिर हस्तिनापुर में नहीं जा सकेगा। इसने हमें सर्पशय्या में सुलाया, भोजन में विष खिलाया, प्रमाण-कोटि के उच्च स्थान से जल में गिराया, लाक्षागृह में जलवाया, सभा में उपहास और अपमान किया, कपट-द्यूत में सर्वस्व हरण किया, बारह वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञातवास के अनेक कष्ट पहुँचाये। इस प्रकार जितने कष्ट इस दुष्ट ने पाण्डवों को पहुँचाये हैं उन सबका बदला आज मैं इससे ले लूँगा। एक ही दिन में इस दुष्ट को मारकर मैं अपने कर्तव्य से उरिन हो जाऊँगा। दुर्योधन के जीवन की अवधि आज पूरी हो गई। अब यह जाकर माता-पिता और पत्नियों का मुख नहीं देख सकेगा। महाराज! शान्तनु के कुल का कलङ्क यह आज प्राण, लक्ष्मी और राज्य से हीन हो जायगा। राजा धृतराष्ट्र आज पुत्र की मृत्यु का समाचार सुनकर, शकुनि की सलाह से किये गये, पाण्डवों के प्रति अपने दुर्व्यवहार को याद करके शोक और पश्चात्ताप करेंगे।

हे राजशार्दूल! ऐसे कटु वाक्य कहते हुए भीमसेन ने, वृत्रासुर के आगे इन्द्र की तरह, खड़े होकर गदा उठाकर दुर्योधन को युद्ध के लिए ललकारा। शिखर-युक्त कैलास पर्वत की तरह

गदा उठाये सामने खड़े दुर्योधन को देखकर भीमसेन ने कहा—अरे दुर्योधन! पाण्डवों के साथ किये गये अपने और धृतराष्ट्र के दुर्व्यवहार तथा दुष्कर्मों को अच्छी तरह स्मरण कर ले। वारणावत में हमें जला डालने के लिए जो उद्योग किया था, सभा के बीच रजस्वला द्रौपदी को लाकर जो क्लेश दिया था, शकुनि की सहायता से धर्मराज को छलकर द्यूत के बहाने जो पाण्डवों का सर्वस्व हर लिया था, वनवास और विराट-नगरी में अज्ञातवास के समय हमें जो दुःख तेरे कारण सहने पड़े हैं, उन सबका बदला आज तुझे मारकर मैं लूँगा। बड़ी बात जो तू आज मेरी दृष्टि के सामने पड़ गया। अरे दुर्मति! तेरे ही कारण ये शिखण्डी के गिराये हुए महारथी पितामह भीष्म शर-शय्या पर पड़े हैं। तेरे ही कारण द्रोणाचार्य, कर्ण, प्रतापी शल्य, वैर की आग को सुलगानेवाला अनर्थ की जड़ शकुनि, द्रौपदी को क्लेश पहुँचानेवाला पापी प्रातिकामी, तेरे सब पराक्रमी भाई और अन्य वीर राजा तथा राजकुमार आदि मारे गये हैं। अब आज मैं इस गदा से तुझे भी मार गिराऊँगा। ३०

हे राजेन्द्र, पराक्रमी भीमसेन ने ज़ोर से जब ये कटु वाक्य कहे तब निडर दुर्योधन ने कहा—अरे वृकोदर! बकबक करने से क्या लाभ है? युद्ध कर। अरे कुलाधम! मैं आज तेरा युद्ध का शौक़ सदा के लिए मिटा दूँगा। तेरा बल मेरे आगे बहुत ही क्षुद्र है। धीर साहसी दुर्योधन, साधारण मनुष्यों की तरह, तुझ सरीखे क्षुद्रों की इस गीदड़-भबकी से, डरनेवाला नहीं है। मैं तो बहुत समय से तेरे साथ गदा-युद्ध करना चाहता हूँ। सौभाग्य की बात है कि आज देवताओं ने मेरा वह मनोरथ पूर्ण कर दिया। अब बकबक करने और अपने मुँह अपनी प्रशंसा करने का समय नहीं है। अरे! ज़बान बन्द कर, और जो कहा है उसे झटपट कर दिखा। ४०

दुर्योधन के इन वचनों को सुनकर वहाँ उपस्थित सोमक-सृञ्जयगण तथा अन्य राजा लोग कुरुराज की प्रशंसा करने लगे। उनके मुँह से अपनी प्रशंसा सुनकर हर्ष से दुर्योधन को रोमाञ्च हो आया। धैर्य और उत्साह के साथ युद्ध के लिए उनका और भी दृढ़ निश्चय हो गया। राजाओं ने, फिर तालियाँ बजाकर, मस्त हाथी के समान खड़े हुए मानी दुर्योधन को हर्षित किया। तब भीमसेन गदा तानकर वेग से दुर्योधन की ओर चले। हे नरनाथ, उस समय विजयाभिलाषी पाण्डवों के हाथी और घोड़े शब्द करने लगे, अस्त्र-शस्त्र और भी अधिक प्रदीप्त हो उठे। ४६

सत्तावनवाँ अध्याय

गदा-युद्ध का वर्णन

सञ्जय ने कहा—महाराज, भीमसेन को वेग से आते देखकर दुर्योधन भी गरजकर सिंह की तरह उनकी तरफ़ चले। बड़े सींगोंवाले साँड़ों की तरह दोनों आमने-सामने निकटवर्ती

होकर गदा-प्रहार करने लगे। गदाओं के प्रहार से ऐसा शब्द होता था मानों वज्रपात हुआ हो। परस्पर वध के लिए उद्यत दोनों वीर, इन्द्र और प्रह्लाद के समान, घोर संग्राम करने लगे। दोनों के शरीर रक्त से भीग चले। उस समय वे गदापाणि दोनों योद्धा दर्शकों को फूले हुए ढाक के वृक्ष से प्रतीत होने लगे। परस्पर गदा पर गदा के पड़ने से चिनगारियाँ निकलती थीं। उन चिनगारियों को देखने से जान पड़ता था मानों आकाश में अनेक जुगनू उड़ रहे हैं। लगातार प्रहार करने और घूमने-फिरने से दोनों वीर थक गये। दोनों ने थोड़ी देर विश्राम किया और फिर गदाएँ लेकर विचित्र युद्ध शुरू कर दिया। देवता, गन्धर्व, दानव, मानव आदि सब दर्शक उन दोनों वीरों को, एक हथिनी के लिए लड़ रहे दो मस्त बली हाथियों की तरह, अद्भुत गदा-युद्ध करते देखकर अत्यन्त सन्तुष्ट और विस्मित हुए। गदापाणि दुर्योधन और भीमसेन दोनों
१० को वीर्य-बल में समान देखकर सब दर्शक यह निश्चय नहीं कर पाये कि कौन जीतेगा।

दोनों बली और गदा-युद्ध में निपुण भाई आमने-सामने होकर, पैंतरे बदलकर, प्रहार करने का मौक़ा देखने लगे। भीमसेन की यमदण्ड और वज्र के समान भयावनी प्राणहारिणी गदा को उद्यत देखकर दर्शक विस्मित होने लगे। उस समय भीमसेन ने बड़े वेग से गदा को घुमाया। उससे उत्पन्न भयानक शब्द पल भर तक रणभूमि में गूँजता रहा। शत्रु को इस तरह अनायास बड़े वेग से वह भारी गदा घुमाते देखकर दुर्योधन भी विस्मित हो उठे। विविध मार्ग और मण्डल दिखाकर घूमने-फिरने के समय भीमसेन बहुत ही शोभायमान हुए।

अब दोनों वीर आत्मरक्षा पर ध्यान रखकर शत्रुवध की चेष्टा करते हुए, भोजन के लिए लड़ रही बिल्लियों की तरह, बारम्बार एक दूसरे को गदा से घायल करने लगे। भीमसेन और दुर्योधन दोनों ही आगे बढ़कर, पीछे हटकर, विविध विचित्र मार्ग, मण्डल और गोमूत्रिक आदि स्थान दिखाने लगे। दोनों का रण-कौशल अर्थात् प्रहार करना, प्रहार से बचना, घूमना-फिरना, झपटना, एक स्थान पर ठहरकर मौक़ा देखना, शत्रु को हटाना इत्यादि बातें दर्शनीय थीं। दोनों ही परावर्तन, संवर्तन, अवप्लुत, उपप्लुत, उपन्यस्त, अपन्यस्त, आक्षेप, विग्रह आदि दाव-पेच और पैंतरे दिखाने लगे। हे कुरुश्रेष्ठ! इस तरह दोनों वीरवर कभी पैंतरे बदलते थे, कभी प्रहार करते थे, कभी शत्रु के प्रहार से बचने की चेष्टा करते थे और कभी शत्रु को
२१ धोखा देते हुए रण-कौशल दिखाते थे। वीर दुर्योधन और भीमसेन दोनों ने युद्ध-क्रीड़ा करते-करते परस्पर सहसा गदा से प्रहार किया। जैसे दो हाथी दाँतों से प्रहार करके लहूलुहान हो जायँ वैसे ही दोनों भाई, गदा-प्रहार से शरीर छिन्न-भिन्न होने के कारण, रक्त से नहा गये। वृत्रासुर और इन्द्र के समान घोर युद्ध कर रहे दोनों वीर बहुत ही शोभायमान हो रहे थे।

फिर गदा हाथ में लिये दुर्योधन दक्षिणमण्डल में और भीमसेन वाममण्डल में स्थित होकर भ्रमण करने लगे। इसी बीच में मौक़ा पाकर दुर्योधन ने, वाममण्डल में विचरण कर

रहे, भीमसेन के पार्श्वस्थान में बड़े वेग से गदा मारी। परन्तु भीमसेन उस चोट की परवा न करके दुर्योधन पर प्रहार करने के लिए गदा घुमाने लगे। उनकी तनी हुई यमदण्ड और वज्र के समान भयङ्कर गदा को देखकर लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। दुर्योधन ने भीमसेन को, प्रहार करने के इरादे से, गदा घुमाते देखकर अपनी गदा उनकी गदा पर मारी। गदा पर गदा के पड़ने से बड़ा घोर शब्द हुआ और दोनों गदाओं से आग निकलने लगी। उस समय दुर्योधन फिर विविध मार्ग, मण्डल और रण-कौशल दिखाते हुए विचरने लगे। वह कौशल देखकर लोगों को मालूम हुआ कि दुर्योधन भीमसेन से अधिक रण-निपुण हैं। उधर भीमसेन भी पूर्ण वेग से गदा घुमाने लगे। उनकी गदा से घोर शब्द के साथ धुएँ समेत आग की ज्वालाएँ निकलने लगीं। भीमसेन को गदा घुमाते देखकर दुर्योधन भी पर्वत के समान भारी और दृढ़ अपनी गदा बड़े वेग से घुमाने लगे। दुर्योधन की गदा के वेग को देखकर सात्यकि सहित पाण्डवों और पाञ्चालों को बड़ा भय हुआ। वे दुर्योधन को अजेय समझने लगे। हे राजेन्द्र, फिर दोनों वीर युद्ध-कौशल दिखाकर परस्पर गदा-प्रहार करने लगे। दन्त-प्रहार से रक्त में नहाये हुए दो मस्त हाथियों की तरह दुर्योधन और भीमसेन घोर गदा-युद्ध करने लगे। ३०

राजा दुर्योधन ने जब देखा कि भीमसेन गदा घुमाना बन्द करके खड़े हैं तब वे विचित्र पैतरों के साथ वेग से भीमसेन के पास गये। उन्हें आते देखकर क्रोध-विह्वल भीमसेन ने क्रुद्ध शत्रु की महावेगयुक्त सुवर्ण-शोभित गदा के ऊपर ज़ोर से अपनी गदा मारी। गदा पर गदा लगने से वज्र पर वज्रपात का सा भयङ्कर शब्द प्रकट हुआ और गदाओं से आग की चिनगारियाँ निकलने लगीं। भीमसेन की गदा वेग से दुर्योधन की गदा से टकराकर पृथ्वी पर गिरी। उससे पृथ्वीतल काँप उठा। अपनी गदा पर गदा के प्रहार को दुर्योधन न सह सके। जिस तरह मस्त हाथी अपने प्रतिपक्षी हाथी को देखकर क्रोधान्ध हो उठता है वैसे ही भीम पर प्रहार करने का निश्चय करके दुर्योधन ने वाममण्डल में भ्रमण करते-करते भीमसेन के सिर पर बड़े वेग से गदा मारी। यह बड़े आश्चर्य की बात हुई कि महाबली भीमसेन उस प्रहार से तनिक भी विचलित नहीं हुए। भीमसेन को एक पग भी हटते न देखकर सब दर्शक और राजा लोग उनकी प्रशंसा करने लगे। तब पराक्रमी भीमसेन ने भी क्रोध करके अपनी भारी और सुवर्ण-भूषित गदा दुर्योधन के ऊपर चलाई। किन्तु राजा दुर्योधन फुर्ती के साथ कौशल से शत्रु के प्रहार को बचा गये। यह देखकर सबको बड़ा विस्मय हुआ। भीमसेन ने पूरे बल से गदा चलाई थी। वार ख़ाली जाने पर गदा के गिरने से वज्रपात का सा धमाका हुआ और पृथ्वी हिल गई। उस समय रण-कुशल दुर्योधन ने फुर्ती के साथ उन्मत्त के से अव्यवस्थित पैतरे बदलकर, बार-बार प्रहार के लिए उछलकर, धोखा देकर भीमसेन को चौंधिया दिया। उन्होंने उसी अवसर में भीमसेन की छाती में क्रोधपूर्वक वेग से गदा मारी। महाबली भीमसेन ४०

५१ उस प्रहार से अचेतप्राय हो गये। उनको किं-कर्तव्य-विमूढ़ देखकर पाण्डव और पाञ्चालगण खिन्न होकर समझने लगे कि अब विजय की आशा पर पानी फिर गया।

दमभर में अपने को सँभालकर भीमसेन, हाथी पर हाथी की तरह, दुर्योधन की ओर झपटे। शत्रु के प्रहार ने उन्हें क्रोध से विह्वल कर दिया था। सिंह जैसे जङ्गली हाथी पर झपटता है वैसे ही गदा लिये हुए भीमसेन बड़े वेग से दुर्योधन पर झपटे। निकट जाकर उन्होंने दुर्योधन के पार्श्व देश में गदा मारी। उस महाभयानक प्रहार से विह्वल होकर दुर्योधन ने धरती में घुटने टेक दिये। यह देखकर पाञ्चालगण हर्ष से सिंहनाद करने लगे। उनका हर्ष और सिंहनाद मानी दुर्योधन कब सहनेवाले थे। वे कोप से अधीर होकर फ़ौरन् उठ खड़े हुए और महानाग की तरह साँसें लेते हुए क्रोधपूर्ण दृष्टि से भीम को इस तरह देखने लगे मानों उन्हें जलाकर भस्म कर देंगे। गदा हाथ में लिये दुर्योधन ऐसे वेग से भीमसेन की ओर दौड़े
६० मानों अब उनके सिर को तोड़ ही डालेंगे। निकट पहुँचकर दुर्योधन ने भीम के ललाट में गदा मारी, किन्तु भीमसेन पहाड़ की तरह अटल खड़े रहे। गदा-प्रहार से रक्त निकल आने के कारण जिसके मद बह रहा हो उस हाथी के समान भीमसेन की शोभा हुई।

भीमसेन ने भी वीरनाशिनी लोहमयी वज्रपात का सा शब्द करनेवाली गदा तानकर अपने शत्रु के ऊपर ज़ोर से प्रहार किया। महाराज, वन में आँधी से उखड़ा हुआ पुष्पित शाल-वृक्ष जैसे गिरता है वैसे ही भीम के प्रहार से विह्वल दुर्योधन चक्कर खाकर गिर पड़े। उनके शरीर के बन्धन हिल गये। उनको पृथ्वी पर पड़ा देखकर, पाण्डव-पाञ्चाल प्रसन्नतापूर्वक सिंहनाद करने लगे। इसी समय सचेत होकर, सरोवर से निकलनेवाले गजराज की तरह, वीर दुर्योधन खड़े हो गये। उन्होंने शत्रु के उस कर्म का बदला लेने के लिए क्षण भर पैंतरे काटकर, शिक्षा की निपुणता दिखाकर, सबको विस्मित कर दिया और फिर सामने स्थित भीमसेन के मर्मस्थल में बड़े वेग से गदा मारी। भीमसेन भी विह्वल होकर पृथ्वी पर गिर गये। दुर्योधन ने हर्ष से सिंह की तरह गरजकर वज्रतुल्य गदा के प्रहार से भीम का कवच भी छिन्न-भिन्न कर दिया। उस समय अन्तरिक्ष में स्थित देवगण दुर्योधन की प्रशंसा करने लगे। अप्सराएँ, गन्धर्व, सिद्ध और देवगण आदि दुर्योधन के ऊपर पुष्प-वर्षा करने लगे।

पाण्डवों और पाञ्चालों ने जब देखा कि भीमसेन गिर पड़े, उनका कवच भी टूट गया और उधर दुर्योधन का बल वैसा ही बना हुआ है तब वे बहुत ही डरे। थोड़ी देर में भीमसेन को होश आया। मुँह से निकला हुआ रक्त पोंछकर, किसी तरह धैर्य धारण करके, अपने को
७० सँभालकर, वे फिर युद्ध करने के लिए दुर्योधन के सामने खड़े हुए।

अट्ठावनवाँ अध्याय

भीमसेन का अधर्म से दुर्योधन की जाँघें तोड़ डालना

सञ्जय ने कहा कि महाराज, उस समय वीर अर्जुन ने दुर्योधन और भीमसेन के युद्ध को घोर रूप धारण करते देखकर श्रीकृष्ण से पूछा—हे जनार्दन, इन दोनों वीरों में आप किस को श्रेष्ठ समझते हैं ? आपकी समझ से किसमें कौन गुण अधिक है ?

श्रीकृष्ण ने कहा—हे अर्जुन, दुर्योधन और भीमसेन दोनों को गदा-युद्ध की शिक्षा एक सी मिली है। किन्तु भीमसेन में बल अधिक है और अभ्यास तथा निपुणता में दुर्योधन बढ़कर है। इसलिए न्यायपूर्वक युद्ध करके भीमसेन दुर्योधन को जीत न सकेंगे, अन्याय से युद्ध करके ही वे दुर्योधन को मार सकते हैं। हमने सुना है कि पहले देवताओं ने माया के बल से ही अपने शत्रु असुरों को परास्त किया है। इन्द्र ने माया करके ही विरोचन को हराया और वृत्रासुर का तेज नष्ट किया। इस कारण इस समय भीमसेन भी माया का सहारा लेकर दुर्योधन को मारें। जुए के समय भीमसेन ने दुर्योधन की जाँघें युद्ध में तोड़ने की प्रतिज्ञा भी की थी। इस समय भीमसेन वह प्रतिज्ञा पूरी करें और मायावी दुर्योधन को माया से ही गिरावें। इस समय उनका यही कर्तव्य है। अगर भीमसेन बल के भरोसे न्याय से प्रहार करेंगे तो अवश्य ही धर्मराज को विपत्ति में पड़ना पड़ेगा। देखो, धर्मराज की ग़लती से हम लोगों के लिए फिर पराजय का भय उपस्थित है। महायुद्ध में महापराक्रम से भीष्म आदि को मारकर १० हम लोग वैर का बदला ले चुके थे, यश और विजय प्राप्त कर चुके थे। किन्तु धर्मराज ने उस विजय को फिर धोखे में डाल दिया। हे अर्जुन, धर्मराज ने यह बड़ी नासमझी की कि एक को जीत लेने पर ही दुर्योधन को राज्य देने का वादा कर लिया। दुर्योधन गदा-युद्ध का अभ्यास किये हुए है; इसके सिवा वह सङ्कट में पड़कर बहुत ही एकाग्रता और यत्न से युद्ध कर रहा है। शुक्राचार्य ने अपनी नीति में कहा है कि जो शत्रु सहायहीन होकर भाग जाय और फिर लौट पड़े तथा जीवन बचाने के लिए एकाग्र हो उससे डरना चाहिए। जो शत्रु जीवन से निराश होकर साहस के साथ सामना करता है, उसका सामना तो इन्द्र भी नहीं कर सकते। यह दुर्योधन सैन्यहीन होने से भागकर सरोवर में जा छिपा था। हारकर राज्य से निराश हो वनवास के लिए उद्यत शत्रु को कौन समझदार पुरुष खोजकर फिर द्वन्द्वयुद्ध के लिए बुलावेगा ? मुझे भय है कि हमारे जीते हुए राज्य को कहीं दुर्योधन फिर न ले ले। इसने तेरह वर्ष तक, भीमसेन की लोहे की मूर्ति पर, गदा चलाने का अभ्यास किया है। इस समय भीमसेन को मारने के लिए यह घोर प्रयत्न करता हुआ कभी ऊपर उछलता है, कभी आड़ा होकर विचरता है। अगर महाबाहु भीमसेन अन्याय से [इसकी जाँघों पर प्रहार नहीं करेंगे,] इसे नहीं गिरावेंगे, तो यह अवश्य ही भीमसेन को हराकर राजा होगा। २०

श्रीकृष्ण के ये वचन सुनकर अर्जुन ने भीमसेन को दिखाकर बाईं जाँघ पर हाथ मारा अर्थात् इशारा किया कि जाँघ पर प्रहार करो। भीमसेन ने उस इशारे को समझ लिया। वे गदा लेकर दक्षिणमण्डल, वाममण्डल, गोमूत्रक, यमक और अन्य अनेक गतियाँ दिखाकर दुर्योधन को मोहित और व्यग्र सा करने लगे। गदा-युद्ध के पैतरों में निपुण दुर्योधन भी, भीमसेन को मारने की इच्छा से, फुर्ती के साथ विचित्र मण्डल दिखाने और घूमने-फिरने लगे। दोनों योद्धा क्रुद्ध काल की तरह, चन्दनागुरु-चर्चित गदाओं को घुमाते हुए, शत्रु को मारकर वैर का अन्त कर डालना चाहते थे। दोनों श्रेष्ठ वीर नाग-मांस के लिए दो गरुड़ों की तरह झपट रहे थे। विचित्र पैतरे बदलकर दोनों जब गदा-प्रहार करते थे तब गदाओं से आग की ज्वालाएँ निकलने लगती थीं। दोनों शूर बली समान रूप से प्रहार कर रहे थे। जान पड़ता था, दो सागर आँधी से उमड़कर गरज रहे हैं अथवा दो मस्त हाथी भिड़ रहे हैं। गदा-प्रहार से उत्पन्न शब्द वज्रपात के समान भयानक था। इस तरह दारुण युद्ध करते-करते
३० दोनों वीर थक गये और विश्राम करने लगे।

हे राजेन्द्र, दम भर विश्राम कर चुकने पर फिर दोनों वीर गदाएँ उठाकर युद्ध करने लगे। दोनों ने गदा-प्रहारों से दोनों के शरीरों को छिन्न-भिन्न और ख़ून से तर कर दिया। कीचड़ में खड़े हुए दो भैंसों के समान वृषभलोचन वे दोनों वीर वेग से झपट-झपटकर परस्पर प्रहार कर रहे थे। गदा-प्रहार से उनके सब अङ्ग जर्जर हो रहे थे, रक्त बह रहा था और वे हिमालय पर फूले हुए ढाक के वृक्ष-से जान पड़ते थे। इसी अवसर में भीमसेन ने जान-बूझकर, शत्रु को धोखा देने के लिए, प्रहार करने का मौक़ा दिया। दुर्योधन ने हँसकर गर्व के साथ आगे बढ़कर प्रहार करना चाहा। अब शत्रु को निकट पाकर भीमसेन ने वेग से गदा चलाई। दुर्योधन पैतरा काटकर हट गये और भीमसेन की गदा पृथ्वी पर जा गिरी। उस प्रहार को इस तरह बचाकर दुर्योधन ने फुर्ती से भीमसेन को गदा मारी। एक तो रक्त बहने से कमज़ोरी आ गई थी, दूसरे दुर्योधन ने भरपूर प्रहार किया, इससे भीमसेन अचेत-से हो गये।
४० परन्तु पीड़ित होने पर भी धैर्य धारण किये हुए भीमसेन शरीर को सँभाले खड़े रहे। इसलिए दुर्योधन यह नहीं समझ सके कि भीमसेन विह्वल और अत्यन्त पीड़ित हो गये हैं। उनको भ्रम हुआ कि भीमसेन प्रहार करने के लिए खड़े हैं और इसी कारण उन्होंने फिर भीमसेन पर प्रहार नहीं किया। भीमसेन दम भर में सावधान हो गये और सामने उपस्थित दुर्योधन के ऊपर प्रहार करने को झपटे। क्रोध करके प्रहार करने को आ रहे भीमसेन के प्रहार को व्यर्थ करने के लिए दुर्योधन ने बैठ जाना चाहा। उनके अभिप्राय को जानकर पराक्रमी भीमसेन, सिंह की तरह गरजते हुए, निकट पहुँचे और दुर्योधन ने ज्योंही बैठकर बचकर फिर उछलना और भीमसेन पर प्रहार करना चाहा त्योंही उन्होंने बड़े वेग से दुर्योधन की जाँघों में गदा मारी।

भीमसेन की वज्र-तुल्य गदा लगने से महाराज दुर्योधन की सुन्दर सुडौल जाँघें टूट गईं। इस प्रहार से जाँघें टूट जाने पर दुर्योधन धमाके के साथ गिर पड़े।

महाबली राजा दुर्योधन को जब भीमसेन ने अन्याय से जाँघें तोड़कर गिरा दिया तब ज़ोर से धूल बरसाती हुई प्रचण्ड आँधी चलने लगी, वृक्ष-पर्वत सहित पृथ्वी काँपने लगी, बड़े भारी शब्द के साथ प्रज्वलित भारी उल्का आकाश से गिरी और रक्त की वर्षा होने लगी। ५० उस समय अन्तरिक्ष में यक्ष, राक्षस, पिशाच आदि का कोलाहल सुनाई पड़ने लगा। उस घोर शब्द को सुनकर पृथ्वी पर भी चारों ओर बहुत से मृग और पक्षी दारुण शब्द करने लगे। आपके पुत्र के गिरने पर वहाँ पर स्थित—युद्ध से बचे हुए—मनुष्य, हाथी और घोड़े चिल्लाने लगे। भूमि के भीतर से भेरी, शङ्ख, मृदङ्ग आदि का भारी शब्द सुनाई पड़ने लगा। अनेक भुजाओं और अनेक चरणोंवाले भयावने कबन्ध, ध्वजाएँ और अस्त्र-शस्त्र हाथों में लिये वीरों को कँपाते हुए, दसों दिशाओं में नृत्य करते देख पड़े। सरोवरों और कूपों में रक्त उमड़ आया। नदियाँ बड़े वेग से उलटी बहने लगीं। स्त्रियाँ मर्द सी और मर्द स्त्री ऐसे हो गये। राजन्, दुर्योधन के गिरने पर ऐसे घोर उत्पातों को देखकर पाण्डव और पाञ्चालगण घबरा उठे। दर्शक देवता, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, अप्सरा और अन्यान्य पवनचारी विद्याधर आदि परस्पर राजा दुर्योधन और भीमसेन के अद्भुत युद्ध की चर्चा और प्रशंसा करते हुए अपने स्थानों को गये। ६३

उनसठवाँ अध्याय

भीमसेन का बायें पैर से दुर्योधन के सिर को ठुकराना। युधिष्ठिर का दुर्योधन को सान्त्वना देना

सञ्जय कहते हैं—राजन्! बड़े शाल-वृक्ष की तरह, सिंह के मारे हुए गजराज की तरह, दुर्योधन को भीमसेन के प्रहार से गिरते देखकर पाण्डव और पाञ्चालगण आनन्द के मारे अधीर हो उठे। उन सबको रोमाञ्च हो आया। उस समय प्रतापी भीमसेन कौरवेन्द्र दुर्योधन को गिरा चुकने पर उनके पास जाकर कहने लगे—"अरे मन्दमति दुरात्मा दुर्योधन! तूने जो पहले एकवस्त्रधारिणी रजस्वला द्रौपदी को सभा में बुलाकर उसका अपमान किया था, 'बैल-बैल' कहकर हमारा उपहास किया था और दुर्वचन कहे थे, उसी का फल आज भोग।" अब भीमसेन बायें पैर से राजराजेश्वर दुर्योधन के सिर को ठुकराने लगे। क्रोध से लाल नेत्र किये हुए भीमसेन ने फिर कहा—जो मूढ़ दुष्ट पहले हमको 'बैल-बैल' कहकर नाचते थे, उन्हीं को दिखाकर 'बैल-बैल' कहकर आज हम नाचते हैं। हम छल-कपट करना, धोखा देना, जुआ खेलना, आग में जलाना या विष देना नहीं जानते। हम अपने बाहुबल के भरोसे शत्रुओं का संहार करते हैं।

महाराज! राजा दुर्योधन को ऐसे कटु वचन सुनाकर, सुहृत के वैर को समाप्त कर भीमसेन ने धीरे से हँसकर युधिष्ठिर, श्रीकृष्ण, अर्जुन, नकुल, सहदेव, सात्यकि और पाञ्चालों को सम्बोधन करके फिर कहा—जो रजस्वला द्रौपदी को भरी सभा में लाये थे, जिन्होंने उसे वस्त्रहीन किया था, उन धृतराष्ट्र के पुत्रों की गति देखो। द्रौपदी के तपोबल से आज वे रणभूमि
१० में मरे पड़े हैं। धृतराष्ट्र के जिन क्रूर पुत्रों ने पहले हमें खोखले तिल के समान बल-वीर्य-हीन कहा था उनको सेना-अनुचर-सहायक सहित हमने मार डाला। अब चाहे हम स्वर्ग को जायँ चाहे नरक में पड़ें, कोई हानि नहीं। महाबली भीमसेन ने यों कहकर, पड़े हुए राजा दुर्योधन के कन्धे से लगी हुई गदा को उठाकर, फिर बायें पैर से उनका सिर हिलाना और "अरे छल-कपट करनेवाले" कहकर भर्त्सना करना शुरू किया। महाराज! शत्रुविजय के हर्ष से उन्मत्त हो रहे क्षुद्रहृदय भीमसेन को इस तरह कौरवेन्द्र प्रतापी दुर्योधन का सिर बायें पैर से ठुकराते देखकर धर्मात्मा पाञ्चालों ने भीमसेन के इस कार्य को नापसन्द किया।

आपके पुत्र को मारकर, आत्मप्रशंसापूर्वक नाचकर, नीच कर्म कर रहे भीमसेन को मना करते हुए धर्मराज ने कहा—हे भीम! तुम बदला ले चुके, न्याय अथवा अन्याय से तुमने अपनी प्रतिज्ञा भी पूरी कर ली। बस, अब जाने दो। ये राजा दुर्योधन हमारे भाई, राजराजेश्वर, ग्यारह अक्षौहिणी सेना के स्वामी और कुरुकुल के महाराज थे। इनके सिर को पैर से ठुकराकर अधर्म के भागी मत बनो। यह तुम्हारा काम न्यायविरुद्ध है। इनके पुत्र, भाई, इष्ट-मित्र, सैन्य-सामन्त और सब सहायक मारे जा चुके। ये स्वयं वीरगति को प्राप्त हुए। इस समय इनका उपहास नहीं, बल्कि इनके लिए शोक करना चाहिए। अपने ही भाई दुर्योधन का विध्वंस और पिण्डलोप करके अब उनके सिर को लतियाना ठीक नहीं। लोग पहले
२० तुमको धार्मिक कहते थे। फिर तुम धर्मज्ञ होकर राजा के सिर में लात क्यों मारते हो?

भीमसेन से यों कहकर, आँखों में आँसू भरे हुए, युधिष्ठिर दुर्योधन के पास गये और दीनभाव से कहने लगे—भाई, तुम बुरा न मानना। अब तुम्हें अपने लिए शोक करना भी उचित नहीं। यह सब अपने कर्मों का ही दारुण फल तुम भोग रहे हो। अवश्य ही विधाता ने यह लिख दिया था कि तुम हमको मारने की चेष्टा करो और हम तुमको मारें। हे कुलश्रेष्ठ, तुमने अपनी ही करनी से ऐसा कष्ट पाया है। मद, लोभ और मूर्खता के कारण दुष्कर्म करके तुम स्वयं इस विपत्ति में पड़े हो। तुम वयस्य, भाई, पिता, पितामह, पुत्र, पौत्र तथा अन्य आत्मीयों का नाश कराकर अन्त को आप भी मारे गये। तुम्हारे अपराध से हमने तुम्हारे भाइयों और सजातीयों को भी मारा। मेरी समझ में तो यही आता है कि जो भाग्य में लिखा है वह टल नहीं सकता। हे दुर्योधन, तुम अपने लिए शोक न करना। तुम्हारी मृत्यु तो प्रशंसनीय ही हुई। हे कौरव, इस समय हमारी अवस्था ही सब तरह से शोचनीय है। हम लोग

प्रिय बन्धुओं, भाइयों, पुत्रों और स्वजनों के वियोग से शोकाकुल होकर दीन भाव से रहेंगे। मैं शोक-पीड़ित विधवा बहुओं और भावजों को कैसे देखूँगा! तुम तो यहाँ से स्वर्ग में जाकर बड़े सुख से रहोगे, इस लोक में नरक की सी यातना और दारुण दुःख हमीं सहेंगे। अवश्य ही शोक से विह्वल होकर महाराज धृतराष्ट्र की बहुएँ और पौत्रवधुएँ हमारी निन्दा करेंगी।

महाराज! धर्मराज युधिष्ठिर दुःख से पीड़ित होकर लम्बी साँसें लेते हुए इस तरह देर तक विलाप करते रहे। ३१

साठवाँ अध्याय

भीमसेन के अन्याय से कुपित बलराम का उन्हें मारने के लिए चलना और श्रीकृष्ण का उन्हें पकड़कर शान्त करना

धृतराष्ट्र ने पूछा—हे सञ्जय, राजा दुर्योधन को अधर्म से मारा गया देखकर गदा-युद्ध में निपुण और उसके विशेष नियमों को जाननेवाले बलराम ने क्या कहा और क्या किया?

सञ्जय ने कहा—महाराज, पराक्रमी बलराम ने जब देखा कि भीमसेन ने पहले जाँघों में प्रहार करके अन्याय किया और फिर दुर्योधन के सिर में लातें मार रहे हैं, तब वे क्रोध से प्रज्वलित हो उठे। वे राजाओं के बीच में हाथ उठाकर बारम्बार चिल्लाकर कहने लगे—"भीम को धिक्कार है! भीम को धिक्कार है! गदा-युद्ध में भीम ने आज जैसा अन्याय किया है वैसा अन्याय और कभी नहीं हुआ। नियम यह है कि नाभि के नीचे गदा न मारनी चाहिए। मूढ़ भीम ने उक्त नियम को न मानकर मनमाने ढङ्ग से प्रहार किया, इसलिए इसे बारम्बार धिक्कार है।" उस समय क्रोध से बलराम की आँखें लाल हो रही थीं। उन्होंने पृथ्वी पर पड़े हुए दुर्योधन की ओर देखकर कहा—हे कृष्ण, राजा दुर्योधन बेईमानी से गिराया गया है। इसे न्याय-युद्ध से कोई नहीं गिरा सकता था। मैं सच कहता हूँ, यह गदा-युद्ध में मेरे समान अथवा मुझसे कुछ ही कम था। मातहत की भूल का ज़िम्मेदार अफ़सर होता है।

अब क्रोध से अपना शस्त्र—हल—उठाकर बली बलदेव भीमसेन को मारने के लिए झपटे। हल को उठाये हुए बलदेव अनेक धातुओं से चित्रित सफ़ेद पर्वत की तरह शोभायमान हुए। उनको कुपित होकर भीम को मारने के लिए उद्यत देखकर कृष्णचन्द्र दौड़ पड़े। उन्होंने नम्रतापूर्वक गोल सुडौल बाहुओं से भरज़ोर पकड़कर बलदेव को रोक लिया। श्याम और गोरे दोनों यदुवंशी वीर एकत्र होकर, आकाश में तीसरे पहर दिखाई पड़ रहे चन्द्र और सूर्य की तरह, अथवा कैलास और नील पर्वत के समान, शोभायमान हुए। कुपित हलधर को शान्त करते हुए कृष्णचन्द्र कहने लगे—भाईजी! देखिए, नीति में छः प्रकार की अपनी उन्नति बताई गई है—अपनी वृद्धि, १०

शत्रु का क्षय, अपने मित्र की वृद्धि, शत्रु के मित्र का क्षय, अपने मित्र के मित्र की वृद्धि और शत्रु के मित्र के मित्र का क्षय। बुद्धिमानों का नियम है कि वे जब अपनी या अपने मित्र की अवनति अथवा हानि का कोई कारण देखते हैं, तो उसे अपने लिए अहितकर और दुःख का कारण जानकर शीघ्र ही उसके प्रतीकार का यत्न करते हैं। पौरुषपूर्ण पाण्डव हमारी बुआ के पुत्र होने के कारण हमारे स्वाभाविक मित्र और स्वजन हैं। शत्रुओं ने वारम्बार उन्हें कष्ट पहुँचाया, उनके साथ अन्याय और कपट-व्यवहार किया। आप जानते हैं कि प्रतिज्ञा-पालन क्षत्रिय का धर्म है। युद्ध में दुर्योधन की जाँघें गदा से तोड़ने की प्रतिज्ञा भीमसेन कुरुसभा में पहले ही कर चुके थे। फिर मैत्रेय ऋषि ने भी दुर्योधन को शाप दे रक्खा था कि भीमसेन गदा से तुम्हारी जाँघें तोड़ेंगे। इन कारणों से मैं भीम के इस कार्य को दोष-युक्त या अनुचित नहीं मानता। आप भी क्रोध को शान्त करें। भाई साहब, पाण्डवों के साथ हमारा विशेष सम्बन्ध है, अर्थात् जो हमारे पितामह हैं वही उनके नाना हैं। पाण्डव हमारे सम्बन्धी, शुभ-चिन्तक, मित्र और अनुगत हैं। उनका अभ्युदय हमारा ही अभ्युदय है। इसलिए आप क्रोध को शान्त करें।

२० यह सुनकर धर्मज्ञ हलधर ने कहा—हे वासुदेव, सज्जन सदा धर्म का पालन करते हैं। वह धर्म, काम और अर्थ के अधिक लोभ या सेवन से नष्ट अर्थात् संकुचित हो जाता है। अति-लोभी पुरुष धर्म से हीन होकर अर्थ को भी खो देता है; उसी तरह काम-भोग में अत्यन्त आसक्त पुरुष धर्म-भ्रष्ट होकर यथोचित काम को भी गँवा बैठता है। असल में सुखी तो वही होता है, जो यथोचित रूप से धर्म, अर्थ, काम का सेवन करता है और इन तीनों में से किसी एक से अन्य दो को नहीं दबाता। हे गोविन्द, भीम ने इस समय धर्म को पीड़ित करके सब गड़बड़-झाला कर डाला है। भीमसेन ने अवश्य अधर्म किया है। तुमने इस समय जो कुछ कहा है वह धर्मसङ्गत नहीं, मनमानी बात है। उससे मुझको सन्तोष नहीं हो सकता।

श्रीकृष्ण ने फिर कहा—भाईजी, लोग आपको अत्यन्त शान्तप्रकृति और धर्मवत्सल कहते हैं। इसलिए आप क्रोध को त्यागकर शान्त हों। देखिए, अब कलियुग आ

गया है, इस कारण आप इस स्वल्प अन्याय को क्षमा कर दें। भीमसेन अपनी प्रतिज्ञा और चिरसञ्चित वैर से उरिन होकर सुखी हों।

सञ्जय कहते हैं—श्रीकृष्ण के मुँह से इस तरह कूटधर्म की बातें सुनकर बलराम को सन्तोष नहीं हुआ। उन्होंने भीम के मारने का विचार छोड़कर सब राजाओं के बीच में अप्रसन्नता से फिर कहा—धर्मात्मा राजा दुर्योधन को अधर्म से मारने के कारण भीमसेन कूटयोद्धा कहलावेंगे और इस अधर्म के कारण लोग भीम की निन्दा करेंगे। राजराजेश्वर धर्मात्मा दुर्योधन ने न्याय-युद्ध किया है, वे न्याय-युद्ध करके मारे गये हैं, इसलिए स्वर्ग में अक्षय सुख पावेंगे। लोग धर्मयुद्ध करनेवाला कहकर इनकी प्रशंसा करेंगे। कुरुराज ने रणयज्ञ ठानकर, युद्ध-दीक्षा लेकर, शत्रुरूप अग्नि में प्राणों की पूर्णाहुति देकर उसका फल अक्षय यश पाया।

श्वेत-शैल-शिखराकार बलराम इतना कहकर, रथपर बैठकर, अप्रसन्नता से द्वारका को चल दिये। उन्हें अप्रसन्नतापूर्वक जाते देखकर श्रीकृष्ण, सात्यकि, पाण्डव और पाञ्चालगण उदास हो गये। उस समय युधिष्ठिर को अत्यन्त दीन होकर सिर झुकाकर शोक और चिन्ता से व्याकुल होते देख महामति कृष्णचन्द्र कहने लगे—हे धर्मराज! देखिए, भीमसेन ने क्रोधोन्मत्त होकर हतबन्धु अचेत पड़े हुए दुर्योधन के सिर में बार-बार लातें मारीं! आपने धर्मज्ञ होकर इस अधर्म को कैसे देखा? ३०

युधिष्ठिर ने कहा—हे कृष्णचन्द्र! भीम का इस तरह क्रुद्ध होकर राजा दुर्योधन के सिर को लात से रौंदना मुझे कदापि प्रिय नहीं है, मैं इस कुल-क्षय से प्रसन्न भी नहीं हूँ। परन्तु मैंने भीम के इस काम की उपेक्षा इसलिए की कि धृतराष्ट्र के पुत्रों ने जो बारम्बार छल-कपट करके हमें सताया, धोखा दिया और बहुत से कठोर वचन कहकर वन को भेजा था उसका भारी दुःख तथा क्रोध भीम के हृदय में भरा हुआ है और वह क्षोभ भीम को मिटा लेने देना चाहिए। भीमसेन अपने शत्रु मन्दमति लोभी दुर्योधन को मारकर, धर्म से या अधर्म से, अपनी अभिलाषा पूरी कर लें।

सञ्जय कहते हैं—महाराज! युधिष्ठिर के यों कहने पर कृष्णचन्द्र ने कष्ट से, भीमसेन की प्रसन्नता के लिए, उस कार्य का अनुमोदन किया। दुर्योधन के सिर में लात मारना अर्जुन को भी अच्छा नहीं लगा; किन्तु उन्होंने भीमसेन से भला-बुरा कुछ नहीं कहा। क्रोधी भीमसेन भी शत्रु को युद्ध में मारकर प्रसन्नतापूर्वक युधिष्ठिर के सामने आये और उन्हें प्रणाम करके हाथ जोड़कर कहने लगे—महाराज, इस समय सारी पृथ्वी आपकी ही है। अब आप अपने धर्म का पालन और निष्कण्टक साम्राज्य का शासन कीजिए। जिस मायावी ने हमसे छल करके राज्य ले लिया था और यह वैर ठाना था वह दुर्मति दुर्योधन अधमरा पड़ा है। कठोर वचन सुनानेवाले दुःशासन, शकुनि, कर्ण आदि सब आपके शत्रु मार डाले गये। वनों और पर्वतों सहित रत्न-युक्त यह पृथ्वी शत्रु के मारे जाने पर फिर आपको मिली है। इसे ग्रहण कीजिए। ४०

युधिष्ठिर ने कहा—हे भीम, बड़ी बात जो तुम दुर्योधन को मारकर वैर की आग को शान्त कर सके। श्रीकृष्ण की सलाह पर चलकर हम लोगों ने शत्रुओं को जीता और राज्य प्राप्त किया। बड़े भाग्य की बात है कि तुम अपनी माता के दूध से और अपने क्रोध से उरिन हो गये। बड़े भाग्य की बात है कि तुमने दुर्द्धर्ष शत्रु को मारकर विजय प्राप्त की। ४८

इकसठवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण और दुर्योधन की बातचीत

धृतराष्ट्र ने पूछा—हे सञ्जय, दुर्योधन को भीमसेन की गदा लगने से गिरा हुआ देखकर पाण्डवों और पाञ्चालों ने फिर क्या किया?

सञ्जय ने कहा—महाराज! वन में सिंह जैसे गजराज को गिरा देता है वैसे ही भीमसेन ने जब दुर्योधन को गिरा दिया तब उनको निहत देखकर श्रीकृष्ण सहित पाण्डव, पाञ्चाल और सृञ्जयगण हर्ष के मारे सिंह की तरह गरजने और दुपट्टे उछालने लगे। हर्ष-युक्त पाण्डवों के वेग को सँभालने में असमर्थ सी होकर पृथ्वी हिल उठी। कोई धनुष उछालने लगा, कोई प्रत्यञ्चा बजाने लगा, कोई शङ्ख और कोई दुन्दुभि बजाने लगा। मतलब यह कि आपके शत्रु तरह-तरह से आनन्द प्रकट करने लगे। पाञ्चालगण उछलते-कूदते और हँसते हुए भीमसेन को घेरकर बारम्बार उनकी प्रशंसा करने और कहने लगे—हे भीमसेन, आज तुमने गदा-युद्ध में निपुण और अत्यन्त परिश्रम के साथ गदा चलाने का अभ्यास किये हुए दुर्योधन को रण में मारकर बहुत ही दुष्कर कर्म किया है। इन्द्र ने जैसे वृत्रासुर को मारा था वैसे ही तुमने दुर्योधन को मारा है। तुम्हारे इस काम को लोग वैसा ही अद्भुत समझते हैं। विविध मार्ग और मण्डल दिखाकर विचरण कर रहे बली दुर्योधन को तुम्हारे सिवा और कौन मार सकता था? १० बड़ी बात जो आज तुमने और से न हो सकनेवाला काम करके पुराने वैर को नष्ट कर दिया। बड़ी बात जो तुमने मस्त हाथी की तरह संग्राम में दुष्ट दुर्योधन को गिराकर उसके सिर को पैर से ठुकराया। बड़ी बात जो रण में भैंसे की तरह दुःशासन को गिराकर सिंह की तरह उसका रक्त पिया। बड़ी बात जो तुमने अपने बाहुबल से उन दुष्टों के सिर पर पैर रक्खा, जिन्होंने धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर के साथ बुरा व्यवहार किया था। हे भीमसेन, बड़े भाग्य की बात है कि तुमने दुर्योधन सहित सब शत्रुओं को मारकर अक्षय यश प्राप्त किया। वृत्र के मारे जाने पर जैसे देवताओं और वन्दीजनों ने इन्द्र का अभिनन्दन किया था, वैसे ही शत्रु को मारने पर हम लोग तुम्हारा अभिनन्दन करते हैं। दुर्योधन को जब तुमने गिराया था तब जो हमको रोमाञ्च हुआ था वह अब तक बना हुआ है। महाराज,

पृ० २१७२—दुर्योधन······दोनों हाथ टेक कर आधे धड़से अधीर हो उठे······उन्होंने भौंहे टेढ़ी करके श्रीकृष्णकी ओर देखा।

पाण्डवपक्ष के पाञ्चाल आदि वीरगण और वार्तावह (देश-देशान्तर में समाचार पहुँचानेवाले) लोग इस तरह कहकर भीम की प्रशंसा करने लगे।

उस समय श्रीकृष्ण ने पाण्डवों और पाञ्चालों के मुँह से भीमसेन की असङ्गत प्रशंसा सुनकर कहा—हे राजाओ, मृतप्राय शत्रु को कठोर वचन कहना ठीक नहीं है। मरे को मारना व्यर्थ है। यह दुर्मति तो उसी समय मर चुका था जब इसने पापियों की सलाह से लोभ के वश होकर—विदुर, द्रोण, भीष्म, कृपाचार्य, सञ्जय आदि हित-चिन्तकों के बार-बार समझाने पर भी—पाण्डवों के सन्धि के प्रस्ताव की उपेक्षा की, किसी हित-चिन्तक का कहा नहीं माना और पाण्डवों को उनके राज्य का हिस्सा नहीं दिया। अब यह पाण्डवों से न तो शत्रुता कर सकता है न मित्रता ही। यह तो काष्ठ-तुल्य हो रहा है; इसलिए इस समय इसे कटु वचनों से पीड़ित करना व्यर्थ और अनुचित है। अब हम लोगों को रथों और वाहनों पर बैठकर यहाँ से शीघ्र चल देना चाहिए। बड़े भाग्य की बात है कि यह पापी अपने मन्त्री, भाई, बान्धव आदि के साथ आज मारा गया। २०

हे राजेन्द्र, श्रीकृष्ण के मुँह से ये आक्षेप-युक्त वचन सुनकर दुर्योधन क्रोध से अधीर हो उठे। वे प्राणान्तकारिणी वेदना को भी भूलकर, दोनों हाथ टेककर, आधे धड़ से उठ बैठे। उन्होंने भौंहें टेढ़ी करके श्रीकृष्ण की ओर देखा। आधे धड़ से उठे हुए दुर्योधन उस क्रुद्ध सर्प के समान जान पड़ने लगे, जिसकी पूँछ कट गई हो। राजा दुर्योधन ने इस तरह उग्र वचन कहे—हे कंस के दास के पुत्र! अर्जुन ने तेरी ही सलाह से भीम को मेरी जाँघ पर प्रहार करने का इशारा किया था। मुझे क्या मालूम नहीं कि तेरी ही सलाह से पापी भीम ने मुझे अधर्मपूर्वक गिराया है। इस कुकर्म के लिए तुझे लज्जित होना चाहिए। धर्म-युद्ध कर रहे हज़ारों राजाओं को तूने अधर्म-युद्ध से, कूट उपायों से, मरवाया है फिर भी तुझे लज्जा अथवा अपने ऊपर घृणा नहीं होती! नित्य तूने ही

कूट उपायों से शूर राजाओं का नाश कराया है, यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ। तूने ही शिखण्डी को आगे करके भीष्म पितामह को रथ से गिरवाया। तूने ही अश्वत्थामा गज को ३०

मरवाकर द्रोणाचार्य को अश्वत्थामा के मरने की भूठी ख़बर सुनवाई और इस तरह पुत्र-शोक से दु:खित न्यस्तशस्त्र आचार्य का वध कराया। तेरे सामने ही नीच धृष्टद्युम्न ने गुरु द्रोणाचार्य का सिर काटा और तूने मना नहीं किया। अर्जुन को मारने के लिए वीर कर्ण ने इन्द्र से जो अमोघ शक्ति माँग ली थी उसे तूने ही, घटोत्कच के ऊपर चलवाकर, व्यर्थ कराया। मैं तेरी सब करतूतें जानता हूँ। तुमसे बढ़कर पापी और कौन होगा? बली भूरिश्रवा का हाथ, सात्यकि से लड़ते समय, अर्जुन ने तेरी ही सलाह से काट डाला और जब वे शस्त्र रखकर युद्ध छोड़कर 'प्रायोपविष्ट' थे तब तेरे ही कहने से सात्यकि ने उनका वध किया। महारथी कर्ण जब रथ का पहिया धँस जाने पर उसे निकाल रहे थे तब, तेरे ही कहने से, अर्जुन ने विपत्ति-ग्रस्त कर्ण का वध किया। भीष्म से, द्रोण से, कर्ण से और मुझसे अगर पाण्डव धर्मयुद्ध करते तो कभी विजय न पाते। तुझ नीच ने बारम्बार कूट उपायों से मेरे पक्ष के धर्मयुद्ध करनेवाले राजाओं को और मुझको मरवाया है।

महाराज, ये कटु वचन सुनकर श्रीकृष्णचन्द्र ने कहा—हे गान्धारी के पुत्र! तू पाप-मार्ग पर चल रहा था इसी से भाइयों, पुत्रों, बान्धवों, मित्रों और सहायकों सहित मारा गया। तेरी ही करतूत से भीष्म, द्रोण और तेरे ही जैसे स्वभाव के कर्ण आदि मारे गये। अरे मूढ़! मेरे समझाने-बुझाने पर भी तूने शकुनि के निश्चय को मानकर पाण्डवों को उनके बाप-दादे के राज्य का हिस्सा नहीं दिया। अरे दुर्मति! तूने भीमसेन को विष दिया और लाक्षा-भवन में आर्या कुन्ती सहित सब पाण्डवों को जला डालने की चेष्टा की। अरे निर्लज्ज! जब तूने जुए में धर्म-राज को जीतकर भरी सभा में रजस्वला—एक ही धोती पहन रही—द्रौपदी को बुलवाकर उनका अपमान किया था, तभी तेरा मारा जाना उचित था। अक्ष-विद्या न जाननेवाले सीधे स्वभाव के युधिष्ठिर को, द्यूत-क्रीड़ा में निपुण, मायावी शकुनि के कपट के पाँसों से जीत लेने पर तूने उनका सर्वस्व हर लिया था, इसी से आज तू रण में मारा गया। तेरे ही उभाड़ने से पापी जयद्रथ ने तृणविन्दु के आश्रम में, वनवास के समय, शिकार के लिए पाण्डवों के जाने पर द्रौपदी को क्लेश पहुँचाया था। तेरी ही सलाह से रण में असहाय शस्त्रहीन बालक अभिमन्यु को अनेक महारथियों ने मिलकर मारा था। इन्हीं अपने अपराधों के कारण आज तू मारा गया है। तू हम पर जिन दोषों का आरोप करता है वे तेरे दुर्व्यवहार का फल देने के लिए ही किये गये हैं और वास्तव में उन उपायों का प्रयोग नीति-विरुद्ध नहीं है। तूने बृहस्पति और शुक्र की नीति नहीं सुनी कि शठ से शठता करना अनुचित नहीं, बल्कि ठीक ही है। तूने न तो बड़े-बूढ़ों की सेवा और सङ्गति की है और न हित-चिन्तकों की बातें ही सुनी हैं। प्रबल लोभ और राज्य की तृष्णा के वशीभूत होकर तूने जो कुकार्य और अत्याचार किये हैं, उन्हीं का फल इस समय भोग। दूसरों को दोष मत दे।

श्रीकृष्ण के वचन सुनकर दुर्योधन ने फिर कहा—हे वासुदेव! मैंने वेद-शास्त्र पढ़े, विधिपूर्वक दान दिये, सारी पृथ्वी का राज्य किया और शत्रुओं को नीचा दिखाया; मुझसे बढ़कर भाग्यशाली कौन है? स्वधर्म का पालन करनेवाले क्षत्रिय जिस मृत्यु की इच्छा करते हैं वही दुर्लभ, प्रिय, सम्मुख युद्ध में होनेवाली मृत्यु मुझे प्राप्त हुई; मुझसे बढ़कर भाग्यवान् कौन है? देवताओं के योग्य और बड़े-बड़े राजाओं के लिए भी दुर्लभ सुख मैं भोग चुका, उत्तम ऐश्वर्य पाकर सूर्य की तरह तप चुका; मुझसे बढ़कर भाग्यशाली कौन है? हे अच्युत! मैं इस समय भाइयों, बन्धु-बान्धवों और इष्ट-मित्रों के साथ वीरगति को पाकर स्वर्ग जा रहा हूँ। नीच सङ्कल्पवाले तुम लोग शोचनीय अवस्था को प्राप्त होकर पृथ्वी पर शोक-पूर्ण जीवन बिताओ। मैं किसी तरह शोचनीय नहीं हूँ; शोचनीय तो तुम्हीं लोग हो। [और, इस समय भीम ने जो मेरे सिर को ठुकराया, उसके लिए मुझे न तो खेद है न शोक ही; क्योंकि] थोड़ी देर में तो कौए, कङ्क, गिद्ध आदि तुच्छ जीव भी इस सिर पर पैर रक्खेंगे।

सञ्जय कहते हैं—महाराज, दुर्योधन के यों कह चुकने पर उनके मस्तक के ऊपर सुगन्धित स्वर्गीय पुष्पों की वर्षा होने लगी। गन्धर्व मनोहर मधुर बाजे बजाने लगे और अप्सराएँ दुर्योधन के कीर्तिगीत गाने लगीं। सिद्धगण 'वाह-वाह' कहकर दुर्योधन की प्रशंसा करने लगे। शीतल-मन्द-सुगन्ध हवा चलने लगी। सब दिशाएँ प्रकाशित हो उठीं और आकाश नीलमणि के समान स्वच्छ हो गया। उस समय श्रीकृष्ण सहित सब पाण्डव, दुर्योधन के सम्मान की सूचना देनेवाली, इन अद्भुत घटनाओं को देखकर बहुत ही लज्जित हुए। उन्हें निश्चय हो गया कि उन्होंने भीष्म, द्रोण, कर्ण, भूरिश्रवा और दुर्योधन आदि को अधर्म से मारा है। इससे वे लोग चिन्तित और दीन होकर पछताने लगे।

पाण्डवों को खिन्न और चिन्ताकुल देखकर कृष्णचन्द्र ने, मेघ-गर्जन के समान गम्भीर वाणी में, कहा—हे पाण्डवो, दुर्योधन सिद्धहस्त और अत्यन्त फुर्तीला था और भीष्म आदि महारथी अजेय थे। तुम लोग न्याय-युद्ध करके इन लोगों को कदापि न जीत पाते। इसी लिए युक्ति-पूर्ण उपाय से मैंने सबका वध कराया। अगर मैं कौशल से काम न लेता तो तुम लोग कदापि विजय, राज्य और लक्ष्मी न पा सकते। वे चारों महारथी पृथ्वी पर अतिरथी कहलाते थे। धर्म-युद्ध में इन्द्र आदि लोकपाल भी उन्हें नहीं मार सकते थे। वैसे ही दण्डपाणि काल भी गदा हाथ में लिये श्रमहीन रण-निपुण दुर्योधन को धर्मयुद्ध करके नहीं मार सकता था। तुम लोग यह समझकर शोक न करो कि भीमसेन ने ही अधर्मयुद्ध में दुर्योधन को मारा है। पूर्व समय में अनेक महापुरुषों ने छल, कौशल आदि उपायों से अपने शत्रुओं को मारा है। शत्रुओं की संख्या अधिक होने पर उन्हें कूटयुद्ध से मारना राजनीति का नियम है। पूर्व समय में असुरों को मारने के लिए देवताओं ने इसी मार्ग को ग्रहण किया है। बड़े लोग जिस राह पर चलें ६०

उस पर सभी को चलना चाहिए। [ये अर्जुन पल भर के आधे समय में त्रिकाल की सृष्टि का संहार कर सकते हैं। किन्तु इन्होंने विधि के विधान को उलटना नहीं चाहा और कूट उपायों से ही शत्रुओं का नाश किया। ख़ैर, इस बात को जाने दो।] अब हम शत्रुओं को मारकर कृतकार्य हो चुके हैं, सन्ध्या-काल भी निकट आ गया है, इसलिए हम लोगों को शिविर में चलकर विश्राम करना चाहिए। सब राजा लोग रथों, हाथियों, घोड़ों और सैनिकों सहित अपने डेरों को चलें। हे राजेन्द्र, श्रीकृष्ण के ये वचन सुनकर पाण्डव और पाञ्चालगण हर्ष से बारम्बार सिंहनाद करने लगे। श्रीकृष्ण ने भी दुर्योधन के नाश से आनन्दित होकर अपना पाञ्चजन्य शङ्ख बजाया। उस समय पाण्डवों के शङ्खनाद और भेरी, दुन्दुभि, तुरही आदि के शब्द से आकाश, पृथ्वीमण्डल और दिशाएँ परिपूर्ण हो गईं। ७१

बासठवाँ अध्याय

अर्जुन के रथ का भस्म होना। युधिष्ठिर के कहने से श्रीकृष्ण का गान्धारी को ढाढ़स बँधाकर शान्त करने के लिए हस्तिनापुर जाना

सञ्जय ने कहा—महाराज, इस तरह परिघ-सदृश पुष्ट बाहुओंवाले पाण्डवपक्ष के राजा लोग शङ्ख बजाते हुए रात को विश्राम करने के लिए शिविर की ओर चले। पाण्डव लोग तो श्रीकृष्ण, युयुत्सु और सात्यकि के साथ दुर्योधन के शिविर को गये और धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, द्रौपदी के पाँचों पुत्र और अन्य सब वीर योद्धा अपने-अपने शिविर में जाकर विश्राम करने लगे। पाण्डवों ने शिविर में जाकर देखा कि दुर्योधन के मारे जाने से उनका शिविर उसी तरह शून्य और शोभाहीन हो रहा है, जिस तरह दर्शकों और पात्रों के चले जाने पर रङ्गभूमि उजड़ जाती है। उत्सव समाप्त हो जाने पर नगर की और नाग के निकल जाने पर कुण्ड की जो दशा होती है, वही दशा उस समय उस शिविर की हो रही थी। वहाँ अधिकतर स्त्रियाँ और नपुंसक (खोजे) ही रह गये थे या वृद्ध अमात्य देख पड़ते थे। दुर्योधन के आगे चलनेवाले वे वृद्ध अमात्य गेरुवे और मैले कपड़े पहने, हाथ जोड़े, दीन भाव से पाण्डवों के पास आये। कुरुराज के शिविर में पहुँचकर पाण्डव अपने रथों से उतर पड़े। उस समय सदा अर्जुन का प्रिय और हित करनेवाले श्रीकृष्ण ने कहा—हे अर्जुन, गाण्डीव धनुष और अक्षय तूणीर लेकर पहले तुम रथ से उतर जाओ, पीछे मैं उतरूँगा। इसी में तुम्हारा कल्याण है। अर्जुन ने वही किया। उनके पीछे, घोड़ों की रासें छोड़कर, श्रीकृष्णचन्द्र रथ से उतर पड़े। लोकनाथ कृष्ण को उतरते देखकर ध्वजा में स्थित देवताओं के साथ दिव्य वानर भी अन्तर्हित हो गया। महाराज! भीष्म, द्रोण, कर्ण के दिव्य अस्त्रों के तेज से वह भारी रथ तत्काल साज, रास, युग-बन्धन और १०

६२वां अध्याय—पृ० २१७६—महाराज, भीष्म, द्रोण, कर्णके दिव्य अस्त्रोंसे वह रथ तत्काल, साज, रास, युग-वन्धन और घोड़ों सहित प्रज्वलित हो उठा और देखते ही देखते भस्म हो गया।

घोड़ों सहित प्रज्वलित हो उठा और देखते ही देखते भस्म हो गया। रथ की यह दशा देखकर पाण्डवों को बड़ा आश्चर्य हुआ। अर्जुन ने प्रणय-प्रणाम-पूर्वक हाथ जोड़कर कहा—हे वासुदेव, अग्नि ने मेरे रथ को क्यों भस्म कर दिया? यह कैसा आश्चर्य है! मेरे सुनने लायक़ समझिए तो कहिए।

वासुदेव ने कहा—हे अर्जुन, यह रथ तो द्रोण और कर्ण के दिव्य ब्रह्मास्त्र आदि से पहले ही जल चुका था; केवल मेरे बैठे रहने के कारण अब तक रण में भस्म होकर नहीं गिरा था। इस समय तुम्हें कृतकार्य देखकर मैंने इसे छोड़ दिया और यह भस्म होकर गिर पड़ा।

सञ्जय कहते हैं कि इसके उपरान्त मुसकाकर कृष्णचन्द्र ने युधिष्ठिर से कहा—हे धर्मराज, बड़े भाग्य की बात है कि आपने विजय पाई और आपके शत्रु परास्त हुए। बड़े भाग्य की बात है कि आप, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव, ये पाँचों पाण्डव इस वीरक्षयकारी संग्राम से सकुशल जीते-जागते बच गये हैं और आपके शत्रुओं में से कोई आज जीवित नहीं है। हे भरतकुलश्रेष्ठ, अब आप आगे का कार्य कीजिए। आपने उपप्लव्य नगर में मुझे मधुपर्क देकर कहा था कि 'हे वासुदेव, ये अर्जुन तुम्हारे भाई और सखा हैं, तुम सब आपत्तियों से इनकी रक्षा करना। मैं इन्हें तुम्हें सौंपता हूँ।' मैंने भी उसे अङ्गीकार किया था। सो मैंने उसी के अनुसार अर्जुन की रक्षा की। इस समय ये सत्यपराक्रमी विजयी अर्जुन, लोमहर्षण महायुद्ध से जीवित बचे हुए, आपके सामने सकुशल उपस्थित हैं। २०

राजन्, महामति श्रीकृष्ण के यों कहने पर युधिष्ठिर को आनन्द के मारे रोमाञ्च हो आया। उन्होंने कहा—हे कृष्णचन्द्र, द्रोण और कर्ण के ब्रह्मास्त्र को तुम्हारे सिवा साक्षात् वज्रपाणि इन्द्र भी तो नहीं सहन कर सकते थे। यह तुम्हारा ही प्रभाव है कि संग्राम में अर्जुन ने संशप्तक-गण की सेना को और अन्य अनेक महारथियों को मारा और कभी युद्ध से विमुख नहीं हुए। मैंने अनेक बार तुम्हारे अद्भुत कर्मों का बखान और तुम्हारे तेज की महिमा का वर्णन सुना है। उपप्लव्य नगर में महर्षि कृष्ण द्वैपायन व्यास ने मुझसे कहा था कि जहाँ धर्म है वहीं कृष्ण हैं, और जहाँ कृष्ण हैं वहीं विजय है। ३१

अब पाण्डवपक्ष के वीरों ने आपके पुत्र के शिविर में जाकर अपार कोष, रत्न, सोना, चाँदी, मणि-मोती, बहुमूल्य आभूषण, कम्बल, ऊनी और रेशमी वस्त्र, दास-दासी और अनेक प्रकार की राजसामग्री पाई। हे भरतश्रेष्ठ, अनन्त धन पाकर विजयी पाण्डव हर्षध्वनि करने लगे। इसके बाद वाहनों को रथ से खोलकर और प्रसन्नचित्त से बैठकर पाण्डव लोग, सात्यकि और श्रीकृष्ण विश्राम करने लगे। थोड़ी देर के बाद महायशस्वी वासुदेव ने युधिष्ठिर से कहा—हम लोगों को आज कल्याण-कामना से शिविर के बाहर रहकर रात बितानी चाहिए। यह सुनकर श्रीकृष्ण सहित सात्यकि और पाण्डव कल्याण-कामना से शिविर के बाहर निकले। वे लोग

सरस्वती की शाखा पवित्र ओघवती नदी के किनारे पहुँचे और वहीं रहकर उन्होंने वह रात बिताई। वहाँ युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण से यह समयोचित बात कही कि हे माधव, तुम इस समय
४० हस्तिनापुर में जाकर देवी गान्धारी को समझाओ-बुझाओ। उनके सब पुत्र मारे गये हैं। [इस कारण वे क्रोध से अधीर हो रही होंगी।] युक्तियुक्त समयानुकूल वचन कहकर तुम्हीं उन्हें शान्त कर सकते हो। वहाँ पितामह व्यासदेव होंगे ही। इसलिए तुम शीघ्र वहाँ जाओ।

पाण्डवों के कहने से कृष्णचन्द्र तुरन्त, दारुक-सञ्चालित रथ पर बैठकर, हस्तिना-
४६ पुर में गान्धारी के पास पहुँच गये।

तिरसठवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण का धृतराष्ट्र और गान्धारी को समझाकर फिर पाण्डवों के पास आ जाना

जनमेजय ने कहा—हे तपोधन, धर्मराज युधिष्ठिर ने पहले ख़ुद न जाकर श्रीकृष्णचन्द्र को ही क्यों देवी गान्धारी के पास भेजा? युद्ध के पहले धर्मराज के कहने से सन्धि का प्रस्ताव लेकर वे कौरवों के पास गये और वहाँ से व्यर्थ-मनोरथ होकर लौट आये तब महायुद्ध का आरम्भ हुआ। जब सब योद्धा और दुर्योधन मार डाले गये, पाण्डवों का कोई शत्रु पृथ्वी पर नहीं रह गया और छावनी ख़ाली हो गई, इस तरह विजय और श्रेष्ठ कीर्ति मिल चुकी, तब पाण्डवों ने किस कारण श्रीकृष्ण को फिर हस्तिनापुर में भेजा? स्वयं श्रीकृष्ण के जाने का असाधारण ही कारण होगा। आप विस्तारपूर्वक उस विशेष कारण का वर्णन कीजिए।

वैशम्पायन ने कहा—राजन्, यह प्रश्न आपके योग्य ही है। मैं बतलाता हूँ कि श्रीकृष्ण को ही पहले युधिष्ठिर ने गान्धारी के पास क्यों भेजा। धर्मराज युधिष्ठिर ने जब देखा कि भीमसेन ने नियम भङ्ग करके दुर्योधन को मार गिराया, तब वे पतिव्रता गान्धारी का स्मरण करके बहुत ही डरे। वे सोचने लगे कि तपस्विनी गान्धारी क्रोध करके तीनों
१० लोकों को भस्म कर सकती हैं। सोचते-सोचते उन्होंने यह निश्चय किया कि सबसे पहले गान्धारी का क्रोध शान्त करना चाहिए। जब वे सुनेंगी कि धर्मयुद्ध कर रहे दुर्योधन को हमने अन्याय से मारा है तब अवश्य पुत्र-शोक और क्रोध से अधीर होकर हम सबको भस्म कर देंगी। राजन्, भय और शोक से व्याकुल धर्मराज ने यह सोचकर कहा—हे वासुदेव, दूसरा कोई मन से भी जिसे नहीं पा सकता था वह दुर्लभ राज्य तुम्हारी ही कृपा से हमें मिला और हम निष्कण्टक हुए। मेरे सामने ही इस लोमहर्षण संग्राम में तुमने अनेक प्रहार और कष्ट सहे हैं। पहले देवासुर-संग्राम में तुमने जैसे दानवों के मारने में

देवताओं की सहायता की थी वैसे ही इस समय हमें सहायता देकर और सारथी बनकर अर्जुन की रक्षा की। अगर तुम अर्जुन की सहायता और रक्षा न करते तो हम लोग किसी तरह इस सैन्य-सागर के पार न जा सकते। हे जनार्दन! तुमने हमारे ही लिए अनेक कठोर वचन सुने; गदा, परिघ, शक्ति, भिन्दिपाल, तोमर, परश्वध आदि वज्र-सदृश अनेक अस्त्र-शस्त्रों के प्रहार सहे। २१ आज दुर्योधन के मारे जाने से तुम्हारा प्रयत्न सफल हुआ और हम कृतकार्य हुए। किन्तु अब वह उपाय करना बहुत ज़रूरी है जिसमें सब किया-कराया मिट्टी न हो जाय। जय पाकर भी सन्देह, भय और चिन्ता से मेरा मन डावाँडोल हो रहा है कि गान्धारी क्रोध करके हम लोगों को कहीं भस्म न कर दें। इसलिए हे महाबाहो, तुम शीघ्र जाकर गान्धारी को शान्त करो। वे तपस्विनी पुत्र-पौत्र-वध सुनकर क्रोध करके अवश्य ही हमें भस्म कर डालेंगी। मेरी समझ में उनका क्रोध शान्त करना ही इस समय हमारा पहला कर्तव्य है। पुत्र-शोक से पीड़ित और क्रोध से प्रज्वलित गान्धारी के सामने तुम्हारे सिवा और कौन जा सकता है? इसलिए मैं चाहता हूँ कि उन्हें शान्त करने के लिए तुम्हीं उनके पास जाओ। तुम अविनाशी हो और जगत् की उत्पत्ति और संहार करते हो। तुम दुर्योधन के अपराध और होनी का उल्लेख करके युक्तियुक्त वचनों से शीघ्र ही गान्धारी का क्रोध शान्त कर सकोगे। वहाँ हम सबके पितामह व्यासदेव होंगे ही। हे श्रीकृष्ण, पाण्डवों के कल्याण के लिए गान्धारी के क्रोध को शान्त करना सर्वथा तुम्हारा कर्तव्य है।

धर्मराज के वचन सुनकर श्रीकृष्ण ने जाना स्वीकार किया और दारुक सारथी को बुलाकर रथ तैयार कर लाने को कहा। ३० दारुक शीघ्र रथ जोत लाया और श्रीकृष्ण को उसकी ख़बर दी। अब कृष्णचन्द्र उस रथ पर बैठकर तेज़ी से रवाना हुए। रथ की घरघराहट से पृथ्वीतल को प्रतिध्वनित करते हुए कृष्णचन्द्र हस्तिनापुर में पहुँचे और धृतराष्ट्र को अपने आने की सूचना पहले देकर उनके भवन में गये। वहाँ उन्होंने देखा कि व्यासदेव पहले से ही उपस्थित हैं। श्रीकृष्ण ने व्यासदेव और धृतराष्ट्र के पैर छूकर गान्धारी को प्रणाम किया। फिर शिष्टाचार के लिए धृतराष्ट्र का हाथ पकड़कर वे ज़ोर-ज़ोर से रोने लगे। इस तरह रोकर शोक प्रकट करने के उपरान्त, नेत्र और मुँह धोकर, श्रीकृष्ण ने धृतराष्ट्र से कहा—महाराज, भूत और भविष्य काल की गति आपसे छिपी नहीं है। आपकी प्रसन्नता का ख़याल रखनेवाले पाण्डवों ने बहुत यत्न किया कि कौरव-कुल का और सब क्षत्रियों का संहार न हो, परन्तु वे कृतकार्य न हो सके। ४१ धर्मवत्सल युधिष्ठिर ने अपने भाइयों को शान्त रक्खा और आप भी दुर्योधन के अन्यायों को क्षमा करते रहे। द्यूत में छल करके जीते जाने पर भी निर्दोष पाण्डवों ने वन में रहना क़बूल किया। वेष बदलकर उन्होंने अज्ञातवास में अनेक कष्ट और अपमान सहे। मतलब यह कि शक्ति रहने पर भी अशक्त की तरह वे सदा दुर्योधन के दिये हुए क्लेश सहते रहे। युद्ध उपस्थित होने

के पहले मैंने आकर सभा में सब लोगों के सामने आपसे पाण्डवों के लिए केवल पाँच गाँव माँगे थे। किन्तु काल और लोभ ने उस समय आपकी बुद्धि ठिकाने नहीं रक्खी, इससे आपने
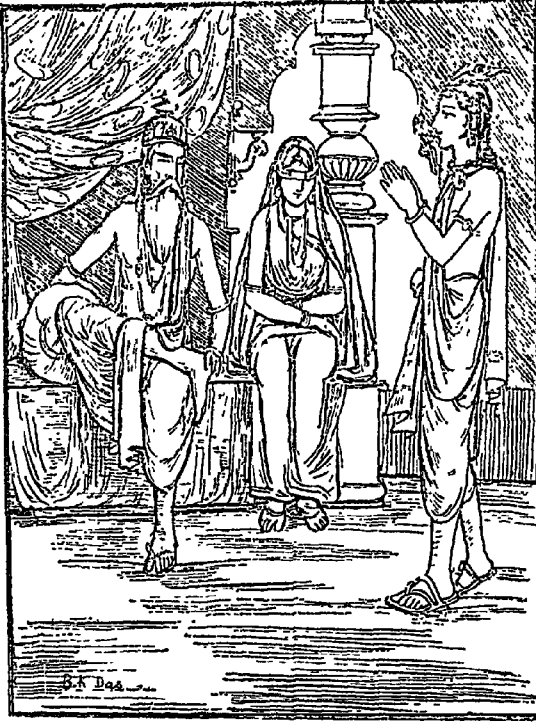
पाण्डवों को पाँच गाँव भी देना स्वीकार नहीं किया। असल में आपके ही अपराध से सब क्षत्रियों का नाश हुआ है। भीष्म पितामह, सोमदत्त, वाह्लीक, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा और बुद्धिमान् विदुर ने बारम्बार पाण्डवों के साथ मेल कर लेने के लिए आपसे अनुरोध किया, परन्तु आपने उनकी बात नहीं सुनी। काल के प्रभाव से सबकी बुद्धि मारी जाती है और आप बुद्धिमान् होकर भी, उसी होनी के प्रभाव से मोहित होकर, सदा सन्धि के प्रस्ताव की उपेक्षा करते रहे। आप चाहते तो युद्ध और यह अनर्थ न होता, परन्तु होनी ने आपको वैसा न करने के लिए ही विवश किया। अतएव यह सब बली काल के दोष से हुआ है। सचमुच भाग्य और काल बड़ा प्रबल है; उसे कोई मिथ्या नहीं कर सकता। महाराज, आप इस अनर्थ और सर्वनाश के लिए पाण्डवों को दोष न दीजिएगा। वीर पाण्डव धर्म, ५० न्याय और स्नेह से रत्ती भर भी विचलित नहीं हुए। अपने ही दोष का यह फल जानकर पाण्डवों पर आप क्रोध न कीजिए। इस समय आपके और गान्धारी देवी के वंश की रक्षा, और पिण्डदान आदि पुत्र के सब कर्तव्य, करनेवाले पाण्डव ही हैं। इसलिए आपको और आर्या गान्धारी को पाण्डवों का अनिष्ट न सोचना चाहिए। आप शोक न करें और अपने को अपराधी तथा पाण्डवों को निर्दोष समझकर पाण्डवों का कल्याण चाहें। इस समय आपका और गान्धारी का भी यही धर्म और कर्तव्य है। हे महाबाहो, आप अच्छी तरह जानते हैं कि धर्मराज स्वभाव से ही आप दोनों पर स्नेह और भक्ति रखते हैं। अपकारी शत्रुओं का नाश करके भी वे सुखी नहीं हैं। आपकी और गान्धारी की दशा का ख़याल रहने से उनके हृदय को दिन-रात शोक की आग जलाती रहती है। वे लज्जा के मारे आपके सामने नहीं आ सकते और आप दोनों को पुत्र-शोक से पीड़ित, हतबुद्धि और व्याकुल जानकर अपने को धिक्कार रहे हैं।

श्रीकृष्ण ने धृतराष्ट्र से इतना कहकर पुत्र-शोक से व्याकुल गान्धारी से कहा—हे पतिव्रता-शिरोमणि, मेरी बातों को ध्यान लगाकर सुनो। मुझे मालूम है कि इस समय पृथ्वी पर तुम्हारे समान गुणवती, बुद्धिमती, तपस्विनी, पतिव्रता स्त्री दूसरी नहीं है। हे राजरानी, तुम जानती ही हो कि तुमने मेरे आगे सभा में दुर्योधन से धर्मार्थ-युक्त और दोनों पक्ष के लिए हितजनक वचन कहे थे और उसको समझाया था, किन्तु दुर्योधन आदि तुम्हारे पुत्रों ने तुम्हारे उपदेश को नहीं माना। हे कल्याणी, जब युद्ध के पहले विजयाभिलाषी दुर्योधन ने तुमसे आशीर्वाद माँगा था तब तुमने निष्पक्ष भाव से ये कठोर वचन कहे थे कि "हे मूढ़! मेरी बात सुन। जिधर धर्म है उधर ही जय है।" सो इस समय तुम्हारा वह धर्मसङ्गत कथन ही सत्य हुआ। हे देवी, आदि से अन्त तक विचार करके शोक मत करो। हे महाभागे, पाण्डवों पर कृपा-दृष्टि करके उनके विनाश की इच्छा कदापि न करना। मैं जानता हूँ कि तुम तपोबल से क्रोध की दृष्टि डालकर सम्पूर्ण पृथ्वी और चराचर को भस्म कर सकती हो। ६१

श्रीकृष्ण के सान्त्वना-पूर्ण वचन सुनकर गान्धारी ने कहा—हे केशव, तुम्हारा कहना ठीक है। दारुण पुत्र-शोक ने मेरी बुद्धि को सचमुच विचलित कर दिया था और मैं पाण्डवों का अकल्याण करने पर उद्यत थी; किन्तु तुम्हारे वचन सुनकर मेरी बुद्धि ठिकाने आ गई। हे जनार्दन, इन पुत्रहीन अनाथ शोकाकुल वृद्ध महाराज की गति अब वीर पाण्डव और तुम्हीं हो। हे जनमेजय! इतना कहकर, आँचल से मुख ढककर, पुत्र-शोक से पीड़ित गान्धारी ज़ोर-ज़ोर से रोने लगीं। तब महाबाहु श्रीकृष्ण ने फिर शोक से विह्वल गान्धारी और धृतराष्ट्र को युक्ति-युक्त वचनों से ढाढ़स बँधाया और समझाया। ७०

इस तरह धृतराष्ट्र और गान्धारी को समझा चुकने पर सहसा श्रीकृष्ण को अश्वत्थामा के बुरे इरादे का ख़याल हो आया। तब वे चटपट उठ खड़े हुए और व्यासदेव के चरणों में प्रणाम करके धृतराष्ट्र से बोले—हे कुरुश्रेष्ठ, अब मैं आप से जाने की आज्ञा माँगता हूँ। आप शोक न करें। अश्वत्थामा इसी रात्रि को सोते में पाण्डवों को मारने का सङ्कल्प कर चुके हैं। मुझे उनके सङ्कल्प का आभास हृदय में मिला, इसी से मैं सहसा उठ खड़ा हुआ। राजन्, पतिपरायणा देवी गान्धारी और राजा धृतराष्ट्र श्रीकृष्ण के वचन सुनकर कहने लगे—हे महाबाहु श्रीकृष्ण, शीघ्र जाकर पाण्डवों की रक्षा करो। हम लोग फिर तुम से मिलेंगे।

कृतकृत्य महात्मा श्रीकृष्ण "बहुत अच्छा" कहकर पाण्डवों से मिलने के लिए दारुक-सञ्चालित रथ पर बैठकर शीघ्रता से रात को ही हस्तिनापुर से चल दिये और यथासमय, पाण्डवों के पास पहुँचकर, उनसे सब हाल कहकर, सावधानतापूर्वक विश्राम करने लगे। इधर श्रीकृष्ण के जाने पर व्यासदेव ने भी धृतराष्ट्र को समझाया और आश्वासन दिया। ७८

चौंसठवाँ अध्याय

दुर्योधन का विलाप

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय! मेरा पुत्र दुर्योधन अत्यन्त मानी, क्रोधी, असहनशील और अपने को शूर मानता था। पाण्डवों से वैर करने के कारण उसकी जब यह दशा हुई, भीमसेन ने जाँघें तोड़कर जब उसके सिर को ठुकराया, तब उसने अत्यन्त कष्ट पाकर क्या कहा?

सञ्जय ने कहा—महाराज! दुःख-सागर में मग्न राजा दुर्योधन ने उस समय जो कुछ कहा, वह मैं कहता हूँ, सुनिए। जाँघें टूट जाने पर, धूल में लोट रहे राजा दुर्योधन ने अपने केशों को हाथों से समेटकर चारों ओर देखा। वे उस समय महासर्प की तरह साँसें ले रहे थे; उनकी आँखों में क्रोध के आँसू भर आये थे। मस्त हाथी की तरह पृथ्वी पर हाथ पटककर, दाँत कटकटाकर, केश कम्पनपूर्वक साँसें ले रहे दुर्योधन ने युधिष्ठिर की निन्दा करके मुझसे कहा—हाय! महारथी भीष्म पितामह, अस्त्रज्ञ द्रोणाचार्य, अद्वितीय योद्धा कर्ण, कृपाचार्य, शकुनि, अश्वत्थामा, शल्य, शूर कृतवर्मा तथा अन्य अनेक अजेय योद्धा मेरी ओर से लड़कर मेरी रक्षा करते थे, तो भी मेरी यह दशा हुई! सचमुच काल को कोई नहीं टाल सकता। मैं ग्यारह अक्षौहिणी सेना का स्वामी होकर भी आज इस दुर्दशा से पृथ्वी पर पड़ा हुआ हूँ! काल के आने पर मनुष्य को कोई बचा नहीं सकता। हे सञ्जय, मेरे पक्ष के जो लोग इस १० युद्ध से बचकर जीवित हैं उनसे तुम जाकर कह देना कि पापी भीमसेन ने मुझे नियम भङ्ग करके मारा है। पाण्डवों ने भीष्म, द्रोण, कर्ण, भूरिश्रवा आदि को मारने में अनेक निन्दनीय कर्म किये हैं। मुझे भी इस तरह मारकर उन्होंने अत्यन्त निन्दनीय कार्य किया है। मुझे विश्वास है कि ऐसे नीच कर्म करने के कारण सज्जनों में अवश्य पाण्डवों की निन्दा होगी। छल से जय पाकर कोई वीर प्रसन्न नहीं होगा। नियम का उल्लङ्घन करनेवाले को कोई समझदार सम्मान नहीं देगा। पापी भीमसेन अधर्म से जय पाकर हर्ष के मारे फूला नहीं समाता। किन्तु अन्य कोई न्यायनिष्ठ पुरुष ऐसी विजय पाकर कदापि हर्ष नहीं प्रकट कर सकता। जाँघें टूट जाने से जब मैं विवश हो गया तब कुपित भीमसेन ने जो मेरे सिर को ठुकराया, सो यह न तो विचित्र बात है और न प्रशंसनीय कर्म। मर्द तो वही है जो तप रहे, राजलक्ष्मी-युक्त और भाई-बन्धुओं सहित शत्रु के सिर को यों ठुकरावे! हे सञ्जय, मेरे पिता और माता दोनों ही दुःखित होंगे। वे अच्छी तरह जानते हैं कि मैं युद्धधर्म को जानता हूँ और धर्मयुद्ध ही मैंने किया होगा। तुम जाकर उनसे कहना कि दुर्योधन ने कहा है—मेरे लिए शोक मत करो। मैंने विविध यज्ञ, भृत्यों का भरण-पोषण, सारी पृथ्वी का अच्छी तरह शासन और जीवित शक्तिशाली शत्रुओं के सिर पर रहकर उनका मान-मर्दन करके अपने सब हौसले निकाल

लिये। मैंने यथाशक्ति मित्रों का प्रिय किया; अनुगत भाई-बन्धु, इष्ट-मित्र आदि को धन-रत्न दिये और सुख पहुँचाया, शत्रुओं को सताया, बान्धवों का सम्मान और माननीय पुरुषों की पूजा की। जी भरकर धर्म-अर्थ-काम का सेवन भी मैं कर चुका। मुझसे बढ़कर भाग्यशाली कौन होगा? बड़े-बड़े राजा मेरे अधीन रहे। मैंने औरों के लिए दुर्लभ सम्मान पाया और बढ़िया घोड़ों तथा वाहनों पर सवारी की। मुझसे बढ़कर भाग्यशाली कौन है? शत्रुओं को जीतकर उनके राज्य पर अधिकार किया, बड़े-बड़े राजाओं को दास की तरह पीछे चलाया, प्रिय स्वजनों को सुखी रक्खा और स्वयं दुर्लभ भोग भोगे। मुझसे बढ़कर भाग्यवान् कौन है? विधिपूर्वक वेद पढ़े, दान दिये, रोगहीन जीवन पाया और अन्त को क्षत्रियधर्म का पालन करते हुए लड़कर वीरों की श्रेष्ठ गति पाई। मुझसे बढ़कर भाग्यशाली कौन होगा? बड़ी बात है कि मैं शत्रुओं से हारकर भृत्य की तरह उनका आश्रय ग्रहण करने के लिए विवश नहीं हुआ और मेरे मरने पर ही मेरी भारी राजलक्ष्मी शत्रु के हाथ में गई। अपने धर्म का पालन करनेवाले क्षत्रिय जिस मृत्यु को चाहते हैं वही दुर्लभ मृत्यु मुझे मिली। मुझसे बढ़कर भाग्यशाली कौन होगा? बड़े भाग्य की बात है कि मैंने जीवन भर शत्रुओं से वैर भाव रक्खा और किसी तरह युद्ध से मुँह नहीं मोड़ा। बड़े भाग्य की बात है कि किसी साधारण पुरुष की तरह शत्रु मुझे अनायास नहीं जीत सके। जैसे कोई व्यक्ति सोते हुए या असावधान पुरुष को मारे अथवा किसी को विष देकर मार डाले, वैसे ही भीमसेन ने नियम भङ्ग करके मुझे मारा है। हे सञ्जय! तुम अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा से जाकर मेरी ओर से कह देना कि अनेक बार नियम का उल्लङ्घन और अधर्म करनेवाले पाण्डवों का विश्वास वे कभी न करें। २१

महाराज, सत्यविक्रमी राजा दुर्योधन ने मुझसे यों कहकर सर्वत्र समाचार पहुँचानेवालों को बुलाया और उनसे कहा कि देखो, भीमसेन ने अधर्मपूर्वक मुझे मारा है। तुम लोग यह समाचार सर्वत्र सबसे कहना। अब मैं स्वर्गवासी द्रोण, कर्ण, शल्य, महाबली वृषसेन, शकुनि, जलसन्ध, महाराज भगदत्त, सोमदत्त, सिन्धुराज जयद्रथ, दुःशासन आदि अपने भाई, दुःशासन के पुत्र और अपने पुत्र लक्ष्मण आदि अन्यान्य अनेकानेक अपने पक्ष के वीरों के पीछे, साथ से छूटे हुए बटोही की तरह, स्वर्ग को जाऊँगा। हाय! अपने पति और भाइयों की मृत्यु का समाचार सुनकर रो रही दुःख-पीड़ित मेरी बहन दुःशला की क्या दशा होगी! बहुओं और पौत्र-वधुओं सहित महाराज धृतराष्ट्र और माता गान्धारी की क्या गति होगी! अवश्य ही पुत्र और पति के मारे जाने से दुःखित विशालनयनी कल्याणी मेरी प्रियतमा, लक्ष्मण की माता, तत्काल ही अपने प्राण दे देगी। वाक्य-विशारद परिव्राजक महाभाग चार्वाक (ब्राह्मण-वेषधारी राक्षस) को अगर अधर्म से मेरे मारे जाने का वृत्तान्त विदित होगा तो वे अवश्य पाण्डवों से मेरा बदला लेंगे। अस्तु, मैं इस त्रिभुवन-प्रसिद्ध पवित्र समन्तपञ्चक तीर्थ में मरकर शाश्वत लोक प्राप्त करूँगा। ३०

उस समय दुर्योधन का यह विलाप और पश्चात्ताप सुनकर वहाँ पर उन्हें देखने को
४० आये हुए हज़ारों मनुष्य रोने लगे। यह करुण दृश्य न देख सकने के कारण वे लोग वहाँ से चल दिये। उस समय सागर-वन-पर्वत सहित पृथ्वी हिलने लगी और चारों ओर वज्रपात के से भयङ्कर शब्द सुनाई पड़ने लगे। चारों ओर अँधेरा छा गया। अब समाचार-प्रचारकों ने अश्वत्थामा के पास जाकर उनसे कहा कि भीमसेन ने गदा-युद्ध में अन्यायपूर्वक प्रहार करके राजा दुर्योधन को मार गिराया है। अश्वत्थामा से सब हाल कहकर वे लोग आर्त भाव से
४३ देर तक दुःख प्रकट करके चले गये।

पैंसठवाँ अध्याय

अश्वत्थामा आदि का दुर्योधन के पास आकर उनके लिए शोक करना और दुर्योधन का कृपाचार्य के हाथ से अश्वत्थामा को सेनापति बनाना। अश्वत्थामा की प्रतिज्ञा

सञ्जय कहते हैं—महाराज! गदा, शक्ति, तोमर और बाण आदि शस्त्रों के प्रहार सहने से जिनके शरीर अत्यन्त घायल हो रहे थे उन अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा ने दूतों से जब दुर्योधन की जंघाएँ टूटने का हाल सुना तब वे कौरवपक्ष के बचे हुए महारथी रथों पर बैठकर वेग से घोड़ों को हाँकते हुए रणस्थल में पहुँचे। उन्होंने देखा कि दुर्योधन प्रचण्ड आँधी से उखड़े हुए बड़े भारी शाल वृक्ष की तरह पृथ्वी पर पड़े हैं। रक्त से तर और धूल में सने हुए दुर्योधन, व्याध के मारे हुए हाथी की तरह, विषम वेदना से पृथ्वी पर तड़प रहे हैं। जान पड़ता था, जैसे आकाश से चन्द्रमण्डल गिर पड़ा है। प्रलयकाल की आँधी से सूखे हुए समुद्र की या आकाश में तुषार-समावृत पूर्ण चन्द्र की जो दशा होती है, वही दशा दुर्योधन की थी। असह्य क्रोध के मारे उनकी लाल-लाल आँखें निकली सी पड़ती थीं और भौंहें टेढ़ी हो रही थीं। धन की लालसा से भृत्यगण जिस तरह राजा को घेरते हैं, वैसे ही मांसलोभी मांसभक्षक जीव और भूतगण दुर्योधन को चारों ओर से घेरे हुए थे। तीनों महारथी आकाश से गिरे मङ्गल ग्रह के समान, पृथ्वी पर पड़े हुए, राजराजेश्वर की यह दुर्दशा देखकर शोक और दुःख से
११ मूर्च्छितप्राय हो गये। वे चटपट रथों से उतरकर राजा के पास पृथ्वी पर बैठ गये।

महाराज, आँखों में आँसू भरकर साँसें ले रहे वीरवर अश्वत्थामा ने राजराजेश्वर दुर्योधन को लक्ष्य करके कहा—हे सम्राट्! तुमको पृथ्वी पर इस तरह धूल में लोटते देखकर मुझे निश्चय हो गया कि मनुष्य-लोक में पुण्य या धर्म करने से कुछ नहीं होता। हे राजेन्द्र! महाराज होकर, सम्पूर्ण पृथ्वी में अपनी अप्रतिहत आज्ञा चलाकर, इस समय अकेले निर्जन

वन में कैसे पड़े हो ? यहाँ मैं न तो दुःशासन को देखता हूँ, न महारथी कर्ण को और न तुम्हारे अन्य इष्ट-मित्रों को ही। हे भरत-कुल-तिलक, यह क्या बात है ! हाय, काल की गति को जानना बहुत कठिन है। तुम लोक-नाथ होकर आज धूल में पड़े लोट रहे हो ! हाय, हाय, कितने खेद की बात है कि ये प्रतापी शत्रुदलदलन राजराजेश्वर मूर्धाभिषिक्त राजाओं के आगे चलनेवाले आज धूल में लोट रहे हैं। हे नरपति-शिरोमणि ! वह छत्र, वे चामर और वह तुम्हारी ग्यारह अक्षौहिणी सेना कहाँ गई ! भाग्य की गति बड़ी प्रबल और दुर्ज्ञेय है ! भाग्य के आगे पौरुष या सामान कोई चीज़ नहीं है, तभी तो तुम संसार के स्वामी होकर आज इस दशा को प्राप्त हुए। तुम इन्द्र से स्पर्धा रखनेवाले थे। आज तुम्हारी यह दशा देखकर मुझे निश्चय हो गया कि चञ्चला लक्ष्मी किसी के पास सदा नहीं रहती। २०

हे राजेन्द्र, विशेष रूप से दुःखित अश्वत्थामा का विलाप सुनकर आपके वीर धीर पुत्र ने हाथों से आँखें पोंछकर—शोक के आँसू बहाते-बहाते—अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा से कहा—पण्डितों का कथन है कि विधाता ने यह नियम बना दिया है कि समय पाकर सभी की मृत्यु होगी। कोई आज मरेगा तो कोई कल। तुम लोगों के सामने ही उसी मनुष्य-धर्म के अनुसार मेरी मृत्यु का समय उपस्थित है। सारी पृथ्वी का राज्य करके आज मेरी यह दशा हुई। मुझे यही सन्तोष है कि बड़ी से बड़ी आपत्ति पड़ने पर भी मैंने युद्ध से मुँह नहीं मोड़ा और पापी शत्रु मुझे न्याय-युद्ध में नहीं मार सके। बड़ी बात कि नीच भीम विशेष रूप से छल करके ही मेरा वध कर सका। बड़े भाग्य की बात है कि मैंने सदा उत्साह के साथ युद्ध किया और बन्धु-बान्धव-सैनिक-सहायक सबके मारे जाने पर ही युद्ध में मैं मारा गया। हे प्रिय महारथियो! बड़े भाग्य की बात है कि मैं इस समय तुमको युद्ध से बचा हुआ देख रहा हूँ। तुम्हें सकुशल देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। तुम मेरे हित-चिन्तक हो, इसलिए मेरी मृत्यु से तुम्हें शोक होना स्वाभाविक ही है। किन्तु मैं कहता हूँ कि तुम मेरे लिए शोक मत करो। अगर वेद के वाक्य यथार्थ हैं, तो धर्मानुसार युद्ध में मरकर मैं अवश्य स्वर्गलोक पाऊँगा। महातेजस्वी कृष्ण के प्रभाव को मैं अच्छी तरह जानता था; परन्तु उनके यत्न करने पर भी मैं क्षत्रिय-धर्म से भ्रष्ट नहीं हुआ। मैं धर्मानुसार युद्ध में मरा हूँ और इसी लिए किसी तरह शोचनीय नहीं हूँ। तुम लोगों ने अपने अनुरूप काम किये, उत्साहपूर्वक पूर्ण पराक्रम से मेरी विजय के लिए यत्न किया, किन्तु दैव के प्रतिकूल होने से सफलता नहीं हुई।

राजन् ! आँखों में आँसू भरे हुए राजा इतना कहकर, वेदना से विह्वल होने के कारण, चुप हो रहे। प्रिय सखा दुर्योधन को इस तरह शोकाकुल और आँखों में आँसू भरे देखकर अश्वत्थामा, प्रलयकाल की प्रचण्ड अग्नि के समान, क्रोध से प्रज्वलित हो उठे। हाथ से हाथ मलते हुए अश्वत्थामा अश्रु-गद्गद स्वर में कहने लगे—राजन्, क्षुद्र पापी पाण्डवों ने निन्दनीय उपाय से ३१

मेरे पिता को भी मारा है। किन्तु पिता की मृत्यु से भी मुझे ऐसा शोक नहीं हुआ जैसा कि इस समय तुम्हारी दशा देखकर हो रहा है। प्रभो! मैं तुम्हारे आगे शपथ खाकर कहता हूँ कि आज रात को, वासुदेव के रक्षा करने पर भी, चाहे जिस तरह हो, सब पाञ्चालों और पाण्डवों को मैं अवश्य मार डालूँगा। अगर मैं इस प्रतिज्ञा को पूर्ण न कर सकूँ तो मेरा इष्टापूर्त, दान, धर्म, सुकृत सब व्यर्थ हो। तुम मुझे इस प्रतिज्ञा को पूर्ण करने की आज्ञा दो।

महाराज, अश्वत्थामा की प्रतिज्ञा सुनकर दुर्योधन को बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने कृपाचार्य से कहा—हे आचार्य, आप शीघ्र जल-पूर्ण कलश लाइए। कृपाचार्य फ़ौरन् जल-पूर्ण कलश राजा के पास ले आये। तब आपके पुत्र ने कृपाचार्य से कहा—हे द्विजश्रेष्ठ, अगर आप ४१ मेरा प्रिय करना चाहते हैं तो मेरी आज्ञा से सेनापति-पद पर गुरु-पुत्र का अभिषेक कर दीजिए। धर्मज्ञ लोगों का कथन है कि ब्राह्मण को, विशेषकर क्षत्रिय-धर्मावलम्बी ब्राह्मण को, राजा की आज्ञा से युद्ध करना चाहिए; इसमें कुछ दोष नहीं है।

कृपाचार्य ने राजा की आज्ञा से उसी समय सेनापति के पद पर अश्वत्थामा का अभिषेक कर दिया। अभिषेक के उपरान्त राजा को गले लगाकर, सिंहनाद से सब दिशाओं को प्रतिध्वनित करते हुए, वीरवर अश्वत्थामा—कृपाचार्य और कृतवर्मा को लेकर—वहाँ से चल दिये। उस रणभूमि से हटकर वे तीनों शोक-पीड़ित वीर चिन्ता करने लगे। रुधिर से सने हुए दुर्यो-४६ धन उसी स्थान में पड़े-पड़े सब प्राणियों के लिए भयानक वह रात बिताने लगे।

महर्षि वेदव्यास-प्रणीत

महाभारत का अनुवाद

सौप्तिकपर्व

पहला अध्याय

अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा का वन में बरगद के नीचे बैठना। वहाँ रात को उल्लू पक्षी के द्वारा कौओं का संहार देख अश्वत्थामा का यह निश्चय करना कि इसी तरह मैं पाण्डवों को मारूँगा।

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥

सञ्जय बोले—महाराज ! अब अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा ये तीनों युद्धभूमि से सन्ध्याकाल में दक्षिण की ओर भागे। इन लोगों ने सेना की छावनी से थोड़ी दूर पर जाकर घोड़ों को खोल दिया। वे उस दुर्गम स्थान में छिपकर जा बैठे। उनको शङ्का थी कि शत्रुओं को कहीं उनका पता न लग जाय। पैने शस्त्रों से वे लोग बहुत घायल हो रहे थे। जहाँ ये लोग बैठे थे वहाँ, थोड़ी ही दूर पर, चारों ओर शत्रुसेना थी। लम्बी और गर्म साँसें लेते हुए तीनों वीर पाण्डवों के पराक्रम का स्मरण करने लगे। उसी समय जय की इच्छा रखने-वाले पाण्डवों का घोर सिंहनाद सुन पड़ा। उसे सुनकर ये लोग डरे कि कहीं पाण्डव लोग हमारा पीछा करते तो नहीं आ रहे हैं। तब [रथ में घोड़े जोतकर] ये लोग फिर पूर्व की ओर भागे। इन लोगों के घोड़े थके हुए थे और इनको भी प्यास लगी थी। राजा दुर्योधन

के वध से इन लोगों को जैसा सन्ताप था वैसा ही क्रोध था। घड़ी भर बाद और एक स्थान में पहुँचकर तीनों वीर रथों से उतर पड़े।

धृतराष्ट्र ने कहा—सञ्जय, भीमसेन ने दस हज़ार हाथियों के बलवाले दुर्योधन को मार-कर बहुत ही अद्भुत काम किया। सञ्जय, मेरे नौजवान पुत्र दुर्योधन के अङ्ग वज्र की तरह कड़े थे। वह ऐसा पराक्रमी था कि उसे कोई प्राणी मार न सकता था। उसी को भीम ने युद्ध में मार डाला। इससे जान पड़ता है कि मनुष्य किसी तरह होनी को नहीं टाल सकता। हे सञ्जय, मेरा हृदय अवश्य ही पत्थर से भी कड़ा है। सौ पुत्रों के मरने की ख़बर सुनकर भी १० उसके हज़ारों टुकड़े नहीं हो गये! सौ पुत्र जिनके थे उन हम बुढ़िया-बुड्ढों की अब क्या दशा होगी? मैं युधिष्ठिर के राज्य में रहना नहीं चाहता। राजा का पिता और स्वयं राजा होकर मैं कैसे पाण्डवों के शासन में, नौकरों की तरह, रहूँगा? हे सञ्जय, मैंने सारी पृथ्वी का शासन किया है; मैं राजाओं का सिरमौर रहा हूँ। अकेले मेरे सौ पुत्रों को मारनेवाले भीमसेन की बातों को मैं कैसे सह सकूँगा? हे सञ्जय! विदुर की बात न मानकर मेरे पुत्र ने उनके कहने को ही सत्य कर दिया। भीमसेन ने गदा-युद्ध में अधर्म से जब दुर्योधन को मार डाला तब अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा ने क्या किया?

सञ्जय ने कहा—महाराज! आपके पक्ष के इन तीनों वीरों ने थोड़ी दूर पर जाकर, अनेक पेड़ों और लताओं के झुण्डों से पूर्ण घोर वन देखा। तब उन्होंने वहाँ दम भर ठहर-कर अपने घोड़ों को पानी पिलाया। इसके बाद वे उस घोर वन में पहुँचे। वहाँ तरह-तरह के पशु घूम रहे थे। तरह-तरह के पक्षी देख पड़ते थे। अनेक पेड़ों और लताओं के झुरमुट छाये हुए थे। उस वन में साँप आदि बहुत से जीव थे। उसमें ऐसे तालाब थे जिनमें विपुल २० जल भरा था। उन तालाबों में लाल कमल और नीले कमल लगे हुए थे। उस घोर वन में जाकर चारों ओर देखते-देखते इन लोगों ने एक पुराना बरगद का पेड़ देखा। उसमें हज़ारों डालें थीं। तीनों महारथी पास पहुँचकर, उस बरगद के पेड़ को देखकर, रथों से उतर पड़े। उन्होंने घोड़ों को खोल दिया। इसके बाद बैठकर, आचमन करके, वे लोग सन्ध्या करने लगे। जब सूर्यनारायण अस्ताचल पर पहुँच गये तब, जगत् को धाय की तरह अपनी गोद में सुलानेवाली, रात हो गई। छिटके हुए ग्रह, नक्षत्र और तारागण से शोभित आकाशमण्डल कामदार कपड़े की तरह देखने योग्य हो उठा। दिन को घूमनेवाले जीव सो गये और रात को विचरनेवाले जीव प्रसन्न होकर बोलने और घूमने लगे। रात को घूमनेवाले मांसभक्षी जीवों का दारुण शब्द सुन पड़ने लगा। उस घोर सन्ध्या के समय कृतवर्मा, कृपाचार्य और अश्व-त्थामा वहीं, बरगद के पेड़ के नीचे, पास-पास बैठ गये। वे दुःख और शोक के साथ उसी, कौरवों और पाण्डवों के, युद्ध और नाश को सोचने लगे। तरह-तरह के बाणों से घायल,

थके हुए और नींद से व्याकुल महाबली कृपाचार्य और कृतवर्मा पृथ्वी पर ही लेट रहे। दुःख भोगने का जिनको अभ्यास नहीं ऐसे, सुख के योग्य, कृपाचार्य और कृतवर्मा धरती पर अनाथ की तरह सो गये। परन्तु अश्वत्थामा को इतना क्रोध था कि उन्हें किसी तरह नींद नहीं आई। वे साँप की तरह साँसें लेते हुए जागते ही रहे। वे चारों तरफ़ वन को देखने लगे। अनेक जीव-जन्तुओं से भरे हुए उस भयावने जङ्गल के बीच अश्वत्थामा ने बरगद के पेड़ को देखा। उस पेड़ की डालियों पर हज़ारों कौए अलग-अलग बेखटके सो रहे थे। अश्वत्थामा ने देखा कि एक न्यौले के रङ्ग का, कञ्जी आँखोंवाला, भयावना, बड़े शब्द और बड़े शरीरवाला उल्लू पक्षी गरुड़ के समान झपटता हुआ उधर ही आ रहा है। उसके नाखून और नाक बड़ी पैनी थी। वह पक्षी मानों आप ही अपने में लुका जाता था। महाराज, धीरे से शब्द करके वह पक्षी बरगद की डाल पर आ गया। वहाँ बेखटके सो रहे कौओं को उस कौओं के शत्रु ने मारना शुरू कर दिया। किसी के पर, किसी की गर्दन और किसी के पैर उसने काट डाले। जो कौए सामने पड़े उनको उस बलवान् पक्षी ने दम भर में मार डाला। राजन्, उस बरगद के नीचे कौओं के कटे हुए अङ्गों और शरीरों का पहाड़ सा ढेर लग गया। अपने शत्रु कौओं से इस प्रकार जी भर बदला लेकर वह उल्लू बहुत प्रसन्न हुआ।

३०

४०

रात को उल्लू का किया यह काम देखकर, उसी तरह आप भी काम करने का इरादा करके, अश्वत्थामा मन में कहने लगे कि लड़ने के बारे में इस पक्षी ने मुझे उपदेश दिया है। इसी तरह शत्रुओं का विनाश करना चाहिए। मेरी समझ में शत्रुओं का संहार करने का ठीक समय भी यही है। मैंने राजा दुर्योधन के सामने पाण्डवों को मारने की प्रतिज्ञा की है। विजयी, बलवान्, उत्साह से भरे, ठीक निशाने पर चोट मारनेवाले पाण्डवों को आमने-सामने लड़कर आज मैं किसी तरह नहीं जीत सकता। यदि मैं उनसे सम्मुख युद्ध करूँगा तो मेरी वही दशा होगी जो कि अपने आप आग में गिरने से पतङ्गों की होती है। अर्थात् धर्म से युद्ध

करूँगा तो ज़रूर मारा जाऊँगा। किन्तु छल से, छिपकर, वार करने से काम भी सिद्ध होगा और शत्रुओं का संहार भी हो जायगा। समझदार लोगों की राय में सन्देहवाले ढङ्ग से बिना
५० सन्देहवाला ढङ्ग बहुत अच्छा है। यह ज़रूर है कि इस काम को लोग बुरा कहेंगे; परन्तु क्षत्रिय के धर्म को पालनेवाला उसकी परवा नहीं कर सकता। फिर नीच विचारवाले पाण्डवों ने तो छल के साथ इस युद्ध में पग-पग पर निन्दा के योग्य काम किये हैं। [तब मैं क्यों न ऐसा करूँ ?] तत्त्व के जाननेवाले धर्मात्मा लोग कह गये हैं कि थकी हुई, अस्त-व्यस्त, भोजन कर रही, जा रही, कहीं प्रवेश कर रही, आधी रात के समय सो रही, जिसका सेनापति मर गया हो—सिपाही लोभ देकर मिला लिये गये हों—ऐसी दुविधा में पड़ी शत्रु की सेना पर चढ़ाई करके उसका विनाश करना चाहिए। प्रतापी अश्वत्थामा ने रात को सो रहे पाञ्चालों और पाण्डवों को मारने का इस प्रकार निश्चय कर लिया। बार-बार सोचकर, क्रूर बुद्धि को दृढ़ करके, उन्होंने सो रहे अपने मामा कृपाचार्य और कृतवर्मा को जगाया। जागकर महाबली कृपाचार्य और कृतवर्मा अश्वत्थामा के इस इरादे को सुनकर लज्जा के मारे चुप हो रहे। उन्हें उसका कुछ उचित उत्तर न सूझ पड़ा।

पल भर सोचकर अश्वत्थामा ने उनसे कहा—देखो, जिसके लिए हमने पाण्डवों से वैर मोल लिया उस ग्यारह अक्षौहिणी सेना के स्वामी महाबली बड़े बहादुर अकेले राजा दुर्योधन
६० को भीमसेन ने अधर्म से मारा। नीच भीमसेन ने इतना ही नहीं किया, किन्तु जिसको राज्य का अभिषेक हुआ है उस महाराज दुर्योधन के सिर को पैर से ठुकराया! यह उसने बड़ा बुरा काम किया! देखो, पाञ्चाल देश के लोग उछलते हैं, कूदते हैं, हँसते हैं, ख़ुशी के मारे सैकड़ों शङ्ख बजाते और नगाड़े पीटते हैं। शङ्खों और बाजों का घोर शब्द हवा में मिलकर चारों ओर गूँज रहा है। यह घोड़ों का हिनहिनाना, हाथियों का चिग्घारना और शूर-वीरों का भारी सिंहनाद सुन पड़ रहा है। यह सुनो, पूर्व ओर प्रसन्न होकर जा रहे शत्रु-पक्ष के रथों के पहियों की, रोंगटे खड़े कर देनेवाली, घरघराहट सुन पड़ती है। पाण्डवों ने धृतराष्ट्र के पुत्रों का नाश कर डाला। इस भारी युद्ध में हमीं तीन पुरुष बचे हैं। जो लोग मारे गये हैं उनमें कोई सौ हाथी के समान बलवाले थे और कोई सब अस्त्रों के जाननेवाले थे। उनको पाण्डवों ने मार डाला! मेरी समझ में यह काल की गति है! यह काम योंही होगा। क्योंकि बड़ा भारी यत्न करने पर भी इस बारे में ऐसा ही संयोग बन पड़ा है। आप लोगों की बुद्धि यदि मोह से
६९ नष्ट न हो गई हो तो इस घोर सङ्कट के समय हमारे लिए जो अच्छा हो वह बतलाइए।

दूसरा अध्याय

कृपाचार्य का अश्वत्थामा को कर्त्तव्य का उपदेश

कृपाचार्य ने कहा—हे महाभुज, तुम्हारा वक्तव्य मैंने सुन लिया। अब मेरी बात भी सुनो। सब आदमी प्रधानतया दैव (भाग्य या होनी) और अप्रधानतया पौरुष के अधीन हैं। [दैव पिछले जन्म का कर्म है और पौरुष इसी जन्म का कर्म है। इन्हीं दोनों कर्मों के अधीन मनुष्य है।] दैव और पौरुष से बढ़कर कुछ नहीं है। किन्तु केवल दैव के सहारे या पौरुष करने से ही काम नहीं सिद्ध होते। दैव और पौरुष के मेल से ही सिद्धि होती है। अधम या उत्तम, हर काम के लिए इन दोनों की ज़रूरत है। इन्हीं दोनों के द्वारा सब कामों की प्रवृत्ति और निवृत्ति होती है। पहाड़ पर मेह बरसने से क्या लाभ होता है? वही जल जब जोती हुई ज़मीन में बरसता है तब ख़ूब फ़सल होती है। दैव प्रधान है और पौरुष दैव की अनुकूलता से फल देता है, यही बात दिखाते हैं। [वन के रहनेवाले खेती के बिना भी अपनी जीविका चलाते हैं, किन्तु किसान लोग पानी बरसे बिना केवल खेती करके अपनी जीविका नहीं चला सकते। इसी प्रकार पौरुष को दैव की ज़रूरत है, परन्तु दैव को पौरुष की उतनी ज़रूरत नहीं है।] जो केवल दैव (होनी) के भरोसे रहते हैं उनका पौरुष व्यर्थ हो जाता है और बिना पौरुष के केवल दैव भी व्यर्थ ही सा होता है। इसलिए पहले कहा गया पक्ष ही ठीक है; अर्थात् हर एक काम में दैव की सहायता और पौरुष की ज़रूरत है। जैसे अच्छी तरह पानी बरसे और खेत भी अच्छी तरह जोता बनाया जाय तो ज़रूर ही अच्छी फ़सल होगी, वैसे ही मनुष्यों के कार्यों के बारे में भी समझना चाहिए। दोनों में दैव प्रबल है, उसके बारे में कोई कुछ नहीं जान सकता और वह जो जी चाहे, सो करता है। इसलिए पौरुष की क्या ज़रूरत है? इस शङ्का का उत्तर यह है कि पौरुष इसलिए किया जाता है जिसमें कोई दोष न दे कि कुछ किया नहीं। इसी से समझदार लोग जब दैव को अपने अनुकूल देखते हैं तब पौरुष का सहारा लेकर यत्न करते हैं। दैव और पौरुष के द्वारा ही मनुष्यों के हर एक काम की प्रवृत्ति और निवृत्ति होती है। किया हुआ पौरुष भी दैव के अनुकूल होने से ही सिद्ध होता है। काम करनेवाले को दैव के अनुसार ही फल मिलता है। दैव की सहायता के बिना चतुर मनुष्यों का अच्छी तरह किया गया उद्योग भी संसार में निष्फल होते देखा जाता है। आलसी और उत्साह से रहित मनुष्य दूसरों के पौरुष की निन्दा करते हैं; किन्तु बुद्धिमान् लोगों को यह अच्छा नहीं लगता। संसार में अक्सर देखा जाता है कि कोई ऐसा काम नहीं है जिसका फल न हो और यह भी अक्सर देखा जाता है कि लोग कर्म न करके भी महा-दुःख भोगते हैं। चेष्टा किये बिना कुछ पानेवाला और चेष्टा करके भी कुछ न पानेवाला— १०

दोनों ही संसार में दुर्लभ हैं। [और कहीं ऐसा देख भी पड़े तो वह साधारण नियम नहीं माना जा सकता।] पौरुष का सहारा लेनेवाला चतुर पुरुष जी सकता है। आलसी पुरुष सुख नहीं पाता। इस संसार में चतुर आदमी अक्सर परोपकार करनेवाले देख पड़ते हैं। अगर चतुर आदमी पौरुष के द्वारा कार्य का आरम्भ करता है और उसका फल पाता है या उसका फल भोगने में समर्थ नहीं होता तो वह किसी तरह निन्दा के योग्य नहीं। किन्तु जो पुरुष कोई काम न करके पराये उद्योग का फल भोगता है उसकी लोग निन्दा करते हैं कि यह खाऊ वीर है; आप कुछ नहीं कर सकता। उसके शत्रु भी बहुत हो जाते हैं। इसी से बुद्धिमान् लोगों का कहना है कि जो आदमी दैव और पौरुष के मेल का अनादर करके अन्यथा चलता है, अर्थात् एक का ही सहारा लेता है वह अपने लिए अनर्थ के बीज बोता है। दैव की अनुकूलता से रहित, या पौरुष की सहायता से रहित, अथवा इन दोनों कारणों से रहित किसी का किसी काम के लिए उठ खड़ा होना अवश्य ही निष्फल होता है। संसार में बिना पौरुष के भी कोई काम अच्छी तरह सिद्ध नहीं होता। जो चतुर पुरुष होशियारी के साथ देवताओं को नमस्कार करके दैव-बल का सहारा लेकर अच्छी तरह कार्य की सिद्धि का उद्योग करता है २० उसे निष्फलता का सामना नहीं करना पड़ता। अच्छी चेष्टा तो यह है कि सदा बड़े-बूढ़ों की सेवा में रहे, उनसे भलाई की बात पूछे, उनके हित-वचनों को सुनकर वैसा ही करे। नित्य उठकर बूढ़ों से सलाह लेनी चाहिए। जो वस्तु नहीं मिली है उसके मिलने का मूल बड़े-बूढ़े ही हैं। बूढ़ों के वचन को सुनकर जो कोई किसी काम में हाथ डालता है वह शीघ्र ही अपने उद्योग के फल को अच्छी तरह पाता है। जो मनुष्य अस्थिर-चित्त तथा आप असमर्थ होकर भी औरों का अनादर करके अनुराग, क्रोध, भय या लोभ से कार्य का आरम्भ कर देता है वह शीघ्र ही लक्ष्मी से भ्रष्ट हो जाता है। देखो, लोभ के मारे दूर तक सोचे-विचारे बिना दुर्योधन ने, असमर्थ होने पर भी, इस काम में हाथ डाला। घमण्ड के मारे उसने कुछ भी नहीं सोचा। जो उसका हित चाहते थे उनका कहा उसने नहीं सुना, दुर्जनों से उसने सलाह की। मना करने पर भी उसने गुणों में अपने से श्रेष्ठ पाण्डवों से वैर ठाना। वह पहले से ही बहुत बुरे स्वभाव का था। वह धैर्य के साथ कोई काम न कर सकता था। उसने पहले तो मित्रों का कहा नही माना और अब काम बिगड़ जाने पर दुःखित हो रहा है। उस पापी का हमने साथ दिया, इसी से हमारी भी आज यह दुर्दशा हो रही है। इस महासङ्कट से मेरी बुद्धि भी व्याकुल होकर चिन्ता में डूब रही है। उसे अपना कल्याण सूझ नहीं पड़ता। मनुष्य को ३० जब मोह हो तब उसे अपने मित्रों से, हितकारियों से, सलाह लेनी चाहिए। उस समय उसे बुद्धि और विनय मिलती है। वे ही लोग उसे कल्याण की राह दिखाते हैं। पूछने पर बुद्धिमान् इष्ट-मित्र उस कार्य की जड़ को जानकर—बुद्धि से निश्चय करके—जो कहें वही करना

चाहिए। इसलिए आओ हम लोग महाराज धृतराष्ट्र, यशस्विनी गान्धारी और बुद्धिमान् विदुर के पास चलकर उनसे इस बारे में पूछें। वे लोग सोचकर जो हमारे लिए अच्छा बतावें वही हमको करना चाहिए। मेरी तो यही सलाह है। कार्य का आरम्भ किये बिना किसी तरह फल नहीं मिलता। पौरुष करने पर भी जिनका कार्य सिद्ध नहीं होता उनका विरोधी दैव को ही समझना चाहिए। ३५

तीसरा अध्याय

अश्वत्थामा का कृपाचार्य और कृतवर्मा की बातों का अनादर करके रात को सोये हुए पाण्डवों और पाञ्चालों के मारने की प्रतिज्ञा करना

सञ्जय बोले—महाराज, कृपाचार्य के धर्म और अर्थ से परिपूर्ण शुभ वचन अश्वत्थामा को अच्छे नहीं लगे। दुःख और शोक से विकल अश्वत्थामा उस समय, धधक रही आग के समान, बढ़े हुए शोक से भीतर ही भीतर जल रहे थे। वे अपने मन को क्रूर बनाकर उन दोनों आदमियों से बोले—हर एक पुरुष की बुद्धि जुदी-जुदी होती है। सभी अपनी-अपनी बुद्धि को अच्छा समझते और अपनी-अपनी बुद्धि से सन्तुष्ट रहते हैं। हर एक पुरुष अपने को सबसे बढ़कर बुद्धिमान् समझता है। सब अपने को बहुत समझते, अपनी प्रशंसा करते हैं और दूसरों की बुद्धि की बारम्बार निन्दा किया करते हैं। किसी-किसी विषय में जिन लोगों की बुद्धि एक है वे एक दूसरे से सन्तुष्ट रहते हैं और अपने को बहुत मानते हैं। फ़िर उन्हीं की बुद्धि अन्य किसी काम में और किसी कारण से जुदी-जुदी हो जाती है। समय-समय पर एक ही मनुष्य की बुद्धि में परस्पर विरोध पड़ जाता है। मनुष्यों के चित्त की वृत्तियाँ सदा एक सी नहीं रहतीं, इसी से बुद्धि बदला करती है। जैसे चतुर वैद्य विधि-पूर्वक रोग को समझकर उसकी शान्ति के लिए वैसी ही दवा देता या वैसा ही उपाय करता है—एक ही दवा से सब रोगों को अच्छा नहीं कर सकता—वैसे ही मनुष्य भी जुदे-जुदे कामों के लिए जुदी-जुदी बुद्धि से काम लेते हैं, जुदे-जुदे उपाय काम में लाते हैं। लोग अपनी बुद्धि से इस रीति को बुरा कहते हैं। एक ही मनुष्य की बुद्धि जवानी में और होती है, अधेड़ होने पर और होती है और १० बुढ़ापे में और ही बुद्धि उसे अच्छी लगती है। हे भोजवंशी कृतवर्मा, महाघोर सङ्कट या वैसी ही अधिक उन्नति को पाकर मनुष्य की बुद्धि बदल जाती है। एक ही पुरुष की बुद्धि दूसरे समय और की और हो जाती है; तब उसे ही अपनी पहली बुद्धि नहीं रुचती। अपनी समझ के अनुसार निश्चय करके मनुष्य जिस बुद्धि को अच्छा देखता है वैसा ही भाव धारण करता है। वही बुद्धि उससे उद्योग कराती है। हे कृतवर्मा, सभी आदमी "मैं अच्छा कर रहा हूँ"

यह निश्चय करके मरण आदि कामों में मन लगाते हैं। सभी पुरुष अपनी बुद्धि को या अपनी बुद्धि से निश्चय किये गये काम को भला समझकर तरह-तरह की चेष्टाएँ करते हैं। आज सङ्कट से उत्पन्न जो यह बुद्धि मुझे प्राप्त हुई है उसे मैं तुम दोनों के आगे कहता हूँ। इससे मेरे शोक का नाश हो सकता है। प्रजापति ब्रह्मा ने सृष्टि के आदि में चार वर्ण की प्रजा उत्पन्न करके उसे अपने-अपने कर्म में लगाया। ब्रह्मा ने एक-एक वर्ण में एक-एक विशेष गुण स्थापित किया। ब्राह्मण को श्रेष्ठ वेद, क्षत्रिय को उत्तम तेज, वैश्य को चतुरता और शूद्र को तीनों वर्णों की सेवा (अनुगत रहना) दी। इसी कारण वेद से रहित ज्ञानहीन ब्राह्मण दुर्जन है, तेज से हीन क्षत्रिय अधम है और चतुरता से हीन वैश्य और तीनों वर्णों से विरोध करने-
२० वाला शूद्र निन्दा के योग्य है। मैंने यद्यपि पूजनीय ब्राह्मण के वंश में जन्म लिया है, तो भी भाग्य के दोष से मुझे क्षत्रिय का धर्म स्वीकार करना पड़ा है। क्षत्रिय के धर्म का आश्रय लेकर भी अगर मैं ब्राह्मण के धर्म (शान्ति) को धारण कर लूँ तो सज्जन मेरी निन्दा करेंगे। युद्ध में दिव्य धनुष और दिव्य अस्त्र धारण करके अपने आगे पिता का वध देखकर भी अगर मैं चुप रहूँ—बदला न लूँ—तो लोगों के आगे मैं क्या मुँह दिखाऊँगा ? इससे मैं आज क्षत्रिय-धर्म का आश्रय लेकर अवश्य ही राजा दुर्योधन और महात्मा पिता से उऋन हो जाऊँगा। पाञ्चाल लोग आज अपनी जीत की ख़ुशी में हैं और युद्ध की मेहनत से थके हुए भी हैं। वे तो समझते हैं कि हमको उन्होंने जीत लिया है; इसी से वे कवच आदि उतारकर, घोड़े खोलकर, बेखटके रात को सोवेंगे। रात को डेरे में मौज से सो रहे पाञ्चालों के डेरे पर मैं छापा मारूँगा। मैं अवश्य ही यह कठिन काम करूँगा। मुर्दे की तरह अचेत पड़े हुए शत्रुओं पर आक्रमण करके मैं, जैसे इन्द्र दानवों को मारें वैसे ही, उनका संहार करूँगा। जैसे सूखे वन को आग जलावे वैसे ही पराक्रम करके आज मैं धृष्टद्युम्न आदि पाञ्चालों का नाश करूँगा। उनका संहार करके ही मुझको शान्ति मिलेगी। जैसे क्रोध करके पिनाक धनुष हाथ में लिये स्वयं महादेव पशुओं का संहार करते हुए विचरें वैसे ही मैं आज पाञ्चालों को काट करके प्रस-
३० न्नता-पूर्वक युद्ध में पाण्डवों को पीड़ित करूँगा। आज मैं पृथ्वी पर सब पाञ्चालों के शरीरों के ढेर लगाकर पिता से उऋन हो जाऊँगा। दुर्योधन, कर्ण, भीष्म, जयद्रथ आदि वीरों का आज रात को बदला लूँगा। जैसे कोई बल-पूर्वक पशु का सिर झकझोर डाले वैसे ही आज पिछली रात को मैं पाञ्चालराज धृष्टद्युम्न के सिर को मरोड़ डालूँगा। मामाजी, रात को सो रहे पाञ्चालों और पाण्डवों की सन्तान के सिरों को मैं पैनी तलवार से आज अवश्य काटूँगा।
३६ आज रात को सोते में सारी पाञ्चाल-सेना को मारकर मैं कृतकृत्य और सुखी हो जाऊँगा।

चौथा अध्याय

अश्वत्थामा और कृपाचार्य की बातचीत

कृपाचार्य बोले—बड़ी ख़ुशी की बात है कि आज यह बदला लेने की बुद्धि तुम्हें हुई। इस समय तुम कवच और ध्वजा खोलकर विश्राम करो। सबेरे मैं और कृतवर्मा दोनों कवच आदि पहनकर, रथ पर चढ़कर, तुम्हारे साथ शत्रुओं का सामना करने के लिए चलेंगे। हे श्रेष्ठ वीर! सबेरे मुठभेड़ होने पर हमारे साथ पराक्रम करके तुम पाञ्चालों को, उनके अनुचरों सहित, अवश्य मारोगे। तुम युद्ध में पराक्रम करके सब को मार सकते हो। रात भर विश्राम कर लो। भैया! तुम बहुत दिनों से जाग रहे हो, आज रात को सो लो। थकन और नींद दूर हो जाने पर तुम्हारा चित्त स्वस्थ हो जायगा। तब सामने युद्ध में आये हुए शत्रुओं को तुम अवश्य मारोगे। तुम श्रेष्ठ रथी हो। तुम जब दिव्य अस्त्र-शस्त्र लेकर खड़े होओगे तब तुमको इन्द्र भी नहीं जीत सकते। कृतवर्मा और कृपाचार्य जब रक्षा करेंगे तब इन्द्र भी क्रोध से भरे हुए अश्वत्थामा से युद्ध नहीं कर सकते। बस, यही ठीक है कि हम लोग रात को थकन और नींद को दूर करके सवेरे स्वस्थचित्त होकर शत्रुओं का संहार करेंगे। इसमें संशय नहीं कि तुम्हारे और मेरे अस्त्र दिव्य हैं। कृतवर्मा भी युद्ध में चतुर और महारथी हैं। हे तात, हम तीनों मिलकर आये हुए शत्रुओं को युद्ध में मारकर बहुत प्रसन्न होंगे। तुम बेखटके रातभर सोओ। तुम्हारे साथ धनुष हाथ में लिये, कवच पहने हुए, शत्रुओं को सन्ताप देनेवाले कृतवर्मा और मैं, दोनों रथ पर चढ़कर चलेंगे। शत्रुओं के डेरे पर चलकर, युद्ध में अपना नाम सुनाकर, तुम शत्रुओं का महा-संहार करना। जैसे इन्द्र असुरों का संहार करके विहार करें वैसे तुम भी सबेरे शत्रुओं का नाश करके आनन्द करना। सब दानवों का नाश करनेवाले विष्णु ने जैसे दैत्यों की सेना को सहज में जीत लिया था वैसे ही तुम रण में पाञ्चालों की सेना को जीत सकते हो। वत्स! रण में पाण्डवों को जीते बिना मैं या कृतवर्मा, कोई न हटेगा। समर में क्षुद्र पाञ्चालों को पाण्डवों सहित मारकर ही हम लौटेंगे और अगर मारे जायँगे तो हम स्वर्ग को जायँगे। हे पाप-रहित, मैं तुमसे सच कहता हूँ कि सबेरे युद्ध में हम दोनों सब तरह सब उपायों से तुम्हारी सहायता करेंगे।

मामा कृपाचार्य के ये हित-वचन कहने पर, क्रोध से आँखें चढ़ाकर, अश्वत्थामा ने कहा—मामाजी! देखिए, जो व्यग्र है, जो क्रोध के वश में है और जिसे द्रव्य की चिन्ता लगी है अथवा जिसे कोई कामना है, ऐसे लोगों को नींद कहाँ? इन चारों में से एक बात भी नींद नहीं आने देती, फिर मुझमें तो ये चारों बातें एक साथ इस समय देख पड़ती हैं। मुझे चटपट नींद कैसे आ सकती है? पिता के मारे जाने से बढ़कर दुःख संसार में और क्या हो सकता

है ? क्रोध की आग दिन-रात मेरे हृदय को जलाया करती है। जिस तरह पापियों ने मेरे पिता की हत्या की है सो तो आपने प्रत्यक्ष ही देखा है। उसकी याद मेरे मर्मस्थल में छुरी सी चलाया करती है। मुझ सा आदमी इस तरह शत्रुओं के द्वारा अधर्म से पिता के मारे जाने की बात सुनकर दमभर भी कैसे जी सकता है ? पाञ्चाल कह रहे हैं कि द्रोणाचार्य मारे गये, इसलिए धृष्टद्युम्न को मारे विना मैं जीना नहीं चाहता। धृष्टद्युम्न को और उसके अनुगत पाञ्चालों को मारना ही मेरे लिए उचित है। राजा दुर्योधन की जाँघ टूट गई है, उसका विलाप जो मैंने सुना है वह बड़े से बड़े क्रूर पुरुष के हृदय को भी दहला सकता है। कोई भी ऐसा नहीं जो करुणा से हीन होने पर भी टूटी जाँघवाले राजा दुर्योधन के वे वचन सुनकर रो न दे। यह जो मेरे जीते-जी मेरे मित्रों का पक्ष हार गया सो इससे मेरा शोक बढ़ ही रहा है, जैसे जल के प्रवाह से समुद्र बढ़ता है। मेरा मन इस समय बदला लेने की ओर ही एकाग्र हो रहा है। ३० मुझे इस समय नींद और चैन कहाँ ? देखिए, जिस समय श्रीकृष्ण और अर्जुन उनकी रक्षा करनेवाले हैं उस समय, मैं समझता हूँ कि, देवता लोग भी उनके शरीर में हाथ नहीं लगा सकते। इस लोक में ऐसा कोई नहीं देख पड़ता, जो मुझे ऐसा क्रोध करने से रोके। मैंने अपने इस विचार को पक्का कर लिया है और इसी को मैं अच्छा समझता हूँ। दूतों के मुँह से अपने मित्रों की हार और पाण्डवों की जय सुनकर मेरा हृदय जला जाता है। मैं आज ३४ सोते में जब शत्रुओं का नाश करके शान्तचित्त हो जाऊँगा तभी विश्राम करूँगा।

पाँचवाँ अध्याय

कृपाचार्य के रोकने पर भी क्रोधित अश्वत्थामा का शत्रु-शिविर के द्वार पर जाना। कृपाचार्य और कृतवर्मा का भी उनके पीछे जाना

कृपाचार्य ने कहा—मेरा निश्चय यह है कि बुरी बुद्धिवाला अजितेन्द्रिय पुरुष, सुनने की इच्छा रखने पर भी, धर्म और अर्थ (कार्य) को पूर्ण रूप से समझ नहीं सकता; अर्थात् उसे ये विषय पूर्ण रूप से समझाये नहीं जा सकते। वैसे ही बुद्धिमान् होने पर भी जिसने विनय न सीखी हो वह भी धर्म-अर्थ के निश्चय को नहीं जान सकता। चमचा जैसे सदा सालनों में पड़ा रहकर भी उनके रस को नहीं जान सकता वैसे ही वीर होने पर भी जड़ पुरुष, सदा पण्डितों के पास रहकर भी, धर्म को नहीं जान सकता। किन्तु जीभ जैसे भोजन के स्वाद को चट जान लेती है वैसे ही जो समझदार होते हैं वे पण्डितों के पास थोड़ी देर रहकर शीघ्र ही धर्म की गति को जान लेते हैं। गुरु की सेवा में लगे हुए, बुद्धिमान्, जितेन्द्रिय पुरुष को शीघ्र ही

सब शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त हो जाता है और जिस बात को सब लोग मानते हैं उसका वह विरोध नहीं करता। किन्तु विनय से रहित, औरों को तुच्छ समझनेवाला दुष्ट-हृदय पापी मनुष्य बताये हुए कल्याण को छोड़कर बहुत पातक करता है। बड़े-बूढ़े हित चाहनेवाले सुहृद् पाप की राह में जाने से रोकते हैं। जो मान जाते हैं वे यश-लक्ष्मी पाते हैं और जो नहीं मानते वे अपयश-अलक्ष्मी के पात्र बनते हैं। जैसे जिसका दिमाग़ बिगड़ गया हो ऐसे व्यक्ति के इष्ट-मित्र कह-सुनकर उसे हर तरह अनर्थ से रोकते हैं, वैसे ही हित चाहनेवाले समझदार मित्रगण सब तरह की 'ऊँच-नीच' सुझाकर अपने नासमझ बन्धुओं को यथाशक्ति बार-बार पाप-कर्म से रोकते हैं। जो नहीं मानता उसकी दुर्गति होती है। इसलिए हे पुत्र! कल्याण में मन लगाकर, अपने आपको वश में करके, मेरा कहा करो। ऐसा करोगे तो पीछे पछताना न पड़ेगा। जो सो रहा हो, जिसने शस्त्र रख दिया हो, रथ घोड़े आदि की सवारी छोड़ दी हो, जो यह कहे कि "हम तुम्हारे हैं", जो बाल खोलकर शरण में आवे और जिसका वाहन मर जाय ऐसे शत्रु को मारना धर्म की दृष्टि से निन्दित है। भैया, आज रात को पाञ्चाल लोग कवच आदि खोलकर बेधड़क सोवेंगे—मुर्दों के समान बेहोश पड़े रहेंगे। इस अवस्था में उन पर जो धोखेबाज़ चोट करेगा, उनकी हत्या करेगा, वह अवश्य ही अथाह नरक में गिरकर यातना भोगेगा। तुम जगत् में सब अस्त्र जाननेवालों में श्रेष्ठ कहे जाते हो, तुमको तनिक भी पाप नहीं छू सका। सबेरे सूर्य का उदय होने पर सूर्य के समान तुम प्रकाश में सब के आगे शत्रुओं का संहार करना। मैं समझता हूँ कि तुममें निन्दित कर्म वैसे ही बुरा मालूम होगा जैसे सफ़ेद चादर में खून का दाग़। १०

अश्वत्थामा बोले—मामाजी! यह आपका उपदेश बहुत ठीक है। पर आप ही देखिए, पाण्डवों ने ही बार-बार अधर्म करके धर्म की मर्यादा को तोड़ डाला है। सब राजाओं के सामने, आपकी मौजूदगी में, मेरे पिता के अस्त्र-त्याग करने पर धृष्टद्युम्न ने उनका सिर काट लिया। कर्ण के रथ का पहिया जब धरती में धँस गया था तब, पहिया उभारते समय, सङ्कट में पड़े हुए कर्ण को अर्जुन ने मार डाला। वैसे ही शस्त्र रख देने पर भीष्म पितामह को भी, शिखण्डी की आड़ से, अर्जुन ने मार लिया। शस्त्र छोड़कर मरने के लिए बैठे हुए महावीर भूरिश्रवा को सात्यकि ने मारा। राजाओं के आगे गदा-युद्ध में भीमसेन ने अधर्म से राजा दुर्योधन को मारा। अकेले राजा दुर्योधन को बहुत से महारथियों ने घेर लिया और भीमसेन ने अधर्म से उसकी जाँघ तोड़ दी। दूतों के मुँह से राजा दुर्योधन का विलाप जो मैंने सुना है वह मेरे मर्मस्थलों को काट रहा है। ऐसे ही धृष्टद्युम्न आदि पाञ्चाल भी अधर्मी और पापी हैं। उन्होंने बार-बार धर्म की मर्यादा तोड़ी है। उनकी निन्दा आप क्यों नहीं करते? मरकर मैं चाहे कीट-पतङ्ग की योनि ही क्यों न पाऊँ, किन्तु आज सोते २०

में पाञ्चालों को मारकर बाप का बदला ज़रूर लूँगा। मैं इसी जन्म में अपने इस कर्त्तव्य को कर डालना चाहता हूँ। भला मुझे नींद और सुख कहाँ ? ऐसा कोई मनुष्य संसार में न तो पैदा हुआ और न होगा जो मेरे इस विचार को बदल सके।

सञ्जय कहते हैं कि महाराज ! प्रतापी अश्वत्थामा इतना कहकर, रथ में घोड़े जोतकर, ३० सन्नाटे में शत्रुओं के डेरे की ओर जाने को तैयार हुए। तब महात्मा कृपाचार्य और कृतवर्मा ने उनसे कहा—यह रथ तुमने क्यों जोता है ? तुम क्या करना चाहते हो ? हे वीर, हम दोनों तुम्हारे साथ ही चलते हैं और हमको तुम्हारे सुख में सुख और दुःख में दुःख है। इस-लिए हमसे तुमको शङ्का न करनी चाहिए।

अपने पिता के वध को स्मरण करके क्रोधित अश्वत्थामा ने कृपाचार्य और कृतवर्मा से साफ़-साफ़ कहा—मैंने बाणों से अगणित वीरों का संहार करने के उपरान्त शस्त्र रख देने पर मेरे पिता को धृष्टद्युम्न ने मारा है। इसलिए मैं भी उस पापी पाञ्चालराज के पुत्र को उसी तरह अधर्म से मारूँगा जब कि वह कवच इत्यादि उतारे हुए पड़ा होगा। मैं चाहता हूँ कि शस्त्र से मरनेवालों को जो उत्तम लोक मिलते हैं उन्हें बिना शस्त्र के, पशु की तरह, मारा गया धृष्टद्युम्न न पावे। तुम दोनों श्रेष्ठ वीर शीघ्र ही कवच पहनकर, खड्ग लेकर, धनुष चढ़ाकर मेरे साथ चलो।

अब रथ पर चढ़कर अश्वत्थामा शत्रुओं की ओर चले। उनके पीछे कृतवर्मा और कृपाचार्य भी चल पड़े। शत्रुओं की ओर जा रहे वे तीनों वीर यज्ञ में आहुति पा रहे तीन प्रचण्ड अग्नियों के समान जान पड़ने लगे। पाण्डवों के उस डेरे में सब लोग पहुँच गये जहाँ ४० सब लोग सो रहे थे। द्वार पर जाकर अश्वत्थामा ठहर गये।

छठा अध्याय

डेरे के द्वार पर अश्वत्थामा को महाभूत के दर्शन। उसे जीतने के लिए चलाये हुए अश्वत्थामा के अस्त्र-शस्त्रों को उसका लील लेना। चिन्तित अश्वत्थामा का महादेव की उपासना का विचार करना

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय, द्वार पर अश्वत्थामा को खड़े देखकर कृपाचार्य और कृत-वर्मा ने क्या किया सो मुझसे कहो। सञ्जय बोले—क्रोध में भरे हुए महारथी अश्वत्थामा ने कृपाचार्य और कृतवर्मा के साथ पाण्डवों के डेरे के द्वार पर आकर देखा कि, चन्द्रमा और सूर्य के समान प्रकाशमान, एक पुरुष द्वार को रोके खड़ा है। उसे देखने से ही डर के मारे रोंगटे

खड़े हो जाते हैं। वह पुरुष बाघम्बर पहने और काली मृगछाला ओढ़े है। बाघ की खाल रक्त, चर्बी आदि से तर हो रही है। वह पुरुष नाग का जनेऊ कन्धे पर डाले है और ख़ूब लम्बी भरी हुई भुजाओं में तरह-तरह के शस्त्र लिये हुए है। हाथों में बजुल्ले की जगह बड़े-बड़े विषैले साँप बँधे हुए हैं। भयानक मुँह फैला हुआ है और उसके भीतर से आग की बड़ी-बड़ी लपटें निकल रही हैं। चमकती हुई दाढ़ों से मुख और भी कराल जान पड़ता है। उसकी विचित्र हज़ारों आँखें हैं। उसके शरीर और वेष का वर्णन नहीं किया जा सकता। उसे देखकर पहाड़ भी फट जायँ। उस पुरुष के मुख, नाक, कान और आँखों से बड़ी-बड़ी ज्वालाएँ निकलने लगीं। तेज की उन ज्वालाओं से शङ्ख-चक्र-गदा धारण किये सैकड़ों हज़ारों विष्णु प्रकट हुए।

उस अत्यन्त अद्भुत और भयानक पुरुष को देखकर अश्वत्थामा तनिक भी नहीं डरे। वे उस पर अस्त्र-शस्त्र की वर्षा करने लगे। जैसे वाड़वानल (समुद्र के भीतर की आग) सागर के जल-प्रवाह को सोखता जाता है वैसे ही वह पुरुष अश्वत्थामा के बाणों को लील गया। अश्वत्थामा ने अपने बाणों को व्यर्थ होते देखकर उस पुरुष पर, जल रही आग की लपट के समान, रथशक्ति (एक शस्त्र) चलाई। प्रलयकाल में जैसे आकाश से टूटा हुआ बड़ा तारा सूर्य से टकराकर पृथ्वी पर गिर पड़े वैसे ही वह जल रही आग सी रथशक्ति उस पुरुष के शरीर में लगकर चूर होकर गिर पड़ी। तब अश्वत्थामा ने सोने की मूठवाला नीले रङ्ग का खड्ग, बिल से साँप के समान, म्यान से निकाला। अश्वत्थामा ने वह खड्ग उस पुरुष पर चलाया। वह खड्ग भी उस पुरुष के शरीर में, बिल में न्यौले की तरह, लीन हो गया। तब अश्वत्थामा ने क्रोध करके उस पुरुष के ऊपर, इन्द्र की ध्वजा के समान ऊँची, गदा चलाई। उसे भी उसने ग्रस लिया। १०

सब अस्त्र-शस्त्रों के चुक जाने पर अश्वत्थामा ने जो इधर-उधर देखा तो उन्हें देख पड़ा कि आकाश भर में करोड़ों विष्णु भरे पड़े हैं। शस्त्र-रहित अश्वत्थामा यह अत्यन्त अद्भुत

चरित्र देखकर घबरा गये और कृपाचार्य तथा कृतवर्मा की बातों को याद करके मन में पछताने लगे। वे सोचने लगे कि अप्रिय होने पर भी भलाई की बात कर रहे मित्रों और हित चाहने-वालों का कहा जो नहीं सुनता वह अवश्य ही आफ़त में पड़कर पछताता है; जैसे मैं इस समय कृपाचार्य और कृतवर्मा का निरादर करके सङ्कट में पड़ गया हूँ। जो मनुष्य शास्त्र के सुझाये मार्ग को लाँघकर, न मारने योग्य, शत्रुओं के संहार की इच्छा करता है वह धर्म के मार्ग से २० भ्रष्ट होकर कुराह में ठोकरें खाता है। बड़े-बूढ़ों का यह उपदेश है कि गाय, ब्राह्मण, राजा, स्त्री, मित्र, माता, गुरुजन, बूढ़े, बालक, जड़, अन्धे, सोये हुए, डरे हुए, मतवाले, पागल और असावधान लोगों पर शस्त्र न चलाना चाहिए। मैं शास्त्र के दिखाये इस सनातन मार्ग को लाँघकर कुराह में चला और ऐसी घोर विपत्ति में आ फँसा। किसी बड़े काम का उद्योग करके डर के मारे उसे छोड़ देने को बुद्धिमान् लोग अत्यन्त घोर आपत्ति बतलाते हैं। अपने से शक्ति में अधिक पुरुष को जीतने के, न हो सकनेवाले, काम को कौन कर सकता है? इसमें सन्देह नहीं कि मनुष्य का पौरुष दैव से बढ़कर नहीं है। पौरुष से किया गया काम यदि दैव के विरोध से नहीं सिद्ध होता तो उस काम का करनेवाला आदमी धर्म की राह से भ्रष्ट होकर विपत्ति में पड़ता है। यदि कोई मनुष्य पहले प्रतिज्ञा करके किसी काम के करने में प्रवृत्त होकर पीछे डर के मारे उसे छोड़ बैठता है तो उसका पहले इस तरह प्रतिज्ञा करना बड़ी भारी नासमझी है। बिना विचारे काम करने के कारण यह वही भय मेरे आगे आया है। द्रोणाचार्य का पुत्र कभी युद्ध से विमुख नहीं हो सकता। उधर यह महाभूत, दैव के दण्ड के समान, मेरे आगे खड़ा है। बार-बार सोचने पर भी समझ में नहीं आता कि यह कौन है। मेरी बुद्धि जो ३० अधर्म से गन्दी हुई है उसी का यह फल, इस प्राणी के रूप से, मेरी राह रोके खड़ा है। इसमें सन्देह नहीं कि आज दैव ही मुझको युद्ध से हटा रहा है। बिना दैव की सहायता के यह बाधा दूर नहीं हो सकती। मैं अब सबके स्वामी, जटाजूट धारण करनेवाले, देवदेव, उमा के पति, कपालों की माला पहने, भग के नेत्रों को निकालनेवाले, परमदेव, रुद्र की शरण में जाता हूँ। वही इस दैव-दण्ड को दूर करेंगे। महादेवजी तप और विक्रम में सब देवताओं से श्रेष्ठ ३४ हैं। इसी से मैं शूलपाणि शङ्कर की शरण में जाता हूँ।

सातवाँ अध्याय

अश्वत्थामा के शिव की स्तुति करने पर सोने की वेदी में आग प्रकट होना। अश्वत्थामा के पास भयावने भूतों का आना। अश्वत्थामा का अपनी ही बलि देना। शिवजी का उनको खड्ग देकर उनके शरीर में प्रवेश करना और अश्वत्थामा का डेरे के भीतर घुसना

सञ्जय ने कहा कि राजन्, अश्वत्थामा सोच-विचारकर रथ से उतर पड़े और पवित्र भाव से महादेव की यों स्तुति करने लगे—उग्र, स्थाणु, शिव, रुद्र, शर्व, ईशान, ईश्वर, गिरिश, वर देनेवाले देव, जगत् को जिलानेवाले, शितिकण्ठ, अज, हर, दक्ष के यज्ञ को मिटानेवाले, विश्वरूप, विरूपाक्ष, बहुरूप, उमापति, श्मशान में रहनेवाले, महागणपति, विभु, खट्वाङ्गधारी, जटाधारी, ब्रह्मचारी, आदि नामों से पुकारे जानेवाले शङ्कर को प्रणाम है। भगवन्, देवदेव! मैं बहुत ही छोटा आदमी आज एक महा-कठिन काम करना चाहता हूँ। मैं आज स्वयं अपनी बलि देकर आपकी आराधना करूँगा। आपकी स्तुति की गई है, आप स्तुति करने योग्य हैं और आपकी स्तुति की जा रही है। आप अमोघ, असह्य और अनिवार्य हैं। आपको लोग विलोहित, नीलकण्ठ, शक्र, विश्व को उत्पन्न करनेवाले, ब्रह्म, ब्रह्मचारी, कृत्तिवासा, व्रतधारी, तपस्वी, तपस्वियों की गति, अनन्त, बहुरूप, गणाध्यक्ष, त्रिलोचन आदि कहते हैं। आपको अपने पारिषद प्यारे हैं। आप कुबेर के प्यारे मित्र हैं, गौरी के हृदय-वल्लभ हैं, कुमार के पिता हैं, बैल आपका उत्तम वाहन है।

आप पिङ्ग, कृत्तिवासा और अत्यन्त उग्र हैं। आप उमा को प्रसन्न करने में लगे रहते हैं। आप श्रेष्ठ हैं, श्रेष्ठों से भी श्रेष्ठ हैं, आपसे श्रेष्ठ कोई भी नहीं है। आप अस्त्र-शस्त्र-विद्या के पूरे पण्डित हैं। आप ही दिशाओं का अन्त (आकाश) और देश की रक्षा करनेवाले हैं। १० आपके मस्तक में चन्द्रमा है और आप सुवर्ण का कवच पहने हैं। हे देव, मैं एकाग्र होकर

अनन्य भाव से आपके शरणागत हूँ। हे देव, हे पवित्र! मैं अगर इस घोर आपत्ति से छुटकारा पा जाऊँगा तो अपने शरीर की बलि देकर आपकी पूजा करूँगा।

राजन्, अश्वत्थामा के इस प्रकार स्तुति करने पर उनके सामने एक सोने की वेदी (चबूतरा) प्रकट हुई। उस वेदी के ऊपर अपनी ज्वालाओं से आकाशमण्डल और दिशाओं को व्याप्त करती हुई आग भी प्रकट हुई। उस समय विचित्र अङ्गद (भुजा में पहनने का गहना) पहने, हाथ उठाये, असंख्य हाथ-पैरोंवाले, अनेक सिरोंवाले, जलती हुई आँखों से भयानक, पहाड़ ऐसे ऊँचे शङ्कर के गण वहाँ पर प्रकट हुए। उनका रूप कुत्ते, सुअर, ऊँट आदि पशुओं का सा था। उनके मुँह घोड़े, गीदड़, बैल, रीछ, बिल्ली, बाघ, सिंह, कौए, मेंढक, तोते, अजगर, हंस, कठफोरवा, चाष (एक पक्षी), कछुए, घड़ियाल, सूस, मगर, मछली, बंदर, क्रौञ्च (एक २० पक्षी), कबूतर, हाथी, बाज़, भेड़े, बकरे के ऐसे थे। किसी के लम्बे-लम्बे कान थे। किसी के हज़ार आँखें थीं। किसी का पेट बड़ा भारी था। किसी के मांस ही न था। किसी के सिर ही न था। किसी की जीभ और आँखें आग की तरह चमक रही थीं। किसी का रङ्ग आग की ज्वाला का सा था। किसी के बाल ज्वालामय थे। किसी के रोएँ जलते से थे। किसी के चार हाथ थे। कोई शङ्ख के रङ्ग का था, किसी का मुख शङ्ख के आकार का था, कोई शङ्ख की माला पहने था, किसी का शब्द शङ्ख का सा था। कोई जटा धारण किये था, किसी के पाँच शिखाएँ थीं, किसी का सिर मुँड़ा था, किसी का पेट पिचका हुआ था। किसी के चार दाढ़ें और किसी के चार जीभें थीं। किसी के कान नुकीले थे। कोई किरीट, मुकुट और कोई मौञ्जी धारण किये था। किसी के बाल घूँघरवाले थे। कोई पगड़ी दिये था, कोई कुण्डल पहने था। किसी का मुख सुन्दर था। कोई सब गहने पहने था। कोई मस्तक पर कमल धारण किये था। कोई मुकुट धारण किये था। महा-महिमा से पूर्ण ऐसे हज़ारों गण वहाँ पर देख पड़े। कोई शतघ्नी (एक शस्त्र), कोई वज्र, कोई मूसल, कोई भुशुण्डी, कोई पाश और कोई दण्ड हाथ में लिये था। कोई पताका, कोई ध्वजा, कोई घण्टा, कोई परश्वध, कोई महापाश, कोई लाठी, कोई थूनी और कोई खड्ग लिये था। किसी की पीठ पर ३० तर्कस बँधे थे और हाथ में विचित्र विकट बाण थे। किसी के सिर पर साँप का मुकुट था। कोई साँप को हाथ में लपेटे था। कोई विचित्र आभूषण पहने था। वे सब धूल उड़ाते, शरीर में कीचड़ लगाये, सफ़ेद कपड़े और माला पहने, पीले रङ्ग के, नीले रङ्ग के और सिर में मुँहवाले गण प्रसन्न होकर नगाड़े, शङ्ख, मृदङ्ग, झाँझ, ढोल, तुरही आदि बाजों को बजाने और गाने लगे। वे श्रेष्ठ गण मस्त हाथी की तरह गरजने, उछलने और फाँदने लगे। वेग के साथ दौड़ने से हवा में उनके बाल उड़ रहे थे। वे भयानक रूपवाले, शूल पट्टिश आदि शस्त्र हाथों में लिये, रङ्ग-बिरङ्गे कपड़े पहने, विचित्र माला-चन्दन आदि धारण किये, रत्न के जड़ाऊ बजुल्ले पहने, हाथ

उठाये महागण बड़े पराक्रमी थे। वे बलपूर्वक शत्रुओं का संहार करनेवाले, उनके रक्त चर्बी आदि के पीनेवाले, मांस और आँतों के खानेवाले गण बहुत ही विचित्र थे। किसी का पेट और पीठ एक में चिपका हुआ था। कोई बहुत छोटा था, कोई बहुत मोटा था। कोई बहुत नाटा था, कोई बहुत लम्बा था। वे बड़े भयानक और विकट थे। किसी के काले-काले लम्बे ओठ थे। किसी के मेढ़्, अण्डकोश और पिँडलियाँ बहुत बड़ी थीं। वे चन्द्र-सूर्य और ग्रह-नक्षत्र आदि से परिपूर्ण आकाशमण्डल को पृथ्वी पर लाने की शक्ति रखते हैं। वे चारों प्रकार के प्राणियों का संहार कर सकते हैं। वे डर का नाम भी नहीं जानते। वे भगवान् शङ्कर की भौंह के इशारे पर चलते हैं और अपनी इच्छा से सब काम करते हैं। वे त्रिलोकी के ईश्वर इन्द्र आदि के भी ईश्वर हैं। वे ईर्ष्या-द्वेष से बचकर ४० नित्य आनन्द में मग्न रहते हैं। वे वाक्-पटु हैं। वे लोग आठ तरह की सिद्धियों के ऐश्वर्य को पाकर भी अभिमान नहीं रखते। उनके कर्मों को देखकर भगवान् शङ्कर को भी विस्मय होता है। उन्होंने अनन्य भाव से मन, वाणी और कर्मों के द्वारा शिव की आराधना की है। शिव भी अपने पुत्रों की तरह मन, वाणी और कर्म द्वारा उनकी रक्षा करते हैं। वे सदा चार प्रकार के सोमरस को और ब्राह्मणों से शत्रुता रखनेवालों के रक्त को क्रोध करके पीते हैं। वे वेद-पाठ, ब्रह्मचर्य, तपस्या और इन्द्रिय-निग्रह द्वारा शिव की आराधना करके शिव के रूप को प्राप्त हो गये हैं। भूत, भविष्य और वर्त्तमान के स्वामी महादेव और देवी पार्वती उन अपने ही स्वरूप गणों के साथ एकत्र भोजन करते हैं।

अनेक प्रकार के बाजे बजाकर, हँसकर और बार-बार गरजकर क्रोध के साथ सिंहनाद करके विश्व को डराते हुए वे सब गण अश्वत्थामा के तेज को देख, उनकी महिमा का वर्णन करने के लिए, अपनी प्रभा फैलाते हुए महादेव की स्तुति करते-करते अश्वत्थामा की ओर चले। सोते हुओं का संहार देखने के लिए उग्र बेलन, जलती लकड़ी, त्रिशूल, पट्टिश (एक शस्त्र) हाथ में लिये घोर रूपवाले हज़ारों गण अश्वत्थामा के पास पहुँचे। जिन्हें देखकर तीनों लोक ५० के आदमी डर जायँ उन भूतगणों को देखकर अश्वत्थामा तनिक भी नहीं डरे।

अब हाथ की उँगलियों में गोह के चमड़े की खोल चढ़ाये हुए, धनुष हाथ में लिये, अश्वत्थामा ने अपने ही शरीर का बलिदान करने का विचार किया। धनुष को लकड़ी (समिधा), बाणों को कुश की पैंती और अपने को हव्य की आहुति बनाकर अश्वत्थामा ने वह कर्म शुरू किया। अब क्रोधित प्रतापी अश्वत्थामा ने सोम के मन्त्र से अपने शरीर की आहुति दी। रौद्र कर्म करनेवाले रुद्र को रौद्र कर्म से प्रसन्न करने के लिए हाथ जोड़कर स्तुति करते हुए अश्वत्थामा बोले—भगवन्, मैं अङ्गिरा के वंश में उत्पन्न हुआ हूँ। मैं इस आपत्ति के समय भक्तिपूर्वक एकाग्र भाव से आपके आगे आग में अपने शरीर की आहुति देता हूँ। आप विश्वरूप हैं, इस बलिदान को

स्वीकार कीजिए। सब प्राणी आप में हैं और आप सब प्राणियों में विराजमान हैं। सब प्रधान गुण आप में ही हैं। हे सब प्राणियों के आश्रय-स्वरूप स्वामी! यदि मैं इस समय शत्रुओं को हराने में असमर्थ हूँ तो आप मेरे शरीर को ग्रहण कीजिए।

६० महाबली अश्वत्थामा यह कहकर उस वेदी में जल रही आग के भीतर बैठ गये। ऊपर को हाथ उठाये, चेष्टाहीन, हवि-स्वरूप अश्वत्थामा को देखकर भगवान् शङ्कर प्रकट होकर मुसकुराते हुए कहने लगे—हे वीर! पराक्रमी अर्जुन ने सत्य, शुद्धता, सिधाई, स्वार्थत्याग, तप, नियम, क्षमा, भक्ति, धैर्य और मन-वाणी-काया से मेरी बड़ी आराधना की है। इस कारण मुझे अर्जुन से प्यारा और कोई नहीं है। उनका मान रखने और तुम्हारे बल-पराक्रम की परीक्षा करने के लिए मैंने अब तक पाञ्चालों की रक्षा की और बहुत सी माया दिखाई। किन्तु अब इन पाञ्चालों का काल आ गया है। अब ये जी नहीं सकते।

वीर अश्वत्थामा से इस तरह कहकर भगवान् शिव ने, खड्ग देकर, उनके शरीर में प्रवेश किया। भगवान् शिव के प्रवेश करने पर अश्वत्थामा का तेज पहले से भी अधिक हो गया। देव-तेज पाकर अश्वत्थामा वेग के साथ डेरे के भीतर घुस गये। डेरे के भीतर जा रहे शङ्कर-
६८ सदृश महारथी अश्वत्थामा के पीछे अदृश्य भूत, राक्षस आदि चले।

७वां अध्याय—पृ० ३२०४—हवि-स्वरुप अश्वत्थामा को देख कर भगवान शङ्कर प्रगट हो मुस्कुराते हुये कहने लगे, हे वीर...............

महाभारत के स्थायी ग्राहक बनने के नियम

(१) जो सज्जन हमारे यहाँ महाभारत के स्थायी ग्राहकों में अपना नाम और पता लिखा देते हैं उन्हें महाभारत के अङ्कों पर २०) सैकड़ा कमीशन काट दिया जाता है। अर्थात् १।) प्रति अङ्क के बजाय स्थायी ग्राहकों को १) में प्रति अङ्क दिया जाता है। ध्यान रहे कि डाकखर्च स्थायी और फुटकर सभी तरह के ग्राहकों को अलग देना पड़ेगा।

(२) साल भर या छः मास का मूल्य १२) या ६), दो आना प्रति अङ्क के हिसाब से रजिस्ट्री खर्च सहित १३॥) या ६॥।) जो सज्जन पेशगी मनीआर्डर-द्वारा भेज देंगे, केवल उन्हीं सज्जनों को डाकखर्च नहीं देना पड़ेगा। महाभारत की प्रतियाँ राह में गुम न हो जायँ और ग्राहकों की सेवा में वे सुरक्षित रूप से पहुँच जायँ, इसी लिए रजिस्ट्री द्वारा भेजने का प्रबन्ध किया गया है।

(३) उसके प्रत्येक खंड के लिए अलग से बहुत सुन्दर जिल्दें भी सुनहले नाम के साथ तैयार कराई जाती हैं। प्रत्येक जिल्द का मूल्य ।॥) रहता है परन्तु स्थायी ग्राहकों को वे ॥) ही में मिलती हैं। जिल्दों का मूल्य महाभारत के मूल्य से बिलकुल अलग रहता है।

(४) स्थायी ग्राहकों के पास प्रतिमास प्रत्येक अङ्क प्रकाशित होते ही बिना विलम्ब वी० पी० द्वारा भेजा जाता है। बिना कारण वी० पी० लौटाने से उनका नाम ग्राहक-सूची से अलग कर दिया जायगा।

(५) ग्राहकों को चाहिए कि जब किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार करें तो कृपा कर अपना ग्राहक-नम्बर जो कि पता की स्लिप के साथ छपा रहता है और पूरा पता अवश्य लिख दिया करें। बिना ग्राहक-नम्बर के लिखे हज़ारों ग्राहकों में से किसी एक का नाम ढूँढ़ निकालने में बड़ी कठिनाई पड़ती है और पत्र की कार्रवाई होने में देरी होती है। क्योंकि एक ही नाम के कई-कई ग्राहक हैं। इसलिए सब प्रकार का पत्र-व्यवहार करते तथा रुपया भेजते समय अपना ग्राहक-नम्बर अवश्य लिखना चाहिए।

(६) जिन ग्राहकों को अपना पता सदा अथवा अधिक काल के लिए बदलवाना हो, अथवा पते में कुछ भूल हो, उन्हें कार्यालय को पता बदलवाने की चिट्ठी लिखते समय अपना पुराना और नया दोनों पते और ग्राहक-नम्बर भी लिखना चाहिए। जिससे उचित संशोधन करने में कोई दिक़्क़त न हुआ करे। यदि किसी ग्राहक को केवल एक दो मास के लिए ही पता बदलवाना हो, तो उन्हें अपने हलके के डाकख़ाने से उसका प्रबन्ध कर लेना चाहिए।

(७) ग्राहकों से सविनय निवेदन है कि नया आर्डर या किसी प्रकार का पत्र लिखने के समय यह ध्यान रक्खें कि लिखावट साफ़ साफ़ हो। अपना नाम, गाँव, पोस्ट और ज़िला साफ़ साफ़ हिन्दी या अँगरेज़ी में लिखना चाहिए ताकि अङ्क या उत्तर भेजने में दुबारा पूछ-ताछ करने की ज़रूरत न हो। "हम परिचित ग्राहक हैं" यह सोच कर किसी को अपना पूरा पता लिखने में लापरवाही न करनी चाहिए।

(८) यदि कोई महाशय मनी-आर्डर से रुपया भेजें, तो 'कूपन' पर अपना पता-ठिकाना और रुपया भेजने का अभिप्राय स्पष्ट लिख दिया करें, क्योंकि मनीआर्डरफ़ार्म का यही अंश हमको मिलता है।

सब प्रकार के पत्रव्यवहार का पता—

मैनेजर महाभारत विभाग, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

३३ हिन्दी महाभारत

आवश्यक सूचनायें

(१) हमने प्रथम खण्ड की समाप्ति पर उसके साथ एक महाभारत-कालीन भारतवर्ष का प्रामाणिक सुन्दर मानचित्र भी देने की सूचना दी थी। इस सम्बन्ध में हम ग्राहकों को सूचित करते हैं कि पूरा महाभारत समाप्त हो जाने पर हम प्रत्येक ग्राहक को एक परिशिष्ट अध्याय बिना मूल्य भेजेंगे जिसमें महाभारत-सम्बन्धी महत्त्व-पूर्ण खोज, साहित्यिक आलोचना, चरित्र-चित्रण तथा विश्लेषण आदि रहेगा। इसी परिशिष्ट के साथ ही मानचित्र भी लगा रहेगा जिसमें पाठकों को मानचित्र देख कर उपरोक्त बातें पढ़ने और समझने आदि में पूरी सुविधा रहे।

(२) महाभारत के प्रेमी ग्राहकों को यह शुभ समाचार सुन कर बड़ी प्रसन्नता होगी कि हमने कानपुर, उन्नाव, काशी (रामनगर), कलकत्ता, ग़ाज़ीपुर, बरेली, मथुरा (वृन्दावन), जोधपुर, बुलन्दशहर, प्रयाग और लाहौर आदि में ग्राहकों के घर पर ही महाभारत के अङ्क पहुँचाने का प्रबन्ध किया है। अब तक ग्राहकों के पास यहीं से सीधे डाक-द्वारा प्रतिमास अङ्क भेजे जाते थे जिसमें प्रति अङ्क तीन चार आना खर्च होता था पर अब हमारा नियुक्त किया हुआ एजेंट ग्राहकों के पास घर पर जाकर अङ्क पहुँचाया करेगा और अङ्क का मूल्य भी ग्राहकों से वसूल कर ठीक समय पर हमारे यहाँ भेजता रहेगा। इस अवस्था पर ग्राहकों को ठीक समय पर प्रत्येक अङ्क सुरक्षित रूप में मिल जाया करेगा और वे डाक, रजिस्टरी तथा मनीआर्डर इत्यादि के व्यय से बच जायँगे। इस प्रकार उन्हें प्रत्येक अङ्क केवल एक रुपया मासिक देने पर ही घर बैठे मिल जाया करेगा। यथेष्ट ग्राहक मिलने पर अन्य नगरों में भी शीघ्र ही इसी प्रकार का प्रबन्ध किया जायगा। आशा है जिन स्थानों में इस प्रकार का प्रबन्ध नहीं है, वहाँ के महाभारतप्रेमी सज्जन शीघ्र ही अधिक संख्या में ग्राहक बन कर इस अवसर से लाभ उठावेंगे। और जहाँ इस प्रकार की व्यवस्था हो चुकी है वहाँ के ग्राहकों के पास जब एजेंट अङ्क लेकर पहुँचे तो ग्राहकों को रुपया देकर अङ्क ठीक समय पर ले लेना चाहिए जिसमें उन्हें ग्राहकों के पास बार बार आने जाने का कष्ट न उठाना पड़े। यदि किसी कारण उस समय ग्राहक मूल्य देने में असमर्थ हों तो अपनी सुविधानुसार एजेंट के पास से जाकर अङ्क ले आने की कृपा किया करें।

(३) हम हिन्दी-भाषा-भाषी सज्जनों से एक सहायता की प्रार्थना करते हैं। वह यही कि हम जिस विराट् आयोजन में संलग्न हुए हैं आप लोग भी कृपया इस पुण्य-पर्व में सम्मिलित होकर पुण्य-सञ्चय कीजिए अपनी राष्ट्र-भाषा हिन्दी का साहित्य-भाण्डार पूर्ण करने में सहायक हूजिए और इस प्रकार सर्वसाधारण का हित-साधन करने का उद्योग कीजिए। सिर्फ़ इतना ही करें कि अपने दस-पाँच हिन्दी-प्रेमी इष्ट-मित्रों में से कम से कम दो स्थायी ग्राहक इस वेद तुल्य सर्वाङ्गसुन्दर महाभारत के और बना देने की कृपा करें। जिन पुस्तकालयों में हिन्दी की पहुँच हो वहाँ इसे ज़रूर मँगवावें। एक भी समर्थ व्यक्ति ऐसा न रह जाय जिसके घर यह पवित्र ग्रन्थ न पहुँचे। आप सब लोगों के इस प्रकार साहाय्य करने से ही यह कार्य्य अग्रसर होकर समाज का हितसाधन करने में समर्थ होगा।

—प्रकाशक

विषय-सूची

रंगीन चित्रों की सूची

आठवाँ अध्याय

पाञ्चालों का संहार

धृतराष्ट्र ने पूछा—हे सञ्जय, महारथी अश्वत्थामा जब डेरे के भीतर गये तब कृपाचार्य और कृतवर्मा डरकर लौट तो नहीं गये ? साधारण पहरेवालों ने उन्हें देखकर रोका तो नहीं ? रात को डेरे को नष्ट-भ्रष्ट करके वे सोमकों और पाण्डवों का संहार कर चुकने पर पाञ्चालों के हाथ से मारे तो नहीं गये ? [सोते में मारे गये धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, द्रौपदी के पुत्रों, पाण्डवों की सेना और पाञ्चालों की सेना से वहाँ का पृथ्वीमण्डल पट गया या नहीं ?]

सञ्जय ने कहा कि महाराज, वीर अश्वत्थामा जब डेरे के भीतर घुसे तब कृपाचार्य और कृतवर्मा उनके पीछे-पीछे चले। उन महारथियों को अपना साथ देते देखकर अश्वत्थामा ने प्रसन्न हो उनसे धीरे से कहा—आप लोग यत्न करें तो सब क्षत्रियों का नाश कर सकते हैं; इन थोड़े से बचे हुए और ख़ासकर सो रहे वीरों को मारना तो कुछ बात ही नहीं। मैं इस डेरे में घुसकर काल की तरह सबका संहार करता हुआ घूमूँगा। मेरी सलाह यह है कि आप ऐसा यत्न करें जिसमें कोई भी जीता न बचे। [आप यहीं द्वार पर खड़े रहें, जो निकले उसी को मार डालें।] अब अश्वत्थामा पाण्डवों के बड़े भारी डेरे में घुस गये। निडर अश्वत्थामा द्वार से न जाकर, दूसरी राह बनाकर, भीतर घुसे। वे पहले धीरे-धीरे धृष्टद्युम्न के रहने की जगह पर पहुँचे। पाञ्चाल लोग युद्ध में ख़ूब थक गये थे। अब [विजय पाने के कारण बे-खटके सो रहे थे उनकी सेना भी पास ही सो रही थी।] धृष्टद्युम्न के रहने के स्थान में घुसकर अश्वत्थामा ने पास से देखा कि सुन्दर रेशमी सफ़ेद बिछौने जिस पर बिछे हैं, सुगन्धित मालाएँ जिस पर रक्खी हुई हैं, उस पलँग पर बेधड़क धृष्टद्युम्न सो रहा है। वहाँ अगुरु, धूप आदि की महक बसी हुई है। अश्वत्थामा ने पैर से धृष्टद्युम्न को जगा दिया। पैर लगते ही महापराक्रमी धृष्टद्युम्न जाग पड़ा। उसने देखा कि सामने महारथी अश्वत्थामा खड़े हैं। धृष्टद्युम्न ने ज्योंही पलँग से उठकर सँभलना चाहा त्योंही महाबली अश्वत्थामा ने, बाल पकड़कर, उसे ज़मीन पर पछाड़ दिया। अब अश्वत्थामा उसे ज़ोर से रगड़ने लगे। उन्होंने एक तो बल से पकड़ लिया था, दूसरे धृष्टद्युम्न नींद के मारे अन्धा हो रहा था, इस कारण उस समय वह कुछ भी न कर सका। तब अश्वत्थामा धृष्टद्युम्न के गले और छाती पर दोनों पैर रखकर, उसे पशु की तरह मारने के लिए, मसकने लगे। धृष्टद्युम्न 'गों गों' करने और तड़पने लगा। अश्वत्थामा को नाख़ूनों से नोचते हुए धृष्टद्युम्न ने अस्पष्ट स्वर में कहा—हे आचार्य के पुत्र! देर न करो, मुझे शस्त्र से मार डालो। तुम्हारी बदौलत मुझे पुण्यात्माओं के लोक तो मिल जायँ।

धृष्टद्युम्न के इन अस्पष्ट वचनों को सुनकर अश्वत्थामा ने कहा—रे नराधम ! आचार्य की हत्या करनेवालों के लिए अच्छे लोक नहीं हैं। इस कारण हे दुष्टात्मा धृष्टद्युम्न, तू शस्त्र

से मारे जाने योग्य नहीं है। अब अश्वत्थामा ने, सिंह जैसे मस्त हाथी को मारता है वैसे, उसके मर्म-स्थलों में घुटने मारना शुरू किया। घुटनों से मारे जा रहे धृष्टद्युम्न के

शब्द से उसकी स्त्रियाँ और शरीररक्षक लोग जाग पड़े। उन्होंने देखा कि एक मनुष्यों से बढ़कर पराक्रमी पुरुष धृष्टद्युम्न को दबाये हुए है। उन्होंने समझा कि यह कोई भूत है। इसी डर से वे अश्वत्थामा पर शस्त्र नहीं चला सके। इस प्रकार धृष्टद्युम्न को मारकर तेजस्वी अश्वत्थामा फिर अन्यान्य शत्रुओं का संहार करने के लिए रथ पर चढ़कर, दिशाओं को प्रतिध्वनित करते हुए, आगे बढ़े।

महारथी अश्वत्थामा जब चले गये तब शरीर-रक्षक वीर और धृष्टद्युम्न की स्त्रियाँ चिल्लाने लगीं। धृष्टद्युम्न के आश्रय में रहनेवाले क्षत्रियगण, राजा को मरे देखकर, शोक से व्याकुल हो रोने-चिल्लाने लगे। उन सबके उस शब्द को सुनकर पास ३० के ही और क्षत्रियगण जाग पड़े। वे घबराकर कवच पहनकर कहने लगे कि क्या हुआ।

महाराज, अश्वत्थामा को देखकर डरी हुई स्त्रियाँ दीन-स्वर से कहने लगीं—जल्दी दौड़ो; हम नहीं जानतीं, यह राक्षस है या मनुष्य। वह देखो राजा की हत्या करके रथ पर जा रहा है। तब उन सब वीर क्षत्रियों ने एकाएक चारों ओर से अश्वत्थामा को घेर लिया। अश्वत्थामा ने उन सबको पाशुपत अस्त्र से मार डाला।

धृष्टद्युम्न को और उसके साथी वीरों को मारकर अश्वत्थामा ने आगे बढ़कर पास ही उत्तमौजा को पलँग पर सोते हुए देखा। उसे भी छाती पर चढ़कर, गला दबाकर, उसी तरह मार डाला। उसके रोने-चिल्लाने की परवा न की। पराक्रमी युधामन्यु ने अश्वत्थामा को राक्षस समझकर गदा उठाई और वेग से उनकी छाती पर मारी। अश्वत्थामा ने दौड़कर उसे पकड़ लिया और पृथ्वी पर पटक दिया। तड़प रहे युधामन्यु को भी, पशु की तरह, मारकर अश्वत्थामा और क्षत्रियों की तरफ़ बढ़े। शिव के दिये खड्ग को हाथ में लिये क्रोधित अश्वत्थामा ने सो रहे ४० महारथी वीरों को, यज्ञ के बलि-पशु की तरह, पैंतरे बदल-बदलकर काटना शुरू कर दिया।

बीच में जो सेना थी वह भी थकी हुई सो रही थी; उसके भी शस्त्र इधर-उधर बे सिलसिले पड़े हुए थे। उसके भी अश्वत्थामा ने खड्ग से टुकड़े-टुकड़े कर डाले। उन्होंने योद्धा, हाथी, घोड़े आदि सब को उसी श्रेष्ठ तलवार से काट डाला। काल की प्रकट की हुई मृत्यु के समान जान पड़ रहे अश्वत्थामा का शरीर रक्त से लथपथ हो गया। लाशों के फड़कने से, तलवार मारने से और फिर निकालकर उठाने से, तीन तरह से अश्वत्थामा पर रक्त के छींटे पड़ते थे। अश्वत्थामा का शरीर खून से लाल हो रहा था और उनका खड्ग भी चमक रहा था। इससे अश्वत्थामा का रूप बड़ा ही भयानक हो रहा था। वे मनुष्य ही न जान पड़ते थे। जो लोग जाग पड़े वे भी शब्द से मोहित-से हो गये। अश्वत्थामा को देखकर डर के मारे वे काँप उठे। उन क्षत्रियों ने शत्रुओं को पीड़ा पहुँचानेवाला अश्वत्थामा का वह रूप देखकर, उन्हें राक्षस समझकर, आँखें बन्द कर लीं। घोर रूप धारण किये काल की तरह डेरे में विचर रहे अश्वत्थामा ने द्रौपदी के पुत्रों को और सोमकों को देखा। उस शब्द से डरकर धनुष हाथ में लिये वे वीर उधर ही आ रहे थे। धृष्टद्युम्न के मरने की खबर पाकर द्रौपदी के पुत्र झपटे और अश्वत्थामा पर बाणों की वर्षा करने लगे। उस शब्द से प्रभद्रक लोग भी जाग पड़े, शिखण्डी भी उठ बैठा। सब मिलकर अश्वत्थामा पर बाण बरसाने लगे। उनको

बाण बरसाते देखकर अश्वत्थामा को बड़ा क्रोध हो आया। उन्हें मारने का विचार करके अश्वत्थामा ने सिंहनाद किया। पिता के वध को स्मरण करके अश्वत्थामा हज़ार उज्ज्वल चन्द्रमाओं की तरह स्वच्छ ढाल और सोने की मूठवाली दिव्य तलवार हाथ में लेकर, रथ से उतरकर, जल्दी से उनकी ओर झपटे। महाबली अश्वत्थामा ने उसी खड्ग से द्रौपदी के पुत्रों के पास जाकर उनका विनाश किया। द्रौपदी के पुत्र प्रतिविन्ध्य के पास जाकर अश्वत्थामा ने उसकी कोख में तलवार मारी। वह मरकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। प्रतापी सुतसोम ने अश्वत्थामा को पहले प्रास मारा और फिर वह तलवार उठाकर मारने चला। अश्वत्थामा ने खड्ग सहित सुतसोम का वह हाथ काटकर उसकी भी पसली में तलवार भोंक दी। कलेजा फट जाने से वह भी ५०

मरकर गिर पड़ा। नकुल के पुत्र शतानीक ने अश्वत्थामा के हृदय में रथ-चक्र फेंककर मारा। तब अश्वत्थामा ने उस पर भी चोट की। वह विह्वल होकर जब पृथ्वी पर गिर पड़ा तब अश्वत्थामा ने खड्ग से उसका सिर काट डाला। श्रुतकर्मा ने घोर बेलन उठाकर वेग से अश्वत्थामा की छाती पर मारा। अश्वत्थामा ने उसके मुँह पर तलवार मारी। इससे उसका चेहरा बिगड़ गया। वह ६० भी मरकर गिर पड़ा। उस शब्द को सुनकर वीर श्रुतकीर्त्ति चौकन्ना हो गया। वह अश्वत्थामा के ऊपर बाणों की वर्षा करने लगा। उसके बाणों की वर्षा को ढाल से रोककर कुण्डल सहित उसके सिर को अश्वत्थामा ने तलवार से काट डाला। अब भीष्म पितामह को मारनेवाले शिखण्डी को और सब प्रभद्रकों को तरह-तरह के शस्त्रों से अश्वत्थामा मारने लगे। शिखण्डी ने एक बाण अश्वत्थामा की भौंहों के बीच में मारा। तब महाबली अश्वत्थामा ने क्रोध करके शिखण्डी के पास जाकर तलवार से उसके दो टुकड़े कर डाले। क्रोधित अश्वत्थामा ने शिखण्डी को मारकर प्रभद्रकों का संहार किया। राजा विराट की बची-खुची सेना को भी अश्वत्थामा ने काट डाला। राजा द्रुपद के पुत्र, पोते, इष्ट-मित्र आदि को ढूँढ़-ढूँढ़कर महाबली अश्वत्थामा ने मारा। खड्ग के युद्ध को अच्छी तरह जाननेवाले अश्वत्थामा ने और-और लोगों का भी पीछा करके तलवार से उनके टुकड़े कर डाले।

उस समय पाण्डवों के पक्ष के वीरों ने देखा कि काले रङ्ग की, लाल मुख और आँखोंवाली, लाल माला और चन्दन धारण किये, लाल कपड़े पहने, घोर रूपवाली, हाथ में पाश लिये साक्षात् कालरात्रि खड़ी है। वह मनुष्य, हाथी, घोड़े आदि को और शस्त्रहीन महारथियों ७० को तथा केशहीन प्रेतों को पाश में बाँधे ले जाने को तैयार है। जब से कौरवों और पाण्डवों की सेना से युद्ध होने लगा तब से नित्य रात को मुख्य-मुख्य वीर सपने में इसी रूप से सबको बाँधकर ले जाती हुई कन्या के रूप में कालरात्रि को और सबका संहार कर रहे अश्वत्थामा को देखा करते थे। दैव ने पहले ही उन लोगों को मार डाला था; पीछे से अश्वत्थामा ने घोर सिंहनाद से सबको डराते हुए उनका संहार किया। दैव के सताये वे वीर, पहले के उस सपने का स्मरण करके, मन में कहने लगे कि यह उसी सपने का फल है।

अश्वत्थामा के उस सिंहनाद से पाण्डवों के डेरे में हज़ारों धनुषधारी क्षत्रिय जाग पड़े। अश्वत्थामा ने उनमें से किसी के पैर काट डाले, किसी की जाँघें काट डालीं, किसी की कोख फाड़ दी। बड़े ही उग्र भाव से दलमल डाले गये, बार-बार ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला रहे, हाथी, घोड़े आदि के पैरों से कुचले गये मुर्दों और घायलों से वह पृथ्वी पट गई। "यह क्या है? यह कौन है? यह कैसा शब्द है? क्या है? क्या किया?" इस तरह चिल्ला रहे पाञ्चालों के लिए अश्वत्थामा कालरूप हो गये। उन्होंने शस्त्र और कवच से हीन होने पर भी ८० लड़ने के लिए आये हुए पाण्डवों के पक्ष के लोगों को और सृञ्जयों को मार गिराया। अश्व-

त्थामा के शस्त्र से डरे हुए, नींद से अन्धे हो रहे, बेहोश लोग डर के मारे इधर-उधर गिर-गिर पड़ने लगे। बहुतों को मोह हो गया, बहुतों की जाँघें मानों रह गईं, बहुत लोग अत्यन्त भयभीत और शिथिल हो पड़े।

भयानक शब्द कर रहे रथ पर अश्वत्थामा फिर सवार हुए और धनुष हाथ में लेकर बाणों की चोट से औरों का संहार करने लगे। कुछ वीर उठकर अश्वत्थामा की ओर झपटे। उन्हें अश्वत्थामा ने दूर से ही मारकर कालरात्रि के अर्पण कर दिया। अश्वत्थामा ने रथचक्र, बाण-वर्षा आदि के द्वारा शत्रुओं का संहार करके बचे हुओं को फिर उसी विचित्र ढाल और दिव्य खड्ग के द्वारा काटना शुरू कर दिया। जैसे बड़े भारी तालाब को मस्त हाथी मथ डालता है वैसे ही वीर अश्वत्थामा ने उस डेरे को मथना शुरू किया।

उस शब्द से अचेत पड़े हुए सिपाही उठ बैठे। वे नींद और डर से व्याकुल होकर इधर-उधर दौड़ने लगे। उनमें से कुछ चिल्लाने और कुछ अण्ट-शण्ट बकने लगे। किसी को शस्त्र और वस्त्र ढूँढ़े नहीं मिलते थे। बहुतों के बाल खुले हुए थे। वे एक दूसरे को पहचान भी न सकते थे। कोई उठते-उठते धम से गिर पड़े और कुछ सुस्ती के मारे इधर-उधर भागने लगे। किसी-किसी के डर के मारे मल और मूत्र निकल पड़ा। हाथी-घोड़े रस्सी तुड़ा- ९० तुड़ाकर इधर-उधर कूदने-फाँदने लगे। इससे और भी कोलाहल मच गया। कुछ लोग डर के मारे धरती पर लेट गये और उनको उसी दशा में हाथी-घोड़ों ने कुचल डाला।

इस प्रकार उस युद्धभूमि के अत्यन्त भयानक हो उठने पर बहुत से राक्षस प्रसन्न होकर गरजने लगे। महादेव के गणों और राक्षसों का वह घोर शब्द चारों ओर गूँज उठा। उनके और मर रहे लोगों के आर्त्तनाद को सुनकर छूटे हुए हाथी-घोड़े इधर-उधर लोगों को रौंदते फिरने लगे। हाथी-घोड़ों के पैरों से उड़ी हुई धूल ने रात के अँधेरे को और भी घना कर दिया। उस अँधेरे में सब लोग बिलकुल अन्धे से हो गये। उस समय बाप बेटे को और भाई भाई को नहीं पहचान सकता था। हाथी हाथियों को लाँघकर, बे-सवार के घोड़े घोड़ों को फाँदकर, लातें मारने, तोड़ने-फोड़ने और रौंदने लगे। वे पशु चोट खाकर गिरने और एक दूसरे को मारने, गिराने और गिराकर रौंदने लगे। नींद में अचेत पड़े हुए लोग एकाएक उठ-कर अन्धकार के मारे कुछ सूझ न पड़ने के कारण, काल की प्रेरणा से, अपने ही लोगों को मारने १०० लगे। उस समय द्वारपाल लोग द्वारों को छोड़कर, और डेरे की रक्षा करनेवाले लोग अपने-अपने स्थानों को छोड़कर, अपनी शक्ति भर जिधर राह मिली उधर जी लेकर भागे। उनकी बुद्धि दैव ने नष्ट कर दी थी; वे लोग किसी को न पहचान सकने के कारण "हे पिता! हे पुत्र!" कहकर चिल्लाते हुए अपने भाई-बन्धुओं को छोड़कर भागे। सब लोग गोत्र और नाम ले-लेकर अपने-अपने लोगों को पुकारने लगे। बहुत लोग हाहाकार करते हुए पृथ्वी पर लोट रहे थे।

उनको देख-देखकर अश्वत्थामा मारने लगे। मारे जा रहे कुछ क्षत्रिय डेरे से निकलकर बाहर जाने लगे। उन डरे हुए, जान बचाने के लिए भाग रहे क्षत्रियों को द्वार पर खड़े हुए कृतवर्मा और कृपाचार्य ने मार डाला। जिनके कवच और यन्त्र खुल गये हैं, बाल उलझ गये हैं, और जो हाथ जोड़े पृथ्वी पर पड़े काँप रहे हैं उनमें किसी को भी कृतवर्मा और कृपाचार्य ने नहीं छोड़ा। डेरे से बाहर निकलनेवाला कोई जीता नहीं बचा।

अब दुर्बुद्धि कृतवर्मा और कृपाचार्य ने, अश्वत्थामा का प्रिय करने के लिए, डेरे में तीन १० जगह आग लगा दी। उजेला होने पर अश्वत्थामा, यमराज की तरह, खड्ग हाथ में लिये इधर-उधर फिरने लगे। कुछ लोग अश्वत्थामा के पास आ गये और कुछ लोग उस तरफ़ से भागे। उन सबको अश्वत्थामा ने तलवार के घाट उतार दिया। कुछ वीरों को अश्वत्थामा ने बीच से काटकर पृथ्वी पर गिरा दिया। लम्बे-चौड़े हाथी, घोड़े और मनुष्य आर्त्तनाद करते हुए पृथ्वी पर गिरने लगे। उनसे वहाँ की पृथ्वी भर गई। हज़ारों वीरों के कटने-मरने पर बहुत से कबन्ध उठ खड़े हुए और बहुत से कबन्ध उठ-उठकर गिर पड़े। अश्वत्थामा ने बहुतों के बाज़ू-बन्द तथा शस्त्र सहित हाथ, सिर, हाथी की सूँड़ ऐसी मोटी जाँघें, पिंडली और पैर काट डाले। वीर अश्वत्थामा ने किसी की पीठ काट डाली, किसी की पसलियों में तलवार भोंक दी, किसी का सिर काट डाला और किसी को मार भगाया। किसी के कन्धे काट डाले, किसी के शरीर के भीतर सिर घुसेड़ दिया। सिसक रहे और मरे हुए हज़ारों मनुष्यों और हाथी-घोड़ों से पटी हुई वह पृथ्वी बहुत ही भयानक जान पड़ने लगी। यक्षों और राक्षसों से १२० परिपूर्ण और रथ, हाथी, घोड़े आदि से दारुण उस पृथ्वी पर—क्रोधित अश्वत्थामा के मारे हुए—वीर भाइयों, बापों और बेटों के नाम ले-लेकर पुकारने लगे। कुछ लोग कहने लगे कि क्रोध करके धृतराष्ट्र के पुत्रों ने युद्ध में हमारा वैसा विनाश नहीं किया जैसा क्रूर कर्मवाले राक्षसों ने सोते में हमारा संहार किया। पाण्डवों के पास न रहने से ही यह हत्याकाण्ड हुआ है। असुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस आदि कोई भी श्रीकृष्ण की सलाह पर चलनेवाले अर्जुन को युद्ध में नहीं जीत सकते। अर्जुन ब्राह्मणों के भक्त, सत्यवादी, जितेन्द्रिय और सब जीवों पर दया करने-वाले हैं। सोते हुए, मतवाले, शस्त्र रख देनेवाले, हाथ जोड़नेवाले, भाग रहे, बाल खोले हुए शरणागत शत्रु को वे कभी नहीं मारते। क्रूर कर्मवाले राक्षसों ने उनके न रहने से ही हमारा यह संहार किया है। इस तरह कह रहे बहुत से लोग पृथ्वी पर पड़े हुए थे।

आदमियों के चिल्लाने का और अन्यान्य प्रकार का वह घोर शब्द दम भर में शान्त हो गया। रक्त की नदी बह चलने पर वह धूल भी घड़ी भर में बैठ गई। पशुओं को जैसे पशु-पति मारें वैसे क्रोधित अश्वत्थामा ने तड़प रहे, घबराकर भागे हुए, उत्साहहीन हज़ारों मनुष्यों को काट-काटकर गिरा दिया। एक दूसरे से लिपटकर जान बचाकर पड़े हुए, छिपे हुए और

लड़ रहे, किसी को भी अश्वत्थामा ने नहीं छोड़ा। बहुत से लोग आग से जलकर और अश्व- ३० त्थामा के वार से घबराकर परस्पर मार-पीट करने और मरने-मारने लगे। अश्वत्थामा ने आधी रात में ही पाण्डवों की इतनी बड़ी सेना का संहार कर डाला। हाथी, घोड़े, मनुष्य आदि का संहार करनेवाली उस भयानक रात ने रात को घूमनेवाले जीवों का आनन्द बढ़ाया। तरह-तरह के राक्षस और पिशाच वहाँ मनुष्यों का मांस खाते और रक्त पीते देख पड़ने लगे। कराल, मटमैले रङ्गवाले, रौद्र रूप-वाले, पहाड़ ऐसे दाँतोंवाले, मैले रङ्ग के, बड़े-बड़े बालोंवाले, भयानक मुखवाले, पाँच पैरोंवाले, बड़े पेटवाले, पीछे की ओर मुड़ी हुई उँगलियोंवाले, रूखे, विरूप, भयानक शब्दवाले, हाथी के ऐसे मुँहवाले, नीले रङ्ग के, तरह-तरह के राक्षस वहाँ पर अपने पुत्र, स्त्री आदि के साथ देख पड़े। बहुत से पिशाच और राक्षस रक्त पीकर "यह बढ़िया है, यह पवित्र है, इसका स्वाद अच्छा है" कह-कहकर नाचने लगे। तरह-तरह के मुखवाले और बड़े पेटवाले भयानक मांसाहारी, क्रूर कर्मवाले करोड़ों अरबों राक्षस ख़ूब मेदा, मज्जा, हड्डी, रक्त, मांस,

चर्बी आदि खा-पीकर इधर-उधर उछलने-कूदने लगे। वे तृप्त और प्रसन्न होकर इधर-उधर १४० नाचते-गाते देख पड़ने लगे।
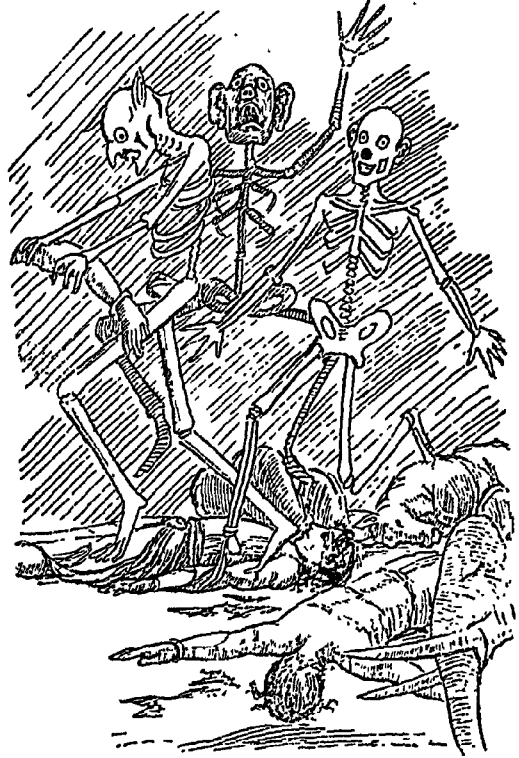
सवेरे अश्वत्थामा ने उस छावनी से जाने का विचार किया। उनकी तलवार मूठ समेत मनुष्यों के रक्त से सनी हुई थी। वह तलवार की मूठ अश्वत्थामा के हाथ में चिपक सी गई थी। युग के अन्त में सब प्राणियों को भस्म कर डालनेवाले अग्नि की तरह अश्वत्थामा ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी करके कठिन काम कर डाला। अब उन्हें पिता की हत्या का रञ्ज न रहा। रात को क़त्ले-आम करने के लिए जिस समय अश्वत्थामा छावनी में घुसे थे उस समय सबके सो जाने से वहाँ सन्नाटा था और अब चलते समय भी वहाँ इसलिए सन्नाटा था कि कोई जीता-जागता बचा ही न था। कृपाचार्य और कृतवर्मा को प्रसन्न करते हुए उन्होंने अपनी करनी का हाल कह सुनाया। उन्होंने भी हज़ारों पाञ्चालों और सृञ्जयों के काट डालने की सूचना

प्रसन्नतापूर्वक दी। तब तीनों ने मिलकर प्रसन्नता के कारण ज़ोर से आनन्द प्रकट किया और ताल १५० ठोंके। बेख़बर सोये हुए पाञ्चालों और सृञ्जयों के लिए वह रात यों बुरी तरह बीती। काल की महिमा तो देखिए कि हमारे दल को चौपट करके वे लोग स्वयं भी किस तरह मारे गये।

धृतराष्ट्र ने कहा—सञ्जय, महारथी अश्वत्थामा ने मेरे बेटे की विजय के लिए तत्पर होकर पहले ही ऐसा दुष्कर कर्म क्यों नहीं किया? सब क्षत्रियों का नाश हो जाने पर वीर अश्वत्थामा ने क्यों यह ओछा काम किया? सञ्जय बोले—महाराज! उस दिन पाण्डव, श्रीकृष्ण और सात्यकि, कोई भी वहाँ न था। इसी से अश्वत्थामा यह काम कर सके। इन लोगों के सामने तो इन्द्र भी यह काम नहीं कर सकते थे। अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा "बड़ी बात! बड़ी बात!" कहकर चिल्लाने लगे। प्रसन्न होकर कृपाचार्य और कृतवर्मा ने अश्वत्थामा का अभिनन्दन किया और अश्वत्थामा ने उन्हें गले लगाया। अब प्रसन्न होकर अश्वत्थामा ने कहा—पाञ्चाल, द्रौपदी के पुत्र, सोमक और मत्स्य आदि बचे-खुचे सब क्षत्रियों को आज मैंने मार डाला। हम अपना काम करके कृतकृत्य हो चुके। अब देर न करो, आओ चलो, यदि १५६ राजा दुर्योधन अभी जीते हों तो उनको यह प्रिय समाचार सुनावें।

नवाँ अध्याय

दुर्योधन के पास आकर अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा का शोक करना। अश्वत्थामा का दुर्योधन से सब हाल कहना। दुर्योधन की मृत्यु। अश्वत्थामा आदि का नगर को जाना। सञ्जय की दिव्य दृष्टि का लोप

सञ्जय बोले—महाराज, अश्वत्थामा आदि तीनों वीर सब पाञ्चालों और द्रौपदी के बेटों को मारकर वहाँ आये जहाँ दुर्योधन अधमरे पड़े थे। उन्होंने देखा कि दुर्योधन के शरीर में कुछ-कुछ जान है। रथों से उतरकर तीनों वीरों ने दुर्योधन को घेर लिया। उन्होंने देखा कि टूटी जाँघवाले दुर्योधन अचेत पड़े हुए हैं। [बड़ा कष्ट मिलने पर भी प्राण निकलने नहीं पाते।] मुँह से रक्त गिर रहा है। घोर रूपवाले कुत्ते और गीदड़ आदि पशु चारों ओर से घेरे हुए हैं। वे पास आकर दुर्योधन के शरीर को नोचना चाहते हैं और वे बड़े कष्ट से उनको हाँक रहे हैं। घोर पीड़ा से तड़प रहे दुर्योधन को पृथ्वी पर इधर-उधर लोटते देखकर अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा शोक से व्याकुल हो गये। रक्त से सने हुए, लम्बी साँसें ले रहे, उन तीनों वीरों से दुर्योधन वैसे ही जान पड़ने लगे जैसे तीन यज्ञ के अग्नियों से वेदी की शोभा होती है। राजा दुर्योधन को पृथ्वी पर पड़े देखकर असह्य दुःख से तीनों वीर रोने लगे। रणभूमि में पड़े राजा के मुँह से रक्त को पोंछकर कृपाचार्य इस प्रकार विलाप करने लगे—दैव के

लिए कोई भी काम कठिन नहीं है! यह देखो, ग्यारह अक्षौहिणी सेना के स्वामी दुर्योधन पृथ्वी पर मरे पड़े हैं। सोने के रङ्गवाले, गदा को सबसे प्रिय समझनेवाले, राजा के पास—प्रिया के समान—सोने से मढ़ी हुई गदा पड़ी है। यशस्वी शूर दुर्योधन को, स्वर्ग जाते समय भी, यह गदा नहीं छोड़ती। प्रसन्न स्त्री जैसे पति के पास महल में लेटी हो वैसे ही यह गदा भी इस वीर के पास पड़ी हुई है। समय के फेर को तो देखो! जिनका अभिषेक हुआ है उन महाराजाओं के आगे चलनेवाला यह वीर मरा हुआ धूल में लोट रहा है! जिस कौरवराज ने बड़े-बड़े क्षत्रिय वीरों को युद्ध में मारा वह आज, शत्रु के हाथों मरकर, पृथ्वी पर लोट रहा है! डर के मारे जिसे हज़ारों महाराज सिर झुकाते थे वह यहाँ वीरों की सेज पर कुत्तों और गीदड़ों से घिरा पड़ा है। अपने-अपने कार्य के लिए पहले द्विज लोग जिसके पास आते थे उसके पास इस समय, मांस नोचने के लिए, मांसाहारी जीव बैठे हैं। १०

सञ्जय कहते हैं कि पृथ्वी पर पड़े हुए दुर्योधन को देखकर अश्वत्थामा करुण स्वर से यों विलाप करने लगे—हे राजाओं में सिंह, बलदेवजी के शिष्य! तुम कुबेर के समान रण में धनुषधारियों में श्रेष्ठ समझे जाते थे। दुर्बुद्धि भीमसेन को तुम ऐसे बली और पुरुषार्थी को मारने का मौक़ा ही कैसे सूझ पड़ा? महाराज, अवश्य ही काल इस संसार में बड़ा प्रबल है। काल की ही यह लीला है कि आज हम तुमको भीमसेन के हाथों मारा गया देख रहे हैं। तुम सब धर्मों के जाननेवाले महाराज थे; तुमको नीच भीमसेन ने कैसे मारा! अवश्य ही काल को कोई टाल नहीं सकता! द्वन्द्व-युद्ध के लिए तुमको बुलाकर, अधर्म करके, भीमसेन ने तुम्हारी जाँघें तोड़ डालीं। एक तो तुमको अधर्म से मारा और फिर तुम्हारे सिर को ठुकराया। भीमसेन के इस अन्याय को चुपचाप देखनेवाले युधिष्ठिर २०

और कृष्ण को धिक्कार है! जब तक संसार रहेगा तब तक वीर लोग कहेंगे कि भीमसेन ने तुमको छल करके मारा। यदुनन्दन बलदेव सदा सबके आगे तुम्हारी बड़ाई किया करते हैं कि दुर्योधन गदा-युद्ध में मेरा शिष्य है; उसके समान और कोई गदा-युद्ध नहीं कर सकता। राजन्,

ऋषि लोग क्षत्रिय के लिए जो श्रेष्ठ गति बताते हैं वही गति तुमने, सामने लड़कर, युद्ध में मरने से प्राप्त कर ली। हे वीर दुर्योधन, मैं तुम्हारे लिए शोक नहीं करता। मैं तो उन तुम्हारे माता-पिता गान्धारी और धृतराष्ट्र के लिए शोक कर रहा हूँ जिनके सौ पुत्र मारे गये हैं। [अभी तक तुम उनके स्वामी थे, आज वे अनाथ हो गये।] अब भिक्षुक की तरह पेट पालते और शोक
३० करते हुए वे दोनों पृथ्वी पर विचरेंगे! कृष्ण और दुर्बुद्धि अर्जुन को धिक्कार है। वे अपने को धर्म का जाननेवाला समझते हैं। उन्होंने अधर्म से तुम्हारा वध होते देखकर भी कुछ नहीं कहा। महाराज, निर्लज्ज पाण्डव क्या मुँह लेकर कहेंगे कि हमने दुर्योधन को मारा। हे दुर्योधन, तुम युद्ध में मारे जाने के कारण धन्य हो। धर्म के साथ तुमने शत्रुओं से सामने युद्ध किया है। जिनके पुत्र, भाई और नातेदार आदि मारे गये हैं उन गान्धारी और अन्धे धृत-राष्ट्र की अब क्या दशा होगी? तुम्हारे पीछे न जानेवाले हम तीनों योद्धाओं को धिक्कार है। तुम सब इच्छाओं को पूर्ण करते, प्रजा की रक्षा और हित करते थे; तुम्हारे साथ न मरने के कारण हम नराधमों को धिक्कार है। हे वीर! तुम्हारी कृपा और पराक्रम से कृपाचार्य के यहाँ, मेरे यहाँ और मेरे पिता के यहाँ रत्न भरे पड़े हैं। तुम्हारी प्रसन्नता से हम लोगों ने अपने मित्रों और भाई-बन्धुओं के साथ बड़ी-बड़ी दक्षिणाएँ देकर बड़े-बड़े यज्ञ किये हैं। युद्ध में लड़कर मरनेवाले राजाओं को आगे करके जिस राह से तुम गये हो उस राह को हम पापी कहाँ पा सकेंगे? हम तीनों तुम्हारे पीछे न जा सके, यही हमें बड़ा भारी दुःख है। हम
४० लोग विना प्रयोजन के हैं; हम तुम्हारे सलूकों को सदा स्मरण करते रहेंगे। हमने ऐसा कौन खोटा काम किया है जिससे तुम्हारे साथ नहीं जा सके। हे कौरवों में श्रेष्ठ, अवश्य ही हम इस पृथ्वी पर रहकर दुःख भोगेंगे। तुम्हारे विना हमको शान्ति और सुख कहाँ? महाराज! तुम स्वर्ग में जाकर, मेरे कहे के अनुसार, जो जैसा ज्येष्ठ और श्रेष्ठ महारथी हो उसका उसी के अनुसार सम्मान करके प्रधान योद्धा मेरे पिता द्रोणाचार्य से कहना कि आज अश्वत्थामा ने धृष्ट-द्युम्न को मार डाला। महारथी बाह्लीक, जयद्रथ, सोमदत्त, भूरिश्रवा और अन्यान्य वीर पहले से चले गये हैं; स्वर्ग में उनके गले लगकर, मेरे कहने से, तुम उनके कुशल-समाचार पूछना।

सञ्जय कहते हैं कि महाराज, जिनकी जाँघें टूट गई हैं और जिनके प्राण निकल रहे हैं उन अचेत राजा दुर्योधन से अश्वत्थामा ने फिर कहा—दुर्योधन, अगर तुम जीते हो तो कानों को सुख देनेवाली मेरी बात सुनो। पाण्डवों की ओर पाँचों पाण्डव, कृष्ण और सात्यकि, ये सात आदमी और तुम्हारी ओर केवल हम तीन योद्धा बचे हैं। द्रौपदी के पुत्र, धृष्टद्युम्न के पुत्र,
५० पाञ्चाल और मत्स्य देश के वीर सब मार डाले गये। मैंने तुम्हारा बदला चुका लिया। देखो, पाण्डवों के पुत्र मारे गये और सोते में मनुष्यों और पशुओं समेत उनके डेरे के सब जीवों का नाश कर डाला गया। रात को डेरे में घुसकर मैंने पापी धृष्टद्युम्न को, पशु की तरह, मारा है।

अश्वत्थामा की यह प्यारी बात सुनकर दुर्योधन को चेत हो आया। उन्होंने कहा—अश्वत्थामा! भीष्म पितामह, कर्ण, तुम्हारे पिता आदि मेरा वह काम नहीं कर सके जो तुमने आज, कृपाचार्य और कृतवर्मा के साथ, कर दिखाया। पाण्डवों का सेनापति नीच धृष्टद्युम्न शिखण्डी के साथ मारा गया, यह सुनकर आज मैं अपने को इन्द्र के समान सुखी समझता हूँ। तुम्हारा भला हो, तुम लोग सुखी रहो। अब फिर स्वर्ग में हम लोगों की भेंट होगी।

महाराज, इतना कहकर दुर्योधन चुप हो रहे। इष्ट-मित्रों को दुःख देकर वीर दुर्योधन ने प्राण त्याग दिये। उनका आत्मा स्वर्ग को चला और शरीर पृथ्वी पर पड़ा रह गया। महाराज, इस तरह दुर्योधन युद्ध में सबके आगे रहकर पीछे से शत्रुओं के द्वारा मारे गये। राजा दुर्योधन ने मरते समय अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा को गले से लगाया; उन्होंने भी राजा को गले से लगाया। इसके बाद राजा को बार-बार निहारते हुए तीनों वीर अपने-अपने रथ पर सवार हुए। सबेरे के समय शोक से व्याकुल तीनों वीर नगर की ओर चल दिये। ६०

महाराज, इस प्रकार आपकी बुरी सलाह से यह पाण्डवों और कौरवों की सेना का घोर संहार हुआ। राजन्! आपके पुत्र के स्वर्ग चले जाने पर, शोक के मारे, वेदव्यास की दी हुई मेरी दिव्य दृष्टि भी अब नष्ट हो गई है।

वैशम्पायन कहते हैं—अपने पुत्र के मारे जाने का वृत्तान्त सुनकर, लम्बी और गर्म साँस छोड़कर, धृतराष्ट्र चिन्ता में पड़ गये। ६२

ऐषीकपर्व

दसवाँ अध्याय

दैवयोग से बचे हुए धृष्टद्युम्न के सारथी का युधिष्ठिर से सब हाल कहना। युधिष्ठिर का उस स्थान पर आकर सब हाल देखकर विलाप करना

वैशम्पायन कहने लगे कि राजन्, वह रात बीतने पर धृष्टद्युम्न के सारथी ने धर्मराज के पास जाकर सोते में सबके मारे जाने का हाल यों सुनाया—राजन्! रात को अपने-अपने डेरे में बेखटके सो रहे द्रौपदी के पुत्रों, द्रुपद के पुत्रों और पाञ्चालों को पापी अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा ने मार डाला। रात को अधम अश्वत्थामा ने आपके डेरे में घुसकर सबको साफ़ कर डाला। उन तीनों ने प्रास, शक्ति, परश्वध आदि शस्त्रों से हज़ारों मनुष्यों, हाथियों और घोड़ों को काटकर डेरे को बिलकुल सूना कर दिया। कुल्हाड़ियों से काटे जा रहे जङ्गल में जैसा शब्द होता है वैसा ही, मारी जा रही, आपकी सेना में हाहाकार मचा हुआ था। राजन्, कृतवर्मा के असावधान होने से अकेला मैं बचकर भाग आया हूँ।

सारथी के मुँह से यह अशुभ समाचार सुनकर धर्मात्मा युधिष्ठिर, पुत्रों के शोक से, पृथ्वी पर गिर पड़े। पृथ्वी पर अचेत होकर गिर रहे युधिष्ठिर को सात्यकि, भीमसेन, अर्जुन और नकुल-सहदेव ने सँभाल लिया। चेत आने पर युधिष्ठिर शोक-विह्वल वाणी से विलाप करने लगे। शत्रुओं को जीत लेने पर भी पीछे उनके द्वारा यों अपना संहार हुआ देखकर दुःख के मारे युधिष्ठिर कहने लगे—दिव्य दृष्टिवाले लोग भी कार्य के फल को नहीं जान सकते। पराजित शत्रुओं १० ने हमको जीत लिया और जीते हुए हम लोगों को हारने का सा दुःख मिला। भाई, मित्र, पिता, पुत्र, बन्धु-बान्धव, मन्त्री, पोते आदि को मारकर भी इस प्रकार हम हार गये! दैव के कारण अनर्थ तो अर्थ जान पड़ता है और अर्थ अनर्थ के रूप में देख पड़ता है। यह जीत हार के समान है, इसलिए मैं अपनी इस जीत को भी हार समझता हूँ। जिस जय को पाकर विपत्ति में पड़े पुरुष की तरह दुर्मति मनुष्य को पीछे पछताना पड़े उसे जय कैसे कह सकते हैं? मैं तो समझता हूँ कि मुझे ही शत्रुओं ने जीत लिया। जिनके लिए हमने युद्ध में स्वजनों के मारने का पाप स्वीकार किया उन्हीं विजयी पुत्रों को मारकर हारे हुए सावधान शत्रुओं ने हमको जीत लिया। देखो, कर्णी और नालीक नाम के बाण जिसकी दाढ़ें थीं, खड्ग जिसकी जीभ थी, धनुष जिसका फैला हुआ मुख था और धनुष की डोरी का शब्द जिसका गरजना था, उस क्रोधित पुरुष-व्याघ्र कर्ण के हाथ से जो बच गये थे वे ही पुत्र तनिक असावधान होने से यों मारे गये! द्रोणाचार्य-रूप सागर में रथ ही कुण्ड थे, बाणों की वर्षा ही लहरें थीं, वाहन और योद्धा ही रत्न थे, शक्ति ऋष्टि आदि शस्त्र ही मछलियों की जगह थे और ध्वजा-पताका सहित हाथी ही घड़ियाल-मगर थे; उसमें धनुष ही भँवर, बाण ही फेना और धनुष की डोरी का शब्द ही गरजना था, ऐसे—युद्ध-रूपी चन्द्रमा के उदय को पाकर बढ़े हुए—द्रोणाचार्य-रूप सागर के पार जो राजपुत्र अस्त्र-शस्त्र की नावों से चले गये वे ही तनिक असावधानी होने से आज मार डाले गये। ध्वजा ही जिसका धुआँ था, बाण जिसकी चिनगारियाँ थीं, क्रोध ही जिसमें आँधी थी, महाधनुष की डोरी का शब्द ही जिसके वेग का शब्द था, कवच और तरह-तरह के शस्त्रों की जिसमें आहुति पड़ रही थी उस बड़ी भारी सेना के वन को जलानेवाले भीष्म पितामह रूपी दावानल से युद्ध में जो राजपुत्र शस्त्रों के द्वारा बच गये थे वे ही आज, तनिक असावधानी होने के कारण, मारे २१ गये। इस संसार में ग़फ़लत से बढ़कर प्राणियों की मृत्यु का कारण दूसरा नहीं है। असावधान मनुष्य के सब काम बिगड़ जाते हैं। उसे सदा अनर्थों का सामना करना पड़ता है। जो पुरुष सावधान नहीं रहता वह विद्या, तप, लक्ष्मी या यश को कभी नहीं प्राप्त कर सकता। देखो, सावधान इन्द्र शत्रुओं का संहार करके सुख से ऐश्वर्य भोग रहे हैं। धनी व्यापारी जैसे सावधानी के साथ सारे समुद्र को लाँघकर अन्त को असावधानी के कारण किनारे की नदी में नाव समेत डूब जाय वैसे ही इन्द्र के समान प्रबल और तेजस्वी पुत्र और पोते [महायुद्ध में वीरों के

हाथ से बचकर] असावधानी के कारण [एक साधारण शत्रु के हाथ से] मारे गये ! क्रोध करके युद्ध में शत्रुओं को मारनेवाले वीर पुत्र अवश्य ही स्वर्ग को गये होंगे; किन्तु मुझे द्रौपदी के लिए बड़ा शोक है। वह पतिव्रता कैसे इस शोक को सहेगी! इस समय प्रियतमा द्रौपदी वृद्ध पिता, भाई और पुत्र आदि के मरने की ख़बर सुनकर अवश्य ही बेहोश होकर गिर पड़ेगी। उसके दुर्बल अङ्ग शोक के मारे और भी सूख जायँगे। सुख भोगने के योग्य द्रौपदी पुत्रों के और भाइयों के मरने की ख़बर पाकर बहुत रोवेगी। उसके हृदय में आग सी लग जायगी।

इस प्रकार विलाप कर रहे राजा युधिष्ठिर ने नकुल से कहा कि भाई! अभागिन द्रौपदी को, उनकी माता आदि के साथ, ले आओ। यह सुनकर नकुल उसी समय रथ पर चढ़कर द्रौपदी के पास चले। वहाँ पाञ्चालराज धृष्टद्युम्न आदि की स्त्रियाँ भी थीं। शोक से पीड़ित युधिष्ठिर, नकुल को उधर भेजकर, भाइयों के साथ रोते हुए भूतगण से भरी उस भूमि की ओर चले जहाँ उनके पुत्र मारे गये थे। उस अशुभ उग्ररूप युद्धभूमि में जाकर युधिष्ठिर ने देखा कि उनके पुत्र, इष्ट-मित्र और नातेदार आदि सब पृथ्वी पर मरे पड़े हैं। उनके शरीरों में रक्त भरा हुआ है, अङ्ग कट-फट गये हैं, सिर कटे पड़े हैं। उन सबकी यह दशा देखकर धर्मात्मा युधिष्ठिर को बड़ा दुःख हुआ। वे साथियों समेत चिल्लाकर अचेत हो पृथ्वी पर गिर पड़े। ३१

ग्यारहवाँ अध्याय

द्रौपदी का आना। उनका अश्वत्थामा को पकड़कर उसके सिर की दिव्य मणि ले लेने के लिए भीमसेन को भेजना

वैशम्पायन बोले—हे जनमेजय! युद्ध में इस प्रकार पुत्र, पोते, मित्र आदि को मरे हुए देखकर राजा युधिष्ठिर को बेहद दुःख हुआ। पुत्र, पोते, भाई, मित्र आदि की याद करने से राजा युधिष्ठिर को बहुत शोक-पीड़ित होकर काँपते और रोते देखकर श्रीकृष्ण, सात्यकि आदि उनको समझाने और शान्त करने लगे। उसी घड़ी सूर्य की तरह चमकीले रथ पर बहुत दुःखित द्रौपदी को लेकर नकुल वहाँ पहुँच गये। पुत्रों के मरने का बहुत ही अप्रिय समाचार वहाँ सुनकर व्यथा के मारे, हवा से हिल रहे केले के समान, काँपती हुई शोक-पीड़ित द्रौपदी राजा युधिष्ठिर के पास आकर पृथ्वी पर गिर पड़ीं। खिले हुए कमल-दल के समान विशाल नेत्रोंवाली द्रौपदी उस समय रो रही थीं। शोक से सूखा उनका मलिन मुख, मेघ में छिपे हुए चन्द्रमा के समान, फीका हो गया।

सत्य-पराक्रमी क्रोधी भीमसेन ने द्रौपदी को पृथ्वी पर गिरते देखकर, जल्दी से आकर, दोनों हाथों पर रोक लिया। भीमसेन के समझाने और शान्त करने के बाद रोती हुई द्रौपदी

युधिष्ठिर से कहने लगीं—महाराज, क्षत्रिय-धर्म के अनुसार पुत्रों को यमराज के यहाँ भेजकर
१० अब आप सुखपूर्वक राज्य कीजिएगा! हाथी के पाठे के समान चलनेवाले, शूर अभिमन्यु को आप समूचा राज्य पाकर क्या भूल जाइएगा? शूर पुत्रों के यों मारे जाने की बात सुनकर भी आप क्या मेरे साथ राज्य कर सकिएगा? क्या आपको उपप्लव्य में उनकी याद न आवेगी? पापी अश्वत्थामा के हाथों सोते हुए पुत्रों की हत्या का हाल सुनने से आग के समान शोक मेरे हृदय को जला रहा है। हे पाण्डवो! सुनो, यदि आज तुम उस पापी अश्वत्थामा का वध न करोगे, यदि वह अपनी करनी का फल न पावेगा, तो मैं अन्न-जल छोड़कर यहीं प्राण दे दूँगी।

अब यशस्विनी द्रौपदी धर्मराज के पास बैठ गईं। प्यारी द्रौपदी को अपने पास बैठी देखकर युधिष्ठिर ने कहा—धर्म को जाननेवाली हे द्रौपदी, तुम्हारे पुत्र और भाई क्षत्रिय-धर्म के अनुसार लड़कर मरे हैं; इस कारण तुम उनके लिए शोक न करो। हे कल्याणरूपिणी, अश्वत्थामा भी यहाँ से भागकर दूर दुर्गम वन में चला गया है। युद्ध में उसके मारे जाने का वृत्तान्त तुम किस तरह जान सकोगी?

द्रौपदी ने कहा—मैंने सुना है कि अश्वत्थामा के सिर में एक पैदायशी मणि है। उस पापी को युद्ध में मारकर यदि वह मणि ले आओ और मैं उसे आपके मस्तक में देख लूँ तो
२० जीती रहूँगी। अब भीमसेन के पास जाकर क्रोधित द्रौपदी ने कहा—हे भीमसेन, क्षत्रिय के धर्म को स्मरण करके तुम मेरी रक्षा करो। इन्द्र ने जैसे शम्बर असुर को मारा था वैसे ही, पाप-कर्म करनेवाले, अश्वत्थामा को मारो। इस लोक में कोई तुम्हारे समान पराक्रमी नहीं है। सबको मालूम है कि घोर विपत्ति के समय वारणावत नगर में पाण्डवों को तुमने आश्रय दिया था और हिडिम्ब राक्षस जब देख पड़ा था तब भी तुम्हीं ने माता की और भाइयों की रक्षा की थी। इन्द्र ने जिस तरह नहुष से इन्द्राणी की रक्षा की थी उसी तरह विराट-नगर में तुमने कीचक से मुझे बचाया था। हे वीर, तुमने पहले जैसे ये सब काम किये हैं वैसे ही अश्वत्थामा को मारकर आप सुखी बनो और मुझे सुखी करो।

वैशम्पायन कहते हैं—द्रौपदी के दुःख-भरे विलाप को महाबली भीमसेन न सह सके। वे सुवर्ण-मण्डित भारी रथ पर सवार हुए, नकुल को सारथी बनाया और अश्वत्थामा को मारने के लिए तैयार हो उन्होंने धनुष लेकर उस पर बाण चढ़ाया। नकुल ने शीघ्र घोड़ों को हाँका। राजन्, वे फुर्तीले घोड़े तेज़ी के साथ रथ को लेकर दौड़े। भीमसेन वहाँ से चलकर अश्वत्थामा
३१ के रथ के पहियों की लीक देखते हुए उसी राह से चले।

बारहवाँ अध्याय

भीमसेन के जाने पर श्रीकृष्ण का युधिष्ठिर से अश्वत्थामा के बुरे स्वभाव का वर्णन करके उसके हाथ से भीम की रक्षा करने के लिए कहना

वैशम्पायन कहते हैं कि दुर्धर्ष भीमसेन के चले जाने पर कृष्णचन्द्र राजा युधिष्ठिर से यों कहने लगे—हे धर्मराज, ये आपके भाई भीमसेन पुत्र-शोक से व्याकुल होकर अश्वत्थामा को मारने के लिए अकेले ही जा रहे हैं। राजन्, भीमसेन आपको सब भाइयों से प्यारे हैं। वे इस समय सङ्कट में पड़े हुए हैं; आप उनकी रक्षा क्यों नहीं करते ? देखिए, शत्रुओं को जीतने-वाले द्रोणाचार्य ने अपने पुत्र अश्वत्थामा को जो ब्रह्मशिरा नाम का अस्त्र दिया है वह पृथ्वीमण्डल को क्षण भर में भस्म कर सकता है। धनुषधारियों में श्रेष्ठ द्रोणाचार्य ने पहले प्रसन्न होकर वह अस्त्र अर्जुन को दिया था। आचार्य के एकमात्र पुत्र अश्वत्थामा से यह नहीं देखा गया। उसने भी जाकर पिता से उस अस्त्र के लिए प्रार्थना की। दुष्ट पुत्र का चञ्चल स्वभाव द्रोणा-चार्य को मालूम था। वे कुछ बहुत प्रसन्न नहीं हुए। अस्त्र दे तो दिया, परन्तु सब धर्मों के जाननेवाले द्रोणाचार्य ने अश्वत्थामा से कह दिया कि पुत्र ! युद्ध में घोर आपत्ति आ पड़ने पर भी यह अस्त्र किसी पर, ख़ास कर मनुष्यों पर, कभी न छोड़ना। गुरु द्रोणाचार्य ने पुत्र से यह भी कह दिया कि तुम सज्जनों की राह पर कभी नहीं चल सकते।

दुष्टात्मा अश्वत्थामा पिता के इस अप्रिय वचन को सुनकर, सब प्रकार की भलाइयों से निराश होकर, पृथ्वी पर घूमता रहा। राजन्, जब आप वनवास में थे तब घूमते-फिरते अश्वत्थामा द्वारकापुरी में आया। वहाँ यादवों ने उसका बड़ा सत्कार किया। वह द्वारका में समुद्र के किनारे कुछ दिन टिका रहा। एक दिन अकेले में वह मेरे पास आकर हँसता हुआ कहने लगा—हे कृष्ण, उग्र तप करके परम पराक्रमी मेरे पिता ने अगस्त्य ऋषि से जो देवता-गन्धर्व आदि के द्वारा पूजित ब्रह्मशिरा नाम का अस्त्र पाया है वह इस समय

१०

मेरे पास है। जैसे मेरे पिता उस दिव्य अस्त्र को चला सकते हैं वैसे ही मैं भी चला सकता हूँ। हे यदुश्रेष्ठ, वह दिव्य अस्त्र मुझसे लेकर तुम मुझे—रण में शत्रुओं का संहार करनेवाला—अपना शस्त्र चक्र दे दो। हाथ जोड़कर माँग रहे अश्वत्थामा पर प्रसन्न होकर मैंने उससे कहा—देवता, दानव, गन्धर्व, मनुष्य, पक्षी, साँप आदि सब मिलकर भी मेरे पराक्रम के शतांश भर नहीं हैं। यह धनुष है, यह शक्ति है, यह चक्र है, यह गदा है। जो-जो तुम मुझसे चाहो, मैं देता हूँ। जिस शस्त्र को तुम उठा सको और युद्ध में चला सको वह तुम ले लो। तुम मुझे जो दिव्य अस्त्र देना चाहते हो वह भी मैं न लूँगा। मेरी बराबरी की इच्छा रखनेवाले अश्वत्थामा ने वज्र-
२० सदृश, लोहे का बना हुआ, हज़ार आरोंवाला सुदर्शन चक्र मुझसे चाहा। मैंने कहा कि चक्र ही ले लो। तब अश्वत्थामा ने उठकर सुदर्शन चक्र को बायें हाथ से उठाना चाहा, परन्तु वह उसे उसकी जगह से हिला भी न सका। अब अश्वत्थामा ने दाहने हाथ से उठाना चाहा। बहुत-बहुत ज़ोर लगाने पर भी अश्वत्थामा जब चक्र को उठा न सका तब बहुत उदास हुआ। उठाने या हिलाने तक का यत्न करके अश्वत्थामा थक गया और उसने वह विचार छोड़ दिया।

हताश और उदास अश्वत्थामा से मैंने कहा—जो देवताओं और मनुष्यों में श्रेष्ठ हैं, जिन्होंने साक्षात् उमापति को द्वन्द्व-युद्ध में प्रसन्न कर लिया है, जिनसे बढ़कर कोई पुरुष मुझे पृथ्वी पर प्यारा नहीं है, जिनके लिए मैं अपना सर्वस्व स्त्री-पुत्र तक दे सकता हूँ उन गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन ने कभी मुझसे यह नहीं कहा जो तुम कह रहे हो। बारह वर्ष ब्रह्मचर्य रख-कर—हिमवान् पर्वत पर बड़ी तपस्या करके—जिसे मैंने पाया है, जो मेरे समान ब्रह्मचारिणी रुक्मिणी के गर्भ से उत्पन्न हुआ है, उस सनत्कुमार ऋषि जैसे तेजस्वी मेरे पुत्र प्रद्युम्न ने कभी
३२ यह चक्र मुझसे नहीं माँगा जो तुमने इस समय माँगा है। बली बलदेवजी, गद, साम्ब और द्वारका में रहनेवाले वृष्णि, अन्धक आदि वंश के महारथी यादवों ने कभी मुझसे यह प्रार्थना नहीं की। तुम द्रोणाचार्य के पुत्र हो, सब यादव तुम्हारा सत्कार करते हैं। हे वीर, तुम चक्र लेकर किससे युद्ध करना चाहते हो? मेरे यों कहने पर अश्वत्थामा ने कहा—हे कृष्ण, तुम्हारी पूजा करके मैं तुम्हीं से युद्ध करना चाहता हूँ। इसी लिए मैंने देवता दानव आदि के द्वारा पूजित यह चक्र माँगा था कि मुझे कोई जीत न सके। मैं तुमसे यह सच कह रहा हूँ। इस दुर्लभ चक्र को न पा सकने के कारण अब मैं शिवजी के पास जाता हूँ। इस सुदर्शन चक्र को तुम्हारे सिवा और कोई नहीं धारण कर सकता। अब उपहार में घोड़े, धन, रत्न आदि लेकर अश्वत्थामा वहाँ से चल दिया। राजन्! अश्वत्थामा क्रोधी, दुष्ट, चञ्चल और क्रूर
४१ स्वभाववाला है। वह ब्रह्मशिरा अस्त्र को जानता है। उससे भीमसेन की रक्षा करनी चाहिए।

तेरहवाँ अध्याय

गङ्गा-किनारे व्यासजी के पास बैठे अश्वत्थामा को श्रीकृष्ण आदि का देखना। उन्हें देखकर अश्वत्थामा का ब्रह्मशिर अस्त्र छोड़ना

वैशम्पायन बोले—यादवों को प्रसन्न करनेवाले कृष्णचन्द्र सब दिव्य अस्त्रों से परिपूर्ण, सोने के गहनों से सजे काम्बोज देश के बढ़िया घोड़ों से शोभायमान, सबेरे निकले हुए सूर्य के समान चमकीले महारथ पर सवार हुए। उस रथ में दाहनी ओर शैव्य और मेघपुष्प नाम के घोड़े और बाईं ओर सुग्रीव और बलाहक नाम के घोड़े जुते हुए थे। विश्वकर्मा की बनाई, रत्न और सुवर्ण आदि धातुओं से बनी, बहुत ऊँची पताका उस दिव्य रथ पर फहरा रही थी। ध्वजा के ऊपर गरुड़जी विराजमान थे। धनुषधारियों में श्रेष्ठ कृष्णचन्द्र, अर्जुन और युधिष्ठिर तीनों उस रथ पर चढ़े। जैसे इन्द्र के इधर-उधर अश्विनीकुमारों की शोभा हो वैसे ही श्रीकृष्ण के आस-पास युधिष्ठिर और अर्जुन की शोभा हुई। रथ पर दोनों पाण्डवों को चढ़ाकर कृष्णचन्द्र ने घोड़ों को, कोड़ा मारकर, हाँक दिया। उस रथ को लेकर घोड़े दौड़ने लगे। श्रीकृष्ण आदि को लेकर शीघ्र जा रहे घोड़ों की गति का वैसा ही शब्द सुन पड़ने लगा जैसे आकाश में झुण्ड के झुण्ड उड़ रहे पक्षियों के वेग का शब्द सुन पड़ता है। वे समर्थ पुरुष वेग से चलकर क्षण भर में भीमसेन के पास पहुँच गये। क्रोध से भरे हुए और शत्रु को मारने के लिए उद्यत भीमसेन के पास पहुँचकर भी, श्रीकृष्ण आदि उन्हें नहीं लौटा सके। श्रीकृष्ण आदि के देखते ही शूर भीमसेन घोड़ों को तेज़ हाँककर गङ्गा-तट पर जा पहुँचे, जहाँ पाण्डवों के पुत्रों को मारनेवाले अश्वत्थामा के होने की उन्हें ख़बर मिली थी। वहाँ जाकर भीमसेन ने देखा कि जल के किनारे व्यासजी ऋषियों के बीच में बैठे हुए हैं। उनके पास ही घी से भीगा हुआ, कुश-चीर को धारण किये, क्रूर कर्म करनेवाला अश्वत्थामा बैठा है। उसके शरीर में धूल लिपटी हुई है। उसको देखते ही भीमसेन धनुष पर बाण चढ़ाकर "ठहर जा, ठहर जा" कहते हुए उधर झपटे। भीम कर्म करनेवाले भीमसेन को धनुष बाण लिये और उनके पीछे रथ पर श्रीकृष्णचन्द्र

१०

के साथ बैठे हुए अर्जुन और युधिष्ठिर को देखकर अश्वत्थामा बहुत डरा। उसने समझा कि सिर पर आफ़त आ गई। तब उसने सङ्कट के समय में उस दिव्य ब्रह्मशिर अस्त्र का ध्यान किया। दिव्य अस्त्र हाथ में लिये खड़े अर्जुन आदि शूरों के नाश के लिए बायें हाथ से एक सेंठा उखाड़कर, उसी में उस दिव्य अस्त्र को लगाकर, "कोई भी पाण्डव न बचे" यह दारुण वचन कहकर, अश्वत्थामा ने छोड़ दिया। अश्वत्थामा ने जब वह अस्त्र छोड़ा तब उसी सेंठे में घोर आग प्रकट हुई।
२२ जान पड़ने लगा कि वह, यमराज के समान, आग तीनों लोकों को जलाकर भस्म कर देगी।

चौदहवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण की आज्ञा से अर्जुन का ब्रह्मशिर अस्त्र से अश्वत्थामा के अस्त्र को खींच लेना

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, अश्वत्थामा के चेहरे से ही उसके मन के भाव को जानकर कृष्णचन्द्र ने कहा—हे अर्जुन, द्रोणाचार्य का बताया हुआ जो दिव्य अस्त्र तुम्हारे पास है उसके छोड़ने का यह समय है। भाइयों के और अपने प्राणों की रक्षा करने के लिए तुम भी अस्त्र को रोकनेवाला वही अस्त्र इस समय छोड़ो। श्रीकृष्ण के यों कहने पर अर्जुन, धनुष-बाण लेकर, शीघ्र रथ पर से उतर पड़े। पहले आचार्य के पुत्र अश्वत्थामा के लिए, फिर अपने लिए और सब भाइयों के लिए "स्वस्ति" कहकर—देवताओं और गुरुओं को प्रणाम करके—शिव का ध्यान करते हुए, अस्त्र के तेज को अस्त्र के द्वारा शान्त करने के लिए, अर्जुन ने उसी अस्त्र का बाण छोड़ा। अर्जुन के छोड़े हुए अस्त्र ने सहसा प्रलय-काल की आग के समान भयानक आग प्रकट कर दी। उधर अश्वत्थामा का छोड़ा हुआ वह अस्त्र भी बड़ी-बड़ी ज्वालाओं से जल उठा। चारों ओर तेज का मण्डल छा गया। उस समय आकाश में बार-बार धड़ाका सुन पड़ने लगा। हज़ारों तारे आकाश से टूट-टूटकर पृथ्वी पर गिरने लगे। यह देखकर सब प्राणी डर गये। आकाश में घोर शब्द होने लगे और आग की लपटें निकलने
१० लगीं। पर्वत-वन-वृक्ष सहित पृथ्वी हिल उठी।

उन दोनों दिव्य अस्त्रों के तेज से लोगों को डरते देखकर देवर्षि नारद और वेदव्यासजी, दोनों महर्षि—अश्वत्थामा और अर्जुन को तथा उन अस्त्रों के तेज को शान्त करने के लिए—उन दोनों अस्त्रों के बीच में खड़े होकर दो अग्नियों के समान शोभा को प्राप्त हुए। नारद और व्यास पर कोई भी हमला न कर सकता था। क्या देवता और क्या दानव, सभी उनका सम्मान करते थे। उन्होंने कहा—पहले जो बड़े-बड़े अस्त्रों के जाननेवाले महारथी हो गये हैं उन्होंने कभी
१६ यह अस्त्र मनुष्यों पर नहीं चलाया। हे वीरो, तुमने यह क्या अनर्थ कर डाला?
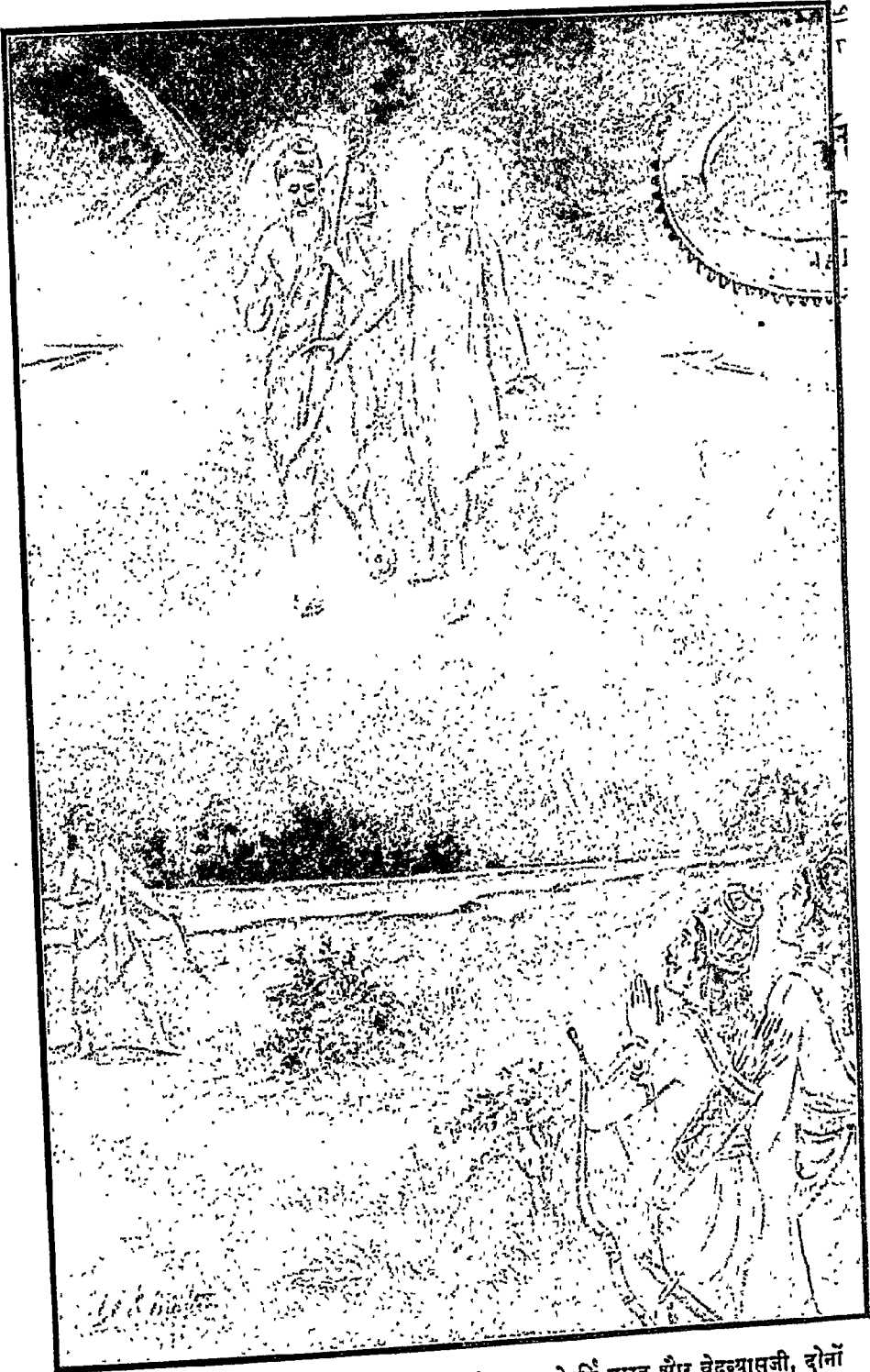
उन दोनों दिव्य अस्त्रों के तेज से लोगों को डरते देख कर देवर्षि नारद और वेदव्यासजी, दोनों महर्षि—अश्वत्थामा और अर्जुन को तथा उन अस्त्रों के तेज को शान्त करने के लिए—उन दोनों अस्त्रों के बीच में खड़े होकर दो अग्नियों के समान शोभा को प्राप्त हुए—पृ० ३२२२

कुन्ती सहित यशस्विनी द्रौपदी को दुःख से व्याकुल देख कर.....गान्धारी ने कहा—
पुत्री, इस तरह शोक मत करो—पृ० ३२१२

पन्द्रहवाँ अध्याय

अर्जुन का अपने अस्त्र को खींच लेना। श्रीकृष्ण की, उत्तरा के मरे पुत्र को जिलाने की, प्रतिज्ञा। अश्वत्थामा का उत्तरा के गर्भ पर अस्त्र चलाना

वैशम्पायन बोले कि महाराज, अग्नि के समान तेजस्वी दोनों श्रेष्ठ मुनियों को बीच में खड़े देखकर अर्जुन ने जल्दी से अपने दिव्य अस्त्र को खींच लिया। फिर हाथ जोड़कर अर्जुन ने उन ऋषियों से कहा—दिव्य अस्त्र को शान्त करने के लिए ही मैंने यह अस्त्र चलाया है। अपने इस दिव्य अस्त्र को जब मैं खींचे लेता हूँ तब अवश्य ही पापी अश्वत्थामा अस्त्र के तेज से हम सबको जला देगा। आप लोग देव-तुल्य हैं; आप सोचकर हमको वह उपाय बतलाइए जिसमें हमारा हित और सब लोगों का भला हो।

युद्ध में वह दिव्य अस्त्र चलाकर अर्जुन के सिवा साक्षात् इन्द्र भी उसे नहीं लौटा सकते। ब्रह्मतेज से बने उस अस्त्र को ब्रह्मचारी के सिवा और कोई नहीं लौटा सकता। जिसने ब्रह्मचर्य का पालन नहीं किया वह अगर उस अस्त्र को चलाकर लौटाता है तो वह अस्त्र लौटकर उसी के सिर को काट डालता है। ब्रह्मचर्य व्रत धारण करनेवाले अर्जुन ने उस दुर्लभ अस्त्र को पाकर घोर आपत्ति पड़ने पर भी नहीं छोड़ा। अर्जुन सत्यवादी, शूर, ब्रह्मचारी और गुरु के भक्त थे, इसी से उन्होंने उस बाण को लौटा लिया। किन्तु उन मुनियों को बीच में खड़े देखकर अश्वत्थामा अपने अस्त्र को लौटा न सका। उस दिव्य अस्त्र को लौटाने में असमर्थ अश्वत्थामा दीन भाव से व्यासजी से कहने लगा—हे मुनिवर, मैंने घोर सङ्कट में पड़कर प्राण बचाने के लिए यह अस्त्र चलाया था। भगवन्, भीमसेन ने गदा-युद्ध में अधर्म से राजा दुर्योधन को मारा है। ब्रह्मन्, इसी से मैंने पाण्डवों के विनाश के लिए यह दिव्य अस्त्र चलाया है। मैं इस अस्त्र को नहीं लौटा सकता। पाण्डवों को मारने के लिए छोड़ा हुआ यह दिव्य अस्त्र अभी पाण्डवों के प्राण ले लेगा। मैंने क्रोध के वश हो, पाण्डवों के नाश के लिए, यह अस्त्र चलाकर घोर पाप किया है। १०

व्यासजी बोले—देखो, ब्रह्मशिर अस्त्र के प्रयोग को जाननेवाले अर्जुन ने यह अस्त्र क्रोध करके तुमको मारने के लिए नहीं चलाया। तुम्हारे अस्त्र के तेज को शान्त करने के लिए ही उन्होंने यह ब्रह्मास्त्र चलाया था और अब लौटा लिया है। ब्रह्मास्त्र को पाकर भी, तुम्हारे पिता के उपदेश को माननेवाले, अर्जुन क्षत्रिय के धर्म से विचलित नहीं हुए। ऐसे धीर, वीर, परोपकारी, सब अस्त्रों के जाननेवाले अर्जुन को और उनके भाइयों को तुम क्यों मारना चाहते हो? जिस राज्य में दिव्य अस्त्र के द्वारा ब्रह्मशिर अस्त्र निष्फल किया जाता है वहाँ बारह वर्ष तक पानी नहीं बरसता। इसी कारण, शक्ति रखने पर भी, प्रजा का हित चाहनेवाले अर्जुन तुम्हारे अस्त्र को नष्ट नहीं करते। सदा पाण्डवों की, तुम्हारी और सारे देश की रक्षा होनी चाहिए। इस कारण तुम शीघ्र इस दिव्य अस्त्र को लौटा लो। तुम अपने क्रोध को शान्त करो। पाण्डवों की भी आपत्ति दूर २०

हो। राजर्षि युधिष्ठिर अधर्म से कभी जय नहीं चाहते। तुम्हारे सिर में जो दिव्य मणि है वह तुम पाण्डवों को दे दो। मणि लेकर पाण्डव तुम्हें अभय कर देंगे।

अश्वत्थामा ने कहा—हे ऋषिवर! पाण्डवों और कौरवों के पास जितने रत्न हैं, जितनी सम्पदा है, उन सबसे बढ़कर यह मेरी मणि है। यह मणि पास हो तो शस्त्र, रोग, भूख-प्यास आदि की बाधा नहीं होती। इस मणि के पास रहने से देवता, दानव, नाग, राक्षस, चोर आदि का भय नहीं रहता। इस मणि में ऐसे ही श्रेष्ठ गुण हैं; इस कारण मैं इसे किसी तरह ३० नहीं छोड़ सकता। किन्तु मुझे आपकी आज्ञा का पालन करना ही चाहिए। यह मणि भी मौजूद है और मैं भी हाज़िर हूँ; किन्तु यह अस्त्र का सेंठा अवश्य ही उत्तरा के गर्भ में जाकर गिरेगा [जिसमें कि पाण्डवों का वंश चलानेवाला बालक मौजूद है]। मैं इस अस्त्र को लौटाने में समर्थ नहीं हूँ। आपकी बात को न टालूँगा।

तब व्यासजी ने [बहुत उदास होकर] अश्वत्थामा से कहा कि अच्छी बात है, ऐसा ही करो; किन्तु पाण्डवों को मारने का विचार न करना। उत्तरा के गर्भ में इस अस्त्र को पहुँचाकर शान्त हो जाओ। वैशम्पायन कहते हैं कि तब अश्वत्थामा ने व्यासजी के वचन को मान- ३५ कर वह अस्त्र उत्तरा के गर्भ को नष्ट करने के लिए छोड़ दिया।

सोलहवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण का अश्वत्थामा को शाप देना। भीमसेन का अश्वत्थामा के सिर की मणि देकर द्रौपदी को दिलासा देना

वैशम्पायन कहते हैं कि श्रीकृष्ण ने जब जाना कि पापी अश्वत्थामा ने वह अस्त्र उत्तरा के गर्भ पर चलाया है तब वे प्रसन्न होकर अश्वत्थामा से कहने लगे—हे द्रोणाचार्य के पुत्र! एक बार उपप्लव्य नगर में एक सत्यवादी ब्राह्मण ने विराट की कन्या, और अर्जुन की बहू, उत्तरा से कहा था कि हे राजकुमारी, कौरव-वंश जब बिल्कुल ही मिटने लगेगा तब उस परिक्षीण अवस्था में तुम्हारे एक पुत्र होगा। इसी से वह परिक्षित् कहलावेगा। उससे फिर वंश चलेगा। उस ब्राह्मण का वचन झूठ नहीं हो सकता। जब श्रीकृष्ण ने इस तरह कहा तब अश्वत्थामा ने बहुत ही बिगड़कर कहा—हे केशव, बात ऐसी नहीं है। तुम पक्षपात से यह कह रहे हो। मेरा वाक्य कभी मिथ्या नहीं हो सकता। यह मेरा चलाया अस्त्र अवश्य ही जाकर उत्तरा के गर्भ पर गिरेगा। जिसकी तुम रक्षा करना चाहते हो वह गर्भ मरने से नहीं बच सकता।

कृष्णचन्द्र बोले—तुम्हारा दिव्य अस्त्र का चलाना निष्फल नहीं हो सकता। वह गर्भ का बालक मरा हुआ ही पैदा होगा; किन्तु फिर वह जीकर बहुत दिनों तक राज्य करेगा। तुमको तो सब बुद्धिमान् लोग कायर और पापी जानते ही हैं। तुमने बार-बार बुरे काम किये हैं; बालकों

की हत्या की है। इससे तुम भी अपने किये हुए इस पाप का फल भोगो। तुम तीन हज़ार वर्ष तक ऐसे निर्जन देशों में अकेले घूमोगे जहाँ कोई, बात करने तक को, न मिलेगा। हे नीच, लोग तुम्हें पास नहीं फटकने देंगे। तुम्हारे शरीर से पीब और रक्त की बदबू निकला करेगी, अर्थात् तुम कोढ़ी हो जाओगे; सब तरह की व्याधियाँ तुमको घेरे रहेंगी। और परिचित् नाम का बालक सयाना होकर, वेद पढ़कर, कृपाचार्य से सब अस्त्र प्राप्त करके बड़ा ही शूर-वीर होगा। वह धर्मात्मा साठ वर्ष तक क्षत्रिय-धर्म के अनुसार राज्य करेगा। तुम्हारे सामने ही कौरवों के वंश को चलानेवाला परिचित् राजा राज्य करेगा। अस्त्र के तेज से जले हुए परिचित को मैं जिला दूँगा। हे नराधम, मेरे तप और सत्य की शक्ति को तुम देख लेना। १०

अब व्यासजी ने कहा—हे अश्वत्थामा, तुमने हमारा कहा न मानकर यह दारुण कर्म किया है। कुलीन ब्राह्मण की यह करतूत! तुमने ब्राह्मण होकर भी क्षत्रिय-धर्म का आश्रय लेकर ऐसा अन्याय किया है। इस कारण श्रीकृष्ण ने जो कहा है वह अवश्य तुमको भोगना पड़ेगा। अश्वत्थामा बोला—ब्रह्मन्, मैं इस जीवलोक में आपके साथ रहूँगा। इस प्रकार आपका और पुरुषोत्तम कृष्ण का कहना भी सच हो जायगा। १६

वैशम्पायन कहते हैं—अब पाण्डवों को अपने सिर की मणि देकर अश्वत्थामा, सबके सामने उदास होकर, वन की ओर चल दिया। शत्रुओं का नाश करनेवाले पाण्डव भी, अश्वत्थामा की मणि लेने के उपरान्त, श्रीकृष्ण, नारद और व्यास आदि को साथ लेकर, अन्न-जल छोड़कर मरने के लिए बैठी हुई, द्रौपदी के पास चले। अब वे, हवा से भी तेज़ घोड़ों को भगाते हुए, फिर अपने डेरे में पहुँच गये। उन्होंने झटपट रथ से उतरकर देखा कि दुःखित द्रौपदी वैसी ही बैठी हुई हैं। उदास, दुःख और शोक से व्याकुल द्रौपदी को घेरकर श्रीकृष्ण और सब पाण्डव बैठ गये। राजा युधिष्ठिर की आज्ञा से महाबली भीमसेन ने वह दिव्य मणि द्रौपदी को देकर कहा—हे कल्याणरूपिणी, यही वह मणि है। तुम्हारे पुत्रों को मारनेवाला जीत लिया गया। उठो, शोक को छोड़ो और क्षत्रियों के धर्म

को स्मरण करो। हे कमलनयनी! जिस समय वासुदेव सन्धि का सँदेसा लेकर दुर्योधन की सभा को चले थे उस समय तुमने जो क्षत्रिय-धर्म के योग्य तीव्र वचन कहे थे कि "गोविन्द, राजा युधिष्ठिर को मेल की इच्छा करते देखकर मैं समझती हूँ कि न मेरे पति हैं, न पुत्र हैं, न भाई हैं
३० और न तुम्हीं हो" उन्हें स्मरण करो। हमारे राज्य का विरोधी पापी दुर्योधन मारा गया; मैंने तड़प रहे दुःशासन के हृदय का खून पी लिया। इस प्रकार हमने अपने शत्रुओं से वैर का बदला चुका लिया; अब कोई हमारी निन्दा नहीं कर सकता। अश्वत्थामा को गुरु का पुत्र और ब्राह्मण समझकर जीतकर भी छोड़ दिया। उसका यश तो नष्ट हो गया, केवल प्राण बच गये। उसकी मणि भी छीन ली गई। वह शस्त्रहीन हो इधर-उधर मारा-मारा फिरता है।

द्रौपदी ने कहा—मेरी इच्छा पूरी हो गई; बदला ले लिया गया। गुरु का पुत्र भी गुरु ही है इसलिए मैं चाहती हूँ कि राजा युधिष्ठिर अश्वत्थामा की इस मणि को अपने मस्तक पर धारण करें। द्रौपदी के कहने से, गुरु का प्रसाद समझकर, युधिष्ठिर ने उस दिव्य मणि को अपने सिर पर धारण किया। उस मणि को धारण करने पर चन्द्रमा से युक्त पर्वत के समान उनकी शोभा हुई। पुत्र-
३७ शोक से पीड़ित द्रौपदी ने उठकर अन्न-जल ग्रहण किया। अब कृष्णचन्द्र से राजा युधिष्ठिर ने यों पूछा।

सत्रहवाँ अध्याय

युधिष्ठिर और श्रीकृष्ण की बातचीत और यह बताना कि रुद्र की कृपा से अश्वत्थामा ने यह कठिन काम किया है

वैशम्पायन बोले कि सोते में अश्वत्थामा आदि तीन महारथियों के द्वारा सेना का संहार हुआ देखकर सोचते हुए राजा युधिष्ठिर ने कहा—हे श्रीकृष्ण! पापी क्षुद्रबुद्धि दग़ाबाज़ अश्वत्थामा ने मेरे महारथी पुत्रों को कैसे मार डाला? अस्त्र-विद्या में निपुण और युद्ध में पीठ न दिखानेवाले द्रुपद के पुत्रों को भी अश्वत्थामा ने मार डाला। बड़े भारी वीर द्रोणाचार्य युद्ध में जिसका अच्छी तरह सामना नहीं कर सके उस वीर धृष्टद्युम्न को उसने कैसे मार डाला? हे पुरुषश्रेष्ठ, अश्वत्थामा ने कौन सा कर्म किया जिससे उसने सबका संहार कर डाला?

कृष्णचन्द्र बोले—अवश्य ही अश्वत्थामा ने महादेव की आराधना की है, इसी से वह अकेला सबको मार सका। महादेव प्रसन्न होकर अजर-अमर भी बना दे सकते हैं। शिव वह पराक्रम दे सकते हैं कि मनुष्य इन्द्र को भी मार डाले। हे युधिष्ठिर, मैं महादेवजी को और उनके पुरातन विविध कर्मों को अच्छी तरह जानता हूँ। वही सब प्राणियों के आदि, मध्य और अन्त में रहते हैं। उन्हीं की चेष्टा से इस जगत् के सब काम होते हैं। सृष्टि के पहले सबके पितामह ब्रह्माजी ने प्रजा की सृष्टि करने की इच्छा से भूतपति शङ्कर से कहा—तुम शीघ्र
१० ही प्राणियों की सृष्टि करो। महादेवजी ने यह सुनकर 'तथास्तु' कह दिया। अब महादेवजी यह

सोचकर कि सबसे पहले प्रजा की सृष्टि करना कभी उचित नहीं, जल में प्रवेश करके बहुत दिन तक तपस्या करते रहे। ब्रह्माजी ने बहुत दिन तक उनकी राह देखकर अन्त को सृष्टि के लिए मन से और एक देव को उत्पन्न किया। उसने भगवान् महादेव को पानी के भीतर समाधि लगाये देखकर ब्रह्माजी से कहा कि भगवन्, अगर कोई मेरा और बड़ा भाई न हो तो मैं सृष्टि कर सकता हूँ। ब्रह्माजी ने कहा—पुत्र, इस समय तुम्हारा अग्रज (पहले पैदा होनेवाला) कोई नहीं है। देवदेव महादेव जल में डूबे हुए हैं। इसलिए तुम बेखटके अपना काम करो। तब उस देव ने, ब्रह्मा की आज्ञा से, सब प्राणियों को और दक्ष आदि सात प्रजापतियों को उत्पन्न किया। उन प्रजापतियों ने स्वेदज, अण्डज, जरायुज, उद्भिद् (जुआँ-चिलवे, कबूतर आदि पक्षी, मनुष्य, वृक्ष आदि) इन चार प्रकार के प्राणियों की सृष्टि की। अब सब प्रजा बहुत भूखी होकर सृष्टि करनेवाले को ही खाने के लिए दौड़ी। तब डरकर उक्त देव ब्रह्माजी के पास आया और कहने लगा—भगवन्, प्रजा के लिए आहार बताकर मेरी रक्षा कीजिए। ब्रह्माजी ने प्रजा के आहार के लिए अन्न-ओषधि आदि पदार्थ बता दिये। उन्हीं विधाता के नियम के अनुसार दुर्बल प्राणी को प्रबल प्राणी खा जाते हैं। तब सब प्रजागण आहार पाकर, सन्तुष्ट होकर, अपनी इच्छा के अनुसार जाकर बसने लगे। सभी लोग अपनी-अपनी जाति पर अनुराग करके प्राणियों की संख्या बढ़ाने लगे।

महाराज, इस प्रकार प्राणियों की वृद्धि देखकर लोकगुरु ब्रह्मा बहुत सन्तुष्ट हुए। उसी समय भगवान् महादेव ने जल के भीतर से निकलकर, तेज से बढ़ी हुई, उस असंख्य प्रजा को देखकर क्रोधित हो अपनी गुप्त-इन्द्रिय को पृथ्वी में प्रविष्ट कर दिया। तब ब्रह्माजी ने उनको २० समझा-बुझाकर कहा—हे महादेव, तुमने इतने दिनों तक जल के भीतर रहकर क्या किया? और इस समय अपनी गुप्त-इन्द्रिय को पृथ्वी में क्यों प्रविष्ट कर दिया? रुद्रदेव ने बहुत ही कुपित होकर कहा—हे विधाता, मेरे पीछे अन्य एक देव ने इस प्रजा की सृष्टि कर दी है इसलिए अब मुझे इस गुप्त-इन्द्रिय की आवश्यकता क्या है? मैंने इतने दिन जल के भीतर रह-कर प्रजा के आहार के लिए अन्न की सृष्टि की है; प्रजा की तरह यह अन्न भी बढ़ेगा। क्रोधित महादेव इतना कहकर तप करने के लिए मुञ्जवान् पर्वत को चले गये। २६

अठारहवाँ अध्याय

रुद्र के कोप से देवताओं के यज्ञ का विनाश और फिर रुद्र की प्रसन्नता से उसकी समाप्ति

कृष्णचन्द्र बोले—इसके बाद देवयुग बीत जाने पर देवताओं ने वेद-विहित विधि के अनु-सार यज्ञ करने की इच्छा से घी आदि सब सामग्री इकट्ठी की। उस यज्ञ में देवताओं के भागों की कल्पना करते समय, महादेव को अच्छी तरह न जानने के कारण, देवताओं ने रुद्र के भाग की कल्पना नहीं की; केवल अपने ही भागों की कल्पना कर ली। कृत्तिवासा, स्थाणु आदि नामों

से पुकारे जानेवाले शङ्कर ने जब अपना भाग न देखा तब पहले [यज्ञ को मिटानेवाले] धनुष को बनाना चाहा। महाराज! लोक-यज्ञ, क्रिया-यज्ञ, गृह-यज्ञ, पञ्चभूत-यज्ञ, नर-यज्ञ, इन्हीं पाँच प्रकार के यज्ञों से सारे जगत् की सृष्टि हुई है। महात्मा महेश्वर ने लोक-यज्ञ और नर-यज्ञ के द्वारा पाँच हाथ का विकट धनुष बनाया। उस धनुष की डोरी 'वषट्कार', और बन्धन यज्ञ के चारों अङ्ग हुए। ब्रह्मचारी का वेष धारण किये हुए क्रोधित महादेव उस धनुष को हाथ में लिये यज्ञ-मण्डप में पहुँचे। रुद्र को धनुष धारण किये देखकर पृथ्वी डर के मारे काँपने लगी। पहाड़ हिलने लगे। हवा का चलना बन्द हो गया। अग्नि की ज्वाला भी मन्द पड़ गई। सूर्य का १० प्रकाश फीका पड़ गया। अन्तरिक्ष में सब नक्षत्र शङ्कित होकर फिरने लगे। चन्द्रमा का मण्डल भी शोभाहीन हो गया। एक साथ आकाश में और पृथ्वी पर अन्धकार छा गया। देवता लोग बहुत ही डर गये। उनके यज्ञ की शोभा जाती रही। तब महादेव ने यज्ञ के हृदय में भयानक बाण मारा। बाण लगते ही, मृग का रूप धारण करके, यज्ञ अग्नि के साथ वहाँ से निकलकर देवलोक को भागा। भगवान् रुद्र भी उसके पीछे दौड़े।

इस तरह यज्ञ के वहाँ से भाग जाने पर देवताओं को कुछ भी चेत नहीं रहा। उस समय भगवान् शङ्कर ने धनुष की नोक से सूर्य की बाहुओं को, भग देवता की दोनों आँखों को और पूषा के दाँतों को नष्ट कर दिया। तब देवता और यज्ञ के सब अङ्ग वहाँ से भागने लगे। उनमें से कुछ वहीं चक्कर खाकर मुर्दे की तरह पड़े रहे। इस प्रकार सबको भगाकर महात्मा शङ्कर ज़ोर से हँसे। फिर उन्होंने धनुष के द्वारा देवताओं की गति को रोका। उस समय सब देवताओं के वाक्य से सहसा उस धनुष की डोरी टूट गई। महादेवजी के धनुष की प्रत्यञ्चा टूटी देखकर, धनुष के बेकाम होने पर, सब देवता यज्ञ के साथ भगवान् रुद्र की शरण में आये। २० इससे महादेव सन्तुष्ट हो गये। उन्होंने अपने क्रोध को सागर में स्थापित किया। वह क्रोध आग का रूप धारण करके जल को सोखने लगा। अब शिव की कृपा से सूर्य के दोनों हाथ, भग की दोनों आँखें और पूषा के सब दाँत वैसे ही हो गये। सब जगत् सुस्थ हो गया। देवताओं ने उसी समय यज्ञ की सामग्री में रुद्र के भाग की कल्पना कर दी।

हे युधिष्ठिर, देवदेव महादेव के यों कुपित होने पर सारा जगत् बेचैन हो उठा था और उनके प्रसन्न होते ही सब लोग सुखी हो गये। उस समय महादेव के प्रसन्न होने से ही अकेला अश्वत्थामा तुम्हारे महारथी पुत्रों को और महापराक्रमी धृष्टद्युम्न आदि पाञ्चालों को मार सका। एक अश्वत्थामा के पराक्रम से ऐसी घटना कभी नहीं हो सकती। केवल महादेव के प्रभाव से २६ ही यह सब हुआ। इसलिए अब इस सोच को छोड़कर और काम करो।

महर्षि वेदव्यास-प्रणीत

महाभारत का अनुवाद

स्त्रीपर्व

जलप्रादानिकपर्व

पहला अध्याय

सञ्जय का पुत्रशोक से व्याकुल राजा धृतराष्ट्र को दिलासा देना

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥

जनमेजय ने कहा—भगवन्! जब सारी सेना मारी गई और दुर्योधन भी मारे गये तब, यह ख़बर सुनकर, राजा धृतराष्ट्र ने क्या किया? महामनस्वी युधिष्ठिर ने शत्रु पर विजय पाकर फिर क्या किया? कृपाचार्य, कृतवर्मा और अश्वत्थामा ने भी क्या किया? अश्वत्थामा के किये हुए जन-संहार का वर्णन मैं सुन चुका। अश्वत्थामा के शाप देने और उसको श्रीकृष्ण के शाप देने का हाल आप कह चुके। इसके आगे का वृत्तान्त सुनाइए। सञ्जय ने राजा धृतराष्ट्र से आगे जो कुछ कहा हो, वह भी कहिए।

वैशम्पायन ने कहा कि राजन्! सौ पुत्रों के मारे जाने पर धृतराष्ट्र उस वृक्ष के समान हो गये, जिसकी शाखाएँ काट डाली गई हों। वे पुत्र-शोक और चिन्ता के मारे चुपचाप बैठे सोचा करते थे। उनकी यह दशा देखकर सञ्जय ने कहा—महाराज, शोक करने से कुछ लाभ नहीं है। देखिए, अठारह अक्षौहिणियाँ मारी गई हैं। कुछ दिनों तक यह पृथ्वी राजवंशों से

ख़ाली सी रहेगी। विविध जातियों के असंख्य नरेश, चारों ओर से, आपके पुत्र की सहायता करने आये थे। आपके पुत्र के साथ वे लोग भी मार डाले गये। हे नर-नाथ! [शोक कम करके] अब पिता, पुत्र, पौत्र, जातिवाले, इष्ट-मित्र, सम्बन्धी, गुरुजन आदि जो लोग जिस तरह आगे-पीछे मारे गये हैं उसी क्रम से उनके प्रेतकृत्य कराने का प्रबन्ध कीजिए।

हे जनमेजय, सञ्जय के करुणापूर्ण वचन सुनकर पुत्र-पौत्र-वध से पीड़ित धृतराष्ट्र के शोक का वेग फिर बढ़ गया। वे आँधी से उखड़े पेड़ की तरह पृथ्वी पर गिर पड़े।

धृतराष्ट्र ने सञ्जय से कहा—हे सूत! मेरे प्रिय पुत्र, अमात्य, सब सुहृद् और स्वजन मार १० डाले गये। अब मैं दीन-हीन होकर मारा-मारा फिरूँगा। मैं इस समय बन्धु-बान्धव-विहीन होकर छिन्नपक्ष पक्षी के समान हो रहा हूँ। अब मेरा जीना व्यर्थ है। किरणें क्षीण होने पर शोभाहीन सूर्य की तरह मैं भी पुत्र-मित्र-हीन, राज्यरहित, श्रीशून्य, अन्धा वृद्ध पुरुषमात्र रह गया हूँ। हाय, पहले मैंने विदुर आदि हितैषियों की बात नहीं मानी; परशुराम, नारद, व्यासदेव आदि माननीयों के उपदेश पर ध्यान नहीं दिया; सभा में महात्मा कृष्ण ने जो श्रेयस्कर प्रस्ताव किया था कि 'हे राजन्, पाण्डवों से वैर न बढ़ाइए और अपने इस पुत्र को दबाइए—क़ैद कर रखिए', उसकी भी उपेक्षा की। उसी का यह फल मिला कि आज मैं दुर्मति इस तरह शोक से व्याकुल हो रहा हूँ। पितामह भीष्म ने मेरे हित के लिए बारम्बार समझाया, मगर मैंने उनकी बातें नहीं सुनीं, इसी से इस समय मेरी यह दशा हो रही है। साँड़ की तरह गरजनेवाले दुर्योधन तथा दुःशासन, कर्ण आदि के वध और सूर्यसम तेजस्वी द्रोणाचार्य के मारे जाने का समाचार सुनकर मेरी छाती फटी जाती है। हे सञ्जय! मुझे तो अपना कोई ऐसा पिछला पाप याद नहीं आता, जिसका यह घोर फल मैं मूढ़ आज भोग रहा हूँ। अवश्य ही पिछले जन्मों में मैंने ऐसा कोई पाप किया होगा, जिसके कारण विधाता ने मुझे इस जन्म में यह दारुण दुःख दिया है। बुढ़ापे में दैवयोग से मुझे अपने इष्ट-मित्रों और बन्धु-बान्धवों का नाश देखना पड़ा। संसार २० में मुझसे अधिक दुखी और कौन होगा? मैं अभागा आज ही पाण्डवों के सामने शरीर त्यागकर ब्रह्मलोक को जाने की चेष्टा करूँगा।

वैशम्पायन कहते हैं कि राजन्! धृतराष्ट्र को इस तरह अत्यन्त शोक से विलाप करते देखकर, उनके शोक को शान्त करने के लिए, सञ्जय ने कहा—महाराज! आपने बड़े-बूढ़ों के मुँह से वेद, शास्त्र, पुराण और इतिहास सुने हैं। राजा सृञ्जय जब पुत्र-शोक से पीड़ित हुए थे तब ऋषियों ने जिस तरह समझाया था वह भी आप अच्छी तरह जानते हैं। इसलिए शोक को त्यागकर धैर्य धरिए। आपके पुत्र राजा दुर्योधन और दुःशासन जवानी के मद में चूर रहते थे। आपने हितचिन्तकों की बातें नहीं सुनीं; और राज्य-लोभ तथा भोग-लालसा के वश होकर यथार्थ स्वार्थ का विचार नहीं किया। उसी का यह फल है। एकरुख़ी धारवाली तलवार के समान

एक वैर का ही विचार रखनेवाली अपनी ही बुद्धि के अनुसार काम किया और अपना ही सर्वनाश कर डाला। दुर्योधन अत्यन्त क्रूरप्रकृति, अहङ्कारी, अल्पबुद्धि और असन्तोषी थे। उन्होंने सदा दुष्ट प्रकृतिवाले पुरुषों का सङ्ग किया और अपने मन्त्री कूटबुद्धि दुःशासन, कर्ण, शकुनि, चित्रसेन और शल्य आदि के कहे में चलकर सच्चे हितैषी पितामह भीष्म, देवी गान्धारी, नीति-निपुण विदुर, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, कृष्णचन्द्र, व्यासदेव, नारद तथा अन्य महर्षियों के हितोपदेश पर ध्यान नहीं दिया। वे सदा युद्ध की ही इच्छा रखते थे, जिसका फल यह हुआ कि सब क्षत्रिय मारे गये, [वे खुद भी मरे] और शत्रुओं की कीर्ति बढ़ी। आप बुद्धिमान् और ३० सत्यपरायण हैं, इसलिए इन बातों पर विचार करके आप अब शोक या मोह न करें। आप दोनों पक्ष के पूजनीय और मध्यस्थ थे। इस विवाद को मिटाने की आपमें शक्ति थी, परन्तु आप तटस्थ ही रहे। आपने अपने पुत्र को दबाने का यत्न न करके उसका अनुचित पक्षपात किया। तौलनेवाला पुरुष जैसे दोनों पलड़ों को बराबर रखता है, वैसे ही आपको दोनों पक्षों के प्रति समदर्शी होना चाहिए था। राजन्! मनुष्य को पहले ही सोच-समझकर यथाशक्ति ऐसा बर्ताव करना चाहिए, जिसमें पीछे पछताना न पड़े। आपने पुत्र को प्रसन्न रखने के लिए सदा यत्न किया। पुत्र-स्नेह के कारण ही आज आपको पछताना पड़ रहा है। अब आप शोक न कीजिए। जो व्यक्ति गिर पड़ने का ख़याल न करके शहद के लालच से ऊपर चढ़ता जाता है वह मधु-लोभ के फेर में पड़कर जब गिरता है तब आपकी तरह पछताता है। इन बातों पर ध्यान देकर अब आप व्यर्थ शोक न कीजिए। शोक करने से न अर्थसिद्धि होती है, न सुख प्राप्त होता है, न श्री मिलती है और न जय ही होती है। शोक करना अर्थलाभ, फल-लाभ, प्रियलाभ और मोक्षलाभ का प्रधान प्रतिबन्धक है। जो व्यक्ति आप आग लगाकर उस अग्नि में घिरकर जलने पर पछताता, रोता और चिल्लाता है उसे कोई भी समझदार नहीं कहेगा। पहले आप बाप-बेटे दोनों ने पार्थ-पावक को वाक्य-वायु से सुलगाया और लोभ-घृत की आहुति से प्रचण्ड किया। अन्त को उस आग में पतङ्गे की तरह कूदकर आपके पुत्रगण जल मरे। ४० [श्रीकृष्ण और अर्जुन के कोप की आग में भस्म हुए] उन पुत्रों के लिए अब आप शोक न करें। आप इस समय आँसू बहाकर मुख को मलिन कर रहे हैं, यह शास्त्र-विरुद्ध है। पण्डित लोग इस तरह रोने-धोने की निन्दा करते हैं। आत्मीयों के आँसू मृत पुरुषों की आत्मा को अग्निकण की तरह जलाते और दुःख पहुँचाते हैं। इस कारण आप दीन भाव और शोक छोड़कर ज्ञान से आत्मा को शान्त कीजिए—धैर्य धरिए। वैशम्पायन कहते हैं कि सञ्जय जब इस तरह धृतराष्ट्र को समझा चुके, तब विदुरजी ने बुद्धिमानी से भरे हुए वचनों के द्वारा समझाना शुरू किया। ४४

दूसरा अध्याय

विदुर के नीतिपूर्ण वचन

वैशम्पायन कहते हैं कि हे जनमेजय, अब अपने अमृतमय उपदेश से धृतराष्ट्र को शोक-शून्य करते हुए विदुर ने जो कुछ कहा, वह मैं सुनाता हूँ। उन्होंने कहा—राजन्, उठिए। क्या पृथ्वी पर पड़े हुए विलाप कर रहे हैं। विचार करके अपने आत्मा को सँभालिए, धैर्य धरिए। संसार में चिरस्थायी कुछ भी नहीं है। जो इकट्ठा या जमा हुआ है उसका नाश अवश्य होगा। जो उन्नत हुआ है उसका पतन अवश्य होगा। सब संयोगों का परिणाम वियोग है और जीवन का परिणाम मृत्यु है, अर्थात् जो पैदा हुआ है वह अवश्य मरेगा। हे भरतश्रेष्ठ, जब यह निश्चित है कि शूर या कायर दोनों को यमराज नहीं छोड़ते तब क्षत्रिय क्यों न अपने धर्म के अनुसार युद्ध करें और उसमें मारें या मरें? देखिए, युद्ध न करके भी लोग मरते हैं और युद्ध करके भी लोग जीते बच जाते हैं। असल बात यह है कि काल के आये बिना कोई मरता नहीं और काल के आ जाने पर कोई बचता नहीं। सब प्राणियों का आदि और अन्त अव्यक्त है, केवल मध्य ही व्यक्त है; अर्थात् जन्म के पहले जीव कहाँ रहता है और मरने पर कहाँ जाता है, यह कोई नहीं जानता, जब तक संसार में स्थिति रहती है तभी तक उसका अस्तित्व जान पड़ता है। ऐसी दशा में मृत व्यक्ति के लिए शोक करना वृथा है। न तो शोक करके कोई मनुष्य मृत व्यक्ति के पीछे जाता है और न शोक करके मर ही सकता है। संसार का जब यह स्वभाव-सिद्ध नियम है तब आप क्यों पुत्रों के लिए शोक कर रहे हैं? काल को न कोई प्यारा है और न उसका कोई शत्रु है। वह समान भाव से सभी प्राणियों का संहार करता है। जैसे हवा घास-फूस के अग्रभाग को अपने ज़ोर से हिलाती है वैसे ही काल सबको अपने क़ाबू में करके नष्ट करता है। सब प्राणी तो यात्रियों का झुण्ड है। सबको वहीं (परलोक) जाना है। जिसका काल आ जाता है वह पहले चला जाता है। उसमें शोक करने की क्या बात है? १०

राजन्, युद्ध में मारे गये वीरों के लिए तो आपको किसी तरह शोक न करना चाहिए; क्योंकि अगर शास्त्र सत्य हैं तो वे अवश्य ही श्रेष्ठ गति को प्राप्त हुए हैं। वे सभी वीर वेद का स्वाध्याय करनेवाले, सदाचारी और सत्यव्रत थे और सम्मुख युद्ध में लड़कर मरे हैं। उनके लिए शोक करने की क्या आवश्यकता है? देखिए, जन्म से पहले वे अदृष्ट स्थान में थे और वहीं से आये थे; अब मरकर भी आँखों की ओट हो गये हैं। असल में न वे आपके कोई थे और न आप उनके कोई हैं। फिर आपका उनके लिए शोक करना व्यर्थ है। राजन्, युद्ध बहुगुणयुक्त उत्तम धर्म है। रण में किसी तरह निष्फलता नहीं होती; मरने से स्वर्ग मिलता है

और शत्रु को मारने से यश प्राप्त होता है। वीरों को युद्ध में दोनों तरह लाभ है। युद्ध में मरनेवाले लोग इन्द्र के अतिथि होंगे; इन्द्र उन्हें सत्कारपूर्वक सब कामनाएँ पूर्ण करनेवाले श्रेष्ठ लोकों में रक्खेंगे। दक्षिणा सहित यज्ञ, तपस्या और विद्या से लोग उस तरह सहज में स्वर्ग को नहीं जाते, जिस तरह रण में मारे गये शूर जाते हैं। रण में मरनेवाला शूर विशेष सम्मान के साथ तत्काल स्वर्ग जाता है। इसलिए स्वर्ग-प्राप्ति की इच्छा से अधिक समय तक प्रयत्न करनेवाले याज्ञिक, तपस्वी और विद्वान् से वह श्रेष्ठ है। वीर कौरवों ने शत्रु-शरीर रूपी अग्नि में बाणों की आहुतियाँ छोड़ी हैं और दोनों ओर के तेजस्वी वीरों के उन प्रहारों को परस्पर सहन किया है। मैं सच कहता हूँ, क्षत्रिय के लिए युद्ध के सिवा स्वर्गलाभ का सुलभ मार्ग दूसरा नहीं है। वे सब शूरवीर क्षत्रिय उत्तम गति पा चुके हैं, इसलिए कदापि शोचनीय नहीं हैं। अब आप चित्त को शान्त कीजिए। शोक-विह्वल होकर आत्मघात का ख़याल मन में न लाइए और अपने कर्तव्य को न भूलिए। संसार में आकर जीव जन्म-जन्मान्तर में हज़ारों माता-पिताओं को और सैकड़ों २० स्त्री-पुत्रों को अपना समझता है। किन्तु वास्तव में उसका उनसे कोई सम्बन्ध नहीं है; न वह उनका कोई है और न वे उसके कोई हैं। देखिए, ज्ञानी के लिए नहीं, बल्कि मूर्ख के लिए संसार में नित्य-प्रति शोक के हज़ारों और भय के सैकड़ों स्थान (कारण) उपस्थित होते हैं। काल सबकी चोटी पकड़कर खींचता है; उसकी दृष्टि में मित्र, शत्रु या तटस्थ कोई नहीं है। वह सब प्राणियों की उत्पत्ति, वृद्धि, वृद्धता और संहार का कर्त्ता है। जब सभी असावधान रहते हैं तब काल सावधान रहता है; इसी को दूसरे शब्दों में कहते हैं कि सब सोते हैं और काल जागता है। काल को कोई कभी नहीं टाल सकता। यौवन, रूप, जीवन, धन, आरोग्य और प्रियजनों का सहवास, सब अनित्य हैं। यह सोचकर ज्ञानी को इनमें लिप्त न होना चाहिए। यह जनक्षय का दुःख सार्वजनिक है; आप अकेले क्यों इसके लिए शोक करके जान दे रहे हैं? मनुष्य अपने प्राण भले दे दे, पर यह दुःख नहीं मिट सकता—मरे हुए फिर नहीं लौट सकते। अगर अपने में शक्ति देखे तो शोक न करके ही इस दुःख का प्रतीकार करे। इस दुःख की दवा यही है कि इसका ख़याल ही छोड़ दे। सोच करते रहने से यह दुःख और भी बढ़ता जाता है। जो कम बुद्धिवाले हैं वे ही इष्ट के वियोग और अनिष्ट के संयोग से मानसिक दुःख पाते हैं। शोकाभिभूत पुरुष धर्मचिन्तन, अर्थचिन्ता अथवा सुख-भोग नहीं कर सकता। लगातार शोक करने से कार्य का और धर्म-अर्थ-काम का नाश होता है। मूर्ख लोग विशेष रूप से दुर्दशाग्रस्त होने पर सन्तोष नहीं कर सकते; किन्तु ज्ञानी लोग उस दशा में भी सन्तोष करके सुखी होते हैं। बुद्धिमान् पुरुष बुद्धि से मानसिक दुःख को ३० और औषध से शारीरिक कष्ट को नष्ट करते हैं। ज्ञान में ही यह शक्ति है कि वह दुःख को पास नहीं फटकने देता। ज्ञानी पुरुष को बालक अथवा मूर्ख के समान आचरण करना

नहीं सोहता। महाराज, सोते-जागते उठते-बैठते चलते-फिरते सदा पूर्व-कृत कर्म मनुष्य के साथ रहते हैं। मनुष्य (यौवन आदि) जिस-जिस अवस्था में जो-जो कर्म करते हैं, उसी-उसी अवस्था में उन्हें उस-उस कर्म का फल भोगना पड़ता है। हम लोग स्थूल शरीर से जो कर्म करते हैं उसका फल स्थूल शरीर से ही भोगते हैं और सूक्ष्म शरीर (अर्थात् मन) से किये कर्म का फल सूक्ष्म शरीर से ही स्वप्न आदि में भोगते हैं। मनुष्य का आत्मा ही उसका मित्र भी है और शत्रु भी। उसके सुकृत और दुष्कृत का साक्षी भी आत्मा ही है। शुभ कार्य से सुख और अशुभ कार्य से दुःख मिलता है। किये हुए कर्म का ही फल मिलता है। बिना कर्म किये उसका फल नहीं मिल सकता, अर्थात् संसार का सुख-दुःख कर्म-फल ही है। आप सरीखे बुद्धिमान्
३७ पुरुष कभी ज्ञान-विरुद्ध, पापजनक, शरीर को दुःख देनेवाले कर्मों में नहीं लिप्त होते।

तीसरा अध्याय

शास्त्र के तत्त्वों का वर्णन

धृतराष्ट्र ने कहा—हे महाप्राज्ञ विदुर, तुम्हारे श्रेष्ठ वचनों से मेरा शोक दूर हो गया। मैं फिर तुमसे तत्त्वपूर्ण मधुर वाक्य सुनना चाहता हूँ। जिनको नहीं चाहते उनके संसर्ग और जिनको चाहते हैं उनके वियोग से उत्पन्न मानसिक दुःख को पण्डित पुरुष कैसे दूर करते हैं?

विदुर ने कहा—राजन्! पण्डित पुरुष को चाहिए कि जिन-जिन उपायों से उसका मन सुख या दुःख से मुक्त हो उन्हीं-उन्हीं उपायों का आश्रय ले, इसी तरह सुख-दुःख से बचने पर वह शान्ति पाता है। हे नरश्रेष्ठ, संसार के धन-जन आदि विषय अनित्य और केले के वृक्ष के समान सार-रहित हैं। जब विद्वान्, मूर्ख, धनी, निर्धन सब अन्त को एक साथ मसान में लेटते हैं तब वे सब चिन्ताओं से मुक्त होते हैं; उनके शरीर, हड्डी के ढाँचे रह जाते हैं—नसें देख पड़ती हैं और किसी में कोई विशेषता नहीं देख पड़ती, जिससे कि उनके कुल या रूप की विशेषता जान पड़े। फिर न-जाने क्यों कुबुद्धि से ठगे हुए मनुष्य परस्पर स्नेह के वश होकर मोह को प्राप्त होते हैं अथवा परस्पर वैर करते हैं? पण्डित लोग मनुष्य के कलेवर को ही उस (आत्मा) का घर बतलाते हैं। काल उस कलेवर को जीवों से छुड़ाता है। केवल लिङ्ग शरीर अथवा आत्मा ही मोक्षपर्यन्त बना रहता है। जैसे पुरुष नये या पुराने कपड़े को उतार-कर अन्य कपड़ा पहन लेता है वैसे ही जीव भी एक शरीर को छोड़कर दूसरा शरीर धारण करता है। राजन्, यह बिल्कुल ठीक है कि प्राणी इस लोक में अपने कर्मों से ही सुख या दुःख
१० भोगता है; कर्म से ही सुख या दुःख अथवा स्वर्ग मिलता है। इसी लिए मनुष्य स्ववश या विवश होकर उस भार को उठाता है। जैसे मिट्टी के बर्तनों में कुछ कुम्हार के चाक पर

चक्कर खाते हैं, कुछ थोड़े-बहुत आकारयुक्त होते हैं, कुछ सम्पूर्ण गठित होते हैं, कुछ बिगड़े हुए होते हैं, कुछ पूर्ण बनाकर उतारे हुए रक्खे होते हैं, कुछ उस पर चढ़ाये जानेवाले होते हैं, कुछ गीले या सूखे होते हैं, कुछ पकाये जा रहे होते हैं, कुछ आँवे में चढ़ाये गये होते हैं, कुछ पकाये जाकर आँवे से निकाले गये होते हैं और कुछ समाज में व्यवहृत होकर टूट-फूट जाते हैं, वैसी ही दशाएँ मनुष्यों के शरीरों की होती हैं। कोई जीव गर्भ में स्थित, कोई पैदा हुआ, कोई एक दिन का, कोई एक पक्ष का, कोई एक मास का, कोई एक वर्ष या दो वर्ष का, कोई जवान, कोई अधेड़ और कोई बूढ़ा होकर शरीर त्याग देता है। मतलब यह कि पूर्वकृत कर्मों के अनुसार ही जीव यहाँ पैदा होते या मरते हैं। राजन्, जब संसार की यह स्वाभाविक गति ही है तब आप मृत पुत्र आदि के लिए क्यों शोक कर रहे हैं? जैसे जल में क्रीड़ा कर रहा पुरुष कभी डूबता है, कभी ऊपर आता है, वैसे ही गहन संसार में जीव जन्म लेता या मरता है। यह सब कर्म-फल ही है। इसमें अविवेकी लोग ही शोक करके क्लेश पाते हैं। जो समझदार लोग मोक्ष-प्राप्ति और जीवों के हितसाधन का यत्न करते हैं और मनुष्यों के जीवन-मरण का यह रहस्य जानते हैं उन्हीं को परम गति मिलती है। २०

चौथा अध्याय

गर्भवास के प्रकार का वर्णन

धृतराष्ट्र ने कहा—हे वाक्यविशारद विदुर, दुर्ज्ञेय संसार की गति किस तरह जानी जा सकती है? मैं यह सुनना चाहता हूँ। तुम वर्णन करो।

विदुर ने कहा—राजन्! जीवों की जन्म से लेकर अन्त तक की सब चेष्टाएँ मैं आपको सुनाता हूँ, एकाग्र होकर सुनिए। सबसे पहले जीव शुक्र-शोणित के संयोग में एक रात रहता है। पाँच रात के बाद बुद्बुद रूप धारण करता है। पाँचवाँ महीना बीतने पर उसमें चेतनता आ जाती है। फिर धीरे-धीरे बढ़कर पाँच महीने में सर्वाङ्गयुक्त होकर, गर्भावस्था को प्राप्त होकर, मांस-रक्त-लिप्त अति अपवित्र स्थान में निवास करता है। अन्त को वायु के वेग से उसके पैर ऊपर और सिर नीचे होता है और इसी अवस्था से योनि के द्वार पर पहुँचता और अनेक क्लेश सहता है। पूर्व-कर्मयुक्त जीव, बड़े कष्ट से, योनि के क्लेश से मुक्त होकर बाहर आता है और क्रमशः अन्य विविध उपद्रवों के आक्रमण सहता है। मांस-लोभी कुत्तों की तरह विविध बालग्रह उसके निकट आते और सताते हैं; अपने कर्मों के कारण अनेक व्याधियाँ घेरती हैं। इन्द्रियपाश में बँधे हुए सङ्गकामी जीव को अन्य विविध व्यसन पीड़ा पहुँचाते हैं। इस तरह बाल्यकाल में उन व्यसनों से बाधित जीव किसी तरह तृप्ति या शान्ति नहीं पाता।

उस समय वह जो कुछ करता है उसके बारे में भले या बुरे का विचार उसे नहीं होता। जो उसके हितचिन्तक और ज्ञानी हैं वे उसकी देख-रेख और रक्षा करते हैं। भ्रान्त जीव स्वयं यह नहीं जानता कि यमालय जाने का समय आ गया है, अथवा वह यमलोक से ही [कर्म-फल

१० भोगने को] यहाँ आया है। काल उपस्थित होने पर यमदूत उसे खींचकर यमपुर ले जाते हैं। वहाँ गूँगे की तरह चुपचाप उसे इष्ट या अनिष्ट कर्मों का फल भोगना पड़ता है। राजन्, संसार की कैसी विचित्र गति है कि लोग बारम्बार आप ही अपने विनाश का कारण बनते और आत्मोद्धार की उपेक्षा करते हैं। अहो, लोभ के वश होकर लोग स्वयं आत्म-वञ्चना करते हैं। लोभ, क्रोध, भय और मद के वशवर्ती होकर लोग अपने को भूल जाते हैं। मनुष्य अपनी कुलीनता और अमीरी का घमण्ड करके अकुलीनों और ग़रीबों की निन्दा करता है, उन्हें हेय समझता है। अनेक मनुष्य औरों को मूर्ख कहते हैं, पर अपनी मूर्खता को नहीं देखते; औरों के दोषों का उल्लेख करके उन्हें बुरा कहते हैं, लेकिन अपने दोषों को दूर करने की अथवा आत्मशासन की इच्छा नहीं करते। जब मूर्ख-विद्वान्, धनी-निर्धन, कुलीन-अकुलीन, मानी-मानरहित, प्रतिष्ठित-अप्रतिष्ठित, सभी मांसहीन अस्थिपञ्जर और निकली हुई नसों से भयङ्कर शरीर लेकर एक साथ मसान में लेटते हैं, तब उनमें क्या विशेषता रह जाती है जिससे उनके विशेष कुल, रूप या गुण का परिचय प्राप्त हो ? जब सबको समान भाव से पृथ्वी पर पड़कर दीर्घनिद्रा का अनुभव करना पड़ता है तब न-जानें क्यों बुद्धिहीन लोग परस्पर प्रवञ्चना करना चाहते हैं ! राजन्, इस तत्त्व को जानकर जो पुरुष इस नश्वर संसार में उचित आचरण करता

२० रहता है वह परमगति (मोक्ष) पाकर सुखी होता है। उसके लिए श्रेष्ठ मार्ग दुर्गम नहीं रह जाता।

पाँचवाँ अध्याय

भवाटवी में संसार-कूप का वर्णन

धृतराष्ट्र ने कहा—हे विदुर, जिस बुद्धि के द्वारा गहन धर्म का ज्ञान होता है उसी बुद्धि का मार्ग विस्तारपूर्वक बताओ।

विदुर ने कहा—महाराज ! मैं स्वयंभू भगवान् को प्रणाम करके, आपकी आज्ञा के अनुसार, संसार-कूप का वर्णन करता हूँ; ध्यान देकर सुनिए। महर्षियों ने गहन वन के रूपक से संसार का वर्णन किया है। पूर्व समय में एक ब्राह्मण घूमते-फिरते एक दुर्गम वन के भीतर घुस गया। वह वन सिंह, बाघ, हाथी, रीछ और मांसाहारी निशाचर जीवों से भरा हुआ तथा उनके भयङ्कर शब्द से परिपूर्ण था। वह ऐसा भयङ्कर था कि उसे देखकर यमराज भी भी डर जायँ। उस वन को देखकर ब्राह्मण अत्यन्त उद्विग्न हो उठा; उसके रोंगटे खड़े हो गये।

तब वह "किसकी शरण में जाऊँ" यह सोचता हुआ—चारों ओर दृष्टि डालता—डर के मारे भागा और उन भयानक जीवों का नाश तथा अपनी रक्षा चाहने लगा। परन्तु भागने पर भी न तो वह दूर जा सकता था और न उन भयानक जीवों से ही उसका पीछा छूटता था। भागते-भागते आगे जाकर उसने देखा कि वह वन बहुत ही सूनसान और अन्धकारमय है। चारों ओर शिकारी के फन्दे लगे हुए हैं। वहाँ एक घोररूपिणी स्त्री उससे लिपट गई। आगे पाँच सिर के पर्वताकार महासर्प और चारों ओर फैले हुए ऊँचे-ऊँचे वृक्ष मार्ग रोके हुए देख पड़े। उस वन में ब्राह्मण ने देखा कि एक अन्धकूप घास-फूस और लता-वितान से ढका हुआ है। ब्राह्मण बढ़ते-बढ़ते उस लतावितान-मण्डित गहरे कूप में गिर पड़ा और—तले सिर ऊपर पैर इस प्रकार—लताओं में उलझकर, कटहल के फल की तरह, लटक गया। इस प्रकार लटकते हुए ब्राह्मण ने देखा कि एक भयङ्कर नाग उस कुँए में नीचे बैठा है और ऊपर छः मुख और बारह चरणोंवाला कबरे रङ्ग का मस्त हाथी धीरे-धीरे उस लता के पास आ रहा है, जिसे पकड़े वह लटक रहा था। उस वृक्ष की शाखा-प्रशाखाओं में अनेक रूप की घोर मधुमक्खियाँ शहद के छत्ते से लिपटी हुई हैं। उस छत्ते से मधु की धारा गिर रही है और मधुमक्खियाँ बार-बार उस मधु को पीने के लिए आ रही हैं। वह मधु अत्यन्त स्वादिष्ठ और प्राणियों को प्रिय है। बाल-प्रकृति मूर्ख उसे पीते-पीते नहीं अघाता। वह ब्राह्मण उस सङ्कट में लटककर भी उस मधु को पीने लगा, परन्तु लगातार पीकर भी उसकी तृष्णा न मिटती थी और तृप्ति न होने के कारण वह बारम्बार अधिकाधिक परिमाण में उसे पीना चाहता था। ब्राह्मण को उस सङ्कटमय जीवन से वैराग्य नहीं होता था, वहीं उसी दशा में जीवित रहकर वह मधुपान करता रहना चाहता था। उस वृक्ष की जड़ को सफ़ेद और काले चूहे लगातार काट रहे थे। उस दुर्गम वन के बीच नागों का, उस उग्र स्त्री का, कूप के नीचे से नाग का, कूप के ऊपर हाथी का, चूहों के जड़ काटने से वृक्ष के गिरने का और मधुलोभी मक्खियों के काटने का महाभय उपस्थित था; तथापि संसार-कूप में पड़ा हुआ वह ब्राह्मण उसी तरह लटका हुआ है, और जीवन की आशा उसे बराबर बनी हुई है। महाराज, पण्डितों ने यह संसार के ही रूपक का वर्णन किया है। १० २० २४

छठा अध्याय

रूपक का खुलासा

धृतराष्ट्र ने कहा—विदुर, अवश्य ही वह ब्राह्मण वहाँ बड़े कष्ट से रहता होगा। उसे वहाँ आनन्द और सन्तोष कैसे होता है? [वह वहाँ कष्ट को ही सुख मानकर कैसे रहता

है ?] वह स्थान कहाँ है जहाँ वह धर्म-सङ्कट में रहता है ? और वह उस महाभय से कैसे छूट सकता है ? यह सब मुझसे कहो, जिसमें हम लोग भी अच्छी तरह रहने की चेष्टा करें। उसका हाल सुनकर मुझे बड़ा तरस आ रहा है, और उसके उद्धार के लिए बड़ी इच्छा हो रही है।

विदुर ने कहा—महाराज ! मोक्षमार्ग के जाननेवालों का कहा हुआ संसार-रूपक का उपाख्यान सुनिए, जिसके ज्ञान से मनुष्य को परलोक में अच्छी गति प्राप्त होती है। वह महा-वन ही महासंसार है। व्याधियाँ ही साँप हैं। वृद्धावस्था बड़े कलेवरवाली घोररूप कामिनी ही है, जो रूप-लावण्य को हर लेती है। मनुष्यों का शरीर ही अन्धकूप है। काल ही उसके नीचे रहनेवाला महासर्प है, जो प्राणान्तक सर्वसंहारक है। शरीरधारियों के जीवन की आशा ही वह लता है, जिसे पकड़कर मनुष्य लटका रहता है। वर्ष ही वह कूप के ऊपर लता के निकट आनेवाला हाथी है। छः ऋतुएँ उसके छहों मुख और बारहों महीने उसके बारहों चरण हैं। प्राणियों की आयु को क्षीण करनेवाले दिन और रातें ही वे वृक्ष की जड़ को काटनेवाले सफ़ेद-काले चूहे और साँप हैं। विविध इच्छाएँ ही वे मधुलोभी मक्खियाँ हैं और विषय-सुख-भोग ही वृक्ष के मधुचक्र से निकलनेवाली मधु-धाराएँ हैं। उन्हीं का सेवन करके मनुष्य तृप्त नहीं होते। [जीवात्मा ही वह ब्राह्मण है।] महाराज, इस तरह जो लोग संसार-चक्र के इस रूपक को अच्छी तरह जानते हैं, वे उसी ज्ञान से संसार-चक्र के बन्धन को काट सकते हैं। १४

सातवाँ अध्याय

तत्त्वज्ञान का वर्णन

धृतराष्ट्र ने कहा—विदुर, तुम बड़े तत्त्वदर्शी हो। तुमने यह बहुत ही अद्भुत रूपक-रूप उपाख्यान सुनाया। मैं फिर तुम्हारे अमृतमय मधुर वचन सुनना चाहता हूँ।

विदुर ने कहा—महाराज, पण्डित जन जिसे सुनकर संसार (जन्म-मरण) से मुक्त होते हैं उसी संसार-मार्ग के विषय को फिर विस्तारपूर्वक सुनिए। जैसे, यदि दूर की मञ्ज़िल को जाना होता है तो लोग थककर जगह-जगह विश्राम के लिए ठहरते या टिकते हैं, वैसे ही मूर्ख लोग चिरकाल तक संसार-मार्ग में घूमते हुए बारम्बार गर्भवास के कष्ट सहते हैं। किन्तु जो ज्ञानी होते हैं वे ज्ञानबल से उससे छुटकारा पा जाते हैं। इसी कारण शास्त्रनिपुण पुरुष इस संसार-वन को भवाटवी भी कहते हैं। हे भरतश्रेष्ठ, स्थावर और जंगम सभी प्राणी इस मार्ग में लगा-तार भटकते रहते हैं। ज्ञानी को इसमें न फँसना चाहिए, अर्थात् इससे उद्धार का उपाय करना चाहिए। इस मार्ग में [ख़ूनी जानवरों के समान] अनेक प्रकार की शारीरिक और मान-सिक व्याधियाँ मनुष्य पर आक्रमण करती हैं। उन्हीं प्रत्यक्ष और परोक्ष व्याधियों को विद्वान्

लोग सर्प कहते हैं। कर्मफल-जनित वे व्याधि-सर्प क्लेश देते हैं, प्राण हरते हैं; किन्तु फिर भी अल्पबुद्धि पुरुषों की आँखें नहीं खुलतीं। अगर किसी तरह उन व्याधियों से पीछा छूटता है तो पीछे से रूप को नष्ट करनेवाली वृद्धावस्था मनुष्य को घेरती है। [पर मूढ़ मनुष्य किसी तरह जीवन की आशा नहीं छोड़ता।] शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श आदि विविध इन्द्रिय-भोग्य विषयों की दलदल में निरालम्ब जीव और भी डूबता जाता है। संवत्सर, ऋतु, मास, पक्ष, दिन, रात्रि आदि घूम-फिरकर क्रमशः मनुष्यों के रूप और आयु को क्षीण करते हैं। किन्तु निर्बोध मनुष्य नहीं जानते कि वे सब काल के दूत हैं। सभी जीव अपने-अपने कर्म के अनुरूप फल भोगते हैं। प्राज्ञ पुरुष प्राणियों के शरीर को रथ, जीवात्मा को सारथी, इन्द्रियों को घोड़े और कर्म-वासनाओं को उन घोड़ों की रासें कहते हैं। जो व्यक्ति उन इन्द्रिय-रूप घोड़ों के वेग को बुद्धिरूप लगाम के द्वारा न रोककर उनके साथ ही दौड़ जाता है, जिधर वे ले जाते हैं उधर ही चला जाता है, वह इस संसार(जन्म-मरण)-चक्र में पहिये की तरह चक्कर खाता रहता है। जो लोग संसार में भ्रमण करके भी भ्रान्त नहीं होते वे संसार में बारम्बार नहीं आते और जो भ्रान्त हो जाते हैं वे बारम्बार जन्म-मरण के चक्र में भ्रमण करते हैं। १०

महाराज ! इस तरह संसार-चक्र में भ्रमण करके जीवों को बहुविध कष्ट भोगने पड़ते हैं, इसलिए बुद्धिमान् पुरुष को चाहिए कि तत्पर होकर उस संसार-दुःख को दूर करने का अत्यन्त यत्न करे। इस काम में ढिलाई करने से संसार-वृक्ष सैकड़ों शाखाओं से बढ़ता है। जो मनुष्य क्रोध-लोभ को त्यागकर, जितेन्द्रिय होकर, सन्तुष्ट और सत्यपरायण होता है वही शान्ति पाता है। जो मनुष्य बिलकुल बुद्धि-विहीन और मोह में पड़ा हुआ तृष्णाशील है वही—आप की तरह—राज्य, मित्र, पुत्र, स्वजन आदि के नाश से उत्पन्न दुःख से दीन होकर सन्ताप और दुःख भोगता है। संयतचित्त सज्जन, ज्ञानरूप औषध के प्रयोग से, दुःख-शोक-रूप महाव्याधि को दूर करें। चित्त को स्थिर करना ही दुःख से छूटने का उत्तम उपाय है। पराक्रम, धन या बन्धु-बान्धव आदि उक्त संसार-दुःख को कभी नहीं छुड़ा सकते। इसकी दवा तो स्थिरतापूर्वक संयम ही है। इसलिए आप चित्त को स्थिर करके अपने दुःख को दूर कीजिए। दुःख के समय शील ही मित्र है। इन्द्रिय-दमन, त्याग और सावधानता, ये तीनों ब्रह्मलोक को ले जानेवाले घोड़े हैं। जो शील की रास से इन घोड़ों को हाँककर मन के रथ पर सवार होता है वह मृत्यु-भय को त्यागकर ब्रह्मलोक को जाता है। महाराज, जो कोई जीवों को अभय-दान करता है वह व्याधि-रहित श्रेष्ठ विष्णु-लोक को जाता है। मनुष्य को अभयदान से जो फल मिलता है वह हज़ारों यज्ञों और उप-वासों से नहीं मिलता। यह निश्चित है कि मनुष्यों को आत्मा से बढ़कर प्रिय और कुछ नहीं है। मृत्यु किसी को भी प्रिय नहीं है। इसलिए बुद्धिमान् को अहिंसा व्रत ग्रहण करके सब प्राणियों पर दया करनी चाहिए। स्थूलदर्शी मन्दमति लोग अनेक वासनाओं में भटककर, २०

मोहजाल में पड़कर, निरन्तर जन्म-मरण के चक्र में चक्कर खाते हैं; और जो सूक्ष्मदर्शी हैं वे तत्त्वज्ञान से ब्रह्मलोक को जाते हैं। [हे महाप्राज्ञ, यह जानकर अब आप मृत पुत्र प्रभृति के २६ मृतक-संस्कार आदि कृत्य कीजिए।]

आठवाँ अध्याय

व्यासदेव का धृतराष्ट्र को समझाना

वैशम्पायन कहते हैं—हे जनमेजय, विदुर के मुख से यह [पुत्रों के मृतक-संस्कार की] बात सुनकर पुत्रशोक से पीड़ित धृतराष्ट्र पृथ्वी पर गिर पड़े और मूर्च्छित हो गये। तब कृष्ण-द्वैपायन व्यास, विदुर, सञ्जय और अन्य भाई-बन्धु तथा द्वारपालगण धृतराष्ट्र की यह दशा देखकर उनकी सेवा करने लगे। देर तक शीतल जल छिड़ककर, पङ्खे से हवा करके, शरीर-स्पर्श के द्वारा वे लोग धृतराष्ट्र की मूर्च्छा दूर करने का यत्न करते रहे। बहुत देर में धृतराष्ट्र को होश आया। वे पुत्रशोक से पीड़ित होकर विलाप करते हुए अपने पिता महात्मा व्यासदेव से कहने लगे—भगवन्, मनुष्य-जन्म और मनुष्य-शरीर-धारण को धिक्कार है। मनुष्य-शरीर धारण करनेवाले को बारम्बार दुःख मिलते हैं। पुत्र, धन, ज्ञाति, सम्बन्धी आदि के विनाश से समय-समय पर विष और अग्नि के समान असह्य दुःख मिलते हैं, जिनसे अङ्गों में आग सी लग जाती है और बुद्धि भ्रष्ट होती है। दुःख-शोक से पीड़ित होने पर मर जाने को ही जी चाहता है। अभाग्यवश वही दुर्दशा और दुःख मुझे प्राप्त हुआ है। मैं जीवन्मृत हो रहा हूँ। प्राण दिये विना इस दुःख से छुटकारा मिलता नहीं देख पड़ता। इसलिए मैं अभी प्राण-त्याग करूँगा। हे जनमेजय, महाराज धृतराष्ट्र अपने पिता व्यासदेव से इतना कहकर शोकाभिभूत और चिन्ता ११ से व्याकुल होकर चुप हो रहे।

शोकार्त अपने पुत्र धृतराष्ट्र के ये वचन सुनकर, उन्हें सम्बोधन करके, महर्षि व्यास ने कहा—पुत्र, मेरी बातों को एकाग्र होकर सुनो। तुम सब शास्त्रों के ज्ञाता, बुद्धिमान् और धार्मिक हो। तुम सभी विषयों को विशेष रूप से जानते हो। मनुष्यों की अनित्यता और क्षणभङ्गुरता का विषय तुम्हें विदित है। जब कि सभी जीवों का यहाँ निवास अनित्य है और जन्म लेनेवाले जीव की मृत्यु अनिवार्य है, तब फिर क्यों शोक कर रहे हो? दैव ने तुम्हारे सामने ही तुम्हारे पुत्र दुर्योधन को कारण बनाकर यह पाण्डवों और कौरवों का विरोध उपस्थित किया है। यह घटना कालकृत है। कौरवकुल का संहार होना ही था। तुम उसके लिए क्यों व्यर्थ शोक करते हो? रण में मारे जाने से उन शूरों को श्रेष्ठ गति प्राप्त हुई है। उनके लिए शोक करना मूर्खता है। विदुर ने ऐसे सर्वनाश की सम्भावना जानकर पहले ही

मेल कराने का बहुत यत्न किया, किन्तु किसी तरह वे कृतकार्य नहीं हो सके। मेरी समझ में कोई भी प्राणी, बहुत समय तक घोर यत्न करके भी, होनी को नहीं टाल सकता।

मैंने स्वयं देवलोक में सुना है कि कौरवकुल का संहार और क्षत्रियों का नाश देवकार्य के लिए होगा। वहाँ का विस्तृत विवरण मैं तुमको सुनाता हूँ। उसे सुनकर तुम अपने चित्त को स्थिर और हृदय को शोक-शून्य कर सकोगे। एक बार मैं इन्द्र की सभा में गया। २० वहाँ सब देवता एकत्र थे। नारद आदि देवर्षि उपस्थित थे। वहाँ अपने कार्य के लिए पृथ्वी ने जाकर कहा—हे देवगण, आप लोगों ने पूर्व-समय में ब्रह्मलोक में जो मेरा कार्य करने की प्रतिज्ञा की थी उसे शीघ्र पूर्ण कीजिए। [मुझ पर बहुत भार हो रहा है।] तब लोक-वन्दित विष्णु भगवान् ने उस देवसभा के बीच हँसकर कहा—हे पृथ्वी, धृतराष्ट्र के सौ पुत्रों में बड़ा राजा दुर्योधन तुम्हारा कार्य करेगा। वह राजा होकर तुम्हें कृतकृत्य कर देगा। उसी के कारण असंख्य क्षत्रिय कुरुक्षेत्र में जमा होंगे और युद्ध में शस्त्रों से एक दूसरे का संहार करेंगे। हे देवी, उसी युद्ध में तुम्हारा भार उतर जायगा। अब तुम अपने स्थान पर जाकर निश्चिन्त होकर लोकों को धारण करो।

हे धृतराष्ट्र, तुम्हारा पुत्र लोक-संहार के लिए गान्धारी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। वह कलियुग का अंश था, इसी से अत्यन्त असहनशील, अभिमानी, क्रोधी, उद्धत और चञ्चल-प्रकृति था। ३० दैवयोग से उसके भाई दुःशासन आदि भी वैसे ही स्वभाव के थे और उसको शकुनि सा मामा तथा कर्ण सा मित्र सलाहकार मिल गया था। दुर्योधन की तरह अन्य राजा लोग भी लोक-संहार के लिए पृथ्वी पर उत्पन्न हुए थे। असल बात यह है कि जैसा राजा होता है वैसी ही उसकी प्रजा भी हो जाती है। स्वामी धर्मपरायण होता है तो अधर्मी प्रजा भी धीरे-धीरे धर्मनिष्ठ बन जाती है। स्वामी के गुण या दोष भृत्यों को भी गुणी या दोषी बना डालते हैं। राजन्, दुष्ट राजा के दोष से तुम्हारे अन्य पुत्र भी मारे गये। मैंने देवलोक की जो बात तुमसे कही है उसे महात्मा नारद भी जानते हैं। हे राजेन्द्र, तुम्हारे पुत्र अपने ही अपराध से मर मिटे हैं। उनके लिए शोक करने का कोई कारण नहीं। पाण्डवों का इसमें रत्ती भर भी अपराध नहीं है। तुम्हारे पुत्र ही दुरात्मा थे, जिससे वे आप भी मरे और सब क्षत्रियों को भी ले डूबे। राजन्! तत्त्वदर्शी देवर्षि नारद ने, राजसूय यज्ञ के अवसर पर, युधिष्ठिर को इस होनहार दुर्घटना की ख़बर दे दी थी। उन्होंने कह दिया था कि हे युधिष्ठिर, पाण्डवों और कौरवों का परस्पर युद्ध होगा और उसमें कुरुकुल का संहार हो जायगा। इसलिए इस समय तुम जो अपना कर्तव्य समझो वह करो। हे धृतराष्ट्र, नारद के ये वचन सुनकर पाण्डवों को बड़ा खेद हुआ। [उन्होंने यह जानकर भी कुरुकुल को विनाश से बचाने का बड़ा यत्न किया, पर कुछ फल न हुआ।] पुत्र! मैंने तुमसे यह देवताओं का सनातन रहस्य इसलिए कह दिया है कि तुम इस

दुर्घटना को दैव-विडम्बना जानकर, शोकरहित होकर, शरीरत्याग का विचार छोड़ दो और पाण्डवों
४० पर क्रोध न करके उन्हें स्नेह की दृष्टि से देखो। मैंने भी उक्त देवकार्य के रहस्य को जानकर राजसूय यज्ञ में धर्मराज से सब हाल कह दिया था। युधिष्ठिर ने मुझसे सब वृत्तान्त सुनकर इसके लिए विशेष यत्न किया कि कौरवों से विरोध न बढ़े; किन्तु दैव के प्रबल और अनिवार्य होने के कारण उन्हें अपने उस शुभ उद्योग में सफलता नहीं मिली। असल बात यह है कि सभी प्राणी कालगति के अधीन हैं। वे दैव को नहीं टाल सकते।

तुम धर्मपरायण और बुद्धिमान् हो, जीवों की सद्गति और दुर्गति के विषय को विशेष रूप से जान चुके हो। फिर क्यों इस समय शोक और मोह के वश हो रहे हो? धर्मराज का स्वभाव अत्यन्त कोमल है। यदि वे सुनेंगे कि तुम शोक से विह्वल होकर बारम्बार अचेत होकर इस तरह रोते-कलपते हो तो अवश्य ही अपने प्राणों को नष्ट कर डालेंगे। वीर धीर धर्मराज कीट-पतङ्ग आदि पर भी दया रखते हैं। फिर वे तुम्हारे ऊपर क्यों न दया करेंगे? देखो, मेरे कहने से, दैव को अखण्डनीय जानकर, पाण्डवों पर कृपा करके तुम जीवन धारण करो। इस प्रकार जीकर पाण्डवों से प्रेमपूर्ण व्यवहार करने से संसार में तुम्हारा बड़ा नाम होगा। इसी से तुम धर्म और अर्थ का सेवन और तप भी कर सकोगे। पुत्र-शोक की आग को ज्ञान
४६ के जल से बुझाकर शान्ति प्राप्त करो।

वैशम्पायन कहते हैं कि हे जनमेजय! महातेजस्वी व्यासदेव के ये वचन सुनकर, पल भर सोचकर, धृतराष्ट्र ने कहा—हे महर्षिश्रेष्ठ, मैं शोक से अत्यन्त मोहित हो रहा हूँ। बारम्बार मोहाभिभूत होने के कारण मेरी बुद्धि ठिकाने नहीं रहती और मेरा आत्मज्ञान लुप्त हो जाता है। इस समय आपके मुँह से यह सुनकर कि मेरे पुत्रों का विनाश एक दैवी घटना है, मैं प्राणधारण-पूर्वक शोक दूर करने का यत्न करूँगा। धृतराष्ट्र के ये वचन सुनकर
५३ व्यासदेव वहाँ से अन्तर्द्धान हो गये।

नवाँ अध्याय

गान्धारी आदि स्त्रियों को लेकर मृत पुरुषों को देखने के लिए
धृतराष्ट्र का नगर से रणभूमि को जाना

वैशम्पायन ने कहा कि महाराज, अब राजा धृतराष्ट्र ने सवारी तैयार करने की आज्ञा देकर कहा—हे विदुर! तुम गान्धारी, कुन्ती और कौरवों की सब स्त्रियों आदि को शीघ्र ले आओ। यों कहकर शोकाकुल धृतराष्ट्र रथ पर सवार हुए।

पुत्रशोक से व्याकुल गान्धारी पति की अनुमति के अनुसार, कुन्ती और अन्तःपुर की अन्य सब स्त्रियों को साथ लेकर, धृतराष्ट्र के पास आईं। अत्यन्त शोक से विह्वल वे स्त्रियाँ राजा के पास आकर ज़ोर-ज़ोर से रोने लगीं। महामति विदुर ने स्वयं अत्यन्त शोकाकुल होकर भी आर्त स्वर से रो रही उन नारियों को समझाकर रथों पर विठाया। वे सबको लेकर नगर से बाहर निकले। उस समय कौरवों के हर एक घर में आर्तनाद और करुण विलाप की ध्वनि सुनाई पड़ने लगी। बालक, बूढ़े, स्त्रियाँ सभी अत्यन्त शोक से व्याकुल देख पड़ते थे। जिन कुल-ललनाओं को पहले देवताओं ने भी नहीं देखा था उन्हीं को—स्वामियों और पुत्रों से हीन-दीन होकर—साधारण पुरवासियों के सामने निकलना पड़ा। सब स्त्रियाँ आभूषणहीन, एक ही धोती पहने और बाल खोले हुए अनाथ की तरह [विधवा-वेष धारण किये] श्वेत पर्वत-सदृश महलों से निकलने लगीं। उस समय ऐसा जान पड़ता था जैसे यूथप के मारे जाने पर हरिणियों के झुण्ड कन्दराओं से निकल रहे हों। शिक्षा-भूमि में बछेड़ियाँ जैसे जाती हैं वैसे ही उन शोकाकुल किशोरी स्त्रियों के झुण्ड घरों से निकलकर रणभूमि की ओर चले। हाथों से छाती पीटती और मारे गये पुत्रों, भाइयों, पिताओं और पतियों को पुकारती, रोती-बिलखती, दौड़ी जा रही वे स्त्रियाँ "हाय, हम मारी गईं!" कह-कहकर प्रलयकाल का सा दारुण दृश्य दिखा रही थीं। उन्हें यह होश न था कि क्या करना चाहिए और क्या नहीं। जो स्त्रियाँ पहले अपनी सखियों से भी शरमाती थीं वे एक ही धोती पहने, लज्जा त्यागकर, सासों के सामने हाय-हाय कर रही थीं। जो स्त्रियाँ साधारण शोक के अवसर पर एक दूसरी को दिलासा देती थीं वे, इस घोर दुःख के समय, गूँगी सी होकर एक दूसरी के मुँह की ओर ताकती तक न थीं। इस तरह शोकाकुल होकर रो रही उन स्त्रियों के साथ राजा धृतराष्ट्र दीन भाव से नगर से रणभूमि की ओर शीघ्रता से चले। शिल्पी, व्यापारी, वैश्य आदि सब रोज़गारी लोग अपने-अपने कामों को छोड़कर, दुःख प्रकट करते हुए, नगर से राजा के पीछे चले। कौरवों के नाश से दुःखित स्त्रियों का वह रोने-कलपने का महाकोलाहल चारों ओर व्याप्त हो गया। उसे सुनकर आसपास के लोग व्यथित हो उठे। प्रलय के समय प्रलयाग्नि में जल रहे जीवों के चिल्लाने का सा वह शब्द सुनकर, प्रलयकाल उपस्थित जानकर, सब नगरवासी उद्विग्न और व्यथित हो उठे। सब राजभक्त लोग भी "हा महाराज!" कहकर ज़ोर-ज़ोर से विलाप करने लगे।

१०

२०

दसवाँ अध्याय*

मार्ग में कृपाचार्य्य, कृतवर्मा और अश्वत्थामा की धृतराष्ट्र से भेंट

वैशम्पायन कहते हैं कि राजन्, परिजन सहित राजा धृतराष्ट्र जब नगर से कोस भर पर पहुँचे तब वहाँ उन्हें कृपाचार्य, कृतवर्मा और अश्वत्थामा मिले। प्रज्ञाचक्षु (अन्धे) महाराज को देखते ही, आँखों में आँसू भरे हुए और साँसें ले रहे, वे महारथी उनसे कहने लगे—महाराज! आपके प्रतापी पुत्र दुर्योधन, दुष्कर कर्म करके, अनुचरों और भाइयों के साथ इन्द्रलोक को सिधार गये। दुर्योधन की सेना में हमीं तीन योद्धा बच रहे हैं।

अब महात्मा कृपाचार्य ने पुत्रशोक से विह्वल महारानी गान्धारी से कहा—देवी, आपके सभी पुत्र निर्भय होकर युद्ध करते रहे। उन्होंने वीरोचित काम करके असंख्य शत्रुओं को मारा और अन्त को आप भी वीरगति पाई। अवश्य ही तेजोमय शरीर से, शस्त्र-निर्जित श्रेष्ठ लोकों में, जाकर वे देवताओं के समान विहार कर रहे होंगे। उन शूरों में से किसी ने युद्ध में पीठ नहीं दिखाई। शास्त्रज्ञ लोगों का कहना है कि सम्मुख-युद्ध में शस्त्र से मृत्यु होना क्षत्रिय के लिए भाग्य की बात है। क्षत्रिय की यही सनातन गति है। आपके पुत्रों में से किसी ने शत्रु के आगे प्राण-भय से हाथ नहीं जोड़े। अतएव उनके लिए आप शोक न करें। ९ हे महारानी, अधर्म से भीमसेन द्वारा आपके पुत्र के मारे जाने का समाचार पाकर हमने और अश्वत्थामा ने जो काम किया, वह सुनिए। हम लोग रात को पाण्डवों के शिविर में गये। वहाँ सब लोग सो रहे थे। उसी अवस्था में, स्वामी के साथ किये गये अन्याय का बदला लेने के लिए, हमने धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, द्रौपदी के पाँचों पुत्रों, तमाम पाञ्चालों, द्रुपद के बेटों तथा अन्य सब बचे-खुचे दुर्योधन के शत्रुओं को ढूँढ़-ढूँढ़कर मार डाला। [कृष्ण, सात्यकि और पाँचों पाण्डवों के सिवा सबका संहार कर डाला है।] हे यशस्विनी, अब हम महाधनुर्द्धर पाण्डवों के डर से प्राण लेकर

---

* इससे प्रथम एक २३ श्लोकों का अध्याय था जिसमें ६ श्लोक तो, इसी पर्व के, पहले अध्याय के प्रायः ज्यों के त्यों थे और १४ श्लोक तीसरे अध्याय के थे अतएव पुनरुक्त होने से वह नहीं छापा गया। फलतः एक अध्याय का मूल से अन्तर मिलेगा।

भागे जा रहे हैं। शूर पाण्डवगण अपने पुत्रों और सम्बन्धियों के मारे जाने की ख़बर पाकर, क्रोधान्ध होकर, बदला लेने के लिए शीघ्र ही हमारे पीछे हमें खोजते आते होंगे। रण में हम उनका सामना नहीं कर सकते। इसी से पाण्डवों के अपराधी हम तीनों यहाँ ठहरना नहीं चाहते। महाराज, आप हमें जाने की आज्ञा दीजिए। आपसे हमारा यही निवेदन है कि आप यह सोचकर धैर्य धारण कीजिए कि रण में मरना ही क्षत्रिय का धर्म है; दैव को कोई टाल नहीं सकता।

हे जनमेजय, अब तीनों महारथियों ने महाराज धृतराष्ट्र की प्रदक्षिणा की और उनकी ओर [करुणापूर्ण स्नेह-] दृष्टि डालते हुए वे रथ पर बैठकर भागीरथी-तट की ओर तेज़ी से चल दिये। उस समय अच्छी तरह सूर्योदय नहीं हुआ था। राजन्, पाण्डवों का अपराध करने के कारण तीनों महारथी डर से व्याकुल हो रहे थे। वे कभी एक दूसरे की ओर देखते थे और कभी पीछे देखते थे। इस तरह राजा से विदा होकर, कुछ दूर पर जाकर, तीनों एक दूसरे से अलग हुए। कृपाचार्य हस्तिनापुर को, कृतवर्मा अपनी राजधानी (द्वारका) को और अश्वत्थामा व्यासदेव के आश्रम को गये। इधर महारथी पाण्डवों ने खोजते-खोजते व्यासजी के आश्रम में अश्वत्थामा को पाया और पराक्रमपूर्वक उन्हें परास्त किया। १९ २४

ग्यारहवाँ अध्याय

मार्ग में पाँचों पाण्डवों सहित श्रीकृष्ण से धृतराष्ट्र की भेंट। धृतराष्ट्र का लोहे की मूर्ति को, भीम समझकर, गले लगाने के बहाने चूर-चूर कर डालना

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज! उधर पुत्र-शोकातुर राजा युधिष्ठिर पुत्र-शोक से दुखी महाराज धृतराष्ट्र के हस्तिनापुर से बाहर आने की ख़बर पाकर—अपने भाइयों को और श्रीकृष्ण, सात्यकि तथा युयुत्सु को साथ लेकर—उनसे मिलने के लिए चले। अत्यन्त दुःखित द्रौपदी भी विलख रही धृष्टद्युम्न आदि की स्त्रियों और पाञ्चाल पत्नियों को, जो कि वहाँ पर थीं, साथ लेकर धर्मराज युधिष्ठिर के पीछे चलीं। युधिष्ठिर ने कुछ दूर जाकर देखा कि वृद्ध राजा धृतराष्ट्र विलाप कर रही हज़ारों कौरव-स्त्रियों को लिये गङ्गातीर की ओर जा रहे हैं। वे स्त्रियाँ हाथ उठा-उठाकर कुररियों की तरह आर्त-स्वर से रोती और चिल्लाती जाती थीं। अभिमन्यु आदि प्रिय जनों के लिए पाण्डव-पक्ष की स्त्रियाँ और दुर्योधन आदि के लिए कौरव-पक्ष की स्त्रियाँ विलखती और कलपती थीं। धर्मराज ने सुना कि वे यों कह-कहकर विलाप कर रही हैं कि हा धर्मराज! तुम्हारी वह धर्मज्ञता और दयालुता इस समय कहाँ है? तुमने पिता,

भाई, पुत्र, मित्र, गुरु आदि की हत्याएँ कैसे कराईं ? पितामह भीष्म, गुरु द्रोण और बहनोई जयद्रथ की हत्या कराते समय तुम्हें तनिक भी दया नहीं आई! प्रिय अभिमन्यु, द्रौपदी के पाँचों पुत्र और पिता, भाई आदि को गँवाकर ऐसा हत्यारा राज्य लेकर तुम क्या करोगे ?

महाबाहु युधिष्ठिर ने कुररी-सी चिल्ला रही उन स्त्रियों को लाँघकर अपने चाचा राजा धृतराष्ट्र के चरणों में प्रणाम किया। फिर सब पाण्डवों ने क्रम से अपने-अपने नाम लेकर चाचा को अभिवादन किया। उस समय पुत्रवध-पीड़ित धृतराष्ट्र ने अपने पुत्रों का संहार करनेवाले युधिष्ठिर को उदासी के साथ गले लगाया। राजा धृतराष्ट्र धर्मराज को छाती से लगाकर, सान्त्वना देकर, दुष्ट विचार से भीमसेन को यों खोजने लगे मानों आग की तरह उनको भस्म कर देंगे। शोक की वायु से बढ़ी हुई धृतराष्ट्र के कोप की आग भीमसेन-रूप वन के भस्म करने को उद्यत सी जान पड़ी। धृतराष्ट्र ने जब भीमसेन को गले लगाने की इच्छा प्रकट की तब अन्तर्यामी श्रीकृष्ण ने उनके मन का कुभाव जान लिया। भीमसेन ज्योंही आगे बढ़ने लगे त्योंही श्रीकृष्ण ने दोनों हाथों से उनको खींच लिया। वे पहले से ही जानते थे कि धृतराष्ट्र अवश्य इस तरह भीमसेन को मारने का प्रयत्न करेंगे। इसी से उन्होंने भीमसेन की लोहे की मूर्ति रख छोड़ी थी। वही लोहे की, भीमसेन की, मूर्ति उस समय श्रीकृष्ण ने धृतराष्ट्र के आगे कर दी। धृतराष्ट्र ने उस लौह-भीम को, असली भीम जानकर, छाती से लगाकर दोनों हाथों से इतने ज़ोर से दबाया कि वह चूर-चूर हो गया। बलवान् राजा धृतराष्ट्र में साठ हज़ार हाथियों का बल था। लौहमूर्ति को चूर्ण करने से धृतराष्ट्र का कलेजा फट गया और मुँह से रक्त गिरने लगा। वे फूली हुई शाखाओंवाले पारिजात वृक्ष की तरह पृथ्वी पर गिरकर मूर्च्छित हो गये। सञ्जय ने उनको थाम लिया और उन्हें सान्त्वना देते तथा शान्त करते हुए कहा—"महाराज, आपको भीमसेन पर ऐसा भाव नहीं रखना चाहिए।" भीमसेन को मृत जानकर जब धृतराष्ट्र का क्रोध शान्त हो गया तब वे, भीमसेन के शोक से व्याकुल हो, "हाय भीम! हाय भीम!" कहकर रोने लगे।

धृतराष्ट्र को क्रोध-हीन और भीम-वध के भ्रम से व्याकुल देखकर पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण ने कहा—महाराज धृतराष्ट्र! आप शोक न करें, भीमसेन को आपने नहीं मारा। यह तो भीम की लोहे की मूर्ति थी, जिसे आपने चूर्ण कर डाला है। हे भरतश्रेष्ठ, आपको कुपित जानकर मैंने मृत्यु के मुँह से भीमसेन को हटा लिया था। वृद्धावस्था में भी आपके समान बली कोई नहीं है। आपके हाथों के बीच में पड़कर उस प्रबल दबाव को भला कौन सह सकता है? जैसे मृत्यु के वश में जाकर कोई नहीं जीवित रह सकता वैसे ही आपके बाहु-पाश में पड़कर किसी का बचना कठिन है। आपके पुत्र दुर्योधन ने [गदा-प्रहार के अभ्यास के लिए] जो लोहे की भीमसेन की मूर्ति बनवा रक्खी थी, वही मूर्ति मैंने आपके

धृतराष्ट्र ने उस लोह-भीम को, असली भीम जानकर, छाती से लगाकर दोनों हाथों से इतने ज़ोर से दबाया कि वह चूर-चूर हो गया। पृष्ठ—३२४६

आगे रखवा दी थी। हे कौरवेन्द्र! पुत्रशोक से पीड़ित होने के कारण आपका चित्त धर्म-मार्ग से विचलित हो गया था, इसी से आप छल से भीमसेन को मार डालने पर उद्यत हो गये थे। लेकिन महाराज, आप किसी तरह भीमसेन को नहीं मार सकते और ऐसा करना आपको उचित भी नहीं। भीमसेन को मार डालने से भी आपके मरे हुए पुत्र जी नहीं उठेंगे। इसलिए शान्ति-स्थापन के विचार से हम लोगों ने जो काम किया है उसका अनुमोदन करके हृदय से शोक को दूर कीजिए। ३०

बारहवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण का धृतराष्ट्र को शान्त करना

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, अब सेवकों ने आकर धृतराष्ट्र को मुँह धुलाकर और आचमन कराकर सुस्थ किया। तब श्रीकृष्ण ने फिर कहा—राजन्, आप बहुदर्शी विद्वान् हैं। आपने वेद, वेदाङ्ग, विविध शास्त्र पढ़े हैं; पुराण और राजधर्म आदि सुने हैं। इस तरह ज्ञानी और बलाबल को जानने में समर्थ होकर, अपना ही अपराध होने पर भी, आप पाण्डवों पर ऐसा कोप क्यों करते हैं? पहले ही मैंने आपसे कहा था और भीष्म, द्रोण, विदुर, सञ्जय आदि ने बारम्बार आपको समझाया था; परन्तु आपने हम हितैषियों का कहा नहीं किया। हे कौरव! पाण्डवों को बल और शूरता में अपने पुत्रों से अधिक जानकर भी, बारम्बार मना करने पर भी, तब आपने हम लोगों के कहने पर ध्यान नहीं दिया; फिर अब क्यों इस तरह क्रोध और शोक कर रहे हैं? जो राजा विवेक को स्थिर रखकर स्वयं दोषों पर दृष्टि रखता है और देश-काल को समझ-बूझकर कार्य करता है वह अनायास कल्याण प्राप्त करता है। और, जो राजा हिताहित के बारे में हितचिन्तकों के दिये हुए उपदेश को नहीं ग्रहण करता, वह अवश्य ही अपनी दुर्नीति से आपत्ति में पड़कर नष्ट और शोकाकुल होता है। हे भरतश्रेष्ठ, आप अपने पिछले आचरण पर दृष्टि रखकर विचार कीजिए। आप अपने चञ्चल चित्त को वश में नहीं रख सके और सदा दुर्योधन के कहे पर चलते रहे; इसी से यह दुर्दशा हुई है। अपने ही अपराध से पुत्रशोक पाकर इस समय भीमसेन को मार डालने का इरादा करना कदापि आपको उचित नहीं है। इसलिए अपने पूर्व-दुष्कृत को स्मरण करके क्रोध त्याग कीजिए। भीमसेन का क्या अपराध है? क्षुद्रमति दुर्योधन ने नीच स्पर्धा के वश होकर रजस्वला द्रौपदी को भरी सभा में बुलाया और अपमान किया। उसी अपराध को स्मरण करके, उसी का बदला लेने के लिए, पराक्रमी भीम ने उसे मार डाला। आपने निरपराध पाण्डवों को त्याग दिया, राज्य न १०

देकर उनका तिरस्कार किया और आपके पापमति पुत्र ने उन पर अनेक अत्याचार किये। इन बातों पर विचार करके आप पाण्डवों पर कोप न कीजिए।

वैशम्पायन कहते हैं कि श्रीकृष्ण ने जब इस तरह सत्य वचन कहकर धृतराष्ट्र को क़ायल किया तब वे बोले—हे देवकी-नन्दन, तुम्हारा कहना बिलकुल ठीक है। बलवान् पुत्रस्नेह ने मुझे धैर्यहीन और धर्म-पथ से विचलित कर दिया था। इसी से मैं भीम को मार डालने के लिए उद्यत हो गया था। किन्तु बड़े भाग्य की बात है कि बलवान् भीम को तुमने बचा लिया और उस समय वह मेरी बाहुओं के बीच में नहीं आया। इस समय मेरा क्रोध-सन्ताप शान्त हो गया है और मेरी बुद्धि ठिकाने है। अब मैं महाबली मँझले पाण्डव को देखना चाहता हूँ। सब राजाओं सहित मेरे पुत्र संग्राम में नष्ट हो चुके हैं, इसलिए अब मेरे धर्म के पुत्र और स्नेह के पात्र पाण्डव ही हैं।

इतना कहकर रो रहे धृतराष्ट्र ने क्रम से भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव को गले लगाया, शरीर पर हाथ फेरा और सान्त्वनापूर्वक कल्याणप्रद आशीर्वाद दिये। १७

तेरहवाँ अध्याय

पाण्डवों को शाप देने के लिए उद्यत गान्धारी को अचानक आये हुए व्यासदेव का समझाना

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्! महात्मा कृष्ण सहित पाण्डवगण, धृतराष्ट्र से आज्ञा पाकर, गान्धारी के पास आये। पुत्रशोक से पीड़ित पतिव्रता-शिरोमणि गान्धारी ने शत्रुकुल का संहार करनेवाले युधिष्ठिर को उस समय शाप देने का विचार किया। योगीश्वर व्यासदेव को गान्धारी का यह अभिप्राय पहले ही विदित हो गया। दिव्यदृष्टि होने के कारण वे सभी के मन का भाव जान लेते हैं। महर्षि व्यास गङ्गा में स्नान करके, मन के से वेग से, तत्काल वहाँ आ पहुँचे।

उन्होंने अपनी पुत्रवधू गान्धारी का कोप शान्त करने के लिए, उनकी शाप देने की प्रवृत्ति को दूर करते हुए, ये कल्याणमय मधुर वचन कहे—हे कल्याणी गान्धारी, पाण्डव युधिष्ठिर पर क्रोध न करो। तुम शान्त होकर, तामसिक भाव (क्रोधकृत अनिष्टचेष्टा) त्यागकर, मेरी बातें सुनो। युद्ध के दिनों में दुर्योधन ने जय की इच्छा से तुम्हारे पास आ-आकर कहा था कि माता, मैं शत्रुओं से युद्ध कर रहा हूँ; आप मुझे विजय-प्राप्ति का आशीर्वाद दीजिए। हे कल्याणी, किन्तु तुमने हर बार यही कहा कि जिधर धर्म है, उधर ही जय है। 'यतो धर्मस्ततो जयः' तुम्हारे वे ही वचन सत्य हुए। जब तुम स्वयं यह कह चुकी हो तब अब क्यों वृथा युधिष्ठिर पर कोप करती हो? हे यशस्विनी, क्रोध को शान्त करो। मैं जानता हूँ कि तुम सत्यवादिनी हो; तुम्हारा कथन कभी मिथ्या नहीं हुआ। घोर संग्राम में प्राण-सङ्कट में पड़कर भी पाण्डव ही

१०

विजयी हुए। इससे अवश्य ही मानना पड़ेगा कि उनकी ओर धर्म है। पाण्डवों की विजय से तुम्हारा कथन सत्य हुआ है। देवी, तुम सदा सब जीवों का हित चाहनेवाली और क्षमाशील होकर भी इस समय क्यों क्षमा नहीं करतीं? 'यतो धर्मस्ततो जयः' के सिद्धान्त को अटल जानकर अपने मन से अधर्म के भाव को दूर करो। [हे गान्धारी, पाण्डव भी तुम्हारे पुत्र हैं। उनका अनिष्ट करना तुम्हें उचित नहीं।] हे मनस्विनी! मेरी बात मानो, अपने पूर्ववचन का स्मरण करो और तुम्हारे हृदय में पाण्डवों पर जो कोप है उसे धर्म का ख़याल करके दूर कर डालो।

गान्धारी ने कहा—भगवन्, न तो मैं पाण्डवों से डाह रखती हूँ और न उनका विनाश ही चाहती हूँ। परन्तु करूँ क्या, प्रबल पुत्रशोक मेरे मन को व्याकुल और हृदय को विह्वल कर रहा है। जैसे कुन्ती का धर्म है कि वे पाण्डवों की सर्वथा रक्षा करें वैसे ही मेरा और महाराज का भी धर्म पाण्डवों की रक्षा करना है। दुरात्मा दुर्योधन, दुःशासन, शकुनि और कर्ण, इन चारों के अपराध से ही कुरुकुल चौपट हो गया। इसमें राजा युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल या सहदेव का कुछ अपराध नहीं है। अहंकारी कौरव आपस में लड़कर और-और क्षत्रिय राजाओं के साथ मारे गये। इसके लिए मैं खेद नहीं करती। किन्तु भीमसेन ने दुर्योधन को गदायुद्ध के लिए बुलाकर—वासुदेव के सामने ही—जो उसके साथ अन्याय किया, उसे

शिक्षानिपुणता में अधिक देखकर नाभि के नीचे प्रहार किया, वह मुझे असह्य हो रहा है। इसी से मेरा क्रोध बढ़ गया। धर्मज्ञ महात्माओं ने धर्म का जो नियम बतलाया है उसका २१ उल्लंघन शूर लोग प्राण-सङ्कट आ पड़ने पर भी नहीं करते।

चौदहवाँ अध्याय

भीमसेन और गान्धारी की बातचीत

वैशम्पायन कहते हैं कि राजन्, कुपित गान्धारी के ये वचन सुनकर भीमसेन ने डरते-डरते नम्रतापूर्वक उनसे कहा—माता, मैंने आत्मरक्षा के लिए डर के मारे यह कार्य किया था। वह धर्म हो या अधर्म, आप क्षमा कीजिए। महाबली दुर्योधन को धर्मयुद्ध में कोई नहीं मार सकता था। वह मुझको मारकर सब राज्य ले लेगा, इस आशङ्का से ही मैंने अधर्म से—नियम का उल्लङ्घन करके—उस एक बचे हुए को मार डाला। देखिए, दुर्योधन ने भी पहले अधर्म से ही धर्मराज युधिष्ठिर का राज्य और सर्वस्व जीत लिया था। [वह हम लोगों के साथ सदा शठता करता रहता था।] इस कारण मैंने भी उसे अन्याय से मारा। हमारी पत्नी द्रौपदी जिस समय रजस्वला और एक ही धोती पहने हुए थीं, उस समय सभा में लाकर दुर्योधन ने जो दुर्वचन उनसे कहे थे उन्हें आप भी जानती हैं। इस कारण उसे मैंने अन्याय से मारा। मैं जानता था कि हम लोग दुर्योधन को मारे बिना अकण्टक राज्य नहीं पा सकते, इसलिए मैंने उसे अधर्म से मारा। आपके पुत्र ने सभा में द्रौपदी को बाईं जाँघ दिखाकर जो बुरा इशारा किया था वह भी हमें बहुत बुरा लगा था। माता, आपके दुराचारी पुत्र को हम वहीं उसी समय मार डालते और ऐसा ही करना ठीक था; किन्तु धर्मराज की आज्ञा से हम चुप रहे और हमने अपना नियम निवाहा। [चुपचाप वन में जाकर कष्ट सहे।] आपके पुत्र ने ही यह भारी विरोध और क्रोध की आग भड़काई थी। उसने वनवास में भी नित्य हमें १० क्लेश पहुँचाने का यत्न किया। इन्हीं कारणों से मैंने उसे मार डाला। अब दुर्योधन के मरने से उस वैर का अन्त हो गया और महाराज युधिष्ठिर फिर अपना राज्य पा गये, इसलिए हमारा क्रोध शान्त हो गया है।

गान्धारी ने कहा—हे भीम! दुर्योधन ने निःसन्देह ये सब अनुचित कार्य किये हैं, जिनका तुमने उल्लेख किया। किन्तु महाबली और शिक्षा-निपुण बताकर जिसकी तुम प्रशंसा कर रहे हो उस दुर्योधन को अन्याय से मारकर तुमने अच्छा काम नहीं किया। ख़ैर, वृषसेन ने जब रण में नकुल के घोड़े मारकर उनको रथ-हीन कर दिया था तब तुमने दुःशासन

को मारकर उसका रक्त क्यों पिया ? तुमने यह सज्जनों के द्वारा निन्दनीय, नीच जनोचित, क्रूर कर्म क्यों किया ? यह तुम्हारा काम सर्वथा अनुचित हुआ।

भीमसेन ने कहा—नकुल को विरथ देखकर शत्रुगण अत्यन्त हर्षयुक्त हुए थे। उनको डरवाने के लिए ही मैंने यह काम किया था; किन्तु आप उसके लिए शोक न करें, दुःशासन का रुधिर मेरे दाँतों और ओठों से नीचे नहीं गया। आत्मीय की तो कोई बात ही नहीं, अन्य का भी रक्त पीना उचित नहीं है। फिर दुःशासन तो मेरा भाई था। भाई आत्मा के समान होता है। हे माता, भगवान् धर्म इसके साक्षी हैं कि दुःशासन का रक्त मेरे कण्ठ से नीचे नहीं उतरा। दुःशासन का रक्त केवल मेरे हाथों और ओठों में लगा था। देखिए, द्रौपदी को सभा में लाकर दुःशासन ने जब उनके केश पकड़े थे तब मैंने अत्यन्त क्रोध के वश होकर दुःशासन का रक्त पीने की प्रतिज्ञा की थी। वह प्रतिज्ञा मुझे अब तक नहीं भूली। उसी प्रतिज्ञा को पूर्ण करने के लिए मैंने यह क्रूर कर्म किया। यदि मैं प्रतिज्ञा का पालन न करता तो मुझे अनन्त काल तक क्षत्रिय-धर्म से भ्रष्ट होकर रहना पड़ता। हे कल्याणी, पहले आपके पुत्रों ने हम निरपराधों पर अनेक अत्याचार किये थे। उस समय आपने उनको दण्ड नहीं दिया और अब हम पर दोषारोपण करती हैं। यह ठीक नहीं है। २०

गान्धारी ने कहा—अच्छा, यह भी मैंने मान लिया। किन्तु तुमने वृद्ध महाराज पर कुछ भी तरस न खाकर उनके सभी पुत्रों को क्यों मार डाला ? सौ में से तुम्हारी दृष्टि में जो कम अपराधी था उस एक को क्यों न छोड़ दिया ? हम दोनों राज्यहीन और पुत्रशोक से पीड़ित स्त्री-पुरुष उसी एक को देखकर धीरज धरते। वही एक हमारा सहारा—अन्धे की लकड़ी—होता। तुम अगर धर्म का ख़याल करके हमारे एक पुत्र को भी छोड़ देते तो हमारा पुत्रशोक कुछ कम हो जाता। मेरे पुत्रों को तुमने मार डाला है, इसके लिए मुझे दुःख न होता बशर्ते कि तुम्हारा आचरण धर्म के अनुकूल होता।

वैशम्पायन कहते हैं कि हे जनमेजय, पुत्र-पौत्रों के मारे जाने से अत्यन्त दुःखित महारानी गान्धारी ने भीम से इतना कहकर क्रोधपूर्ण स्वर से पूछा—राजा युधिष्ठिर कहाँ हैं ? तब डर से काँप रहे, हाथ जोड़े हुए, राजा युधिष्ठिर उनके सामने आये और इस तरह मधुर वाक्य कहने लगे—हे देवी, आपके पुत्रों का नाश करनेवाला निन्दनीय निष्ठुर मैं युधिष्ठिर आपके सामने उपस्थित हूँ। माता, निःसन्देह मैं शाप के योग्य हूँ। आप शाप देकर मुझे भस्म कर दीजिए। मित्रद्रोही मूढ़ मैंने स्वजनों का संहार करके बड़ा ही बुरा काम किया है। मैं अब इतना शोकग्रस्त हूँ कि जीवन, राज्य या धन कुछ नहीं चाहता। मेरे ही कारण पृथ्वी के सब क्षत्रिय-कुलों का नाश हुआ है।

समीप आकर इस तरह कह रहे भय-विह्वल युधिष्ठिर के ये वचन सुनकर गान्धारी ने कुछ नहीं कहा। वे क्रोध और शोक की अधिकता से बारम्बार साँसें लेने लगीं। महाराज युधि-

ष्ठिर गान्धारी का क्रोध शान्त करने के लिए उनके चरणों पर गिरने लगे। धर्म का ज्ञान रखने-वाली दूरदर्शिनी गान्धारी ने उस समय आँखों में बँधी हुई पट्टी के भीतर से युधिष्ठिर की उँगलियों

के अग्रभाग पर ही दृष्टि डाली। इससे युधिष्ठिर के हाथों के नाखून—जो बहुत सुन्दर थे—ख़राब (काले) हो गये। यह अद्भुत घटना देखकर डर के मारे अर्जुन श्रीकृष्ण के पीछे चले गये। अन्य पाण्डव भी इधर-उधर छिपने की चेष्टा करने लगे। यह देख-कर, क्रोध को त्यागकर, पतिव्रता गान्धारी माता की तरह स्नेह से उन्हें आश्वासन और सान्त्वना देने लगीं। उनके अभय देने पर पाण्डवों के जी में जी आया।

३०

अब गान्धारी से आज्ञा लेकर पाण्डव-गण अपनी माता कुन्ती के पास आये। पुत्रों को कुन्ती ने बहुत दिनों से नहीं देखा था। इतने दिनों के पुत्र-वियोग ने उन्हें बहुत दीन बना रक्खा था। इस समय पुत्रों को देखकर वे मुँह को आँचल में छिपाकर रोने लगीं। [पाण्डव भी रोने लगे।] कुन्ती ने देखा कि पाण्डवों के शरीर बाणों और शस्त्रों के प्रहारों से फट-फट गये हैं। वे एक-एक करके पाँचों पुत्रों के शरीरों पर हाथ फेरने लगीं। इसी समय पुत्रशोक से पीड़ित द्रौपदी आकर रोती हुई उनके आगे पृथ्वी पर गिर पड़ीं। बहू की दशा देखकर कुन्ती भी रोने और बिलखने लगीं।

द्रौपदी रोकर कुन्ती से कहने लगीं—हे आर्ये, अभिमन्यु और आपके अन्य पाँचों पौत्र मरकर न-जाने कहाँ चले गये। बहुत दिनों के बाद आज आप मिली हैं, परन्तु वे वीर पौत्र आपकी सेवा में नहीं आते। उन श्रेष्ठ पुत्रों के बिना मैं इस राज्य को लेकर क्या करूँगी! हे जनमेजय, शोक से पीड़ित होकर रो रही द्रौपदी को उठाकर कुन्ती समझाने-बुझाने लगीं। इसके उपरान्त द्रौपदी और पाण्डवों को साथ लिये हुए कुन्ती गान्धारी के पीछे-पीछे चलने लगीं। उस समय दुःख से कुन्ती और गान्धारी दोनों की दशा एक सी हो रही थी।

वैशम्पायन कहते हैं कि कुन्ती सहित यशस्विनी द्रौपदी को दुःख से व्याकुल देखकर आप भी शोक से पीड़ित गान्धारी ने कहा—पुत्री, इस तरह शोक मत करो। मुझको देखो, मैं कैसे घोर शोक से दुःखित हो रही हूँ। मैं समझती हूँ कि यह लोकक्षय कालकृत और अवश्यम्भावी था। महात्मा वासुदेव शान्ति का यत्न करके जब सफलता नहीं प्राप्त कर सके

४०

और लौट गये तब विदुरजी ने जो कुछ कहा था वही हुआ। वह अनिवार्य हत्याकाण्ड अब हो चुका, इसलिए शोक करना व्यर्थ है। बीती बात के लिए शोक नहीं करना चाहिए। वे वीर समर में मारे गये हैं, इसलिए कदापि शोचनीय नहीं हैं। बेटी, जैसे तुम दुःखित हो रही हो वैसे ही मैं दुःखित हो रही हूँ। कौन किसको समझावे? असल बात यह है कि कौरवकुल का विनाश मेरी ही भूल से हुआ है। ४४

स्त्री-विलापपर्व

पन्द्रहवाँ अध्याय

गान्धारी का विलाप

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्! सत्यवादिनी और पति को अन्धे देखकर आप भी आँखों में पट्टी बाँध लेने का उग्र व्रत धारण करके घोर तप करनेवाली गान्धारी, द्रौपदी से यों कहकर उन्हें समझाने के उपरान्त, पुण्यकर्मा महर्षि व्यास के वरदान से वहीं पर खड़ी-खड़ी रणभूमि का सम्पूर्ण दृश्य जैसे का तैसा देखने लगीं। दिव्य ज्ञान के बल से बुद्धिमती गान्धारी दूर से भी पास खड़े हुए की तरह वीरों की रणभूमि का लोमहर्षण दृश्य देखने लगीं। वह स्थान अस्थि, केश, वसा, रक्त आदि से व्याप्त हो रहा था। चारों ओर रक्त ही रक्त देख पड़ता था। हाथियों, घोड़ों और योद्धाओं की लाशों के ढेर लगे हुए थे। उन लाशों के रक्त में सने हुए सिर, धड़, हाथ, पैर आदि अङ्ग अलग-अलग कटे हुए नज़र आते थे। गीदड़, गिद्ध, कौए, कङ्क, भेड़िये आदि मांसाहारी जीव और राक्षस-पिशाचगण प्रसन्न होकर इधर-उधर घूम रहे थे। गिदड़ियाँ वहाँ अशुभ शब्द कर रही थीं।

राजा युधिष्ठिर आदि पाण्डव महर्षि व्यासदेव की अनुमति से, कृष्णचन्द्र को और बन्धु-बान्धव-विहीन राजा धृतराष्ट्र को आगे करके, कौरवकुल की स्त्रियों को साथ लेकर, समरभूमि को गये। अनाथप्राय हो रही कौरव महिलाओं ने कुरुक्षेत्र में जाकर देखा कि उनमें से किसी के भाई, किसी के पुत्र, किसी के पिता और किसी के पति समरभूमि में मरे पड़े हैं। गीदड़, कौआ, गिद्ध और भूत, पिशाच, राक्षस आदि निशाचर मांसाहारी प्राणी बड़ी प्रसन्नता से उन वीरों को नोच-नोचकर खा रहे हैं। श्मशानतुल्य दारुण रणभूमि का दृश्य देखकर शोक से कुररी की तरह चिल्लाती हुई कौरवों की स्त्रियाँ रथों से उतरकर दौड़कर स्वजनों के शरीरों पर गिरने लगीं। वे दुःखार्त स्त्रियाँ उस अदृष्टपूर्व हत्याकाण्ड को देखकर, स्खलितशरीर होकर, १०

मृतप्राय सी गिर रही थीं। थकन और शोक से शिथिल कौरवों और पाञ्चालों की स्त्रियाँ इस तरह गिर-पड़कर करुण स्वर से चिल्लाने और रोने लगीं। उन्हें होश ही न था।

उस समय धर्मपरायण गान्धारी उन स्त्रियों के रोने की ध्वनि से समराङ्गण को प्रतिध्वनित देखकर श्रीकृष्ण से करुण स्वर में यों कहने लगीं—हे माधव! वह देखो, मेरी बहुएँ कुररी की तरह चिल्ला रही हैं। स्वामियों के मरने से इनके दुःख की सीमा नहीं है। ये बाल खोले सिर पीटती हुई अलग-अलग पुत्र, पति, पिता, भाई आदि की लाशों के पास दौड़ी जा रही हैं। रणभूमि में सब ओर पुत्रहीन वीर-माताएँ और विधवा वीर-पत्नियाँ ही विलखती २० देख पड़ती हैं। वह देखो, महातेजस्वी पुरुषाग्रगण्य भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, अभिमन्यु, कर्ण, द्रुपद, शल्य आदि वीर पुरुष मरने पर भी तेज से परिपूर्ण अग्नि की तरह प्रज्वलित हो रहे हैं। रणभूमि में सुवर्णमय कवच, निष्क, महामूल्य मणियाँ, अङ्गद, मालाएँ और वीरों के हाथों से चले हुए परिघ, शक्ति, तीक्ष्ण खड्ग और बाणयुक्त धनुष आदि शस्त्र पड़े हुए हैं। आनन्दयुक्त मांसाहारी जीव कहीं बैठे हैं, कहीं उड़ते हैं और कहीं क्रीड़ा कर रहे हैं। हे श्रीकृष्ण, रणस्थल की यह दशा देखकर शोक की आग से मेरा हृदय जल रहा है। कौरवों और पाञ्चालों का यह सर्वसंहार देखकर मुझे प्रतीत हो रहा है कि पञ्चभूत-रचित सारा जगत् नष्ट हो गया। देखो, हज़ारों सुपर्ण गिद्ध आदि घोर जीव इन ख़ून से लथपथ लाशों की टाँगें खींचते और खाते हैं। महाबलशाली जयद्रथ, कर्ण, द्रोण, भीष्म, अभिमन्यु आदि वीरों के मरने का ख़याल भी भला कोई कर सकता था? ये वीर अवध्य से थे, परन्तु इस समय मरे पड़े हैं और इन्हें कुत्ते, गीदड़, गिद्ध, कङ्क, कौआ, श्येन आदि मांसाहारी जीव घेरे हुए खा रहे हैं। देखो, ये दुर्योधन ३० के अनुगामी वीर युद्ध करके मारे गये हैं और इस समय बुझी हुई आग की तरह देख पड़ते हैं। हाय, जो यशस्वी वीर पहले शरीर में चन्दन-अगुरु का अङ्गराग लगाते और कोमल निर्मल शय्या पर लेटते थे वही आज धूल में लोट रहे हैं। गिद्धों, गीदड़ों, कौओं और घोररूपी गिदड़ियों के झुण्ड बारम्बार आकर उनके आभूषणों को घसीटते और चिल्लाते हैं। जिन वीरों की बन्दीजन स्तुति किया करते थे उन्हीं के पास आज गीदड़ चिल्ला रहे हैं। युद्धाभिमानी वीर पुरुष मरने पर भी जीवितावस्था की तरह हाथों में तीक्ष्ण बाण, गदा, खड्ग आदि शस्त्र पकड़े पड़े हैं। साँड़ के से डील-डौलवाले, सुन्दर, सुवर्णवर्ण बहुत से वीरों के शरीरों का मांस भर मांसाहारी जीवों ने खा लिया है। हज़ारों शूर पुरुष परिघ-सदृश बाहुओं में गदा लिये और उसे, प्रियतमा स्त्री की तरह, छाती से लगाये पड़े हैं। अनेक कवच-शोभित शस्त्रधारी पुरुषों को जीवित जानकर मांसाहारी जीव उनके पास नहीं जा सकते। अन्य अनेक शूरों को मांसाहारी जीव नोच-खोच रहे हैं और उनके कण्ठ में पड़ी सुवर्णमयी मालाएँ टूट-टूटकर बिखर रही हैं। ये गीदड़ों के झुण्ड ४० मृत यशस्वी वीरों के कण्ठहारों को घसीट रहे हैं। हे माधव! पहले सुशिक्षित बन्दीजन रात

के पिछले पहर में स्तुति करके जिन्हें जगाते और जिनकी वन्दना करते थे उनके पास इस समय दुःख-शोक-पीड़ित पत्नियाँ पड़ी हुई करुण स्वर से विलाप कर रही हैं।

हे यदुकुलतिलक! देखो रोने से [और धूप लगने से] सुन्दरी स्त्रियों के मुख सूख रहे हैं, लाल हो रहे हैं, और ऐसी दशा में भी वे लाल कमल से जान पड़ते हैं। रो-रोकर थककर कौरवों की स्त्रियाँ चुप हो जाती हैं और दुःख से ध्यानमग्न सी होकर स्वजनों के पास दौड़ी जाती हैं। हे केशव! देखो, सूर्य के समान और सुवर्णवर्ण कौरव स्त्रियों के मुख रोते-रोते लाल हो गये हैं। श्यामा (सोलह वर्ष की अवस्थावाली), गोरे रङ्ग की, एक ही धोती पहने ये दुर्योधन की स्त्रियाँ शोक से व्याकुल हो रही हैं। इनका अर्थशून्य अव्यक्त क्रन्दन सुनने से औरों का रोना-धोना नहीं सुन पड़ता। ये स्त्रियाँ घोर विलाप करके लम्बी साँस लेती हुई गिर रही हैं। जान पड़ता है कि दुःख के मारे ये प्राण दे देंगी। बहुत सी स्त्रियाँ स्वजनों की लाशों को देखकर रोती-चिल्लाती और हाथों से सिर पीटती हैं। रणभूमि में सर्वत्र कटे हुए सिर और हाथ आदि अङ्गों के ढेर लगे हैं। एक के ऊपर एक के अङ्ग-प्रत्यङ्गों का ढेर लगा है। स्त्रियाँ अपने पतियों, पुत्रों और भाइयों के मुण्ड और केवल रुण्ड देखकर दुःख से मूर्च्छित हो-होकर गिर रही हैं। बहुत सी केवल कबन्ध देखकर पास पड़े हुए सिर को उस पर रखती हैं, किन्तु जब देखती हैं कि वह सिर उसका नहीं है तब अत्यन्त दुःखित होती हैं। स्वजनों के बाणों से कटे हुए बाहु, ऊरु, चरण आदि अङ्गों को यथास्थान जोड़ती हुई अन्य स्त्रियाँ अत्यन्त दुःख से मूर्च्छित हो-हो जाती हैं। बहुत सी स्त्रियाँ पतियों के कटे हुए सिरों को न पाकर, मांसाहारी जीवों द्वारा मांस खा लिये जाने से, अपने स्वामियों को नहीं पहचान पातीं। हे मधुसूदन! अनेक स्त्रियाँ भाई, पिता, पुत्र, पति आदि को शत्रुओं के प्रहार से मरा देखकर सिर पर हाथ दे-दे मारती हैं। रणस्थली चारों ओर खड्गयुक्त हाथों, कुण्डल-शोभित सिरों और लोथों से परिपूर्ण हो रही है। मांस और रक्त की कीच से सब स्थान अगम्य हो रहे हैं। जिन्होंने कभी दुःख देखा ही नहीं वे सुकुमारी सुन्दरियाँ इस समय दारुण दुःख से दीन होकर भाई, पति, पुत्र आदि की लोथों से परिपूर्ण पृथ्वी में घूम रही हैं। हे केशव! देखो, सुन्दर लम्बे केशोंवाली और बछेड़ियों के समान युवती धृतराष्ट्र की बहुएँ, झुण्ड की झुण्ड, किस तरह विलाप कर रही हैं! हे माधव, इससे बढ़कर दुःख और मैं क्या देखूँगी कि मेरे सामने ही मेरी बहुएँ इस तरह शोकसमुद्र में डूब रही हैं। अवश्य ही मैंने पूर्व जन्म में घोर पाप किये हैं तभी तो इस जन्म में पुत्र, पौत्र, भाई आदि का विनाश मुझे देखना पड़ा। ५०

इस तरह विलाप कर रही, पुत्र-शोक से पीड़ित, गान्धारी ने रणभूमि में मारे गये राजा दुर्योधन को देखा। ६१

सोलहवाँ अध्याय

गान्धारी का दुर्योधन के लिए विलाप

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज! शोक से पीड़ित गान्धारी दुर्योधन की लाश को देखकर, कटे हुए केले के वृक्ष की तरह, पृथ्वी पर गिर पड़ीं। दम भर में होश आने पर वे चिल्ला-चिल्लाकर विलाप करने लगीं। वे रक्त में सने हुए दुर्योधन के शरीर से लिपटकर करुणा-जनक विलाप करके "हाय पुत्र! हाय पुत्र!" कहती हुई शोक करने लगीं। उनके आँसुओं से दुर्योधन का हार-निष्क-भूषित वक्षःस्थल भीग गया।

समीप ही खड़े श्रीकृष्ण से गान्धारी ने कहा—हे वृष्णिवंशावतंस! कुल-क्षयकारी यह घोर महायुद्ध उपस्थित होने पर इस दुर्योधन ने मेरे पास आकर, हाथ जोड़कर, मुझसे प्रार्थना की थी कि हे माता, भाइयों के इस महायुद्ध में आप मुझे विजय का आशीर्वाद दीजिए। अपने ऊपर आनेवाली इस आपत्ति को मैं अच्छी तरह अनुमान से जानती थी। इसी लिए मैंने कहा—बेटा, जहाँ धर्म है वहीं विजय है। हे सुपुत्र, तू जब किसी तरह पाण्डवों से मेल नहीं करना चाहता तो फिर जा, क्षत्रिय-धर्मानुसार युद्ध कर। तू अवश्य ही युद्ध में शस्त्रनिर्जित लोकों को प्राप्त करेगा और देवताओं की तरह इन्द्रलोक में रहेगा। हे माधव, इसलिए मैं दुर्योधन के लिए शोक नहीं करती। मुझे केवल बान्धव-हीन दीन महाराज धृतराष्ट्र के लिए दुःख हो रहा है। हे वासुदेव! देखो असहनशील, श्रेष्ठ योद्धा, मानी, अस्त्र-शस्त्र-निपुण मेरा वीर पुत्र इस समय वीर-शय्या पर पड़ा हुआ है। काल की गति तो देखो, जो पहले मूर्धाभिषिक्त महाराजाओं के आगे चलता था वही दुर्योधन आज धूल में पड़ा हुआ है। शत्रु के सम्मुख युद्ध करते-करते वीरोचित शयन में सोनेवाला मेरा पुत्र अवश्य ही भाग्यशाली है। इसे देवदुर्लभ श्रेष्ठ गति मिली है। जिसे घेरकर सुन्दरी स्त्रियाँ सन्तुष्ट किया करती थीं वही वीर आज गिदड़ियों के बीच में पड़ा हुआ है। जिसकी सभा में पहले बड़े-बड़े राजा आकर बैठते थे उसके आसपास इस समय गिद्ध आदि दारुण जीव दिखाई दे रहे हैं। सुन्दरी दासियाँ जिसको बहुमूल्य पङ्खों से हवा करती थीं उसके ऊपर आज पक्षी अपने पर फटफटा रहे हैं। सिंह से मारे गये हाथी की तरह यह बलवान् मेरा पुत्र, भीम के गदा-प्रहार से मरकर, रक्त से सना हुआ पड़ा है। जिसने ग्यारह अक्षौहिणी सेनाएँ युद्ध में एकत्र कीं और तेरह वर्ष तक निष्कण्टक राज्य किया, वही महाधनुर्द्धर दुर्योधन यहाँ अन्याय से मरा पड़ा है। यह अपने लड़कपन से विदुर और पिता आदि वृद्धों की बात न मानकर अपनी दुर्बुद्धि के दोष से मारा गया। हे माधव! पहले मैं इस पृथ्वी को दुर्योधन के अधीन और हाथी-घोड़े-गाय आदि से परिपूर्ण देख चुकी हूँ, अब आज इसे अन्य के अधीन और हाथी-घोड़े-गाय आदि से हीन देखूँगी। मेरा जीवन व्यर्थ है। मुझे पुत्रवध से भी अधिक

हे अच्युत ! वह देखो, सुन्दरी लक्ष्मण की माता दुर्योधन की दोनों भुजाओं के बीच में बाल बिखराये पड़ी विलख रही है—पृ० २२५७

उसी समय आकाश में काले रङ्ग का, लाल गलेवाला, एक विशाल राक्षस देख पड़ा। उसने हाथ जोड़ कर कहा—हे भृगुनन्दन, आपका भला हो; आपकी कृपा से मैं नरक से छुटकारा पाकर अपने स्थान को जाता हूँ—पृ० ३२७१

कष्ट इन कुल-स्त्रियों और बहुओं की दशा देखकर हो रहा है, जो मारे गये शूर पुरुषों के पास पड़ी हुई घोर विलाप कर रही हैं। हे अच्युत! वह देखो, सुन्दरी लक्ष्मण की माता दुर्योधन की दोनों भुजाओं के बीच में बाल बिखराये पड़ी बिलख रही है। इसके केश लम्बे हैं और रङ्ग सोने को भी मात करता है। इसकी दुर्दशा मुझसे नहीं देखी जाती। पहले यह यशस्विनी दुर्योधन के बाहुपाश में इसी तरह आनन्द करती थी। हाय, पुत्र और पौत्र की मृत्यु देखकर मेरे हृदय के सौ टुकड़े क्यों नहीं हो जाते! मेरी बड़ी बहू बायें हाथ से दुर्योधन की लोथ को साफ़ करती हुई अपने प्रिय पुत्र लक्ष्मण के ख़ून से भरे मुख को सूँघ रही है। यह अभागिनी कभी सिर पीटकर दुर्योधन की छाती पर गिर पड़ती है और कभी पुत्र और पति दोनों के मुखों को हाथ से साफ़ करती है। इस कमल-नयनी, कमल-कोमला तपस्विनी की दशा देखकर मैं शोक से पागल सी हो रही हूँ। हे माधव! यदि वेद-शास्त्र सत्य हैं तो मेरे पुत्र दुर्योधन ने अवश्य अक्षय स्वर्गलोक प्राप्त किया है। ३०, ३२

सत्रहवाँ अध्याय

गान्धारी के विलाप का वर्णन

गान्धारी ने कहा—हे माधव! देखो, मेरे सौ पुत्र पृथ्वी पर पड़े हुए हैं जिन्हें भीमसेन ने गदा के प्रहार से मार डाला है। मेरी पुत्र-पति-हीन बालिका बहुएँ—बाल बिखराये—बिलखती हुई अपने पतियों और पुत्रों के पास दौड़ी जा रही हैं, यह देखकर मुझे ऐसा दुःख हो रहा है कि मैं अपने को सँभाल नहीं सकती। जो स्त्रियाँ आभूषण-भूषित चरणों से महलों में विचरती थीं वे ही आज विषम विपत्ति में मग्न और शोक से पागल सी होकर रक्त-सिँची रणभूमि में भटक रही हैं और पतियों तथा पुत्रों के पास से गिद्ध, गीदड़, कौए आदि को हटा रही हैं। वे पैर कहीं रखती हैं और पड़ता कहीं है। यह सर्वाङ्गसुन्दरी, पतली कमरवाली, दुर्योधन की पत्नी रणभूमि के घोर दृश्य को देखकर दुःख से गिर रही है। इस राजकुमारी, लक्ष्मण की माता, का दुःख देखकर मेरा चित्त किसी तरह शान्त नहीं होता। अन्य अनेक स्त्रियाँ भाई, पिता, पुत्र आदि को पृथ्वी पर पड़े देखकर गिर-गिर पड़ती हैं और उन्हें पकड़-पकड़कर रोती हैं। इसी तरह अधेड़ और वृद्ध स्त्रियाँ भी बन्धुओं के नाश से दुःखित होकर दारुण विलाप कर रही हैं। हे अपराजित वासुदेव! ये स्त्रियाँ थककर, मूर्च्छितप्राय होकर, रथों और मरे हुए हाथी-घोड़ों का सहारा लेकर खड़ी हैं। हे श्रीकृष्ण, देखो अन्य स्त्री अपने आत्मीय के सुन्दर कुण्डलों और नासिका से शोभित कटे हुए सिर को हाथ में लिये खड़ी है। हे निष्पाप, मैं समझती हूँ कि मुझ अभागिनी ने और इन स्त्रियों ने पूर्व जन्म में अवश्य ही बड़े पाप किये हैं। उसी का १०

फल यह हुआ कि धर्मराज ने हमारे परिवार को चौपट कर डाला। सच तो यह है कि फल भोगे विना पाप-पुण्य का नाश नहीं होता।

हे श्रीकृष्ण! देखो, ये युवती, दर्शनीय अङ्गोंवाली, अच्छे कुलों में उत्पन्न, लज्जावती, काले केशों और नेत्रोंवाली, हंस की सी गद्गद वाणीवाली, सुन्दरी स्त्रियाँ दुःख और शोक से मोहित होकर सारसी की तरह चिल्लाती रोती हुई पृथ्वी पर गिर रही हैं। हे कमल-नयन, इन स्त्रियों के कमल-तुल्य मुख धूप लगने से खिन्न हो रहे हैं। मेरे पुत्र ऐसे अनखी थे कि उन दर्पयुक्त गजराज के समान पराक्रमी वीरों की स्त्रियाँ बाहर नहीं निकलती थीं; किन्तु आज उन्हीं की प्रियतमाओं को साधारण लोग देख रहे हैं। हे माधव! मेरे पुत्रों की शतचन्द्र-शोभित ढालें, सुवर्णमय निष्क, शिरस्त्राण, कवच और ध्वजा आदि सामग्रियाँ—आहुति से प्रज्वलित अग्नि के समान—जगमगा रही हैं। यह शत्रुनाशन शूर भीम के सम्पूर्ण रक्त चूस लेने से विवर्ण होकर मरा पड़ा दुःशासन मेरा पुत्र है। द्यूतजनित क्लेशों को याद करके द्रौपदी की प्रेरणा से भीमसेन
२० ने इसकी यह दुर्दशा की है। इस मन्दमति ने भाई दुर्योधन और कर्ण का प्रिय करने के लिए सभा में द्रौपदी से कहा था कि हे पाञ्चाली, आज तुम दासी हो गई हो इसलिए नकुल, सहदेव और अर्जुन आदि दासों के साथ शीघ्र हमारे महलों को चलो। हे श्रीकृष्ण, उसी समय मैंने दुर्योधन से कहा कि अरे मूढ़, [द्रौपदी को शीघ्र छोड़ दे।] तू शीघ्र कलहप्रिय दुर्मति शकुनि को छोड़ दे; वह मृत्यु के फन्दे में फँस गया है। पाण्डवों से मेल कर ले। अभी तू भीम के स्वभाव को नहीं जानता और जैसे कोई मूढ़ पुरुष मस्त हाथी को जलती लकड़ियों से मारे वैसे ही तू तीक्ष्ण वाक्य-बाणों से क्रोधी भीम को सता रहा है। हे वासुदेव, उन्हीं वाक्य-बाणों को याद रखकर क्रुद्ध भीमसेन ने युद्ध में, गाय और साँड़ों को डसनेवाले साँप की तरह, मेरे पुत्रों पर क्रोध का विष उगला। [असल में दुर्योधन और दुःशासन के अपराध से ही कौरव-कुल का संहार हुआ।]

हे माधव! सिंह के मारे महागज की तरह भीमसेन का मारा यह दुःशासन, दोनों विशाल हाथ फैलाये, रणभूमि में पड़ा हुआ है। भीम ने क्रुद्ध होकर रणभूमि में इसका रक्त
२८ पीकर बड़ा घोर कर्म किया है।

अठारहवाँ अध्याय

गान्धारी का अपने पुत्रों के लिए विलाप करना

गान्धारी ने कहा—हे वासुदेव! वह देखो, विद्वान् प्रिय पुत्र विकर्ण गज-सेना के बीच पड़ा हुआ है। नीले मेघों के बीच में स्थित शरद् ऋतु के चन्द्रमा के समान यह शोभा दे

रहा है। भीम ने इसके शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर डाले हैं। लगातार धनुष धारण करने से इसके हाथ में घट्टे पड़ गये हैं। तलत्र-युक्त इसके हाथ को, खाने की इच्छा से, नोच रहे गिद्ध बड़ी मुश्किल से काट पाते हैं। वह देखो, इसकी कम उमर की सुन्दरी स्त्री अत्यन्त दुःखित हो रही है। वह मांस-लोभी गिद्ध, काक आदि जीवों को हाँकने का बार-बार यत्न करती है; परन्तु हटा नहीं पाती। हाय! जिस नौजवान महाबली विकर्ण ने ज़िन्दगी भर सुख भोगे, वही आज धूलि में लिपटा हुआ वीरशय्या पर पड़ा है। यद्यपि कर्णिक, नालीक, नाराच आदि विविध बाणों से इसके मर्मस्थल छिन्न-भिन्न हो गये हैं तथापि मरने पर भी इसकी शोभा जैसी की तैसी बनी हुई है।

वह देखो, दृढ़प्रतिज्ञ भीम के हाथ से मरकर शत्रुनिपातन दुर्मुख पृथ्वी पर पड़ा हुआ है। मांसाहारी प्राणियों ने उसके मुख-मण्डल का आधा हिस्सा खा डाला है; वह सप्तमी के चन्द्रमा के आधे बिम्ब के समान जान पड़ता है। हे श्रीकृष्ण, रण में निहत शूर दुर्मुख की दशा देखकर मैं अपने को किसी तरह नहीं सँभाल पाती। जिसके सामने युद्ध में ठहरनेवाला कोई नहीं देख पड़ता था वही दुर्मुख कैसे शत्रुओं के हाथ से मरकर धूल फाँक रहा है! इसने सचमुच रण में प्राण देकर देवलोक को जीत लिया है। हे मधुसूदन! देखो, प्रधान योद्धा चित्रसेन पृथ्वी पर मरा पड़ा है। उस विचित्र माल्यभूषित चित्रसेन के पास उसकी, शोक से पीड़ित, युवती स्त्रियाँ विलाप कर रही हैं। उनके आस-पास मांसाहारी जीव खड़े हैं। उन स्त्रियों के रोने का शब्द और हिंस्र जन्तुओं का शोर मिलकर एक अद्भुत कोलाहल उत्पन्न कर रहा है। यह दृश्य मुझे विचित्र जान पड़ता है। १०

हे कृष्णचन्द्र! देखो, वह देवतुल्य नवयुवक मेरा पुत्र विविंशति पड़ा है और श्रेष्ठ स्त्रियाँ उसे घेरे रो रही हैं। बाणों से विविंशति के मर्मस्थल छिन्न-भिन्न हो गये हैं और चारों ओर उसे गिद्ध घेरे हुए हैं। यह शूर शत्रुसेना में घुसकर अद्भुत युद्ध करके अब सत्पुरुषों के योग्य वीर-शयन में सो रहा है। हे श्रीकृष्ण! मुसकान, सुन्दर नाक और भौंहों से शोभित, पूर्णचन्द्र-तुल्य, अतीव सौम्य विविंशति का मुख देखो। जिस गन्धर्व-तुल्य विविंशति को देवकन्या-तुल्य सैकड़ों स्त्रियाँ घेरे रहती थीं उसी की आज यह दशा हो रही है। वह देखो, शत्रुसेना का संहार करनेवाला, सभा की शोभा बढ़ानेवाला, शूर दुःसह मरा पड़ा है। इसका सामना करनेवाला कौन था? फूले हुए कर्णिकार-वृक्षों से शोभित पर्वत के समान यह दुःसह का शरीर बाणों से छिदा हुआ है। दुःसह मर जाने पर भी सुवर्ण की माला और कवच से, अग्नियुक्त श्वेत पर्वत के समान, शोभायमान हो रहा है। २१

उन्नीसवाँ अध्याय

गान्धारी का श्रीकृष्ण को रोती हुई स्त्रियाँ दिखलाना

गान्धारी ने कहा—हे केशव, जो पराक्रम और बल में तुमसे और अपने पिता से ड्योढ़ा समझा जाता था उस सिंह के समान पराक्रमी अभिमन्यु को देखो। जो अकेला ही मेरे पुत्र के दुर्भेद्य चक्रव्यूह को तोड़कर उसके भीतर चला गया था वही वीर बालक अभिमन्यु, असंख्य सेना का संहार करके, अन्त को मारा गया। महातेजस्वी अभिमन्यु का तेज और शोभा मरने पर भी वैसी ही बनी हुई है। वह देखो, विराट की कन्या, अर्जुन की बहू, बालिका उत्तरा मृत पति को देखकर शोक से व्याकुल हो रही है। वह पति के मुख को हाथों से साफ़ कर रही है। कम्बुकण्ठ, सुन्दर नाक और काले बालों से युक्त कमल-तुल्य अभिमन्यु के मुख को सूँघकर उत्तरा उसके शरीर से लिपट रही है। जो सुन्दरी लज्जावती उत्तरा पहले मदपान की खुमारी में भी अभिमन्यु को गले लगाते हिचकती थी वही आज दुःख से विलाप करती हुई पति के रक्त में सने हुए सुवर्णभूषित कवच को खोलकर बारम्बार उसके शरीर को निहार रही है और तुमको सम्बोधन करके कह रही है कि 'हे कमलनयन! ये नेत्र, रूप, बल, वीर्य और तेज में आपके ही समान मेरे पतिदेव शत्रुओं के हाथ से मरकर इस दशा को १० पहुँचे हैं।'—हे प्रियतम, तुम्हारा शरीर तो अत्यन्त सुकुमार है और तुम सदा सुकोमल रङ्कुचर्म के बिछौने पर सोया करते थे। फिर इस समय इस तरह पृथ्वी पर पड़ने से क्या तुम्हें कष्ट नहीं होता? तुम्हारी भुजाएँ प्रत्यञ्चा की रगड़ से कठिन, सुवर्णमय अङ्गदों से विभूषित और हाथी की सूँड़ के समान बड़ी हैं। उन्हें फैलाये हुए तुम इस तरह सो रहे हो मानों कसरत के परिश्रम से थककर विश्राम कर रहे हो। मुझे तो अपना कोई अपराध नहीं याद आता, फिर तुम क्यों मुझे इस तरह आर्त भाव से विलाप करते देखकर भी मुझसे नहीं बोलते? पहले तो तुम मुझे दूर से ही देखकर हँसते हुए सादर बातचीत करते थे, फिर इस समय मुझे अत्यन्त दुःखित और रोते-कलपते देखकर भी क्यों नहीं बोलते? हे आर्यपुत्र! आर्या सुभद्रा, देवतुल्य पिता, चाचा, मैं और मामा श्रीकृष्ण, इन सब स्वजनों को दुःखित छोड़कर तुम कहाँ जाओगे?

हे जनार्दन! देखो, उत्तरा अभिमन्यु के सिर को गोद में रखकर, उसके रक्त से भीगे केशों को मुख पर से हटाकर, मानों वह जीवित है इस तरह उससे पूछती है—हे वीर, तुम वासुदेव के भानजे और गाण्डीवधन्वा अर्जुन के पुत्र थे। रण में ये सब महारथी किस तरह तुमको मार सके? क्रूरकर्मा कृपाचार्य, कर्ण, जयद्रथ, द्रोण और अश्वत्थामा को धिक्कार है, जिन्होंने मुझे विधवा कर डाला। जिस समय इन अनेक महारथियों ने मिलकर अकेले १८ और बालक तुमको मारा था उस समय उनके मन की क्या दशा हुई थी? हे वीर, तुम

सनाथ होकर भी अनाथ की तरह सब पाण्डवों और पाञ्चालों के देखते कैसे मारे गये ? तुम्हारे पिता अर्जुन युद्ध में अनेक शत्रुओं के हाथ से तुम्हारी मृत्यु देखकर भी किस तरह जीवित हैं ? हे कमल-नयन, तुम्हारे विना विपुल राज्य पाकर और शत्रुओं को मारकर भी पाण्डव प्रसन्न नहीं हो सकेंगे। प्रियतम! तुमने क्षत्रियधर्म के पालन से जिन शस्त्रनिर्जित श्रेष्ठ लोकों को प्राप्त किया है उन्हीं लोकों में तुम्हारे पास मैं भी, धर्म और इन्द्रिय-दमन के सहारे, शीघ्र ही आती हूँ। वहाँ तुम मेरे आने की प्रतीक्षा करना। निःसन्देह काल के आये विना देहत्याग करना अत्यन्त कठिन है, तभी तो मैं अभागिन तुम्हें रण में मारा गया देखकर भी जी रही हूँ। हे वीर! स्वर्ग में जाकर किस भाग्यशालिनी को तुम मेरी ही तरह सादर सम्भाषण, सस्नेह आह्वान और मन्द मुसकान से सुखी करोगे? अवश्य ही तुम स्वर्ग में मधुर वाणी, मन्द मुसकान और मनोहर रूप से अप्सराओं को मोहित करोगे। हे सुभद्रा-नन्दन, तुम पुण्यात्माओं के योग्य लोकों में अप्सराओं के साथ जब रमण करना तब कभी-कभी मेरे व्यवहार को भी स्मरण कर लेना। प्रियतम, इस लोक में मेरा और तुम्हारा साथ इतने ही दिन बदा था। केवल छः महीने मेरे साथ रहकर सातवें महीने तुम स्वर्ग को चले गये।

हे मधुसूदन! देखो, इस तरह विलाप कर रही उत्तरा को मत्स्यराजकुल की स्त्रियाँ पति के पास से खींच रही हैं। अत्यन्त शोकाकुल राजा विराट की स्त्रियाँ दुःखित उत्तरा को अभिमन्यु के पास से हटाकर विराट की लाश के पास गई हैं। द्रोण के बाणों से छिन्न-भिन्न होकर पृथ्वी पर पड़े, ख़ून से लथपथ, विराट की दशा देखकर वे ज़ोर से चिल्लाती और रोती हैं। देखो गिद्ध, गीदड़, कौए आदि मांसाहारी जीव विराट की लोथ को नोच रहे हैं और विह्वल स्त्रियाँ उन दुर्द्धर्ष जीवों को बारम्बार हाँककर भी हटा नहीं पातीं। हे अच्युत! ये स्त्रियाँ भीतर दुःख से और बाहर धूप से पीड़ित हो रही हैं। थकन, दुःख और सन्ताप से इनके चेहरे उतरे हुए हैं। वह देखो, राजकुमार उत्तर, अभिमन्यु, काम्बोजराज सुदक्षिण और मेरा पौत्र प्रियदर्शन लक्ष्मण, ये सब वीर बालक मरे पड़े हैं। ३० ३५

बीसवाँ अध्याय

गान्धारी का कर्ण के लिए विलाप

गान्धारी ने कहा—हे कृष्ण! देखो, वह महारथी वीर कर्ण पड़ा है। प्रज्वलित अग्नि की तरह युद्ध में बहुत से अतिरथी योद्धाओं को मारकर यह वीर, अर्जुन के तेज से, शान्त हो गया है। असहनशील शूर कर्ण, अर्जुन के प्रहार से मरकर, रक्त से लिपटा हुआ वीरशय्या पर

पड़ा हुआ है। मेरे महारथी पुत्रों ने पाण्डवों के डर से जिसका आश्रय लिया था और जिसको आगे करके उन्होंने पाण्डवों से युद्ध किया वही कर्ण, सिंह के गिराये हुए शार्दूल (गैंडे) अथवा गजराज के मारे हुए गजराज की तरह, अर्जुन के बाण से पृथ्वी पर मरा पड़ा है। कर्ण की सुन्दरियाँ, बाल बिखराये हुए, पति के आसपास विलाप कर रही हैं। हे वासुदेव, वीर कर्ण के डर से उद्विग्न युधिष्ठिर चिन्ता के मारे तेरह वर्ष तक अच्छी तरह नहीं सोये। इन्द्र-तुल्य पराक्रमी कर्ण को शत्रु लोग कभी नहीं हरा सके। प्रलयकाल की आग के समान तेजस्वी कर्ण हिमालय पहाड़ की तरह अटल था। दुर्योधन का प्रधान आश्रय वही पराक्रमी कर्ण अर्जुन के हाथ से मरकर, आँधी से उखड़े बड़े वृक्ष की तरह, पृथ्वी पर पड़ा हुआ है। वह देखो, कर्ण की प्यारी—वृषसेन की माता—रो-रोकर कह रही है कि हाय नाथ, आचार्य का शाप ही तुम्हारी मृत्यु का कारण हुआ। पृथ्वी ने तुम्हारे रथ के पहिये को पकड़ लिया और निष्ठुर अर्जुन ने ओछे विचार से उस समय तुम्हारा सिर काट डाला जब तुम निरस्त्र थे और पहिया निकाल रहे थे। हे कृष्ण, देखो सुषेण की माता अत्यन्त दुःखित होकर इस तरह महाबाहु कर्ण के निकट विलाप करके बेहोश होकर गिर पड़ी। मांसाहारी जीवों ने खाकर कर्ण के शरीर को थोड़ा सा बचने दिया है, जिससे वह कृष्णपक्ष की चौदस के चन्द्रमा के समान अत्यन्त शोभाहीन हो गया है। हे वासुदेव! पुत्र और पति के वध से पीड़ित, शोक से विह्वल हो रही, कर्ण की पत्नी रो-रोकर पति के मुख को सूँघती है और उठ-उठकर फिर गिर पड़ती है। १०-१४

इक्कीसवाँ अध्याय

वाह्लीक आदि की स्त्रियों की दशा श्रीकृष्ण को दिखाकर
गान्धारी का विलाप करना

गान्धारी ने कहा—हे हृषीकेश! वह देखो, भीमसेन ने जिसे मार डाला है उस अवन्ती-नरेश को गिद्ध, गीदड़ आदि नोच-नोचकर खा रहे हैं। यह शूर सैकड़ों वीर शत्रुओं का नाश करके इस समय रक्तसिक्त होकर अनाथ की तरह वीरशय्या पर पड़ा है यद्यपि इसके अनेक बन्धु-बान्धव थे। काल की गति देखो, इतने बड़े राजा के शरीर को गीदड़, कङ्क आदि तरह-तरह के मांसाहारी प्राणी इधर-उधर खींच रहे हैं। वीरशय्या पर शयन कर रहे महायोद्धा अवन्ती-नरेश के आस-पास उसकी सुकुमारी स्त्रियाँ बिलख-बिलखकर रो रही हैं।

वह देखो, प्रतीप के पुत्र महाधनुर्द्धर वाह्लीक सोते हुए सिंह की तरह पड़े हैं। इन्हें भीमसेन ने भल्ल बाण से मारा है। हे कृष्ण, मर जाने पर भी अब तक इनका मुख पौर्णमासी

के चन्द्रमा के समान शोभा दे रहा है। हे मधुसूदन! वह देखो, वृद्धक्षत्र का पुत्र, मेरा दामाद, जयद्रथ पड़ा है। पुत्रशोक से पीड़ित अर्जुन ने, प्रतिज्ञा-पालन के लिए, मेरे पुत्र की ग्यारह अक्षौहिणी सेनाओं का व्यूह भेदकर इसे मारा है। बड़े-बड़े महारथी इसकी रक्षा कर रहे थे, पर वे भी इसे नहीं बचा सके। देखो, सिन्धु सौवीर देश के स्वामी, दर्पपूर्ण, मनस्वी जयद्रथ के शरीर को गिदड़ियाँ बेधड़क नोच-नोचकर खा रही हैं। इसकी प्रेममयी भार्याएँ पास रहकर भी मांसाहारी जीवों को नहीं रोक पातीं। गिदड़ियाँ बेतरह चिल्लाकर उन स्त्रियों को डरवाकर जयद्रथ की लाश को नीचे गढ़े में खींच रही हैं। सिन्धु सौवीर देश के राजा महाबाहु जयद्रथ १० को काम्बोज और यवन देश की स्त्रियाँ चारों ओर से घेरे हुए हैं। जिस समय यह जयद्रथ दुर्मति-वश केकयगण के साथ वन में द्रौपदी को हरकर ले चला था उसी समय पाण्डव इसे मार डालते; किन्तु केवल अपनी बहन दुःशला के सम्मान [और वैधव्य] के ख़याल से उन्होंने इस अपराधी को छोड़ दिया था। हाय, फिर अब की उस दुःशला का ख़याल करके क्यों नहीं पाण्डवों ने इसे छोड़ा? मेरी बालिका दुःशला दुःख से गिरती-पड़ती रो रही है। वह अपने भाग्य को धिक्कारती और पाण्डवों को कोसती सी जान पड़ती है। हे कृष्ण! मेरे लिए इससे बढ़कर और दुःख क्या होगा कि मैं, विधवा कन्या की और वैसी ही बहुओं की, यह दुर्दशा देख रही हूँ! हाय, कैसे कष्ट की बात है कि दुःशला अपने पति के सिर को न पाकर, शोक और डर को छोड़कर, उसे खोजती इधर-उधर दौड़ रही है। अहो, जिसने पुत्रवत्सल पाण्डवों को व्यूह के बाहर ही रोक रक्खा था, भीतर नहीं घुसने दिया था, वह बहुत सी शत्रुसेनाओं को मारने-वाला वीर जयद्रथ अन्त को कैसे मारा गया! परम दुर्जय वीर मस्त हाथी के समान उस जयद्रथ को घेरकर ये चन्द्रमुखी स्त्रियाँ घोर विलाप कर रही हैं। १८

बाईसवाँ अध्याय

गान्धारी का भीष्म, द्रोणाचार्य आदि के गुणों का वर्णन करके शोक करना

गान्धारी ने कहा—माधव! देखो, यह नकुल का सगा मामा शूर-शिरोमणि शल्य पड़ा है। धर्मज्ञ युधिष्ठिर ने क्षत्रिय-धर्म के अनुसार इसे मारा है। हे पुरुष-श्रेष्ठ, यह वीर सदा सब जगह तुम्हारी बराबरी का दावा करता था। वही महाबली मद्रराज आज इस तरह मरा पड़ा है। शल्य में कोई दोष नहीं था। इसने कर्ण का रथ हाँकते समय, पाण्डवों की जय के लिए, बराबर कर्ण की हिम्मत घटाने की चेष्टा की थी। अहो, कैसे खेद की बात है! शल्य के पूर्णचन्द्र-सदृश दर्शनीय सुलोचन मुख पर कौए चोंच चला रहे हैं। सुवर्णवर्ण मद्रराज की

लाल जीभ बाहर निकल आई है, उसे नोच-नोचकर पक्षी खा रहे हैं। सूक्ष्मवस्त्र-धारिणी कुलस्त्रियाँ मृत शल्य के पास बैठी हुई चिल्ला-चिल्लाकर रो रही हैं। दलदल में फँसे गजराज के आसपास खड़ी नई हथिनियाँ जैसे चिल्लाती हैं, वैसे ही ये नारियाँ अपने स्वामी शल्य को घेर-कर रो रही हैं। हे वृष्णिनन्दन! शरणागतों की रक्षा करनेवाले शूर शल्य का शरीर बाणों से कट-कुट गया है, वह वीरशय्या पर पड़ा हुआ है।

हे पुरुषोत्तम! वह देखो, परम प्रतापी पहाड़ी राजा भगदत्त हाथ में हाथी को हाँकने १० का अंकुश लिये मरा पड़ा है। मांसाहारी जीव इसे भी नोच-नोचकर खा रहे हैं। इसके सिर पर पड़ी हुई सुवर्ण की माला अपनी कान्ति से केशों की शोभा बढ़ा रही है। इस महाराज ने अर्जुन से घोर युद्ध किया था। वह युद्ध इन्द्र और वृत्रासुर के संग्राम के ही समान अद्भुत था। राजा भगदत्त ने अपने पराक्रम से अर्जुन के जीवन को सङ्कट में डाल दिया था। अन्त को अर्जुन ने इसे मुश्किल से मार पाया।

वह देखो, पितामह भीष्म पड़े हुए हैं। पृथ्वी पर शौर्य और वीर्य में इनकी बराबरी करनेवाला कोई नहीं है। वही भयानक युद्ध करनेवाले तेजस्वी वीरवर, प्रलयकाल में काल के द्वारा आकाश से गिराये गये सूर्य की तरह, पृथ्वी पर पड़े हैं। शस्त्रताप से शत्रुओं को तपा-कर ये महात्मा पुरुष-सूर्य अब अस्तप्राय हो रहे हैं। हे अच्युत, बालब्रह्मचारी शूरोचित शरशय्या पर पड़े हुए पितामह को देखो। शर-कानन में कार्त्तिकेय की तरह ये भी कर्णी, नालीक, नाराच आदि बाणों की शय्या पर पड़े हुए हैं। अर्जुन के दिये हुए तीन बाणों के उपधान (तकिये) पर इनका सिर रक्खा हुआ है। वासुदेव! युद्ध में अद्वितीय देवव्रत, पिता की आज्ञा (अथवा इच्छा) का पालन करने के लिए, आजीवन ऊर्ध्वरेता ही रहे। २० इन धर्मात्मा को इस लोक और परलोक के विषय का पूर्ण ज्ञान था। उसी ज्ञान के बल से ये मनुष्य होने पर भी देवताओं के समान अब तक प्राण धारण किये हुए हैं। जब इनकी भी शत्रुओं के बाणों से यह गति हुई तब यही कहना पड़ता है कि पृथ्वी पर कोई रण-विशारद पराक्रमी या विद्वान् जीवित नहीं रह गया। इन सत्यवादी धर्मात्मा ने पाण्डवों के पूछने पर अपनी मृत्यु का उपाय स्वयं बता दिया। विनाश को प्राप्त कुरुवंश का फिर उद्धार करनेवाले भीष्म भी कौरवों के साथ आज पराजित हुए। देवतुल्य भीष्म के मरने पर अब कौरव (पाण्डव) धर्म के विषय में किससे सलाह लेंगे?

वह देखो, अर्जुन को शिक्षा देनेवाले, सात्यकि के आचार्य और कुरुवंश के गुरुवर ब्राह्मण-श्रेष्ठ आचार्य द्रोण पृथ्वी पर पड़े हुए हैं। ये चतुर्विध अस्त्रों के ज्ञाता और इन्द्र अथवा परशुराम के तुल्य योद्धा थे। इन्हीं की कृपा से धनुर्वेद में निपुण हुए अर्जुन ने समर में दुष्कर कर्म किये हैं। बड़े-बड़े दिव्य अस्त्र भी, मृत्यु के समय, इनकी रक्षा नहीं कर सके। जिनको

आगे करके कौरवों ने पाण्डवों से युद्ध करने का साहस किया था वही ये द्रोणाचार्य शस्त्र से छिन्न-भिन्न हुए पड़े हैं। जो शत्रु-सेना को अग्नि के समान भस्म करते चले जाते थे वही द्रोण, बुझी हुई आग के समान, रणभूमि में मरे पड़े हैं। निहत द्रोणाचार्य की धनुष की मुट्ठी वैसी ही दृढ़ बनी है और दस्ताने वैसे ही ठीक स्थान पर हैं जैसे कि उनकी जीवित दशा में थे। शूर द्रोणाचार्य जीवन भर ब्रह्मा की तरह चारों वेदों और सब अस्त्रों को धारण किये रहे। वन्दीजनों के द्वारा वन्दित [और चन्दन अगुरु के अङ्गराग के योग्य] द्रोणाचार्य के उन पैरों को गीदड़ खींच रहे हैं, जिनकी सैकड़ों शिष्य पूजा किया करते थे। हे मधुसूदन, द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न के मारे हुए द्रोणाचार्य के पास कृपाचार्य की बहन कृपी दीन भाव से विलाप कर रही है। वह देखो, दीन हो रही कृपी बाल बिखराये, नीचे मुख किये, द्रोणाचार्य को देख रही है। यह जटाधारिणी ब्रह्मचारिणी द्रोणाचार्य के पास बैठी हुई है और समर-निहत पति के प्रेतकृत्य करने का यत्न कर रही है। इस सुकुमारी कृपी की दशा देखकर मेरी छाती फटी जा रही है। वह देखो, विधिपूर्वक अग्नि-स्थापन करके, चिता की चारों ओर जलाकर, उस पर आचार्य का शरीर रखकर सामवेदी लोग त्रिविध सामगान कर रहे हैं। द्रोणाचार्य की चिता को जटाधारी ब्रह्मचारियों ने धनुष, शक्ति, टूटे हुए रथ, विविध बाण आदि की लकड़ियों से ही बनाया है। कोई ब्रह्मचारी सामगान करते हैं और कोई रोते हैं। अन्त समय पठनीय सामगान करते हुए ये द्रोणाचार्य के शिष्य द्विज ब्रह्मचारी अग्नि में अग्निहोत्र सहित आचार्य का शरीर जला चुके। अब वे आचार्य की चिता की प्रदक्षिणा करके, कृपी को आगे किये हुए, गङ्गातट को जा रहे हैं। ३० ४० ४२

तेईसवाँ अध्याय

अन्यान्य वीरों के लिए गान्धारी का विलाप

गान्धारी ने कहा—हे जनार्दन! देखो, वे सोमदत्त के पुत्र भूरिश्रवा पड़े हैं। इन्हें सात्यकि ने मारा है। बहुत से पक्षी मांस-लोभ से इनके शरीर को नोच रहे हैं। वे सोमदत्त भी मरे पड़े हैं। जान पड़ता है, वे पुत्र-शोक से पीड़ित होकर सात्यकि के अनुचित कार्य की निन्दा कर रहे हैं। वह देखो, भूरिश्रवा की माता अपने मृत पति सोमदत्त को सम्बोधन करके कह रही है कि हे स्वामी, आप बड़े भाग्यशाली हैं, जो इस दारुण भरतकुल-संहार को देखने के लिए जीवित नहीं हैं। आपके लिए यह भाग्य की बात है कि अनेक यज्ञ करके अपरिमित दक्षिणा देनेवाले और यूपध्वज कहलानेवाले, वीर पुत्र भूरिश्रवा की यह दशा आप

नहीं देखते। यह आपका भाग्य है कि, सागर-तट पर चिल्ला रही सारसियों के समान, अपनी विधवा बहुओं का विलाप आपको नहीं सुनना पड़ा। पुत्र और पति के मरने से शोकाकुल, काले केश बिखराये हुए, आधी धोती लपेटे ये आपकी बहुएँ दौड़ती और बिलखती हैं। अहो, यह अच्छा ही हुआ कि आपको अपने पुत्रों के शरीर का मांसाहारी पशुओं से नोचा जाना नहीं देखना पड़ा। अर्जुन ने हाथ काटकर जिसे गिरा दिया उस भूरिश्रवा को, शल को और विलाप कर रही अपनी बहुओं को आप नहीं देखते, यह आपका कम सौभाग्य नहीं है। वीर

१० भूरिश्रवा का यह कटा हुआ सुवर्णमय छत्र रथ के पास पड़ा आपको नहीं देखना पड़ा। ये भूरिश्रवा की भार्याएँ, सात्यकि के हाथ से मारे गये, स्वामी को घेरकर घोर शोक कर रही हैं। हे केशव! देखो, ये पतिशोक से विह्वल बालाएँ करुण विलाप कर-करके स्वामी के आगे गिर-गिर पड़ती हैं। अर्जुन ने यह बुरा काम कैसे किया कि दूसरे से लड़ रहे असावधान शूर भूरिश्रवा का हाथ काट डाला! सात्यकि ने उससे भी बढ़कर पाप किया कि 'प्रायोपविष्ट' भूरिश्रवा का सिर काट गिराया। इन क्षात्र-धर्म से लड़नेवाले धार्मिक वीर भूरिश्रवा को दो ने मिलकर अधर्म से मारा है। भूरिश्रवा की स्त्रियाँ सात्यकि को धिक्कार देती हुई कह रही हैं कि वीर-मानी सात्यकि ऐसा पाप करके सज्जन-समाज के सामने क्या कहेंगे; कैसे मुँह दिखावेंगे? हे माधव! पतली कमरवाली यह भूरिश्रवा की भार्या, भर्ता की भुजा को गोद में लेकर, करुण स्वर से विलाप करती हुई कहती है कि यह शत्रुओं को मारनेवाला, मित्रों को अभय देनेवाला, क्षत्रियान्तकारी, सहस्रों गोदान करनेवाला, पीन स्तन मर्दन करनेवाला, सुन्दरियों की नाभि, ऊरु, जङ्घा आदि को स्पर्श करनेवाला, सुरति-समय नारियों की नीवी खोलनेवाला हाथ है। अन्य से युद्ध कर रहे, असावधान मेरे स्वामी का यह हाथ वासुदेव के सामने ही अर्जुन ने काट डाला

२० है। जहाँ दस भले आदमी जमा होंगे, युद्धों की चर्चा होगी, वहाँ वासुदेव या स्वयं अर्जुन इस करतूत की क्या कैफ़ियत देंगे? हे माधव, इस तरह अर्जुन की निन्दा करके वह सुन्दरी चुप हो गई है। उसकी सौतें पास ही खड़ी हुई स्नेह से, अपनी बहू के लिए शोक करनेवाली सास की तरह, उसके लिए शोक कर रही हैं।

वह देखो, बलवान् गान्धारराज शकुनि मरा पड़ा है। भानजे सहदेव ने अपने मामा को मारा है। पहले सुवर्णदण्ड-युक्त पङ्खे जिसके लिए डुलाये जाते थे उसी पर इस समय मांसाहारी पक्षी अपने परों की हवा कर रहे हैं। यह मायावी माया से हज़ारों रूप रखता था। इसकी सब मायाएँ पाण्डवों के तेज से भस्म हो गईं। इस कपटी ने माया से सभा में राजा युधिष्ठिर का सारा राज्य जीत लिया था। आज सहदेव ने इसके जीवन को हर लिया! हे कृष्ण, धूर्त (जुआरी) शकुनि मरा पड़ा है और मांसाहारी जीव चारों ओर से इसे घेरे हुए हैं। इसने यह धूर्तता शायद मेरे पुत्रों का विनाश कराने के लिए ही सीखी थी।

इसी ने अनुचरों समेत अपने और मेरे पुत्रों के नाश के लिए पाण्डवों से घोर वैर कराया था। शस्त्रों से मरकर जैसे मेरे पुत्र स्वर्ग को गये हैं वैसे ही यह दुर्मति भी शस्त्रनिर्जित श्रेष्ठ गति को पहुँच गया। मुझे शङ्का है कि यह कुटिल वहाँ भी मेरे भोले-भाले पुत्रों में परस्पर वैर-विरोध न उत्पन्न कर दे। ३०

चौबीसवाँ अध्याय

गान्धारी का श्रीकृष्ण को शाप देना

गान्धारी ने कहा—हे वासुदेव! वह देखो, दुर्धर्ष काम्बोजराज सुदक्षिण मरकर धूल में पड़ा हुआ है। जो काम्बोज देश के बने कोमल कम्बलों पर सोता था उसी की आज यह दशा हो रही है। उसके चन्दन-चर्चित हाथों को ख़ून से लथपथ देखकर उसकी भार्या अत्यन्त दुःखित होकर विलाप कर रही है। वह कहती है कि हे प्रियतम, ये वे ही परिघतुल्य चन्दन-चर्चित हाथ हैं, जिनसे तुम मुझे हृदय से लगाते थे और मैं तुमको पल भर भी नहीं छोड़ना चाहती थी। हे नाथ, तुम्हारे बिना अब मेरी क्या गति होगी? हे कृष्ण, पति-वियोग से अनाथ हो रही यह रानी काँपती हुई मधुर स्वर से विलाप कर रही है। विविध मालाओं के समान, घाम से मुरझा रही, इन स्त्रियों के शरीर इस शोक की दशा में भी सुन्दर ही देख पड़ते हैं। हे मधुसूदन! वह देखो, कलिङ्ग देश का राजा पड़ा हुआ है। इसकी बाहुओं में सुन्दर अङ्गद शोभायमान हैं। यह अद्वितीय धनुर्द्धर समझा जाता था। वह देखो, मगध देश का राजा जयत्सेन पड़ा है। मगध देश की इसकी स्त्रियाँ इसे घेरकर विलाप कर रही हैं। मृग-नयनी, मधुर वाणीवाली इन नारियों का मनोहर स्वर मेरे मन को मोहित कर रहा है। इन रो रही स्त्रियों के कपड़े और गहने अस्त-व्यस्त हो रहे हैं। अहो! सुन्दर कोमल बिछौनों पर लेटने योग्य ये स्त्रियाँ पृथ्वी पर लोट रही हैं। वह देखो, कोशल देश का प्रतापी राजा बृहद्बल पड़ा हुआ है। उस राजपुत्र को घेरे हुए उसकी भार्याएँ अलग-अलग रो रही हैं। अभिमन्यु ने बृहद्बल को जो बाण मारे थे उन्हें दुःखित रानियाँ पति के शरीर से निकाल रही हैं और बार-म्बार पछाड़ खा-खाकर गिर पड़ती हैं। इन सुन्दरियों के मुख परिश्रम, शोक और घाम से पीड़ित होकर मुरझाये हुए कमल के समान हो रहे हैं। १०

वह देखो, सुवर्ण की मालाओं और अङ्गद आदि गहनों से अलङ्कृत धृष्टद्युम्न के ये वीर बालक पृथ्वी पर पड़े हैं। इन्हें द्रोणाचार्य ने मार डाला है। रथ-कुण्ड में प्रज्वलित, धनुष-रूप ज्वालाओं से युक्त, शर शक्ति गदा आदि के ईंधन से प्रचण्ड द्रोणाचार्य रूप आग पर आ-

मण करके ये पतङ्ग की तरह भस्म हो गये हैं। वह देखो, केकय देश के राजकुमार पाँचों भाई पृथ्वी पर पड़े हैं। सुन्दर अङ्गदों से भूषित ये शूर राजपुत्र, सम्मुख युद्ध करके, द्रोणाचार्य के हाथ से मारे गये हैं। सोने के कवचों से शोभित, विचित्र ध्वजावाले रथों पर बैठनेवाले, ये राजकुमार अब भी अपने तेज से अग्नि की तरह पृथ्वी को प्रकाशित कर रहे हैं। हे माधव! वह देखो, राजा द्रुपद मरे पड़े हैं। सिंह के गिराये हाथी की तरह इन्हें द्रोणाचार्य ने मार गिराया है। हे पुण्डरीकाक्ष, पाञ्चालराज का सफ़ेद छत्र शरद् ऋतु के विमल पूर्ण चन्द्र को भी लज्जित कर रहा है। वह देखो, वृद्ध राजा द्रुपद की भार्याएँ और बहुएँ पाञ्चालराज को भस्म करके उनकी चिता की प्रदक्षिणा करके जा रही हैं। वह देखो, चेदि-नरेश शूर धृष्टकेतु को २० उसकी स्त्रियाँ जलाने को ले जाना चाहती हैं। इसे द्रोणाचार्य ने मारा है। हे मधुसूदन, इस वीर ने युद्ध में पहले द्रोणाचार्य के अस्त्र-शस्त्रों को व्यर्थ कर दिया था; किन्तु अन्त को मरकर नदी के गिराये वृक्ष की तरह पृथ्वी पर पड़ा हुआ है। महारथी धृष्टकेतु ने हज़ारों शत्रुओं को मारा था। इसके बन्धु-बान्धव और सारी सेना मारी जा चुकी है। [यह तुम्हारी बुआ के लड़के शिशुपाल का भाई है।] हाय, इसे पक्षी नोच-नोचकर खा रहे हैं और स्त्रियाँ उन्हें हटाने की चेष्टा कर रही हैं। चेदिराज की भार्याएँ अपने पुत्र की लाश गोद में रखकर विलाप कर रही हैं। द्रोणाचार्य ने तीक्ष्ण बाणों से उसके कुण्डल-शोभित सुन्दर मस्तक को काट डाला है। अवश्य ही इस वीर पुत्र ने शत्रुओं से लड़ रहे पिता का साथ अन्त समय तक नहीं छोड़ा था। हे कृष्ण, उसी तरह मेरा पौत्र लक्ष्मण अपने पिता दुर्योधन का अनुगामी हुआ है। हे माधव! वह देखो, अवन्ती के विन्द अनुविन्द दोनों भाई वसन्त-वायु के वेग से उखड़े हुए फूले हुए दो साल वृक्षों की तरह पृथ्वी पर पड़े हैं। दोनों ही सुवर्ण के अङ्गद, कवच और माला पहने हुए हैं। दोनों के नेत्र साँड़ के से हैं. दोनों धनुष, बाण और खड्ग से शोभित हैं। हे वासुदेव, इसमें सन्देह नहीं कि तुमको और पाण्डवों को कोई नहीं मार सकता; क्योंकि भीष्म पितामह, ३० द्रोण, कर्ण, कृपाचार्य, दुर्योधन, अश्वत्थामा, सिन्धुराज जयद्रथ, सोमदत्त, विकर्ण और शूर कृतवर्मा ऐसे वीर भी तुम लोगों को नहीं मार सके। अहो, जो पुरुषश्रेष्ठ वीर शस्त्रों के वेग से देवताओं को भी मार डालने में समर्थ थे वे ही आज मरे पड़े हैं। सचमुच काल बड़ा ही प्रबल है! हे माधव, दैव के लिए असाध्य कुछ नहीं है। दैव की ही प्रतिकूलता से पराक्रमी सहाय-सम्पन्न मेरे पुत्र मारे गये। मैंने तो अपने पुत्रों को मरा हुआ तभी जान लिया था जब तुम सन्धि-स्थापन में अकृतकार्य होकर उपप्लव्य नगर को पाण्डवों के पास लौट गये थे। उसी समय भीष्म पितामह और विदुर ने मुझसे कह दिया था कि अपने पुत्रों पर अधिक स्नेह मत करो। इन दोनों महात्माओं का अनुमान कहाँ मिथ्या हो सकता था? शीघ्र ही मेरे पुत्र पाण्डवों के क्रोध की आग में भस्म हो गये।

श्रीकृष्ण ने कहा—हे गान्धारी, उठो-उठो, शोक मत करो। तुम्हारे ही दोष से कौरवों का नाश हुआ है। पृष्ठ—२२६१

वैशम्पायन कहते हैं कि हे जनमेजय ! गान्धारी इस तरह कहते-कहते शोक से विह्वल होकर गिर पड़ीं। दुःख के वेग ने उनके ज्ञान और धैर्य को नष्ट कर दिया। दम भर के बाद पुत्र-शोक से अधीर गान्धारी ने क्रोध करके श्रीकृष्ण पर दोषारोपण करते हुए कहा—हे कृष्ण, कौरव और पाण्डव जब क्रोधान्ध होकर एक-दूसरे का विनाश कर रहे थे तब तुमने उनके विनाश की उपेक्षा क्यों की ? उन्हें रोका क्यों नहीं ? तुम स्वयं बली और समर्थ थे, तुम्हारे साथ बहुत से अनुचर और सेना भी थी। दोनों पक्षों से तुम बलपूर्वक अपनी आज्ञा मनवा सकते थे। शास्त्रज्ञ, वाक्य-विशारद और असाधारण शक्तिशाली होकर भी तुमने जान-बूझकर कौरवों का नाश होने दिया, यही तुम्हारा दोष है। हे महाबाहो, इसका फल तुम्हें भी भोगना पड़ेगा। मैंने पति की सेवा करके जिस दुर्लभ तप का सञ्चय किया है उसी के बल से मैं शङ्ख-चक्र-गदा-धारी तुमको शाप देती हूँ। हे कृष्ण ! एक-दूसरे का नाश कर रहे पाण्डवों और कौरवों को तुमने, सर्वथा समर्थ होकर भी, नहीं रोका; इस कारण तुम भी अपने हाथ से अपनी जाति का संहार करोगे। आज से छत्तीसवें वर्ष तुम्हारे सजातीय, अमात्य, पुत्र-पौत्र, भाई-बन्धु सब परस्पर लड़कर मर जायँगे। तुम अनाथ की तरह वन में जाकर बुरी तरह से मरोगे। कोई तुम्हारे शरीर का पता भी न पावेगा। तुम्हारी भी स्त्रियाँ कौरवों की स्त्रियों की तरह पुत्र, पति, भाई-बन्धुओं की मृत्यु से शोकाकुल होकर बिलख-बिलखकर विलाप करेंगी। ४०

वैशम्पायन कहते हैं कि राजन्, गान्धारी के ये घोर वचन सुनकर महामनस्वी वासुदेव ने कुछ क्रोध से हँसकर कहा—हे क्षत्रिय-कुमारी ! इस भावी अनर्थ को मैं भी जानता हूँ। जो दैव-कृत काम मैं करना चाहता था उसी की पुनरुक्ति करके तुमने अपने तप को नष्ट कर दिया। यादवों का इस तरह विनाश होना दैव-कृत है। हे कल्याणी, मेरे सिवा यादववंश का संहार करनेवाला और कोई नहीं है। मनुष्यों की कौन कहे, उनका वध तो देवता और दानव भी नहीं कर सकते। इसी लिए वे परस्पर लड़कर मर मिटेंगे। हे जनमेजय, श्रीकृष्ण के ये वचन सुनकर पाण्डव बहुत ही डरे और घबराकर अपने जीवन से भी निराश हो गये। ५०

श्राद्धपर्व

पच्चीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण की आज्ञा से विदुर का मृत व्यक्तियों का दाहकर्म करना

[वैशम्पायन कहते हैं कि गान्धारी को पृथ्वी पर पड़ी देखकर उन्हें ढाढ़स बँधाते हुए] श्रीकृष्ण ने कहा—हे गान्धारी, उठो-उठो, शोक मत करो। तुम्हारे ही दोष से कौरवों का

नाश हुआ है। तुम्हारा पुत्र दुर्योधन दूसरों की उन्नति या भलाई देख न सकनेवाला, अत्यन्त अभिमानी और बड़े-बूढ़ों के शासन को न माननेवाला था। उस निष्ठुर वैरप्रिय दुर्योधन को तुमने नहीं दबाया; अपनी उस भूल को दोष न देकर अपना दोष मुझ पर डालना चाहती हो। अस्तु, जो कुछ हुआ उसमें किसी का भी दोष हो, अब उसके लिए शोक करना व्यर्थ है। जो कोई मोहवश मृत व्यक्ति या नष्ट वस्तु के लिए शोक करता है उसे दुःख से दुःख अर्थात् दूना दुःख होता है। देखो, ब्राह्मणी तप करने के लिए, गाय बोझ ढोने के लिए, घोड़ी वेग से दौड़ने के लिए, शूद्रा सेवा करने के लिए, वैश्या पशु-पालन करने के लिए और तुम सरीखी राजपुत्री समर में मरने के लिए ही पुत्र पैदा करती है।

वैशम्पायन कहते हैं कि राजन्, श्रीकृष्ण के इन अप्रिय वचनों को सुनकर शोक से व्याकुल गान्धारी चुप हो रहीं। उधर राजर्षि धृतराष्ट्र ने अबुद्धि से उत्पन्न शोक और मोह को त्याग करके युधिष्ठिर से पूछा—हे धर्मराज, इस संग्राम में जितनी सेना एकत्र हुई थी उसमें कितनी मारी गई और कितनी अभी जीवित है? मालूम हो तो बतलाओ।

युधिष्ठिर ने कहा—पिताजी, इस संग्राम में छाछठ करोड़ दस लाख बीस हज़ार सैनिक मारे गये हैं। चौबीस हज़ार एक सौ पैंसठ योद्धा जीवित हो भाग गये हैं। धृतराष्ट्र ने कहा—हे धर्मराज, मेरी समझ में तुम सर्वज्ञ हो। इसलिए यह बताओ कि समर में मारे गये पुरुष किस गति को प्राप्त हुए हैं? युधिष्ठिर ने कहा—चाचाजी, जिन वीरों ने प्रसन्नतापूर्वक लड़कर शरीर त्याग किया है वे पराक्रमी पुरुष इन्द्रलोक में गये हैं। जिन्होंने अप्रसन्न चित्त से, केवल कर्तव्यपालन के लिए, शरीर त्याग किया है वे मरकर गन्धर्वलोक को गये हैं। जो लोग संग्रामभूमि में प्राणरक्षा की प्रार्थना करते हुए विमुख होकर शत्रुओं के शस्त्र-प्रहार से मरे हैं, वे यक्षलोक को गये हैं। जिन्हें शत्रुओं ने गिरा दिया है, जो हीनबल और शस्त्रहीन होकर भी—भागने की इच्छा को त्याग करके—शत्रुओं के सामने ही डटे रहे, वे क्षत्रियधर्म-निरत वीर तीखे शस्त्रों से छिन्न-भिन्न होकर तेजोमय शरीर से ब्रह्मलोक को गये हैं। राजन्, जो भागकर रणभूमि के बाहर मरे हैं वे उत्तर कुरुदेश में जन्म लेंगे।

धृतराष्ट्र ने कहा—हे युधिष्ठिर, तुम किस ज्ञान के बल से सिद्ध पुरुष की तरह इन परोक्ष विषयों को देख रहे हो? मैं सुनने लायक हो तो कहो।

धर्मराज ने कहा—महाराज, पहले मैं जब आपकी आज्ञा से वन में जाकर रहा था तब वहाँ तीर्थयात्रा के प्रसङ्ग से वनों में घूमते-घूमते देवर्षि लोमश के दर्शन मुझे हुए थे। उन्हीं के अनुग्रह से मुझे अलौकिक ज्ञान और दिव्य दृष्टि प्राप्त हुई है।

धृतराष्ट्र ने कहा—हे धर्मराज! जो लोग इस युद्ध में मारे गये हैं उनमें जो अनाथ या सनाथ हैं, जिनका कोई संस्कर्ता नहीं है और जिनका अग्निहोत्र यहाँ नहीं है उनके शरीरों

को तो विधिपूर्वक भस्म करना होगा। बहुतों का क्रियाकर्म हम कैसे कर सकेंगे? जिन्हें सुपर्ण, गिद्ध आदि ने खींच-खींचकर नोच-नोचकर खा डाला है वे भी, दाहकर्म हो जाने पर, संकर्षण नामक लोकों को जायँगे, उनकी भी सद्गति होगी।

वैशम्पायन कहते हैं कि धृतराष्ट्र के यों कहने पर युधिष्ठिर ने दुर्योधन के पुरोहित सुधर्मा, अपने पुरोहित धौम्य, सञ्जय, महामति विदुर, युयुत्सु और इन्द्रसेन आदि भृत्यों तथा सूतों को आज्ञा दी कि तुम लोग सब मृत वीरों का दाहकर्म करवाओ। इन अनाथों के नाथ हमीं हैं। इससे ख़याल रक्खो कि किसी का शरीर नष्ट न होने पावे। हे जनमेजय! धर्मराज की आज्ञा से विदुर, सञ्जय, सुधर्मा, धौम्य और इन्द्रसेन आदि ने चन्दन, अगुरु, कालीयक, घृत, तेल, सुगन्धित पदार्थ और रेशमी बहुमूल्य वस्त्र लाकर जमा किये। फिर चन्दन की बहुमूल्य लकड़ियों के, टूटे हुए रथों के और विविध शस्त्रों के ढेर लगा करके अनेक चिताएँ बनाईं। इसके बाद सावधानता के साथ, शास्त्रोक्त विधि से, प्रधानता के अनुसार, मृत वीर राजाओं का दाहकर्म किया। चिताओं में आग लगाकर उनमें घी की धाराएँ डाली गईं। महाराज! राजराजेश्वर दुर्योधन, उनके सौ महारथी भाई, शल्य, शल, भूरिश्रवा, जयद्रथ, वीर अभिमन्यु, दुःशासन के पुत्र, लक्ष्मण, धृष्टकेतु, बृहन्त, सोमदत्त, महारथी सृञ्जयगण, क्षेमधन्वा, विराट, द्रुपद, शिखण्डी, धृष्टद्युम्न, युधामन्यु, उत्तमौजा, कोशलराज, द्रौपदी के पाँचों पुत्र, शकुनि, अचल, वृषक, भगदत्त, कर्ण और उनके पुत्र, केकय देश के राजकुमार, त्रिगर्त देश के राजा सुशर्मा और उनके अनुगामी महारथी संशप्तकगण, राक्षसेन्द्र घटोत्कच, बकासुर के भ्राता अलम्बुष, राजा जलसन्ध और अन्य असंख्य राजाओं का दाहकर्म किया गया। कुछ प्रधान लोग अलग-अलग चिताओं में जलाये गये और बहुत से वीर पुरुषों को, चिताओं पर ढेर लगाकर, एक साथ जला दिया गया। [उन असंख्य पुरुषों की अलग-अलग चिताएँ लगाना असम्भव था।] उस समय कुछ लोगों के पितृमेध (कर्म) होने लगे और वेदपाठी लोग साम-गान करने लगे। कुछ लोग मृत पुरुषों के लिए शोक प्रकट करने और रोने लगे। रात्रि के समय ऋग्वेद की ऋचाओं का, साम-गान का और स्त्रियों के रोने का शब्द दूर-दूर तक फैलकर लोगों को शोकाकुल करने लगा। मृत पुरुषों के स्वजन, उस शब्द को सुनकर, शोक से मूर्च्छित हो गये। चिताओं में जगह-जगह प्रज्वलित प्रचण्ड आग का उजेला फैल गया। चिताएँ देखने से जान पड़ता था कि आकाश में बादलों के बीच ग्रह चमक रहे हैं। अनेक देशों से आये हुए अनाथ वीरों को एकत्र करके, उनके चारों ओर लकड़ियाँ चुनकर, एक बहुत बड़ी चिता लगाई गई। विदुर ने, राजा युधिष्ठिर की आज्ञा से, ख़ूब घी आदि डलवाकर विधिपूर्वक उनका दाह कराया। सबका दाह हो जाने पर महात्मा युधिष्ठिर, धृतराष्ट्र को आगे करके, गङ्गातट की ओर चले।

छब्बीसवाँ अध्याय

गङ्गातट पर कुन्ती का यह कहकर कि कर्ण मेरा ही पुत्र था, युधिष्ठिर से कर्ण को भी तिलाञ्जलि देने के लिए कहना

वैशम्पायन ने कहा—राजन्, राजा धृतराष्ट्र और युधिष्ठिर आदि सबने पवित्र जलवाली भागीरथी के तट पर जाकर अपने कपड़े और गहने उतार डाले। गङ्गाजी का तट महावन के दृश्य से बहुत ही मनोहर था। वहाँ रो रही अत्यन्त दुःखित कौरवकुल की स्त्रियों ने अपने पिताओं, पतियों, पुत्रों, पौत्रों, भाइयों, ससुरों, जेठों, देवरों और अन्य भाई-बन्धुओं को तिलाञ्जलियाँ दीं। पुरुषों ने भी अपने सम्बन्धियों और आत्मीयों को यथाविधि जलदान किया। जिस समय वीर-पत्नियाँ तिलाञ्जलियाँ देने लगीं उस समय गङ्गाजी की धार कुछ उथली होकर फिर फैल गई। महासागर के तट के समान बहुत विस्तृत वह गङ्गातट, निरानन्द और उत्सवहीन होने पर भी, वीरपत्नियों के झुण्ड से शोभा को प्राप्त हो रहा था।

इसी समय शोक से पीड़ित कुन्ती रोकर, कुछ लज्जा के साथ, धीमे स्वर में युधिष्ठिर आदि से कहने लगीं—प्रिय पुत्रो! महारथियों के अग्रणी, वीर-लक्षणों से युक्त, जिस महाधनुर्द्धर को रण में अर्जुन ने मारा है, जिस अद्वितीय योद्धा को तुम राधा का पुत्र सूत-नन्दन जानते थे, जो सेना-दलों में सूर्य के समान शोभायमान था, जिस महाबली ने तुम सबसे लोहा लिया था और तुम्हारी सारी सेना का सामना किया था, जो दुर्योधन की सेना का सञ्चालन और पालन करता था, जिसके समान वीर्यसम्पन्न [और दानी] पृथ्वी पर दूसरा नहीं था, जो शूर सदा प्राण देकर भी कीर्त्ति कमाना चाहता था, जो सत्यसन्ध अक्लिष्ट-कर्मा था और जिसने कभी रण में पीठ नहीं दिखाई, वह अतिरथी कर्ण तुम्हारा ही बड़ा भाई था। वह सूर्य के द्वारा मुझसे उत्पन्न हुआ था। वह शूर सूर्य के समान तेजस्वी देवतुल्य कर्ण गर्भ से ही कवच और कुण्डल पहने उत्पन्न हुआ था। तुम लोग अपने उस बड़े भाई को इस समय तिलाञ्जलि दो।

१०

महाराज, सब पाण्डव माता के मुँह से ये अप्रिय वचन सुनकर कर्ण के लिए अत्यन्त शोकाकुल और अत्यन्त दुःखित हो उठे। उस समय वीर युधिष्ठिर दुःख के मारे साँप की तरह साँसें लेने लगे। वे माता से बोले—हे आर्ये! जो महारथी बाणों की लहरों से युक्त, ध्वजा के भँवर से दुर्गम और तल-शब्द-रूप गम्भीर गर्जन से भयानक, भुजा-रूप ग्राहों से अगम्य एक ऐसा कुण्ड थे, जिसमें बड़े-बड़े वीर डूब जाते थे, जिनके बाण को सहनेवाले एक अर्जुन ही थे, जिनके युद्ध में अर्जुन ही ठहर सकते थे, वे देवतुल्य कर्ण सूर्यदेव के द्वारा आपके गर्भ से कब और किस तरह उत्पन्न हुए थे? जिनके बाहुबल ने हमको बेचैन कर

रक्खा था उनको आपने इतने दिनों तक कैसे हम लोगों से छिपा रक्खा? उन्हें छिपाना तो वस्त्र से आग को छिपाने के समान असम्भव था! उनका तेज ही बता देता था कि वे सूतपुत्र नहीं हैं। जिनके बाहुबल का आश्रय पाकर ही दुर्योधन आदि ने हमसे वैर करने का साहस किया, [उन कर्ण को आपने पहले ही हमें हमारा बड़ा भाई बता दिया होता, तो यह घोर कौरवकुल का नाश क्यों होता?] उनके बाहुबल का सहारा कौरवों को वैसा ही था जैसे हम लोगों को गाण्डीवधन्वा अर्जुन के बल का भरोसा था। महारथी कुन्तीपुत्र कर्ण के सिवा किसमें शक्ति थी कि अकेले सब क्षत्रियों के तेज और वेग को व्यर्थ करके उनका संहार करता? शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ अद्भुत पराक्रमी कर्ण आपके गर्भ से कब उत्पन्न हुए थे? हाय, आपने यह बात छिपाकर हमें चौपट कर दिया! कर्ण की मृत्यु से इस समय मुझे और मेरे भाइयों को असह्य शोक हो रहा है। अभिमन्यु की मृत्यु, द्रौपदी के पुत्रों का नाश, पाञ्चालों का सत्यानाश और कौरवों का संहार मुझे इतना नहीं खला! कर्ण को भाई जानकर उनकी मृत्यु से मुझे इस समय उन दुःखों से सौगुना दुःख हो रहा है। मैं मानों आग में जल रहा हूँ। कर्ण का शोक मुझे कभी न भूलेगा। यदि मैं पहले कर्ण को अपना भाई जान लेता तो उनसे क्षमा-प्रार्थना करके उनका अनुगामी हो जाता, और तब हमारे लिए स्वर्ग की वस्तु भी दुर्लभ न होती। दुर्योधन भी हमसे विरोध करने का साहस न करता और इस तरह महायुद्ध में कौरवकुल का संहार भी न होता! २०

इस तरह देर तक बारम्बार विलाप करके रोते-रोते धर्मराज ने कर्ण को तिलाञ्जलि दी। उस समय आसपास खड़ी हुई स्त्रियाँ कर्ण के लिए शोक करके रोने लगीं। अब भाई के प्रेम से युधिष्ठिर ने कर्ण की स्त्रियों और बहुओं को वहाँ बुला लिया। उन स्त्रियों के साथ युधिष्ठिर ने भाई कर्ण का प्रेतकृत्य विधिपूर्वक किया।

उस समय धर्मराज ने स्त्री-जाति को यह शाप दिया कि मैंने माता के छिपाने से ही बड़े भाई को मारने का महापातक कर डाला, इसलिए आज से स्त्रियाँ किसी बात को मन में छिपा नहीं सकेंगी। अब युधिष्ठिर तिलाञ्जलि आदि देकर धृतराष्ट्र प्रमुख पुरुषों और स्त्रियों के साथ

३० गङ्गाजी के जल से बाहर निकले।

महर्षि वेदव्यास-प्रणीत

महाभारत का अनुवाद

शान्तिपर्व

पहला अध्याय

पाण्डवों के पास ऋषियों का आगमन और शोक-सन्तप्त युधिष्ठिर की नारदजी से बातचीत

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥

वैशम्पायन ने कहा—राजन् ! पाँचों पाण्डव, विदुर, धृतराष्ट्र और सब क्षत्रिय-स्त्रियों ने गङ्गा-किनारे अपने प्रिय सम्बन्धियों का जल-दान आदि के द्वारा तर्पण किया। पाण्डव अपनी शुद्धि के लिए एक महीने तक नगर के बाहर ही रहे। तर्पण आदि से युधिष्ठिर के निवृत्त हो जाने पर अपने-अपने शिष्यों सहित व्यासदेव, नारद, देवल, देवस्थान, कण्व, मित्र, महर्षि तथा वेदों के जाननेवाले अन्य बुद्धिमान् साधु ब्राह्मण, गृहस्थ और स्नातकों ने वहाँ आकर युधिष्ठिर के दर्शन किये। युधिष्ठिर ने उन सबका विधिपूर्वक यथायोग्य आदर-सत्कार किया। महर्षि लोग उस समय के योग्य आदर-सत्कार पाकर, धर्मराज युधिष्ठिर के आसपास, बढ़िया आसनों पर बैठ गये और शोक से व्याकुल युधिष्ठिर को समझाने लगे। व्यासदेव आदि मुनियों से बातचीत हो चुकने पर नारदजी ने कहा—धर्मराज ! तुमने अपनी भुजाओं के बल से और श्रीकृष्णचन्द्र की कृपा से धर्मपूर्वक सारी पृथिवी को जीत लिया। संसार को भयभीत करने- १० वाले इस महायुद्ध में तुम सौभाग्य से विजयी हुए हो। क्षत्रियधर्म का पालन करते हुए

अब तुम प्रसन्न तो रहते हो? शत्रुओं को मारकर तुम मित्रों को प्रसन्न तो रखते हो? राज्यश्री को पाकर तुम्हें किसी तरह का शोक तो नहीं है?

युधिष्ठिर ने कहा—भगवन्! मैंने श्रीकृष्ण, भीमसेन और अर्जुन के बाहुबल तथा ब्राह्मणों की कृपा से इस पृथिवी को तो जीत लिया; किन्तु मुझे सदा बड़ा दुःख बना रहता है। मैंने राज्य के लोभ से सुभद्रा और द्रौपदी के प्रिय पुत्रों को मरवाकर तथा वंश का नाश करके जो यह विजय प्राप्त की है वह मुझे पराजय के समान मालूम होती है। जब श्रीकृष्ण यहाँ से द्वारका को जायँगे तब सुभद्रा उनसे क्या कहेगी? हमारा हित चाहनेवाली द्रौपदी अपने पुत्रों और भाइयों के मारे जाने से दुःखित होकर मुझको और भी पीड़ित कर रही है। भगवन्! इसके सिवा माता कुन्ती ने एक बात गुप्त रखकर मुझे और भी दुखी कर दिया है। आप भी उसे सुन लीजिए। कर्ण इस संसार में दस हज़ार हाथियों का पराक्रम रखनेवाला, युद्ध में अद्वितीय योद्धा, रणभूमि में सिंह के समान गर्व के साथ चलनेवाला, बुद्धिमान्, विवेकी, दानी, दृढ़व्रत, धृतराष्ट्र के पुत्रों का एकमात्र आश्रय, अभिमानी, तेजस्वी, स्वाधीनता-प्रेमी, युद्ध के समय क्रोध करनेवाला, प्रत्येक युद्ध में हम लोगों की रण-कुशलता का अनादर करनेवाला, युद्ध में शीघ्रता
२० के साथ अस्त्र-शस्त्रों को चलानेवाला, विचित्र वीर और अद्भुत प्रतापी था। गुप्त रूप से पैदा हुआ वह महाबली कर्ण कुन्ती का पुत्र और हमारा ज्येष्ठ भाई था। तर्पण करते समय माता ने उसको सूर्य का पुत्र कहा। इस गुणी पुत्र को पैदा होते ही माता कुन्ती ने पिटारी में रखकर गङ्गाजी में बहा दिया था। जिस कर्ण को सब लोग सूतपुत्र और राधा का बेटा जानते थे वह असल में कुन्ती का ज्येष्ठ पुत्र हम पाण्डवों का भाई था। राज्य के लोभ से मैंने सगे भाई को मरवा डाला। जिस तरह रुई के ढेर को आग जला देती है उसी तरह यह शोक मेरे शरीर को जला रहा है। अर्जुन ने भी उस भाई को नहीं पहचाना। भीमसेन, नकुल, सहदेव और मैंने भी नहीं जाना कि वह हमारा भाई है। इसी प्रकार उस व्रतधारी कर्ण ने भी हम लोगों को नहीं पहचाना था। मैंने सुना है कि हम लोगों में शान्ति कराने की इच्छा से कुन्ती ने उसके पास जाकर कहा कि तुम मेरे पुत्र और पाण्डवों के भाई हो, इसलिए आपस में युद्ध न करो। किन्तु उस वीर ने कुन्ती का कहना नहीं माना। यह भी सुना है कि कर्ण ने माता को यह उत्तर दिया कि मैं अब युद्ध के समय दुर्योधन को नहीं छोड़ सकता। यदि इस अवसर पर मैं दुर्योधन को छोड़ दूँ तो संसार मुझको अनार्य, क्रूर और कृतघ्न कहेगा, और तुम्हारे कहने से यदि मैं युधिष्ठिर के पक्ष में आ जाऊँ तो लोग समझेंगे कि मैं युद्ध में अर्जुन से डर गया। अन्त में कर्ण ने यह भी कहा था कि युद्ध में कृष्ण सहित अर्जुन को जीत करके फिर मैं
३० युधिष्ठिर से सन्धि करूँगा। कर्ण की इन बातों को सुनकर माता ने फिर उससे कहा—हे कर्ण! तुम केवल अर्जुन के साथ युद्ध करना। मेरे अन्य चार पुत्रों को अभय-दान दो।

बुद्धिमान् कर्ण ने काँपती हुई माता से हाथ जोड़कर कहा—माता ! मेरे बाणों की मार के भीतर आने पर भी तुम्हारे चारों पुत्रों को मैं न मारूँगा। मैं अर्जुन के हाथ से मारा जाऊँगा तो अर्जुन जीते रहेंगे और अर्जुन मारे जायँगे तो मैं जीवित रहूँगा। सारांश यह कि तुम्हारे पाँच ही पुत्र जीवित रहेंगे। 'अपने जिन भाइयों का तुम भला चाहते हो उनके कल्याण का उपाय करो', यह कहकर पुत्रों का हित चाहनेवाली माता कुन्ती कर्ण के पास से घर लौट आई।

हे महर्षे ! उन्हीं सगे भाई वीराग्रणी कर्ण को भाई अर्जुन ने मार डाला। भगवन् ! कुन्ती और कर्ण का यह वृत्तान्त अभी तक गुप्त ही था। इतने दिनों के बाद माता के कहने से यह वृत्तान्त मुझे मालूम हुआ, इसलिए मुझ बन्धु-घातक का हृदय शोक से विदीर्ण हो रहा है। हा, कर्ण और अर्जुन की सहायता से मैं इन्द्र को भी जीत सकता था। कौरवों की सभा में धृतराष्ट्र के पुत्रों की दुष्टता से उत्पन्न हुआ क्रोध कर्ण को देखकर सहसा शान्त हो जाता था। सभा में जुआ खेलते समय जब मैं दुर्योधन के हितैषी कर्ण के कटु और रूखे वचनों को सुनता था तब उनके चरणों को देखकर मेरा क्रोध शान्त हो जाता था। कुन्ती के पैरों के समान ४० कर्ण के पैर थे, इस समानता का कारण जानने की इच्छा रखता हुआ भी मैं किसी तरह पता न लगा सका। युद्ध के समय पृथिवी में उनके रथ का पहिया क्यों धँस गया ? उनको किसका शाप था ? मैं सब हाल ठीक-ठीक सुनना चाहता हूँ, कृपा कर इसका वर्णन कीजिए। संसार की सभी बातें आप जानते हैं। ४४

दूसरा अध्याय

कर्ण को ब्राह्मण का शाप

वैशम्पायन ने कहा कि राजन् ! युधिष्ठिर के प्रार्थना करने पर कर्ण के शाप का पूरा-पूरा हाल नारद कहने लगे—हे धर्मराज ! सच कहते हो, युद्ध में कर्ण और अर्जुन के लिए कुछ भी असाध्य नहीं था। कर्ण का पूर्व वृत्तान्त सुनो। यह हाल देवता भी नहीं जानते। संग्राम में मारे जाने से क्षत्रियों को स्वर्ग प्राप्त होता है, इसी कारण कुमारी कुन्ती के गर्भ से कर्ण का जन्म हुआ। बालकपन में सूतपुत्र कहलाकर कर्ण ने गुरु द्रोणाचार्य से धनुर्विद्या सीखी। भीमसेन का बल, अर्जुन की फुर्ती, तुम्हारी बुद्धि, नकुल और सहदेव की नम्रता, श्रीकृष्ण और अर्जुन की मित्रता तथा तुम लोगों पर प्रजा का अनुराग देखकर कर्ण बहुत जलता था। उसने बाल्यकाल में दुर्योधन से मित्रता की थी और तुम लोगों से उसको स्वाभाविक द्वेष था। अर्जुन को धनुर्विद्या में सबसे बढ़ा हुआ देखकर कर्ण ने एकान्त में द्रोणाचार्य के पास जाकर कहा—भगवन् ! मैं ब्रह्मास्त्र को उसके प्रयोग और संहार समेत सीखना चाहता हूँ, कृपा कर मुझे सिखा

१० दीजिए। मेरी इच्छा अर्जुन के समान योद्धा बनने की है। पुत्र तथा शिष्यों पर आपका समान प्रेम है। अस्त्रविद्या के जानकार लोग मुझे आपकी कृपा से इस विद्या का अनभिज्ञ न कहें। ये बातें सुनकर और अर्जुन के प्रति कर्ण के दुर्विचार को समझकर द्रोणाचार्य ने कहा—व्रतधारी ब्राह्मण और तपस्वी क्षत्रिय के सिवा दूसरा कोई इस विद्या का अधिकारी नहीं है। यह सुनकर और उनका यथोचित सत्कार करके कर्ण महेन्द्र पर्वत पर परशुरामजी के पास चला गया। वहाँ परशुरामजी को प्रणाम कर कर्ण ने अपने आपको भृगुवंशी ब्राह्मण बतलाया। परशुरामजी ने कर्ण का स्वागत किया और गोत्र आदि पूछकर प्रेमपूर्वक उसे अपना शिष्य बना लिया। स्वर्ग के समान महेन्द्र पर्वत पर रहकर कर्ण ने परशुरामजी से अस्त्र-शस्त्र-विद्या सीख ली। वहाँ कर्ण का गन्धर्व, राक्षस, यक्ष और देवताओं से मेल-जोल हो गया। कर्ण धीरे-धीरे उनका अत्यन्त प्रिय हो गया।

एक बार कर्ण तलवार और धनुष लिये आश्रम के पास समुद्र के किनारे घूम रहा था। २० उसने बेसमझे एक वेदज्ञ अग्निहोत्री ब्राह्मण की होमधेनु को व्यर्थ ही मार डाला। मरी हुई गाय देखकर, अपना अपराध जताने के लिए, ब्राह्मण के पास जाकर उसने नम्रता से कहा—भगवन्, मैंने अनजाने आपकी गाय को मार डाला है। कृपा कर मेरे इस अपराध को क्षमा कीजिए।

ब्राह्मण ने कर्ण की बातें सुन, क्रोधित हो, डाँटकर कहा—दुष्ट! तू मार डालने योग्य है, तुझे इस दुष्कर्म का फल अवश्य मिलेगा। तू जिससे हमेशा लाग-डाँट रखता है और जिसको जीतने के लिए नित्य चेष्टा करता है, उसी से युद्ध करते समय तेरे रथ का पहिया पृथिवी में धँस जायगा। उसी समय शत्रु तुझे मार डालेगा। हे नराधम! तू चला जा, जिस तरह उन्मत्त होकर तूने मेरी गाय को मारा है उसी तरह तुझ उन्मत्त के सिर को शत्रु काटकर गिरा देगा।

यह शाप सुनकर कर्ण ने धन, रत्न और गोदान आदि से ब्राह्मण को प्रसन्न करना चाहा; किन्तु वह ब्राह्मण किसी तरह शान्त न हुआ। उसने कर्ण से कहा कि मेरे वचन मिथ्या नहीं हो सकते। अब जो इच्छा हो सो करो। चाहे यहाँ रहो चाहे चले जाओ। यह सुनकर कर्ण दुःखित हो, सिर झुकाकर, वहाँ से चल दिया और शाप की बातों को सोचता २९ हुआ परशुरामजी के पास लौट आया।

तीसरा अध्याय

कर्ण को परशुरामजी का शाप

नारद ने कहा—महाराज! तपस्वी परशुरामजी ने कर्ण के बाहु-बल, नम्रता, शान्ति और गुरु-सेवा से सन्तुष्ट होकर उसको सम्पूर्ण ब्रह्मास्त्र-विद्या सिखला दी। पराक्रमी कर्ण, अस्त्र-विद्या

सीखकर, गुरु के आश्रम में रहता हुआ धनुर्वेद का अभ्यास बढ़ाने लगा। परशुरामजी एक दिन आश्रम के समीप कर्ण के साथ टहल रहे थे। उस दिन उपवास के कारण वे कुछ सुस्त थे, इसलिए थककर कर्ण की गोद में सिर रखकर सो गये। उसी समय रक्त मांस आदि खानेवाला और तेज़ काटनेवाला एक कीड़ा आकर कर्ण की जाँघ में काटने लगा। गुरु की नींद टूट जाने के डर से कर्ण न तो उस कीड़े को भगा सका और न मार ही सका। उस असहनीय वेदना को सहता हुआ कर्ण धैर्य से विना हिले-डुले गुरु का सिर गोद में रक्खे बैठा रहा। कुछ देर बाद कर्ण की जाँघ से निकला हुआ रक्त परशुरामजी के शरीर में लगा, इससे उनकी नींद टूट गई। उन्होंने घबराकर कर्ण से कहा—अरे, हम अशुद्ध हो गये। तुम यह क्या करते हो? निडर होकर ठीक-ठीक कहो। कर्ण ने कीड़े के काटने का सब हाल बतला दिया और परशुरामजी ने भी सुअर के जैसे उस कीड़े को देख लिया। वह कीड़ा अलर्क जाति का था। उसके आठ पैर, शरीर पर सुई के से रोंगटे और पैनी दाढ़ें थीं। परशुरामजी के देखते ही वह कीड़ा उसी जगह मर गया। उसी समय आकाश में काले रङ्ग का, लाल गलेवाला, एक विशाल राक्षस देख पड़ा। उसने हाथ जोड़कर कहा—हे भृगु-नन्दन, आपका भला हो; आपकी कृपा से मैं नरक से छुटकारा पाकर अपने स्थान को जाता हूँ। आपको प्रणाम है। आपने मेरे साथ बड़ा उपकार किया है। यह सुनकर तेजस्वी परशुरामजी ने पूछा—तुम कौन हो और किस कारण नरक में गिरे थे? उसने कहा—मैं सतयुग में दंश नाम का राक्षस था। मैं आपके पितामह भृगु महाराज का समवयस्क था। मैंने उन महात्मा की प्रियतमा स्त्री को छीन लिया था। इससे नाराज़ होकर उन्होंने मुझे शाप दिया कि हे दुष्ट, तू कीड़ा होकर नरक में गिर और मूत्र, कफ आदि खाया कर। उनके शाप से कीड़ा होकर मैं पृथिवी में गिर पड़ा। शाप से मुक्त होने के लिए मैं उनकी प्रार्थना करने लगा। दयालु महर्षि ने मेरी प्रार्थना सुनकर कहा कि मेरे वंश में परशुराम उत्पन्न होंगे। उन्हीं से तेरी मुक्ति होगी। भगवन्! उन महर्षि के शाप से मेरी यह दुर्गति हुई थी। किन्तु अब आपकी कृपा से इस पापयोनि से मेरा छुटकारा हो गया। वह राक्षस परशुरामजी को प्रणाम करके चला गया।

१०

२०

इधर परशुरामजी ने क्रुद्ध होकर कर्ण से कहा—मूर्ख, ब्राह्मण कभी ऐसा कठिन दुःख नहीं सह सकता। यह धैर्य तो क्षत्रियों में होता है। सच बतला, तू कौन है? तब शाप से डरकर, गुरु को प्रसन्न करता हुआ, कर्ण कहने लगा—हे भृगु-नन्दन, मैं न तो ब्राह्मण हूँ और न क्षत्रिय। मैं तो सूत का पुत्र हूँ। राधा मेरी माता है और सब लोग मुझे कर्ण कहते हैं। वेद और विद्या के शिक्षक गुरु पिता के तुल्य होते हैं, इस कारण अस्त्र-विद्या के लोभ से मैंने अपने को भृगुवंशी ब्राह्मण बतलाया था। कृपा कर मेरे इस अपराध को क्षमा कीजिए। इस प्रकार बड़ी दीनता के साथ कर्ण हाथ जोड़कर काँपता हुआ पृथिवी पर गिर पड़ा। यह दशा देख परशुरामजी ने क्रुद्ध भाव से, किन्तु मुसकराते हुए, कहा—सूत-पुत्र! तू अस्त्र सीखने के लोभ से ३० भूठ बोला है इसलिए यह ब्रह्मास्त्र, अर्जुन आदि अपने समान वीरों के साथ युद्ध करते हुए, ब्राह्मण न होने के कारण, मरने के समय तुझे भूल जायगा। इस समय तू चला जा, यहाँ भूठ बोलनेवाले के लिए जगह नहीं है। जो हो, फिर भी रणभूमि में तेरे समान कोई भी क्षत्रिय वीर युद्ध करनेवाला न होगा। तब परशुरामजी को प्रणाम करके कर्ण वहाँ से चल दिया। दुर्योधन ३३ के पास आकर उसने कहा कि मैं सब अस्त्र-शस्त्र-विद्या सीखकर अद्वितीय योद्धा हो गया हूँ।

चौथा अध्याय

दुर्योधन का स्वयंवर से कलिङ्ग देश के राजा चित्राङ्गद की कन्या को ले भागना

नारद ने कहा—महाराज! इस तरह परशुरामजी से अस्त्र-विद्या सीखकर कर्ण दुर्योधन के साथ प्रसन्नता से रहने लगा। कुछ दिनों बाद कलिङ्ग देश के राजा चित्राङ्गद के राजपुर नगर में, राजकन्या के स्वयंवर में, देश-देश के सैकड़ों राजा एकत्र हुए। स्वयंवर-समाचार सुनकर दुर्योधन भी कर्ण के साथ, सुन्दर सुनहले रथ पर सवार होकर, वहाँ गया। वहाँ राजकुमारी को प्राप्त करने के लिए शिशुपाल, जरासन्ध, भीष्मक, वक्र, कपोतरोमा, नील, रुक्मी, स्त्री-राज्याधिकारी शृगाल, अशोक, शतधन्वा, भोज और वीर आदि राजा आये थे। इनके सिवा दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशा के राजा तथा म्लेच्छाचार्य भी सोने के बाजू-जोशन पहने हुए सुन्दर स्वरूपवाले व्याघ्र के समान बलवान् वहाँ आ पहुँचे। स्वयंवर-सभा में इन राजाओं के उपस्थित होने पर १० राजकन्या, धाय और खोजों के साथ, आई। राजाओं का नाम और परिचय सुनती हुई वह दुर्योधन के सामने होकर आगे बढ़ी। यह अपमान दुर्योधन से न सहा गया। उसने उपस्थित राजाओं की कुछ परवा न कर राजकन्या को रोक लिया। भीष्म और द्रोण के बल से उन्मत्त दुर्योधन बलपूर्वक कन्या का हरण करके उसे रथ पर बैठाकर चल दिया। रथ पर सवार कर्ण हाथ में तलवार लिये उसके पीछे-पीछे चला। यह देखकर राजाओं में बड़ा कोलाहल मच गया। सब के सब क्रुद्ध हो, कवच पहनकर, रथ पर सवार हो लड़ने के लिए दौड़ पड़े। जिस

तरह बादल दो पर्वतों पर पानी बरसाते हैं उसी तरह कर्ण और दुर्योधन पर राजाओं ने बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी; किन्तु कर्ण ने फुर्ती से एक-एक बाण से उन सब के धनुषों और बाणों को काटकर गिरा दिया। तब वे राजा लोग व्याकुल होकर अपने धनुष-बाण और शक्ति आदि सँभालने लगे। सारथियों के मारे जाने से स्वयं घोड़ों को हाँकते और बचाओ-बचाओ कहते हुए युद्ध छोड़कर सब राजा भाग गये। कर्ण की सहायता से दुर्योधन राजकन्या को लेकर राजी-खुशी हस्तिनापुर वापस आया। २१

पाँचवाँ अध्याय

कर्ण को जरासन्ध से अङ्ग देश की राजधानी मालिनी नगरी का मिलना

नारद ने कहा—राजन्! कर्ण के बल की प्रशंसा सुनकर मगध देश के राजा जरासन्ध ने युद्ध के लिए उसको ललकारा। महाबली कर्ण तुरन्त युद्ध के लिए तैयार हो गया। दिव्यास्त्र जाननेवाले दोनों वीरों में घोर युद्ध हुआ। लड़ते-लड़ते दोनों वीरों के धनुष, बाण और तलवारें टूटकर पृथिवी पर गिर पड़ीं। तब दोनों में बाहु-युद्ध होने लगा। बाहु-युद्ध में कर्ण, 'जरा' राक्षसी से जोड़ी हुई, जरासन्ध की जाँघ की सन्धि को चीरने लगा। उसने अपने शरीर को टूटते हुए देखकर, वैरभाव छोड़कर, कर्ण से कहा कि मैं तुम से प्रसन्न हूँ। साथ ही उसने प्रसन्नता से मालिनी नामकी नगरी कर्ण को दे दी।

महाराज! कर्ण अङ्ग देश का राजा था और दुर्योधन की आज्ञा के अनुसार चम्पा नगरी का भी शासन करता था। यह तुमको मालूम ही है। इस तरह शस्त्रों के प्रताप से वह संसार में प्रसिद्ध हो गया। तुम्हारी भलाई के लिए इन्द्र ने कर्ण से उसके कुण्डल और कवच माँग लिये। देव-माया से मोहित कर्ण ने शरीर के साथ पैदा हुए कुण्डल और कवच इन्द्र को दे डाले। कुण्डलों और कवच के न रहने से युद्ध में, श्रीकृष्ण के सामने, अर्जुन ने उसे मार डाला। कर्ण असाधारण वीर था। रुद्र, इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर, द्रोण और कृपाचार्य से दिव्य अस्त्र पाकर अर्जुन बलवान कर्ण को मारने में समर्थ हुए हैं। यदि परशुरामजी, और होमधेनु के मारने से क्रुद्ध ब्राह्मण [illegible]

शाप न दे देते; यदि वह कुन्ती से अर्जुन के सिवा दूसरे किसी पाण्डव को न मारने की प्रतिज्ञा न कर लेता; यदि इन्द्र के जाल से और श्रीकृष्ण की नीति से वह वञ्चित न होता; यदि रथियों की संख्या करते समय अर्धरथी कहकर भीष्म उसका अनादर न करते और यदि युद्ध के समय कटु वचन कहकर शल्य उसके तेज को नष्ट न कर देते; तो सूर्य के समान प्रतापी तुम्हारा भाई कर्ण अर्जुन के हाथ कभी न मारा जाता। हे धर्मराज ! इस तरह शाप मिलने और बहुतों के
१५ द्वारा ठगे जाने से कर्ण युद्ध में मारा गया है। अतएव तुम उसके मरने का सोच न करो।

छठा अध्याय

युधिष्ठिर का स्त्रियों को शाप देना

वैशम्पायन ने कहा—महाराज ! अब देवर्षि नारद तो चुप हो गये; किन्तु कर्ण के मरने का स्मरण करके युधिष्ठिर, शोक से घबराकर, दीन भाव से रोने और साँप की तरह लम्बी साँस लेने लगे। उनकी यह दशा देखकर कुन्ती बहुत दुःखी हुईं और मीठे स्वर से, समयानुकूल वचनों के द्वारा, युधिष्ठिर को समझाने लगीं—पुत्र ! तुम बुद्धिमान् हो; शोक को छोड़कर मेरी बात सुनो। मैंने और मेरे सामने उसके पिता सूर्यदेव ने कर्ण को बहुत समझाया कि तुम पाण्डवों के भाई हो; तुम अपने छोटे भाइयों की रक्षा करो। सूर्यदेव ने स्वप्न में भी उसकी भलाई के लिए बहुत कुछ कहा। स्नेह के कारण मैंने भी कर्ण को बहुत समझाने का प्रयत्न किया; किन्तु हम दोनों को किसी तरह सफलता नहीं हुई। कर्ण तुमसे मेल करने को राज़ी तो हुआ नहीं, किन्तु धीरे-धीरे तुम लोगों से शत्रुता करने लगा। तब मैंने कर्ण को दुर्विनीत समझकर उसकी उपेक्षा कर दी।

यह कहते समय कुन्ती की आँखों में आँसू भर आये। माता के वचन सुनकर युधिष्ठिर
१० ने कहा—माता ! तुमने कर्ण के जन्म का हाल छिपाकर मुझे बहुत दुखी किया है, अतएव किसी लोक में कोई स्त्री किसी बात को छिपा न सकेगी। यह शाप शोक से व्याकुल तेजस्वी राजा युधिष्ठिर ने स्त्री-जाति को दे दिया। पुत्र-पौत्रों और बन्धु-बान्धवों आदि का स्मरण करते
१३ हुए, शोक से घबराकर, बुद्धिमान् युधिष्ठिर बिना धुएँ की आग की तरह जलने लगे।

सातवाँ अध्याय

युधिष्ठिर का पछतावा तथा राजसुखों के उपभोग में उदासीनता

वैशम्पायन ने कहा कि महाराज ! धर्मात्मा युधिष्ठिर कर्ण का स्मरण करके बार-बार रोते और लम्बी साँस खींचते हुए अर्जुन की ओर देखकर कहने लगे—अर्जुन ! कुटुम्ब का

नाश करने से हमारी यह दुर्दशा हुई है। यह तो सही नहीं जाती। यदि हम लोग यादव-नगर में भीख माँगने को तैयार हो जाते तो इन जातिवालों की हत्या करने से तो बच जाते। हमारे शत्रु नफ़े में रहे। कौरव हमारे आत्मीय थे, उनको मारकर हम लोगों ने आत्महत्या कर ली है। आत्मघाती होकर भला हमने कौन सा धर्म का फल भोगा? क्षत्रियों के धर्म, बल, पौरुष और क्रोध को धिक्कार है। इसी के प्रभाव से हमारी यह दुर्दशा हुई है। क्षमा, इन्द्रिय-संयम, शौच, वैराग्य, ईर्ष्या न करना, अहिंसा और सत्य सबसे बढ़कर हैं। वन में रहनेवाले सज्जन हमेशा इन गुणों का पालन करते हैं। राज्य के लोभ से मोह, पाखण्ड और अभिमान के वश हो जाने के कारण हमारी यह दुर्गति हुई है। जब पृथिवी की विजय को चाहनेवाले हमारे बन्धु-बान्धवों का नाश हो गया तब हमको तीनों लोकों का राज्य देकर भी कोई प्रसन्न नहीं कर सकता। हम लोग राज्य के लोभ से, अवध्य राजाओं को मारकर, बन्धुओं से हीन हो-कर जी रहे हैं। हम मांस-लोभी कुत्तों की तरह राज्य के लोभ से विपद्ग्रस्त हुए हैं। पहले हम लोग राज्य के लिए प्रार्थना करते थे, किन्तु इस समय हमें राज्य को छोड़ देना अच्छा मालूम होता है। हमारे जो भाई-बन्धु मारे गये हैं वे समस्त भूमण्डल, सोने की ढेरी, घोड़ों १० और गायों के लोभ से त्यागने योग्य नहीं थे। वे क्रोध और हर्ष से, मृत्यु-रूप वाहन पर सवार होकर, यमलोक को चले गये। पिता तप, ब्रह्मचर्य, सत्य और क्षमा आदि साधनों के द्वारा सत्पुत्रों के पाने की इच्छा करते हैं और माताएँ उपवास, यज्ञ, व्रत आदि शुभ कार्य करके गर्भ धारण करती हैं। वे दस महीने गर्भ के भार को सहतीं और यह सोचती रहती हैं कि पुत्र सकुशल पैदा हो और बहुत दिनों तक जीता रहे, बलवान् हो और सब जगह आदर पाकर इस लोक और परलोक में हम लोगों को सुखी करे। किन्तु हम लोगों ने इन वीरों को मारकर उनकी माताओं की सब लालसाओं को निष्फल कर दिया। अभागिनी माताओं के युवक पुत्रों ने संसार का सुख भोगे बिना ही, देवताओं और पितरों के ऋण से उऋण न होकर, शरीर त्याग दिया है। जब ये वीर कुछ करने लायक़ हुए और इनके माता-पिता को इनसे कुछ आशा हुई तभी ये लोग मारे गये। धन की इच्छा, खीझ, क्रोध और हर्ष से युक्त इन लोगों को जय के (या जय के) फल का कुछ भी भोग नहीं मिला। पाञ्चाल और कौरवगण परस्पर युद्ध करके २० मारे गये। यदि ये लोग युद्ध न करते तो अवश्य अपने कर्मों के अनुसार संसार का फल भोगते। उनकी मौत का कारण हमीं लोग हैं और यह सब दोष धृतराष्ट्र के पुत्रों पर पड़ेगा। दुर्योधन सदैव हमें ठगने की धुन में लगा रहा; वह मायावी हम निरपराध लोगों से द्वेष रखता था। उस समय न तो हमारा काम सिद्ध हुआ और न धृतराष्ट्र के पुत्रों का ही मनोरथ सफल हुआ। हम लोगों ने न उनको जीता और न वे हमको जीत सके। हमारी ईर्ष्या से उनके पुत्र ही लोग संसार का सुख नहीं पा सके। उन्होंने स्त्रियों के साथ रमण, गान-वाद्य का श्रवण, धन का दान

और उपार्जन नहीं किया; मन्त्रियों, मित्रों और पण्डितों के वचन नहीं सुने। शकुनि से हमारी उन्नति का हाल सुनकर धृतराष्ट्र सूख गये; हमसे द्वेष रखने के कारण उन्हें सुख नहीं मिला। उन्होंने दुर्योधन की नीति को समझकर भी पुत्रों के स्नेह से विदुर और भीष्म का कहना नहीं माना और पुत्रों की चालाकी का अनुमोदन किया। वे दुर्योधन को हम लोगों की तरह सुखी बनाने का विचार दिन-रात करते थे। राज्य के लोभी बुरे इरादेवाले स्वेच्छाचारी दुर्योधन को न रोककर धृतराष्ट्र आज हमारी तरह अपना सर्वनाश कर बैठे। अपने सगे भाइयों को मरवा डालने और बूढ़े माता-पिता को शोक-ग्रस्त करने से दुर्योधन बे-तरह बदनाम हुआ। सन्धि कराने के लिए जब श्रीकृष्ण उसके पास गये थे तब युद्ध की इच्छा से उस दुष्ट ३१ ने उनसे जो कहा था वह क्या कोई कुलीन मनुष्य अपने सुहृदों के लिए कह सकता है? यद्यपि इस समय सूर्य्य के समान हमारा तेज दसों दिशाओं में फैल रहा है किन्तु अपने (अर्थात् दुर्योधन के) दोष से ही हम सब नष्ट हुए। हमारा प्रबल शत्रु दुर्योधन मारा गया। इसी दुष्ट के दोष से कौरव-वंश का नाश हुआ और न मारने योग्य कुटुम्बियों को मारकर हम लोग समाज में निन्दनीय हुए।

कुलनाशक दुर्बुद्धि दुर्योधन को राज्य का मालिक बना देने से ही धृतराष्ट्र इस समय शोक से व्याकुल हो रहे हैं। उनकी ओर के सब वीर मारे गये। धृतराष्ट्र को पाप लगा और उनके हाथ से राज्य भी निकल गया। शत्रुओं के मारे जाने से हमारा क्रोध निकल गया इसलिए अब हमें शान्त होना चाहिए, किन्तु अभी तक शोक पीछा नहीं छोड़ता। हे अर्जुन! किया हुआ पाप कहने, भले काम करने, रोने-धोने, दान, तप, शान्ति, तीर्थयात्रा करने, श्रुति-स्मृति पढ़ने और जप करने से नष्ट होता है। त्यागशील मनुष्य फिर पाप नहीं करता। वेद का वाक्य है कि त्यागी मनुष्य को जन्म-मरण का दुःख नहीं सहना पड़ता; वह मोक्ष-मार्ग पर चलकर ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है। अतएव अब हम मुनियों की वृत्ति धारण करके वन ४० को चले जायँगे। मालूम होता है, संसार में त्यागी हुए बिना कभी सम्पूर्ण धर्म की प्राप्ति नहीं हो सकती। हमने राज्य के लोभ से ही पाप किया है। जो हो, इस समय त्याग करने से ही हम लोगों को फिर जन्म न लेना पड़ेगा। वेद का यही मत है। इसलिए मैं राज्य और सुख को छोड़कर—दुःख और शोक से बचकर—वन को चला जाऊँगा। मुझे राज्य और भोग की चीज़ों की तनिक भी चाह नहीं। अब तुम बेखटके इस पृथिवी का अकण्टक राज्य ४४ करो। यह कहकर धर्मराज चुप हो रहे।

आठवाँ अध्याय

अर्जुन का युधिष्ठिर को समझाना

वैशम्पायन ने कहा कि महाराज ! धर्मराज की बातें सुनकर अर्जुन को क्रोध आ गया। अपने उग्र रूप को दिखलाकर, क्रोध से होंठों को चबाते हुए, वे कहने लगे—आपके दुःख, दैन्य तथा विकलता के लिए आश्चर्य है; क्योंकि आप शत्रुओं को मारकर, धर्म से पृथिवी प्राप्त करके उसे अपने अविवेक के कारण छोड़ रहे हैं। नामर्द या आलसी मनुष्य को कभी राज्य नहीं मिलता। आपने क्रोध में आकर राजाओं को क्यों मारा ? जो मनुष्य निरा अभागा है, जो किसी समाज में गिने जाने योग्य नहीं और जिसके पुत्र, स्त्री तथा पशु आदि कुछ भी नहीं है वही भीख माँगकर जीवन बिताता है। यदि आप सम्पत्तिशाली राज्य को छोड़कर नीचों की तरह भीख माँगकर गुज़र करेंगे तो संसार आपको क्या कहेगा ? अभागे मनुष्य की तरह ऐश्वर्य का भोग छोड़कर उद्यम-रहित हो भीख माँगकर जीने की इच्छा आप क्यों करते हैं ? क्षत्रियों के वंश में पैदा होकर, सम्पूर्ण भूमण्डल को जीतकर, धर्म और अर्थ का त्याग करना और वन को चला जाना निरी मूर्खता है। यदि आप यज्ञ-याग को त्यागकर चल देंगे तो दुर्जन मनुष्य उन्हें दूषित कर डालेंगे, अतएव इसका पाप आपको ही लगेगा। १० महाराज नहुष कह गये हैं कि संसार में निर्धन होना बहुत निन्दनीय है। निर्धन रहना मुनियों का ही काम है। राजाओं को कभी ऐसा न करना चाहिए, यह आप भी जानते हैं। संसार में धन से ही धर्म होता है। जिसका धन छीन लिया जाता है उसका धर्म भी छिन जाता है। राजन् ! जो हमारा धन छीन लेगा उसको हम कभी क्षमा नहीं कर सकते।

संसार में दरिद्रता से बढ़कर कोई दोष नहीं। हम देखते हैं कि पास रहनेवाले दरिद्र पर झूठ-मूठ दोष लगाये जाते हैं, इसलिए आप दरिद्र होने की इच्छा न कीजिए। दरिद्र मनुष्य पतित की तरह दुखी रहता है। संसार में दरिद्र और पतित के बीच कुछ भेद नहीं है। जिस तरह पहाड़ से नदियाँ निकलती हैं उसी तरह संसार के सब काम प्रचुर धन से सिद्ध होते हैं। धन से धर्म, काम और स्वर्ग मिलता है। धन के बिना मनुष्य का निर्वाह होना कठिन है। धनहीन अल्प-बुद्धि मनुष्य के सब काम वैसे ही चौपट हो जाते हैं जैसे ग्रीष्म ऋतु में छोटी नदियों का पानी सूख जाता है। संसार में जिसके पास धन है उसी के मित्र और भाई-बन्धु होते हैं; वही बड़ा आदमी और पण्डित कहलाता है। निर्धन मनुष्य धन पैदा करने में समर्थ नहीं होता। जिस तरह हाथियों के द्वारा हाथी मिलते हैं उसी तरह धन से ही धन मिलता है। धन से ही धर्म, काम, मोक्ष, हर्ष, क्रोध, शान्ति और शास्त्र-ज्ञान होता है। धन से कुल और धर्म की बढ़ती होती है। निर्धन मनुष्य न इस लोक में सुखी रहता है, और न परलोक २०

में। संसार में जो शरीर से दुर्बल है वह दुर्बल नहीं; वास्तव में दुर्बल तो वह है जिसके धन-दौलत, गाय, घोड़ा और नौकर-चाकर नहीं हैं तथा जो अतिथि-सेवा नहीं कर सकता।

देखिए, दैत्य लोग देवताओं के सजातीय हैं; किन्तु देवता उनको मारकर राज्य करते हैं। दूसरों को जीतकर उनका धन छीने बिना धर्म-कर्म कैसे हो सकता है? वेद में कहा है कि तीनों वेदों का पढ़ना, विद्वान् होना और धन का हरण करके यज्ञ करना चाहिए। देवता भी द्रोह करके स्वर्ग का राज्य करते हैं और अपने जातिवालों को मारकर आनन्द करते हैं। पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना और यज्ञ कराना उत्तम काम है। दूसरों का अपकार किये बिना धन-संग्रह ३० करते मैंने किसी को नहीं देखा। इसी से जैसे राजा दूसरों को जीतकर राज्य करते हैं और पुत्र पिता के धन का अधिकारी होता है वैसे ही हम लोग इस पृथिवी को जीतकर अधिकारी हुए हैं। ऐसा काम करना राजाओं के लिए धर्मसङ्गत है; वे लोग ऐसा करके स्वर्ग को जाते हैं। जिस तरह जल समुद्र से निकलकर सारे संसार में बरसता है उसी तरह धन राजाओं के यहाँ से निकलकर पृथिवी में फैल जाता है। पहले राजा दिलीप, नृग, नहुष, अम्बरीष और मान्धाता ने इस पृथिवी का भोग किया है। अब यह भोग करने के लिए आपको मिली है। अतएव आपको यज्ञ में सर्वस्व दान कर देना चाहिए। यह जानते हुए भी यदि आप यज्ञ न करें तो निस्सन्देह आपको पाप लगेगा। यदि राजा सर्वस्व दान करके अश्वमेध यज्ञ करे तो उसके अवभृथ (यज्ञान्त) स्नान के जल से प्रजा पवित्र होती है। यज्ञ के समान उत्तम कर्म नहीं है। विश्वरूप महादेवजी सर्वमेध महायज्ञ में सब प्राणियों के साथ आप भी आहुति बनकर हवन हो गये थे। सुना जाता है कि यज्ञरूप यह ऐश्वर्य का मार्ग अनादि और अनन्त है। यह महनीय दशाङ्ग (१ पशु, २ पत्नी-यजमान, ३ वेद, ४ ऋत्विज) यज्ञ सनातन है। ३७ आप सनातन कल्याण मार्ग को न छोड़ें।

नवाँ अध्याय

युधिष्ठिर का अर्जुन को उत्तर, त्यागमय वैराग्य की प्रशंसा

युधिष्ठिर ने कहा—अर्जुन! थोड़ी देर एकाग्र-चित्त होकर मेरी बातों पर विचार करोगे तो तुम इनको पसन्द करोगे। तुम्हारे कहने से क्या मैं सज्जन-सेवित मार्ग छोड़ दूँगा? कभी नहीं। मैं इस तुच्छ सुख को छोड़कर वन को चला जाऊँगा। तुम मुझसे पूछो कि तपस्वियों और महात्माओं के चलने के योग्य कल्याणकारी मार्ग कौन है। यदि तुम नहीं पूछते हो तो मैं बिना ही पूछे कहता हूँ, सुनो। मैं ग्राम्य सुख और ग्राम्य आचरणों को छोड़कर वन में घोर तप करता हुआ फल-मूल खाकर मृगों के साथ रहूँगा। मैं मिताहारी होकर, मृगछाला-वल्कल

और जटा धारण करके प्रातः और सायङ्काल की सन्ध्या करता हुआ ठीक समय पर हवन करूँगा। भूख, प्यास, परिश्रम, सरदी, गरमी और हवा के दुःख को सहकर घोर तप करके शरीर को सुखा दूँगा। वन में प्रसन्नता से रहनेवाले पशु-पक्षियों के मनोहर शब्द सुनूँगा; वन के वृक्षों और लताओं के फूल सूँघूँगा। तरह-तरह के वनचारियों को देखता हुआ मैं वानप्रस्थ मुनियों के दर्शन करूँगा। वन में रहनेवाले जीवों के साथ भी मैं कोई अपकार नहीं करूँगा, फिर भला गाँव में रहनेवालों के लिए क्या कहना है? एकान्त में रहकर सब विषयों पर विचार करूँगा। कच्चे-पक्के फल खाऊँगा और देवताओं तथा पितरों का फल-फूल, मधुर वचन तथा जल से तर्पण आदि करूँगा। इस तरह वनवासियों के कठिन नियमों का पालन करता हुआ इस शरीर को छोड़ देने की प्रतीक्षा करूँगा; अथवा सिर मुँड़ाकर, भीख माँगता हुआ अकेला एक वृक्ष के नीचे एक दिन से अधिक न ठहरकर मौन भाव से जीवन बिताऊँगा। मैं नष्ट और प्रिय-अप्रिय सब वस्तुओं को छोड़कर, भस्म लगाकर, वृक्षों के नीचे रहूँगा। कभी हर्ष-विषाद न करूँगा; निन्दा और स्तुति को समान समझूँगा। आशा-ममता को छोड़कर जड़ और अन्धे-बहरे की तरह सदा प्रसन्न रहूँगा। मैं किसी से कुछ न लूँगा; सदा प्रसन्नता से योग द्वारा आत्मा में मग्न रहूँगा। स्थावर-जङ्गम आदि चारों तरह के जीवों की हिंसा कभी न करूँगा। अपने धर्म में लगे हुए सब जीवों को अपने समान समझूँगा। न कभी किसी से नाराज़ हूँगा और न किसी की हँसी उड़ाऊँगा। इन्द्रियों को वश में रक्खूँगा और सदा प्रसन्न रहूँगा। बिना किसी से पूछे किसी एक मार्ग पर चलूँगा। किसी विशेष दिशा या देश को जाने की इच्छा न करूँगा। इस निरपेक्ष गमन में कभी पीछे फिरकर न देखूँगा। काम-क्रोध आदि को छोड़कर, अन्तर्मुख होकर, सूक्ष्म और स्थूल शरीर का अभिमान न करूँगा। स्वभाव सबके आगे चलता है, इसलिए भोजन अवश्य करना पड़ता है। स्वादिष्ट चीज़ मिले, चाहे थोड़ी मिले, उसकी मैं परवा न करूँगा। एक घर में भीख न पाने पर दूसरे घर में और वहाँ भी न मिलने पर तीसरे घर में माँगूँगा। यह क्रम सात घरों तक रक्खूँगा। [जिस दिन कहीं कुछ न मिलेगा उस दिन मैं भूखा रह जाऊँगा।] जिन गृहस्थों के घर में आग, धुआँ, बर्तनों की झनझनाहट और विघुस न देख-सुन पड़ें; जहाँ कूटा-काटी बन्द हो चुकी हो और सब लोग खा-पी चुके हों वहाँ एक ही समय में भीख माँगने जाऊँगा। मोह को छोड़कर मैं पृथिवी पर घूमूँगा। भिक्षा के मिलने या न मिलने पर समदर्शी रहूँगा। न तो जीने-मरने की इच्छा रखनेवालों का सा आचरण करूँगा और न जीने-मरने से हर्ष या विरोध ही करूँगा। एक मनुष्य मेरा एक हाथ काटने लगे और उसी समय दूसरा मनुष्य मेरे दूसरे हाथ में चन्दन लगाता हो तो मैं उन दोनों में किसी को भी बुरा-भला न कहूँगा। जीवित मनुष्य उन्नति के जिन कामों को करते हैं उनको छोड़कर मैं केवल शरीर धारण करूँगा। मैं किसी काम में लिप्त न रहूँगा। इन्द्रियों के सब काम छोड़

दूँगा। विषय-वासना को कभी मन में न आने दूँगा और आत्मा को पाप-कर्म से दूर रक्खूँगा। मोह-जाल को छोड़ दूँगा और वायु की तरह किसी के वश में न रहूँगा।

हे अर्जुन! मैं इस तरह विरक्त होकर बहुत सन्तुष्ट हूँगा। तृष्णा के वश होकर मैंने ३० घोर पाप किया है। बहुत लोग अपने सुख के लिए भले-बुरे काम करके कुटुम्ब का पालन करते और कार्य-कारण से मिली हुई सांसारिक आत्मीयता में फँसते हैं, किन्तु उनको मरने पर उन पापों का फल भोगना पड़ता है। रथ के पहिये की तरह यह संसार सदा घूमता रहता है, इसलिए कर्म में बँधा हुआ जीव अन्य जीवों से मिलता है। इस संसार में जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि और वेदना का झमेला है। जो मनुष्य ऐसे संसार को छोड़ सकता है वही सुखी है। देवताओं को स्वर्ग से और महर्षियों को अपने स्थान से गिरते देखकर कौन सूक्ष्मदर्शी मनुष्य संसार में रहने की इच्छा करेगा? एक बड़ा राजा अनेक प्रकार से साम, दाम और कपटचातुरी करके भी साधारण कारण—अनादर आदि—से ही साधारण राजाओं के हाथ मारा जाता है।

हे अर्जुन! यह बढ़िया ज्ञान मुझे बहुत दिनों बाद हुआ है। मैं इस ज्ञान को पाकर शाश्वत स्थान की इच्छा करता हूँ। इस तरह धैर्य से निर्भय मार्ग पर चलता हुआ जन्म, ३७ मृत्यु, जरा, व्याधि और वेदना से युक्त इस शरीर को छोड़ दूँगा।

दसवाँ अध्याय

युधिष्ठिर को भीमसेन का उत्तर तथा कर्तव्य कर्म के माहात्म्य का वर्णन

भीमसेन ने कहा—महाराज! आपकी यह बुद्धि अर्थ-ज्ञान से अपरिचित, सदा वेद रटनेवाले, वेदपाठी की सी है। यदि राजधर्म से द्वेष करके आलसी बनकर रहना था तो धृतराष्ट्र के बेटों को क्यों मरवाया? आपके सिवा क्षत्रिय-धर्म का पालन करनेवाला कोई मनुष्य मित्र पर भी क्षमा, दया और कृपा नहीं करता? यदि हम लोग पहले से ही आपकी इस बुद्धि को जानते कि हम लोगों को भीख माँगनी पड़ेगी तो हम लोग न तो शस्त्र उठाते और न किसी को मारते। ज़िन्दगी भर भीख माँगना निश्चित होता तो राजाओं के साथ ऐसा घोर युद्ध क्यों करते? पण्डित लोग स्थावर-जङ्गम सब जीवों को प्राणियों का भोजन बतलाते हैं। क्षत्रिय-धर्म के जानकारों का कहना है कि राज्य मिलने में बाधा डालनेवाले शत्रुओं को अवश्य मारना चाहिए। हम लोगों ने अपराधी शत्रुओं को मारकर राज्य पाया है, अतएव अब आप धर्म के अनुसार राज्य कीजिए। जैसे पानी चाहनेवाला मनुष्य कुआँ खोदकर पानी न पीवे, बल्कि देह में कीचड़ लगाकर लौट आवे; जैसे शहद की इच्छा १० करनेवाला मनुष्य बड़े वृक्ष पर चढ़कर और शहद निकालकर उसको खाये बिना मर जाय;

जैसे धनार्थी पुरुष बहुत दूर जाकर निराश होकर लौट आवे ; जैसे वीर पुरुष शत्रुओं को मारकर आत्महत्या कर ले ; जैसे भूखा आदमी भोजन पाकर न खाय और कामी पुरुष स्त्री पाकर भोग न करे; वैसे ही शत्रुओं को मारकर राज्य छोड़ देने से हम लोग भी होंगे। इस संसार में हम सब आपके बन्धु ही निन्दा के पात्र होंगे; क्योंकि हम लोग आपके सदृश राजधर्म से अपरिचित मूर्ख को अपना बड़ा भाई जानकर उसके पीछे चल रहे हैं। हम लोग बलवान् और विद्वान् होने पर भी नपुंसक के कहने में निर्बल की तरह रहते हैं, नहीं तो संसार में हमारी यह दुर्दशा और दरिद्रता क्यों होती ? वृद्ध, दुःखी, विपद्ग्रस्त और शत्रुओं से पराजित मनुष्य को ही विरक्त (संन्यासी) होना चाहिए। सूक्ष्मदर्शी बुद्धिमानों ने संसार के त्याग को धर्म-विरुद्ध बतलाया है। क्षत्रियों का जन्म हिंसा करने के लिए हुआ है। उस हिंसाधर्म और उसके प्रवर्तक की निन्दा करना क्षत्रियों को उचित नहीं। वेद के तात्पर्य को न जाननेवाले निर्धन मनुष्य क्षत्रियों को संन्यास लेना उचित बतला गये होंगे। झूठ-मूठ संन्यासी होकर जीवन बिताना उनके लिए कठिन है, इसी से वे बहुत जल्द मर जाते हैं। जो मनुष्य पुत्र, पौत्र, देवता, ऋषि, अतिथि और गुरुजनों का पालन-पोषण नहीं कर सकते वही वन में अकेले रहकर जीवन बिताते हैं। वन के मृगों, शूकरों और पक्षियों को स्वर्ग नहीं प्राप्त हुआ; अतएव वनवासी मनुष्य भी धर्म-कर्म से विमुख होकर स्वर्ग को नहीं जा सकते। यदि त्याग से ही सिद्धि प्राप्त होती तो पर्वत और वृक्ष भी सिद्ध हो जाते ; क्योंकि ये नित्य संन्यासी हैं, किसी को कष्ट नहीं देते, सदा से ब्रह्मचारी हैं और किसी से दान भी नहीं लेते। संसार में अपने भाग्य से ही सिद्धि मिलती है, दूसरे के भाग्य से कोई कभी सिद्ध नहीं हो सकता; अतएव सभी को कर्म करना चाहिए। कर्म के सिवा सिद्ध होने का और कोई उपाय नहीं है। यदि अपना पेट पालने से ही सिद्धि होती है तो जलजीव भी सिद्ध हो सकते हैं; क्योंकि उनको किसी का पालन-पोषण नहीं करना पड़ता। देखिए, संसार में सभी प्राणी अपने-अपने कर्म में लगे रहते हैं, इसलिए कर्म करना आवश्यक है। कर्महीन मनुष्य कभी सिद्धि नहीं पा सकता। २० २८

ग्यारहवाँ अध्याय

अर्जुन का युधिष्ठिर से संन्यासी ब्राह्मणों का इतिहास कहना

अर्जुन ने कहा—महाराज ! इस विषय में एक प्राचीन इतिहास कहता हूँ। यह तपस्वी ब्राह्मणों के साथ इन्द्र की बातचीत है। प्राचीन समय में बिना दाढ़ीवाले कुछ नव-युवक कुलीन ब्राह्मण, इधर-उधर घूमने को ही धर्म समझकर, ब्रह्मचारी के वेश में घर से निकल पड़े और वन में घूमने लगे। उन्होंने यह ठान लिया कि अब घर वापस नहीं जावेंगे। उनको यह दशा

देख इन्द्र को दया आई। उन्होंने सुनहरे पक्षी का रूप धरकर उनके पास आकर, कहा—विघसाशी* महापुरुषों ने जिस कर्म को किया है वह साधारण मनुष्यों के लिए बहुत कठिन है। वह कर्म पवित्र है, जीवन को उत्तम बनाता है और धर्मात्माओं ने उससे सिद्ध होकर सद्गति पाई है।

पक्षी की बातें सुनकर ऋषियों ने आपस में कहा कि देखिए, यह चिड़िया विघसाशियों की प्रशंसा करती है। हम लोग भी विघसाशी† हैं, अतएव निस्सन्देह यह हमारी प्रशंसा है।

पक्षी ने कहा—हे तापसो! मैं तुम्हारी प्रशंसा नहीं करता हूँ। तुम तो मैले-कुचैले, रजोगुणी, जूठा खानेवाले और मूर्ख हो। तुम विघसाशी नहीं हो सकते। विघसाशी तो और ही हैं।

ऋषियों ने कहा—हे पक्षी! हम लोगों ने इसी को उत्तम धर्म समझकर ऐसा किया है। यदि इससे अच्छा कोई धर्म हो तो बतलाओ। हम तुम्हारी बात पर विश्वास करेंगे।

पक्षी ने कहा—हे तपस्वियो, जो तुम अपने में तथा मुझमें द्वैतभाव की कल्पना कर सन्देह नहीं करते हो तो मैं तुम्हारे हित की बात बतलाऊँगा।

ऋषियों ने कहा—धर्मात्मन्! ऐसा कोई मार्ग नहीं जिसे तुम नहीं जानते। अतएव १० तुम्हारी बात सुनकर उसी के अनुसार हम चलेंगे। हमको उपदेश करो।

पक्षी ने कहा—चौपायों में गाय, धातुओं में सोना, शब्दों में मन्त्र और मनुष्यों में ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं। ब्राह्मणों के जन्म से लेकर मरने तक वेद-मन्त्रों से संस्कार होते हैं। वैदिक कर्म करने से ही उनको स्वर्ग मिलता है। तब फिर हमारे लिए सब कर्म मन्त्रसिद्ध क्यों किये? मतलब यह कि स्वर्ग हमारे लिए भी प्राप्य है। जो मनुष्य दृढ़ विश्वास से जिस देवता की आराधना, ईश्वर समझकर, करता है वह मरने पर उसी देवता का लोक पाता है। उसके लिए यही सिद्धि है। सिद्ध होने की इच्छा सभी करते हैं, किन्तु कर्म के त्याग से कभी सिद्धि नहीं मिल सकती। इसी से कर्म करने के लिए गृहस्थाश्रम सबसे बढ़कर पवित्र और श्रेष्ठ है। जो मनुष्य कर्म की निन्दा करके कुमार्ग पर चलता है वह निरा मूर्ख, अर्थ-हीन और पापी है। जो मनुष्य अविनाशी देवलोक, पितृलोक और ब्रह्मलोक की प्राप्ति का मार्ग छोड़ देते हैं वे मरने पर कीट-योनि में जन्म पाते हैं। गृहस्थी में रहकर पवित्र कर्म करना ही सच्चा तप है, इसलिए तुम लोग भी यही सच्चा तप करो। प्रतिदिन नियमानुसार देवताओं की पूजा, पितरों का तर्पण, ब्रह्म की उपासना और गुरु की सेवा करना कठिन काम है और इन्हीं के करने से सिद्धि मिलती है। इसी कठिन तप को करके देवताओं ने महान् ऐश्वर्य प्राप्त किया है, अतएव मैं तुमको कठिन २० गृहस्थ धर्म के पालन करने का उपदेश देता हूँ। इस धर्म का पालन करना ही मनुष्यों की उत्तम तपस्या है। इस तपस्या से सब सिद्धियाँ मिल सकती हैं। सुख-दुःख, राग-रोष आदि

* महायज्ञ का बचा हुआ अन्न खानेवाले।

† सूखी घास, पत्ते और फल खानेवाले।

द्वन्द्वों से रहित ब्राह्मणों ने गृहस्थ-धर्म के पालन को परम तप कहा है। हे तपस्वियो! जो मनुष्य प्रातः-सायं पितरों, अतिथियों, देवताओं और कुटुम्बियों को भोजन देकर बचा हुआ अन्न खाता है वही विघसाशी है। तुम लोग इस धर्म का पालन करोगे तो इसके फल से इस लोक में आदर पाओगे और मरने पर बहुत वर्षों तक स्वर्गलोक में रहोगे।

अर्जुन ने कहा—महाराज! तब ब्राह्मणों ने, पक्षी की धर्मार्थयुक्त और हित की बातें सुनकर, गृहस्थाश्रम के सिवा अन्य किसी आश्रम को अच्छा न समझकर संन्यास छोड़ दिया। वे घर को लौट आये। इससे आप भी अब धीरज धरकर शत्रुहीन पृथिवी का शासन कीजिए। २८

बारहवाँ अध्याय

युधिष्ठिर को नकुल का समझाना और सामान्य राजधर्म का निरूपण करना

वैशम्पायन ने कहा कि महाराज! मितभाषी महाबाहु नकुल ने अर्जुन की बातें सुनकर धर्मराज युधिष्ठिर की ओर देखकर कहा—महाराज! देवताओं ने विशाखयूप क्षेत्र में अग्निहोत्र करने के लिए वेदियाँ बनाई थीं। आज भी उनके चिह्न पाये जाते हैं, इनसे प्रकट है कि देवताओं ने कर्म के फल से ही यह पद (देवत्व) पाया है। जो पितर पानी बरसाकर प्राणियों की रक्षा करते हैं वे भी नियमानुसार कर्म करते हैं। नास्तिक वही है जो वेद के बतलाये नियमों को नहीं मानता। जो ब्राह्मण सब काम वेदोक्त नियमानुसार करते हैं वही ब्रह्मलोक को प्राप्त होते हैं। वेद के जाननेवाले ब्राह्मणों ने गृहस्थाश्रम को सब आश्रमों से बढ़कर बतलाया है। जो मनुष्य धर्म से धन कमाकर उत्तम यज्ञों में ख़र्च करते हैं वही सात्त्विक संन्यासी हैं। जो मनुष्य गृहस्थी के सुख का भोग न करके मोक्ष की इच्छा से वन को जाता है और वहाँ शरीर का त्याग करता है वह तामस संन्यासी है। जो मुनि इन्द्रियों को जीतकर वृक्षों के नीचे रहता और भिक्षा माँगता फिरता है वह भिक्षुक संन्यासी है। जो ब्राह्मण क्रोध, हर्ष और चुग़ली से बचकर वेदों को पढ़ता है वह त्यागी कहलाता है। पण्डितों ने अकेले गृहस्थाश्रम को ब्रह्मचर्य आदि तीनों आश्रमों के बराबर माना है। दूसरे आश्रमों से केवल स्वर्ग मिलता है, किन्तु गृहस्थाश्रम से काम और स्वर्ग दोनों मिल सकते हैं। इससे संसार के तत्त्व को जाननेवाले महर्षियों के लिए यही मार्ग अच्छा है। जो मनुष्य गृहस्थाश्रम को श्रेष्ठ समझता है और उसमें रहकर राग-द्वेष आदि से बचा रहता है वही सचमुच त्यागी है। जो घर छोड़कर मूर्ख की तरह वन को चला जाता है वह त्यागी नहीं कहा जा सकता। धर्मात्मा मनुष्य वन में रहकर जब काम आदि का स्मरण करता है तब यमराज उसके गले में मौत का फन्दा डाल देता है। १०

अभिमान से जो कर्म किया जाता है वह कभी सफल नहीं होता। जो कर्म त्यागभाव से किया जाता है वही महाफल देता है। गृहस्थाश्रम में शम, दम, धैर्य, सत्य, शौच, सरलता, यज्ञ और धर्म आदि तपस्वियों के करने योग्य कर्म हो सकते हैं तथा देवता, पितर और अतिथि की पूजा हो सकती है। इस आश्रम में धर्म, अर्थ और काम तीनों मिल सकते हैं। जो मनुष्य गृहस्था-श्रम में रहकर त्यागी हो सकता है उसकी कहीं हानि नहीं होती। धर्मात्मा, निष्पाप ब्रह्माजी ने दक्षिणा सहित यज्ञ करने के लिए प्रजा को बनाया है और यज्ञ के ही लिए वृक्ष, लता,
२१ ओषधि, पशु और घी पैदा किया है। गृहस्थों को यज्ञ अवश्य करना चाहिए। इसी से गृहस्थ-धर्म बहुत कठिन और दुर्लभ है। पशु, धन-धान्य आदि यज्ञ की सामग्री पाकर जो गृहस्थ यज्ञ नहीं करता उसे पाप लगता है। वेद पढ़ना, ज्ञानवान् होना और शास्त्र का मनन करना ऋषियों का यज्ञ है। ब्रह्म-रूप द्विजों के मन की धारणा-शक्ति को देखकर देवता भी इसके पाने की लालसा करते हैं।

हे महाराज, इस समय आप इन सब विचित्र रत्नों को यज्ञ में ख़र्च न करके नास्तिक की तरह बातें करते हैं। कुटुम्बी मनुष्य को त्याग करते हमने नहीं देखा। देवराज इन्द्र की तरह आप राजसूय, अश्वमेध और सर्वमेध आदि यज्ञ कीजिए जिनकी कि ब्राह्मणों ने प्रशंसा की है। राजा की असावधानी से प्रजा को चोर लूटते हैं और राजा उस प्रजा की रक्षा नहीं करता तो वह कलि के समान है। यदि ब्राह्मणों को घोड़ा, गाय, दासी, सजे हुए हाथी, गाँव, देश, खेत
३१ और घर न देकर उनसे द्रोह करेंगे तो हम लोग भी कलि-स्वरूप होंगे। जो राजा न तो दान करता है और न शरण में आये हुए की रक्षा ही करता है उसे पाप लगता है; वह कभी सुख नहीं पा सकता। यदि आप यज्ञ, पितृ-श्राद्ध और तीर्थयात्रा न करके वन को चले जायँगे तो हवा से उड़ाये हुए बादल की तरह विलीन हो जायँगे। दोनों लोकों से भ्रष्ट होकर आपको पिशाच-योनि में जन्म लेना पड़ेगा। जो मनुष्य अहङ्कार और ममता को छोड़ सकता है वही सच्चा त्यागी है। केवल घर छोड़ देने से कोई त्यागी नहीं हो सकता। इस नियम के अनु-सार चलने से ब्राह्मण की कहीं हानि नहीं होती। दैत्यों को जैसे इन्द्र ने मारा था वैसे ही, बलवान् शत्रुओं को मारकर राज्य को प्राप्त करनेवाला कौन मनुष्य आपकी तरह सोच करेगा? आपने क्षत्रियधर्म के अनुसार पराक्रम से पृथिवी को जीता है। अब आप इसे यज्ञ आदि के द्वारा
३८ विद्वान् ब्राह्मणों को देकर स्वर्ग को जा सकते हैं। इसलिए आपको शोक न करना चाहिए।

तेरहवाँ अध्याय

युधिष्ठिर को सहदेव का समझाना

नकुल की बातें समाप्त होने पर सहदेव ने युधिष्ठिर से कहा—महाराज! यह हमारा पुत्र है, यह हमारी स्त्री है, यह हमारा धन है, इस ढँग का विचार करना ममता है। वह दो प्रकार की है—बाहरी और भीतरी। केवल बाहरी ममता के त्याग से किसी तरह सिद्धि नहीं मिल सकती। भीतरी ममता के छोड़ने में सिद्धि होती है या नहीं, इसमें भी सन्देह है। बाहरी ममता से ख़ाली और भीतरी ममता में फँसे हुए मनुष्य को जो धर्म तथा सुख होता है वह हमारे शत्रुओं को हो और आन्तरिक ममता-शून्य, कामकाजी पुरुष को जो धर्म तथा सुख होता है वह हमारे मित्रों को हो। ममता मृत्यु के समान है और उससे बेलाग रहना ब्रह्मस्वरूप है। ब्रह्म और मृत्यु अलक्षित भाव से आत्मा का आश्रय लेकर जीवों को काम में लगाते हैं। महाराज! आत्मा अविनाशी है इसलिए जीवों के शरीर को मारने से हिंसा नहीं होती। और यदि शरीर के साथ आत्मा की उत्पत्ति होती है और उसी के साथ उसका नाश हो जाता है तो उस शरीर से किये गये कर्म भी व्यर्थ हो जायँगे। इससे आत्मा अविनश्वर है या नश्वर, इसका विचार न करके प्राचीन ऋषियों के मार्ग पर चलना चाहिए। जो राजा सारी पृथिवी का राज्य पाकर उसका भोग नहीं करता उसका जीवन किसी काम का नहीं अथवा जो मनुष्य वन में रहकर और मूल-फल खाकर बाह्य द्रव्य—राज्य आदि—की ममता करता है वह मौत के मुँह में जाता है। आप प्राणियों के बाहरी और भीतरी भाव को देखिए। जो आत्मा को जान लेते हैं वही इस संसार के बन्धन से छूट जाते हैं। आप हमारे माता-पिता, भ्राता, रक्षक और गुरु हैं, इसलिए आप हमारे आर्तनाद को सुनकर क्षमा कीजिए। हमने यह प्रार्थना भक्ति से की है, फिर चाहे यह प्रार्थना ठीक हो या नहीं। १०

१२

चौदहवाँ अध्याय

द्रौपदी का समझाना

वैशम्पायन ने कहा कि महाराज! इस तरह भाइयों के समझाने पर धर्मराज युधिष्ठिर ने कुछ उत्तर न दिया। तब असाधारण रूपवती धर्मदर्शिनी कुल-कामिनियों में श्रेष्ठ द्रौपदी, हाथियों के झुण्ड में बैठे हुए गजराज जैसे, भाइयों के बीच में शोभित धर्मराज की ओर देखकर उनको समझाती हुई मीठे स्वर में कहने लगी—नाथ! ये तुम्हारे भाई चातक की तरह सूखे

गले से वार-वार चिल्ला रहे हैं। बहुत दिनों के दुखी अपने भाइयों को एक वार समुचित वचनों से दिलासा देना आपका धर्म है। आपने द्वैत वन में सरदी, हवा और धूप से दुखी इन लोगों से कहा था कि युद्ध में दुर्योधन को मारकर हम सारी पृथिवी का राज्य करेंगे। रथ पर सवार

१० होकर, रथियों को रथ-विहीन करके, महागजों को मारकर विजयी होंगे। और जब हम बहुत दान सहित अनेक यज्ञ करेंगे तब तुम लोगों का यह वनवास का दुःख सुख के रूप में बदल जायगा। हे धर्मात्माओं में श्रेष्ठ! आपने उस समय तो इन लोगों से ऐसा कहा था, फिर आज हम लोगों को आप क्यों दुखी करते हैं ? नपुंसक मनुष्य पृथिवी या धन का भोग नहीं कर सकता। जिस तरह कीचड़ में मछली नहीं रहती उसी तरह हिजड़े के घर पुत्र नहीं पैदा हो सकता। दण्डहीन राजा का न तो कुछ प्रताप होता है और न वह राज्य कर सकता है। उसकी प्रजा भी सुख से नहीं रह सकती। सबके साथ मित्रता, दान, अध्ययन और तप ब्राह्मण का धर्म है; क्षत्रियों का नहीं। दुष्टों को दण्ड देना, सज्जनों की रक्षा करना और जमकर युद्ध करना ही राजाओं का श्रेष्ठ धर्म है। जिसमें क्षमा और क्रोध, दान और ग्रहण, भय और अभय तथा निग्रह और अनुग्रह दोनों विद्यमान हैं वही संसार में धर्मात्मा कहलाता है। आपने इस पृथिवी को न तो विद्या, दान, सन्धि और यज्ञ से पाया है और न माँगकर ही पाया है। आपने तो द्रोण, कर्ण, कृपाचार्य और अश्वत्थामा आदि वीरों से सुरक्षित, हाथी, घोड़े और रथों से संयुक्त

२० सेना को मारकर इस पर अधिकार किया है। इससे राज्य करना ही आपका कर्तव्य है। आपने जम्बूद्वीप, महामेरु के पश्चिम क्रौञ्च द्वीप, उसके पूर्व शाकद्वीप और उत्तर शाकद्वीप के समान भद्राश्व प्रदेश तथा उसके समीपवर्ती दूसरे द्वीपों का शासन किया है। ये सब असाधारण काम करके ब्राह्मणों से आप सम्मानित हुए थे। अब क्यों उसे पसन्द नहीं करते ? उद्धत साँड़ों और मतवाले हाथियों जैसे अपने भाइयों को देखकर उन्हें प्रसन्न कीजिए। ये सब शत्रुओं का नाश करनेवाले देवताओं के समान हैं। आप लोगों में से कोई एक पुरुष स्वामी होता तो मेरे सुख की सीमा न रहती; किन्तु भाग्य से, शरीर में स्थित पाँच इन्द्रियों के समान, आप पाँचों भाई मेरे पति हुए हैं। महाराज ! सब कुछ जाननेवाली मेरी सास कुन्ती ने मुझसे कहा था कि

३० पाञ्चालि ! युधिष्ठिर असंख्य राजाओं को मारकर तुमको बड़े सुख से रक्खेंगे। किन्तु सासजी की वह बात मुझे आपके मोह से इस समय मिथ्या होती देख पड़ती है। महाराज ! बड़े भाई के उन्मत्त होने पर उसके छोटे भाई भी उसी तरह हो जाते हैं। आपके पागल होने पर सब पाण्डव पागल हो गये थे; नहीं तो आपको, नास्तिकों के साथ, बन्धन में डालकर यही लोग राज्य करते। इस समय आप जैसी इच्छा करते हैं वैसी इच्छा दरिद्र मूर्ख मनुष्य ही करता है। जो मनुष्य पागल हो जाता है उसकी चिकित्सा धूप (सुगन्ध), कज्जल तथा सुँघनी आदि से की जाती है। यद्यपि मैं पुत्रहीन होने के कारण स्त्रियों में अधम हूँ तो भी जीने की इच्छा करती

हूँ। आप इन लोगों के और मेरे वचन को अस्वीकार न कीजिए। राज्य को छोड़कर आप स्वयं दुःख भोगेंगे। मान्धाता और अम्बरीष की तरह आप भी भूमण्डल के सब राजाओं के माननीय हैं, अतएव शोक को छोड़कर धर्म के अनुसार सम्पूर्ण पृथिवी का शासन, प्रजा का पालन और शत्रुओं से संग्राम कीजिए; विविध यज्ञ करके ब्राह्मणों को भोजन-वस्त्र आदि प्रदान कीजिए। ३९

पन्द्रहवाँ अध्याय

युधिष्ठिर को फिर अर्जुन का समझाना

वैशम्पायन ने कहा कि महाराज! द्रौपदी की बातें सुनकर अर्जुन ने आदर के साथ युधिष्ठिर से फिर कहा—राजन्! प्रजा का शासन और उसकी रक्षा दण्ड ही करता है। सोते हुओं में दण्ड जागता है। पण्डितों ने दण्ड को धर्म बतलाया है। धर्म, अर्थ और काम की रक्षा दण्ड ही करता है, इससे उसका त्रिवर्ग नाम है। दण्ड धन-धान्य की रक्षा करता है। देखिए, पापी मनुष्य कोई तो राजदण्ड के डर से, कोई नरक के डर से, कोई परलोक के डर से और कोई समाज के डर से पाप नहीं करते। अनेक लोग दण्ड के डर से एक दूसरे को खा नहीं जाते। संसार के प्रायः सभी काम दण्ड के डर से होते हैं। दण्ड यदि संसार की रक्षा न करे तो सारा संसार घोर अन्धकार में डूब जावे। दण्ड दुष्टों का दमन करता और उद्दण्डों को दण्ड देता है। दमन करने और दण्ड देने से ही इसका नाम दण्ड रक्खा गया है। ब्राह्मणों को तिरस्कार-स्वरूप दण्ड देना, क्षत्रियों को सिर्फ़ वेतन दे देना, वैश्यों से धन (जुर्माना) लेना और शूद्रों को दास बना लेना उचित दण्ड है। मनुष्यों को मोहरूपी अन्धकार से बचाने और धन की रक्षा करने के लिए दण्ड का नियम बनाया गया है। दण्ड का शरीर काला और उसकी आँखें लाल हैं। जो राजा विचारपूर्वक उचित दण्ड देता है उसकी प्रजा कभी अनुचित काम नहीं करती। ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी सभी दण्ड के डर से अपने-अपने मार्ग पर चलते हैं। डर के बिना कोई यज्ञ, दान और नियम-पालन की इच्छा नहीं करता। दूसरों का मर्मच्छेदन किये बिना, कठिन काम किये बिना और मछली मारनेवाले की तरह दूसरों की हत्या किये बिना न तो धन और यश मिल सकता है और न प्रजा ही मिल सकती है। वृत्रासुर को मारने पर ही इन्द्र को स्वर्ग का राज्य मिला है। देखिए, जिन देवताओं ने दैत्यों का वध किया है वही संसार में पूज्य हैं। दैत्यों को रुद्र, कार्त्तिकेय, इन्द्र, अग्नि, वरुण, यम, काल, मृत्यु, कुबेर, सूर्य, वसु, मरुद्गण, साध्य और विश्वेदेवों ने मारा है। मनुष्य इनके प्रताप का स्मरण करके इन्हें प्रणाम करते हैं। इनके सामने ब्रह्मा और विधाता आदि की पूजा नहीं होती। शान्तिपरायण, इन्द्रियों को १०

वश में रखनेवाले, उदासीन देवताओं की पूजा विरले मनुष्य ही करते हैं। हिंसा किये बिना
२० संसार में कोई जीवित नहीं रह सकता। बलवान् जीव निर्बलों को मारकर खा जाते हैं। चूहे को नेवला, नेवले को बिल्ली, बिल्ली को कुत्ता, कुत्ते को बाघ खा लेता और बाघ को मनुष्य मार लेता है। ब्रह्मा ने चर-अचर जीवों को एक दूसरे के खाने के लिए ही पैदा किया है। इसी से विद्वान् लोग हिंसा करके जीविका करने में सङ्कोच नहीं करते।

महाराज! आप क्षत्रिय हैं। आपको क्षत्रिय-धर्म के अनुसार चलना चाहिए। क्रोध और हर्ष को जीतकर वन को चला जाना तो मूर्खता है। हिंसा के बिना तपस्वी लोग भी निर्वाह नहीं कर सकते। जल में, थल में और फलों में बहुत से जीव रहते हैं; उनकी हिंसा किये बिना कोई प्राणी अपनी जीविका नहीं चला सकता। पृथिवी पर इतने सूक्ष्म जीव होते हैं कि वे विज्ञान के द्वारा ही जाने जा सकते हैं। बहुत से जीव तो इतने सूक्ष्म हैं कि वे प्राणियों की आँखों की पलकों के खुलने या गिरने से मर जाते हैं। बहुत से मुनि क्रोध और ईर्ष्या छोड़कर, गाँव से निकलकर, वन को चले जाते हैं और वहाँ मोहित होकर फिर गृहस्थ बन बैठते हैं। मनुष्य पृथिवी को खोदकर ओषधि, पशु, पक्षी और वृक्षों को काटकर यज्ञ करके स्वर्ग को जाते हैं। जो हो, इसमें सन्देह नहीं कि दण्ड-नीति से ही संसार के सब काम सिद्ध होते हैं। यदि
३० संसार में दण्ड-नीति न होती तो बलवान् मनुष्य दुर्बलों को, मछली की तरह, खा जाते। ब्रह्मा का यह वचन झूठ नहीं हो सकता कि यथायोग्य दण्ड से प्रजा की रक्षा होती है। देखिए, आग जब बुझने लगती है तब फूँक देने से—दण्ड के डर से—जल उठती है। यदि अच्छे और बुरे का भेद बतलानेवाला दण्ड न होता तो यह संसार घोर अन्धकार के समान हो जाता। वेद की निन्दा करनेवाले मर्यादाहीन नास्तिक लोग भी दण्ड से पीड़ित होकर शीघ्र मर्यादा का पालन करने लगते हैं। सारांश यह कि सारा संसार दण्ड के अधीन है। स्वभाव से शुद्ध मनुष्य का मिलना कठिन है। विधाता ने चारों वर्णों के सुख के लिए तथा सुनीति, धर्म और अर्थ की रक्षा के लिए दण्ड को बनाया है। दण्ड का डर न होता तो कौए और हिंसक पशु यज्ञ के हवि और दूसरे पशुओं तथा मनुष्यों को खा जाते। यदि दण्ड मर्यादा की रक्षा न करता तो न तो ब्रह्मचारी वेद पढ़ते और न कोई मनुष्य गायों का दूध दुह सकता। स्त्रियाँ व्यभिचारिणी हो जातीं। संसार की मर्यादा ही नष्ट हो जाती। सभी लोग सब चीज़ों को अपनी समझकर लेने लगते। दण्ड के न होने से दक्षिणा सहित वार्षिक यज्ञ विधिपूर्वक न हो सकते। दण्ड न होता तो कोई मनुष्य विधि के अनुसार आश्रम-धर्म की रक्षा और विद्या का अध्ययन न कर
४० सकता; ऊँट, बैल, घोड़ा और गदहा सवारी का काम न देते। दण्ड न होता तो नौकर मालिक की आज्ञा न मानते और युवती स्त्रियाँ अपने धर्म की परवा न करतीं। सब प्रजा दण्ड के डर से ही ठीक मार्ग पर चलती है। दण्ड के प्रभाव से मनुष्यों को संसार में सुख और आनन्द की

स्वर्ग मिलता है। जहाँ शत्रुओं का नाश करनेवाला दण्ड यथायोग्य रहता है वहाँ पाप, ठगी और चालाकी आदि नहीं दिखाई देती। अगर दण्ड का डर न हो तो कुत्ता घी को देखते ही चाट जाय और कौआ यज्ञ की सामग्री ले भागे।

महाराज! यह राज्य चाहे धर्म से मिला हो या अधर्म से, अब हम लोगों के अधीन है। सोच करना ठीक नहीं। इसका भोग कीजिए और यज्ञ कीजिए। श्रीमान् लोग बढ़िया कपड़े पहनते, अच्छा भोजन करते और स्त्री के साथ सुख से रहते हुए धर्म करते हैं। सब काम धन से ही हो सकते हैं और धन दण्ड के अधीन है। दण्ड की महिमा तो देखिए। संसार का काम चलाने के लिए धर्म का विधान किया गया है। यदि कोई बलवान् जीव निर्बल को मारने के लिए दौड़े और देखनेवाला उसे देखकर उसकी कुछ परवा न करे तो देखनेवाले को उसकी हिंसा का पाप लगता है। वहाँ बलवान् जीव को मारकर निर्बल की रक्षा करना धर्म है। न कोई काम या पदार्थ अत्यन्त गुणवान् है और न सर्वथा निर्गुण ही है। सभी कामों में आंशिक गुण और आंशिक दोष होते हैं। मनुष्य पशुओं को बधिया करके और उनकी नाक छेदकर बाँधते, बोझा लादते और पीटते हैं। इसी तरह संसार के सभी काम दण्ड के प्रभाव से चलते हैं। अतएव आप नीति के अनुसार सनातन धर्म का अनुसरण कीजिए। यज्ञ, दान, प्रजा का पालन, मित्रों की रक्षा और शत्रुओं का विनाश करके आप अपने धर्म का पालन कीजिए। शत्रुओं के मारने में कुछ पाप नहीं होता। हथियार लेकर मारने को उद्यत व्यक्ति को मार डालने पर हत्या का पाप नहीं लगता; क्योंकि उस हत्या का कारण क्रोध है। आत्मा अवध्य है, उसको कोई नहीं मार सकता। जैसे कोई व्यक्ति पुराना घर छोड़कर नये घर में रहने लगे, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीर को छोड़कर नये में चला जाता है। पण्डितों ने इसी का नाम मृत्यु रक्खा है। १० १८

सोलहवाँ अध्याय

युधिष्ठिर को भीमसेन का समझाना

वैशम्पायन ने कहा कि महाराज! अर्जुन के वचन सुनकर [illegible] और तेजस्वी भीमसेन ने धैर्य धरकर बड़े भाई युधिष्ठिर से कहा—राजन्! आप किस धर्म को नहीं जानते? मैं सदा आपके आचरणों को सीखने की इच्छा करता हूँ, किन्तु किसी प्रकार सफलता नहीं होती। बार-बार सोचता हूँ कि अब कुछ न कहूँगा—आपको उपदेश करना मुझे उचित नहीं, इसलिए चुप रहना चाहिए; किन्तु दुःख के मारे मुझसे चुप नहीं रहा जाता। इस समय दुःख से घबराकर

हुआ मैं जो कहता हूँ उसे सुनिए। आपके मोह से हम लोगों का सब परिश्रम निष्फल हो गया और हम सब दुर्बल तथा व्याकुल हो रहे हैं। आप सब शास्त्रों के जानकार होकर भी तुच्छ मनुष्य की तरह शोक से घबरा रहे हैं। आप संसार की भलाई और बुराई को अच्छी तरह जानते हैं। संसार का भविष्य और वर्तमान भी आप से छिपा नहीं है। इसलिए राज्य करने का अनुरोध करता हुआ मैं उसके कारण बतलाता हूँ, ध्यान देकर सुनिए। व्याधि दो प्रकार की होती है—शारीरिक और मानसिक। दोनों ही व्याधियाँ एक दूसरी की सहायता से पैदा होती हैं। परस्पर की सहायता के बिना कोई व्याधि पैदा नहीं हो सकती। शरीर स्वस्थ नहीं होता तो मन भी प्रसन्न नहीं रहता और मन के प्रसन्न न रहने से शरीर सुखी नहीं रह सकता। जो मनुष्य बीते हुए शारीरिक और मानसिक दुःख को सोचकर पछताता है उसे कुछ लाभ तो होता
१० नहीं, उलटे शारीरिक और मानसिक दुःखों का ही सामना करना पड़ता है। कफ, पित्त और वात ये शरीर में तीन गुण हैं। जिसके शरीर में इन तीनों की समता है वह स्वस्थ है और जिसके शरीर में इन तीनों की विषमता (कमी-बेशी) है वही अस्वस्थ है। ठण्डी चीज़ों के सेवन से पित्त और गरम चीज़ों के सेवन से कफ शान्त होता है। शरीर की तरह मन के भी तीन गुण हैं—सत्त्व, रज और तम। इन तीनों गुणों की समानता बहुत आवश्यक है। वही अवस्था मन के स्वास्थ्य की है। इनमें से किसी की अधिकता होने पर उसे दबा देना चाहिए। बढ़े हुए हर्ष को शोक से और शोक के वेग को हर्ष से रोक दे। कोई सुख के समय दुःख का स्मरण और कोई दुःख के समय सुख का स्मरण कर लेते हैं। किन्तु आप तो कभी दुःख और सुख में आसक्त हुए ही नहीं, इसलिए आपको सुख में दुःख और दुःख में सुख के स्मरण करने की क्या आवश्यकता ? अथवा यदि आप स्वभावतः इस समय दुःख का स्मरण करते हैं तो यह भी भाग्य की बात है। आप हम लोगों की पिछली बातों का स्मरण कीजिए। एक धोती पहने हुए रजस्वला द्रौपदी हम लोगों के सामने सभा में घसीटकर लाई गई थी। हम लोग मृगछाला पहने हुए नगर से निकलकर वन में रहे थे। वहाँ चित्रसेन के साथ युद्ध हुआ था और दुष्ट जटासुर तथा जयद्रथ ने सताया था। याद कीजिए, अज्ञातवास के समय पापी कीचक
२१ ने राजपुत्री द्रौपदी को लातें मारी थीं। क्या आप इन सब दुःखों को भूल गये ?

महाराज! पहले भीष्म और द्रोण के साथ आप लड़ चुके हैं; अब आपको मन के साथ युद्ध करना चाहिए। मन से लड़ने के लिए आपको न तो बाणों की आवश्यकता है और न भाई-बन्धुओं तथा मित्रों की ज़रूरत है। केवल निर्विकल्पात्मक आत्मा की सहायता लेनी पड़ेगी। यदि इस लड़ाई में हारकर आप शरीर छोड़ देंगे तो पूर्व-जन्म के संस्कार-वश दूसरे जन्म में आपको फिर मन के साथ लड़ना पड़ेगा। इससे आज ही आत्मा को एकाग्र करके मन के साथ युद्ध ठान दीजिए। उसको जीते बिना कल्याण नहीं मिल सकता। उसे जीत लेने पर आप निहाल हो जायँगे।

महाराज ! आप मन को वश में करके, बाप-दादे की तरह, राज्य करें। इस समय भाग्य से पापी दुर्योधन अपने साथियों समेत मारा गया और द्रौपदी ने अपनी प्रतिज्ञा का पालन करके अपने केशों को बाँध लिया है। हम लोग और बलवान् श्रीकृष्ण सब आपके सेवक हैं। अब आप बहुत दक्षिणावाला अश्वमेध यज्ञ विधिपूर्वक कीजिए। २९

सत्रहवाँ अध्याय

भीमसेन को युधिष्ठिर का उत्तर

युधिष्ठिर ने कहा—भीमसेन ! तुम केवल असन्तोष, असावधानी, मद, मोह, राग, द्वेष, बल, अभिमान और उद्वेग के अधीन होकर राज्य की इच्छा करते हो। इन सबको छोड़कर शान्त होकर सुखी हो जाओ। जिन राजाओं ने इस भूमण्डल का राज्य किया है उनके भी एक ही पेट था। फिर तुम राज्य करने की प्रशंसा क्यों करते हो ? एक दिन, कुछ महीने या जीवन भर उद्योग करने से भी किसी की भोगाभिलाषा पूरी नहीं हो सकती। जैसे ईंधन मिलने पर आग जल उठती है और उसके न मिलने से शान्त रहती है वैसे तुम भी थोड़ा खाकर बढ़ी हुई जठराग्नि को शान्त करो। मूर्ख लोग केवल अपना ही पेट भरने के लिए द्रव्य का संग्रह करते हैं। तुम पहले पेट को जीतो। उसको जीत लेने पर तुम धर्मशील होने से सारी पृथिवी को जीत सकोगे। तुम ऐश्वर्य और काम में आसक्त मनुष्यों की प्रशंसा करते हो; किन्तु असल बात यह है कि जो भोग की इच्छा न करके तप द्वारा शरीर को सुखा देते हैं वही मरने पर परम पद पाते हैं। राज्य का मिलना (योग) और उसकी रक्षा करना (क्षेम), धर्म और अधर्म तुम पर अवलम्बित हैं; उस भारी बोझ को हटाकर त्याग का आश्रय लो। बाघ अपना पेट भरने के लिए बहुत हत्या किया करता है, उसके लोभ में बहुत से पशु उसका आश्रय करके अपना निर्वाह करते हैं। [राजा भी बाघ की तरह स्वार्थ-वश धन का संग्रह करते हैं और उस संगृहीत धन का भोग दूसरे लोग किया करते हैं।] देखो, यह समझ का फेर है कि कोई राजा विषयों का संग्रह करके फिर उसको त्यागकर सन्तुष्ट नहीं हो सकता। पत्तों को खानेवाले, पत्थर पर कूटे हुए भोज्य पदार्थों से निर्वाह करनेवाले, दाँतों से ही ओखली का काम लेनेवाले, जलाहारी और वायु भक्षण करनेवाले तपस्वियों को नरक का डर नहीं रहता। ३० जिन राजाओं ने सम्पूर्ण पृथिवी का शासन किया है वे कृतार्थ नहीं हुए; कृतार्थ तो वे लोग हैं जो सोना और मिट्टी को बराबर समझते हैं। इससे अब अपने सङ्कल्प को छोड़ दो। इसमें निराश, निश्चेष्ट और ममतारहित होकर अक्षय पद पाने की चेष्टा करो। भोग की इच्छा छोड़ देने से मनुष्य को कभी शोक नहीं सताता।

तुम भोग की वस्तुओं के लिए क्यों हाय-हाय करते हो? भोग की इच्छाओं को छोड़कर जल्दी विषयों से बेलाग हो जाओ। जाने के लिए देवयान और पितृयान यही दो उत्तम मार्ग हैं। विधिवत् यज्ञ करनेवाले लोग पितृयान से और मोक्ष की इच्छा रखनेवाले लोग देवयान से अपने अभीष्ट पद तक पहुँचते हैं। महर्षि लोग तप, ब्रह्मचर्य और वेद का पाठ करते हुए शरीर त्यागकर परम पद पाते हैं। फिर उनको मौत का डर नहीं रह जाता। संसार में भोग ही बन्धन है और वही कर्म कहलाता है। उसके त्याग से परमपद मिलता है।

मोक्ष-धर्म का पालन करते हुए ममताशून्य राजा जनक ने कहा था कि अतुल धन होने पर भी मेरा कुछ नहीं है। मिथिला नगरी में आग लग जाय तो भी मेरा कुछ नहीं जल सकता। मानों बुद्धिमानी के महल पर चढ़कर अशोच्य (दुर्योधन आदि) के लिए शोक करनेवाले लोगों के दुःख को तुम, मूर्खतावश, वैसे ही नहीं देख रहे हो जैसे कोई पहाड़ पर चढ़ा हुआ
२० नीची भूमिवालों को नहीं देखता। जो मनुष्य ज्ञान-चक्षु से कर्तव्य और अकर्तव्य को देखता है वही चक्षुष्मान् (आँखोंवाला) है और जो अपनी बुद्धि से दूसरों के अज्ञात विषय को समझ लेता है वही बुद्धिमान् है। जो ब्रह्मज्ञानी विद्वानों के वाक्यों को समझ सकता है उसी का समाज में आदर होता है और जो शरीर में स्थित पञ्चतत्त्वों का आत्मा से उत्पन्न होना और उसी में विलीन हो जाना समझते हैं उन्हीं को ब्रह्म प्राप्त होता है। तप से विमुख मूर्ख मनुष्य कभी ब्रह्मलोक को नहीं जा सकता। बुद्धिमान् मनुष्य ही ब्रह्मलोक का अधिकारी
२४ है। सभी काम बुद्धि के अधीन हैं।

महाभारत के स्थायी ग्राहक बनने के नियम

(१) जो सज्जन हमारे यहाँ महाभारत के स्थायी ग्राहकों में अपना नाम और पता लिखा देते हैं उन्हें महाभारत के अङ्कों पर २०) सैकड़ा कमीशन काट दिया जाता है। अर्थात् १।) प्रति अङ्क के बजाय स्थायी ग्राहकों को १) में प्रति अङ्क दिया जाता है। ध्यान रहे कि डाकव्यय स्थायी और फुटकर सभी तरह के ग्राहकों को अलग देना पड़ेगा।

(२) साल भर या छः मास का मूल्य १२) या ६), दो आना प्रति अङ्क के हिसाब से रजिस्ट्री ख़र्च सहित १३॥) या ६॥।) जो सज्जन पेशगी मनीआर्डर-द्वारा भेज देंगे, केवल उन्हीं सज्जनों को डाकख़र्च नहीं देना पड़ेगा। महाभारत की प्रतियाँ राह में गुम न हो जायँ और ग्राहकों की सेवा में वे सुरक्षित रूप से पहुँच जायँ, इसी लिए रजिस्ट्री द्वारा भेजने का प्रबन्ध किया गया है।

(३) इसके प्रत्येक खंड के लिए अलग से बहुत सुन्दर जिल्दें भी सुनहले नाम के साथ तैयार कराई जाती हैं। प्रत्येक जिल्द का मूल्य ।||) रहता है परन्तु स्थायी ग्राहकों को ये ||) ही में मिलती हैं। जिल्दों का मूल्य महाभारत के मूल्य से बिलकुल अलग रहता है।

(४) स्थायी ग्राहकों के पास प्रतिमास प्रत्येक अङ्क प्रकाशित होते ही बिना विलम्ब वी० पी० द्वारा भेजा जाता है। बिना कारण वी० पी० लौटाने से उनका नाम ग्राहक-सूची से अलग कर दिया जायगा।

(५) ग्राहकों को चाहिए कि जब किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार करें तो कृपा कर अपना ग्राहक-नम्बर जो कि पता की स्लिप के साथ छपा रहता है और पूरा पता अवश्य लिख दिया करें। बिना ग्राहक-नम्बर के लिखे हज़ारों ग्राहकों में से किसी एक का नाम ढूँढ़ निकालने में बड़ी कठिनाई पड़ती है और पत्र की कार्यवाई होने में देरी होती है। क्योंकि एक ही नाम के कई-कई ग्राहक हैं। इसलिए सब प्रकार का पत्र-व्यवहार करते तथा रुपया भेजते समय अपना ग्राहक-नम्बर अवश्य लिखना चाहिए।

(६) जिन ग्राहकों को अपना पता सदा अथवा अधिक काल के लिए बदलवाना हो, अथवा पते में कुछ भूल हो, उन्हें कार्यालय को पता बदलवाने की चिट्ठी लिखते समय अपना पुराना और नया दोनों पते और ग्राहक-नम्बर भी लिखना चाहिए। जिससे उचित संशोधन करने में कोई दिक़्क़त न हुआ करे। यदि किसी ग्राहक को केवल एक दो मास के लिए ही पता बदलवाना हो, तो उन्हें अपने हलके के डाकख़ाने से उसका प्रबन्ध कर लेना चाहिए।

(७) ग्राहकों से सविनय निवेदन है कि नया आर्डर या किसी प्रकार का पत्र लिखने के समय यह ध्यान रक्खें कि लिखावट साफ़ साफ़ हो। अपना नाम, गाँव, पोस्ट और ज़िला साफ़ साफ़ हिन्दी या अँगरेज़ी में लिखना चाहिए ताकि अङ्क या उत्तर भेजने में दुबारा पूछ-ताछ करने की ज़रूरत न हो। "हम परिचित ग्राहक हैं" यह सोच कर किसी को अपना पूरा पता लिखने में लापरवाही न करनी चाहिए।

(८) यदि कोई महाशय मनी-आर्डर से रुपया भेजें, तो 'कूपन' पर अपना पता-ठिकाना और रुपया भेजने का अभिप्राय स्पष्ट लिख दिया करें, क्योंकि मनीआर्डरफ़ार्म का यही अंश हमको मिलता है।

सब प्रकार के पत्र-व्यवहार का पता—

मैनेजर महाभारत विभाग, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

आवश्यक सूचनायें

(१) हमने प्रथम खण्ड की समाप्ति पर उसके साथ एक महाभारत-कालीन भारतवर्ष का प्रामाणिक सुन्दर मानचित्र भी देने की सूचना दी थी। इस सम्बन्ध में हम ग्राहकों को सूचित करते हैं कि पूरा महाभारत समाप्त हो जाने पर हम प्रत्येक ग्राहक को एक परिशिष्ट अध्याय बिना मूल्य भेजेंगे जिसमें महाभारत-सम्बन्धी महत्त्व-पूर्ण खोज, साहित्यिक आलोचना, चरित्र-चित्रण तथा विश्लेषण आदि रहेगा। उसी परिशिष्ट के साथ ही मानचित्र भी लगा रहेगा जिसमें पाठकों को मानचित्र देख कर उपरोक्त बातें पढ़ने और समझने आदि में पूरी सुविधा रहे।

(२) महाभारत के प्रेमी ग्राहकों को यह शुभ समाचार सुन कर बड़ी प्रसन्नता होगी कि हमने कानपुर, उन्नाव, काशी (रामनगर), कलकत्ता, ग़ाज़ीपुर, बरेली, मथुरा (वृन्दावन), जोधपुर, बुलन्दशहर, प्रयाग और लाहौर आदि में ग्राहकों के घर पर ही महाभारत के अङ्क पहुँचाने का प्रबन्ध किया है। अब तक ग्राहकों के पास यहीं से सीधे डाक-द्वारा प्रतिमास अङ्क भेजे जाते थे जिसमें प्रति अङ्क तीन चार आना खर्च होता था पर अब हमारा नियुक्त किया हुआ एजेंट ग्राहकों के पास घर पर जाकर अङ्क पहुँचाया करेगा और अङ्क का मूल्य भी ग्राहकों से वसूल कर ठीक समय पर हमारे यहाँ भेजता रहेगा। इस अवस्था पर ग्राहकों को ठीक समय पर प्रत्येक अङ्क सुरक्षित रूप में मिल जाया करेगा और वे डाक, रजिस्टरी तथा मनीआर्डर इत्यादि के व्यय से बच जायँगे। इस प्रकार उन्हें प्रत्येक अङ्क केवल एक रुपया मासिक देने पर ही घर बैठे मिल जाया करेगा। यथेष्ट ग्राहक मिलने पर अन्य नगरों में भी शीघ्र ही इसी प्रकार का प्रबन्ध किया जायगा। आशा है जिन स्थानों में इस प्रकार का प्रबन्ध नहीं है, वहाँ के महाभारतप्रेमी सज्जन शीघ्र ही अधिक संख्या में ग्राहक बन कर इस अवसर से लाभ उठावेंगे। और जहाँ इस प्रकार की व्यवस्था हो चुकी है वहाँ के ग्राहकों के पास जब एजेंट अङ्क लेकर पहुँचे तो ग्राहकों को रुपया देकर अङ्क ठीक समय पर ले लेना चाहिए जिसमें उन्हें ग्राहकों के पास बार बार आने जाने का कष्ट न उठाना पड़े। यदि किसी कारण उस समय ग्राहक मूल्य देने में असमर्थ हों तो अपनी सुविधानुसार एजेंट के पास से आकर अङ्क ले आने की कृपा किया करें।

(३) हम हिन्दी-भाषा-भाषी सज्जनों से एक सहायता की प्रार्थना करते हैं। वह यही कि हम जिस विराट् आयोजन में संलग्न हुए हैं आप लोग भी कृपया इस पुण्य-पर्व में सम्मिलित होकर पुण्य-सञ्चय कीजिए, अपनी राष्ट्र-भाषा हिन्दी का साहित्य-भाण्डार पूर्ण करने में सहायक हूजिए और इस प्रकार सर्वसाधारण का हित-साधन करने का उद्योग कीजिए। सिर्फ़ इतना ही करें कि अपने दस-पाँच हिन्दी-प्रेमी इष्ट-मित्रों में से कम से कम दो स्थायी ग्राहक इस वेद तुल्य सर्वाङ्गसुन्दर महाभारत के और बना देने की कृपा करें। जिन पुस्तकालयों में हिन्दी की पहुँच हो वहाँ इसे ज़रूर मँगवावें। एक भी समर्थ व्यक्ति ऐसा न रह जाय जिसके घर यह पवित्र ग्रन्थ न पहुँचे। आप सब लोगों के इस प्रकार साहाय्य करने से ही यह कार्य्य अग्रसर होकर समाज का हितसाधन करने में समर्थ होगा।

—प्रकाशक

सूचना

महाभारत के प्रकाशन का कार्य आरम्भ करते समय ग्रन्थ की पृष्ठ-संख्या का जो हिसाब लगाया गया था उसके लिहाज़ से ग्रन्थ ४० अंकों में सम्पूर्ण हो जाना चाहिए था; किन्तु अब तक जितने अङ्क प्रकाशित हो गये हैं और अभी जितना अंश छापने को बाक़ी है उसको देखते हुए निर्दिष्ट अङ्कों में ग्रन्थ के सम्पूर्ण हो जाने की आशा नहीं है। यदि वर्तमान क्रम ही जारी रक्खा जावे तो ग्रन्थ कदाचित ५० या और अधिक अङ्कों में समाप्त हो। परन्तु ध्यान यह रखना है कि ग्रन्थ का मूल्य जितना कम हो सके, उसका उपाय किया जावे। इसलिए इस अङ्क के साथ यह नई योजना काम में लाई जा रही है; सब प्रकार के चित्रों की संख्या घटाकर पृष्ठ-संख्या १०० से बढ़ाकर १५० के लगभग कर दी गई है। चित्र-संख्या घटा देने का दूसरा कारण यह भी है कि शान्तिपर्व में अब ऐसे स्थल स्वल्प हैं जिनके आधार पर सुन्दर चित्र अङ्कित किये जा सकें।

इस प्रबन्ध से, ५० से कम अङ्कों में, ग्रन्थ के समाप्त हो जाने की आशा है। यह नया प्रबन्ध ग्राहकों के सुभीते के लिए ही किया गया है। आशा है, इसे ग्राहकगण पसन्द करेंगे।

व्यवस्थापक—महाभारत-विभाग

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

विषय-सूची

रङ्गीन चित्रों की सूची

अठारहवाँ अध्याय

फिर युधिष्ठिर को अर्जुन का समझाना

वैशम्पायन ने कहा कि महाराज! युधिष्ठिर के चुप हो जाने पर उनके वचन-रूप बाणों से पीड़ित, दुःख-शोक से सन्तप्त, अर्जुन ने फिर कहा—राजन्! विदेहराज जनक ने अपनी रानी से जो बातचीत की थी वह (इतिहास) जनसमाज में प्रसिद्ध है। उसे सुनिए। महाराज जनक राज्य छोड़कर, क्रोधहीन होकर, तृष्णा छोड़ संन्यासी हो गये थे। उनकी रानी ने उन्हें भीख माँगते देख एकान्त में उनके पास जाकर क्रोध करके कहा—महाराज! आप धन-धान्य, रत्न और स्त्री-पुत्र आदि से पूर्ण राज्य को छोड़कर भीख क्यों माँगते हैं? क्या आपके लिए यही उचित है? आपने राज-पाट तो छोड़ दिया, किन्तु जब मुट्ठी भर अन्न के लोभ से आप भीख माँगते हैं तब आपकी, सर्वत्याग की, प्रतिज्ञा कहाँ रही? अब आप भीख माँगकर किसी प्रकार अतिथियों, देवताओं, ऋषियों और पितरों को सन्तुष्ट

नहीं कर सकते। इसलिए आपका यह परिश्रम निष्फल है। जब आप सब कर्मों को छोड़कर इधर-उधर भटक रहे हैं तब देवता, अतिथि और पितर भी आपको छोड़ देंगे। पहले आप हज़ारों विद्वान वृद्ध ब्राह्मणों और असंख्य मनुष्यों का पालन-पोषण करते थे और आज आप स्वयं दूसरों की दया से अपना पेट भरने की इच्छा करते हैं। आज आप अपनी समुज्ज्वल राज-लक्ष्मी को छोड़कर, कुत्ते की तरह, दूसरों से अन्न की आशा करते हैं! आपकी माता पुत्र-हीन और स्त्री पतिहीन हो गई! क्षत्रिय लोग धर्म की आशा से, आपके शुभाकांक्षी होकर, सदा आपकी सेवा करते थे। अब उनकी आशाओं को विफल करके आप किस लोक को जायँगे? संसार के सभी काम सन्देह से भरपूर हैं, इसलिए विशेष चेष्टा करने पर भी मोक्ष के मिलने में सन्देह ही रहता है। धर्मपत्नी को छोड़कर आप जीवित रहना चाहते हैं तो आपके समान पापी इस संसार में दूसरा नहीं है। आप किसी लोक के अधिकारी नहीं हो सकते।

आप किस कारण फूलों की माला, गहनों और सुन्दर कपड़ों को छोड़कर, कर्म से हीन होकर, इधर-उधर भटकते हैं ? आप निपान (पौशाला = पानी पिलाने का स्थान) और महावृक्ष की तरह सब प्राणियों के आश्रय-रूप हैं। आपको अपना पेट पालने के लिए दूसरों का मुँह ताकना उचित नहीं। कर्मत्यागी बनकर आपने बड़ा अनर्थ किया है। निकम्मे हाथी का मांस भी गीदड़, कुत्ते और कोड़े खा जाते हैं। जिस धर्म का अवलम्बन करने से दण्ड-कमण्डलु और कपड़े तक छोड़ देने पड़ें, ऐसे धर्म को आपने क्यों पसन्द किया है ? आपने राज-पाट छोड़कर भीख माँगना तो स्वीकार कर लिया, किन्तु सोचिए तो सही कि यह भी राज्य आदि का सा
२० लोभ का ही काम है। इसलिए भीख लेने पर आपकी प्रतिज्ञा नष्ट हो जायगी। यदि मेरे ऊपर आपकी कृपा है तो राज-काज कीजिए, नहीं तो मैं आपकी कौन हूँ और आप ही मेरे कौन हैं ? आपकी कृपा ही किस काम आवेगी ? परम सुखार्थी संन्यासियों के कमण्डलु आदि देख-कर जो पुरुष स्वयं भी वैसा करता है वह राज्य आदि सुख-सामग्री को छोड़कर भी नहीं छोड़ सकता, किन्तु उचित बन्धन को छोड़कर दुर्भाग्य से अनुचित बन्धन में जा फँसता है। जो मनुष्य सदा दान लेता है और जो सदा दान करता है, उन दोनों में कौन श्रेष्ठ है ? जो पाखण्डी सदा माँगता रहता है उसको दान-दक्षिणा देना मानो जलती हुई आग में फेंक देना है। जिस तरह जलाने के लिए कुछ न पाने पर आग अपने आप शान्त हो जाती है उसी तरह माँगने-वाला भी भीख न पाने पर सुस्त हो जाता है। संन्यासियों को भीख माँगकर अपना निर्वाह करना पड़ता है। यदि उनको देनेवाला कोई राजा न हो तो वे कैसे जियें ? गृहस्थों के यहाँ अन्न रहता है और संन्यासी लोग उन्हीं के घर से पलते हैं। अन्न से ही सबका जीवन है, इसलिए अन्न देनेवाला प्राणदाता है। संन्यासी लोग घर छोड़कर अन्न के लिए गृहस्थों के आश्रित रहते हैं। शम-दम के प्रभाव से वे अपनी प्रतिष्ठा और प्रभाव जमा लेते हैं। घर छोड़ने, मूँड़ मुँड़ाने और भीख माँगने से कोई संन्यासी नहीं होता। जो मनुष्य आसानी से सब कुछ छोड़ सकता है
३० वही असली संन्यासी है। जो मनुष्य विषयों में आसक्त न होकर अनुरागी की तरह व्यवहार करे और शत्रुओं तथा मित्रों को समान समझे वही संन्यासी है। मूँड़ मुँड़ाकर रँगे कपड़े पहननेवाले संन्यासी प्रायः अनेक झञ्झटों में फँसे रहते हैं; वे दान लेने और मठ, शिष्य आदि की तलाश में घूमा करते हैं। सारांश यह कि पुत्रों को, वेद को और शास्त्र की चर्चा को त्याग-कर मूँड़ मुँड़ाकर रँगे कपड़े पहन लेना निरी मूर्खता है। मूँड़ मुँड़ानेवाले धर्मध्वजियों को भी रँगे कपड़ों की आवश्यकता पड़ती है, अतएव जितेन्द्रिय होकर मृगछाला ओढ़नेवाले, रँगे कपड़े पहननेवाले, नङ्गे, मुँड़े और जटाधारी संन्यासियों की रक्षा आप गृहस्थाश्रम में रहकर करते हुए संसार को विजय कीजिए। जो पुरुष प्रतिदिन दान करता हुआ अग्निहोत्र आदि करता रहता है उससे बढ़कर धर्मात्मा कौन हो सकता है ?

अर्जुन कहते हैं—हे धर्मराज ! जो राजर्षि जनक संसार में तत्त्वज्ञानी कहे जाते हैं उन्हें भी आपकी तरह मोह हो गया था। इससे जान पड़ता है कि मोह सभी को हो जाता है। अब आप अधिक मोह के चक्कर में न पड़िए। अब हम लोग निठुराई और काम-क्रोध को छोड़कर, दान-धर्म में परायण तथा सत्यवादी हो, गुरुओं की सेवा, देवताओं और अतिथियों की पूजा तथा प्रजा का पालन करके निस्सन्देह अभीष्ट लोक को जायँगे। ५०

उन्नीसवाँ अध्याय

अर्जुन को युधिष्ठिर का उत्तर

युधिष्ठिर ने कहा—अर्जुन! हम धर्मशास्त्र और वेद दोनों को जानते हैं। वेद में कर्म का करना और उसका त्याग दोनों बतलाये गये हैं। देखो, शास्त्र बहुत कठिन हैं। उनका जो युक्ति-युक्त सिद्धान्त है, वह हमको मालूम है। तुम केवल वीर-व्रतधारी और शस्त्र-विद्या के जानकार हो। तुम शास्त्रों के तत्त्व को नहीं समझ सकते। जिसे शास्त्र की बारीकियाँ मालूम हैं और जो उलझनों को सुलझाने में भी सिद्धहस्त है ऐसा आदमी भी मुझको वैसी सलाह नहीं दे सकता जैसी कि तुमने दी है। जो हो, तुमने भ्रातृस्नेह से हमसे जो कुछ कहा है उसे सुनकर हम बहुत प्रसन्न हुए। युद्ध-धर्म में और कार्य-कुशलता में तुम्हारे समान तीनों लोकों में कोई नहीं। तुम युद्ध के सूक्ष्म से सूक्ष्म और कठिन से कठिन विषयों की सम्मति दे सकते हो; किन्तु हम जो कुछ कहते हैं उस विषय में तुमको सन्देह करना उचित नहीं। तुमने केवल युद्धशास्त्र सीखा है; ज्ञानियों की सङ्गति नहीं की और जो लोग धर्म के तत्त्व को विस्तार-पूर्वक अथवा संक्षेप से जानते हैं उनके निर्णय को भी तुमने अच्छी तरह नहीं जाना। बुद्धिमान् लोग यह निर्णय कर गये हैं कि तपस्या, त्याग और ब्रह्मज्ञान इन तीनों में तपस्या की अपेक्षा त्याग और त्याग की अपेक्षा ब्रह्मज्ञान श्रेष्ठ है। तुम किसी पदार्थ को धन से श्रेष्ठ नहीं समझते, किन्तु तुम्हारे इस सिद्धान्त को हम अच्छा नहीं मान सकते। देखो, स्वाध्याय और तप के प्रभाव से धर्मात्मा महर्षियों को अक्षय लोक प्राप्त हुए हैं। अन्यान्य वानप्रस्थी भी तप करके स्वर्ग को गये हैं। आर्य लोग विषय-वासना को छोड़कर, अज्ञान-रूपी अँधेरे से बचकर, उत्तर दिशा में स्थित त्यागी मनुष्यों के लोकों को गये हैं और क्रियावान् लोग अपने शरीर को मरघट में छोड़कर दक्षिण के तेजोमय लोक को जाते हैं। मोक्ष चाहनेवालों को जो गति मिलती है उसका बतलाना बहुत कठिन है। इसलिए त्याग ही सबसे उत्तम है। इस समय तुमको 'योग' का विषय समझाना बहुत कठिन है। अनेक पण्डितों ने सार-असार की जाँच करने के लिए तरह-तरह के तर्क-वितर्क और अनेक शास्त्रों का अनुसरण किया है, किन्तु लोगों को जिस तरह देवे १०

के खम्भे को उखाड़ फेंकने में सार नहीं मिलता उसी तरह वेद-वाक्यों का तथा वेदान्त का उल्लङ्घन करके भी उन्होंने शास्त्रों का सार नहीं पाया। कोई-कोई अद्वैत भाव को छोड़कर पाञ्चभौतिक शरीर में स्थित आत्मा को इच्छा, द्वेष आदि से युक्त कहते हैं। किन्तु आत्मा का स्वरूप अति सूक्ष्म है; वह न तो आँखों से देखा जा सकता है और न वाणी से बतलाया जा सकता है। लोग अविद्या के प्रभाव से आत्मा को जीव-रूप समझते हैं। इच्छा का दमन करने, २० अहङ्कार और कर्मों को छोड़ने तथा मन को आत्मोन्मुख करने से मनुष्य सुखी होता है।

हे धनञ्जय! इस तरह सूक्ष्म बुद्धि से जानने योग्य, सज्जनों से सेवित, इस मार्ग में स्थित होकर अनर्थ के मूल अर्थ की प्रशंसा क्यों करते हो? दान और यज्ञ आदि करनेवाले ज्ञानी लोग भी 'अर्थ' (द्रव्य) को अनर्थ बतला गये हैं। संसार में बहुत से लोग ऐसे हैं जो पूर्व-जन्म के संस्कार से आत्मा का अस्तित्व नहीं मानते। वे निरे मूर्ख हैं। अर्जुन! संसार में बहुत से ऐसे पण्डित और साधु विद्यमान हैं, जिनका माहात्म्य जानने के लिए हम लोगों के पास तथा दूसरे लोगों के पास भी कोई साधन नहीं है। तत्त्व के जाननेवाले लोगों को बुद्धि के प्रभाव २६ से ब्रह्म, तप के प्रभाव से वैराग्य तथा त्याग के प्रभाव से अटल सुख की प्राप्ति होती है।

बीसवाँ अध्याय

तपस्वी देवस्थान का अर्जुन के प्रस्ताव का अनुमोदन करना

वैशम्पायन ने कहा कि महाराज! युधिष्ठिर के कह चुकने पर महातपस्वी वक्ता देवस्थान ने युक्तिपूर्ण वचन कहा—धर्मराज! अर्जुन ने जो धन को सबसे श्रेष्ठ बतलाया है, हम उसके प्रमाण देते हैं, सावधानी से सुनिए। आपने धर्म के अनुसार पृथिवी को जीता है, इसलिए अकारण उसका त्याग करना आपको उचित नहीं। संसार में मनुष्यों के कल्याण के लिए जो चार आश्रम (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास) निश्चित हैं उनका अवलम्बन आपको क्रमशः करना चाहिए। इस समय बहुत सा धन दान करके यज्ञ कीजिए। वेद पढ़ना, ज्ञानवान् होना और तप करना ऋषियों का कर्म है। वानप्रस्थियों का कहना है कि धन माँगकर यज्ञ आदि करने की अपेक्षा उसका न करना अच्छा है। माँगना बड़ा बुरा है। जो लोग यज्ञ आदि करने के लिए धन का संग्रह करके पात्र-अपात्र का विचार किये विना अपात्र को दान दे देते हैं वे भ्रूण-हत्या के भागी होते हैं। पात्र और अपात्र का विचार करके दान करना सहज काम नहीं है।

विधाता ने यज्ञ के लिए धन बनाया है और पुरुषों को उसका रक्षक बना दिया है। १० इसलिए यज्ञ करके सब धन ख़र्च कर देने से ही मनोरथ सिद्ध होते हैं। महातेजस्वी इन्द्र यज्ञ के प्रभाव से ही सब देवताओं के राजा हुए हैं। महादेवजी ने 'सर्व' यज्ञ में अपनी आहुति

देकर संसार में बड़ी कीर्त्ति पाई है और वे देवताओं से भी पूज्य हुए हैं। देवराज इन्द्र से भी बढ़कर सम्पत्तिशाली राजा मरुत्त ने सोने के यज्ञ-पात्र बनवाकर यज्ञ किया था। इस यज्ञ में भगवती लक्ष्मी मूर्तिमती विद्यमान थीं। यज्ञों के प्रभाव से ही इन्द्र की अपेक्षा अधिक सम्पत्तिशाली महाराज हरिश्चन्द्र शोक-सन्ताप से छुटकारा पाकर पुण्यवान हुए थे। अतएव यज्ञ में सब धन खर्च कर देना ठीक है। १७

इक्कीसवाँ अध्याय

युधिष्ठिर को देवस्थान का फिर समझाना

देवस्थान ने कहा—महाराज! इन्द्र एक बार बृहस्पति के पास ज्ञान माँगने गये थे। उनके पूछने पर बृहस्पतिजी ने कहा कि सन्तोष से बढ़कर कोई पदार्थ नहीं है। सन्तोष परम सुख है और सन्तोष ही स्वर्ग से भी श्रेष्ठ है। जिस तरह कछुआ अपने अङ्गों को सिकोड़ लेता है उसी तरह मनुष्य जब सब विषयों को अपने आत्मा में लीन कर लेता है तब आत्मा अपने ही स्वरूप में सन्तुष्ट होकर प्रसन्न हो उठता है। मनुष्य के मन में जब रत्ती भर भी डर नहीं रह जाता और उससे भी किसी को डर नहीं होता तथा वह जब राग-द्वेष को जीत लेता है तब उसको आत्म-साक्षात्कार होता है और जब वह मन-वचन-कर्म से न तो किसी से द्रोह करता है और न कुछ इच्छा करता है तब उसको ब्रह्मज्ञान होता है।

हे धर्मराज! इस संसार में जो जैसे कर्म करता है उसको वैसे ही फल मिलते हैं। इसलिए समझ-बूझकर कर्म करने चाहिएँ। इस संसार में कोई तो शान्ति की और कोई दण्ड की प्रशंसा करते हैं। कोई एक की प्रशंसा करते हैं और कोई दोनों की। कोई यज्ञ की, कोई संन्यास धर्म की, कोई दान देने और कोई दान लेने को उत्तम समझते हैं। और कोई सब कहीं से छोड़कर मौन होकर ध्यान करते हैं। कोई शत्रुओं को मारकर राज्य करना और प्रजा का पालन करना अच्छा समझते हैं और कोई निर्जन वन में रहना पसन्द करते हैं। विद्वानों ने इन सब पर विचार करके अहिंसा को ही साधु-सम्मत श्रेष्ठ धर्म बतलाया है। स्वायम्भुव मनु ने भी अहिंसा, सत्य वचन, संविभाग, दया, दमन, नम्रता, क्षमा, निजस्त्री और अपनी ही स्त्री से पुत्र उत्पन्न करने को श्रेष्ठ धर्म बतलाया है। इसलिए तुम मन से इन सब धर्मों का पालन करो। जो क्षत्रिय इन्द्रियों को जीतकर राज्य करते हुए धन से यथा-शक्ति यज्ञ करें, सज्जनों का सम्मान करें, दुर्जनों को दण्ड दें, धर्मानुसार प्रजा का पालन करें और वृद्धावस्था में पुत्र को राज्य सौंपकर वन को चले जाते हैं और वहाँ कन्द-मूल खाकर [illegible] उनके दोनों लोक सफल होते हैं। महाराज! [illegible] १८

है। उसमें अनेक प्रकार के विघ्न हैं। इससे राजाओं के लिए प्रजा का पालन आदि धर्म ही श्रेष्ठ है। जो राजा सत्य, दान, तप और अहिंसा आदि गुणों से युक्त रहकर काम-क्रोध से बचता हुआ धर्म के अनुसार प्रजा का पालन करता और गो-ब्राह्मणों की रक्षा के लिए युद्ध करता है उसको अवश्य उत्तम गति मिलती है। रुद्र, वसु, आदित्य, साध्य और
२० राजर्षिगण इन सब धर्मों का आश्रय करके स्वर्ग को गये हैं।

बाईसवाँ अध्याय

युधिष्ठिर को फिर अर्जुन का समझाना

वैशम्पायन ने कहा कि महाराज, युधिष्ठिर को बहुत दुखी देखकर अर्जुन ने उनसे फिर कहा—हे धर्मज्ञ! क्षत्रियधर्म के अनुसार शत्रुओं को जीतकर दुर्लभ राज्य पर अधिकार करके अब आप इतने दुखी क्यों हो रहे हैं? क्षत्रियों का युद्ध में मरना अनेक यज्ञ करने से भी श्रेष्ठ है। ब्राह्मणों का संन्यास और तप तथा क्षत्रियों का युद्ध में मर जाना श्रेष्ठ धर्म बतलाया गया है। क्षत्रिय-धर्म बड़ा कठिन है। संग्राम में शत्रुओं से लड़कर उनके हाथ से मारा जाना क्षत्रियों का प्रधान कर्म है। क्षत्रिय जाति ब्रह्मा से उत्पन्न हुई है। ब्राह्मण भी क्षत्रिय-धर्म का पालन करके संसार में सम्मानित होते हैं। संन्यास, समाधि, तप और दूसरे के धन से निर्वाह करना क्षत्रियों के लिए निषिद्ध काम हैं। आप सब धर्मों के जाननेवाले धर्मात्मा और भूत-भविष्य के जानकार हैं, इसलिए अब आपको शोक-सन्ताप छोड़कर कर्मों में ही लग जाना चाहिए। क्षत्रियों का हृदय वज्र से भी कठोर होता है। आपने क्षत्रिय-धर्म के अनुसार शत्रुओं को
१० जीतकर निष्कण्टक राज्य प्राप्त किया है। अब आपको यज्ञ और दान करना चाहिए। इन्द्र ने महर्षि कश्यप के पुत्र होकर, अपना कार्य सिद्ध करने के लिए, क्षत्रिय-धर्म के अनुसार आठ सौ दस बार सजातीय पापियों का नाश किया था। उनका यह काम भी पूज्य और प्रशंस-नीय है। वे क्षत्रिय-धर्म के प्रभाव से ही देवताओं के स्वामी हुए हैं। अब आप शोक को छोड़कर, इन्द्र की तरह, बहुत धन-दान के साथ यज्ञ कीजिए। जिन लोगों ने क्षत्रिय-धर्म के अनुसार युद्ध में प्राणत्याग किया है वे सब स्वर्ग को गये हैं, अतएव उन वीरों के लिए शोक करना ठीक नहीं। जो कुछ हुआ है वह अवश्यम्भावी
१५ था। भावी को टालने में कोई समर्थ नहीं है।

तेईसवाँ अध्याय

युधिष्ठिर के प्रति वेदव्यास की उक्ति

वैशम्पायन ने कहा कि महाराज ! इस प्रकार अर्जुन के कहने पर जब युधिष्ठिर ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया तब वेदव्यास ने कहा—धर्मराज ! अर्जुन ने जो कुछ कहा है वह सब ठीक है। शास्त्र के अनुसार गृहस्थाश्रम ही तुम्हारे लिए श्रेष्ठ धर्म है। इसे छोड़कर वन में रहना तुमको उचित नहीं। देवता, अतिथि और पितर गृहस्थ के घर से ही तृप्त होते हैं। नौकर-चाकर और पशु-पक्षी आदि गृहस्थ के ही घर में पलते हैं। अतएव गृहस्थाश्रम सब आश्रमों में श्रेष्ठ और गार्हस्थ्य धर्म सब आश्रम-धर्मों से कठिन है। अजितेन्द्रिय मनुष्य कभी इस धर्म का पालन नहीं कर सकते। इस समय तुम गृहस्थ-धर्म का अनुष्ठान करो। तुमको वेद का ज्ञान है और तुमने तप भी किया है, अब तुम पैतृक राज्य को सँभालो। तप, समाधि, क्षमा, विद्या, भिक्षा, इन्द्रियनिग्रह, ध्यान, एकान्त में रहना, सन्तोष और ज्ञान ब्राह्मणों के लिए सिद्धि-प्रद धर्म है। यज्ञ करना, विद्या पढ़ना, पौरुष दिखलाना, सम्पत्ति से सन्तुष्ट न हो जाना, धन का उपार्जन और तप करना तथा उद्यम, दण्ड-धारण, प्रजापालन, वेदज्ञान और सत्पात्र को दान करना क्षत्रियों का कर्तव्य है। क्षत्रिय इन्हीं सब कर्मों के प्रभाव से दोनों लोकों में विजयी होते हैं। इन सब में भी दण्ड-धारण सबसे श्रेष्ठ गुण है। बल ही क्षत्रियों का श्रेष्ठ गुण है और दण्ड का प्रयोग बल से ही होता है। बृहस्पति का वचन है कि जैसे साँप चूहे को निगल जाता है वैसे ही यह पृथिवी युद्ध करने में अयोग्य राजा और अप्रवासी—अर्थात् घर में ही पड़े रहनेवाले—ब्राह्मण को नष्ट कर देती है। महाराज ! राजर्षि सुद्युम्न, दण्ड धारण करके, दक्ष प्रजापति के समान सिद्ध हुए हैं।

युधिष्ठिर ने कहा—भगवन् ! महाराज सुद्युम्न किस प्रकार सिद्ध हुए हैं, यह सुनने की मेरी इच्छा है, कृपा करके इसका वर्णन कीजिए।

वेदव्यास ने कहा—महाराज ! प्राचीन इतिहास प्रसिद्ध है कि व्रतधारी शङ्ख और लिखित नाम के दो सगे भाई, बाहुदा नदी के किनारे, अलग-अलग आश्रम बनाकर रहते थे। इन दोनों के आश्रम सदा फूलने-फलनेवाले हरे-भरे सुन्दर वृक्षों से सुशोभित थे। एक दिन महर्षि लिखित अपने बड़े भाई शङ्ख के आश्रम में आये। उस समय तपोधन शङ्ख अपने आश्रम में नहीं थे। महर्षि लिखित, बड़े भाई को आश्रम में न देखकर, आश्रम-वृक्षों के पके हुए फल तोड़कर खाने लगे। उसी समय शङ्ख आ गये। लिखित को फल खाते देखकर शङ्ख ने कहा—भैया ! तुमको ये फल कहाँ मिले और क्यों खाते हो ? लिखित ने पास जाकर उनको प्रणाम किया और मुसकराकर कहा—भाई, मैंने ये फल यहीं से लिये हैं। तब शङ्ख ने कुपित होकर

छोटे भाई से कहा कि तुमने, मेरी अनुपस्थिति में, स्वयं फल लेकर चोरी का काम किया है। इसलिए तुम राजा के पास जाओ और अपना अपराध बतलाकर उनसे अपने लिए उपयुक्त दण्ड की प्रार्थना करो। तब महर्षि लिखित, बड़े भाई की आज्ञा के अनुसार, तुरन्त सुद्युम्न राजा के द्वार पर पहुँचे। द्वारपाल ने राजा को लिखित के आने की ख़बर दी। महामुनि लिखित का आगमन सुनकर मन्त्रियों के साथ पैदल आकर महाराज सुद्युम्न ने मुनि से कहा—भगवन्! आप कैसे पधारे? जो आज्ञा हो, उसका पालन करूँ। महात्मा लिखित ने कहा—महाराज! आपने मेरी आज्ञा का पालन करने की प्रतिज्ञा की है, अतएव मैं जो कुछ कहूँ उसके विरुद्ध न कीजिएगा। मैंने बड़े भाई की आज्ञा के बिना उनके आश्रम के फल खाकर चोरी का काम किया है, आप शीघ्र मुझे उसका दण्ड दीजिए। तब सुद्युम्न ने कहा—भगवन्! राजा जिस तरह अपराधी को दण्ड दे सकता है उसी तरह उसका अपराध क्षमा भी कर सकता है। आप पवित्र और व्रतधारी हैं। हमारी आज्ञा से आप अपने दोष से मुक्त हो गये। अब और जो कुछ आज्ञा हो उसको कहिए।

३०

व्यासदेव ने कहा—हे धर्मराज! महात्मा सुद्युम्न के यह कहने पर द्विजवर लिखित ने और कुछ तो कहा नहीं, किन्तु दण्ड देने के लिए राजा से बारम्बार अनुरोध किया। तब महाराज सुद्युम्न ने उन महात्मा के दोनों हाथ कटवा दिये। महात्मा लिखित इस प्रकार दण्ड लेकर बड़े भाई शङ्ख के पास गये और दुःखित होकर बोले—भगवन्! राजा ने मुझे यह दण्ड दिया है। अब आप मेरा अपराध क्षमा कीजिए। तब शङ्ख ने कहा—भैया, न तो मैं तुम पर कुपित हूँ और न तुमने मेरा कुछ अपराध ही किया है, किन्तु तुमको धर्म का उल्लङ्घन करते देखकर मैंने तुम्हारे पाप का प्रायश्चित्त करा दिया है। अब तुम बाहुदा नदी पर जाकर विधिपूर्वक देवताओं, ऋषियों और पितरों का तर्पण करो। अब कभी अधर्म न करना। शङ्ख के वचन सुनकर महात्मा लिखित उसी समय

पवित्र बाहुदा नदी में स्नान करके तर्पण करने लगे। तर्पण करने का इरादा करते ही उनके, ४८ कमल के समान, दोनों हाथ फिर ज्यों के त्यों हो गये। यह देखकर लिखित को बड़ा अचरज हुआ। उन्होंने अपने दोनों हाथ बड़े भाई शङ्ख को जाकर दिखलाये। शङ्ख ने कहा—भैया, इस आश्चर्य न करो। यह सब हमारे तप के प्रभाव से हुआ है। भाई की बातें सुन-कर महात्मा लिखित ने कहा कि यदि आपके तप का ऐसा प्रभाव है तो राजा के पास न भेज-कर आपने स्वयं मुझे क्यों नहीं पवित्र कर लिया? शङ्ख ने कहा—भैया, तुम्हें दण्ड देने का अधिकार हमको नहीं है। इसी से तुमको राजा के पास भेजा था। अब तुमको दण्ड देने-वाला राजा और पितरों सहित तुम पवित्र हो गये।

वेदव्यास ने कहा—हे धर्मराज! महाराज सुद्युम्न ने इस प्रकार महात्मा लिखित को दण्ड देकर दक्ष प्रजापति की तरह सिद्धि प्राप्त की। अतएव प्रजा का पालन और दण्ड का विधान ही क्षत्रियों का श्रेष्ठ धर्म है। मूँड़ मुँड़ाकर वन को चला जाना क्षत्रियों को उचित नहीं। अब तुम शोक छोड़कर अर्जुन के हितकारी वचन सुनो। ४५

चौबीसवाँ अध्याय

युधिष्ठिर से व्यासजी का राजधर्म कहना और उन्हें प्रजा-पालन का उपदेश करना

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, महर्षि वेदव्यास ने राजा युधिष्ठिर से फिर कहा—धर्मराज, तुम्हारे भाइयों ने वन में रहते समय जो इच्छाएँ की थीं अब उनको सफल होने दो। अब तुम नहुष-पुत्र ययाति की तरह पृथिवी का राज्य करो। तुम्हारे भाइयों ने वन में रहकर बड़े दुःख से दिन काटे हैं, अब सुख भोगो। कुछ दिन भाइयों के साथ धर्म, अर्थ और काम का भोग करके वन को चले जाना। तुम पहले अतिथि, पितर और देवगण के ऋण से उऋण हो जाओ, फिर जो इच्छा हो सो करना। पहले सर्वमेध और अश्वमेध यज्ञ करके तब वानप्रस्थी होना तुम्हारे लिए श्रेयस्कर है। भाइयों के साथ दान-दक्षिणा सहित यज्ञ करने से संसार में तुम्हारा बड़ा नाम होगा।

और सुनो, तुमको क्षत्रिय-धर्म का उपदेश करता हूँ। इस उपदेश के अनुसार काम करने से तुम कभी धर्म से भ्रष्ट नहीं होगे। दूसरों का धन हरनेवाले चोरों के स्वभाव के अनुरूप ही राजा को युद्ध आदि कामों में लगाते हैं। जो राजा पण्डितों के विचार से चोरों को १५ भी छोड़ देता है वह पाप का भागी नहीं होता। जो राजा 'कर' से छठा हिस्सा लेकर प्रजा की रक्षा नहीं करता वह प्रजा के पापों का एक चौथाई हिस्सेदार होता है।

राजधर्म का उल्लङ्घन करने से राजा अधर्मी और उसके अनुसार चलने से बेखटके हो जाता है। जो राजा काम और क्रोध को जीतकर शास्त्र के अनुसार प्रजा को समान भाव से देखता है वह कभी पाप का भागी नहीं होता। यदि राजा दैवयोग से किसी काम को न कर सके तो उसे उसका दोष नहीं लगता। चाहे बल से चाहे अपनी बुद्धि से, शत्रुओं को दबाये रहना राजा का कर्तव्य है। राज्य में पाप न होने देना चाहिए; जहाँ तक हो सके धर्म की उन्नति करने का यत्न करे। वीरों और सज्जनों तथा विद्वान् ब्राह्मणों का सम्मान और वैश्यों की रक्षा करना राजा का कर्तव्य है। गुणवान् और जानकार मनुष्य को ही धर्म-कार्य तथा व्यवहार में नियुक्त करना चाहिए। बुद्धिमान् राजा को बहुगुण-सम्पन्न एक ही मनुष्य की सलाह से कोई काम न करना चाहिए। जो राजा प्रजा का पालन करने में असमर्थ, ईर्ष्या और अभिमान के अधीन तथा मान्य लोगों के सम्मान से विमुख होता है वह पाप से युक्त होकर समाज में उद्दण्ड कहलाता है। जो राजा प्रजा की रक्षा नहीं कर सकता और अवृष्टि आदि से पीड़ित तथा चोरों
२० के भय से भीत प्रजा का बचाव नहीं कर सकता वह घोर पापी होता है। अच्छी सलाह और अच्छी नीति के अनुसार पुरुषत्व करने से कोई अधर्म नहीं होता। पुरुषत्व के साथ कोई काम करने पर यदि दैव के कोप से उसकी सिद्धि न हो तो उसमें राजा को कुछ पाप नहीं होता।

हे धर्मराज, अब तुमको राजर्षि हयग्रीव का इतिहास सुनाता हूँ। राजा हयग्रीव ने शत्रुओं को जीतकर प्रजा का पालन करके संसार में बड़ी कीर्ति प्राप्त की थी। वे अकेले शत्रुओं को मारकर अन्त को स्वयं संग्राम में शत्रुओं के हाथ से मारे गये। राजा हयग्रीव ने ऐसी युद्धरूप आग में शत्रुओं की आहुति दी जिसमें कि धनुष ही यूप था, पशुओं के बाँधने की रस्सी प्रत्यञ्चा थी, बाण स्रुक् थे, खड्ग स्रुवा था, रक्त ही घी था, रथ वेदी स्वरूप था और चारों होताओं के स्थान में चारों घोड़े थे। इस प्रकार राजा हयग्रीव ने पापों से बचकर देवलोक में आनन्द किया। उन्होंने अभिमान को छोड़कर बुद्धि, बल और नीति की निपुणता से राज्य
३० की रक्षा की और अनेक यज्ञ करके संसार में नाम पैदा किया था। उन्होंने सांसारिक और पारलौकिक सभी कामों को असाधारण उत्साह से और अभिमानशून्य होकर किया और दण्ड-नीति की सहायता से राज्य किया था। वे विद्वान्, श्रद्धावान्, त्यागी और कृतज्ञ थे। संसार में अनेक शुभ काम करते हुए शरीर को त्यागकर अन्त को वे मेधावी, विचक्षण, साधुसम्मत पुरुषों के लोक को गये। उन्होंने वेद और शास्त्रों को पढ़कर चारों वर्णों को अपने-अपने धर्म में स्थापित किया था। उन्होंने यज्ञ में सोम-पान किया, ब्राह्मणों को दान और प्रजा को उसके अपराध के अनुसार दण्ड दिया था। इन महात्मा का चरित बड़ा विचित्र और प्रशंसनीय है। विद्वान् सज्जनों ने उनकी प्रशंसा की है। हे युधिष्ठिर, उन पुण्यवान् ने वीरजनोचित
३४ लोकों पर अधिकार करके सिद्धि प्राप्त की है।

पच्चीसवाँ अध्याय

व्यासजी का युधिष्ठिर से सेनजित् का इतिहास और राजधर्म कहना

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, वेदव्यास का उपदेश सुनकर और अर्जुन को कुपित देखकर युधिष्ठिर ने व्यासजी से कहा—हे ऋषिश्रेष्ठ, अब मुझे पृथिवी का राज्य और संसार के विविध भोग कुछ भी पसन्द नहीं। पुत्र और पति से हीन स्त्रियों का रोना सुनकर मेरा चित्त बहुत घबरा जाता है। मुझे किसी तरह शान्ति नहीं मिलती।

धर्मराज के वचन सुनकर योगिराज वेदव्यास ने कहा—राजन्, यज्ञ आदि कर्मों के करने से कोई लाभ नहीं है और कोई किसी को कुछ दे-ले नहीं सकता। विधाता ने जिसको जिस वस्तु के मिलने का जो समय निश्चित कर दिया है उसी समय उसको वह वस्तु अनायास मिल जाती है। समय आने के पहले बुद्धिमान् शास्त्रज्ञ मनुष्य भी किसी वस्तु को नहीं प्राप्त कर सकता और समय आने पर निरा मूर्ख अयोग्य मनुष्य भी बहुत सा धन प्राप्त कर लेता है। इससे स्पष्ट है कि कार्य समय की अपेक्षा करता है। जब तक समय अनुकूल नहीं होता तब तक क्या शिल्प, क्या मन्त्र और क्या औषध कुछ भी सफल नहीं होता। समय अनुकूल होने पर ये सब अनायास सिद्ध होने लगते हैं। समय आने पर हवा प्रचण्ड वेग से चलती है, बादल पानी बरसाते हैं, वृक्ष फूलते हैं, पानी में कमल पैदा होते हैं, रात अँधेरी और उजेली होती है और समय आने पर ही चन्द्रमा सोलह कलाओं से परिपूर्ण होता है। समय के अनुकूल न होने पर वृक्षों में फूल-फल, नदियों में प्रबल वेग, पशु-पक्षी और सर्पों में मत्तता, तथा स्त्रियों में गर्भ-धारण नहीं होता; समय अनुकूल न हो तो ग्रीष्म, वर्षा और शिशिर आदि ऋतुओं का समागम, प्राणियों का जन्म-मरण, बालकों की मधुर भाषा, पुरुषों की युवा अवस्था, बीज से अङ्कुर की उत्पत्ति, सूर्य का उदय और अस्त तथा चन्द्रमा और समुद्र की ह्रास-वृद्धि यह कुछ भी नहीं हो सकता।

हे युधिष्ठिर, इस विषय में सेनजित् राजा का प्राचीन इतिहास सुनो। इस राजा ने दुःखी होकर कहा था कि दुर्निवार काल की गति को मेटने में कोई समर्थ नहीं है। काल-पाश में पड़े हुए सभी राजाओं को एक दिन काल के मुँह में जाना पड़ता है। मनुष्यों को मनुष्य मारते हैं, यह केवल संसारी कहावत है। न कोई किसी को मारता है और न कोई किसी से मारा जाता है। प्राणियों का जन्म-मरण होना स्वाभाविक बात है। मूर्ख लोग धन के नष्ट होने तथा पिता, पुत्र और स्त्री आदि के मरने पर हाय-हाय करके अपने दुःख को प्रकाश करते हैं। तुम उन मूर्खों की तरह शोक से पीड़ित होकर क्यों जलते हो? देखो, दुःखी होने से दुःख और भयभीत होने से भय बढ़ता है। यह सम्पूर्ण पृथिवी हमारी है और उनकी हमारी है ऐसी

दूसरों की भी है तथा अपना शरीर भी अपना नहीं है, पण्डित लोग इस तरह समझकर कभी मोहित नहीं होते। इस संसार में हज़ारों शोक के विषय और सैकड़ों हर्ष के विषय प्रतिदिन मौजूद रहते हैं। मूर्ख लोग हमेशा उनमें फँसे रहते हैं और समझदार लोग कभी उनको अपने
२० पास फटकने नहीं देते। पहले जो वस्तु प्रिय रहती है वही, कुछ दिनों के बाद, अप्रिय हो जाती है और अप्रिय वस्तु, किसी समय, प्रिय हो जाती है। इसी तरह सुख और दुःख प्राणियों में भ्रमण किया करते हैं। इस संसार में सुख नहीं, केवल दुःख ही दुःख है। इससे मनुष्य को हमेशा दुःख भोगना पड़ता है। दुःख का न होना ही सुख है। आशा पूरी न होने पर दुःख होता है। न कोई मनुष्य हमेशा दुखी रहता है और न कोई हमेशा सुखी रहता है। इसलिए जो मनुष्य हमेशा सुखी रहना चाहता हो वह सांसारिक दुःख और सुख दोनों को जीत ले। जिसके कारण शोक और दुःख सहन करना पड़े उसका त्याग, साँप से काटी हुई उँगली की तरह, अवश्य कर देना चाहिए। सुख-दुःख, प्रिय-अप्रिय जो कुछ आ जाय उसको धैर्य के साथ सहना चाहिए। पुत्र, स्त्री आदि का थोड़ा भी प्रिय काम न करने से जाना जा सकता है कि उनमें कौन किस स्वार्थ से अपना है। जो हो, इस संसार में जो निरे मूर्ख हैं अथवा उद्भट बुद्धिमान् हैं वही सुखी रहते हैं; मध्यम श्रेणी के मनुष्य हमेशा क्लेश सहते रहते हैं। सुख-दुःख के अनुभवी महात्मा सेनजित् ने ये सब बातें कही हैं।

जो लोग किसी दुःख से दुखी होते हैं वे कभी सुखी नहीं रह सकते; क्योंकि यह तो
३० असम्भव है कि संसार में दुःख का अन्त हो जाय। दुःख का सिलसिला नहीं टूटता। सभी को भाग्यवश दुःख-सुख, हानि-लाभ, विपद्-सम्पद् और जन्म-मरण होता रहता है। इसी से विद्वान् लोग कभी हर्ष-विषाद नहीं करते। युद्ध करना राजाओं का यज्ञ है, राज्य-कार्य में दण्डनीति का प्रयोग करना ही 'योग' है और यज्ञ में धन का त्याग करना ही 'संन्यास' है। राजा के लिए अहङ्कार-शून्य होकर यज्ञ करना, नीति के अनुसार बुद्धिपूर्वक राज्य की रक्षा करना, धर्म के अनुसार सबको समान देखना, संग्राम में विजयी होना, यज्ञ में सोमरस पीना, प्रजा की उन्नति का ध्यान रखना, युक्ति से दण्ड देना, वेद और शास्त्र का अध्ययन करना, चारों वर्णों को अपने-अपने धर्म में लगाना और संग्राम में शत्रुओं के हाथ मारा जाना धर्म है। राजा इन धर्मों का पालन करने से अन्त को स्वर्ग प्राप्त करता है। महाराज, जिस राजा के मरने पर उसकी
३६ प्रजा और मन्त्री लोग उसके गुणों का वर्णन करते हैं वही श्रेष्ठ राजा है।

छब्बीसवाँ अध्याय

युधिष्ठिर का अर्जुन को समझाना

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, इसके बाद उदार-बुद्धि धर्मराज विनीत वचनों से अर्जुन से कहने लगे—धनञ्जय, तुम्हारी राय में धन से बढ़कर कोई पदार्थ नहीं है और निर्धन लोगों को सुख और स्वर्ग कुछ भी नहीं मिलता; किन्तु यह तुम्हारी समझ ठीक नहीं है। अनेक लोग वेद पढ़कर यज्ञ और तप करके अक्षयलोक को गये हैं। ऋषियों की तरह वेद पढ़नेवाले सर्व-धर्मज्ञ ब्रह्मचारियों को देवताओं ने ब्राह्मण कहा है। महर्षियों में कोई विद्वान्, कोई ज्ञानी और कोई धर्मात्मा हुए हैं। वानप्रस्थी मुनियों के मत में, ज्ञाननिष्ठ महात्माओं के वचनानुसार, राज्य करना उचित है। बालखिल्य, प्रश्नि, सिकत, अरुण और केतुमान आदि ऋषि स्वाध्याय के प्रभाव से देवलोक को गये हैं। मैं कह चुका हूँ कि दान, यज्ञ, अध्ययन और इन्द्रिय-निग्रह आदि वेदोक्त कर्म करने से मनुष्य दक्षिणायन मार्ग से स्वर्ग को जाता है और उत्तरायण का जो मार्ग है उससे योगी लोग अक्षयलोक को जाते हैं। प्राचीन लोगों ने इन दोनों मार्गों में उत्तरायण मार्ग की विशेष प्रशंसा की है। १८

हे अर्जुन, सन्तोष से सब कुछ प्राप्त हो सकता है और सन्तोष ही परम सुख है। सन्तोष से बढ़कर कुछ नहीं है। जिन्होंने क्रोध और हर्ष को जीत लिया है वही सन्तोष का सुख पा सकते हैं। सन्तोष ही उत्तम सिद्धि है। इस विषय में राजा ययाति जो कह गये हैं वह मैं तुमको सुनाता हूँ। उसके समझने से मनुष्य के सब काम, कछुए के अङ्गों की तरह, अपने के अन्तर्गत हो जाते हैं। जब मनुष्य न स्वयं डरता है और न दूसरों को डराता है और जब इच्छा-द्वेष को छोड़कर मन-वचन-कर्म से पाप नहीं करता तभी ब्रह्म को प्राप्त होता है। जिसने अभिमान और मोह को वश में कर लिया है और जिसने पुत्र-स्त्री आदि कुटुम्ब का त्याग कर आत्मज्ञान प्राप्त किया है वही मुक्त हो सकता है। अर्जुन! इस संसार में कोई धर्म, कोई सदाचार और कोई धन की इच्छा करता है। धन माँगकर यज्ञ करने की अपेक्षा यज्ञ का न करना ही अच्छा है। माँगना महापाप है। मैं तो यह प्रत्यक्ष देखता हूँ और तुम भी देख सकते हो। जिसको हमेशा धन-संग्रह करने की इच्छा रहती है वह कभी सत्कर्म नहीं कर सकता। दूसरों का अपकार किये बिना धन नहीं मिल सकता और धन मिलने पर हमेशा भय बना रहता है। जो दुराचारी है और जिसे भय और शोक भी नहीं है वह थोड़े धन के लोभ से ब्रह्महत्या भी कर डालता है। यदि नौकरों को मालिक धन नहीं देता तो उनको अप्रसन्न होते हैं और जो देता रहता है वह फ़ज़ूल ख़र्च करनेवाला कहलाता है। निरन्तर धनियों को चोरों का भय बना रहता है; किन्तु निर्धन मनुष्यों को इन बातों का कोई डर नहीं है। न उनकी कोई निन्दा

करता है और न उनको चोरों का ही डर रहता है। वे धर्म-कर्म के लिए थोड़ा सा धन जमा रखने में भी सङ्कोच करते हैं कि इसका कहीं उन्हें लालच न हो जाय।

हे अर्जुन, पण्डितों ने यज्ञ के विषय में जैसा कहा है वह सुनो। विधाता ने यज्ञ के लिए धन, और धन की रक्षा के लिए पुरुषों की सृष्टि की है। इससे यज्ञ में धन ख़र्च करना चाहिए। भोग-विलास में उसको ख़र्च कर डालना उचित नहीं। यज्ञ के लिए मनुष्यों को धन मिला है, इसलिए अनेक लोगों का कहना है कि धन पर किसी का अधिकार नहीं है। श्रद्धा और भक्ति के साथ यज्ञ करना और धन-दान करना सभी का कर्तव्य है। पैदा किये हुए धन का दान कर देना ही बतलाया गया है, उसे भोग-विलास में उड़ा देने की आज्ञा नहीं है। दानरूप उत्तम कार्य विद्यमान होने पर धन का संग्रह करना अनुचित है। दान करना और उसके लिए सत्पात्र का विचार करना चाहिए। धर्मभ्रष्ट दुराचारी मनुष्य को जो विना विचारे दान देता है उसको मरने पर सौ वर्ष तक विष्ठा खाना पड़ता है। अतएव पात्र-अपात्र के विचार करने का बन्धन होने से दान-धर्म भी बहुत कठिन है। अयोग्य को दान देना और योग्य को न देना—दान देने में ये दो बाधाएँ हैं। ३१

सत्ताईसवाँ अध्याय

व्यासजी का युधिष्ठिर से क्षात्रधर्म का वर्णन करना

युधिष्ठिर ने कहा—भगवन्! बालक अभिमन्यु, द्रौपदी के पाँचों पुत्र, धृष्टद्युम्न, महाराज द्रुपद, विराट, धर्मात्मा कर्ण, राजा धृष्टकेतु तथा और भी अनेक देशों के राजा संग्राम में मारे गये हैं। उनके शोक से मैं अधीर हो रहा हूँ। हाय, मैंने अपने कुटुम्ब का विनाश करा दिया। मैं राज्य का लोभी और नराधम हूँ। जिन्होंने मुझे गोद में लेकर लाड़-प्यार किया था उन्हीं पितामह को मैंने राज्य के लोभ से युद्ध में मरवा डाला। युद्ध में शिखण्डी से देखे जा रहे, वज्राहत पर्वत के समान, अर्जुन के बाणों से घायल, बूढ़े सिंह की तरह पितामह को देखकर मेरा हृदय पीड़ित हो गया था। उस समय उनको अत्यन्त दुखी और चकराकर रथ से गिरते देखकर मैंने अपने को घोर पापी समझा था। जिन्होंने धनुष-बाण लेकर कुरुक्षेत्र में कई दिनों तक परशुरामजी के साथ युद्ध किया था, जिन्होंने काशिराज की कन्याओं का हरण करते समय रथ पर सवार होकर अकेले ही असंख्य राजाओं को युद्ध के लिए ललकारा था, जिनके अस्त्रों से दुर्धर्ष चक्रवर्ती राजा उग्रायुध भस्म हो गया था, उन्हीं महात्मा पितामह को मैंने संग्राम में मरवा डाला। जिस समय युद्ध में शिखण्डी को अपने सामने देखकर पितामह बाण नहीं चला रहे थे उसी समय अर्जुन ने उन्हें बाणों से मारकर रथ से गिरा दिया। पितामह को ख़ून से लथपथ पृथिवी पर गिरा हुआ १०

देखकर उस समय मेरे हृदय पर जो बीती थी वह मुँह से कही नहीं जा सकती। जिन्होंने बालकपन में मेरा पालन-पोषण किया और जो हमेशा मेरी रक्षा करते रहे, उन्हीं को मैंने राज्य के लोभ से युद्ध में मरवा डाला। थोड़े दिनों के राज्य के लोभ से परम गुरु पितामह को मरवाकर मैंने कितना भारी पाप किया है।

हाय, मैंने सब राजाओं से पूजित महात्मा द्रोणाचार्य को, झूठ बोलकर, धोखा दिया है। उन्होंने ठीक-ठीक हाल जानने के लिए मुझसे पूछा कि हे धर्मराज, मेरा बेटा जीवित है या नहीं, सच बतलाओ। तब मैंने राज्य के लोभ से 'अश्वत्थामा मारा गया' यह साफ़ शब्दों में कहकर फिर धीरे से कह दिया कि 'हाथी मारा गया'। अब उस बात का स्मरण करके मेरा शरीर भस्म हो रहा है। मालूम नहीं, मरने पर मुझे इस घोर पाप के फल से किस लोक को जाना पड़े।

हाय, जब युद्ध में बड़े भाई कर्ण को मैंने मरवा डाला तब मेरे समान पापी संसार में दूसरा कौन होगा? पहाड़ पर उत्पन्न सिंह के बच्चे की तरह बालक अभिमन्यु को मैंने द्रोणाचार्य से रक्षित व्यूह में प्रवेश करने की जब से आज्ञा दी है तब से श्रीकृष्ण और अर्जुन के सामने आँख उठाते मुझे झेंप मालूम होती है। २० पाँचों पुत्रों से हीन द्रौपदी को, पाँचों पहाड़ों से शून्य पृथिवी की तरह, देखकर मेरे हृदय में आग-सी जल उठती है। यह सब क्षत्रियों के वंश का नाश आदि अनर्थ मेरे कारण हुआ है। इसलिए अब मैं इसी जगह अनशन करके, शरीर सुखाकर, प्राण त्याग दूँगा। फिर मुझे किसी जाति में जन्म लेकर वंश का नाश नहीं करना पड़ेगा। अब मैं विनीत भाव से तुम लोगों से कहता हूँ कि तुम मुझे प्राण त्यागने की अनुमति देकर चाहे जहाँ चले जाओ।

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, इसके बाद तपस्वियों में श्रेष्ठ वेदव्यासजी ने धर्मराज को शोक से व्याकुल देखकर कहा—महाराज, तुमको अधिक सोच न करना चाहिए। हम फिर तुमको उपदेश करते हैं। पानी के बुलबुले की तरह संसार में जीव उत्पन्न होते और नष्ट हो जाते हैं। सभी पदार्थों का अन्त होता है। सभी संग्रहों का एक दिन नाश होता है; उन्नति की भी ३० एक दिन अवनति होती है; संयोग का वियोग निश्चित है और जीवन के साथ मृत्यु का गठजोड़ा बँधा हुआ है। सुख के लिए आलस्य में समय बिता देने से अन्त को दुःख भोगना पड़ता है और दुःख सहकर बुद्धिमानी से काम करने पर सुख मिलता है। बुद्धिमान मनुष्य ही ऐश्वर्य, श्री, लज्जा, धैर्य और कीर्ति पा सकता है; आलसी कभी नहीं पा सकता। बन्धु-बान्धवों से भी कोई सुखी नहीं हो सकता, शत्रुओं से ही कोई दुःखी नहीं होता, निरी बुद्धि से धन नहीं मिल सकता और केवल धन ही किसी के सुख का कारण नहीं हो सकता। हे धर्मराज, विधाता ने कर्म करने के लिए ही तुम्हें उत्पन्न किया है, इसलिए कर्म करो। कर्म त्यागने का तुम्हें अधिकार नहीं है। ३५

अट्ठाईसवाँ अध्याय

व्यासदेव का युधिष्ठिर से अश्मा और जनक का संवाद कहना और उन्हें
क्षत्रिय-धर्म का उपदेश देना

वैशम्पायन कहते हैं कि धर्मराज जाति-वध के शोक से व्याकुल होकर प्राण छोड़ने को तैयार हो रहे थे। उन्हें समझाने को व्यासजी कहने लगे—हे धर्मराज! इस विषय में अश्मा नाम के एक महात्मा ब्राह्मण जो कह गये हैं वह प्राचीन इतिहास सुनो। एक बार राजा जनक ने दुःख और शोक से पीड़ित होकर महात्मा अश्मा से पूछा—भगवन्, कुटुम्ब और सम्पत्ति की वृद्धि तथा विनाश होने पर मनुष्य किस दशा में रहकर अपना कल्याण कर सकता है?

यह सुनकर मतिमान् अश्मा ने कहा—राजन्, मनुष्य का जन्म होते ही सुख और दुःख उसे घेर लेते हैं। इन दोनों में कोई एक पैदा होते ही मनुष्य की बुद्धि को, हवा के झोंके से बादल की तरह, हर लेता है। जन्म के बाद मनुष्य के मन में धीरे-धीरे 'मैं साधारण मनुष्य नहीं हूँ, मैं कुलीन और बड़ा आदमी हूँ' यह अहङ्कार पैदा होता है। इसी अहङ्कार के प्रभाव से वह भोग-विलास में आसक्त होकर बाप-दादे के सञ्चित धन को विलासिता में उड़ाकर अन्त को चोरी के पेशे को अच्छा समझने लगता है। तब जिस तरह बहेलिया हिरन को बाण से मार डालता है उसी तरह राजा उस कुमार्गगामी मनुष्य का वध कर डालता है। जो मनुष्य बीस या तीस वर्ष की अवस्था में कुमार्ग पर चलने—चोरी करने—लगता है वह सौ वर्ष तक १० नहीं जी सकता। दरिद्रता के कारण इसी तरह दुःख भोगना पड़ता है। अतएव दूसरे मनुष्यों का व्यवहार देखकर अपने दुःखों के हटाने का उपाय करना चाहिए। बुद्धि का भ्रम और अनिष्ट का होना, मानसिक दुःख के यही दो कारण हैं। संसार में इन्हीं दो कारणों से मनुष्यों को अनेक प्रकार के दुःख मिलते हैं। बुढ़ापा और मौत, भेड़िये की तरह, मनुष्यों का संहार करती है। बलवान् और निर्बल, छोटा और बड़ा, कोई भी बुढ़ापे और मौत को नहीं जीत सकता। जिन लोगों ने सारी पृथ्वी को जीत लिया है वे भी इन दोनों को अपने वश में नहीं कर सकते। सुख या दुःख जो कुछ आ जाय उसे मनुष्य को शान्ति से सह लेना चाहिए। उनके टालने का कोई उपाय नहीं है। क्या बाल्यावस्था, क्या युवा अवस्था और क्या बुढ़ापा, किसी अवस्था में भी मनुष्य 'जरा'-मृत्यु के भय से सुरक्षित नहीं रह सकता। अप्रिय का संयोग और प्रिय का वियोग, अर्थ और अनर्थ, सुख और दुःख, जन्म और मरण तथा लाभ और हानि, ये सब भाग्य के अधीन हैं। जिस तरह रूप, रस, गन्ध और स्पर्श स्वभावतः पैदा होते २० हैं उसी तरह मनुष्यों को भाग्यवश सुख और दुःख मिलते हैं। सभी प्राणी नियमित समय पर सोते, उठते-बैठते, चलते-फिरते और खाते-पीते हैं। समय के फेर से वैद्य रोगी, बलवान् निर्बल

और रूपवान् कुरूप हो जाते हैं। काल की गति बड़ी विचित्र है। भाग्य से अच्छे कुल में जन्म होता है और भाग्य से ही धन, सौन्दर्य, आरोग्य और भोग-विलास मिलते हैं। दरिद्र मनुष्यों के, इच्छा न करने पर भी, कितने ही लड़के पैदा होते हैं और धनिकों को बहुत चाह रखने पर भी लड़के का मुँह देखना नसीब नहीं होता। रोग, अग्नि, जल, शस्त्र, भूख, विष और ज्वर से अथवा वृक्ष आदि ऊँची जगह से गिरकर जिस तरह जिसकी मौत बदी है वह उसी तरह मरेगा। विधाता का विधान बड़ा विचित्र है। भाग्य द्वारा जिसके लिए जो रास्ता बना दिया गया है वह उसी रास्ते पर चलता है। न उसे लाँघ सकता है और न उससे छुटकारा पा सकता है। इस संसार में कुलीन और धनवान् मनुष्य युवावस्था में ही, कीड़े-मकोड़े की भाँति, मरते देखे जाते हैं और जो दरिद्र हैं वे दुःख सहते हुए सौ वर्ष तक जीते रहते हैं। धनवान मनुष्यों में भोजन पचाने की शक्ति नहीं रहती और दरिद्र लोग, जिन्हें कठिनता से भोजन मिलता है, काठ भी पचा सकते हैं। दुष्ट लोग काल से प्रेरित होकर, असन्तोष-वश, पाप करते हैं। विद्वान मनुष्य भी (२०) प्रायः शिकार, जुआ, पर-स्त्री-गमन, मद्यपान और युद्ध आदि कुकर्म करते देखे जाते हैं। महाराज, इसी तरह समय आने पर भले और बुरे परिणाम मनुष्यों को भोगने पड़ते हैं। भाग्य के सिवा कोई इसका कारण नहीं मालूम होता। जिसने वायु, आकाश, अग्नि, चन्द्र, सूर्य, दिन, रात, नक्षत्र, नदी और पर्वत की सृष्टि की है और जो इनका पालन करता है वही मनुष्यों के हृदय में सुख-दुःख पैदा करता है। जाड़ा, गरमी और वर्षा आदि ऋतुओं की भाँति मनुष्यों के सुख-दुःख निर्धारित समय पर आते और बदलते रहते हैं।

हे धर्मराज! मन्त्र, जप, होम और औषध द्वारा मनुष्यों की बुढ़ापे और मृत्यु से रक्षा नहीं हो सकती। जिस तरह समुद्र में काठ एक दूसरे से मिलते और बिछुड़ते रहते हैं उसी तरह संसार में प्राणियों का संयोग और वियोग हुआ करता है। जो लोग हमेशा गाना-बजाना सुनते और स्त्रियों के साथ विहार करते हैं तथा जो अनाथ होकर दूसरे का अन्न खाते हैं, उन सबके साथ यमराज एक सा बर्ताव करते हैं। संसार में माता, पिता, पुत्र और स्त्री आदि कुटुम्बियों की कमी नहीं है, किन्तु वास्तव में कोई किसी का नहीं है। शरीर छोड़ने पर किसी से कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता। भाई-बन्धुओं का समागम रास्ते में यात्रियों के मिलने-जुलने के समान थोड़े समय का है। मैं कौन हूँ? कहाँ रहता हूँ? कहाँ जाऊँगा? यहाँ क्यों रहता हूँ? क्यों शोक करता हूँ? इस तरह मन में विचार करके अपने चित्त को शान्त करे। यह संसार (३०) चक्र की तरह हमेशा घूमा करता है। अनित्य संसार में नित्य कुछ भी नहीं है।

परलोक को किसी ने देखा नहीं, किन्तु शास्त्र की आज्ञा के अनुसार चलना कल्याण चाहनेवाले मनुष्य परलोक के अस्तित्व पर विश्वास करके पितरों का श्राद्ध-तर्पण, यज्ञ आदि विविध कर्मों का अनुष्ठान और धर्म-अर्थ-काम का व्यवहार करते हैं। यह संसार [illegible]

अथाह समुद्र में डूबा हुआ है जिसमें जरा-मृत्यु-रूप ग्राह है, किन्तु यह किसी की समझ में नहीं आता। आयुर्वेद-विशारद अनेक वैद्य, रोगी होकर, कषायरस पीते और तरह-तरह के घी खाते हैं; किन्तु महासमुद्र के किनारे की तरह मृत्यु को पार नहीं कर सकते। रसायन के जाननेवाले लोग बुढ़ापा दूर करने के लिए अनेक ओषधियों का सेवन करते हैं; किन्तु बलिष्ठ हाथी से विदलित वृक्ष की भाँति बुढ़ापे से जीर्ण-शीर्ण हो ही जाते हैं। तपस्वी, विद्वान्, दानी और यज्ञ करनेवाले मनुष्य भी बुढ़ापे और मौत को नहीं जीत सकते। जो वर्ष, जो महीना, जो पक्ष और जो रात-दिन एक बार बीत जाते हैं वे दुबारा नहीं आते। अवश मनुष्य, समय के प्रभाव ५० से, असाधारण संसार-मार्ग को प्राप्त होते हैं। चाहें जीव से शरीर उत्पन्न होता हो, चाहे शरीर से जीव पैदा होता हो, कुछ भी हो, इस संसार में भाई-बन्धु, स्त्री-पुत्र आदि यात्री की तरह मिल जाते हैं। दूसरों के लिए क्या कहना है, अपने शरीर का साथ भी बहुत दिनों तक नहीं रहता। राजन्, इस समय तुम्हारे पिता और पितामह आदि कहाँ हैं? आज न तुम उनके दर्शन कर सकते हो और न वे तुमको देख सकते हैं। संसार में रहता हुआ मनुष्य स्वर्ग और नरक को नहीं देख सकता। शास्त्र ही सज्जनों के नेत्र हैं। शास्त्र के प्रभाव से ही वे सब कुछ देख सकते हैं। अतएव तुम उन्हीं शास्त्रों के वचनानुसार अपने कर्तव्य का पालन करो। पितृलोक, देवलोक और मर्त्यलोक के ऋण से उऋण होने के लिए मनुष्य को ब्रह्मचर्य, पुत्रोत्पादन और यज्ञ का अनुष्ठान अवश्य करना चाहिए। इसलिए हृदय से शोक-दुःख दूर करके पवित्र दृष्टि से ये सब काम करने से मनुष्य दोनों लोकों में सुखी हो सकता है। जो राजा राग-द्वेष छोड़कर धर्म पर टिका रहता है और न्याय के अनुसार धन उपार्जन करता है वह सब लोकों में यशस्वी होता है।

हे धर्मराज! महात्मा अश्मा के वचनों को सुनकर विदेहराज जनक शोक-सन्ताप छोड़कर, उनकी अनुमति से, घर को चले गये। अब तुम सोच-विचार छोड़कर प्रसन्न हो जाओ। तुमने क्षत्रियधर्म के अनुसार राज्य पर अधिकार प्राप्त किया है, स्वतन्त्रता से उसका भोग करो। ५९ उसका तिरस्कार करना उचित नहीं।

उनतीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण का युधिष्ठिर से नारद और सृञ्जय का उपाख्यान कहना

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, महात्मा वेदव्यास के इस प्रकार उपदेश करने पर जब धर्मराज ने कुछ उत्तर नहीं दिया तब मतिमान् अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा—मित्र! धर्मराज जाति-वध के शोक-सागर में डूब रहे हैं, आप इनको समझाइए। इनको इस दशा में देखकर

हम लोग फिर घोर विपत्ति में पड़ गये हैं। आप ही इनका शोक दूर कर सकते हैं। तब श्रीकृष्णजी ने धर्मराज युधिष्ठिर की ओर देखा। युधिष्ठिर बालकपन से, अर्जुन की अपेक्षा, श्रीकृष्ण को ज़्यादा प्यार करते हैं; वे कभी उनकी बातों का अनादर नहीं करते। वासुदेव ने चन्दन से शोभित, पत्थर के खम्भे के जैसा, धर्मराज का हाथ प्रसन्नतापूर्वक पकड़कर कहा—राजन्, आपको शोक से शरीर न सुखा देना चाहिए। इस संग्राम में जितने वीर मारे गये हैं वे, स्वप्न में देखे हुए धन की तरह, अब आपको नहीं मिल सकते। वे सब क्षत्रिय-धर्म के अनुसार युद्ध में वीरों के साथ लड़ते-लड़ते प्राण त्यागकर वीरजनोचित परम पवित्र धाम को चले गये। उनमें से किसी ने युद्ध से भागकर प्राण नहीं छोड़ा है, इसलिए आप उनके लिए सोच न कीजिए। १२

यहाँ मैं एक प्राचीन इतिहास कहता हूँ। तपस्वियों में श्रेष्ठ नारद ऋषि ने, पुत्र के शोक से विह्वल, सृञ्जय से कहा था—महाराज! क्या मैं, क्या तुम और क्या दूसरे लोग, सभी को सुख-दुःख भोग करके अन्त को शरीर त्यागना पड़ेगा। फिर तुम क्यों सोच करते हो? तुमको प्राचीन राजाओं का माहात्म्य सुनाता हूँ, ध्यान देकर सुनो। उसके सुनने से तुम्हारा शोक जाता रहेगा। जो मनुष्य इस माहात्म्य को सुनेगा वह दीर्घायु होगा और उसके अशुभ ग्रह शान्त हो जायँगे। अविक्षित के पुत्र महाराज मरुत्त बड़े भाग्यवान् थे। इन्द्र आदि देवता, देव-गुरु बृहस्पति के साथ, इनके यज्ञ में आये थे। महाराज मरुत्त ने लाग-डाँट से इन्द्र को भी परास्त कर दिया था। देवताओं के गुरु बृहस्पति ने, इन्द्र का प्रिय करने के लिए, जब महात्मा मरुत्त का यज्ञ कराना स्वीकार नहीं किया तब बृहस्पति के छोटे भाई महर्षि संवर्त ने उस काम को पूरा किया था। २० मरुत्त के शासनकाल में विना जोते पृथिवी में अन्न पैदा होता था। इनके यज्ञ में विश्वेदेवा सभासद् और साध्य तथा मरुद्गण परिवेष्टा हुए थे। देवताओं ने इस यज्ञ में यथेष्ट सोमरस पिया था। इस राजा ने देवताओं, मनुष्यों और गन्धर्वों को इतना दान दिया था कि वे उस दान की सामग्री को ले जाने में समर्थ नहीं हुए। हे सृञ्जय! यह राजा तुम्हारी अपेक्षा धार्मिक, ज्ञानी, वैराग्य-

वान्, प्रतापी और तुम्हारे पुत्र से भी पुण्यवान् था। जब उसको मौत ने नहीं छोड़ा तब तुम क्यों अपने पुत्र के लिए वृथा सन्ताप करते हो ?

महाराज सुहोत्र को भी काल का ग्रास होना पड़ा। इन्द्र ने इस राजा के राज्य में एक वर्ष तक सुवर्ण की वर्षा की थी। राजा सुहोत्र के शासनकाल में वसुमती (पृथिवी) सार्थक नामवाली थी अर्थात् धन-धान्य से भरपूर थी। उस समय नदियों में सोना बहता था। लोकपूजित देवराज ने नदियों में सोने के कछुए, केकड़े, नक्र, मकर और शिशुमार डलवा दिये थे। नदियों में हज़ारों सुवर्णमय कछुओं और मछलियों आदि को बहते देखकर महाराज सुहोत्र बड़े विस्मित हुए थे। उन्होंने इन सब जलचरों को पकड़वाकर सब का सब सोना कुरुजाङ्गल में इकट्ठा किया और एक बड़ा यज्ञ करके सब सोना ब्राह्मणों को दान कर दिया था। वे तुमसे बढ़कर धार्मिक, ज्ञानी, त्यागी, ऐश्वर्यवान् और तुम्हारे पुत्र से अधिक पुण्यवान् थे। जब उनको मौत से छुटकारा
३० नहीं मिला तब तुम क्यों यज्ञ न करनेवाले इस पुत्र के लिए वृथा शोक करते हो ?

अङ्ग देश के राजा बृहद्रथ को भी काल ने नहीं छोड़ा। इन्होंने एक बड़ा यज्ञ करके ब्राह्मणों को दस लाख सफ़ेद घोड़े, इतनी ही सुवर्ण से अलङ्कृत कन्याएँ, दिग्गज के समान दस लाख हाथी, सोने की मालाओं से सुसज्जित एक करोड़ बैल और एक हज़ार गायें दान की थीं। इन्होंने विष्णुपद नाम के पर्वत पर यज्ञ करके देवराज को सोमरस पिलाकर और ब्राह्मणों को दक्षिणा देकर छका दिया था। राजा बृहद्रथ ने क्रम से एक सौ यज्ञ करके देवताओं, मनुष्यों और गन्धर्वों को इतना दान दिया था कि जिसे वे ले नहीं जा सके। अङ्गराज ने अग्निष्टोम आदि सात यज्ञ करके जितना धन दान किया है उतना धन दान करनेवाला पुरुष न पहले कोई हुआ है और न आगे कोई होगा। हे सृञ्जय! राजा बृहद्रथ तुमसे बढ़कर धार्मिक, ज्ञानी, विरक्त, ऐश्वर्यवान् और तुम्हारे पुत्र से अधिक पुण्यात्मा थे। जब उनको भी शरीर छोड़ना पड़ा तब तुम क्यों पुत्र के लिए व्यर्थ सोच करते हो ?

उशीनर के पुत्र महात्मा शिवि को भी काल का ग्रास होना पड़ा। इस प्रतापी राजा
४० ने, रथ पर सवार होकर, समस्त भूमण्डल के राजाओं को जीत लिया था। इन्होंने यज्ञ करके तमाम पालतू गायें, घोड़े और अन्यान्य जङ्गली पशुओं का दान किया था। प्रजापति ने इनको अद्वितीय और धुरन्धर कहा था। शिवि के समान और कोई राजा न हुआ है और न होगा। हे सृञ्जय! इन्द्र के समान पराक्रमी राजा शिवि तुमसे अधिक बलवान्, धर्मात्मा, विषय-वासनाहीन, ऐश्वर्यवान् और तुमसे बढ़कर पुण्यवान् थे। जब वे मौत से न बच सके तब तुम क्यों अपने अयोग्य पुत्र के लिए वृथा शोक करते हो ?

शकुन्तला के गर्भ से उत्पन्न महाराज दुष्यन्त के पुत्र महात्मा भरत को भी काल के गाल में जाना पड़ा। इन्होंने यमुना के तट पर तीन सौ, सरस्वती के निकट बीस और गङ्गा-किनारे

चौदह घोड़े बाँधकर एक हज़ार अश्वमेध और एक सौ राजसूय यज्ञ किये थे। इनकी तरह कोई यज्ञ नहीं कर सकता। महाराज भरत के समान न कोई राजा हुआ है और न होगा। इन्होंने यज्ञ के अन्त में असंख्य घोड़ों का दान महर्षि कण्व को दिया था। हे सृञ्जय! महाराज भरत तुमसे बढ़कर धर्मात्मा, ज्ञानी, विरक्त, ऐश्वर्यवान् और तुम्हारे पुत्र से बढ़कर पुण्यवान् थे। जब वे इस संसार में न रहे तब तुम अपने पुत्र के मरने का व्यर्थ सन्ताप क्यों करते हो? ५०

दशरथ के पुत्र रामचन्द्रजी भी शरीर छोड़कर चले गये। महाराज रामचन्द्र ने पुत्र के समान प्रजा का पालन किया था। उनके शासनकाल में कोई स्त्री विधवा या अनाथ नहीं थी। ठीक समय पर पानी बरसता था। पृथिवी अन्न से भरपूर थी। कभी दुर्भिक्ष नहीं पड़ता था। अकाल-मृत्यु—अग्नि में जलने और पानी में डूबने आदि—तथा रोग का भय किसी को नहीं था। रामचन्द्र के राज्य में मनुष्य नीरोग रहकर हज़ार वर्ष तक जीते थे। सभी मनुष्य अपने-अपने धर्म के पक्के थे। पुरुषों में परस्पर विवाद होने की बात कौन कहे, स्त्रियों में तक कभी लड़ाई-झगड़ा नहीं होता था। सब प्रजा सत्य बोलनेवाली, सन्तुष्ट, निडर और स्वतन्त्र थी। वृक्ष ठीक समय पर फूलते-फलते थे। गायें घड़े भर दूध देती थीं। महाराज रामचन्द्र ने चौदह वर्ष वन में रहने के बाद दस अश्वमेध यज्ञ किये थे। उनका सुन्दर शरीर, युवावस्था, साँवला रङ्ग, लाल आँखें, जाँघ तक लम्बी भुजाएँ, सुन्दर प्रसन्न मुख, सिंह के से कन्धे और हाथी के समान पराक्रम था। महाराज रामचन्द्र ने ग्यारह हज़ार वर्ष तक अयोध्या का राज्य किया था। ६० वे महात्मा तुमसे बढ़कर धार्मिक, ज्ञानी, निर्लोभ, ऐश्वर्यवान् और तुम्हारे पुत्र से बढ़कर पुण्यवान् थे। जब उन्होंने शरीर त्याग दिया है तब तुम क्यों पुत्र के लिए सन्ताप करते हो?

राजा भगीरथ को भी शरीर छोड़ना पड़ा था, जिनके यज्ञ में सोमरस पीकर इन्द्र ने मतवाले होकर अपने बाहु-बल से हज़ारों असुरों को परास्त किया था। राजा भगीरथ ने यज्ञ में सोने से विभूषित दस लाख कन्याएँ दक्षिणा-स्वरूप दान की थीं। प्रत्येक कन्या को चार घोड़ों के रथ पर सवार कराया; प्रत्येक रथ के पीछे सोने की मालाएँ पहनाये हुए एक सौ हाथी, प्रत्येक हाथी के पीछे एक हज़ार घोड़े, प्रत्येक घोड़े के पीछे एक हज़ार गायें और प्रत्येक गाय के पीछे एक हज़ार बकरियाँ साथ कर दी थीं। एक बार राजा भगीरथ गङ्गा-किनारे बैठे थे। उनकी गोद में गङ्गा चढ़ गई। इसी से गङ्गा का नाम उर्वशी हुआ और भगीरथ को पिता मान लेने से आज तक उनका नाम भागीरथी चला आ रहा है। हे सृञ्जय! महात्मा भगीरथ तुमसे बढ़कर धर्मात्मा, ज्ञानी, त्यागी तथा ऐश्वर्यवान् और तुम्हारे पुत्र की अपेक्षा पुण्यवान् थे। जब उन्होंने शरीर त्याग दिया तब तुम अपने पुत्र के लिए क्यों वृथा शोक करते हो? ७०

महाराज दिलीप को भी कराल काल ने नहीं छोड़ा। ब्राह्मण लोग आज भी इनके चरित का वर्णन करते हैं। राजा दिलीप ने यज्ञ करके ब्राह्मणों को धन-धान्य समेत पृथ्वी का

दान कर दिया था। उनके पुरोहित को प्रत्येक यज्ञ में सुवर्णमय एक हज़ार हाथी दक्षिणा में मिले थे। उनके यज्ञ में बड़ा भारी सोने का खम्भा खड़ा किया गया था। इन्द्र आदि देवताओं ने उस यज्ञशाला में उपस्थित होकर यज्ञ का सब काम किया था। गन्धर्वराज विश्वावसु ने वहाँ स्वयं वीणा बजाई थी और देवताओं तथा गन्धर्वों का नाच हुआ था। इससे लोगों को बड़ा आनन्द हुआ था। दिलीप की तरह आज तक कोई राजा कार्य नहीं कर सका। महाराज दिलीप के हाथी सोने के गहने पहने हुए रास्ते में सोते थे। जिस किसी ने सत्यवादी महात्मा दिलीप को देखा था वह भी स्वर्ग को चला गया। उनके घर में वेदपाठ की ध्वनि, धनुष की प्रत्यञ्चा का टङ्कार और 'दान करो' की आज्ञा इन तीन शब्दों का कभी लोप नहीं हुआ। हे सृञ्जय! महाराज दिलीप तुमसे बढ़कर धर्मात्मा, ज्ञानी, विरक्त, ऐश्वर्यवान् और तुम्हारे पुत्र की अपेक्षा पुण्यवान् थे। जब ऐसे प्रतापी की भी मृत्यु हो गई तब तुम अपने पुत्र के लिए क्यों शोक करते हो? ८०

युवनाश्व के पुत्र मान्धाता ने भी शरीर छोड़ दिया है। ये महात्मा अपने पिता युवनाश्व के पेट से—दही और घी के योग से (बिना ही शुक्र-शोणित के संयोग से)—उत्पन्न हुए थे। देवताओं ने युवनाश्व की कोख चीरकर इनको निकाला था। देवताओं के समान रूपवान् बालक पिता के पेट से निकलकर जब उनकी गोद में सो रहा था तब उसे देखकर देवताओं ने कहा कि यह बालक क्या पीकर जियेगा। इस पर इन्द्र ने उत्तर दिया कि यह बालक हमारी उँगली पीकर जीता रहेगा। हम इसका नाम मान्धाता रखते हैं। बस, इन्द्र ने बालक के मुँह में उँगली दे दी। उसके पीने के लिए इन्द्र की उँगली से दूध की धार निकलने लगी। इन्द्र की उँगली से निकलता हुआ दूध पीकर बालक मान्धाता एक ही दिन में बहुत हृष्ट-पुष्ट हो गये। वे बारह दिन में बारह वर्ष के बालक के बराबर हो गये। इन्द्र के समान बलवान् मान्धाता ने एक ही दिन में सारी पृथिवी पर अधिकार कर लिया था। उन्होंने राजा अङ्गार, मरुत्त, असित,

गय, अङ्ग और बृहद्रथ को युद्ध में जीत लिया था। महाराज मान्धाता ने जब अङ्गार से युद्ध करते समय धनुष का टङ्कार किया तब उस शब्द को सुनकर देवताओं ने समझा

कि इस शब्द से आकाश-मण्डल विदीर्ण हो गया। उदयाचल से लेकर अस्ताचल तक सम्पूर्ण भूमण्डल उनके अधिकार में था। उन्होंने सौ अश्वमेध यज्ञ और इतने ही राजसूय यज्ञ करके ब्राह्मणों को दस योजन लम्बी और एक योजन चौड़ी सोने की रोहित मछलियाँ दान की थीं। ब्राह्मणों को दान करने से जो मछलियाँ बच गईं उनको दूसरी जाति के लोगों ने बाँट लिया था। हे सृञ्जय! महाराज मान्धाता तुमसे बढ़कर धार्मिक, ज्ञानी, त्यागी, ऐश्वर्यवान् और तुम्हारे पुत्र से बढ़कर पुण्यवान् थे। जब वे इस लोक में न रह सके तब तुम क्यों अपने पुत्र के लिए वृथा सन्ताप करते हो? ९०

नहुष के पुत्र महाराज ययाति को भी शरीर त्यागना पड़ा। ये महाराज एक स्थान पर खड़े होकर शम्या (सैला) फेंकते थे। वह शम्या जितनी दूर पर गिरती थी उतनी-उतनी दूरी पर एक-एक यज्ञ की वेदी बनाते थे। इसी प्रकार शम्यापात करते हुए अनेकों यज्ञ करते-करते ये समुद्र के किनारे पहुँच गये थे। महाराज ययाति ने एक हज़ार प्रधान यज्ञ और एक सौ वाजपेय यज्ञ किये थे। इन यज्ञों में सोने के तीन पर्वत दान करके उन्होंने ब्राह्मणों को बहुत सन्तुष्ट किया था। ययाति ने युद्ध में दैत्यों को जीतकर उसके बाद यदु और द्रुह्यु आदि अपने पुत्रों को कुछ पृथिवी देकर पुरु को राज्य का तिलक कर दिया। फिर वे स्त्री समेत वन को चले गये। हे सृञ्जय! महात्मा ययाति तुमसे बढ़कर धर्मात्मा, ज्ञानी, त्यागी, ऐश्वर्यवान् और तुम्हारे पुत्र से बढ़कर पुण्यवान् थे। जब वे शरीर त्यागकर चले गये तब तुम अपने पुत्र के लिए क्यों वृथा शोक करते हो?

महाराज नाभाग के पुत्र अम्बरीष को भी मौत से छुटकारा नहीं मिला। इनकी प्रजा इन पर बड़ी श्रद्धा रखती और इनकी भक्ति करती थी। महाराज अम्बरीष ने अपने यज्ञ में दस लाख याज्ञिक राजाओं को ब्राह्मणों की सेवा के लिए नियुक्त किया था। चतुर विद्वानों का कहना है कि इस प्रकार का यज्ञ आज तक न किसी ने किया है और न आगे कोई करेगा। राजा अम्बरीष के यज्ञ में ब्राह्मणों की सेवा करने के कारण अन्य राजाओं को भी, अम्बरीष की कृपा से, यज्ञ का फल मिला जिससे उनकी सद्गति हुई। हे सृञ्जय! महाराज अम्बरीष तुमसे बढ़कर धर्मात्मा, ज्ञानी, त्यागी, ऐश्वर्यवान् और तुम्हारे पुत्र से बढ़कर पुण्यवान् थे। जब उनको शरीर छोड़ना पड़ा तब तुम अपने पुत्र के लिए क्यों सन्ताप करते हो? १००

महाराज शशबिन्दु को भी शरीर छोड़ना पड़ा। इन महात्मा के एक लाख पटरानियाँ और दस लाख पुत्र थे। सभी राजकुमार सोने के कवच पहनते और धनुर्विद्या में निपुण थे। प्रत्येक राजकुमार के साथ सौ-सौ कन्याएँ थीं। प्रत्येक कन्या के पीछे सौ-सौ हाथी, प्रत्येक हाथी के पीछे सौ-सौ रथ, प्रत्येक रथ के पीछे सोने की मालाएँ पहनाये हुए सौ-सौ घोड़े, प्रत्येक घोड़े के पीछे सौ-सौ गायें और प्रत्येक गाय के पीछे सौ-सौ भेड़-बकरियाँ थीं। यह सब अपरिमित ऐश्वर्य महाराज शशबिन्दु ने अश्वमेध यज्ञ में ब्राह्मणों को दान कर दिया।

हे सृञ्जय! महाराज शशबिन्दु तुमसे बढ़कर धर्मात्मा, ज्ञानवान्, विरक्त, ऐश्वर्यवान् और तुम्हारे पुत्र से बढ़कर पुण्यवान् थे। जब वे कराल काल के शिकार हो गये तब तुम
११० अपने पुत्र के लिए क्यों शोक करते हो?

अमूर्तरया के पुत्र महाराज गय को भी शरीर छोड़ना पड़ा। राजा गय, सौ वर्ष तक, वही अन्न खाते थे जो कि यज्ञ से बच जाता था। अग्निदेव ने प्रसन्न होकर राजा से कहा कि हे राजन्, जो चाहो वर माँग लो। महाराज गय ने कहा कि भगवन्, आपकी कृपा से धर्म में श्रद्धा और सत्य में मेरा अनुराग बढ़ता रहे और लगातार दान करते रहने पर भी मेरा धन न घटे। भगवान् अग्निदेव ने उन्हें मुँहमाँगा वर दिया। महाराज गय ने अमावास्या, पौर्णमासी और चातुर्मास्य में हज़ारों वर्ष तक अश्वमेध यज्ञ करके ब्राह्मणों को एक लाख गायें और सौ घोड़ियाँ दान की थीं। इन्होंने सोमरस से देवताओं को, धन से ब्राह्मणों को, स्वधा से पितरों को और इच्छा पूरी करके स्त्रियों को सन्तुष्ट किया था। इन महात्मा ने अश्वमेध यज्ञ में बीस व्याम लम्बी और दस व्याम चौड़ी सुवर्णमय पृथिवी ब्राह्मणों को दान की थी। गङ्गा में जितने बालू के कण हैं उतनी गायें ब्राह्मणों को दी थीं। हे सृञ्जय! महाराज गय तुमसे बढ़कर धर्मात्मा, ज्ञानी, त्यागी, ऐश्वर्यवान् और तुम्हारे पुत्र से बढ़कर पुण्यवान् थे। जब उनकी मृत्यु हो गई तब तुम क्यों अपने पुत्र के लिए सन्ताप करते हो?

हे सृञ्जय, संकृति के पुत्र रन्तिदेव को भी काल ने नहीं छोड़ा। इन्होंने घोर तप करके
१२० इन्द्र से यह वर माँगा था कि हे देवराज, आपकी कृपा से मेरे घर में प्रचुर अन्न हो और अतिथि आया करें; धर्म से कभी मेरी श्रद्धा न हटे और मुझे कभी किसी से कुछ माँगना न पड़े। महाराज रन्तिदेव जब कोई यज्ञ करते थे तब बलि के लिए गाँव के और वन के पशु अपने आप उनके पास आ जाते थे। यज्ञ में मारे गये पशुओं के चमड़े के ढेर से जो क्लेद (रक्त?) निकला उससे एक नदी बह निकली थी। वह महानदी आज भी चर्मण्वती के नाम से प्रसिद्ध है। महात्मा रन्तिदेव सभा में ब्राह्मणों को अशर्फ़ियाँ देते थे। सभा में 'तुमको सौ अशर्फ़ियाँ दी जाती हैं, लो' यह कहने पर कोई ब्राह्मण लेनेवाला नहीं ठहरता था। इसके बाद जब 'तुमको हज़ार अशर्फ़ियाँ दी जाती हैं, ग्रहण करो,' यह कहा जाता था तब सभी ब्राह्मण लेने के लिए तैयार हो जाते थे। महाराज रन्तिदेव के घर में अन्न और भोजन आदि रखने के बर्तन घड़ा, कड़ाही, थाली और बटुली आदि सब सोने के थे। उनके घर में जो अतिथि रात को रहते थे वे प्रति दिन बीस हज़ार एक सौ गायें पाते थे। लड़ाऊ कुण्डल पहननेवाले रसोइए चिल्ला-चिल्लाकर उनसे कहते थे कि 'आज जी भरकर दाल खाओ, रोज़ की तरह मांस नहीं खाना होगा।' हे सृञ्जय! महाराज रन्तिदेव तुमसे बढ़कर धर्मात्मा, ज्ञानी, विरक्त, ऐश्वर्यवान् और तुम्हारे पुत्र से बढ़कर पुण्यवान् थे। जब वे काल से नहीं बच सके तब तुम अपने पुत्र के मरने का शोक क्यों करते हो?

इक्ष्वाकुवंशी महापराक्रमी राजा सगर को भी शरीर छोड़ना पड़ा। जिस तरह शरद् ऋतु के मेघहीन आकाश-मण्डल में तारागण समेत चन्द्रमा शोभित होता है उसी तरह महाराज सगर अपने साठ हज़ार पुत्रों समेत शोभित थे। इन्होंने एक हज़ार अश्वमेध यज्ञ करके देवताओं को प्रसन्न किया था। महाराज सगर ने सोने के बने हुए महल और कमल के समान नेत्रोंवाली स्त्रियों सहित बहुत क़ीमती शय्याएँ तथा अन्यान्य वस्तुएँ ब्राह्मणों को दान की थीं। इसी पराक्रमी राजा ने कुपित होकर पृथिवी को खुदवाकर समुद्र बना दिया। इन्हीं के नाम के अनुसार समुद्र 'सागर' नाम से प्रसिद्ध है। महाराज सगर तुमसे बढ़कर धार्मिक, ज्ञानी, विरक्त, ऐश्वर्यवान् और तुम्हारे पुत्र से बढ़कर पुण्यात्मा थे। जब उन्होंने शरीर छोड़ दिया है तब तुम अपने पुत्र के मरने का सन्ताप क्यों करते हो? १३०

वेन के पुत्र महाराज पृथु को भी शरीर छोड़ना पड़ा। महर्षियों ने दण्डक वन में उनका राजतिलक किया था। महर्षियों ने कहा—ये सब लोकों को बढ़ावेंगे, इसलिए इनका नाम पृथु है और क्षत या विनाश से प्रजा की रक्षा करेंगे, इसलिए ये यथार्थ क्षत्रिय हैं। महाराज पृथु प्रजा पर अनुराग करते थे, इसलिए उनकी राजा की पदवी सार्थक थी। महाराज पृथु के शासन-काल में विना जोते पृथिवी में अन्न पैदा होता था। पत्ते-पत्ते पर शहद पैदा होता था और प्रत्येक गाय घड़े-घड़े भर दूध देती थी। मनुष्य नीरोग और निर्भय रहते थे और घरों में या खेतों में सब जगह बेखटके रहते थे। महाराज पृथु जब समुद्र-यात्रा करते थे तब समुद्र स्तम्भित हो जाता था और नदियों के पार जाते समय नदियाँ स्थिर भाव से बहने लगती थीं। उन्होंने अश्वमेध यज्ञ करके ब्राह्मणों को तीन नल (नल्व = ४०० हाथी के बराबर) ऊँचे सोने के इक्कीस पर्वत दान किये थे। हे सृञ्जय! महाराज पृथु तुमसे बढ़कर धर्मात्मा, ज्ञानी, त्यागी, ऐश्वर्यवान् और तुम्हारे पुत्र से बढ़कर पुंण्यवान् थे। जब उन्होंने शरीर छोड़ दिया है तब तुम अपने पुत्र के लिए क्यों शोक करते हो? राजन्, अब चुपचाप क्या सोचते हो? क्या तुमने मेरी बातें नहीं सुनीं? मेरी ये बातें मरनेवालों के लिए हितकर औषध की तरह फल देनेवाली हैं। १४०

यह सुनकर सृञ्जय ने कहा—हे महर्षि, मैंने शोक-निवारण के लिए पुण्यात्मा यशस्वी राजाओं के अति विचित्र चरित्रों को सुना। आपके वचन कभी निष्फल नहीं होते। आपके दर्शन से ही मेरा शोक दूर हो गया है। किन्तु जिस तरह अमृत पीने पर भी तृप्ति न होकर इच्छा बढ़ती ही जाती है उसी तरह आपके वचनों को सुनकर मेरी सुनने की इच्छा और भी बढ़ गई है। जो हो, मैं इस समय पुत्र के शोक से अत्यन्त विह्वल हूँ। यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो ऐसा उपाय कीजिए, जिससे मेरा पुत्र फिर जीवित हो जाय। तब नारद ने कहा—हे सृञ्जय, महर्षि पर्वत के वरदान से तुम्हारा पुत्र स्वर्णष्ठीवी पैदा होकर अकाल में ही मर गया है। मैं उसको फिर जिलाये देता हूँ। अब तुम्हारा पुत्र हज़ारों वर्ष तक जीवित रहेगा। १४६

तीसवाँ अध्याय

नारदजी का युधिष्ठिर से सुवर्णष्ठीवी का चरित्र कहना

युधिष्ठिर ने कहा—वासुदेव, सृञ्जय का पुत्र सुवर्णष्ठीवी क्योंकर उत्पन्न हुआ ? पर्वत ने सृञ्जय को कैसे पुत्र दिया ? उस समय मनुष्य हज़ार वर्ष तक जीते थे तो सृञ्जय का पुत्र बचपन में ही क्यों मर गया ? यह पुत्र केवल नाम से सुवर्णष्ठीवी था अथवा सचमुच सोना उगलता था ? यह सब हाल जानने की मेरी बड़ी इच्छा है, आप कृपा कर कहिए।

श्रीकृष्ण ने कहा—महाराज ! मैं सब वृत्तान्त कहता हूँ, सुनिए। एक बार नारद और पर्वत दोनों महर्षि घी और चावल आदि पवित्र भोजन करने के लिए देवलोक से मनुष्य-लोक में पधारे। तपोधन नारद महात्मा पर्वत के मामा थे। ये दोनों तपस्वी प्रसन्नता से पृथ्वी पर विचरने और वही भोजन करने लगे, जो मनुष्य करते हैं। दोनों ऋषियों ने आपस में यह प्रतिज्ञा की थी कि जो बात जिस समय जिसके मन में, अच्छी या बुरी, पैदा हो वह उसी समय दूसरे से साफ़-साफ़ कह दे। जो इस प्रतिज्ञा का पालन न करेगा उसको पाप लगेगा।

इस प्रकार प्रतिज्ञा करके दोनों महर्षि राजा सृञ्जय के पास जाकर बोले—महाराज, १० हम तुम्हारी भलाई के लिए कुछ दिन यहाँ ठहरेंगे। तुम हमारे अनुकूल रहो। ऋषियों की बात मानकर महाराज सृञ्जय बड़े आदर से उनकी सेवा करने लगे। कुछ दिनों बाद एक दिन राजा सृञ्जय ने अपनी कन्या को साथ लाकर ऋषियों से कहा—हे महर्षियो ! मेरे यही एक कन्या है। यह परम रूपवती और सुशीला है। यह आज से आप लोगों की सेवा करेगी। राजा सृञ्जय ने तपस्वियों से यह कहकर अपनी कन्या से कहा—बेटी ! तुम आज से, देवता और पितरों की तरह, इन महर्षियों की सेवा किया करो। पिता की आज्ञा पाकर वह कन्या नारद और पर्वत की सेवा करने लगी। तपस्वी नारद उस राजकुमारी का असाधारण रूप और सौन्दर्य तथा उसकी सेवा देखकर बहुत प्रसन्न हुए। उनके हृदय में, शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की तरह, दिन-दिन काम की वृद्धि होने लगी; किन्तु लज्जा के मारे अपने हृदय की इस तीक्ष्ण वेदना को वे पर्वत पर प्रकट नहीं कर सके। अपने तपोबल और नारद के लक्षणों से महात्मा पर्वत ने उनको कामातुर जानकर कहा—मामाजी ! आपने प्रतिज्ञा की थी कि भला या बुरा, जो २० भाव जिसके मन में पैदा हो वह फ़ौरन् कह दिया करे। किन्तु इस सुकुमारी राजकुमारी का रूप और सौन्दर्य देखकर आपके मन में जो बुरा भाव पैदा हुआ है उसे आपने मुझसे क्यों नहीं कहा ? आप ब्रह्मचारी, तपस्वी, बड़े और ब्राह्मण हैं। क्या आपको अपनी प्रतिज्ञा का पालन न करना चाहिए ? आपको प्रतिज्ञा का उल्लङ्घन करते देख मुझे बड़ा क्रोध हुआ है। मैं आपको शाप देता हूँ कि यह सुकुमारी आपकी स्त्री तो होगी; किन्तु इसके विवाह के समय से आपका

हे महर्षियो ! मेरे यही एक कन्या है। यह परम रूपवती और सुशीला है। यह आज से आप लोगों की सेवा करेगी—पृ० ३३२६

रूप बन्दर का सा हो जायगा। उसे यह कन्या और दूसरे लोग भी देखेंगे। अपने भानजे पर्वत का शाप सुनकर नारद ने भी क्रोध करके उनको शाप दिया कि तुम धर्मात्मा, तपस्वी, ब्रह्मचारी, सत्यवादी और इन्द्रियजित् होते हुए भी स्वर्ग को नहीं जा सकोगे।

महाराज, इस तरह दोनों महर्षि परस्पर शाप ले-देकर मित्रता तोड़कर—कुपित हाथी के समान—अपनी-अपनी राह लगे। महात्मा पर्वत अपने तप के प्रभाव से सर्वत्र आदर-सत्कार पाते हुए पृथ्वी पर विचरने लगे। इधर महर्षि नारद ने धर्म के अनुसार उस राज-कन्या के साथ विवाह कर लिया। विवाह के मन्त्रों का उच्चारण होते ही, पर्वत के शाप के ३० प्रभाव से, सुकुमारी को नारद का मुँह बन्दर का सा देख पड़ने लगा। राजकुमारी ने अपने स्वामी को ऐसा कुरूप देखकर उनका अनादर नहीं किया; किन्तु वह बड़े प्रेम से उनकी सेवा करने लगी। वह पतिव्रता राजकन्या अपने बँदरमुँहे पति से इतना प्रेम करती थी कि उसने कभी किसी देवता, यक्ष और मुनि को पति-भाव से अपने मन में भी नहीं आने दिया।

महात्मा पर्वत अनेक स्थानों में घूमते-घामते कुछ दिनों बाद एक वन में पहुँचे। वहाँ महर्षि नारद को देखकर वे प्रणाम करके कहने लगे—भगवन्, आप प्रसन्न होकर मुझे स्वर्ग को जाने की आज्ञा दीजिए। दीन भाव से प्रार्थना करते हुए पर्वत को देखकर नारद ने कहा—भैया, जब तुमने मुझे शाप देकर बन्दर बना दिया तब मैंने भी ईर्ष्या से तुमको शाप दे दिया। जो हो, तुम मेरे पुत्र के समान हो, तुम्हारा यह व्यवहार ठीक नहीं था। ख़ैर, अब तुम शाप से छूट जाओ। पर्वत ने भी नारद का शाप से छुटकारा कर दिया। इसी तरह दोनों महर्षि शाप से छूट गये। अब नारद को देवरूप परम सुन्दर देखकर सुकुमारी राजकन्या उन्हें परपुरुष समझ वहाँ से भाग खड़ी हुई। ४० तब महात्मा पर्वत ने उसके पास जाकर कहा—पतिव्रते, भागो मत। यही तुम्हारे पति हैं। धर्मात्मा महर्षि नारद यही हैं। तुम सन्देह न करो। जब महात्मा पर्वत ने राजकुमारी को बहुत-बहुत समझाया और शाप का सब हाल बतलाया तब उसको विश्वास
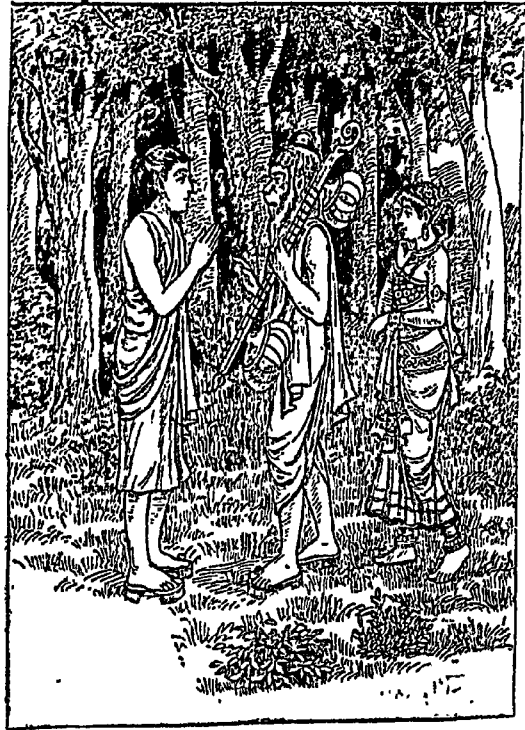
हुआ कि मेरे पति महर्षि नारद यही हैं। उसके बाद महात्मा पर्वत स्वर्ग को गये और महर्षि नारद अपने घर चले आये। श्रीकृष्ण कहते हैं—हे धर्मराज, ये नारदजी आपके पास ही बैठे
४४ हुए हैं। इनसे राजा सृञ्जय के पुत्र का हाल पूछ लीजिए।

इकतीसवाँ अध्याय

सुवर्णष्ठीवी के जन्म का वृत्तान्त

वैशम्पायन कहते हैं कि धर्मराज युधिष्ठिर ने नारद से कहा—भगवन्, आप सुवर्णष्ठीवी के जन्म का हाल कहिए। उसके सुनने की मुझे बड़ी इच्छा है। युधिष्ठिर के पूछने पर महर्षि नारद कहने लगे—महाराज, वासुदेव ने इस विषय में जो कुछ कहा है वह सब सत्य है और जो बाक़ी है वह मैं कहता हूँ, सुनो। एक बार मैं अपने भानजे महर्षि पर्वत के साथ महाराज सृञ्जय के यहाँ, ठहरने के लिए, गया। राजा ने हम लोगों का यथोचित आदर-सत्कार किया और हम लोग बड़े सुख से उनके घर रहने लगे। जब वर्षा बीत गई और वहाँ से चलने का हम लोगों का समय आया तब पर्वत ने कहा कि मामा, हम दोनों ही इस राजा के यहाँ बड़े आनन्द से इतने दिन रहे हैं और इसने हमारी बड़ी सेवा की है, अब इसका कुछ उपकार करना चाहिए। इस पर मैंने कहा—पर्वत, तुम्हारी प्रसन्नता से राजा का हित होगा। अभीष्ट वर देकर तुम राजा का मनोरथ सफल करो और यदि तुम्हारी इच्छा हो तो हम दोनों के तपोबल से राजा के मनोरथ सफल हों।

१० तब महर्षि पर्वत ने राजा सृञ्जय को बुलाकर कहा—राजन्, तुम्हारी निष्कपट सेवा से हम बहुत प्रसन्न हैं। हम दोनों ही आज्ञा देते हैं कि जो चाहो वह वर माँग लो। किन्तु ऐसा वर माँगना, जिससे देवता और मनुष्य किसी की कुछ हानि न हो। तब सृञ्जय ने कहा—हे तपोधन! आप लोग मुझ पर प्रसन्न हैं, इतने से ही मैं कृतकृत्य हो गया। अब मुझको कोई वर माँगने की आवश्यकता नहीं। आपकी प्रसन्नता ही मेरे लिए परम लाभ है। इस पर महर्षि पर्वत ने फिर कहा—महाराज, तुमने बहुत दिनों से जो सङ्कल्प कर रक्खा है वही वर माँग लो। सृञ्जय ने कहा—भगवन्! यदि यही आज्ञा है तो आपकी कृपा से मेरे ऐसा पुत्र पैदा हो जो इन्द्र के समान तेजस्वी, पराक्रमी, व्रतधारी और दीर्घायु हो। तब पर्वत ने कहा—हे सृञ्जय, तुम जैसा पुत्र चाहते हो वैसा प्राप्त तो अवश्य होगा; किन्तु हमको मालूम होता है कि तुम इन्द्र को जीतने के लिए ऐसा पुत्र चाहते हो इसलिए तुम्हारा पुत्र दीर्घायु न होगा। तुम्हारे पुत्र का नाम सुवर्णष्ठीवी होगा। तुम हमेशा इन्द्र के हाथ से उसकी रक्षा करते रहना।

महर्षि पर्वत की बातें सुनकर, उनको प्रसन्न करते हुए, राजा सृञ्जय ने कहा—भगवन्, ऐसी कृपा कीजिए कि आपके तपोबल से मेरा यह पुत्र दीर्घजीवी हो। अब राजा सृञ्जय बार-बार इसके लिए महर्षि पर्वत की प्रार्थना करने लगे; किन्तु पर्वत ने कुछ उत्तर न दिया। तब सृञ्जय को बहुत दुखी देखकर मैंने कहा—महाराज, तुम सोच न करो। जब तुम्हारा पुत्र मर जाय तब मेरा स्मरण करना, मैं तुम्हारे पुत्र को फिर जिला दूँगा। हे धर्मराज, सृञ्जय से यह कहकर हम दोनों वहाँ से चल दिये और सृञ्जय भी अपने घर में चले गये। २०

कुछ समय बीतने पर महाराज सृञ्जय के एक पुत्र पैदा हुआ। वह बड़ा तेजस्वी और पराक्रमी था। वह पुत्र, तालाब में कमल की तरह, धीरे-धीरे बढ़ने लगा। सोना उगलते हुए देखकर सृञ्जय ने उसका नाम सुवर्णष्ठीवी ही रक्खा। सृञ्जय के पुत्र का यह अद्भुत वृत्तान्त धीरे-धीरे सब जगह फैल गया। इन्द्र को जब यह हाल मालूम हुआ तब उन्होंने समझ लिया कि महर्षि पर्वत के वरदान से सृञ्जय के ऐसा पुत्र पैदा हुआ है। जो हो, यदि बालक दीर्घजीवी हुआ तो मुझे उससे अवश्य हारना पड़ेगा। यह सन्देह करके देवराज, बृहस्पति की अनुमति से, उस बालक के मारने का उपाय सोचने लगे। दिव्य अस्त्र मूर्तिमान् वज्र को बुलाकर उन्होंने कहा—हे वज्र, महर्षि पर्वत के वरदान से उत्पन्न सृञ्जय का पुत्र बड़ा होकर मुझे परास्त करेगा। इसलिए तुम बाघ का रूप धरकर उसे मार डालो। इन्द्र की आज्ञा से वज्र उस राजपुत्र के मारने का उपाय सोचने लगा।

इधर महाराज सृञ्जय इस तरह के पुत्र को पाकर बहुत प्रसन्न हुए और स्त्रियों के साथ वन में जाकर रहने लगे। अब वह पुत्र पाँच वर्ष का हुआ। एक दिन वह पराक्रमी बालक वन में खेलने के लिए धाय के साथ गया और गङ्गा-किनारे दौड़ने लगा। उसी समय बाघ-रूप वज्र ने बालक को झपटकर झकझोर डाला। ३० झपटते हुए बाघ को देखते ही राजकुमार काँप उठा और ज़मीन पर गिरकर मर गया। राजकुमार को मारकर बाघ अन्तर्धान हो गया। कुमार को मरा हुआ देखकर दुःख से धाय रोने

लगी। उसका रोना सुनकर महाराज सृञ्जय उस स्थान पर गये। देखा कि आकाश से गिरे हुए चन्द्रमा के समान बालक स्वर्णष्ठीवी रक्त से लथपथ होकर ज़मीन पर मरा पड़ा है। तब राजा शोक से विह्वल होकर, पुत्र को गोद में लेकर, विलाप करने लगे। बालक की माताएँ भी पुत्रशोक से व्याकुल होकर रोती हुई उसी जगह आ गईं।

इस समय राजा सृञ्जय ने मेरा स्मरण किया। मैं उसी दम वहाँ पहुँचा। हे धर्मराज, ४० वासुदेव ने सृञ्जय की जो कथा तुमसे कही है वही मैंने शोक-सन्तप्त सृञ्जय से कही थी। इन्द्र की अनुमति से मैंने उस बालक को फिर जिला दिया। जो भाग्य में बदा है वह अवश्य होगा। उसे कौन टाल सकता है?

इस तरह सृञ्जय का राजकुमार फिर जीवित होकर माता-पिता को प्रसन्न करने लगा। इस राजकुमार ने पिता का स्वर्गवास होने पर ग्यारह सौ वर्ष तक राज्य किया। इसने दान के साथ अनेक यज्ञ किये, देवताओं और पितरों को सन्तुष्ट किया और वंश की वृद्धि के लिए बहुत से पुत्र पैदा करके अन्त को शरीर त्याग दिया। महाराज! अब तुम शोक छोड़कर, व्यासदेव और श्रीकृष्ण के कहने के अनुसार, परम्परा प्राप्त राज्य करते हुए प्रजा का पालन और यज्ञ का ४७ अनुष्ठान करो। ऐसा करने से तुम यथेष्ट लोक में जाओगे।

बत्तीसवाँ अध्याय

व्यासजी का युधिष्ठिर को समझाना

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, नारद की बातें सुन लेने पर भी शोक से व्याकुल धर्मराज को मौन देखकर धर्म के मर्मज्ञ महर्षि वेदव्यास कहने लगे—धर्मराज, प्रजा का पालन करना ही राजाओं का सनातन धर्म है। धर्म के अनुसार चलनेवाले मनुष्य के लिए धर्म ही प्रमाण है। इसलिए तुम वंशपरम्परागत राज्य को ग्रहण करो। तप करना तो ब्राह्मणों का ही प्रधान धर्म, वेद में, बतलाया गया है। अतएव तप करना ब्राह्मणों का ही कर्तव्य है और उस धर्म की रक्षा क्षत्रिय करता है। जो मनुष्य विषय-वासना में फँसकर शासन का उल्लङ्घन करे उसे उचित दण्ड देना क्षत्रियों का काम है। चाहे नौकर हो, चाहे पुत्र और चाहे तपस्वी, जो कोई नियम का उल्लङ्घन करे तो उसको दण्ड देना चाहिए। जो राजा इसके विरुद्ध चलता है उसे पाप लगता है। जो धर्म को नष्ट होते देखकर उसकी रक्षा नहीं करता वही धर्म का विनाश करनेवाला है। तुमने धर्म-घातक कौरवों का और उनके साथियों का विनाश किया है। इसके लिए तुमको सोच करने की क्या आवश्यकता? वध के योग्य मनुष्यों का वध करना, धर्म के अनुसार प्रजा की रक्षा करना और सत्पात्र को दान देना तो राजाओं का धर्म ही है।

युधिष्ठिर ने कहा—भगवन्, आपने जो कुछ कहा उसमें मुझे कुछ सन्देह नहीं है। आप सब धर्मों के जानकार हैं। राज्य के लोभ से मैंने न मारने योग्य अनेक लोगों का संहार किया है, यही सोचकर मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है और शरीर जला जा रहा है। १०

व्यासजी ने कहा—महाराज! कर्म का कर्ता कौन है, ईश्वर या पुरुष? और संसार में जो फल भोगने पड़ते हैं वे कर्म के फल हैं या अकस्मात् आ जाते हैं? ईश्वर की प्रेरणा से मनुष्य अच्छे-बुरे सब कर्म करता है, इसलिए उन कर्मों का फल ईश्वर को ही मिलना चाहिए। कोई मनुष्य वन में जाकर कुल्हाड़ी से वृक्षों को काटेगा तो उसका पाप काटनेवाले मनुष्य को लगेगा। कुल्हाड़ी पाप की ज़िम्मेदार नहीं है। यदि कहो कि कुल्हाड़ी तो जड़ पदार्थ है, वह पाप का भोग कर नहीं सकती इसलिए कुल्हाड़ी का बनानेवाला कारीगर पाप का भागी होगा; क्योंकि यदि वह कुल्हाड़ी न बनाता तो काटनेवाला इस काम को कैसे कर सकता। किन्तु जिसने अपने स्वार्थ के लिए वृक्ष को काटा है उसे पाप न लगकर कुल्हाड़ी के बनानेवाले को पाप लगे, यह तो किसी युक्ति से नहीं सिद्ध होता। अतएव यदि कर्म का फल दूसरे को नहीं भोगना पड़ता तो मनुष्य क्यों ईश्वर की प्रेरणा से किये हुए कर्म के फल को भोगे? उस कर्म का फल ईश्वर को ही भोगना चाहिए। और यदि तुम ईश्वर के अस्तित्व को न मानकर पुरुष को ही कर्म का करनेवाला ठहराओगे तो तुमने दुष्ट शत्रुओं को मारकर बड़ा अच्छा काम किया है। इसके लिए चिन्ता करने की क्या आवश्यकता? देखो, भाग्य को कोई जीत नहीं सकता, वह किसी के अधीन नहीं है। इसलिए जब मनुष्य भाग्य के प्रभाव से ही कर्म करता है तब वह पाप का भागी क्यों हो? इसके सिवा जब मनुष्य की मृत्यु अनिवार्य है तब उसके मारने का पाप किसी को क्यों लगे? लगता भी नहीं। यदि तुम शास्त्र के अनुसार मनुष्यों से पाप-पुण्य का होना स्वीकार करोगे तो राजा के लिए जो दण्ड का विधान शास्त्र के द्वारा है उसको अवश्य ही मानना पड़ेगा। जो हो, मेरे मत में अच्छे और बुरे कर्म इस संसार में निरन्तर होते ही रहते हैं। २० जो जैसा कर्म करता है उसे उसका फल भोगना पड़ता है। अतएव तुम बुरे कर्मों का त्याग कर दो। शोक-सन्ताप छोड़ दो। तुम क्षत्रिय हो, इसलिए क्षत्रिय-धर्म निन्दनीय हो तो भी उसी का पालन करना तुम्हारा कर्तव्य है। आत्मघात करना तो तुमको कदापि उचित नहीं। मनुष्य जीवित रहेगा तो अपने पाप का प्रायश्चित्त कर लेगा और मरने पर तो प्रायश्चित्त भी नहीं कर सकता। इसलिए तुमको जीवित रहकर प्रायश्चित्त करना चाहिए। यदि तुम प्रायश्चित्त किये बिना शरीर छोड़ दोगे तो तुमको परलोक में दुःख उठाना पड़ेगा। २५

तेंतीसवाँ अध्याय

युधिष्ठिर से व्यासजी का क्षत्रिय-धर्म कहना

युधिष्ठिर ने व्यासजी से कहा—पितामह ! मैंने राज्य के लोभ से पुत्र, पौत्र, भाई, ससुर, गुरु, मामा, पितामह आदि सजातीय लोगों, सम्बन्धियों, मित्रों और देश-देश से आये हुए राजाओं का संहार किया है। अब मैं उन धर्मात्मा पराक्रमी याज्ञिक राजाओं के बिना इस संसार में क्या लेकर रहूँ ? यह पृथिवी उन सब राजाओं से हीन हो गई है, इस चिन्ता में मेरा हृदय लगातार जला करता है। कुटुम्बियों के वध और अन्यान्य असंख्य वीरों के संहार का स्मरण आते ही मेरे हृदय में शोक का समुद्र उमड़ने लगता है। हाय, जिन स्त्रियों के पति, पुत्र और भाई मारे गये हैं उनके हृदय की आज क्या दशा हो रही होगी ? वे अपना सर्वनाश करनेवाले पाण्डवों और यादवों को कोसती हुई चिल्ला-चिल्लाकर विलाप करके दीन भाव से पृथिवी पर गिर रही होंगी। वे अपने पुत्र, पति, भाई और पिता को न देखकर उनके वियोग में मर जायँगी। धर्म की गति बड़ी सूक्ष्म है। इन स्त्रियों के मरने का कारण हमीं लोग तो हैं, इसलिए स्त्री-वध १० का पातक भी हम लोगों को ही होगा। हाय, मैंने आत्मीय जनों का विनाश करके जो घोर पाप किया है इससे मुझे सिर के बल नरक में गिरना पड़ेगा। इसी पाप से छूटने के लिए मैं अति कठोर तप करके शरीर त्यागने की इच्छा करता हूँ। हे पितामह, अब आप बतलाइए कि किस उपाय से इस पाप से छुटकारा हो सकता है।

वैशम्पायन कहते हैं कि महर्षि वेदव्यास ने युधिष्ठिर की बातें सुनकर विशेष रूप से विचार करके कहा—बेटा, क्षत्रिय-धर्म के लिहाज़ से तुमको सोच न करना चाहिए। तुमने राज्य और यश के लोभ से जो अपने सजातीय लोगों को युद्ध में मारा है, यह तो धर्म के अनुसार ही काम किया है। इसके सिवा वे लोग काल के वश होकर, स्वयं युद्ध ठानकर, अपने अपराध से ही मरे हैं। तुम या भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव, कोई भी उनका मारनेवाला नहीं है। सभी प्राणी अपनी मौत से मरते हैं। माता या पिता कोई भी उन पर कृपा नहीं कर सकता। युद्ध तो निमित्त है और परस्पर लड़कर मर जाना ईश्वरीय नियम है। ईश्वर का भी कोई दोष नहीं, वह तो कर्म के अनुसार ही फल देता है। इसलिए मौत कर्म के अनुसार होती है। सुख और दुःख भी कर्म के अनुसार ही मिलते हैं। महाराज, तुम एक बार उन क्षत्रियों के कामों पर २० ध्यान दो। इन लोगों ने ऐसे कामों में लगकर ही अपनी मौत को बुलाया था जिनसे उनका नाश हो। और तुम अपने कर्मों पर ध्यान देने से स्पष्ट समझ जाओगे कि तुम धर्मात्मा और शान्त-स्वभाव होने पर भी दैवयोग से हिंसाजनक कामों में तत्पर हुए हो। जिस तरह कठपुतली चलानेवाले के अधीन रहती है उसी तरह यह नश्वर संसार कर्म के अधीन है। जब मनुष्यों

का जन्म और मरण स्वाभाविक बात है—प्रकृति द्वारा हुआ करता है—तब उसके लिए हर्ष-विषाद करना वृथा है। महाराज, तुम्हारे हृदय में जो व्यर्थ की चिन्ता पैदा हुई है उसका प्रायश्चित्त करो। सुना जाता है कि प्राचीन समय में देवताओं और दानवों में राज्य के लिए लगातार बत्तीस हज़ार वर्ष तक घोर युद्ध होता रहा। दानव बड़े भाई थे और देवता उनके छोटे भाई। अन्त को देवताओं ने दानवों का नाश करके स्वर्ग का राज्य प्राप्त किया था। यह देखकर शालावृक नाम के अस्सी हज़ार विद्वान् ब्राह्मण दर्प से दानवों की सहायता के लिए तैयार हो गये। देवताओं ने उनका भी संहार कर डाला। अतएव जो अधर्म को बढ़ाने और धर्म का नाश करने की चेष्टा करे उसको शीघ्र ही मार डालना चाहिए। यहाँ तक कि यदि एक व्यक्ति के मारने से एक कुल की रक्षा होती हो या एक कुल का संहार कर देने से सम्पूर्ण राज्य निरापद होता हो तो ऐसा ही कर दे। ऐसा करने से धर्म की हानि नहीं होती। कहीं अधर्म धर्म के समान और कहीं धर्म अधर्म के समान देख पड़ता है। उसको ज्ञानी लोग ठीक-ठीक समझ सकते हैं। तुम बुद्धिमान् हो, इसलिए धीरज धरो। तुमने देवताओं के मार्ग का ही अनुसरण तो किया है। जो राज्य के लिए शत्रुओं का संहार करते हैं उनको नरक में नहीं जाना पड़ता। तुम अपने भाइयों और मित्रों को समझाओ। जिस दुष्ट मनुष्य का मन हमेशा पाप-कर्मों में लगा रहता है और जो जान-बूझकर पाप करता है तथा उन कर्मों के करने पर जिसे ज़रा भी शरम नहीं आती, उस पापी को अपने कर्मों का फल अवश्य भोगना पड़ेगा। इस तरह के दुष्टों के पाप का न तो कुछ प्रायश्चित्त है और न किसी तरह उनका पाप कम हो सकता है। तुमने एक तो युद्ध में राजाओं का वध अनिच्छा से किया है, दूसरे यह काम दुर्योधन के अपराध से ही हुआ है। फिर तुम उसके लिए सोच भी करते हो, यही बहुत है। अब तुम अश्वमेध यज्ञ करके सब पापों से छूट जाओ, यही इसका प्रायश्चित्त है। देवताओं के साथ इन्द्र ने शत्रुओं को जीतकर क्रमशः सौ अश्वमेध यज्ञ किये थे। इससे वे निष्पाप होकर शतक्रतु नाम से प्रसिद्ध हुए। अब वे देवताओं के साथ सुख से स्वर्ग का राज्य करते हैं। अप्सराएँ उनकी सेवा करती हैं और देवता तथा ऋषि लोग उनकी उपासना करते हैं। महाराज! तुमने भी, इन्द्र की तरह, अपने बाहु-बल से शत्रुओं को जीतकर समस्त भूमण्डल पर अधिकार जमाया है। इसलिए जो राजा संग्राम में मारे गये हैं उनके राज्य में तुम मित्रों समेत जाकर उनके पुत्र, पौत्र और भाइयों को उनके अधिकार पर स्थापित करो। गर्भस्थित सन्तानों की रक्षा करो और प्रजा को प्रसन्न करते हुए धर्म के अनुसार पृथिवी का पालन करने लगो। जिनके पुत्र नहीं हैं उनकी कन्याओं को राज्य दे दो। स्त्रियों को भोग-विलास करने की स्वाभाविक इच्छा होती है, इसलिए राज्य पाने पर उनका शोक दूर हो जायगा। महाराज, इस तरह सारे राज्य में सबको दिलासा देकर, विजयी इन्द्र की तरह, अश्वमेध यज्ञ करो। वीर क्षत्रियों ने अपने-अपने कर्म के अनुसार, काल के

वश होकर, शरीर का त्याग किया है। अतएव उनके लिए शोक करना उचित नहीं। इस समय तुमको क्षत्रिय-धर्म के अनुसार निष्कण्टक राज्य मिला है। अब अपने धर्म ४८ का पालन करो, उसी से परलोक में सुख पाओगे।

चौंतीसवाँ अध्याय

व्यासजी का युधिष्ठिर से प्रायश्चित्त हो सकनेवाले पापकर्मों और उनके प्रायश्चित्तों का कहना

युधिष्ठिर ने पूछा—भगवन्, संसार में किन पाप-कर्मों का प्रायश्चित्त हो सकता है और किन प्रायश्चित्तों के करने पर उन पापों से छुटकारा मिल जाता है?

वेदव्यास ने कहा—जो मनुष्य शास्त्र के बतलाये हुए कर्मों को नहीं करता, बल्कि निषिद्ध कर्म करता है और कपट का व्यवहार करता है, उसका प्रायश्चित्त हो सकता है। जो मनुष्य ब्रह्मचारी होकर सूर्योदय के बाद सोकर उठता और सूर्यास्त के समय सोता है तथा जो सुवर्ण की चोरी करता और शराब पीता है, उसके लिए प्रायश्चित्त का विधान है। जो बड़े भाई के क्वारे रहते हुए अपना विवाह कर लेता है (परिवेत्ता) और जिसके क्वारे रहते हुए छोटे भाई का विवाह हो जाता है (परिवित्ति), तथा जो ब्राह्मण की हत्या करता और दूसरों की निन्दा करता है उसका प्रायश्चित्त हो सकता है। जो मनुष्य बड़ी साली के कुँआरी रहने पर उसकी छोटी बहन से विवाह करता है (दिधिषु) और जो छोटी साली का विवाह हो जाने के बाद उसकी बड़ी बहन के साथ विवाह करता है (दिधिषूपपति), जो मनुष्य व्रत खण्डित कर लेता है और जो द्विजों की हत्या करता है वह अपने पापों का प्रायश्चित्त कर सकता है। दान न देने योग्य मनुष्यों को दान देनेवाला ब्राह्मण और दान के योग्य मनुष्यों के साथ कृपणता करनेवाले, बहुतेरे जीवों की हिंसा करनेवाले, मांस बेचनेवाले और वेद बेचनेवाले के पापों का प्रायश्चित्त विहित है। अग्नि न रखनेवाले (अग्निहोत्र-विहीन), गुरुओं और स्त्रियों का वध करनेवाले, निष्प्रयोजन पशुओं को मारनेवाले, घर जला देनेवाले, झूठ बोलनेवाले, गुरु के साथ अत्याचार करनेवाले और मर्यादा का उल्लङ्घन करनेवाले मनुष्य के पापों का प्रायश्चित्त हो सकता है।

महाराज, जो काम लोक और वेद के विरुद्ध होने के कारण करने योग्य नहीं हैं उन्हें भी ध्यान देकर सुनो। अपने धर्म को छोड़कर दूसरों के धर्म को ग्रहण करना, जिसके १० यहाँ यज्ञ न कराना चाहिए वहाँ करा देना, अभक्ष्य (लहसुन आदि) भक्षण करना, शरण में आये हुए की रक्षा न करना, नौकर-चाकर का पालन-पोषण न करना, नमक, गुड़ आदि का बेचना, तिर्यग्योनि (कुत्ता बिल्ली पक्षी आदि) जीवों का वध करना, नित्य दान करने योग्य

वस्तुओं का दान न करना, ब्राह्मणों के धन को हड़प कर जाना, पिता के साथ धन आदि के लिए झगड़ा करना, गुरु की स्त्री में गमन करना और सामर्थ्य होते हुए भी यथासमय अपनी धर्मपत्नी के साथ सहवास न करना, ये सब काम निन्दनीय हैं। जो मनुष्य इन कामों को करता है वह अधर्मी है। उसको इन पापों का प्रायश्चित्त करना चाहिए।

अब उन कर्मों को बतलाता हूँ जिनके करने से मनुष्य को पाप नहीं लगता, सुनो। विद्वान् ब्राह्मण भी यदि अस्त्र लेकर मार डालने के लिए दौड़े तो उसको मार डालने से ब्रह्महत्या नहीं लगती। वेद का मत है कि अपने धर्म से भ्रष्ट आततायी ब्राह्मण को मार डालने से ब्रह्महत्या नहीं लगती; क्योंकि हत्या करनेवाले का क्रोध उस शत्रु पर दौड़कर उसके प्राणों का घातक होता है। जो मनुष्य भूल से अथवा किसी प्राणनाशक रोग की ओषध के रूप में, किसी चतुर चिकित्सक की आज्ञा से, शराब पी लेता वह पुनः संस्कार करने से ही उस पाप से छुटकारा पा जाता है। २० इससे पहले अभक्ष्य-भक्षण आदि जितने पापकर्म कह आये हैं उन सबसे, प्रायश्चित्त करने पर, छुटकारा मिल जाता है। गुरु की आज्ञा के अनुसार गुरुपत्नी के साथ गमन करने से पाप नहीं लगता। महर्षि उद्दालक ने अपने शिष्य से पुत्र श्वेतकेतु को पैदा कराया था। जो मनुष्य गुरु के लिए, आपत्तिकाल में, ब्राह्मण से भिन्न जाति का धन चुराता है और उसे स्वयं नहीं खाता उसको चोरी का पाप नहीं लगता। अपने अथवा दूसरों के प्राणों की रक्षा के लिए, गुरु के काम के लिए, विवाह के लिए और स्त्रियों को सन्तुष्ट करने के लिए झूठ बोलना पाप नहीं है। ब्राह्मण को स्वप्नदोष हो जाने पर उसका दुबारा यज्ञोपवीत नहीं करना चाहिए, केवल घी से होम कर देने से ही उसका प्रायश्चित्त हो जाता है। अविवाहित बड़े भाई के दुराचारी (पतित) हो जाने अथवा विदेश को चले जाने पर छोटे भाई को विवाह कर लेने में दोष नहीं है। परस्त्री के कहने पर उसके साथ भोग कर लेने में भी पाप नहीं है। श्राद्ध आदि यज्ञ के सिवा पशुओं का वध न करना चाहिए और न कराना चाहिए। पशुओं पर दया करना धर्म है। भूल से कुपात्र ब्राह्मण को दान देने और योग्य को न देने में कुछ दोष नहीं है। स्त्री के व्यभिचारिणी होने पर उसके साथ धर्मपत्नी का सम्बन्ध न रक्खे; उसे दासी की तरह अन्न-वस्त्र देता रहे। इस प्रकार त्याग देने से वह स्त्री अपने पाप से छूट जाती है और स्वामी को कुछ पाप नहीं लगता। सोमरस से देवता प्रसन्न होते हैं और उनकी प्रसन्नता से मनुष्यों के मनोरथ ३० सफल होते हैं, यह तत्त्व जानकर सोमरस का बेचना अनुचित नहीं है। असमर्थ नौकर को छुड़ा देने और गायों की रक्षा के लिए वन को जला देने में दोष नहीं है। महाराज! जिन कर्मों के करने से मनुष्यों को पाप नहीं लगता उनका वर्णन कर चुका हूँ, अब विस्तार से प्रायश्चित्तों का वर्णन सुनो। ३२

पैंतीसवाँ अध्याय

व्यासजी का युधिष्ठिर से पापों का प्रायश्चित्त कहना

व्यासजी कहते हैं—महाराज ! जो मनुष्य एक बार पाप करके फिर कभी पाप नहीं करता वह तप, यज्ञ और दान करने से उस पाप से छुटकारा पा जाता है। मनुष्य से ब्रह्महत्या हो जाने पर यदि वह ब्रह्मचारी रहकर लाठी (खट्वाङ्ग) और खोपड़ी लेकर भीख माँगे, एक बार भोजन करे, ईर्ष्या न करे, भूमि पर सोवे, नौकरों की सहायता के बिना स्वयं अपना काम करे और जन-समाज में अपनी करतूत बतलाता हुआ बारह वर्ष तक घूमता रहे तो वह इस घोर पाप से छूट जाता है; या किसी शस्त्रधारी का निशाना बन जाने से इस पाप का प्रायश्चित्त होता है। इसके सिवा पण्डितों की आज्ञा से अथवा अपनी इच्छा से प्रज्वलित अग्नि में सिर के बल तीन बार कूदने से, अथवा वेदपाठ करते-करते सौ योजन की यात्रा करने से, अथवा वेदवेत्ता ब्राह्मण को सर्वस्व दान करने या उन्हें जन्म-भर के ख़र्च के लिए काफ़ी धन देने या कपड़े और घर के देने से, अथवा गायों और ब्राह्मणों की रक्षा करने से ब्रह्महत्या के पाप से छूट जाता है। जो तीन दिन सवेरे, तीन दिन शाम को, तीन दिन बिना माँगे मिल जानेवाला (अयाचित) भोजन करता और तीन दिन भूखा रहता हुआ छः वर्ष तक इस नियम का पालन करे या महीने में एक सप्ताह सवेरे भोजन, एक सप्ताह शाम को भोजन, एक सप्ताह अयाचित व्रत और एक सप्ताह उपवास, इस तरह तीन वर्ष तक (कृच्छ्र) करता रहे या एक मास सवेरे भोजन, एक मास शाम को भोजन, एक मास अयाचित व्रत और एक मास उपवास, इस तरह एक वर्ष तक करे या कुछ दिनों तक निरा उपवास करे तो वह ब्रह्महत्या के पाप से छूट जाता है। अथवा अश्वमेध यज्ञ करने से ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त हो जाता है। या यज्ञ के अन्त में स्नान करने से ब्रह्महत्या के पाप से छूटता है; अथवा जो ब्राह्मण के लिए युद्ध में अपने प्राण दे दे वह ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त होता है; अथवा सुपात्र ब्राह्मणों को एक लाख गो- १० दान करे या पचीस हज़ार दूध देनेवाली कपिला गायें दान करे या एक हज़ार दूध देती हुई बछड़े समेत गायें सज्जन दरिद्र ब्राह्मणों को दान करे तो सब पापों से छूट जाता है। जो मनुष्य एक सौ काम्बोज देश के घोड़े दान करे वह सब पापों से छूट जावे। जो व्यक्ति एक मनुष्य का भी मनोरथ पूरा कर देता है और उस काम को प्रकट नहीं होने देता वह सब पापों से छूट जाता है। जो मनुष्य एक बार शराब पी ले तो अग्निवर्ण (जलती हुई) शराब के पीने से उसका प्रायश्चित्त हो जाता है। निर्जल देश में पहाड़ की चोटी से गिरने, आग में कूद पड़ने और पहाड़ की बर्फ़ में गलने से सब पापों का खण्डन हो जाता है। वेद का वचन है कि मदिरा पीनेवाला ब्राह्मण बृहस्पति-यज्ञ करे तो उस पाप से छूटकर अपनी जाति में मिल जाता है।

शराब पीनेवाला मनुष्य भूमिदान-रूपी प्रायश्चित्त करे और ईर्ष्याहीन होकर फिर कभी शराब न पिये तो उस पाप से छूट जाता है। जो मनुष्य गुरु की स्त्री के साथ गमन करे वह जलते हुए लोहे के तख़्ते पर सोवे और अपना लिङ्ग काटकर, ऊर्ध्वदृष्टि करके, वन को चला जावे तो शरीर त्यागने पर अपने पाप से छूट जायगा। स्त्रियाँ आहार-विहार छोड़कर एक वर्ष नियम-पूर्वक रहने से सब पापों से छूट जाती हैं। महाव्रत (एक महीने तक निराहार निर्जल उपवास) करने, सर्वस्व दान देने या गुरु के निमित्त युद्ध में मारे जाने से सब पापों से छुटकारा हो जाता है। जो मनुष्य गुरु से झूठ बोलता या गुरु का द्रव्य चुराता है वह गुरु का कोई प्रिय काम करने से ही उस पाप से छूट जाता है। जिस ब्रह्मचारी का ब्रह्मचर्य नष्ट हो गया हो वह ब्रह्म-हत्यारे के निमित्त बतलाये हुए व्रतों के करने या छः मास गाय का चमड़ा ओढ़ने से शुद्ध होता है। जो पर-स्त्री-गमन और दूसरे के धन का हरण करता है वह एक वर्ष नियम-पूर्वक रहने से पाप से छूट जाता है। जो मनुष्य जिसका जितना धन चुरावे वह किसी उपाय से उतना धन उसको दे देने से चोरी के पाप से छुटकारा पा जाता है। जो छोटा भाई अपने बड़े भाई की अविवाहित अवस्था में अपना विवाह कर ले तो वे दोनों भाई बारह दिन नियमपूर्वक कृच्छ्र व्रत करने से पवित्र होते हैं। किन्तु छोटे भाई को पितरों के उद्धार के लिए फिर विवाह करना चाहिए। उसकी पहली स्त्री भी शुद्ध और निर्दोष बनी रहती है। धर्मशास्त्र के पण्डितों का कहना है कि स्त्रियाँ चातुर्मास्य व्रत करने से ही सब पापों से छूट जाती हैं। विद्वान् लोग स्त्रियों को मानसिक पाप से दूषित नहीं मानते और जिस तरह राख से बर्तन शुद्ध हो जाते हैं उसी तरह स्त्रियाँ रजस्वला हो जाने पर शुद्ध हो जाती हैं। शूद्र के जूठा करने, गाय के सूँघने और ब्राह्मण के कुल्ला कर देने से अशुद्ध काँसे का बर्तन, शुद्ध करनेवाले दस* प्रकार के द्रव्यों से शुद्ध होता है। ब्राह्मणों में पूरा, क्षत्रियों में तीन-चौथाई, वैश्यों में आधा और शूद्रों में एक-चौथाई धर्म रहता है। संसार में धर्म के अनुसार ही उनकी बड़ाई-छुटाई मानी जाती है। पशु-पक्षियों के मारने और वृक्षों के काटने का पाप जनता में प्रकट कर देने और तीन दिन केवल वायु का भक्षण करने से छूट जाता है। अगम्या-गमन करने पर छः महीने राख पर सोने और गीले कपड़े पहने रहने से उस पाप से छुटकारा मिलता है।

२०

३०

महाराज! पापकर्म करने पर दृष्टान्त, युक्ति और शास्त्र की विधि के अनुसार प्रायश्चित्त करना चाहिए। जो ब्राह्मण जीवों को नहीं मारता, व्यर्थ बातें नहीं करता, परिमित भोजन करता और पवित्र स्थानों में गायत्री जप करता हुआ विचरता रहता है वह सब पापों से मुक्त हो जाता है। दिन में चबूतरा वग़ैरह पर खुली हुई जगह में रहने, रात में उसी पर सो रहने, रात में तीन बार और दिन में तीन बार कपड़ा पहने हुए स्नान करने तथा स्त्री, शूद्र और पतित

* पञ्चगव्य (गाय का [illegible], मूत्र और गोबर), मिट्टी, पानी, राख, खटाई और आग।

लोगों के साथ बातचीत न करने से, भूल से किया हुआ द्विजों का पाप दूर हो जाता है। महाराज, सभी प्राणी मरने पर अपने-अपने पाप-पुण्य का फल भोगते हैं। अधिक पुण्य करनेवाला ४० पुण्य का फल और अधिक पाप करनेवाला पाप का फल पाता है। इसलिए दान और तप आदि अच्छे कर्मों से पुण्य बढ़ाना चाहिए। जहाँ तक हो सके, पाप से बचा रहे और पुण्य-कार्य करे। नित्य प्रति दान करते रहने से पाप से छुटकारा होता है। जिन पापों का प्रायश्चित्त हो सकता है उन सबको मैंने बतला दिया। महापापों के सिवा साधारण पापों का प्रायश्चित्त हो सकता है। भक्ष्य-अभक्ष्य, वाच्य-अवाच्य आदि में दो प्रकार के पाप होते हैं। एक तो जान-बूझकर और दूसरा भूल से। जान-बूझकर किया हुआ पाप भारी और भूल से किया हुआ पाप हलका होता है। प्रायश्चित्त में भी यही तारतम्य रहे, आस्तिक और श्रद्धावान् मनुष्य विधिपूर्वक प्रायश्चित्त करके पाप से छूट जाता है। नास्तिक, पाखण्डी और श्रद्धाहीन मनुष्य के लिए प्रायश्चित्त का विधान ही नहीं है। प्रायश्चित्त करने से भी उनको पाप से छुटकारा मिलना असम्भव है। जो मनुष्य इस लोक और परलोक में सुख की आशा रखता हो उसको सदाचारी रहना और सत्पुरुषों की सलाह से चलना चाहिए। तुम सदाचारी हो। तुमने अपने प्राण और धन की रक्षा के लिए, अथवा क्षत्रिय-धर्म के अनुसार, युद्ध में क्षत्रियों का संहार किया है अतएव तुम अवश्य ही पाप से छूट जाओगे। यदि तुम अपने को पापी समझते हो तो उस पाप का प्रायश्चित्त करो। मूर्ख की तरह क्रोध में आकर प्राण त्याग देना तुमको उचित नहीं। वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, वेदव्यास की बातें सुनकर कुछ देर चुप रहने ५१ के बाद धर्मराज युधिष्ठिर ने फिर कहा।

छत्तीसवाँ अध्याय

व्यासजी का युधिष्ठिर को भक्ष्य-अभक्ष्य और पात्र-अपात्र बतलाना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, कौन वस्तु भक्ष्य है और कौन अभक्ष्य? कौन वस्तु दान करने योग्य है? कौन मनुष्य दान का पात्र है और कौन अपात्र? कृपा करके इसका वर्णन कीजिए।

वेदव्यास ने कहा कि महाराज! प्राचीन समय में स्वायंभुव मनु ने सिद्धगणों से जो कथा कही थी वह सुनो। सत्ययुग में व्रतधारी महर्षियों ने प्रजापति के पास जाकर पूछा—भगवन्! अन्न, पात्र, दान, अध्ययन, तप तथा करने योग्य और न करने योग्य कामों का विस्तार से वर्णन कीजिए। महर्षियों के पूछने पर प्रजापति ने कहा—हे महर्षियो! हम धर्म का वर्णन भली भाँति करते हैं, सावधान होकर सुनो। पवित्र स्थान में जप, होम और उपवास करने, आत्मज्ञान होने और पवित्र नदियों में स्नान करने से मनुष्य शुद्ध होता है।

पवित्र पर्वतों और देवस्थानों की यात्रा करने, सुवर्ण और रत्न आदि द्वारा स्नान करने तथा घी खाने से मनुष्य पवित्र होता है। गर्व करनेवाला मनुष्य बुद्धिमान् नहीं कहा जा सकता। दीर्घ आयु चाहनेवाले बुद्धिमान् मनुष्य को यदि अहङ्कार हो जावे तो उसे तीन दिन गरम पानी पीना चाहिए, अर्थात् तप्तकृच्छ्र व्रत करना चाहिए। दान, अध्ययन, तप, अहिंसा, सत्य, क्षमा और यज्ञ करना तथा बिना दी हुई वस्तु का न लेना धर्म का लक्षण है। कहीं-कहीं इनके विरुद्ध भी धर्म हो जाता है अर्थात् चोरी करना, झूठ बोलना और हिंसा करना आदि भी धर्म हो जाते हैं। प्रवृत्ति और निवृत्ति, धर्म और अधर्म के दो भेद हैं। लौकिक और वैदिक व्यवस्था के अनुसार प्रवृत्ति और निवृत्ति भी दो प्रकार की है। कर्मत्यागी पुरुष मुक्त हो जाता है और कर्म करनेवाला मनुष्य बार-बार जन्म लेता है। जो मनुष्य

बुरे कर्म करता है उसे बुरा फल और जो अच्छे कर्म करता है उसे अच्छा फल मिलता है। नीच मनुष्य भी यदि दैव, शास्त्र, जीवन और जीवन के उपयुक्त वस्तुओं पर ध्यान रखकर कर्म करता है तो अवश्य ही शुभ फल पाता है। कर्ता जो अदृष्टार्थ या दृष्टार्थ कर्म करता है वह जानकर किया गया है, इसलिए सन्देह रहने पर भी [लोकनिन्दा से बचने के लिए] उसे उसका प्रायश्चित्त करना पड़ता है। क्रोध और मोह आदि के आ जाने पर जो पाप हो जाता है उसका प्रायश्चित्त ओषधि, मन्त्र, तीर्थ-यात्रा और उपवास आदि से करना चाहिए। यदि राजा अपराधी को दण्ड न दे तो उसे एक रात और यदि पुरोहित दण्ड देने का उपदेश न करे तो उसे तीन रात उपवास करना चाहिए। जो मनुष्य पुत्र आदि के वियोग में आत्महत्या करने को तैयार हो जाय, किन्तु मरे नहीं उसे तीन रात उपवास करना चाहिए। जो मनुष्य अपनी जाति-पाँति, कुलधर्म और जन्मभूमि को छोड़ दे उसके लिए कोई प्रायश्चित्त नहीं है। धर्म की आशङ्का उपस्थित होने पर वेदशास्त्र के जाननेवाले दस विद्वान् अथवा धर्म-शास्त्र के जाननेवाले तीन पण्डित जिस धर्म की व्यवस्था कर दें उसी धर्म को मानना चाहिए। बैल, मिट्टी, क्षुद्र पिपीलिका (दीमक), लसोढ़ा, विष, शल्क (छिलका)-वर्जित मछली, कछुए के अलावा चार पैरोंवाले

जलजन्तु, मेढक आदि जलचर, भास, हंस, सुपर्ण, चकवा, प्लव, बगला, कौआ, मद्गु (एक प्रकार का साँप ?), गिद्ध, बाज़, उलूक, चार पैरवाले पक्षी, मांस खानेवाले जानवर और नीचे और ऊपर दोनों तरफ़ दाँतों तथा चार दाँतोंवाले (व्याघ्र आदि) जीवों का मांस खाना ब्राह्मण के लिए निषिद्ध है। ब्राह्मणों को भेड़, घोड़ी, गदही, ऊँटनी, तुरन्त की ब्याई गाय, स्त्री और मृगी का दूध न पीना चाहिए। जिस घर में जन्म का या मरण का अशौच (सूतक) हो उसका अन्न दस दिन तक न खाना चाहिए। राजा का अन्न तेज को, शूद्र का अन्न ब्रह्मतेज को और सुनार तथा पति-पुत्र से हीन स्त्री का अन्न आयु को हानि पहुँचाता है। ब्याज खानेवाले मनुष्य का अन्न विष्ठा के समान तथा वेश्या, व्यभिचारिणी स्त्री और स्त्री के दबैल मनुष्य का अन्न वीर्य के समान है। अग्निष्टोम यज्ञ में वपा-होम न होने तक दीक्षित मनुष्य का अन्न न खाना चाहिए। कृपण, यज्ञ बेचनेवाले, बढ़ई, चमार, धोबी, वैद्य, गाँव की रक्षा करनेवाले (चौकीदार), पातकी, रंगस्त्री-जीवी
३० (वेश्याओं के दलाल), बन्दी, परिवित्ति और जुआरी का अन्न न खाना चाहिए। बासी भात, बायें हाथ से लाया हुआ, शराब मिला हुआ अन्न, जूठा, घरवालों को न देकर अपने लिए बचाया हुआ, पुराना आटा, पुरानी ऊख, बासी शाक, बासी दूध और दही, बहुत दिनों का सत्तू और चबैना ब्राह्मणों को न खाना चाहिए। खीर, तिल मिला हुआ भात, मांस और पुवा देवता को भोग लगाये बिना न खाना चाहिए। देवता, पितर, ऋषि, अतिथि और गृह-देवता की पूजा करके ब्राह्मणों को भोजन करना चाहिए और विरक्त की तरह अपने घर में रहना चाहिए। जो मनुष्य उपर्युक्त नियमों के अनुसार स्त्री समेत गृहस्थ धर्म का पालन करता है वही श्रेष्ठ धार्मिक है।

धार्मिक मनुष्य कभी नाम के लिए या डरकर दान नहीं करता। उपकार करनेवाले, नाचने-गानेवाले, हँसी उड़ानेवाले, मतवाले, पागल, निन्दक, चोर, मूर्ख या गूँगे, चितकबरे, अङ्गहीन, बौने, दुर्जन, निन्द्य कुल में उत्पन्न, अश्रोत्रिय, वेद के न जाननेवाले और व्रतहीन ब्राह्मण को दान न देना चाहिए। अयोग्य ब्राह्मण को दान देने से देनेवाले और लेनेवाले दोनों का अमङ्गल होता है। जैसे कोई मनुष्य खैर के तख़्ते के अथवा शिला के सहारे समुद्र में तैरने लगे तो जिस तरह वह तख़्ता तैरनेवाले मनुष्य को लेकर समुद्र में डूब जाता है उसी तरह अपात्र
४० को दान देनेवाला मनुष्य दान लेनेवाले के साथ पाप-रूपी समुद्र में डूबता है। जैसे गीली लकड़ियों से ढकी हुई आग नहीं जल सकती वैसे ही तप, आचरण और विद्या से हीन दुश्चरित्र ब्राह्मण दान लेकर कोई फल नहीं दे सकता। जिस तरह मनुष्य की खोपड़ी में जल और कुत्ते के चमड़े की बनी हुई थैली में दूध रख देने से, स्थान के दोष से, अपवित्र हो जाता है उसी तरह दुराचारी मनुष्य की विद्या व्यर्थ होती है। मन्त्रहीन, व्रतहीन, मूर्ख, ईर्ष्या करनेवाले और दुराचारी मनुष्य को दान देना केवल दया करना है; उससे रत्ती-भर भी धर्म नहीं होता। ग़रीब और रोगी मनुष्य पर दया करना और उनको दयावश दान देना चाहिए। वेद के न जाननेवाले ब्राह्मण को

दान देना निष्फल है। अपढ़ ब्राह्मण काठ के हाथी और चमड़े के मृग की तरह नाममात्र का है। जैसे नपुंसक व्यक्ति स्त्रियों के काम का नहीं होता और बधिया बैल से गाय गाभिन नहीं हो सकती; जैसे पर के बिना पक्षी, मनुष्यों से शून्य स्थान और जल के बिना कुआँ बेकाम है वैसे ही अपढ़ ब्राह्मण किसी काम का नहीं होता। मूर्ख को दान देना अग्नि-शून्य स्थान में होम कर देने के समान निष्फल है। मूर्ख मनुष्य देवताओं और पितरों का हव्य-कव्य नष्ट करनेवाला है, उनका शत्रु है, वह कभी श्रेष्ठ लोकों को नहीं जा सकता। हे धर्मराज, जिन बातों के सुनने की तुम्हारी इच्छा थी वे सब मैंने संक्षेप में कह दीं। ५०

सैंतीसवाँ अध्याय

व्यासजी और श्रीकृष्ण आदि की आज्ञा से, भीष्म से राजधर्म
सुनने को जाने के पूर्व युधिष्ठिर का हस्तिनापुर जाना

युधिष्ठिर ने कहा—भगवन्, आप सम्पूर्ण राजधर्म और आपत्काल में वर्तने योग्य नीति का उपदेश कीजिए और यह भी बतलाइए कि मैं किस तरह धर्म के अनुसार चलकर पृथिवी का शासन कर सकता हूँ। आपके मुँह से उपवास और प्रायश्चित्त की कथा सुनकर मेरे हृदय में हर्ष और आश्चर्य पैदा हो गया है। धर्म का आचरण और राज्य की रक्षा, ये दोनों एक दूसरे के विरुद्ध हैं; इसलिए एक मनुष्य इन दोनों का भार कैसे उठा सकता है? मेरा चित्त लगातार इसी चिन्ता में डूबा रहता है।

तब वेदव्यासजी ने सर्वज्ञ महर्षि नारद की ओर देखकर धर्मराज युधिष्ठिर से कहा—बेटा, यदि तुम सम्पूर्ण धर्म सुनना चाहते हो तो अपने पितामह वयोवृद्ध भीष्म के पास जाओ। तुम्हारी धार्मिक शङ्काओं को सब धर्मों के जानकार भीष्मजी दूर कर देंगे। वे भागीरथी के गर्भ से पैदा हुए हैं; उन्होंने इन्द्र आदि देवताओं का दर्शन किया है और बृहस्पति आदि देवर्षियों को अपनी सेवा से सन्तुष्ट करके उनसे राजनीति सीखी है; उन्होंने दैत्यगुरु शुक्राचार्य और देवगुरु बृहस्पति के धर्मशास्त्रों का मर्म समझ लिया है तथा भृगुनन्दन च्यवन और महर्षि वसिष्ठ से वेद और वेदाङ्ग पढ़े हैं; उन्होंने प्रजापति के बड़े पुत्र तेजस्वी आत्मज्ञानी सनत्कुमार से ज्ञान सीखा है और महर्षि मार्कण्डेय से संन्यास-धर्म की शिक्षा ली है; उन्होंने परशुराम और इन्द्र से अस्त्र-विद्या सीखी है; वे अपनी इच्छा से ही शरीर का त्याग करेंगे अर्थात् उन पर मृत्यु का शासन नहीं चल सकता। वे पुत्र-हीन होने पर भी श्रेष्ठ लोक को जायँगे; उनकी सभा में ब्रह्मर्षि लोग सभासद् थे; वे जानने योग्य सभी कुछ जानते हैं। वही धर्म के सूक्ष्म तात्पर्य को १०

जाननेवाले बुद्धिमान् भीष्मजी तुमको धर्म का उपदेश करेंगे। अतएव उन महात्मा के प्राण त्यागने के पहले ही तुम शीघ्र उनके पास पहुँच जाओ।

दूरदर्शी धर्मराज ने व्यासदेव की बातें सुनकर कहा—भगवन्, हम लोग आत्मीय जनों को मारकर सबके अपराधी हो गये हैं। हमीं ने वंश का नाश किया है। विशेषकर धर्मयुद्ध करते हुए महावीर पितामह को हमीं ने छल से मरवाया है। बतलाइए, अब हम लोग कौन सा मुँह लेकर उनके पास जाकर धर्म की जिज्ञासा प्रकट करें ?

वैशम्पायन कहते हैं कि तब यदुकुल-तिलक वासुदेव ने, चारों वर्णों के हित के लिए, फिर २० युधिष्ठिर से कहा—महाराज, अब शोक करना ठीक नहीं। महर्षि व्यासजी ने जो कहा है वही कीजिए। ये सब ब्राह्मण, मरने से बचे हुए राजा, आपके भाई और द्रौपदी सब लोग आपको राजा बनाने की इच्छा से टकटकी लगाये आपकी ओर देख रहे हैं। आप इन सबके कल्याण के लिए तेजस्वी व्यासदेव की आज्ञा का पालन और द्रौपदी के अनुरोध की रक्षा करते हुए महात्मा भीष्म के पास जाइए।

अब धर्मराज युधिष्ठिर—श्रीकृष्ण, अर्जुन, देवस्थान, वेदव्यास और दूसरे लोगों के समझाने पर—शोक-सन्ताप छोड़कर, शान्त होकर, संसार के हित के लिए उसी दम उठ खड़े हुए। वे नक्षत्रों से घिरे हुए चन्द्रमा के समान भाई-बन्धुओं समेत, महाराज धृतराष्ट्र को आगे करके, ३० अपने नगर में जाने का विचार करके देवताओं और ब्राह्मणों की स्तुति करने लगे।

धर्मराज युधिष्ठिर ऐसे सफ़ेद नये रथ पर सवार हुए जिस पर कम्बल और मृगछाला बिछी हुई थी और जिसमें शुभ लक्षणोंवाले सफ़ेद सोलह बैल जुते हुए थे। महाबली भीमसेन ने सारथी के स्थान पर बैठकर बैलों की रस्सी पकड़ ली और वीर अर्जुन ने धर्मराज के सिर पर सफ़ेद छाता तान दिया। वह छाता आकाश-मण्डल में नक्षत्रों से शोभित सफ़ेद बादलों की तरह जान पड़ने लगा। उसी रथ पर नकुल और सहदेव सफ़ेद चँवर लेकर डुलाने लगे। इस तरह पाँचों भाइयों के सवार होने पर वह रथ पाञ्चभौतिक शरीर के समान शोभित हो उठा। धृतराष्ट्र का पुत्र युयुत्सु वेगवान् घोड़ों के साफ़ रथ पर सवार होकर युधिष्ठिर के पीछे चला। शैब्य और सुग्रीव जिस सुवर्णमय सुन्दर रथ में जुते हुए थे उस पर श्रीकृष्ण, सात्यकि के साथ, सवार होकर कौरवों के पीछे चले। बूढ़े राजा धृतराष्ट्र, गान्धारी समेत, पीनस पर सवार होकर ४० महाराज युधिष्ठिर के आगे-आगे चले। कुन्ती और द्रौपदी आदि स्त्रियाँ अनेक प्रकार की बढ़िया-बढ़िया सवारियों पर सवार होकर महात्मा विदुर के साथ चलीं। सबके पीछे असंख्य अलंकृत रथ, हाथी, घोड़े और पैदल चले। बन्धु-बान्धवों समेत महाराज युधिष्ठिर इस तरह बन्दी-मागध-सूत लोगों की स्तुति सुनते हुए हस्तिनापुर को चले। इस समय असंख्य मनुष्यों के कोलाहल से धर्मराज की नगर-यात्रा बहुत सुहावनी मालूम होने लगी। धर्मराज के आने की ख़बर पाकर

नगर-निवासियों ने राजमार्ग को घेर लिया। पृथिवी सफ़ेद मालाओं और पताकाओं से शोभित, राजमार्ग धूप से धूपित और राजभवन सुगन्ध के बुरादे, फूल और मालाओं से सुशोभित किया गया। नगर के द्वार पर सुगन्धित पुष्पों सहित सफ़ेद पूर्ण कलश रक्खे गये। धर्मराज युधिष्ठिर ने भाइयों समेत बन्दीगणों की स्तुति सुनते हुए उस शोभित नगर-द्वार से नगर में प्रवेश किया। ४६

अड़तीसवाँ अध्याय

युधिष्ठिर का राजभवन में पहुँचकर सभा में जाना। वहाँ युधिष्ठिर की निन्दा करते हुए चार्वाक राक्षस का ब्राह्मणों के हुङ्कार से भस्म होना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, नगर में प्रवेश करते समय पाण्डवों को देखने के लिए हज़ारों नगर-निवासी राजमार्ग पर इकट्ठा हो गये। पूर्ण चन्द्रमा का उदय होने पर समुद्र की तरह उस समय उस राजमार्ग में दर्शकों की भीड़ हो गई। राजमार्ग के पास की रत्नजटित अटारियाँ स्त्रियों के भार से काँपने सी लगीं। स्त्रियों ने लज्जा से सिर झुकाकर मीठे स्वर से पाण्डवों को धन्यवाद दिया और द्रौपदी को सम्बोधित करके कहा कि पाञ्चाली, तुम धन्य हो। गौतमी जिस तरह महर्षियों का आश्रय ग्रहण करती हैं उसी तरह तुम इन पाण्डवों के आश्रित हो। तुम्हारे व्रत और कर्म सब सफल हैं। इस तरह स्त्रियों ने द्रौपदी की प्रशंसा की। उनके हर्ष-सूचक शब्दों और बातचीत से नगर गूँज उठा।

धर्मराज जब राजभवन के द्वार पर पहुँचे तब पुरवासी प्रजा ने, उनके समीप आकर, मीठे स्वर से कहा—महाराज, बड़े भाग्य की बात है कि धर्म के अनुसार अपने पराक्रम से आपने शत्रुओं को जीतकर फिर राज्य पर अधिकार किया है। अब इन्द्र की तरह आप हमारे १० अधीश्वर रहकर सौ वर्ष तक प्रजा का पालन करें। धर्मात्मा युधिष्ठिर इस प्रकार प्रजा के मङ्गल-वाक्यों और ब्राह्मणों के आशीर्वादों को महल की ड्योढ़ी पर सुनकर, इन्द्र-भवन के समान राजभवन में प्रवेश करके, रथ से उतर पड़े। भीतर जाकर अनेक रत्नों और पुष्प-मालाओं से देवताओं की पूजा करके वे फिर द्वार पर आ गये। ब्राह्मण लोग आशीर्वाद देने के लिए उनके चारों ओर खड़े हो गये। धर्मराज युधिष्ठिर ब्राह्मणों के बीच में नक्षत्रों से घिरे हुए चन्द्रमा के समान जान पड़ने लगे। तब उन्होंने पुरोहित धौम्य और चाचा धृतराष्ट्र के सामने असंख्य मोदक, रत्न, सोना, गायें और कपड़े देकर ब्राह्मणों की पूजा की। उस समय मनोहर पवित्र पुण्याहवाचन के शब्दों से आकाश-मण्डल भर गया। गम्भीर अर्थ से भरे हुए, विद्वान् ब्राह्मणों के, वाक्यों को धर्मराज सुनने लगे। इसके बाद चारों ओर जय-जयकार, २० दुन्दुभियों का घोर शब्द और शङ्खनाद होने लगा।

महाराज, ब्राह्मण लोग प्रसन्न होकर फिर धर्मराज को आशीर्वाद देने लगे। इन ब्राह्मणों के बीच में दुर्योधन का मित्र दुष्ट चार्वाक राक्षस, भिक्षुक के वेष में, खड़ा था। वह पाण्डवों का अपकार करने की इच्छा से, ब्राह्मणों के चुप हो जाने पर, उनसे सलाह लिये बिना ही बेधड़क ऊँचे स्वर से गर्व के साथ युधिष्ठिर से कहने लगा—महाराज, ये ब्राह्मण मेरे द्वारा आपको कुल-नाशक और अति निन्दित राजा कहकर धिक्कार दिलाते हैं। इस तरह कुल का और गुरुजनों का विनाश करके आपको क्या लाभ हुआ? अब आपका मर जाना ही अच्छा है। जीने से कुछ प्रयोजन नहीं। दुष्ट राक्षस की इन बातों को सुनकर ब्राह्मण लोग दुःख, लज्जा और क्रोध के मारे सन्न हो गये। ब्राह्मणों की यह हालत देखकर युधिष्ठिर ने कहा—हे ब्राह्मणो, मैं नम्रता के साथ आप लोगों से प्रार्थना करता हूँ। आप लोग प्रसन्न हों। मैं शीघ्र ३० ही प्राण छोड़नेवाला हूँ। अब आप लोग मुझे अधिक न धिक्कारें।

वैशम्पायन कहते हैं कि तब तपस्वी विद्वान् ब्राह्मणों ने युधिष्ठिर से कहा—धर्मराज, हम लोगों ने आपको नहीं धिक्कारा है। आपका भला हो। अब उन्होंने ज्ञानचक्षु से चार्वाक को देखकर फिर धर्मराज से कहा—महाराज, जिसने आपको ये कटु वचन कहे हैं वह दुष्ट दुर्योधन का परम मित्र चार्वाक नाम का राक्षस है। यह संन्यासी के वेश में मौजूद है। इस दुष्ट ने दुर्योधन की भलाई के लिए आपको कटु वचन कहे हैं। हम लोगों ने कुछ नहीं कहा। इसलिए आप कोई सन्देह न करें। भाइयों समेत आपका कल्याण हो।
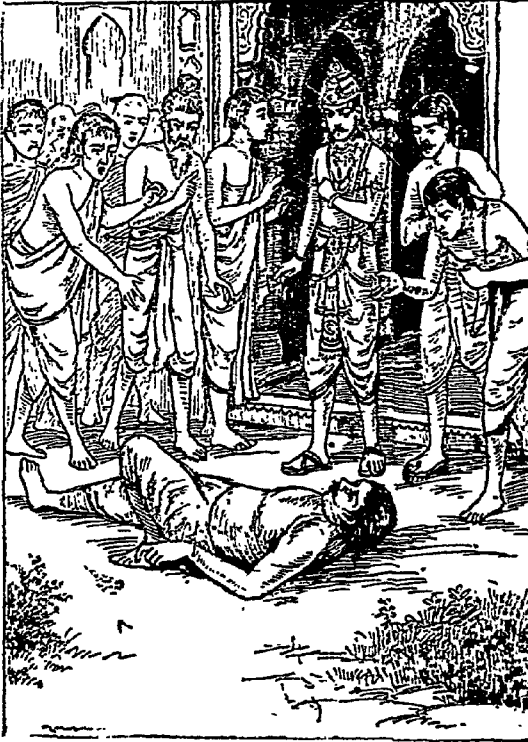
इसके बाद ब्राह्मण लोग कुपित होकर चार्वाक को डाँटते हुए 'हुँ, हुँ' करने लगे। उन महात्माओं के क्रोधाग्नि में भस्म होकर चार्वाक, बिजली गिरे हुए झुलसे वृक्ष की तरह, पृथिवी पर गिर पड़ा। यह देखकर महाराज युधिष्ठिर ने ब्राह्मणों का यथोचित सम्मान किया। इसके बाद ब्राह्मण लोग धर्मराज को आशीर्वाद देकर अपने-अपने घर को चले गये और भाइयों ३७ समेत राजा युधिष्ठिर प्रसन्न हुए।

उनतालीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण का युधिष्ठिर से चार्वाक राक्षस की पूर्व-कथा कहना

वैशम्पायन कहते हैं कि इसके बाद सर्वदर्शी श्रीकृष्ण ने भाइयों सहित बैठे हुए धर्मराज से कहा—महाराज, इस संसार में ब्राह्मण लोग सदैव हमारे पूज्य हैं। ये लोग पृथिवी पर स्थित देवता हैं। इनके कुपित होने पर इनके वचनों से विष निकलता है। इनको प्रसन्न करना बहुत सरल काम है। प्राचीन समय में, सत्ययुग में, चार्वाक नाम के एक राक्षस ने बदरी-तपोवन में बहुत दिनों तक घोर तपस्या की थी। उसकी तपस्या से सन्तुष्ट होकर ब्रह्मा ने उससे वर माँगने को कहा। ब्रह्मा को प्रसन्न जानकर वह राक्षस बोला—भगवन्, यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे यह वर दीजिए कि संसार में किसी प्राणी से मुझे भय न रहे। तब ब्रह्मा ने कहा—चार्वाक! हम तुमको अभीष्ट वर तो देते हैं, किन्तु देखो, कभी ब्राह्मण का अपमान न करना। ब्राह्मण का अपमान करने से तुम विपत्ति में पड़ोगे।

वरदान पाकर वह राक्षस अपने पराक्रम से देवताओं को सताने लगा। उस राक्षस के बाहुबल से पीड़ित होकर देवताओं ने उसका वध करने के लिए ब्रह्मा से अनुरोध किया। ब्रह्मा ने कहा—हे देवताओ, जिस तरह यह राक्षस जल्दी मरे वह उपाय हमने पहले ही कर दिया है। मनुष्यों में दुर्योधन नाम के एक राजा से चार्वाक की मित्रता होगी और यह राक्षस उसी के स्नेहवश ब्राह्मणों का अपमान करेगा। तब ब्राह्मण लोग कुपित होकर उसे अपने वचनों से भस्म कर डालेंगे। हे धर्मराज, यह वही चार्वाक राक्षस ब्रह्मदण्ड से मरा पड़ा है। अब आप सोच न करें। ९ आपके आत्मीय लोग क्षत्रिय-धर्म के अनुसार युद्ध में प्राण त्यागकर स्वर्ग को गये हैं। उनके लिए सोच करना वृथा है। अब आप राज्य का शासन, शत्रुओं का संहार, प्रजा का पालन और ब्राह्मणों का सत्कार करें। १२

चालीसवाँ अध्याय

युधिष्ठिर का राज्याभिषेक

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज! तब युधिष्ठिर शोक-सन्ताप छोड़कर प्रसन्नचित्त हो, पूर्व दिशा को मुँह करके, सुवर्णमय आसन पर बैठे। शत्रुओं का नाश करनेवाले सात्यकि और श्रीकृष्ण, धर्मराज के सामने, स्वर्णमय आसन पर बैठे। भीमसेन और अर्जुन, युधिष्ठिर के दोनों ओर, मणि-जटित आसनों पर बैठे। सहदेव और नकुल के साथ कुन्ती सुवर्ण-भूषित हाथी-दाँत के सिंहासन पर तथा महात्मा सुधर्मा, विदुर, धौम्य और धृतराष्ट्र अग्नि के समान कान्तिवाले आसनों पर बैठे। युयुत्सु, सञ्जय और यशस्विनी गान्धारी, ये तीनों धृतराष्ट्र के पास बैठ गये।

धर्मराज युधिष्ठिर जब अक्षत, सफ़ेद फूल, पृथिवी, सोना, चाँदी और मणि का स्पर्श कर चुके तब प्रजा और पुरोहित अनेक मङ्गल वस्तुएँ ले-लेकर धर्मराज की ओर देखने लगे। उसी समय मिट्टी, सोना, अनेक प्रकार के रत्न, सोने, चाँदी, ताँबे और मिट्टी के पूर्ण कलश, फूल,
१० धान के लावा, आग, दूध, दही, घी, शहद, गूलर की लकड़ी का स्रुव, सोने से मढ़ा हुआ शङ्ख तथा शमी, पीपल और ढाक की लकड़ी आदि अभिषेक की सामग्री इकट्ठा की गई। तब श्रीकृष्ण की आज्ञा से पुरोहित धौम्य ने विधिपूर्वक पूर्व और उत्तर दिशा की ओर कुछ ढालू वेदी बनाई और चौक पूरे। उस पर अग्नि के समान तेजवाला बाघ के चमड़े से ढका हुआ सर्वतोभद्र आसन बिछाया गया। उस आसन पर युधिष्ठिर और द्रौपदी को बैठाकर धौम्य पुरोहित ने मन्त्रों से अग्नि में आहुति दी। महात्मा श्रीकृष्ण, राजर्षि धृतराष्ट्र और प्रजा ने उठकर शङ्ख लेकर महाराज युधिष्ठिर का अभिषेक किया। श्रीकृष्ण और अर्जुन आदि भाइयों से आदर-सत्कार पाकर तथा शङ्ख के जल से अभिषिक्त होकर धर्मराज युधिष्ठिर सुशोभित हुए। इसके बाद पणव, आनक और दुन्दुभि आदि बाजे बजाये गये। अब धर्मराज ने धैर्यवान् वेदपाठी सदाचारी ब्राह्मणों को सोने की हज़ार मुद्राएँ देकर, स्वस्तिवाचन कराते हुए, विधिवत् उनकी पूजा की।
२० ब्राह्मणों ने प्रसन्न होकर हंस के समान स्वर से युधिष्ठिर की प्रशंसा करते हुए जय-जयकार करके कहा—महाराज, सौभाग्यवश आपने शत्रुओं को जीतकर राज्य प्राप्त किया है। बड़ी बात है, जो आप गाण्डीवधारी अर्जुन, महाबली भीमसेन, नकुल और सहदेव सहित इस भीषण संग्राम में सकुशल विजयी हुए हैं। अब अपने कर्त्तव्य का पालन कीजिए। इस प्रकार सज्जनों से
२४ सम्मान पाकर युधिष्ठिर भाइयों सहित विस्तीर्ण राज्य के अधिकारी हुए।

इकतालीसवाँ अध्याय

युधिष्ठिर द्वारा भीम, अर्जुन प्रभृति का युवराज आदि पद पर नियुक्त किया जाना

वैशम्पायन कहते हैं कि प्रजा की देश-काल के अनुकूल बातें सुनकर धर्मराज ने कहा—हे ब्राह्मणो, पाण्डव लोग इस प्रशंसा के योग्य हों चाहे न हों; किन्तु जब आप लोगों ने उनके गुणों का वर्णन किया है तब वे निस्सन्देह धन्य हैं। इस समय आप लोगों ने प्रसन्न होकर हमारे गुणों की प्रशंसा की है। अतएव हम पर अनुग्रह करना आपका कर्तव्य है। महाराज धृतराष्ट्र हमारे परम देवता और पिता हैं, इसलिए यदि आप लोग हमारा प्रिय करना चाहते हैं तो हमेशा इनके शासन में रहकर इनकी भलाई का ध्यान रक्खें। आलस्य छोड़कर हमेशा इनकी सेवा करना हमारा कर्तव्य है। वंश का विनाश करके अब हम इन्हीं की सेवा के लिए जीते हैं। यदि आप लोग और मित्रगण हमारे ऊपर अनुग्रह करना उचित समझते हैं तो महाराज धृत-

राष्ट्र के साथ पहले का सा व्यवहार करें। ये हमारे और आप लोगों के भी स्वामी हैं। सारी पृथिवी और पाण्डव लोग सब इन्हीं के अधीन हैं। हे ब्राह्मणो, इस समय हमने जो कहा है इसे आप लोग कभी न भूलें। अब धर्मराज युधिष्ठिर ने ब्राह्मणों को विदा किया।

इसके बाद नगर और देश-निवासी प्रजा को विदा करके भीमसेन को युवराज-पद पर, बुद्धिमान् विदुर को सन्धि-विग्रह आदि नीति का निश्चय करने के लिए मन्त्रि-पद पर, गुणवान् वृद्ध सञ्जय को करने और न करने योग्य कामों की देख-रेख रखने और आय-व्यय का हिसाब देखने के काम पर, नकुल को सेनापति के पद और तनख्वाह बाँटने तथा निरीक्षण के काम पर, अर्जुन को शत्रुओं की सेना को रोकने और दुष्टों को दबाने के काम पर, सहदेव को राजा की अङ्ग-रक्षा के काम पर, पुरोहित धौम्य को ब्राह्मणों तथा देवताओं के और अन्य धार्मिक कामों पर नियुक्त किया। इस तरह राजा युधिष्ठिर ने जो जिस काम के योग्य था उसे उस काम पर नियुक्त करके विदुर, सञ्जय और युयुत्सु से कहा—आप लोगों को हमेशा महाराज धृतराष्ट्र की आज्ञा का पालन करना चाहिए। ये जो कुछ कहें वह काम उसी दम हो जावे। प्रजा का कोई काम आ पड़ने पर इन चाचाजी की आज्ञा लेकर वह कर दिया जावे। १०, १५

बयालीसवाँ अध्याय

युधिष्ठिर द्वारा मृत आत्मीयों का क्रिया-कर्म होना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, अब धर्मराज युधिष्ठिर ने युद्ध में मरे हुए सजातीय लोगों का अलग-अलग श्राद्ध कराया। महाराज धृतराष्ट्र ने भी अपने पुत्रों के उद्देश्य से ब्राह्मणों को अन्न, गायें और बहुत सा धन-रत्न दिया। द्रौपदी समेत महाराज युधिष्ठिर ने महात्मा द्रोण, कर्ण, अभिमन्यु, हिडिम्बा के पुत्र घटोत्कच के लिए और विराट, द्रुपद, धृष्टद्युम्न, आदि उपकार करनेवाले मित्रों तथा द्रौपदी के पाँचों पुत्रों के उद्देश्य से हज़ारों ब्राह्मणों को धन-रत्न, गायें और कपड़े आदि का दान किया। जिन राजाओं के वंश में कोई नहीं था उनका भी श्राद्ध आदि कर्म धर्मराज ने कराया। उन्होंने सुहृदों के नाम से उनके स्मारक-रूप धर्मशाला, पौंशाला और तालाब आदि बनवा दिये।

महाराज युधिष्ठिर इस प्रकार युद्ध में मरे हुए वीरों से उऋण होकर धर्म के अनुसार प्रजा का पालन करने लगे। धृतराष्ट्र, गान्धारी, विदुर, मन्त्री, नौकर-चाकर और पति-पुत्र-विहीन कौरव-स्त्रियों का आदर-सत्कार करके दीन और अन्धों अपाहिजों को भोजन, वस्त्र और घर देकर वे उनका पालन करते हुए सुख से निष्कण्टक राज्य करने लगे। १२

तैंतालीसवाँ अध्याय

युधिष्ठिर द्वारा भिन्न-भिन्न नामों से श्रीकृष्ण की स्तुति

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज युधिष्ठिर इस प्रकार साम्राज्य-पद पर अभिषिक्त होकर, हाथ जोड़कर, श्रीकृष्ण से कहने लगे—वासुदेव ! हम केवल तुम्हारी कृपा से, तुम्हारी नीति से, तुम्हारे बुद्धि-कौशल और तुम्हारे पराक्रम के प्रभाव से इस वंश-परम्परागत राज्य के फिर अधिकारी हुए हैं। इसलिए हे पुण्डरीकाक्ष, तुमको बार-बार नमस्कार है। तुम अद्वितीय पुरुष और यादवों के एकमात्र आधार हो। ब्राह्मणों ने अनेक नामों से तुम्हारी स्तुति की है। तुम विश्वकर्मा हो, तुम विश्वात्मा हो और तुम्हीं से यह संसार पैदा हुआ है। तुम विष्णु, जिष्णु, हरि, कृष्ण, वैकुण्ठ और पुरुषोत्तम हो। सातों आदित्य तुम्हीं हो। तुम एक मात्र होते हुए भी अनेक अवतार लेकर अनेक देह-धारी हुए हो। तुम तीनों युगों में विद्यमान रहते हो। तुम पुण्य-कीर्ति, हृषीकेश और यज्ञ के ईश्वर हो। तुम ब्रह्मा के भी गुरु हो। तुम्हीं तीन नेत्रोंवाले शिव हो। तुम्हीं दामोदर, वराह, अग्नि और सूर्य हो। तुम्हीं धर्म हो, तुम्हीं गरुड़ध्वज हो, तुम्हीं शत्रुओं की सेना का विनाश करनेवाले और सर्वव्यापी पुरुष हो। तुम श्रेष्ठ हो। तुम्हीं कार्त्तिकेय, तुम्हीं सत्य, तुम्हीं अन्नदाता, तुम्हीं अच्युत और तुम्हीं शत्रुओं का नाश करनेवाले हो। तुम्हीं ब्राह्मण आदि वर्ण और तुम्हीं अनुलोम-विलोम जातियाँ हो। तुम यज्ञादि-रूप हो। तुम्हीं आदिदेव हो। तुम्हीं इन्द्र के दर्प को चूर करनेवाले और हरिहर-रूपी हो। तुम्हीं समुद्र, तुम्हीं निर्गुण, तुम्हीं पूर्व-उत्तर दिशा और तुम्हीं ईशान कोण हो। तुम्हीं सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि-
१० रूप होकर स्वर्ग से उतरे हो। तुम्हीं सम्राट्, विराट् और स्वराट् हो। तुम्हीं इन्द्र के बनानेवाले हो। तुम विभु, शरीरी और अशरीरी हो। तुम अश्विनीकुमार के पिता हो। तुम्हीं कपिल, वामन, यज्ञ, यज्ञसेन, ध्रुव और गरुड़ हो। तुम्हीं शिखण्डी हो। तुम्हीं नहुष हो। तुम्हीं महेश्वर, दिवस्पृक्, पुनर्वसु और सुवभ्रु हो। तुम्हीं रुक्मयज्ञ, सुषेण, दुन्दुभि, कालचक्र और श्रीपद्म हो। तुम पुष्कर, पुष्प-धारण, ऋभु और अत्यन्त सूक्ष्म हो। तुम समुद्र, शुद्ध-चरित्र, ज्योति और हिरण्यगर्भ हो। तुम्हीं स्वधा और स्वाहा हो। तुम्हीं संसार के उत्पन्न और विनाश करनेवाले हो। तुम्हीं विश्व की रचना करते और उसका पालन करते हो। धनुष, चक्र और तलवार के धारण करनेवाले हे कृष्ण, तुमको नमस्कार है। सभा में युधिष्ठिर के इस प्रकार स्तुति
१७ करने पर यादवश्रेष्ठ श्रीकृष्ण बहुत प्रसन्न हुए और विनीत शब्दों से धर्मराज की प्रशंसा करने लगे।

चवालीसवाँ अध्याय

युधिष्ठिर की आज्ञा से भीम आदि चारों भाइयों का दुर्योधन प्रभृति के घरों में रहना

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, धर्मराज की आज्ञा पाकर नगर-निवासी प्रजा के लोग जब अपने-अपने घर को चले गये तब महाराज युधिष्ठिर ने महाबली भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव से कहा—भाइयो, तुम लोग इस युद्ध में शत्रुओं के बाणों से घायल होकर और थककर बहुत दुखी हो गये हो। मेरे कारण तुम लोगों को, कायर की तरह, वन में रहकर क्लेश सहना पड़ा। इसलिए अब थकावट को दूर करते हुए विजय-सुख का अनुभव करो। कल फिर सब लोग इकट्ठा होंगे।

धर्मराज ने, धृतराष्ट्र की अनुमति से, दास-दासियों से युक्त रत्न-जटित इन्द्र-भवन के समान मनोहर दुर्योधन का घर भीमसेन को, बहुत से महलोंवाला सोने के तोरण से सुसज्जित दासी-दास और धन-धान्य से पूर्ण दुःशासन का घर अर्जुन को, सोने और मणियों से जटित कुबेरभवन के समान सुन्दर दुर्मर्षण का घर नकुल को और कमलनयनी स्त्रियों से परिपूर्ण दुर्मुख का बढ़िया भवन सहदेव को दिया। वे सब लोग, बड़े भाई की आज्ञा से, अपने-अपने महलों में सुख से रहने लगे। महात्मा विदुर, सञ्जय, सुधर्मा, धौम्य और युयुत्सु भी अपने-अपने घर को गये। श्रीकृष्ण और सात्यकि अर्जुन के घर गये। खा-पीकर आराम से रात को सोकर प्रातःकाल फिर सब लोग युधिष्ठिर के पास आये। १०, १६

पैंतालीसवाँ अध्याय

कुशल-मङ्गल पूछकर युधिष्ठिर का श्रीकृष्ण की स्तुति करना

जनमेजय ने पूछा—हे तपोधन, अपना पुश्तैनी राज्य पाकर धर्मराज युधिष्ठिर ने फिर कौन-कौन से काम किये? और तीनों लोकों के गुरु श्रीकृष्ण ने क्या किया?

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, वासुदेव सहित पाण्डवों ने जो-जो काम किये हैं उन सबका वर्णन सुनो। राज्य पर अधिकार करके धर्मराज ने चारों वर्णों को अपने-अपने धर्म के अनुसार चलने की आज्ञा दी। हज़ार स्नातक ब्राह्मणों को एक-एक हज़ार अशर्फ़ियाँ दान कीं। नौकर-चाकरों, आश्रित मनुष्यों, अतिथियों, ग़रीबों और माँगनेवालों को उनकी इच्छा के अनुसार धन देकर प्रसन्न किया। पुरोहित धौम्य को दस हज़ार गायें, सोना, चाँदी, कपड़े और रत्नों का दान किया। कृपाचार्य का गुरु के समान और विदुर का यथोचित सत्कार किया। आश्रित मनुष्यों को भोजन, वस्त्र, आसन और शय्या आदि देकर सन्तुष्ट किया। राज्य में

१० शान्ति स्थापित करके युयुत्सु का समुचित सम्मान किया और धृतराष्ट्र, गान्धारी तथा विदुर की अनुमति से राज्य करते हुए वे सुख से रहने लगे।

इसी तरह सब नगर-निवासियों को प्रसन्न करके धर्मराज युधिष्ठिर श्रीकृष्ण के पास गये। वहाँ जाकर देखा कि दिव्य आभूषण पहने, नीले बादलों के समान सुन्दर श्रीकृष्णचन्द्र पीताम्बर ओढ़े सोने से मढ़ी हुई नीलम मणि के समान, मणि-जटित सोने से मढ़े हुए पलँग पर बैठे हैं। उनके कण्ठ में कौस्तुभ मणि शोभित है, इससे वे सूर्योदय के समय उदयाचल के समान जान पड़ते हैं। त्रैलोक्य में उनकी उपमा नहीं दी जा सकती। धर्मराज ने मुसकुराकर श्रीकृष्ण से मधुर वचन कहे—हे अच्युत, रात को कोई कष्ट तो नहीं हुआ? तबीयत तो अच्छी है? आपकी कृपा से ही मैं राज्य का अधिकारी हुआ हूँ और आपकी ही कृपा से युद्ध में विजय और संसार में मेरी कीर्ति हुई है। आपकी ही कृपा से हम लोग धर्म से विचलित नहीं हुए।

२० महाराज, इस तरह विनीत वचन कह रहे धर्मराज को श्रीकृष्ण ने कुछ उत्तर नहीं दिया।

छियालीसवाँ अध्याय

भीष्म के पास धर्म सुनने के लिए जाने की युधिष्ठिर को अनुमति देना और युधिष्ठिर के कहने से श्रीकृष्ण का स्वयं भी जाने को तैयार होना

श्रीकृष्ण को चुपचाप बैठे देखकर युधिष्ठिर ने कहा—भगवन्, आप इस समय बड़े आश्चर्य से क्या सोच-विचार कर रहे हैं? इस समय तीनों लोकों में मङ्गल तो है? आप इस समय जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीनों से परे चौथे ध्यान-मार्ग में स्थित हैं, यह देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य होता है। आपने इस समय प्राण, अपान आदि पञ्चवायु को रोककर इन्द्रियों को मन में स्थापित कर लिया है। आपने मन और इन्द्रियों को बुद्धि में और इन सबको आत्मा में स्थापित कर लिया है। आपके रोयें तक नहीं हिलते। आप काठ, दीवार और पाषाण की तरह निश्चल हो रहे हैं। जिस तरह वायु से सुरक्षित दीपक बिना हिले-डुले जलता है उसी तरह आप स्थिर-भाव से विराजमान हैं। इस अवस्था में स्थिर रहने का क्या कारण है? यदि यह कोई गुप्त बात न हो और मुझसे कहने योग्य हो तो इसे बतलाकर मेरा सन्देह दूर कीजिए। हे श्रीकृष्ण, आप ही सृष्टि के रचनेवाले और संहार करनेवाले हैं। आप ही क्षर और अक्षर हैं। आपका न तो आदि है और न अन्त। इसलिए आप आदिपुरुष हैं। मैं नम्रता और भक्ति से आपकी प्रार्थना करता हूँ, आप इस ध्यान का ठीक-ठीक कारण बतलावें।

दिव्य आभूषण पहने, नीले बादलों के समान सुन्दर श्रीकृष्णचन्द्र पीताम्बर ओढ़े सोने से मढ़ी हुई नीलम मणि के समान, मणि-जटित सोने से मढ़े हुए पलँग पर बैठे हैं—पृ० ३३५०

यह सुनकर श्रीकृष्ण ने मन और इन्द्रियों को अपने-अपने स्थान पर स्थापित करके मुसकुराते हुए कहा—धर्मराज, कुरु-पितामह भीष्म बुझती हुई आग की तरह शर-शय्या पर पड़े हुए मेरा ध्यान कर रहे हैं। इसलिए मेरा मन उन्हीं की ओर था। जिनके वज्र के समान धनुष-टङ्कार को इन्द्र भी नहीं सह सकते थे, जिन्होंने अपने बाहु-बल से सब राजाओं को जीतकर स्वयंवर में तीन कन्याओं को छीन लिया था और जिनको तेईस दिन युद्ध करके भी परशुराम परास्त नहीं कर सके, वही महात्मा भीष्म मन और इन्द्रियों को स्थिर करके मेरे शरणागत हुए हैं; जिनको भगवती भागीरथी ने अपने गर्भ में धारण किया, जिनको महर्षि वशिष्ठ ने उपदेश किया, जो परशुराम के प्रिय शिष्य, दिव्य अस्त्रों और वेद-वेदाङ्गों तथा विद्याओं के आधार और भूत-भविष्य-वर्तमान के जाननेवाले हैं वही महात्मा भीष्म मन और इन्द्रियों को संयत करके मेरे शरणागत हुए हैं। इसलिए मेरा मन उन्हीं में लगा हुआ था। १०

हे धर्मराज, उन पुरुषसिंह भीष्म का स्वर्गवास होने पर यह पृथिवी चन्द्रमा से हीन रात की तरह शोभाहीन हो जायगी। इसलिए आप उनके पास जाकर धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ये चारों विद्याएँ, यज्ञ आदि क्रियाएँ, चारों आश्रमों का धर्म और राजधर्म आदि सब विषय उनसे पूछ लीजिए। कौरव-धुरन्धर भीष्म का अन्त होने पर भूमण्डल में ज्ञान का ह्रास हो जायगा। इसी लिए आपसे उनके पास जाकर ज्ञान सीखने का मैं अनुरोध करता हूँ। २०

इन हितकर बातों को सुनकर धर्मराज आँखों में आँसू भरकर गद्गद स्वर से कहने लगे—जनार्दन, आपने भीष्म के प्रभाव का जो वर्णन किया है उसमें मुझे रत्ती भर भी सन्देह नहीं है। मैं पहले से अनेक ब्राह्मणों के मुँह से उनका महत्त्व सुन चुका हूँ। फिर आप तो तीनों लोकों के कर्ता हैं, आपकी बातों पर भला सन्देह कैसे हो सकता है? यदि आपकी मुझ पर कृपा है तो मुझे अपने साथ भीष्म के पास ले चलिए। उत्तरायण सूर्य होते ही पितामह स्वर्ग को सिधार जायँगे। इसलिए इसी समय शीघ्र आप उनको दर्शन दें। आप आदिदेव और ब्रह्म हैं, क्षर और अक्षर हैं, अतएव आपके दर्शन से पितामह कृतकृत्य होंगे। ३०

वैशम्पायन कहते हैं—धर्मराज की बातें सुनकर श्रीकृष्ण ने समीप बैठे हुए सात्यकि से कहा कि हमारा रथ तैयार कराओ। उसी दम वहाँ से निकलकर सात्यकि ने दारुक को रथ जोतने की आज्ञा दी। आज्ञा पाकर श्रीकृष्ण के सारथी दारुक ने मरकत, चन्द्रकान्त और सूर्यकान्त आदि मणियों से जटित, प्रातःकाल के सूर्य के समान तेजवाले, गरुड़ध्वज रथ में शैब्य-सुग्रीव आदि श्रेष्ठ घोड़ों को जोतकर और श्रीकृष्ण के पास जाकर, हाथ जोड़कर सूचना दी कि रथ तैयार है। ३५

सैंतालीसवाँ अध्याय

भीष्म द्वारा श्रीकृष्ण की स्तुति और भीष्म के प्राणत्याग की रीति का वर्णन

जनमेजय ने पूछा—हे तपोधन! शरशय्या पर स्थित पितामह भीष्म ने कौन सा योग करके, किस तरह, शरीर का त्याग किया?

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, महात्मा भीष्म के शरीर त्यागने का हाल ध्यान देकर सुनिए। सूर्य के उत्तरायण होते ही महात्मा भीष्म ने शरीर त्यागने की इच्छा की। उस समय बाणों से व्याप्त उनका शरीर किरणों से शोभित सूर्य की तरह शोभित होने लगा। महर्षि व्यास, नारद, देवस्थान, वात्स्य, अश्मक, सुमन्तु, जैमिनि, पैल, शाण्डिल्य, देवल, मैत्रेय, असित, वसिष्ठ, कौशिक, हारीत, लोमश, आत्रेय, बृहस्पति, शुक्र, च्यवन, सनत्कुमार, कपिल, वाल्मीकि, तुम्बुरु, कुरु, मौद्गल्य, परशुराम, तृणविन्दु, पिप्पलाद, वायु, संवर्त, पुलह, कच, काश्यप, पुलस्त्य, क्रतु, १० दक्ष, पराशर, मरीचि, अङ्गिरा, काश्य, गौतम, गालव, धौम्य, विभाण्ड, माण्डव्य, धौम्र, कृष्णानुभौतिक, उलूक, मार्कण्डेय, भास्करि, पूरण, कृष्ण, परम धार्मिक सूत आदि अनेक श्रद्धावान् जितेन्द्रिय शान्तिप्रिय महर्षियों ने उनको चारों ओर से घेरकर नक्षत्रों द्वारा घिरे हुए चन्द्रमा की भाँति सुशोभित कर दिया।

तब महात्मा भीष्म मन-वचन-कर्म से योगेश्वर श्रीकृष्ण का ध्यान करके, हाथ जोड़कर, गम्भीर स्वर से उनकी स्तुति करने लगे—हे पुरुषोत्तम! मैं आपकी आराधना करता हुआ, विस्तार से या संक्षेप में, जैसी स्तुति करूँ उससे आप प्रसन्न हों। आप स्वयं पवित्र हैं और पवित्र मार्ग (योग) से ही प्राप्त होते हैं। आप परमहंस और ईश्वर हैं। शरीर को त्यागकर मैं आपको प्राप्त होऊँ। आप परब्रह्म-स्वरूप हैं। देवता और ऋषि लोग भी आपको नहीं जान सकते। केवल विधाता ही आपके तत्त्व को जानते हैं और उन्हीं नारायण से महर्षि, सिद्ध, देवता, देवर्षि और महोरग भी आपके तत्त्व को जान सकते हैं। आप सर्वश्रेष्ठ और अव्यय हैं। देवता, २० दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और सर्प यह नहीं जानते कि आप कौन हैं और कहाँ से उत्पन्न हुए हैं। धागे में गुँथी हुई मणियों की तरह कार्य और कारण में बँधा हुआ संसार और सब जीव आप में ही स्थित हैं। आप नित्य और विश्वकर्मा हैं। संसार आपको सहस्रशीर्ष, सहस्रमुख, सहस्रचक्षु, सहस्रचरण, सहस्रबाहु और सहस्र-मुकुट नारायण कहता है। आप सूक्ष्म से सूक्ष्म, स्थूल से स्थूल, गुरु (भारी) से गुरु और श्रेष्ठ से श्रेष्ठ हैं। मन्त्र, मन्त्रार्थ-प्रकाशक ब्राह्मण-वाक्य, निषद्, उपनिषद् और सामवेद आपकी महिमा का बखान करते हैं। आप सत्यस्वरूप और सत्यकर्मा हैं। आप वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध नाम से चार शरीर धारण

किये हुए हैं। आप केवल बुद्धि से जाने जाते हैं। आप भक्तों के रक्षक हैं। आपका परम गुह्य नाम लेकर संसार आपकी पूजा करता है। जो आपको प्रसन्न करने के लिए हमेशा तप (अपने कर्तव्य का पालन) करता रहता है वह कभी हानि नहीं उठाता। आप सर्वात्मा, सर्व, सर्वज्ञ और सर्वभावन हैं। जिस तरह आग की रक्षा के लिए 'अरणि' की उत्पत्ति हुई है उसी तरह वेद की रक्षा के लिए आप वसुदेव द्वारा देवकी के गर्भ से उत्पन्न हुए हैं। आप निष्पाप और सर्वेश्वर हैं। अभेद ज्ञान उत्पन्न होने पर मनुष्य अपने आत्मा में आपका दर्शन करता है। आप बुद्धि और इन्द्रियों से परे हैं। मैं आपकी शरण हूँ। आप कल्पों के अन्त में पुरुष, युगों के आदि में ब्रह्म और क्षयकाल में संकर्षण कहलाते हैं। आप उपासना करने योग्य हैं, अतएव मैं आपकी उपासना करता हूँ। आप एक होने पर भी अनेक बार उत्पन्न हुए हैं। आप सबकी इच्छाएँ पूरी करते हैं। आपके क्रियावान् भक्त आपकी पूजा करते हैं। आप संसार के कोश-स्वरूप हैं। संसार के सभी प्राणी आपमें ही स्थित हैं। जिस तरह हंस, सारस आदि जलचर पक्षी जल में विहार करते हैं उसी तरह सब प्राणी आप में रमते हैं। आप सत्यस्वरूप, एकाक्षर ब्रह्म और सत्-असत् से परे हैं। आपका आदि, मध्य और अन्त नहीं है। देवता और महर्षि लोग आपको नहीं जान सकते। सुर, असुर, गन्धर्व, सिद्ध, ऋषि और सर्पगण हमेशा आपकी आराधना करते हैं। आप दुःखों के नाश करने की परम औषध हैं। आप स्वयम्भू, सनातन, अदृश्य और अज्ञेय हैं। आप संसार के उत्पन्न करनेवाले और स्थावर-जङ्गम आदि सब प्राणियों के स्वामी हैं। आप परमपद, हिरण्यवर्ण और दैत्यों का विनाश करनेवाले हैं। एक होने पर भी आप बारह भागों में विभक्त हैं, ऐसे सूर्य-स्वरूप आपको नमस्कार है। शुक्लपक्ष में जो देवताओं को और कृष्णपक्ष में जो पितरों को अमृत द्वारा तृप्त करते हैं, और जो द्विजों के राजा हैं, ऐसे चन्द्रमा-रूपी आपको नमस्कार है। जो महातेजस्वी पुरुष महान् अन्धकार से पार लगानेवाला है, और जिसको जान लेने से मृत्यु का भय जाता रहता है, उस ज्ञेयात्मा को नमस्कार है। विस्तृत सामवेद में जिसको 'बृहत्' कहा है, अग्नि और यज्ञ में जिसकी पूजा होती है और ब्राह्मण लोग निरन्तर जिसका ध्यान करते हैं उस वेद-स्वरूप परमात्मा को नमस्कार है। ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद जिसके तेज हैं, जो पञ्चहवि और सप्ततन्तु है उस यज्ञ-स्वरूप को नमस्कार है। सत्रह अक्षरों से जो होम किया जाता है उस होमस्वरूप परमात्मा को नमस्कार है। जिस वेद-पुरुष का नाम यजु है, गायत्री आदि सब छन्द जिसके अङ्ग हैं, ऋक्, यजु और सामवेद द्वारा सम्पादित यज्ञ जिसके तीन सिर हैं और रथन्तर जिसके प्रीतिवाक्य हैं उस स्तोत्र-स्वरूप परमात्मा को नमस्कार है। जो हज़ार वर्ष में पूर्ण होनेवाले यज्ञ से उत्पन्न हुए हैं और जो सृष्टि के रचनेवालों में श्रेष्ठ हैं उन हिरण्यपक्ष हंस-स्वरूप को नमस्कार है। सुबन्त और तिङन्त पद जिसके अङ्ग हैं, सन्धि जिसके अङ्गों के जोड़ हैं, स्वर और

३०

४०

व्यञ्जन जिसके भूषण हैं उस दिव्य अक्षर वाक्य-स्वरूप को नमस्कार है। ज़िन्होंने यज्ञ के अङ्ग-स्वरूप वराह का रूप धारणकर त्रैलोक्य के हित के लिए पृथिवी का उद्धार किया था उन वीर्य-स्वरूप को नमस्कार है। जिसने योग का अवलम्बन करके शेष के हज़ार फनों से विरचित पलँग पर शयन किया था उस निद्रा-स्वरूप को नमस्कार है। जिसने जितेन्द्रिय सज्जनों के लिए वेदोक्त उपाय से मोक्ष के मार्ग योग-धर्म का विस्तार किया है उस सत्य-स्वरूप को नमस्कार है। पृथक्-पृथक् धर्मों का अवलम्बन करनेवाले और पृथक्-पृथक् धर्म-फल के अभिलाषी महात्मा पृथक्-पृथक् धर्मों का अवलम्बन करके जिसकी उपासना करते हैं उस धर्मात्मा को ५० नमस्कार है। जिसके सब अङ्ग-प्रत्यङ्ग काममय हैं और जो सब प्राणियों को काम के मद में उन्मत्त करता है उस काम-रूपी परमात्मा को नमस्कार है। महर्षियों ने देह में स्थित जिस अव्यक्त पुरुष का अनुसन्धान किया है और जो क्षेत्रज्ञ पुरुष हमेशा बुद्धि में विराजमान है उस क्षेत्र-स्वरूप परमात्मा को नमस्कार है। जो नित्य-स्वरूप है, जो सोलह गुणों (ग्यारह इन्द्रियों और पञ्च-महाभूतों) से युक्त होकर जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं में स्थित रहता है और जिसको सांख्य में सप्तदश कहते हैं उस सांख्य-स्वरूप को नमस्कार है। शान्त-स्वभाव जितेन्द्रिय मनुष्य निद्रा और श्वास को जीतकर, योग में मन लगाकर जिस ज्योति-स्वरूप का दर्शन करते हैं उस योगात्मा को नमस्कार है। मोक्ष के चाहनेवाले शान्तिप्रिय संन्यासी, पाप-पुण्य का विनाश होने पर, जिसको प्राप्त होते हैं उस मोक्ष-स्वरूप परमात्मा को नमस्कार है। जो हज़ार युगों के बाद प्रज्वलित सूर्य का रूप धारण करके सब प्राणियों का विनाश करता है उस घोर-स्वरूप परमात्मा को नमस्कार है। जो सब प्राणियों का संहार करके और संसार को एकार्णव करके, बालक का रूप धरकर, सो रहता है उस माया-स्वरूप परब्रह्म को नमस्कार है। जिसकी नाभि से वह कमल उत्पन्न हुआ है जिसमें सारा संसार स्थित है उस पद्म-स्वरूप परमात्मा को नमस्कार है। जिसके हज़ार सिर हैं, जो निरुपम पुरुष है और जिसने एक ही समय में सब कामनाओं को जीत लिया है उस योग-निद्रा-स्वरूप को नमस्कार है। जिसके बालों में बादल, अङ्ग के जोड़ों में नदियाँ और पेट में चारों समुद्र हैं ६० उस जल-स्वरूप परमात्मा को नमस्कार है। जिससे सब पदार्थ उत्पन्न होते और जिसमें सब लीन हो जाते हैं उस कारण-स्वरूप को नमस्कार है। जो सुषुप्ति अवस्था में जागता रहकर साक्षी है और जाग्रत् तथा स्वप्न अवस्था में भले-बुरे सब विषयों को देखता है उस दर्शक-स्वरूप परब्रह्म को नमस्कार है। जो सब कामों में अविचलित और धर्म के लिए सदा उद्यत रहता है उस कार्य-स्वरूप को नमस्कार है। जिसने क्षत्रियों का अधर्म देखकर, उन पर कुपित होकर, इक्कीस बार पृथिवी को क्षत्रियहीन कर दिया है उस क्रूरता-स्वरूप को नमस्कार है। जो सब प्राणियों के शरीर में वायु रूप से पाँच भागों में विभक्त होकर प्राणियों को चेतन करता रहता है उस

वायु-स्वरूप परमात्मा को नमस्कार है। जो युग-युग में योगमाया के बल से मत्स्य आदि अवतार लेता है; जो मास, ऋतु, अयन और संवत्सर के रूप में वर्तमान रहता है तथा जो सृष्टि और प्रलय का कर्ता है उस कालस्वरूप को नमस्कार है। जिसके मुँह से ब्राह्मण, बाहुओं से क्षत्रिय, पेट से वैश्य और पैरों से शूद्र उत्पन्न हुए हैं उस सर्ववर्ण-स्वरूप को नमस्कार है। आग जिसका मुँह है, स्वर्ग मस्तक है, आकाश-मण्डल नाभि है, भू-मण्डल पैर हैं, सूर्य नेत्र और दिशाएँ जिसके कान हैं उस लोक-स्वरूप को नमस्कार है। जो काल और यज्ञ से श्रेष्ठ है, जो श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ है, जो इस सृष्टि का आदि-कारण है और जो स्वयं अनादि है उस विश्व-स्वरूप को नमस्कार है। जो राग-द्वेष आदि से श्रोत्र आदि इन्द्रियों की रक्षा करता है उस रक्षक को नमस्कार है। ७० जो अन्न, पान और ईंधन-रूपी है; जो प्राणियों के बल और जीवन को बढ़ानेवाला है और जो सब प्राणियों को धारण करता है उस प्राण-स्वरूप को नमस्कार है। जो प्राण धारण करने के लिए चार प्रकार का भोज्य पदार्थ है और जो प्राणियों में प्रविष्ट होकर अन्न आदि को पचाता है उस पाक-स्वरूप को नमस्कार है। कुछ-कुछ पीले रङ्ग के बालों और आँखोंवाले जिन नरसिंह ने नखों और दाँतों से दैत्यराज हिरण्यकशिपु का संहार किया है उन दर्प-स्वरूप को नमस्कार है। देवता, गन्धर्व और दैत्य कोई भी जिसके तत्त्व को नहीं जान सकते उस सूक्ष्म-स्वरूप को नमस्कार है। जो रसातल में शेषनाग का रूप धरकर भू-मण्डल को धारण करता है उस वीर्य-स्वरूप को नमस्कार है। जिसने सृष्टि की रक्षा के लिए प्राणियों को मोह के बन्धन में बाँध दिया है उस मोह-स्वरूप को नमस्कार है। जो आत्मज्ञान का यथार्थ तत्त्व है और जिसकी महिमा केवल आत्मज्ञान से ही जानी जाती है उस ज्ञान-स्वरूप को नमस्कार है। जिसका शरीर नापा नहीं जा सकता और जिसके परिमाण का अन्त नहीं है उस ज्ञान-नेत्रवाले दिव्य-स्वरूप को नमस्कार है। जो लम्बोदर पुरुष जटा, दण्ड और कमण्डलु धारण किये हुए है उस ब्रह्म-स्वरूप को नमस्कार है। जो शरीर भर में भस्म लगाये हैं और जो सदा त्रिशूल धारण करते हैं उन देवताओं के स्वामी, तीन आँखोंवाले, ऊर्ध्वलिङ्ग रुद्र-स्वरूप को नमस्कार है। जिनके ललाट ८० में अर्धचन्द्र, हाथ में शूल और पिनाक धनुष है उन नाग-यज्ञोपवीतधारी उग्र-स्वरूप को नमस्कार है। जो सब प्राणियों की आत्मा है, जो सब जीवों की उत्पत्ति और संहार का कर्ता है तथा जो क्रोध, द्रोह और मोह से शून्य है उस शान्त-स्वरूप को नमस्कार है। यह चराचर जगत् जिससे उत्पन्न होता है और जिसमें लीन हो जाता है उस सर्वमय सर्व-स्वरूप को नमस्कार है। हे विश्वकर्मन्, हे विश्वात्मन्! तुम पञ्चभूतों से परे हो अर्थात् पाञ्चभौतिक देहधारी नहीं हो; तुम तीनों लोकों में सर्वत्र विद्यमान हो, तुम सर्वमय हो और सृष्टि की उत्पत्ति और संहार करनेवाले हो। भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालों में मैं तुम्हारी स्थिति को नहीं देख सकता हूँ; केवल तत्त्वज्ञान से तुम्हारे सनातन-स्वरूप को देखता हूँ। तुम्हारे सिर से स्वर्ग, पैरों से पृथिवी और

पराक्रम से तीनों लोक व्याप्त हैं। तुम सनातन पुरुष हो। सब दिशाएँ तुम्हारी भुजाएँ, सूर्य तुम्हारे नेत्र और शुक्र तुम्हारा वीर्य है। अमित पराक्रमी वायु के सातों मार्गों को तुम रोके हुए हो। तुम्हारा रङ्ग अलसी के फूल के समान श्याम है और तुम पीताम्बर ओढ़े हुए हो। जो तुमको नमस्कार ९० करते हैं उनको कोई भय नहीं रहता [अतएव मैं भक्ति-भाव से तुमको नमस्कार करता हूँ]।

एक बार श्रीकृष्ण को प्रणाम करने से दस अश्वमेध यज्ञ करने का फल होता है। जो मनुष्य दस अश्वमेध करता है उसे संसार में फिर जन्म लेना पड़ता है; किन्तु जो एक बार श्रीकृष्ण को प्रणाम कर लेता है उसे कभी जन्म नहीं लेना पड़ता। जो श्रीकृष्ण का व्रत करता है, जो रात में और दिन में उनका स्मरण करता है वह, अग्नि में मन्त्रों द्वारा होम किये हुए घी के समान कृष्ण-रूप होकर श्रीकृष्ण के शरीर में समा जाता है।

हे श्रीकृष्ण, तुम नरक का भय दूर करनेवाले और संसार-सागर के भँवर से पार करने के लिए नौका-स्वरूप हो। तुम ब्रह्मण्यदेव हो; तुम गौ, ब्राह्मण और जगत् के हितकारी हो। हे कृष्ण ! तुमको नमस्कार है। 'हरि' ये दो अक्षर जीवन-वन की यात्रा में पाथेय-रूप हैं, संसार के बन्धन से छुड़ानेवाले हैं और दुःख-शोक का विनाश करनेवाले हैं। सत्य विष्णुमय है, जगत् विष्णुमय है, संसार की सभी वस्तुएँ विष्णुमय हैं, वही विष्णु मेरे सब पापों का नाश करें। हे पुण्डरीकाक्ष ! अभीष्ट गति पाने के लिए मैं आपकी शरण हूँ, आप मेरा भला करें। आप विद्या और तप की उत्पत्ति के स्थान और स्वयम्भू हैं, मेरी की हुई इस स्तुति से आप प्रसन्न हों। वेद, तप और श्रेष्ठ देवता सब कुछ नारायण-स्वरूप हैं। हे नारायण ! आप सदा सब वस्तुओं में विराजमान हैं।

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, महात्मा भीष्म ने इस प्रकार मन लगाकर श्रीकृष्ण की १०० स्तुति करके उनको प्रणाम किया। तब वासुदेव ने योगबल से भीष्म के भक्ति-भाव को जानकर तीनों लोकों का दर्शन करने के लिए उनको दिव्य ज्ञान प्रदान किया। इसके बाद ब्रह्मवादी ब्राह्मण गद्गद स्वर से पुरुषोत्तम नारायण की स्तुति करके बार-बार भीष्म की प्रशंसा करने लगे। महात्मा भीष्म की भक्ति को जानकर उनको दर्शन देने के लिए वासुदेव सात्यकि समेत रथ पर सवार होकर तुरन्त चल पड़े। अर्जुन के साथ धर्मराज युधिष्ठिर तथा नकुल और सहदेव के साथ भीमसेन एक रथ पर सवार होकर रथ की घरघराहट से पृथिवी को कँपाते हुए महात्मा भीष्म का दर्शन करने के लिए चले। महाबली कृपाचार्य, युयुत्सु और सञ्जय भी रथ पर सवार होकर भीष्म के पास चले। राह में भगवान् वासुदेव ब्राह्मणों के मुँह से अपनी स्तुति सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और महात्मा भीष्म को हाथ जोड़े प्रणाम करते देखकर, १०८ सन्तुष्ट होकर, उनकी प्रशंसा करने लगे।

अड़तालीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर आदि का कुरुक्षेत्र को जाना और युधिष्ठिर का श्रीकृष्ण से परशुरामजी का चरित पूछना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज ! भगवान् श्रीकृष्ण, महाराज युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव और कृपाचार्य आदि वीर ध्वजा-पताकाओं से शोभित वायु के समान तेज़ जानेवाले नगराकार रथ पर सवार होकर तुरन्त कुरुक्षेत्र को चल दिये। वहाँ असंख्य क्षत्रियों का विनाश हुआ था। उस भीषण स्थान में बाल, हड्डी, मज्जा, मनुष्यों के सिर, हाथी-घोड़ों की हड्डियों के पर्वतों के समान ढेर, हज़ारों चिताएँ, असंख्य कवच और शस्त्र पड़े हुए थे। वह स्थान मृत्यु की कलवरिया के समान भूतों और राक्षसों से भरा हुआ था। श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर आदि महारथी उस स्थान को देखते चले जाते थे। उसी समय महाबाहु श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर से परशुरामजी के पराक्रम का वृत्तान्त कहना आरम्भ किया—महाराज, ये जो दूर पर पाँच कुण्ड देख पड़ते हैं इनका नाम रामकुण्ड है। महापराक्रमी परशुरामजी ने इक्कीस बार पृथिवी को क्षत्रियों से ख़ाली करके उनके रक्त से इन पाँच कुण्डों को भरकर पितरों का तर्पण किया था। इस समय उन महात्मा ने कर्मों को त्याग दिया है।

युधिष्ठिर ने कहा—हे यदुनन्दन, आपने कहा है कि परशुरामजी ने इक्कीस बार पृथिवी को क्षत्रियों से हीन कर दिया था। मेरे इस महायुद्ध में करोड़ों क्षत्रिय मारे गये हैं, इसलिए मुझे सन्देह होता है कि जब एक बार क्षत्रियों का समूल विनाश कर दिया गया तब फिर उनकी उत्पत्ति और वृद्धि कैसे हुई ? और परशुरामजी ने कुरुक्षेत्र में बार-बार क्षत्रियों का नाश क्यों किया ? यह हाल बतलाकर मेरा सन्देह दूर कीजिए। मुझे आपसे ही शास्त्र का ज्ञान होता है। वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, तब श्रीकृष्ण ने परशुराम द्वारा क्षत्रियों के विनाश और फिर उनकी उत्पत्ति का वर्णन करना आरम्भ किया। १० १६

उनचासवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण का युधिष्ठिर से परशुरामजी का चरित्र कहना

श्रीकृष्ण कहते हैं—हे धर्मराज ! मैंने महर्षियों से जो परशुरामजी का जन्म, पराक्रम और प्रभाव सुना है वह कहता हूँ, सुनिए। मैं बतलाता हूँ कि परशुरामजी ने किस तरह करोड़ों क्षत्रियों का संहार किया और वे क्षत्रिय फिर किस प्रकार उत्पन्न होकर अब आपके संग्राम में मारे गये। जह्नु के पुत्र अज, अज के पुत्र बलाकाश्व और बलाकाश्व के पुत्र कुशिक हुए। इन्द्र के समान श्रेष्ठ महाराज कुशिक ने, त्रैलोक्य का स्वामी जैसा पुत्र उत्पन्न करने के

लिए, घोर तपस्या की। इस कठिन तपस्या से प्रसन्न होकर इन्द्र स्वयं उनके पुत्र होकर गाधि नाम से प्रसिद्ध हुए। गाधि ने सत्यवती नाम की कन्या उत्पन्न की और उस कन्या का भृगु-नन्दन ऋचीक के साथ व्याह कर दिया। महात्मा ऋचीक ने अपनी प्रियतमा की पवित्रता से प्रसन्न होकर उसके और उसके पिता महाराज गाधि के पुत्र उत्पन्न होने के लिए अलग-अलग दो चरु तैयार किये और सत्यवती को वुलाकर कहा—प्रिये, लो, यह चरु अपनी माता को खाने के लिए दो और यह दूसरा तुम खाओ। तुम्हारी माता इस चरु को खाकर क्षत्रियों का
१० विनाश करनेवाला क्षत्रियों में श्रेष्ठ एक वीर पुत्र पैदा करेगी और तुम इस दूसरे चरु को खाकर शान्त-स्वभाव धैर्यवान् तपोनिष्ठ श्रेष्ठ ब्राह्मण पुत्र उत्पन्न करोगी। अपनी प्रियतमा भार्या से यह कहकर भगवान् ऋचीक तप करने वन को चले गये।

उन्हीं दिनों महाराज गाधि स्त्री समेत, तीर्थयात्रा के लिए, भगवान् ऋचीक के आश्रम पर पहुँचे। माता को देखकर सत्यवती बहुत प्रसन्न हुईं। वे दोनों चरु लेकर, माता के पास जाकर, उन्होंने उनको महर्षि ऋचीक का कथन सुना दिया। उनकी माता बहुत प्रसन्न हुईं। उन्होंने उन दोनों चरुओं को लेकर भूल से अपना चरु तो बेटी को खिला दिया और उसका स्वयं खा लिया। इस तरह माता का चरु खा लेने से सत्यवती ने क्षत्रियों का विनाश करनेवाला दीप्ति-मान् घोरदर्शन गर्भ धारण किया। महर्षि ऋचीक ने अपनी स्त्री का भीषण आकार का गर्भ देखकर कहा—प्रिये, तुम्हारी माता ने तुमको अपना चरु खिला दिया और तुम्हारा चरु उन्होंने खा लिया है। इसलिए तुम्हारे गर्भ से बड़ा क्रोधी और कठोर काम करनेवाला पुत्र पैदा होगा और तुम्हारा भाई ब्रह्मतेजवाला और तपोनिष्ठ होगा। हमने तुम्हारे चरु में ब्रह्मतेज और
२० तुम्हारी माता के चरु में क्षात्रतेज रक्खा था। इसलिए तुम्हारी माता के गर्भ से ब्राह्मण और तुम्हारे गर्भ से क्षत्रिय पुत्र पैदा होगा। महात्मा ऋचीक की बातें सुनकर पतिव्रता सत्यवती काँपती हुई पति के चरणों पर गिर पड़ीं और यों कहने लगीं—भगवन्, आप मेरे गर्भ से क्षत्रिय वालक पैदा होने की वात न कहें। ऋचीक ने कहा—प्रिये, हमने तुम्हारे गर्भ से क्षत्रिय बालक पैदा करने की इच्छा से चरु नहीं तैयार किया था, अतएव इसमें हमारा क्या अपराध है। अदल-वदलकर चरु खा लेने के कारण तुम क्रोधी पुत्र पैदा करोगी। सत्यवती ने कहा—हे महर्षि! यदि आप चाहें तो सारे संसार की सृष्टि कर सकते हैं, फिर पुत्र पैदा कर देना आपके लिए क्या वड़ी बात है? इसलिए कृपा करके मुझे शान्त-स्वभाव धैर्यवान् पुत्र दीजिए। ऋचीक ने कहा—प्रिये! मन्त्र पढ़कर अग्नि का स्थापन करके चरु तैयार करने के समय की बात तो अलग रही, हमने कभी हँसी में भी मिथ्या वचन नहीं कहे हैं। हे कल्याणि, हमने तपोबल से
१०८ सन्तुष्ट होकर जान लिया है कि तुम्हारे पिता के वंश में ब्राह्मण उत्पन्न होगा। सत्यवती ने फिर —भगवन्, यदि ऐसा ही है तो मेरा पौत्र क्षत्रिय-धर्मावलम्बी हो; किन्तु मुझे तो शान्त-

स्वभाव पुत्र अवश्य ही प्राप्त हो। ऋचीक ने कहा—प्रिये, हमारी राय में तो पुत्र और पौत्र में कुछ भेद नहीं है; ख़ैर, जैसा तुम चाहती हो वैसा ही होगा।

श्रीकृष्ण कहते हैं—इसके बाद, समय आने पर, पतिव्रता सत्यवती के गर्भ से तपस्वी शान्त-स्वभाव जमदग्नि पैदा हुए और महाराज गाधि की स्त्री से ब्राह्मण के गुणों से सम्पन्न विश्वामित्र का जन्म हुआ। कुछ दिनों बाद ऋचीकतनय महात्मा जमदग्नि के पुत्र, प्रज्वलित ३० अग्नि के समान, क्षत्रियों का विनाश करनेवाले धनुर्विद्या-विशारद परशुराम का जन्म हुआ। वे सब विद्याओं के ज्ञाता हुए। महाबली परशुराम ने गन्धमादन पर्वत पर महादेव की आराधना करके अनेक अस्त्र और जलती हुई आग के समान तेजवाला पैना कुठार प्राप्त किया। इस प्रकार अस्त्र-शस्त्र पाकर वे संसार में अद्वितीय वीर हो गये।

इसी समय हैहय वंश के राजा महापराक्रमी कार्तवीर्य अर्जुन ने दत्तात्रेय के प्रसाद से हज़ार भुजाएँ प्राप्त करके अपने बाहुबल और अस्त्रबल से सारी पृथिवी पर अधिकार कर लिया और वह पृथ्वी अश्वमेध यज्ञ में ब्राह्मणों को दे दी। उसी समय भूख से व्याकुल अग्निदेव ने राजा के पास आकर जलाने के लिए कुछ माँगा। राजा ने उनको जलाने के लिए अनेक गाँव नगर आदि दे दिये। तब राजा के बाण से उत्पन्न आग प्रज्वलित होकर पर्वतों और वृक्षों को ४० जलाती हुई हवा की तरह तेज़ी से महर्षि वशिष्ठ के सुन्दर पवित्र आश्रम पर पहुँचकर उसे जलाने लगी। यह देखकर महात्मा वशिष्ठ को क्रोध आया और उन्होंने कार्तवीर्य को शाप दे दिया—रे दुष्ट, तूने मेरा आश्रम जला दिया है अतएव इस पाप के बदले जमदग्नि के पुत्र परशुराम युद्ध में तेरी भुजाएँ काट डालेंगे। कार्तवीर्य महापराक्रमी, शान्तिप्रिय, दानी, शरणागत रक्षक और ब्राह्मणों का हितैषी था, इसलिए वशिष्ठ के शाप से उसे कुछ घबराहट नहीं हुई। कार्तवीर्य के पुत्र बड़े गर्वीले और निठुर थे। वे शापका हाल सुनकर बड़े कुपित हुए और पिता के अनजाने जमदग्नि की गाय का बछड़ा चुरा लाये। यह जानकर क्रोधी परशुराम ने कार्तवीर्य के साथ युद्ध ठान दिया। उसके हज़ार हाथों को काटकर वे उसके रनिवास से बछड़े को अपने आश्रम में ले आये।

कुछ दिनों बाद एक दिन महात्मा परशुराम, होम के लिए लकड़ी और कुश आदि लेने, आश्रम के बाहर गये हुए थे। उसी समय कार्तवीर्य के मूर्ख बेटों ने जमदग्नि के आश्रम पर जाकर भाला से उनका सिर काट डाला। समिधा और कुशा आदि लेकर आश्रम पर आकर ५० परशुराम ने जब अपने पिता को मरा हुआ पाया तब उन्होंने कुपित होकर पृथ्वी पर क्षत्रियों का वंश न रहने देने की प्रतिज्ञा की। इसके बाद उन्होंने कार्तवीर्य के बेटों, पोतों और अन्यान्य क्षत्रियों को मार डाला। परशुराम ने हैहय वंश के हज़ारों क्षत्रियों को मारकर उनके रक्त से पृथ्वी में कीच कर दी। इस प्रकार महाबली परशुराम क्षत्रियों का संहार करके दयाभाव से वन को चले गये। हज़ार वर्ष बीतने पर उस वन में कुछ ब्राह्मणों ने परशुराम की बड़ी निन्दा

की। एक बार महर्षि विश्वामित्र के पौत्र—रैभ्य के पुत्र—परावसु ने सबके सामने उनकी निन्दा करते हुए कहा—हे परशुराम! राजा ययाति के देवलोक से पतित होने पर जो यज्ञ हुआ है उसमें प्रतर्दन आदि जो असंख्य राजा आये हैं क्या वे क्षत्रिय नहीं हैं? तुमने पृथिवी को क्षत्रियों से विहीन कर देने की जो प्रतिज्ञा की थी उसकी पूर्ति क्या इनके रहते हुए हो गई? निस्सन्देह तुम महाबली क्षत्रियों के डर के मारे इस पर्वत पर भाग आये हो। जो हो, इस समय पृथिवी पर क्षत्रियों की संख्या बहुत बढ़ गई है।

६० यह सुनकर कुपित परशुराम ने फिर अपना शस्त्र उठाया। पहले मारने से जो क्षत्रिय बच गये थे वे सब बलवान् और उन्नत होकर अब पृथिवी का शासन कर रहे हैं, यह देखकर कुपित परशुराम ने उन सबका और उनके बेटों का संहार कर डाला। जो बालक गर्भ में थे उन्हें भी, पैदा होने पर, मार डाला। उस समय क्षत्रियों की कुछ स्त्रियों ने अपने बेटों को किसी तरह परशुराम के हाथ से बचा लिया था।

इसी प्रकार इक्कीस बार पृथिवी को क्षत्रिय-विहीन करके परशुराम ने अश्वमेध यज्ञ किया और उस यज्ञ में सारी पृथिवी महर्षि कश्यप को दक्षिणा में दे दी। तब महर्षि कश्यप ने बचे-खुचे क्षत्रियों की रक्षा के लिए स्रुक् और प्रग्रह लिये हुए हाथ से इशारा करके परशुराम से कहा—महात्मन्, अब आप जाकर दक्षिण समुद्र के किनारे निवास कीजिए। आज से सारी पृथिवी पर मेरा अधिकार हो गया है, इसलिए अब आपको यहाँ नहीं रहना चाहिए। इस प्रकार कश्यप के कहने पर महर्षि परशुराम शीघ्र ही समुद्र के किनारे पर चले गये। वहाँ उनके रहने के लिए समुद्र ने एकाएक शूर्पारक नाम का स्थान ख़ाली कर दिया। उसी स्थान पर वे रहने लगे। इधर महर्षि कश्यप ने पृथिवी का राज्य ब्राह्मणों को देकर वन को प्रस्थान किया।

इस तरह क्षत्रियों के न रह जाने पर पृथिवी में अराजकता छा गई। वैश्य और शूद्र स्वतन्त्र होकर इच्छानुसार ब्राह्मणों की स्त्रियों के साथ भोग करने लगे। बलवान् दुर्बलों को
७० सताने लगे। ब्राह्मणों का प्रभुत्व उठ गया। दुष्टों की दुष्टता से सताई हुई और धर्मात्मा क्षत्रियों से अरक्षित पृथिवी रसातल को धँसने लगी। डर के मारे रसातल को भागती हुई पृथिवी को महर्षि कश्यप ने उरु (जाँघ) से थाम लिया। इसी कारण उस समय से पृथिवी का उर्वी नाम पड़ा। कश्यप को प्रसन्न करके अपनी रक्षा के लिए पृथिवी ने उनसे एक राजा माँगते हुए कहा—भगवन्, हैहय वंश की स्त्रियों के गर्भ में जो बालक थे उनकी मैंने रक्षा की है। पौरववंशीय विदूरथ का पुत्र जीवित है। वह ऋक्षवान् पर्वत पर रीछों से सुरक्षित है। महर्षि पराशर ने दया करके सौदास के पुत्र की रक्षा की है और सेवक की तरह स्वयं उस बालक की सेवा की है। उस बालक का नाम सर्वकर्मा है। वह हमारी रक्षा करे। महाराज शिवि के पुत्र की रक्षा वन में गायों से हुई है। वह नाम से ही गोपति अर्थात् भूपति है। वह

हमारी रक्षा करे। प्रतर्दन का पुत्र वत्स है। गोष्ठ में बछड़ों ने उसकी रक्षा की है। वह हमारी रक्षा करे। दधिवाहन का पौत्र और दिविरथ का पुत्र गङ्गा-किनारे महर्षि गौतम द्वारा सुरक्षित रक्खा गया है। गृध्रकूट पर्वत पर लंगूरों ने महातेजस्वी बृहद्रथ का रक्षण किया है। देवराज के समान बलवान् मरुत्तवंशीय बहुसंख्यक राजकुमारों की रक्षा समुद्र ने की है। ये सब राजकुमार इस समय धाकारों (राज मिस्त्रियों) और सुनारों के घरों में रहते हैं। यदि ये मेरी रक्षा करेंगे तो मैं अटल होकर रह सकूँगी। इनके बाप-दादों ने मेरे ही लिए युद्ध में परशुराम के हाथों अपने प्राण गँवाये हैं, इसलिए इनके ऋण से उऋण होना मेरा कर्तव्य है। विशेषकर यदि अधर्मी राजा मेरा शासन करेगा तो मैं उसे सहन नहीं कर सकूँगी। इसलिए हे तपोधन, इस समय आप ऐसा उपाय कीजिए जिसमें मेरी रक्षा हो। ८०

श्रीकृष्ण कहते हैं—पृथिवी की ये बातें सुनकर महर्षि कश्यप ने, उसके बतलाये हुए, उन सब क्षत्रियों और उनके पुत्र-पौत्रों को बुलाकर राज्य का अधिकार दे दिया। हे धर्मराज, आपने जो इतिहास पूछा था वह सब मैंने कह सुनाया।

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज! युधिष्ठिर को यह कथा सुनाकर श्रीकृष्ण तेज़ चलनेवाले रथ पर सवार, सूर्य की तरह, दिशाओं को प्रकाशित करते हुए चले। ९०

पचासवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण का भीष्म की प्रशंसा करके उनसे युधिष्ठिर को धर्मोपदेश करने के लिए कहना

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, परशुरामजी के इस असाधारण काम का हाल सुनकर युधिष्ठिर ने आश्चर्य के साथ कहा—हे जनार्दन, परशुरामजी इन्द्र के समान पराक्रमी हैं। उन्होंने कुपित होकर सारी पृथिवी को क्षत्रिय-विहीन कर दिया था। उनके डर के मारे क्षत्रियों ने गाय, समुद्र, लङ्गूर, रीछ और वानरों की शरण में रहकर अपनी रक्षा की थी। जिस मर्त्यलोक में एक ब्राह्मण ने ऐसा धार्मिक काम कर दिखाया है वह लोक धन्य है और वहाँ के मनुष्य बड़े भाग्यवान् हैं।

महाराज युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण से यह कहते हुए पितामह भीष्म के पास जाकर देखा कि वे सन्ध्या-समय के सूर्य के समान निस्तेज होकर शर-शय्या पर पड़े हुए हैं। जैसे देवता लोग इन्द्र के चारों ओर बैठे रहते हैं वैसे ही मुनि लोग महात्मा भीष्म को घेरे हुए बैठे हैं। श्रीकृष्ण, धर्मराज युधिष्ठिर, उनके चारों भाई और कृपाचार्य आदि वीर दूर से ओघवती नदी के किनारे भीष्म को देखकर अपने-अपने रथ से उतर पड़े। वे लोग चित्त को शान्त करके, व्यास आदि महर्षियों को प्रणाम करके, भीष्म के चारों ओर बैठ गये। १०

तब श्रीकृष्णजी ने बुझती हुई आग के समान भीष्म को क्षण-भर देखकर दीनभाव से उनसे कहा—महात्मन्, आपका ज्ञान तो पहले का जैसा है न ? बाणों के घावों से आपके

शरीर में तो बड़ी पीड़ा होगी, किन्तु आपकी बुद्धि तो स्थिर है न ? मानसिक दुःख की अपेक्षा शारीरिक दुःख प्रबल होता है। अपने पिता धर्मपरायण शान्तनु के वरदान से आप अपनी इच्छा के अनुसार मृत्यु के अधिकारी हुए हैं। औरों की तो बात ही क्या, हम भी आपकी तरह इच्छा-मृत्यु के अधिकारी नहीं हैं। शरीर में सुई चुभ जाने पर उसका क्लेश नहीं सहा जा सकता; किन्तु आपका शरीर तो अनेक बाणों से बिंधा हुआ है। जब आप देवताओं को उपदेश कर सकते हैं तब आपसे जन्म और मृत्यु के विषय में क्या कहा-सुना जाय ? आप श्रेष्ठ ज्ञानी और भूत-भविष्य-वर्तमान के जानकार हैं। आप प्राणियों की मृत्यु और उनके धर्म के फलों को अच्छी तरह जानते हैं। आप धर्मात्मा हैं। आप पहले जिस समय सम्पन्न राज्य में हज़ारों स्त्रियों के साथ रहते थे,
२० उस समय की हमको आज याद आ रही है। आप सत्य-धर्मपरायण और महापराक्रमी हैं। आपने तप के प्रभाव से मृत्यु को रोक लिया है। त्रैलोक्य में आपके समान दूसरा मनुष्य हमने नहीं सुना। हे कुरुपितामह ! आप हमेशा सत्य, दान, तप, यज्ञ, वेद, धनुर्वेद, नीति, प्रजा की रक्षा, सरलता, पवित्रता और जीवों पर दया आदि शुभ कर्म करते रहे हैं। संसार में आपके समान कोई महारथी नहीं है। आप एक रथ से देव, दानव, यक्ष, राक्षस और गन्धर्व आदि सभी को जीत सकते थे। आप वसुओं में श्रेष्ठ इन्द्र के समान हैं। हम आपको श्रेष्ठ पुरुष जानते हैं। आप अपने बल-वीर्य के प्रभाव से स्वर्गलोक में प्रसिद्ध हुए हैं। आपके समान गुणी मनुष्य संसार में न तो देखा गया है और न सुना गया है। अपने गुणों से आप देवताओं से भी श्रेष्ठ हैं। अपने तपोबल से जब आप जगत् की सृष्टि कर सकते हैं तब आपको उत्तम लोकों का प्राप्त होना कौन विचित्र बात है ?

भाई-बन्धुओं का विनाश होने के कारण राजा युधिष्ठिर इस समय बहुत दुखी हो रहे
३० हैं, अतएव आप उनका शोक दूर कीजिए। चारों विद्याएँ, चारों होत्र, सांख्य और योग का धर्म, चारों वर्णों और आश्रमों का धर्म तथा सनातन आदि सभी धर्म आप जानते हैं। वर्ण-

सङ्कर मनुष्यों का धर्म तथा देश, जाति और कुल का धर्म आपको अवगत है। वेदोक्त धर्म, शिष्टाचार, इतिहास, पुराण और धर्मशास्त्र तो सदैव आपके हृदय में स्थित रहते हैं। हे पुरुषोत्तम, किसी विषय में सन्देह उत्पन्न होने पर संसार में आपके सिवा कोई उसका समाधान करनेवाला नहीं है। इसलिए आप धर्मराज युधिष्ठिर के हृदय-विदारक शोक को दूर कीजिए। मोह से सन्तप्त मनुष्यों को आप ही जैसे बुद्धिमान् पुरुष शान्त कर सकते हैं। ३८

इक्यावनवाँ अध्याय

भीष्म द्वारा श्रीकृष्ण की स्तुति और श्रीकृष्ण का उनसे उपदेश करने को कहना

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, श्रीकृष्ण की बातें सुनकर महात्मा भीष्म ने तनिक सिर उठाकर हाथ जोड़कर कहा—वासुदेव, आप संसार की उत्पत्ति और प्रलय करनेवाले हैं। हे विश्वकर्मन्, विश्वात्मन्, विश्वसम्भव! आपको नमस्कार है। आप पाँच भूतों से परे हैं। आप त्रैलोक्य में सदा विद्यमान रहते हैं। आप सबके आश्रय हैं। हे गोविन्द! आपने जो मुझसे कहा है उसी वचन के प्रभाव से मैं स्वर्ग, मृत्यु और पाताल लोक में आपके दिव्यभाव और आपका अविनश्वर स्वरूप देखता हूँ। आपका सिर आकाशमण्डल और पैर पृथिवी में व्याप्त हैं। आपके पराक्रम की थाह नहीं है। आप वायु के सातों मार्गों को रोके हुए हैं। सब दिशाएँ आपकी भुजाएँ, सूर्य नेत्र और शुक्र आपका वीर्य है। अलसी के फूल के समान आपका साँवला शरीर पीताम्बर पहने रहने से बिजली सहित बादल की तरह शोभित हो रहा है। हे पुरुषोत्तम, अभीष्ट गति पाने के लिए मैं परम भक्ति से आपकी शरण हूँ। आप मेरा कल्याण करें।

श्रीकृष्ण ने कहा—महात्मन्! हम पर आपकी परमभक्ति है, इसलिए हम आपको अपना दिव्य शरीर दिखाते हैं। जिस मनुष्य में भक्ति नहीं है या भक्ति होने पर भी जो अति कुटिल स्वभाव का है और जो अशान्त है उसे हम दर्शन नहीं देते। आप तो हमारे भक्त हैं; आपका स्वभाव बहुत ही सरल है; आप तपस्वी, सत्यवादी, इन्द्रियजित और दानी हैं; इसलिए आप हमारे दर्शन पाने के अधिकारी हैं। आप उस दिव्य लोक को जायँगे जहाँ से कभी लौटना नहीं पड़ेगा। हे कुरुश्रेष्ठ, आप अभी छप्पन दिन और जीवित रहेंगे। उसके बाद शरीर का त्याग करके अपने शुभ कर्मों के प्रभाव से परमपद को चले जायँगे। प्रज्वलित अग्नि के समान वसु आदि देवता विमानों पर सवार, छिपे हुए, आपकी रक्षा करते हैं और उत्तरायण सूर्य होने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। उस समय के आते ही आप अभीष्ट लोक को चले जायँगे। हे कुरुवीर! आपके न रहने पर सम्पूर्ण ज्ञान नष्ट हो जायँगे, इसलिए हम लोग धर्म का सिद्धान्त सुनने को १०

आपके पास आये हैं। धर्मराज युधिष्ठिर भाई-बन्धुओं के शोक से व्याकुल हो रहे हैं, अतएव
१८ आप धर्म का सिद्धान्त बतलाकर इनका शोक दूर कीजिए।

बावनवाँ अध्याय

भीष्म का श्रीकृष्ण को अपने शरीर की पीड़ा बतलाना और श्रीकृष्ण का उनका शरीर दृढ़ कर देना; इसके बाद सबका अपने-अपने घर वापस जाना

वैशम्पायन कहते हैं कि वासुदेव के धर्मयुक्त और हितकर वचन सुनकर महात्मा भीष्म ने हाथ जोड़कर कहा—हे महाबाहु, आपके वचन सुनकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ। मैं भला आपके आगे किस धर्म का वर्णन करूँ? संसार में जितने धर्म बर्ते जाते हैं, मनुष्यों का जो कुछ कर्तव्य और अकर्तव्य है, वह सब तो आप से ही पैदा हुआ है। जैसे इन्द्र के सामने देवलोक का बखान किया जाय वैसे ही आपके सामने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का वर्णन करना है। बाणों के आघात से मेरा हृदय पीड़ित, शरीर व्यथित और बुद्धि क्षीण हो गई है। हे गोविन्द, विष और अग्नि के समान बाणों से पीड़ित होकर अब मैं बोलने में समर्थ नहीं हूँ। मेरा बल नष्ट हो चुका है। प्राण निकलने के लिए जल्दी कर रहे हैं। सब मर्म-स्थान व्यथित हो रहे हैं। चित्त भ्रान्त हो गया है। दुर्बलता के कारण मुझसे बोला नहीं जाता। अतएव आप प्रसन्न होकर मुझे क्षमा करें। देवगुरु बृहस्पति भी आपसे धर्म का सिद्धान्त नहीं
१० कह सकते, [तो मैं क्या कहूँगा?] मैं इस समय पृथिवी, आकाश और दिशाओं को नहीं समझ सकता। केवल आपके प्रभाव से इतने दिनों से जी रहा हूँ। इसलिए आप ही धर्मराज को धर्म का उपदेश कीजिए। आप सब शास्त्रों की खान, सृष्टि करनेवाले और नित्य पदार्थ हैं। आपकी मौजूदगी में मेरे जैसे मनुष्य किसी को क्या उपदेश देंगे? गुरु के रहते हुए शिष्य क्या उपदेश करेगा?

श्रीकृष्ण ने कहा—हे गाङ्गेय! आप सब तत्त्वों के जानकार, महाबली और कौरवों में धुरन्धर हैं, इसलिए आपका ऐसे विनीत वचन कहना कोई आश्चर्य की बात नहीं। आप बाणों के आघात से बहुत दुखी हैं, इसलिए हम प्रसन्न होकर आपको वरदान देते हैं कि आपको ग्लानि, मूर्च्छा, जलन और भूख-प्यास आदि से तनिक भी क्लेश न हो। आपके हृदय में सब ज्ञान जाग उठें; आपकी बुद्धि निर्मल हो जावे। आपका मन रजोगुण और तमोगुण को हटाकर, सत्त्वगुणी होकर, मेघविहीन चन्द्रमा के समान विमल हो जावे। आप धर्म और अर्थ के विषय में जितना ही विचार करेंगे उतनी ही आपकी बुद्धि बढ़ती जायगी। जैसे मछली जल के भीतर देखती
२१ रहती है वैसे ही आप दिव्य नेत्रों द्वारा चारों प्रकार के प्राणियों को देखेंगे।

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, श्रीकृष्ण के यों कहने पर वेदव्यास आदि महर्षि विविध वेद-वाक्यों द्वारा उनकी स्तुति करने लगे। इसी समय आकाश-मण्डल से वासुदेव, भीष्म और पाण्डवों पर फूलों की वर्षा होने लगी। अप्सराएँ, अनेक बाजों के साथ, गाने लगीं। उस समय किसी प्रकार के अपशकुन नहीं हुए। शीतल मन्द सुगन्ध हवा बहने लगी। दिशाएँ शान्त हो गईं। हिरन और पक्षी बोलने लगे। उसी समय सूर्यनारायण वन को जलाते हुए से पश्चिम दिशा में देख पड़े। तब महर्षियों ने उठकर वासुदेव, भीष्म और युधिष्ठिर से विदा माँगी। वासुदेव, पाण्डव, सात्यकि, सञ्जय और कृपाचार्य ने उन सबको प्रणाम किया। महर्षि लोग उनका आदर-सत्कार ग्रहण करके, 'कल फिर यहीं मिलेंगे' यह कहकर, अपने-अपने आश्रम को चले गये। वासुदेव और पाण्डव भीष्म से विदा माँगकर, उनकी प्रदक्षिणा करके, रथों पर सवार हुए। तब सुवर्णमय पहाड़ों के समान रथ, मतवाले हाथी, गरुड़ के समान शीघ्र चलनेवाले घोड़े और धनुर्धारी पैदल बड़े वेग से चलने लगे। ३० जिस तरह नर्मदा नदी ऋक्षवान् पहाड़ के आगे और पीछे बहती है उसी तरह वह सेना पाण्डवों के आगे और पीछे चलने लगी। तब चन्द्रमा उदित होकर सूर्य की किरणों से सुखाई हुई ओषधियों को फिर से रसीली करता हुआ सैनिकों को प्रसन्न करने लगा। इसके बाद श्रीकृष्ण और पाण्डवों ने, जिस तरह थका हुआ सिंह अपनी गुफा में प्रवेश करता है उसी तरह, सुरपुर सदृश अपने घरों में प्रवेश किया। ३४

तिरपनवाँ अध्याय

दूसरे दिन सबेरे श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर आदि का, धर्मोपदेश सुनने के लिए, भीष्म के पास जाना

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, भगवान् वासुदेव रात को सोकर एक पहर रात बाक़ी रहे जाग पड़े और मन से सब ज्ञानों का स्मरण करके सनातन ब्रह्म का ध्यान करने लगे। कुछ देर बाद स्तुति करने में चतुर सुशिक्षित सूत लोग मीठे स्वर से उनकी स्तुति करने लगे। गानेवाले गाने लगे और ताली बजानेवाले ताली बजाने लगे। शङ्ख, मृदङ्ग, वीणा, पणव और वेणु आदि बाजों के मनोहर स्वरों से घर में अट्टहास-सा होने लगा।

इसके बाद युधिष्ठिर को जगाने के लिए स्तुति-पाठ और गाना बजाना आरम्भ हुआ। वासुदेव ने उठकर स्नान किया। जप और होम करके उन्होंने वेदपाठी ब्राह्मणों को हज़ार-हज़ार गायें दान करके स्वस्तिवाचन कराया। मंगल वस्तुओं का स्पर्श करके, दर्पण में अपना मुँह देखकर, सात्यकि से कहा—सात्यकि, धर्मराज युधिष्ठिर के यहाँ जाकर देख आओ कि क्या वे भीष्म के पास चलने के लिए तैयार हैं। आज्ञा पाकर सात्यकि ने उसी दम युधिष्ठिर के पास १०

जाकर कहा—महाराज, महात्मा भीष्म के पास चलने के लिए श्रीकृष्ण का रथ तैयार खड़ा है। वे आ की प्रतीक्षा कर रहे हैं। चलने की तैयारी कीजिए।

सूचना पाकर महाराज युधिष्ठिर ने कहा—अर्जुन, तुम जल्दी रथ तैयार करो। हम लोगों के साथ सेना के चलने की ज़रूरत नहीं। सिर्फ़ हमीं लोग चलेंगे। धर्मात्मा भीष्म को कष्ट देना उचित नहीं। इसलिए आगे चलनेवाले सिपाहियों को भी रोक दो। आज महात्मा भीष्म हम लोगों को गुप्त बातें बतलावेंगे, इसलिए हम दूसरों को साथ ले जाना नहीं चाहते।

वैशम्पायन कहते हैं कि धर्मराज की आज्ञा से अर्जुन ने रथ तैयार करके उनको तैयार हो जाने की ख़बर दी तब युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव श्रीकृष्ण के घर गये। पाण्डवों के आने पर श्रीकृष्ण भी सात्यकि समेत रथ पर सवार हुए और रात में सुख से सोने २० आदि की बातचीत परस्पर होने लगी। बादल के गरजने के समान घोर शब्द करते हुए सब रथ चल दिये। श्रीकृष्ण के सारथि दारुक ने शैव्य, सुग्रीव, मेघपुष्प और बलाहक नाम के घोड़ों को हाँक दिया। घोड़े अपनी टापों से पृथिवी को खोदते हुए ऐसे वेग से चले मानो आकाश को पकड़ लेंगे। थोड़ी देर में सब लोग कुरुक्षेत्र में पहुँच गये। रथ से उतरकर सब लोग, शरशय्या पर पड़े हुए, महात्मा भीष्म के पास गये। उनके पास ऋषिगण बैठे हुए थे। सब लोगों ने दहिना हाथ उठाकर महर्षियों को प्रणाम किया। इसके बाद नक्षत्रों से घिरे हुए चन्द्रमा के समान महाराज युधिष्ठिर, जैसे ब्रह्मा के पास इन्द्र जावें वैसे, भीष्म के पास गये। उनको आकाश २८ से गिरे हुए सूर्य के समान शरशय्या पर पड़े देखकर महाराज युधिष्ठिर भयभीत से हो गये।

चौवनवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण का भीष्म से धर्मोपदेश करने को कहना

जनमेजय ने पूछा—भगवन्! सत्यप्रतिज्ञ, जितेन्द्रिय, धर्म-परायण, महात्मा भीष्म ने पाण्डवों को किस धर्म का उपदेश किया?

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज! नारद आदि महर्षि, श्रीकृष्ण, धृतराष्ट्र, युधिष्ठिर आदि पाँचों पाण्डव और युद्ध में बचे हुए क्षत्रिय लोग, आकाश से गिरे हुए सूर्य के समान, कौरव-कुल-धुरन्धर कुरु-पितामह महात्मा भीष्म को शरशय्या पर पड़े देखकर पछतावा करने लगे। तब महर्षि नारद ने कुछ सोचकर युद्ध से बचे हुए क्षत्रियों और पाण्डवों से कहा कि महात्मा भीष्म सूर्य की तरह अस्त होना चाहते हैं। ये महात्मा चारों वर्णों के विविध धर्मों को जानते हैं, इसलिए इनके शरीर त्यागकर स्वर्ग सिधारने के पहले तुम लोग जो कुछ १० पूछना चाहो, पूछकर अपना सन्देह दूर कर लो।

वैशम्पायन कहते हैं कि अब सब राजा लोग भीष्म के पास जाकर एक दूसरे का मुँह देखने लगे। तब युधिष्ठिर ने कहा—वासुदेव, आपके सिवा पितामह से प्रश्न करनेवाला दूसरा कोई नहीं है इसलिए आप ही उनसे धर्म का विषय पूछिए। हम लोगों में आप ही धर्म के जाननेवाले हैं। तब श्रीकृष्ण ने भीष्म के पास जाकर कहा—हे राजसत्तम, आपको आज की रात में तो कष्ट नहीं हुआ? आपका सब ज्ञान तो दुरुस्त है? आपके शरीर में पीड़ा और मन में व्याकुलता तो नहीं है?

भीष्म ने कहा—हे वासुदेव! आपकी कृपा से मोह, दाह, परिश्रम, ग्लानि और रोग, सब दूर हो गये। इस समय मुझे आपके वरदान से भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों काल हस्तगत फल के समान देख पड़ते हैं। वेद-वेदान्तोक्त धर्म, शिष्टाचार प्रथा, आश्रमधर्म, राजधर्म, देश-जाति और कुल के धर्म, सब मेरे हृदय में जाग उठे हैं। इस समय जो इच्छा हो सो पूछिए। २१ आपकी कृपा से मेरी बुद्धि निर्मल हो गई और चित्त स्थिर हो गया है। मैं आपका ध्यान करके फिर जी उठा हूँ। मैं इस समय हित की बातें कह सकता हूँ। किन्तु मुझे यह बतलाने की कृपा कीजिए कि आपने युधिष्ठिर को स्वयं हितोपदेश क्यों नहीं दिया।

वासुदेव ने कहा—हे कुरुपितामह, हमको कीर्ति और कल्याण का कारण जानो। भले और बुरे सब भाव हमीं से पैदा हुए हैं। जैसे चन्द्रमा के शीतल होने में किसी को सन्देह नहीं है वैसे ही हमारे यशस्वी होने में कोई शंका नहीं करता। इस समय हमने अपनी विशाल बुद्धि आपके हृदय में प्रविष्ट कर दी है। हम आपको महायशस्वी बनाना चाहते हैं। जब तक यह पृथिवी रहेगी तब तक संसार में आपकी कीर्ति बनी रहेगी। धर्मराज को आप जो कुछ उपदेश करेंगे वह वेद-वाक्य के समान संसार में स्थिर रहेगा। आपके उपदेश के अनुसार जो चलेगा वह मरने के बाद उन पुण्यों का फल पावेगा। हे भीष्म, इसी से हमने ३० आपको निर्मल बुद्धि दी है। आपका यश फैलाना ही हमारा उद्देश्य है। संसार में यश से ही मनुष्य अमर हो जाता है। इस समय युद्ध से बचे हुए ये सब राजा, धर्म का सिद्धान्त सुनने के लिए, आपको घेरे बैठे हैं। आप इनको उपदेश करें। आप वयोवृद्ध, शास्त्रज्ञ और सदाचारी हैं। राजधर्म और अन्य धर्मों के भी आप मर्मज्ञ हैं। जन्म से लेकर आज तक कोई दोष आपमें नहीं देखा गया। सब राजा आपको समस्त धर्म का जानकार समझते हैं। इसलिए आप इन लोगों को, पिता की तरह, नीति का उपदेश दीजिए। आप निरन्तर ऋषियों और देवताओं की उपासना करते रहे हैं। इस समय सब राजा आपसे धर्म का मर्म सुनने के लिए उत्सुक हैं, अतएव आपको अवश्य सब धर्मों का सिद्धान्त सुनाना चाहिए। पण्डितों की सम्मति है कि धर्म का उपदेश देना विद्वानों का कर्त्तव्य है। पूछने पर धर्म का उपदेश न देने से दोष लगता है। इसलिए हे धर्मज्ञ, जब आपके पुत्र-पौत्र आदि सब सनातन धर्म का विषय सुनना चाहते हैं तब निस्सन्देह आप उन्हें धर्म का उपदेश दें। ३९

पचपनवाँ अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर को अपने पास बुलाकर आश्वासन देना
और धर्म का सिद्धान्त पूछने की आज्ञा देना

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, अब महाबली भीष्म ने कहा—हे वासुदेव, आप सब प्राणियों के आत्मा और नित्य हैं। आपकी कृपा से मेरी वाणी और मेरा मन दृढ़ हो गया है, इसलिए मैं धर्म के सिद्धान्त का वर्णन करूँगा। जिन धर्मराज के राज्यशासन हाथ में लेने से ऋषि लोग प्रसन्न हुए हैं, जिनके समान धर्मात्मा और यशस्वी कौरवों में दूसरा कोई नहीं है; जो धैर्य, शम-दम, ब्रह्मचर्य, क्षमा, धर्म, तेज और बल में अद्वितीय हैं वे युधिष्ठिर धर्म की बातें पूछें। मैं वर्णन करूँगा। जिन्होंने बन्धु-बान्धवों, अतिथियों, नौकर-चाकरों और आश्रित भाइयों का यथोचित सत्कार किया है; जिनमें सत्य, दान, तप, शान्ति, शूरता, दक्षता और निर्भीकता, ये सब गुण बने रहते हैं और जिन्होंने काम, क्रोध और भय से अथवा धन के लिए अधर्म नहीं किया वे युधिष्ठिर धर्म की बातें पूछें। मैं वर्णन करूँगा। जो सत्यवादी, ज्ञानी, क्षमावान् और अतिथिप्रिय हैं और सज्जनों को दान देते हैं तथा जिनका शान्त स्वभाव है और जो यज्ञ करते हैं वे धर्म-परायण बहुश्रुत युधिष्ठिर मुझसे धर्म का सिद्धान्त पूछें।
१० मैं प्रसन्नता से सब धर्मों का वर्णन करूँगा।

वासुदेव ने कहा—महात्मन्! धर्मराज युधिष्ठिर युद्ध में परमपूज्य, मान्य, भक्त, आत्मीय, बन्धु-बान्धव, गुरु और अन्य लोगों का संहार करने से बहुत लज्जित हैं। वे शाप के डर से आपके सम्मुख नहीं आते। भीष्म ने कहा—वासुदेव! जैसे दान, अध्ययन और तप ब्राह्मणों का धर्म है वैसे ही युद्ध में शत्रुओं का संहार करना क्षत्रियों का धर्म है। जो क्षत्रिय अकारण संग्राम में प्रवृत्त पिता, पितामह, गुरु, सम्बन्धी, बन्धु-बान्धवों, पापी, लोभी गुरु, अधर्मी और नीच जनों का विनाश करता है और जो क्षत्रिय युद्ध में रुधिर-रूप जल, केश-रूप तृण, गज-रूप पहाड़ और ध्वज-रूप वृक्षों से पृथिवी को शोभित करता है वही सच्चा धर्मात्मा है। मनु का वचन है कि संग्राम के लिए ललकारे जाने पर क्षत्रियों को अवश्य युद्ध करना चाहिए। युद्ध से ही उनको यश और स्वर्ग मिलता है। युद्ध ही उनका धर्म है।

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, भीष्म के ऐसा कहने पर उनके पास जाकर युधिष्ठिर ने विनीत भाव से उनको प्रणाम किया। महात्मा भीष्म ने प्रसन्नता से धर्मराज का माथा सूँघकर उनको बैठने की आज्ञा दी और कहा—बेटा, डरो मत। तुम बेखटके होकर
२२ हमसे धर्म का सिद्धान्त पूछो।

छप्पनवाँ अध्याय

युधिष्ठिर के पूछने पर भीष्म द्वारा राजधर्म का वर्णन

वैशम्पायन कहते हैं कि धर्मराज ने भीष्म और वासुदेव को प्रणाम करके तथा अन्य गुरुजनों का यथोचित सम्मान करके कहा—पितामह, महात्माओं का कहना है कि राजाओं के लिए सब धर्मों की अपेक्षा प्रजा-पालन (राजधर्म) ही श्रेष्ठ है। इस धर्म के भार को सँभालना बहुत कठिन है। आप कृपा करके इस धर्म का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए। धर्म, अर्थ और काम के साथ राजधर्म का घनिष्ठ सम्बन्ध है और मोक्ष-धर्म भी इससे दुर्लभ नहीं है। जैसे घोड़ा लगाम के और हाथी अङ्कुश के वश में रहता है वैसे ही सब संसार का नियन्त्रण राजधर्म करता है। यदि राजा राजधर्म का पालन नहीं कर सकता तो सारा देश विशृङ्खल हो जाता है और इससे लोगों को कष्ट होता है। जैसे सूर्य के उदय होने पर अँधेरा नहीं रहने पाता वैसे ही राजधर्म के कारण अव्यवस्था नहीं रहने पाती। इसलिए हे पितामह, आप मुझे राज-धर्म का उपदेश दीजिए। आप सब शास्त्रों के ज्ञाता और धर्मज्ञों में श्रेष्ठ हैं। वासुदेव ने भी आपको परम बुद्धिमान् बतलाया है।

भीष्म ने कहा—बेटा! मैं धर्म को नमस्कार करके और जगन्नियन्ता श्रीकृष्ण और ब्राह्मणों को नमस्कार करके राजधर्म का वर्णन करता हूँ, तुम उसे अथवा और जो तुम्हारी अभि- १० लाषा हो उसको सावधान होकर सुनो। राजा को सबसे पहले देवताओं और ब्राह्मणों को यथायोग्य व्यवहार द्वारा प्रसन्न रखना चाहिए। देवताओं और ब्राह्मणों का यथोचित सत्कार करने से राजा देश में आदर पाता और धर्म के ऋण से उऋण हो जाता है। राजा को पौरुष से सब काम करना चाहिए। पौरुष-विहीन राजाओं को भाग्य कोई फल नहीं देता। पौरुष और दैवकार्य यही दो सिद्धि के उपाय हैं। किन्तु इन दोनों में पौरुष प्रत्यक्ष फल देनेवाला है, इस लिए यही श्रेष्ठ है; होनहार तो फल द्वारा निश्चित है। कार्य आरम्भ करने पर यदि कोई विघ्न आ पड़े तो उससे घबराना नहीं चाहिए प्रत्युत उसकी सिद्धि के लिए प्रयत्न करता रहे; उसकी सिद्धि के लिए बार-बार उद्योग करे। सत्य के बिना राजाओं की कार्य-सिद्धि होनी असम्भव है। सत्यवादी राजा इस लोक और परलोक में भी सुख पाता है। सत्य महर्षियों का भी परम धर्म है। सत्य से बढ़कर राजा को विश्वास का कोई कारण नहीं है। गुणवान् (शूर, गम्भीर), सदा-चारी, दानी, शान्त, दयालु, धर्मात्मा, जितेन्द्रिय और हँसमुख राजा कभी श्रीहत नहीं होता। सब कामों में सरलता से काम लेना चाहिए। सच बोले, किन्तु अपने दोषों को छिपाने और दूसरों के दोषों को ढूँढ़ने में झूठ बोलना भी दूषित नहीं। जो राजा बहुत ही सरल यानी दयालु २० होता है उसका कहीं रोब-दाब नहीं रहता और जो अति उग्र होता है उसे देखकर सब लोग डरते हैं, इसलिए राजा को न तो बिलकुल सरल रहना चाहिए और न अत्यन्त उग्र। ब्राह्मणों को

कभी दण्ड न दे। संसार में ब्राह्मण सब मनुष्यों से श्रेष्ठ हैं। इस विषय में मनु का वाक्य स्मरण रखना चाहिए। उनके मत में जल से अग्नि, ब्राह्मण से क्षत्रिय और पत्थर से लोहा उत्पन्न हुआ है। इन तीनों का तेज अपने-अपने उत्पत्ति-स्थान के द्वारा शान्त हो जाता है। लोहा पत्थर को चूर्ण करने से, अग्नि जल को सोखने से और क्षत्रिय ब्राह्मण का विनाश करने से शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। हे युधिष्ठिर! ब्राह्मण वेद और यज्ञ की रक्षा करते हैं, इसलिए राजा को ब्राह्मणों का सत्कार करना चाहिए। किन्तु यदि ब्राह्मण अत्याचार करे तो उसको भी दण्ड दे। इस विषय में शुक्राचार्य का मत ध्यान देकर सुनो। धर्मात्मा राजा को चाहिए कि शस्त्र लेकर हमला करनेवाले विद्वान् ब्राह्मण को भी बँधुआ कर ले, किन्तु मारे नहीं। धर्म का विनाश होते देख उसकी रक्षा करना राजा का कर्तव्य है, इसलिए अधर्मी ब्राह्मण यदि जीवित बँधुआ न किया जा सके तो उसको मार डालने पर राजा को पाप नहीं लगता; क्योंकि उसके ३० वध का कारण तो उसी का क्रोध है। किन्तु जहाँ तक हो सके, ब्राह्मणों का विनाश न करके उनकी रक्षा ही करनी चाहिए। अपराधी ब्राह्मण को राज्य से निकाल दे। अपराध सिद्ध हो जाय तो भी ब्राह्मणों पर दया करे। ब्राह्मण यदि ब्रह्महत्या, गुरुतल्पगमन, भ्रूणहत्या अथवा राजद्रोह करे तो उसे राज्य से निकाल दे। ब्राह्मण को कोड़े आदि से शारीरिक दण्ड न देना चाहिए। जो मनुष्य ब्राह्मणों पर श्रद्धा रक्खे राजा को उसका प्रिय करना चाहिए। लोगों को अपने अनुकूल रखने से बढ़कर राजा का और कोई धन नहीं है। पण्डितों ने छः प्रकार के जो दुर्ग (मरु, जल, पृथिवी, वन, पहाड़ और मनुष्य) बतलाये हैं उनमें नर सबसे कठिन है, इससे समझदार को प्रजा पर दया करनी चाहिए। धार्मिक और सत्यवादी होने से राजा प्रजा को प्रसन्न रख सकता है। राजा हमेशा क्षमा न किया करे; क्योंकि नितान्त क्षमावान् होने से राजा सीधे-सादे हाथी की तरह अधर्मी समझा जाता है। जैसे महावत हाथी के सिर पर सवार होता है वैसे ही नीच मनुष्य भोले-भाले राजा को दबाये रहते हैं, इसलिए राजा को न तो अति सरल होना चाहिए और न अति तीक्ष्ण। उसे वसन्त ऋतु के सूर्य के समान ४० साधारण सरल और साधारण तीक्ष्ण रहना चाहिए। राजा को प्रत्यक्ष, अनुमान, सादृश्य और शास्त्र द्वारा लगातार अपने और दूसरों के मनुष्यों की परीक्षा करते रहना चाहिए। (मृगया, जुआ, मद-पान, दिन को सोना आदि) व्यसनों से वह सदा बचा रहे। शूर पुरुषों को विजय के लिए भेजे। जो राजा व्यसनी होता है वह नित्य पराजित होता है और जो विद्वेषी होता है उससे प्रजा छड़कती है। जैसे गर्भवती स्त्री अपने प्रिय मनोरथ की परवा न करके गर्भ की भलाई चाहती रहती है वैसे ही राजा को अपना सुख छोड़कर प्रजा का हित करना चाहिए।

हे धर्मराज, कभी धैर्य को न छोड़ना। धैर्यवान् और चतुरंग सेनावाले राजा को कभी कोई डर नहीं रहता। नौकरों के साथ अधिक हँसी-मज़ाक़ न करना चाहिए; क्योंकि

ऐसा करने से नौकर ढीठ होकर स्वामी का अनादर करने लगते हैं। अपने काम में मन नहीं लगाते। किसी काम की आज्ञा पाकर उसके करने में टालमटोल करने लगते हैं। गुप्त बात जानने की चेष्टा करते हैं। जो चीज़ उनके माँगने योग्य नहीं उसे माँग बैठते हैं। स्वामी के खाने की चीज़ खा लेते हैं। घूस लेकर और धोखा देकर स्वामी के कामों में नुक़सान ५० पहुँचाते हैं और समय-समय पर मालिक से नाराज़ हो जाते और बदनामी करते हैं। बनावटी शासन-पत्र भेजकर राजा के देश को निस्सार कर देते हैं। रनिवास के रक्षकों से हेल-मेल बढ़ाकर, उनका सा वेष बनाकर, रनिवास के भीतर जाने की चेष्टा करते हैं। मालिक के सामने जमुहाई लेने और थूकने में लज्जित नहीं होते। मालिक की गुप्त बातों को प्रकट कर देते हैं और मालिक का अनादर करके उसके हाथी, घोड़े और रथ पर सवार होने लगते हैं। मन्त्री की तरह सभा में बैठकर, 'महाराज, आपको यह काम न करना चाहिए, आपके लिए यह काम कठिन है' इत्यादि सलाहें देने लगते हैं। मालिक को नाराज़ देखकर मज़ाक़ करते हैं। उससे आदर पाने पर भी प्रसन्न नहीं होते। हमेशा हँसी-मज़ाक़ में समय बिताते हैं। राजा के दुष्कर्मों और उसकी गुप्त बातों को प्रकट कर देते हैं। ढिठाई और बेपरवाही से मालिक का कहना मानते हैं। मालिक के गहने, भोजन और स्नान करने की चीज़ें माँगने पर निडर होकर सामना करने को तैयार हो जाते हैं; आज्ञा नहीं मानते। नौकरी की निन्दा करते और नौकरी छोड़ देते हैं। वेतन से सन्तुष्ट नहीं होते; मालिक की आमदनी में से भी कुछ हड़प जाते हैं। डोरी में बँधे हुए पक्षी के साथ जैसे कोई खिलवाड़ करे उसी तरह वे राजा के साथ खिलवाड़ करने की चेष्टा करते हैं। जनता में गर्व से यह कहने लगते हैं कि राजा हमारे कहने में हैं। हम उनसे जो चाहें करा सकते हैं। राजा के सीधे-सादे और हँसोड़ होने से इस प्रकार के अनेक दोष पैदा हो जाते हैं। ६१

सत्तावनवाँ अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से राजधर्म कहना

भीष्म कहते हैं—हे धर्मराज, राजा को हमेशा उद्योग करते रहना चाहिए। उद्योग-हीन राजा की प्रशंसा नहीं हो सकती। शुक्राचार्य का मत है कि अविरोधी राजा और अप्रवासी ब्राह्मण को पृथिवी इस तरह खा लेती है जैसे साँप के बिल में बैठे हुए चूहे को साँप खा लेता है। शुक्राचार्य की इस सम्मति का स्मरण तुम्हें सर्वदा रखना चाहिए। सन्धि करने योग्य मनुष्यों के साथ सन्धि और विरोध करने योग्य लोगों के साथ विरोध करना चाहिए। स्वामी, मन्त्री, सुहृद्, कोष, राष्ट्र, दुर्ग और सेना ये राज्य के सात अङ्ग हैं। इनके साथ जो कोई विरोध करे, वह गुरु या मित्र भी क्यों न हो, उसका नाश करना राजा का कर्तव्य है।

बृहस्पति की सम्मति से महाराज मरुत्त कह गये हैं कि कर्तव्य और अकर्तव्य को न जाननेवाले अभिमानी तथा कुमार्गगामी गुरु को भी दण्ड देना अनुचित नहीं। बाहु के पुत्र महाराज सगर ने नगरवासियों की भलाई के लिए अपने बड़े बेटे असमञ्जस को राज्य से निकाल दिया था। नगर-वासी लड़कों को असमञ्जस सरयू में डुबा देता था, इसलिए उसके पिता राजा सगर ने उसका परित्याग कर दिया। महर्षि उद्दालक ने ब्राह्मणों के साथ मिथ्या-व्यवहार करने के कारण अपने प्रिय पुत्र महातपस्वी श्वेतकेतु को त्याग दिया था। जनता को प्रसन्न रखना, सत्य का पालन करना और सरल व्यवहार करते रहना ही राजा का धर्म है। दूसरों का धन न हर लेना और देने योग्य वस्तु का दान समय पर करना राजाओं का कर्तव्य है। पराक्रमी, सत्य-वादी और क्षमाशील राजा कभी सुमार्ग से विचलित नहीं होता। राजा को जितेन्द्रिय और शास्त्रों का मर्मज्ञ होना चाहिए। उसे धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष में अनुराग तथा वेदमन्त्रों का ज्ञान रखना चाहिए। प्रजा के पालन से विमुख होना राजा के लिए भारी पाप है। चारों वर्णों के धर्मों का सम्मान और उनकी रक्षा करना राजा का कर्तव्य है। राजा को विश्वासपात्र लोगों का भी अत्यन्त विश्वास न करना चाहिए। सन्धि-विग्रह आदि नीति के गुणों और दोषों का विचार बुद्धि से करना चाहिए। जो राजा धर्म, अर्थ और काम को यथार्थ जानता है, शत्रु के राज्य के दोषों की खोज रखता है और घूस देकर शत्रु-पक्ष के लोगों को अपनी ओर कर लेता है वही प्रशंसनीय है। यम की तरह चौकन्ना रहना, कुबेर की तरह धन-संग्रह करना, स्थिति, वृद्धि और क्षय के गुण-दोष का निर्णय करना, अनाथों का पालन करना, सेवकों पर निगाह रखना, प्रसन्नता से हँस-हँसकर बातें करना, वृद्धों की सेवा करना, आलस्य और लोभ को जीतना, दुष्टों को दण्ड देना, सत्पात्र को दान देना, जितेन्द्रिय होना और भोग्य पदार्थों का भोग करना राजा का कर्तव्य है। सज्जनों से धन लेना सच्चरित्र राजा को उचित नहीं। दुष्टों से धन लेकर सज्जनों को देना चाहिए। जो उत्तम कुल में उत्पन्न, दुर्धर्ष, वीर, भक्त, नीरोग, शिष्ट, शिष्ट के साथी, मानी, विद्वान्, लोक-तत्त्वज्ञ, धर्मज्ञ, सज्जन और पर्वत के समान स्थिर-बुद्धि हैं और जो परलोक का ख़याल रखते और कभी किसी का अनादर नहीं करते, उनकी सहायता बुद्धिमान् राजा करे। छत्र और शासन के सिवा और सब वस्तुएँ, अपने समान, उनके अधिकार में रक्खे। ऐसे लोगों के साथ प्रत्यक्ष और परोक्ष में समान व्यवहार करना चाहिए। ऐसा करने से उसे कभी दुःख नहीं उठाना पड़ता। जो राजा किसी पर विश्वास नहीं करता, सब कुछ छीन लेता, लोभी और कुटिल होता है, उसके सुहृद् ही उसका नाश कर डालते हैं और जो राजा सदाचारी और दूसरों को प्रसन्न करने में चतुर होता है वह एक तो शत्रुओं के हाथ में पड़ता ही नहीं है और यदि पड़ जाता है तो साफ़ निकल आता है। एक बार अवनत होने पर भी फिर उन्नत हो जाता है। जो राजा शान्त-स्वभाव, व्यसनहीन और जितेन्द्रिय होता है और जो दण्ड पाने

योग्य मनुष्यों को अल्प दण्ड देता है वह हिमाचल के समान सबका विश्वासपात्र हो जाता है। २६
जो राजा बुद्धिमान्, दानी, दूसरों के दोषों को देखनेवाला, प्रियदर्शन, नीतिज्ञ, झटपट काम कर लेनेवाला, क्रोधहीन, प्रसन्नमुख, क्रियावान् और निरहङ्कार होता है; जिस कार्य का आरम्भ करता है उसे पूरा किये बिना नहीं छोड़ता और जिसके राज्य में प्रजा, पिता के घर में स्थित पुत्र के समान, निर्भय रहती है वही श्रेष्ठ है। जिसकी प्रजा नीति और अनीति को जानती है और अपने ऐश्वर्य को नहीं छिपाती वही राजा श्रेष्ठ है। जिसके राज्य में प्रजा अपने-अपने धर्म में लगी रहती है, अपने शरीर की अपेक्षा शरीर-साध्य धर्म का अधिक आदर करती है, राजा के यत्न से सुरक्षित रहकर उसके वशीभूत रहती है, दूसरों से लड़ने-भिड़ने की चेष्टा नहीं करती और दानी होती है वही यथार्थ राजा है। जिसके राज्य में कपट, माया और ईर्ष्या नहीं होती वही राजा सनातनधर्मी है। जो राजा पण्डितों का आदर करता है, जो जानने योग्य वस्तु को जानने के लिए उत्सुक रहता है, जो पुरवासियों के हित के काम करता रहता है, जो सुमार्ग पर चलता और त्यागशील होता है, जिसके गुप्तचर, आरम्भ और अनारम्भ कार्य तथा जिसकी मन्त्रणा शत्रुओं से छिपी रहती है वही राजा राज्य करने के उपयुक्त है। रामचरित में महात्मा भार्गव ने राजा से कहा है कि पहले राजा का आश्रय कर ले तब विवाह करे और ४० फिर धन संग्रह करे; क्योंकि राजा के न होने पर स्त्री और धन की रक्षा नहीं हो सकती। जो राजा राज्य की इच्छा रखता हो उसके लिए प्रजा की रक्षा से बढ़कर कोई धर्म नहीं है। प्रजा की रक्षा से ही राज्य की रक्षा हो सकती है। प्राचेतस मनु ने राजधर्म का वर्णन करते हुए कहा है कि मौनी आचार्य, कुपढ़ ऋत्विक्, अरक्षक राजा, अप्रियवादिनी स्त्री, गाँव में घूमनेवाला गोपाल और वन की सैर करनेवाला नाई ये सब समुद्र में टूटी हुई नाव की तरह त्यागने योग्य हैं। ४५

अट्ठावनवाँ अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से राजधर्म कहना और सन्ध्या के समय सबका अपने-अपने घर वापस जाना

भीष्म कहते हैं—हे धर्मराज, रक्षा करना ही राजधर्म का सार है। बृहस्पतिजी ने रक्षा के समान किसी धर्म की प्रशंसा नहीं की। राजधर्म के प्रणेता भगवान् विशालाक्ष, महातपस्वी शुक्राचार्य, सहस्रनयन इन्द्र, प्राचेतस मनु, महर्षि भरद्वाज और गौरशिरा मुनि ने रक्षा की ही प्रशंसा की है। अब मैं रक्षा के साधन बतलाता हूँ, सावधान होकर सुनो। गुप्तचरों और नौकरों को समय पर वेतन देना, युक्ति द्वारा प्रजा से कर लेना, सज्जन मनुष्यों को एकत्र करना, शूरता, निपुणता, सच्चा व्यवहार और प्रजा का हित करना तथा सन्मार्ग से हो या असन्मार्ग से—जैसे बन पड़े—शत्रुपक्ष का भेद लेना चाहिए। पुराने घरों की मरम्मत कराना

और समय के अनुसार दो प्रकार के दण्ड (शारीर दण्ड और अर्थ-दण्ड) का प्रयोग करना चाहिए। सज्जन और कुलीन मनुष्यों का त्याग न करे। अन्न आदि का संग्रह करना, बुद्धिमानों की सेवा करना, सेना को हमेशा प्रसन्न रखना, प्रजा की देख-रेख रखना, काम करने में आलस्य न करना और कोष का बढ़ाना राजा का कर्तव्य है। नगर की रक्षा करे और चौकीदारों पर ही भरोसा न रक्खे। ऐसी सावधानी रक्खे जिसमें शत्रु भेद न डालने पावे। शत्रुओं के बीच मित्रों की
१० ठीक-ठीक देख-रेख रखनी चाहिए। नौकरों में फूट डालना और उन पर विश्वास न रखना, बस्ती पर नज़र रखना, शत्रु को आश्वासन देना, नीति-धर्म का अनुसरण करना, सर्वदा अपनी उन्नति करते रहना, शत्रुओं की उपेक्षा और कायरता न करना राजा की रक्षा के प्रधान उपाय हैं।

अब उद्योग का महत्त्व सुनो। बृहस्पति ने उद्योग को राजधर्म का मूल बतलाया है। इन्द्र ने उद्योग से अमृत पाया, असुरों का संहार किया और देवलोक का राज्य प्राप्त किया है। उद्योगी पुरुष पण्डितों से बढ़कर हैं। पण्डित लोग उद्योगी पुरुषों के ही आश्रय में रहते हैं। जो राजा उद्योगहीन होता है वह बुद्धिमान् होने पर भी, विषहीन साँप की तरह, शत्रुओं से परास्त हो जाता है। बलवान् पुरुष दुर्बल शत्रु की भी उपेक्षा नहीं करते; क्योंकि जैसे थोड़ी सी आग भी जला सकती है और रत्ती भर विष भी जान ले सकता है वैसे ही शत्रु, सेना का एक अङ्ग लेकर, दुर्ग का आश्रय करके, समृद्ध राजा के देश को भी चौपट कर सकता है। राजा को अपनी गुप्त बातें तथा विजय करने के लिए लोक-संग्रह, कपट या और जो कुछ हीन काम सोचे हों उन्हें प्रकट न करना चाहिए। मनुष्यों को अधीन रखने के लिए धार्मिक काम करने
२० चाहिएँ। अत्यन्त क्रूर या निरे कोमल स्वभाव का मनुष्य राज्य को नहीं सँभाल सकता, इसलिए राजा को क्रूरता और मृदुता दोनों का अवलम्बन करना चाहिए; क्योंकि नम्र रहने से राज्य को हड़प लेने के लिए सभी तैयार रहते हैं। प्रजा की रक्षा के लिए राजा को विपत्ति उठानी पड़े तो उसे अपना धर्म समझकर सहन करना चाहिए। हे धर्मराज! मैंने यह राजधर्म के कुछ अंश का वर्णन किया है, अब तुमको जिस विषय में सन्देह हो उसे पूछो।

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज! महात्मा भीष्म के यह कहने पर वेदव्यासजी, देवस्थान, अश्मा, श्रीकृष्ण, कृपाचार्य, सात्यकि और सञ्जय आदि सब लोग भीष्म की प्रशंसा करने लगे। तब धर्मराज युधिष्ठिर ने आँखों में आँसू भरकर, दीन भाव से, धीरे से भीष्म के पैर छूकर कहा—पितामह, सूर्य भगवान् ओषधियों का रस पीकर अब अस्ताचल पर पहुँच गये हैं इसलिए मैं कल अपना सन्देह प्रकट करूँगा। इसके बाद पाँचों पाण्डव, वासुदेव और कृपाचार्य आदि सब लोगों ने महर्षियों को प्रणाम और भीष्म की प्रदक्षिणा करके प्रसन्नता से अपने-अपने रथ पर सवार होकर हस्तिनापुर की यात्रा की। दृषद्वती नदी पर पहुँचकर सन्ध्यो-
३० पासन आदि क्रिया करके सब लोग हस्तिनापुर को गये।

उनसठवाँ अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से राजा की उत्पत्ति बतलाते हुए पृथुराज का चरित कहना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज! दूसरे दिन तड़के उठकर पाँचों पाण्डव और श्रीकृष्ण आदि सब लोग प्रातःकाल के आवश्यक कार्य करके, रथों पर सवार हो, कुरुक्षेत्र को चले। वहाँ पहुँचकर, भीष्म से रात की कुशल पूछकर, वेदव्यास आदि महर्षियों को प्रणाम करके और उनसे अभिनन्दित होकर प्रसन्नता से पितामह के चारों ओर बैठ गये। महातेजस्वी धर्मराज ने सम्मानपूर्वक हाथ जोड़कर कहा—पितामह! राजा का नाम 'राजा' क्यों पड़ा? राजा के हाथ, पैर, मुँह, गर्दन, पेट, पीठ, रक्त, मांस, मज्जा, हड्डी, वीर्य, श्वास, उच्छ्वास, प्राण, शरीर, बुद्धि, इन्द्रिय, सुख, दुःख, जन्म और मरण सब प्रजा के ही समान होते हैं, तो फिर क्यों राजा अनेक बुद्धिमानों और शूर-वीरों पर प्रभाव जमाकर शासन करता है और जनता की प्रसन्नता चाहता है? उसकी प्रसन्नता से सब प्रसन्न और उस पर विपत्ति पड़ने से सब विपद्-ग्रस्त हो जाते हैं। यह जानने की मेरी इच्छा है। यह साधारण बात नहीं है कि एक व्यक्ति का आदर, देवता की तरह, सब लोग करते हैं। १०

भीष्म ने कहा—धर्मराज! सत्ययुग में पहले जिस तरह राजा की उत्पत्ति हुई है उसे सावधान होकर सुनो। पहले संसार में न राज्य था न राजा, न दण्ड था और न दण्ड का विधान करनेवाला ही। सब प्रजा धर्म से एक दूसरे की रक्षा करती थी। कुछ दिन बीतने पर इस तरह परस्पर रक्षा करना प्रजा के लिए एक बोझ सा हो गया। प्रजा में धीरे-धीरे मूर्खता छा गई। दुविधा में पड़ जाने के कारण क्रमशः धर्म का लोप होने लगा और सब प्रजा काम, लोभ और चोरी आदि दुर्गुणों से दूषित होकर विवेकहीन हो गई। वाच्य-अवाच्य, भक्ष्य-अभक्ष्य और अगम्यागमन आदि का कुछ भी विचार न रह गया। संसार में मनुष्यों के कुमार्गगामी हो जाने पर धर्म (यज्ञ) और वेदों का लोप हो गया। २०

तब देवता बहुत डरे। वे ब्रह्मा की शरण में जाकर हाथ जोड़कर बोले—भगवन्, मर्त्य-लोक में सनातन वेदों का लोप हो गया है, इसलिए हम लोग बहुत डरे हुए हैं। वेदों के नष्ट होने से धर्म का विनाश हो गया है। अब हम लोग मनुष्यों के समान हो गये हैं। होम आदि कर्मों के करने से मनुष्य ऊर्ध्ववर्षी और पानी बरसाने के कारण हम सब अधोवर्षी कहलाते थे; किन्तु अब मनुष्यों के कर्महीन होने से हम लोग बड़े सङ्कट में हैं। अब आप हमारी भलाई का उपाय सोचिए; नहीं तो आपके प्रभाव से उत्पन्न हम लोगों का ऐश्वर्य और सत्य सङ्कल्प आदि (स्वभाव) नहीं बचने का।

स्वयम्भू विधाता ने कहा—देवगण, तुम लोग डरो मत। हम तुम्हारी भलाई की बात सोचेंगे। अब प्रजापति ने अपनी बुद्धि से एक लाख अध्यायों का एक नीतिशास्त्र तैयार कर

३० दिया। इस नीतिशास्त्र में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष (जिसका कि फल धर्म आदि त्रिवर्ग से भिन्न है और जो निष्काम है) तथा मोक्ष के सत्त्व, रज और तम नाम के तीनों वर्ग, दण्ड से उत्पन्न (वैश्यों की स्थिरता, तपस्वियों की वृद्धि और चोरों का नाश) तीनों वर्ग, आत्मा, देश, काल, उपाय, कार्य, सहाय और नीति (का षड्वर्ग), कर्मकाण्ड, ज्ञानकाण्ड और कृषि-वाणिज्य आदि जीविका के उपाय वर्णित हैं; इस नीतिशास्त्र में दण्डनीति, मन्त्री की निगरानी के लिए गुप्तचरों की नियुक्ति और विविध उपायों के ज्ञाता दूत की तैनाती अलग अलग हो, ये राजपुत्र के लक्षण वर्णित हैं; इसमें साम, दाम, दण्ड, भेद, उपेक्षा, मन्त्रणा, विभ्रम, मन्त्रणा की सिद्धि और असिद्धि के फल, अधम, मध्यम और उत्तम ये तीन प्रकार की सन्धियाँ (डर से की जानेवाली सन्धि हीन, सत्कारवाली मध्यम और धन-दानवाली उत्तम), चार प्रकार की यात्रा (मित्रों को बढ़ाने, अपने कोष को बढ़ाने, शत्रु के मित्रों को और उसके कोष को नष्ट करने) के समय, तीनों वर्गों का विस्तार, धर्मयुक्त विजय, अर्थ से विजय, आसुरिक विजय, मन्त्री, राष्ट्र, दुर्ग, सेना
४० और कोष इन पाँच वर्गों के त्रिविध लक्षण वर्णित हैं; इसमें आठ प्रकार की गुप्त सेना, हाथी, घोड़ा, रथ, पैदल, कुली, हरकारा, नाव और उपदेश करनेवाले ये प्रकाश्य सेना के आठ प्रकार के अङ्ग, भोजन और वस्त्र आदि में छल से—स्थावर जङ्गम—विष का प्रयोग, अभिचार, शत्रु, मित्र और उदासीन का वर्णन, यात्रा के समय ग्रह-नक्षत्र आदि के गुण, पृथिवी के गुण, मन्त्र-यन्त्र आदि द्वारा आत्मरक्षा, आश्वासन, रथ आदि तैयार करने की खोज, सिपाही, हाथी, घोड़ा, रथ और पैदलों को तैयार करने के उपाय वर्णित हैं; इसमें विविध व्यूह, विचित्र युद्धकौशल, धूमकेतु आदि क्रूर ग्रहों के उत्पात, उल्का आदि के पतन, युद्ध के ढङ्ग, भागने, अस्त्र-शस्त्रों को तीक्ष्ण करने, अस्त्रज्ञान, सैनिकों को व्यसनहीन करने, सेना को प्रसन्न रखने, पीड़ा, आपत्काल, पदातिज्ञान, बाजे के सङ्केत से कूच करने की आज्ञा देने, पताका आदि दिखलाकर शत्रुओं को डरवाने, चोर, उग्र स्वभाववाले, वनवासी, आग लगानेवाले, विष देनेवाले और वेष बदलकर प्रधान सेनापति आदि के भेद लेने का वर्णन है; इसमें वृक्ष काटने, मन्त्र-तन्त्र आदि के द्वारा हाथियों को भड़कवाने, शङ्का उत्पन्न करने, विश्वास दिलाकर और अनुरक्त मनुष्यों के
५० द्वारा शत्रु के देश को पीड़ित करने, राज्य के सात अङ्गों के ह्रास, वृद्धि और सम करने, दूतों की सहायता और अपने सामर्थ्य से राष्ट्र की वृद्धि, शत्रुओं के दल में मित्र बनाने, बलवानों को पीड़ित करने और उनके विनाश का उपाय वर्णित है; इसमें सूक्ष्म व्यवहार, दुष्टों का नाश करना, कसरत करने और हथियार चलाने का अभ्यास, द्रव्यसंग्रह, ग़रीबों का भरण-पोषण, नौकरों की देख-रेख, उचित समय पर दान, व्यसन से बचे रहना, राजा के गुण, सेनापति के गुण, तीनों वर्गों के कारण और गुण-दोष, अनेक क्रूरताएँ, नौकरों का बर्ताव, सब पर सन्देह, सावधानी, अलब्ध वस्तुओं की प्राप्ति, प्राप्त वस्तुओं की वृद्धि और बढ़े हुए धन का

सत्पात्रों को विधिवत् दान वर्णित है; इसमें यज्ञ के लिए दान, व्यसन को दूर करने के लिए अर्थ-दान, शिकार करना, जुआ खेलना, मदिरा पीना, सम्भोग ये चार प्रकार के कामज व्यसन ६० और कटु वाणी, उग्रता, सख़्ती से दण्ड देना, आत्मनिग्रह, त्याग और अर्थ-दूषण ये छः प्रकार के क्रोधज व्यसन, विविध यन्त्र और यन्त्र का काम, पर-चक्र से देश आदि का पीड़न, चिह्नों का लोप, चैत्य और अन्य वृक्षों का उच्छेदन वर्णित है; इसमें घेरा, कृषि आदि कामों में विघ्न डालना, अनेक प्रकार की सामग्री, कवच आदि, युद्ध के उपाय, पणव, आनक, शङ्ख और भेरी का संग्रह, सोना, मणि, पशु, पृथ्वी, कपड़े, दासी आदि छः प्रकार के द्रव्य का उपार्जन और परिमर्द, प्राप्त हुए राज्य में शान्ति-स्थापन, सज्जनों का आदर, विद्वानों से हेलमेल, दान और होम की विधि का ज्ञान, मङ्गल(सुवर्ण आदि)द्रव्यों का स्पर्श, शरीर को सजाना, भोज्य पदार्थों का संग्रह, आस्तिकता और एक ही मार्ग से उन्नति करना वर्णित है; इसमें सत्य, मधुर भाषण, ध्वजारोपण आदि सामाजिक उत्सव, बैठकों—चौपालों—की प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से देख-रेख, ब्राह्मणों को दण्ड न देना, युक्ति से दण्ड का विधान, नौकरों की जाति का और उनके गुण का समादर, पुरवासियों की रक्षा, राष्ट्र की वृद्धि, बारह राजाओं—चार शत्रु, मित्र और उदासीन—की चिन्ताएँ, उबटन आदि बहत्तर प्रकार की शारीरिक शुद्धता, देश, जाति और ७० कुल के धर्म वर्णित हैं; इसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के उपाय, धन की इच्छा, कृषि आदि प्रधान कामों की रीति, मायायोग, नावों को डुबाकर नदी का मार्ग रोकने और जिन-जिन उपायों से मनुष्य नीति पर आरूढ़ रहता है उन सबका वर्णन किया गया है।

नीतिशास्त्र की रचना करके ब्रह्माजी ने प्रसन्न होकर इन्द्र आदि से कहा—देवताओ, हमने संसार के उपकार और तीनों वर्गों—धर्म, अर्थ, काम—की स्थिति के लिए इस नीतिशास्त्र की रचना की है। इसके पढ़ने से दण्ड की रीति, शासन और कृपा का विषय समझ में आ जायगा। पुरुषार्थ-प्राप्ति के लिए इस जगत् का नियमन दण्ड द्वारा होता है इसलिए इसका नाम दण्डनीति है। यह शास्त्र नीति के छः गुणों का सार है। महात्मा इसका आदर करेंगे। इस शास्त्र में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सब कुछ बतलाया गया है।

महाराज, ब्रह्मा के बनाये हुए एक लाख अध्यायों के उस नीतिशास्त्र को पहले विशालाक्ष भगवान् शङ्कर ने ग्रहण किया। उन्होंने मनुष्यों की अल्प आयु को समझकर उसे, संक्षिप्त करके, ८० दस हज़ार अध्यायों में कर दिया। वह संक्षिप्त नीति-शास्त्र वैशालाक्ष नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसके बाद इन्द्र ने उसे पाँच हज़ार अध्यायों में बना दिया; उसका नाम बाहुदन्तक पड़ा। फिर बृहस्पति ने उसे संक्षिप्त करके तीन हज़ार अध्यायों में कर दिया। उसका नाम बार्हस्पत्य हो गया। अन्त को योगाचार्य शुक्राचार्य ने उस नीतिशास्त्र को संक्षिप्त करके एक हज़ार अध्यायों में बना दिया। मनुष्यों की आयु को अल्प जानकर महात्माओं के इस प्रकार उस नीतिशास्त्र

को संक्षिप्त करने पर देवताओं ने विष्णु के पास जाकर कहा—भगवन् ! बतलाइए, इस समय संसार में कौन मनुष्य श्रेष्ठ (राजा) है ? विष्णु भगवान् ने सोचकर विरजा नाम का एक मानस पुत्र उत्पन्न किया; किन्तु विरजा ने पृथिवी का राज्य करना स्वीकार नहीं किया। वह ९० विरक्त हो गया। उसके कीर्तिमान् नामक पुत्र विषय-वासना-विहीन हुआ। कीर्तिमान् ने कर्दम नाम का पुत्र उत्पन्न किया। इसने बड़ी तपस्या की। प्रजापति कर्दम के अनङ्ग नाम का पुत्र पैदा हुआ। यह राजा साधु-स्वभाव, दण्डनीति का जानकार और प्रजा की रक्षा करने में निपुण था। उससे अतिबल नाम का पुत्र पैदा हुआ। पिता के पश्चात् अतिबल राजा हुआ। यह बड़ा इन्द्रियलोलुप था। इसने मृत्यु की मानसी कन्या सुनीथा के गर्भ से वेन नाम का पुत्र पैदा किया। पिता के मरने पर वेन राज्य का अधिकारी हुआ। यह बड़ा अत्याचारी और दुष्ट था। ब्रह्मवादी महर्षियों ने इस दुष्ट राजा को, मन्त्र से पवित्र किये गये, कुशों द्वारा मार डाला। इसके बाद ऋषियों ने उसकी दाहिनी जाँघ को मथा। उससे एक नाटा सा पुरुष निकला। वह कोयले के समान काला और लाल आँखोंवाला था। ऋषियों ने उसे 'निषीद' कहकर वहीं ठहरने की आज्ञा दी। इसी से उस पुरुष के हज़ारों वंशज—पहाड़, वन और विन्ध्याचल पर रहनेवाले—क्रूर म्लेच्छगण निषाद नाम से प्रसिद्ध हुए। तब महर्षियों ने वेन के दाहिने हाथ को चीर दिया। उसमें से इन्द्र के समान सुन्दर, कवचधारी, तलवार और धनुष-बाण लिये, वेद-वेदाङ्ग का जाननेवाला, धनुर्वेद-विशारद और दण्डनीति में निपुण एक पुरुष निकला। १०० उसने हाथ जोड़कर कहा—हे तपस्वियो, मेरी बुद्धि बड़ी सूक्ष्म है। मैं धर्म और अर्थ को जानता हूँ। मेरे लिए क्या आज्ञा है ? आप लोग मुझे जो समुचित आज्ञा देंगे, मैं उसका पालन करूँगा।

देवताओं और ऋषियों ने कहा—तुम सन्देह को छोड़कर धर्म का आचरण करो। प्रिय और अप्रिय का विचार न करके सब जीवों को समान दृष्टि से देखो। काम, क्रोध, लोभ और मान को अपने पास न फटकने दो। संसार में जो कोई मनुष्य धर्म से विचलित हो जाय उसे न्यायानुसार दण्ड दो। मन, कर्म और वाणी से लौकिक तथा वैदिक धर्मों के सर्वदा पालन करने की प्रतिज्ञा

करो। दण्डनीति से काम लेकर धर्म की रक्षा करने, धाँधली न मचने देने, ब्राह्मणों को कभी दण्ड न देने और संसार में सङ्कर वर्ण न होने देने की भी तुम प्रतिज्ञा करो।

वेन के पुत्र ने कहा कि हे देवताओ और महर्षियो, ब्राह्मण तो मेरे लिए पूज्य हैं। मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा। सबने उसे विश्वास दिलाया [कि ब्राह्मण तुम्हारी सहायता करते रहेंगे]। महर्षि शुक्राचार्य उसके पुरोहित, वालखिल्य और सारस्वतगण उसके मन्त्री १० और महर्षि गर्ग उसके ज्योतिषी हुए। वेन के उस पुत्र का नाम पृथु रक्खा गया। विष्णु के शरीर से उत्पन्न विरजा आदि के वंश में यह पृथु विष्णु का आठवाँ वंशज है। इसी समय स्तुति करनेवाले सूत और मागध ये दो उत्पन्न हुए। इसके पहले स्तुति करनेवाले नहीं थे। तब पृथु ने प्रसन्न होकर सूत को अनूप देश और मागध को मगध देश दिया। पहले के मन्वन्तरों में पृथिवी बहुत ऊँची-नीची थी। पृथु ने धनुष की नोक से टीलों और चट्टानों को तोड़-फोड़कर पृथिवी को समतल कर दिया और जिन चट्टानों को उखाड़ा उन्हें एकत्र करके पहाड़ बना दिये।

इसके बाद विष्णु और इन्द्र आदि देवताओं, ऋषियों और ब्राह्मणों ने प्रजा की रक्षा के लिए पृथु का राज्याभिषेक किया। पृथिवी स्त्री का रूप धारण करके, अनेक रत्न लेकर, उनके पास आई। समुद्र, हिमाचल और इन्द्र ने उनको अक्षय धन, सुमेरु पर्वत ने सुवर्ण-राशि और यक्ष-राक्षसों के राजा कुवेर ने धर्म, अर्थ और काम की पूर्ति के लिए बहुत सा धन दिया। पृथु के इच्छा करते ही करोड़ों हाथी, घोड़े, रथ और मनुष्य पैदा हो जाते थे। उनके राज्य में १२० आधि, व्याधि, दुर्भिक्ष और बुढ़ापे का दुःख किसी को नहीं था। चोरों और साँपों का डर नहीं था। आपस में एक दूसरे का भी डर नहीं था। महाराज पृथु के समुद्र-यात्रा करते समय समुद्र का पानी स्थिर हो जाता था, पर्वत मार्ग दे देते थे। उनकी विजय सर्वत्र होती थी। उन्होंने यक्ष, राक्षस, नाग आदि जीवों के खाने के लिए सत्रह प्रकार के अन्न पृथिवी से उत्पन्न किये। उनके प्रभाव से सारा संसार धर्मपरायण हो गया। महाराज पृथु ने प्रजा को रञ्जन (प्रसन्न) करके राजा शब्द को और क्षत अर्थात् विनाश से ब्राह्मणों की रक्षा करके क्षत्रिय शब्द को यथार्थ किया था।

इस प्रकार महाराज पृथु के प्रभाव से पृथिवी धर्म से परिपूर्ण हो गई। भगवान् विष्णु ने स्वयं महाराज पृथु को यह मर्यादा दी थी कि तुमको कोई न जीत सकेगा। विष्णु ने तप के प्रभाव से राजा पृथु के शरीर में प्रविष्ट होकर उन्हें देव-तुल्य बना दिया। इसी से सारा भूमण्डल उनको नमस्कार करता था। महाराज, दण्ड नीति के अनुसार राज्य का पालन करना राजा का कर्तव्य है। वह दूतों द्वारा प्रजा की सब ख़बरें मँगाता रहे, जिससे शासन करने में सुबीता हो। शुभ कार्य करने से राजा को अवश्य ही शुभ फल मिलता है। गुणों के प्रभाव से ही प्रजा राजा के ३० वश में रहती है। [महाराज पृथु के राज्याभिषेक के समय] विष्णु के मस्तक से एक सुवर्णमय

कमल उत्पन्न हुआ था। उस कमल से धर्म की स्त्री श्री पैदा हुई। धर्म और श्री से अर्थ की उत्पत्ति हुई। इसके बाद धर्म, श्री और अर्थ ये सब महाराज पृथु के राज्य में स्थित हुए।

पुण्य के क्षीण होने पर स्वर्गलोक को त्यागकर दण्डनीति-विशारद राजा, विष्णु के अंश से, पृथिवी पर जन्म लेता है। इसी कारण राजा बुद्धिमान् और महाप्राण होता है। देवताओं ने राजा को राज्य देकर कह दिया है कि कोई तुमको जीत न सकेगा, बल्कि सभी तुम्हारे अधीन रहेंगे। राजा के पूर्वकृत पुण्य के प्रभाव से ही, राजा के ही समान हाथ पैर आदि रखनेवाले, असंख्य मनुष्य उसकी आज्ञा मानते हैं। जो मनुष्य राजा के प्रसन्न मुख का दर्शन करता है और राजा को भाग्यवान्, धनवान् और रूपवान् समझता है वह राजा के अधीन हो जाता है।

हे धर्मराज, दण्ड के प्रभाव से ही जनता में नीति और धर्म का प्रचार होता है। ब्रह्माजी ने जिस नीतिशास्त्र की रचना की है उसमें पुराण, शास्त्र, आगम, महर्षि, तीर्थ, नक्षत्र, चारों
४० आश्रम, होम-हवन, चारों वर्ण, चारों विद्याएँ, इतिहास, वेद, न्याय, तप, ज्ञान, अहिंसा, सत्य, असत्य, वृद्धों की सेवा, दान, पवित्रता, पौरुष, प्राणियों पर दया और जो कुछ पृथिवी और पाताल में है वह सब वर्णन किया गया है। इससे संसार में पण्डितों ने राजा को देवतुल्य कहा
१४५ है। महाराज, हमने तुम्हारे कहने से राजधर्म के महत्त्व का विस्तारपूर्वक वर्णन कर दिया।

साठवाँ अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से चारों वर्णों का धर्म-कहना

वैशम्पायन कहते हैं कि हे जनमेजय, अब धर्मराज युधिष्ठिर ने प्रणाम करके फिर भीष्म से पूछा—हे पितामह, सब वर्णों के साधारण धर्म कौन-कौन हैं? चारों वर्णों के अलग-अलग कौन-कौन धर्म हैं? राजा के धर्म कौन हैं और किस वर्ण के मनुष्यों को किस-किस आश्रम के ग्रहण करने का अधिकार है? राजा, राज्य, पुरवासी और नौकरों की बढ़ती किस धर्म का पालन करने से होती है? राजा को किस प्रकार के कोष, दण्ड, दुर्ग, सहायक, मन्त्री, ऋत्विक्, पुरोहित और आचार्य का परित्याग करना चाहिए? आपत्ति आ पड़ने पर राजा को किन मनुष्यों का विश्वास करना चाहिए और किन मौक़ों पर भली भाँति अपनी रक्षा करनी चाहिए?

भीष्म कहते हैं—हे युधिष्ठिर! धर्म, श्रीकृष्ण, ब्रह्मा और ब्राह्मणों को नमस्कार करके मैं सनातन धर्म का वर्णन करता हूँ। क्रोध न करना, सत्य बोलना, धन का विभाग करना, क्षमा, अपनी स्त्री में सन्तान उत्पन्न करना, पवित्रता, अहिंसा, सरलता और नौकरों का भरण-पोषण, ये नव सब वर्णों के साधारण धर्म हैं। अब ब्राह्मणों के धर्म सुनो। इन्द्रियों का दमन करना और वेदों का पढ़ना ये दो ब्राह्मणों के प्रधान धर्म हैं। शान्तस्वभाव ब्राह्मण अपने धर्म के
१० अनुसार धन पैदा करके विवाह करे, पुत्र पैदा करे तथा दान और यज्ञ करे। सज्जनों का कहना

है कि धन का विभाग करके उसका उपयोग करना चाहिए। ब्राह्मण और कुछ करे या न करे, वह वेद का पठन-पाठन करने और सदाचारी होने से ही मैत्र ब्राह्मण कहा जा सकता है।

अब क्षत्रियों के धर्म सुनो। दान और यज्ञ करना, पढ़ना और प्रजा का पालन करना क्षत्रियों के प्रधान धर्म हैं। माँगना, यज्ञ कराना और पढ़ाना उनके लिए निषिद्ध हैं। डकैतों का वध करने के लिए सदा उद्यत रहना और युद्ध में पराक्रम दिखलाना क्षत्रियों का कर्तव्य है। जो राजा यज्ञशील, शास्त्रज्ञ और विजयी होते हैं वही संसार में श्रेष्ठ कहलाते हैं। जो क्षत्रिय घाव खाये बिना युद्ध से भाग खड़ा होता है उसकी प्रशंसा समझदार लोग नहीं करते अर्थात् युद्ध से भागना क्षत्रियों के लिए अधर्म है। चोरों को मारने से बढ़कर राजा का और कोई धर्म नहीं है। दान, अध्ययन और यज्ञ से ही राजा का भला होता है इसलिए धार्म्मिक राजा को युद्ध अवश्य करना चाहिए। प्रजा को उसके धर्म में लगाकर राजा को वह उपाय करना चाहिए जिससे प्रजा अपने धर्म में शान्त भाव से लगी रहे। राजा और कुछ करे या न करे, सदाचारी होकर प्रजा की रक्षा करने से ही वह यथार्थ राजा कहलाता है। २०

अब वैश्यों का धर्म सुनो। दान, अध्ययन, यज्ञ, ईमानदारी से धन का सञ्चय करना और पुत्र के समान पशुओं का पालन करना वैश्यों का धर्म है। ब्रह्मा ने संसार की सृष्टि करके ब्राह्मणों और क्षत्रियों को मनुष्यों की रक्षा और वैश्यों को पशुओं की रक्षा का भार सौंपा है। इसलिए वैश्य लोग पशुओं का पालन करने से सुखी रहेंगे। वैश्यों को अपना निर्वाह कैसे करना चाहिए, यह बतलाता हूँ सुनो। वैश्यों को छः गायों का पालन करने पर एक गाय का दूध, सौ गायों की रक्षा करने पर साल में एक गाय और एक बैल, दूसरे से धन लेकर वाणिज्य करने पर लाभ का सातवाँ भाग, मूल्यवान् सींग और खुर का सोलहवाँ भाग तथा खेती में पैदा हुए अन्न का सातवाँ हिस्सा अपने वेतन-स्वरूप लेना चाहिए। वैश्यों को कभी पशुओं की रक्षा करने में लापरवाही न करनी चाहिए। वैश्यों के पशु-पालन-कार्य में और किसी को हस्तक्षेप न करना चाहिए।

अब शूद्रों का धर्म सुनो। ब्रह्मा ने ब्राह्मण आदि तीनों वर्णों की सेवा के लिए शूद्रों को उत्पन्न किया है, इसलिए क्रमशः तीनों वर्णों की सेवा करना ही शूद्रों का धर्म है। सेवा-धर्म का पालन करने से शूद्रों को परम सुख मिल सकता है। शूद्रों को धन का सञ्चय न करना चाहिए; क्योंकि वे धनवान् होने पर ब्राह्मण आदि ऊँची जातियों को अपने अधीन रखने का इरादा करेंगे इससे पाप के भागी होंगे। इसलिए शूद्र, भोग की इच्छा से, धन का सञ्चय न करे। हाँ, राजा की आज्ञा से किसी धार्म्मिक काम के लिए धन का सञ्चय करना उनके लिए अनुचित नहीं। अब शूद्रों की जीविका बतलाता हूँ। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को शूद्रों का भरण-पोषण करना चाहिए। उनको पुराना छाता, जूता, कपड़ा, पङ्खा और आसन आदि देना ३०

चाहिए। यह सब शूद्रों का धर्मतः प्राप्य धन है। धार्म्मिक पुरुषों का कहना है कि जब कोई शूद्र किसी ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य के पास सेवा के लिए जावे तो उनको उसकी जीविका का प्रबन्ध कर देना चाहिए। किसी शूद्र (सेवक) के पुत्र न हो तो उसके मरने पर उसका पिण्डदान मालिक को करना चाहिए और बूढ़े या कमज़ोर होने पर उसका भरण-पोषण मालिक करता रहे। मालिक पर विपत्ति पड़े तो कोई शूद्र उसका साथ न छोड़े। यदि मालिक ग़रीब हो जाय तो सेवक को, अपने परिवार को खिलाने-पिलाने से बचे हुए धन से, उसकी सहायता करनी चाहिए। शूद्रों के धन का मालिक उनका स्वामी होता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के लिए जो यज्ञ बतलाये गये हैं वे सब शूद्रों को भी करने चाहिएँ; किन्तु उनको स्वाहाकार, वषट्कार और मन्त्र का अधिकार नहीं है। इसलिए शूद्रों को व्रती न होकर वैश्वदेव और गृहशान्ति आदि शूद्रयज्ञ करना चाहिए। इन यज्ञों की दक्षिणा 'पूर्णपात्र' है। सुना जाता है कि पैजवन नाम के शूद्र ने, अमन्त्रक ऐन्द्राग्न विधि के अनुसार, दक्षिणा-स्वरूप एक लाख 'पूर्णपात्र' दान किये थे।

४० सब वर्णों के लिए जितने यज्ञ बतलाये गये हैं उनमें श्रद्धायज्ञ सबसे श्रेष्ठ है। श्रद्धा देवता-स्वरूप है। श्रद्धा से ही यज्ञ करनेवाले पवित्र होते हैं। ब्राह्मण लोग परस्पर देवता-स्वरूप हैं। वे विविध मनोरथों की सफलता के लिए अनेक प्रकार के यज्ञ करते हैं और सबको हितकर उपदेश देते हैं। इससे वे देवताओं के देवता कहलाते हैं। ब्राह्मणों से ही क्षत्रिय आदि तीनों वर्णों की उत्पत्ति हुई है, इसलिए तीनों वर्णों को यज्ञ करने का स्वाभाविक अधिकार है। ऋग्, यजु और सामवेद के जानकार ब्राह्मण लोग देवताओं के समान सबके पूज्य हैं और जो ब्राह्मण वेद नहीं जानते वे संसार के लिए विघ्न-स्वरूप हैं। मानस यज्ञ करने का सभी को अधिकार है। श्रद्धापूर्वक मानस यज्ञ करने से देवता और अन्य प्राणी उसका अंश ग्रहण करने की इच्छा करते हैं, इसलिए चारों वर्णों को श्रद्धायज्ञ करना चाहिए। ब्राह्मण तीनों वर्णों को यज्ञ करा सकता है। ब्राह्मण देवता-स्वरूप हैं और जब क्षत्रिय आदि तीनों वर्ण ब्राह्मण से ही उत्पन्न हुए हैं तब वे ब्राह्मणों के आत्मीय हैं। तत्त्व का निर्णय और वेदों का प्रचार करने के लिए सबसे पहले ब्राह्मणों की उत्पत्ति हुई है।

वानप्रस्थी मुनियों का यज्ञ पण्डितों ने इस प्रकार बतलाया है कि जितेन्द्रिय ब्राह्मण सूर्योदय के पहले या पीछे, श्रद्धा और धर्म के अनुसार, होम करे। श्रद्धा उनका प्रधान धर्म है। यज्ञ अनेक

५० प्रकार के हैं और उनके फल भी असंख्य हैं। जो ब्राह्मण उन सबको जानता और उन पर श्रद्धा रखता है वही यज्ञ करने और कराने के योग्य है। यदि चोर और पापी मनुष्य भी यज्ञ करने की अपनी स्त्री में रहै तो वह साधु कहलाता है। महर्षि उसकी प्रशंसा करते हैं। सारांश यह कि नव सब वर्णों के सोशा यज्ञ करते रहना चाहिए। तीनों लोकों में यज्ञ के समान कोई धर्म नहीं है। और वेदों का पढ़नढ़कर, श्रद्धा और पवित्रता के साथ, इच्छानुसार यथाशक्ति यज्ञ करना चाहिए।

१० अनुसार धन पैदा क

———

इकसठवाँ अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से चारों आश्रमों का धर्म कहना

भीष्म ने कहा—हे धर्मराज, अब चारों आश्रमों के नाम और कर्म बतलाता हूँ। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास ये चार आश्रम हैं। संन्यास आश्रम पर ब्राह्मणों का ही अधिकार है। मुण्डन के पश्चात् ब्राह्मण, उपनयन आदि संस्कार होने पर, वेदाध्ययन और अग्न्याधान करके तब गृहस्थ-धर्म का पालन करे। इसके बाद स्त्री समेत या अकेला वन को प्रस्थान करे। वहाँ वानप्रस्थ के नियमों को पढ़कर, ऊर्ध्वरेता होकर, ब्राह्मण ब्रह्म में लीन हो जाते हैं। ब्राह्मण लोग ब्रह्मचर्य आदि उपर्युक्त नियमों का पालन करके ऊर्ध्वरेता हो सकते हैं, इसलिए विद्वान् ब्राह्मण इन कामों को अवश्य करें। ब्रह्मचर्य को समाप्त करके ब्राह्मण का, मोक्ष की प्राप्ति के लिए, संन्यासी हो जाना भी अनुचित नहीं। इस आश्रम में सुख-दुःख-रहित, गृह-विहीन, यथोपलब्धजीवी, जितेन्द्रिय, दान्त, सब के प्रति समान दृष्टि, भोगवासना-शून्य और निर्विकार रहने से अन्त को ब्रह्मपद मिलता है। गृहस्थ आश्रम में वेदों को पढ़े, सन्तान उत्पन्न करे, सुख भोगे, अपनी स्त्री में सन्तुष्ट रहे, कपट न करे, परिमित भोजन करे और हव्य-कव्य-कार्यों को करे। कृतज्ञ, देवानुरागी, सत्यवादी, शान्तप्रकृति, दयालु, क्षमावान्, दूसरों का शुभ-चिन्तक, दान्त और दानी होना, ऋतुकाल में स्त्रीप्रसङ्ग, ब्राह्मणों को अन्नदान और अन्यान्य वेदविहित गृहस्थ-धर्मों का पालन करना चाहिए। नारायण का वचन है कि सच्चा व्यवहार, १२ अतिथि-सत्कार, धर्म-अर्थ का उपार्जन और धर्मपत्नी से अनुराग करने तथा सत्य बोलने से दोनों लोकों में सुख मिलता है। गृहस्थों को पुत्र-स्त्री का भरण-पोषण करना और वेद पढ़ना चाहिए। जो ब्राह्मण इस प्रकार नियमानुसार यज्ञ आदि करता हुआ गृहस्थ-धर्म का पालन करता है उसे स्वर्ग में शुभ फल मिलते हैं और अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है। जो ब्राह्मण दीक्षित और जितेन्द्रिय होकर देवताओं का स्मरण, मन्त्रजप, आचार्य की सेवा, गुरु को प्रणाम, वेद-वेदाङ्ग का अध्ययन, प्राणायाम ध्यान आदि षट्कर्म*, सब वासनाओं का और अधर्मियों के संसर्ग का त्याग करता है वही यथार्थ ब्रह्मचारी है। २१

बासठवाँ अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर को ब्राह्मणों का धर्म बतलाना

युधिष्ठिर ने कहा—हे पितामह! हम लोगों की भलाई के लिए हिंसा-विहीन, सज्जन-सम्मत, मङ्गलजनक सरल धर्मों का वर्णन कीजिए।

---

* प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, तर्क और समाधि।

भीष्म ने कहा—राजन्, ब्रह्मचर्य आदि चारों आश्रम ब्राह्मणों के लिए बतलाये गये हैं। क्षत्रिय आदि तीनों वर्ण उनका पालन नहीं कर सकते। क्षत्रियों के युद्ध आदि जिन धर्मों का वर्णन पहले कर चुके हैं उनका पालन करके वे स्वर्ग को प्राप्त कर सकते हैं। क्षत्रियों, वैश्यों और शूद्रों के कर्म जो ब्राह्मण करता है वह संसार में निन्दित होता और अन्त को नरक में पड़ता है। दूसरे वर्ण के कर्म करनेवाला ब्राह्मण दास, कुत्ता, भेड़िया और पशु की तरह है। जो ब्राह्मण चारों आश्रमों में प्राणायाम आदि षट्कर्म करनेवाला, धर्मात्मा, जितेन्द्रिय, विशुद्धात्मा, विचारवान् और दानी होता है वह मरने पर अक्षयलोक को जाता है। जो जिस अवस्था में, जिस देश और समय में, अच्छे-बुरे कर्म करता है उसी के अनुरूप फल उसको मिलता है। इसी से वृद्धि (सूद), कृषि, वाणिज्य और मृगया आदि सब काम वेदाभ्यास के समान माने गये हैं। मनुष्य समय के अधीन है। जैसा समय आता है वैसे ही उत्तम, मध्यम और नीच कर्मों में मनुष्यों की प्रवृत्ति हो जाती है। यद्यपि उत्तम कर्म हैं तो श्रेयस्कर, किन्तु वे भी नश्वर हैं। मनुष्य अपने कर्मों में लगा रहने से ही इस लोक और परलोक में सुख पा सकता है। ११

तिरसठवाँ अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से ब्राह्मणों का त्याज्य धर्म और क्षत्रिय आदि का धर्म कहना

भीष्म ने कहा—हे धर्मराज! धनुष की प्रत्यञ्चा खींचना, शत्रुओं का नाश करना, खेती, वाणिज्य, पशुओं का पालन और धन के लिए किसी की सेवा करना ब्राह्मणों का धर्म नहीं है। विवेकी ब्राह्मण को गृहस्थाश्रम में रहकर, प्राणायाम आदि षट्कर्म करके, कृतकृत्य होकर वानप्रस्थी होना चाहिए। वह राजसेवा, खेती, वाणिज्य, कुटिलता और परस्त्री-गमन न करे; सूद लेने का भी पेशा न करे। जो दुराचारी ब्राह्मण शूद्रागमन, नृत्य या चुग़ली करता हो या सरकारी नौकरी करता हो उस पापिष्ठ को, चाहे वह वेदों को जानता हो या न जानता हो, शूद्र के समान समझकर शूद्रों के बीच भोजन कराना और देवकार्यों से अलग रखना चाहिए। नियम-विहीन, अशुद्ध, क्रूर, हिंसक और धर्महीन ब्राह्मण को हव्य-कव्य आदि देने से कोई फल नहीं मिलता। शम-दम, पवित्रता और सरलता ब्राह्मण का नित्य धर्म है। सब आश्रमों का अधिकार ब्रह्मा ने सबसे पहले ब्राह्मणों को ही दिया है। जितेन्द्रिय, सोम पीनेवाला, सत्स्वभाव, दयालु, सहनशील, निर्लोभ, सरल, शान्तप्रकृति, अहिंसक और क्षमावान् ब्राह्मण ही यथार्थ ब्राह्मण है; पाप करनेवाला ब्राह्मण ब्राह्मण नहीं। इस लोक में शूद्र, वैश्य और क्षत्रिय की सहायता से ही धर्म की प्राप्ति हो सकती है। इसलिए इन तीनों वर्णों के शान्ति-धर्म का अवलम्बन किये विना कभी विष्णु की कृपा नहीं होती। विष्णु की प्रसन्नता के विना चारों वर्णों के धर्म, वेद, यज्ञ आदि कर्म और आश्रमों के धर्म नहीं हो सकते। १०

जो राजा अपने राज्य के निवासी ब्राह्मण, वैश्य और शूद्रों को समुचित आश्रम-धर्मों पर स्थापित करना चाहता हो उसकी जानकारी के लिए चारों आश्रमों के धर्मों का वर्णन करता हूँ। जो शूद्र तीनों वर्णों की सेवा, पुत्रोत्पादन और सदाचार से अपने धर्म का पालन करता है वह राजा की आज्ञा से संन्यास के अतिरिक्त और सब आश्रमों को ग्रहण कर सकता है। अपने धर्म में लगे हुए क्षत्रियों, वैश्यों और शूद्रों को संन्यास (= संकल्प-विकल्प न रखने) पर भी अधिकार है। राज्य का कार्य कर चुकने पर कृतकार्य वयोवृद्ध वैश्य भी, राजा की आज्ञा लेकर, आश्रमों का आश्रय ले सकता है। जो राजा वेदों और राजनीति का अध्ययन, पुत्रोत्पादन, सोमयाग, राजसूय और अश्वमेध आदि यज्ञों का अनुष्ठान, धर्म के अनुसार प्रजा का पालन, ब्राह्मणों को यथोचित दक्षिणा दान, संग्राम में विजयलाभ, अपने पुत्र का या अन्य किसी क्षत्रिय का राज्य में अभिषेक और यज्ञ द्वारा देवताओं को, श्राद्ध आदि द्वारा पितरों को और वेदाध्ययन द्वारा ऋषियों को तृप्त करके अन्त को अन्य आश्रम (संन्यास) में जाने की इच्छा करता है वह क्रमशः सब आश्रमों के धर्मों का पालन करके सिद्धि पा सकता है। गृहस्थ-धर्म को छोड़कर, ऋषि होकर, राजा जीवन की रक्षा के लिए भिक्षावृत्ति का आश्रय ले; किन्तु सेवा न करे। भिक्षावृत्ति का अवलम्बन करना क्षत्रिय आदि तीन वर्णों का काम्य धर्म है, नित्य धर्म नहीं। २०

समाज में क्षत्रियों को सबसे श्रेष्ठ कर्तव्य का पालन करना चाहिए। अन्य तीन वर्णों के धर्म और उपधर्म राजधर्म के अन्तर्गत हैं। जैसे हाथी के पाँव में सबके पाँव समा जाते हैं वैसे ही सब धर्म राजधर्म में आ जाते हैं। धर्म-वेत्ताओं ने अन्य धर्मों को अल्पाश्रित, अल्प फल देनेवाला और क्षत्रियों के धर्म को आश्रमों का सार और कल्याण का एकमात्र आधार बतलाया है। राजधर्म सब धर्मों से श्रेष्ठ है। राजधर्म से ही प्रजा का पालन होता है। दान सबसे श्रेष्ठ धर्म है और वह राजधर्म के अन्तर्गत है। राजधर्म न हो तो वेद का और सब धर्मों का नाश हो जाय। त्याग, दीक्षा, विद्या और लोक आदि राजधर्म के आश्रित माने गये हैं। राजधर्म न हो तो कोई मनुष्य अपने धर्म में स्थिर न रहे। ३०

चौंसठवाँ अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से राजधर्म की प्रशंसा में इन्द्र और मान्धाता का संवाद कहना

भीष्म ने कहा—हे युधिष्ठिर! चारों आश्रमों का धर्म, यतिधर्म तथा लौकिक और वैदिक सभी धर्म राजधर्म के प्रभाव से इस संसार में प्रतिष्ठित हैं। इस धर्म से ही प्रजा का पालन होता है। आश्रमवासियों का धर्म अप्रत्यक्ष और अनेक प्रकार का है। कुछ लोगों ने वेद-विरुद्ध शास्त्र के द्वारा क्षत्रिय-धर्म के मर्म को उलट डाला है और अनेक लोगों ने धर्म के तत्त्व का निर्णय करने में भूल की है; किन्तु क्षत्रिय-धर्म निश्छल, प्रत्यक्ष और सारे संसार का हितैषी है।

गृहस्थ-धर्म की तरह राजधर्म ब्राह्मण आदि चारों वर्णों के धर्म-साधन का मूल है। हम पहले कह चुके हैं कि बहुत से महाबली राजा 'राजधर्म श्रेष्ठ है या आश्रम-धर्म' यह पूछने के लिए नारायण के पास गये थे। ब्रह्मा ने सृष्टि के आदि में सबसे पहले साध्य, सिद्ध, वसु, रुद्र, विश्वेदेवा और १० अश्विनीकुमार आदि देवताओं को उत्पन्न करके क्षत्रिय-धर्म में प्रवृत्त किया था।

राजन्, प्राचीन समय में दानवों के बढ़ जाने से धर्म की मर्यादा का नाश हो गया था। उसी समय पराक्रमी राजा मान्धाता का जन्म हुआ। इन्होंने भगवान् विष्णु के दर्शन के लिए एक यज्ञ किया। तब विष्णु भगवान् ने इन्द्र का रूप धारण करके उनको दर्शन दिया। मान्धाता ने इन्द्ररूपी नारायण का दर्शन करके प्रसन्नचित्त से अन्य राजाओं के साथ उनकी पूजा की और प्रणाम किया। उस समय राजा मान्धाता और इन्द्ररूपी नारायण से जो बात-चीत हुई थी उसे सुनो।

इन्द्र ने कहा—महाराज, तुमने अमित-पराक्रमी देवों के देव अप्रमेय विष्णु के दर्शन की वृथा अभिलाषा क्यों की है? हम इतने दिनों से कभी उनके दर्शन नहीं कर पाये और न ब्रह्मा को ही कभी उनके दर्शन हुए हैं, तुम तो मर्त्यलोक के राजा हो। इसलिए और जो कुछ तुम्हारी इच्छा हो उसे प्रकट करो, हम सफल करेंगे। तुम सत्यवादी, धर्मात्मा, जितेन्द्रिय, पराक्रमी, दृढ़ भक्त, बुद्धिमान्, श्रद्धा और भक्ति में श्रेष्ठ हो, इसलिए विष्णु के दर्शन को छोड़कर और जो चाहो माँग लो।

मान्धाता ने कहा—भगवन्, मैं आपको प्रणाम करके कहता हूँ कि आदिदेव विष्णु के दर्शन के सिवा मुझे और कुछ न चाहिए। मैं भोग की इच्छाओं को छोड़कर वन जाने की इच्छा करता हूँ। यही सज्जन-सेवित उत्तम मार्ग है। मैंने क्षत्रिय-धर्म के द्वारा अनेक लोकों पर अधिकार करके विपुल यश प्राप्त किया है। किन्तु मैं उस श्रेष्ठ धर्म का आचरण २० करना नहीं जानता जो कि आदिदेव से प्रवृत्त हुआ है।

इन्द्र ने कहा—महाराज, जिस राजा के पास सेना नहीं है वह सरलता से क्षत्रिय-धर्म का पालन नहीं कर सकता। इस धर्म को आदिदेव विष्णु ने सबसे पहले उत्पन्न किया है। इसके बाद और-और धर्म पैदा हुए हैं। धर्म अनेक प्रकार के हैं और उनका फल नश्वर है। सब धर्म क्षत्रिय-धर्म के अन्तर्गत हैं, इसलिए यह धर्म सब धर्मों से श्रेष्ठ है। प्राचीन समय में विष्णु भगवान् ने इसी क्षत्रिय-धर्म के अनुसार शत्रुओं का नाश करके देवताओं और ऋषियों की रक्षा की थी। यदि भगवान् विष्णु असुरों का नाश न करते तो न तो ब्राह्मण रहते, न ब्रह्मा रहते, न क्षत्रिय(आदि)-धर्म रहता और न अन्यान्य धर्म रह जाते। यदि वे देवों के देव अपने पराक्रम से असुरों का संहार न कर देते तो, ब्राह्मणों का नाश हो जाने के कारण, चारों वर्णों और चारों आश्रमों का धर्म नष्ट हो गया होता। जब सब धर्म नष्टप्राय हो रहे थे तब सनातन क्षत्रिय-धर्म ने ही फिर से धर्म का प्रचार किया था। प्रत्येक युग में जो आदि-धर्म प्रवृत्त थे वे क्षात्र-धर्म की महिमा को ही प्रकट करते हैं। संग्राम में शरीर का त्याग करना, व्यावहारिक ज्ञान,

प्रजापालन और आपत्ति से छुटकारा पाना यह सब क्षत्रियधर्म के प्रभाव से ही संसार में विद्यमान हैं। मर्यादाहीन, स्वेच्छाचारी और क्रोधी मनुष्य राजा के डर से पाप-कर्म छोड़ सकता है और सदाचारी पुरुष राजा के प्रभाव से ही अपने धर्म का पालन और प्रचार कर सकता है। सारा संसार, राजधर्म के अनुसार, पुत्र के समान सुरक्षित रहकर सुख से रह सकता है। क्षत्रिय-धर्म सब धर्मों में श्रेष्ठ और सनातन है। इसी के प्रभाव से संसार नियम-बद्ध रहता है। ३०

पैंसठवाँ अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से इन्द्र-रूपी विष्णु द्वारा मान्धाता को बताया हुआ राजधर्म कहना

इन्द्र ने कहा—महाराज, असाधारण प्रभावशाली क्षत्रिय-धर्म सब धर्मों से श्रेष्ठ है। आपके समान लोकहितैषी उदार स्वभाववाले मनुष्य ही इस धर्म का पालन कर सकते हैं। यह धर्म अधर्मी मनुष्यों के हाथ पड़कर संसार का अशुभ करने लग जाता है। पृथिवी को उपजाऊ बनाना, राजसूय आदि यज्ञ करना, संन्यास न लेना, प्रजा का पालन करना और युद्ध में शरीर का त्याग करना दयालु राजा का प्रधान धर्म है। मुनियों ने त्याग (संन्यास) को श्रेष्ठ कहा है; सो राजकाज करनेवाले राजा लोग प्रत्यक्ष ही (युद्ध में) शरीर तक को होम देते हैं इसलिए यह त्याग सबसे बढ़कर है। शास्त्रज्ञान, गुरुसेवा [illegible] करने से ही राजधर्म का पालन हो सकता है। क्षत्रिय-धर्म का चाहनेवाला पुरुष गृहस्थ आश्रम में रहे। साधारण व्यवहार में तटस्थ रहना, चारों वर्णों को उनके धर्मों में लगाना, भली भाँति प्रजा का पालन करना और उत्तम उपाय, नियम तथा पुरुषार्थ का अवलम्बन करके राजा को राजधर्म की रक्षा करनी चाहिए। सब धर्मों की अपेक्षा क्षत्रिय-धर्म श्रेष्ठ है। जो अपने धर्म से विमुख होकर अन्य धर्म का आश्रय करता है उसका वह धर्म अधर्म के तुल्य है। उच्छृङ्खल, लोभी और पशु-तुल्य मूर्खों को क्षत्रिय-धर्म के प्रभाव से ही नीति की शिक्षा मिलती है। ब्राह्मणों को यज्ञ आदि कर्म करना और आश्रमों का पालन करना चाहिए। जो इसके विपरीत करने लगे उसे, शूद्र के समान, शस्त्र से मार डालना चाहिए। ब्राह्मणों को ही आश्रमधर्म और वेदधर्म का पालन करना चाहिए, दूसरों का उसमें हस्तक्षेप करना उचित नहीं। ब्राह्मण अपने धर्म के विरुद्ध आचरण न करे, नहीं तो उसकी वृत्ति न रहेगी। ब्राह्मणों के कामों से ही धर्म की वृद्धि होती है, इसलिए ब्राह्मण धर्म-स्वरूप हैं। जो ब्राह्मण अपने धर्म का त्याग कर दे उसका सम्मान और विश्वास न करना चाहिए। महाराज, जितने धर्मों का वर्णन कर आये हैं उनमें राजधर्म ही श्रेष्ठ है। इसलिए क्षत्रिय को चातुर्वर्ण्य-धर्म की रक्षा करनी चाहिए। १०

मान्धाता ने कहा—हे देवराज! यवन, किरात, गान्धार, चीन, शबर, बर्बर, शक, तुषार, कङ्क, पह्लव, अन्ध्र, मद्रक, पौण्ड्र, पुलिन्द, रमठ, काम्बोज तथा ब्राह्मण और क्षत्रिय से

उत्पन्न वैश्य और शूद्र किस प्रकार के धर्म का आचरण करें और हम लोग किस तरह इन दस्यु का आचरण करनेवालों को उनके धर्म में लगावें ? आप क्षत्रियों के हितैषी हैं, इसलिए यह सब मैं आपसे सुना चाहता हूँ। इन्द्र ने कहा—महाराज ! दस्युओं को माता, पिता, आचार्य, गुरु और राजा की सेवा करनी चाहिए। वेदोक्त धर्म का पालन, उचित समय पर पितरों का यज्ञ, कुँआ आदि का खुदवाना, पौशाला बैठाना, ब्राह्मणों को दान देना, हिंसा और २० क्रोध का त्यागना, सच बोलना, स्त्री-पुत्र-भाई आदि का भरण-पोषण करना, द्वेष न करना, सदाचारी होना, ब्राह्मणों को सब यज्ञों की दक्षिणा देना और पाकयज्ञ (रसोई) के लिए धन दान करना उन्नति के इच्छुक दस्यु लोगों का कर्म है। दूसरों के लिए जो धर्म कहे गये हैं उन्हीं धर्मों का पालन दस्यु लोगों को भी करना चाहिए।

मान्धाता ने कहा—देवराज, दस्यु लोग तो चारों वर्णों और आश्रमों में कपट वेष से रहते हैं।

इन्द्र ने कहा—महाराज ! दण्डनीति और राजधर्म का नाश होने पर सभी प्राणी, राजा की दुष्टता से, उच्छृङ्खल हो जाते हैं। सत्ययुग बीत जाने पर असंख्य मनुष्य माँगने-खाने के लिए कपट वेष धारण करके भीख माँगने लगेंगे और काम-क्रोध के वश होकर, धर्म की बातें न सुनकर, कुमार्ग पर चलने लगेंगे। जब राजा लोग, दण्डनीति के प्रभाव से पाप को दूर कर देंगे तब फिर राजधर्म का अटल राज्य हो जायगा। जो मनुष्य राजा का अपमान करता है उसके दान, होम और श्राद्ध आदि सब कुछ निष्फल हो जाते हैं। देवता भी धर्मात्मा राजा का अनादर नहीं करते। ३० भगवान् प्रजापति ने संसार की रचना करके उसके धर्म की रक्षा का भार क्षत्रियों को सौंपा है। क्षत्रिय लोग अपनी बुद्धि से धर्म के फल को पहचानते हैं, इसलिए वे मान्य हैं।

भीष्म ने कहा—महाराज, इन्द्ररूपी विष्णु यह कहकर देवताओं समेत अपने स्थान को चले गये। क्षत्रिय-धर्म सब धर्मों से श्रेष्ठ है, इसलिए कौन समझदार मनुष्य उसका अपमान करेगा ? जो मनुष्य क्षात्र धर्म की अवज्ञा करके अच्छे कर्मों को छोड़कर बुरे कर्म करता है वह, मार्ग में अन्धे मनुष्य की तरह, शीघ्र विपद्ग्रस्त हो जाता है। हे धर्मराज, तुम क्षात्र धर्म को ३५ भली भाँति जानते हो इसलिए पूर्वजों के समान इस धर्म का पालन करो।

छाछठवाँ अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से वर्णाश्रम-धर्म कहना

युधिष्ठिर ने कहा—हे पितामह, आपने पहले जिन चार आश्रमों का संक्षेप से वर्णन किया है अब उनका विस्तार से वर्णन कीजिए। भीष्म ने कहा—बेटा ! तुमने सज्जन-सम्मत धर्मों को मेरी तरह जान लिया है, अब सुनो कि राजा किस तरह सदाचारी होकर आश्रमों के फल पा सकता है। दूसरे लोग चारों आश्रमों का आश्रय करके विधिवत् धर्म का पालन करने पर

जिस फल को पाते हैं उस फल को राजा केवल राजधर्म का पालन करके पा सकता है। जो राजा स्वेच्छाचारी न होकर, द्वेष को छोड़कर, सब प्राणियों पर समान दृष्टि रखता हुआ, दण्ड-नीति से काम लेता है वह संन्यास आश्रम के फल—ब्रह्मलोक—का अधिकारी होता है। जो ज्ञानी, दानी, दण्ड देने और कृपा करने में समर्थ, सदाचारी और धीर स्वभाव का होता है वह गृहस्थ आश्रम के फल का अधिकारी होता है। जो श्रेष्ठ मनुष्यों और संन्यासी आदि धर्मात्माओं का सत्कार करता है वह ब्रह्मचर्य आश्रम का फल पाता है। जो आपत्ति से ग्रस्त जाति-वालों, सम्बन्धियों और मित्रों की सहायता करता है तथा जो नित्यकर्म, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ और मनुष्ययज्ञ करता तथा धन से अतिथियों का सत्कार करता है और अच्छे लोगों की रक्षा के लिए दूसरे देशों पर आक्रमण करता है वह वानप्रस्थ आश्रम का फल पाता है। जो राजा १२ अपने राष्ट्र की रक्षा, प्रजा का पालन और विविध यज्ञ करता है उसे संन्यास आश्रम का फल मिलता है। प्रतिदिन वेद का पाठ, क्षमा का बर्ताव, आचार्य का सत्कार और उपाध्याय की सेवा तथा नित्यकर्म, जप और देवपूजा जो राजा करता है उसे संन्यास आश्रम का फल मिलता है। जो राजा अपने प्राणों की परवा न करके सबके साथ सरल व्यवहार करता है वह संन्यास आश्रम का फल पाता है। जो राजा वेदों के जाननेवालों और वानप्रस्थी ब्राह्मणों को बहुत अधिक धन देता है उसे वानप्रस्थ आश्रम का फल मिलता है। जो राजा सब प्राणियों पर दया और सब के साथ अहिंसा का बर्ताव करता है उसे सब पुण्यों का फल मिलता है। जो राजा २० उत्पीड़ित और शरणागत मनुष्य को आश्रय देता है और स्थावर-जंगम आदि सभी जीवों की रक्षा तथा योग्य पुरुषों का यथोचित सत्कार करता है वह गृहस्थ आश्रम का फल पाता है। जो राजा बड़े और मँझले भाई की स्त्री, भाई, पुत्र और नाती आदि को दण्ड देता तथा उन पर कृपा करता है उसे गृहस्थ-धर्म का फल मिलता है। जो राजा सच्चरित पूज्य पुरुषों की रक्षा करता और घर आये हुए अतिथियों को भोजन कराता है वह गृहस्थ आश्रम का फल पाता है। जो विधाता के बनाये हुए धर्म का यथायोग्य पालन करता है उसे सब आश्रमों का फल मिलता है। वास्तव में गुणी राजा ही आश्रमी कहलाता है। जो राजा स्थान, कुल और आयु के सम्मान की रक्षा किया करता है उसे सब आश्रमों का फल मिलता है। देशधर्म और कुलधर्म का पालन करनेवाला राजा सब आश्रमों के फल का भागी होता है। लोगों को जो राजा समय-समय पर धन आदि भेंट किया करता है और संकट में पड़कर भी धर्म को नहीं छोड़ता ३० तथा प्रजा के धर्म की रक्षा करता है वह सब आश्रमों के योग्य है। धर्म के अनुसार प्रजा का पालन करने से राजा को प्रजा के किये हुए धर्म का अंश मिलता है और धार्मिक प्रजा का भली भाँति पालन न करने पर राजा को प्रजा के अधर्म का फल भोगना पड़ता है। जो लोग राजा की सहायता करते हैं वे भी प्रजा के धर्म-अधर्म का अंश पाते हैं। पण्डितों ने गृहस्थ-

धर्म को सब धर्मों से पवित्र बतलाया है। मैं इसी धर्म का आचरण करता हूँ। जो राजा सब प्राणियों को अपनी आत्मा के समान जानता है और क्रोध का त्याग करके न्याय के अनुसार दण्ड देता है वह इस लोक और परलोक में सुख पाता है। जिस राजा की राजधर्म-रूपी नौका सत्त्व-रूप कर्णधार, धर्मशास्त्र-रूपी रस्सी और त्याग-रूप वायु से चलाई जाती है वह नौका धार्मिक राजा का उद्धार करती है। जब राजा विषयवासनाओं को छोड़ देता है तब सत्त्व वृत्ति में स्थित होकर ब्रह्म की प्राप्ति का अधिकारी हो जाता है। हे धर्मराज, तुम प्रसन्न चित्त से सावधान होकर प्रजा की रक्षा किया करो। इसी से धर्म का उपार्जन कर सकोगे। इस ४० समय विद्वान् सदाचारी ब्राह्मणों और अन्य प्रजा का पालन करना ही तुमको उचित है। दूसरे लोग वानप्रस्थ आदि आश्रमों का आश्रय करके जिस धर्म को प्राप्त करते हैं, उसका सौ गुना धर्म राजा को केवल प्रजा का पालन करने से मिल सकता है। हे धर्मराज, मैंने तुमसे इन अनेक धर्मों का वर्णन किया है। अब तुम पूर्वजों से, परम्परा द्वारा, प्राप्त सनातन धर्म का पालन करो। धर्म के अनुसार प्रजा का पालन करने से ही तुम चारों वर्णों और चारों ४३ आश्रमों के धर्म को पा सकोगे।

सड़सठवाँ अध्याय

भीष्म का अराजकता के दोषों का निरूपण करना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह! आपने चारों वर्णों और चारों आश्रमों के धर्मों का तो वर्णन किया, अब प्रजा का कर्तव्य भी बतलाइए।

भीष्म ने कहा—धर्मराज, प्रजा को सबसे पहले राजा का राज्याभिषेक करना चाहिए। अराजक और बल-विहीन होने से राज्य में डाकुओं का उपद्रव होने लगता है। वहाँ धर्म नाम लेने तक को नहीं रह जाता। प्रजा आपस में झगड़ने लगती है। शास्त्र में राजा को इन्द्र कहा गया है, अतएव अपनी भलाई चाहनेवाली प्रजा को इन्द्र के समान राजा की पूजा करनी चाहिए। अराजक राज्य में अग्निदेव हवि को ग्रहण नहीं करते। मेरी राय में तो अराजक राज्य में रहना ही न चाहिए। अराजकता से बढ़कर पापजनक और कुछ नहीं है। अराजकता के समय यदि कोई बलवान् शत्रु राज्य पर आक्रमण कर दे तो प्रजा उसका सम्मान करे; क्योंकि प्रजा से सम्मानित होकर वह राज्य का भला कर सकता है। अगर प्रजा उसका सम्मान न करेगी तो वह कुपित होकर राज्य को चौपट कर डालेगा। देखो, जो गाय मुश्किल से दुहने देती है वह बहुत क्लेश पाती है और जो आसानी से दुहने देती है वह रत्ती भर भी दुःख नहीं पाती। जो वस्तु बिना तपाये झुक जाती है वह तपाई नहीं जाती और जो वृक्ष स्वयं नम्र है वह

काटा-छाँटा नहीं जाता। इसलिए बलवान् के सामने हमेशा झुकना चाहिए। बलवान् को प्रणाम करना इन्द्र को प्रणाम करने के समान है। १०

अपना भला चाहनेवाली प्रजा को राजा की संरक्षकता में रहना चाहिए। अराजकता में न तो कोई मनुष्य बेखटके स्त्री का सुख पा सकता है और न धन का उपभोग ही कर सकता है। जब दुष्ट लोग दूसरों का धन हरते हैं तब तो वे बहुत प्रसन्न होते हैं; किन्तु जब उनका धन दूसरे छीन लेते हैं तब वे राजा की सहायता चाहते हैं। अराजकता में पापियों को भी चैन नहीं मिलता। दो आदमी मिलकर एक का और कई एक मिलकर दो आदमियों का धन हरते हैं। बलवान् मनुष्य निर्बल को दास बना लेता है और दूसरे की स्त्रियाँ छीन लेता है।

हे धर्मराज, इन उत्पातों से बचाने के लिए ही देवताओं ने राजा को बनाया है। यदि दण्ड देनेवाला राजा न हो तो जिस तरह बड़ी मछली छोटी मछलियों को खा लेती है उसी तरह बलवान् मनुष्य दुर्बलों को खा जावे।

प्राचीन समय में पृथिवी पर राजा के न होने से लोग एक दूसरे को सताने लगे थे। तब कुछ धर्मात्माओं ने यह नियम बना दिया कि जो मनुष्य कटुवादी, उग्रस्वभाव, व्यभिचारी और चोर होगा उसे हम लोग त्याग देंगे। सब वर्णों के विश्वास के लिए प्रजागण कुछ दिनों तक इस नियम का पालन करके अन्त को बहुत दुखी होकर लोक-पितामह ब्रह्मा के पास गये और उनसे बोले—भगवन्, राजा के न होने से हम लोग नष्ट हुए जा रहे हैं। इसलिए आप हम लोगों को एक राजा दीजिए। हम सब उसका आदर करेंगे और वह हमारी रक्षा करेगा। २०

यह सुनकर ब्रह्माजी ने उनकी रक्षा के लिए मनु को आज्ञा दी। उसे स्वीकार न करके मनु ने कहा—मैं पाप से बहुत डरता हूँ। शासन करना, विशेषकर मिथ्याचारी मनुष्यों को उनके धर्म में लगाना, बहुत कठिन है। पितामह कहते हैं कि तब प्रजा ने मनु से कहा—प्रभो, आप डरिए नहीं। आपको पाप नहीं लगेगा; पाप का भागी तो पापी ही होगा। हम लोग आपका कोप

बढ़ाने के लिए पशुओं का और सुवर्ण का पचासवाँ हिस्सा तथा अन्न का दसवाँ हिस्सा देंगे। रुपया देकर कई लोग जहाँ सुन्दरी कन्या के साथ विवाह करने को प्रस्तुत होंगे वहाँ आपको ही मौक़ा दिया जायगा। जैसे इन्द्र के पीछे देवता चलते हैं वैसे ही, आवश्यकता पड़ने पर, अस्त्र-शस्त्र का प्रयोग करनेवाले लोग आपका साथ देंगे। इससे आप महाबली और प्रतापवान् होकर, देवताओं को कुबेर के समान, बड़े सुख से हम लोगों का पालन कर सकेंगे। आपके पराक्रम से रक्षित होकर हम लोग जो धर्म करेंगे उसका चौथा हिस्सा आपको मिलेगा। अतएव सब सुबीता पाकर हम लोगों का पालन, इन्द्र के समान, कीजिए। शत्रुओं को, सूर्य की तरह, पीड़ित करके विजय के लिए निकलिए। आपके प्रभाव से शत्रुओं का दर्प चूर्ण होगा।

प्रजा के ऐसा कहने पर कुलीन महातेजस्वी मनु, असंख्य सैनिकों के साथ, उनकी रक्षा के लिए तैयार हो गये। ३० इन्द्र का सा मनु का महत्त्व देखकर डर के मारे सब प्रजा अपने-अपने धर्म में लग गई। इस प्रकार महाराज मनु पापों को शान्त करते हुए प्रजा को अपने-अपने कर्म में लगाकर राज्य करने लगे।

हे धर्मराज, संसार में जो लोग भला चाहते हों उन्हें सबसे पहले राजा का आश्रय करना चाहिए। जिस तरह देवता लोग इन्द्र को और शिष्यगण गुरु को प्रणाम करते हैं उसी तरह प्रजा भक्तिपूर्वक राजा का आदर करे। संसार में जो मनुष्य अपने लोगों से आदर पाता है वह शत्रुओं से भी सम्मानित होता है और जो मनुष्य आत्मीयों द्वारा अपमानित होता है उसका तिरस्कार शत्रु भी करते हैं और इससे प्रजा को बहुत दुःख उठाने पड़ते हैं। इसलिए राजा को छत्र, वाहन, वस्त्र, आभूषण, अन्न, पेय पदार्थ, घर, शय्या और आसन आदि व्यवहार में लाने योग्य चीज़ें देना प्रजा का कर्तव्य है। इससे राजा दुर्धर्ष हो उठेगा। हमेशा सबसे हँसकर मीठी बातें करेगा, कृतज्ञ ३९ रहेगा, अनुरागी तथा जितेन्द्रिय होगा और प्रजा की भली भाँति देख-रेख रक्खेगा।

अड़सठवाँ अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से, वसुमना के प्रति बृहस्पति द्वारा कहे हुए, राजा के गुणों का वर्णन करना

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, ब्राह्मणों ने राजा को देवतुल्य क्यों कहा है? भीष्म ने कहा—बेटा, महाराज वसुमना के पूछने पर बृहस्पति ने जो उत्तर दिया था वह प्राचीन इतिहास सुनो। एक बार सर्वलोक-हितैषी बुद्धिमान् कोशलराज वसुमना ने अनुभवी बृहस्पति के पास जाकर, प्रणाम और प्रदक्षिणा करके, प्रजा के सुख की इच्छा करते हुए कहा—भगवन्, किस कर्म के करने से प्रजा की वृद्धि और किस कारण उसकी घटती होती है तथा बुद्धिमान् मनुष्य किसकी सेवा करने से अपार सुख पा सकते हैं?

यह सुनकर बृहस्पति ने कहा—महाराज, राजा सब धर्मों की जड़ है। राजा के ही भय से प्रजा परस्पर झगड़ा नहीं करती है। राजा मर्यादाहीन और परदार-रत मनुष्यों को, धर्म के अनुसार दण्ड देकर, पाप से बचाता है। जिस प्रकार सूर्य और चन्द्रमा का उदय न होने से सारे संसार में घोर अन्धकार हो जाता है और जैसे थोड़े जल में मछलियाँ और जहाँ हिंसक जीव नहीं हैं ऐसे स्थान में चिड़ियाँ स्वतन्त्र होकर एक दूसरे पर आक्रमण करके शीघ्र नष्ट हो जाती हैं वैसे ही राजा के न होने पर प्रजा घोर पाप करके गोपालहीन पशुओं की तरह चौपट हो जाती है। यदि राजा राज्य का पालन न करता तो बलवान् मनुष्य दुर्बलों के घर आदि छीन लेते। कोई भी अपनी स्त्री, पुत्र, अन्न, धन आदि को अपने अधीन न रख सकता। दुष्ट लोग एकाएक दूसरों की सवारी, कपड़े, गहने और विविध रत्न हर लेते। धार्मिक पुरुषों की मार-काट होती, राज्य में अधर्म ही अधर्म हुआ करता। अधम लोग पिता, माता, वृद्ध, आचार्य, गुरु और अतिथियों को कष्ट देते और उनका संहार कर डालते। धनवान् लोग सर्वदा हत्या और बन्धन के क्लेश में पड़े रहते। किसी को किसी वस्तु पर ममता न रह जाती। अकाल में ही सबका नाश हो जाता। सब जगह डाकुओं का दौरदौरा रहता और सारी प्रजा घोर नरक में पड़ जाती। व्यभिचार का विचार और कृषि-वाणिज्य का नियम नष्ट हो जाता। धर्म, वेदाध्ययन, विधिवत् दक्षिणा सहित यज्ञ, विवाह की प्रथा और समाज के बन्धन नष्ट हो जाते। साँड़ गायों को गाभिन न करते और मथानी की आवाज़ न सुनाई देती। अहीरों का नाम-निशान मिट जाता। सब प्राणी घबरा जाते और डरकर हाहाकार करते हुए मौत के मुँह में चले जाते। वार्षिक यज्ञ निर्विघ्न विधिपूर्वक न हो पाते। व्रती ब्राह्मण वेद न पढ़ते। अनेक बन्धनों के कारण कोई धर्म-कर्म न कर पाता। मनुष्य बेधड़क अपराध किया करते। बलवान् मनुष्य दुर्बलों के हाथ से उनकी वस्तुएँ छीन लेते और सब नियमों का उल्लंघन करते। लोग डरकर इधर-उधर भागने लगते; नीति न रहती; सर्वत्र दुर्भिक्ष पड़ने और वर्णसंकर होने लगता।

१६

२०

नियमानुसार राजा के रक्षा करने पर प्रजा के लोग, घर के किवाड़े खुले रखकर, बेखटके सोते हैं। हाथा-पाई की तो बात ही क्या, कोई गाली-गलौज तक नहीं सहता। स्त्री और पुरुष गहने पहनकर, पहरेदार के बिना ही, रास्ते में चल सकते हैं। सब लोग धर्मात्मा और अहिंसक होकर परस्पर हिल-मिलकर रह सकते हैं। ब्राह्मण आदि तीनों वर्ण अनेक महायज्ञ और विद्या-भ्यास कर सकते हैं। संसार को जीविका चाहिए और वह यज्ञ-याग आदि क्रिया से होनेवाली खेती पर अवलम्बित है; यह सब काम राजा के सुशासन से होता है। राजा के जीवन से प्रजा जीवित रह सकती है और राजा के नष्ट हो जाने से प्रजा का नाश हो जाता है। अतएव राजा का सम्मान सबको करना चाहिए। जो व्यक्ति राज-काज करता हुआ संसार के हितकर काम करता है वही दोनों लोकों में विजयी होता है। जो मनुष्य मन से भी राजा का अनिष्ट चाहता

३०

है वह संसार में दुःख पाकर अन्त को नरकगामी होता है। नरपति देवता के समान है अत-
४० एव मनुष्य समझकर कभी उसका अपमान न करना चाहिए। राजा समय पड़ने पर अग्नि,
सूर्य, मृत्यु, कुबेर और यम का रूप धारण कर सकता है। जब वह मिथ्या वाक्यों से ठगा
जाने पर अपने तेज के प्रभाव से मिथ्यावादी पापियों को जलाता है तब अग्निरूप है; जब गुप्तचरों
द्वारा प्रजा के कार्य-अकार्य को देखकर उनके कल्याण का उपाय सोचता है तब वह सूर्यरूप है;
जब कुपित होकर अधर्मी मनुष्यों का पुत्र-पौत्र और भाई-बन्धुओं समेत विनाश करता है तब वह
मृत्यु-रूप है; जब तीक्ष्ण दण्ड से अधर्मियों को दण्ड देता और धर्मात्माओं पर कृपा करता है
तब वह यम-रूप है और जब धन देकर उपकारी लोगों को सन्तुष्ट करता तथा अपकारियों का
धन छीन लेता है अर्थात् किसी को धन देता और किसी से ले लेता है तब वह कुबेर-रूप है।
बुद्धिमान् धर्मात्मा पुरुषों को राजा की बुराई न करनी चाहिए। राजा के साथ प्रतिकूल बर्ताव
करने पर राजा के पुत्र, भाई और मित्र आदि को भी सुख नहीं मिल सकता। हवा की
सहायता से जली हुई आग में वस्तु का कुछ अंश चाहे बच भी जाय किन्तु राजा के कोपानल
५० में पड़ने से चिह्न भी नहीं रह जाता। राजा जिन वस्तुओं की रक्षा करता है उनके लेने का
उपाय न करे। जैसे सब प्राणी मृत्यु से डरते हैं वैसे ही राजा की वस्तुओं के चुराने से डरते
रहना चाहिए। जाल में फँसकर जैसे मृग मर जाता है वैसे ही राजा का धन चुराने से
तुरन्त मृत्यु की सम्भावना रहती है। बुद्धिमान् मनुष्य को अपने धन के समान ही राजा के
धन की रक्षा करनी चाहिए। जो मनुष्य राजा का धन चुराता है वह बहुत समय तक घोर
नरक में सड़ता है। जो राजा श्रीमान्, सम्राट्, प्रजारञ्जक, रक्षा करनेवाला, भूपति और
नरपति आदि शब्दों से सम्मानित किया जाता है उसकी पूजा कौन मनुष्य न करेगा? इस-
लिए मेधावी, प्रतिभाशाली, जितेन्द्रिय, बुद्धिमान् और उन्नति चाहनेवाले मनुष्य को राजा का
आश्रय लेना चाहिए। जो मन्त्री कृतज्ञ, बुद्धिमान्, उदार, भक्त, जितेन्द्रिय, नीतिज्ञ, धर्मात्मा
और अच्छी सलाह देनेवाला हो उसका राजा आदर करे। जो मनुष्य बुद्धिमान्, सदाचारी,
बलवान्, कर्मवीर और अपने बल-बूते पर काम करनेवाला हो, उसी से राजा सहायता ले।
बुद्धि मनुष्य को प्रभावशाली बनाती है और राजा मनुष्य को क्षीण कर देता है। जो मनुष्य
राजा के कोप में पड़ता है वह हमेशा दुखी और जो राजा का अनुगृहीत होता है वह परम
सुखी रहता है। राजा प्रजा का हृदय, गुरु, परम सुख और उसकी गति है। प्रजा उसका
आश्रय करके इस लोक और परलोक में सुखी रहती है। अनेक यज्ञ, इन्द्रिय-दमन, सचाई
और हित से शासन करनेवाला राजा देवलोक को जाता है। बृहस्पति से यह उपदेश पाकर
६१ कोशलनरेश वसुसना भली भाँति प्रजा का पालन करने लगे।

उनहत्तरवाँ अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से राजनीति का वर्णन करना

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, राजा का विशेष कर्त्तव्य क्या है ? वह किस तरह राज्य की रक्षा, शत्रुओं पर विजय और गुप्तचरों की नियुक्ति करे और स्त्री, पुत्र, नौकर तथा चारों वर्णों के मनुष्यों को किस प्रकार विश्वास दिलावे ?

भीष्म ने कहा—महाराज, राजा और उसके प्रतिनिधि का जो कर्त्तव्य है उसे ध्यान देकर सुनो। राजा पहले अपने मन को जीत ले तब शत्रुओं का पराजय करे। अपना मन जीते विना शत्रुओं को परास्त करना कैसे सम्भव है ? ज्ञानेन्द्रियों को जीत लेने से मन जीता जा सकता है। दुर्ग, राज्य की सीमा, नगर के और घर के बग़ीचे, बैठने के स्थान (चौपालें आदि), अन्तःपुर, नगर और राज-भवन की रक्षा के लिए राजा पैदल सेना नियुक्त करे। अन्धे, बहरे और जड़ मनुष्यों के समान रहनेवाले, भूख-प्यास और परिश्रम के सहनेवाले, बुद्धिमान्, जँचे हुए गुप्तचरों के द्वारा मन्त्री, मित्र, पुत्र, सामन्त, नगर और देश के निवासियों के आचार-व्यवहार की देख-रेख रक्खे। गुप्तचरों को आपस में भी पता न चले कि कौन गुप्तचर है और कौन नहीं। शत्रुओं ने हमारे राज्य में गुप्तचरों को तो नहीं भेजा, इसकी जाँच के लिए अखाड़ा, बाज़ार, सभा, नगर के और बाहर के बग़ीचे, प्रसिद्ध स्थान, अधिकारियों के बैठने के स्थान, राज-सभा और बड़े-बड़े स्थानों में तथा भिखारियों के बीच गुप्तचरों को तैनात करे। पहले से ही शत्रुपक्ष के गुप्तचरों का पता लगाते रहना राजा के लिए अधिक हितकर है। राजा जब अपने को निर्बल समझे तब मन्त्रियों से सलाह करके बलवान् शत्रु के साथ सन्धि कर ले। अपने को सबल समझने पर भी जिसके साथ सन्धि करने से कुछ लाभ की सम्भावना हो उसके साथ अवश्य सन्धि कर ले। गुणवान्, उत्साही, धर्मज्ञ और सच्चरित्र मनुष्यों के साथ सन्धि करके राजा धर्म के अनुसार राज्य की रक्षा करे। अपना विनाश होते देख बुद्धिमान् राजा को अपने विरोधियों और देश के विद्वेषियों का नाश करना और जो उपकार तथा अपकार कुछ भी नहीं कर सकते उनकी उपेक्षा करनी चाहिए। बहुत सी सेना और रसद का संग्रह करके दुर्बल, मित्रहीन, बन्धुहीन, असावधान और दूसरे के साथ युद्ध में फँसे हुए राजा पर सहसा चढ़ाई कर देनी चाहिए। चढ़ाई करने के पहले अपने नगर की रक्षा का प्रबन्ध कर ले। निर्बल राजा को भी किसी बलवान् राजा के अधीन न रहना चाहिए। निर्बल राजा नौकरों के द्वारा बलवान् के राज्य में उपद्रव करावे। शस्त्र, आग और विष के प्रयोग से उसके राज्य को पीड़ित करे और उसके मन्त्री तथा भाई-बन्धुओं के बीच झगड़ा पैदा करा दे। बृहस्पति का वचन है कि राज्य चाहनेवाले बुद्धिमान् राजा को यदि साम, दान और भेद के द्वारा सफलता मिल जाय तो वह युद्ध न करे। इन तीनों उपायों द्वारा सफलता होने से ही

समझदार लोग सन्तुष्ट होते हैं। प्रजा की रक्षा के लिए उसके उपार्जित धन का छठा हिस्सा राजा लिया करे। अपराधी उद्दण्ड मनुष्यों से, उनके अपराध के अनुसार, जुर्माना वसूल करके राज्य के उपद्रवों को शान्त करे। प्रजा का पालन राजा पुत्र-पौत्र के समान करे। न्याय के समय किसी के प्रति दया या पक्षपात न करे। वादी और प्रतिवादी लोगों की बातें सुनने के लिए राजा अनुभवी बुद्धिमानों को नियुक्त करे। ऐसा करने से राज्य चिरस्थायी होता है। राजा सोने आदि की और नमक की खान पर, अन्न आदि के बाज़ारों पर, नदियों को पार करने के स्थानों (घाटों) पर और हाथियों के दल पर—आय-व्यय की देख-रेख के लिए—मन्त्री या विश्वासपात्र पुरुषों को नियुक्त करे। जो राजा हमेशा न्याय के अनुसार दण्ड देता रहता है वही धर्मात्मा है। दण्ड देना ही राजा का सच्चा और प्रशंसनीय
३० धर्म है। राजा को वेद-वेदाङ्ग का जानकार, बुद्धिमान्, तपस्वी, दानी और यज्ञशील होना चाहिए। व्यवहार-शून्य राजा को न तो स्वर्ग मिलता है और न यश। यदि बलवान् राजा चढ़ाई करे तो दुर्ग का आश्रय लेना चाहिए और मित्रों की रक्षा करके सन्धि, भेद या युद्ध करना चाहिए। उस समय वनवासियों को राजमार्गों पर नियुक्त करे और गाँव के रहनेवालों को बड़े क़सबों में ले जाकर बसावे। देशवासी धनिकों और प्रधान सैनिकों को बार-बार दिलासा देकर सुरक्षित क़िलों में रक्खे। राज्य का सब अन्न क़िलों में रख दे और यदि क़िलों में न ले जा सके तो आग में जला दे। जो अन्न खेतों में हो उसका प्रलोभन देकर शत्रु की सेना में भेद डाल दे अथवा अपनी सेना के द्वारा उसे नष्ट करा दे। नदियों के पुल तुड़वा दे और तालाब आदि जलाशयों का पानी निकलवा दे। यदि कुएँ आदि का पानी निकलवाया न जा सकता हो तो उसे विष डलवाकर दूषित करा दे। ऐसे समय में, मित्रों की रक्षा करना आवश्यक होने पर भी उनको त्यागकर शत्रु के शत्रु निकटवर्ती बलवान् राजा का आश्रय लेना
४० चाहिए। छोटे-छोटे क़िलों को, शत्रु के उपयोग में न आने देने के लिए, तुड़वा दे। बड़े वृक्षों की डालियों को और छोटे-छोटे वृक्षों को कटवा दे। चैत्य वृक्षों को कटवाना तो दूर, उनका पत्ता भी न तोड़े। क़िले के ऊपर 'प्रगण्डियाँ' बनवावे जिन पर से बाहर से आते हुए आदमी देखे जा सकें। गोलियाँ और तीर चलाने के लिए क़िलों में ऐसे छेद बनवा दे जिनमें से योद्धा, रक्षित रहकर, शत्रु पर वार कर सकें। खाई में ख़ूब पानी रहना चाहिए और उसमें घड़ियाल, मगर आदि जल-जन्तु और शूल भी हों। हवा आने-जाने के लिए क़िले के और नगर के चारों ओर छोटे-छोटे दरवाज़े हों। द्वार की भाँति ही उनकी भी रक्षा का प्रबन्ध हो। द्वार पर पहरा बैठाकर बड़ी-बड़ी तोपें आदि मज़बूत यन्त्र लगा दे। लकड़ियाँ इकट्ठी करावे, कुएँ खुदवावे और पुराने कुओं की मरम्मत कराकर उन्हें साफ़ करावे जिससे पानी साफ़ रहे। जिन घरों में घास-फूस जम गया है उनकी सफ़ाई करावे। आग लग जाने के डर से

चैत के महीने में कहीं घास-फूस न रहने दे। रात को भोजन बनवावे। अग्निहोत्र के सिवा दिन में कहीं आग न जलाई जावे। लोहारों के यहाँ और सूतिकालयों में सावधानी से आग जलाने की आज्ञा रहे। वहाँ आग ख़ूब ढकी रहनी चाहिए। 'दिन में आग जलानेवाले को प्राणदण्ड दिया जायगा' यह आज्ञा राज्य भर में, नगर की रक्षा के लिए, घोषित कर दे। भिख-मंगे, किराये से गाड़ी चलानेवाले, मतवाले, हिजड़े और कत्थक आदि नाचने-गानेवालों को नगर से निकाल देना चाहिए। नगर में इन लोगों के रहने से अनिष्ट होने की आशंका रहती है। ५०

बैठने की जगहों (चौपालों), पवित्र स्थानों और प्रधान मनुष्यों के घरों पर गुप्तचर नियुक्त कर दिये जायँ। राज्य में बड़ी-बड़ी सड़कें, पौशाला, बाज़ार, भाण्डागार, आयुधा-गार, अश्वशाला, गजशाला, सेना के रहने के लिए छावनी, परिखा, गलियाँ और घर में फुल-वाड़ी बनवाकर इनकी निगरानी करे। धन, तेल, चरबी, शहद, घी, सब ओषधियाँ, अङ्गार, कुश, मूँज, बाण, लेखक, घास, ईंधन, विष से बुझे बाण, शक्ति, ऋष्टि और प्रास आदि अस्त्र-शस्त्र, कवच, फल-मूल, (विष-चिकित्सक, जर्राह, रोगचिकित्सक, ओझा) चारों प्रकार के वैद्य और नगर की शोभा बढ़ाने के लिए नट, नाचनेवाले, जादूगर और पहलवानों को इकट्ठा करके रखना चाहिए। जिस नौकर, मन्त्री, पुरवासी और दूसरे राजा से किसी प्रकार की आशंका हो उसे क़ैद कर ले। कोई उपकार करे तो राजा उसे धन आदि और धन्यवाद देकर प्रसन्न करे। शास्त्र की आज्ञा है कि राजा यदि अनुचित क्रोध करके किसी को सतावे या मार डाले तो दान-मान द्वारा [उसके घरवालों से] समझौता कर ले। ६०

हे धर्मराज! राजा, मन्त्री, कोष, दण्ड, मित्र, देश और नगर ये सात राज्य के अङ्ग हैं। राज्य के इन सातों अङ्गों की रक्षा करना बहुत ज़रूरी है। जो राजा छहों गुण, तीनों वर्ग और मोक्ष के विषय को भली भाँति जानता है वही राज्य का भोग करने योग्य है। छः गुण ये हैं,—सन्धि करके स्थिर रहना, युद्ध के लिए प्रस्थान करना, शत्रु को डराने के लिए युद्ध की तैयारी करना, चढ़ाई कर देना, द्वैधीभाव अर्थात् शत्रु से और दूसरों के साथ भी सन्धि करना, और (क़िले का या किसी बलवान् राजा का) आश्रय लेना। नाश, स्थिति और वृद्धि इन तीनों का नाम त्रिवर्ग है। धर्म, अर्थ और काम को भी त्रिवर्ग कहते हैं। धर्म का अवलम्बन करने से राजा बहुत दिनों तक पृथिवी का पालन कर सकता है। इस विषय में बृहस्पति का मत सुनो। राजा अपने कर्मों को करता हुआ राज्य का पालन करके परलोक में सुखी होता है। जो राजा भली भाँति प्रजा का पालन करता है उस धर्मात्मा को तप और यज्ञ करने की कुछ आवश्यकता नहीं। ७०

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह! दण्डनीति और राजा का कैसा सम्बन्ध है और किससे, किसका, क्या लाभ होता है?

भीष्म ने कहा—धर्मराज, दण्डनीति से राजा और प्रजा का जो लाभ होता है उसे सुनो। राजा के द्वारा नियमानुसार दण्डनीति का प्रयोग होने से चारों वर्ण नियमावलम्बी, निडर, अपने-अपने धर्म में स्थित और अधर्म से अलग रहते हैं। दण्डनीति के प्रयोग से ही ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य अपने-अपने धर्म का पालन करते हैं। इसी से प्रजा सुखी रहती है और राजा को भी स्वर्ग मिलता है। स्वास्थ्य की रक्षा करने से तीनों वर्ण सुखी रहते हैं।

काल राजा का कारण है या राजा काल का कारण है, इस विषय में तुम ज़रा भी सन्देह न करो। राजा ही काल का कारण है। जब राजा दण्डनीति के अनुसार अच्छे ढँग से प्रजा का पालन करता है तभी सत्ययुग हो जाता है। उस समय धर्म ही रह जाता है, अधर्म का नाम भी नहीं रहता। चारों वर्ण धर्म में लगे रहते हैं। प्रजा सब तरह से सुखी रहती है। उसको अलब्ध वस्तुएँ मिलती हैं और प्राप्त वस्तुओं की वृद्धि होती है। वैदिक कर्म निर्दोष हो जाते हैं। वसन्त आदि ऋतुएँ दोषहीन और सुख देनेवाली होती हैं। मनुष्यों के स्वर, रङ्ग और मन निर्मल हो जाते हैं। सब व्याधियाँ दूर हो जाती हैं। प्रजा की आयु बढ़ती है। सब लोग बड़े सुख से रहते हैं। न तो स्त्रियाँ विधवा होती हैं और न पुरुष निर्दय होते हैं। बिना जोते पृथिवी में अन्न पैदा होता है। ओषधि, छाल, पत्ते, फल और जड़ में बल रहता है। सत्ययुग में इस प्रकार धर्म फैल जाता है।

८०

जब राजा दण्डनीति के तीन भागों से राज्य का पालन करता है यानी एक भाग को छोड़ देता है तब उस समय को त्रेतायुग कहते हैं। उस समय पाप का एक चौथाई हिस्सा प्रचलित हो जाता है। तब जोतने पर ही पृथिवी में अन्न पैदा होता है। जब राजा दण्डनीति का आधा हिस्सा छोड़कर आधे हिस्से से शासन करता है तब वह समय द्वापर युग कहलाता है। उस युग में धर्म और अधर्म बराबर हो जाते हैं। तब जोतने पर भी पृथिवी में, सत्ययुग की बिना जोती हुई पृथिवी की अपेक्षा, आधी उपज होती है। जिस समय राजा दण्डनीति को छोड़कर प्रजा को बहुत सताने लगता है उस समय को कलियुग कहते हैं। कलियुग में अधर्म की वृद्धि होती है और धर्म का लोप हो जाता है। चारों वर्णों का मन अपने धर्म से डिग जाता है। शूद्र भीख माँगने लगते और ब्राह्मण दास का काम करते हैं। संसार भरण-पोषण में असमर्थ हो जाता है और सर्वत्र मनुष्य वर्णसङ्कर होने लगते हैं। वैदिक कर्म गुणहीन और वसन्त आदि ऋतुएँ दुःखदायक हो जाती हैं। जनता रोगी हो जाती है। मनुष्यों का स्वर, रङ्ग और मन दुर्बल हो जाता है। अकाल-मृत्यु होने लगती है। स्त्रियाँ विधवा होने लगती हैं और प्रजा निर्दय हो जाती है। सर्वत्र न तो पानी बरसता है और न अन्न उपजता है। सम्पूर्ण रस क्षीण हो जाते हैं। इसलिए राजा को ही सत्य, त्रेता, द्वापर और कलियुग का कारण कहना चाहिए। जिस राजा से सत्ययुग की प्रवृत्ति होती है वह स्वर्ग के सारे सुखों का अनुभव करता है; जिससे त्रेता की

९०

प्रवृत्ति होती है वह तीन चौथाई सुख भोगता है और जिससे द्वापर युग प्रवृत्त होता है वह स्वर्ग का आधा सुख पा सकता है। जो राजा कलियुग की प्रवृत्ति करता है वह पाप ही पाप भोगता है। कलियुगी राजा प्रजा के पापों में डूब जाता है; उसका अपयश होता है। वह परलोक में हज़ारों वर्ष तक नरक की घोर यातना सहता है। १००

राजा को दण्डनीति का आश्रय लेकर सदा अप्राप्त वस्तुओं के पाने की इच्छा और प्राप्त की रक्षा करनी चाहिए। राजा दण्डनीति के अनुसार चले तो वह माता-पिता के समान प्रजा की रक्षा, मर्यादा की व्यवस्था और लोगों की भलाई कर सकता है। दण्डनीति के प्रभाव से ही प्रजा जीवित रह सकती है; दण्डनीति के अनुसार काम करना ही राजा का प्रधान धर्म है। इसलिए अब तुम नीति-परायण होकर धर्म के अनुसार प्रजा का पालन करो। इसी से तुम दुर्जय स्वर्ग पर अधिकार कर सकोगे। १०५

सत्तरवाँ अध्याय

भीष्म द्वारा राजनीति का वर्णन

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, कैसा व्यवहार करने से राजा को इस लोक और परलोक में सुख मिल सकता है?

भीष्म ने कहा—धर्मराज, धर्म के छत्तीस गुण हैं। उनमें भी प्रत्येक गुण के छत्तीस-छत्तीस भेद हैं। इन गुणों के होने से ही मनुष्य गुणी कहलाता है। इसलिए राजा में ये सब गुण अवश्य हों। इन्हीं गुणों से राजा का कल्याण हो सकता है। राजा को राग-द्वेष छोड़कर धर्म का पालन करना चाहिए। लोभ को छोड़कर सबसे स्नेह करना चाहिए। राजा सरलता से धन का उपार्जन, उद्दण्डता को छोड़कर कार्य की सिद्धि, दीनता को छोड़कर प्रिय वचनों का प्रयोग और अपनी प्रशंसा की इच्छा न रखकर वीरता करे। सत्पात्र देखकर दान करे और दयालु होता हुआ तेजस्वी रहे। दुष्टों के साथ हेलमेल न करना चाहिए। बन्धु-बान्धवों के साथ झगड़ा न करे और अविश्वासी मनुष्यों को गुप्तचर न बनावे। दूसरों को सताकर अपने कार्य का साधन, अपने मुँह अपनी बड़ाई, दुर्जनों से मतलब की बात का प्रकट करना, सज्जनों से धन लेना, दुष्टों की सहायता लेना, बिना विचारे दण्ड देना, सलाह की बात प्रकट करना, लोभी को धन देना, बुराई करनेवाले पर विश्वास करना, अत्यन्त भोग-विलास करना और नुकसान करनेवाली चीज़ों का खाना राजा को कदापि उचित नहीं। राजा को घृणा और ईर्ष्या छोड़कर हमेशा शुद्ध रहना चाहिए। वह स्त्रियों की देख-रेख, निष्कपट भाव से बड़े-बूढ़ों की सेवा, अहंकार छोड़कर मान्य पुरुषों का सम्मान, पाखण्ड छोड़कर देवताओं की पूजा और न्याय के अनुसार धन पैदा करे।

राजा नम्र होकर सेवा करे, सावधान होता हुआ भी काल का ज्ञान रक्खे और
१० अनुग्रह करता हुआ किसी पर आक्षेप न करे। निरी बातों से न बहलावे बल्कि कुछ देकर ढाढ़स बँधावे; दोष को समझे बिना दण्ड देना, शत्रु का विनाश करके शोक करना, अकस्मात् क्रोध दिखलाना और अपराधी मनुष्य के साथ नम्रता का व्यवहार करना अनुचित है।

हे धर्मराज, यदि तुम संसार में भला चाहते हो तो उपर्युक्त धर्मों का पालन करते हुए राज्य की रक्षा करो। इसके विरुद्ध आचरण करने से राजा को अवश्य ही सङ्कटों का सामना करना पड़ता है। जो राजा उपर्युक्त धर्म के अनुसार आचरण करता है वह इस लोक में फलता-फूलता और परलोक में सुख भोगता है।

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, भीष्म पितामह के इन वचनों को सुनकर युधिष्ठिर ने
१४ उनको प्रणाम किया और उनके उपदेश के अनुसार आचरण करना स्वीकार किया।

इकहत्तरवाँ अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर को राजधर्म समझाना

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, किस प्रकार प्रजा का पालन करता हुआ राजा परिताप से बच सकता और ठीक-ठीक न्याय कर सकता है?

भीष्म ने कहा—धर्मराज! सम्पूर्ण धर्म का, विस्तारपूर्वक वर्णन करने से, कभी अन्त न होगा इसलिए संक्षेप में उसका वर्णन करता हूँ। तुम वेद-वेदाङ्ग-वेत्ता धर्मनिष्ठ ब्राह्मणों को देखते ही उठकर प्रणाम करके उनका सत्कार करना। पुरोहित की सलाह से सब काम-काज किया करना। अच्छे कामों और धर्म-कार्यों को करके ब्राह्मणों के मुँह से अपने कामों की सफलता और जय का आशीर्वाद सुनना और सरलस्वभाव होकर धैर्य तथा बुद्धि के बल से सत्य का आश्रय लेकर काम-क्रोध का परित्याग कर देना। जो राजा काम और क्रोध के वश होकर धन पैदा करने की इच्छा करता है वह मूर्ख न तो धन पैदा कर सकता है और न धर्म ही उसके हाथ लगता है। लोभी और मूर्ख मनुष्यों को तुम कभी किसी काम पर नियुक्त न करना; निर्लोभ बुद्धिमानों को ही सब कामों का भार सौंपना। कामी, क्रोधी, मूर्ख और अयोग्य मनुष्यों को अधिकारी बना देने से प्रजा को अत्यन्त क्लेश सहना पड़ता है। शास्त्र के अनुसार अपराधियों को दण्ड देकर, प्रजा के पैदा किये हुए अन्न का छठा हिस्सा
१० लेकर, और सुरक्षित धनिकों से 'कर' लेकर राजा को धन संग्रह करना चाहिए। राजनीति के अनुसार प्रजा की शुभ-कामना करना, अलब्ध वस्तुएँ प्राप्त करना और प्राप्त की रक्षा करना राजा का कर्तव्य है। जो राजा राग-द्वेष को छोड़कर प्रजा को रक्षा करता है तथा धर्मात्मा

और दानी होता है; उस पर प्रजा प्रसन्न रहती है। तुम कभी लोभ के वश होकर अधर्म से धन पैदा करने की चेष्टा न करना। जो राजा शास्त्र-विरुद्ध काम करता है उसे धन और धर्म कुछ भी नहीं मिलता। उसका सब सञ्चित धन नष्ट हो जाता है। जो राजा धन के लिए शास्त्र-विरुद्ध अपरिमित 'कर' लेकर प्रजा को सताता है वह स्वयं अपनी हिंसा करता है। जैसे दूध चाहनेवाला मनुष्य गाय के स्तनों को काट लेने से दूध नहीं पा सकता वैसे ही प्रजा को सताने से राजा कभी धनवान् नहीं हो सकता। पुचकार कर दुधार गाय को दुहने से जैसे बहुत सा दूध हाथ लगता है वैसे ही नीति के अनुसार शासन करने से धन का सञ्चय हो सकता है। जिस प्रकार माता प्रसन्न होकर बच्चों को दूध पिलाती है उसी प्रकार राजा से सुरक्षित पृथिवी सन्तुष्ट होकर प्रजा को बहुत-सा अन्न और सोना देती है। इस-लिए तुम माली का अनुकरण करो, आङ्गारिक (आग लगानेवाले) न बनो। इसी से बहुत दिनों तक प्रजा का पालन और राज्य का सुख भोग कर सकोगे। शत्रु पर चढ़ाई करने के कारण यदि तुम्हारा धन नष्ट हो जाय तो ब्राह्मणों के अतिरिक्त अन्य जातियों से, समझा-बुझाकर, धन ले लेना। तुम बिलकुल निर्धन क्यों न हो जाओ, फिर भी ब्राह्मणों को धनवान् देखकर उनसे धन लेने की इच्छा न करना। उनको यथाशक्ति धन और आश्वासन देने तथा उनकी रक्षा करने से तुम स्वर्ग को जा सकोगे। २०

हे धर्मराज, यदि तुम उपर्युक्त धर्म के अनुसार प्रजा का पालन करोगे तो निस्सन्देह धर्मात्मा और यशस्वी होकर शान्त चित्त से सुखपूर्वक रह सकोगे। प्रजा की रक्षा करना राजा का प्रधान धर्म है। सब प्राणियों पर दया करने और सबकी रक्षा करने से बढ़कर कोई धर्म नहीं है। इसी से धर्मज्ञ लोग दयावान् और प्रजापालक राजा को परम धार्मिक कहते हैं। जो राजा भयभीत होकर एक दिन भी प्रजा की रक्षा करने में लापरवाही करता है वह परलोक में हज़ार वर्ष तक उस पाप का फल भोगता है और जो एक दिन भी धर्म के अनुसार प्रजा का पालन करके पुण्य का सञ्चय करता है वह दस हज़ार वर्ष तक स्वर्ग में उस पुण्य का फल भोगता है। ब्रह्मचारी, गृहस्थ और वानप्रस्थी लोग अपने-अपने धर्म पर चलकर अन्त में जिन लोकों को प्राप्त करते हैं उन लोकों को राजा, क्षण भर भी धर्म के अनुसार प्रजा का पालन करके, पा सकता है। अतएव तुम उपर्युक्त धर्म का पालन करो, उसके पुण्य से स्वर्ग में महान् ऐश्वर्य पाओगे। राजा के सिवा कोई मनुष्य इस धर्म को नहीं प्राप्त कर सकता। तुम धैर्य के साथ धर्म के अनुसार प्रजा का पालन करो। इन्द्र को सोमरस और आत्मीयों को यथेष्ट सुख देकर सन्तुष्ट करो। ३० ३३

बहत्तरवाँ अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर को ब्राह्मणों की श्रेष्ठता बतलाते हुए चारों वर्णों का धर्म बतलाना

भीष्म ने कहा—धर्मराज, जो पुरुष सज्जनों की रक्षा कर सकता और दुर्जनों को राज्य से निकलवा सकता हो वही राजा का पुरोहित होने योग्य है। इस विषय में इला के पुत्र पुरूरवा और वायु की जो बातें हुई थीं उनको ध्यान देकर सुनो।

एक बार पुरूरवा ने वायु से पूछा—हे पवन, ब्राह्मण और अन्य तीनों वर्ण कहाँ से पैदा हुए हैं और सब वर्णों में ब्राह्मण क्यों श्रेष्ठ माना गया है?

वायु ने कहा—महाराज! ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण, बाहुओं से क्षत्रिय, जाँघों से वैश्य और पैरों से शूद्र पैदा हुए हैं। इस प्रकार चारों वर्णों को उत्पन्न करके ब्रह्मा ने यह नियम बना दिया कि ब्राह्मण सबसे श्रेष्ठ हैं, वे धर्म की रक्षा करें। क्षत्रिय पृथिवी के अधीश्वर होकर दण्डनीति के द्वारा प्रजा की रक्षा करें। वैश्य धन-धान्य से तीनों वर्णों का भरण-पोषण करें और शूद्र इन तीनों वर्णों की सेवा करें।

पुरूरवा ने पूछा—हे वायु, धर्म के अनुसार पृथिवी का मालिक ब्राह्मण है या क्षत्रिय?

वायु ने कहा—महाराज, धर्मात्माओं का कहना है कि ब्राह्मण सब वर्णों से पहले पैदा १० हुए हैं, इसलिए पृथिवी के सब पदार्थों पर उन्हीं का अधिकार है। ब्राह्मण अपना ही खाते, पहनते और अपनी ही वस्तुएँ दान करते हैं; क्योंकि सब कुछ उन्हीं का है। ब्राह्मण सब वर्णों के गुरु और सबसे श्रेष्ठ हैं। जैसे पति के न रहने पर स्त्री देवर को पति बना लेती है वैसे ही ब्राह्मण से सुरक्षित न होने पर पृथिवी ने क्षत्रिय को अपना स्वामी बना लिया है। यदि तुम धर्म के परम स्थान स्वर्ग की आशा रखते हो तो तुमने जितनी पृथिवी जीती है वह सब धर्मात्मा, वेदज्ञ, तपस्वी, निर्लोभ ब्राह्मणों को दे दो। श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न, बुद्धिमान् विनीत ब्राह्मण ही अपनी असाधारण बुद्धि के प्रभाव से विविध उपदेशों द्वारा राजा का कल्याण करते हैं। जो राजा अहङ्कार को छोड़कर ब्राह्मण के बतलाये हुए अपने धर्म का पालन करता है वह भूमण्डल में महान् यशस्वी होता है। पुरोहित भी राजा के किये हुए धर्म का हिस्सेदार होता है। इसी तरह राजा के द्वारा सुरक्षित रहकर जो प्रजा बेखटके अपने धर्म का पालन करती है उसके धर्म का चौथा हिस्सा राजा को मिलता है। देवता, पितर, मनुष्य, गन्धर्व, सर्प और राक्षस २० सब यज्ञ से ही तृप्त होते हैं; और यज्ञ है राजा के ही अधीन। किन्तु अराजकता में यज्ञ की नौबत ही नहीं आती। ग्रीष्म-काल में जल, वायु और छाया से तथा शीतकाल में आग, धूप और कपड़ों से मनुष्यों को सुख मिलता है। उत्तम शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध से सभी का मन प्रसन्न होता है; किन्तु अन्तःकरण भयभीत हो तो इन भोगों में कोई किसी तरह का

सुख नहीं पा सकता। अतएव जो सब जीवों को अभय करके उनकी रक्षा करता है वही उत्तम पुण्य का फल पावेगा; क्योंकि तीनों लोकों में प्राणदान से श्रेष्ठ दान दूसरा नहीं है। राजा ही इन्द्र, यम और धर्म का स्वरूप होकर सारी पृथिवी का पालन करता है। २६

तिहत्तरवाँ अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर को पुरोहित के लक्षण बतलाना तथा पुरूरवा और कश्यप का संवाद कहना

भीष्म कहते हैं—धर्मराज, राजा को धर्म और अर्थ की देख-भाल के लिए एक बहुदर्शी विद्वान् पुरोहित रखना चाहिए। राजा और पुरोहित दोनों के धर्मात्मा और मन्त्रविद् होने से प्रजा का भला होता है, देवता और पितर तृप्त होते हैं तथा प्रजा की वृद्धि होती है। राजा और पुरोहित को अभिन्न-हृदय और परस्पर सुहृद् होना चाहिए। ब्राह्मण (पुरोहित) और क्षत्रिय (राजा) दोनों में सद्भाव होने से प्रजा को सुख मिलता है और असद्भाव होने से प्रजा क्लेश पाती है। ब्राह्मण और क्षत्रिय सब वर्णों के कारण-स्वरूप हैं। यहाँ एक प्राचीन इतिहास, ऐल और कश्यप का संवाद, कहता हूँ।

एक बार महाराज पुरूरवा ने कश्यप से पूछा—भगवन्, यदि ब्राह्मण और क्षत्रिय एक दूसरे को छोड़ दें तो अन्य वर्ण किसको प्रधान समझें और प्रजा किसका पक्ष ले? कश्यप ने कहा—महाराज, ब्राह्मण के त्याग देने से क्षत्रिय का राज्य नष्ट हो जाता है और म्लेच्छ जातियाँ जिसको चाहती हैं उसी को राजा बना लेती हैं। ब्राह्मण और क्षत्रिय का विरोध होने पर वेदज्ञान, पुत्रोत्पत्ति, दधिमन्थन और यज्ञ आदि का लोप हो जाता है। ब्राह्मणों को जो क्षत्रिय छोड़ देते हैं वे उपद्रवी डकैती करते हैं। न तो उनके यहाँ धन ठहरता है और न उनकी सन्तान पढ़ती-लिखती है। यज्ञ-याग करेगा ही कौन? इसलिए ब्राह्मण और क्षत्रिय को अवश्य मिलकर रहना चाहिए; वे एक दूसरे की उत्पत्ति के कारण हैं। यदि वे सद्भाव से रहते हैं तो उनका गौरव बढ़ता है अर्थात् क्षत्रिय से रक्षित ब्राह्मण तपस्या करता है और ब्राह्मण से रक्षित क्षत्रिय विजयी होता है और यदि उनमें मेल नहीं होता तो सब उलट-पलट जाता है। ब्राह्मण और क्षत्रिय का विरोध होने से, समुद्र में डूबती हुई नाव की तरह, संसार-सागर को कोई पार नहीं कर सकता। प्रजा चौपट हो जाती है। ब्राह्मण-रूपी वृक्ष सुरक्षित रहे तो सुख और सुवर्ण बरसाता है और अरक्षित रहे तो निरन्तर दुःख और पाप बहाता है। जिस प्रदेश में ब्राह्मण वेदहीन होकर वेद के द्वारा अपनी रक्षा चाहते हैं (किन्तु रक्षक न रहने के कारण उनकी रक्षा असम्भव हो जाती है) वहाँ पानी नहीं बरसता; सदा दुर्भिक्ष आदि बने रहते हैं। जब दुष्ट लोग स्त्री-हत्या और ब्रह्महत्या करके जनता में प्रशंसा पाते हैं और राजा की तनिक भी १०

परवा नहीं करते तब राजा के लिए विकट समस्या उपस्थित हो जाती है। दुष्टों के पाप से रुद्र-देव पैदा हो जाते हैं, कलियुग आ जाता है और वे रुद्रदेव भले-बुरे सबका नाश कर डालते हैं।

पुरूरवा ने कहा—भगवन्! प्राणियों में परस्पर वध होते तो देखा जाता है, पर रुद्र देवता कहीं किसी को नहीं देख पड़ते। वे कौन हैं, उनका स्वरूप कैसा है और वे कहाँ जन्म लेते हैं?

कश्यप ने कहा—राजन्! ये रुद्र मनुष्यों के हृदय में रहते हैं जो अपने को और दूसरों को नष्ट करते हैं। आत्मा ही तो रुद्र है। उनका स्वरूप आँधी और बादलों के समान है।

पुरूरवा ने कहा—भगवन्, वायु के आक्रमण से और बादलों के बरसने से तो मनुष्यों की मौत नहीं देखी जाती। मनुष्य तो काम और द्वेष के वश होकर मरते और २० मूढ़ होते देखे जाते हैं।

कश्यप ने कहा—महाराज, जैसे आग एक घर में लगकर सारे गाँव और बैठकों को भस्म कर देती है वैसे ही रुद्रदेव पापियों के पाप से उत्पन्न होकर सबको मोहित करके पाप-पुण्य से युक्त कर देते हैं।

पुरूरवा ने कहा—भगवन्, पापी मनुष्यों के पाप से यदि पाप-पुण्य से निर्लिप्त जीव दण्ड पाते हैं तो दुष्कर्म को छोड़कर कोई अच्छे कर्म क्यों करे?

कश्यप ने कहा—राजन्, जैसे सूखी वस्तुओं के साथ गीली चीज़ें भी आग में जल जाती हैं वैसे ही धर्मात्मा मनुष्य भी पापियों के संयोग से उन्हीं के समान दण्ड के भागी हो जाते हैं। इसलिए पापी मनुष्यों से सम्पर्क रखना भी बुरा है।

पुरूरवा ने कहा—भगवन्! पृथिवी पापी और पुण्यात्मा सबको धारण करती है, सूर्य सबको तपाते हैं, जल सबको पवित्र करता है और हवा सर्वत्र चलती है। इनके निकट न कोई भला है न बुरा।

कश्यप ने कहा—महाराज, इस लोक में तो ऐसा ही होता है; किन्तु पाप और पुण्य करनेवालों को परलोक में उनके कर्मों के अनुसार फल मिलता है। सब पुण्य-लोक सुख की खान और अमृत के नाभि-स्वरूप हैं, उनका वर्ण सुवर्ण के समान चमकीला है। न तो वहाँ जरा-मृत्यु है और न दुःख ही हैं। ब्रह्मचारी लोग वहाँ जाकर असीम आनन्द पाते हैं। पापी लोग नरक में रहते हैं। वहाँ हमेशा शोक, दुःख और घोर अँधेरा रहता है। वहाँ बहुत समय तक रहकर पापी लोग शोक-सन्ताप सहते रहते हैं।

ब्राह्मण और क्षत्रिय का विरोध होने पर प्रजा को घोर दुःख सहना पड़ता है। राजा इस विषय में खूब समझ-बूझकर बहुदर्शी पुरोहित को कार्य में नियुक्त करे। वह पहले पुरोहित को चुनकर फिर अपना राज्याभिषेक करावे। धर्म के अनुसार ब्राह्मण सबसे श्रेष्ठ हैं। ब्रह्मविद् पण्डितों का कहना है कि सबसे पहले ब्राह्मण उत्पन्न हुए हैं, इसलिए वे ही सब वर्णों

से ज्येष्ठ, सम्मानपात्र और पूज्य हैं। बलवान् होने पर भी राजा, अपने धर्म के अनुसार, श्रेष्ठ वस्तुएँ ब्राह्मण को प्रदान करे। ब्राह्मण और क्षत्रिय एक दूसरे की उन्नति के कारण हैं। ३२

चौहत्तरवाँ अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से दृष्टान्त-स्वरूप मुचुकुन्द का चरित्र कहकर क्षत्रिय को ब्राह्मण के अधीन बतलाना

भीष्म ने कहा—धर्मराज, राज्य की वृद्धि और रक्षा राजा के अधीन है और राजा का कल्याण पुरोहित के हाथ है। जिस राज्य में ब्रह्मतेज के द्वारा प्रजा का अदृष्ट (अनावृष्टि आदि) भय और राजा के बाहुबल से प्रत्यक्ष भय दूर होता है उसी राज्य में सुख और शान्ति की वृद्धि होती है। राजा मुचुकुन्द और कुबेर का प्राचीन इतिहास इस विषय का उदाहरण है, उसे सुनो। महाराज मुचुकुन्द ने सारी पृथिवी को जीतकर अपने बल की परीक्षा करने के लिए अलकाधिप कुबेर पर चढ़ाई कर दी। यह देखकर कुबेर ने मुचुकुन्द की सेना का नाश करने के लिए राक्षसों को भेजा। राक्षसों द्वारा अपनी सेना का विनाश होते देखकर महाराज मुचुकुन्द अपने पुरोहित वसिष्ठजी की निन्दा करने लगे। तब महर्षि वसिष्ठ ने अपने तप के प्रभाव से राक्षसों का नाश कर दिया।

राक्षसों का संहार हो जाने पर कुबेर ने राजा मुचुकुन्द के पास आकर कहा—महाराज, पहले अनेक राजा तुम्हारे समान बलवान् और पुरोहित-साहाय्य-सम्पन्न हो चुके हैं किन्तु जिस तरह तुमने मुझ पर आक्रमण किया है इस तरह आज तक किसी ने नहीं किया। प्राचीन राजा अस्त्र-शस्त्र-विशारद और महापराक्रमी होने पर भी मुझे सुख-दुःख का अधीश्वर मानकर सदा मेरी उपासना करते थे। अच्छा, अब तुम अपना बल प्रकट करो, देखें तुम कितने बलवान् हो। ब्राह्मण के बल का आश्रय लेकर क्यों वृथा बलवान् बनते हो? १०

तब कुपित राजा मुचुकुन्द ने निडर होकर कुबेर से कहा—भगवन्, ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों ही ब्रह्मा से उत्पन्न हुए हैं। भगवान् प्रजापति ने इन्हें उत्पन्न करके प्रजा का पालन करने के लिए ब्राह्मण को मन्त्र और तपोबल तथा क्षत्रिय को अस्त्र और बाहुबल दिया है। ब्रह्मबल और क्षत्रियबल अलग-अलग होने से प्रजा का पालन नहीं हो सकता। इसलिए इन दोनों बलों को एकत्र करके समझदार व्यक्ति प्रजा का पालन करे। मैं इसी नियम के अनुसार ब्रह्म-बल का आश्रय लेकर काम करता हूँ। आप क्यों मेरी निन्दा करते हैं?

यक्षराज ने मुचुकुन्द से कहा—महाराज, मैंने कभी किसी का राज्य छीनकर दूसरे को नहीं दिया; किन्तु इस समय सारी पृथिवी तुमको देता हूँ, तुम बेखटके इसका शासन करो।

मुचुकुन्द ने कहा—भगवन्, आपका दिया हुआ राज्य करने की मेरी इच्छा नहीं है। मैं तो अपने बाहुबल से जीतकर राज्य करने की इच्छा करता हूँ।

भीष्म कहते हैं—धर्मराज, मुचुकुन्द को इस प्रकार क्षत्रिय-धर्म में अटल देखकर कुबेर को बड़ा आश्चर्य हुआ। इसके बाद महाराज मुचुकुन्द कुबेर से विदा हो अपनी राजधानी में आकर अपने बाहुबल से जीती हुई पृथिवी का राज्य करने लगे। जो धर्मपरायण राजा इस तरह ब्राह्मण का आश्रय लेकर काम करता है वह सारी पृथिवी को जीतकर यशस्वी होता है। सारा संसार तर्पण आदि करनेवाले ब्राह्मण और अस्त्र-बल रखनेवाले क्षत्रिय के अधीन है। २२

पचहत्तरवाँ अध्याय

राज्य करने में अधर्म की आशंका करनेवाले युधिष्ठिर के प्रति
उनकी धार्मिकता का समर्थन

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, राजा कैसा व्यवहार करके प्रजा की उन्नति और पुण्य-लोकों की प्राप्ति कर सकता है? भीष्म ने कहा—धर्मराज! राजा दानी, यज्ञशील, उपवास करनेवाला और तपस्वी होकर धर्म के अनुसार प्रजा का पालन और धर्मात्माओं को दान देकर उनका सत्कार करे। राजा धर्म का सम्मान करता है तो प्रजा भी करती है। राजा जैसा काम करता है, वैसी ही रुचि प्रजा की हो जाती है। यमराज की तरह सदा शत्रुओं का दमन और दुष्टों का समूल उच्छेदन करना राजा का कर्तव्य है। उसे स्नेह से किसी को क्षमा न करना चाहिए। राजा से सुरक्षित प्रजा वेदाध्ययन, दान, होम और देवताओं की उपासना आदि जो कुछ धर्म करती है, उसके चौथे हिस्से का अधिकारी राजा होता है और प्रजा के सुरक्षित न रहने से राज्य में जितना पाप होता है, उसका चौथा हिस्सा राजा को भोगना पड़ता है। राजा नृशंस और मिथ्यावादी होकर जिस काम को करता है उसका पाप, किसी के मत से तो आधा और किसी के मत से सब का सब, उसी को भोगना पड़ता है।

अब उन उपायों का वर्णन सुनो जिनके द्वारा राजा इन पापों से छुटकारा पा सकता है। यदि चोरों ने किसी का धन चुरा लिया है और राजा चोरों का पता लगाकर उनसे धन वापस कराने में असमर्थ है तो अपने ख़ज़ाने से या बनियों से धन लेकर प्रजा का नुक़सान पूरा कर दे। ब्राह्मण के ही समान उसके धन की भी रक्षा सब वर्णों को करनी चाहिए। १० यदि कोई ब्राह्मण का अपकार करे तो उसे राजा राज्य से निकाल दे। ब्राह्मण के धन की रक्षा करने से सब कुछ सुरक्षित रह सकता है। इसलिए राजा को चाहिए कि ब्राह्मण को प्रसन्न रक्खे। जैसे सब प्राणी बादलों के और पक्षीगण बड़े-बड़े वृक्षों के सहारे जीवित रहते हैं वैसे

ही सब मनुष्य सर्वार्थसाधक राजा के आश्रित होकर अपना निर्वाह कर सकते हैं। कामी, लोभी और नृशंस राजा प्रजा की रक्षा नहीं कर सकता।

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, मैं अपने सुख के लिए एक क्षण भी राज्य करने की इच्छा नहीं करता हूँ; मैं तो धर्म के लिए राज्य करना चाहता हूँ। किन्तु राज्य करने में धर्म का होना बहुत कठिन है इसलिए मुझे राज्य न चाहिए। अब मैं तो वन को जाकर जितेन्द्रिय फल-मूलाहारी तपस्वी होकर धर्म-कर्म करूँगा।

भीष्म ने कहा—धर्मराज! तुम्हारी बुद्धि बहुत कोमल है, यह मैं जानता हूँ; किन्तु निरी कोमलता से शासन नहीं हो सकता। तुमको बहुत ही धर्मात्मा, मृदु-स्वभाव, कृपालु और उत्साहहीन समझकर लोग तुम्हारा सम्मान न करेंगे। तुम अपने पूर्वजों के व्यवहार को देखो। तुम जिस तरह का जीवन बिताना चाहते हो उस तरह का जीवन राजा के लिए ठीक नहीं है। सर्वथा कोमल स्वभाव होने से काम नहीं चलता। प्रजा का पालन करने से ही तुमको धर्म की प्राप्ति होगी। तुम अपनी बुद्धि से जैसा आचरण पसन्द करते हो वैसे की प्रार्थना न तो पाण्डु ने की थी और न कुन्ती ने ही। वे हमेशा तुममें शूरता, बल, सत्य, माहात्म्य और उदारता चाहते थे। स्वाहा और स्वधा से तृप्त होने के लिए देवता और पितर पुत्र की इच्छा करते हैं। दान, अध्ययन, यज्ञ और प्रजा का पालन करने में धर्म हो या अधर्म, इन्हीं कामों के लिए तुम्हारा जन्म हुआ है। यथासमय उपयुक्त कार्य करने में तत्पर रहने-वाले मनुष्य की, क्लेश सहने पर भी, कीर्ति बनी रहती है। मनुष्यों की तो बात ही क्या है, घोड़ा भी सिखाने से बोझा ले जाने में समर्थ हो जाता है। क्या राजा, क्या गृहस्थ और क्या ब्रह्मचारी, कोई भी सोलहों आने धर्म का आचरण नहीं कर सकता। अतएव वही काम अच्छा है जिसमें धर्म का अंश अधिक हो। बिलकुल धर्म का परित्याग कर देने की अपेक्षा थोड़ा सा धर्म करना भी अच्छा है। निकम्मे मनुष्य से बढ़कर पापी कोई नहीं है। कुलीन धार्मिक मनुष्य परम ऐश्वर्य का अधीश्वर होने पर राज्य की रक्षा और वृद्धि करने में राजा का सहायक होता है। राज्य का अधिकार पाकर राज-धर्म का ज्ञाता राजा किसी को बल से, किसी को दान से और किसी को विनीत वचनों से वश में कर लेता है। कुलीन दरिद्र विद्वानों का भरण-पोषण करने और भय-पीड़ित की रक्षा करने से बढ़कर धर्म और क्या हो सकता है?

२०

३०

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह! बतलाइए कि संसार में किस कर्म के करने से स्वर्ग, परम प्रीति और महान् ऐश्वर्य मिल सकता है?

भीष्म ने कहा—धर्मराज! डरा हुआ मनुष्य जिसकी शरण में जाकर क्षण भर भी सुख पा सके वही मनुष्य सर्वथा स्वर्ग का अधिकारी है। अतएव तुम प्रसन्नता से सज्जनों की रक्षा और दुर्जनों का नाश करके स्वर्ग के अधिकारी बनो। जैसे बादलों के आश्रित सब जीव

और फलवाले वृक्षों के आश्रित पक्षी रहते हैं वैसे ही सज्जन और सुहृद्गण तुम्हारे आश्रय में रहें। जो मनुष्य दृढ़, शूर और जितेन्द्रिय है तथा दुष्टों को दण्ड और सज्जनों को धन देता है उसी का आश्रय लेकर मनुष्य निर्वाह करते हैं। ३७

छिहत्तरवाँ अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से ब्राह्मणों का निषिद्ध कर्म और क्षत्रियों का राजधर्म कहना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, आप अब स्व-धर्म में तत्पर और स्व-धर्म से हीन ब्राह्मणों की विशेषता का वर्णन कीजिए।

भीष्म ने कहा—धर्मराज! विद्वान्, सुलक्षण और समदर्शी ब्राह्मण ब्रह्म के समान हैं। ऋक्, यजु और सामवेद के जाननेवाले तथा अपने कर्म में तत्पर ब्राह्मण देवता के समान तथा अपने कर्म से विहीन ब्राह्मण शूद्र के सदृश हैं। जो ब्राह्मण श्रोत्रिय नहीं हैं और जो अग्निहोत्र नहीं करते, उनसे धार्मिक राजा 'कर' ले और मुफ़्त में काम करावे। धर्माधिकारी, देवलक (पूजा-पाठ करने की नौकरी करनेवाला), ज्योतिषी, ग्रामयाजक (पुरोहित-पेशा) और रास्ते पर शुल्क (टैक्स) लेनेवाले ब्राह्मण चाण्डाल के समान हैं। ऋत्विक्, पुरोहित, मन्त्री, दूत और जासूस ब्राह्मण क्षत्रिय के समान हैं। जो ब्राह्मण सेना में घोड़ा, हाथी और रथ के सवार या पैदल सिपाही हैं वे वैश्य के समान हैं। धनहीन होने पर राजा देवतुल्य और ब्रह्मतुल्य ब्राह्मणों को छोड़कर और सब ब्राह्मणों से कर वसूल करे। राजा जैसे अन्य वर्णों के धन का अधिकारी होता है वैसे ही धर्मभ्रष्ट ब्राह्मण के धन का भी अधिकारी है। ब्राह्मणों को धर्मभ्रष्ट होते देखकर राजा कभी उनकी उपेक्षा न करे। न्याय के अनुसार दण्ड देकर उनको धार्मिक ब्राह्मणों की श्रेणी से अलग कर दे। जिसके राज्य में ब्राह्मण चोर होता है उसका अपराधी विद्वान् लोग राजा को ही मानते हैं। विद्वानों का कहना है कि यदि पढ़ा-लिखा (स्नातक) ब्राह्मण जीविका न होने के कारण चोरी करने लगे तो राजा उसके भरण-पोषण का प्रबन्ध कर दे। इतने पर भी यदि वह चोरी करना न छोड़े तो राजा उसे परिवार समेत देश से निकाल दे। १० १४

सतहत्तरवाँ अध्याय

केकयराज का उपाख्यान

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, किन मनुष्यों के धन पर राजा का अधिकार है और राजा को कैसा व्यवहार करना चाहिए?

भीष्म ने कहा—धर्मराज, ब्राह्मणेतर जातियों के और जो वेदोक्त कर्म नहीं करते उन ब्राह्मणों के धन का सम्पूर्ण अधिकार राजा को है। सज्जनों का कहना है कि कर्महीन ब्राह्मण

का धन ले लेने में राजा को पशोपेश न होना चाहिए। राज्य में ब्राह्मण चोर हो तो उसका अपराधी राजा है। वेदवेत्ता ब्राह्मणों की रक्षा न करने से समाज में राजा की निन्दा होती है। इसी से राजा लोग हमेशा से ब्राह्मणों की रक्षा करते आये हैं।

यहाँ एक प्राचीन इतिहास कहता हूँ, सुनो। एक बार केकय देश के राजा को वन में एक राक्षस ने पकड़ लिया। उससे राजा ने कहा—हे राक्षस! मेरे राज्य में चोर, छिछोर और मदिरा पीनेवाले मनुष्य नहीं हैं। ब्राह्मणों में कोई मूर्ख और व्रतहीन नहीं है। सभी ब्राह्मण यथासमय अग्निहोत्र करते, सोमरस पीते और अभ्यागत मनुष्यों को अपने भोजन का भाग देते रहते हैं। इसलिए तू मुझको मत पकड़। मेरे राज्य में ब्राह्मण यजन-याजन, अध्ययन-अध्यापन, दान और प्रतिग्रह करते हैं। सभी ब्राह्मण कोमल-स्वभाव, सत्यवादी, धर्मात्मा और सबके सम्मानपात्र हैं। इसलिए तू मुझको मत पकड़। मेरे राज्य में क्षत्रिय लोग धर्म्मात्मा हैं, वे ब्राह्मणों की रक्षा करते और समर से नहीं हटते हैं। वे इच्छानुसार दान, अध्ययन और यज्ञ करते हैं; किन्तु कभी प्रतिग्रह, अध्यापन और याजन नहीं करते।

१०

इसलिए तू मुझमें प्रवेश मत कर। मेरे राज्य में सब वैश्य शुद्ध, जितेन्द्रिय, सावधान, क्रियावान्, सत्यवादी और व्रती हैं। वे परस्पर मित्र भाव से खेती, गौवों की रक्षा और वाणिज्य करके अपना निर्वाह करते और अपने भोजन में से कुछ हिस्सा अभ्यागतों को दिया करते हैं। इसलिए तू मुझमें प्रवेश मत कर। शूद्र लोग ईर्ष्या न करके ब्राह्मण आदि तीनों वर्णों के आश्रित रहकर निर्वाह करते हैं। इसलिए तू मुझमें प्रवेश मत कर। मैं भी कुलधर्म और देशधर्म की रक्षा करता हुआ दुखी, अनाथ, वृद्ध, दुर्बल, आतुर और स्त्रियों को धन देता रहता हूँ। इसलिए तू मुझमें प्रवेश मत कर। अतिथियों को भोजन दिये बिना मैं कभी भोजन नहीं करता। न तो परस्त्री-गमन करता हूँ और न स्वेच्छानुसार क्रीड़ा ही करता हूँ। मेरे राज्य में तपस्वियों का सत्कार और पालन होता है और प्रजा भी अतिथि-सत्कार करती रहती है। इसलिए तू मुझमें प्रवेश मत कर। मेरे राज्य में वही भिक्षा माँगते हैं जो ब्रह्मचारी हैं और जिन्हें यज्ञ का २१

अधिकार नहीं है वे हवन नहीं करते। इसलिए तू मुझमें प्रवेश मत कर। प्रजा के सो जाने पर भी मैं जागता रहता हूँ। विद्वान्, वृद्ध और तपस्वियों का मैं कभी अनादर नहीं करता। मेरा पुरोहित आत्मविज्ञानी, तपस्वी, बुद्धिमान्, सारे राज्य का स्वामी और सब धर्मों का ज्ञाता है। मैं दान से विद्या की और सत्य से धन की इच्छा करता हूँ; मैं सेवा से गुरुजनों को अपने अनुकूल रखता हूँ। मेरे राज्य में सब ब्राह्मण सुरक्षित हैं। इससे मुझे राक्षसों का क्या डर है ? मेरे राज्य में विधवा स्त्री, अधम ब्राह्मण, धूर्त, चोर और अनधिकारियों को यज्ञ-याग करानेवाले आदि नाम लेने को भी नहीं हैं। इससे मुझे राक्षसों का डर नहीं है। मैं धर्म की रक्षा के लिए युद्ध करता हूँ। मेरे शरीर में दो अङ्गुल भी ऐसा स्थान नहीं जहाँ घावों के चिह्न न हों। मेरी प्रजा यज्ञ करके और गो-ब्राह्मण की रक्षा करके निरन्तर मेरा कल्याण चाहती रहती है। इसलिए मुझे राक्षसों का भय नहीं है। बतलाओ, तुम क्यों मेरे शरीर में प्रविष्ट हुए हो ?

तब राक्षस ने कहा—महाराज! आप सर्वदा धर्म की रक्षा करते हैं, अतएव आपका भला हो, आप अपने घर जाइए। मैं आपको छोड़कर जाता हूँ। जो राजा गाय, ब्राह्मण और ३० प्रजा की रक्षा करते हैं उनको राक्षसों से कुछ भय नहीं होता। ब्राह्मण लोग जिनके अगुआ, ब्रह्मबल ही जिनका प्रधान बल और जिनकी प्रजा अतिथियों का आदर करती है वे राजा स्वर्ग को प्राप्त करते हैं। यह कहकर राक्षस चला गया। भीष्म कहते हैं—हे धर्मराज, इसलिए राजा को धार्मिक ब्राह्मणों की रक्षा करना और धर्मभ्रष्ट ब्राह्मणों को दण्ड देना चाहिए। ब्राह्मणों के सुरक्षित रहने से राजा की रक्षा होती है। वे राजा को आशीर्वाद देते हैं। जो राजा नियमानुसार ३४ प्रजा की रक्षा करता है वह सांसारिक सुख भोगकर अन्त में स्वर्ग का सुख पाता है।

अठहत्तरवाँ अध्याय

ब्राह्मण आदि वर्णों का आपद्धर्म

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, आपने यह तो कहा कि आपत्काल में ब्राह्मणों को राजधर्म के अनुसार निर्वाह कर लेना चाहिए किन्तु अब यह बताइए कि वे वैश्य-धर्म के अनुसार भी गुज़र कर सकते हैं या नहीं ?

भीष्म ने कहा—बेटा, क्षत्रिय-धर्म के अनुसार निर्वाह करने में असमर्थ होने पर ब्राह्मण वैश्यधर्म के अनुसार खेती करके और गायें पालकर अपना निर्वाह कर सकते हैं।

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, वैश्य-धर्म का आश्रय लेने पर किन चीज़ों के बेचने से ब्राह्मणों को स्वर्ग की प्राप्ति में बाधा नहीं होती ?

भीष्म ने कहा—धर्मराज ! ब्राह्मण को मदिरा, मांस, शहद, तिल, नमक, पकाया हुआ अन्न, घोड़ा, गाय और भैंस आदि पशु न बेचना चाहिए। इन चीज़ों के बेचने से ब्राह्मण को

नरक में जाना पड़ता है। बकरा बेचना अग्नि के और भेड़ बेचना वरुण के बेचने के समान है; घोड़ा बेचना सूर्य के और अन्न बेचना पृथिवी बेचने के सदृश है; इसी तरह गाय बेचना यज्ञ और सोमरस की बिक्री के समान है, इसलिए इन चीज़ों को ब्राह्मण न बेचे। भोजन के लिए पकाई हुई रसोई देकर कच्चा अन्न लेना ठीक नहीं; हाँ, कच्चा अन्न देकर बनी बनाई रसोई ले लेना शास्त्र के विरुद्ध नहीं है। 'मुझे बनी बनाई रसोई खाने के लिए दे दीजिए और आप मेरा कच्चा अन्न लेकर रसोई कर लीजिए' किसी के ऐसा कहने पर कच्चे अन्न से पकाया हुआ अन्न बदल देने में कुछ अधर्म नहीं होता। व्यवसायियों का प्राचीन धर्म सुनो। जब कोई मनुष्य कहे कि आप अपनी अमुक वस्तु से मेरी इस चीज़ को बदल लीजिए तब वैसा कर देने से धर्म की हानि नहीं होती। असल में किसी की चीज़ छीन लेने से अधर्म होता है। इस तरह १० का व्यवहार ऋषि लोग और अन्य व्यक्ति भी करते थे इसलिए ऐसा करना ठीक है।

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, जब (ब्राह्मणातिरिक्त) प्रजा अपना धर्म छोड़कर राजा के विरुद्ध शस्त्र उठावेगी तब निस्सन्देह राजा का बल क्षीण हो जायगा। उस समय प्रजा का पालन किस तरह करना चाहिए ?

भीष्म ने कहा—धर्मराज ! उस समय ब्राह्मण आदि सब वर्ण दान, तप, यज्ञ, अद्रोह और शम-दम के द्वारा अपने-अपने कल्याण का उपाय करें। उनमें जो लोग विद्वान् हों वे, जिस तरह देवता इन्द्र की बल-वृद्धि करते हैं उसी तरह, राजा का बल बढ़ाने की कोशिश करें। राजा का सर्वनाश उपस्थित होने पर उसे ब्रह्मबल का ही आश्रय लेना चाहिए। इसलिए समझदार लोग ब्रह्मबल का ही आश्रय लेकर उन्नति की इच्छा करें। जब राजा विजयी होकर अपने राज्य में शान्ति स्थापित कर ले तब फिर सब वर्ण अपने-अपने धर्म में प्रवृत्त हो जायँ। अराजकता फैल जाने तथा डाकुओं और शत्रुओं का हमला होने पर सब वर्णों को अस्त्र-शस्त्र उठाना चाहिए।

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, यदि ब्राह्मणों से सब क्षत्रिय द्वेष करने लगें तो उनकी रक्षा कौन करेगा ? और उस समय वे किस धर्म की शरण लेकर अपनी रक्षा करेंगे ?

भीष्म ने कहा—धर्मराज, जब क्षत्रिय लोग ब्राह्मणों पर अत्याचार करेंगे तब वेद (ब्राह्मण) ही उनकी रक्षा करेंगे और वे उस समय तप, ब्रह्मचर्य, शस्त्र, बल, सरलता और धूर्तता द्वारा क्षत्रियों को क़ाबू में करके अपनी रक्षा करेंगे। आख़िर क्षत्रिय हैं तो ब्राह्मण से ही उत्पन्न। २१ जल से अग्नि, ब्राह्मण से क्षत्रिय और पत्थर से लोहा पैदा हुआ है। इनका सब जगह पहुँचनेवाला तेज अपने-अपने उत्पत्तिस्थान में शान्त हो जाता है। लोहा पत्थर से, अग्नि जल से और क्षत्रिय ब्राह्मण के प्रभाव से नष्ट हो जाते हैं। क्षत्रियों का तेज कितना ही प्रबल क्यों न हो, ब्राह्मणों से द्वेष करने पर अवश्य नष्ट हो जायगा। ब्राह्मणों का प्रभाव क्षीण हो जाने, क्षत्रिय-तेज के निर्बल होने और ब्राह्मण तथा क्षत्रिय के प्रतिकूल दुष्टों का आचरण होने पर जो क्षत्रिय

धर्म और ब्राह्मणों की रक्षा के लिए अपने जीवन की आशा छोड़कर संग्राम करता है वही तेजस्वी और यशस्वी है। ब्राह्मणों की रक्षा के लिए सब वर्णों को शस्त्र उठाना चाहिए। जो पुरुष ब्राह्मण के लिए अपनी जान पर खेल जाता है वह यज्ञ करनेवाले, विद्वान्, तपस्वी, अनशन व्रत करनेवाले और आग में प्रवेश करनेवाले से भी बढ़कर सद्गति पाता है। तीनों वर्णों के ऊपर, रक्षा के लिए, ब्राह्मण का शस्त्र उठाना निन्दित नहीं है। पण्डितों ने संग्राम में शरीर के त्यागने को परम धर्म बतलाया है। जो पुरुष ब्राह्मण को बचाने के लिए अपने जीवन को होम देता ३० है उसे नमस्कार है, उसका भला हो। वह भी अन्त में हम लोगों के सालोक्य को प्राप्त करे। मनु ने ऐसे वीरों को ब्रह्मलोक-विजयी कहा है। जैसे अश्वमेध के अन्त में स्नान करने से मनुष्य पवित्र होता है वैसे ही, पाप का नाश करने के लिए, संग्राम में प्राण गँवा देने से वीर लोग पवित्र होते हैं। देश, काल और कारण-भेद से धर्म तो अधर्म-रूप और अधर्म धर्म-रूप हो जाता है। उत्तङ्क और पराशर आदि महर्षियों ने सर्पयज्ञ और राक्षसयज्ञ आदि क्रूर कर्म करके स्वर्ग प्राप्त किया है और धार्मिक क्षत्रियों ने दूसरों के राज्य पर आक्रमण आदि पाप कर्म करके सद्गति पाई है, अतएव ब्राह्मण का अपनी रक्षा, दुष्टों का दमन और वर्णसङ्करता दूर करने के लिए शस्त्र उठाना अनुचित नहीं है।

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह! यदि लुटेरे आक्रमण करें, राज्य की रक्षा करने में क्षत्रिय असमर्थ हों, और प्रजा मूढ़ तथा परदार-रत हो तो ऐसी दशा में ब्राह्मण, वैश्य और शूद्रों को शस्त्र लेकर उपद्रवों से जनता की रक्षा करने देना चाहिए या नहीं?

भीष्म कहते हैं—बेटा! जो मनुष्य नौका-स्वरूप होकर विपत्ति-सागर में प्रजा की रक्षा करे उसका सम्मान, जात-पाँत का विचार न करके, करना ही चाहिए। जिसके आश्रय से दस्युपीड़ित ४० अनाथ प्रजा की रक्षा हो उसका भाई के समान सम्मान किया जाय। बोझा ढोने में असमर्थ बैल, ठाँठ गाय, बन्ध्या स्त्री और अरक्षक राजा किसी काम का नहीं। अपढ़ ब्राह्मण, प्रजा का पालन न करनेवाला राजा, न बरसनेवाला बादल, लकड़ी का हाथी, चमड़े का हिरन और हिजड़ा ऊसर के समान ४४ निरर्थक है। यथार्थ राजा वही है जो सदा सज्जनों की रक्षा करे और दुर्जनों को दण्ड देता रहे।

उन्नासीवाँ अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर को ऋत्विक् के लक्षण बतलाना

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, ऋत्विजों का स्वभाव कैसा होना चाहिए और उनका क्या कर्तव्य है? भीष्म ने कहा—बेटा! ऋग्, यजुः, सामवेद और मीमांसा का विद्वान्, राजा के लिए शान्ति, पुष्टि आदि कर्म करनेवाला और सावधानी से सब कामों का करनेवाला ऋत्विक् श्रेष्ठ है। ऋत्विक् को यथार्थ बात कहनेवाला, पक्षपातशून्य, दयालु, सरल और सत्यवादी होना

चाहिए। उसकी प्रतिज्ञा दृढ़ हो। ब्याज के द्वारा वह कभी निर्वाह न करे। जो श्रोत्रिय अभिमानशून्य, बुद्धिमान्, सत्यवादी, सहनशील, अहिंसक, राग-द्वेष-रहित, शास्त्रज्ञ, कुलीन, सच्चरित और लज्जा, क्षमा, इन्द्रिय-दमन आदि गुणों से युक्त होता है वह ब्रह्म का पद पाता है।

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह! वेद में दान-दक्षिणा का विधान तो है किन्तु किस स्थान पर कितना और क्या देना चाहिए, यह व्यवस्था कहीं नहीं है। थोड़ी दक्षिणा से सम्पन्न हो जानेवाले यज्ञ में सर्वस्व दान कर देने से यज्ञ के बाद तो यजमान के बल का ह्रास हो जायगा; और आपद्धर्म उपस्थित होने पर क्या दक्षिणा देनी चाहिए, इसकी भी कोई व्यवस्था नहीं है। शास्त्र की यह कठोर आज्ञा समर्थ और असमर्थ का भी विचार नहीं करती। वेद की यह भी आज्ञा है कि श्रद्धापूर्वक मनुष्य को यज्ञ करना चाहिए; किन्तु जहाँ पर गोदान की आज्ञा है वहाँ केवल चरु का दान कर देना मिथ्याचार है। ऐसा मिथ्याचार-युक्त यज्ञ करने से श्रद्धावान् होने पर उसे क्या फल मिलेगा?

भीष्म ने कहा—युधिष्ठिर! संसार में कोई मनुष्य वेद-विरुद्ध काम करके, चालाकी और मायाजाल फैलाकर, महत्त्व नहीं प्राप्त कर सकता। इसलिए ऐसी तुम्हारी बुद्धि कभी न हो। १० दक्षिणा यज्ञ का अङ्ग है और वेद का महत्त्व बढ़ानेवाली है। दक्षिणा के बिना यज्ञ न तो सफल होता और न मनुष्यों का उद्धार कर सकता है। यज्ञ में दरिद्रों द्वारा दान किया हुआ 'पूर्णपात्र' क्या अन्यान्य दक्षिणा-दान के तुल्य नहीं है? ब्राह्मण आदि तीनों वर्णों को यज्ञ अवश्य करना चाहिए। वेद का वचन है कि सोम ब्राह्मणों का राजा है, इसलिए सोमरस का बेचना उचित नहीं; किन्तु सोमरस बेचकर जो धन मिले उससे यदि यज्ञ करे तो निन्दनीय नहीं है। ब्राह्मण आदि तीनों वर्ण न्याय के अनुसार यज्ञ करें और सोमरस प्रस्तुत करें। जो मनुष्य न्याय-परायण नहीं होता वह न अपना हित कर सकता है और न दूसरों की ही कोई भलाई कर सकता है। अत्यन्त कष्ट सहकर निर्वाह करके इकट्ठे किये हुए धन से यज्ञ करना ब्राह्मण के लिए अच्छा नहीं है; वेद की आज्ञा है कि तप करना यज्ञ से भी श्रेष्ठ है। तप का वर्णन सुनो। अहिंसा, सत्य वचन, कोमलता, इन्द्रिय-दमन और दया ये ही यथार्थ तप हैं। शरीर को सुखा लेना या तपस्वियों का वेष बना लेना तप नहीं है। वेदों पर अविश्वास, शास्त्रों का उल्लङ्घन और उच्छृङ्खल व्यवहार करने से निस्सन्देह अपना विनाश हो जायगा। जो पुरुष तपस्वरूप यज्ञ करता है उसका [जीव ब्रह्म को एक करना =] योग ही स्रुक् है, चित्त ही आज्य (घी) और उत्तम ज्ञान ही पवित्र (कुश की अँगूठी) स्वरूप है। शठता से मृत्यु होती और सरलता से ब्रह्मपद की प्राप्ति होती है। बस, इतनी ही बात ज्ञान की है और सब बकवाद है। २१

अस्सी अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से मित्र और अमित्र के लक्षण कहना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह ! साधारण काम भी किसी की सहायता के विना मुश्किल से होते हैं; राज्य का शासन तो बहुत कठिन है। इसलिए राज्य-कार्य करने में पुरोहित और मन्त्री आदि की सहायता लेना और उनसे परामर्श करना राजा का कर्तव्य है। आप यह बताइए कि राजा का मन्त्री कैसे स्वभाव और आचरण का हो और राजा किन पर विश्वास करे और किन पर अविश्वास करे ?

भीष्म कहते हैं कि धर्मराज, मित्र चार प्रकार के होते हैं—सहार्थ (परस्पर सहायक), भजमान (पुश्तैनी मित्र), सहज (रिश्तेदार) और कृत्रिम (धन देकर बनाया गया सहायक)। इनके सिवा धर्मात्मा मनुष्य को भी राजा का मित्र समझना चाहिए; किन्तु यदि राजा अधर्मी होता है तो धर्मात्मा मनुष्य उसका साथ नहीं देता। निष्पक्ष निष्कपट धर्मात्मा मनुष्य स्वयं धार्मिक राजा का आश्रय लेता है। विजय चाहनेवाला राजा निरे धर्म-मार्ग पर चलकर सफल-मनोरथ नहीं हो सकता; उसे धर्म और अधर्म दोनों मार्गों पर चलना चाहिए। जो मनुष्य जिस मत से सहमत न हो उसे राजा कभी, उसके सामने, प्रकट न करे।

उपर्युक्त चार प्रकार के मित्रों में भजमान और सहज श्रेष्ठ हैं। अन्य दो प्रकार के मित्रों से सदा सावधान रहना चाहिए। दुष्ट मन्त्रियों को वँधुआ करते समय अन्य प्रकार के मित्रों से सशंक रहे। सदा सावधानी से मित्रों के स्वभाव की परीक्षा करता रहे। मित्रों की रक्षा करने में राजा को असावधानी न करनी चाहिए। असावधान राजा का सर्वत्र अनादर होता है। मनुष्यों का चित्त स्वभावतः चञ्चल होता है। भले मनुष्य बुरे, बुरे मनुष्य भले और शत्रु मित्र तथा मित्र शत्रु हो जाया करते हैं। किसी पर पूरा विश्वास न करके आवश्यक कामों को अपने आप करना चाहिए। पूरा विश्वास कर लेने से धर्म और अर्थ दोनों का नाश हो १० जाता है और एकदम सब पर अविश्वास मौत से भी बढ़कर सङ्कट है। पूरा-पूरा विश्वास अकालमृत्यु-स्वरूप है। जो जिस पर दृढ़ विश्वास कर लेता है वह उसी की इच्छा से जीवित रह सकता है। इसलिए विश्वास और शङ्का दोनों का होना आवश्यक है। इस सनातन नीति-मार्ग पर सदा दृष्टि रखनी चाहिए। उत्तराधिकारी भाई या पुत्र आदि से हमेशा होशियार रहे। समझदारों ने उत्तराधिकारी को शत्रु बताया है। तालाब के पासवाले खेत के बाँध को तोड़कर जो मनुष्य अपने खेत में पानी आने देता है वह जैसे अपने और समीपवाले दूसरे खेतों की फ़सल को हानि पहुँचाता है वैसे ही राज्य की सीमा पर प्रबल शत्रु के रहने से राजा की ज़रा सी असावधानी से राज्य चौपट हो जाता है। इसलिए सीमा की रक्षा का प्रबन्ध मित्रों के विश्वास पर छोड़ देना राजा को उचित नहीं।

राजा की उन्नति देखकर जिसके आनन्द की सीमा नहीं रहती और अवनति देखकर जो अत्यन्त दुखी हो जाता है वही वास्तविक मित्र है। निष्कपट शुभचिन्तक का विश्वास पिता के समान करे। धार्मिक कामों के समय जो मनुष्य आपत्ति से बचावे, उसकी उन्नति का प्रयत्न शक्तिमान् पुरुष सर्वथा करता रहे। जो मनुष्य राजा की विपत्ति की चिन्ता करके डरता है वही यथार्थ मित्र है और जो विपत्ति मनाता है वह शत्रु है। जो मित्र विपत्ति के समय तो चिन्ता करता है और उन्नति के समय सन्ताप नहीं करता उसको अपनी आत्मा के समान समझे। रूपवान्, स्वरवान्, क्षमाशील, ईर्ष्याहीन और कुलीन मित्र भी वैसे मित्र के समान नहीं हो सकता। २०

हे धर्मराज! तुम्हारे ऋत्विक्, आचार्य और मित्र यदि सरल-स्वभाव, मेधावी और कार्य-कुशल हों तथा सम्मानित या अपमानित होने पर भी अनुकूल बने रहें और मन्त्री का पद ग्रहण करके तुम्हारे घर में रहने लगें तो तुम उनका यथेष्ट सम्मान और पिता के समान विश्वास करना। उनसे गूढ़ विषयों पर विचार करने और धर्म तथा अर्थ के विषय प्रकट करने में तुमको किसी विपत्ति की आशंका नहीं है। एक काम को एक ही मनुष्य के सिपुर्द करना चाहिए। कई आदमियों को एक काम का ज़िम्मेदार बना देने से मतभेद हो जाने पर हानि की आशंका रहती है। जो मनुष्य यशस्वी, कार्य-कुशल, मितभाषी और नीतिज्ञ हो, जो न तो बुरा चाहे और न समर्थ मनुष्यों से विरोध करे तथा जो काम, क्रोध, लोभ या भय के वश होकर कभी धर्म का त्याग न करे, उसी को प्रधान पद पर नियुक्त करना। कुलीन, सुशील, सहनशील, बलवान्, मान्य, विद्वान्, अहंकारहीन और कार्याकार्य को जानने-वाले मनुष्य को मन्त्री बनावे। मन्त्रियों का यथोचित सम्मान करे और उनसे सहायता ले। वे परस्पर लाग-डाँट से काम करेंगे और बड़े यत्न से धन की चिन्ता करते रहेंगे। इसलिए ऐसे मनुष्यों को मन्त्रि-पद पर नियुक्त करने से तुम्हारे आय-व्यय का हिसाब ठीक रहेगा और शत्रुओं पर विजय आदि शुभ काम सिद्ध होते रहेंगे। मृत्यु के समान भीषण समझकर आत्मीय लोगों से चौकन्ना बना रहे। जिस तरह राजा की सम्पत्ति को देखकर पड़ोसी राजा अधीर हो उठता है उसी तरह राजा की सम्पत्ति को देखकर उसके सजातीय कुढ़ा करते हैं। सजातीय के सिवा दूसरा कोई सरल-स्वभाव, दानी, सत्यवादी और लज्जावान् मनुष्य के विनाश के समय सन्तुष्ट न होगा। सजातीय न हो तो भी सुख नहीं है; क्योंकि बन्धु-बान्धव-हीन मनुष्य के समान अपमानित दूसरा कोई नहीं है; अपमानित व्यक्ति को जातिवाले ही सहारा देते हैं। ग़ैर आदमी से अपने सजातीय का अपमान होना कोई जातिवाला सहन नहीं करता। सजातीय के अपमान को मनुष्य अपना अपमान समझता है। गुण और दोष तो सभी में होते हैं, भले और बुरे आदमी भी सर्वत्र होते हैं, इसलिए अपने सजातीय लोगों का वचन और कर्म से सदा सम्मान करते रहना चाहिए। उनका बुरा चेतना ठीक नहीं। उन पर ३०

पूरा विश्वास न करके विश्वस्त के समान उनके साथ व्यवहार करना चाहिए। जो मनुष्य सावधानी से ऐसा व्यवहार करता है उसके शत्रु भी प्रसन्न होकर मित्र बन जाते हैं और वह ४१ बहुत दिनों तक यशस्वी रहता है।

इक्यासी अध्याय

श्रीकृष्ण और नारद का संवाद

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह! जातिवालों का यथोचित सत्कार करने पर बन्धु-बान्धव और बन्धु-बान्धवों का आदर करने से जातिवाले कुपित हो उठते हैं, इसलिए इन दोनों पक्षों के मनुष्यों को क्योंकर प्रसन्न रक्खा जाय?

भीष्म ने कहा कि बेटा, अब मैं श्रीकृष्ण और नारद का संवाद कहता हूँ; इस प्राचीन इतिहास को सावधान होकर सुनो। इसे सुनने से तुम्हारा सन्देह दूर हो जायगा। एक बार श्रीकृष्ण ने देवर्षि नारद से कहा—नारदजी! शत्रु, मूर्ख मित्र और चपल पण्डित से गुप्त बात न कहनी चाहिए। आप मेरे मित्र हैं, इसलिए एक बात आप से कहता हूँ; सुनिए। यद्यपि मैं आधे का हिस्सेदार हूँ तो भी कुटुम्बियों के कटु वचन सुनता हूँ और उनके दास के समान रहता हूँ। जैसे अरणी को रगड़कर मनुष्य आग बना लेता है वैसे ही कुटुम्बियों के वचन मेरे हृदय को लगातार जलाते रहते हैं। बलदेवजी का बल, गद की सुकुमारता और मेरे पुत्र प्रद्युम्न का सौन्दर्य संसार में अद्वितीय समझा जाता है। अन्धक और वृष्णिवंश के शूर महापराक्रमी, उत्साही और उन्नतिशील हैं। वे जिसकी सहायता न करें वह विनष्ट हो जावे और जिसकी सहायता करें वह सहज में असाधारण ऐश्वर्य प्राप्त कर सकता है। परिवार में ऐसे लोगों के होने पर भी मैं असहाय हूँ। आहुक और अक्रूर मेरे परम मित्र हैं; किन्तु यदि इन दोनों में किसी एक पर स्नेह प्रकट करूँ तो दूसरा मुझ पर कुपित हो जावे, अतएव मैं न तो किसी से स्नेह कर सकता हूँ और स्नेह के कारण न किसी का परित्याग ही। इससे मैंने तो यह निश्चय किया है कि ये दोनों जिसके पक्ष में न हों वह अत्यन्त दुखी है और जिसके १० पक्ष में हों उसके समान दुखी और कोई नहीं है। जो हो, मैं इस समय जुआ खेलनेवाले दो सगे भाइयों की माता की तरह दोनों का भला चाहता हूँ। हे नारदजी, मैं इन दोनों मित्रों को मिलाये रखने के लिए बड़ा कष्ट उठा रहा हूँ। अब आप वह रीति बतलाइए जिससे मेरा और मेरे कुटुम्बियों का भला हो।

नारद ने कहा—हे श्रीकृष्ण! विपत्तियाँ दो प्रकार की हैं, बाहरी और भीतरी। मनुष्य अपने या दूसरों के दोष से इन दो प्रकार की विपत्तियों में पड़ जाता है। इस समय तुम्हारे

एक बार श्रीकृष्ण ने देवर्षि नारद से कहा—नारदजी ! शत्रु, मूर्ख मित्र और चपल पण्डित से गुप्त बात न कहनी चाहिए—पृष्ठ २४१६

दोष से ही अक्रूर और आहुक से यह विपत्ति उपस्थित हुई है। बलदेव आदि योद्धा अक्रूर के वंशज हैं। वे धन के लोभ से, स्वेच्छानुसार अथवा दूसरों के द्वारा तिरस्कार के भय से तुम्हारे विरुद्ध हो गये हैं। तुमने तो ऐश्वर्य प्राप्त करके आहुक आदि को दे दिया है, इससे तुम स्वयं अपनी विपत्ति के कारण हुए हो। वमन किये हुए अन्न की तरह अब तुम उस ऐश्वर्य को ग्रहण नहीं कर सकते। तुमने बभ्रु और उग्रसेन को जो राज्य दे दिया है उसे अब, आपस में फूट पड़ जाने के डर से, तुम किसी तरह नहीं ले सकते। यदि कठिनाई से राज्य प्राप्त भी कर लो तो धन की भारी हानि और असंख्य मनुष्यों की मृत्यु हो जायगी। इसलिए अब ऐसा अस्त्र ग्रहण करो, जो लोहे से तो बनता नहीं है किन्तु अत्यन्त कोमल और हृदय-विदारक है। उस अस्त्र से कुटुम्बियों को गूँगा बना दो।

श्रीकृष्ण ने कहा—हे देवर्षि, जिस अस्त्र को लेकर आत्मीयों को गूँगा बनाया जा सकता है उस अलौह-निर्मित कोमल अस्त्र को मैं कैसे जानूँ? कृपाकर आप ही बताइए। २०

नारद ने कहा—श्रीकृष्ण! क्षमा, सरलता, नम्रता, यथाशक्ति अन्न-दान और योग्य पुरुष का सम्मान करना ही अलौह-निर्मित अस्त्र है। आत्मीय लोगों के निरादरसूचक कटु वचन सुनकर तुम अपने कोमल वचनों से उनकी क्रूरता को शान्त कर दो। प्रशान्तचित्त, सहाय-सम्पन्न महापुरुष के सिवा इस भारी बोझ को कोई नहीं उठा सकता, इसलिए तुम इन सब गुणों का अवलम्बन करके इसे उठाओ। दुर्गम प्रदेश में भारी बोझे को बलवान् बैल ही ले जा सकता है। फूट पड़ जाने से वंश भर का नाश हो जाता है। तुम यदुवंशियों के सरदार हो, अत-एव वही उपाय करो जिससे तुम्हारे रहते हुए आपस में फूट न पड़े। बुद्धि, क्षमा, इन्द्रिय-निग्रह और निर्लोभता आदि गुणों के न होने से कोई मनुष्य यशस्वी नहीं हो सकता। हमेशा अपने पक्ष की उन्नति करते रहने से धर्म, कीर्ति और आयु की वृद्धि होती है। अतएव वही उपाय करो जिससे कुटुम्ब का विनाश न हो। नीतिशास्त्र और युद्ध के विषय को तुम भली भाँति जानते हो। यादव, कुकुर, भोज, अन्धक और वृष्णिवंश के सभी लोग तुम्हारे कहे में हैं। ऋषि लोग भी तुम्हारी बुद्धि की प्रशंसा करते हैं। तुम सबके ईश्वर हो। भूत, भविष्य और वर्तमान कुछ भी तुमसे छिपा नहीं है। यादव लोग तुम्हारे आश्रित रहकर परम सुख भोगते हैं। ३१

बयासी अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से, मन्त्री की परीक्षा के लिए, कालकवृक्षीय मुनि का उपाख्यान कहना

भीष्म ने कहा—युधिष्ठिर! राजधर्म का यह उपाय तो तुमने सुना, अब दूसरा उपाय भी सुन लो। जिस मनुष्य के द्वारा धन की आमदनी हो उसकी रक्षा राजा अवश्य करे। कोई

नौकर या ग़ैर आदमी राजा को मन्त्रियों की चोरी का पता दे तो राजा को चाहिए कि उसकी बात सुने और मन्त्रियों से उसकी रक्षा करे; क्योंकि मन्त्री लोग अपनी ख़बर देनेवाले मनुष्य के शत्रु हो जायँगे और उसे मार डालने पर उतारू होंगे। उस समय राजा यदि उसकी रक्षा न करेगा तो वे दुरात्मा अवश्य ही उसे मार डालेंगे। इस विषय में कालकवृक्षीय मुनि ने कोसल-नरेश क्षेमदर्शी से जो कुछ कहा है वही प्रमाण-स्वरूप है। उस प्राचीन इतिहास को सुनो।

कालकवृक्षीय नाम के एक महर्षि ने कोसल-नरेश क्षेमदर्शी के राज्य में जाकर विशेष रूप से उनका हित किया था। उन्होंने एक कौए को पिंजड़े में बन्द करके कोसलराज के राज्य में जाकर यह कहना आरम्भ किया कि 'तुम लोग वायसी विद्या सीखो'। 'हमारे कौए भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों काल का वृत्तान्त बतला सकते हैं' यह कहते हुए वे राज्य में विचरने और अनेक राजपुरुषों की चोरी प्रकट करने लगे। इस तरह अनेक पुरुषों के साथ सारे राज्य १० में घूम-फिरकर महर्षि ने वहाँ का सब हाल जान लिया। इसके बाद वे कौए को लेकर राजा के दरबार में पहुँचे। उन्होंने अपना परिचय दिया कि 'मैं सर्वज्ञ हूँ' और राजा के मन्त्री से कहा—मन्त्री, मेरा कौआ कहता है कि तुमने अमुक स्थान पर राजा का इतना धन चुराया है, अमुक-अमुक लोग साक्षी हैं। बताओ, यह झूठ है या सच? महर्षि कालकवृक्षीय ने मन्त्री से यों कहकर अन्य कर्मचारियों के भी चोरी करने का हाल कहा। खोज करने पर महर्षि की बातें सच निकलीं।

महर्षि के इस प्रकार भण्डा फोड़ करने पर राज-कर्मचारियों ने रात में, ऋषि के सो जाने पर, उनके कौए को बाण से मार डाला। प्रातःकाल उठने पर जब महर्षि ने कौए को पिंजड़े में मरा हुआ पाया तब उन्होंने राजा से कहा—राजन्, आप प्राण और धन के रक्षक हैं इसलिए मैं आप से अभय माँगता हूँ। आपकी आज्ञा से मैंने आपके हित की बातें कही हैं। मैं यहाँ आपके हित के लिए ही आया हूँ। जैसे सारथि घोड़े को सिखाता है वैसे ही मित्र को हितोपदेश करना हितैषी का कर्तव्य है। जो मनुष्य

साहसपूर्वक 'आपकी यह हानि हो रही है' यह कहकर राजा को सावधान करता है वह राजा का परम मित्र है। उन्नति चाहनेवाले राजा को ऐसे मित्र की रक्षा अवश्य करनी चाहिए। तब राजा ने महर्षि से कहा—भगवन्, आप मेरे हित की बातें कहेंगे तो मैं क्यों न सुनूँगा? २० विश्वास रखिए, आप जैसा कहेंगे मैं वैसा ही करूँगा।

महर्षि ने कहा—राजन्, आपके कर्मचारियों के गुण-दोष बतलाने और उनके द्वारा आपको भय उपस्थित होने की बातें कहने के लिए ही मैं यहाँ आया हूँ। पण्डितों ने राज-कर्मचारियों के अनेक प्रकार के दोष बतलाये हैं। सारांश यह कि राज-कर्मचारियों का काम अत्यन्त नीच और महान् क्लेशप्रद है। राजा के पास रहना साँप के साथ खेलना है। राजाओं के असंख्य मित्र और शत्रु होते हैं। उन सबसे और राजा से कर्मचारियों को सदा भय बना रहता है। कर्मचारी लोग सदा सावधानी से राज-काज करते हैं। जो कर्मचारी अपनी उन्नति चाहे उसे सावधानी से काम करना चाहिए। उसके असावधान होने पर राजा कुपित हो उठता है और प्रज्वलित अग्नि के समान राजा के क्रोध में पड़कर वह भस्म हो जाता है। इसलिए राज-कर्मचारियों को अपनी जान हथेली में लेकर, क्रुद्ध साँप की तरह, यत्न से राजा की सेवा करनी चाहिए। राज-कर्मचारी लोग राजा के दुर्वचन सुनते, दुःख से निवास करते, राजा के सामने धीरे चलते और सदा उसका रुख़ देखते रहते हैं। इसलिए उन्हें सर्वदा सशंक रहना पड़ता है। यम ने कहा है कि राजा प्रसन्न होने पर देवता की तरह कल्याण करता है और कुपित होने पर अग्नि के समान भस्म कर डालता है। मैं इस समय आपका यथासम्भव हित करूँगा। मेरे जैसे मनुष्य विपत्ति पड़ने ३० पर बुद्धि से काम लेते हैं; किन्तु जैसे इस कौए ने आपकी भलाई के लिए अपने प्राण दिये हैं वैसे ही मुझे भी जान से हाथ धोने पड़ेंगे, इसलिए मैं अत्यन्त डरा हुआ हूँ। जो हो, इस विषय में न तो मैं आपकी निन्दा करना ठीक समझता हूँ और न आपके हितैषियों की ही। अब आप स्वयं अपना बुरा-भला सोचें, किसी की बुद्धि के भरोसे काम करना ठीक नहीं। आपके सब मन्त्री स्वार्थी हैं। कोई प्रजा का भला नहीं चाहता। उनके साथ मेरी शत्रुता हो गई है। वे रसोइएँ आदि से मिलकर, भोजन में विष दिलाकर, आपका नाश करके राज्य ले लेना चाहते हैं; किन्तु अनेक विघ्नों के कारण कृतकार्य नहीं हो सकते। उन लोगों के डर से मैं यहाँ से चला जाऊँगा। मैंने तपोबल से जान लिया है कि इन्हीं दुष्टों ने मेरे कौए को बाण से मार डाला है। हिंसक जलचरों से भरी हुई नदी के समान और सिंह बाघ आदि हिंसक जीवों तथा पत्थर-काँटों से युक्त हिमालय की गुफा के समान आपके राज्य का प्रबन्ध, मन्त्रियों की कुटिलता के कारण, दुरवगाह है। इस कौए के न रहने से मैं असहाय हो गया हूँ। पण्डितों का कहना है कि अन्धकार-मय दुर्ग दीपक की सहायता से और नदी-दुर्ग नाव की सहायता से पार किया जा सकता है; किन्तु राज-दुर्ग को पार करने के लिए कोई उपाय नहीं है। ४०

कर्मचारियों की नीचता से इस समय आपके राज्य का भविष्य अन्धकारमय हो रहा है। मेरी कौन कहे, आप भी उन पर विश्वास नहीं कर सकते। इस राज्य में भले और बुरे सभी एक से समझे जाते हैं। इसलिए यहाँ का रहना अच्छा नहीं। न्याय के अनुसार दुष्टों का नाश करके सज्जनों को बेखटके करना सर्वथा उचित है; किन्तु यहाँ उसके विपरीत सज्जनों का नाश करके दुष्टों को निरापद् किया जाता है। यहाँ जमकर रहना युक्ति-सङ्गत नहीं है। बुद्धिमान् मनुष्य को ऐसी जगह से शीघ्र चल देना चाहिए। भवँरों से युक्त सीता नाम की नदी में जैसे नाव आदि डूब जाती है वैसे ही आपके राज्य में सज्जन सताये जाते हैं। लगातार नीच मनुष्यों के संसर्ग में रहने से आपका स्वभाव भी दुष्टों का सा हो गया है। इस समय आपको विष मिले हुए मधुर भोजन के समान, साँप से युक्त कुएँ के समान, बेत और काँटों से भरी हुई ऊँचे किनारोंवाली अथाह नदी के समान और गिद्ध, गीदड़, कुत्तों से घिरे हुए राजहंस के समान समझना चाहिए। जैसे महावृक्ष का आश्रय लेकर कूड़ा-करकट जमा हो जाता है और फिर ईंधन बनकर उसी वृक्ष को जला देने में सहायक होता है वैसे ही आपके मन्त्री लोग आपके ही आश्रय में पलकर अब आपका नाश करने पर उतारू हैं। इस-लिए आपको शीघ्र उनसे बचने का उपाय करना चाहिए। आपने जिनका पालन
५० किया है वही सब मिलकर इस समय आपकी प्रिय वस्तुओं का नाश करना चाहते हैं। आपका और आपके मन्त्रियों का चरित्र, आपकी जितेन्द्रियता, मन्त्रियों के साथ आपका हेल-मेल और प्रजा के प्रति आपका अनुराग देखने के लिए ही मैं सशङ्कचित्त से ससर्प गृह के समान आपके घर में आया हूँ। जैसे भूखे मनुष्य को भोजन प्रिय होता है वैसे ही आप पर मेरा अनुराग है और जिस तरह प्यास न होने पर जल से प्रेम नहीं होता उसी तरह आपके मन्त्रियों पर मुझे अश्रद्धा है। महाराज, मैं आपका उपकार करना चाहता हूँ इसी से मन्त्री लोग मुझ पर कुपित हैं; किन्तु मैं उन पर क्रोध नहीं करता, केवल उनके दोष ही देखता हूँ। जो हो, चुटैल साँप की तरह शत्रु से हमेशा डरते रहना चाहिए।

तब राजा ने कहा—महर्षि, आप कुछ दिनों तक और मेरे यहाँ ठहरिए। मैं आपका यथोचित सत्कार करूँगा। जो लोग आपसे शत्रुता करेंगे वे मेरे यहाँ न रह पावेंगे। इस समय आप ही नियमानुसार दण्ड का विधान करके और उचित-अनुचित का उपदेश देकर मेरा कल्याण कर सकते हैं।

महर्षि ने कहा—महाराज, आप पहले मन्त्रियों को कौए के मारने का अपराधी न ठहराकर धीरे-धीरे उन्हें निर्बल कीजिए। तब प्रत्येक का अपराध प्रमाणित कीजिए और एक-एक करके सबका नाश कर डालिए। एक साथ सब पर दोषारोपण करना ठीक नहीं। बहुत से लोग मिलकर सुदृढ़ वस्तु को भी तोड़ सकते हैं, इसलिए आपको इस विषय में सावधान

किये देता हूँ। मैं ब्राह्मण हूँ, इसलिए स्वभावतः कोमल और दयालु हूँ। मैं अपने समान सभी की मङ्गल-कामना करता हूँ। फिर आपके साथ तो मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध है। आपके पिता मेरे परम मित्र थे। मेरा नाम कालकवृत्तीय है। आपके पिता के शासन-काल में एक बार अराजकता फैल गई थी। उस समय उसे शान्त करने के लिए मैंने सब काम छोड़कर तप किया था। इस समय आपके स्नेह से यह हितोपदेश कर रहा हूँ। अब आप इन अविश्वासी मनुष्यों पर विश्वास न कीजिएगा। आपको अनायास राज्य की प्राप्ति हुई है, सुख-दुःख पर दृष्टि रखकर इच्छानुसार उसका भोग कीजिए। केवल मन्त्रियों पर विश्वास रखकर धोखा न खाइए। ६०

हे धर्मराज, महर्षि कालकवृत्तीय की ये बातें सुनकर कोसलराज ने उन्हें अपना पुरोहित बना लिया। तब सारे राज्य में आनन्द-मङ्गल होने लगा। पुरोहित-पद पर नियुक्त होकर महर्षि कालकवृत्तीय ने अपनी बुद्धि से थोड़े ही दिनों में कोसलराज को सारी पृथिवी का अधीश्वर बना दिया और उनके भले के लिए अनेक यज्ञ किये। इस प्रकार कालकवृत्तीय का हितोपदेश सुनकर कोसलराज सारी पृथिवी को विजय करने में समर्थ हुए। ६८

तिरासी अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से मन्त्री आदि राज-कर्मचारियों के लक्षण कहना

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह! सभासद्, सहायक, सुहृद्, मन्त्री और सेनापति आदि पदाधिकारी कैसे होने चाहिएँ?

भीष्म ने कहा—हे धर्मराज! जो मनुष्य लज्जावान्, सत्यवादी, सरल-स्वभाव, जितेन्द्रिय और बोलने में निपुण हो उसी को सभासद् के पद पर नियुक्त करना। आपत्काल में शूर मन्त्री, ज्ञानवान् ब्राह्मण, उत्साही और सन्तोषी मनुष्य की सहायता लेनी चाहिए; क्योंकि कुलीन मनुष्य सम्मानित होकर कभी अपनी शक्ति को छिपा नहीं रखता और राजा प्रसन्न हो या अप्रसन्न, पीड़ित हो या सुखी, कभी उसको छोड़ने की इच्छा नहीं करता। इसलिए राजा ऐसे मनुष्यों के साथ मित्रता करे। तुम स्वदेशी, कुलीन, बुद्धिमान्, रूपवान्, विद्वान्, प्रगल्भ और अनुरक्त मनुष्यों को सेनापति आदि के पद पर नियुक्त करना। नीच कुल में उत्पन्न, लोभी, निर्लज्ज, कठोर मनुष्य जब तक धन पाते हैं तभी तक राजा की सेवा करते हैं। कुलीन, सच्चरित, इङ्गितज्ञ, दयालु, देश-काल के विधान के ज्ञाता और स्वामिभक्त मनुष्य को ही मन्त्रिपद पर राजा नियुक्त करे। विद्वान्, सुशील, सच्चरित्र, सत्यवादी महानुभावों को धन, उत्तम वस्त्र और सम्मान द्वारा प्रसन्न रखना चाहिए। ऐसे मनुष्य तुम्हारे सुख के समय सुख भोगने पर आपत्काल

१० में कभी तुम्हारा परित्याग नहीं करेंगे। जो अनार्य मन्दबुद्धि मनुष्य नियम का उल्लंघन करते हों उनसे नियम का पालन कराना। बहुसंख्यक मनुष्यों को छोड़कर एक मनुष्य का आश्रय लेना ठीक नहीं; किन्तु एक मनुष्य यदि बहु-गुण-सम्पन्न हो तो उसके लिए अनेक मनुष्यों को छोड़ दे। पराक्रमी, यशस्वी, बात का धनी, अभिमानशून्य, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, बलवान् मनुष्यों का आश्रय लेनेवाला और काम-क्रोध-लोभ या भय के वश होकर धर्म को न छोड़नेवाला मनुष्य ही वास्तव में सज्जन है। ऐसे मनुष्यों की विशेष परीक्षा किये विना ही उनसे सलाह लेनी चाहिए। कुल-शील-सम्पन्न, क्षमावान्, कार्य-कुशल, शूर-वीर, सत्यवादी और कृतज्ञ होना ही सज्जन मनुष्यों के प्रधान लक्षण हैं। जो विज्ञ मनुष्य ऐसे गुणों से सम्पन्न होता है उसके शत्रु भी प्रसन्न होकर उससे मित्रता कर लेते हैं। उन्नति चाहनेवाला बुद्धिमान् राजा मन्त्रियों के गुण-दोषों की परीक्षा करे। जो राजा अपनी उन्नति चाहता हो उसे विद्वान्, कुलीन, निर्लोभ, विश्वास-पात्र, तेजस्वी, क्षमावान्, धैर्यवान्, स्वामिभक्त, कार्यकुशल, गम्भीर, निष्कपट, मितभाषी, अभिमान-शून्य, देशकालज्ञ, दयावान्, कर लेने में निपुण, कर्तव्य-अकर्तव्य जाननेवाले, अनुभवी, परम्परा-
२४ गत मनुष्यों को कोषाध्यक्ष आदि पदों पर नियुक्त करना चाहिए। जिसके बन्धु-बान्धव निस्तेज हों, ऐसे हीन बुद्धिवाले मनुष्य को मन्त्री बना लेने से हमेशा सब कामों में सन्देह बना रहता है। जिस तरह मन्दबुद्धि मन्त्री कुलीन और धर्म-अर्थ-काम से युक्त होने पर भी अच्छी सलाह नहीं दे सकता उसी तरह नीच कुल में उत्पन्न मनुष्य बुद्धिमान् होने पर भी महत्त्व-पूर्ण कामों को देखने में वैसे ही समर्थ नहीं हो सकता जैसे राह बतानेवाला साथी न होने से अन्धा गन्तव्य स्थान पर पहुँचने में समर्थ नहीं होता। जो मनुष्य दृढ़ विचार का नहीं है वह विद्वान्, बुद्धिमान् और उपाय का जानकार होने पर भी किसी काम को पूरा नहीं कर सकता। मूर्ख लोग काम का आरम्भ तो कर देते हैं किन्तु यह नहीं सोच सकते कि इस काम का क्या फल होगा। जो मन्त्री स्वामिभक्त नहीं है वह विश्वास के योग्य नहीं होता, इसलिए राजा गुप्त बात
३० कभी उसको न बतलावे; क्योंकि जैसे वायु की सहायता पाकर आग बड़े-बड़े वृक्षों को भस्म कर देती है वैसे ही स्वामिभक्ति-हीन मन्त्री, दूसरे मन्त्रियों के साथ षड्यन्त्र रचकर, राजा को हानि पहुँचाता है। राजा कुपित होकर पदाधिकारियों को कभी पदच्युत करता, कभी धमकाता और कभी फिर उन पर प्रसन्न होता है। राजा के ऐसे व्यवहार को स्वामिभक्त मनुष्य ही [illegible] [illegible] [illegible]ते हैं। मन्त्री भी किसी समय राजा पर कुपित होते हैं; किन्तु जो मन्त्री राजा
न [illegible] महर्षि ने कहा—मह[illegible] क्रोध को रोक लेता है। बुद्धिमान् राजा को ऐसे दुःख-सुख के
[illegible] उन्हें निर्बल [illegible]हिए। कुटिल मनुष्य गुणवान् और स्वामिभक्त भी क्यों न हो,
वह [illegible]कर [illegible] ही क्यों न हो किन्तु उसे गुप्त बात कभी न बतलावे। जो
[illegible] को मे प्रजा का सम्मान न करता हो, वह शत्रु के समान है।

उससे सलाह न ली जाय। क्रोधी, लोभी, प्रशंसा चाहनेवाला, अभिमानी और जिससे मन न मिलता हो ऐसे मनुष्य को कभी सलाह की बात न सुनने दे। नया आया हुआ मनुष्य कितना ही गुणवान् और स्वामिभक्त क्यों न हो, जिसका पिता अन्याय करने के कारण निकाल दिया गया हो वह मनुष्य यदि पिता के स्थान पर नियुक्त हुआ हो और किसी कारण जिसकी जायदाद एक बार ज़ब्त की जा चुकी हो, ऐसे मनुष्य कितने ही गुणवान् क्यों न हों; किन्तु बुद्धिमान् राजा कभी उनसे सलाह न करे। जो मनुष्य अनुभवी, प्रतिभाशाली, विशुद्ध-स्वभाव, ४० शास्त्रज्ञ, गुणवान्, आत्मतुल्य, सुहृद्, सत्यवादी, सच्चरित्र, गम्भीर, लज्जावान्, पुण्यवान्, प्रगल्भ, सन्तोषी, देश-काल का मर्मज्ञ, शूर-वीर, युद्ध में निपुण तथा राजनीतिज्ञ हो, जो नम्रता के कारण सभी मनुष्यों को प्रसन्न रख सकता हो, नगर और गाँव के निवासी धार्मिक लोग जिस पर विश्वास करते हों और जो अपने और शत्रुओं के सब विषयों को जानता हो वही मनुष्य राजा की सलाह सुनने योग्य होता है। उपर्युक्त गुणों से युक्त और सम्मानित मन्त्री निस्सन्देह राजा की मङ्गल-कामना करता रहेगा।

राजा, प्रजा और शत्रुओं के दोष ढूँढ़ते रहना मन्त्री का कर्तव्य है। मन्त्रियों की मन्त्रणा के बल से ही राज्य की वृद्धि होती है। विज्ञ मन्त्री लोग शत्रुओं के छिद्र तो देख लेते हैं किन्तु स्वयं अपने दोषों को शत्रुओं से छिपाये रहते हैं। जैसे कछुआ अपने अङ्ग-प्रत्यङ्ग छिपाये रखता है वैसे ही मन्त्री को अपनी त्रुटि और मन्त्रणा गुप्त रखनी चाहिए। राजा मन्त्रणा को कवच के समान और दूसरे लोग उसे अङ्ग के समान समझें। मन्त्रणा और ५० जासूस ये दो राज्य की रक्षा के मूल कारण हैं। मन्त्री लोग, जीविका के लिए, राजा का साथ देते हैं। क्रोध, अभिमान और ईर्ष्या के त्याग देने से राजा और मन्त्री दोनों सुखी रह सकते हैं। राजा निष्कपट होकर हमेशा मन्त्रियों के साथ सलाह करे। वह तीन मन्त्रियों को नियुक्त करे। तीनों मन्त्रियों की सम्मति लेकर और उस पर विशेष रूप से विचार करके फिर धर्म-अर्थ-काम के जाननेवाले गुरु के पास जाकर उससे अपना अभिप्राय प्रकट करे। उन चारों का मत सुनकर गुरु एक सिद्धान्त निश्चित कर दे। वह सिद्धान्त किसी साधारण मत के अनुसार ही क्यों न हो, किन्तु राजा उसी के अनुसार चले। मन्त्र-निर्णय-कुशल लोग मन्त्रणा करने की यही रीति बतला गये हैं। विचारपूर्वक काम करने से प्रजा को अनायास वश में किया जा सकता है। राजा जिस स्थान पर मन्त्रियों के साथ विचार करे वहाँ स्त्री, अन्धे, लूले-लँगड़े, कुबड़े, बौने, हिजड़े और दुर्बल मनुष्य तथा कुत्ता, गीदड़ आदि तिर्यग्योनि के जीव न आने पावें। नाव पर या कुश-कासहीन खुले निर्जन स्थान में बैठकर मन्त्रणा करे। मन्त्रणा न तो इशारों में की जाय और न इतने ज़ोर से कि कोई बाहरी सुन ले। ५७

चौरासी अध्याय

बृहस्पति और इन्द्र का संवाद

भीष्म ने कहा कि हे धर्मराज, एक प्राचीन इतिहास कहता हूँ जिसमें बृहस्पति और इन्द्र का संवाद है। एक बार इन्द्र ने बृहस्पति से पूछा—भगवन्, मनुष्य किस काम के करने से संसार में प्रामाणिक और गुणवान् प्रसिद्ध हो सकता है ?

बृहस्पति ने कहा—हे देवराज, अद्वितीय शान्ति-गुण का अवलम्बन करके मनुष्य संसार में प्रामाणिक और गुणवान् विख्यात होता है और सबको प्रिय होता है। जो मनुष्य मुँह से बोलता तो है नहीं, हमेशा भौंहें ताने रहता है वह सबको अप्रिय हो जाता है और जो मनुष्य सबसे हँसी-ख़ुशी से बोलता है वह सबको प्रिय रहता है। शान्ति को त्यागकर दान करना मनुष्यों को वैसे ही रुचिकर नहीं होता जैसे बिना तरकारी की रसोई और मीठी बातें कहकर मनुष्यों का सर्वस्व हर लेने पर भी लोग उसके वश में रहते हैं। सारांश यह कि मीठी बातों से सभी सन्तुष्ट रहते हैं। इसलिए दण्ड देते समय भी राजा मीठी बातें किया करे। मधुर वचनों से अनेक काम सिद्ध होते हैं और हमेशा चित्त प्रसन्न रहता है। पुण्यात्मा, नम्र-स्वभाव और मधुरभाषी मनुष्य की बराबरी कोई नहीं कर सकता।

हे धर्मराज! देवगुरु बृहस्पति का यह उपदेश सुनकर जैसे इन्द्र ने इसी के अनुसार आचरण किया था, वैसे ही तुम भी करो। ११

पचासी अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से मन्त्रियों के लक्षण कहना

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, राजा किस रीति से प्रजा का पालन करे कि स्वर्ग का अधिकारी और संसार में यशस्वी हो ?

भीष्म ने कहा—राजन्, राजा को पक्षपात छोड़कर प्रजा का पालन करना चाहिए। इससे उसे संसार में धर्म और यश की प्राप्ति होती है।

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, अब यह बताइए कि किस मनुष्य के साथ कैसा व्यवहार किया जाय। आपने मन्त्रियों के जिन गुणों का वर्णन किया है, मेरी समझ में तो, इन सब गुणों का एक मनुष्य में होना असम्भव है।

भीष्म ने कहा—धर्मराज! तुम ठीक कहते हो। एक मनुष्य में इन सब गुणों का होना सम्भव नहीं। तुम जिस तरह के मनुष्यों को मन्त्रि-पद पर नियुक्त करोगे उनके गुणों का संक्षेप में वर्णन सुनो। विद्वान्, स्नातक, पवित्र, प्रगल्भ चार ब्राह्मण, अस्त्रधारी महापराक्रमी आठ क्षत्रिय, अतुल धनवान् इक्कीस वैश्य, विनीत-स्वभाव, शुद्धहृदय तीन शूद्र और सेवा आदि

आठ गुणों से युक्त एक पौराणिक सूत को मन्त्रियों के पद पर नियुक्त करना। सब मन्त्री पचास वर्ष की आयुवाले, विनीत, बुद्धिमान्, पक्षपातहीन, विचार करने में निपुण, लोभ और शिकार आदि सात प्रकार के दोषों से निर्दोष हों। तुम्हारे मन्त्रियों में जो चार ब्राह्मण, तीन शूद्र और एक सूत है, इन आठ मन्त्रियों के साथ विचारपूर्वक नियमों का निर्णय करके तब राज्य में उन नियमों की घोषणा करना। इस प्रकार तुम प्रजा की रक्षा किया करना। किसी वस्तु के लिए दो आदमी झगड़ते हों तो उनसे वह वस्तु ले लेना तुमको उचित नहीं। असङ्गत विचार करने पर अधर्म के कारण तुमको और तुम्हारी प्रजा को भी दुःख उठाना पड़ेगा और सारी प्रजा, बाज़ के डर से चिड़ियों की तरह, तुम्हारे राज्य से भागने लगेगी। राजा, मन्त्री और राजकुमार यदि धर्म के आसन पर बैठकर प्रजा का पालन करने में अन्याय करते हैं तो उनके हृदय में अवश्य ही भय उत्पन्न होता है और वे नरकगामी होते हैं। राज-कर्मचारी लोग यदि सावधानी से राज-काज नहीं करते तो उनको भी राजा के साथ घोर नरक में गिरना पड़ता है। बलवान् से सताये हुए दुर्बल मनुष्य का आर्तनाद सुनकर राजा को उस अनाथ की रक्षा करनी चाहिए। अभियोग सुनते समय राजा दोनों पक्षों की साक्षी ले। जिस अनाथ मनुष्य का कोई साक्षी न हो उसके मामले पर राजा विशेष रूप से ध्यान दे। जिस मनुष्य पर जैसा दोष प्रमाणित हो उसी के अनुसार राजा उसे दण्ड दे। धनी मनुष्यों को अर्थदण्ड, निर्धनों को बन्धन-दण्ड और दुराचारियों को शारीरिक दण्ड देना राजा का कर्तव्य है। सज्जनों को चेतावनी देना ही यथेष्ट है। जो मनुष्य राजा को मार डालने की चेष्टा करे उसको प्राण-दण्ड देना चाहिए। आग लगानेवाले, चोर और व्यभिचारी मनुष्य को (प्राण-) दण्ड देने से राजा या राज-कर्मचारियों को तनिक भी अधर्म नहीं होता, प्रत्युत ऐसा करना शासकों का धर्म ही है। जो राजा मूर्खतावश स्वार्थसिद्धि के लिए मनुष्यों को अन्याय से दण्ड देता है वह इस लोक में अपकीर्ति पाता और परलोक में घोर नरक भोगता है। अपराधी के सिवा अन्य मनुष्यों को दण्ड देना सर्वथा अनुचित है। पिता के अपराध करने पर पुत्र को दण्ड न देना चाहिए; किन्तु पुत्र से यह कहे कि तुम अपने पिता को बुलवाकर हाज़िर करो और कुछ दिनों तक पुत्र को बँधुवा रक्खे। यदि ऐसा करने पर भी वह अपने पिता को हाज़िर न कर सके तो उसे छोड़ देना चाहिए; क्योंकि राज्य से भागकर देश-निकाले की सज़ा तो अपराधी अपने आप भोग रहा है। कैसी ही विपत्ति क्यों न आ पड़े; किन्तु दूत को कभी न मारना चाहिए। यथार्थवक्ता दूत का वध करनेवाला राजा, मन्त्रियों समेत, नरक को जाता और अपने पितरों को भ्रूणहत्या का पापी बनाता है।

दूत, द्वारपाल, दुर्ग और नगर के रक्षक कुलीन, प्रियभाषी, बोलने में चतुर, कार्यकुशल, सत्यवादी और स्मरण रखनेवाले हों। मन्त्री धर्मशास्त्र के मर्मज्ञ, सन्धि और विग्रह के अभिज्ञ,

३० बुद्धिमान्, धैर्यवान्, कुलीन, लज्जावान्, बलवान् और गोपनीय बातों को गुप्त रखनेवाले हों। सेनापति में भी ये सब गुण होने चाहिएँ और उसमें मन्त्र, आयुध तथा व्यूह-रचना में निपुणता, शूरता, शीत और ग्रीष्म आदि क्लेशों की सहनशीलता तथा शत्रुओं के छिद्रान्वेषण की चतुरता होनी चाहिए। राजा को उचित है कि शत्रुओं को अपना विश्वास दिलावे; किन्तु स्वयं किसी का विश्वास न करे। उसे अपने पुत्र का भी विश्वास न करना चाहिए। हे धर्मराज, यही ३४ शास्त्र का यथार्थ मर्म है कि राजा किसी का विश्वास न करे।

छियासी अध्याय

नगर के लक्षणों का वर्णन

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, राजा को अपने नगर में किस तरह रहना चाहिए? वह पुराने नगर में रहे या स्वयं नगर बसाकर उसमें रहे?

भीष्म ने कहा—बेटा! पुत्र, बन्धु-बान्धव और सजातीय लोगों सहित राजा जिस स्थान पर रहे वहाँ करने योग्य कामों का निश्चय और स्थान की रक्षा का प्रबन्ध अवश्य कर ले। इस समय जिस विषय का वर्णन करता हूँ इसी के अनुसार काम करो। दुर्ग छः प्रकार के हैं—धन्वदुर्ग, महीदुर्ग, गिरिदुर्ग, मनुष्यदुर्ग, मृद्दुर्ग और वनदुर्ग। सबसे पहले इन दुर्गों का निर्माण करके तब नगर बसावे। नगर में छः प्रकार के क़िले, अस्त्र-शस्त्र, हाथी, घोड़े, रथ और चारों ओर मज़बूत दीवार और खाई हों। उसमें अनेक विद्वानों, बुद्धिमानों, शिल्पियों और धार्मिक लोगों की बस्ती हो। उसमें तेजस्वी मनुष्य, चबूतरे और बाज़ार हों। वहाँ किसी तरह का खटका न हो। उस नगर में शूर-वीर, धनी मनुष्य रहते हों। उसमें निरन्तर वेदध्वनि, देवपूजा और उत्सव १० होता हो। ऐसे नगर में राजा अपनी सेना और अनुयायी मन्त्रियों समेत निवास करे। वहाँ ख़ज़ाना, सेना और मित्रों की वृद्धि करे; न्यायालय स्थापित करे और नगर तथा देश से सब दोषों को दूर करे। अस्त्र-शस्त्रों की वृद्धि और अन्न आदि का संग्रह करे। लकड़ी, लोहा, भूसा, अङ्गार, सींग, हड्डियाँ, बाँस, मज्जा, तेल, चरबी, औषध, सन, सर्जरस, बाण, चमड़ा, ताँत, बेत, मूँज, बल्वज और बन्धन का संग्रह करे। बावड़ी और कुआँ आदि जलाशय खुदवावे। बरगद और पीपल आदि ऐसे वृक्षों की रक्षा करे जिनमें दूध रहता हो। आचार्य, ऋत्विक्, पुरोहित, स्थपति, ज्योतिषी, चिकित्सक, बुद्धिमान्, जितेन्द्रिय, मेधावी, कार्य-कुशल, शास्त्रज्ञ, कुलीन और पराक्रमी मनुष्यों का सम्मान करे। धार्मिक पुरुषों का सत्कार और पापियों को दण्ड देकर चारों वर्णों को अपने-अपने धर्म में लगावे। जासूसों के द्वारा नगर और गाँव की सारी प्रजा का भीतरी और बाहरी भाव मालूम करके उसका यथोचित प्रबन्ध करे। जासूसों की तैनाती, मन्त्रणा, ख़ज़ाना और दण्ड के विधान में विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए। ये सब राज्य की

रक्षा के मूल कारण हैं। गाँवों, नगरों और सारे राज्य में जासूसों को तैनात करके उदासीन, शत्रु और मित्र के कामों पर विशेष दृष्टि रखनी चाहिए। मित्रों पर अनुग्रह रखने और शत्रुओं का निग्रह करने में हमेशा ध्यान दे। यज्ञ करना, दान देना और प्रजा का पालन करना राजा का कर्तव्य है। जिस काम के करने से धर्म की हानि होती हो उसको राजा कभी न करे। अनाथ, दीन, दरिद्र, वृद्ध और विधवा की जीविका का प्रबन्ध करे। आश्रम में रहनेवाले तपस्वियों को वस्त्र, भोजन और बर्तन देकर उनका सम्मान करता रहे और नम्रतापूर्वक उनसे राज्य-सम्बन्धी काम-काज और अपने सुख-दुःख की बातें कहता रहे। उत्तम कुल में उत्पन्न, शास्त्र के मर्मज्ञ बेलाग मनुष्यों को शय्या, आसन और भोजन देता हुआ हमेशा सम्मान करता रहे। किसी प्रकार की विपत्ति आ पड़ने पर ऐसे ही मनुष्यों का विश्वास करना चाहिए। चोर तक तपस्वियों का विश्वास करते हैं। इसलिए उनके पास धन रखने और उनसे सलाह लेने में तो किसी प्रकार का सन्देह न करे; किन्तु लगातार उनके यहाँ न तो आवे-जावे और न अधिक उनकी आव-भगत करे; क्योंकि जब चोरों को उनके यहाँ ख़ज़ाना छिपाने का भेद मालूम हो जायगा तब वे उनके प्राण-घातक हो जायँगे। राजा को अपने राज्य में, दूसरों के राज्य में, सामन्त के नगरों में और जङ्गलों में एक-एक तपस्वी को टिका रखना चाहिए और उनसे मित्रता बनाये रखकर सम्मानपूर्वक उन्हें अन्न आदि देते रहना चाहिए। किसी तरह की विपत्ति के समय तपस्वी लोगों की शरण लेने पर वे राजा की यथेष्ट सहायता करेंगे। हे धर्मराज, इस प्रकार के नगर में राजा को रहना चाहिए। २०–३३

सत्तासी अध्याय

राज्य की रक्षा के लिए प्राकार आदि का निर्माण

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, राज्य की रक्षा और उसकी वृद्धि किस प्रकार करनी चाहिए?

भीष्म ने कहा—धर्मराज, राज्य की रक्षा और उसकी वृद्धि करने के उपायों का वर्णन ध्यान देकर सुनो। एक गाँव का, दस गाँवों का, बीस गाँवों का, सौ गाँवों का और हज़ार गाँवों का एक-एक अधिपति बनाना चाहिए। ये सब अधिकारी अपने-अपने उच्च अधिकारियों के सामने अपने अधीनस्थ मनुष्यों के मामले पेश किया करें अर्थात् एक गाँव का स्वामी दस गाँवों के अधिकारी के पास, दस गाँववाला बीस गाँववाले के पास, बीस गाँववाला सौ गाँव-वाले के पास और सौ गाँवोंवाला हज़ार गाँव के अधिकारी के पास अपने-अपने गाँवों की रिपोर्ट भेजा करे। और हज़ार गाँवों का अधिकारी राजा के पास अपने मामले पेश करे। उन सबके अधीनस्थ गाँवों की सब वस्तुएँ उन्हीं के अधिकार में रहें; किन्तु वे लोग क्रमशः अपने-अपने उच्च अधिकारियों को 'कर' दिया करें। सौ गाँवों के अधिकारी को, उसके वेतन-स्वरूप, एक बड़ा गाँव देना चाहिए और हज़ार गाँव के रक्षक को एक क़स्बा दिया जाय। इन अधि-

कारियों की देख-भाल के लिए एक फुर्तीला बुद्धिमान् मन्त्री नियुक्त करना चाहिए और प्रत्येक नगर के काम-काज की निगरानी के लिए एक-एक सर्वाध्यक्ष रक्खा जाय। जैसे नक्षत्रों के उच्च स्थान पर ग्रह स्थित होते हैं वैसे ही सर्वाध्यक्ष लोग सब सभासदों के उच्च पद पर नियुक्त होकर जासूसों द्वारा उनके कामों की देख-रेख रक्खें। राजा अधिकारियों, चोरों और दुष्टों से प्रजा की रक्षा करे। ख़रीद-फ़रोख़्त, रास्ते की दूरी, घरेलू ख़र्च और लागत के पर्ते का हिसाब करके व्यापारियों पर राजा कर लगावे। माल की तैयारी और खपत तथा कारीगरी के श्रेणी-विभाग के अनुपात से शिल्पियों पर कर लगाया जाय। प्रजा से इतना अधिक कर लेना ठीक नहीं कि जिससे उसको क्लेश हो। कार्य के परिणाम को सोचे विना उसका नियम बना देना अच्छा नहीं। कोई निष्प्रयोजन और निष्फल काम नहीं करता। राजा और करदाता दोनों के कामों की सफलता पर ध्यान रखकर कर लेने का नियम बनाना चाहिए। लोभ में पड़कर राज्य और कृषि-वाणिज्य आदि का नाश कर डालना ठीक नहीं। अत्यधिक कर लेने से राजा सबका शत्रु हो जाता है, तब उसके कल्याण की सम्भावना कैसे हो सकती है? जो मनुष्य सबका अप्रिय हो जाता है वह कभी अभीष्ट फल नहीं पा सकता। जैसे बछड़ा दूध पीकर बलवान् होने से भारी बोझा ले जाने में समर्थ होता है और दूध न पाने से दुर्बल होकर किसी काम का नहीं रह जाता वैसे ही प्रजा, राजा के परिमित कर लेने से, समृद्धि-शाली होकर सत्कर्म करने में समर्थ होती है किन्तु अपरिमित कर लेने से दरिद्र होकर किसी शुभ काम करने योग्य नहीं रह जाती। इसलिए राजा अत्यधिक कर न ले। जो राजा भली भाँति प्रजा की रक्षा करता है उसको बहुत लाभ होता है। गाढ़े समय में काम आने के लिए राजा उस धन की रक्षा करे जो कि प्रजा से, कर के रूप में, वसूल हुआ है। राज्य ही उसका ख़ज़ाना है और वह भी ऐसा कि मानों घर में रक्खा हो। राजा क्या समीप की और क्या दूर की तथा क्या सधन क्या निर्धन सब प्रकार की प्रजा की यथाशक्ति रक्षा करे। जो राजा जङ्गलियों और डकैतों से प्रजा की रक्षा करता है उसकी प्रजा अपने राजा के सुख में सुखी और दुःख में दुखी होती है; वह उस पर कभी कुपित नहीं होती। राजा धन लेने की इच्छा से प्रजा को भय दिखाता हुआ कहे 'देखो, हमारे राज्य पर शत्रुओं का हमला होने का भय है; किन्तु वह भय, मुझे सहायता मिलने से, फले हुए बाँस की तरह शीघ्र नष्ट हो जायगा। शत्रु लोग डाकुओं को लेकर विनाश करने के लिए हमारे राज्य पर हमला करना चाहते हैं। इस भयङ्कर आपत्ति के समय हम, तुम लोगों की रक्षा के लिए, धन चाहते हैं। इस आपत्ति के टल जाने पर तुम लोगों का धन वापस कर दिया जायगा और यदि शत्रु लोग आक्रमण करके तुम्हारा धन लूट लेंगे तो वह कभी न मिल सकेगा। शत्रुओं का हमला होने पर तुम्हारे पुत्र-स्त्री आदि का नाश हो जायगा। तब फिर तुम्हारा धन किस काम आवेगा? बाल-बच्चों की रक्षा के लिए ही धन

का संग्रह किया जाता है। पुत्रों के समान तुम लोगों की उन्नति देखकर हम सन्तुष्ट होते हैं, इसी कारण इस विपत्ति से राज्य का बचाव करने के लिए तुम लोगों से धन माँगते हैं। तुम यथाशक्ति धन देकर राज्य की रक्षा करने में हाथ बटाओ। विपत्ति आ जाने पर धन का मोह करना ठीक नहीं।'

बुद्धिमान् राजा इस प्रकार धन लेने का उपाय रचकर, पैदल कर्मचारी भेजकर, आदर के साथ मीठी-मीठी बातें कहकर प्रजा से धन संग्रह करे। कोट बनवाने, नौकर-चाकरों का पालन करने और संग्राम का भय आदि अनेक कारण दिखाकर वैश्यों से धन लेना राजा का कर्तव्य है। वैश्यों की उपेक्षा की जायगी तो वे राज्य छोड़कर चले जायँगे, इसलिए राजा को उनके साथ अच्छा बर्ताव करना चाहिए। राजा वैश्यों का प्रिय करे, उन्हें दिलासा दे, उनकी रक्षा करे और आवश्यकता पड़ने पर धन से उनकी सहायता करे। इस प्रकार सुरक्षित रहकर वे लोग राज्य, व्यवहार और खेती की उन्नति कर सकेंगे। अतएव दयालु सावधान राजा प्रेम दिखाकर उनसे परिमित कर लिया करे। वैश्यों का कल्याण करना बहुत सुलभ है और इसके समान श्रेष्ठ काम दूसरा नहीं है। ४०

अट्ठासी अध्याय

प्रजा से कर लेने की रीति का वर्णन

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, यदि राजा ख़ासा मालदार होने पर भी ख़ज़ाना बढ़ाना चाहे तो किस उपाय से काम ले?

भीष्म ने कहा—धर्मराज, धर्मात्मा राजा को सदा प्रजा की भलाई के काम करते रहना चाहिए। देश, काल, बुद्धि और बल के अनुसार राजा प्रजा की रक्षा और उसके तथा अपने हित के काम करे। जैसे भौंरा वृक्ष का नाश न करके उसका रस लेता है, जैसे मनुष्य गाय के थनों को नष्ट न करके और बछड़ों को दुःख न देकर दूध दुहता है, जैसे जोंक मनुष्यों के शरीर से रक्त पीती है, जैसे बाघिन अपने बच्चों को दाँतों से तो पकड़ती है पर उन्हें दाँत नहीं लगने देती और जैसे चूहा सोते हुए मनुष्य के पैर में धीरे से काटता है वैसे ही राजा प्रजा को दुःख न देकर उससे—धीरे-धीरे कर की वृद्धि करके—धन सञ्चित करे। जैसे बछड़ों पर पहले हलका बोझा रखकर फिर क्रमशः भारी बोझा लादा जाता है और पहले उन्हें पतली नाथ पहनाकर फिर धीरे-धीरे मोटी पहनाई जाती है वैसे ही प्रजा पर धीरे-धीरे कर बढ़ाना चाहिए। एकबारगी अधिक कर बढ़ा देने से प्रजा को क्लेश होता है और क्लेश पाने से वह विद्रोह कर बैठती है। सबके साथ समान बर्ताव करना बहुत कठिन है अतएव प्रधान-प्रधान मनुष्यों को दिलासा देकर उनके द्वारा अन्य लोगों पर सरलता से शासन करना चाहिए। उचित समय १०

पर योग्य कार्य के लिए, प्रजा को समझा-बुझाकर, विशेष 'कर' वसूल करना चाहिए। अयोग्य कार्य के लिए कुसमय में कर लेना ठीक नहीं।

हे धर्मराज, हमारी कही हुई इन बातों को झूठ न समझो। ये उपाय प्रजा का पालन करने के हैं। बिना युक्ति के शासन करने से घोड़ा भी बिगड़ बैठता है। वेश्या, कुटनी, धूर्त, जुआरी, मदिरा बेचनेवाले आदि निन्द्य काम करनेवालों से हमेशा राज्य में लड़ाई-झगड़े की आशङ्का रहती है। राज्य में इनकी वृद्धि होने से भले आदमियों को असुविधा होती है, अतएव राजा को सदैव इन्हें दबाये रहना चाहिए। मनु का वचन है कि बिना सङ्कट-काल के राजा को प्रजा से कुछ न माँगना चाहिए। यदि सब लोग इस मर्यादा का पालन न करते तो आज संसार का लोप हो गया होता। राजा को प्रजा पर शासन करने का पूरा अधिकार है। जो राजा भली भाँति प्रजा का पालन और शासन नहीं करता वह प्रजा के चतुर्थांश पापों का भागी होता है। राजा का कर्तव्य है कि सदा दुष्टों को दण्ड देता रहे। जो राजा ऐसा नहीं करता वह पापी है; और भली भाँति प्रजा की रक्षा की जाती है तो उसके पुण्य का चतुर्थांश राजा को मिलता २० है। शराबियों और कामी मनुष्यों को कभी आश्रय न देना चाहिए। उनसे सदा हानि की आशङ्का रहती है। वे केवल स्वयं मदिरा-मांस-भक्षण, पर-स्त्री-गमन और पर-धन-हरण करके ही सन्तुष्ट नहीं होते, प्रत्युत दूसरों को भी उसी मार्ग पर लगाते हैं। जिन लोगों ने कभी कुछ नहीं लिया है वे विपत्ति पड़ने पर कुछ माँगें तो, दबाव से नहीं किन्तु, दयाभाव से धन देकर उनकी सहायता करनी चाहिए। तुम्हारे राज्य में डाकू और भिखमङ्गे न रहने पावें। इनको धन देना प्रजा की हानि करना है। प्रजा का उपकार करनेवाले और उसकी उन्नति चाहनेवाले मनुष्यों को ही राज्य में रहने दे। अपकार करनेवालों को राज्य में न रहने दे। जो लोग वाजिब से अधिक कर वसूल करें उनको दण्ड देना चाहिए। कृषि, वाणिज्य और गो-रक्षा आदि बहुत से काम एक मनुष्य से नहीं सँभल सकते, अतएव अनेक मनुष्यों द्वारा ये काम कराये जायँ। किसान और व्यापारी आदि को यदि राज-कर्मचारियों या चोरों का भय रहता है तो इससे राजा की निन्दा होती है। ख़िलत और दावत आदि देकर, धनी पुरुषों का सम्मान करके, उनसे राजा यह कहे कि आप लोग मुझ पर और प्रजा पर कृपा करते रहें। इसमें सन्देह नहीं कि धनिक लोग राज्य के प्रधान स्तम्भ हैं और सबसे श्रेष्ठ हैं। धनवान्, समझदार, शूर, धार्मिक, तपस्वी, सत्यवादी और बुद्धिमान् पुरुषों के द्वारा प्रजा की रक्षा होती है। हे धर्मराज, तुम सब प्राणियों पर स्नेह करते रहना। सहनशीलता, सरलता और सचाई ३३ से प्रजा का पालन करना। ऐसा करने से मित्र, कोष और राज्य की वृद्धि होगी।

नवासी अध्याय

राजनीति का वर्णन

भीष्म ने कहा—हे धर्मराज, जिन वृक्षों के फल खाये जाते हैं उन्हें समझदारों ने ब्राह्मणों का धन बतलाया है। अतएव तुम्हारे राज्य में उन वृक्षों को न काटा जाय। ब्राह्मणों के ख़र्च के बाद जो कुछ बचे उससे अन्य लोगों का पालन किया जाय। अपराध हो जाने पर भी ब्राह्मण की सम्पत्ति का हरण न करे। निर्धनता के कारण ब्राह्मण यदि अपने निर्वाह के लिए राज्य से चले जाने की इच्छा करें तो राजा बाल-बच्चों समेत उस ब्राह्मण की जीविका का प्रबन्ध कर दे। इतने पर भी यदि वह ब्राह्मण न लौटे तो ब्राह्मणों के समाज में जाकर राजा यों कहे—'यदि आप यहाँ से चले जायँगे तो यहाँ की प्रजा किसके आसरे रहेगी?' यदि वह ब्राह्मण कहे कि आपने पहले मेरी जीविका का प्रबन्ध क्यों नहीं किया तो इस उलहने को सुन ले। यदि ब्राह्मण सुख भोगने की इच्छा से भागा जाता हो तो उसे सुख की वस्तुएँ देने का भी वादा कर ले; किन्तु मैं इससे सहमत नहीं हूँ। कृषि, वाणिज्य और गो-रक्षा आदि से मनुष्यों का निर्वाह होता है सही; किन्तु वेदों के द्वारा मनुष्यों को स्वर्ग की प्राप्ति होती है, इसलिए जो मनुष्य वैदिक कामों में विघ्न डालते हैं वे चोर हैं। उन चोरों का नाश करने के लिए विधाता ने क्षत्रियों को उत्पन्न किया है। शत्रुओं का नाश, प्रजा की रक्षा, युद्ध में पराक्रम और यज्ञ करके तुम क्षत्रिय-धर्म का पालन करना। जो राजा प्रजा की रक्षा करता है वही श्रेष्ठ है और जो प्रजा का पालन नहीं कर सकता उसका जीवन व्यर्थ है। अपने और दूसरों के राज्य का हाल जानते रहना राजा के लिए परम आवश्यक है, इसके लिए जासूसों को हमेशा तैनात रखना चाहिए। आत्मीयों को दूसरों से, ग़ैरों को आत्मीय जनों से, आत्मीय लोगों को आत्मीय लोगों से और ग़ैर लोगों को ग़ैर लोगों से बचाये रखना राजा का कर्तव्य है। सबसे अपनी रक्षा करते हुए राज्य का बचाव करना चाहिए। बुद्धिमानों का मत है कि इन सबकी रक्षा राजा की रक्षा से ही है। सदा अपने व्यसनों और दोषों पर ध्यान रखना चाहिए। प्रजा पिछले कामों की प्रशंसा करती है या नहीं, यह जानने के लिए हमेशा राज्य में जासूसों को तैनात रक्खे। राज्य में जो लोग जमकर संग्राम करनेवाले, धर्मात्मा और धैर्यवान् हों उनका या जो लोग राजा, मन्त्री अथवा किसी का आश्रय लेकर निर्वाह करें उनका या जो लोग राजा की प्रशंसा या निन्दा करें, उनका सत्कार करता रहे। कोई मनुष्य सबकी पसन्द का काम नहीं कर सकता। शत्रु, मित्र और उदासीन सभी के होते हैं। १०

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, राजा और प्रजा दोनों ही बल और गुण में समान होते हैं तो उनमें एक मनुष्य क्यों श्रेष्ठ होकर सब पर शासन करता है? २०

भीष्म ने कहा—बेटा, राजा प्रजा के ही बराबर बलवान् होते हुए भी अपनी चतुरता से हमेशा अपनी रक्षा कर सकता है और सबमें श्रेष्ठता प्राप्त करता है। जैसे बड़े साँप छोटे साँपों को, चर जीव अचर प्राणियों को और बड़े दाँतोंवाले बिना दाँतों के जीवों को खा लेते हैं वैसे ही बलवान् मनुष्य दुर्बलों को दबाये रहते हैं। इसलिए बलवान् शत्रु से राजा हमेशा सावधान रहे। मौक़ा पाते ही, गिद्ध की तरह, शत्रु लोग राज्य पर टूट पड़ते हैं। अधिक कर से डरे हुए व्यापारी जङ्गलों में रहकर मँहगा-सस्ता सौदा तो नहीं बेचते? अधिक लगान से पीड़ित किसान राज्य को छोड़कर तो नहीं भाग रहे हैं और राज्य के कर्मचारी पीड़ित तो नहीं हैं? इसकी जाँच करता रहे। देवता, पितर, मनुष्य, साँप, राक्षस और पशु-पक्षी सभी राजा के द्वारा तृप्त होते हैं। हे धर्मराज! राज-काज और प्रजा-पालन के सम्पूर्ण नियमों का वर्णन हो २६ चुका; अब इसी विषय को विस्तारपूर्वक सुनो।

नब्बे अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से उतथ्य और मान्धाता का संवाद कहना

भीष्म ने कहा कि हे युधिष्ठिर! ब्रह्मज्ञानी उतथ्य ने मान्धाता को जिस धर्म का उपदेश किया था, उसका वर्णन करता हूँ, सुनो। उतथ्य ने कहा—धर्म की रक्षा के लिए राजा की उत्पत्ति हुई है, इसलिए उसका स्वेच्छाचारी होना उचित नहीं। राजा मनुष्यों का रक्षक है। धर्म करने से राजा स्वर्ग को और अधर्म करने से नरक को जाता है। धर्म से प्रजा की स्थिति होती है और धर्म राजा के आश्रित है, इसलिए जो राजा धर्म की रक्षा करता है वही वास्तव में राजा है। परम धार्मिक ऐश्वर्यवान् राजा साक्षात् धर्म का स्वरूप है। जिस राजा के राज्य में अधर्म होता है उसकी निन्दा देवता भी करते हैं। धर्म के पालन करनेवालों के मनोरथ सफल होते और लोग उन्हीं का अनुकरण करते हैं। जब पापाचरण में रोक-टोक नहीं की जाती तब धर्म का नाश हो जाता है, अधर्म की वृद्धि होती है, मनुष्य हमेशा भयभीत रहते हैं और धर्म के अनुसार भले आदमियों का किसी वस्तु पर अधिकार नहीं रहता। स्त्री, पशु, खेत और घर पर भी किसी का अधिकार नहीं रहता। देवताओं की पूजा, पितरों का श्राद्ध और अतिथियों का १० सत्कार नहीं होता। धर्मात्मा ब्राह्मण वेदपाठ और यज्ञ आदि कर्मों को छोड़ देते हैं। बूढ़ों के समान सब मनुष्य उत्साहहीन हो जाते हैं। महर्षियों ने दोनों लोकों को ध्यान में रखकर धर्मस्वरूप राजा को उत्पन्न किया है, अतएव धार्मिक राजा ही यथार्थ राजा है और जिस राजा में धर्म नहीं है वह वृषल-स्वरूप है। धर्म का नाम वृष है, उसके नष्ट करनेवाले को देवताओं ने वृषल कहा है। इसलिए राजा यथाशक्ति धर्म की वृद्धि करता रहे। धर्म की वृद्धि होने से प्रजा की वृद्धि होती है और धर्म के नष्ट होने से प्रजा का नाश हो जाता है। अतएव धर्म की हानि

न होने दे। धर्म से धन की उत्पत्ति होती और धन का सञ्चय होता है, इसी से इसका नाम धर्म है। धर्म के प्रभाव से दुष्कर्मों का नाश हो जाता है। विधाता ने प्राणियों की उन्नति या अभ्युदय के लिए धर्म का विधान किया है, अतएव प्रजा के हित के लिए राजा धर्म की रक्षा करे। धर्म सबसे श्रेष्ठ है। धर्म के अनुसार जो प्रजा की रक्षा करता है वही राजा है। अतएव हे मान्धाता, तुम काम और क्रोध को छोड़कर धर्म के अनुसार आचरण करो। धर्म से ही राजाओं का भला होता है। धर्म की उत्पत्ति के स्थान ब्राह्मण हैं, अतएव सदा ब्राह्मणों का सम्मान और प्रेमपूर्वक उनके मनोरथ पूर्ण करना। ब्राह्मणों के मनोरथ सफल नहीं होते हैं तो अनेक प्रकार के भय, मित्रों का नाश और शत्रुओं की वृद्धि होती है। २०

राजा बलि बचपन से ही ब्राह्मणों से कुढ़ता था, इसलिए लक्ष्मी उसे छोड़कर इन्द्र के पास चली गई। यह देखकर बलि को बड़ा कष्ट हुआ। ईर्ष्या और अभिमान करने का यही फल होता है। इसलिए राजन्, तुम सावधान रहना जिसमें तुम्हारी राजलक्ष्मी विचलित न हो। वेद का वचन है कि अधर्म के द्वारा लक्ष्मी के गर्भ से दर्प नाम का पुत्र पैदा हुआ है। सुरों, असुरों और अनेक राजर्षियों को यह नीचा दिखा चुका है। जो मनुष्य दर्प को वश में कर सकता है वही राजा होने योग्य है और जो स्वयं उसके वश हो जाता है वह तो उसका दास है। यदि तुम बहुत दिनों तक सुख भोगना चाहो तो अधर्म और दर्प को कभी पास न फटकने दो। मतवाले, बावले, मूर्ख, दण्डित, मन्त्री और स्त्रियों से अधिक हेलमेल न करना। पर्वत पर न चढ़ना और बेडौल क़िले में प्रवेश न करना। हाथी, घोड़ा और साँप से बचे रहना। रात में न चलना। ३० कृपणता, अभिमान और क्रोध का त्याग करो। अपरिचित, स्वेच्छाचारिणी, कुमारी, हिजड़ी और पर-स्त्री के साथ सहवास न करना। राजा की असावधानी से अधर्म बढ़ जाता है और अधर्म बढ़ जाने पर अच्छे कुलों में हिजड़े, लूले-लँगड़े, गूँगे और मूर्ख वर्णसंकर पैदा होने लगते हैं। अतएव प्रजा की भलाई के लिए राजा को सदा सावधान रहना चाहिए। राजा की असावधानी से अधर्म की वृद्धि, गरमी के दिनों में सरदी, शीतकाल में गरमी, अतिवृष्टि, अनावृष्टि आदि अनेक उत्पात होने लगते हैं। प्रजा को अनेक प्रकार की व्याधियाँ घेर लेती हैं। राजा के नाश की सूचना देनेवाले धूमकेतु आदि ग्रह और अनेक अशुभ नक्षत्र आकाश में दिखाई देने लगते हैं। और भी अनेक उत्पात होते रहते हैं। जो राजा अपनी रक्षा और प्रजा का पालन करने में मन नहीं लगाता वह, प्रजा समेत, शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। राजा के असावधान होने पर अकेले मनुष्य का धन दो मनुष्य छीन लेते हैं और दो का धन कई मनुष्य छीन ले जाते हैं। लड़कियाँ उड़ा ली जाती हैं और अपनी वस्तु पर किसी मनुष्य का अधिकार नहीं रह जाता। ४०

इक्यानबे अध्याय

उतथ्य और मान्धाता का संवाद

उतथ्य ने कहा—हे मान्धाता, बादलों के यथासमय पानी बरसाने और धर्मपरायण राजा के सद्व्यवहार से जो सम्पत्ति पैदा होती है उससे प्रजा का सुखपूर्वक भरण-पोषण होता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जो अपने धर्म-कर्म को तो जानते नहीं किन्तु तरह-तरह का जञ्जाल किया करते हैं वे, कपड़ा धोने में अनाड़ी धोबी के समान, निकम्मे हैं। शूद्रों का सेवा-कर्म, वैश्यों का कृषि-वाणिज्य, क्षत्रियों का दण्डनीति के अनुसार प्रजा-पालन और ब्राह्मणों का ब्रह्मचर्य, तप, वेदपाठ और सत्यभाषण मुख्य धर्म है। जो राजा प्रजा के आचरणों में सुधार कर सकता है वही यथार्थ राजा है और प्रजा के पिता के समान है। राजा के व्यवहार से ही सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग की प्रवृत्ति होती है। राजा ही युग है, राजा की असावधानी से तीनों अग्नियों, चारों वेदों, दक्षिणा सहित यज्ञ, चारों वर्णों के धर्म और चारों आश्रमों का लोप हो जाता है और राजा के पुत्र, स्त्री, बन्धु-बान्धव आदि सब दुखी रहते हैं। धार्मिक राजा प्रजा १० का ईश्वर और अधर्मी राजा प्रजा का विनाशक है। अधर्मी राजा के राज्य में हाथी, घोड़ा, गाय, ऊँट, खच्चर, गदहा आदि सब जीव दुःख पाते हैं। दुर्बलों की रक्षा के लिए राजा की उत्पत्ति हुई है, अतएव उनकी रक्षा करने में बड़ा पुण्य और रक्षा न करने में भारी पाप है। सारी प्रजा राजा के लिए परिवार-स्वरूप है; वह राजा के ही आश्रित रहकर अपना निर्वाह करती है, इसलिए राजा के धर्महीन होने पर सभी को दुःख उठाना पड़ता है। दुर्बल की, मुनि की और साँप की दृष्टि असह्य होती है, इसलिए दुर्बल को मत सताना। दुर्बलों को सदा अपमान सहना पड़ता है, इसलिए इनकी आह से बचे रहना। दुर्बलों की सहायता न करने पर उनके कोपानल में राजा के वंश का समूल नाश हो जाता है। अतएव दुर्बल मनुष्य बलवान् से भी बढ़कर है। राजा यदि अपमानित, आहत और आर्त मनुष्यों की रक्षा नहीं करता तो उसे दैवी दुःख उठाना पड़ता है। तुम कभी बलवान् का पक्ष लेकर दुर्बलों को न सताना; क्योंकि अत्याचार से पीड़ित होकर प्रजा के आँसू बहाने पर निस्सन्देह राजा के पुत्रों और पशुओं का २० नाश हो जाता है। पापों का फल तत्काल न मिले तो क्या हुआ; किन्तु उनका फल कभी न कभी अवश्य भोगना पड़ता है। पापियों को यदि उनके कर्मों का फल नहीं मिल जाता तो उनके बेटों, पोतों और नातियों को भोगना पड़ता है। जब प्रजा के झुण्ड के झुण्ड, भिखमंगों की तरह, भीख माँगने लगते हैं तब शीघ्र राजा का नाश हो जाता है। यदि राज-कर्मचारी लोग काम और लोभ के वश होकर अनीति से प्रजा का धन हरने लगते हैं तो इस पाप से राजा का सर्वनाश हो जाता है। जैसे बड़े वृक्ष की छाया में रहनेवाले प्राणी वृक्ष के नष्ट हो जाने से बिना घर-द्वार के हो जाते हैं वैसे ही राजा पर आश्रित रहनेवाली प्रजा और कर्मचारी राजा का विनाश

होने पर आश्रयहीन हो जाते हैं। जिस राजा की प्रजा राजभक्त और धार्मिक होती है उसके राज्य में सत्कर्मों की वृद्धि होती और दुष्कर्मों का नाश हो जाता है। राज्य में दुष्ट लोग जान-बूझकर सज्जनों को सताते हैं तो उनके दुष्कर्मों का फल राजा को भोगना पड़ता है। जो राजा दुष्टों का दमन करता और सम्मानित मन्त्रियों के साथ मन्त्रणा करके उन्हें युद्ध के लिए प्रेरित करता है वह राज्य की वृद्धि करके मुद्दत तक राज्य कर सकता है। जो राजा भले कामों और अच्छी बातों की सराहना करता है वह परम धार्मिक है। सबका भाग देकर भोजन, मन्त्रियों का यथायोग्य सम्मान ३० और दर्प करनेवाले बलवान् मनुष्यों का नाश करना राजा का धर्म है। मन-वचन-कर्म से प्रजा की रक्षा करनी चाहिए। पुत्र को भी स्नेह-वश क्षमा करना अनुचित है। चोरों का दमन, संग्राम में विजय और प्रजा का पालन करना तथा दुर्बलों की सहायता कर उनका बल बढ़ाना चाहिए। जो मनुष्य पाप करता हो या पाप की बातें करता हो, वह कैसा ही प्रिय क्यों न हो, उसको क्षमा न करे। जो राजा व्यापारियों की पुत्र के समान रक्षा करता है और उनकी मर्यादा को नष्ट नहीं करता वही यथार्थ राजा है। उसे राग और द्वेष को छोड़कर श्रद्धा के साथ बहुत दक्षिणा समेत यज्ञ करना और दीन, दरिद्र, अनाथ तथा वृद्धों का पालन-पोषण करना चाहिए। जो राजा मित्रों की वृद्धि, शत्रुओं का ह्रास और सज्जनों का आदर करता है वही धर्मात्मा है। सत्य का पालन, भूमि का दान, अतिथियों और नौकर-चाकरों के साथ अच्छा सलूक करना राजा का धर्म है। जो राजा प्रजा-पालन करने में दण्डनीति का यथोचित उपयोग ४० करता है वह इस लोक और परलोक में उसका फल पाता है। राजा को धार्मिक पुरुषों पर कृपा करनी चाहिए। जितेन्द्रिय होने से ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है और इन्द्रियों के वश में हो जाने से नरक में गिरना पड़ता है। ऋत्विक्, पुरोहित और आचार्य का सम्मान करना राजा का कर्तव्य है। जैसे यमराज प्राणियों को बिना भेद-भाव के दण्ड देते हैं वैसे ही न्याय के अनुसार राजा प्रजा को दण्ड दे। राजा की तुलना इन्द्र के साथ की जाती है, इसलिए राजा जो धर्म स्थिर करे वही यथार्थ धर्म है। राजा हमेशा सावधानी के साथ क्षमा, धैर्य और बुद्धि से काम ले। सज्जनों और दुर्जनों की परीक्षा, प्राणियों का संग्रह, यथाशक्ति दान, मधुर वचन बोलना और प्रजा का पालन करना राजा का धर्म है। अनुभवहीन राजा प्रजा की रक्षा नहीं कर सकता। राजकाज सँभालना बड़ा कठिन काम है। जो राजा बुद्धिमान्, पराक्रमी, शूर-वीर और दण्डनीति का जानकार होता है वही शासन कर सकता है। जो बल-हीन और मन्दबुद्धि होता तथा दण्डनीति नहीं जानता है वह किसी काम का नहीं। कुलीन, अनुरक्त, शास्त्रज्ञ मन्त्रियों समेत राजा को आश्रमवासी तपस्वियों तक के कामों की जाँच करते रहना चाहिए। अब तुम सब धर्मों को समझ गये। देश हो या परदेश, कहीं ५० भी अपने कर्तव्य में त्रुटि न होने दे। धर्म, अर्थ और काम, इनमें धर्म ही श्रेष्ठ है। धर्म-

परायण मनुष्य क्या इस लोक में और क्या परलोक में सर्वत्र सुख पाता है। मीठी बातों से सम्मानित व्यक्ति राजा के लिए पुत्र, स्त्री और अपने प्राणों तक का त्याग कर देने को तैयार रहता है। इसलिए तुम सबका सम्मान करते रहना। मनुष्यों का संग्रह करना, मीठी बातें करना, दान देना, पवित्रता और सावधानी से रहना राजा के लिए अति श्रेयस्कर है, अतएव इन कामों की उपेक्षा न करना। राजा हमेशा शत्रुओं के दोष देखता रहे; किन्तु अपने दोषों को किसी पर प्रकट न होने दे। इन्द्र, वरुण, यम और प्राचीन राजर्षियों ने ऐसा ही व्यवहार किया है। तुम भी उन्हीं का अनुकरण करो। देवर्षि, गन्धर्व और पितरगण इस लोक और परलोक में धर्मात्मा राजा का गुण गाते हैं।

भीष्म कहते हैं कि हे धर्मराज, महर्षि उतथ्य का उपदेश सुनकर महाराज मान्धाता ने उसी के अनुसार आचरण करके सारी पृथिवी को अपने अधीन कर लिया था। तुम भी ६० मान्धाता की तरह पृथिवी का पालन करो, इसी धर्म से स्वर्ग में स्थान पाओगे।

बानबे अध्याय

वामदेव और वसुमना का संवाद

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, धर्मात्मा राजा को किस प्रकार का आचरण करना चाहिए?

भीष्म कहते हैं कि बेटा, तत्त्वदर्शी महर्षि वामदेव ने राजा वसुमना को जिस धर्म का उपदेश किया था उसका वर्णन सुनो। एक बार कोशलराज बुद्धिमान् राजा वसुमना ने महर्षि वामदेव से पूछा—भगवन्, आप मुझे ऐसा उपदेश दीजिए जिससे मैं कभी अपने धर्म का त्याग न करूँ। तब महर्षि वामदेव ने, ययाति के समान प्रभावशाली, कोशलराज से कहा—महाराज, धर्म का अवलम्बन करो। धर्म से बढ़कर और कुछ नहीं है। धर्मपरायण राजा पृथिवी को विजय करते हैं। जो राजा धर्म को अर्थ-सिद्धि का कारण समझकर, अर्थात् धर्म को धन से श्रेष्ठ मानकर, धर्म की वृद्धि करते हैं वे धर्म के प्रभाव से महान् तेजस्वी होते हैं और जो अधर्मी राजा बलपूर्वक धन बढ़ाना चाहते हैं वे धर्म और अर्थ दोनों से हाथ धो बैठते हैं। जो राजा स्वयं धर्मघातक है और जिसके मन्त्री भी पापिष्ठ हैं वह दण्डनीय है। ऐसा राजा शीघ्र ही परिवार समेत विनष्ट हो जाता है। अभिमानी, निकम्मा और स्वेच्छाचारी राजा समग्र भूमण्डल का १० अधिपति होने पर भी नष्ट हो जाता है। ईर्ष्याहीन, जितेन्द्रिय और बुद्धिमान् राजा समुद्र के समान क्रमशः बढ़ता रहता है। राजा को कभी धर्म, अर्थ, काम, बुद्धि और मित्रों से सन्तुष्ट न हो जाना चाहिए; अर्थात् सदा इनकी वृद्धि करते रहना चाहिए। इन्हीं से संसार के सब काम चलते हैं और इन्हीं से यश, लक्ष्मी और प्रजा की वृद्धि होती है।

महाराज, इस उपदेश के अनुसार आचरण करके राजा ऐश्वर्य, कीर्ति और प्रजा की वृद्धि कर सकता है। जो धर्मात्मा राजा इस उपदेश के अनुसार चलकर धर्म और अर्थ की वृद्धि करता है उसकी उन्नति निस्सन्देह होती है। रूखे, कृपण और अन्याय से प्रजा को दण्ड देनेवाले राजा का नाश हो जाता है। जिस बुद्धिहीन राजा को अपनी भूलें नहीं सूझतीं वह इस लोक में अपकीर्ति पाकर परलोक में नरक भोगता है। जो राजा सबका यथोचित सम्मान करता है और दानी तथा मधुरभाषी होता है उसकी विपत्ति को, अपनी विपत्ति समझकर, सब लोग दूर करने का यत्न करते हैं। जिसका धर्मोपदेशक गुरु नहीं है और जो किसी से धर्म का मर्म नहीं पूछता वह, इच्छानुसार धन संग्रह करने का अभिलाषी, राजा अधिक दिनों तक सुखी नहीं रह सकता और जो धर्मोपदेशक गुरु को प्रधान मानता हुआ सब कामों की देख-भाल रखता है तथा धर्म के अनुसार धन का संग्रह करता है वह जन्म भर सुख भोगता है। १९

तिरानबे अध्याय

वामदेव और वसुमना का संवाद

वामदेव ने कहा—महाराज, दुर्बलों पर अन्याय करनेवाले पापिष्ठ दुर्विनीत राजा के अन्यान्य वंशज भी उसी का अनुकरण करने लगते हैं अतएव उसका राज्य शीघ्र नष्ट हो जाता है। प्रजा यदि किसी धार्मिक राजा के आचरणों का अनुकरण करती है तो वह कुमार्गगामी राजा के कुटुम्बियों को असह्य हो जाता है। शास्त्र का न जाननेवाला राजा उद्दण्डतापूर्ण व्यवहार करने से शीघ्र चौपट हो जाता है। जो राजा पूर्वजों की रीति का अनुकरण नहीं करता और जो संग्राम में शत्रुओं को पराजित नहीं कर पाता वह क्षत्रिय-धर्म का पालन नहीं कर सकता। जो व्यक्ति पहले उपकार कर चुका हो किन्तु इस समय शत्रु बनकर सामना कर रहा हो उसको परास्त तो कर दे, पर उसका अनादर न करे। अपनी शक्ति को प्रकट करते रहना, प्रसन्न रहना और विपत्ति के समय मनुष्यों की सहायता करना राजा का कर्त्तव्य है। ऐसा व्यवहार करने से राजा सबका प्रिय रहता है और उसका राज्य चिरस्थायी होता है। कारणवश यदि एक बार किसी का अप्रिय करे तो फिर उसके साथ प्रिय व्यवहार करता रहे। प्रिय व्यवहार करने से शत्रु भी उपकार करने लगते हैं। राजा मिथ्या न बोले और मनुष्यों के प्रार्थना न करने पर भी उनकी भलाई करे। काम, क्रोध और द्वेष के वश होकर धर्म का परित्याग करना उचित नहीं। पूछे जाने पर अण्ट-शण्ट उत्तर देना, जल्दबाज़ी और ईर्ष्या करना सर्वथा अनुचित है। प्रिय मनुष्यों पर अति प्रसन्न, अप्रिय मनुष्यों पर १० अत्यन्त असन्तुष्ट और आर्थिक कठिनाई पड़ने पर चिन्तित न होना चाहिए। हमेशा प्रजा के

हित का ध्यान रक्खे। जो राजा सदा प्रजा का हित करता रहता है उसके सब काम सिद्ध होते हैं और उसकी सम्पत्ति चिरस्थायी होती है। सदाचारी और हितैषी होना और भक्तों का सम्मान करना तथा जितेन्द्रिय, अनुरक्त, कार्यकुशल और सावधान मनुष्यों को कोषाध्यक्ष आदि बड़े पदों पर नियुक्त करना चाहिए। मूर्ख, इन्द्रियलोलुप, दुराचारी, लोभी, शठ, जुआरी, शराबी और शिकारी मनुष्यों को उच्च अधिकारी बना देने से राजा की सम्पत्ति नष्ट हो जाती है। जो राजा जितेन्द्रिय और प्रजा का पालन करने में निपुण होता है उसकी प्रजा की वृद्धि होती और वह सुखी रहता है। जो राजा विश्वासपात्र गुप्त दूतों द्वारा अन्य राजाओं का भेद लेता रहता है वह शीघ्र ही समृद्धिमान् हो जाता है। बलवान् राजा का अपकार करके 'हम तो उससे बहुत दूर रहते हैं' यह सोचकर कभी निश्चिन्त न हो जावे; क्योंकि असावधान रहने से मौक़ा पाकर २० वह बाज़ की तरह टूट पड़ता है। अपना बल देखकर बुद्धिमान् राजा को दुर्बल राजाओं पर चढ़ाई करनी चाहिए। बलवान् राजा पर आक्रमण न करे। धर्मात्मा राजा को अपने पराक्रम से विजय करके, धर्म के अनुसार प्रजा का पालन और संग्राम में शत्रुओं का वध करना चाहिए। संसार के सब पदार्थ नश्वर हैं, अतएव राजा धर्मपरायण होकर स्वर्ग के हेतु प्रजा का पालन करे। दुर्ग आदि की रक्षा, युद्ध, न्यायानुसार प्रजा की रक्षा, मन्त्रणा और प्रजा के सुख का साधन, इन पाँच उपायों से राज्य की वृद्धि होती है। किन्तु ये सब उपाय एक मनुष्य से नहीं हो सकते, इसलिए विश्वासपात्र मनुष्यों को इन कामों पर नियुक्त करके राजा को अपना राज्य चिरस्थायी बनाना चाहिए। दानी, विनीत, पवित्र और प्रजा का त्याग न करनेवाला मनुष्य ही राजा बनाया जाय। राजा यदि दूसरों से हित की बातें सुनकर, अपने मत को छोड़कर, तदनुसार काम करता है तो सारी प्रजा उसके वश में हो जाती है। जो राजा द्वेषवश हितैषियों की बातें न सुनकर अहित चाहनेवालों की बातें सुनता है और सज्जनोचित व्यवहार ३० नहीं करता वह क्षत्रिय-धर्म का पालन नहीं कर सकता। दण्डित मन्त्री, भीषण दुर्ग, पर्वत, हाथी, घोड़ा, साँप और स्त्रियों से युक्त रहता हुआ राजा सदा अपनी रक्षा करता रहे। जो निर्बुद्धि राजा क्रोध के वश होकर प्रधान मन्त्रियों को निकालकर नीच मन्त्रियों को पसन्द करता है और द्वेषवश भाई-बन्धुओं का उपकार नहीं करता वह शीघ्र ही विपद्ग्रस्त होकर नष्ट हो जाता है। जो चतुर राजा अप्रिय मनुष्यों को भी प्रिय वचनों से वश में कर लेता है वह यशस्वी होता है। कुसमय में कर लेना, और प्रिय मनुष्यों पर अत्यधिक अनुराग करना उचित नहीं। अप्रिय मनुष्यों से भी हेलमेल बनाये रहे। राजा सदा अच्छे काम किया करे। कौन मनुष्य भक्त हैं, कौन भय से शरणागत हैं और उनमें कौन-कौन दोष हैं? इन बातों पर हमेशा ध्यान रखना चाहिए। अपने को बलवान् समझकर राजा दुर्बलों पर विश्वास न कर ले। मौक़ा पाकर असावधान पर दुर्बल मनुष्य, गिद्ध की तरह, टूट पड़ते हैं। पापी लोग गुणवान् और

प्रियवादी राजा का भी अनिष्ट करते हैं, अतएव उन पर विश्वास करना ठीक नहीं। राजनीति का वर्णन करते समय महाराज ययाति कह गये हैं कि राजा को साधारण शत्रुओं का नाश करने में भी असावधानी न करनी चाहिए। ३९

चौरानबे अध्याय

वामदेव का वसुमना से राजधर्म कहना

वामदेव ने कहा—राजन्, राजा को बिना ही युद्ध किये शत्रुओं का पराजय करना चाहिए। जो राजा संग्राम करके शत्रुओं को जीतता है वह सभ्य-समाज में बुरा समझा जाता है। राजा दृढ़मूल हुए बिना अप्राप्त वस्तुओं के पाने की इच्छा न करे। मूल दृढ़ न होने से कभी कोई वस्तु प्राप्त नहीं हो सकती। वही राजा दृढ़मूल है जिसके कि मन्त्री हृष्ट-पुष्ट हैं, देश अति समृद्ध है और जिसकी प्रजा सन्तुष्ट, धनवान् तथा वशीभूत है। जिस राजा के सैनिक सन्तुष्ट और शत्रुओं को धोखा देने में निपुण होते हैं वह थोड़ी सी सेना लेकर भी सारी पृथिवी को जीत सकता है। राजा जिस समय अपने को समर्थ समझे उसी समय अपने बल और बुद्धि से शत्रुओं का राज्य और धन छीन लेने का इरादा करे। उन्नतिशील राजा प्राणियों पर दया और अपनी रक्षा करता हुआ क्रमशः राज्य की वृद्धि कर सकता है। जो राजा आत्मीय लोगों के साथ हमेशा मिथ्या व्यवहार करता रहता है वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। जो राजा लगातार शत्रुओं को पीड़ित नहीं करता उसके शत्रु कभी कम नहीं होते और जो क्रोध को सँभाल सकता है उसके साथ कोई मनुष्य शत्रुता नहीं करता। बुद्धिमान् राजा सज्जनों के विरुद्ध काम न करके हमेशा उनके हितकर काम किया करता है। जो राजा कर्तव्य पूरा कर १० लेता है वह कभी सन्तापित और समाज में अपमानित नहीं होता। महाराज, जो राजा मनुष्यों के साथ इस तरह का व्यवहार करता है वह इस लोक और परलोक में भी विजयी होता है।

भीष्म ने कहा—हे धर्मराज, महाराज वसुमना ने महर्षि वामदेव के इसी उपदेश के अनुसार व्यवहार किया था। तुम भी वैसा ही करो। ऐसा करने पर निस्सन्देह दोनों लोकों को विजय करोगे। १३

पञ्चानबे अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से युद्ध-धर्म कहना

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, विजय की इच्छा करनेवाले बलवान् राजा को क्या करना चाहिए ?

भीष्म ने कहा कि धर्मराज, बलवान् राजा दूसरे राज्य में जाकर वहाँ की प्रजा से यों कहे—'हम तुम लोगों के राजा हैं, तुम लोगों की भली भाँति रक्षा करेंगे, तुम लोग कर देकर हमारे आश्रित रहो।' यह कहने पर यदि वहाँ की प्रजा चुपचाप उसकी बातें मान ले तब

कहना ही क्या है; उस पर शासन करना आरम्भ कर दे और यदि वे लोग उसकी बातें न मानें तो बलपूर्वक उनको अपने अधीन कर ले। उनमें यदि क्षत्रियों के अतिरिक्त अन्य जातियाँ उससे विरोध करें तो, युद्ध न करके, अनेक उपायों से उन पर शासन करना चाहिए। क्षत्रिय को दुर्बल, अपनी रक्षा करने में असमर्थ और शत्रुओं से डरा हुआ देखकर हीन मनुष्य भी शस्त्र लेकर उसे परास्त करने की इच्छा करते हैं।

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, क्षत्रियों के हमला करने पर राजा को उनके साथ किस प्रकार युद्ध करना चाहिए?

भीष्म ने कहा—राजन्, कवच पहनकर राजा विपक्षियों से कहे कि बारी-बारी से निपट लो। शत्रु कवच पहनकर हमला करे तो राजा को कवच धारण करके और शत्रु सेना लेकर चढ़ाई करे तो राजा को सेना के साथ उसका मुक़ाबला करना चाहिए। शत्रु यदि छल से युद्ध करे तो राजा भी वैसा ही व्यवहार करे। यदि वह धर्म के अनुसार युद्ध करे तो राजा को भी धर्म-युद्ध करना चाहिए। घोड़े पर सवार होकर रथी का सामना न करे, रथ पर सवार होकर रथी से युद्ध करना चाहिए। डरे हुए, पराजित और पीड़ित मनुष्य पर १० अस्त्र चलाना उचित नहीं। विषैले और कुटिल बाणों से युद्ध करना अनुचित है। दुष्ट लोग ऐसे अस्त्रों का प्रयोग करते हैं। हमला करते हुए शत्रु पर कुपित न होकर न्याय के अनुसार युद्ध करे। दुर्बल, पुत्रहीन, शस्त्रहीन, पीड़ित और जिसका धनुष टूट जाय या वाहन मर जाय उस पर वार न करे। यदि सज्जन मनुष्य युद्ध-भूमि में घायल हो जाय तो उसे उसके घर पहुँचा दे या अपने घर लाकर चिकित्सा करके उसको चला जाने दे। स्वायम्भुव मनु ने धर्म-युद्ध करने की ही आज्ञा दी है। सज्जनों को सदा धर्म का आश्रय लेना चाहिए; उसका नाश करना उचित नहीं। जो राजा अधर्म-युद्ध करके विजयी होता है वह स्वयं अपने नाश का कारण हो जाता है। अधर्म-युद्ध करना दुष्टों का काम है, सज्जन तो सदा धर्म के अनुसार ही युद्ध करके दुर्जनों को परास्त करते हैं। अधर्म-युद्ध करके विजयी होने की अपेक्षा धर्म के अनुसार युद्ध में प्राण त्याग कर देना अच्छा है। कहीं-कहीं अधर्म का फल उसी दम नहीं मिलता; किन्तु कभी न कभी उसका फल अवश्य भोगना पड़ता है। पापी लोग दुष्कर्मों के द्वारा धन संग्रह करके प्रसन्न होते हैं और चोरी को अधर्म नहीं समझते। वे सज्जनों का उपहास करते हैं और वरुण के पाश में बँधे होने पर भी अपने को अमर समझते हैं; किन्तु ऐसे दुष्टों का शीघ्र २० ही नाश हो जाता है। अधर्म करनेवाले मनुष्य पहले तो हवा से भरी हुई मशक के समान बढ़ते हैं और अन्त को, नदी-किनारे के वृक्षों की तरह, जड़ समेत उखड़ जाते हैं। तब सब लोग पत्थर पर टूटे हुए घड़े की तरह उसे नष्ट देखकर उसकी और उसके कर्मों की निन्दा २२ करते हैं। अतएव राजा धर्म के अनुसार ही विजय और कोष की वृद्धि करे।

छियानवे अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से राज धर्म कहना

भीष्म ने कहा—महाराज, अन्याय से विजय की इच्छा करना राजा का कर्तव्य नहीं। अन्याय से विजय पाने पर कभी उसका सम्मान नहीं हो सकता। इससे राजा और राज्य दोनों का नाश हो जाता है। कवचहीन, अस्त्र रख देनेवाले और हाथ जोड़कर शरण में आये हुए मनुष्य को न मारना चाहिए। जो मनुष्य सैनिकों के साथ लड़कर हार चुका है उसके साथ राजा स्वयं युद्ध न करे। उसे पकड़कर एक साल तक दास रहने को कहे। यदि वह वर्ष भर तक क़ैद रहने पर भी दासता न स्वीकार करे तो उसे छोड़ दे। राजा यदि शत्रु की कन्या छीन लावे तो उसे भी एक साल तक क़ैद रक्खे और अन्त में अपनी स्त्री होने का उपदेश करे। यदि वह स्वीकार न करके दूसरे के साथ विवाह करना चाहे तो फिर उसे छोड़ दे। इसी तरह दास-दासी जो कोई बलपूर्वक लाये जायँ उन्हें, एक साल के अन्दर, अपने अधीन न होने पर छोड़ देना चाहिए। राजा लूट आदि का धन सञ्चित न करे, शीघ्र ही उसको ख़र्च कर डाले। शत्रु को जीतकर लाई हुई गायों का दूध स्वयं न पीकर ब्राह्मणों को दे दे और बैलों को खेत जोतने के काम में लगा दे या पराजित मनुष्यों को वापस कर दे। क्षत्रिय के सिवा अन्य किसी मनुष्य को राजा पर अस्त्र न चलाना चाहिए। युद्ध के लिए दोनों पक्षों के तैयार होने पर यदि कोई ब्राह्मण बीच में पड़कर शान्ति कराना चाहे तो उसी दम दोनों प्रतिद्वन्द्वियों को युद्ध का इरादा छोड़ देना चाहिए। जो इस नियम का उल्लङ्घन करके ब्राह्मण पर आक्रमण करता है उसकी गिनती क्षत्रियों में न करनी चाहिए; समाज से उसका बहिष्कार कर देना चाहिए। जो राजा विजय करने की इच्छा करे उसे धर्म का उल्लङ्घन करना उचित नहीं। धर्म १० के अनुसार विजय से बढ़कर और क्या श्रेष्ठ लाभ होगा? चढ़ाई के झमेले में कोई यदि सहसा अप्रसन्न हो उठे तो राजा को चाहिए कि उसे समझा-बुझाकर या दे-लेकर शीघ्र प्रसन्न कर ले। ऐसा न करने पर उसको छिद्रान्वेषी शत्रु फोड़ लेंगे। तब मौक़ा पड़ने पर वह उनकी सहायता करके उन्हें सन्तुष्ट करेगा। धर्मात्मा राजा युद्ध में शत्रु को न तो धोखा देकर मारे और न घोर प्रहार करे। घोर प्रहार करने से मृत्यु हो जाती है। जो राजा थोड़े में ही सन्तुष्ट हो जाता है उसके विशुद्ध जीवन की प्रशंसा होती है। जिसका राज्य विस्तृत है, जिसकी प्रजा धनाढ्य और अनुरक्त है, जिसके मन्त्री और नौकर-चाकर आदि सब सन्तुष्ट रहते हैं, वही राजा दृढ़मूल है। जो राजा ऋत्विक्, पुरोहित, आचार्य और अन्य प्रसिद्ध मान्य पुरुषों का सम्मान करता है वही व्यवहार-कुशल है। ऐसा ही व्यवहार करके इन्द्र ने स्वर्ग का राज्य प्राप्त किया है। विजय पाकर राजा प्रतर्दन ने शत्रुओं की पृथिवी न लेकर उनकी धन-सम्पत्ति, अन्न और फल-फूल सब कुछ हर लिया था। [उनकी कुछ हानि नहीं हुई।] दिवोदास ने २०

शत्रुओं को पराजित करके उनका यज्ञ, अग्नि, हवि और बनी-बनाई रसोई छीन ली थी इससे उसकी क्षति हुई। महाराज नाभाग ने यज्ञ करके, श्रोत्रियों और तपस्वियों के धन को छोड़कर, राजाओं की सारी सम्पत्ति ब्राह्मणों को दान कर दी थी। अनेकों राजा धर्म के अनुसार आचरण करके ऐश्वर्यवान् हो चुके हैं। महाराज, विजय करना राजाओं का कर्तव्य है सही; किन्तु जो राजा अपना कल्याण चाहे वह कपट और पाखण्ड की सहायता से विजय की इच्छा न करे। २४

सत्तानबे अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से धर्मयुद्ध की प्रशंसा करना

युधिष्ठिर ने कहा—हे पितामह, क्षात्रधर्म से बढ़कर पापजनक धर्म दूसरा नहीं है। युद्ध के समय सेना में स्थित वैश्य को भी राजा मार डालता है। जो हो, अब आप यह बतलाइए कि राजा प्रायश्चित्त-स्वरूप किन कर्मों को करके पवित्र लोकों को जा सकता है।

भीष्म ने कहा—बेटा! राजा दुष्टों का दमन और सज्जनों पर कृपा, यज्ञ और दान करने से पवित्र हो जाता है। विजय की इच्छा से राजा प्राणियों को सताते हैं; किन्तु विजय हो जाने पर फिर वे प्रजा की वृद्धि करते हैं। दान, यज्ञ और तप करने से राजा के पापों का नाश होता है और सब प्राणियों पर दया करने से पुण्य की वृद्धि होती है। किसान जैसे धान को बचाकर घास-फूस उखाड़ डालते हैं वैसे ही शूरवीर लोग अस्त्र-शस्त्रों से केवल वध करने योग्य मनुष्यों का ही संहार करते हैं। प्रजा की रक्षा करने से राजा के पापों का नाश हो जाता है। जो राजा दरिद्रता, विनाश और क्लेश से प्रजा की रक्षा करके उसको डाकुओं के भय से बचाता है वह प्रजा का अन्नदाता, प्राणदाता और सुखदाता है। यज्ञ करने और प्रजा को अभयदान देने से राजा को इस लोक में कल्याण और अन्त को स्वर्ग का सुख मिलता है। जो राजा ब्राह्मणों की रक्षा के लिए अपने जीवन की परवा न करके शत्रुओं के साथ युद्ध करता है वह बड़ी दक्षिणावाले यज्ञ का फल पाता है। जो राजा निडर होकर शत्रुओं पर बाण चलाता है उसको १० देवता लोग पृथिवी पर सबसे श्रेष्ठ समझते हैं। शत्रुओं के शरीर में जिस राजा के जितने अस्त्र-शस्त्र लगते हैं वह उतने ही सर्वकामप्रद अक्षय लोकों का भोग करता है। युद्ध में उसके शरीर से जो रक्त निकलता है उसी के साथ उसके सब पाप धुल जाते हैं। धर्म का मर्म जाननेवालों का कहना है कि क्षत्रियों के लिए संग्राम में क्लेश सहन करने से बढ़कर कोई तप नहीं है। जैसे मनुष्य बादलों से पानी की आशा करते हैं वैसे ही दुर्बल लोग शूर-वीरों के पीछे इसलिए चलते हैं कि हमारी रक्षा हो। वीर पुरुष यदि भय के समय, उनके बचाने के लिए, आगे बढ़कर उनकी रक्षा करते हैं तो उन्हें बहुत पुण्य होता है। और वीर पुरुषों से बचाये हुए मनुष्य यदि कृतज्ञता प्रकट करते हुए उनको हमेशा नमस्कार करते रहें तो यह न्याय-

सङ्गत ही है। उनकी कृतज्ञता वीरों की कृति के समान पुण्यप्रद नहीं है। सभी मनुष्य एक से नहीं होते। वीर पुरुष संग्राम में शत्रुओं के सम्मुख युद्ध करते हैं और कायर युद्ध छोड़ भाग खड़े होते हैं। साथियों को छोड़कर रणभूमि से भाग जाना बड़ी नीचता है। ऐसे अधम मनुष्यों का जन्म तुम्हारे वंश में कभी न हो। अपने प्राण बचाने के लिए साथियों को छोड़कर भाग जानेवाले मनुष्यों का इन्द्र आदि देवता अनिष्ट करते हैं। ऐसे कायरों को लकड़ी या २० पत्थर के टुकड़ों से मरवा डालना चाहिए अथवा घास-फूस में लपेटकर जलवा दे या पशु की तरह मार डाले। चारपाई पर मरना क्षत्रियों के लिए बड़े अधर्म की बात है। जो क्षत्रिय कफ और मूत्र त्यागते हुए दीन भाव से रो-रोकर, बिना घाव खाये, मरते हैं उनकी प्रशंसा सज्जन कभी नहीं करते। घर में मरना क्षत्रियों के लिए बुरा समझा जाता है। क्षत्रियों को स्वभाव से ही शूर और अभिमानी होना चाहिए। युद्ध में वीरता न दिखलाने से वे कायर और अधर्मी कहलाते हैं। संग्राम से भागा हुआ मनुष्य चिन्ता से व्याकुल होकर रोगी हो जाता है। उसके मुँह से दुर्गन्ध आने लगती है। वह दुःखभरी बातें कह-कहकर पुत्रों को चिन्तित करता है। वह नीरोग मनुष्यों से ईर्ष्या करता और अपनी मौत माँगता रहता है। मानी वीर पुरुष इस तरह मरना पसन्द नहीं करते। संग्राम-भूमि में आत्मीय जनों के साथ बाणों की वर्षा करते हुए और शत्रुओं के तीक्ष्ण शस्त्रों को सहन करते-करते प्राण दे देना क्षत्रियों का धर्म है। वीर पुरुष क्रोध और उमङ्ग के वश हो शत्रुओं के साथ युद्ध करते समय उनके बाणों से पीड़ित होने पर भी अपने को दुःखी नहीं समझते। वे श्रेष्ठ क्षात्रधर्म का पालन करते हुए संग्राम में प्राण त्यागकर इन्द्रलोक को जाते हैं। जो वीर पुरुष शत्रुओं द्वारा घिर जाने पर लड़ते-लड़ते मर मिटते हैं वे निस्सन्देह अक्षय लोकों को जाते हैं। ३२

अट्ठानवे अध्याय

युद्ध के प्रभाव से सुदेव को देवलोक की प्राप्ति

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, युद्ध में वीरता दिखाकर प्राण त्यागनेवाले वीरों को किन लोकों की प्राप्ति होती है ?

भीष्म ने कहा—धर्मराज, इस विषय में इन्द्र और अम्बरीष का प्राचीन इतिहास सुनो। नाभाग के पुत्र अम्बरीष ने एक बार इन्द्रलोक में जाकर देखा कि उनका सेनापति इन्द्र के साथ दिव्य विमान पर बैठा हुआ आकाश-मण्डल की सैर कर रहा है। अपने सेनापति सुदेव की यह समृद्धि देखकर अम्बरीष को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने इन्द्र से कहा—देवराज! मैंने सारी पृथिवी का शासन करके धर्म की इच्छा से शास्त्र के अनुसार चारों वर्णों का पालन, रणभूमि में शत्रुओं का पराजय, ब्रह्मचर्य का अनुष्ठान, बड़े-बूढ़ों की सेवा तथा वेद और राजनीति का अध्ययन

किया है। मैंने अन्नदान से अतिथियों को, स्वधा से पितरों को, स्वाध्याय से ऋषियों को और यज्ञ से देवताओं को सन्तुष्ट किया है। यह सुदेव पहले मेरा सेनापति था। यह बड़ा योद्धा और १० शान्त-स्वभाव था। अब यह किस पुण्य के प्रभाव से मुझसे बढ़कर इस पद पर पहुँच गया ?

इन्द्र ने कहा—राजन्, सुदेव ने बड़ा भारी संग्राम-यज्ञ किया था। क्षत्रियों के लिए युद्ध से बढ़कर कोई यज्ञ नहीं है। वीर लोग कवच पहनकर रणभूमि में उतरकर युद्धयज्ञ के अधिकारी होते हैं।

अम्बरीष ने पूछा—देवराज ! युद्धयज्ञ का हवि, घी और उसकी दक्षिणा क्या है और उसके ऋत्विज् कौन हैं ?

इन्द्र ने कहा—राजन् ! हाथी इस यज्ञ के ऋत्विज्, घोड़े अध्वर्यु, शत्रुओं का मांस हवि और रक्त घी है। गीदड़, गिद्ध और कौए इसके सदस्य हैं। ये सदस्य यज्ञ का अवशिष्ट घी पीते और हवि खाते हैं। प्रास, तोमर, खड्ग, शक्ति और परशु इस यज्ञ के स्रुक् तथा शत्रुओं के शरीर-भेदी तीक्ष्ण बाण इसके स्रुव हैं। हाथी के चमड़े का आवरण और हाथीदाँत की मूठवाली तलवारें इसके स्फिक् हैं। लोहमय तीक्ष्ण प्रास, शक्ति, ऋष्टि और परशु का आघात २० इसका धन है। वीरों के परस्पर आक्रमण और प्रहार से जो रक्त की धारा निकलती है वही सब कामनाओं को देनेवाली पूर्णाहुति है। सैनिकों के 'काटो, मारो' आदि जो शब्द सुनाई पड़ते हैं वे इस यज्ञ के सामगान-स्वरूप हैं। शत्रुसेना की रणभूमि हवि रखने का पात्र है। हाथी, घोड़ा और कवचधारी शूर-वीर इस यज्ञ के श्येनचित् अग्नि हैं। एक हज़ार सैनिकों के मरने पर जो कबन्ध उठते हैं वे इस यज्ञ के, खैर की लकड़ी के बने हुए, अष्टकोण यूप (यज्ञ के स्तम्भ) हैं। अङ्कुश का प्रहार करने से हाथियों का किया हुआ शब्द और धनुषों के टङ्कार का शब्द इस यज्ञ के वषट्कार हैं। दुन्दुभि उसके उद्गाता हैं। ब्रह्मस्व का उद्धार करने के लिए अपने प्राणों की परवा न करके युद्ध में जो पराक्रम दिखलाता है उसे अनन्त दक्षिणावाले यज्ञ का फल मिलता है। जो वीर पुरुष अपने स्वामी की भलाई के लिए रणभूमि से नहीं हटता, जो हाथी के चमड़े की म्यानवाली तलवार और अपनी विशाल भुजाओं से समरभूमि को लथ-पथ कर देता है और जो बिना किसी की सहायता के संग्राम-सागर में प्रवेश करता है वह ३० हमारे समान लोकों को प्राप्त होता है।

जिस रक्त-नदी में मृदङ्ग आदि बाजे मेंढक और कछुए हैं; अस्थि बालू है; रक्त और मांस कीचड़ है; खड्ग, चर्म, गिद्ध, कङ्क और कौए ही डोंगियाँ हैं; बाल सेवार हैं; हाथी, घोड़े, रथ ही पुल हैं; पताका और ध्वजाएँ बेंत हैं; मरे हुए हाथी नाके हैं; ऋष्टि और तलवार-स्वरूप नौकाओं और राक्षसों से जो परिपूर्ण है, ऐसी कायरों को डरावनेवाली रक्त-नदी को जो वीर प्रवाहित करता है वही इस यज्ञ का अवभृथ स्नान करने योग्य है। शत्रुओं की सेना का निकास जिसकी

पत्नीशाला, योद्धा जिसके दक्षिण सदस्य, उत्तर दिशा जिसका यज्ञकुण्ड, शत्रु की सेना जिसकी स्त्री, दोनों सेनाओं के बीच का स्थान जिसके लिए यज्ञवेदी-स्वरूप है और व्यूह ही जिसके लिए तीनों अग्नि हैं तथा उपर्युक्त वेदी पर जो पुरुष हाथी, घोड़े आदि सहित शत्रु की सेना का बलिदान करता है वही हमारे लोक को प्राप्त होता है। जो डर के मारे रणभूमि से भागता हुआ शत्रुओं के हाथ मारा जाता है वह निस्सन्देह नरक में गिरता है। जो वीर पुरुष रक्त, मांस, हड्डियों और बालों से ४० संग्रामभूमि को पाट देता है वह उत्तम गति पाता है। जो शत्रुओं की सेना का नाश करके उनकी सवारियों पर सवार होता है वह वीर पुरुष विष्णु के समान पराक्रमी और बृहस्पति के समान बुद्धिमान् है। जो पुरुष रणभूमि में सेनापति, उसके पुत्र तथा और प्रतिष्ठित पुरुषों को जीते-जागते अपने अधीन कर लेता है वह निस्सन्देह हमारे लोक को पाने योग्य है। जो मनुष्य युद्ध में मारा जावे उसके लिए शोक न करना चाहिए। युद्ध में मारा गया वीर पुरुष अवश्य ही स्वर्ग को जाता है। उसकी अन्त्येष्टि क्रिया, अशौच और तिलाञ्जलि आदि कर्म करने की भी आवश्यकता नहीं। जो वीर क्षत्रिय-धर्म के अनुसार युद्ध में मरता है उसे, पति बनाने के लिए, हज़ारों अप्सराएँ दौड़ पड़ती हैं। जो मनुष्य धर्म के अनुसार युद्ध करता है उसे तपस्या, सनातन धर्म और चारों आश्रमों का फल प्राप्त होता है। वृद्धों, बालकों और स्त्रियों को तथा मुँह में तिनका दाबकर शरण में आनेवालों और पीठ दिखाकर भागनेवालों को कभी न मारना चाहिए। जम्भ, वृत्र, बल, पाक, विरोचन, दुर्निवार नमुचि, मायावी शम्बर, विप्रचित्ति, प्रह्लाद और अन्यान्य दानवों को युद्ध में मारकर तब मैं देवताओं का अधीश्वर हुआ हूँ। भीष्म ने कहा—हे धर्मराज, इन्द्र के ये वचन सुनकर महाराज अम्बरीष ने वीर पुरुषों की सिद्धि प्राप्त की। ५१

निन्यानवे अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से जनक का अपने योद्धाओं को स्वर्ग और नरक-
प्राप्ति बतलाकर प्रोत्साहित करने की बात कहना

भीष्म ने कहा—धर्मराज, इस विषय में प्रतर्दन और राजा जनक के संग्राम का प्राचीन इतिहास प्रसिद्ध है। संग्राम में राजा जनक ने जिस तरह वीरों का उत्साह बढ़ाया था उसका वर्णन सुनो।

तत्त्वज्ञानी मिथिला-नरेश जनक ने इस युद्ध में अपने सैनिकों को स्वर्ग और नरक दिखलाते हुए कहा—हे वीरो! जो लोग युद्ध से नहीं डरते वे गन्धर्व-कन्याओं से परिपूर्ण, सब मनोरथों को देनेवाले, प्रकाशमान स्वर्गलोक को जाते हैं और जो मरने के डर से युद्ध छोड़कर भाग खड़े होते हैं वे संसार में अकीर्ति पाते और बहुत समय तक नरक में पड़े रहते हैं। अतएव तुम लोग मरने का निश्चय करके शत्रुओं को परास्त करो और नरक में गिरने से बचो। संग्राम में शरीर का त्याग करने से ही वीरों को स्वर्ग की प्राप्ति होती है।

उनके इन वचनों को सुनकर सैनिकों ने शत्रुओं को परास्त कर दिया। इसलिए साहसी मनुष्यों को ही रणभूमि में जाना चाहिए। हाथियों के बीच रथी वीरों को, रथियों के पीछे घुड़सवारों को और उनके पीछे कवचधारी पैदलों को खड़ा करना चाहिए। इस प्रकार सेना की रचना करनेवाला राजा अवश्य विजयी होता है। इसलिए सदा इसी ढँग से सेना १० को खड़ा करना चाहिए। वीर पुरुष धर्म-युद्ध करके स्वर्ग को जाने की इच्छा करते हैं। जैसे मगर समुद्र के पानी को हिला देता है वैसे ही वीर पुरुष संग्राम में शत्रुओं की सेना को विचलित और पीड़ित मनुष्यों को हर्षित कर देते हैं। जीते हुए राज्य की तो रक्षा करे पर छिन्न-भिन्न हो गई सेना का पीछा न करे; क्योंकि जो सेना एक बार युद्ध छोड़कर भाग गई हो और फिर जीने की आशा छोड़कर लड़ने के लिए लौट पड़ी हो उसका वेग सँभालना बड़ा कठिन होता है, इस-लिए उसका पीछा करना उचित नहीं। जी छोड़कर भागनेवालों पर वीर पुरुष प्रहार नहीं करते। स्थावर जीव जङ्गम (चलनेवाले) जीवों का भोजन हैं; जल प्यासे जीवों का, दाँतहीन दाँतवालों के और कायर लोग वीर पुरुषों के भक्ष्य हैं। कायरों के हाथ-पैर आदि अङ्ग होते तो वीर पुरुषों के समान ही हैं; किन्तु भयभीत होने के कारण उन्हें परास्त होना पड़ता है। इसी से कायरों को वीरों के आश्रित रहकर उनके सामने हाथ जोड़ना पड़ता है। सारा संसार शूर-वीरों की भुजाओं के आश्रित रहता है इसलिए वे सर्वदा सम्मान के योग्य हैं। वीरता १८ से बढ़कर तीनों लोकों में कुछ नहीं है। वीर पुरुष सभी की रक्षा करते हैं।

सौ अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर को युद्ध करने की विधि बतलाना

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह! विजयार्थी राजा, कुछ अधर्म के साथ, कायर सैनिकों को धमकाकर किस तरह लड़ने के लिए तैयार करे?

भीष्म ने कहा— धर्मराज! क्षत्रिय-धर्म के अनुसार मरने का निश्चय करके, शिष्टाचार से और भय दिखाकर तैयार करने से युद्धधर्म की रक्षा हो सकती है। अब मैं सब सिद्धि के देनेवाले उपाय बतलाता हूँ। उनके जानने से धर्म और अर्थ को हानि पहुँचानेवाले दुष्टों का नाश किया जा सकता है। सभी को सरल और कुटिल दोनों तरह की बुद्धि रखनी चाहिए। क्रूर बुद्धि से दूसरों का अनिष्ट न करके आई हुई विपत्ति को हटा दे। शत्रु लोग राज्य में भेद डालकर राजा का सर्वनाश करना चाहते हैं; किन्तु राजा की चातुरी से वे कृतकार्य नहीं हो पाते। युद्ध की इच्छा करनेवाला राजा हाथियों के कवच, बैलों और बकरों की हड्डियाँ, काँटे, चमर, तीक्ष्ण अस्त्र, पीले और लाल रङ्ग के कवच, रङ्ग-बिरङ्गी ध्वजा-पताका, ऋष्टि,

तोमर, पैनी तलवारें, परशु, फलक, ढाल और वीर पुरुषों का संग्रह कर रक्खे। चैत या अग-हन के महीने में युद्ध के लिए सेना को सुसज्जित करे। इन दिनों पृथिवी अन्न और जल से पूर्ण रहती है तथा सरदी और गरमी की अधिकता नहीं होती। इसलिए ये दो महीने चढ़ाई करने के योग्य होते हैं। अथवा जिस समय शत्रुओं पर किसी प्रकार की विपत्ति हो उस समय, चाहे जिस महीने में, चढ़ाई कर दे। कार्यकुशल जङ्गली रास्तों के जानकार जासूसों के जाने हुए तथा जल और घास-फूस मिलने योग्य समतल मार्ग से युद्ध के लिए यात्रा करे। मृगों की तरह जङ्गल में होकर चलना मनुष्यों के लिए बहुत कठिन है, अतएव विजय की इच्छा करनेवाले राजा को सेना के साथ होशियार जासूस रखना चाहिए। उत्तम कुल में उत्पन्न महापराक्रमी वीरों को ही सेना के अगले भाग में रक्खे। जल से घिरे हुए जिस क़िले के चारों ओर मैदान हो उसमें रहने से चढ़ाई करनेवाले को आसानी से हटाया जा सकता है। युद्ध-विद्या के जाननेवालों की सम्मति है कि मैदान के बदले वन के समीप की भूमि सेना के टिकाने के लिए श्रेष्ठ है। इसलिए ऐसे ही स्थानों पर ठहरकर, पैदल सेना को छिपाये रख-कर, आये हुए शत्रुओं के साथ युद्ध करे। सप्त ऋषियों को पीछे करके जमकर युद्ध करने पर बलवान् शत्रु भी पराजित किये जा सकते हैं। शुक्र जिसके अनुकूल होते हैं उसकी विजय होने में कुछ सन्देह नहीं रहता। शुक्र की अपेक्षा सूर्य की और सूर्य की अपेक्षा वायु की अनु-कूलता श्रेष्ठ है। युद्ध में निपुण वीरों की राय है कि घुड़सवारों को ऐसी जगह तैनात करे जहाँ न तो पानी हो न कीच हो, न कंकड़-पत्थर हों और न खाई-ख़न्दक हो; जहाँ पर कीचड़ और गड्ढे न हों ऐसे स्थान में रथियों को ठहरावे; हाथी के सवारों को ऐसी जगह टिकावे जहाँ छोटे-छोटे वृक्ष और बड़ी घास हो; और पैदल सेना को युद्ध के लिए ऐसी जगह तैनात करे जहाँ बाँस, बेत तथा बड़ी घास हो, पहाड़ और बाग़-बग़ीचे हों तथा बहुत से क़िले हों। सेना में पैदलों की संख्या अधिक होनी चाहिए। बरसात को छोड़कर अन्य ऋतु में रथियों और घुड़सवारों की तथा बरसात में हाथियों और पैदलों की अधिक सेना लेकर युद्ध करे। जो मनुष्य देश और काल का विचार करके इन नियमों के अनुसार सेना को सुसज्जित कर शुभ मुहूर्त में युद्ध की यात्रा करता है वह निस्सन्देह विजयी होता है। सोते हुए, प्यासे, थके, बिखरे हुए, पानी पीते या भोजन करते हुए और घायल मनुष्यों को न मारना चाहिए। भगाये हुए, विह्वल, अविश्वस्त, दूसरे काम में लगे हुए, चिन्तित, घास काटनेवाले, शिविर को भागनेवाले, राजा और मन्त्री के सेवक और सरदारों का वध करना उचित नहीं। जो मनुष्य शत्रु-सेना को छिन्न-भिन्न कर सके और अपनी भागती हुई सेना को रोक सके उसे अपने समान पान, भोजन और दुगुना वेतन दे। उनमें जो दस की टुकड़ी का अधिपति हो उसे सौ सैनिकों का और जो सौ सैनिकों का अधिपति हो उसे हज़ार सैनिकों का सेनापति बना देना चाहिए।

१०

२०

३०

राजा को प्रधान सैनिकों से लेकर क्रमशः सब योद्धाओं को एकत्र करके उनसे कहना चाहिए कि इस समय विजय के लिए संग्राम-भूमि में चलकर हम लोगों में से कोई किसी का साथ न छोड़े। अतएव हम लोगों में जो कोई कायर हों या जो निठुरता से अपने पक्ष के वीरों को मरवा डालनेवाले हों वे अभी से अलग हो जायँ। रणभूमि में जाकर अपने पक्ष के वीरों का विनाश कराने या युद्ध से भागने की अपेक्षा यहीं रह जाना अच्छा है। युद्ध से भागने पर धन की हानि, मृत्यु और बदनामी होती है। यह विपत्ति हमारे आक्रमण से भागते हुए शत्रुओं को, दाँत और होंठ टूट-फूट जाने से, उठानी पड़े। जो नराधम संग्राम से भागता है उसका जन्म लेना व्यर्थ है। वह किसी लोक में सुख नहीं पा सकता। शत्रु लोग, भागते हुए मनुष्य का, प्रसन्नता से पीछा करते हैं। रणभूमि में जाकर शत्रुओं से अपनी कीर्ति नष्ट कराना, हमारी समझ में, मृत्यु से भी बढ़कर असह्य है। * विजयी होना धर्म और सुख का मूल है। कायर लोग शत्रुओं के घाव खाने और मौत से डरते हैं; किन्तु वीर पुरुष जमकर शत्रुओं का प्रहार सहते ४० और प्राण-त्याग करते हैं। इसलिए हम लोगों को जीवन की आशा छोड़कर और यह सोचकर संग्राम में चलना चाहिए कि या तो शत्रुओं को जीतकर विजयी होंगे या शत्रुओं द्वारा शरीर त्यागकर स्वर्ग को जायँगे।

हे धर्मराज, सैनिकों का उत्साह बढ़ाकर वीरों को शत्रुओं पर चढ़ाई करनी चाहिए। युद्ध के समय ढाल-तलवार बाँधनेवाले पैदल सैनिकों को सेना के आगे और छकड़ों पर सवार लोगों को पीछे करके बीच में परिवार को रखना चाहिए। उस समय जो वीर पुरुष आगे बढ़ेंगे वही पैदलों की रक्षा करेंगे। जब बलवान् मनस्वी पुरुष आगे बढ़कर युद्ध करने लगें तब अन्य सैनिकों को उनके पीछे-पीछे उनकी रक्षा करनी चाहिए। कायरों को उत्साहित करने के लिए वीर पुरुषों का उनके पास रहना आवश्यक है। सेनापति को चाहिए कि थोड़ी सेना हो तो समर-भूमि में उसे समेटकर युद्ध करे और सेना काफ़ी हो तो चाहे उसे फैलाकर लड़ावे। संग्राम छिड़ने पर सैनिकों का हाथ पकड़कर सेनापति को ज़ोर से कहना चाहिए कि देखो, शत्रु की सेना भागी जा रही है। बलवानों को चिल्ला-चिल्लाकर कहना चाहिए कि वह देखो, हमारी सहायता के लिए कुमक आ रही है, तुम लोग शत्रुओं को बेधड़क मारो। शङ्ख, भेरी, मृदङ्ग और दुन्दुभि आदि ५० बाजे बजाकर और सिंह के समान गरजकर सैनिकों का उत्साह बढ़ाना चाहिए।

एक सौ एक अध्याय

योद्धाओं के लक्षण

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह! कैसे स्वभाव, आचरण और स्वरूपवाले मनुष्य तथा कैसे कवच और अस्त्र-शस्त्रधारी लोग युद्ध के योग्य होते हैं?

भीष्म ने कहा—धर्मराज, देश और कुल में प्रचलित अस्त्र-शस्त्र तथा वाहन का उपयोग युद्ध के समय करना चाहिए। वीर पुरुष इसी नियम के अनुसार युद्ध करते हैं। महापराक्रमी, निडर, गान्धार सिन्धु और सौवीर देश के लोग नखर और प्रास से युद्ध करते हैं। सब शास्त्रों के जाननेवाले, कूटनीति में निपुण, पूर्वी देश के वीर हाथियों पर सवार होकर युद्ध करते हैं। यवन, काम्बोज और मथुरा-निवासी वीरगण मल्लयुद्ध और दाक्षिणात्य लोग खड्ग-युद्ध करने में विशेष निपुण हैं।

शूर-वीर पुरुष सभी देशों में होते हैं। जिन लक्षणों के होने से मनुष्य वीर कहलाता है उन लक्षणों को सुनो। सिंह और बाघ की सी चाल, आँखों और आवाज़वाला तथा कबूतर और साँप के समान नेत्रोंवाला मनुष्य शत्रुओं का दमन कर सकता है। जिसका कण्ठ-स्वर मृग की तरह और आँखें बाघ या बैल के समान होती हैं वह मनुष्य असावधान, मूर्ख और क्रोधी होता है। जिसका शब्द ऊँट और मेघ के समान गम्भीर होता है और जो आसानी से दूर तक चल सकता है, जिसकी जीभ और नाक का अग्रभाग टेढ़ा होता है, जिसका शरीर बिलाव के समान बहुत लचीला होता है, बाल विरले, चमड़ी पतली और चित्त चञ्चल होता है वह मनुष्य बड़ा शूर-वीर होता है। लगन से काम करनेवाला, कोमल स्वभाववाला और घोड़े के समान तेज़ चाल तथा गम्भीर शब्दवाला मनुष्य युद्ध में विजयी होता है। जिसका शरीर दृढ़ और वक्षःस्थल चौड़ा होता है, जो बाजों का शब्द सुनकर क्रुद्ध और युद्ध में प्रसन्न होता है, जिसकी भौंहें टेढ़ी, आँखें कुछ लाल, उभड़ी हुई, गम्भीर भाववाली और न्योले की सी होती हैं वह जीने की परवा छोड़कर युद्ध करता है। जिसकी टेढ़ी चितवन, मांसहीन ठुड्डी, वज्र के समान मज़बूत भुजाएँ और अँगुलियाँ तथा ऊँचा ललाट और नाड़ियों से व्याप्त छरहरा शरीर होता है वह, मतवाले हाथी के समान युद्ध में प्रवेश करनेवाला, मनुष्य आसानी से परास्त नहीं किया जा सकता। जिसके बालों की जड़ें पीलापन लिये चमकीली, गला और बग़लें मोटी, कन्धे ऊँचे, पिंडलियाँ मोटी, मस्तक गोल, मुँह बिलाव का सा चौड़ा और कण्ठस्वर अत्यन्त कठोर होता है, जो गरुड़ के समान उद्धत और क्रोधी तथा युद्ध में कभी शान्त नहीं होता अथवा जो अधर्मी, अभिमानी और विकट रूपवाला होता है वह युद्ध में मरने-जीने की परवा नहीं करता। ऐसे मनुष्य प्रायः नीच जाति के होते हैं। इनको सेना के आगे करना चाहिए। ये लोग साहस के साथ शत्रु की सेना का संहार करते हैं। दिलासा देकर और मीठी बातें कहकर इन लोगों को क़ाबू में रक्खे। ये लोग प्रायः राजा पर भी कुपित हो उठते हैं।

एक सौ दो अध्याय

विजय पानेवाली सेना के लक्षणों का और राजनीति का वर्णन

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, सैनिकों के किन लक्षणों से उनके विजयी होने का अनुमान किया जा सकता है?

भीष्म ने कहा—धर्मराज, जिन लक्षणों को देखकर सैनिकों के विजयी होने की आशा की जाती है उनको सुनो। दैव के प्रतिकूल होने पर मनुष्य प्रायः काल के मुँह में चले जाते हैं किन्तु विद्वान् लोग उस विषय को भली भाँति समझकर, जप होम आदि शुभ कामों से उसका प्रायश्चित्त करके, दैव के कोप को शान्त करते हैं। जिस सेना के वाहन और सैनिक प्रसन्नचित्त होते हैं उस सेना की निस्सन्देह विजय होती है। सेना की यात्रा के समय वायु का धीरे-धीरे चलना, इन्द्र-धनुष का उदय होना, सूर्य की किरणों का प्रकाश और बादल रहना, गीदड़, कौआ और गिद्ध का अनुकूल रहना विजय मिलने के शुभ लक्षण हैं। बिना धुएँ की आग की ऊपर उठती हुई ज्वाला अथवा दाहनी ओर जाती हुई अग्नि की शिखा, यज्ञ की पवित्र सुगन्ध, शङ्ख, भेरी आदि बाजों का गम्भीर शब्द और योद्धाओं का प्रसन्न होना शकुन है; इनके देखने-सुनने पर विजयी होने में कोई सन्देह नहीं है। सेना के चलते समय मृगों का झुण्ड बाईं ओर या पीछे की तरफ़ और शत्रुओं से युद्ध करते समय दाहिनी ओर देख पड़ना शकुन है; किन्तु सामने देख पड़ना १० अपशकुन है। हंस, क्रौञ्च, शतपत्र और नीलकण्ठ आदि पक्षियों के मङ्गलसूचक शब्द करने और सैनिकों के हर्षित होने पर अवश्य विजय होती है। जिसकी सेना अस्त्र, यन्त्र, कवच और ध्वजा से शोभित हो तथा सैनिकों के मुख प्रफुल्ल हों उसकी विजय निस्सन्देह होगी। जिसके सैनिक पवित्र, निरभिमानी, सेवक और परस्पर स्नेह करते हों उसकी विजय होने में ज़रा भी सन्देह नहीं। शब्द, स्पर्श और गन्ध सुखमय होने तथा योद्धाओं के धैर्यवान् होने पर विजयी होने की पूरी आशा है। युद्ध में प्रविष्ट होने के समय बाईं ओर और युद्ध करते समय दाहिनी ओर वायु का होना अनुकूल है। पीछे की हवा शुभ और सामने की अशुभ है।

चतुरङ्गिणी सेना का संग्रह करके पहले शत्रु से सन्धि करने का उद्योग करे। सन्धि न हो सकने पर युद्ध करे। युद्ध में मार-काट करने से जो विजय मिलती है वह जघन्य है। युद्ध में विजयी होना दैव के अधीन है। युद्ध छोड़कर सैनिकों का भागना पानी के वेग के समान और डरकर भागना मृगों के झुण्ड के समान है। उस समय उनका रोकना बहुत कठिन हो जाता है। सैनिकों का भागना सुनकर युद्धविद्या में निपुण वीर भी भागने लगते हैं। परस्पर सहायक, महापराक्रमी, जीने-मरने की परवा न रखनेवाले पचास मनुष्य भी शत्रु की सेना २० का संहार कर सकते हैं। कभी-कभी कुलीन, प्रतिष्ठित, दृढ़प्रतिज्ञ पाँच, छः या सात वीर

भी शत्रु को जीत लेते हैं। इसलिए बलवान् होने पर भी राजा को पहले हमला न करना चाहिए। साम, दान और भेद से काम न चलने पर ही युद्ध किया जाय।

सेना को देखते ही कायर लोग डर जाते हैं और यदि उन पर शत्रु की सेना धावा कर देती है तब तो वे पसीने से तर हो जाते हैं। सारी प्रजा घबरा जाती है और अस्त्र के प्रताप से मनुष्यों का दिल दहलने लगता है। इसलिए राजा पहले सामनीति का प्रयोग करे और डरवाने के लिए शत्रु के राज्य में सेना को भेजे। ऐसी चतुरता से काम लेने पर शत्रु के साथ सन्धि होने की सम्भावना रहती है। शत्रु के आत्मीय लोगों में फूट डालने के लिए जासूसों का तैनात करना और उसके शत्रु के साथ सन्धि कर लेना राजा का आवश्यक कर्तव्य है। शत्रु के शत्रु से मिलकर शत्रु को पीड़ित करना बहुत अच्छा उपाय है।

क्षमा करना सज्जनों का ही काम है। दुर्जन कभी क्षमा नहीं कर सकता। तुमको क्षमा करने और न करने का प्रयोजन मालूम करना परम आवश्यक है। शत्रु को जीतकर उसको क्षमा करने से राजा की कीर्ति बढ़ती है। भारी अपराध कर डालने पर भी शत्रु लोग क्षमावान् मनुष्य का विश्वास करते हैं। शम्बर दैत्य कह गया है कि जैसे आग में तपाये बिना बाँस सीधा नहीं होता, थोड़ी ही देर में फिर ज्यों का त्यों हो जाता है, वैसे ही पीड़ित किये बिना क्षमा कर देने पर शीघ्र ही शत्रु विरोध करने लगता है। अतएव शत्रु का अच्छी तरह दमन करके तब उसको क्षमा करे। शत्रु का विनाश न करके पुत्र के समान वश में करना ही राजा का कर्तव्य है। राजा का स्वभाव उग्र हो तो वह प्रजा का शत्रु है और कोमल हो तो उसका अनादर होता है, अतएव राजा को उग्रता और कोमलता दोनों का अवलम्बन करना चाहिए। मनुष्यों पर प्रहार करते समय और प्रहार करने के पहले राजा उनसे मीठी बातें करे और प्रहार करने के बाद खेद प्रकट करते हुए दयाभाव दिखावे। शत्रु पक्ष के वीरों का युद्ध में संहार करके राजा बचे हुए शत्रुओं को एकान्त में बुलाकर करुण स्वर से कहे—ओह, हमारे सैनिकों ने संग्राम में इन वीरों का नाश करके हमारा बड़ा अप्रिय किया है। किसी की जान लेने के लिए हमने अपने सैनिकों को बार-बार मना किया था; किन्तु इन लोगों ने हमारी बात नहीं मानी। हाय, जो वीर मारे गये हैं वे अद्वितीय युद्धकुशल थे। ये लोग कभी युद्ध छोड़कर नहीं भागे। इनके समान वीर पुरुष संसार में दुर्लभ हैं। इनके मरने से हमको बड़ा शोक है। शत्रुओं को इस प्रकार दिलासा देकर उनको अपने अधीन करने के लिए राजा मरे हुए मनुष्यों के प्रति आत्मीय लोगों की तरह विलाप करे। ऐसा करने पर राजा को किसी का भय नहीं रहता और वह प्रजा का प्रिय तथा विश्वासपात्र हो जाता है। विश्वासपात्र होने पर उसकी सब इच्छाएँ पूरी होती रहती हैं। अतएव जो राजा शान्ति से राज्य का सुख भोगना चाहे वह छल-कपट छोड़कर सबका विश्वासपात्र होने की चेष्टा करे।

३०

४१

एक सौ तीन अध्याय

इन्द्र और बृहस्पति का संवाद—शत्रु पर विजयी होने के उपाय बतलाना

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह ! कोमल स्वभाव के, कठोर स्वभाव के और सहायसम्पन्न शत्रुओं के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए ?

भीष्म ने कहा—धर्मराज, इस विषय में एक प्राचीन इतिहास कहता हूँ जिसमें इन्द्र और बृहस्पति का संवाद है। एक बार इन्द्र ने बृहस्पति के पास जाकर हाथ जोड़कर कहा—ब्रह्मन्, मैं शत्रुओं के साथ सावधानी से कैसा व्यवहार करूँ और किस उपाय से उनको मारे बिना ही अपने अधीन कर लूँ ? युद्ध होने पर किसी की जय अवश्य होती है। मैं कौन सा उपाय करूँ, जिससे शत्रु तो विजयी न हों और मैं उन पर विजय प्राप्त कर लूँ ?
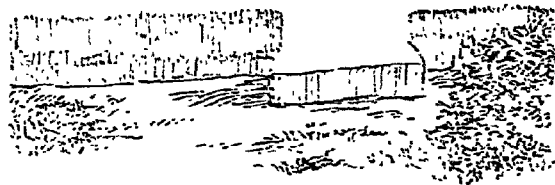
तब धर्म, अर्थ और काम के मर्मज्ञ राजधर्म के ज्ञाता बृहस्पति ने कहा—देवराज, युद्ध करके शत्रुओं का दमन करने की इच्छा कभी न करे। क्रोध करना और क्षमा न करना लड़कों का काम है। शत्रु का वध करने की इच्छा गुप्त रखनी चाहिए। क्रोध, भय और हर्ष शत्रुओं को न मालूम होने पावे; उन पर विश्वास तो न करे किन्तु व्यवहार ऐसा करे जिससे वे लोग विश्वासपात्र समझें। बुद्धिमान् मनुष्य सदा शत्रुओं के साथ मीठी बातें करे, कभी उनके साथ दुर्व्यवहार, रूखा बर्ताव, वैर भाव और वाद-विवाद न करे। जैसे बहेलिया चिड़ियों की सी बोली बोलकर उन्हें वश में कर लेता है वैसे ही राजा शत्रुओं के साथ आत्मीयता जोड़कर उन्हें अपने अधीन कर ले या उनका नाश कर डाले। शत्रुओं को परास्त करके निश्चिन्त बैठना ठीक नहीं। दुरात्मा लोग आग की चिनगारी की तरह मौक़ा पाकर भड़क उठते हैं। संग्राम में किसी भी पक्ष की विजय हो सकती है इसलिए जहाँ तक हो सके, युद्ध न छेड़े। शत्रु को वश में करके तब उसे क्षमा कर दे अथवा उपेक्षा करके उसकी असावधानी देखकर

प्रहार करे, भेद डाले और धन आदि देकर अनेक उपायों द्वारा उसकी सेना को फोड़ ले तथा गुप्त रीति से विष आदि देकर उसका सर्वनाश करने की चेष्टा करे।

बुद्धिमान् मनुष्य कदापि शत्रु का साथ न करे। सहसा शत्रु पर आक्रमण न करके, कुछ दिनों तक उपेक्षा करते हुए, उसे विश्वास दिलाकर तब उसके नाश का उद्योग करे। एक साथ कई शत्रुओं से युद्ध करना या उनसे कड़वी बातें कहना अनुचित है। अनुकूल समय आने पर शत्रु को मारना चाहिए। उस समय उपेक्षा करना ठीक नहीं। काम सिद्ध होने का मौक़ा एक बार हाथ से निकल जाने पर फिर मिलना मुश्किल होता है। समय अनुकूल न हो तो शत्रुओं पर प्रभाव जमाने या उनके परास्त करने की चेष्टा करना ठीक नहीं। काम, क्रोध और अहङ्कार छोड़कर हमेशा शत्रुओं की त्रुटियाँ ढूँढ़ता रहे। मूर्ख राजा अपनी असावधानी, मृदुता और अपने आलस्य, दण्डविधान अथवा शत्रुओं के छल-बल से पीड़ित होता है। जिस राजा में ये दोष न हों और जो शत्रुओं की माया से बच सके वही उनका नाश कर सकता है। यदि कोई मन्त्री किसी गुप्त काम को अकेला ही कर सकता हो तो उस विषय में उसी के साथ सलाह करनी चाहिए। अनेक मन्त्रियों के साथ सलाह करने पर वे लोग आपस में एक दूसरे पर टालते हैं। ऐसी हालत में काम बिगड़ जाता है। यदि एक मन्त्री के साथ सलाह करने पर कोई विघ्न उपस्थित हो तो अन्य मन्त्रियों के साथ सलाह करे। शत्रु कहीं दूर रहता हो तो उस पर पुरोहित द्वारा तन्त्र-मन्त्र का प्रयोग करावे और समीप रहता हो तो चतुरङ्गिणी सेना भेजे। अनुकूल समय जानकर पहले शत्रुओं में भेद डाले, उसके बाद गुप्त रीति से उनके दमन करने का उद्योग करे। समय पाकर शत्रु बलवान् हो उठता है, इसलिए पहले उसके साथ नम्रता का बर्ताव करे और उसकी असावधानी में सावधान होकर उसके नाश का यत्न करे। धन देकर, नम्रता से और मीठी बातें करके बलवान् शत्रु को प्रसन्न रखना चाहिए। उसको कभी सन्देह करने का मौक़ा न दे। राजा को शत्रुओं पर कभी विश्वास न करना चाहिए। वे लोग पराजित होकर हमेशा चौकन्ने रहते हैं। असावधान मनुष्य कभी उन्नति नहीं कर सकता, अतएव राजा को सदा सावधान रहकर 'कौन मित्र है और कौन शत्रु' इस पर ध्यान रखना चाहिए।

अत्यन्त कोमल स्वभाववाले मनुष्य की कोई परवा नहीं करता और अत्यन्त उग्र स्वभाववाले मनुष्य से सभी डरते हैं, इसलिए तुम न तो बहुत दबना और न बेहद दबाना। असावधान राजा का राज्य उसी तरह नष्ट हो जाता है जैसे वेगवाली नदी के किनारे का वृक्ष, पानी के वेग से, जड़ समेत उखड़ जाता है। शत्रुओं की संख्या अधिक हो तो उन सब पर एक साथ आक्रमण न करे; किन्तु सन्धि, दान, भेद और दण्ड के द्वारा उनमें से कुछ को अपनी ओर करके तब थोड़े से शत्रुओं पर एकबारगी हमला कर दे। समर्थ होने पर भी बुद्धिमान् राजा

एक साथ सब पर हमला न करे। जब हाथी, घोड़ा, रथ, पैदल सेना और यन्त्रों की अधिकता हो तथा सैनिक वश में हों और जब शत्रु की अपेक्षा अपना बल अधिक जान पड़े तब बिना सोचे-विचारे शत्रु पर चढ़ाई कर दे। शत्रु बलवान् हो तो उसके साथ सन्धि और नम्र व्यवहार न करना चाहिए। युद्ध के लिए प्रकट रूप से उस पर हमला न करके गुप्त रूप से उसे नष्ट कर देने का प्रयत्न करता रहे। बलवान् शत्रु के साथ युद्ध करने के लिए प्रकट रूप से चल पड़ने पर अन्न का नाश, जल में विष का मिल जाना और कोष, मन्त्री आदि सातों प्रकृतियों पर बार-बार सन्देह पैदा होना तथा चिन्ता का बढ़ जाना सम्भव है; इसलिए प्रकट
४० रूप से चढ़ाई न करे। शत्रु को हमेशा धोखा देना, उसके शत्रुओं को उभाड़ना और उसकी अपकीर्त्ति फैलाना चाहिए। शत्रु लोग अपने-अपने नगर और देश में जो काम करें उसकी ख़बर विश्वासपात्र मनुष्यों द्वारा मँगवाता रहे। शत्रु के नगर में जाकर वहाँ की खाने-पीने योग्य वस्तुओं को नष्ट कर दे और अपने नगर में नीति का प्रचार करे। शत्रु को धोखा देने के लिए गुप्त रीति से जासूसों को धन दे और फिर सबके सामने उनका सर्वस्व छीन ले तथा उन्हें दुष्ट कहकर अपने राज्य से निकालकर शत्रु के राज्य में भेज दे। सुशिक्षित विद्वानों द्वारा शत्रु का नाश करा देने के लिए अपने नगर में तन्त्र-मन्त्र का अनुष्ठान कराना चाहिए।

इन्द्र ने पूछा—भगवन्, दुष्ट मनुष्य किन लक्षणों से पहचाने जाते हैं?

बृहस्पति ने कहा—हे देवराज! दुष्ट लोग पीठ पीछे दूसरों की बुराई करते, गुणवानों से ईर्ष्या करते और दूसरों की प्रशंसा सुनने पर मुँह मोड़कर रह जाते हैं। वे सदा लम्बी साँस खींचते, होंठ काटते और सिर हिलाते रहते हैं। इस तरह के अनेक विकार उनमें दिखाई देते हैं। वे हमेशा मनुष्यों के पास बैठकर अण्ट-शण्ट बातें करते हैं। पीठ पीछे तो स्वीकृत काम करते नहीं और सामने चुप्पी साध लेते हैं। अलग-अलग बैठकर भोजन करते हैं और 'आज खाने लायक़ कोई चीज़ नहीं बनी' कहकर दोष लगाते हैं। सारांश यह कि उनके बैठने-उठने, खाने-पीने और चलने-फिरने आदि सब कामों से दुष्टता के लक्षण प्रकट होते हैं।

दुःख के समय दुखी होना और ख़ुशी के समय ख़ुश होना मित्रों के लक्षण हैं और इसके विरुद्ध शत्रुता के चिह्न हैं। हे देवराज, हमने शास्त्र के अनुसार दुष्टों का स्वभाव तुमको बतला दिया।

हे धर्मराज! शत्रुओं का नाश करनेवाले इन्द्र ने बृहस्पति के इन वचनों को सुनकर, युद्ध
५३ के समय उसी के अनुसार काम करके, शत्रुओं को अपने अधीन किया था।

एक सौ चार अध्याय

राजा क्षेमदर्शी और कालकवृक्षीय मुनि का संवाद

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह ! धर्मात्मा राजा राज्य, धन, सेना और मन्त्रियों के न रह जाने पर सुखी रहने के लिए क्या करे ?

भीष्म ने कहा कि धर्मराज, मैं इस विषय में कोशलराज क्षेमदर्शी का इतिहास कहता हूँ। प्राचीन समय में राजकुमार क्षेमदर्शी ने बलहीन होकर और घोर विपत्ति में पड़कर, महर्षि कालकवृक्षीय के पास जाकर, कहा—भगवन्, मेरे समान जो मनुष्य बार-बार राज्य पाने का उद्योग करने पर भी कृतकार्य न हो तो उसे मरने, दीनता दिखाने और दूसरों के आश्रित रहने आदि नीच कामों को छोड़कर क्या करना चाहिए ? आपके समान धार्मिक और बुद्धिमान् पुरुष ही शारीरिक और मानसिक दुःख से पीड़ित मनुष्यों को आश्रय दे सकते हैं। विषय-वासना का परित्याग करना मनुष्यों का आवश्यक कर्तव्य है। सांसारिक मोह और शोक छोड़कर ज्ञान-रूपी धन प्राप्त करने से मनुष्यों को वास्तविक सुख मिल सकता है। जो मनुष्य धन के आश्रित इन्द्रिय-सुखों में आसक्त रहता है वह, मेरी समझ में, अत्यन्त शोचनीय है। देखिए, मेरा सब धन स्वप्न की सम्पत्ति के समान नष्ट हो गया है। जो मनुष्य धन का त्याग कर सकते हैं वे बड़ा भारी काम करते हैं। यद्यपि इस समय मेरे पास धन नहीं है तो भी मैं धन का मोह छोड़ने में समर्थ नहीं हूँ। मैं इस समय सम्पत्तिहीन, दुखी और बड़ी दुर्दशा में पड़ा हुआ हूँ। अब जिस उपाय से मैं इस दुःख से छुटकारा पा सकूँ, उसी उपाय का उपदेश आप कीजिए। १०

यह सुनकर तेजस्वी महर्षि कालकवृक्षीय ने कहा—राजकुमार, तुम सबसे पहले अपने को और अपनी सब वस्तुओं को अनित्य समझो और जिन चीज़ों को वर्तमान समझते हो उनको नहीं के समान समझो। बुद्धिमान् मनुष्य यही समझकर घोर विपत्ति के समय भी घबराता नहीं। जो कुछ हो गया है और जो कुछ होनेवाला है वह सब मिथ्या है, ऐसा निश्चय कर लेने से सब दुःखों से तुम्हारा छुटकारा हो जायगा। प्राचीन लोगों ने धन-धान्य आदि जिन वस्तुओं का संग्रह किया था उन्हीं के साथ वे सब नष्ट हो गये, इस पर विचार करने से धन के लिए कौन मनुष्य सोच करेगा ? [दैव के प्रभाव से] धनवान् मनुष्य धनहीन और निर्धन मनुष्य समृद्धिशाली हो जाता है। सोच करने से धन नहीं मिल सकता, अतएव धन के लिए सोच करना निरी मूर्खता है। आज तुम्हारे पिता और पितामह आदि कहाँ हैं ? न अब तुम उनको देख सकते हो और न वे तुम्हें देख सकते हैं। इस समय उनके लिए सोच न करके विचार करो कि मैं अमर हूँ या नश्वर। विचार करने पर

समझोगे कि तुम भी चिरकाल तक जीवित नहीं रह सकते। क्या तुम, क्या मैं, क्या शत्रु, क्या मित्र, क्या बीस वर्ष की आयुवाला और क्या तीस वर्षवाला सभी मनुष्य किसी न किसी
२० समय काल के ग्रास हो जायँगे। यदि कोई मनुष्य धन-दौलत से अलग न हो सके तो उससे ममता हटाकर चित्त को बहलावे। जो लोग अलब्ध और नष्ट हो गई वस्तु को अपनी न समझकर भाग्य को ही बलवान् समझते हैं वही समझदार हैं। तुम्हारे समान और तुमसे बढ़कर बुद्धि तथा पौरुष रखनेवाले मनुष्य धनहीन हो जाने पर भी अपनी बुद्धि और पौरुष से फिर राज्य पा जाते हैं। वे लोग तुम्हारी तरह सोच नहीं करते। तुम क्यों व्यर्थ सोच करते हो?

क्षेमदर्शी ने कहा—भगवन्, मुझे सहज में राज्य मिल गया था। अब समय के फेर से उसका नाश हो जाने पर मुझे दुःख हो रहा है।

महर्षि ने कहा—राजन्, अलब्ध और नष्ट हुई वस्तु का शोक करना ठीक नहीं। तुमको मिलनेवाली वस्तुओं की इच्छा करनी चाहिए; न मिलने योग्य वस्तुओं की इच्छा कभी न करनी चाहिए। जो कुछ प्राप्त है उसी का भोग करके तुम सन्तुष्ट रहो। धन का नाश हो जाने पर पछतावा करना उचित नहीं। बीते हुए भाग्य के लिए शोक करना और उसके निमित्त विधाता की निन्दा करना मूर्खता है। जो कुछ मिलता है उस पर मूर्ख लोग सन्तुष्ट नहीं होते
३० और नीचों को भी धनवान् समझते हैं। इन बातों से उन लोगों को घोर दुःख सहना पड़ता है। अभिमानी मनुष्य दूसरों से ईर्ष्या करता है। तुम कभी किसी से ईर्ष्या न करना। यद्यपि इस समय तुम धनहीन हो तो भी दूसरों को धनवान् देखकर उनसे कुढ़ो मत। ईर्ष्या-हीन मनुष्य अपनी बुद्धि से शत्रुओं का राज्य भोगने में समर्थ हो सकता है। योग-धर्म के जानने-वाले धर्मात्मा पुरुष धन को अस्थिर और लोभ का बढ़ानेवाला समझकर राजलक्ष्मी और पुत्र-पौत्र आदि सब कुछ छोड़ देते हैं। संसारी लोग धन को अत्यन्त दुर्लभ जानकर अपनी आवश्यक-ताएँ कम कर देते हैं; किन्तु तुम बुद्धिमान् होकर भी सांसारिक विषयों की इच्छा करके दीन की तरह हाय-हाय करते हो। अब तुम सब इच्छाओं का त्याग कर दो। अर्थ तो अनर्थ हो जाता और अनर्थ अर्थ हो जाता है। अनेक लोग धन की वृद्धि का उद्योग करते-करते निर्धन हो जाते हैं और बहुत से लोग धन को ही सब सुखों का कारण समझते हैं; उससे बढ़कर संसार में कोई पदार्थ नहीं है, यह समझकर हमेशा धन की इच्छा करते रहते हैं। जो मनुष्य हमेशा धन के लिए चिन्तित रहता है उसके और सब काम चौपट हो जाते हैं। यदि किसी मनुष्य को अपनी इच्छा के अनुसार धन मिल जाय और वह धन किसी समय नष्ट हो जावे तो उस मनुष्य के दुःख की
४० सीमा नहीं रहती। उत्तम कुल में उत्पन्न सज्जन पारलौकिक सुख की इच्छा से, लौकिक सुखों की इच्छा को छोड़कर, धर्म के कामों में मन लगाते हैं। धन के लोभी मनुष्य धन के लिए प्राण तक दे देने पर उतारू हो जाते हैं और धनहीन होकर संसार में रहना निरर्थक समझते हैं। हाय, जो

लोग इस थोड़े समय के जीवन को धन की तृष्णा से मोहित होकर बर्बाद कर देते हैं उनसे बढ़कर शोचनीय और नासमझ कौन हो सकता है ? जब सञ्चित द्रव्यों का नाश, जीवित मनुष्यों का मरना और संयोग का वियोग निश्चित है तब कौन बुद्धिमान् मनुष्य इस संसार से अनुराग करेगा ? या तो मनुष्य ही धन को त्याग देता है, नहीं तो धन ही जाता रहता है। यह समझकर विद्वान् लोग धन के नष्ट हो जाने पर भी शोक नहीं करते। संसार में अनेक मनुष्यों के धन का नाश और बन्धुओं का वियोग हो जाता है। यह देखकर तुम अपने चित्त को शान्त करो। मन, वाणी और इन्द्रियों को रोको। नष्ट और अलब्ध वस्तुओं के लिए शोक न करो। तुम्हारे समान मृदु, शान्त और ब्रह्मचर्यव्रत धारण करनेवाले मनुष्य साधारण वस्तुओं के लिए शोक नहीं करते। निठुर पापिष्ठ निन्द्य मनुष्यों की तरह भिक्षा-वृत्ति करना भी तुम्हारे लिए उचित नहीं। तुम मौनव्रत धारण करके सब जीवों पर दया करते हुए, फल-मूल खाकर, अकेले वन में रहो। ५० जो मनुष्य, जङ्गली हाथी के समान, वन में अकेला रहकर जो कुछ मिलता है उसी में सन्तुष्ट और अपने-आप प्रसन्न रहता है वही बुद्धिमान् और विद्वान् है। इस समय तुम मन्त्री आदि से हीन हो गये हो। अब तुमको धन मिलने की भी सम्भावना नहीं। अतएव समझ लो कि तुम इसी नियम के अनुसार व्यवहार करके सुख से रह सकते हो। ५४

एक सौ पाँच अध्याय

कालकवृक्षीय मुनि का राजा क्षेमदर्शी को शत्रु पर विजयी होने के उपाय बतलाना

महर्षि ने कहा—राजन्, यदि तुममें कुछ पौरुष हो तो राज्य प्राप्त करने के लिए तुमको नीति का उपदेश करूँ। इस नीति के अनुसार चलने से तुमको धन और राज्य सब कुछ मिलेगा। कहो तो मैं उस नीति का वर्णन करूँ ?

क्षेमदर्शी ने कहा—भगवन् ! मुझमें पौरुष है; आप उस नीति का उपदेश कीजिए, जिसमें आज आपकी भेंट निष्फल न हो।

महर्षि ने कहा—महाराज ! इस समय तुम काम, क्रोध, हर्ष, भय और अहङ्कार छोड़कर शत्रुओं को भी हाथ जोड़कर उनसे हेल-मेल रक्खो। अच्छे कामों द्वारा तुम विदेहराज जनक की सेवा करके निस्सन्देह उनसे धन प्राप्त कर सकोगे। कुछ दिनों तक जनक के पास रहने पर तुम उनके बाहु-स्वरूप और सब लोगों के विश्वासपात्र हो जाओगे। तब आसानी से उत्साही और व्यसनहीन मित्रों की सहायता पा सकोगे। जितेन्द्रिय नीतिशास्त्रज्ञ आत्मसंयमी विदेहराज सदा प्रजा को प्रसन्न करके अपने को कृतार्थ कर रहे हैं। उनसे सम्मान पाने, उनकी प्रजा के विश्वासपात्र और आदरणीय होने पर तुम्हें मित्रों की सहायता मिलेगी; तब मन्त्रियों

१० के साथ मन्त्रणा करके, शत्रु के द्वारा शत्रुओं में फूट डालकर और एक शत्रु से मिलकर दूसरे शत्रुओं का नाश कर सकोगे। इस समय तुम शत्रुओं को उत्तम वस्त्र, शय्या, स्त्री, आसन, सवारी, बढ़िया घर, पक्षी, मृग, गन्ध, रस और फल आदि वस्तुओं में विशेष रूप से आसक्त कर दो, जिससे वे स्वयं नष्ट हो जायँ। नीति का जाननेवाला मनुष्य शत्रुओं को पीड़ित करने या उपेक्षा आदि अपनी किसी भी इच्छा को उन्हें मालूम न होने दे। तुम कुत्ते की तरह चौकन्ने, मृग की तरह भयभीत और चकित तथा कौए की तरह इङ्गितज्ञ रहकर शत्रुओं के साथ मित्र का सा व्यवहार करो। बलवान् शत्रुओं से विरोध करना महानदी की तरह दुस्तर है। इसलिए क़ीमती बग़ीचे, शय्या, आसन इत्यादि आराम की चीज़ों में मोहित करके उनका ख़ज़ाना ख़ाली करा दो। शत्रुओं के यज्ञ-दान आदि शुभ कामों में तुम विघ्न डालो और धन द्वारा ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करो। ब्राह्मण लोग सन्तुष्ट होकर स्वस्त्ययन आदि द्वारा तुम्हारा कल्याण और भेड़िये की तरह शत्रुओं का नाश करेंगे। पुण्यात्मा मनुष्य निस्सन्देह उत्तम गति पाता है और स्वर्गलोक में पवित्र स्थान प्राप्त करता है। धर्म से या अधर्म से, जिस तरह
२० हो सके, धनहीन कर देने से ही शत्रुओं को अधीन किया जा सकता है। धन से ही सब कामों की सिद्धि होती है, इसलिए धनहीन हो जाने पर शत्रु अवश्य ही निर्बल हो जायँगे। जो लोग केवल भाग्य के भरोसे रहते हैं वे शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। [अतएव शत्रुओं को उद्योग करते देखकर उन्हें भाग्य पर विश्वास करने का उपदेश देना चाहिए।] उनको संसार पर विजय प्राप्त करने की सलाह देकर उनका सर्वस्व नष्ट करा दे। इस प्रकार धनहीन हो जाने पर ऐसा उपाय करे जिससे वे लोग सज्जनों को सतावें। तब उस पाप का प्रायश्चित्त करने के लिए उन्हें योगधर्म की सलाह दे, जिससे वे राज्य छोड़कर मोक्ष प्राप्त करने की इच्छा से वन को चले जावें। ओषधियों द्वारा शत्रुओं के हाथी, घोड़े और सैनिकों को मरवा डाले। ये तथा और बहुत सी युक्तियाँ हैं जिनसे शत्रु का नाश किया जा सकता है। बुद्धिमान् मनुष्य इस
२५ प्रकार शत्रुओं को परास्त करके कृतकार्य होता है।

एक सौ छः अध्याय

कालकवृक्षीय का क्षेमदर्शी से जनक की मित्रता करा देना और क्षेमदर्शी का जनक के साथ विदेह-नगर को जाना

क्षेमदर्शी ने कहा—ब्रह्मन्! मैं कपट और पाखण्ड करके जीना नहीं चाहता। अधर्म करके धनवान् होने की भी मुझे इच्छा नहीं। मैं पहले ही कह चुका हूँ कि मुझे ऐसा उपदेश दीजिए जिससे मेरा हित हो और पापी समझकर मुझ पर कोई सन्देह भी न करे। मैं संसार में

दयामूलक धर्म का अवलम्बन करके जीना पसन्द करता हूँ, इसलिए मैं उक्त नीति के अनुसार पापजनक काम न कर सकूँगा। आप भी मुझे इस प्रकार का उपदेश न दीजिए।

महर्षि ने कहा—राजन्, तुम स्वभाव से ही असाधारण बुद्धिमान् और गुणी हो। अतएव तुम अपने स्वभाव के अनुरूप ही कहते हो। अब मैं राजा जनक के साथ तुम्हारी मित्रता करा दूँगा। राज-पाट छूट जाने और इस प्रकार विपद्ग्रस्त होने पर भी तुम दयामूलक धर्म की वृत्ति से ही जीना चाहते हो, तो भला कौन राजा तुम्हारे समान कुलीन और राजनीति-कुशल पुरुष को अपना मन्त्री न बना लेगा? सत्यप्रतिज्ञ विदेहराज आज मेरे घर आवेंगे। मैं उनसे अनुरोध करूँगा कि वे तुम्हारे साथ मित्रता कर लें। वे मेरा कहना अवश्य मान लेंगे।

इसके बाद महर्षि कालकवृक्षीय ने विदेहराज को बुलाकर कहा—राजन्, ये क्षेमदर्शी राजवंश में उत्पन्न हुए हैं। इनको मैं भली भाँति जानता हूँ। ये शरद् ऋतु के चन्द्रमा के समान विशुद्ध हैं। मैंने विशेष रूप से परीक्षा करके देख लिया है, इनमें रत्ती भर भी दोष नहीं है। अतएव जिस तरह तुम्हारा मुझ पर विश्वास है उसी तरह तुम इन पर विश्वास करके इनके साथ मित्रता कर लो। मन्त्री के बिना राजा तीन दिन भी राज्य नहीं कर सकता। मन्त्री का शूर-वीर और बुद्धिमान् होना आवश्यक है। इसलिए तुम इनको मन्त्री बनाकर, इनकी शूरता और बुद्धिमत्ता के प्रभाव से, दोनों लोकों का कल्याण करो। धर्मात्मा पुरुष की उन्नति के लिए योग्य मन्त्री की सहायता के समान और कोई अच्छा उपाय नहीं है। ये धर्मात्मा राजकुमार सज्जनों के मार्ग पर चलते हैं अतएव इनको मन्त्री बनाकर, उचित सम्मान करके, तुम अपने शत्रुओं को वश में कर सकोगे। यदि ये, क्षत्रिय-धर्म के अनुसार, तुमसे युद्ध करने का इरादा करें तो तुम भी विजय की इच्छा से इनके साथ युद्ध करने को तैयार हो जाना। अतएव मेरे कहने से, युद्ध न करके, सन्धि के द्वारा इनको अपने अधीन कर लो। अनुचित काम, लोभ और विद्रोह छोड़कर तुम धर्मात्मा बनो। जय और पराजय कुछ भी स्थिर नहीं है। अनेक लोगों ने शत्रुओं को पराजित किया है और वे स्वयं भी उनसे पराजित हो चुके हैं।

१०

इसलिए जीतने के बदले भोजन आदि देकर शत्रु को अधीन कर ले। जो मनुष्य अपने शत्रु का १६ सर्वनाश करने का इरादा करता है उसका भी सत्यानाश हो सकता है।

यह सुनकर राजा जनक ने उनको प्रणाम करके कहा—ब्रह्मन्! आपने हम लोगों के हित के लिए ही उपदेश दिया है, इसलिए हम लोग उसको मानेंगे।

अब विदेहराज जनक ने क्षेमदर्शी से कहा—राजन्, मैंने धर्म और नीति के अनुसार संसार को जीता है; किन्तु तुमने अपने गुणों से मुझे जीत लिया है। [मेरे घर चलने में] तुम अपना अपमान न समझो। मैं तुम्हारे पौरुष की और तुम्हारी बुद्धि की प्रशंसा करता हूँ। तुम मेरे घर चलकर सम्मानपूर्वक रहो।

विदेहराज जनक और कोशलराज क्षेमदर्शी, दोनों ही महर्षि को प्रणाम करके विदेह-नगर को गये। राजा जनक ने कोशलराज को अपने घर लाकर पाद्य, अर्घ्य और मधुपर्क से उनकी पूजा की और उनके साथ अपनी कन्या का विवाह कर दिया; बहुत सा धन तथा अनेक रत्न देकर उनका सम्मान किया। हे धर्मराज, सन्धि ही राजा का प्रधान धर्म है। जय और २८ पराजय कुछ भी स्थिर नहीं है।
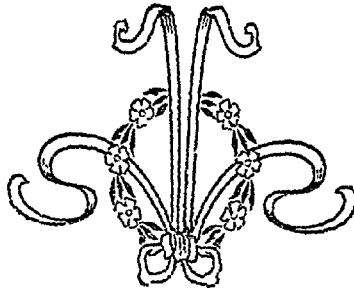
राजा जनक ने कोशलराज को अपने घर लाकर पाद्य, अर्घ्य और मधुपर्क से उनकी पूजा की और उनके साथ अपनी कन्या का विवाह कर दिया; बहुत सा धन तथा अनेक रत्न देकर उनका सम्मान किया—पृ० ३४६०

महाभारत के स्थायी ग्राहक बनने के नियम

(१) जो सज्जन हमारे यहाँ महाभारत के स्थायी ग्राहकों में अपना नाम और पता लिखा देते हैं उन्हें महाभारत के अङ्कों पर २०) सैकड़ा कमीशन काट दिया जाता है। अर्थात् १।) प्रति अङ्क के बजाय स्थायी ग्राहकों को १) में प्रति अङ्क दिया जाता है। ध्यान रहे कि डाकखर्च स्थायी और फुटकर सभी तरह के ग्राहकों को अलग देना पड़ेगा।

(२) साल भर या छः मास का मूल्य १२) या ६), दो आना प्रति अङ्क के हिसाब से रजिस्ट्री खर्च सहित १३॥) या ६॥।) जो सज्जन पेशगी मनीआर्डर-द्वारा भेज देंगे, केवल उन्हीं सज्जनों को डाकखर्च नहीं देना पड़ेगा। महाभारत की प्रतियाँ राह में गुम न हो जायँ और ग्राहकों की सेवा में वे सुरक्षित रूप में पहुँच जायँ, इसी लिए रजिस्ट्री द्वारा भेजने का प्रबन्ध किया गया है।

(३) उसके प्रत्येक खंड के लिए अलग से बहुत सुन्दर जिल्दें भी सुनहले नाम के साथ तैयार कराई जाती हैं। प्रत्येक जिल्द का मूल्य ।।।) रहता है परन्तु स्थायी ग्राहकों को वे ॥) ही में मिलती हैं। जिल्दों का मूल्य महाभारत के मूल्य से बिलकुल अलग रहता है।

(४) स्थायी ग्राहकों के पास प्रतिमास प्रत्येक अङ्क प्रकाशित होते ही बिना विलम्ब वी० पी० द्वारा भेजा जाता है। बिना कारण वी० पी० लौटाने से उनका नाम ग्राहक-सूची से अलग कर दिया जायगा।

(५) ग्राहकों को चाहिए कि जब किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार करें तो कृपा कर अपना ग्राहक-नम्बर जो कि पता की स्लिप के साथ छपा रहता है और पूरा पता अवश्य लिख दिया करें। बिना ग्राहक-नम्बर के लिखे हज़ारों ग्राहकों में से किसी एक का नाम ढूँढ निकालने में बड़ी कठिनाई पड़ती है और पत्र की कार्रवाई होने में देरी होती है। क्योंकि एक ही नाम के कई-कई ग्राहक हैं। इसलिए सब प्रकार का पत्र-व्यवहार करते तथा रुपया भेजते समय अपना ग्राहक-नम्बर अवश्य लिखना चाहिए।

(६) जिन ग्राहकों को अपना पता सदा अथवा अधिक काल के लिए बदलवाना हो, अथवा पते में कुछ भूल हो, उन्हें कार्यालय को पता बदलवाने की चिट्ठी लिखते समय अपना पुराना और नया दोनों पते और ग्राहक-नम्बर भी लिखना चाहिए। जिससे उचित संशोधन करने में कोई दिक़्क़त न हुआ करे। यदि किसी ग्राहक को केवल एक दो मास के लिए ही पता बदलवाना हो, तो उन्हें अपने हलके के डाकख़ाने से उसका प्रबन्ध कर लेना चाहिए।

(७) ग्राहकों से सविनय निवेदन है कि नया आर्डर या किसी प्रकार का पत्र लिखने के समय यह ध्यान रक्खें कि लिखावट साफ़ साफ़ हो। अपना नाम, गाँव, पोस्ट और ज़िला साफ़ साफ़ हिन्दी या अँगरेज़ी में लिखना चाहिए ताकि अङ्क या उत्तर भेजने में दुबारा पूछ-ताछ करने की ज़रूरत न हो। "हम परिचित ग्राहक हैं" यह सोच कर किसी को अपना पूरा पता लिखने में लापरवाही न करनी चाहिए।

(८) यदि कोई महाशय मनी-आर्डर से रुपया भेजें, तो 'कूपन' पर अपना पता-ठिकाना और रुपया भेजने का अभिप्राय स्पष्ट लिख दिया करें, क्योंकि मनीआर्डरफ़ार्म का यही अंश हमको मिलता है।

सब प्रकार के पत्र-व्यवहार का पता—

मैनेजर महाभारत विभाग, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

Printed and Published by K. Mittra at The Indian Press. Ltd. Allahabad.

आवश्यक सूचनायें

(१) हमने प्रथम खण्ड की समाप्ति पर इसके साथ एक महाभारत-कालीन भारतवर्ष का प्रामाणिक सुन्दर मानचित्र भी देने की सूचना दी थी। इस सम्बन्ध में हम ग्राहकों को सूचित करते हैं कि पूरा महाभारत समाप्त हो जाने पर हम प्रत्येक ग्राहक को एक परिशिष्ट अध्याय बिना मूल्य भेजेंगे जिसमें महाभारत-सम्बन्धी महत्त्व-पूर्ण खोज, साहित्यिक आलोचना, चरित्र-चित्रण तथा विश्लेषण आदि रहेगा। उसी परिशिष्ट के साथ ही मानचित्र भी लगा रहेगा जिसमें पाठकों को मानचित्र देख कर उपरोक्त बातें पढ़ने और समझने आदि में पूरी सुविधा रहे।

(२) महाभारत के प्रेमी ग्राहकों को यह शुभ समाचार सुन कर बड़ी प्रसन्नता होगी कि हमने कानपुर, उन्नाव, काशी (रामनगर), कलकत्ता, ग़ाज़ीपुर, बरेली, मथुरा (वृन्दावन), जोधपुर, बुलन्दशहर, प्रयाग और लाहौर आदि में ग्राहकों के घर पर ही महाभारत के अङ्क पहुँचाने का प्रबन्ध किया है। अब तक ग्राहकों के पास यहीं से सीधे डाक-द्वारा प्रतिमास अङ्क भेजे जाते थे जिसमें प्रति अङ्क तीन चार आना खर्च होता था पर अब हमारा नियुक्त किया हुआ एजेंट ग्राहकों के पास घर पर जाकर अङ्क पहुँचाया करेगा और अङ्क का मूल्य भी ग्राहकों से वसूल कर ठीक समय पर हमारे यहाँ भेजता रहेगा। इस अवस्था पर ग्राहकों को ठीक समय पर प्रत्येक अङ्क सुरक्षित रूप में मिल जाया करेगा और वे डाक, रजिस्टरी तथा मनीआर्डर इत्यादि के व्यय से बच जायँगे। इस प्रकार उन्हें प्रत्येक अङ्क केवल एक रुपया मासिक देने पर ही घर बैठे मिल जाया करेगा। यथेष्ट ग्राहक मिलने पर अन्य नगरों में भी शीघ्र ही इसी प्रकार का प्रबन्ध किया जायगा। आशा है जिन स्थानों में इस प्रकार का प्रबन्ध नहीं है, वहाँ के महाभारतप्रेमी सज्जन शीघ्र ही अधिक संख्या में ग्राहक बन कर इस अवसर से लाभ उठावेंगे। और जहाँ इस प्रकार की व्यवस्था हो चुकी है वहाँ के ग्राहकों के पास जब एजेंट अङ्क लेकर पहुँचे तो ग्राहकों को रुपया देकर अङ्क ठीक समय पर ले लेना चाहिए जिसमें उन्हें ग्राहकों के पास बार बार आने जाने का कष्ट न उठाना पड़े। यदि किसी कारण उस समय ग्राहक मूल्य देने में असमर्थ हों तो अपनी सुविधानुसार एजेंट के पास से जाकर अङ्क ले आने की कृपा किया करें।

(३) हम हिन्दी-भाषा-भाषी सज्जनों से एक सहायता की प्रार्थना करते हैं। वह यही कि हम जिस विराट् आयोजन में संलग्न हुए हैं आप लोग भी कृपया इस पुण्य-पर्व में सम्मिलित होकर पुण्य-सञ्चय कीजिए, अपनी राष्ट्र-भाषा हिन्दी का साहित्य-भाण्डार पूर्ण करने में सहायक हूजिए और इस प्रकार सर्वसाधारण का हित-साधन करने का उद्योग कीजिए। सिर्फ़ इतना ही करें कि अपने दस-पाँच हिन्दी-प्रेमी इष्ट-मित्रों में से कम से कम दो स्थायी ग्राहक इस वेद-तुल्य सर्वाङ्गसुन्दर महाभारत के और बना देने की कृपा करें। जिन पुस्तकालयों में हिन्दी की पहुँच हो वहाँ इसे ज़रूर मँगवावें। एक भी समर्थ व्यक्ति ऐसा न रह जाय जिसके घर यह पवित्र ग्रन्थ न पहुँचे। आप सब लोगों के इस प्रकार साहाय्य करने से ही यह कार्य्य अग्रसर होकर समाज का हितसाधन करने में समर्थ होगा।

—प्रकाशक

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ

(आपद्धर्मपर्व)

(मोक्षधर्मपर्व)

रंगीन चित्रों की सूची

एक सौ सात अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर को राजनीति बतलाना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह! आपने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के धर्म, उनकी जीविका और ऐश्वर्य की उन्नति के उपाय, राजाओं के कोष की रक्षा और वृद्धि, विजय की प्राप्ति, मन्त्रियों के गुणों की परीक्षा, प्रजा की वृद्धि, षट् गुणों के आश्रय और सैनिकों के साथ बर्ताव का वर्णन किया है; आपने सज्जन, दुर्जन, उत्तम, मध्यम और अधम मनुष्यों के लक्षण, साधारण श्रेणी के मनुष्यों के सन्तोषपरायण होने और दुर्बल मनुष्यों को आश्रय देने तथा विजयी होने आदि विषयों का वर्णन किया है। अब यह बतलाइए कि अपने पक्ष के शूर गण के साथ कैसा तो व्यवहार करे और किस तरह उनकी वृद्धि करे; किस उपाय से भेद नीति के बिना शत्रुओं पर गणों की विजय और मित्रों की वृद्धि हो सकती है? मेरी समझ से भेद ही गण के नाश का कारण है और अधिक मनुष्यों के साथ सलाह करके उसको गुप्त रखना कठिन है। अब कृपा कर वह युक्ति बतलाइए जिससे गणों में फूट न फैले।

भीष्म ने कहा—धर्मराज, लोभ और क्रोध से ही राजा में और गणों में विरोध हो जाता है। राजा का लोभ और हिस्सा न पाने से गणों का क्रोध, उनके नाश का कारण हो जाता है। १० राजा और गण एक दूसरे को नष्ट कर डालने के लिए साम, दान, दण्ड, भेद और मन्त्रणा आदि उपायों का प्रयोग और जासूसों की नियुक्ति करते हैं। एक रायवाले गण से अपरिमित कर लेने पर उनमें भेद पैदा होता है और वे असन्तुष्ट हो उठते हैं। अप्रसन्न तथा भीत होकर वे शत्रुओं से जा मिलते हैं। जिन गणों में फूट पैदा हो जाती है उनको आसानी से हराया जा सकता है। इसलिए गणों को आपस में फूट न होने देना चाहिए। बलवान् गण एकमत रहकर धन का उपार्जन, अनेक मनुष्यों से मित्रता और सब प्रकार के सुख-भोग कर सकते हैं। बुद्धिमान् लोग हमेशा उनकी प्रशंसा करते हैं। एक राय पर चलनेवाले गुणवान् गण समाज में धर्म का प्रचार, सबके साथ समता का व्यवहार, छोटों और बड़ों पर शासन, विनीत लोगों पर दया, गुप्तचरों की नियुक्ति, मन्त्रणा, कोष की वृद्धि के लिए उद्योग, प्रत्येक काम में पुरुषत्व, उत्साह और बुद्धिमानों से सलाह करके शीघ्र अपनी उन्नति करते हैं। शास्त्र और शस्त्रविद्या में कुशल, धनवान् गणों के २० प्रभाव से मूढ़ लोग घोर विपत्ति से पार लगते हैं। यदि इन गणों को धमकाया जाता, इनमें फूट डाली जाती, इन पर क्रोध किया जाता या इनको दण्ड दिया जाता है तो ये चटपट विपक्षी से जा मिलते हैं। इसलिए इनके मुखियों का सम्मान करता रहे। इन्हीं के प्रभाव से सबका जीवन सुख से बीतता है। मन्त्रणा के छिपाने और जासूसों के भेजने का दारमदार इन्हीं पर है।

सब गणों के साथ मन्त्रणा करना उचित नहीं। उनमें जो प्रधान हों उन्हीं से सलाह करके और लोगों का हित करे; नहीं तो सलाह की बातें प्रकट हो जाती हैं, धन का नाश

हो जाता है और अनेक अनर्थ खड़े हो जाते हैं। गणों में फूट पैदा होने और उनके मनमाना काम करने पर बुद्धिमानों को शीघ्र उनका शासन करना चाहिए। यदि किसी परिवार के बड़े-बूढ़े लोग घरेलू झगड़ों में लापरवाही करते हैं तो आपस में फूट पड़ जाने पर उस वंश का नाश हो जाने की आशंका रहती है। घरेलू फूट का डर शत्रुओं के डर से भी बढ़कर होता है। इसलिए जहाँ तक हो सके, घरेलू फूट न होने दे। जब एक ही कुटुम्ब के मनुष्य क्रोध, मोह और लोभ के वश होकर आपस में झगड़ा कर लेते हैं तब उनके विनाश के लक्षण प्रकट होने लगते हैं। शत्रु लोग उद्योग या बुद्धि के बल से गणों का नाश नहीं कर पाते, उनमें फूट पड़ जाने पर ३२ ही उनका पराभव हो सकता है। अतएव एकमत होना ही गणों की रक्षा का प्रधान उपाय है।

एक सौ आठ अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से माता-पिता और गुरु की महिमा का वर्णन करना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, धर्म का मार्ग बहुत विस्तृत है; उसमें अनेक शाखाएँ हैं। अतएव आपके मत से किस धर्म का पालन करना उचित है और किस काम के करने से लोक-परलोक में परमधर्म की प्राप्ति हो सकती है?

भीष्म ने कहा—धर्मराज! मेरे मत में पिता, माता और गुरुजनों की सेवा करना ही परमधर्म है। इस धर्म का पालन करने से मनुष्य संसार में यशस्वी होता और अन्त को दिव्य लोक में जाता है। वे जो आज्ञा दें, उसमें धर्म और अधर्म का विचार न करके, उसका पालन किया जाय। उनकी इच्छा के विरुद्ध काम करना उचित नहीं। वे तीनों लोकों, तीनों आश्रमों, तीनों वेदों और तीनों अग्नियों के समान हैं। पिता गार्हपत्य, माता दक्षिण और अन्य गुरुजन आहवनीय अग्नि के तुल्य हैं। माता, पिता और गुरुजन ही श्रेष्ठ अग्नि हैं। सावधानी से इन तीनों की सेवा करने पर तीनों लोकों पर विजय मिल सकती है। पिता की सेवा से इस लोक को, माता की सेवा से परलोक को और गुरु-जनों की सेवा से ब्रह्मलोक को जीतोगे। इनकी सेवा करने से तुम्हें धर्म और यश प्राप्त होगा। न तो कभी उनका अपमान करना और १० न उन पर दोषारोपण करना। सदा उनकी सेवा करते रहने से ही यश, पुण्य और दुर्लभ लोकों को प्राप्त करोगे। जो इन तीनों का आदर करता है वह सब लोकों को वश में कर सकता है और जो इनका आदर नहीं करता उसका कोई काम सफल नहीं होता। क्या यह लोक और क्या परलोक, कहीं उसका कल्याण नहीं होता। मैंने उनके निमित्त जो-जो काम किये हैं उन कामों का सौगुना और हज़ारगुना पुण्य मुझे प्राप्त हुआ है और उसी पुण्य के प्रताप से मुझे इस समय तीनों लोक प्रत्यक्ष हो रहे हैं। दस श्रोत्रियों की अपेक्षा एक आचार्य, दस आचार्यों

की अपेक्षा एक उपाध्याय, दस उपाध्यायों की अपेक्षा एक पिता और दस पिताओं से तथा सारे संसार से बढ़कर माता का महत्त्व है। किन्तु मैं तो समझता हूँ कि माता और पिता से भी बढ़कर उपदेष्टा गुरु है। माता और पिता ने जिस शरीर को उत्पन्न किया है वह नश्वर है; किन्तु आचार्य के दिये हुए उपदेश का कभी विनाश नहीं होता। माता और पिता के हज़ार अपकार करने पर भी उनका वध पुत्र न करे। अपराधी पिता और माता को दण्ड न देने से पुत्र को दोष नहीं लगता। अधर्मी पिता और माता की भी सेवा करना पुत्र का धर्म है। वेद और शास्त्रों का जानकार जो मनुष्य यथार्थ उपदेश करे तो वह भी पिता और माता के समान है। इसलिए उससे कभी विद्वेष न करके सदा उसका कृतज्ञ बना रहे। जो मनुष्य आचार्य से विद्या पढ़कर मन, कर्म, वचन से उनका यथोचित सम्मान नहीं करता उसे भ्रूणहत्या का पाप लगता है। संसार में उससे बढ़कर पापी कोई नहीं है। गुरु शिष्यों के साथ जिस तरह स्नेह करते हैं उसी तरह शिष्यों को भी, अपने धर्म के अनुसार, उनका सम्मान करना चाहिए। पिता के प्रसन्न होने पर प्रजापति, माता के प्रसन्न होने पर पृथ्वी और गुरु के प्रसन्न होने पर परमात्मा प्रसन्न होते हैं। अतएव पिता और माता से बढ़कर गुरु पूज्य है। गुरु का सम्मान करने से देवता, ऋषि और पितर प्रसन्न होते हैं, इसलिए गुरु की अवज्ञा न करे। माता और पिता भी गुरु के समान पूज्य नहीं हैं। गुरु के कामों में दोष लगाना उचित नहीं। जो लोग गुरु और माता-पिता से मन, वचन या कर्म से द्वेष करते हैं और माता-पिता के वृद्ध होने पर उनका भरण-पोषण नहीं करते उनको भ्रूणहत्या का पाप लगता है। ऐसे मनुष्यों से बढ़कर पापी संसार में दूसरा नहीं है। मित्रद्रोही, कृतघ्न, स्त्री की हत्या करनेवाला और गुरुघाती, इन चारों के पाप का प्रायश्चित्त नहीं है। हे धर्मराज, संसार में मनुष्यों का जो कर्तव्य है उसका वर्णन धर्म के अनुसार कर दिया। यही कर्तव्य सर्वोत्तम है। २०, ३३

एक सौ नव अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से सच और झूठ का विवेचन करना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, धर्ममार्ग पर चलने की इच्छा करनेवाला मनुष्य किस प्रकार के काम करे? संसार के सब काम सच और झूठ से सने हुए हैं। धर्मार्थी पुरुष सत्य का आश्रय ले या मिथ्या का? सच क्या है, झूठ क्या है और दोनों में श्रेष्ठ कौन है? किस समय सच और किस समय झूठ बोलना चाहिए?

भीष्म ने कहा—धर्मराज, सच बोलना सबसे बढ़कर है। सत्य के समान दूसरा धर्म नहीं है। अब मैं उस विषय का वर्णन करता हूँ, जिसका समझना संसार में बहुत कठिन है। जहाँ सत्य मिथ्या-रूप में और मिथ्या सत्य-रूप में परिणत होता है, वहाँ सत्य न कहकर मिथ्या

बोलना ही नीतिसङ्गत है। इस प्रकार सच और झूठ का निर्णय करनेवाला मनुष्य संसार में धार्मिक कहलाता है। कर्णपर्व में यह कथा है कि दुराचारी व्याध भी स्वर्ग को गया है और मूर्ख मनुष्य, धर्म की इच्छा करता हुआ, सत्य बोलने पर भी धार्मिक नहीं हो सका। गंगा किनारे रहनेवाला उलूक पक्षी धर्म का इच्छुक न होने पर भी, साँपों का नाश करने के कारण, पुण्य का भागी हुआ था। यथार्थ धर्म का निश्चय करना बहुत कठिन है। मनुष्यों की उन्नति करने, उनका क्लेश दूर करने और उनकी रक्षा करने के लिए धर्म की सृष्टि हुई है, अतएव यथार्थ धर्म
१२ वही है जिससे प्रजा समुन्नत, क्लेशहीन और सुरक्षित रह सके। कुछ लोग श्रुतियों के बतलाये हुए कामों को धर्म कहते हैं और कुछ लोग इसको नहीं मानते। मैं उनकी निन्दा नहीं करता; क्योंकि श्रुतियों में कहे हुए सब काम धर्म-स्वरूप नहीं माने जा सकते। दूसरों का धन चुराने की इच्छा से चोर उसकी खोज में पूछ-ताछ करते हैं। उनको उसका पता न बतलाना ही प्रधान धर्म है। ऐसे अवसर पर यदि चुप रहने से दूसरे का धन बचता हो तो चुप ही रहे और यदि चुप रहने से चोरों को सन्देह पैदा हो तो झूठ बोले। इससे तनिक भी पाप नहीं होता। यहाँ तक कि ऐसे स्थानों पर शपथपूर्वक झूठ बोलना भी दूषित नहीं है। जिस तरह हो सके, चोरों को धन न मिलने दे। पापियों को धन प्राप्त करा देनेवाला मनुष्य भी पाप का भागी होता है। ऋण देनेवाला मनुष्य यदि ऋण चुकाने में असमर्थ ऋणी से शारीरिक परिश्रम लेकर उसका उद्धार करने की इच्छा करे और अदालत में गवाहों से सच्ची गवाही देने को कहे तो गवाह सच्ची बात कह दें। विवाह और प्राण-संकट के समय झूठ बोलना पाप नहीं है। दूसरों के धन की
२० रक्षा, धर्म की वृद्धि और दूसरों के काम की सिद्धि के लिए झूठ बोलना अनुचित नहीं है। अङ्गीकार करने पर उसका पालन अवश्य करना चाहिए। कोई मनुष्य धार्मिक नियम के विरुद्ध आचरण करे तो नियमानुसार उसे दण्ड दिया जाय। दुष्ट लोग अपने धर्म को छोड़कर असुरों के धर्म को मानते हैं, इसलिए ऐसे अधर्मों को अवश्य दण्ड देना चाहिए। पापी लोग धन को ही सबसे बढ़कर समझते हैं। ऐसे लोग देवता और मनुष्य के प्रतिकूल आचरण करनेवाले, यज्ञ और तप से हीन तथा प्रेत के समान हैं। न तो उनके साथ भोजन करना चाहिए और न किसी प्रकार का सम्पर्क रखना चाहिए। वे लोग धन का नाश होने पर प्राण तक दे देने को तैयार हो जाते हैं। उन लागों को यत्न से धर्म का उपदेश दे। उनमें धर्म का ज्ञान किसी को नहीं होता। उनका वध करने पर पाप नहीं लगता; क्योंकि वे तो अपने कर्म से मारे जाते हैं, इसलिए उनके मारनेवाले को पाप कैसा? जो हो, उनका नाश करने की प्रतिज्ञा करना अनुचित नहीं है। दुष्ट लोग कौआ और गिद्ध के समान हैं। मरने पर वे इन्हीं योनियों में जन्म पाते हैं। जो जैसा व्यवहार करे उसके साथ वैसा ही व्यवहार करना चाहिए। मायावी
३० के साथ धूर्तता और सज्जन के साथ सरलता का व्यवहार करना धर्म है।

एक सौ दस अध्याय

सांसारिक संकटों से छुटकारा पाने के उपायों का वर्णन

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, सांसारिक विषयों में फँसे हुए और क्लेश पाते हुए मनुष्य किस उपाय से इन कठिनाइयों से छुटकारा पा सकते हैं ?

भीष्म कहते हैं—धर्मराज ! जो ब्राह्मण ब्रह्मचर्य आदि आश्रमों में रहकर अपने कर्तव्य का पालन करते हैं, जो अहङ्कार और लोभ आदि नीच वृत्तियों को छोड़कर दूसरों के कटु वाक्य सह लेते हैं और जो सताये जाने पर भी बदला नहीं लेते वे सांसारिक संकटों से छुटकारा पा सकते हैं। जो दान तो देते हैं किन्तु स्वयं किसी से कुछ नहीं माँगते और लगातार अतिथि-सत्कार करते रहते हैं; जो ईर्ष्याहीन, स्वाध्याय-सम्पन्न और धर्म-परायण होकर माता-पिता की सेवा करते तथा दिन में कभी नहीं सोते, वे सांसारिक संकटों से छुटकारा पा सकते हैं। जो राजा मन-वचन-कर्म से कभी पाप नहीं करते, जो अपराधियों को उनके अपराध के अनुसार दण्ड देते हैं और जो रजोगुण तथा लोभ के वश होकर धन का संग्रह नहीं करते वे सांसारिक संकटों से छुटकारा पा सकते हैं। जो अग्निहोत्रपरायण होकर सदा सावधानी से अपने काम करते रहते हैं, जो पर-स्त्री से बचे रहकर ऋतुकाल के उपरान्त अपनी स्त्री का उपभोग करते हैं, जो मरने का डर छोड़कर धर्म के अनुसार युद्ध में विजय की इच्छा करते हैं और जो प्राण जाने का सन्देह होने पर १० भी झूठ नहीं बोलते वे सांसारिक संकटों से छुटकारा पा सकते हैं। जो मनुष्यों में आदर्श-स्वरूप हैं, जिनका कोई काम अविश्वास के योग्य नहीं होता और जिनका धन अच्छे कामों में ही व्यय होता है वे ही सांसारिक संकटों से छुटकारा पा सकते हैं। जो ब्राह्मण अनध्याय के समय अध्ययन नहीं करते, जो बाल्यकाल में ब्रह्मचारी रहकर तप, वेद-पाठ और अन्य विद्याओं का अभ्यास करते हैं और जो रजोगुण तथा तमोगुण के वश न होकर केवल सत्त्वगुण का ही आश्रय करते हैं, वे सांसारिक संकटों से छुटकारा पा सकते हैं। जो न तो स्वयं किसी से डरते हैं और न जिनसे किसी को डर होता है, जो सभी को अपने समान देखते हैं, जो दूसरों का ऐश्वर्य देखकर ईर्ष्या नहीं करते और निन्द्य आचरण नहीं करते तथा जो सब देवताओं को प्रणाम करते और श्रद्धा के साथ धर्मोपदेश सुनते हैं, वे सांसारिक संकटों से पार हो सकते हैं। जो अभिमान नहीं करते और मान्य पुरुषों का यथोचित सम्मान करते हैं; जो सन्तान की इच्छा से, शुद्ध हृदय से प्रतिदिन श्राद्ध करते हैं, जो अपना क्रोध रोकते तथा दूसरों का २० क्रोध शान्त करते और जन्म भर मांस-मदिरा का सेवन नहीं करते, जो केवल प्राण धारण करने के लिए भोजन करते और सन्तान उत्पन्न करने के लिए स्त्री-प्रसङ्ग करते हैं तथा सच बोलने के लिए ही बोलते हैं, वे ही सांसारिक संकटों से छुटकारा पा सकते हैं।

हे युधिष्ठिर! ये पीताम्बरधारी, कमल-नयन महात्मा मधुसूदन हम लोगों के परम सुहृद्, भ्राता, मित्र और सम्बन्धी हैं। ये सब लोकों को चमड़े के समान लपेटे हुए हैं। ये अर्जुन को और तुम्हारी भलाई के लिए यत्न करते रहते हैं। जो इन अक्षय पुरुषोत्तम का आश्रय करता है, वह निस्सन्देह सांसारिक कठिनाइयों से छुटकारा पा सकता है। जो मनुष्य इस 'दुर्गातितरण' का पाठ करता है, ब्राह्मणों से कराता है और दूसरों को सुनाता है, वह भी सांसारिक कठिन विषयों से छुटकारा पा सकता है। हे धर्मराज, मनुष्य इसी रीति से इस लोक ३० और परलोक के कठिन विषयों से छुटकारा पा सकता है।

एक सौ ग्यारह अध्याय

भले और बुरे मनुष्यों की परीक्षा के लिए बाघ और गीदड़ का चरित

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, अनेक शान्त-स्वभाव मनुष्य अशान्त की तरह और बहुतेरे अशान्त-स्वभाव मनुष्य शान्त-स्वरूप मालूम होते हैं। उनके स्वभाव को मैं किस प्रकार ठीक-ठीक परख सकूँगा?

भीष्म कहते हैं—धर्मराज! मैं इस विषय में बाघ और गीदड़ का एक प्राचीन संवाद कहता हूँ, सुनो। प्राचीन समय में, पुरिका नाम की नगरी में, पौरिक नाम का राजा था। वह बड़ा निठुर, क्रूर और अधम था। मरने पर, अपने कर्मों के फल से, वह गीदड़ हुआ। पूर्व-जन्म की समृद्धि का स्मरण होने पर उसे अपनी वर्तमान दशा पर बड़ा क्लेश हुआ। तब वह सब पर अति दयालु, सत्यवादी और दृढ़प्रतिज्ञ हो गया। किसी के देने पर भी वह मांस नहीं खाता था। वह वृक्षों से गिरे हुए फल खाकर निर्वाह करता था। वह मरघट में पैदा हुआ था और वहीं दूसरे गीदड़ों के साथ रहता था। जन्म-भूमि के स्नेह-वश वह उस मरघट को छोड़कर अन्यत्र रहना पसन्द नहीं करता था। ऐसे शुद्ध भावों को देखकर उसके साथी गीदड़ उससे कुढ़ने लगे और उसकी शुद्ध बुद्धि को भ्रष्ट करने पर उतारू

होकर सब के सब यों कहने लगे—भाई, तुम यह कैसा विपरीत काम करते हो! मांसाहारी गीदड़ होकर और मरघट में रहकर शुद्ध भाव से जीवन बिताने की इच्छा करते हो! तुम इन विचारों को छोड़कर हम लोगों की तरह मांस खाओ। हम तुमको मांस दिया करेंगे। १०

इस पर उसने सावधानी से मधुर शब्दों में कहा—भाइयो, मेरा जन्म इस नीच योनि में हुआ है सही किन्तु मैं अपनी आदत को सुधार रहा हूँ। मैं उन्हीं कामों को पसन्द करता हूँ जिनसे संसार में यश हो। धर्म के विषय में मेरा सिद्धान्त सुनो। कर्मों के फल आत्मा से उत्पन्न होते हैं। कोई आश्रम धर्म का कारण नहीं है। क्या किसी आश्रम में रहकर ब्रह्महत्या करने से उसका पाप नहीं लगता, अथवा किसी आश्रम में न रहकर गोदान करना व्यर्थ हो जाता है? तुम लोग लोभ के वश, केवल पेट भरने के चक्कर में पड़े हो इसलिए परिणाम में होनेवाले इन दोषों को नहीं समझते। दोनों लोकों में धर्म की हानि करनेवाले, असन्तोषजनक, अति निन्दनीय कामों को मैं पसन्द नहीं करता।

हे धर्मराज! इसके बाद एक बलवान् बाघ ने उस गीदड़ को, सदाचारी और समझदार समझकर, अपना मन्त्री बनाकर कहा—हे सौम्य, मैंने तुम्हारे स्वभाव को अच्छी तरह परख लिया है। तुम मेरे साथ चलो और मनमाना भोग-विलास करते हुए राजकाज सँभालो। मेरा स्वभाव उग्र है, यह सभी जानते हैं और तुमको भी बतलाये देता हूँ। इसलिए तुम कोमल स्वभाव का अवलम्बन करके निस्सन्देह अपना भला कर सकोगे।

बाघ की बातों का सम्मान करके, तनिक सिर झुकाकर, गीदड़ ने कहा—हे मृगेन्द्र! २० आप जो धर्म और अर्थ के जानकार शुद्धस्वभाव मन्त्री की खोज करते हैं, यह आपके योग्य ही है। आप मन्त्री के बिना या दुष्ट मन्त्री की सहायता से राज्य का शासन करने में समर्थ नहीं हो सकते। नीतिज्ञ, अनुरक्त, सन्धि करने में कुशल, विजय के अभिलाषी, निर्लोभ, निश्छल, हितैषी और मनस्वी सहायकों का—आचार्य और पिता के समान—सम्मान करना चाहिए। जो हो, इस समय सन्तोष के कारण मुझे सुख की इच्छा नहीं है और इसी लिए मैं ऐश्वर्य भी नहीं चाहता। इसके सिवा आपके पुराने नौकरों से मेरी पटेगी भी नहीं। वे दुष्टता से मेरे और आपके बीच भेद उत्पन्न करा देंगे। और-और बड़े लोग आपके आश्रय को पसन्द करते हैं। आप अनुभवी और भाग्यवान् हैं; पापियों पर भी आप कृपा करते हैं। आप उत्साही, दूरदर्शी और दानी हैं। जो चाहते उसे करके ही रहते हैं और आपको किसी चीज़ की कमी भी नहीं।* किन्तु मैं तो अपनी वर्तमान दशा से सन्तुष्ट हूँ; नौकरी में बड़ी तकलीफ़ें हैं। फिर सेवा-धर्म का मुझे अनुभव भी नहीं। मैं तो अपनी इच्छा के अनुसार वन में घूमता रहता हूँ। राजा के समीप रहने से निन्दा-स्तुति भी सुननी पड़ती है और वन में रहने से ब्रह्मचर्य आदि

* श्लोक २६—२६ का अर्थ कुम्भकोणम् संस्करण के अनुसार किया गया है।

३० व्रत बेखटके हो सकते हैं। राजा के बुलाने पर मनुष्य के मन में जो डर समाया रहता है वह वन में रहकर कन्द-मूल खानेवाले को छू नहीं जाता। आसानी से मिला हुआ पानी और भय से प्राप्त स्वादिष्ठ भोजन, इन दोनों में, मेरी समझ से, सुखकर वही है जिसमें भय नहीं है। वास्तविक अपराध में राजाओं के यहाँ कम लोग ही दण्डित होते हैं; वहाँ तो अधिकांश में निर-पराधी ही दण्ड पाते हैं। यदि आप मुझे अपना मन्त्री बनाना चाहते हैं तो मेरे साथ आप जैसा बर्ताव करना चाहें, उसका पहले से निश्चय कर लें। राजन्, आपकी भलाई के लिए मैं जो कुछ कहूँगा उसे, आदर के साथ, आपको सुनना होगा। मेरे लिए आप जो नियम बना देंगे उनके विरुद्ध मैं कोई काम न करूँगा। आपके अन्य मन्त्रियों के साथ मैं कभी सलाह नहीं करूँगा। इससे वे, रोब जमाने के लिए, मुझ पर झूठमूठ दोष लगावेंगे। अतएव मैं सिर्फ़ आपके साथ एकान्त में सलाह करूँगा। आपको अपने जातीय कामों में हित-अहित की कोई बात मुझसे पूछने की आवश्यकता नहीं। कभी कुपित होकर मुझे या, मेरी सलाह सुनकर, दूसरे मन्त्रियों को दण्ड न दीजिएगा।

गीदड़ की इन शर्तों को मान करके बाघ ने उसे मन्त्री बना लिया। तब बाघ के ४० पुराने सेवक लोग गीदड़ का आदर देखकर उससे जलने लगे। दुष्टबुद्धि मन्त्रियों ने हेलमेल से गीदड़ को भी, प्रसन्न करके, अपनी तरह दोषी बनाने की इच्छा की। ऐसा न करने से वे इस समय वहाँ न रहने पाते। वे लोग अपनी उन्नति की इच्छा करते हुए गीदड़ को तरह-तरह की बातों से और धन का लोभ देकर प्रसन्न करने लगे; किन्तु बुद्धिमान् गीदड़ किसी तरह उनके जाल में न फँसा। तब उन दुष्टों ने गीदड़ का नाश करने के लिए षड्यन्त्र रचकर उसके घर में बाघ के खाने का मांस रख दिया। गीदड़ को मालूम था कि वह मांस किस कारण, किसकी सलाह से, किसके द्वारा उसके घर में रक्खा गया था; किन्तु उसने आपस के विरोध को दबा देने के लिए यह सब सह लिया। उसने मन्त्री होने के पहले ही बाघ से प्रतिज्ञा करा ली थी कि कुपित होकर किसी मन्त्री को दण्ड न दीजिएगा।

भीष्म ने कहा कि हे धर्मराज, इसके बाद जब बाघ खाने के लिए उठा तब वहाँ मांस न पाकर वह अत्यन्त कुपित हो मन्त्रियों से कहने लगा—मन्त्रियो, मांस के चुराने-वाले का पता शीघ्र लगाओ। तब उन धूर्तों ने बाघ से निवेदन किया—हे मृगेन्द्र, अपनी बुद्धि का अभिमान करनेवाले आपके मन्त्री की यह करतूत है। उनके मुँह से गीदड़ की ५० यह ढिठाई सुनकर बाघ अत्यन्त कुपित हो उठा और उसे मार डालने को तैयार हो गया। तब पुराने मन्त्रियों ने मौक़ा पाकर बाघ से कहा—हे मृगराज, आपका मन्त्री गीदड़ हम लोगों की जीविका नष्ट कर देना चाहता है। इस दुरात्मा ने जब आपके साथ ऐसा व्यवहार किया है तब औरों के साथ यह क्या नहीं कर सकता? आपने हम लोगों के मुँह से उसके स्वभाव

को जैसा सुन रक्खा है उसमें रत्ती भर भी सन्देह न कीजिएगा। उसकी बातें तो धार्मिक की सी हैं, किन्तु उसका स्वभाव अत्यन्त कुटिल है। इस कपटी ने अपने भोजन के लिए व्रत का ढोंग कर रक्खा है। यदि आपको कुछ सन्देह हो तो अपनी आँखों देख सकते हैं। अब उन मन्त्रियों ने गीदड़ के घर से वह मांस लाकर बाघ के सामने रख दिया। यह सब देख-सुनकर बाघ ने कुपित हो मन्त्रियों से कहा—तुम लोग शीघ्र इस गीदड़ को मार डालो।

यह आज्ञा सुनकर, अपने बेटे को हितोपदेश करने के लिए, बाघ की माता ने उसके पास आकर कहा—बेटा, तुम अपने इन पुराने मन्त्रियों के कपट-वाक्यों पर विश्वास न करो। दुष्ट लोग ईर्ष्या से सज्जनों के कामों में दोष लगाते हैं। वे दूसरों की उन्नति नहीं सह सकते; अपने काम में लगे हुए शुद्ध स्वभाववाले को भी वे दोषी बनाते हैं। तपस्या करनेवाले वनवासी मुनियों के भी शत्रु, मित्र और उदासीन होते हैं। संसार में प्राय: लोभियों का नि:स्पृह लोगों के साथ, दुर्बलों का बलवानों के साथ, मूर्खों का पण्डितों के साथ, दरिद्रों का धनिकों के साथ, अधर्मियों का धर्मात्माओं के साथ और कुरूपों का रूपवानों के साथ, विरोध रहता है। कपटी लोभी मूर्ख लोग बृहस्पति के समान बुद्धिमान् निर्दोष मनुष्य को भी दोषी बताते हैं। तुम्हारा मन्त्री गीदड़ जब देने पर भी मांस नहीं लेता है तब आज उसने तुम्हारे खाने के मांस को चुरा लिया, इसका विश्वास कैसे हो सकता है। इसलिए पहले इसकी जाँच कर लो। संसार में बहुत से असभ्य लोग सभ्य के समान और अनेक सभ्य असभ्य के से पाये जाते हैं, इसलिए बुद्धिमान् को उनके स्वभाव की परीक्षा कर लेनी चाहिए। आकाशमण्डल औंधे कड़ाह की तरह और जुगनू अग्नि के समान दिखाई देता है, किन्तु वास्तव में न तो आकाश कड़ाह है और न जुगनू आग ही है। अतएव प्रत्यक्ष वस्तु की भी परीक्षा कर लेनी चाहिए। परीक्षा करके ठीक-ठीक समझ लेने पर फिर पछतावा नहीं करना पड़ता। ६०

बेटा, अपने अधीन लोगों का नाश कर डालना राजा के लिए कुछ कठिन काम नहीं है; किन्तु उसका क्षमावान् होना ही प्रशंसनीय और उत्तम है। तुमने अपने सुहृद् गीदड़ को प्रधान मन्त्री के पद पर नियुक्त किया है, जिससे सर्वसाधारण में तुम्हारा नाम हो गया है। सत्पात्र का मिलना दुर्लभ है, इसलिए तुम अपने मन्त्री को प्राणदण्ड न देना। दूसरों के अपवाद लगाने से निर्दोष व्यक्ति को जो दण्ड देता है वह मूर्ख शीघ्र ही विनष्ट हो जाता है और उसके आश्रित मन्त्री भी अपराध करने लगते हैं। ७०

बाघ की माता अपने बेटे को इस प्रकार समझा रही थी कि इसी समय गीदड़ का एक परम धार्मिक जासूस आया। उसने गीदड़ के शत्रुओं द्वारा रचे हुए षड्यन्त्र का बाघ के सामने भण्डाफोड़ कर दिया। तब गीदड़ के सदाचार की बातें सुनकर बाघ बहुत प्रसन्न हुआ। वह यथोचित सत्कार करके स्नेहवश बार-बार गीदड़ का आलिंगन करने लगा। नीतिशास्त्र का जाननेवाला गीदड़

चोरी के मिथ्या कलङ्क को न सह सका। उसने क्रोध के मारे अनशन द्वारा प्राण त्यागने की सूचना बाघ को दी। यह सुनकर बाघ प्रेम की दृष्टि से गीदड़ को देखकर, बार-बार सत्कार करके, उसको मनाने लगा। गीदड़ ने बाघ का यह प्रेम देखकर नम्रता-पूर्ण गद्गद शब्दों में कहा—हे मृगराज! आपने पहले मेरा बड़ा आदर किया था और अब ऐसा अपमान किया है, इसलिए अब मैं आपके साथ नहीं रह सकता। अपने पद से हटाये हुए, असन्तुष्ट, अपमानित, हृतसर्वस्व, लोभी, क्रोधी, दुर्बल, निर्दय, अभिमानी, चिन्तित और सदा व्यसन में आसक्त सेवक मालिक के पास रहकर शत्रु के समान काम करते हैं। उनको कभी मालिक से प्रेम नहीं होता। मैं इस समय अपमानित और अपने पद से भ्रष्ट हो चुका हूँ। अब आप मुझ पर कैसे विश्वास कर सकेंगे
८० और मैं ही आपके पास क्योंकर रह सकूँगा? आपने परीक्षा करके और कार्य-कुशल समझकर मुझे नियुक्त किया था। अब आपने मेरे साथ की हुई अपनी प्रतिज्ञा को तोड़कर मेरा अपमान किया है। सत्यप्रतिज्ञ लोग सभा के बीच एक बार जिसे सच्चरित्र कह देते हैं उसके अवगुण फिर कभी अपने मुँह से कहना उचित नहीं समझते। जो हो, इस समय आपने मेरा अनादर किया है, इसलिए अब आप मुझ पर विश्वास नहीं कर सकते। आपके विश्वास न करने पर मुझे घबराहट बनी रहेगी। आपको लगातार मुझ पर सन्देह बना रहेगा और मैं हमेशा आपसे डरता रहूँगा। मेरे दोष खोजनेवाले दूसरे लोग असन्तुष्ट रहेंगे। ऐसी जगह रहने में कुशल नहीं। जहाँ पहले सम्मान और फिर अपमान हो चुका है वहाँ का रहना उस सम्मानित और अपमानित व्यक्ति के लिए कदापि उचित नहीं। टूटी हुई वस्तु कठिनता से जुड़ती है और जुड़ी हुई मुश्किल से टूटती है; जो मित्रता एक बार टूटकर फिर जुड़ती है उसमें स्नेह नहीं रह जाता। कोई नौकर निस्स्वार्थ भाव से मालिक का हित नहीं करता। सभी अपने मतलब से रहते हैं। मालिक का हित चाहनेवाले नौकर बहुत दुर्लभ हैं। जिस राजा का चित्त चञ्चल होता है वह किसी के स्वभाव की परीक्षा नहीं कर पाता। सुयोग्य और निर्भय व्यक्ति सैकड़ों में एक पाया जाता है। बुद्धि की कमी होने से ही अकस्मात् अधिकार का प्राप्ति, अधिकार के परित्याग, भले-बुरे कामों में हस्तक्षेप और महत्त्व पाने की लालसा पैदा होती है। हे धर्मराज! उस बुद्धिमान् गीदड़ ने इस प्रकार बाघ को धर्म, अर्थ और काम-सम्बन्धी उपदेश देकर उसे प्रसन्न कर लिया। फिर वह उसके अनुरोध को न मानकर दूसरे वन को चला गया और प्रायोपवेशन द्वारा अपना शरीर त्यागकर स्वर्गवासी हो गया। ९१

एक सौ बारह अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से, आलस्य से होनेवाले अनर्थों को बतलाते हुए, ऊँट का चरित कहना

युधिष्ठिर ने पूछा—सब धर्मों के जाननेवाले हे पितामह, राजाओं का क्या कर्त्तव्य है और कैसा काम करके राजा सुखी हो सकता है?

भीष्म कहते हैं—धर्मराज ! राजा का जो कर्त्तव्य है और जिस काम के करने से राजा सुखी होता है, इसके ज्ञान के लिए एक ऊँट का इतिहास सुनो। सत्ययुग में, पहले जन्म का स्मरण रखनेवाला एक ऊँट, वन में कठोर नियमों का पालन करता हुआ, तप कर रहा था। उसकी तपस्या पूरी होने पर सर्वशक्तिमान् ब्रह्माजी ने प्रसन्न होकर उससे वर माँगने को कहा। ऊँट ने कहा—भगवन् ! आपकी कृपा से मेरी यह गर्दन सौ योजन लम्बी हो जावे, जिससे मैं उतनी दूर तक चर सकूँ। वरदानी ब्रह्मा ने 'एवमस्तु' (ऐसा ही हो) कह दिया। ऊँट भी अभीष्ट वरदान पाकर अपने वन को चला गया; किन्तु वह दुर्बुद्धि ऊँट, काल से मोहित हो, आलस्यवश कहीं चरने नहीं जाता था।

एक बार वह अपनी सौ योजन लम्बी गर्दन फैलाये बेखटके घूम रहा था, इतने में आँधी चलने लगी। तब उस मूर्ख पशु ने अपने सिर और गर्दन को एक कन्दरा में घुसेड़ दिया। इसके बाद बड़े ज़ोर से पानी बरसने लगा। पानी में भीगने से दुःखित हो एक गीदड़, अपनी गिदड़ी समेत, उसी कन्दरा में आ पहुँचा। वह मांसाहारी गीदड़ सरदी, भूख और थकान से पीड़ित था। ऊँट की गर्दन देखकर वह उसे खाने लगा। दुर्बुद्धि ऊँट यह दुर्दशा देखकर, दुःख के मारे व्याकुल होकर, अपनी गर्दन नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे हिलाने लगा। गर्दन को समेटने का उसका कोई उपाय सफल न हुआ। गीदड़ और गिदड़ी आराम से उसका मांस खाकर, आँधी-पानी के बन्द होने पर, उस कन्दरा से चले गये। वह ऊँट उसी समय मर गया।

१०

हे धर्मराज, वह आलसी ऊँट अपनी मूर्खता से इस प्रकार मारा गया। इसलिए तुम आलस्य को छोड़कर इन्द्रियों का दमन करो। मनुजी ने बुद्धि को ही सब कामों की सिद्धि का कारण बतलाया है। कार्यों की सिद्धि में बुद्धि श्रेष्ठ, बाहुबल मध्यम और पैरों से चलना आदि उपाय अधम हैं। जितेन्द्रिय और कार्यकुशल पुरुष ही राज्य की रक्षा कर सकता है। मनुजी की राय है कि मन्त्रियों की सलाह माननेवाला सहायवान् मनुष्य, बुद्धि के बल से, विजय पा सकता है। जो समझ-बूझकर काम करता है

वही संसार में धन प्राप्त कर सकता है। सहायवान् मनुष्य सारी पृथिवी का शासन कर सकता है। हे धर्मराज, प्राचीन साधु महर्षियों ने जो विधान कर दिया है उसी के अनुसार मैंने तुम्हें उपदेश दिया है। अब तुम बुद्धिपूर्वक सब काम करो। २१

एक सौ तेरह अध्याय

बलवान् शत्रु को वश में करने का उपाय बतलाना तथा समुद्र और नदी का संवाद कहना

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, निःसहाय अत्यन्त वृद्ध राजा दुर्लभ राज्य पाकर बलवान् शत्रु के साथ कैसा व्यवहार करे ?

भीष्म कहते हैं—धर्मराज, इस विषय में एक प्राचीन इतिहास कहता हूँ, जिसमें समुद्र और नदियों का संवाद है। प्राचीन समय में एक बार दानवों के गृह-स्वरूप, नदियों के स्वामी, समुद्र ने सन्देह-युक्त होकर नदियों से पूछा—हे नदियो, तुम अपने प्रवाह में बड़े-बड़े वृक्षों को तो जड़ समेत उखाड़ लाती हो; किन्तु तुममें से किसी को एक भी बेत बहा लाते मैंने नहीं देखा। इसका क्या कारण है ? तुम अपने किनारों पर लगे हुए बेतों को निर्बल और तुच्छ समझकर उनकी अवज्ञा करती हो या बेतों ने तुम्हारे साथ कोई उपकार कर रक्खा है, जिससे उन्हें नहीं उखाड़ती हो ? जो हो, तुम्हारे प्रवाह में कभी एक भी बेत क्यों नहीं आता ? तब गङ्गाजी ने अर्थ और युक्ति-युक्त मनोहर शब्दों में समुद्र से यों कहना आरम्भ किया—नाथ, दूसरे वृक्ष एक ही स्थान पर अकड़े खड़े रहकर हम से विरोध सा करते हैं; किन्तु बेत ऐसा नहीं करता। वह नदी के वेग को देखकर झुक जाता है और प्रवाह का वेग निकल जाने पर फिर ज्यों का त्यों खड़ा हो जाता है। वह अवसर का जानकार, सदा वशीभूत, विनीत और हमारे अनुकूल रहता है। उसके न उखाड़ने का यही कारण है। वायु और जल के वेग को देखकर जो वृक्ष, लता और झाड़-झंखाड़ झुक जाते हैं उनका नाश नहीं होता। १०

हे धर्मराज, जो मनुष्य बलवान् शत्रु के वेग को सह नहीं लेता वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। जो बुद्धिमान् मनुष्य अपना और शत्रुओं का सार-असार तथा बल-वीर्य देखकर काम करता है वह शत्रुओं से परास्त नहीं होता। नीतिज्ञ समझदार लोग शत्रु को बलवान् जानकर बेत की तरह नम्र हो जाते हैं, यही बुद्धिमानी के लक्षण हैं। १४

प्राचीन समय में एक बार दानवों के-गृह स्वरूप, नदियों के स्वामी, समुद्र ने सन्देह-युक्त होकर नदियों से पूछा—हे नदियो......।—पृ० ३४७२

एक सौ चौदह अध्याय

सभा में दुष्टों के दुर्वाक्य सुनकर उनकी परवा न करने के गुणों का वर्णन

युधिष्ठिर ने पूछा—हे पितामह ! मूर्ख और वकवादी मनुष्य यदि कोमल तथा तीक्ष्ण वचनों से विद्वान् पुरुष को, सभा के बीच, निन्दा करें तो वह क्या करे ?

भीष्म कहते हैं—महाराज! मैं इस विषय का वर्णन करता हूँ, तुम सावधान होकर सुनो। जो बुद्धिमान् मनुष्य क्रोध न करके मूर्खों की निन्दा को सह लेता है वह पुण्यों को प्राप्त करता और अपने पापों से छूट जाता है। अतएव टिटिहिरी की तरह टें-टें कर रहे दुष्टों के वचनों की परवा न करना बुद्धिमानों का कर्तव्य है। जो मनुष्य संसार में सभी का शत्रु होता है उसका जीवन निष्फल है। 'मैंने सभा के बीच अमुक प्रतिष्ठित मनुष्य को यों कहा, वे लज्जित होकर मुँह सुखाकर मुर्दे की तरह बैठे रह गये' यह कहकर दुर्जन अपनी करतूतों की दुहाई देते हैं। इस तरह के अधम निर्लज्ज मूर्खों की बातों पर ध्यान न दे। समझदारों को चाहिए कि अल्पबुद्धि मनुष्यों की प्रशंसा और निन्दा सभी बातें सह लें। वन में कौए की 'काँव-काँव' की तरह दुष्टों के निरर्थक दुर्वचनों से सत्पुरुषों का कुछ बनता बिगड़ता नहीं है। यदि दुष्टों के कहने से ही किसी को दोष लग जाता और उनके शाप से किसी का पुत्र मर गया होता तो उनके वचन अवश्य सार्थक समझे जाते। जिस तरह उनके कहने से किसी का बेटा नहीं मरता उसी तरह उनके मिथ्या दोष लगाने से कोई मनुष्य दूषित नहीं हो सकता। जैसे अपना गुप्त अङ्ग दिखाकर नाचता हुआ मोर लज्जित नहीं होता वैसे ही दुष्ट लोग सज्जनों को दुर्वचन कहकर अपनी नीचता दिखाने में लज्जित नहीं होते। १०

जिनको दुर्वचन कहने और चाहे जो कर गुज़रने में कोई रुकावट नहीं है उनके साथ सज्जनों को बातचीत भी न करनी चाहिए। जो मनुष्य सामने तो किसी की प्रशंसा करता और पीठ पीछे निन्दा करता है वह कुत्ते के समान बुद्धिहीन और धर्मभ्रष्ट है। उसका दान और होम आदि कोई भी धर्म का काम सफल नहीं होता। बुद्धिमान् मनुष्य को, कुत्ते के मांस की तरह, इन पापी अधम लोगों का त्याग कर देना चाहिए। दुष्ट लोग सज्जनों की निन्दा करके, फन उठाये हुए साँप की तरह, अपने दुर्गुणों का परिचय देते हैं। जो मनुष्य दुष्टों से, दुष्कर्म छुड़ाकर, सुकर्म कराना चाहते हैं वे राख के ढेर में गिरे हुए गधे की तरह दुःख सहते हैं। जो मनुष्य हमेशा दूसरों की निन्दा किया करता है उसका परित्याग कटखने कुत्ते और मतवाले हाथी के समान करना चाहिए। अविनीत, उद्दण्ड, पापिष्ठ, दुष्कर्म करनेवाले अधम मनुष्यों को धिक्कार है। जो कोई सज्जन मनुष्य ऐसे दुष्टों से अपमानित होकर उन्हें उत्तर देना चाहे तो तुम 'इनकी बातों का उत्तर देना व्यर्थ है', यह कहकर उस सज्जन को रोक दो। व्यवहार-कुशल

मनुष्यों की राय में, सज्जनों का नीच लोगों के साथ बातचीत करना भी निन्दनीय है। दुर्बुद्धि मनुष्य क्रुद्ध होकर घूँसे मारता, धूल और भूसी फेंकता और दाँत निकालकर काट खाने का भय दिखाता है। जो बुद्धिमान् मनुष्य सभा में दुर्जनों के दुर्वचनों की परवा नहीं करता और २१ जो इन उपदेशों को पढ़ा करता है उसे कभी दुष्टों की निन्दा का क्लेश नहीं सहना पड़ता।

एक सौ पन्द्रह अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से राजा के लिए सहायकों की आवश्यकता बतलाना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, आप बहुदर्शी और हमारे कुल की उन्नति चाहनेवाले हैं। आपने दुरात्माओं के दुर्वाक्य कहने का वर्णन किया। अब एक सन्देह को और दूर कीजिए। किस प्रकार पुत्र-पौत्रों को सन्तुष्ट, राज्य की उन्नति, परिजनों को सुखी, वर्तमान और भविष्य में मङ्गल-लाभ और अन्नपान आदि द्वारा शरीर की स्वास्थ्य-रक्षा आदि काम किये जा सकते हैं? राजा राज्य पाकर और मित्रों के साथ रहकर प्रजा को किस प्रकार प्रसन्न कर सकता है? जो राजा इन्द्रियों के वश में होकर, अनुराग और मोह के फन्दे में पड़कर, पुराने नौकरों को असन्तुष्ट करता है वह सुखी रह सकता है या नहीं? इसके सिवा नौकरों के विना अकेले राज्य का काम नहीं सँभल सकता, अतएव कैसे कुल और स्वभाववालों को नौकर रखकर राज-कार्य करना चाहिए? हे पितामह! आप बृहस्पति के समान बुद्धिमान् हैं, इसलिए इस कठिन राजधर्म का वर्णन करके मेरे सन्देह को दूर कीजिए। आप हमारे वंश के हितैषी और हम लोगों के धर्मोपदेशक हैं। विदुरजी भी हम लोगों को हमेशा धर्म का उपदेश देते रहते हैं। इस समय आपसे अपने कुल और राज्य के हितकर वचनों को सुनकर, अमृत पीने १२ के समान, सन्तुष्ट होकर मैं सुख से सो सकूँगा।

भीष्म ने कहा—महाराज, राजा अकेला राज्य का शासन नहीं कर सकता। कोई भी निस्सहाय मनुष्य धन उपार्जन करने में समर्थ नहीं हो सकता। यदि किसी तरह धन की प्राप्ति हो भी जाय तो सहायकों के विना उसकी रक्षा करना कठिन है। जिसके नौकर-चाकर बुद्धि-मान्, हितैषी, कुलीन और मृदुस्वभाव होते हैं; जिसके मन्त्री हमेशा पास रहते हैं, सदुपदेश देते हैं, समय और असमय का विचार करते हैं, भविष्य के लिए तैयारी करते हैं, बीती बातों का सन्ताप नहीं करते और घूस लेकर किसी के वश नहीं हो जाते, तथा जिसके सहायक दुःख-सुख में समान, सत्यवादी, हितैषी और धन की चिन्ता करते रहते हैं, और जिसके राज्य में सब प्रजा बुरे कामों को छोड़कर अच्छे मार्ग पर चलकर सुख से रहती है वही राजा राज्य का यथार्थ सुख भोग सकता है। जिस राजा का अन्न और धन विश्वासपात्र मनुष्यों द्वारा सुरक्षित

रहता है वह शीघ्र ही समृद्धिशाली हो जाता है। जिस राजा के राज्य में वादी और प्रतिवादी का निर्णय ठीक-ठीक होता है और जो राजनीति का अभिज्ञ, मनुष्यों को अपने वश में लानेवाला और सन्धि-विग्रह आदि षट् गुणों का जानकार होता है वही धर्म का फल भोगता है। २३

एक सौ सोलह अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से एक मुनि और कुत्ते का इतिहास कहना

भीष्म कहते हैं—बेटा, जमदग्नि के पुत्र परशुराम से महर्षियों ने एक इतिहास कहा था। मैंने भी तपोवन में उस इतिहास को सुना है। मैं इस समय, प्रसङ्गवश, सज्जनों के उपदेश-स्वरूप उस प्राचीन इतिहास का वर्णन करता हूँ, सुनो। प्राचीन समय में, किसी जनशून्य घने वन में, फल-मूल खानेवाले एक जितेन्द्रिय तपस्वी रहते थे। ये महर्षि शान्तस्वभाव और विद्वान् थे। सदा नियमपूर्वक उपवास आदि किया करते थे। इन महात्मा का सद्भाव देख-कर वन के सब जीव-जन्तु इनका विश्वास करते और इनके आश्रम में आ बैठते थे। बाघ, सिंह, मतवाले हाथी, चीते और रीछ आदि हिंस्र जीव भी, उनके सेवक की तरह, प्रतिदिन उनके पास आते और उनका कुशल पूछकर अपने-अपने स्थान को चले जाते थे।

उस आश्रम में एक पालतू कुत्ता भी रहता था। वह कुत्ता फल-मूल खाता, उपवास करता तथा दुर्बल और शान्तस्वभाव था। वह महर्षि को छोड़कर कहीं नहीं जाता था। हमेशा भक्ति और श्रद्धा के साथ उनके पैरों के पास बैठा रहता था। उसकी भक्ति और श्रद्धा देखकर महर्षि उस पर बहुत प्रसन्न थे और उस पर मनुष्य के समान स्नेह रखते थे। एक १० दिन एक महापराक्रमी मांसाहारी भूखा तेंदुआ मुँह फैलाये, जीभ निकाले, पूँछ फटकारता हुआ यमराज की तरह आश्रम के पास आ पहुँचा। उसे देखकर, प्राण बचाने के लिए, कुत्ते ने महर्षि से कहा—भगवन्, देखिए, कुत्तों का परम शत्रु यह तेंदुआ (बघेरा ?) मेरे मारने को आ रहा है। आप सर्वज्ञ हैं, इस समय प्रसन्न होकर मुझे अभयदान दीजिए।

तब सब जीवों का भाव जाननेवाले महर्षि ने उससे कहा—बेटा, डरो नहीं। यह तेंदुआ तुमको नहीं मार सकता। तुम अपना रूप छोड़कर इसी का स्वरूप धारण कर लो। यह सुनते ही वह कुत्ता दाँत निकाले, चितकबरे अङ्गवाला, भयङ्कर तेंदुआ बन बैठा। तब तो अपने समान पशु को सामने देखकर उस आगन्तुक तेंदुए ने उससे वैर भाव छोड़ दिया।

इसके बाद एक मांसाहारी भूखा बाघ मुँह फैलाये, जीभ लपलपाता हुआ, उस तेंदुए-रूपी कुत्ते पर झपटा। महर्षि का स्नेहपात्र वह तेंदुआ-रूपधारी कुत्ता उसे देखकर बहुत डरा और अपनी जान बचाने के लिए फिर महर्षि की शरण में आया। महर्षि ने उसे, भयभीत देखकर २० अपने तप के प्रभाव से, आते हुए बाघ के समान बना दिया। झपटा हुआ बाघ अपने सजा-

तीय बलवान् बाघ को सामने देखकर उसे न मार सका। हे धर्मराज, इस प्रकार वह कुत्ता महर्षि के प्रभाव से मांसाहारी बलवान् बड़ा भारी बाघ बनकर फल-मूल खाना छोड़कर सिंह के समान वन के पशुओं को खाने लगा। २३

एक सौ सत्रह अध्याय

मुनि के प्रभाव से कुत्ते की रक्षा होने पर भी उसकी नीचता बतलाना

भीष्म कहते हैं—धर्मराज, एक दिन वह बाघ पशुओं के मांस से अपना पेट भरकर महर्षि की कुटी के पास पड़ा सो रहा था। उसी समय बड़े दाँतोंवाला मेघाकार एक मतवाला हाथी उसी आश्रम की ओर आता देख पड़ा। मेघ के समान गरजते हुए बलवान् मतवाले हाथी को देखकर डर के मारे उस बाघ ने फिर महर्षि की शरण ली। महर्षि ने उसे, डरा हुआ जानकर, हाथी बना दिया। अपने समान उसे देखकर वह हाथी डरकर लौट गया। अब वह कुत्ता हाथी होकर प्रसन्नता से वन में घूमने लगा।

इसके बाद हाथियों का शत्रु भयङ्कर सिंह उस हाथी के पास आ पहुँचा। सिंह को देखकर वह हाथी डर के मारे काँपता हुआ महर्षि के पास गया। महर्षि ने उसी दम उसे सिंह बना दिया। आया हुआ सिंह अपने सजातीय सिंह को देखकर वापस चला गया। इस तरह वह हाथी अब सिंह होकर और आगन्तुक सिंह के डर से छूटकर उसी वन में महर्षि के आश्रम में रहने लगा। उसके डर के मारे वन के और सब पशु, अपनी जान बचाने के लिए, उस तपोवन से भागने लगे। १०

कुछ दिनों बाद सब प्राणियों का नाश करनेवाला महापराक्रमी मांसाहारी आठ पैरों और ऊर्ध्व नेत्रोंवाला एक शरभ, उस सिंह को मारने के लिए, मुनि के आश्रम में आ पहुँचा। तब महर्षि ने सिंह को वैसा ही बलवान् शरभ बना दिया। जङ्गली शरभ अपने सामने बलवान् शरभ को देखकर वहाँ से भाग खड़ा हुआ। वह कुत्ता अब शरभ होकर

उन्हीं मुनि के आश्रम में रहने लगा। दूसरे जङ्गली जीव उसके डर के मारे, प्राण बचाने के लिए, इधर-उधर भाग गये। शरभ भी जङ्गली पशुओं को मार-मारकर खाने लगा। मांसाहारी शरभ फल-मूल खाने की इच्छा भी नहीं करता था।

इस तरह बहुत दिन बीतने पर शरभ-रूपी उस कृतघ्न कुत्ते ने, मांस खाने की इच्छा से, अपने परम हितैषी महर्षि को मार डालना चाहा। तब तपस्वी महात्मा ने अपने तप के प्रभाव से ज्ञान-दृष्टि द्वारा उस कृतघ्न के इरादे को जानकर कहा—अरे दुष्ट! तू पहले कुत्ता था, मेरे तपोबल से तेंदुआ हो गया था। उसके बाद क्रमशः बाघ, मतवाला हाथी, सिंह और अन्त को महापराक्रमी शरभ बन गया। मैंने ही स्नेहवश तेरी यह उन्नति की है। अब तू मुझ निरपराधी को मार डालना चाहता है, इसलिए तू फिर कुत्ता हो जा। महर्षि के यों कहते ही मुनि का शत्रु वह दुष्ट शरभ उसी दम कुत्ता हो गया। २० २३

एक सौ अठारह अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से मन्त्री के गुण कहना

भीष्म कहते हैं—हे धर्मराज, इस प्रकार वह कुत्ता फिर अपने पूर्व रूप को प्राप्त होकर बहुत दुखी हुआ। महर्षि ने दुतकारकर उसे अपने तपोवन से निकाल बाहर किया। [इसलिए राजन्, नीचों को आश्रय कदापि न दे।] बुद्धिमान् राजा को नौकरों के स्वभाव, पवित्रता, सत्यता, सरलता, विद्या, आचरण, कुल, जितेन्द्रियता, दया, बल-वीर्य और क्षमा आदि गुणों की परीक्षा करके तब उनको यथायोग्य कामों पर नियुक्त करना चाहिए। बिना परीक्षा किये किसी मनुष्य को मन्त्री बना लेना उचित नहीं। नीचों का साथ करके राजा कभी सुखी नहीं हो सकता। उत्तम कुल में उत्पन्न सज्जन पुरुष, सताये जाने पर भी, राजा का अनिष्ट नहीं करता; किन्तु नीच कुल का आदमी सज्जनों के पास रहकर दुर्लभ ऐश्वर्य प्राप्त करके निरी झिड़की सुनकर ही फिर उन्हीं से शत्रुता करने लगता है। इसलिए जो मनुष्य हमेशा अपने मालिक और मित्रों की उन्नति चाहता हो और जो कुछ मिल जाय उसी में सन्तुष्ट रहता हो तथा जो कभी नीच मनुष्यों की संगति न करता हो, उस उत्तम कुल में उत्पन्न सुशिक्षित, सहनशील, स्वदेशी पुरुष को मन्त्री बनावे; जो कृतज्ञ, बलवान्, क्षमावान्, जितेन्द्रिय, सबको प्रसन्न रखनेवाला, स्थिरचित्त, सबका हितैषी, आलस्यहीन, अपने काम में लगा रहनेवाला, सन्धि-विग्रह आदि गुणों का जानकार, धर्म, अर्थ और काम का जाननेवाला तथा नगर और देशवासियों का प्रिय, शत्रु का विनाश करने में समर्थ, सेना की रचना करने में निपुण और लक्षणों को देखकर मनुष्यों के स्वभाव को जान लेनेवाला हो उसको मन्त्री बनावे; जो पुरुष सेना को प्रसन्न रखने में कुशल, यात्रा के कामों में चतुर, हाथियों को सिखलाने में निपुण, अहङ्कारशून्य, अनुकूल, नीतिज्ञ,

शुद्धस्वभाव, देखने में प्रिय, मृदुभाषी और देशकालज्ञ हो उसी को मन्त्री के पद पर नियुक्त करे। जो राजा इस प्रकार के गुणवान् मनुष्य को मन्त्री बनाकर उसका यथोचित सम्मान करता रहता है उसका राज्य चन्द्रमा के प्रकाश के समान चारों ओर फैल जाता है। १४

जो राजा शास्त्र-विशारद, धर्मात्मा, प्रजा का पालन करनेवाला, धैर्यवान्, क्रोधहीन, शुद्ध-स्वभाव तथा आवश्यकता पड़ने पर तीक्ष्ण और पौरुष करने में समर्थ होता है वही सम्मान प्राप्त करता है; जो ज्ञानी राजा गुरुजनों की सेवा करनेवाला, गुणवान्, विचारवान्, मेधावी, जितेन्द्रिय, प्रियवादी होता और जो नीति के अनुसार काम कर सकता है तथा जो अपकारी मनुष्य को भी क्षमा करता है और दान में विघ्न नहीं डालता वही सम्मान प्राप्त करता है ; जो राजा श्रद्धावान्, प्रियदर्शन, अहङ्कारहीन और परोपकारी होता है और जो दीन-दुखियों का दुःख दूर करता है तथा विचारपूर्वक काम करता है उसी का आदर होता है; जो मन्त्रियों के अच्छे काम करने पर उनका उपकार करता है, जिसके नौकर-चाकर हमेशा उससे प्रेम करते हैं, जो अधिक संख्या में मनुष्यों का संग्रह कर रखता है, जो हमेशा नौकरों और प्रजा की दशा देखता रहता है, जो गुप्तचरों द्वारा गुप्त विषयों का पता लेता रहता है और जो धर्म के कामों में तत्पर रहता है वही राजा प्रजा का प्रिय और सर्वत्र माननीय होता है। जो सावधान राजा न्यायानुसार दण्ड देने में रियायत नहीं करता उसका सब जगह मान होता है। २०

गुणी योद्धाओं का संग्रह करना राजा के लिए परम आवश्यक है; क्योंकि गुणवान् शूर-वीर लोग राज्य की रक्षा करने में विशेष सहायता देते हैं। उन्नति चाहनेवाला राजा कभी वीर पुरुषों का अपमान न करे। जिस राजा के अधिकार में युद्धकुशल, शास्त्रज्ञ, कृतज्ञ, धार्मिक, अस्त्रविद्या में निपुण, असंख्य पैदल, रथी, गजारोही और अश्वारोही सैनिक होते हैं वह सारी पृथिवी को अपने अधीन कर सकता है। जो राजा आवश्यक वस्तुओं का संग्रह करने में तत्पर और उद्योगी होता है और जिसके बहुत से मित्र होते हैं वह सब राजाओं में श्रेष्ठ गिना जाता है। २८

एक सौ उन्नीस अध्याय

नौकरों की योग्यता के अनुसार उनके अधिकार और लक्षण बतलाना

भीष्म कहते हैं—महाराज, जो राजा कुत्ते के समान नीच नौकरों को उनके योग्य कामों में नियुक्त करता है वही राज्य कर सकता है। कुत्ते को ऊँचे पद पर नियुक्त कर देने से वह, अधिकार पाकर, मतवाला हो उठता है। अतएव उत्तम जाति और उत्तम गुणवाले मनुष्यों को ही मन्त्री बनाना चाहिए। नीच आदमी को ऊँचे पद पर बैठा देना युक्तिसंगत नहीं होता। जो राजा नौकरों को यथायोग्य कामों पर नियुक्त करता है वह इच्छानुसार राज्य-सुख पा सकता है। शरभ को शरभ के पद पर, सिंह को सिंह के अधिकार पर, बाघ को बाघ के योग्य

स्थान पर और तेंदुए को तेंदुए की जगह पर तैनात करना राजा का काम है। राजा यदि अपने कामों का शुभ फल पाना चाहे और प्रजा का मनोरञ्जन करना चाहे तो वह कभी अयोग्य नौकरों को उच्च अधिकार पर नियुक्त न करे। मूर्ख, नीच, बुद्धिहीन, इन्द्रियलोलुप और नीच कुल में उत्पन्न मनुष्यों को राज्य-सम्बन्धी कामों पर नियुक्त करना गुणवान् राजा को कदापि उचित नहीं। कुलीन, सज्जन, पराक्रमी, ज्ञानवान्, ईर्ष्याहीन, उच्चाशय, शुद्धस्वभाव और कार्य-कुशल मनुष्यों को ही राजा अपने पास रक्खे। जो लोग विनीत, कामकाजी, शान्तस्वभाव, अनुगत और अन्य स्वाभाविक गुणों से सम्पन्न हों और जो अपने काम में आलस्य न करते हों वे राजा के प्राण-स्वरूप हैं। उन्हीं को राज्यकार्य में नियुक्त करना चाहिए। सिंह को पास रखना सिंह का ही काम है। जो सिंह नहीं है वह यदि हमेशा सिंह के साथ रहता है तो वह सिंह के समान फल पाता है; किन्तु सिंह यदि कुत्ते का साथ करके सिंह का काम करता है तो वह कभी सिंह के समान फल नहीं पा सकता। इसी तरह जो राजा हमेशा बुद्धिमान्, शूर-वीर और कुलीन मनुष्यों को अपने साथ रखता है वह सारी पृथिवी का अधिकार प्राप्त करने में समर्थ होता है। मूर्ख, कुटिल और कृपण मनुष्य को अपने पास रखना राजा को उचित नहीं। राजा का हित चाहनेवाला मनुष्य बाण की तरह, विमुख न होकर, मालिक का काम करता है। अतएव राजा को हितैषी नौकरों का हमेशा सम्मान करना चाहिए। राजा सदा यत्न से कोष की रक्षा करे। ख़ज़ाना ही उसकी उन्नति का प्रधान कारण है, अतएव जिस उपाय से कोष की वृद्धि हो सके उसी का अवलम्बन किया जाय। हे धर्मराज, तुम्हारा कोष हमेशा धन से परिपूर्ण और सज्जनों द्वारा सुरक्षित रहे। तुम धन-धान्य-सम्पन्न होकर सुखपूर्वक प्रजा का पालन करो। तुम्हारे सैनिक उद्योगी, युद्धकुशल और घोड़े की सवारी में निपुण हों; तुम मित्रों का तथा भाई-बन्धुओं का हित किया करो और पुरवासियों की रक्षा करने में तत्पर रहो। मैंने तुमको कुत्ते का दृष्टान्त सुनाकर प्रजा के साथ व्यवहार करना बतलाया है। अब तुम क्या सुनना चाहते हो?

एक सौ बीस अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर को प्रजापालन की विधि बतलाना

युधिष्ठिर ने कहा—हे पितामह, आपने राजधर्मार्थ-वेत्ता राजाओं के प्रयुक्त और सज्जन-सम्मत अनेक प्रकार के राजधर्मों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है, अब उसी का सारांश बतलाइए।

भीष्म कहते हैं—धर्मराज, सब प्राणियों की रक्षा करना ही राजाओं का प्रधान कर्तव्य है। अतएव उनकी रक्षा का वर्णन करता हूँ, सुनो। जिस तरह मोर के रङ्ग-बिरङ्गे विचित्र पङ्ख होते हैं उसी तरह धर्मात्मा राजा अनेक प्रकार के रूप धारण करे। जो राजा क्रूरता, कुटिलता, अभयदान, सत्य, सरलता और तेज आदि अनेक गुणों से सम्पन्न होता है वही राज्य का सुख

भोग सकता है। जिस काम की सिद्धि के लिए जैसा रूप आवश्यक हो वैसा ही रूप दिखलाना राजाओं का कर्तव्य है। बहु-रूपधारी राजा का छोटे से छोटा काम भी सिद्ध हो जाता है। राजा को शरद् ऋतु के मोर की तरह चुप रहकर सलाह की बातें गुप्त रखनी चाहिएँ। मधुर-भाषी और शास्त्रज्ञ होना तथा मन्त्र-भेद आदि कामों में सावधान रहना राजाओं का कर्तव्य है। जिस तरह नदियाँ समुद्र में जा मिलती हैं उसी तरह राजा जानकार ब्राह्मणों से सलाह लेता रहे। जिस राजा को धन संग्रह करने की इच्छा हो वह नर्मी या सख्ती का ऐसा व्यवहार करे जिससे धन का संग्रह हो। हमेशा उद्यतदण्ड और सावधान रहकर, प्रजा के आय-व्यय के अनुपात से उससे 'कर' ले। अपने पक्ष के लोगों के साथ निश्छल व्यवहार करना, घोड़ा आदि पशुओं के द्वारा शत्रुओं के खेतों का नाश कराना और अपने दोषों को समझते रहना राजा का कर्तव्य है।
१० बुद्धिमान् राजा सहायवान् होने पर अपना पराक्रम प्रकट करे, शत्रुओं के दोषों को खोले और उनको चैन न लेने दे। दूसरे देशों से, जङ्गली फूलों की तरह, धन बटोरे। पराक्रमी राजाओं के क़िलेदारों से मिलकर, उनके साथ छल करके, क़िले में प्रवेश करे और छिपकर हमला करके उन्नत राजाओं का विनाश करे। वर्षाकाल के मोरों की तरह रात को स्त्रियों के पहरे में, रनिवास में, छिपा रहे; हमेशा कवच पहने रहे। अपनी रक्षा के लिए यत्न करता रहे और ऐसा उपाय करे जिससे दूसरों के जासूसों के मायाजाल से बचा रहे। शत्रुओं के जासूसों की चाल न समझ पाने से उनके जाल में फँसकर निस्सन्देह राजा मारा जाता है। इसलिए उनसे हमेशा बचते रहना चाहिए। कुटिल और क्रोधी शत्रुओं का नाश, छावनी के नटों और नाचनेवालों का नगर से बहिष्कार और अपने दृढ़मूल मन्त्रियों तथा शूरों की रक्षा करना आवश्यक है। बुद्धिमान् राजा मोर के समान अपने पक्ष का विस्तार करे और घने वन में प्रवेश करनेवाले पक्षियों की तरह शत्रु के राज्य में प्रविष्ट होकर उस पर आक्रमण करे।

बुद्धिमान् राजा ऐसी नीति को प्रवर्तित करे जिससे उसकी उन्नति हो। करने योग्य और न करने योग्य कार्य का बुद्धि द्वारा विचार और उस पर शास्त्र-दृष्टि द्वारा दृढ़ रहना आवश्यक है। शास्त्र के जाने बिना करने और न करने योग्य कामों का निश्चय करना असम्भव है, इसलिए शास्त्र का ज्ञान परम आवश्यक है। सन्धि करके शत्रुओं को विश्वास दिलाना, पराक्रम दिखलाना और अपनी बुद्धि से कामों का ठीक-ठीक निरूपण करना राजा का कर्तव्य है। जो बुद्धिमान् मनुष्य स्वाभाविक शान्त होता है और करने न करने योग्य कामों का विचार कर
२० सकता है उस धीर पुरुष की निगूढ़ बुद्धि को पण्डितों के उपदेश की आवश्यकता नहीं रहती। बृहस्पति के समान बुद्धिमान् मनुष्य यदि एक बार मूर्खता से कोई अनुचित काम करके समाज में निन्दित हो जाता है तो जैसे तपाया हुआ लोहा पानी में छोड़ देने से अपने असली रङ्ग पर आ जाता है वैसे ही वह मनुष्य फिर ठीक-ठीक काम करने लगता है।

राजा को अपने और दूसरों के सभी काम शास्त्र के अनुसार करने चाहिएँ। सुशील, बुद्धिमान् और शूर-वीरों को उनके योग्य कामों पर राजा नियुक्त करे और उनके किये हुए कामों का अनुमोदन करे। राजा, धर्म के अनुसार, सब का प्रिय आचरण करे। प्रजा जिस राजा को अपना समझती है वह राजा पर्वत के समान अचल होता है। राज-काज के समय प्रिय और अप्रिय को समान समझकर राजा धर्म की रक्षा करे। कुल और देश के धर्म को जाननेवाले, मृदुभाषी, हितैषी, जितेन्द्रिय, निर्लोभ, सुशिक्षित, धर्मात्मा और अधेड़ अवस्थावाले निर्दोष मनुष्यों को राज-काज में नियुक्त करना धर्मात्मा राजा का कर्तव्य है। इसी प्रकार योग्य गुप्तचरों को नियुक्त करके राज्य का सब हाल जानता हुआ राजा, सन्तुष्ट होकर, सब काम करता रहे। जिस राजा का क्रोध और हर्ष निष्फल नहीं होता, जो स्वयं सब कामों की देखभाल और आय-व्यय की जाँच-पड़ताल करता है उसे वसुन्धरा धन-धान्य से परिपूर्ण कर देती है। जिसकी ३० कृपा स्पष्ट रूप से मालूम होती है, जो धर्म के अनुसार दण्ड देता है और जो आत्मरक्षा करता हुआ राज्य की रक्षा करता है, वही राजा राजधर्म का मर्मज्ञ है। राजा प्रतिदिन, उदय होनेवाले सूर्य के समान, अपने राज्य में घूम-फिरकर सब हाल जाने और राज्य की रक्षा करे। जिस तरह मनुष्य गाय को दुहता है उसी तरह बुद्धिमान् राजा प्रतिदिन पृथिवी से धन का संग्रह किया करे। राजा उपयुक्त समय पर प्रजा से धन ले और अपने ख़ज़ाने की थाह न लगने दे। जैसे भौंरा धीरे-धीरे फूलों से रस लेता है वैसे ही राजा को धन संग्रह करना चाहिए। बुद्धिमान् राजा संचित धन को साधारण कामों में व्यय न करे। रक्षित धन के अतिरिक्त धन को धर्म और काम में ख़र्च करे। थोड़ी सी आमदनी की भी उपेक्षा न करे। साधारण शत्रु की ओर से भी असावधान न रहे। मूर्खों पर विश्वास न करके अपनी बुद्धि द्वारा उन्नति के उपाय करना राजा का कर्तव्य है।

धैर्य, दक्षता, संयम, बुद्धि, देह, गम्भीरता, शूरता और सावधानी से देश-काल का ज्ञान ये आठ धन की वृद्धि के कारण हैं। थोड़ी सी भी आग घी पड़ने पर बढ़ जाती है और एक बीज से हज़ारों अङ्कुर पैदा होते हैं, अतएव बहुत ख़र्च करनेवाला मनुष्य भी थोड़े धन की लापरवाही न करे। बालक, युवा या वृद्ध, चाहे जिस तरह का शत्रु हो, वह असावधान मनुष्य का नाश करने में आसानी से कृतकार्य हो सकता है। शत्रु मौक़ा पाकर, तैयारी करके, राजा को समूल नष्ट कर सकता है। अतएव अवसर को जाननेवाला राजा ही श्रेष्ठ है। शत्रु दुर्बल हों या बलवान्, यदि वे उद्योग करें तो राजा के धर्म, कीर्ति और वीर्य का उच्छेद कर सकते हैं, इसलिए जिस राजा के शत्रु हों वह सदा सावधान रहे। विजय और ऐश्वर्य की इच्छा करनेवाले राजा को ४० धन की वृद्धि, हानि, सञ्चय और रक्षा का ध्यान रखकर सन्धि या युद्ध आदि करना चाहिए। इन कामों को साधने के लिए बुद्धिमान् राजा चतुराई से काम ले। तीक्ष्ण बुद्धि द्वारा बलवान्

शत्रु का भी नाश किया जा सकता है और बढ़े हुए बल की रक्षा बुद्धि से ही हो सकती है। सारांश यह है कि बुद्धिपूर्वक किया गया काम ही श्रेष्ठ है। धैर्यवान् निर्दोष राजा साधारण बलवान् होने पर भी अपनी इच्छाएँ पूरी कर सकता है और जो थोड़े बल में ही लोभ और गर्व करने लगता है वह कभी अपना भला नहीं कर सकता। अतएव बुद्धिमान् राजा को हेलमेल रखकर प्रजा से कर वसूल करना चाहिए। प्रजा को बहुत दिनों तक सता करके उस पर बिजली के समान गिरकर उसको नष्ट कर देना अच्छा नहीं। विद्या, तप और धन आदि बुद्धि द्वारा सिद्ध होनेवाले सब काम उद्योग से ही प्राप्त होते हैं, अतएव उद्योग सबसे बढ़कर है।

इन्द्र, विष्णु, सरस्वती और सभी प्राणी देह के आश्रित रहते हैं, अतएव विद्वान् मनुष्य को कभी देह की उपेक्षा न करनी चाहिए। लोभी मनुष्य को धन देकर अधीन कर ले। लोभी मनुष्य दूसरों का अपरिमित धन पाने पर भी सन्तुष्ट नहीं होता और धनहीन होने पर धर्म और काम का परित्याग कर देता है। वह दूसरे का पुत्र, स्त्री, धन और भोग्य वस्तुएँ पाने की इच्छा करता है। लोभी मनुष्य में बहुत दोष हो सकते हैं, इसलिए राजा लोभी मनुष्य को कभी आश्रय न दे। बुद्धिमान् राजा नीच मनुष्यों को शत्रुओं के काम देखने के लिए भेजकर उनके उद्योग और सब काम नष्ट करा दे। जो कुलीन राजा ब्राह्मणों द्वारा तत्त्वानुसन्धान रखता है और जो ५० मन्त्रियों द्वारा हमेशा सुरक्षित रहता है वह सब राजाओं को अपने अधीन कर सकता है।

हे धर्मराज, मैंने संक्षेप में विधिपूर्वक जिस राजधर्म का वर्णन किया है उसका ध्यान रक्खो। जिस राजा को राजधर्म का ज्ञान रहता है वह अनायास पृथिवी का पालन कर सकता है। जो राजा नीति को छोड़कर भाग्य के भरोसे सुख भोगना चाहता है वह न तो कभी राज्य का सुख पा सकता है और न अपनी उन्नति कर सकता है। राजा सन्धि-विग्रह आदि विषयों में सावधान रहने पर धनवान् शूर-वीर पराक्रमी शत्रुओं को चौपट कर सकता है। बुद्धिमान् मनुष्य अपने काम की सिद्धि के लिए, भाग्य का भरोसा न करके, अनेक उपायों को सोचे। जो निर्दोष मनुष्य पर दोष लगाता है वह कभी धन और यश नहीं पा सकता। परस्पर हित करनेवाले मित्रों में जो अपने मित्र की भलाई अधिक करता है, उसी की बुद्धिमान् लोग प्रशंसा करते हैं। राजन्, मेरे कहे हुए इन राजधर्मों का आचरण और मन लगाकर प्रजा का पालन करो। इससे ५६ सरलतापूर्वक पुण्यों का फल पाओगे। धर्म ही सब लोकों की प्राप्ति का कारण है।

एक सौ इक्कीस अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर को दण्ड का स्वरूप बतलाना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, आपने जिस सनातन राजधर्म का वर्णन किया है उसमें दण्ड ही सबसे श्रेष्ठ है। देवता, ऋषि, पितर, यक्ष, राक्षस, पिशाच, साध्य और तिर्यग्योनि

आदि सभी प्राणियों में महातेजस्वी दण्ड विद्यमान रहता है। क्या देवता, क्या दैत्य और क्या मनुष्य, सभी चर-अचर जीव दण्ड के आधार पर निर्भर हैं। उस दण्ड का कैसा स्वरूप है? उसका अधिष्ठाता कौन है? वह किस प्रकार सावधानी से जागरित रहकर प्रजा की रक्षा करता है और उसकी गति कैसी है?

भीष्म कहते हैं—महाराज, दण्ड और उसका व्यवहार जिस प्रकार का है सो सुनो। संसार में जिसके द्वारा सब जीवों पर अधिकार किया जा सकता है उसी का नाम दण्ड है और जिससे धर्म का प्रकाश होता है उसी को व्यवहार कहते हैं। मनुजी का वचन है कि जो राजा दण्ड के द्वारा प्रिय और अप्रिय सबकी समान भाव से रक्षा करता है वह धर्म-स्वरूप है। ११ हमने यह जो मनु का वचन कहा है वह ब्रह्माजी का वाक्य है। इस वाक्य को मनुजी ने ब्रह्माजी से सुना था। यह वचन प्राचीन समय में कहा गया है इसलिए यह प्राग्वचन (धर्म-वचन) कहलाता है। यथार्थ रूप से दण्ड का विधान करने पर धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति होती है। दण्ड श्रेष्ठ देवता है। उसका तेज प्रज्वलित अग्नि के समान और स्वरूप नीले कमल के समान है। उसके चार दाँत, चार भुजाएँ, दो जीभें, आठ पैर और अनेक आँखें हैं। उसके कान बहुत तेज़, रोएँ खड़े हुए, सिर पर जटाएँ, मुँह लाल और शरीर कृष्णसार मृग के चमड़े के समान काला है। दण्ड हमेशा इसी प्रकार का उग्र रूप धारण किये रहता है। तलवार, धनुष, गदा, शक्ति, त्रिशूल, मुद्गर, बाण, मुशल, परशु, चक्र, पाश, दण्ड, ऋष्टि और तोमर आदि जितने अस्त्र हैं उन सबका रूप धारण करके दण्ड किसी को छिन्न, किसी को भिन्न, किसी को पीड़ित, किसी को विदारित करता तथा किसी को उखाड़ डालता और किसी का नाश कर देता है। दण्ड के असि, विशसन, धर्म, तीक्ष्णवर्मा, दुराधर, श्रीगर्भ, विजय, शास्ता, व्यवहार, सनातन, शास्त्र, ब्राह्मण, मन्त्र, धर्मपाल, अक्षर, देव, सत्यग, नित्यग, अग्रज, असङ्ग, रुद्रतनय, २० ज्येष्ठ, मनु और शिवङ्कर आदि कितने ही नाम हैं। दण्ड साक्षात् भगवान् विष्णु और नारायण का रूप है। लगातार महान् रूप धारण किये रहने के कारण उसे महापुरुष कहते हैं। दण्ड की स्त्री नीति, ब्रह्मकन्या, लक्ष्मी, वृत्ति, सरस्वती और जगद्धात्री के नाम से प्रसिद्ध है। अर्थ, अनर्थ, सुख, दुःख, धर्म, अधर्म, बल, अबल, दुर्भाग्य, सौभाग्य, पाप, पुण्य, गुण, अवगुण, काम, अकाम, ऋतु, मास, दिन, रात, मुहूर्त, प्रमाद, अप्रमाद, हर्ष, क्रोध, शम, दम, दैव, पुरुषकार, मोक्ष, अमोक्ष, भय, अभय, हिंसा, अहिंसा, तपस्या, यज्ञ, संयम, विष, अविष, आदि, अन्त, मध्य, कार्यप्रपञ्च, मद, दर्प, दम्भ, धैर्य, नीति, अनीति, शक्ति, अशक्ति, अभिमान, अहङ्कार, व्यय, अव्यय, विनय, परित्याग, काल, अकाल, सच, झूठ, श्रद्धा, अश्रद्धा, नपुंसकता, व्यवसाय, लाभ, अलाभ, जय, पराजय, नम्रता, तीक्ष्णता, मृत्यु, आगम, अनागम, विरोध, अविरोध, कार्य, अकार्य, ३० असूया, अनसूया, सलज्जता, निर्लज्जता, विपद्, सम्पद्, तेज, पाण्डित्य, वाक्शक्ति और तत्त्वज्ञान आदि

दण्ड के अनेक रूप हैं। यदि इस संसार में दण्ड न होता तो सभी प्राणी एक दूसरे को सताते रहते। संसार में दण्ड के भय से ही कोई किसी का नाश नहीं करता। प्रजा प्रतिदिन दण्ड द्वारा सुरक्षित रहकर राजा को समुन्नत करती है, इसलिए दण्ड ही सर्वश्रेष्ठ है। दण्ड मनुष्यों को सुमार्ग पर लगाता है। धर्म हमेशा सत्य और ब्राह्मणों में निवास करता है। ब्राह्मण धार्मिक होने से देवयुक्त होते हैं। देवताओं से यज्ञ आदि का अनुष्ठान होता है। यज्ञ से देवता प्रसन्न होते हैं और देवता प्रसन्न होकर हमेशा इन्द्र के पास प्रजा की प्रशंसा करते हैं। प्रसन्न होकर इन्द्र प्रजा को अन्न देते हैं। अन्न ही प्राणियों के जीवन का आधार है। दण्ड,
४० क्षत्रिय का रूप धारण करके, उद्यत रहकर प्रजा की रक्षा करता है। ईश्वर, पुरुष, प्राण, सत्त्व, चित्त, प्रजापति, भूतात्मा और जीव, इन आठ नामों से दण्ड प्रसिद्ध है। ईश्वर ने राजाओं को दण्ड (देने का अधिकार) और ऐश्वर्य दिया है, इसी से उनके पास बहुत सी सेना रहती है। राजन्! हाथी, घोड़ा, रथ, पैदल, नाव, नरक में ढकेलने का भय, देशज लोक और मेष आदि, इन आठों के द्वारा कुल, धनवान् मन्त्री, ज्ञान, बल और कोष बढ़ाने के योग्य अन्यान्य बल का संग्रह राजा अवश्य करे। रथी, हाथी के सवार, घुड़सवार, पैदल, मन्त्री, वैद्य, भिक्षुक, वकील, ज्योतिषी, कोष, मित्र, धान्य, अन्यान्य उपकरण, सप्त प्रकृति और अष्टाङ्ग राज्य का शरीर-स्वरूप दण्ड, ये राज्य के प्रधान अङ्ग और प्रधान कारण हैं। यह संसार दण्ड के अधीन है। ब्रह्मा ने प्रजा की रक्षा और स्वधर्म की स्थापना करने के लिए दण्ड-रूप धर्म का विधान किया है। उससे बढ़कर राजाओं का पूज्य और कोई नहीं है।

वादी और प्रतिवादी के लिए व्यवहार उत्पन्न होता है। वादी और प्रतिवादी के बीच
५० किसी एक पर पूरा विश्वास करके उसे विजयी बना दे। व्यवहार वेदमूलक है। वह दो तरह का है—कुल के आचरण का उल्लंघन करना और शास्त्र की अवहेलना करना। वादी और प्रतिवादी के बीच एक मनुष्य पर विश्वास करके दूसरे को जो दण्ड दिया जाता है वह राजकीय है, इसलिए राजाओं को उसका ज्ञान रखना परम आवश्यक है। यद्यपि राजा अपने विश्वास पर निर्भर रहकर मनुष्यों को दण्ड देता है किन्तु व्यवहार निःसन्देह दण्ड का मूल है। जो वैदिक सिद्धान्त से उत्पन्न होता है वही बहुगुणसम्पन्न धर्म है। बुद्धिमान् राजा धर्म के अनुसार वादी और प्रतिवादी के बीच एक पर विश्वास करके दूसरे को दण्ड देता है। वेदमूलक व्यवहार तीनों लोकों की रक्षा करता है। हमारी राय में वेदमूलक व्यवहार ही धर्म है और जो धर्म कहलाता है वही सत्पथ है। लोकपितामह ब्रह्माजी देवता, दानव, राक्षस, मनुष्य और सर्प आदि प्राणियों की सृष्टि और संहार करते हैं। धर्म के साथ उनकी एकात्मता है। माता, पिता, भाई, स्त्री और
६० पुरोहित आदि कोई भी क्यों न हो, अपराध करने पर उसे दण्ड देना राजा का कर्तव्य है।

प्राचीन समय में, अङ्ग देश में, वसुहोम नाम के एक तेजस्वी धर्मात्मा राजा रहते थे। वे अपनी स्त्री समेत देवताओं, पितरों और ऋषियों से पूजित......अङ्गराज के पास आकर, उनकी तपस्या देखकर, 'विनीत भाव से उनको प्रणाम किया।—पृ० ३४८५

एक सौ बाईस अध्याय

वसुहोम और मान्धाता का संवाद; दण्ड की उत्पत्ति का वर्णन

भीष्म कहते हैं—हे धर्मराज, मैं इस विषय में एक पुराना इतिहास सुनाता हूँ। प्राचीन समय में, अङ्ग देश में, वसुहोम नाम के एक तेजस्वी धर्मात्मा राजा रहते थे। वे अपनी स्त्री समेत देवताओं, पितरों और ऋषियों से पूजित—हिमालय के शिखर—मुञ्जपृष्ठ पर चले गये। इस शिखर पर महात्मा परशुराम ने मुंजावट के नीचे अपनी जटाएँ बाँधी थीं, इसलिए व्रतधारी महर्षियों ने इस शिखर का मुंजपृष्ठ नाम रक्खा। महाराज वसुहोम इस स्थान पर तप करते हुए, अनेक गुणों के कारण, ब्राह्मणों द्वारा सम्मानित और देवर्षि-तुल्य हो गये।

कुछ दिनों बाद देवराज के मित्र, शत्रुओं का संहार करनेवाले, महाराज मान्धाता ने अङ्ग-राज के पास आकर, उनकी तपस्या देखकर, विनीत भाव से उनको प्रणाम किया। तब महाराज वसुहोम ने मान्धाता को देखकर, पाद्य और अर्घ्य देकर, उनके राज्य के सप्त अङ्गों का कुशल पूछा और कहा—महाराज! बतलाइए, मैं आपकी क्या सेवा करूँ?

तब अत्यन्त प्रसन्न होकर मान्धाता ने महाप्राज्ञ वसुहोम से कहा—राजन्! आपने बृहस्पति का और शुक्राचार्य का सम्पूर्ण नीतिशास्त्र पढ़ा है, अतएव मुझे बतलाइए कि दण्ड किस प्रकार उत्पन्न हुआ है, उसके उत्पन्न होने का क्या कारण है और उसका भार क्षत्रियों पर क्यों रक्खा गया है। मैं आपको गुरु-दक्षिणा दूँगा। १०

वसुहोम ने कहा—महाराज, जिस तरह प्रजा के विनयन की रक्षा के लिए धर्म-स्वरूप सनातन दण्ड की उत्पत्ति हुई है वह सुनो। प्राचीन समय में लोक-पितामह ब्रह्मा ने यज्ञ करने की इच्छा की; किन्तु उनके योग्य पुरोहित कहीं नहीं मिला। तब उन्होंने अपने सिर में एक गर्भ धारण किया। वह गर्भ बहुत वर्षों तक ब्रह्मा के सिर में रहा। हज़ार वर्ष बीतने पर एक समय ब्रह्मा को छींक आई; छींक के साथ ही वह गर्भ निकलकर गिर पड़ा। इस गर्भ से उत्पन्न प्रजापति क्षुप नाम से प्रसिद्ध हुए। अब ब्रह्माजी ने महात्मा क्षुप को पुरोहित बनाकर यज्ञ आरम्भ किया। यज्ञ आरम्भ होते ही दण्ड अन्तर्धान हो गया। तब सारी प्रजा उच्छृङ्खल हो गई। कार्य-अकार्य, भक्ष्य-अभक्ष्य, पेय-अपेय और गम्य-अगम्य का कुछ भी विचार न रह गया। लोग एक दूसरे को सताने लगे। पराये धन की लूट-खसोट की जाने लगी। मांस-लोभी कुत्ते की तरह लोग एक दूसरे का धन छीनने और बलवान् दुर्बलों को सताने लगे। इस प्रकार संसार की उद्दण्डता देखकर ब्रह्माजी ने विष्णु की पूजा करके वरदानी महादेव से कहा—भगवन्, आप कृपा करके ऐसा उपाय कीजिए जिससे प्रजा में इस तरह उच्छृङ्खलता न फैलने पावे। तब शूलपाणि ने कुछ देर सोचकर अपने शरीर से दण्ड की उत्पत्ति की। उसके धर्माचरण के कारण नीतिदेवी सरस्वती ने तीनों लोकों में विख्यात दण्डनीति की रचना की। २०

इसके बाद महादेवजी ने फिर विचार करके सहस्राक्ष इन्द्र को देवताओं का, वैवस्वत यम को पितरों का, कुबेर को धन और राक्षसों का, सुमेरु को सब पर्वतों का, समुद्र को सब नदियों का, वरुण को जल और असुरों का, मृत्यु को प्राणों का, सूर्य और अग्नि को तेज का, महादेव को
३० रुद्रगणों का, वसिष्ठ को ब्राह्मणों का, चन्द्रमा को नक्षत्रों का, अंशुमान् को लताओं का, द्वादश भुजाओंवाले स्वामिकार्त्तिक को भूतगणों का, काल को मृत्यु और सुख-दुःख का और क्षुप को सब लोकों का आधिपत्य दिया। कुछ दिनों बाद ब्रह्माजी का यज्ञ समाप्त होने पर महादेवजी ने वह धर्मरक्षक दण्ड विष्णु को दे दिया। विष्णु ने अङ्गिरा को, महर्षि अङ्गिरा ने इन्द्र और मरीचि को, मरीचि ने भृगु को, भृगु ने ऋषियों को, ऋषियों ने लोकपालों को, लोकपालों ने क्षुप को, क्षुप ने वैवस्वत मनु और यम को और उन्होंने धर्म तथा अर्थ का सूक्ष्म कारण जानने के लिए अपनी सन्तानों को दिया। महाराज, स्वेच्छाचारी न होकर न्याय और अन्याय का विचार करके दण्ड का विधान करना चाहिए। दुष्टों का दमन करने के लिए दण्ड की उत्पत्ति
४० हुई है। प्रजा को डरवाने के लिए उससे धन लेना चाहिए, कोश-वृद्धि के लिए नहीं। साधारण बातों में प्रजा का अङ्ग-भङ्ग करना, मार डालना, सताना, पानी में डुबा देना और देशनिकाला दे देना राजाओं का कर्तव्य नहीं है। वैवस्वत मनु ने प्रजा की रक्षा के लिए संसार में दण्ड का प्रचार किया है। यह दण्ड प्रजा का पालन किया करता है। पहले इन्द्र ही सम्पूर्ण प्रजा का पालन करते थे। इसके बाद इन्द्र से अग्नि, अग्नि से वरुण, वरुण से प्रजापति, प्रजापति से धर्म, धर्म से ब्रह्मा के पुत्र सनातन व्यवसाय, व्यवसाय से तेज, तेज से ओषधि, ओषधि से पर्वत, पर्वत से रसगुण, उससे निर्ऋति देवी, इस देवी से ज्योति, ज्योति से वेद, वेद से हयशिरा, हयशिरा से ब्रह्मा, ब्रह्मा से भगवान् महादेव, महादेव से विश्वेदेवगण, विश्वेदेवों से ऋषिगण, ऋषियों से चन्द्रमा, चन्द्रमा से सनातन देवगण और देवताओं से ब्राह्मणों ने प्रजा-पालन का भार ग्रहण किया। इस समय क्षत्रिय लोग ब्राह्मणों से उस भार को लेकर धर्मानुसार प्रजा का पालन करते हैं। स्थावर-जङ्गम प्राणियों से परिपूर्ण पृथिवी क्षत्रियों के प्रभाव से ही शासित
५० हो रही है। दण्ड के द्वारा हमेशा प्रजा की रक्षा होती है। पितामह सदृश दण्ड के प्रभाव से सारा संसार शासित होता है। काल-स्वरूप भूतभावन महादेव आदि, मध्य और अन्त तीनों काल में सजग रहते हैं। दण्ड भी तीनों काल में प्राणियों में विराजमान रहता है। इसलिए धर्मात्मा राजा को न्याय के अनुसार दण्ड का प्रयोग करना चाहिए।

भीष्म कहते हैं—धर्मराज, जो मनुष्य महाराज वसुहोम का यह इतिहास सुनेगा और उसके अनुसार चलेगा उसके सब मनोरथ पूरे होंगे। हमने संसार की रक्षा करनेवाले
५६ दण्ड का विस्तारपूर्वक वर्णन कर दिया।

एक सौ तेईस अध्याय

कामन्दक और आङ्गरिष्ठ का संवाद

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह ! धर्म, अर्थ और काम का निर्णय किस प्रकार किया जा सकता है ? संसार में मनुष्यों को भली भाँति अपना निर्वाह करने के लिए क्या करना चाहिए ? धर्म, अर्थ और काम किस उद्देश्य से किये जाते हैं और इन तीनों की उत्पत्ति का कारण क्या है ? ये सब कहीं तो एक दूसरे से मिलकर और कहीं अलग-अलग क्यों रहते हैं ?

भीष्म कहते हैं—बेटा ! जब मनुष्य शुद्ध चित्त से धर्म, अर्थ और काम का निर्णय करता है तब इन तीनों का निश्चय एक साथ ही हो जाता है। उसी को तीनों वर्गों का एक साथ मिलना कहते हैं। अर्थ का कारण धर्म, काम का कारण अर्थ और इन तीनों का कारण सङ्कल्प है। सङ्कल्प वासनात्मक है। विषय अपने आहार की सिद्धि के लिए प्रेरित करते हैं। यही तीनों वर्गों का कारण है। इन तीनों से निवृत्त होना मोक्ष है। संसार में शरीर की रक्षा के लिए धर्म, धर्म के लिए अर्थ और इन्द्रियों के सुख के लिए काम की सेवा की जाती है। इससे ये तीनों वर्ग रजोगुणप्रधान कहे जाते हैं। मन से इनका परित्याग कर दे; किन्तु इनमें आसक्त न रहकर इनका सेवन किया करे। तीनों वर्गों का सेवन करते-करते मनुष्यों को मोक्ष की इच्छा होती है। धर्म से अर्थ और अर्थ से धर्म की उत्पत्ति होती है। अज्ञानी मनुष्यों को कभी धर्म और अर्थ के फल की प्राप्ति नहीं होती। फल की इच्छा धर्म का मल-स्वरूप है, दान और भोग न करना अर्थ का मल है और केवल प्रमोद के लिए काम मल-स्वरूप है। त्रिवर्ग जब इन मलों से मुक्त होता है तब ब्रह्मानन्द-रूप फल देने में समर्थ होता है। १०

इस विषय में कामन्दक और आङ्गरिष्ठ का संवाद कहता हूँ। यह प्राचीन इतिहास है। एक बार महाराज आङ्गरिष्ठ ने महर्षि कामन्दक को बैठे देखकर प्रणाम करके पूछा—तपोधन, जो राजा काम और लोभ के वश होकर पाप करता है और उसके बाद पछताता है वह किस प्रकार उस पाप से छुटकारा पा सकता है ? और जो राजा अज्ञान से अधर्म को धर्म समझकर करता है वह किस तरह उस पाप से छूट सकता है ?

कामन्दक ने कहा—महाराज, जो मनुष्य धर्म और अर्थ को छोड़कर केवल काम का सेवन करता है उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। बुद्धि का नाश होने पर धर्म और अर्थ का नाश कर देनेवाला मोह उत्पन्न होता है और उसी मोह के प्रभाव से वह मनुष्य नास्तिक और दुराचारी हो जाता है। राजा यदि ऐसे दुराचारियों को दण्ड नहीं देता तो उनसे घर में रहनेवाले साँप का सा भय सबको बना रहता है। प्रजा, ब्राह्मण और सज्जन लोग उस राजा से प्रसन्न नहीं रहते। क्रमशः उसकी अवनति होती है और उसके प्राण सङ्कट में पड़ जाते हैं। वह निन्दित और अपमानित होकर बड़े दुःख से जीवन बिताता है। निन्दित और अपमानित

होकर जीना मरने के समान है। विद्वानों ने पाप की निवृत्ति के जो उपाय बताये हैं अब
२० उन्हें सुनो। राजा हमेशा वेदों का अनुशीलन और ब्राह्मणों का सत्कार करे; धर्म में अनुरक्त रहे और क्षमावान् मनस्वी ब्राह्मणों से उपदेश ग्रहण करे। केवल जल पीकर सुखपूर्वक जप करे। दुष्टों को राज्य से बाहर निकाल दे और धर्मात्माओं को आश्रय दे। मीठी बातों से और सबकी भलाई के काम करके सबको सन्तुष्ट रक्खे; दूसरों की प्रशंसा करे और सबके साथ आत्मीयता दिखावे। ऐसा आचरण करने से राजा सबका सम्मानपात्र होता है और उसके पाप दूर हो जाते हैं। बड़े-बूढ़ों के उपदेश के अनुसार काम करना राजा का
२५ कर्तव्य है। उनकी कृपा से उसका भला होगा।

एक सौ चौबीस अध्याय

दुर्योधन से धृतराष्ट्र द्वारा कही हुई इन्द्र और प्रह्लाद की कथा

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, संसार में सभी लोग धर्माचरण की प्रशंसा करते हैं। वह किस प्रकार प्राप्त हो सकता है और उसका स्वरूप कैसा होता है? वह यदि हम लोगों के जानने योग्य हो तो बतलाइए।

भीष्म कहते हैं—महाराज! एक बार दुर्योधन इन्द्रप्रस्थ में, भाइयों के साथ, तुम्हारे ऐश्वर्य को देखकर बड़ा दुखी हुआ और अपने पिता धृतराष्ट्र के पास गया। उसको चिन्तित देखकर धृतराष्ट्र ने, कर्ण के सामने, उससे पूछा—बेटा, तुम दुखी क्यों हो? तुम परम ऐश्वर्यवान् हो। तुम्हारे भाई, मित्र और सम्बन्धी—सेवक के समान—हमेशा तुम्हारी आज्ञा में रहते हैं। तुम बढ़िया से बढ़िया कपड़े पहनते, मांस-भात (पुलाव ?) खाते और सुन्दर
१० घोड़ों पर सवार होते हो। तब तुम क्यों पीले और दुबले हो रहे हो?

दुर्योधन ने कहा—महाराज, युधिष्ठिर के घर प्रतिदिन दस हज़ार स्नातक ब्राह्मण सोने के बर्तनों में भोजन करते हैं। पाण्डवों की दिव्य सभा फल-फूल आदि से शोभित है। उनके यहाँ चितकबरे बढ़िया घोड़े तथा विचित्र वस्त्र विद्यमान हैं। अपने शत्रु पाण्डवों की, कुबेर की सी, समृद्धि देखने से मुझे बड़ा दुःख होता है।

धृतराष्ट्र ने कहा—बेटा, यदि तुम युधिष्ठिर के समान या उनसे बढ़कर ऐश्वर्य प्राप्त करने की इच्छा करते हो तो शीलवान् बनो। शीलवान् होने से ही तीनों लोक अपने अधीन किये जा सकते हैं। शीलवान् मनुष्य के लिए तीनों लोकों में कुछ असाध्य नहीं है। देखो, मान्धाता एक दिन में; जनमेजय तीन दिन में और नाभाग सात दिन में पृथिवी के अधीश्वर हुए हैं। ये सब राजा सच्चरित्र और दयावान् थे। इनके गुणों से मोहित होकर पृथिवी स्वयं इनके अधीन हो गई थी।

दुर्योधन ने पूछा—महाराज, जिसके प्रभाव से ये प्राचीन राजा लोग थोड़े ही समय में पृथिवी को अपने अधिकार में कर सके थे वह शील किस प्रकार प्राप्त हो सकता है ?

धृतराष्ट्र ने कहा—बेटा, देवर्षि नारद ने शील के विषय में जो इतिहास कहा है उसे सुनो। प्राचीन समय में एक बार दानवों के राजा प्रह्लाद ने अपने चरित्र (शील) के बल से, देवराज इन्द्र का राज्य छीनकर, तीनों लोकों को अपने अधीन कर लिया था। राज्य छिन जाने पर इन्द्र ने २० बृहस्पति के पास जाकर, हाथ जोड़कर, कहा—भगवन्, ऐश्वर्य की प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है, यह जानने की मुझे इच्छा है। बृहस्पति ने कहा—देवराज, ज्ञान ही ऐश्वर्य की प्राप्ति का कारण है। इन्द्र ने पूछा—भगवन्, ज्ञान से बढ़कर और भी कोई उपाय ऐश्वर्य प्राप्त करने का है? बृहस्पति ने कहा—देवराज! इस विषय का उपदेश महात्मा शुक्र मुझसे अच्छा दे सकते हैं, इसलिए तुम उनके पास जाकर इस विषय को पूछ आओ। उन्हीं के उपदेश से तुम्हारा भला होगा। तब इन्द्र ने, शुक्र के पास जाकर, ऐश्वर्य प्राप्त करने का उपाय उनसे जानकर अन्त को विदा होने की अनुमति माँगकर कहा—भगवन्, आपने जो उपदेश दिया है उससे बढ़कर और कोई उपाय ऐश्वर्य प्राप्त करने का है या नहीं? सर्वज्ञ शुक्राचार्य ने कहा—देवराज, इस विषय का उपदेश महात्मा प्रह्लाद विशेष रूप से कर सकते हैं, इसलिए तुम उनके पास जाओ।

शुक्राचार्य के उपदेश से इन्द्र को सन्तोष न हुआ। वे शीघ्र ही, ब्राह्मण का रूप धारण करके, प्रह्लाद के पास पहुँचे और उनसे बोले—दैत्यराज, मैं आपके पास ऐश्वर्य प्राप्त करने का उपाय मालूम करने आया हूँ। प्रह्लाद ने कहा—ब्रह्मन्, मैं त्रैलोक्य का शासन करने में लगा रहता हूँ। मुझे तनिक भी अवकाश नहीं है। इसलिए मैं इस विषय का उपदेश नहीं दे सकता। ब्राह्मण ने कहा—दैत्यराज, जब आपको अवकाश मिले तभी मुझे इस विषय का उपदेश दीजिएगा। ब्राह्मण की बात सुनकर प्रह्लाद बहुत प्रसन्न हुए और राज्यकार्य ३० से अवकाश मिलने पर ब्राह्मण-रूपी इन्द्र को उपदेश देने लगे। ब्राह्मण भी शिष्य की तरह नम्रतापूर्वक प्रह्लाद का सम्मान करता और उनके इच्छानुसार सब काम किया करता।

एक बार ब्राह्मण ने प्रह्लाद से पूछा—दैत्यराज, यह तो बतलाइए कि आपने तीनों लोकों का राज्य किस तरह प्राप्त किया है? प्रह्लाद ने कहा—ब्रह्मन्! मैं अपने को राजा समझकर कभी ब्राह्मणों से ईर्ष्या नहीं करता, बल्कि उनसे शुक्राचार्य-प्रणीत नीति का उपदेश सुनकर सम्मानपूर्वक उसे ग्रहण करता हूँ और उसके अनुसार चलता हूँ। वे मुझे नीति-मार्ग पर चलनेवाला, सेवा में तत्पर, ईर्ष्याहीन, धर्मात्मा, क्रोधरहित और जितेन्द्रिय समझकर, जिस तरह मधुमक्खी शहद इकट्ठा करती है उसी तरह, मुझे बेधड़क शास्त्रीय उपदेश देते रहते हैं। उन्हीं ब्राह्मणों का उपदेश ग्रहण करने से मैं, नक्षत्रों में चन्द्रमा के समान, अपने सजातीय लोगों का राजा हुआ हूँ। ब्राह्मणों के वचन उत्तम नेत्र और अमृत के समान हैं। उनके मुँह से नीति सुनकर और उसके अनुसार काम करने से बढ़कर श्रेयस्कर और कुछ नहीं है।

दानवराज प्रह्लाद ब्राह्मणरूपी इन्द्र को इस प्रकार उपदेश देकर बोले—ब्रह्मन्, मैं आपकी सेवा से बहुत प्रसन्न हूँ, अब आप अपने इच्छानुसार वर माँग लीजिए। ब्राह्मण ने कहा—दानवराज, यदि आप प्रसन्न होकर मेरा प्रिय करना चाहते हैं तो यह वर दीजिए कि मुझे आपकी सच्चरित्रता (शील) प्राप्त हो जाय। ब्राह्मण के इस प्रकार प्रार्थना करने पर प्रह्लाद बहुत प्रसन्न और साथ ही भयभीत हुए। सत्य का पालन करना परम धर्म समझकर विस्मय के साथ उन्होंने उस ब्राह्मण को वर दे दिया। वर देते ही प्रह्लाद का हृदय दुःख के मारे काँप उठा। अब ब्राह्मण-रूपी इन्द्र प्रह्लाद से बिदा होकर प्रसन्नता से अपने घर चला गया। ब्राह्मण के चले जाने पर प्रह्लाद बहुत चिन्तित हुए। वे कुछ निश्चय न कर सके कि क्या करना चाहिए।

४०

इसी समय सहसा उनके शरीर से छाया के समान एक तेज निकल पड़ा। प्रह्लाद ने उससे पूछा कि तुम कौन हो? उसने उत्तर दिया—मैं शील हूँ। आपने मुझे त्याग दिया है इसलिए मैं जाता हूँ। अब मैं उस ब्राह्मण के शरीर में निवास करूँगा, जिसने आपका शिष्यत्व स्वीकार करके लगातार आपकी सेवा की थी। प्रह्लाद से यों कहकर शील अन्तर्धान हो गया और इन्द्र के शरीर में जा घुसा।

इसके बाद प्रह्लाद की देह से एक और तेज निकला। प्रह्लाद ने उससे पूछा कि तुम कौन हो? वह बोला—मैं धर्म हूँ। जहाँ शील रहता है वहीं मैं भी रहता हूँ। शील उस ब्राह्मण के पास गया है, इसलिए मैं भी वहीं जाता हूँ।

५०

धर्म के चले जाने पर उनके शरीर से एक और तेज निकला। प्रह्लाद ने उससे भी पूछा कि तुम कौन हो। उसने उत्तर दिया—मैं सत्य हूँ। अब तुमको छोड़कर धर्म के साथ जाता हूँ।

सत्य के चले जाने पर प्रह्लाद के शरीर से एक बलवान् पुरुष निकल आया। उसे देखकर प्रह्लाद ने पूछा कि महापुरुष, तुम कौन हो? उसने उत्तर दिया—महाराज, मैं सदाचार हूँ। जहाँ सत्य रहता है वहीं मैं भी रहता हूँ।

इसके बाद प्रह्लाद के शरीर से गम्भीर शब्द करता हुआ एक और तेज निकल पड़ा। प्रह्लाद के पूछने पर उसने कहा—दानवराज, मैं बल हूँ। सदाचार जहाँ रहता है वहीं मैं भी रहता हूँ। यह कहकर वह भी चला गया। उसके चले जाने पर प्रह्लाद की देह से एक प्रभामयी देवी निकल आई। उसे देखकर प्रह्लाद ने पूछा कि देवी, तुम कौन हो? उसने उत्तर दिया—दानवराज, मैं लक्ष्मी हूँ। मैंने इतने दिन तुम्हारे शरीर में निवास किया। अब तुमने मुझे त्याग दिया है इसलिए मैं बल के साथ जा रही हूँ। लक्ष्मी के यों कहने पर प्रह्लाद पहले की अपेक्षा अधिक दुखी और भयभीत हुए। उन्होंने पूछा—देवी, अब तुम कहाँ जाओगी? तुम तीनों लोकों की अधीश्वरी और सत्य-व्रत-परायणा हो। मुझे यह बताओ कि वह ब्राह्मण कौन है। लक्ष्मी ने कहा—दानवराज, जो ब्राह्मण तुम्हारे पास आकर शिष्य-रूप से नीति की शिक्षा ले गया है वह देवराज इन्द्र है। वह तुम्हारे त्रैलोक्य के ऐश्वर्य को छीन ले गया है। हे धर्मज्ञ, तुमने अपने शील के द्वारा तीनों लोकों पर अधिकार किया था। यह जानकर इन्द्र ने तुम्हारा शील छीन लिया है। धर्म, सत्य, सदाचार, बल और मैं, ये सब शील के अधीन हैं। यह कहकर लक्ष्मी चली गई। ६०

भीष्म कहते हैं कि महाराज, इसके बाद दुर्योधन ने फिर धृतराष्ट्र से पूछा—पिताजी, शील क्या वस्तु है और वह किस तरह प्राप्त हो सकता है, सो मुझे बतलाइए।

धृतराष्ट्र ने कहा—बेटा, महात्मा प्रह्लाद शील और उसकी प्राप्ति का उपाय पहले ही बता गये हैं। मैं उसे संक्षेप में कहता हूँ। किसी का अनिष्ट न करना, सत्पात्र को दान देना और सब पर दया करना ही शील (सच्चरित्रता) है। जिस काम से किसी का हित न हो और जिससे समाज में लज्जा प्राप्त होती हो, इस तरह का काम कभी न करे। जिस काम के करने से समाज में प्रशंसा हो वही करे। मैंने संक्षेप में सच्चरित्रता (शील) प्राप्त करने का यह उपाय बतलाया है। यदि कोई दुश्चरित्र राजा किसी तरह ऐश्वर्य प्राप्त भी कर लेता है तो वह उस ऐश्वर्य का भोग अधिक दिनों तक नहीं कर सकता। उसका शीघ्र ही विनाश हो जाता है। अतएव यदि तुम युधिष्ठिर से बढ़कर समृद्धिमान होना चाहते हो तो हमारे इस उपदेश को भली भाँति हृदय में रखकर शीलवान् बनो।

हे धर्मराज, धृतराष्ट्र ने दुर्योधन को यह उपदेश दिया था। यदि तुम इस उपदेश के अनुसार चलोगे तो निस्सन्देह उत्तम फल प्राप्त कर सकोगे। ७१

एक सौ पच्चीस अध्याय

आशा का निरूपण करने की प्रार्थना सुनकर भीष्म का ऋषभ और सुमित्र का संवाद कहना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, आपने सदाचार (शील) को ही पुरुषों का प्रधान धन बतलाया है। अब यह बतलाइए कि आशा किस प्रकार उत्पन्न होती है और वह क्या वस्तु

है। मुझे इस विषय में बड़ा सन्देह है। आपके सिवा और कोई मेरा सन्देह दूर नहीं कर सकता। युद्ध छिड़ने के पहले मुझे यह आशा हुई थी कि दुर्योधन युद्ध के विना ही मुझे आधा राज्य दे देगा; किन्तु उस दुष्ट ने मेरी आशा पूरी न करके मुझे ज्ञानशून्य कर दिया। जो हो, मनुष्य-मात्र के हृदय में आशा उत्पन्न होती है और उसकी सफलता न होने पर सभी को घोर दुःख का अनुभव होता है। मेरी समझ में आशा वृक्ष, पर्वत और आकाश से भी ऊँची है अथवा उसकी ऊँचाई की कोई सीमा ही नहीं है। उससे बढ़कर दुर्लभ कोई पदार्थ नहीं है। अब आप उसका रूप बतलाइए।

भीष्म कहते हैं—महाराज, मैं इस विषय में राजर्षि सुमित्र का इतिहास सुनाता हूँ। एक बार राजा सुमित्र ने, शिकार के लिए वन में जाकर, बाण से एक मृग को मारा। राजा का बाण लगने पर वह बलवान् मृग, उस बाण को लेकर, बड़े वेग से भाग चला। राजा ने भी १० उसका पीछा किया। तब वह मृग थोड़ी देर समतल भूमि में भागकर फिर ऊँची-नीची भूमि पर चलने लगा। तलवार, कवच और धनुष धारण किये हुए राजा भी, यौवन के वेग से, उसके पीछे दौड़ने लगे। महाराज सुमित्र मृग के पीछे दौड़ते-दौड़ते अनेक नद, नदी, तालाब और वन लाँघते हुए एक घने वन में जा पहुँचे। मृग भी अपनी इच्छा के अनुसार बीच-बीच में उन्हें दिखाई देता और फिर पहले से भी अधिक वेग से भागने लगता था। वह राजा के अनेक बाण सहकर भी बार-बार उनके पास आने लगा। जान पड़ता था कि वह राजा के साथ खेल कर रहा है। इस प्रकार बार-बार पास आने पर राजा ने कुपित होकर एक कठिन बाण मारा। तब वह मृग, उस बाण के मार्ग से, दो कोस के फ़ासले पर निकल गया। राजा का बाण अग्नि के समान तेज़ था, किन्तु वह भी व्यर्थ हो गया। बाण के निष्फल होने पर १९ मृग फिर वन में घुस गया। राजा भी उसके पीछे-पीछे दौड़ने लगे।

एक सौ छब्बीस अध्याय

तपस्वियों का अपने आश्रम पर आये हुए सुमित्र का सत्कार करना

भीष्म कहते हैं—धर्मराज, महाराज सुमित्र घने वन में दौड़ते-दौड़ते बहुत थक गये। वन में तपस्वियों का आश्रम देखकर वे वहीं बैठ गये। तपस्वियों ने राजा को थका हुआ और भूखा जानकर उनका सत्कार किया। महाराज सुमित्र ने तपस्वियों का सत्कार ग्रहण करके उनकी तपोवृद्धि का समाचार पूछा। महर्षियों ने उत्तर देकर कहा—राजन्, आपने किस वंश में जन्म लिया है? आपका क्या नाम है और अस्त्र-शस्त्र धारण किये हुए आप इस तपोवन में पैदल किस लिए आये हैं? आप हमें अपना हाल बतलाइए।

राजा ने कहा—महर्षियो, मैं हैहयवंशी सुमित्र राजा हूँ। मैं बाणों से अनेक मृगों का शिकार करता हुआ वन में घूमता हूँ। मेरे साथ स्त्री, मन्त्री और सेना भी थी। मैंने एक मृग को बाण मारा। बाण से घायल वह मृग भाग खड़ा हुआ। मैं उसी का पीछा करता हुआ इस तपोवन में आप लोगों के पास आ गया हूँ। इस समय श्रीहत, श्रान्त और हताश होकर मैं अत्यन्त दुखी हो रहा हूँ। अपनी आशा के पूरी न होने का मुझे जितना दुःख है, उतना दुःख अपनी इस दुर्दशा और नगर के छोड़ने का नहीं है। पर्वतों में श्रेष्ठ हिमालय और अपार समुद्र जिस प्रकार अपनी ऊँचाई और विस्तार से आकाश-मण्डल की अन्तिम सीमा तक नहीं पहुँच सकता उसी प्रकार मैं भी आशा की अन्तिम अवधि को नहीं देख पाता हूँ। हे तपस्वियो, आप लोगों से कुछ भी छिपा नहीं है। अतएव मैं यह पूछता हूँ कि आशावान् मनुष्य और आकाश, इन दोनों में किसका महत्त्व समझा जावे। इसको सुनने के लिए मैं बहुत उत्सुक हूँ। यदि यह गुप्त विषय हो, अथवा इसके बतलाने से तप में कोई विघ्न पड़ने की आशङ्का हो, तो मैं इसे नहीं सुनना चाहता। यदि आप लोग इस प्रश्न का उत्तर देना उचित समझें तो एकत्र होकर उत्तर दें। १० १६

एक सौ सत्ताईस अध्याय

बदरिकाश्रम में गये हुए राजा वीरद्युम्न और तनु नामक महर्षि का संवाद

भीष्म कहते हैं कि हे धर्मराज, इस प्रकार सुमित्र के प्रश्न करने पर उन महर्षियों में श्रेष्ठ महातपस्वी ऋषभ ने मुसकुराकर कहा—महाराज, मैं एक बार तीर्थ-यात्रा करता हुआ नर-नारायण के दिव्य आश्रम में पहुँचा। उस रमणीय स्थान में सुन्दर बदरीवन और एक महान् ह्रद था जहाँ से कि आकाशगामिनी मन्दाकिनी निकली है। वहाँ भगवान् अश्वशिरा लगातार वेद-पाठ करते थे। उस भारी तालाब के जल से पितरों और देवताओं का तर्पण करके मैं आश्रम के मण्डप में गया। महर्षि नर और नारायण के स्थान के समीप ही मैं प्रसन्नता से बैठा हुआ था, इतने में बकल और मृगछाला धारण किये हुए अत्यन्त दुर्बल तनु नाम के एक तपस्वी उसी स्थान पर आ पहुँचे। उनका शरीर अन्य मनुष्यों की अपेक्षा अठगुना लम्बा था। उनके समान दुर्बल मनुष्य मैंने कभी नहीं देखा। उनका शरीर कनिष्ठा अँगुली के समान दुर्बल था। हाथ, पैर, गर्दन और बाल अद्भुत थे। सिर, आँखें और कान देह के अनुरूप थे। उनकी बोलने की शक्ति साधारण थी। उन अलौकिक शरीरवाले तपोधन को देखकर मैं घबराहट और डर के मारे उनको प्रणाम करके, हाथ जोड़कर, उनके सामने खड़ा हो गया। अपना और अपने पिता का नाम-गोत्र बतलाकर, उनकी आज्ञा से, मैं अपने आसन पर धीरे से बैठ गया। तब वे धर्म और अर्थ से युक्त कथा ऋषियों से कहने लगे। इतने में ही, उसी वन १०

में मरे हुए अपने पुत्र भूरिद्युम्न के शोक से पीड़ित महाराज वीरद्युम्न, अपने पुत्र की खोज में, स्त्री और सेना समेत, उसी स्थान पर आये। वे तेज़ घोड़ों पर सवार थे। उन्होंने महर्षि से कहा—

भगवन्, मैंने पहले इसी स्थान पर अपने पुत्र को देखा था। इसी आशा से मैं इस वन के सम्पूर्ण स्थानों में घूमता फिरता हूँ, किन्तु कहीं उस धर्मात्मा को नहीं देख पाता हूँ। वह इसी वन में मर गया है। अब उसका मिलना असम्भव है, यह मैं समझता हूँ; किन्तु तब भी पुत्र के मिलने की आशा नहीं मिटती। मैं इस समय उसी आशा में फँसा हुआ मुर्दा सा हो रहा हूँ।

यह सुनकर वे तनु नामक तपस्वी थोड़ी देर तक नीची नज़र किये चुपचाप सोचते रहे। दुःख से पीड़ित महाराज वीरद्युम्न ने उनको ध्यानावस्थित देखकर धीरे से कई बार कहा—भगवन्, यदि २० गोपनीय न हो तो बतलाइए कि आशा से बढ़कर दुर्लभ और कौन सी महान् वस्तु है?

महर्षि ने कहा—महाराज, एक महर्षि ने तुम्हारे पुत्र भूरिद्युम्न से सोने का कलश और वल्कल माँगा था; किन्तु उसने मूर्खता और दुर्भाग्य के कारण उनकी माँगी हुई वस्तु नहीं दी। इससे उस महर्षि का अनादर हुआ। [इसी से वह इस विपत्ति में पड़ गया है।]

महर्षि के यह कहने पर राजा वीरद्युम्न लोकपूजित उन महात्मा को प्रणाम करके चुपचाप बैठ गये। तब महर्षि ने, वन के नियमानुसार, पाद्य और अर्घ्य देकर राजा का सत्कार किया। इसके बाद उस आश्रम के दूसरे ऋषि लोग, सप्तर्षियों से घिरे हुए ध्रुव नक्षत्र के २६ समान, महाराज वीरद्युम्न के चारों ओर बैठकर आश्रम में उनके आने का कारण पूछने लगे।

एक सौ अट्ठाईस अध्याय

कृश का आशा की कृशता सिद्ध करना

राजा ने कहा—महर्षियो, मैं वीरद्युम्न नाम का राजा हूँ। मेरा नाम सर्वत्र विख्यात है। भूरिद्युम्न नाम का मेरा अल्पवयस्क पुत्र इसी वन में खो गया है। वह मेरा एकलौता बेटा था। मैं इस वन में उसी को ढूँढ़ता फिर रहा हूँ; किन्तु अभी तक उसका पता नहीं लगा।

महाराज वीरद्युम्न के यह कहने पर महर्षि कृश सिर झुकाये चुप बैठे रहे। उन्होंने राजा की बात का कुछ भी उत्तर नहीं दिया। पहले वीरद्युम्न ने इन महर्षि का यथोचित सत्कार नहीं किया था। तब इन्होंने घोर तप करते हुए यह संकल्प किया कि मैं कभी क्षत्रिय और अन्य किसी वर्ण से कुछ नहीं लूँगा। आशा मनुष्यों को व्याकुल कर देती है, इसलिए मैं उस आशा को दूर करने का प्रयत्न करूँगा।

महर्षि कृश के चुप रहने पर राजा वीरद्युम्न ने उनसे कहा—महर्षि, आप सर्वज्ञ हैं। अतएव मुझे यह बतलाइए कि संसार में आशावान् मनुष्य से बढ़कर दुर्बल कौन है और आशा से बढ़कर दुर्लभ कौन सी वस्तु है?

तपस्या से शीर्ण शरीरवाले महर्षि कृश ने राजा को पिछला वृत्तान्त स्मरण कराते हुए कहा—राजन्, आशावान् मनुष्य से बढ़कर दुर्बल और आशा के अनुरूप कार्य-सिद्धि से बढ़कर दुर्लभ और कुछ नहीं है। उसके दुर्लभ होने से ही मुझे न जाने कितने राजाओं से प्रार्थना करनी पड़ी थी।

राजा ने कहा—महर्षि, आपके बतलाने से मेरी समझ में आ गया है कि जो आशा के वशीभूत है वही दुर्बल है और जिसने आशा को अपने वश में कर लिया है वही बलवान् है। आशा की पूर्ति भी वेद-वाक्य के समान बड़ी दुर्लभ है। इस समय मुझे एक और सन्देह हुआ है कि क्या आपसे भी बढ़कर दुर्बल कोई है? यदि आप इसका बतलाना उचित समझें तो मेरा सन्देह दूर कर दें। १०

कृश ने कहा—महाराज, माँगनेवाले मनुष्यों में धैर्यवान् या तो बहुत कम होते हैं या होते ही नहीं। और, जिसने कभी माँगनेवाले का अपमान न किया हो ऐसा मनुष्य और भी दुर्लभ है। भरोसा देकर जो याचक को टाल दिया जाता है वह टालना मुझसे भी बढ़कर दुर्बल है; कृतघ्नों, नृशंसों, आलसियों और अपकारियों से जो आशा की जाती है वह मुझसे भी अधिक दुर्बल है; एकलौते बेटे के मर जाने या कहीं चले जाने पर जिस आशा से पिता उसकी खबर पाने में असमर्थ रहता है वह आशा मुझसे भी अधिक दुर्बल है; जो आशा वृद्धा स्त्रियों को पुत्र उत्पन्न करने की इच्छा कराती है, जो धनियों को भरमाती और जिसके प्रभाव से पति की इच्छा करनेवाली कुमारी पति के मिलने की बातें सुनकर प्रसन्न होती है, वह आशा मुझसे भी बढ़कर दुर्बल है।

महर्षि कृश के यह कहने पर राजा सपरिवार उनके पैरों पर गिरकर कहने लगे—भगवन्, आप प्रसन्न हों। मुझे पुत्र से मिलने की बड़ी इच्छा है। आपने जो कुछ कहा है वह सब ठीक है। धर्मात्मा कृश ने मुसकुराकर अपनी विद्या और तप के प्रभाव से उसी दम वीरद्युम्न के पुत्र को ला दिया। इसके बाद अपनी दिव्य मूर्ति धारण करके, निष्पाप और क्रोध- २०

हीन होकर, वे वन में विचरने लगे। महाराज! मैंने स्वयं यह सब देखा और सुना है, अतएव आप अत्यन्त दुर्बल आशा को शीघ्र त्याग दें।

भीष्म कहते हैं—महाराज, महात्मा ऋषभ के यह कहने पर राजा सुमित्र ने उसी समय अपनी आशा छोड़ दी। अतएव तुम भी मेरा कहना मानकर आशा का त्याग करके हिमालय पर्वत के समान अटल रहो। मेरी इस परिस्थिति में जो तुम मुझसे यह पूछ-ताछ कर २७ रहे हो, सो इससे तुम झिझकना मत।

एक सौ उन्तीस अध्याय

यम का गौतम को माता-पिता की सेवा करके उनके ऋण से छुटकारा बतलाना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, आपके अमृत-रूपी वचनों को सुनते हुए मुझे तृप्ति नहीं होती। मैं जितनी ही आपकी बातें सुनता जाता हूँ उतनी ही अधिक सुनने की इच्छा बढ़ती जाती है। जिस तरह आत्मज्ञानी मनुष्य समाधि के सुख से तृप्त होता है उसी तरह मैं आपका धर्मोपदेश सुनकर सन्तुष्ट हो रहा हूँ। इसलिए आप फिर धर्म का उपदेश दीजिए।

भीष्म कहते हैं—महाराज, यम और गौतम का एक प्राचीन संवाद है। गौतम ने यमराज से जो कहा था वही मैं तुमसे कहता हूँ, सुनो। पारियात्र पर्वत पर महर्षि गौतम का आश्रम था। इस स्थान पर उन्होंने साठ हज़ार वर्ष तक तपस्या की थी। एक बार लोकपाल यम महर्षि गौतम के स्थान पर आये और उनको घोर तपस्या करते देखकर बहुत प्रसन्न हुए। यम को देखकर महर्षि गौतम हाथ जोड़कर उनके सामने बैठ गये। तब यम ने उनका यथोचित सम्मान करके कहा—महर्षि! कहिए, मैं आपकी क्या सेवा करूँ?

गौतम ने पूछा—भगवन्, मनुष्य मातृ-ऋण और पितृ-ऋण से किस प्रकार छुटकारा पा सकता है और किस प्रकार अत्यन्त पवित्र दुर्लभ लोकों की प्राप्ति हो सकती है?

यम ने कहा—महर्षि! सदा सत्य, धर्म, तपस्या और पवित्रतापूर्वक माता-पिता की सेवा करने पर उनके ऋण से छुटकारा मिलता है और दक्षिणा सहित अश्वमेध आदि यज्ञों के ११ करने से परम पवित्र लोक प्राप्त होते हैं।

एक सौ तीस अध्याय

आपत्काल में ब्राह्मणों के सिवा अन्य वर्णों की प्रजा को पीड़ित करके भी धन संग्रह करना राजा का कर्तव्य बतलाना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह! जो राजा मित्रहीन, बहुतेरे शत्रुओं से युक्त, निर्धन और निर्बल हो तथा दुष्ट मन्त्रियों द्वारा जिसकी गुप्त बातें प्रकट हो जाती हों; जो राज्य-भ्रष्ट हो;

जिसे अपना कर्तव्य न सूझ पड़ता हो; जो दूसरों का राज्य छीन लेने की इच्छा से शत्रुओं के साथ युद्ध करता हो; जो प्रजा की रक्षा करने में असमर्थ हो; जो देश-काल की बातों पर कुछ भी ध्यान न रखता हो और जिसे प्रजा को सताने के कारण सन्धि और भेद दोनों दुर्लभ हों, वह किस उपाय से धन का संग्रह करे ? धन के बिना क्या उसका मर जाना ही श्रेयस्कर है ?

भीष्म कहते हैं—धर्मराज, तुमने इस समय धर्म का कठिन विषय पूछा है। बिना पूछे इसे बतलाना उचित नहीं था, इसी से मैंने अभी तक इसका वर्णन नहीं किया। जो मनुष्य शास्त्र से थोड़ा सा भी धर्म सुनकर बुद्धिपूर्वक उसके अनुसार आचरण करता है वही सज्जन है। बुद्धिपूर्वक काम करने से धनाढ्य होगा या नहीं, यह तुम अपने-आप विचार करके समझ सकते हो। अब राजाओं के निर्वाह के निमित्त आपद्धर्म का वर्णन करता हूँ, सुनो। किन्तु इस प्रकार के धर्म को मैं यथार्थ धर्म नहीं मानता। साधारण बुद्धि रखनेवाली प्रजा को सताकर उससे धन लेने पर राजा का धन और सेना आदि सब कुछ नष्ट हो जाता है। मनुष्य जैसे-जैसे शास्त्र का अध्ययन करता जाता है वैसे ही उसका ज्ञान बढ़ता जाता है [और उसी ज्ञान के द्वारा वह अपनी रक्षा कर सकता है]। ज्ञान न होने से मनुष्य कोई उपाय नहीं सोच सकता। जो बुद्धिमान् मनुष्य ज्ञान के द्वारा उपाय सोच सकता है उसी का कल्याण होता है। राजा का कोष नष्ट होने पर बल का नाश हो जाता है। अतएव निर्जल स्थान में जल उत्पन्न करने के समान, जिस तरह हो सके, धन का संग्रह करना चाहिए। आपत्काल टल जाने पर प्रजा पर दया करना राजा का धर्म है। समर्थ मनुष्यों के लिए जो धर्म है वह धर्म विपद्ग्रस्त मनुष्यों के लिए नहीं है। बिना धन के तप आदि के द्वारा भी धर्म की प्राप्ति हो सकती है; किन्तु धन के बिना प्राण-हानि की आशंका है। इसलिए धन के विरोधी धर्म का अवलम्बन करना उचित नहीं। निर्बल मनुष्य धर्म के अनुसार निर्वाह करने में समर्थ नहीं हो सकता और उस समय विशेष यत्न करने पर भी धर्म के अनुसार उसका बलवान् होना सम्भव नहीं है। अतएव विपत्ति के समय अधर्म भी, धर्म समझकर, किया जाता है। किन्तु सूक्ष्मदर्शी पण्डितों का कहना है कि इस प्रकार का धर्म अधर्म ही है।

आपत्काल बीत जाने पर राजा को उस समय किये हुए पाप का प्रायश्चित्त करना चाहिए। राजा वही काम करे जिसके करने से धर्म की कोई हानि न हो और जिससे अपने को शत्रु के हाथ में न पड़ना पड़े। अपने को विपत्ति में डालना कदापि उचित नहीं। अपने और दूसरों के धर्म पर आघात पहुँचाकर भी अपनी विपत्ति टालने का उपाय करना चाहिए। धर्मात्माओं को धर्म में और क्षत्रियों को बाहुबल तथा उत्साह में निपुणता दिखानी चाहिए। जिस तरह ब्राह्मण आपत्काल में न करने योग्य यज्ञ करने और अभक्ष्य खा लेने पर निन्दनीय नहीं होता उसी तरह क्षत्रियों का विपत्ति के समय, तपस्वियों और ब्राह्मणों को

छोड़कर, अन्य जातियों का धन ले लेना अनुचित नहीं है। जो मनुष्य शत्रु से हारकर भागता है वह क्या भले-बुरे मार्ग का विचार करता है? उसे तो जो रास्ता मिल जाता है उसी रास्ते वह भाग खड़ा होता है। कोष और सेना का नाश होने के कारण, मनुष्यों द्वारा अपमानित होने पर भी, राजा के लिए भिक्षावृत्ति और वैश्यों या शूद्रों की जीविका का अवलम्बन करना निषिद्ध है। जय प्राप्त करके धन का उपार्जन करना ही क्षत्रियों की प्रधान वृत्ति है। राजा को अपने सजातीय लोगों से कभी कोई वस्तु न माँगनी चाहिए। जो मनुष्य धर्म के अनुसार निर्वाह करता रहता है वह आपत्काल में यदि आपद्धर्म के अनुसार भी अपना निर्वाह कर ले तो वह जीविका उसके लिए निषिद्ध नहीं है। संकट के समय जब ब्राह्मणों को अपने धर्म के विरुद्ध आचरण करने की स्वाधीनता है तब क्षत्रियों के लिए ऐसा विधान क्यों न हो? आपत्काल में क्षत्रियों को धनवानों से बलपूर्वक धन ले लेना चाहिए। विपत्ति में पड़ा रहना उचित नहीं। क्षत्रिय प्रजा का विनाश करनेवाला भी है और रक्षा करनेवाला भी, इसलिए विपत्ति के समय बलपूर्वक प्रजा से धन ले लेना उसके लिए निषिद्ध नहीं है। संसार में बिना हिंसा किये कोई अपना निर्वाह नहीं कर सकता। साधारण मनुष्यों की तो बात ही क्या, वन में रहनेवाले मुनि भी हिंसा किये बिना अपनी जीविका नहीं चला सकते। विशेष-कर जो राजा प्रजा का पालन करता है वह केवल भाग्य के भरोसे रहकर अपना निर्वाह नहीं
३० कर सकता। और देखिए, राजा और राज्य परस्पर एक दूसरे की रक्षा करते हैं। अतएव जिस तरह राजा आपत्काल में अपना धन व्यय करके राज्य की रक्षा करता है उसी तरह प्रजा को भी राजा के विपत्काल में उसकी रक्षा करनी चाहिए। विपत्ति आ पड़ने पर कोष, दण्ड, बल, मित्र और अन्यान्य सञ्चित द्रव्य राज्य की रक्षा में लगाना राजा का कर्तव्य है। शम्बर का वचन है कि, राजनीतिज्ञों के मत में, मनुष्य अपने खाने के अन्न में से पहले बीज की रक्षा करे। अपना धन ख़र्च करके राजा की रक्षा करना प्रजा का प्रधान कर्तव्य है। जिस राजा की प्रजा दुखी हो, जो राजा जीविका के लिए दूसरों के आश्रित रहे या विदेश में निवास करे, उसके जीवन को धिक्कार है। राजा की जड़-बुनियाद कोष और सेना है; उनमें कोष बल का आधार है, बल सब धर्मों का मूल है और धर्म प्रजा का मूल है। किन्तु दूसरों को सताये बिना कोष और सेना की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसलिए आपत्काल में कोष और सेना की प्राप्ति के लिए दूसरों को पीड़ित करना राजाओं के लिए निन्दित काम नहीं है। यज्ञ के लिए न करने योग्य काम भी किये जाते हैं। अतएव राजा यदि शुभ काम के लिए दूसरों को सतावे तो उसे दूषित क्यों कहा जावे?

धन के अभाव में ही प्रजा को पीड़ित किया जाता है। आपत्काल में प्रजा को पीड़ित किये बिना और किसी उपाय से धन नहीं मिल सकता। धन-संग्रह करने की इच्छा से राजा

हाथी आदि पालता है। इस प्रकार बुद्धिमान् मनुष्य परिस्थिति देखकर आपत्काल में अपना कर्तव्य करे। जैसे पशु, यज्ञ और चित्त की शुद्धि, ये तीन मोक्ष के साधन हैं वैसे ही कोष, बल और विजय ये तीन राज्य को पुष्ट करने के प्रधान कारण हैं। मैं यहाँ धर्मतत्त्व-विषयक एक दृष्टान्त देता हूँ, सुनो। जिस तरह यज्ञीय यूप के लिए वृक्ष काटते समय जितने वृक्ष उसके काटने में रुकावट डालते हैं वे सब काट डाले जाते हैं और वे कटकर गिरते समय अन्यान्य वृक्षों ४० को गिरा देते हैं उसी तरह जो मनुष्य राजा के धन-संग्रह करने में बाधा डालते हैं उन सबका विनाश किये बिना कार्य का सिद्ध होना असम्भव है। धन से यह लोक, परलोक, सत्य और धर्म, सब कुछ अपने अधीन किया जा सकता है। निर्धन मनुष्य मुर्दे के समान है। यज्ञ के लिए चाहे जिस तरह से धन का संग्रह करना चाहिए। ऐसा करने से मनुष्य को दोष नहीं लगता। धन का संग्रह और धन का त्याग दोनों कामों को एक मनुष्य कभी एक साथ नहीं कर सकता। वन में धनवानों का रहना सम्भव नहीं है और जो मनुष्य समाज में रहते हैं वे हमेशा पृथिवी भर का धन बटोर लेने की फ़िक्र में रहते हैं। जो हो, राजाओं के लिए राज्य की रक्षा के समान परम धर्म दूसरा नहीं है। अच्छे समय में, प्रजा से अधिक परिमाण में कर लेना तो पापजनक है; किन्तु आपत्काल में ऐसा करना अधर्म का काम नहीं। संसार में कोई मनुष्य दान और यज्ञ आदि कामों से, कोई तपस्या से और कोई बुद्धि तथा निपुणता से धन का सञ्चय करता है। संसार में निर्धन मनुष्य निर्बल और धनवान् मनुष्य बलवान् हैं। धनवान् मनुष्य सभी वस्तुओं को अपने अधिकार में कर सकता है और सभी विपत्तियों से पार लग सकता है। धन से धर्म, काम और दोनों लोकों में सद्गति की प्राप्ति हो सकती है। अतएव धर्म के अनुसार धन प्राप्त करने की चेष्टा करनी चाहिए, अधर्म से धन का संग्रह करना उचित नहीं। ५०

आपद्धर्मपर्व

एक सौ इकतीस अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर को आपत्काल में सर्वस्व त्यागकर अपनी रक्षा करना बतलाना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह! जो राजा धन-धान्य-विहीन और आलसी हो, जो बन्धुओं का नाश हो जाने के भय से युद्ध न कर सकता हो, गुप्त बातें प्रकट हो जाने के कारण जिसे मन्त्रियों पर विश्वास न हो, शत्रुओं ने जिसका राज्य छीन लिया हो, निर्धन और मित्रहीन होने के कारण जिसके मन्त्री शत्रुओं के अधीन हो गये हों और जो शत्रु की सेना द्वारा परास्त हो गया हो तथा बलवान् शत्रु के भय से जो व्याकुल हो रहा हो वह क्या करे?

भीष्म कहते हैं—धर्मराज! शत्रु का चरित्र यदि शुद्ध हो और वह धर्म के अनुसार विजय करना चाहता हो तो उसके साथ शीघ्र सन्धि करके धीरे-धीरे अपने छिने हुए गाँवों

और नगरों पर अधिकार कर ले। यदि शत्रु बलवान् हो और अधर्म से विजय करने पर उतारू हो तो कुछ दे-लेकर उसके साथ सन्धि कर ले अथवा राजधानी तथा अन्यान्य सब सम्पत्ति छोड़कर विपत्ति से पीछा छुड़ा ले; क्योंकि जीवित रहने पर फिर ऐश्वर्य मिल सकता है। अतएव कोष और सेना दे डालने पर जिस आपत्ति से छुटकारा मिल सकता है उस आपत्ति में शरीर का त्याग कर देना निरी मूर्खता है। यदि स्त्रियों (बाल-बच्चों) की रक्षा न हो सके और वे शत्रुओं के हाथ पड़ जायँ तो, उनका स्नेह न करके, राजा आत्मरक्षा ही करे।

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह! मन्त्रियों के असन्तुष्ट होने, राज्य और दुर्ग आदि शत्रु के अधीन होने तथा कोष का नाश और गुप्त बातों के प्रकट होने पर राजा क्या करे?

भीष्म कहते हैं—हे धर्मराज, शत्रु धर्मात्मा हो तो उसके साथ शीघ्र सन्धि और अधर्मी हो तो उससे युद्ध करे। ऐसा करने से ही जल्दी शत्रु से छुटकारा मिल सकता है। यदि शत्रु बलवान् होने के कारण जीता न जा सके तो उसके साथ धर्म-युद्ध करके शरीर त्यागकर पर-
१० लोक में सद्गति प्राप्त कर ले। स्वामिभक्त और सन्तुष्ट सेना थोड़ी हो तो भी उसे लेकर राजा विजयी हो सकता है। युद्ध में मारे जाने पर राजा स्वर्ग को जाता है और विजयी होने पर राज्य प्राप्त करता है, अतएव उसे युद्ध से न डरना चाहिए। युद्ध का समय आ पड़ने पर, बुद्धिमानी से शत्रु को विश्वास पैदा कराकर, नम्रतापूर्वक सन्धि कर ले। युद्ध के लिए हठ करना भी उचित नहीं। अपनी सेना के बिगड़ उठने के कारण यदि राजा युद्ध करने में समर्थ न हो और शत्रु के कुपित होने के कारण सन्धि भी न कर सके तो क़िले को छोड़कर भाग
१४ जाय। कुछ दिनों बाद फिर अपना राज्य प्राप्त करने का उद्योग करे।

एक सौ बत्तीस अध्याय

दुष्टों का धन छीनकर राजा विपद्ग्रस्त ब्राह्मणों की रक्षा करे

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह! राजाओं का सर्वलोकहितकारी परम धर्म नष्ट होने और संसार की वस्तुएँ दुष्टों के अधीन हो जाने पर ब्राह्मण लोग उस आपत्काल में स्नेह-वश पुत्र-पौत्र आदि का परित्याग तो कर नहीं सकते, फिर उस समय वे किस तरह अपना निर्वाह करें?

भीष्म कहते हैं—धर्मराज, उस आपत्काल में ब्राह्मणों को विज्ञान (शिल्प या शास्त्र) द्वारा अपना निर्वाह करना चाहिए। पृथिवी में जितना धन-धान्य आदि है वह सब सज्जनों के निमित्त है; दुष्टों के लिए कुछ नहीं है। जो मनुष्य शास्त्र के अनुसार आचरण करके दुष्टों से धन लेकर सज्जनों को देता है वही आपद्धर्म का यथार्थ तत्त्वज्ञ है। राजा आपत्काल में

राज्य की रक्षा करता हुआ, परिस्थिति को सँभाले रखकर, वह धन भी ले ले जो कि प्रजा ने नहीं दिया है। विज्ञान (शिल्प) का जाननेवाला सज्जन आपत्काल में यदि निन्दित काम भी करता है तो कोई उसकी निन्दा नहीं करता। जिसकी जीविका बल पर निर्भर है वह दूसरी वृत्ति को पसन्द नहीं कर सकता। बलवान् मनुष्य हमेशा अपना तेज दिखलाता रहता है। आपत्काल में राजा अपने और पराये राज्य के मनुष्यों से धन लेकर कोष का संग्रह कर सकता है; किन्तु चतुर राजा उस समय कञ्जूस मनुष्यों को दण्ड देकर धन-सञ्चय करता है। अत्यन्त विपत्ति पड़ने पर भी ऋत्विक्, पुरोहित, आचार्य और अन्य ब्राह्मणों को सता करके राजा धन-संग्रह न करे। जो राजा इस प्रकार के अनुचित काम नहीं करता वह पापों से बचा रहता है। मैंने इस समय जो कहा है यह अत्यन्त प्रामाणिक और मनुष्यों के दिव्य-नेत्र के समान है। गाँव के रहनेवाले बहुत से लोग क्रोध के वश राजा से अनेक लोगों की चुगली खाते हैं; किन्तु राजा उनकी बातों में आकर किसी का सत्कार या किसी को पीड़ित न करे। किसी की निन्दा करना या सुनना कदापि उचित नहीं। जहाँ दूसरों की निन्दा होती हो वहाँ या तो कानों पर हाथ रख ले या वहाँ से चला आवे। दूसरों की निन्दा करना और चुगली खाना दुष्टों का काम है। भले मनुष्य सज्जनों की प्रशंसा करते हैं। शान्त-स्वभाव बैल जिस तरह बोझा ले जाता है उसी तरह राजा भी राज्य का भार सँभाले। राजा को वही काम करना चाहिए जिसके करने से अनेक सहायक बनें। अनेक लोग पुरानी प्रथा को ही प्रधान धर्म मानते हैं किन्तु कोई-कोई इसे नहीं मानते। वे कहते हैं कि अपराध करने पर पुरोहित आदि मान्य व्यक्तियों को भी दण्ड देना चाहिए। वे लोग कुछ ईर्ष्या और लोभ से ऐसी बातें नहीं कहते हैं; उनका कथन तो वास्तव में 'शङ्ख' और 'लिखित' के मतानुसार ही है। अनेक महर्षियों ने मर्यादा-च्युत गुरु को भी दण्ड देना उचित बतलाया है। मर्यादा से च्युत अधम मनुष्य को देवता दण्ड देते हैं। जो राजा छल से धन ले लेता है वह धर्म से च्युत हो जाता है। सबका माननीय धर्म चार प्रकार का है—वेदनिर्दिष्ट, स्मृतिनिर्दिष्ट, सज्जन-सेवित और आत्मविचार-सिद्ध। इन चार प्रकार के धर्मों को जानना राजाओं के लिए आवश्यक है। जो राजा तर्क, वेद, वाणी और दण्डनीति के अनुकूल धर्म को जानता है वह यथार्थ धर्मज्ञ है। धर्म का मूल ढूँढ़ निकालना वैसा ही कठिन है जैसा साँप के पैर ढूँढ़ना। जिस प्रकार बहेलिये भागते हुए घायल मृग के रुधिर-युक्त पद-चिह्नों को देखकर वन में उसका पता लगाते हैं उसी प्रकार बुद्धिमान् मनुष्य धर्म के मर्म की खोज करें। प्राचीन राजर्षियों ने सज्जन-सेवित मार्ग का आश्रय किया था, तुम भी उन्हीं के समान उसी मार्ग पर चलो।

एक सौ तेंतीस अध्याय

भीष्म का, आपत्काल में, राजा के द्वारा दुष्टों के धनापहरण को धर्म बतलाना

भीष्म कहते हैं—हे धर्मराज, अपने राज्य से और दूसरों के राज्य से धन का संग्रह करके कोष भरना राजा का कर्तव्य है। कोष से ही धर्म और राज्य की वृद्धि होती है। अतएव धन का सञ्चय करके विचारपूर्वक व्यय करना चाहिए। न तो एकमात्र सच्चरित्रता से धन का संग्रह हो सकता है और न निरी नृशंसता से, इसलिए मध्यम वृत्ति का अवलम्बन करके धन-संग्रह करे। बलहीन मनुष्य धन का संग्रह नहीं कर सकता और धन के बिना बल कहाँ? बलहीन मनुष्य राज्य की रक्षा नहीं कर सकता और राज्यहीन होने से प्रभाव नष्ट हो जाता है। प्रभावहीन मनुष्य उच्च पद पर बैठा हुआ भी मुर्दे के समान समझा जाता है। इसलिए कोष, बल और मित्रों का बढ़ाना राजाओं के लिए आवश्यक है। जिसका ख़ज़ाना ख़ाली है उस राजा की सर्वत्र अवज्ञा होती है। कोष-हीन राजा से थोड़ा सा धन पाने पर न तो कोई सन्तुष्ट होता और न उत्साह के साथ उसका काम ही करता है। लक्ष्मी होने पर राजा का बेहद सम्मान होता है। स्त्रियाँ जिस तरह वस्त्रों से गुह्य अङ्ग छिपाये रहती हैं उसी तरह सम्पत्ति के द्वारा राजा की बुराइयाँ दब जाती हैं। जिस राजा के विरोधी लोग उसकी सम्पत्ति देखकर जलते हैं और बिलाव की तरह छिपकर उसे मार डालने का मौक़ा देखते रहते हैं उस राजा को कभी सुख नहीं मिल सकता। राजा को सदा दबङ्ग बना रहना चाहिए, उसका दब्बू होना ठीक नहीं। उद्यम ही प्रधान वस्तु है। मर भले जाय, किन्तु किसी से दबकर न रहे। वन में मृगों के साथ रहना तो अच्छा, पर उद्दण्ड दस्युओं के साथ व्यवहार करना उचित नहीं। किन्तु उनके साथ यथासम्भव बुरा व्यवहार न करे; क्योंकि आवश्यकता पड़ने पर उनसे मदद मिल सकती है। राजा के स्वेच्छाचारी होने पर सारी प्रजा ऊब जाती है; यहाँ तक कि निर्दय दस्यु लोग भी सशङ्क हो जाते हैं। अतएव सर्वसाधारण को प्रसन्न रखनेवाली मर्यादा की स्थापना करना परम आवश्यक है। यदि साधारण काम भी नियमपूर्वक किया जाय तो वह जनता में अच्छा समझा जाता है। दस्यु लोग लोक-परलोक का भय नहीं करते, इसलिए उनकी बातों पर विश्वास करना युक्तिसङ्गत नहीं। दस्यु लोग अन्य सदाचार करते हुए यदि दूसरों का धन हरण करते हैं तो उनका वह काम हिंसा नहीं कहलाता। देखो, दस्युओं के दयालु होने पर उनकी दया के प्रभाव से बहुत-से जीवों की रक्षा होती है। वे युद्ध से भागे हुए मनुष्य को नहीं मारते, कृतघ्न नहीं होते, ब्राह्मणों का धन नहीं हरते, किसी का नाश नहीं करते, किसी की कन्याएँ नहीं छीनते और परस्त्रीगामी भी नहीं होते। जिनका सर्वस्व नष्ट कर दिया गया है ऐसे मनुष्य, दुष्टों को विश्वास दिलाने के लिए, उनके साथ सन्धि कर लेते हैं तो वे लोग अवश्य दुष्टों के विश्वासपात्र बनकर, उनके घर का भेद लेकर, अन्त को उनका धन

हरण करते और सन्तान आदि सर्वस्व का विनाश कर डालते हैं। अतएव दस्यु लोगों को सम्पत्तिहीन न करके उनको अपने अधीन करना ही ठीक है। अपने को बलवान् समझकर उनके साथ कठोरता करना अच्छा नहीं। जो राजा अपनी प्रजा को निर्धन कर देता है वह स्वयं भी शीघ्र ही निर्धन हो जाता है और जो उसके धन की रक्षा करता हुआ उससे कर लेता है वह जीवन-भर राज्य का सुख भोगता है। २०

एक सौ चौंतीस अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से बल की प्रशंसा करना

भीष्म कहते हैं—हे धर्मराज, इतिहास के जानकारों ने बतलाया है कि क्षत्रिय के लिए धर्म और अर्थ ये दो प्रत्यक्ष सुख हैं। शास्त्रोक्त धर्म और अधर्म का विचार करके अदृष्ट सुख में विघ्न डालना उचित नहीं। पृथ्वी पर भेड़िये के पैर के चिह्न देखकर जैसे यह निश्चय नहीं किया जा सकता कि ये कुत्ते के हैं या भेड़िये के हैं या बाघ के, वैसे ही आपत्काल में धर्म और अधर्म का विचार करना कठिन है। संसार में धर्म और अधर्म के फल को किसी ने प्रत्यक्ष नहीं देखा है। अतएव विद्या आदि दस प्रकार के बल प्राप्त करे। समस्त वस्तुएँ बलवान् के अधीन रहती हैं। सम्पत्ति होने पर बल और बल होने पर योग्य मन्त्रियों की प्राप्ति होती है। संसार में धनहीन मनुष्य 'पतित' और थोड़े धनवाला मनुष्य 'उच्छिष्ट' होता है। बलवान् मनुष्य भला-बुरा चाहे जो कर डाले किन्तु डर के मारे कोई कुछ नहीं कह सकता। धर्म और बल की सचाई से मनुष्य भारी सङ्कट से अपनी रक्षा कर सकता है; परन्तु बल और धर्म इन दोनों में बल ही श्रेष्ठ है। बल होने पर धर्म किया जा सकता है। जिस तरह धुआँ वायु का आश्रय करके उड़ता है, लता वृक्ष का आश्रय लेती है, सुख भोगवान् मनुष्य के आश्रित रहता है उसी तरह धर्म बलवान् मनुष्य के आश्रित है। बलवान् मनुष्य के लिए कुछ भी असाध्य नहीं है। उसके सभी काम अच्छे समझे जाते हैं। बलहीन मनुष्य दुष्कर्म करने पर अपनी रक्षा नहीं कर सकता। सभी लोग उससे घृणा करने लगते हैं। निर्धन मनुष्य सर्वत्र अपमानित होता है और बड़ी कठिनाई से जीवन बिताता है। उसका जीना मरने के समान हो जाता है। पण्डितों का कहना है कि पापी और दुराचारी मनुष्य को उसके भाई-बन्धु त्याग देते हैं। १०
उसे दूसरों के दुर्वचन सहने पड़ते हैं, जिससे वह अत्यन्त पीड़ित और सन्तप्त रहता है। पाप से छूटने के लिए तीनों विद्याओं को पढ़े, ब्राह्मणों की सेवा करे, दृष्टि, वाणी और कर्म से उन्हें प्रसन्न रक्खे, मनस्वी हो, उत्तम कुल में विवाह करे, नम्रतापूर्वक दूसरों की प्रशंसा करे, कठोर नियमों का पालन करके जप करे और मितभाषी तथा मृदुस्वभाव होकर सबका हित करे। भारी पाप करने पर, लोगों के निन्दा करने पर, क्रोध न करके ब्राह्मणों और क्षत्रियों के समाज में

रहकर उनकी आज्ञा से काम करे। इस प्रकार सदाचारी होने पर उस पाप से छुटकारा मिलता, सब जगह सम्मान होता और लोक-परलोक में सुख प्राप्त होता है। सुकृत से सब
१७ पापों को धोकर महान् सुख पा सकता है।

एक सौ पैंतीस अध्याय

शास्त्र के अनुसार चलने से दस्यु को भी सिद्धि मिलने का दृष्टान्त

भीष्म कहते हैं—धर्मराज, [दूसरों का धन हरण करनेवाले] दस्यु को अन्यान्य सदाचार करने से नरक में नहीं जाना पड़ता। इस विषय में एक प्राचीन इतिहास सुनो। प्राचीन समय में कायव्य नाम का एक निषाद दस्युता करता हुआ भी सिद्ध हो गया था। वह निषाद क्षत्रिय के वीर्य और निषादी के गर्भ से पैदा हुआ था। वह क्षत्रिय-धर्म में निरत, बुद्धिमान्, ज्ञानी, दयालु, ब्राह्मणों का सम्मान करनेवाला, गुरुपूजक और महापराक्रमी था। वह निषादों में समझदार और पशु-विज्ञान का ज्ञाता था। वह प्रतिदिन प्रातः और सन्ध्याकाल में वन के पशुओं को उत्तेजित करता था। उसे देश-काल का ज्ञान था। वह लगातार पारियात्र पर्वत पर घूमा करता था। वह इतना बलवान् था कि अकेला ही बहुसंख्यक सेना को परास्त कर सकता था। वह धर्म का ज्ञाता था। प्रतिदिन मधु, मांस, फल, मूल आदि खाने की अनेक प्रकार की वस्तुएँ लाकर बूढ़े, अन्धे, बहरे माता-पिता को खिलाता और उनकी सेवा करता था। वह बड़े-बूढ़ों का सम्मान करता था। वन में रहनेवाले ब्राह्मणों का वह आदर-सत्कार करता था। वह प्रतिदिन मृगों को मारकर उन ब्राह्मणों को दे आता था। जो लोग लोकनिन्दा के भय के कारण उक्त दस्यु से मांस नहीं लेते थे उनके घर वह प्रातःकाल चुपचाप रख आता था।

१० एक दिन मर्यादा-हीन निर्दय दस्युओं ने उसे अपना सरदार बनाने की इच्छा से कहा—हे वीर, तुम देश-काल और मुहूर्त के जाननेवाले तथा बुद्धिमान्, शूर-वीर और दृढ़व्रत हो। इसलिए तुम हमारे सरदार बनो। हम लोग तुम्हारी आज्ञा का पालन करेंगे। तुम माता-पिता के समान न्याय के अनुसार हमारा पालन करो।

कायव्य ने उनकी बातें स्वीकार करके कहा—तुम लोग स्त्री, डरपोक, बालक, तपस्वी और युद्ध न करनेवाले मनुष्य को कभी न मारना और किसी की स्त्री को छीन न लेना। स्त्रियों की हत्या अन्य प्राणियों के नाश से बढ़कर निन्दित है। सदा ब्राह्मणों की भलाई सोचते रहना और उनके लिए युद्ध किया करना। कभी सत्य को न छोड़ना और किसी के विवाह आदि कामों में विघ्न न डालना। देवता, अतिथि और पितरों की पूजा करते रहना। सब प्राणियों में ब्राह्मण ही मोक्ष पाने के अधिकारी हैं, अतएव सर्वस्व त्यागकर उनकी पूजा

करनी चाहिए। ब्राह्मण लोग कुपित होकर जिसका अमङ्गल करना चाहते हैं उसकी रक्षा, तीनों लोकों में, कोई नहीं कर सकता। जो मनुष्य ब्राह्मणों की निन्दा करता है वह, सूर्योदय होने पर अन्धकार के समान, शीघ्र नष्ट हो जाता है। हम लोग इसी स्थान पर रहकर आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त करेंगे। जो कोई हमको वाञ्छित वस्तु न देगा उसके साथ युद्ध करना हमारा कर्तव्य होगा। दुष्टों को दबाने के लिए दण्ड की उत्पत्ति हुई है। निरपराध मनुष्यों को मारने के लिए उसकी उत्पत्ति नहीं हुई है। जो मनुष्य सज्जनों को सताता है उसी को दण्ड देना ठीक है। जो मनुष्य प्रजा को पीड़ित करके अपना निर्वाह करता है उसे, मुर्दे में मरे हुए कीड़े की तरह, नष्ट होना पड़ता है। [दूसरों का धन चुरानेवाला] दस्यु भी धर्म-शास्त्र के नियमों के अनुसार निर्वाह करने पर शीघ्र सिद्धि पा सकता है। २०

भीष्म कहते हैं—कायव्य का यह उपदेश सुनकर वे सब दस्यु उसके कहने के अनुसार काम करने और पाप-कर्म छोड़कर प्रतिदिन अपनी उन्नति करने लगे। कायव्य ने सज्जनों का हित किया और दस्युओं को बुरे काम करने से रोक दिया। इसलिए उसको सिद्धि प्राप्त हो गई। हे धर्मराज, जो मनुष्य सदा कायव्य के इस चरित्र को पढ़ता या सुनता रहेगा उसे जङ्गली जीवों तथा अन्यान्य प्राणियों से भय नहीं होगा। वह वन में भी राजा के समान रहेगा। २६

एक सौ छत्तीस अध्याय

कोष की वृद्धि के लिए छीनने और न छीनने की विवेचना करना

भीष्म कहते हैं—हे धर्मराज! राजा जिस उपाय का अवलम्बन करके ख़ज़ाना बढ़ा सकता है उसका वर्णन प्राचीन पण्डितों ने, ब्रह्मा की कही कथा के अनुसार, किया है। उसे सुनो। ब्राह्मण और यज्ञ करनेवाले का धन राजा न ले। देवोत्तर सम्पत्ति को भी राजा हाथ न लगावे। दुष्कर्म करनेवाले दस्युओं का ही धन लेना चाहिए। पृथिवी का राज्य और सारी प्रजा क्षत्रियों के ही अधिकार में है। अन्य किसी का उस पर अधिकार नहीं है। धन का सञ्चय करके बल की वृद्धि और यज्ञ करना राजाओं का कर्तव्य है। जिस तरह मनुष्य खाने के काम न आनेवाली चीज़ों को ईंधन के काम में लाकर भोजन बनाते हैं उसी तरह राजा दुष्टों की हिंसा करके सज्जनों का पालन करे। जो मनुष्य हवि के द्वारा देवता और पितरों को तृप्त नहीं करता उसका धन व्यर्थ है। ऐसे मनुष्यों का धन छीनकर धर्मात्मा राजा को उस धन से सज्जनों की रक्षा करनी चाहिए। जो राजा दुष्टों का धन छीनकर सज्जनों का पालन करता है वह परम धार्मिक है। वल्मी नाम का कीड़ा और चींटी आदि छोटे जीव जिस तरह धीरे-धीरे बहुत दूर तक चले जाते हैं उसी तरह राजा को शक्ति के अनुसार क्रमशः उत्तम लोक पाने का प्रयत्न करना चाहिए। जिस प्रकार गाय आदि पशुओं के शरीर पर से मक्खी

और डाँस भगा दिये जाते हैं उसी तरह अयाज्ञिक मनुष्यों को राज्य से निकाल देना चाहिए। जैसे कोई वस्तु पत्थर पर रखकर पीस देने से महीन हो जाती है वैसे ही धर्म पर जितना अधिक विचार किया जाता है उतना ही उसके भेदों का पता लगता जाता है। ११

एक सौ सैंतीस अध्याय

दृष्टान्त द्वारा अनागत विपत्ति से सावधान रहने का उपदेश

भीष्म कहते हैं—हे धर्मराज, जो मनुष्य भविष्य का विचार करके काम करता है वह 'अनागतविधाता', जो किसी काम के आ पड़ने पर उसे अपनी बुद्धि के बल से उसी दम कर डालता है वह 'प्रत्युत्पन्नमति' और जो मनुष्य हर एक काम को कल-परसों पर टालता रहता है वह आलसी मनुष्य 'दीर्घसूत्री' कहाता है। संसार में अनागतविधाता और प्रत्युत्पन्नमति, इन दो प्रकार के मनुष्यों को सुख मिल सकता है; दीर्घसूत्री मनुष्य शीघ्र नष्ट हो जाता है। मैं इस विषय की एक कथा सुनाता हूँ। किसी उथले तालाब में बहुत सी मछलियाँ थीं। उसी तालाब में तीन शकुल (सौर) मच्छ भी रहते थे। उन तीनों में एक अनागतविधाता, एक प्रत्युत्पन्न-मति और एक दीर्घसूत्री था। एक दिन मछुओं ने, मछलियाँ पकड़ने के इरादे से, उस तालाब के चारों ओर पानी निकलने का रास्ता कर दिया। तब अनागतविधाता (दीर्घदर्शी) मच्छ ने, तालाब को धीरे-धीरे सूखता हुआ देखकर, अपने दोनों मित्रों से कहा—देखो, अब इस तालाब के जीवों पर विपत्ति आनेवाली है। अभी हम लोगों के निकलने का मार्ग है, इसी बीच यहाँ से निकलकर किसी दूसरे जलाशय को चलो। जो मनुष्य आनेवाली विपत्ति का प्रतीकार नीति से करता है उसे विपद्ग्रस्त नहीं होना पड़ता। इसलिए चलो, विपत्ति आने के पहले ही हम लोग यहाँ से भाग चलें। दीर्घसूत्री ने कहा—मित्र! तुम्हारा कहना है तो ठीक, किन्तु मेरी राय में, किसी काम में जल्दी करना अच्छा नहीं। अब प्रत्युत्पन्नमति ने भी अनागतविधाता से कहा—भाई! मैं पहले से बन्दिशें नहीं बाँधता, मैं तो चटपट उपाय सोच लेता हूँ। १० दीर्घ-सूत्री और प्रत्युत्पन्नमति की ये बातें सुनकर और उन दोनों का उस समय भागने का इरादा न देखकर वह पानी निकलने के एक रास्ते से भागकर किसी बड़े तालाब को चला गया।

कुछ देर में उस छोटे तालाब से पानी निकल जाने पर मछुवे मछलियों को पकड़ने लगे। दीर्घसूत्री और प्रत्युत्पन्नमति भी पकड़े गये। अब मछुओं ने मछलियों को रस्सी (जाल) से बाँध दिया। बँध जाने पर प्रत्युत्पन्नमति मछलियों में दम साधकर रह गया और जब मछुवे बँधी हुई मछलियों को गहरे जल में धोने लगे तब प्रत्युत्पन्नमति बन्धन से निकलकर पानी में खिसक गया। किन्तु मन्दबुद्धि दीर्घसूत्री निकलने का कोई उपाय न सोच सका। वह घबराकर मर गया।

हे धर्मराज, जो मनुष्य सिर पर आई विपत्ति के हटाने का उपाय नहीं सोच सकता वह दीर्घसूत्री मच्छ की तरह मर मिटता है और जो अपने को कार्यकुशल समझकर विपत्ति आने के पहले ही उससे बचने का उपाय नहीं करता उसका जीवन प्रत्युत्पन्नमति की तरह सङ्कट में पड़ जाता है। [जो मनुष्य विपत्ति आने के पहले ही उसका उपाय करता है वह, अनागत-विधाता के समान, निर्विघ्न जीवन-निर्वाह कर सकता है।] अनागतविधाता और प्रत्युत्पन्न-मति मनुष्य सुख भोग सकता है और दीर्घसूत्री मनुष्य शीघ्र नष्ट हो जाता है। मनुष्य को देश और काल (कला, काष्ठा, मुहूर्त, क्षण, दिन, रात, पक्ष, मास, ऋतु, संवत्सर और कल्प) का ज्ञान अवश्य रखना चाहिए। महर्षियों ने धर्म, अर्थ और मोक्षशास्त्र में देश और काल को ही श्रेष्ठ और मनुष्यों का अभीष्ट सिद्ध करनेवाला बतलाया है। अतएव जो मनुष्य देश और काल का विचार करके काम करता है वही जीवन का फल भोग सकता है। २० २४

एक सौ अड़तीस अध्याय

आपत्ति के समय शत्रु से सन्धि करने के विषय में बिलाव और चूहे का आख्यान

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, आपने प्रत्युत्पन्न और अनागत बुद्धि को श्रेष्ठ तथा विपत्ति को दूर करनेवाली और दीर्घसूत्रता को विनाश का कारण बतलाया है। अब यह बतलाइए कि धर्म-शास्त्र-विशारद धर्मार्थ-कुशल राजा शत्रुओं से घिर जाने पर किस प्रकार की बुद्धि का आश्रय करके घबराहट से बच सकता है। शत्रुओं के धावा करने पर राजा क्या करे? विपद्ग्रस्त होने पर राजा के पुराने शत्रु भी कुपित होकर उसे नष्ट कर डालने का यत्न करते हैं। उस समय वह निस्सहाय राजा किस प्रकार बलवान् शत्रुओं से अपनी रक्षा कर सकता है? मित्रों और शत्रुओं के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए? जिस राजा के मित्र भी शत्रु हो जावें वह किस उपाय से अपनी रक्षा करे? सच्चे और बनावटी मित्रों में किसके साथ सन्धि और किसके साथ विग्रह करे? बलवान् होने पर भी शत्रुओं से घिर जाय तो क्या करे? आप जितेन्द्रिय और सत्यप्रतिज्ञ हैं। आपके सिवा दूसरा कोई इन बातों को नहीं बतला सकता और सुननेवाला भी दुर्लभ है। इसलिए इस समय आप इन सब विषयों का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए। ११

भीष्म कहते हैं—बेटा युधिष्ठिर, ये प्रश्न तुम्हारे ही अनुरूप हैं। आपत्काल में करने योग्य गूढ़ उपायों को सुनो। किसी समय शत्रु भी मित्र हो जाता है और मित्र शत्रु हो जाता है। परिस्थिति सदा एक-सी नहीं रहती, अतएव करने और न करने योग्य कामों का निश्चय तथा देश-काल का विचार करके सन्धि और विग्रह करना चाहिए। समझदार हितैषियों के

साथ हेलमेल रखना परम आवश्यक है। अपनी रक्षा के लिए शत्रुओं के साथ भी सन्धि कर ले। जो मनुष्य अनुभव-हीनता से शत्रुओं के साथ सन्धि नहीं करता वह न तो कभी धन उपार्जन कर सकता है और न सुख भोग सकता है। जो मनुष्य समय के अनुसार मित्रों के साथ विरोध और शत्रुओं के साथ सन्धि करता रहता है वह धनवान् होता और सुख पा सकता है। मैं इस विषय में एक इतिहास कहता हूँ जिसमें मार्जार और मूषक का संवाद है।

किसी घने वन में बरोहों से आच्छादित, पक्षियों से युक्त, बड़ी डालोंवाला और बादलों २० की सी छाया देनेवाला बड़ा भारी बरगद का पेड़ था। उस पेड़ की जड़ में सौ मुँहवाला बिल बनाकर पलित नाम का एक बुद्धिमान् चूहा रहता था। उसी पेड़ की डाल पर पक्षियों का खानेवाला लोमश नाम का एक बिलाव भी था। कुछ दिनों बाद उसी वन में घर बनाकर एक चाण्डाल भी रहने लगा। वह चाण्डाल प्रतिदिन सायंकाल, मृगों के पकड़ने के लिए, उस वृक्ष के आस-पास जाल फैला जाता था। चाण्डाल रात-भर अपने घर में सुख से सोता और रात में जो मृग उस जाल में फँसते थे उन्हें सवेरे आकर ले जाता था। एक दिन उस पेड़ की डाल पर रहनेवाला बिलाव भी जाल में फँस गया। तब पलित नाम का चूहा, अपने प्रबल शत्रु को फँसा हुआ देखकर, बेखटके

अपने खाने की चीज़ें ढूँढ़ता हुआ वहीं घूमने लगा। इतने में उसी जाल के ऊपर खाने की कोई चीज़ दिखाई दी। तब जाल के ऊपर चढ़कर चूहा मन ही मन हँसता हुआ उसे खाने लगा। इसी समय हरिण नाम का लाल आँखोंवाला एक चपल न्योला, चूहे की गन्ध पाकर, उसे ३१ खाने के लिए बिल से सिर निकालकर जीभ लपलपाने लगा। और चन्द्रक नाम का उल्लू भी, जो उसी पेड़ के खोखले में रहता था, पेड़ की डाल पर घूमने लगा। अकस्मात् उन दो शत्रुओं को देखकर चूहा बहुत डरा और सोचने लगा कि चारों ओर से प्राण-सङ्कट आ पड़ने पर प्राण बचाने के लिए क्या उपाय करूँ। विपत्ति आने पर उसे दूर करके प्राण बचा लेने में ही बुद्धिमानी है। जो लोग चारों ओर से विपद्ग्रस्त होने पर उस विपत्ति से अपना बचाव कर लेते

हैं उनका जीवन धन्य है। मैं इस समय घोर विपत्ति में पड़ गया हूँ। नीचे उतरने पर न्योला और यहाँ रहने पर उल्लू मुझे खा जायगा। यदि इसी समय कहीं बिलाव भी जाल से छूट गया तो किसी तरह मेरा निस्तार नहीं है। जो हो, मेरे सदृश बुद्धिमान् व्यक्ति विपत्ति के समय नहीं घबराते। मैं इस समय प्राण बचाने के लिए बुद्धिमानी से यत्न करने में त्रुटि न करूँगा। नीतिशास्त्र के मर्मज्ञ बुद्धिमान् लोग घोर विपत्ति पड़ने पर घबराते नहीं हैं। इस समय इस बिलाव के सिवा मेरी रक्षा का दूसरा उपाय नहीं है। यह शत्रु भी इस समय विपत्ति में पड़ा है। मैं इसका उपकार कर सकता हूँ। अतएव अपनी रक्षा के लिए इस बिलाव का ही आश्रय लेना ठीक है। मैं नीति से इसका हित करके अन्य शत्रुओं को धोखा दूँगा। यद्यपि यह बिलाव मेरा परम शत्रु है किन्तु इस समय घोर विपत्ति में पड़ा हुआ है, इस कारण मुझसे सन्धि कर लेगा। मूर्ख मित्र की अपेक्षा बुद्धिमान् शत्रु का आश्रय लेना अच्छा है। यदि यह बिलाव बुद्धिमान् होगा तो निस्सन्देह मेरी रक्षा हो जायगी। इसलिए इसी से अपने प्राण बचाने की प्रार्थना करूँगा। परिस्थिति देखकर यह समझदार हो सकता है। ४०

सन्धि और विग्रह के समय को जाननेवाले स्वार्थनिपुण चूहे ने यों सोचकर नम्रता के साथ बिलाव से कहा—मित्र, तुम जीवित हो न? मैं तुम्हारे और अपने हित के लिए तुमको बचाना चाहता हूँ। अब तुम डरो मत। यदि तुम मुझे न मारो तो मैं तुमको इस विपत्ति से छुड़ा दूँ। मैंने इस समय एक उपाय सोचा है, किन्तु वह कठिन है; उस उपाय से तुम्हारा छुटकारा हो जायगा और मेरा भी भला होगा। वह देखो, न्योला और उल्लू मुझे खा जाने की घात में हैं। ऐसा उपाय करो जिसमें उनसे मेरी रक्षा हो। चपल नेत्रोंवाला पापी उल्लू बरगद की डाल पर बोलता हुआ मेरी ओर देख रहा है। उसे देखकर मैं बहुत घबराता हूँ। थोड़ी देर साथ रहने से ही सज्जनों में मित्रता हो जाती है। तुम मेरे समझदार मित्र हो। जो हो, अब तुम्हें मरने का तनिक भी डर नहीं है। मेरी सहायता के बिना तुम इस जाल को नहीं काट सकते। अतएव यदि मुझे न मारो तो मैं इस जाल को काट दूँ। बहुत दिनों से तुम इस पेड़ के ऊपर रहते हो और मैं इसकी जड़ में रहता हूँ [इसलिए हम दोनों को एक दूसरे की सहायता करनी चाहिए]। जो किसी पर विश्वास नहीं करता और जिस पर कोई विश्वास नहीं करता वे दोनों गर्हित हैं। इसलिए हम दोनों में मेल रहना आवश्यक है। जिस काम का समय निकल जाता है उसके लिए उद्योग करना व्यर्थ है। सच्ची बात यह है कि इस समय हम दोनों को एक दूसरे की रक्षा करनी चाहिए। जैसे मनुष्य लकड़ी के सहारे बड़ी-बड़ी नदियों को पार करता है, जैसे मनुष्य लकड़ी को और लकड़ी मनुष्य को नदी के पार ले जाती है, वैसे ही हम दोनों के बीच सन्धि होने से दोनों का हित होगा। किन्तु पहले तुमको मेरा उद्धार करना होगा। ऐसी बहुतसी हितकर बातें ५० ६०

कहकर बुद्धिमान् चूहा उत्तर की प्रतीक्षा करने लगा। चतुर बिलाव ने अपने मतलब की बातें सुनकर और अपनी दुरवस्था पर विचार करके सन्धि कर लेना ठीक समझा। वह मन्द दृष्टि से चूहे की ओर देखकर बोला—सौम्य, तुम मेरी रक्षा करना चाहते हो इससे मैं तुमसे अत्यन्त सन्तुष्ट हूँ। यदि तुम मेल करने में अपना और मेरा भला समझते हो तो अब देर का क्या प्रयोजन है? इस समय हम दोनों घोर विपत्ति में हैं, अतएव झटपट सन्धि कर लेना
७० चाहिए। अब जाल को काट दो। छुटकारा हो जाने पर मैं तुम्हारे उपकार को न भूलूँगा। अधिक क्या कहूँ, मैंने अपना जीवन तुम्हें सौंप दिया। तुम मुझे अपना शिष्य, सेवक और शरणागत समझो। बिलाव की बातें सुनकर और उसे अपने अधीन समझकर चूहे ने कहा—मित्र, तुमने उदार भाव से जो बातें कही हैं वे तुम्हारी सज्जनता के अनुरूप ही हैं। अब मैं तुम्हारे हित का उपाय बतलाता हूँ, सुनो। न्योले को देखकर मैं बहुत डरता हूँ और पापी उल्लू भी मेरे प्राण लेने को उद्यत है, इसलिए मैं इस समय तुम्हारी गोद में बैठता हूँ। तुम मुझे खा न लेना। मैं शपथ खाकर कहता हूँ कि जाल को काटकर तुमको छुड़ा दूँगा।

चूहे की बातें सुनकर बिलाव ने प्रसन्नतापूर्वक मित्रभाव से सत्कार करके कहा—सौम्य, तुम झटपट मेरी गोद में बैठ जाओ। तुम मेरे प्राण-प्रिय मित्र हो। तुम्हारी कृपा से मुझे इस बन्धन से छुटकारा मिलेगा। इसके बाद तुम मुझसे जो कहोगे, मैं वही करूँगा। आओ, मेल कर लें। मैं इस संकट से छूटकर भाई-बन्धुओं सहित तुम्हारा हित और यथोचित सत्कार
८० करूँगा। बात यह है कि जिसके साथ उपकार किया जा चुका है वह तो उपकृत है, इसलिए प्रत्युपकार करता है; एक तो बदला फेरता है और दूसरा अकारण ही उपकार करता है।

इस प्रकार स्वार्थ के लिए सन्धि करके चूहा, अपने शत्रु बिलाव का विश्वास करके, माता-पिता की गोद के समान उसकी गोद में जा बैठा। बिलाव और चूहे की प्रीति देखकर उल्लू और न्योले को बड़ा आश्चर्य हुआ। अब उन्हें चूहे के मिलने की आशा न रही। वे दोनों बुद्धिमान् और बलवान् होने पर भी उस समय बिलाव और चूहे की नीति से पराजित हो गये। बिलाव और चूहे को अपने-अपने मतलब के लिए सन्धि करने में सफलमनोरथ जानकर वे अपने स्थान को चले गये। इसके बाद देश और काल का जाननेवाला वह पलित नामक चूहा, बिलाव की गोद से निकलकर, धीरे-धीरे जाल को काटने लगा। बन्धन में पड़ जाने से बिलाव बहुत दुखी था,
९० इसलिए चूहे को धीरे-धीरे जाल काटते देख घबराकर बोला—भाई, तुम्हारा काम तो हो गया, अब जाल को जल्दी क्यों नहीं काट देते? बहेलिया यहाँ आने को ही है।

इस पर बुद्धिमान् चूहे ने बिलाव से कहा—मित्र, तुम घबराओ मत। मैं समय का उपयोग करना भली भाँति जानता हूँ। मैं समय को हाथ से न जाने दूँगा। जो काम ठीक समय पर नहीं किया जाता उसका कोई फल नहीं होता। यथासमय काम करने पर उसका

फल मिलता है। यदि मैं समय से पहले तुमको बन्धन से छुड़ा दूँ तो मेरे लिए तुमसे खटका हो जायगा। अतएव तनिक ठहर जाओ। क्यों घबराते हो? अस्त्र लेकर बहेलिया के आने पर हम दोनों के लिए सङ्कट उपस्थित होगा। मैं उसी समय जाल काट दूँगा। तब तुम जाल से छूटकर डर के मारे जल्दी पेड़ पर चढ़ जाओगे और मैं भी बिल में घुस जाऊँगा। तुमको अपने जीवन की रक्षा के सिवा मुझसे और कुछ लाभ न होगा।

ये बातें सुनकर और चूहे को देर करते देखकर बिलाव ने कहा—मित्र! जिस तरह जल्दी से मैंने तुमको बचा लिया है, इस तरह झटपट मित्र का काम सज्जन भी नहीं कर देते। अतएव उसी तरह तुम्हें भी झटपट मेरा हित करना चाहिए। देर करने से हम दोनों के लिए खटका है। इसलिए मुझे जल्दी जाल से छुड़ा दो। यदि तुम पहले की शत्रुता का स्मरण करके देर करोगे तो तुम्हारी भी खैर नहीं। मैंने मूर्खता से तुम्हारा कोई अपकार किया हो तो इस समय उसे भूल जाओ। मैं क्षमा माँगता हूँ, मुझ पर कृपा करो। १००

चूहे ने कहा—भाई, हम दोनों ने अपने-अपने स्वार्थ के लिए एक दूसरे पर विश्वास किया है। किन्तु जिस मित्रता से कुछ आशङ्का है उसकी, साँप के मुँह में पड़े हुए हाथ के समान, सावधानी से रक्षा करनी चाहिए। बलवान् के साथ सन्धि करके अपनी रक्षा में असावधानी करने से, कुपथ्य करने के समान, वह सन्धि अनर्थ का कारण हो जाती है। दुनिया में न तो कोई किसी का स्वाभाविक शत्रु है और न मित्र; केवल कार्यवश एक दूसरे के शत्रु या मित्र हो जाते हैं। जिस तरह पालतू हाथी के द्वारा जङ्गली हाथी फँसाये जाते हैं उसी तरह स्वार्थ के द्वारा स्वार्थ की सिद्धि होती है। अपना स्वार्थ सिद्ध हो जाने पर कोई किसी की परवा नहीं करता। अतएव काम को अधूरा रहने दो। व्याध के आ जाने पर तुम डर के मारे मुझ पर आक्रमण न करके भागने का यत्न करोगे, इसलिए मैं उसी समय तुमको जाल से छुड़ाऊँगा। इस समय मैंने प्रायः सब रस्सियाँ काट डाली हैं, एक रस्सी बाक़ी है। उसे तुरन्त काट दूँगा। तुम निश्चिन्त बैठे रहो। १०

इस प्रकार दोनों में बातें होते-होते सबेरा हो गया। अब बिलाव के डर की सीमा न रही। कुछ देर बाद परिघ नाम का बहेलिया वहाँ आ पहुँचा। उसका रङ्ग काला था, भयावनी सूरत थी और उसके साथ बहुत से कुत्ते थे। उसके बड़े-बड़े कूल्हे और नुकीले कान थे; उसका मुँह डरावना और शरीर बहुत ही गन्दा था। साक्षात् यमदूत के समान उस बहेलिये को देखकर १२० बिलाव बहुत डर गया। वह चूहे से बोला—मित्र, अब क्या करोगे? तब चूहे ने जाल काट दिया। जाल से छूटते ही बिलाव झटपट पेड़ पर चढ़ गया और भयङ्कर शत्रु से छुटकारा पाकर चूहा भी बिल में घुस गया। क्षण भर बाद बहेलिया उस जाल के पास आया और चारों ओर देखने लगा। वह हताश हो जाल लेकर चला गया।

अब पेड़ की डाल पर बैठे हुए बिलाव ने चूहे को पुकारकर कहा—मित्र, मुझे कृतघ्न कहकर कोई मुझ पर सन्देह नहीं करता। तुमने विपत्ति के समय तो मेरा विश्वास किया और मुझे जीवन-दान दिया, किन्तु अब सुख के समय मेरे पास क्यों नहीं आते? जो पहले मित्रता करके फिर उसका निर्वाह नहीं करता उसे, विपत्ति के समय, मित्र नहीं मिलते। तुमने भरसक मेरा उपकार किया है। तुम मेरे परम मित्र हो, इसलिए मित्रभाव से मेरे पास आकर सुख भोगो। जिस तरह शिष्यगण अपने गुरु का सम्मान करते हैं उसी तरह मेरे भाई- ३० बन्धु तुम्हारी आवभगत करेंगे। मैं भी तुम्हारा और तुम्हारे सजातीयों का सत्कार करूँगा। कौन कृतज्ञ व्यक्ति अपने प्राणदाता का सम्मान न करेगा? तुम मेरे शरीर, घर और मेरी सभी वस्तुओं के मालिक हो। मन्त्री के पद पर रहकर मुझ पर पिता के समान शासन करो। मैं अपने जीवन की शपथ करके कहता हूँ कि तुमको मुझसे तनिक भी डर नहीं है। तुमने सलाह देकर मेरी रक्षा की है। मैं तुमको शुक्राचार्य के समान बुद्धिमान् समझता हूँ।

बिलाव की चिकनी-चुपड़ी बातें सुनकर बुद्धिमान् चूहे ने कहा—मित्र, मैंने तुम्हारी बातें सुन लीं। तुम्हारा कहना बहुत ठीक है। अब मेरा उत्तर भी सुन लो। शत्रु और मित्र दोनों की परीक्षा करनी चाहिए; किन्तु यह काम बड़ी बुद्धिमानी से होता है। कभी शत्रु लोग मित्र हो जाते हैं और कभी मित्र शत्रु का काम कर बैठते हैं। जिनके साथ सन्धि कर ली गई है उनके मन की बात को कौन जान सकता है? क्योंकि दुनिया में न तो मित्रों की कोई जाति है और न शत्रुओं का सम्प्रदाय ही। केवल प्रयोजनवश शत्रु और मित्र हो जाते हैं। जिसके जीवित रहने से जिसका स्वार्थ सिद्ध होता है और जिसके मरने से जिसकी १४० विशेष हानि होती है वही उसका परम मित्र है। न तो मित्रता अधिक दिनों तक निभती है और न शत्रुता ही बहुत दिनों तक टिकती है। मौक़ा पड़ने पर स्वार्थ के लिए शत्रु तो मित्र हो जाते हैं और मित्र शत्रुता कर बैठते हैं। इसलिए स्वार्थ को ही मित्रता और शत्रुता का प्रधान कारण समझना चाहिए। जो लोग मित्र पर पूरा-पूरा विश्वास और शत्रु पर अविश्वास करते

हैं किन्तु स्वार्थ की परवा न करके मित्र और शत्रु के साथ सन्धि करते हैं वे बुद्धिमान् नहीं कहलाते। अविश्वासी व्यक्ति पर कभी विश्वास न करे और विश्वस्त व्यक्ति पर भी पूर्णतया विश्वास न कर ले; क्योंकि विश्वास करने से ऐसी आपत्ति आ सकती है जिससे सर्वस्व नष्ट हो जाय। माता, पिता, मामा, भानजा और अन्यान्य भाई-बन्धु सभी अपना स्वार्थ चाहते हैं। संसार में सभी अपनी रक्षा की धुन में रहते हैं। पुत्र के पतित हो जाने पर उसके माता-पिता, समाज में अपनी प्रतिष्ठा बचाने के लिए, प्रिय पुत्र का त्याग कर देते हैं। स्वार्थपरता ऐसी ही होती है।

अब तुम जाल से छूट गये हो। तुम्हारा स्वार्थ सिद्ध हो चुका। तुम बहुत ही चञ्चल हो। चञ्चल व्यक्ति, दूसरों की रक्षा तो दूर रही, अपनी रक्षा करने में भी सावधान नहीं रहता। तुम अपनी चपलता के कारण बरगद से उतरकर यहाँ पर बिछे हुए जाल को भी नहीं देख सके। चपल स्वभाववाले जीवों की बुद्धि स्थिर नहीं रहती, इसी से हमेशा उनके काम चौपट हो जाते हैं। अब तुम मीठी-मीठी बातें करके मुझे प्रलोभन देते हो, यह तुम्हारा भ्रम है। मैं जिस कारण इसे भ्रम कहता हूँ उसे भी सुनो। बिना कारण के कोई प्रिय या अप्रिय नहीं होता। संसार में सभी प्राणी स्वार्थ के साथी हैं, इसलिए कोई किसी का प्रिय नहीं है। सगे भाइयों और पति-पत्नी में भी निस्स्वार्थ प्रीति नहीं होती। यद्यपि पति-पत्नी और सगे भाइयों में कभी-कभी कारणवश मनोमालिन्य हो जाता है और वे फिर स्वाभाविक प्रेम की शृङ्खला में बँध जाते हैं, किन्तु जिससे कोई सम्पर्क नहीं है उसके साथ विरोध हो जाने पर फिर प्रीति होना असम्भव है। कोई दान से, कोई प्रिय वचनों से, कोई मन्त्रपाठ से और कोई होम या जप से दूसरों का प्रिय हो जाता है। सारांश यह कि संसार में जिससे किसी प्रकार का स्वार्थ सधता है उसी से प्रीति होती है। बिना कारण प्रीति नहीं होती। मेरी और तुम्हारी मित्रता भी विशेष कारण से हुई थी। किन्तु अब जो मेरे साथ तुम प्रीति दिखला रहे हो, इसका क्या कारण है? मुझे खा लेने के सिवा और कोई कारण तुम्हारी इस प्रीति का नहीं मालूम होता; किन्तु तुमसे बचने के लिए मैं भी सावधान रहता हूँ। ५०

समय के द्वारा कारण की उत्पत्ति होती है। कारण कभी स्वार्थहीन नहीं होता। जो उस स्वार्थ का ध्यान रखता है वही बुद्धिमान् है और वही संसार में अपना निर्वाह कर सकता है। मैं स्वार्थ को भली भाँति समझता हूँ, इसलिए मुझसे इस तरह की बातें करना तुम्हें उचित नहीं। तुम बे-मौक़े मेरे साथ प्रेम दिखला रहे हो, अतएव मैं अपने स्थान से नहीं टल सकता। मैं सन्धि और विग्रह के विषय को अच्छी तरह जानता हूँ। जैसे बादल का स्वरूप प्रतिक्षण बदला करता है वैसे ही तुम्हारा भाव भी बदल रहा है। तुम अभी मेरे शत्रु थे और अभी-अभी मित्र हुए हो, इसलिए तुम्हारी शत्रुता या मित्रता का क्या भरोसा? जब तक मेरा और तुम्हारा स्वार्थ था तब तक दोनों में मित्रता थी, किन्तु अब उस स्वार्थ के साथ ही मित्रता भी जाती रही। तुम मेरे १६०

स्वाभाविक शत्रु हो, कार्य-वश मित्र हुए थे। अब उस काम के सिद्ध हो जाने पर तुम फिर शत्रु हो। बतलाओ तो सही, मैं इस प्रकार नीति का जानकार होकर भी तुम्हारे लिए जाल में क्यों फँसता। तुम्हारे प्रभाव से मेरे प्राण बच गये और मैंने तुम्हारे प्राण बचा दिये। अपने-अपने स्वार्थ के लिए मित्रता कर ली थी। अब तुम्हारे साथ मेरी मित्रता कैसे निभ सकती है? मैं जानता हूँ कि मुझे खा लेने के सिवा तुम्हारा और कोई प्रयोजन नहीं है। मैं भक्ष्य हूँ, तुम भक्षक हो, मैं दुर्बल हूँ और तुम बलवान् हो, तो भला मेरी और तुम्हारी सन्धि कैसे हो सकती है? इस समय तुम जाल से छूट चुके हो, अब मुझे खा जाने के लिए ही लल्लो-चप्पो कर रहे हो। तुम भूखे थे, इसी से खाने के लिए जाकर जाल में फँस गये थे। अब जाल से छूटने पर तुम्हारी भूख और भी बढ़ गई है। यह तुम्हारे भोजन करने का समय है, इसी लिए मुझे खा

१७० जाना चाहते हो। यदि तुम मुझे खाना न भी चाहो तो भी तुम्हारे साथ सन्धि करना और तुम्हारे मुँह से अपनी प्रशंसा सुनना मेरे लिए युक्तिसङ्गत नहीं। तुम्हारे पुत्र और स्त्री सभी कोई हैं और वे तुम्हें परम प्रिय हैं। मुझे देखकर भला वे क्यों खाने से चूकेंगे? इसलिए मैं तुमसे कोई वास्ता नहीं रक्खूँगा। हमारी-तुम्हारी मित्रता का समय निकल गया। यदि तुम मेरे कृतज्ञ हो तो मेरे साथ भलाई करो। जो शत्रु भूख से व्याकुल होकर भोजन ढूँढ़ रहा हो उसके पास बुद्धिमान् व्यक्ति क्योंकर जा सकता है? तुम्हारा भला हो, अब मैं जाता हूँ। तुमको दूर से देखने पर भी मैं डर जाता हूँ, इसलिए तुम्हारे साथ मेरा कोई सम्बन्ध नहीं रह सकता। तुम इसका उद्योग भी न करो। यदि तुम कृतज्ञ रहना चाहते हो तो मित्रता निभाना [मेरी असावधानी में कभी मुझपर हमला न कर बैठना]। बलवान् से निर्बल की मित्रता अच्छी नहीं होती। भय का कोई कारण न होने पर भी बलवान् से हमेशा चौकन्ना रहना चाहिए। इस समय यदि मुझसे तुम्हारा और कोई प्रयोजन हो तो बतलाओ, मैं उसे पूरा करने के लिए भरसक उद्योग करूँगा। मैं आत्म-समर्पण के अतिरिक्त और सब काम करने को तैयार हूँ। संसार में अपनी रक्षा के लिए पुत्र, स्त्री, राज्य और धन आदि सब कुछ त्याग दिया जाता है। आत्म-रक्षा के लिए धन-धान्य आदि सब वस्तुएँ शत्रु को दे दी जाती हैं। जीवित रहने पर वे सब फिर प्राप्त हो सकती हैं; किन्तु आत्म-समर्पण कर देने पर धन-रत्न की तरह फिर जीवन का

१८० मिलना असम्भव है। शास्त्र का वचन है कि स्त्री और सम्पूर्ण धन देकर भी आत्म-रक्षा करनी चाहिए। जो आत्म-रक्षा में तत्पर रहता है और सोच-समझकर काम करता है वह कभी अपनी भूल से विपत्ति में नहीं पड़ता। जो निर्बल व्यक्ति अपने शत्रु का बल जानता रहता है उसकी पैनी बुद्धि कभी विचलित नहीं होती।

चूहे की यह फटकार सुनकर बिलाव बड़ा लज्जित हुआ। वह कहने लगा—मित्र, मैं शपथ खाकर कहता हूँ कि तुम्हारा कुछ अनिष्ट न करूँगा। मित्र-द्रोह करना बड़ा निन्द्य है।

तुमने मेरे साथ जो भलाई की है वह मुझे अच्छी तरह याद है। अब मैं तुम्हारा अनिष्ट करना चाहता हूँ, ऐसा सन्देह करना तुम्हें उचित नहीं। तुमने मेरी रक्षा की है, इसलिए तुम्हारे साथ मेरी मित्रता है। मैं धर्मात्मा, गुणवान्, कृतज्ञ और मित्रवत्सल हूँ, विशेषकर इस समय तो तुम्हारा भक्त हूँ। इसलिए यह कैसे हो सकता है कि मैं तुम्हारा अहित करूँ? तुम्हारी आज्ञा से मैं अपने भाई-बन्धुओं सहित प्राण तक देने को तैयार हूँ। अतएव मेरे समान मनस्वी व्यक्ति पर तुम्हें विश्वास कर लेना चाहिए। तुम मुझपर किसी तरह का सन्देह न करो।

विलाव की स्तुति सुनकर चूहा कुछ गम्भीर होकर बोला—लोमश, तुम सज्जन हो। ९० तुम्हारी बातें मैंने ध्यान से सुन लीं। किन्तु [पण्डितों का कहना है कि] अत्यन्त प्रिय व्यक्ति पर भी विश्वास न करना चाहिए। इसलिए चाहे तुम मेरी स्तुति करो, चाहे धन दो, किन्तु मैं किसी तरह तुम्हारा विश्वास नहीं कर सकता। बुद्धिमान् लोग काम निकल जाने पर शत्रु के वशीभूत नहीं होते। इस विषय में शुक्राचार्य की राय सुनो। बलवान् शत्रु के साथ सन्धि करके हमेशा सावधान रहे और काम निकल जाने पर कभी उसका विश्वास न करे। अविश्वासी पर तो कभी किसी तरह विश्वास न करे; किन्तु विश्वस्त पर भी अति विश्वास करना ठीक नहीं। दूसरों पर तो अपना विश्वास जमा दे; किन्तु स्वयं किसी का विश्वास न करे। किसी पर पूरा विश्वास न करके हमेशा अपनी रक्षा करता रहे। आत्मरक्षा कर सकने पर धन और पुत्र आदि सब कुछ मिल सकता है। दूसरों पर विश्वास न करना ही नीतिशास्त्रों का मत है। किसी पर पूरा विश्वास न रखकर काम करने पर अपना प्रयोजन सिद्ध होता है। जो किसी पर विश्वास नहीं करता वह निर्बल होने पर भी शत्रुओं के चङ्गुल में नहीं आता और जो सभी पर विश्वास करता है उस बलवान् को भी निर्बल शत्रु मार लेता है। हे मार्जार, तुम मेरे शत्रु हो। तुमसे मुझे अपनी रक्षा करनी चाहिए और तुमको भी बहेलिये से अपना बचाव करते रहना चाहिए। चूहे के यह कहने पर बिलाव, बहेलिये के भय से, उस डाल को छोड़कर भाग गया। २०० बुद्धिमान् चूहा भी बिल में घुस गया।

हे धर्मराज, निर्बल होने पर भी बुद्धिमान् चूहे ने अपनी बुद्धि के बल से अनेक बलवान् शत्रुओं से अपने को बचा लिया था। इसी लिए बुद्धिमान् मनुष्यों को बलवान् शत्रु से सन्धि कर लेनी चाहिए। देखो, चूहा और बिलाव परस्पर सन्धि करके एक दूसरे की सहायता से कैसी ख़ूबी से बच गये। यह दृष्टान्त देकर मैंने विस्तारपूर्वक क्षत्रियधर्म का वर्णन किया है, अब उसी को संक्षेप में सुनो। जो एक बार शत्रुता करके फिर मित्रता करना चाहे उसका उद्देश्य धोखा देना ही है। उनमें जो मनुष्य बुद्धिमान् होता है वही अपनी चतुराई से दूसरे को धोखा दे सकता है और जो मूर्ख होता है वह अपनी असावधानी से ठगा जाता है। अतएव डरता हुआ भी निडर के समान और विश्वास न करता हुआ भी विश्वस्त की तरह व्यवहार करे।

जो व्यक्ति सदा इस तरह सावधान रहता है वह कभी धोखा नहीं खाता और यदि धोखा खा भी जाता है तो जोखिम नहीं उठाता। आवश्यकता पड़ने पर शत्रु के साथ सन्धि कर ले और समय के अनुसार मित्र से भी भिड़ जाय। सन्धि और विग्रह के जानकारों का यही सिद्धान्त है। महाराज, नीतिशास्त्र की बातों पर ध्यान रखकर भय आने के पहले ही प्रसन्नता से भयभीत सा हो जावे; और दूसरों के साथ मेल करे। सावधानी और भय से सूक्ष्म बुद्धि उत्पन्न होती है। जो १० मनुष्य भय उत्पन्न होने के पहले ही डरा रहता है उसके पास कभी भय नहीं आता और जो बेधड़क सबका विश्वास करता है उसे सदा भय की आशङ्का रहती है। जो मनुष्य [अपने को बुद्धिमान् समझकर] निर्भय रहता है वह दूसरों की सलाह नहीं सुनता और जो भयभीत रहता है वह मूर्खतावश पण्डितों के पास हमेशा जाया करता है। अतएव बुद्धिमान् मनुष्य डरता हुआ भी निर्भय के समान रहता है और अविश्वासी मनुष्य के प्रति भी विश्वास दिखलाता है। वह भारी कामों का बोझ लद जाने पर भी किसी के साथ मिथ्या व्यवहार नहीं करता।

हे युधिष्ठिर, मैंने प्राचीन नीतिशास्त्र के मर्मज्ञों का यह मत और चूहे तथा बिलाव का प्राचीन इतिहास कह सुनाया। इसे हृदयङ्गम करके तुम इसके अनुसार काम करो और शत्रु-मित्र का भेद, सन्धि-विग्रह का अवसर तथा विपत्ति से बचने का उपाय सोचो। बलवान् शत्रु से यदि किसी काम के सिद्ध होने की आशा हो तो उसके साथ सन्धि करके सावधानी से अपना काम निकाल ले और काम के सिद्ध हो जाने पर फिर उसका विश्वास न करे। यह नीति धर्म, अर्थ और काम के अनुकूल है। तुम इसके अनुसार चलकर अपनी उन्नति और प्रजा का पालन करो। ब्राह्मणों से सदा हेल-मेल रखना। ब्राह्मण लोग—इस लोक और परलोक—दोनों लोकों में कल्याण करते हैं। वे धर्मज्ञ, कृतज्ञ और सबके शुभचिन्तक होते हैं, अतएव ब्राह्मणों का हमेशा सम्मान करना। उनकी कृपा से राज्य, धन, कीर्ति और सन्तान की प्राप्ति होती है। मैंने जो बिलाव और चूहे का संवाद सुनाया है इससे सन्धि-विग्रह का ज्ञान और विशेष २२१ बुद्धि उत्पन्न होती है। बुद्धिमान् राजा शत्रुओं के साथ इसी के अनुसार व्यवहार करे।

एक सौ उन्तालीस अध्याय

राजा ब्रह्मदत्त और पूजनी चिड़िया का संवाद

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह! आप कहते हैं कि किसी का, विशेषकर शत्रु का, विश्वास करना उचित नहीं। यदि किसी का विश्वास न किया जाय और विश्वास करने से ही यदि महाभय उपस्थित होता है तो राजा किस तरह राज्य की रक्षा और किस तरह शत्रु को पराजित करे? आपके मुँह से किसी पर विश्वास न करने की बात सुनकर मुझे बड़ा सन्देह हुआ है। आप मेरे इस सन्देह को दूर कीजिए।

भीष्म कहते हैं—हे धर्मराज! पूजनी नाम की चिड़िया से राजा ब्रह्मदत्त की जो बातें हुई थीं उनको सुनो। काम्पिल्य नगर में ब्रह्मदत्त नाम का एक राजा था। उसके रनिवास में बहुत दिनों से पूजनी नाम की चिड़िया रहती थी। यह चिड़िया, बहेलिये की तरह, सब प्राणियों का स्वर पहचानती थी। सारांश यह कि पूजनी, चिड़िया होने पर भी, सर्वज्ञ थी। कुछ दिनों बाद उसी रनिवास में पूजनी ने एक बच्चा दिया। जिस दिन पूजनी ने बच्चा दिया था उसी दिन रानी के भी पुत्र पैदा हुआ। कृतज्ञ पूजनी, अपने बच्चे के समान, राजकुमार पर भी स्नेह करती थी और प्रतिदिन समुद्र-किनारे जाकर, बच्चों का बल बढ़ानेवाले, अमृत के समान स्वादिष्ट दो फल ले आती थी। उनमें से एक तो वह अपने बच्चे को और दूसरा राजकुमार को देती थी। उस फल को खाकर राजकुमार दिन-दिन बढ़ने लगा। १०

एक दिन दाई राजकुमार को गोद में लिये हुए घूम रही थी। इतने में राजकुमार ने उस चिड़िया के बच्चे को देखा और पास जाकर उसे उठा लिया। राजकुमार उस बच्चे के साथ खेलने लगा। अन्त में उसे उछाल-उछालकर राजकुमार ने मार डाला। इसके बाद वह दाई के पास चला आया। उसी समय पूजनी फल लेकर राजमहल में आई। उसने देखा कि उसके बच्चे को राजकुमार ने मार डाला है। बच्चे को मरा देखकर पूजनी को बेहद दुःख हुआ। उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बह चली। उसने रोते-रोते कहा कि न तो क्षत्रियों का साथ करना चाहिए और न उनसे मित्रता करनी चाहिए। वे लोग अपने काम के समय तो दिलासा देते हैं और काम निकल जाने पर धता बता देते हैं। अतएव क्षत्रियों का कभी विश्वास न करना चाहिए। लोगों के साथ बुराई करके भी वे उन्हें झूठमूठ दिलासा देते रहते हैं। जो हो, आज मैं भी इस कृतघ्न, नृशंस और विश्वासघातक राजकुमार से बदला लूँगी। मेरा बच्चा इसी राजकुमार के जन्म के दिन पैदा हुआ, इसी के साथ बड़ा हुआ, इसी के साथ खाता और इसी के आश्रय में रहता था। इस दुष्ट ने उसे मारकर तिगुना पाप किया है। यह कहकर पूजनी ने उसी दम अपने पञ्जों से राजकुमार की आँखें फोड़ दीं। फिर वह आकाश २० में उड़कर कहने लगी—जो मनुष्य अपनी इच्छा से पाप करता है उसका पाप शीघ्र ही उस पर आ गिरता है और जो किसी के अनिष्ट करने पर उसका बदला लेता है तो उसे कोई पाप नहीं लगता। यदि पाप करने का फल उस पापी मनुष्य को नहीं मिल जाता तो उसके पुत्र, पौत्र और नाती को निस्सन्देह उस पाप का फल भोगना पड़ता है।

महाराज ब्रह्मदत्त ने अपने पुत्र की फूटी हुई आँखें देखकर, और यह विचारकर कि पूजनी ने पहले अपकृत होने पर फिर बदला लिया है, उससे कहा—पूजनी, मेरे पुत्र ने पहले तुम्हारा अपकार किया है फिर तुमने उसका बदला लिया है, इसलिए तुम दोनों का अपराध बराबर है। अब तुम यहीं रहो, अन्यत्र जाने की ज़रूरत नहीं।

पूजनी ने कहा—महाराज, जो कोई एक वार किसी का अपराध करके फिर उसी की बातों में आ जाता है उसकी पण्डित लोग निन्दा करते हैं। अतएव जिसका अप-

कार करे उसके पास से हट जाना ही भला है। जिसके साथ शत्रुता की गई है वह कितनी ही प्रिय बातें क्यों न करे, किन्तु कभी उस पर विश्वास न करे। जो मूर्ख ऐसी बातों पर विश्वास करता है वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है, क्योंकि शत्रुता की जड़ कटना कठिन है। शत्रुता होने पर झगड़े खड़े हो जाते हैं, झगड़े में पुत्र-पौत्र तक मारे जाते हैं और पुत्र-पौत्रों के नष्ट हो जाने पर परलोक की प्राप्ति का कोई उपाय नहीं रह जाता। इसलिए एक बार शत्रुता हो जाने पर फिर परस्पर विश्वास कर लेने से सुख नहीं मिलता। अविश्वासी मनुष्य पर कभी विश्वास न करना चाहिए और विश्वस्त मनुष्य पर भी पूरा विश्वास करना ठीक नहीं। क्योंकि विश्वास कर लेने से सर्वस्व का नाश हो जाने की आशङ्का रहती है। अतएव बुद्धिमान् मनुष्य दूसरों को तो अपना विश्वास करा दे किन्तु स्वयं किसी का विश्वास न करे। संसार में माता और पिता बान्धवों में श्रेष्ठ हैं और आत्मा सुख-दुःख का भोगनेवाला है। वीर्य को हर लेने से स्त्री बुढ़ापा ला देती है तथा पुत्र, भाई और मित्र धन का हरण करनेवाले होते हैं; इसलिए ये सब ३० स्वार्थी हैं। एक बार विरोध हो जाने पर फिर मेल करना उचित नहीं। मैं जिस कारण यहाँ रहती थी, अब वह नहीं रहा। किसी का अपकार करके फिर धन और सम्मान के लोभ से उसका विश्वास न करना चाहिए। बलवान् मनुष्यों का काम देखकर निर्बल डरने लगते हैं। जिस स्थान पर पहले सम्मान और फिर अपमान हुआ हो उसे बुद्धिमान् व्यक्ति त्याग दे। मैं बहुत दिनों से आपके यहाँ आदर के साथ रहती आई हूँ। किन्तु इस समय आपके साथ मेरा विरोध हो गया है, इसलिए अब मैं यहाँ न रहूँगी।

ब्रह्मदत्त ने कहा—पूजनी, अपकारी के साथ अपकार करनेवाला अपराधी नहीं होता प्रत्युत ऐसा करने पर अपकारी ऋण से मुक्त हो जाता है। इसलिए तुम यहीं रहो।

पूजनी ने कहा—महाराज, अपकारी से बदला चुका लेने पर फिर उसके साथ मित्रता नहीं हो सकती। क्योंकि अपकार करनेवाले और बदला लेनेवाले दोनों के ही हृदय में अपकार की याद बनी रहती है।

ब्रह्मदत्त ने कहा—पूजनी, परस्पर विरोध होने के बाद प्रायः सन्धि हो जाती है और पुराना विरोध भी मिट जाता है। ऐसी सन्धि से किसी का अपकार भी नहीं होता।

पूजनी ने कहा—महाराज, शत्रुता कभी मिट नहीं सकती। शत्रु की मीठी-मीठी बातों में भूलकर कभी उसका विश्वास न करे। विश्वास करने से वह नष्ट हो जाता है। अतएव अब यही अच्छा है कि न आप मुझे देखें और न मैं आपको देखूँ। तीक्ष्ण अस्त्र-शस्त्र के प्रहार से जो बलपूर्वक परास्त नहीं किया जा सकता वह भी सन्धि के द्वारा, हाथी से हाथी के समान, सरलता से वश में किया जा सकता है।

ब्रह्मदत्त ने कहा—पूजनी, एक साथ रहने से हत्यारे शत्रु पर भी स्नेह का भाव हो जाता है; कुत्ता और बहेलिये के समान परस्पर विश्वास उत्पन्न हो जाता है। वैरभाव भी ४० कमल के पत्ते पर स्थित जल के समान देर तक नहीं ठहरता।

पूजनी ने कहा—राजन्! स्त्री, घर आदि वासस्थान, कठोर वचन, अपराध और जाति-वैर इन पाँचों को पण्डित लोग शत्रुता का कारण बताते हैं। दानी के साथ शत्रुता हो जाने पर, प्रकट रूप से अथवा अप्रकट रूप से दोष के बलाबल पर विचार करके, उसका विनाश क्षत्रिय न करे। मित्र के साथ विरोध हो जाने पर उसका भी विश्वास न करे। वैर की आग ईंधन में आग के समान और समुद्र के गर्भ में स्थित बड़वानल के समान छिपी रहती है। धन के देने से, मीठी बातें करने से, कठोर वचन कहने या शास्त्र के ज्ञान से वह शान्त नहीं की जा सकती। सारांश यह कि वैर की आग, जल उठने पर, एक पक्ष को भस्म किये बिना शान्त नहीं होती। बुराई करनेवाले को धन और मान देकर सन्तुष्ट भले ही करे पर उसका विश्वास कभी न करे, उसका किया हुआ अपकार मन को बेचैन करता रहता है। इसके सिवा यदि दूसरा कोई मेरा या आपका अपकार करने को उद्यत होगा तो हम लोग एक दूसरे की सहायता भी नहीं करेंगे। आपका विश्वास करके मैं आपके घर में रहती थी। अब मुझे आपका विश्वास नहीं है।

ब्रह्मदत्त ने कहा—पूजनी, समय के प्रभाव से ही सब काम होते हैं। अतएव किसी काम के लिए कोई किसी का अपराधी नहीं। समय के प्रभाव से ही सब प्राणियों का जन्म होता और उसी के प्रभाव से सबकी मृत्यु होती है। संसार में बहुत से जीव एक साथ ५० और बहुत से अलग-अलग मरते रहते हैं। जैसे आग लकड़ी को जला देती है वैसे ही काल जीवों को लगातार भस्म किया करता है। इसलिए न तो तुम मेरे दुःख-सुख का कारण हो और न मैं तुम्हारे ही दुःख-सुख का कारण हूँ। दुःख-सुख का विधाता काल ही है। तुम

मुझ पर स्नेह रखकर अपनी इच्छा से यहीं पर रहो। मैं तुम्हारा कोई अपकार न करूँगा। तुम्हारा अपराध मैंने क्षमा किया। तुम भी मेरे अपराध को भुला दो।

पूजनी ने कहा—महाराज, यदि काल को ही सब कामों का कारण मान लिया जाय तो फिर भाई-बन्धुओं के मरने पर प्राणी क्यों शोक करते हैं? यदि काल ही सुख-दुःख और जय-पराजय का कारण है तो देवताओं और दैत्यों में क्यों संग्राम हुआ था? यदि समय के ही आने पर मनुष्य नीरोग हो सकता तो चिकित्सक लोग क्यों रोगी के लिए औषध तैयार करते? यदि काल ही सब कामों का कारण है तो मनुष्य शोक से पीड़ित होकर क्यों रोते हैं और पाप करनेवालों को पाप का फल क्यों भोगना पड़ता है? फिर तो शास्त्रों का कुछ प्रयोजन ही नहीं। महाराज, आपके पुत्र ने मेरे बच्चे को मार डाला इसलिए मैंने आपके पुत्र की आँखें फोड़ दीं। अब आप मौका पाकर मुझे मार डालेंगे। मैंने पुत्र के शोक से व्याकुल होकर आपके पुत्र की आँखें फोड़ी हैं। अब आप जिस कारण मुझे मारना चाहते हैं वह भी सुन लीजिए। मनुष्य खाने और खेलने के लिए चिड़ियों को पकड़ते हैं। मारने या बँधुआ करने के सिवा मनुष्यों का ६० उनसे और कोई प्रयोजन नहीं। कुछ लोग वध और बन्धन के डर से घर-द्वार छोड़कर दुनियादारी से अलग हो जाते हैं; क्योंकि जन्म-मरण का दुःख बड़ा भयङ्कर होता है। प्राण और पुत्र सभी को प्यारे होते हैं। दुःख में सभी घबराते और सुख पाने की आशा करते हैं। बुढ़ापे से, धन का नाश होने से, अनिष्ट के संयोग और इष्ट के वियोग से दुःख उत्पन्न होता है। स्त्री और पुत्र के वियोग के दुःख से तथा वध-बन्ध से मनुष्य दुखी होते हैं। बहुत से मूर्ख लोग दूसरे के दुःख को दुःख ही नहीं समझते। जिसने कभी दुःख नहीं उठाया वह दूसरों के दुःख को क्या जाने; किन्तु जिसने दुःख का अनुभव कर लिया है और जो दूसरों के दुःख को भी अपने दुःख के समान समझता है वह दूसरों को दुखी देखकर चिन्तित हुए बिना नहीं रह सकता।

महाराज, मैंने आपके साथ और आपने मेरे साथ जो अपकार किया है वह सौ वर्ष के बाद भी नहीं भुलाया जा सकता। अब किस प्रकार परस्पर मेल रह सकता है? पुत्र की याद आते ही आपका वैर ताज़ा हो उठेगा। एक बार शत्रुता करके फिर उसके साथ की हुई सन्धि, टूटे हुए मिट्टी के बर्तन के जोड़ के समान, नष्ट हो जाती है। स्वार्थी लोग अविश्वास को ही सुख ७० का कारण मानते हैं। शुक्राचार्य ने प्रह्लाद से कहा था कि जो मनुष्य शत्रु के कहने पर विश्वास कर लेता है वह, शत्रु के दिखलाये हुए मधु के लोभ से सूखी घास से ढके हुए गड्ढे में गिरे हुए मधु-लोभी के समान, शीघ्र नष्ट हो जाता है। अनेक स्थानों में वंशपरम्परागत शत्रुता देखी गई है। दो मनुष्य परस्पर शत्रुता करके जब मर जाते हैं तब अन्यान्य लोग उन दोनों के पुत्र-पौत्रों को भी उस शत्रुता में प्रवृत्त होने के लिए उत्तेजित कर देते हैं। राजा लोग प्रायः शत्रुओं के साथ सन्धि करके और दिलासा देकर अन्त को, पत्थर से तोड़ दिये गये घड़े के समान, उन्हें

चूर्ण कर डालते हैं। किसी का अपकार करके राजा उसका विश्वास न करे। किसी का अपकार करके फिर उस पर विश्वास कर लेने से अवश्य दुःख उठाना पड़ता है।

ब्रह्मदत्त ने कहा—पूजनी, विश्वास के बिना संसार का कोई काम सिद्ध नहीं होता और निरन्तर भय बना रहे तो अविश्वासी मनुष्य मुर्दे के समान हो जायँ।

पूजनी ने कहा—महाराज! जिसके दोनों पैरों में घाव हैं वह चाहे जितनी सावधानी से दौड़े, किन्तु उसके घावों में चोट अवश्य लगेगी। जिसकी आँखों में पीड़ा है वह यदि वायु की ओर आँखें खोलेगा तो निस्सन्देह उसकी आँखों की पीड़ा बढ़ जायगी। जो मनुष्य अपने बल को न समझकर कुमार्ग पर चलता है वह अवश्य नष्ट हो जाता है। जो किसान वर्षा का समय न देखकर खेत को जोतता है वह कभी अन्न पैदा करने में समर्थ नहीं हो सकता। जो मनुष्य प्रतिदिन स्वास्थ्य पर दृष्टि रखकर तीखे, कड़वे, मीठे स्वादिष्ट भोजन करता है वह भोजन अमृत के तुल्य होता है और जो मनुष्य पथ्यापथ्य का विचार न करके मूर्खता से मनमाना खाता-पीता है वह शीघ्र काल का ग्रास हो जाता है। भाग्य और उद्योग दोनों एक दूसरे के आश्रित हैं। अच्छे स्वभाव के मनुष्य उद्योग को श्रेष्ठ मानते हैं और ओछे मनुष्य भाग्य को बलवान् समझकर उसी के भरोसे रहते हैं। जिस काम के करने से अपना हित होता हो, वह सहज हो या कठिन, उसका करना परम आवश्यक है। निकम्मा मनुष्य हमेशा अनर्थों से घिरा रहता है, इसलिए भाग्य का भरोसा न करके उद्योग करना ही श्रेष्ठ है। मनुष्य सर्वस्व त्यागकर अपने हित का काम करे। विद्या, शूरता, निपुणता, बल और धैर्य ये पाँच, मनुष्यों के स्वाभाविक मित्र हैं। इन्हीं की बदौलत संसार में सुख मिल सकता है। बुद्धिमान् मनुष्य जहाँ रहता है वहीं घर, ताँबा आदि धातुएँ, खेत, स्त्री और मित्र पैदा कर लेता है। वह न किसी से डरता है और न किसी को डराता है। कार्यनिपुण बुद्धिमान् मनुष्य के पास थोड़ा धन भी होता है तो वह उसे बढ़ा लेता है। कार्यकुशल न होने से धन की वृद्धि होना असम्भव है। जो बुद्धिहीन मनुष्य घर के स्नेह में फँसा रहकर बाहर जाने की इच्छा नहीं करता वह कर्कशा स्त्री के दोष से वैसे ही दुखी होता है, जैसे केकड़े की स्त्री अपने गर्भ के कारण नष्ट हो जाती है। कोई-कोई मनुष्य [विदेश में जाकर] अपनी बुद्धि के दोष से घर, खेत, मित्र और देश की याद करके दुखी होते हैं। स्वदेश में रोग फैलने या दुर्भिक्ष पड़ने पर विदेश को चला जाना और वहाँ समाज में सम्मानित होकर रहना सभी प्राणियों का कर्त्तव्य है। अब मैं भी इस स्थान को छोड़कर और कहीं चली जाऊँगी। मैंने तुम्हारे पुत्र का अनिष्ट किया है, इसलिए अब यहाँ नहीं रहना चाहती। कुभार्या, कुपुत्र, कुराजा, कुमित्र, कुसम्बन्ध और कुदेश को सर्वथा त्याग दे। कुपुत्र पर विश्वास और कुभार्या पर प्रेम नहीं होता। कुराज्य में सुख नहीं मिलता और कुदेश में जीविका नहीं मिलती।

८०

९०

कुमित्र की मित्रता स्थिर नहीं रहती और धन न होने पर कुसम्बन्ध से अनादर होता है। प्रियवादिनी भार्या ही भार्या है; पुत्र वही है जिससे सुख मिले; विश्वासपात्र मित्र ही वास्तविक मित्र है; देश वही है जिसमें सुख से निर्वाह हो और वही यथार्थ राजा है जो कि न तो प्रजा को भयभीत करता और न उसके साथ ज़बर्दस्ती करता है तथा जो दरिद्रता से उसकी रक्षा करता है; जो राजा धर्मात्मा और गुणवान् होता है उसकी प्रजा—पुत्र, स्त्री और बन्धु-बान्धवों सहित—सुख से देश में रहती है। अधर्मी राजा की प्रजा बँधुआ की तरह रहती और शीघ्र नष्ट हो जाती है। प्रजा के धर्म, अर्थ और काम का मूल राजा है इसलिए वह सावधानी से प्रजा का पालन करे। जो राजा, प्रजा के उपार्जित धन के छठे भाग को, कर-स्वरूप लेकर १०० उसकी अच्छी तरह रक्षा नहीं करता वह चोर है। प्रजा को अभयदान देकर जो राजा लालच के मारे विपरीत आचरण करता है वह अधर्मी दुनिया का पाप बटोरकर नरक को जाता है और जो प्रजा को अभय करके उसकी रक्षा करता है वह सुख से रहता और लोक-प्रिय होता है। प्रजापति मनु ने राजा को माता, पिता, गुरु, रक्षक, अग्नि, कुबेर और यम कहा है। जो राजा प्रजा पर दया रखता है वह पिता के समान है। जो राजा प्रजा के साथ मिथ्या व्यवहार करता है उसे तिर्यग्योनि में जन्म लेना पड़ता है। प्रजा की हितकामना से दरिद्रों का भरण-पोषण करके राजा जननी का, कुपित होकर प्रजा के अनिष्ट का विनाश करके अग्नि का, दुष्टों का दमन करके यम का, आवश्यकता के समय धन देकर कुबेर का, धर्म का उपदेश देकर गुरु का तथा राज्य की रक्षा करके रक्षक का काम करता है। जो राजा अपने गुणों से प्रजा को प्रसन्न रखता है उसका राज्य कभी नष्ट नहीं होता। जो राजा पुरवासियों का सम्मान करता है वह दोनों लोकों में सुख भोगता है। जिसकी प्रजा हमेशा कर के भार से पीड़ित, घबराई हुई और विपद्ग्रस्त रहती है उस राजा का निस्सन्देह पराभव होता है। जिसकी प्रजा सरोवर में उत्पन्न कमल के समान दिन-दिन फलती-फूलती है वह राजा इस लोक में सब सुख भोगकर अन्त को स्वर्ग-सुख का अधिकारी १० होता है। बलवान् के साथ युद्ध करना ठीक नहीं है। बलवान् शत्रु जिस पर धावा करता है उसका राज्य और सुख नष्ट हो जाता है।

भीष्म कहते हैं—हे धर्मराज, महाराज ब्रह्मदत्त से यों कहकर और उनकी आज्ञा लेकर पूजनी वहाँ से चली गई। मैंने पूजनी और ब्रह्मदत्त का यह इतिहास कह सुनाया। बोलो, ११३ अब और क्या सुनना चाहते हो।

एक सौ चालीस अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से भरद्वाज और शत्रुञ्जय का संवाद कहना

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, युग के अन्त में धर्म का विनाश और दस्युओं के द्वारा प्रजा के पीड़ित होने पर राजा कैसा वर्त्ताव करे ?

भीष्म कहते हैं—धर्मराज, उस समय दृढ़ता का अवलम्बन करके राजा को जिस तरह रहना चाहिए, सो मैं कहता हूँ। भरद्वाज और शत्रुञ्जय का संवाद एक प्राचीन इतिहास है। उसे सुनकर तुम इस विषय को समझ जाओगे। सौवीर देश में शत्रुञ्जय नाम का एक महारथी राजा था। उसने एक दिन महर्षि भरद्वाज के पास जाकर पूछा—हे तपोधन, अलब्ध वस्तु की प्राप्ति कैसे हो सकती है और प्राप्त होने पर उसकी वृद्धि कैसे की जावे, वृद्धि होने पर किस उपाय से उसकी रक्षा की जाती है और सुरक्षित द्रव्य का उपयोग किस तरह करना चाहिए ? इस पर महर्षि भरद्वाज ने कहा—महाराज, राजा को हमेशा दृढ़ता से शासन करना चाहिए। अपनी धाक जमाये रहना, शत्रुओं के छिद्रान्वेषण करना और ऐसा उपाय करते रहना चाहिए जिससे अपने दोष छिपे रहें। दृढ़तापूर्वक शासन होते रहने से सभी डरते हैं, अतएव दण्ड के द्वारा सबका शासन करता रहे। नीति-विशारदों ने दण्ड की ही विशेष प्रशंसा की है। अतएव साम, दान आदि चार उपायों में दण्ड सबसे श्रेष्ठ है। आश्रय के नष्ट हो जाने पर आश्रित का जीवन नष्ट हो जाता है। वृक्षों की जड़ काट देने पर उनकी शाखा-प्रशाखाएँ सब गिर पड़ती हैं। इसलिए बुद्धिमान् राजा शत्रु का विनाश करके फिर उसके सहायकों को नष्ट करने का उपाय करे। आपत्काल उपस्थित होने पर सोच-विचार छोड़कर मन्त्रणा, पराक्रम, युद्ध या पलायन करे। हृदय को छुरे के समान कठोर करके वाणी में ही नम्रता दिखलाकर और काम-क्रोध को वश में रखकर नम्र भाव से सबके साथ बातचीत करे। बुद्धिमान् मनुष्य काम पड़ने पर शत्रु के साथ सन्धि कर ले, किन्तु उसका विश्वास न करे और काम सिद्ध हो जाने पर शीघ्र उसका साथ छोड़ दे। शत्रु को मित्रभाव से दिलासा दे और जिस तरह साँपवाले घर से डर रहता है उसी तरह उससे चौकन्ना बना रहे। जिसकी बुद्धि अपने से कम देखे उसे दम-दिलासा दे, नासमझ को झूठी आशाएँ देकर बहला दे और समझदार को चतुराई से समझा दे। कल्याण चाहनेवाला मनुष्य हाथ जोड़कर, क़सम खाकर, मीठी-मीठी बातें कहकर, नम्रता से और रो-गाकर अपना काम निकाल ले। जब तक प्रतिकूल समय हो तब तक शत्रु को कन्धे पर चढ़ाये रहे और जब समय अनुकूल आ जावे तब उसे इस तरह नष्ट कर दे जिस तरह पत्थर पर पटककर घड़ा फोड़ डाला जाता है। तेंदू की लकड़ी के समान मुहूर्त भर जल उठना अच्छा है, किन्तु भूसी की आग के समान लगातार धुवाँ देते रहना ठीक नहीं। अनेक प्रयोजनोंवाला मनुष्य कृतघ्न व्यक्ति के साथ कोई सम्बन्ध न रक्खे। १०

कृतघ्न मनुष्य काम निकल जाने पर उपकार करनेवाले का अनादर करता है, इसलिए उसका
२० काम अधूरा ही रख छोड़े। राजा प्रजा के द्वारा अपने पोष्यवर्ग का पोषण करावे जैसा
कि कोयल करती है; शत्रुओं का सर्वनाश कर दे जैसा कि वराह करता है, स्वयं दृढ़ और
कठोर शासक हो और आवश्यकता देखकर अनेक रूप बदलता रहे जैसा कि नट करता है।
धन की प्राप्ति को आवश्यक समझकर राजा उसके लिए उसी तरह यत्न करता रहे जैसे कि
निर्धन व्यक्ति किया करता है। उद्योगी राजा शत्रु के घर जाया करे और उसका अमङ्गल होने
पर कुशल पूछता रहे। आलसी, अभिमानी, उद्योगहीन, लोकनिन्दा से डरनेवाला और हमेशा
काम को टालनेवाला मनुष्य किसी काम में कृतकार्य नहीं हो सकता। शत्रु अपने दोषों को न
देखकर दूसरों के दोष देखता रहता है; अतएव बगुले के समान मन लगाकर मतलब को सोचे,
कछुए के समान अपने दोषों को छिपाकर सिंह के समान पराक्रम दिखलावे, भेड़िये के समान
टूट पड़े और बाण के समान शत्रु का सामना करे। मदिरा पीना, जुआ खेलना, सम्भोग,
शिकार और गाना-बजाना ये काम युक्ति के साथ करे। इन कामों में आसक्त हो जाना दूषित
है। बुद्धिमान् राजा बाँस आदि के द्वारा धनुष तैयार करे, मृग की तरह चौकन्ना सोवे, समय के
अनुसार अन्धे-बहरे का सा व्यवहार करे और देश-काल का विचार करके पराक्रम दिखलावे।
जो राजा देश-काल का विचार नहीं करता उसका सब परिश्रम व्यर्थ हो जाता है। काल-
अकाल और बलाबल का विचार करके सन्धि-विग्रह आदि किया करे। जो राजा शत्रु को
अपने अधीन करके और दण्ड देकर उसका शासन नहीं करता वह गाभिन खच्चरी की तरह
३० नष्ट हो जाता है। जो राजा [वृक्ष की तरह] फूलकर भी फल-हीन, फलकर भी दुरारोह और
अपक्व (कच्चा) होकर भी पके हुए [फल] के समान दिखाई देता है वह कभी संकट में नहीं
पड़ता। राजा माँगनेवालों को आशा देकर फिर कोई बहाना बताकर बार-बार उस आशा में
विघ्न डाला करे। जब तक भय उपस्थित न हो तब तक डरता रहे, किन्तु भय आ जाने पर उसका
प्रतिकार करने की चेष्टा करे। कष्ट उठाये बिना मनुष्य कभी अपना भला नहीं कर सकता।
जो मनुष्य कष्ट उठाकर उससे छुटकारा पाता है उसी का भला हो सकता है। भय आने
के पहले ही उसे भली भाँति समझ ले और आ जाने पर, जैसे बने, उसे दूर कर दे। फिर
उसके आने की आशंका करके उसे उपस्थित की तरह समझकर सावधान रहे। प्राप्त सुख
को त्यागकर अप्राप्त सुख की आशा करना ठीक नहीं। जो मनुष्य शत्रु के साथ सन्धि करके
उसका विश्वास कर लेता है उसे, वृक्ष की डाल पर सोये हुए मूर्ख मनुष्य की तरह गिर पड़ने
पर होश आता है। जैसे बने, अपनी दुरवस्था को दूर करके और समर्थ होकर धर्म का
आचरण करे। अपने शत्रु के शत्रुओं का हमेशा सम्मान करता रहे। अपने दूतों से भी
चौकन्ना रहे। अपने जासूसों का पता शत्रु के जासूसों को न लगने दे। पाखण्डी और

तपस्वी-वेशधारी आदि को गुप्त रूप से पर-राष्ट्र में नियुक्त रखना चाहिए। बाग, विहार-स्थान, ४० सूने घर, पौशाला, मदिरा पीने के स्थान, वेश्याओं के घर, तीर्थ-स्थान और द्यूत-सभा में संसार के कण्टक-स्वरूप चोर, दुराचारी आदि लगातार जाते-आते रहते हैं। उनको दण्ड देकर उन स्थानों से निकाल देना चाहिए। अविश्वासी पर तो कभी विश्वास करे ही नहीं, किन्तु विश्वासपात्र मनुष्य का भी पूरा विश्वास न करे। भली भाँति जाने-बूझे बिना किसी का विश्वास कर लेने से घोर विपत्ति आ पड़ने की आशङ्का रहती है। अतएव जिसका विश्वास करना हो पहले उसकी परीक्षा कर ले। विशेष कारण दिखलाकर शत्रु को विश्वास दिलावे और उसका रत्ती-भर भी दोष देखकर उसे विशेष रूप से दण्ड दे। जिस पर सन्देह हो उस पर पूरा सन्देह रक्खे और जिससे किसी प्रकार का सन्देह नहीं है उससे भी चौकन्ना रहना आवश्यक है; क्योंकि ऐसे मनुष्य से यदि किसी कारण कोई विपत्ति उपस्थित होती है तो वह विपत्ति उसे समूल नष्ट कर डालती है। तपस्वी की तरह रँगे कपड़े पहनकर जटा, मृगछाला और मौनव्रत धारण करके शत्रु को विश्वास उत्पन्न करावे; इसके बाद भेड़िये की तरह उस पर हमला कर दे। पुत्र, भाई, पिता या मित्र जो कोई काम में विघ्न डाले उसे दण्ड दे। यहाँ तक कि अविचारी, अभिमानी उद्दण्ड गुरु को भी दण्ड देना शास्त्र के अनुकूल है। अपना कल्याण चाहनेवाला मनुष्य उठकर, आदर-सत्कार और दान के द्वारा शत्रु को अधीन करके, जिस तरह तीक्ष्ण-तुण्ड कीड़ा वृक्ष के फल-फूल नष्ट कर देता है उसी तरह, उसका सब पुरुषार्थ नष्ट कर डाले। शत्रु का मर्मच्छेदन और कठोर कर्म किये बिना तथा मछुवे की तरह अनेक जीवों का वध किये बिना ऐश्वर्य की प्राप्ति नहीं हो सकती। संसार में कोई किसी का स्वाभाविक ५० शत्रु या मित्र नहीं है; शत्रु या मित्र तो प्रयोजन से ही हो जाते हैं। शत्रु को दबा लेने पर करुण स्वर से उसका रोना सुनकर दुखी होना या उसे छोड़ देना उचित नहीं। जिसने अपकार किया है उसका नाश कर डालना ही अच्छा है। मनुष्यों को एकत्र करे और उन पर दया दिखलावे। किसी को मारने की इच्छा हो तो भी उससे मीठी-मीठी बातें करे। वार करने पर भी मीठी बातें कहकर उसे दिलासा दिया करे। किसी का सिर काट लेने पर भी उसके लिए रोवे और दुःख प्रकट करे। जो अपना भला चाहता हो वह सबसे मीठी बातें करे, सबका सम्मान करे, सहनशीलता रक्खे और सबके साथ सद्व्यवहार करे। निष्प्रयोजन किसी से वैर न करे। तैरकर नदी के पार न जाय। गाय के सींग का चबाना निरर्थक काम है; उससे आयु की क्षीणता और दाँतों का नाश होने के सिवा किसी रस का स्वाद नहीं मिल सकता। अतएव जिस काम के करने से कोई लाभ नहीं है उसको कभी न करे। धर्म, अर्थ और काम (त्रिवर्ग) में अनेक दुःख हैं। धर्म से अर्थ में, अर्थ से धर्म में और काम से धर्म अर्थ दोनों में विघ्न उपस्थित होता है। नीच मनुष्य धर्म का मुख्य फल अर्थ, अर्थ का काम और काम का

इन्द्रिय-सुख मानते हैं तथा उच्च मनुष्य धर्म का मुख्य फल चित्तशुद्धि, अर्थ का यज्ञानुष्ठान और काम का जीवित रहना ही मानते हैं। अतएव धर्म, अर्थ और काम का सावधानी से उपयोग करे। ऋण, अग्नि और शत्रु को अधूरा रखना ठीक नहीं। ये थोड़े भी बच रहने पर फिर बढ़ जाते हैं। ऋण, छोड़े हुए शत्रु और रोग की उपेक्षा करने से वे घोर अनिष्ट उत्पन्न कर देते हैं। काँटे को जड़ से निकाले बिना कसक नहीं जाती। सब कामों को अच्छी तरह करना और हमेशा सावधान ६० रहना चाहिए। मनुष्यों का नाश और रास्तों को ख़राब करके तथा घरों में आग लगाकर शत्रु के राज्य को चौपट कर दे। बुद्धिमान् राजा गिद्ध की सी दूर-दृष्टि रक्खे, भेड़िये की तरह दबका रहे, कुत्ते की तरह सजग रहे, सिंह का सा पराक्रम दिखलावे, कौए की तरह चौकन्ना रहे और साँप की तरह शत्रु के दुर्ग में झटपट बेधड़क घुस जावे। वीर पुरुष को हाथ जोड़कर, डरपोक को डराकर और लोभी मनुष्य को धन देकर अधीन कर ले। बराबरवाले के साथ युद्ध करे। शत्रु के राज्य में प्रधान मनुष्यों में भेद डाले, प्रिय मनुष्यों से विनम्र रहे और ऐसा उपाय करे जिससे मन्त्रियों को विपक्षी फोड़ न सकें। अपने विरुद्ध मन्त्रियों का गुट न बँधने दे। इन कामों के लिए हमेशा सावधान रहे। राजा का कोमल स्वभाव होने पर सब लोग उसकी अवज्ञा करते हैं और अत्यन्त उग्र होने पर सभी उससे डरते हैं; इसलिए अवसर देखकर नरम या गरम होना चाहिए। मृदुता से मृदु और उग्र दोनों का नाश किया जा सकता है। मृदुता से सब कुछ हो सकता है। इसलिए मृदु उग्र से भी तीक्ष्ण है। जो मनुष्य समय के अनुसार मृदुता और तीक्ष्णता का अवलम्बन करता है वह अवश्य कृतकार्य होता और शत्रु का विनाश कर सकता है। चतुर के साथ विरोध करके, अपने को दूर समझकर, निश्चिन्त न रहना चाहिए। बुद्धिमान् मनुष्य की भुजाएँ बहुत लम्बी होती हैं। अपनी भुजाओं के प्रभाव से वह दूर रहने-वाले शत्रु का भी नाश कर सकता है। जो काम बिलकुल असम्भव है उसके लिए उद्योग करना ठीक नहीं। शत्रु से उस वस्तु को कभी न छीने जिसे वह वापस ले सकता है। जिसकी जड़ न खोदी जा सके उसको न खोदे और जिस शत्रु का सिर न काटा जा सके उस पर प्रहार न करे। इन बातों का उपदेश आपत्काल के लिए दिया है। दूसरे समय में इनका उपयोग करने की आवश्यकता नहीं। शत्रु का धावा होने पर और घोर विपत्ति में पड़ जाने पर इस उपदेश के अनुसार काम करने में पाप नहीं है।

हे धर्मराज, महर्षि भरद्वाज से यह उपदेश पाकर राजा शत्रुञ्जय प्रसन्न चित्त से उसके ७१ अनुसार काम करते हुए बन्धु-बान्धवों के साथ बड़े सुख से राज्य का सुख भोगने लगे।

एक सौ इकतालीस अध्याय

आपत्काल के विषय में विश्वामित्र और चाण्डाल का संवाद

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, श्रेष्ठ धर्म के नष्ट होने और मनुष्यों के धर्म-हीन होने पर जब अधर्म तो धर्म के समान और धर्म अधर्म के समान हो जावे तब जीविका के लिए ब्राह्मण क्या करें? नियम के नष्ट होने और राजा तथा चोरों के द्वारा प्रजा के पीड़ित होने पर और सभी स्थानों के पापमय हो जाने पर जीविका के लिए ब्राह्मण क्या करें? लोभ, मोह और दुष्टों के काम से सबको डर बना रहने पर, छल से परस्पर ठगे जाने पर तथा गाँव और नगर में आग लग जाने पर पीड़ित ब्राह्मण जीविका के लिए क्या करें? आपस में फूट पड़ जाने पर, वृष्टि के न होने से खेती सूख जाने और उस समय स्नेह के वश पुत्र-पौत्र आदि छोड़ने में ब्राह्मणों के असमर्थ होने पर वे जीविका के लिए क्या काम करें? ऐसे समय राजा का क्या कर्त्तव्य है? वह अपने धर्म और अर्थ की रक्षा किस प्रकार करे?

भीष्म कहते हैं—बेटा! राजा का योग-क्षेम*, इच्छा के अनुसार वृष्टि और प्रजा में भय, व्याधि तथा मृत्यु की वृद्धि, ये सब राजा के पाप-पुण्य के फल हैं। सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि, इन चारों युगों का आविर्भाव भी राजा की ही बदौलत होता है। पूर्वोक्त सङ्कट के उपस्थित होने पर मनुष्य विज्ञान (शास्त्र और शिल्प) के द्वारा अपना निर्वाह करें। इस विषय में विश्वामित्र और चाण्डाल का संवाद सुनो। प्राचीन समय में, त्रेता और द्वापर की सन्धि में, दैव के कोप से बारह वर्ष तक वर्षा नहीं हुई। उस समय बृहस्पति वक्री हो गये और चन्द्रमा दक्षिण मार्ग से चलने लगे। पानी बरसना तो दूर रहा, रात के अन्त में एक बूँद ओस भी नहीं दिखाई देती थी। नदी, तालाब और कुआँ आदि सब जलाशय सूख गये। ब्राह्मणों ने यज्ञ, अध्ययन, वषट्कार और अन्यान्य शुभ काम करना छोड़ दिया। संसार में खेती और पशुओं का पालन आदि सब काम बन्द हो गये। विपणि (जहाँ बाज़ार तो न हो किन्तु कुछ वस्तुएँ बिकती हों) और बाज़ार बन्द हो गये। संसार में आमोद-प्रमोद नाम लेने को न रहा। चारों ओर कङ्कालों के ढेर लग गये और भूतों की चिल्लाहट मच गई। गाँव, नगर आदि ख़ाली हो गये। बस्तियाँ जल गईं। प्रजा कहीं उपद्रवों से, कहीं क्षत्रियों से और कहीं आतुर राजा से भयभीत होकर बस्ती छोड़कर भागने लगी। देवालय नष्ट हो गये। बूढ़े लोग घर से निकाल दिये गये और गाय, भैंस, भेड़, बकरियाँ सब नष्ट होने लगीं। अन्न का अभाव हो गया। मनुष्य मुर्दे के समान हो गये। ब्राह्मण लोग मरने लगे। कोई किसी की रक्षा करने योग्य न था। ऐसा भयङ्कर समय उपस्थित होने और धर्म का विनाश हो जाने पर भूख से

१०

२०

* अप्राप्त वस्तु का प्राप्त होना 'योग' और प्राप्त हुई वस्तु का सुरक्षित रहना 'क्षेम' है।

व्याकुल होकर मनुष्य एक दूसरे को खाने और इधर-उधर घूमने लगे। महर्षि लोग नियम, होम, देवताओं का पूजन और आश्रम छोड़कर भागने लगे।

उसी समय महर्षि विश्वामित्र भूख से व्याकुल होकर पुत्र, स्त्री और घर आदि छोड़कर—भक्ष्य-अभक्ष्य का विचार और जप-होम आदि कामों को त्यागकर—मारे-मारे फिरने लगे। वे एक वन में, प्राणिहिंसक चाण्डालों के घर देखकर, गये। उन्होंने देखा कि वहाँ टूटे हुए घड़े, कुत्तों के चमड़ों के टुकड़े, सुअर और गदहों की खोपड़ियाँ और हड्डियाँ तथा मरे हुए ३० मनुष्यों के कपड़े एकत्र हैं। कुटी और मठों में निर्माल्य और साँपों की केंचुलियाँ पड़ी हुई थीं। कहीं मुर्गे बाँग दे रहे थे और कहीं गदहे रेंक रहे थे। कहीं चिल्लाते हुए चाण्डाल आपस में लड़ रहे थे। देवालयों में उल्लू बोल रहे थे। कहीं लोहे का घण्टा बज रहा था और कहीं झुण्ड के झुण्ड कुत्ते बैठे हुए थे।

महर्षि विश्वामित्र भूख से व्याकुल तो थे ही, चाण्डालों की उस बस्ती में भोजन ढूँढ़ने लगे। किन्तु बार-बार माँगने पर भी उन्हें मांस, अन्न, फल-मूल आदि कोई खाने की वस्तु नहीं मिली। तब दुर्बलता के कारण 'हाय बड़े दुःख की बात है' यह कहकर वे एक चाण्डाल के द्वार पर गिर पड़े। वे इस अकाल-मृत्यु से बचने और सङ्कट को टालने की चिन्ता करने लगे। कुछ देर बाद उसी चाण्डाल के घर में तत्काल मारे हुए कुत्ते के मांस का एक टुकड़ा दिखाई पड़ा। तब प्रसन्न होकर उन्होंने सोचा कि इस मांस के टुकड़े को किसी तरह चुराना चाहिए। इसके सिवा जीवन की रक्षा का और कोई उपाय नहीं है। आपत्काल में चोरी करने से कोई दोष नहीं लगता। शास्त्र का वचन है कि आपत्काल में ब्राह्मण अपने जीवन की रक्षा के लिए चोरी कर ले। पहले नीच पुरुषों के यहाँ चोरी करे, फिर बराबरवालों के यहाँ और यदि इन दोनों प्रकार के मनुष्यों के यहाँ सफलता न हो तो अपने से श्रेष्ठ धार्मिक मनुष्यों के यहाँ ४० चोरी करने में भी कोई दोष नहीं है। इसलिए मैं पहले इस नीच मनुष्य की वस्तु चुराऊँगा। यह विचार करके महर्षि विश्वामित्र उसी स्थान पर सो रहे।

कुछ रात बीतने पर जब चाण्डाल सो गये तब विश्वामित्रजी चुपके से उठकर उस चाण्डाल के घर में घुसे। उस समय कीचड़ से भरी हुई आँखोंवाला भयावना चाण्डाल जाग रहा था। घर में किसी मनुष्य के घुस आने की आहट पाकर उसने रूखे स्वर से कहा—इस समय सब लोग सो रहे हैं, एक मैं ही जागता हूँ। मेरे घर में कुत्ते का मांस चुराने के लिए कौन घुस आया है? निस्सन्देह आज उसकी मौत आ गई है। अब विश्वामित्रजी बहुत डरे और अपनी करनी पर लज्जित होकर चाण्डाल से कहने लगे—मैं विश्वामित्र हूँ, भूख के मारे तुम्हारे घर में घुस आया हूँ। यदि तुम समझदार हो तो मेरे प्राण न लेना। यह सुनकर वह चाण्डाल हड़बड़ाकर उठ बैठा और आँखें पोंछता हुआ हाथ जोड़कर कहने लगा—भगवन्,

आप रात्रि के समय यहाँ किस काम से आये हैं? तब चाण्डाल को शान्त करते हुए विश्वामित्र ने कहा—मैं भूख के मारे मुर्दा-सा हो रहा हूँ, इस कारण यहाँ कुत्ते का मांस चुराने आया हूँ। ५०

भूखा मनुष्य निर्लज्ज होकर दुष्कर्म करने लगता है। भूख के मारे मेरा ज्ञान और जीवन नष्ट हो रहा है। मैं अत्यन्त दुर्बल हो गया हूँ। मुझे भक्ष्य-अभक्ष्य का विचार नहीं रह गया है। इसी कारण चोरी को अधर्म जानता हुआ भी कुत्ते का मांस चुराने के लिए यहाँ आया हूँ। मैं तुम्हारे गाँव में भीख माँगते-माँगते थक गया। जब मुझे खाने को कुछ भी नहीं मिला तब मैंने चोरी करने का निश्चय किया। देखो, अग्नि देवताओं का मुख और पुरोहित-स्वरूप है, इसलिए उसे पवित्र वस्तुओं के सिवा अपवित्र वस्तु ग्रहण न करनी चाहिए; किन्तु वह सब कुछ ग्रहण कर लेता है। जिस तरह अग्नि भक्ष्य-अभक्ष्य का विचार नहीं करता उसी तरह मुझे भी इस समय भक्ष्य-अभक्ष्य का विचार नहीं है। तब चाण्डाल ने कहा—हे तपोधन, ऐसा कीजिए जिससे धर्म की हानि न हो। पण्डितों ने कहा है कि कुत्ता गीदड़ से भी अपवित्र है और उसके अन्य अङ्गों के मांस की अपेक्षा जाँघ का मांस और भी अपवित्र है। चाण्डाल की वस्तु चुराना तो महान् अधर्म है, इसलिए ऐसा अधम काम करना आपको उचित नहीं। अपने जीवन की रक्षा के लिए कोई अच्छा उपाय सोचिए। मांस के लोभ से अपनी तपस्या नष्ट न कीजिए। शास्त्रोक्त धर्म को जानकर अधर्म करना उचित नहीं। आप धर्मात्माओं में श्रेष्ठ हैं, अतएव धर्म का त्यागना आपके लिए युक्तिसङ्गत नहीं है। ६०

चाण्डाल की ये बातें सुनकर विश्वामित्रजी कहने लगे—मैं बहुत दिनों से इधर-उधर भूखा घूमता हूँ, किन्तु जीवन की रक्षा के लिए मैं कोई उपाय नहीं कर सका। विपत्ति के समय, चाहे जैसे, अपने प्राणों की रक्षा करे फिर समर्थ होने पर धर्म का आचरण करने लगे। क्षत्रियों को इन्द्र के समान और ब्राह्मणों को अग्नि के समान धर्म का पालन करना चाहिए। वेद अग्नि-स्वरूप है और वही वेद मेरा प्रधान बल है। मैं उसी बल के प्रभाव से कुत्ते के मांस को खाकर अपना पेट भरूँगा। जिस उपाय से जीवन की रक्षा हो सके वही उपाय करना

चाहिए। चाहे जिस उपाय से प्राणों की रक्षा कर लेना श्रेष्ठ है। जीवित रहने पर धर्म की प्राप्ति हो सकती है। अतएव जीवन बचाने की इच्छा से मैंने जान-बूझकर अभक्ष्य वस्तु के भक्षण करने का इरादा किया है। तुम भी इस समय मेरी बात मान लो। मैं जीवित रहूँगा तो धर्म का आचरण कर लूँगा। जिस तरह प्रकाश अँधेरे को हटा देता है उसी तरह तप और विद्या के प्रभाव से मैं सब पापों का नाश कर दूँगा।

चाण्डाल ने कहा—हे तपोधन, कुत्ते का यह मांस खाने से न तो आप दीर्घायु हो जायँगे और न इस मांस से अमृत पीने के समान आपको तृप्ति होगी। इसलिए आप खाने के लिए और कोई वस्तु माँगने को जाइए। कुत्ते का मांस खाने का इरादा छोड़ दीजिए। शास्त्र में द्विजों के लिए कुत्ते का मांस अभक्ष्य बतलाया गया है। विश्वामित्र ने कहा—इस दुर्भिक्ष के समय अन्य मांस मिलना सुलभ नहीं है। मेरे पास धन भी नहीं है। मैं भूख के मारे व्याकुल हो रहा हूँ। भोजन के लिए कोई उपाय समझ में नहीं आता। इसलिए कुत्ते के मांस को मैं तो भक्ष्य मानता हूँ। चाण्डाल ने कहा—हे महर्षि! शास्त्र में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को पाँच नखवाले शल्लकी आदि पाँच जीवों का ही भक्षण करने की आज्ञा है, अतएव आप इस ७० अभक्ष्य-भक्षण का इरादा न कीजिए। विश्वामित्र ने कहा—भूखे महर्षि अगस्त्य ने वातापि असुर का मांस खा लिया था। अतएव इस दुर्भिक्ष-काल में कुत्ते का मांस खा लेने से मुझे पाप नहीं लगेगा। चाण्डाल ने कहा—हे तपोधन, आप और कोई वस्तु माँगने के लिए जाइए। कुत्ते का मांस खाना आपको उचित नहीं। विश्वामित्र ने कहा—अगस्त्य आदि महर्षिगण धर्म के प्रवर्तक हैं, मैं उन्हीं के निर्दिष्ट धर्म को मानता हूँ। इसलिए पवित्र भोजन के न मिलने पर कुत्ते के मांस को भक्ष्य समझना मेरे लिए अनुचित नहीं है। चाण्डाल ने कहा—भगवन्, ऐसे-वैसे लोगों का आचरण सनातन-धर्म नहीं है। न करने योग्य काम करना सज्जनों को उचित नहीं। इसलिए आप धोखे से भी ऐसा निन्द्य काम न करें। विश्वामित्र ने कहा—निन्दित और पापजनक काम करना ऋषि के लिए उचित तो नहीं है, किन्तु मेरी राय में—पशु होने के कारण—मृग और कुत्ता दोनों बराबर हैं। अतएव मैं तो कुत्ते के मांस को खा लूँगा। चाण्डाल ने कहा—महाराज, महर्षि अगस्त्य ने ब्राह्मणों के प्रार्थना करने पर और उन्हीं के जीवन की रक्षा के लिए उस समय असुर को भक्षण कर लिया था, उसके बाद फिर कभी ऐसा नहीं किया। इसलिए असुर का भक्षण करना केवल उस समय धर्म था। ब्राह्मणों की रक्षा करने के कारण महर्षि को पाप नहीं लगा। विश्वामित्र ने कहा—यह मेरा ब्राह्मण का शरीर है। यह मेरा मित्र, प्रिय और अत्यन्त पूज्य है। इसी से इस ब्राह्मण-शरीर की रक्षा के लिए यह कुत्ते का मांस चुराने में मुझे सङ्कोच नहीं हुआ और नृशंस चाण्डालों को देखकर मुझे डर नहीं लगा। चाण्डाल ने कहा—हे तपोधन, सज्जन प्राण भले ही त्याग देगा किन्तु अभक्ष्य-भक्षण

करने का इरादा न करेगा। अनेक मनुष्यों ने क्षुधा को जीतकर अपने मनोरथ सिद्ध किये हैं, इसलिए आप भी क्षुधा को जीतने का यत्न कीजिए। विश्वामित्र ने कहा—'प्रायोपवेशन' करके प्राण त्याग देना अच्छा तो है, किन्तु जो मनुष्य जीवित रहने की इच्छा करता हो उसे भूखों मरकर देह सुखा देना उचित नहीं। उससे निस्सन्देह धर्म का नाश हो जाता है। शरीर की रक्षा करनी ही चाहिए। इस समय यदि कुत्ते का मांस खा लेने से मुझे कुछ पाप भी लग जायगा तो बाद को मैं व्रत आदि के द्वारा उस पाप को दूर कर दूँगा। बुद्धिपूर्वक विचार करने से आपत्काल में कुत्ते का मांस खा लेना निर्दोष सिद्ध होता है और मूर्खता से विचार करने पर यह काम दूषित समझ पड़ता है। जो हो, मैं इस समय कुत्ते का मांस खाने में दोष नहीं समझता। यदि मेरा यह विचार भ्रमात्मक भी हो तो भी कुत्ते का मांस खाने से मैं तुम्हारी तरह चाण्डाल नहीं हो जाऊँगा। इस पाप का प्रायश्चित्त भी मैं कर लूँगा। चाण्डाल ने कहा—कुत्ते का मांस खाना आपके लिए बड़ा ही निन्द्य काम है, इसी लिए मैं दुष्कर्मी चाण्डाल होकर भी आपकी निन्दा करता हूँ। विश्वामित्र ने कहा—मेंढक टर्राते ही रहते हैं, किन्तु गायें उनके टर्राने की परवा न करके पानी पी लेती हैं। धर्म में तुम्हारा अधिकार नहीं है। इसलिए अपने को धर्मज्ञ समझकर प्रशंसा न करो। चाण्डाल ने कहा—हे तपोधन, आप पर मुझे बड़ी दया आती है इसलिए मैं आपसे मित्रभाव से यह कहता हूँ। आप लोभ के वश कुत्ते का मांस खाकर पाप में न लिपटें। विश्वामित्र ने कहा—यदि तुम मेरे मित्र हो और मेरे सुख की इच्छा करते हो तो शीघ्र मुझे इस विपत्ति से उबारो। मैं धर्म को भली भाँति जानता हूँ। तुम मुझे यह कुत्ते का मांस दे दो। इसके खाने से मुझे दोष नहीं लगेगा। चाण्डाल ने कहा—महर्षि, यह कुत्ते का मांस मेरा भोजन है, इसलिए मैं इसे आपको नहीं दे सकता और न आपके लेने को ही मैं सहन कर सकता हूँ। मैं कुत्ते का मांस देनेवाला हूँ और आप उसे लेनेवाले हैं, इसलिए दाता और गृहीता, हम दोनों को पाप लगेगा। विश्वामित्र ने कहा—मैं इस पापकर्म से अपने जीवन की रक्षा करके फिर पुण्य और धर्म कर लूँगा। तुम भी विचारकर देखो, इस समय निराहार रहकर मर जाना अच्छा है या अभक्ष्य-भक्षण-पूर्वक जीवन की रक्षा करके फिर धर्म का उपार्जन कर लेना श्रेष्ठ है। चाण्डाल ने कहा—धर्म के विषय में अपना आत्मा ही साक्षी है। इसलिए आप ही विचार कीजिए कि इन दोनों में कौन सा काम बुरा है। मेरी राय में जो मनुष्य कुत्ते के मांस को भक्ष्य समझता है वह किसी वस्तु को भी अभक्ष्य नहीं मानेगा। विश्वामित्र ने कहा—भूखों मर जाने की नौबत आने पर अभक्ष्य वस्तु का भी भक्षण कर लेना अनुचित नहीं है। चाण्डाल ने कहा—तपोधन, यदि आप जीवन की रक्षा के लिए कुत्ते का मांस खाना बुरा नहीं समझते तो आप वेद और आर्यधर्म को भी न मानते होंगे। विश्वामित्र ने कहा—वस्तु भोज्य हो या अभोज्य, उसका खा लेना प्राणियों की हिंसा के समान अति पातक नहीं है। मदिरा पीने

८०

९० से मनुष्य पतित हो जाता है, यह शास्त्र का शासनमात्र है। चाण्डाल ने कहा—जो मनुष्य चाण्डाल के घर से बड़े आग्रह के साथ कुत्ते का मांस चुराता है उसे अवश्य पाप लगता है; किन्तु जिसके घर से वह चुराया जाता है उसका कोई दोष नहीं है।

भीष्म कहते हैं—हे धर्मराज, यह कहकर चाण्डाल चुप हो गया। तब महर्षि विश्वामित्र कुत्ते का मांस लेकर चल दिये। जीवन की रक्षा के लिए उसे खाने के विचार से स्त्री समेत उन्होंने आग जला करके, ऐन्द्राग्नेय विधि के अनुसार, चरु बनाया। फिर चरु के कई भाग बनाकर इन्द्र आदि देवताओं का आवाहन करके वे देव और पितृकर्म करने लगे। इस प्रकार विश्वामित्र के देवकर्म में प्रवृत्त होने पर देवराज इन्द्र, प्राणियों की रक्षा के लिए, पानी बरसाने लगे और पानी बरसने पर अन्न पैदा होने लगा। विश्वामित्रजी ने विधिपूर्वक देव और पितृकर्म करके, देवताओं और पितरों को तृप्त करके कुत्ते का मांस खाया। इसके बाद वे तप के प्रभाव से उस पाप को भस्म करके परम सिद्धि को प्राप्त हुए। हे धर्मराज! बुद्धिमान् मनुष्य घोर विपत्ति के समय, चाहे जिस उपाय से, अपना उद्धार करे। विश्वामित्र की तरह बुद्धि से काम लेकर जीवन की रक्षा करना सर्वथा उचित है। जीवित रहेगा तो फिर अनेक प्रकार के मङ्गल और धर्म के काम कर सकेगा।
१०२ समझदार मनुष्य अपनी बुद्धि के प्रभाव से धर्म-अधर्म का यथार्थ निर्णय कर लेता है।

एक सौ बयालीस अध्याय

ब्राह्मण के सिवा अन्य प्रजा के पालन में दण्ड का उपयोग बतलाना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, यदि झूठ बोलने के समान अश्रद्धेय और घोर काम करना भी अनुचित नहीं है तो और ऐसा कौन सा काम है जिसका त्याग किया जाय? इसके सिवा दस्युओं के कामों की भी कोई सीमा है कि इससे अधिक उन्हें न करना चाहिए? आपका उपदेश सुनकर मेरा धर्म-ज्ञान शिथिल हो गया है। मैं अत्यन्त मोहित और दुखी हो रहा हूँ। मन को शान्त करने पर भी आपके उपदेश के अनुसार काम करने को जी नहीं चाहता।

भीष्म कहते हैं—धर्मराज, मैंने केवल वेद आदि के वचनों पर निर्भर रहकर तुमको धर्म का उपदेश नहीं दिया है। विद्वानों को वेद-शास्त्र और लोकाचार दोनों का ज्ञान होता है। राजाओं को अनेक विषयों का ज्ञान रखना चाहिए। धर्म की एक शाखा पकड़ने से निर्वाह नहीं हो सकता। बुद्धिजनक धर्म और सज्जनों के आचरण का ज्ञान होना राजाओं के लिए परम आवश्यक है। राजा बुद्धि के बल से विजयी होता है और धर्म का संस्कार कर सकता है। राजधर्म की बहुत सी शाखाएँ हैं। पूर्णतया शिक्षित न होने अथवा अधूरी शिक्षा पाने से उसका पूरा ज्ञान नहीं होता। प्रत्येक काम किसी समय धर्म और किसी समय अधर्म सिद्ध होता है। जिसे पूरे तौर से उसका ज्ञान नहीं होता वह पग-पग पर सङ्कट में पड़ता है। अतएव

पहले बुद्धि द्वारा धर्म को ठीक-ठीक समझे, उसके बाद भली भाँति सोच-विचारकर प्रत्येक काम करे। जो राजा आपत्काल में शास्त्रोक्त धर्म का उल्लङ्घन करके अपनी बुद्धि के अनुसार काम करता है उसकी निन्दा मूर्ख मनुष्य ही करते हैं। बुद्धिमान् मनुष्य उसे दोष नहीं लगाते। कोई यथार्थ ज्ञानी और कोई मिथ्या ज्ञानी होते हैं। जो लोग ज्ञान का ठीक-ठीक अनुसन्धान करते हैं वही सज्जन-सम्मत ज्ञान का उपार्जन कर सकते हैं। अधर्मी मनुष्य ही यथार्थ धर्म का परित्याग और शास्त्र को अप्रामाणिक सिद्ध करता है। जो मनुष्य जीविका के लिए कोई विद्या सीखना चाहता है उसे लोग पापी और अधर्मी कहने लगते हैं। शास्त्र-ज्ञानविहीन दुर्बुद्धि मनुष्यों को न तो किसी विषय का यथार्थ ज्ञान होता है और न उनमें युक्ति के अनुसार किसी काम के करने की योग्यता होती है। वे शास्त्रों के दोष ढूँढ़ते और शास्त्रों को मिथ्या सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। धर्म-शास्त्र का ज्ञान प्राप्त करना, उनकी समझ से, निन्द्य है। जो नर-राक्षस वाक्य-रूपी बाण लेकर दूसरों की विद्या की निन्दा करके अपनी विद्या का गौरव दिखलाने का उद्योग करते हैं वे विद्या के व्यापारी हैं। छलपूर्वक धर्म करने से मनुष्य निस्सन्देह धर्म से भ्रष्ट हो जाता है। इन्द्र ने कहा है कि, बृहस्पति के मत में, केवल दूसरों के साथ तर्क-वितर्क करने से या केवल शास्त्र से धर्म का निर्णय नहीं किया जा सकता। धर्म का निर्णय करने के लिए दूसरों के साथ तर्क और शास्त्र दोनों की सहायता लेनी चाहिए। किसी-किसी का कहना है कि धर्म-शास्त्र का कोई वचन निरर्थक नहीं है; यथार्थ धर्म का ज्ञान न होने से ही सन्देह बना रहता है। कोई तो जीवन-निर्वाह करने को ही धर्म कहते हैं; किन्तु पण्डित लोग सज्जन-निर्दिष्ट युक्तियुक्त धर्म के ही अनुसार चलते हैं। सभा के बीच पण्डित का भी क्रोध के वश अथवा भ्रम से युक्त कहा हुआ धर्मशास्त्र प्रामाणिक नहीं माना जाता। अनेक मनुष्य शास्त्र के अनुकूल वचनों की ओर कोई-कोई अज्ञात विषय के जानने की इच्छा से तर्कहीन वचनों की प्रशंसा करते हैं। अनेक मनुष्य अपनी युक्ति के द्वारा शास्त्र को दूषित ठहराते हैं। इसलिए वही काम करना चाहिए जो न तो तर्क से दूषित हो और न शास्त्र से ही। प्राचीन समय में शुक्राचार्य ने दानवों का सन्देह दूर करने के लिए इसी तरह काम करने को कहा था।

सन्देह से युक्त ज्ञान का होना और न होना एक सा है, अतएव तुम शीघ्र अपने सन्देह को दूर करने का उद्योग करो। मैं इस समय तुमको जो उपदेश देता हूँ उसी के अनुसार काम करना। जिस कठिन काम के करने के लिए तुम्हारा जन्म हुआ है उसे क्या तुम नहीं जानते? मैं क्षत्रिय-धर्म के अनुसार युद्ध में प्रवृत्त हुआ था, उस समय अनेक लोग मुझे नृशंस कहकर मेरी निन्दा करते थे; किन्तु मैंने उनकी बातों पर ध्यान न देकर युद्ध में वीरता दिखला-कर दूसरे के हित के लिए ऐश्वर्य-लोलुप असंख्य राजाओं को स्वर्ग भेज दिया है। ब्रह्मा ने बकरे, घोड़े और क्षत्रिय को सर्वसाधारण के हित के लिए उत्पन्न किया है। इन्हीं के द्वारा

प्राणियों का निर्वाह अनायास होता है। न मारने योग्य प्राणियों के मारने से जो पाप लगता है वही पाप मारने योग्य प्राणियों के न मारने से भी लगता है। उग्र मूर्ति धारण करके प्रजा को उसके धर्म में लगाना राजा का कर्तव्य है। ऐसा न करने से सारी प्रजा, भेड़ियों की तरह, एक दूसरे को खा जाती है। जिस राजा के राज्य में डाकू दूसरों का धन छीनकर घूमते रहें वह राजा क्षत्रिय-कुल में कलङ्क-स्वरूप है। राजन्, अब तुम वेद-विद्या के जाननेवाले कुलीन

३० मन्त्रियों के साथ धर्म के अनुसार प्रजा का पालन करते हुए पृथिवी का शासन करो। जो राजा प्रजा के पालन करने की नीति को नहीं जानता और अन्यायपूर्वक कर लेता है वह अयोग्य है और जो राजा समय-समय पर गरम और नरम होकर प्रजा का पालन करता है उसकी प्रशंसा होती है। इसलिए पहले तो उग्र-रूप धारण करना और फिर मृदु हो जाना तुम्हारा कर्तव्य है। क्षत्रिय-धर्म बड़ा क्लेशकर है। तुम पर मेरा परम स्नेह है, इसी से तुमको सदुपदेश दे रहा हूँ। देखो, उग्र कर्म करने के ही लिए तुम्हारा जन्म हुआ है, अतएव तुमको राज्य का शासन करना चाहिए। बुद्धिमान् शुक्राचार्य ने आपत्काल में दुष्टों के दमन करने और सज्जनों के पालन करने का आदेश दिया है।

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, राजधर्म का वह कौन सा नियम है जिसका उल्लङ्घन कभी न करना चाहिए ?

भीष्म कहते हैं—धर्मराज ! विद्वानों, तपस्वियों और सच्चरित ब्राह्मणों की सेवा सदा करते रहना। यही धर्म सबसे पवित्र है। तुम देवताओं के साथ जैसा व्यवहार करते हो वैसा ही व्यवहार ब्राह्मणों के साथ किया करो। ब्राह्मण लोग कुपित होकर बड़ा अनिष्ट कर डालते हैं। उनका प्रेम अमृत के समान और क्रोध विष के समान है। उनकी कृपा से मनुष्यों

३८ की कीर्ति होती है और उनके क्रोध से दारुण भय उपस्थित होता है।

एक सौ तेंतालीस अध्याय

शरणागत के विषय में मुचुकुन्द और भार्गव का संवाद; कपोत और बहेलिये की कथा

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह ! आप सब शास्त्रों के ज्ञाता हैं, अतएव शरणागत मनुष्य की रक्षा करने से जो पुण्य होता है उसका वर्णन कीजिए।

भीष्म कहते हैं—बेटा, तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है। शरणागत की रक्षा करने में बड़ा पुण्य है। शिवि आदि राजाओं ने शरणागतों की रक्षा करके परम गति प्राप्त की है। प्राचीन समय में एक कबूतर ने, शरण में आये हुए, शत्रु का यथोचित सत्कार करके उसे अपना मांस खिलाया था।

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, कबूतर ने किस तरह शरणागत को अपना मांस खिलाया और उस धर्म के प्रभाव से उसे कौन सी गति मिली?

भीष्म ने कहा—बेटा, भार्गव ने महाराज मुचुकुन्द से जिस सर्वपाप-नाशिनी कथा का वर्णन किया था वही कथा मैं सुनाता हूँ। एक बार महाराज मुचुकुन्द ने भार्गव को प्रणाम करके उनसे शरणागत की रक्षा की विधि पूछी। उन्होंने कहा—महाराज! तुम सावधान होकर धर्म, अर्थ और काम से युक्त एक इतिहास सुनो। प्राचीन काल में नीचाशय पापात्मा, यम के समान, एक बहेलिया वन में विचरता था। उस दुरात्मा का शरीर कौए के समान काला था। उसकी लाल-लाल आँखें, भारी जाँघें और छोटे पैर थे। उसकी ठुड्डी और मुँह बड़ा भारी था। वह बड़ा ही निठुर था। इसी से स्त्री के सिवा उसके सब सुहृद्-सम्बन्धियों और भाई-बन्धुओं ने उसको त्याग दिया था। बुद्धिमान् मनुष्य दुष्टों से सम्पर्क रखना पसन्द नहीं करते; क्योंकि जो दुष्कर्मी अपना अनिष्ट कर सकता है वह दूसरों का हित कैसे करेगा? जीवों की हत्या करनेवाले नराधम मनुष्य, साँप के समान, प्राणियों को भय देनेवाले होते हैं। वह पापी बहेलिया जाल लिये हुए हमेशा वन में घूमा करता और चिड़ियों को मार-मारकर बेचता था। इसी तरह बहुत दिन बीत गये; तब भी उस दुष्ट ने अपने इस पेशे को अधर्म नहीं समझा। एक दिन वह वन में घूम रहा था कि बड़े वेग से आँधी आ गई। आँधी के वेग से बड़े-बड़े पेड़ गिरने लगे। दम भर में आकाश बादलों से घिर गया और बिजली चमकने लगी। मूसलधार वर्षा होने लगी और थोड़ी ही देर में पृथिवी पर पानी भर गया। तब वह बहेलिया सरदी के मारे व्याकुल हो उठा और घबराकर वन में इधर-उधर भटकने लगा; किन्तु सारे वन में पानी भर गया था। उसे कहीं सूखा स्थान न मिला। ज़ोर से पानी बरसने के कारण चिड़ियाँ पेड़ों के नीचे गिर पड़ी थीं और मृग, सिंह, वराह आदि जीव ऊँची जगहों पर चले गये थे। अन्यान्य जङ्गली जीव सरदी और भय से व्याकुल होकर वन में घूम रहे थे। दुष्ट बहेलिया भी पानी और हवा के कारण सरदी से व्याकुल था। उसे न तो वहाँ ठहरने को कोई स्थान मिलता था और न उसमें कहीं जाने की शक्ति ही थी। उसी समय जाड़े से व्याकुल एक कबूतरी उसे दिखाई दी। दुष्ट बहेलिया स्वयं तो इस प्रकार दुखी था; किन्तु उस कबूतरी को, ज़मीन पर पड़ी देखकर, उसने झट उठाकर पिंजरे में बन्द कर लिया। स्वयं पीड़ित होने पर भी उस कबूतरी को दुःख देने में उसे तनिक भी सङ्कोच नहीं हुआ। अब उस बहेलिये ने वहाँ एक पेड़ देखा जो मेघ के समान नीला था। उस पेड़ की छाया में रहने और उसके फल खाने के लिए अनेक पक्षी उस पर रहते थे। विधाता ने परोपकार के निमित्त ही उस वृक्ष को उत्पन्न किया था।

कुछ देर बाद आकाश निर्मल हो गया। नक्षत्र दिखाई देने लगे। फूले हुए कमलों से शोभित सरोवर के समान आकाश की शोभा हो गई। सरदी से व्याकुल बहेलिया निर्मल आकाश

३० को देखकर चारों ओर नज़र दौड़ाकर सोचने लगा कि अब रात हो गई और मेरा घर यहाँ से बहुत दूर है, इसलिए आज इसी पेड़ के नीचे रात बितानी चाहिए। इसके बाद वह हाथ जोड़कर पेड़ से बोला—हे वृक्षराज, तुम पर जो देवता रहते हैं, मैं उन्हीं की शरण में हूँ। यह कहकर दुःख ३४ से व्याकुल वह बहेलिया पत्ते बिछाकर और एक पत्थर पर सिर रखकर लेट रहा।

एक सौ चवालीस अध्याय

रात हो जाने पर भी कबूतरी के न लौटने पर उसके पति का विलाप करना

भीष्म ने कहा—बेटा, उस वृक्ष की डाल पर एक कबूतर अपने परिवार समेत बहुत दिनों से रहता था। उस दिन प्रातःकाल उसकी कबूतरी चारा ढूँढ़ने के लिए गई थी। रात हो गई, अभी तक कबूतरी नहीं लौटी, यह सोचकर वह कबूतर बहुत दुखी हुआ और कहने लगा—हाय, मेरी प्यारी भार्या अभी तक क्यों नहीं लौटी? आज बड़े ज़ोर की आँधी आई और बेहद बरसात हुई है, इससे वन में कहीं विपत्ति में तो नहीं पड़ गई। आज प्रिया के बिना मेरा यह घर सूना हो रहा है। गृहस्थ का घर पुत्र, पौत्र, वधू और नौकर-चाकरों के होने पर भी भार्या के बिना ख़ाली हो जाता है। समझदार लोग भार्या से हीन घर को घर नहीं कहते। भार्या ही घर-स्वरूप है और भार्या से हीन घर तो वन है। यदि आज लाल आँखोंवाली विचित्राङ्गी मधुरभाषिणी मेरी भार्या न लौटेगी तो मेरे जीने का अब क्या प्रयोजन है? मेरी प्रियतमा मेरे स्नान और भोजन किये बिना नहाती-खाती नहीं थी। मेरे सो जाने पर ही सोती थी। वह मेरे दुःख में दुखी और सुख में सुखी रहती थी। मेरे बाहर रहने पर उसे बड़ा दुःख होता और मेरे क्रुद्ध होने पर वह मीठी-मीठी बातें करती थी। वह धन्य है जिसकी भार्या ऐसी पति-१० हितैषिणी और पतिव्रता हो। स्थिर स्वभाववाली मेरी प्रियतमा मुझे भूखा और थका हुआ जानती है, तो फिर अभी तक आई क्यों नहीं? प्रियतमा भार्या के साथ पेड़ की छाया भी घर के समान है और भार्याहीन पुरुष का महल भी वन के समान जान पड़ता है। भार्या धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि के समय सहायक और विदेश जाने पर विश्वासपात्र है। संसार में भार्या के समान दूसरा धन नहीं है। भार्या से ही पुरुष का निर्वाह होता है। रोग से पीड़ित और दुखी व्यक्ति की भार्या ही परम ओषधि है। भार्या के समान परम मित्र दूसरा नहीं है। धार्मिक कामों में भार्या पुरुषों की सहायता करती है। जिसके घर में पतिव्रता प्रियवादिनी भार्या नहीं है १७ उसका वन को चला जाना ही अच्छा है। उसके लिए घर और वन में कोई भेद नहीं।

एक सौ पैंतालीस अध्याय

पिंजरे में बन्द कबूतरी का अपने पति से बहेलिये का सत्कार करने के लिए कहना

भीष्म ने कहा—हे धर्मराज, दुष्ट बहेलिये ने जिस कबूतरी को पिंजरे में बन्द कर लिया था वही कबूतरी इस कबूतर की भार्या थी। पति का विलाप सुनकर वह पिंजरे के भीतर मन ही मन कहने लगी कि अहा, मैं गुणवती होऊँ चाहे न होऊँ किन्तु जब पतिदेव मेरी प्रशंसा करते हैं तब मेरे सौभाग्य का क्या कहना है! जिस स्त्री का पति उससे सन्तुष्ट न हो, उसे स्त्री न कहना चाहिए। जो स्त्री पति को सन्तुष्ट रख सकती है उससे सब देवता सन्तुष्ट रहते हैं। अग्नि को साक्षी करके विवाह करने पर पति स्त्री का देवता हो जाता है। जिस स्त्री का पति उससे सन्तुष्ट नहीं रहता वह स्त्री फूलों समेत आग से जली हुई लता के समान हो जाती है।

पिंजरे में बन्द कबूतरी ने कुछ देर तक इस प्रकार विचार करके अन्त को सावधान होकर शोक से व्याकुल पति से कहा—नाथ, मैं इस समय तुम्हारे हित की जो बात कहती हूँ उसे सुन-कर उसी के अनुसार काम करो। यह बहेलिया भूख से व्याकुल और जाड़े से दुखी होकर तुम्हारे घर आया है। इस शरणागत की रक्षा और सत्कार करना तुम्हारा धर्म है। जो व्यक्ति शरणागत का वध करता है उसे गोहत्या और ब्रह्महत्या का पाप लगता है। यद्यपि हम लोग कबूतर होने के कारण निर्बल हैं तो भी तुम्हारे समान आत्मतत्त्वज्ञ प्राणी को यथासाध्य शरणा-गत की रक्षा करनी चाहिए। सुना है कि जो गृहस्थ यथाशक्ति धर्म-कर्म करता है वह अन्त में अक्षय लोक को जाता है। तुम बालबच्चेवाले हो, अतएव आज अपनी देह का मोह छोड़कर १० इस बहेलिये का सत्कार करो। अब मेरी चिन्ता न करो। मेरे बदले तुम्हें दूसरी स्त्री मिल जायगी। पिंजरे में बन्द कबूतरी यों कहकर बड़े दुःख के साथ पति की ओर देखने लगी। १४

एक सौ छियालीस अध्याय

कबूतर के आग में कूद पड़ने पर बहेलिये का विलाप करना

भीष्म ने कहा—महाराज, अपनी स्त्री के धर्मयुक्त वचन सुनकर वह कबूतर बहुत प्रसन्न हुआ। उसकी आँखों में आँसू भर आये। वह बहेलिये की ओर देखकर उसका स्वागत और यथोचित सत्कार करके बोला—महाशय, आप यहाँ कोई चिन्ता न करें। आप तो अपने ही घर में हैं। शीघ्र बतलाइए, आप क्या चाहते हैं। आप मेरे मेहमान हैं, इसलिए आपकी सेवा करना मेरा कर्तव्य है। यदि शत्रु भी अपने घर आवे तो उसका यथोचित सत्कार करना चाहिए। जो मनुष्य वृक्ष काटने के लिए जाता है, उस पर से भी वृक्ष अपनी छाया नहीं हटा लेता। घर आये हुए अतिथि का सत्कार करना सभी का धर्म है; किन्तु पञ्चयज्ञ करनेवाले गृहस्थों का तो

आवश्यक कर्तव्य है। जो व्यक्ति गृहस्थ आश्रम में रहकर मोह के वश पञ्चयज्ञ नहीं करता उसे न तो इस लोक में सुख मिलता है और न परलोक में सद्गति मिलती है। जो हो, इस समय मुझे आप अपनी इच्छा बतलाइए। मैं यथासाध्य उसे पूर्ण करूँगा।

ये बातें सुनकर बहेलिये ने कहा—हे कबूतर, मैं जाड़े के मारे दुखी हो रहा हूँ इसलिए ऐसा उपाय करो जिससे मैं ठण्ड से बचूँ। अब कबूतर ने सूखे पत्ते बीनकर इकट्ठे किये। जलाने को आग लेने के लिए वह झटपट लुहार के यहाँ गया। आग लाकर उसने पत्तों को जला दिया। जब १० आग जलने लगी तब कबूतर ने बहेलिये से कहा—महाशय, अब आप बेखटके आग तापकर जाड़ा छुड़ाइए। 'बहुत अच्छा' कहकर बहेलिया तापने लगा। जब उसका जाड़ा छूट गया तब वह प्रसन्न होकर घबराई हुई दृष्टि से कबूतर की ओर देखकर बोला—मैं बहुत भूखा हूँ, मुझे कुछ खाने को दो।

यह सुनकर कबूतर ने कहा—महाशय, मेरे पास ऐसी कोई वस्तु नहीं है जिसे मैं खाने के लिए आपको दूँ। मैं वन में रहकर प्रतिदिन भोजन की सामग्री लाकर निर्वाह करता हूँ। मुनियों की तरह मेरे पास कुछ सञ्चित नहीं रहता। यह कहकर कबूतर उदास हो गया और चिन्तित होकर अपने को धिक्कारने लगा। वह अपना कर्तव्य न सोच सका। तब उसने अपने मांस से अतिथि का सत्कार करने का विचार करके बहेलिये से कहा—महाशय, तनिक ठहरिए, मैं अभी आपको भोजन कराता हूँ। अब कबूतर ने फिर सूखे पत्ते इकट्ठे किये और आग २० जलाकर प्रसन्नतापूर्वक बहेलिये से कहा—महाशय! मैंने देवताओं, ऋषियों और बड़े-बूढ़ों से सुना है कि अतिथि की सेवा करना प्रधान धर्म है। अतएव आप मुझ पर दया करें। मैं आपकी सेवा करना चाहता हूँ। अब कबूतर तीन बार अग्नि की प्रदक्षिणा करके उसमें कूद पड़ा।

कबूतर के आग में कूद पड़ने पर बहेलिया सोचने लगा कि हाय, मैंने क्या किया। मैं बड़ा क्रूर हूँ। मेरा यह काम बहुत ही निन्दित और घोर अधर्म है। महाराज, कबूतर को २६ आग में कूदा हुआ देखकर अपनी करतूत की निन्दा करता हुआ बहेलिया रोने लगा।

एक सौ सैंतालीस अध्याय

बहेलिये का, प्राण त्यागने के लिए, अनशन व्रत करके
शरीर सुखा देने का उद्योग करना

भीष्म कहते हैं कि हे धर्मराज, इसके बाद वह भूखा बहेलिया आग में गिरे हुए कबूतर को देखकर कहने लगा—हाय, मैंने यह क्या किया। मैं बड़ा मूर्ख और कठोर हूँ। मुझे बहुत दिनों तक अपने पापों का फल भोगना पड़ेगा। मैं हमेशा चिड़ियों को मारता हूँ। मैंने कभी अच्छा काम नहीं किया। इसलिए मेरे समान पापी कोई न होगा। आज इस कबूतर ने अपना शरीर आग में जलाकर और अपना मांस देकर मुझे धिक्कारते हुए उपदेश दिया है। अब मैं स्त्री-पुत्र आदि को छोड़कर अपने प्राण त्याग दूँगा। आज से मैं सब भोगों को छोड़कर, ग्रीष्म-काल के सरोवर की तरह; शरीर सुखा दूँगा और उपवास करके पारलौकिक व्रत का अनुष्ठान करूँगा। कबूतर ने अपना शरीर देकर अतिथि-सत्कार की श्रेष्ठता दिखला दी। अब मैं इसी के दृष्टान्त के अनुसार धर्म का आचरण करूँगा। धर्म ही मोक्ष के साधन का प्रधान उपाय है।

क्रूर बहेलिये ने यह निश्चय करके कबूतरी को पिंजरे से निकालकर लग्गी, शलाका, पिंजरा आदि चिड़ियों के पकड़ने का सब सामान फेंक दिया और परलोक-यात्रा का निश्चय करके वहाँ से प्रस्थान किया। ११

एक सौ अड़तालीस अध्याय

पति के शोक से कबूतरी का आग में कूदना और पति समेत स्वर्ग को जाना

भीष्म कहते हैं कि हे धर्मराज, बहेलिये के चले जाने पर कबूतरी अपने पति का स्मरण करके शोक से व्याकुल हो रोकर कहने लगी—हा नाथ, मैंने कभी तुम्हारा अप्रिय करने का इरादा भी नहीं किया। विधवा स्त्री अनेक पुत्रों के होने पर भी दुखी रहती है। उसके भाई-बन्धु भी उसके दुःख से खिन्न रहते हैं। तुम हमेशा मेरा बड़ा आदर करते रहे हो; कैसे मनोहर कोमल वचनों से बातचीत करते रहे हो। मैंने तुम्हारे साथ पर्वत, गुफा, नदी, झरने, पेड़ की डालें और आकाश आदि कितने ही स्थानों में सुख से विहार किया है। आज मेरा वह सुख कहाँ गया? पिता, पुत्र और भाई परिमित सुख देते हैं; स्त्री को अपरिमित सुख देने-वाला पति के सिवा और कोई नहीं है। पति ही स्त्री का एकमात्र आधार है। पति के लिए सब कुछ त्याग देना स्त्री का कर्तव्य है। अब तुम्हारे बिना मेरा जीवन व्यर्थ है। कोई पति-व्रता स्त्री पति से हीन होकर जीना पसन्द नहीं करेगी।

पतिव्रता कबूतरी इस प्रकार विलाप करके उसी जलती हुई आग में कूद पड़ी। उसने देखा कि उसका पति बढ़िया कपड़े और माला पहने, बिजायठ आदि अलङ्कार धारण किये,

विमान पर बैठा है और चारों ओर से पुण्यवान् महात्मा उसकी स्तुति कर रहे हैं। वह कबूतर अपनी स्त्री समेत विमान पर बैठकर स्वर्ग को चला गया। वहाँ देवताओं से सम्मानित होकर, १२ अपने कर्म के अनुसार, परम सुख से रहने लगा।

एक सौ उन्चास अध्याय

उन चिड़ियों को स्वर्ग जाते देखकर व्याध का भी आग में जलकर स्वर्ग जाना

भीष्म कहते हैं—हे धर्मराज, कबूतर और कबूतरी को विमान पर सवार हो स्वर्ग जाते देख वह व्याध सोचने लगा कि मैं भी ऐसा ही तप करके सद्गति प्राप्त करने की चेष्टा करूँगा। ईर्ष्या और मोह छोड़कर केवल हवा खाकर रहूँगा। यह निश्चय करके, कुछ दूर चलकर, उसने एक बड़ा सरोवर देखा। वह सरोवर कमलों और अनेक प्रकार के पक्षियों से शोभित था। प्यासे लोग उस सरोवर को देखकर बहुत प्रसन्न होते थे। किन्तु उपवास करते हुए उस बहेलिये ने उस सरोवर की ओर देखा तक नहीं। वह प्रसन्नतापूर्वक घने वन में चला गया। वन में घुसते ही उसका शरीर काँटों से छिद गया। वह रक्त से सराबोर हो गया। तो भी वह हिंसक जीवों से भरे हुए उस वन में घुसता ही गया। कुछ देर बाद ज़ोर से हवा चलने के कारण पेड़ों के रगड़ खाने से भीषण आग पैदा हो गई। वह आग प्रलयकाल की आग के समान भयङ्कर रूप धारण करके वन के पेड़ों, लताओं और पशु-पक्षियों को चारों ओर १० से जलाने लगी। वन को जलते हुए देखकर व्याध अपना शरीर त्याग देने का निश्चय करके प्रसन्नता से उसी भयङ्कर आग के बीच दौड़ा। दम-भर में उसका शरीर जलकर भस्म हो गया। शरीर के साथ ही व्याध के सब पाप भी नष्ट हो गये। वह व्याध स्वर्ग को चला गया और वहाँ यक्ष, गन्धर्व तथा सिद्धगण के बीच अपने को शोभित देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ।

हे धर्मराज! इस प्रकार कबूतर, कबूतरी और व्याध तीनों अपने-अपने पुण्य के फल से स्वर्ग को चले गये। जो पतिव्रता स्त्री इस प्रकार अपने पति का अनुगमन करती है वह कबूतरी के समान स्वर्ग का सुख भोगती है। मैंने बहेलिये और कबूतर का यह इतिहास तुम्हें सुना दिया। जो मनुष्य प्रतिदिन इस इतिहास को पढ़ेगा या सुनेगा उसका कभी कुछ अमङ्गल न होगा। हे धर्मराज, शरणागत को आश्रय देना प्रधान धर्म है। गोहत्या करनेवाला मनुष्य उस पाप से भले ही छूट जावे किन्तु शरणागत का नाश करनेवाला मनुष्य किसी प्रकार अपने पाप से छुटकारा नहीं पा सकता। मनुष्य इस पापनाशक इतिहास को सुनकर सब दुःखों से १८ छूटकर अन्त को स्वर्गलोक प्राप्त करता है।

एक सौ पचास अध्याय

युधिष्ठिर का भीष्म से पापों का प्रायश्चित्त पूछना; जनमेजय का वृत्तान्त

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, जो मनुष्य नासमझी से कोई पाप कर डाले तो वह उस पाप से किस प्रकार छुटकारा पा सकता है?

भीष्म ने कहा—धर्मराज, इस विषय में इन्द्रोत और जनमेजय का संवाद सुनो। प्राचीन समय में परीक्षित के पुत्र महापराक्रमी राजा जनमेजय ने नासमझी से ब्रह्महत्या कर डाली थी। प्रजा, पुरोहित और अन्यान्य ब्राह्मणों ने उनको, ब्रह्महत्या का पातकी देखकर, त्याग दिया। तब राजा जनमेजय उस हत्या के कारण बहुत दुखी हुए और राज्यकार्य छोड़कर वन में जाकर कठोर तप करने लगे। देश-विदेश में घूमकर वे ब्राह्मणों से ब्रह्महत्या के पाप का प्रायश्चित्त पूछने लगे। घूमते-घूमते उन्होंने एक दिन शुनक के पुत्र महर्षि इन्द्रोत के आश्रम में पहुँचकर उनको प्रणाम किया। महर्षि इन्द्रोत ने जनमेजय को देखकर, उनका निरादर करके, कहा—तुम ब्रह्महत्यारे हो। इस स्थान पर तुम क्यों आये? हमारे पास तुम्हारा क्या काम है? तुम हमको छूना मत। यहाँ से हट जाओ। यहाँ तुम्हारा आना मुझे पसन्द नहीं। तुम्हारे शरीर से रक्त की सी गन्ध १० निकलती है, तुम मुर्दे के समान देख पड़ते हो। इस समय तुम अमाङ्गलिक होते हुए भी माङ्गलिक के समान और मृतक होकर भी जीवित के समान घूमते हो। तुम ब्रह्महत्यारे और अशुद्ध हो। लगातार पाप में तुम्हारा ध्यान रहता है, तब भी तुम सुख से सोते और जागते रहते हो। तुम्हारा जीवन निरर्थक है। अत्यन्त नीच और पापकर्म करने के लिए ही तुमने जन्म लिया है। पिता शुभ आशाओं से तप, देवपूजा, यज्ञ, वन्दना और सहनशीलता आदि शुभ काम करके सुपुत्र पाने की इच्छा करता है; किन्तु तुम्हारे कारण तुम्हारे पितृगण नरक में जायँगे। उन्होंने तुमसे जो शुभ आशाएँ की थीं वे व्यर्थ हो जायँगी। मनुष्य जिनकी पूजा करके आयु, यश, सन्तान और स्वर्ग की प्राप्ति करता है उन्हीं ब्राह्मणों से तुम हमेशा द्वेष रखते हो। तुम मरने पर पाप की बदौलत बहुत दिनों तक घोर नरक में उलटे टँगे रहोगे। वहाँ गिद्ध और मोर तुमको पीड़ित करेंगे। वहाँ से निकलने पर तुमको नीच योनि में जन्म लेना पड़ेगा। तुम अभी इस लोक और परलोक पर विश्वास नहीं करते हो, किन्तु यमपुर में यम के दूत निस्सन्देह इस विषय में तुमको विश्वास करा देंगे। १९

एक सौ इक्यावन अध्याय

जनमेजय के प्रार्थना करने पर मुनि का उपदेश देना

भीष्म कहते हैं कि महर्षि के ये वचन सुनकर राजा जनमेजय ने कहा—हे तपोधन, मैं अत्यन्त निन्दनीय हूँ इसलिए मेरी और मेरे कामों की बार-बार निन्दा करना अनुचित नहीं है।

मैं नम्रतापूर्वक निवेदन करता हूँ कि आप मुझ पर दया कीजिए। मैं आग में पड़े हुए की तरह जल रहा हूँ। अपनी करतूतों की और उसके परिणाम की याद आने से मुझे बड़ी घबराहट होती है। इस घोर दुःखरूपी काँटे को हृदय से निकाले विना मैं किस प्रकार जीवित रह सकूँगा? अब आप क्रोध छोड़कर मुझे उपदेश दीजिए। मैं ब्राह्मणों की भरसक सेवा किया करूँगा। मेरे वंश का, बार-बार अपमान होने के बदले, नाश हो जाना ही अच्छा है। ब्रह्महत्या के पाप से दूषित होने पर मुझे जिन सजातीयों ने बहिष्कृत कर दिया है उनका विनाश हो जाना ही भला है। मैं इस समय अत्यन्त दुखी हूँ, इसलिए आपसे प्रार्थना करता हूँ कि जैसे संन्यासी योगी लोग निर्धन मनुष्य की रक्षा करते हैं वैसे ही आप मेरी रक्षा करें। यज्ञहीन पापी मनुष्य इस लोक में सुखी नहीं रह सकता और परलोक में कोल-किरात आदि म्लेच्छ जातियों की तरह नरक भोगता है। हे शौनक! आप विद्वान् हैं, अतएव मुझे बालक समझकर मुझ पर स्नेह और कृपा कीजिए।

इन्द्रोत ने कहा—महाराज, मूर्ख मनुष्य यदि मूर्खता से कोई अनुचित काम करे तो १० क्या आश्चर्य है? इसी लिए समझदार लोग मूर्खों पर कभी क्रोध नहीं करते। बुद्धिरूपी महल पर चढ़कर, स्वयं अशोच्य होता हुआ भी, शोच्य मनुष्यों के लिए शोक करता है। पर्वत के शिखर पर चढ़ा हुआ मनुष्य जिस तरह नीचे के मनुष्यों को सरलता से देख सकता है उसी तरह बुद्धि-रूपी महल पर चढ़े हुए महात्मा लोग दूसरों के मन के भाव को जान लेते हैं। जो मनुष्य सज्जनों से अलग रहता है वह कभी बुद्धिमान् नहीं हो सकता। महाराज! तुम ब्राह्मणों की सामर्थ्य और वेद-शास्त्र में प्रसिद्ध उनके माहात्म्य को जानते हो, अब उन्हीं के द्वारा विधि के अनुसार अपना पाप शान्त करने का उद्योग करो। पाप शान्त कराने में ब्राह्मण ही तुम्हें आश्रय देंगे। ब्राह्मणों पर क्रोध न करके और धर्म की ओर दृष्टि रखकर अपने दुष्कर्मों पर पश्चात्ताप करने से परलोक में कल्याण होता है।

जयमेजय ने कहा—भगवन्, मैं अपनी करतूत के लिए पछतावा करता हूँ और वह उपाय करता रहता हूँ जिसमें धर्म का नाश न हो। मैं अपने कल्याण के लिए बार-बार आपसे प्रार्थना करता हूँ।

इन्द्रोत ने कहा—महाराज, तुम अभिमान और पाखण्ड छोड़कर मुझसे स्नेह करो और धर्म के अनुसार ऐसा उपाय करो जिससे सबका हित हो। मैं भय, कृपणता और लोभ के वश न होकर केवल धर्म के निमित्त तुम्हारा तिरस्कार करता हूँ। अब तुम ब्राह्मणों के साथ मेरा सत्य उपदेश सुनो। तुमको उपदेश देने से लोग मुझे पापी और अधर्मी कहेंगे। मेरे बन्धु-बान्धव भी असन्तुष्ट होकर मुझे त्याग देंगे। किन्तु बुद्धिमान् लोग यह समझ जायँगे कि मैंने ब्राह्मणों के हित के लिए इस काम में हाथ डाला है। अतएव नासमझ लोगों की निन्दा पर कुछ ध्यान न देकर मैं तुम्हें उपदेश दूँगा। ब्राह्मणों की रक्षा करना ही मेरा मुख्य उद्देश्य है। २० इसलिए वह उपाय करो जिससे ब्राह्मण लोग, मेरी सहायता से, अपना भला कर सकें। अब ब्राह्मणों का अनिष्ट न करने की प्रतिज्ञा करो। जनमेजय ने कहा—भगवन् ! मैं आपके पैर छूकर शपथ खाता हूँ कि अब कभी मन, वाणी और कर्म से ब्राह्मणों का अनिष्ट न करूँगा। २२

एक सौ बावन अध्याय

अश्वमेध यज्ञ कराकर जनमेजय की ब्रह्महत्या छुड़ाना

इन्द्रोत ने कहा—महाराज ! इस समय तुम्हारा चित्त धर्म में लगा है, इसलिए मैं तुमको धर्म का उपदेश देता हूँ। राजा यदि पहले उग्र स्वभाववाला रहकर अन्त को मनुष्यों पर दया करने लगे तो यह बड़े आश्चर्य की बात है। लोग कहते हैं कि यदि कठोर स्वभाव का राजा राज्य का शासन करता है तो वह प्रजा को बहुत सताता है। किन्तु तुम जो इस समय किसी का अनिष्ट न करने का इरादा करके, राजाओं के योग्य भोग्य पदार्थों को छोड़कर, धर्म के अनुसार तप कर रहे हो यह बड़े आश्चर्य की बात है। सम्पन्न व्यक्ति दाता, कृपण और तपस्वी सब कुछ हो सकता है; किन्तु जो काम सोच-समझकर किया जाता है उससे लाभ होता है। यज्ञ, दान, दया, वेदाध्ययन, सत्य, तप और तीर्थ-यात्रा करने से मनुष्य पवित्र होता है। इनमें से तप करना राजा के लिए परम पवित्र आचरण है। अच्छी तरह तप करने से तुम्हें निस्सन्देह धर्म की प्राप्ति होगी। इस विषय में राजा ययाति ने जो मत प्रकट किया है उसे सुनो। जो मनुष्य जीवित रहने की इच्छा करता हो वह यज्ञ और तप करे। कुरुक्षेत्र पवित्र स्थान है। १० कुरुक्षेत्र से बढ़कर सरस्वती, सरस्वती से बढ़कर सरस्वती तीर्थ और सरस्वती तीर्थों की अपेक्षा पृथूदक अति पवित्र है। पृथूदक के जल में स्नान करने और उसका जल पीने से अकाल-मृत्यु का भय नहीं रह जाता। महासरोवर, पुष्कर तीर्थ, प्रभास, उत्तर मानस, मानससरोवर और कालोदक तीर्थ में जाने से दीर्घायु होती है। इसलिए पठन-पाठन करनेवाले मनुष्य को इन सब तीर्थों में जाना चाहिए। मनु का वचन है कि पवित्र धर्मों में दान श्रेष्ठ है और दान से भी श्रेष्ठ

संन्यास है। इस विषय में राजकुमार सत्यवान् का मत भी सुनो। मनुष्य को बालक की तरह राग-द्वेष और पुण्य-पाप से रहित रहना चाहिए। सुख और दुःख का भोग कल्पना मात्र है। जो मनुष्य संन्यास धर्म का आश्रय लेकर पाप-पुण्य से निवृत्त होकर ब्रह्म-स्वरूप हो जाता है उसी का जीवन श्रेयस्कर है।

अब राजा का कर्तव्य सुनो। तुम धैर्य और दान के द्वारा स्वर्ग प्राप्त करने का उपाय करो। जिस मनुष्य में धैर्य और इन्द्रिय-संयम है वही यथार्थ धार्मिक है। तुम ब्राह्मणों के सुख के लिए पृथिवी का पालन करो और ब्राह्मणों के द्वारा धिक्कार किये जाने, उनके त्याग देने, पर भी उनसे ईर्ष्या न करके उन्हें सन्तुष्ट रक्खो। अपनी इस दुरवस्था की ओर ध्यान देकर यह प्रतिज्ञा करो कि अब कभी ब्राह्मण की हत्या नहीं करोगे। ऐसा उपाय करो जिससे तुम्हारा
२० कल्याण हो। कोई राजा बर्फ़ के समान शीतल, कोई अग्नि के समान तेजस्वी, कोई यम के समान गुण-दोष का विचार करनेवाला और कोई हल के समान दुष्टों का विनाश करनेवाला होता है। कोई वज्र के समान होकर दुष्टों पर सहसा आक्रमण करता है। जो मनुष्य अपनी रक्षा करना चाहता हो उसे सर्वथा दुष्टों के संसर्ग से बचना चाहिए। जो पाप एक बार किया जाता है वह पश्चात्ताप करने से, जो दो बार किया जाता है वह फिर न करने की प्रतिज्ञा कर लेने से और जो तीन बार किया जाता है वह धर्म का आचरण करने से नष्ट हो जाता है। जो पाप बार-बार किया जाता है वह तीर्थ-यात्रा करने से दूर होता है। जो मनुष्य अपना कल्याण चाहता हो वह शुभ कर्म किया करे। हमेशा सुगन्ध का सेवन करनेवाले के शरीर से सुगन्ध निकलती है और जो हमेशा दुर्गन्ध का सेवन करता रहता है उसके शरीर से दुर्गन्ध निकलती है। तप करने से शीघ्र पाप का नाश हो जाता है। वर्ष भर अग्नि की उपासना करने से सब पाप छूट जाते हैं। तीन वर्ष अग्नि की उपासना करने से अथवा सौ योजन चलकर महासरोवर, पुष्करतीर्थ, प्रभासतीर्थ और उत्तर मानस में जाने से ब्रह्महत्या के पाप से छुटकारा मिल जाता है। जो मनुष्य जितने जीवों की हिंसा करे वह उस जाति के उतने ही प्राणियों को बन्धन से मुक्त करने पर उस पाप से छुटकारा पा जाता है। मनु ने कहा है कि जो मनुष्य तीन बार अघमर्षण मन्त्र का जप करता हुआ जल में डूबा रहता है वह अश्वमेध यज्ञ के अवभृथ स्नान करनेवाले मनुष्य के समान सब पापों से छूट जाता है। सब जीव
३१ जड़ और मूक के समान उससे प्रसन्न रहते हैं।

प्राचीन समय में देवता और दानव एकत्र होकर बृहस्पति के पास जाकर विनीत भाव से कहने लगे—महर्षि, आप धर्म और अधर्म के फल को भली भाँति जानते हैं। जो योगी दुःख-सुख को बराबर समझते हैं वे पाप और पुण्य दोनों से मुक्त रहते हैं या नहीं और धर्मात्मा मनुष्य किस तरह धर्म का आचरण करके अपने पापों का विनाश कर सकता है?

बृहस्पति ने कहा—जो मनुष्य नासमझी से पाप करके फिर ज्ञानपूर्वक धर्म-कर्म करता है उसका वह पाप इस तरह नष्ट हो जाता है जैसे खार से मैले कपड़ों का मैल कट जाता है। जो मनुष्य दुष्कर्म करके अभिमान नहीं करता और ईर्ष्या छोड़कर धर्म में श्रद्धा रखता है वह निस्सन्देह अपना कल्याण कर सकता है। जो मनुष्य सज्जनों के दोष छिपा रखता है उसका, पाप करने पर भी, कल्याण हो सकता है। जैसे सूर्य प्रातःकाल उदय होकर अन्धकार का नाश कर देते हैं वैसे ही धर्मात्मा मनुष्य पुण्य कर्मों के द्वारा शीघ्र ही अपने पापों को नष्ट कर देने में समर्थ होता है।

भीष्म ने कहा—धर्मराज, महर्षि इन्द्रोत ने महाराज जनमेजय से यह कहकर विधिपूर्वक अश्वमेध यज्ञ कराया। यज्ञ समाप्त होने पर महाराज जनमेजय निष्पाप, कल्याणयुक्त और प्रज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी होकर, सन्ध्या के समय उदय हुए पूर्ण चन्द्रमा के समान, अपने राज्य में प्रविष्ट हुए। ३६

एक सौ तिरपन अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर को ब्राह्मण के मरे हुए बालक के जीवित होने का वृत्तान्त बतलाना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, आपने क्या कभी किसी मनुष्य का मरने के बाद फिर जी उठना देखा या सुना है?

भीष्म ने कहा—बेटा, मैं इस विषय में गिद्ध और गीदड़ का संवाद सुनाता हूँ। प्राचीन समय में नैमिषारण्य में रहनेवाले एक ब्राह्मण के, बड़े प्रयत्न से, एक पुत्र उत्पन्न हुआ था; किन्तु वह सुन्दर बालक अकाल में ही मर गया। तब ब्राह्मण के बन्धु-बान्धव शोक से व्याकुल होकर उस बालक की लाश श्मशान को ले गये और उस लाश को गोद में लेकर दुःख के मारे चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगे। बालक की मीठी बातों का स्मरण करके वे और भी दुखी होते थे। उसकी लाश को श्मशान में छोड़कर घर लौटने की इच्छा उनको न होती थी।

उसी समय एक गिद्ध उन लोगों का रोना सुनकर वहाँ आया और उन लोगों से कहने लगा—सभी प्राणी एक दिन काल का ग्रास होते हैं, इसलिए तुम इस बालक को यहाँ छोड़कर लौट जाओ। हज़ारों स्त्रियों और पुरुषों की लाशें यहाँ छोड़कर लोग चले जाते हैं। सुख और दुःख सारे संसार में फैला रहता है। संसार में सभी को कभी संयोग का सुख और कभी वियोग का दुःख मिलता रहता है। जो लोग श्मशान में मुर्दा ले जाते हैं और जो लाश के साथ जाने में भी हिचकिचाते हैं उन सभी को, आयु पूरी होने पर, यहाँ से जाना पड़ेगा। अब तुम लोग इसे यहाँ छोड़कर चले जाओ। तुम लोग गिद्ध, गीदड़ और कङ्कालों से भरे हुए इस भीषण श्मशान में पल-भर भी न ठहरो। संसार में सभी की मृत्यु होती है। यमराज के नियम का १०

उल्लङ्घन करके मरे हुए को जिला देना किसी के सामर्थ्य की बात नहीं। देखो, सूर्य अस्त हो रहे हैं, इसलिए पुत्र का स्नेह छोड़कर अपने घर को लौट जाओ।

गिद्ध की बातें सुनकर वे ब्राह्मण मरे हुए बालक के देखने की लालसा और उसके जीने की आशा छोड़कर रोते-रोते लाश को वहीं फेंककर घर को लौट पड़े।

उसी समय काले रङ्ग का एक गीदड़ माँद से निकलकर लौटते हुए ब्राह्मणों को डाटकर बोला—हे मनुष्यो, तुम लोग बड़े निर्दय हो। देखो, अभी सूर्य अस्त नहीं हुए, तो भी तुम लोग
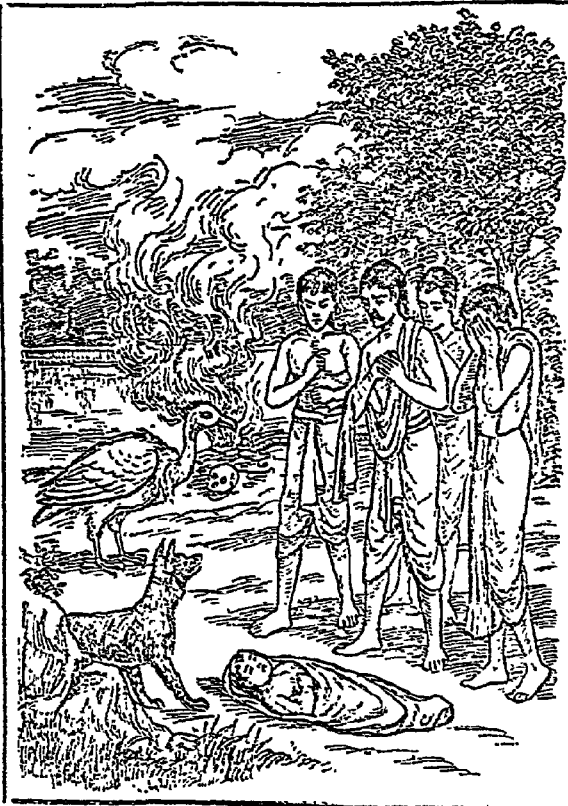
डरकर इस बालक को श्मशान में छोड़कर चले जा रहे हो। समय का बड़ा विलक्षण प्रभाव है। समय के प्रभाव से इस बालक का फिर जीवित हो जाना असम्भव नहीं है। अतएव तुम लोग क्यों निर्दयता से इसको श्मशान में छोड़कर जा रहे हो? पहले जिस बालक की मीठी-मीठी बातें सुनकर तुम लोग प्रसन्न होते थे उसी बालक पर इस समय तुम लोगों का क्या ज़रा भी स्नेह नहीं है? तुम लोग पशु-पक्षियों को देखो, वे किस तरह अपने पुत्रों का स्नेह करते हैं। उसी तरह तुम भी अपने बालक पर दया करो। पशु, पक्षी, कीड़े आदि का अपत्य-स्नेह संन्यासी मुनियों के यज्ञ के समान निष्फल है। पशु-पक्षियों को इस लोक और परलोक में कहीं भी सन्तान का सुख नहीं मिलता। यद्यपि उनके बच्चे बड़े होने पर अपनी इच्छा के अनुसार आहार-विहार करते हैं, माता-पिता की सेवा नहीं करते, तो भी वे अपनी सन्तान का लालन-पालन करने से मुँह नहीं मोड़ते। अब मेरी समझ में आया कि मनुष्यों में रत्ती-भर भी स्नेह नहीं है, वे भला शोक क्या करेंगे? तुम लोग इस कुल-रक्षक पुत्र को श्मशान में छोड़कर कहाँ जा रहे हो! यहाँ बैठकर बहुत देर तक रोओ और स्नेह से इस बालक को देखो। ऐसी प्रिय वस्तु का त्याग देना बड़ा कठिन काम है। दुर्बल का, किसी काम में तत्पर व्यक्ति का और श्मशान में मुर्दे का, भाई-बन्धु ही साथ देते हैं। प्राण सभी को प्रिय हैं और सभी प्राणी स्नेह के वशीभूत हैं। सज्जन तो पशुओं पर भी स्नेह करते हैं। माला पहने हुए दूलह के समान

इस सुन्दर नेत्रोंवाले बालक को छोड़कर तुम लोग भला किस तरह जा रहे हो? इस प्रकार ३० गीदड़ के करुण वाक्यों को सुनकर वे लोग मुर्दे की रखवाली के लिए लौट पड़े।

तब गिद्ध ने कहा—हे मनुष्यो! तुम लोग बड़े मूर्ख हो, नहीं तो इस नीच, क्रूर, अल्पबुद्धि गीदड़ की बातों में आकर क्यों लौट आते। तुम लोग अपने लिए फ़िक्र न करके इस पञ्चतत्व से हीन काठ के समान पड़े हुए बालक का क्यों शोक करते हो? तुम लोग तप करो, जिसके प्रभाव से सब पापों से छूट जाओ। तप के प्रभाव से सब कुछ मिल सकता है। विलाप करने से क्या होगा? दुर्भाग्य और सौभाग्य शरीर के साथ ही उत्पन्न होता है। दुर्भाग्य से ही यह बालक तुम लोगों को शोक में डालकर चल बसा है। सन्तान, गाय, सोना, धन, रत्न आदि सब कुछ तप के प्रभाव से मिल सकता है। पूर्व जन्म की जैसी करनी होती है उसी के अनुसार इस जन्म में सुख-दुःख मिलता है। पुत्र पिता के और पिता पुत्र के कर्मों का फल नहीं पाता। सब प्राणी अपने-अपने पुण्य और पाप का फल भोगते हैं इसलिए तुम लोग अधर्म को छोड़कर, देवता और ब्राह्मणों की सेवा करते हुए, धर्म का आचरण करो। शोक, दीनता और स्नेह छोड़कर इस बालक को श्मशान में छोड़कर घर लौट जाओ। अपने शुभ ४० और अशुभ कर्मों का फल स्वयं भोगना पड़ता है। उन कर्मों से उसके बान्धवों का कोई सम्पर्क नहीं, बन्धु-बान्धव तो अपने प्रिय बन्धु को त्यागकर इस श्मशान-भूमि में क्षण-भर भी नहीं ठहरते, स्नेह छोड़कर रोते हुए घर को लौट जाते हैं। विद्वान्, मूर्ख, धनवान् और निर्धन सभी लोग अपने शुभ और अशुभ कर्मों को साथ लेकर काल का ग्रास हो जाते हैं। अब तुम लोग मुर्दे के लिए क्यों शोक करते हो? काल सबका स्वामी है; वह किसी का लिहाज़ नहीं करता। बालक, युवा, वृद्ध और गर्भस्थ सभी की मृत्यु होती है। संसार की यही गति है।

[गिद्ध की ये बातें सुनकर उनमें से एक मनुष्य अपने घर लौटने के इरादे से चला। उसे देखकर] गीदड़ ने कहा—हे मनुष्यो! इस बालक के मर जाने से वत्सहीन गायों के झुण्ड के समान यद्यपि तुम लोगों को अत्यन्त दुःख है तथापि स्नेह त्यागकर लौटते हुए इस मनुष्य को देखकर मुझे जान पड़ता है कि इस मन्द-बुद्धि गिद्ध की बातों से तुम लोगों का स्नेह कुछ कम हो गया है। संसार में मनुष्यों को कितना शोक होता है, यह आज मुझे मालूम हो गया। स्नेह के कारण आज मेरे आँसू बह रहे हैं। हर एक काम के लिए पहले उद्योग करना चाहिए। उद्योग करने पर भाग्य से कार्य की सिद्धि होती है। उद्योग करने ही पर भाग्य की सहायता मिलती है। हमेशा प्रयत्न करता रहे। ख़ाली बैठे रहने से रत्ती भर भी सुख मिलने की ५० सम्भावना नहीं। उद्योग से ही सब काम सिद्ध होते हैं। इसलिए तुम लोग इस बालक के जिलाने का उद्योग करो। क्यों निर्दय होकर यहाँ से लौटे जा रहे हो? पुत्र पिता की आत्मा है, वह वंश की रक्षा करता है। वह पिता के शरीर का आधा अङ्ग है। तुम लोग

उसी पुत्र को श्मशान में छोड़कर कहाँ चले जा रहे हो ? तनिक ठहरो, सूर्य के अस्त होने पर पुत्र को लेकर चाहे अपने घर चले जाना या यहीं ठहर जाना।

तब गिद्ध ने कहा—हे मनुष्यो ! मैं हज़ार वर्ष का हो चुका हूँ किन्तु मैंने कभी किसी स्त्री, पुरुष या नपुंसक को मरने के बाद फिर जीवित होते नहीं देखा। कोई तो गर्भ से ही मरा हुआ पैदा होता है, कोई पैदा होते ही और कोई चलने-फिरने पर मर जाता है और कोई युवावस्था में नष्ट हो जाता है। पशु-पक्षी आदि सब प्राणियों का भाग्य अनित्य है। क्या स्थावर और क्या जङ्गम सभी आयु के अधीन हैं। अनेक लोग अपने प्रिय पुत्र और स्त्री आदि को श्मशान में छोड़कर शोक से व्याकुल हो घरों को लौट जाते हैं। सभी प्राणियों को इष्ट और अनिष्ट वस्तुओं को छोड़कर बड़े दुःख के साथ परलोक जाना पड़ता है। अतएव तुम लोग शीघ्र इस प्राणहीन बालक के शरीर को यहाँ छोड़कर अपने घर लौट जाओ। अब इस बालक पर स्नेह करना व्यर्थ है। इसे जिलाने के लिए विशेष परिश्रम करने पर भी सफलता नहीं

६० हो सकती। अब यह न तो कानों से सुनता है और न आँखों से देख सकता है। तो फिर तुम लोग इसे छोड़कर क्यों नहीं लौट जाते ? मैंने मोक्ष धर्म के अनुसार कठोर वचनों से यह बतला दिया। अब तुम लोग शीघ्र घर को चले जाओ। इसको देखने और इसकी पहले की बातें याद करने से तुम लोगों का शोक दूना बढ़ता जायगा। गिद्ध की बातें सुनकर ब्राह्मणों ने फिर घर लौटने का इरादा किया।

इतने में गीदड़ दौड़ता हुआ वहाँ आ गया और बालक की लाश को देखकर कहने लगा—हे मनुष्यो ! तुम लोग क्यों गिद्ध की बातों में आकर निर्दयता से, दिव्य आभूषणों से भूषित, तपाये हुए सोने के समान सुन्दर बालक को छोड़े चले जा रहे हो ! इसे छोड़ जाने पर विलाप करने या रोने-चिल्लाने से तुम लोगों का स्नेह नहीं टिक सकता; दुःख तो बढ़ता ही जायगा। मैंने सुना है कि सत्य पराक्रमी महात्मा रामचन्द्र ने तप करते हुए शम्बूक नामक शूद्र को मारा था, उस धर्म के प्रभाव से एक ब्राह्मण बालक फिर जीवित हो गया था। धर्मात्मा राजर्षि श्वेत ने भी अपने मृत पुत्र को जिला लिया था। इसलिए मरे हुए का जी जाना असम्भव नहीं है। इस स्थान पर तुम लोगों के दीन भाव से रोने पर कोई सिद्ध पुरुष या मुनि अथवा कोई देवता तुम लोगों पर दया करेगा। गीदड़ के यों कहने पर शोक से व्याकुल उन ब्राह्मणों ने फिर श्मशान में बैठकर बालक को गोद में लेकर विलाप करना आरम्भ किया।

७० उन लोगों का रोना सुनकर गिद्ध फिर वहाँ आकर उन लोगों से कहने लगा—हे मनुष्यो, तुम लोग इस बालक के लिए क्यों रोते हो ? यह बालक तो यमराज की आज्ञा से हमेशा के लिए सो गया है। क्या तपस्वी, क्या बुद्धिमान्, क्या धनाढ्य सबकी यही गति होती है। यह तो प्रेत-नगरी है। मनुष्य इस श्मशान में हज़ारों बालकों और वृद्धों को छोड़कर दुःख के मारे

रोते-पीटते रहते हैं। अतएव इस बालक के जिलाने के लिए तुम लोगों का शोक करना और धरना देना व्यर्थ है। यह बालक अब किसी उपाय से नहीं जी सकता। संसार में शरीर त्यागने पर क्या कोई फिर जी सकता है? सैकड़ों गीदड़ मुद्दत तक उद्योग करके भी इस बालक को ज़िन्दा नहीं कर सकते। हाँ, यदि रुद्र, कार्त्तिकेय, ब्रह्मा या विष्णु स्वयं आकर वरदान दे जायँ तो यह जी सकता है। तुम लोगों के आँसू बहाने, ठण्ढी साँस लेने और रोने-चिल्लाने से यह बालक कभी नहीं जी सकता। मैं, गीदड़ और तुम लोग, सभी अपने-अपने पाप-पुण्य भोगते हुए मौत के रास्ते पर चल रहे हैं। यही सोचकर बुद्धिमान् व्यक्ति दूसरों का अप्रिय, कठोर वचनों का प्रयोग, पर-स्त्री-गमन और किसी से विरोध न करें। तुम लोग धर्म, सत्य, सरलता और न्याय का पालन करते हुए शास्त्र का अध्ययन करो और सब प्राणियों पर दया रक्खो। जो मनुष्य माता-पिता और बान्धवों का उपकार नहीं करते वे पाप के भागी होते हैं। ८० अब इस बालक के जीने का कोई लक्षण नहीं देख पड़ता, इसके लिए रोना निष्फल है। गिद्ध की बातें सुनकर ब्राह्मणों ने उस बालक को वहीं छोड़कर स्नेह के मारे रोते हुए अपने घर को जाने का इरादा किया।

तब गीदड़ ने कहा—मर्त्यलोक बड़ा भयानक स्थान है, इससे किसी का निस्तार नहीं है। इस लोक में जीने का समय बहुत थोड़ा है और प्रिय बन्धु-बान्धवों का वियोग सदा होता ही रहता है। संसार में प्रायः सभी काम मिथ्या और अप्रिय हैं। विशेषकर इस शोक के बढ़ानेवाले भाव को देखकर क्षण-भर भी इस लोक में रहने को जी नहीं चाहता। हे मनुष्यो, क्या तुम लोगों में रत्ती भर भी स्नेह नहीं है? तुम लोग दुष्ट गिद्ध के कहने से स्नेह छोड़कर शोक करते हुए क्यों घर लौटे जा रहे हो? सुख के बाद दुःख और दुःख के बाद सुख मिलता है। इस लोक में कोई हमेशा सुख या दुःख नहीं पाता। तुम लोग ऐसे सुन्दर कुल-प्रदीप बालक को फेंककर मूर्ख की तरह कहाँ जाते हो? इस गुणवान् सुन्दर बालक का मुँह देखने से जान पड़ता है कि यह अभी जीवित है। यह बालक अवश्य जी जायगा और तुम लोगों को आनन्द ९० होगा। आज तुम लोगों के आनन्दित होने में कोई सन्देह नहीं। इसलिए इस बालक का परित्याग न करो। भीष्म कहते हैं—श्मशान में रहनेवाले गीदड़ ने, स्वार्थ के लिए, इस प्रकार की बहुत सी मनोहर मिथ्या बातें कहीं। उसकी बातें सुनकर ब्राह्मण लोग अपना कर्तव्य न सोच सके और उसी बालक के पास बैठने लगे।

तब गिद्ध ने कहा—हे मनुष्यो! यह श्मशान-भूमि मुर्दों से भरी हुई, काले बादलों के समान, अति भयङ्कर स्थान है। यहाँ हमेशा यक्ष और राक्षस रहते और उल्लू बोलते रहते हैं। अतएव सूर्य अस्त होने के पहले बालक का प्रेतकर्म कर डालो। वह देखो, सूर्य अस्त होने जा रहे हैं। बाज़ पक्षी कठोर शब्द कर रहे हैं और गीदड़ चिल्ला रहे हैं। गरजते हुए सिंह

इधर-उधर घूमते हैं। चिता के धुएँ से सब पेड़ रँग गये हैं। मांसाहारी जीव, भूखे होने के कारण, बेतरह चिल्ला रहे हैं। थोड़ी देर में भयङ्कर शरीरवाले मांस-लोलुप हिंसक जीव यहाँ
१०० आकर तुम लोगों पर हमला करेंगे। यह जङ्गल बड़ा भयङ्कर है। आज यहाँ रह जाने पर निस्सन्देह तुम लोगों को सङ्कट का सामना करना पड़ेगा। अतएव गीदड़ की बातों पर विश्वास न करके इस मुर्दे को छोड़कर तुम लोगों का यहाँ से चला जाना ही अच्छा है। यदि तुम लोग मूर्खता से गीदड़ की मिथ्या बातों का विश्वास करोगे तो तुम्हारा नाश हो जायगा।

गीदड़ ने कहा—हे मनुष्यो, जब तक सूर्य अस्त नहीं होते तभी तक तुम लोग रोते हुए यहाँ बेखटके ठहरकर बालक को देखो। यदि मूर्खता से गिद्ध की निठुर बातों पर विश्वास करोगे तो फिर इस बालक को हाथ से खो बैठोगे।

भीष्म कहते हैं—हे धर्मराज, भूखे गिद्ध और गीदड़ ने इस प्रकार अपने-अपने स्वार्थ के लिए प्रतिद्वन्द्वी होकर अपनी-अपनी बुद्धि लड़ाकर उस बालक के आत्मीयों को बहुत बहकाया। उन दोनों के असली अभिप्राय को न समझकर और उन दोनों की मीठी-मीठी बातें सुनकर ब्राह्मण लोग अपना कर्तव्य न सोच सके। अन्त को वहीं ठहरने का निश्चय करके वे बालक के पास बैठकर रोने लगे। इसी समय भगवान् शङ्कर उन ब्राह्मणों का दुःख देखकर, पार्वती के
१० कहने पर, वहाँ आये और दया के भाव से उन लोगों से बोले—हे ब्राह्मणो, तुम लोगों को जो वर माँगना हो वह माँग लो। तब उन ब्राह्मणों ने शङ्कर को प्रणाम करके कहा—भगवन्, इस बालक के मरने से हम लोग मुर्दे से हो रहे हैं; इसलिए इसे जिलाकर हम लोगों को जीवित कीजिए। तब आशुतोष शङ्कर ने बालक को सौ वर्ष की आयु देकर जिला दिया। उसी समय शङ्कर की कृपा से गिद्ध और गीदड़ को भी भोजन मिल गया। इस प्रकार उन ब्राह्मणों ने शङ्कर की कृपा से बालक को जीवित पाकर महादेव को प्रणाम किया। उद्योग करने, दृढ़ निश्चय और भगवान् शङ्कर की कृपा से शीघ्र ही शुभ फल मिलता है। भाग्य और उद्योग का विलक्षण प्रभाव है। ब्राह्मण लोग दीन भाव से विलाप करते थे, किन्तु भाग्य और उद्योग की बदौलत शीघ्र ही उनका दुःख दूर हो गया। इसके बाद वे लोग बालक को साथ लेकर, शोक-सन्ताप छोड़कर,
२० बड़ी प्रसन्नता से अपने गाँव को चले गये।

ब्राह्मणों ने जिस तरह बुद्धिमानी से काम किया था उसी तरह सबको हर एक काम सोच-समझकर करना चाहिए। जो मनुष्य धर्म, अर्थ और मोक्ष के देनेवाले इस इतिहास को
१२२ सुनेगा वह इस लोक और परलोक में सुख पावेगा।

एक सौ चौवन अध्याय

बलवान् के साथ विरोध करने के विषय में वायु और सेमर का इतिहास

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह! दुर्बल मनुष्य यदि किसी महापराक्रमी, उद्योगी, उपकार और अपकार करने में समर्थ, पड़ोस के शत्रु को वाक्य द्वारा अपमानित करे और वह कुपित होकर उसका नाश करने के लिए चढ़ आवे तो वह दुर्बल मनुष्य किस प्रकार अपनी रक्षा करे?

भीष्म ने कहा—धर्मराज, इस विषय में वायु और सेमर का प्राचीन संवाद सुनाता हूँ। हिमालय पर्वत पर चार सौ हाथ में फैला हुआ, बड़ा भारी, बहुत पुराना सेमर का पेड़ था। उसके भारी स्कन्ध और फल-फूल-पल्लवों से शोभित अनेक शाखाएँ थीं। उस पर तरह-तरह के पक्षी रहते थे और धूप से व्याकुल मतवाले हाथी तथा अन्यान्य पशु उसकी छाया में बैठते थे। व्यापारी और वन के तपस्वी, यात्रा के समय थक जाने पर, उसकी शीतल छाया में विश्राम करते थे। एक बार देवर्षि नारद ने इस रमणीय वृक्ष की विस्तीर्ण शाखाओं और स्कन्धों को देखकर उसके पास जाकर कहा—हे तरुवर, तुम बहुत ही मनोहर हो। तुम्हें देखने से मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है। पशु-पक्षी और हाथी हमेशा प्रसन्नता से १० तुम्हारी छाया में बैठते हैं। तुम्हारे स्कन्ध और शाखाएँ बहुत भारी हैं; किन्तु वायु के वेग से ये कभी नहीं टूटतीं। भगवान् पवन तुम्हारी रक्षा क्यों करते हैं? वे तुम्हारे आत्मीय हैं या मित्र? देखो, महापराक्रमी वेगवान् वायुदेव वृक्षों को गिरा देते, पर्वत के शिखरों को हिला देते और नदी, तालाब, समुद्र, पाताल आदि को सुखा देते हैं। किन्तु वे तुम्हारा कभी कोई अपकार नहीं करते। जान पड़ता है कि वे मित्र भाव से तुम्हारी रक्षा करते हैं, इसी से तुम फल-फूल-पल्लव और शाखाओं से शोभित हो। ये सब पक्षी प्रसन्नता से तुम्हारी डालियों और टहनियों पर बैठते हैं और जब तुममें फूल फूलने लगते हैं तब मनोहर स्वर से बोलते हैं। ये हाथी आदि पशु धूप से व्याकुल होने पर, झुण्ड के झुण्ड, तुम्हारी शीतल छाया में सुख से बैठते हैं। ब्राह्मण, तपस्वी और संन्यासी लोग हमेशा तुम्हारा आश्रय लेते हैं, अतएव तुम्हारा यह विश्राम-स्थान स्वर्ग और सुमेरु पर्वत के समान है। २१

एक सौ पचपन अध्याय

नारद के पूछने पर सेमर का, वायु से स्पर्धा करते हुए, अपने बल की प्रशंसा करना

नारद कहते हैं—हे वृक्ष, जान पड़ता है कि महापराक्रमी वायु के साथ तुम्हारी मित्रता है इसी से वे तुम्हारी रक्षा करते हैं। संसार में ऐसा पर्वत, घर और वृक्ष मैंने कभी नहीं देखा जो वायु के वेग से गिर न जाता हो। मित्रता के कारण वायु तुम्हारी रक्षा करते हैं, इसी से तुम शाखाओं और पल्लवों समेत निर्विघ्न खड़े हो।

वृक्ष ने कहा—भगवन्! वायु न तो मेरा आत्मीय है, न मित्र या विधाता ही, जो वह कृपा करके मेरी रक्षा करेगा। मेरा तेज और बल उससे कहीं बढ़कर है। उसका बल मेरे बल के अठारहवें हिस्से के बराबर है। वह वृक्ष और पर्वत आदि को गिराता हुआ बड़े वेग से आता है, किन्तु मैं उसे रोक लेता हूँ। इसी तरह वह कितनी ही बार मुझसे हारकर चला गया है। उसे कुपित देखकर भी मुझे कभी डर नहीं लगता।

नारद ने कहा—हे वृक्ष, तुम मूर्ख की सी बातें करते हो। वायु के समान बलवान् कोई नहीं है। तुम्हारी तो क्या बिसात, इन्द्र, यम, कुबेर और वरुण भी वायु की बराबरी नहीं १० कर सकते। भगवान् वायु सभी प्राणियों के प्राणदाता हैं। वे शान्त भाव से भूमण्डल में फैलकर सब प्राणियों को जीवित रखते हैं। वे यदि अशान्त भाव धारण करें तो किसी प्राणी के जीने की आशा न रहे। तुम जो परम पूज्य, जगत् के प्राण, भगवान् वायु का सम्मान नहीं करते हो, यह तुम्हारी मूर्खता है। तुम या तो मूर्खता से ही बकवाद करते हो या क्रोध के वश मिथ्या बातें करते हो। वायु की निन्दा सुनकर मुझे बड़ा क्रोध हो आया है। मैं अभी वायु के पास जाकर उनको तुम्हारी शेखी का हाल सुनाये देता हूँ। चन्दन, स्यन्दन, शाल, देवदारु, वेत और वकुल आदि महाबली वृक्षों ने कभी ऐसी कड़वी बातें नहीं कहीं। उनको अपने और वायु के बल का भेद मालूम है, इसी से वे सदा वायु को सिर झुकाते रहते हैं। तुम मूर्खता के कारण वायु के महापराक्रम को नहीं जानते। जो हो, तुम्हारी ये बातें बतलाने के लिए १९ मैं अभी वायु के पास जाता हूँ।

एक सौ छप्पन अध्याय

नारद के चुग़ली खाने पर सेमर के पास कुपित वायु का आना

भीष्म पितामह ने कहा कि सेमर की ये बातें सुनकर महर्षि नारद ने वायु के पास जाकर कहा—हे पवन, हिमालय पर्वत पर एक बड़ा सा सेमर का वृक्ष है। उसने तुम्हारी अवज्ञा करके जैसी कड़वी बातें तुम्हें कही हैं, वे तुमसे कहने लायक़ नहीं हैं। मैं तुमको बलवानों में श्रेष्ठ, प्रतिष्ठित और यम के समान क्रोधी समझता हूँ।

यह सुनकर भगवान् वायु अत्यन्त कुपित हुए और सेमर के पास जाकर कहने लगे—सेमर, तुमने नारदजी से मेरी निन्दा की है। मैं पवन हूँ। अभी तुमको अपना प्रभाव और बल दिखलाता हूँ। मैं तुमको भली भाँति जानता हूँ। पितामह ब्रह्मा ने, सृष्टि के समय, तुम्हारी छाया में विश्राम किया था। इसी से मैं तुम पर दया करता हूँ और तुम्हारी रक्षा करता हूँ। यह न समझो कि तुम अपने बल-बूते से सुरक्षित हो। जो हो, जब तुम तुच्छ समझकर मेरा अपमान करते हो तब मैं तुम्हें ऐसा बल दिखाऊँगा जिससे तुम मेरा लोहा मान जाओ।

पवन के इस प्रकार कुपित होने पर सेमर मुसकराकर बोला—पवन, तुम कुपित होकर मुझे अपना पराक्रम दिखाओ। तुम क्रोध करके मेरा क्या कर सकते हो? तुमसे मैं रत्ती-भर भी नहीं डरता। मैं तुमसे बलवान् हूँ। जिसमें बुद्धि का बल है वही यथार्थ बलवान् कहा जा सकता है। केवल शारीरिक बल से कोई बलवान् नहीं गिना जाता। १०

'अच्छा, कल अपना पराक्रम दिखाऊँगा।' यह कहकर पवनदेव चले गये। कुछ देर बाद रात हो गई। तब सेमर, पवन के बल और अपनी निर्बलता पर विचार करके, मन में कहने लगा कि मैंने महर्षि नारद से जो कुछ कहा है वह सब झूठ है। मैं वायु के पराक्रम को नहीं सह सकता। नारद का कहना ही ठीक है। वास्तव में वायु महापराक्रमी है। जो हो, मैं दूसरे वृक्षों से निर्बल भले ही हूँ; किन्तु मेरे समान बुद्धिमान् वृक्ष दूसरा नहीं है। अतएव मैं बुद्धिबल के द्वारा वायु के भय से अपनी रक्षा करूँगा। मैं जैसी बुद्धिमानी करना चाहता हूँ वैसी बुद्धिमानी यदि वन के सभी पेड़ करने लगें तो पवन के क्रोध का डर किसी को न रहे। किन्तु इन वृक्षों की बुद्धि बालकों की सी है। वायु कुपित होकर जिस तरह उनका विनाश कर डालता है वह बात उनकी समझ में नहीं आती। १९

एक सौ सत्तावन अध्याय

वायु के डर से सेमर का अपने आप अपनी डालियाँ गिरा देना

भीष्म पितामह कहते हैं—यह सोचकर सेमर स्वयं अपने स्कन्ध, डालियों और टहनियों को काटकर, फल-फूल-पल्लवों से हीन होकर, वायु के आने की प्रतीक्षा करने लगा। सुबह होते ही वायु क्रोध से हरहराता और असंख्य महावृक्षों को उखाड़ता हुआ सेमर के पास आ पहुँचा। उसने देखा कि सेमर ने तो डर के मारे फल-फूल-पल्लवों समेत टहनियों और डालियों को स्वयं गिरा दिया है। उसकी यह दुर्दशा देखकर वायु के आनन्द की सीमा न रही। वायु ने कहा—सेमर, तुमने स्वयं अपनी जैसी दुर्दशा कर ली है वैसी ही मैं भी करता। जो हो, मेरा पराक्रम ही तुम्हारी इस दुर्दशा का कारण है। तुम अपनी दुर्बुद्धि से ही मेरे पराक्रम के वशीभूत होकर स्वयं फल, फूल, शाखा-प्रशाखाओं से हीन हो गये हो।

यह सुनकर सेमर बहुत लज्जित हुआ और पछताने लगा। जो व्यक्ति दुर्बल होकर बलवान् के साथ शत्रुता करता है उसे निस्सन्देह इस सेमर की तरह पश्चात्ताप करना पड़ता है। बलवानों के साथ शत्रुता करना दुर्बलों को उचित नहीं। बराबरवाले शत्रु पर भी बलवान् लोग खुलकर चोट नहीं करते; वे तो धीरे-धीरे ही अपना बल प्रकट करते हैं। मूर्खों का बुद्धिमान् के साथ शत्रुता करना अनुचित है। बुद्धिमान् की बुद्धि, फूस को आग के समान, शत्रुओं को नष्ट कर देती है। संसार में बुद्धि और बल के समान उत्तम और कुछ नहीं है। १०

अतएव बालक, जड़, अन्धे और बहरे के समान बलवान् पर भी क्षमा करनी चाहिए। बलवान् के साथ शत्रुता करने से जो अनिष्ट होता है उसके दृष्टान्त तो तुम्हीं हो। दुर्योधन की ग्यारह अक्षौहिणी सेना और उसका पराक्रम अकेले अर्जुन के समान भी नहीं था। अर्जुन ने संग्राम में अपने बल से सबका नाश कर दिया। हे धर्मराज, मैंने तुमको राजधर्म और आपद्धर्म
१६ विस्तारपूर्वक सुनाया। अब क्या सुनना चाहते हो?

एक सौ अट्ठावन अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से अनिष्ट का कारण लोभ आदि बतलाना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, पाप का स्थान क्या है और उसकी प्रवृत्ति क्योंकर होती है? मैं उसे विस्तारपूर्वक सुनना चाहता हूँ।

भीष्म ने कहा—धर्मराज, मैं पाप का निवास-स्थान बतलाता हूँ, सुनो। अकेला लोभ ही मनुष्यों के सब पुण्य को खा जाता है और लोभ से ही पाप और दुःख की उत्पत्ति होती है। लोभ से काम, क्रोध, मोह, माया, अभिमान, गर्व, पराधीनता, अक्षमा, निर्लज्जता, श्रीहीनता, धर्म का नाश, चिन्ता और अपयश आदि दोष उत्पन्न होते हैं। लोभ ही मनुष्यों में कृपणता, विषयवासना, कुप्रवृत्ति, कुल और विद्या का अभिमान, रूप और ऐश्वर्य का गर्व, अवज्ञा, अविश्वास, कपट का व्यवहार, चोरी और व्यभिचार, मन वाणी और पेट का आवेग, मृत्यु का भय, ईर्ष्या, झूठ बोलने की लत, चटोरपन, दूसरों की निन्दा सुनना, अपनी प्रशंसा
१० करना, अनिष्ट-चिन्तन और असाधारण साहस आदि अनेक दोष पैदा कर देता है। बचपन, जवानी आदि किसी अवस्था में भी मनुष्य लोभ को नहीं छोड़ सकता। मनुष्य के बुढ़ापे में भी लोभ नहीं बुढ़ाता। जैसे अगाध जलवाली नदियों से भी समुद्र परिपूर्ण नहीं होता वैसे ही फल की प्राप्ति से लोभ कभी शान्त नहीं होता। अभीष्ट वस्तुओं के मिलने और विविध भोगों के करने से जिसकी तृप्ति नहीं होती और देवता, गन्धर्व, असुर, उरग तथा अन्यान्य प्राणी जिसके प्रभाव को नहीं समझ सकते, उस लोभ और मोह को जितेन्द्रिय मनुष्य दबावे। जिस लोभी के काम अधूरे रहते हैं वह हमेशा पाखण्ड, द्रोह और दूसरों की निन्दा करता, दूसरों का बुरा चेतता तथा क्रूरता और ईर्ष्या करता रहता है। जो मनुष्य अनेक शास्त्रों के सिद्धान्त का जाननेवाला, बहुदर्शी और दूसरों का सन्देह दूर करनेवाला होता है उसे भी लोभ के वशीभूत होने पर दुःख उठाना पड़ता है। लोभी मनुष्य हमेशा क्रोधी, द्रोही और सदाचारहीन रहता है। वह घास-फूस से ढके हुए कुएँ के समान मनुष्यों का अनिष्ट करनेवाला होता है। लोभी मनुष्यों की बातें तो मीठी होती हैं, किन्तु हृदय क्रूरता से भरा रहता है। वे कपटी धर्म का ढोंग करते हैं। वे अति क्षुद्र और दस्यु-स्वरूप हैं। वे

दुष्ट लोग युक्ति से अधर्म को भी धर्म प्रसिद्ध करते और उसकी स्थापना करते तथा धर्म को चौपट कर देते हैं। अहङ्कार, क्रोध, नींद, हर्ष, शोक और अभिमान ये उनको घेरे रहते हैं। २० सारांश यह कि उनके समान असभ्य और कोई नहीं है।

अब शिष्ट लोगों का वर्णन सुनो। जिन लोगों को पुनर्जन्म और नरक का भय नहीं है, जिन लोगों को प्रिय और अप्रिय दोनों समान हैं तथा जिन लोगों को भोग्य वस्तुओं का कुछ भी लोभ नहीं है, उनको कोई धर्म से डिगा नहीं सकता; जो लोग सदाचारी, जितेन्द्रिय, सत्यव्रती हैं, जो सुख और दुःख पर ध्यान नहीं देते और जो दयालु, दानी, परोपकारी, धैर्यवान् और धर्मज्ञ हैं उनको कोई धर्म से डिगा नहीं सकता; जो लोग हमेशा भक्ति-पूर्वक देवता, पितर और अतिथि का सम्मान करते हैं और दूसरों के हित के लिए प्राण तक देने का इरादा रखते हैं उन धर्मात्माओं को कोई धर्म से डिगा नहीं सकता। उनकी सच्चरित्रता नष्ट नहीं हो सकती। वे लोग बेधड़क सन्मार्गगामी और अहिंसक होते हैं। सज्जनों में सदा उनका आदर होता है। ऐसे महात्मा लोग काम-क्रोधहीन, ममता और अहङ्कार से रहित, नित्य व्रत करनेवाले और सम्मान के पात्र हैं। अतएव उन लोगों की सेवा करना और उनसे धर्म की शिक्षा लेते रहना तुम्हारा कर्तव्य है। वे लोग धन और यश के लोभ से धर्माचरण नहीं करते। शरीर-रक्षा के लिए ही वे भोजन आदि करते हैं। वे कपटी और पाखण्डी नहीं होते। वे कभी शोक, लोभ और ३० मोह के वशीभूत नहीं होते। उनका स्वभाव सरल होता है और वे सत्यवादी होते हैं। तुम उन लोगों की सङ्गति करो। वे न तो लाभ होने पर प्रसन्न होते हैं और न निराश होने पर दुखी होते हैं। वे लोग अहङ्कार और मोह से हीन, सत्त्वगुणी और समदर्शी होते हैं। वे लोग जीवन और मरण को एक सा समझते हैं। तुम जितेन्द्रिय होकर सावधानी से उन धर्मात्माओं का सम्मान करो। दैव के प्रभाव से मनुष्यों के वाक्य विपत्ति और सम्पत्ति के कारण हो जाते हैं। लोभ को जीतने के लिए सत्सङ्ग करना चाहिए। ३५

एक सौ उनसठ अध्याय

अज्ञान के लक्षणों का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह! आपने सब अनर्थों की जड़ लोभ का वर्णन किया, अब अज्ञान का वर्णन विस्तारपूर्वक कीजिए।

भीष्म कहते हैं—धर्मराज, अज्ञान अत्यन्त हानिकारी है। जो मनुष्य अज्ञान के वश होकर पाप करता है और अपनी हानि नहीं समझ सकता तथा हमेशा सज्जनों से द्वेष रखता है वह निस्सन्देह समाज में निन्दनीय होता है। अज्ञान से मनुष्य क्लेश पाता है, उसे दुर्गति और विपत्ति सहनी पड़ती है और वह नरक-गामी होता है।

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह! अज्ञान से ही मनुष्य को दुःख मिलता है, इसलिए अज्ञान की उत्पत्ति, स्थिति, वृद्धि और गति तथा उसका उदय, संयोग, काल, कारण और फल सुनने की इच्छा है।

भीष्म ने कहा—धर्मराज! राग, द्वेष, मोह, हर्ष, शोक, अभिमान, काम, क्रोध, दर्प, आलस्य, सुस्ती, इच्छा, सन्ताप, ईर्ष्या और हिंसा आदि कर्म अज्ञान से ही उत्पन्न होते हैं। इसलिए इन सब को अज्ञान का स्वरूप समझो। तुमने अज्ञान की उत्पत्ति और वृद्धि आदि जो पूछी है वह सब विस्तारपूर्वक सुनो। अज्ञान और लोभ ये दोनों दोष समान फल देते हैं, इसलिए इन दोनों को एक ही समझो। लोभ से ही अज्ञान की उत्पत्ति होती है, लोभ की स्थिति से अज्ञान की स्थिति रहती है, लोभ के नाश से अज्ञान का नाश और लोभ की वृद्धि से
१० अज्ञान की वृद्धि होती है। मोह अज्ञान की जड़ है। जिस समय मनुष्य लोभजनित आशा से विफल होता है उसी समय अज्ञान उत्पन्न होता है। लोभ से अज्ञान और अज्ञान से लोभ उत्पन्न होता है, इसलिए लोभ ही अज्ञान का कारण और फल है। महाराज, लोभ ही सब दोषों की खानि है इसलिए उसका त्याग अवश्य करना चाहिए। जनक, युवनाश्व, वृषादर्भि, प्रसेनजित् और अन्यान्य राजाओं ने लोभ का त्याग करके स्वर्ग प्राप्त किया है। तुम भी उन्हीं
१४ की तरह लोभ का त्याग कर दो। लोभ का त्याग कर देने से दोनों लोकों में सुख भोगोगे।

एक सौ साठ अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से दम गुण की प्रशंसा करना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, संसार में विद्वान् धर्मात्मा मनुष्य का कल्याण कैसे हो सकता है? धर्म का मार्ग बड़ा बीहड़ है और उसकी अनेक शाखाएँ हैं, अतएव किस धर्म का अनुष्ठान करके मनुष्य कृतकार्य हो सकता है? और धर्म का मूल क्या है, यह सब विस्तारपूर्वक कहिए।

भीष्म ने कहा—धर्मराज, तुम जिसे सुनकर अमृत पीने के समान तृप्त हो जाओगे और जिसके द्वारा तुम्हारा कल्याण होगा उस विषय का मैं वर्णन करता हूँ। महर्षियों ने धर्म के अनेक प्रकारों का वर्णन किया है। उनमें संयम ही, सबके मत में, श्रेष्ठ है। तत्त्वदर्शी पण्डितों ने इन्द्रिय-संयम को मुक्ति का उपाय बतलाया है। यह गुण सभी मनुष्यों का और विशेषकर ब्राह्मणों का आवश्यक धर्म है। संयम के प्रभाव से ही ब्राह्मणों के सब काम सिद्ध होते हैं। यह गुण दान, यज्ञ और शास्त्र-ज्ञान की अपेक्षा श्रेष्ठ है। इसके द्वारा तेज बढ़ता है। इन्द्रिय-संयम के समान पवित्र और कुछ नहीं है। मनुष्य इसी के प्रभाव से पापहीन
१० और तेजस्वी होकर ब्रह्मपद प्राप्त कर सकता है। इन्द्रिय-संयम से इस लोक में सिद्धि प्राप्त होती और परलोक में सुख मिलता है। संयमी मनुष्य आसानी से धर्म की प्राप्ति कर सकता

है और बेखटके सोता, जागता और विचरता है। उसका मन हमेशा प्रसन्न रहता है। जो मनुष्य इन्द्रियों के अधीन बना रहता है उसे हमेशा कष्ट उठाना पड़ता है; वह अपने दोष से और अनेक अनर्थ उत्पन्न कर देता है। चारों आश्रमों में इन्द्रिय-संयम श्रेष्ठ बतलाया गया है। इस गुण से जो और अनेक गुण उत्पन्न होते हैं उनका वर्णन सुनो। इन्द्रिय-संयम से क्षमा, धैर्य, अहिंसा, समदर्शिता, सत्य, सरलता, दक्षता, मृदुता, लज्जा, स्थिरता, अदीनता, अक्रोध, सन्तोष, प्रियवादिता, अनसूया, बड़े-बूढ़ों का आदर और प्राणि-दया की उत्पत्ति होती है। जितेन्द्रिय लोग कभी क्रूर व्यवहार नहीं करते, मिथ्या नहीं बोलते, दूसरों का अपमान नहीं करते और किसी की प्रशंसा या निन्दा नहीं करते। इन्द्रिय-दमन के प्रभाव से काम, क्रोध, लोभ, दर्प, आत्म-प्रशंसा, ईर्ष्या और विषयों में अनुराग नहीं होता। अनित्य सुख मिलने से उनको तृप्ति नहीं होती। सम्बन्ध और संयोग से उत्पन्न ममता से उनको कभी क्लेश नहीं होता। जो महात्मा पुरुष न तो ग्राम्य-व्यवहार करते हैं और न आरण्य वे शीघ्र मुक्ति लाभ करते हैं। ब्राह्मण लोग सदाचारी, प्रसन्नचित्त और आत्म-तत्त्वज्ञ होते हैं; वे भी विविध संसर्गों से मुक्त होने पर इस लोक में सम्मान और परलोक में उत्तम गति पाते हैं। सज्जन लोग जो काम करते हैं वे सब काम ज्ञानी तपस्वियों के स्वभाव-सिद्ध हैं। इसलिए उस मार्ग का त्याग करना उचित नहीं। जो जितेन्द्रिय ज्ञानी मनुष्य गृहस्थाश्रम को छोड़कर, वान-प्रस्थी होकर, इस मार्ग का अवलम्बन करते हैं वे आसानी से ब्रह्मत्व पद प्राप्त कर सकते हैं। जो मनुष्य न तो किसी प्राणी से डरता है और न जिससे किसी को डर रहता है उस मुक्त पुरुष को डर ही काहे का? जो मनुष्य प्रारब्ध-कर्म को भोगकर निःशेष कर देते हैं और कर्म का आगे के लिए सञ्चय नहीं करते तथा सब प्राणियों पर समान दृष्टि रखकर सबके साथ मित्रता का व्यवहार करते हैं वे तत्त्वज्ञानी अन्त को ब्रह्म में लीन हो जाते हैं। जैसे आकाश में पक्षियों की और जल में जलचरों की गति नहीं देख पड़ती वैसे ही मुक्त की गति दुर्बोध है। जो लोग घर-द्वार छोड़कर मुक्ति का आश्रय लेते हैं वे बहुत समय तक तेजोमय लोक में निवास करते हैं। जो मनुष्य विधिपूर्वक तप, विद्या, ऐश्वर्य और सब कर्मों को छोड़कर सत्यतापूर्वक विषय और राग से हीन होकर प्रसन्नचित्त और आत्मतत्त्वज्ञ होता है वह इस लोक में सम्मान पाकर परलोक में स्वर्ग की प्राप्ति करके स्वेच्छानुसार सब लोकों में विचरण करता है। तत्त्वज्ञानियों को न तो पुनर्जन्म का भय रह जाता है और न परलोक की ही आशङ्का रहती है। जितेन्द्रियता में एक ही दोष होता है कि क्षमावान् मनुष्य को लोग असमर्थ समझते हैं। इसके सिवा इस गुण में और कोई दोष नहीं है। क्षमावान् मनुष्य क्षमा के प्रभाव से असंख्य मनुष्यों को वश में कर सकते हैं। जितेन्द्रिय मनुष्यों को वन में जाने का क्या प्रयोजन? वे जिस स्थान पर रहते हैं वही स्थान उनके लिए वन और पवित्र आश्रम है।

२०

३१

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, इस प्रकार भीष्म का उपदेश सुनकर धर्मराज युधिष्ठिर अमृत पीने के समान अत्यन्त सन्तुष्ट हुए और फिर उनसे धर्म का विषय पूछने लगे। महात्मा ३८ भीष्म ने भी बड़े स्नेह के साथ कहना आरम्भ किया।

एक सौ इकसठ अध्याय

तप का वर्णन

भीष्म कहते हैं—हे धर्मराज, पण्डितों ने कहा है कि तप सब धर्मों का मूल है। जो मूढ़ मनुष्य तपस्या नहीं करता वह कभी उत्तम फल नहीं भोग सकता। प्रजापति ब्रह्मा ने तप के प्रभाव से ही यह सृष्टि की है और महर्षियों ने तपोबल से ही वेदों पर अधिकार किया है। तपोबल से ही फल-मूल उत्पन्न होते हैं। तप के प्रभाव से सिद्ध लोग तीनों लोकों को देख सकते हैं। तप से ही औषध और नीरोगता प्राप्त होती है। दुर्लभ वस्तु भी तप के बल से सुलभ हो जाती है। पूर्व समय में महर्पियों को तपोबल से ही ऐश्वर्यों की प्राप्ति हुई थी। मदिरापान, चोरी, ब्रह्महत्या और गुरुपत्नी-गमन आदि पाप तप के प्रभाव से छूट जाते हैं। तपस्या अनेक प्रकार की है; उसमें अनशन तप सबसे बढ़कर है। अनशन तप अहिंसा, सत्य, दान और इन्द्रिय-निग्रह से भी श्रेष्ठ है। वेद के विद्वान् पुरुष से श्रेष्ठ और कोई नहीं है। दान से बढ़कर कठिन काम, माता की सेवा से बढ़कर सत्कर्म और संन्यास की अपेक्षा श्रेष्ठ तप १० दूसरा नहीं है। धन-धान्य और धर्म की रक्षा के लिए इन्द्रिय-संयम आवश्यक है। ऋषि, पितर, देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी और अन्यान्य स्थावर-जङ्गम सभी जीवों का निर्वाह तप के प्रभाव से ही होता है। तप के प्रभाव से ही देवताओं ने महत्त्व प्राप्त किया है। अन्य अभीष्ट १३ फलों के लिए क्या कहना, तप के प्रभाव से देवत्व तक प्राप्त किया जा सकता है।

एक सौ बासठ अध्याय

भीष्म का सत्य की प्रशंसा करना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह! ब्राह्मण, ऋषि, पितर और देवगण हमेशा सत्य की प्रशंसा करते हैं। अतएव बतलाइए कि सत्य क्या है, सत्य के क्या लक्षण हैं, वह किस तरह प्राप्त हो सकता है और उसके प्राप्त करने से क्या लाभ है?

भीष्म कहते हैं—धर्मराज, कोई भी महात्मा चातुर्वर्ण्य धर्म में अव्यवस्था होना पसन्द नहीं करता। सत्य निर्विकार है, सत्य ही सज्जनों का पूज्य सनातन धर्म है और वही परम गति है। सत्य की ही शरण में जावे। सत्य ही तप, योग, यज्ञ और ब्रह्म का स्वरूप है। सत्य में ही सब प्रतिष्ठित है। सत्य का लक्षण, सत्य का पालन और जिस तरह सत्य की प्राप्ति हो

सकती है सो सब विस्तार से सुनो। सत्य तेरह प्रकार का है—समदर्शिता, इन्द्रियनिग्रह, अमात्सर्य, क्षमा, लज्जा, सहनशीलता, अनसूया, त्याग, ध्यान, आर्यत्व, धैर्य, दया और अहिंसा। ये सब सत्य के स्वरूप हैं। सत्य अव्यय, निर्विकार और सब धर्मों के अनुकूल है। इसकी प्राप्ति योग से होती है। इच्छा, द्वेष, काम और क्रोध के न होने से ही अपने इष्ट और अनिष्ट की समानता तथा शत्रुओं के साथ समदर्शिता उत्पन्न होती है। बुद्धि के बल से गम्भीरता, धैर्य, निर्भयता और नीरोगता प्राप्त करके इन्द्रिय-निग्रह किया जा सकता है। दान और धर्म में प्रवृत्ति होने पर अमात्सर्य प्राप्त हो सकता है। सत्यवादी मनुष्य उसे आसानी से प्राप्त कर सकता है। क्षमा करने योग्य और क्षमा न करने योग्य तथा प्रिय और अप्रिय को समान समझने से क्षमा गुण आ सकता है। धर्म के प्रभाव से लज्जा की प्राप्ति हो सकती है। लज्जावान् मनुष्य का हमेशा कल्याण होता है। वह कभी दुखी नहीं होता। उसका मन हमेशा शान्त रहता है। सहनशीलता धैर्य से उत्पन्न होती है। धर्म, अर्थ और लोकसंग्रह के लिए सहनशीलता का अवलम्बन करना आवश्यक है। विषय और स्नेह का ही त्याग करना त्याग है। राग-द्वेष का त्याग किये बिना कभी त्याग-रूप महागुण नहीं आ सकता। निःस्पृह रहकर दूसरों की भलाई करना ही आर्यत्व है। सुख और दुःख के समय मन का स्थिर रहना धैर्य का लक्षण है। अपना कल्याण चाहनेवाला मनुष्य हमेशा धैर्य का अवलम्बन करे। जो मनुष्य क्षमावान् और सत्य-परायण होकर हर्ष, भय और क्रोध का त्याग कर सकता है वही धैर्यवान् हो सकता है। मन, वाणी और कर्म से किसी का बुरा न चेतना, सब जीवों पर दया रखना, दान करना और सत्य बोलना सनातन धर्म है। ये सत्य के तेरह लक्षण हैं। सत्य के आश्रय से इनकी वृद्धि होती है। सत्य में असंख्य गुण हैं, उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। इसी से देवता, पितर और ब्राह्मण लोग सत्य की विशेष रूप से प्रशंसा करते हैं। सत्य से बढ़कर धर्म और मिथ्या से बढ़कर पाप नहीं है। सत्य ही धर्म का आधार है इसलिए सत्य का लोप न होने देना चाहिए। सत्य के प्रभाव से दान, दक्षिणा सहित यज्ञ, तप, अग्निहोत्र, वेदाध्ययन आदि अन्यान्य धर्म हो सकते हैं। हज़ार अश्वमेध और सत्य को तोलने पर सत्य हज़ार अश्वमेधों से अधिक निकलेगा। १० २० २६

एक सौ तिरसठ अध्याय

काम, क्रोध आदि तेरह दोषों का वर्णन

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह! काम, क्रोध, मोह, मद, विधित्सा, मात्सर्य, ईर्ष्या, शोक, निन्दा, दुष्कर्म, असूया, कृपा और भय ये तेरह दोष किस तरह उत्पन्न होते हैं?

भीष्म कहते हैं—धर्मराज, ये तेरह दोष मनुष्यों के भीषण शत्रु हैं। ये असावधान मनुष्यों का आश्रय लेकर उन्हें घोर कष्ट देते हैं। ये मनुष्यों को देखते ही भेड़िये की तरह उन

पर हमला करते हैं। मनुष्य को समझ लेना चाहिए कि इन्हीं की बदौलत पाप और दुःख मिलते हैं। इनकी उत्पत्ति, स्थिति और नाश का वर्णन सावधान होकर सुनो। लोभ से क्रोध उत्पन्न होता है। दूसरों के दोष देखने से उसकी वृद्धि होती है और क्षमा से उसका नाश होता है। मन के विकारों से काम की उत्पत्ति होती है। उसका सेवन करने से वह बढ़ता है और आसक्ति हटा देने से वह नष्ट हो जाता है। दूसरों के दोष को देखना असूया है। इसकी
१० उत्पत्ति क्रोध और लोभ से होती है तथा दया और तत्त्वज्ञान से उसका नाश होता है। मोह की उत्पत्ति अज्ञान से और उसकी वृद्धि पाप से होती है। सज्जनों की सङ्गति करने से मोह का नाश हो जाता है। विरुद्ध शास्त्रों के देखने से विविध कामों के आरम्भ करने की इच्छा होती है, उसी का नाम विधित्सा है। तत्त्वज्ञान से उसका नाश हो सकता है। पुत्र आदि के मरने पर स्नेह की अधिकता से शोक पैदा होता है, किन्तु जब नष्ट वस्तु का मिलना दुर्लभ सिद्ध हो जाता है तब, ज्ञान के द्वारा, शोक का नाश हो जाता है। क्रोध और लोभ के वश होने पर दुष्कर्म की उत्पत्ति होती है। दया और वैराग्य से उसका नाश हो सकता है। झूठा व्यवहार और दुष्टों को सङ्गति करने से मात्सर्य उत्पन्न होता है। सज्जनों की सङ्गति से उसका नाश होता है। अहङ्कार, ऐश्वर्य और कुलीनता के अभिमान से मद उत्पन्न होता है, किन्तु इन तीनों का यथार्थ मर्म समझ में आ जाने पर मद का विनाश हो जाता है। काम और हर्ष से ईर्ष्या पैदा होती है और ज्ञान के द्वारा वह नष्ट की जा सकती है। लोकाचार-विरुद्ध कामों के देखने और विद्वेष-पूर्ण वचन सुनने से निन्दा की उत्पत्ति होती है। उपेक्षा कर देने से उसका नाश हो जाता है। बलवान् शत्रु का प्रतीकार न कर सकने पर असूया पैदा होती है, किन्तु करुणा आने पर वह नष्ट हो जाती है। दीन मनुष्यों की दशा देखकर दया उत्पन्न होती है और
२० अपना कर्तव्य समझ लेने पर दया का काम पूरा हो जाता है। अज्ञान से प्राणियों के चित्त में भय उत्पन्न होता है और सांसारिक वस्तुओं की क्षणभङ्गुरता का ज्ञान होने पर भय का नाश हो जाता है। हे धर्मराज, केवल शान्ति-गुण के द्वारा इन तेरह दोषों का नाश किया जा सकता
२२ है। धृतराष्ट्र के पुत्रों में ये सब दोष थे, तुमने उन सबका नाश कर दिया।

एक सौ चौंसठ अध्याय

नृशंसता के लक्षणों का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, लगातार सज्जनों की सङ्गति में रहने के कारण मैं दयालुता को भली भाँति जानता हूँ; किन्तु नृशंस मनुष्यों के आचार-विचार मुझे नहीं मालूम हैं। सज्जन लोग कुआँ, आग और काँटे की तरह नृशंस मनुष्यों को त्याग देते हैं। निठुर मनुष्यों को

दोनों लोकों में घोर दुःख उठाना पड़ता है। अब आप नृशंस मनुष्यों के आचार-विचार का विशेष रूप से वर्णन कीजिए।

भीष्म कहते हैं—धर्मराज, नृशंस मनुष्य हमेशा दुष्कर्म करता रहता है। वह समाज में निन्दनीय होने पर भी दूसरों की निन्दा किया करता है। वह दुर्भाग्य से अपने को वञ्चित समझता है। उसके समान नीच और कोई नहीं है। नृशंस मनुष्य मिथ्या अभिमान करता है, अपनी प्रशंसा करता और दानशीलता प्रकट किया करता है। ऐसा मनुष्य कृपण, कपटी, शङ्कित, मिथ्याभाषी, लोभी, हिंसक होता और आश्रमवासियों से द्वेष रखता है। वह गुण और अवगुण का विचार नहीं करता। वह गुणवान् धर्मात्माओं को पापी समझता है और अपने स्वभाव के समान सबका स्वभाव समझकर किसी पर विश्वास नहीं करता। वह किसी का रत्ती भर भी दोष देख पाता है तो उसको उसी दम प्रकट कर देता है। दूसरे का दोष अपने दोष के समान हो तो उसे छिपा रखता है। उपकारी मनुष्य को शत्रु के समान समझता है और किसी मौक़े पर उसे, धन देकर, फिर तङ्ग करता है। जो मनुष्य सबके सामने अकेला ही स्वादिष्ट उत्तम भोजन करता है वह भी निठुर है। जो मनुष्य पहले ब्राह्मण को देकर फिर बचे हुए को, अपने कुटुम्ब के साथ, भोजन करता है वह इस लोक में परम सुख पाता और परलोक में स्वर्ग-प्राप्ति करता है। १०

हे धर्मराज, मैंने निठुर मनुष्यों का यह वृत्तान्त तुमसे कह दिया। बुद्धिमानों को उनका संसर्ग न करना चाहिए। १३

एक सौ पैंसठ अध्याय

यज्ञ आदि शुभ कर्मों के लिए निर्धन को धन देने और विशेष पापों के प्रायश्चित्त का वर्णन

भीष्म कहते हैं—धर्मराज ! वेद-वेदान्त के विद्वान् यज्ञशील धर्मात्मा सज्जन ब्राह्मणों के धनहीन होने पर आचार्य-कार्य, पितृकार्य और अध्ययन करने के लिए उनको राजा धन दे। जो ब्राह्मण निर्धन नहीं हैं उन्हें दक्षिणा ही दे। अन्य जाति के लोगों को वेदी के बाहर का कच्चा अन्न देना चाहिए। ब्राह्मण लोग वेद और दक्षिणा सहित यज्ञ के स्वरूप हैं। वे लोग परस्पर लाग-डाँट से लगातार यज्ञ करते रहते हैं, अतएव राजा उनको यथायोग्य धन आदि देता रहे। जिन ब्राह्मणों के पास तीन वर्ष या इससे अधिक समय तक भरण-पोषण के लिए पर्याप्त धन-धान्य होता है वही सोमपान कर सकते हैं। किसी यज्ञ करनेवाले का, विशेषकर ब्राह्मण का, यज्ञ यदि धन की कमी से रुका हुआ हो तो धार्मिक राजा को चाहिए कि अनेक पशुओं से सम्पन्न—यज्ञ न करनेवाले, सोम न पीनेवाले—वैश्य का धन छीनकर यज्ञ के लिए दे दे। शूद्र

को यज्ञ करने का अधिकार नहीं है, इसलिए ब्राह्मणों के यज्ञ के निमित्त शूद्रों से भी राजा धन छीन सकता है। सौ गायों के होने पर जो अग्निहोत्र न करे और हज़ार गायें होने पर जो यज्ञ न करे, उनका धन छीनकर ब्राह्मणों को यज्ञ के लिए दे देना राजा का कर्तव्य है। जो मनुष्य दान नहीं करता उसका भी धन, मनादी कराकर, राजा छीन ले। ऐसे काम
१० करने से राजा को बड़ा पुण्य होता है।

जो ब्राह्मण तीन दिन तक भूखा रह चुका है वह यदि नीच काम करनेवाले के घर से, बग़ीचे से या और कहीं से—राजा की आज्ञा के बिना—एक दिन के भोजन के लिए अन्न चुरा ले तो इस अपराध के लिए उस ब्राह्मण को दण्ड देना धर्म के अनुसार राजा का कर्तव्य नहीं। राजा की असावधानी से ही ब्राह्मणों को भोजन का कष्ट होता है, अतएव राजा ब्राह्मणों के आचरणों और विद्वत्ता पर विशेष ध्यान रखकर उनकी जीविका का प्रबन्ध करे और जैसे पिता पुत्र की रक्षा करता है वैसे ही राजा ब्राह्मणों की देख-भाल रक्खे। प्रतिवर्ष वैश्वानर-यज्ञ करता रहे। धर्मात्माओं ने अनुकल्प को श्रेष्ठ धर्म माना है। विश्वेदेवा, साध्य, ब्राह्मण और महर्षिगण आपत्काल में मृत्यु का भय उपस्थित होने पर अनुकल्प धर्म का अवलम्बन करके निर्वाह कर लें। किन्तु जो मनुष्य मुख्य कल्प का पालन करने में समर्थ होता हुआ अनुकल्प का अवलम्बन करता है वह कभी परलोक में उत्तम फल नहीं पा सकता। राजा के सामने अपने महत्त्व का वर्णन विद्वान् ब्राह्मण न करे। क्षत्रिय-बल की अपेक्षा ब्रह्म-बल प्रबल है, अतएव राजा ब्रह्मतेज को सहन नहीं कर सकता। ब्राह्मण लोग कर्ता, शासक, विधाता और देवता हैं, इसलिए ब्राह्मणों को कभी दुर्वचन न कहे जायँ। क्षत्रिय अपने बाहु-बल से, वैश्य और शूद्र धन के बल
२० से और ब्राह्मण मन्त्र तथा होम के बल से आपत्काल में अपनी रक्षा करे। कन्या, युवती, मन्त्रहीन पुरुष, मूर्ख और संस्कारहीन मनुष्य अग्नि में आहुति देने के अधिकारी नहीं हैं। इनमें से यदि कोई किसी के यज्ञ में आहुति देता है तो उसके साथ यज्ञ करनेवाला भी नरक को जाता है। इसलिए यज्ञ कराने में कुशल वेद-वेदान्त के जाननेवाले ब्राह्मण को ही यज्ञ का होता बनाना चाहिए। जो मनुष्य अग्निहोत्र का प्राजापत्य अन्न दान नहीं करते उन्हें धार्मिक लोग आहिताग्नि नहीं कहते। अतएव बिना दक्षिणा के यज्ञ करना उचित नहीं। दक्षिणाहीन यज्ञ करने से यजमान के सन्तान, पशु, पुण्य-फल से उपार्जित स्वर्ग, यश, कीर्ति और आयु ये सब नष्ट हो जाते हैं। जो अग्निहोत्र-हीन ब्राह्मण रजस्वला स्त्री से सहवास करता है वह पापी और अश्रोत्रिय है। जिस गाँव में एक ही कुँवा हो उस गाँव में शूद्रा स्त्री का पति होकर जो ब्राह्मण बारह वर्ष तक रहता है वह शूद्र हो जाता है। जो ब्राह्मण परस्त्री-गमन करता है या वृद्ध क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को पूज्य मानकर आसन देता है उसके प्रायश्चित्त की विधि सुनो। व्रतधारी ब्राह्मण को नीच-वर्ण मनुष्य के साथ बैठने या एक आसन पर सोने से

जो पाप लगता है वह पाप तीन वर्ष तक क्षत्रिय या वैश्य के पीछे, कुशासन पर, बैठने से दूर हो सकता है। खेल के समय, विवाह और बड़े-बूढ़ों के काम के लिए तथा अपने प्राण बचाने के निमित्त जो झूठ बोला जाता है उसकी गिनती पाप में नहीं होती। स्त्री से भी झूठ बोलना पाप नहीं है। नीच मनुष्य से भी, श्रद्धा के साथ, उत्तम विद्या सीख लेनी चाहिए। अशुद्ध स्थान से ३० भी सोना ले लेने में आगा-पीछा न करे। स्त्री, रत्न और जल—धर्म के अनुसार—पवित्र हैं। सुन्दरी स्त्री को नीच कुल से भी ग्रहण करना और विष में से भी अमृत ले लेना अनुचित नहीं है। वर्णसङ्कर होने से बचाने के लिए, गो-ब्राह्मण के हित के लिए और अपनी रक्षा के लिए वैश्य भी शस्त्र ग्रहण कर सकता है। मदिरापान, ब्रह्महत्या, गुरु-स्त्री-गमन, ब्राह्मण का धन चुराना और सोने की चोरी, ये पाँच महापातक हैं। प्राणत्याग करना ही इन पापों का प्रायश्चित्त है। मद्य-पान, ब्राह्मणी-गमन, अगम्यागमन और पतित मनुष्य का संसर्ग करने पर मनुष्य उसी दम पतित हो जाता है। पतित मनुष्य के साथ याजन, अध्ययन और विवाह आदि करनेवाला मनुष्य एक वर्ष के अन्दर पतित हो जाता है; किन्तु पतित के साथ सवारी में बैठने या भोजन करने से पतित नहीं होता। पूर्वोक्त पाँच महापापों के सिवा और सब पापों का प्रायश्चित्त हो सकता है। एक बार पाप का प्रायश्चित्त करके फिर वही पाप करना बड़ा अनुचित काम है। मदिरा पीनेवाले, ब्राह्मणघाती और गुरु-स्त्री-गामी के मरने पर इनका दाहकर्म आदि न किया जाने पर भी दान-दक्षिणा लेना अनुचित नहीं है, क्योंकि इनके मरने पर इनके कुटुम्बियों को अशौच नहीं लगता। गुरु और मन्त्रियों के पतित होने पर धर्मात्मा मनुष्य उनसे सम्बन्ध न रक्खे और उनको प्रायश्चित्त के अयोग्य समझकर उनके साथ बातचीत न करे। तप के प्रभाव से ४० पाप का नाश होता है। चोर (पतित) को चोर कहने से उसी के समान पाप लगता है और जो मनुष्य चोर नहीं है उसे चोर कहने पर चोर की अपेक्षा दूना पाप लगता है। जो कुमारी कन्या व्यभिचार करती है उसे ब्रह्महत्या के पाप का तिहाई पाप लगता है और बाकी पाप उसके साथ व्यभिचार करनेवाले को लगता है। ब्राह्मण को पीटने या उसका तिरस्कार करने पर सौ वर्ष तक प्रेतयोनि में रहने पर भी उस पाप से छुटकारा नहीं मिलता और ब्राह्मण का वध करने पर तो हज़ार वर्ष तक नरक में रहना पड़ता है। ब्राह्मण के शरीर में शस्त्र के द्वारा घाव होने पर उस घाव से निकला हुआ रक्त धूल के जितने अणुओं को गीला करता है उतने ही वर्षों तक शस्त्र मारनेवाले को नरक में रहना पड़ता है। ब्रह्महत्या करनेवाला मनुष्य गो-ब्राह्मण की रक्षा के लिए संग्राम में शस्त्र द्वारा मारे जाने पर या जलती हुई आग में कूदकर जल मरने पर ब्रह्म-हत्या के पाप से छुटकारा पाता है। मदिरा पीनेवाला मनुष्य खौलती हुई मदिरा पीकर शरीर जला देने या जल मरने पर पाप से मुक्त होता है। गुरु की स्त्री से रमण करनेवाला दुरात्मा तपी हुई स्त्री की प्रतिमा का आलिङ्गन करके शरीर त्याग करने पर या 'इन्द्रिय' और अण्डकोष

को काटकर हाथ में लेकर नैऋ्र्त्य दिशा को चले जाने पर या ब्राह्मण के लिए प्राण दे देने पर
५२ अथवा अश्वमेध या गोमेध या अग्निष्टोम यज्ञ करने से उस पाप से छुटकारा पाता है। ब्रह्महत्या करनेवाला मनुष्य बारह वर्ष तक, उस मरे हुए ब्राह्मण की खोपड़ी लेकर, ब्रह्मचर्य धारण करके अपने पाप को प्रकट करता हुआ तपस्या करे। जो मनुष्य गर्भिणी स्त्री को मार डाले उसे इसका दूना प्रायश्चित्त करना चाहिए। मदिरा पीनेवाला मनुष्य ब्रह्मचारी और मिताहारी होकर पृथिवी पर सोवे, तीन वर्ष तक या उससे अधिक समय तक अग्निष्टोम यज्ञ करे, हज़ार बैल और इतनी ही गायें ब्राह्मण को दान करे तो मदिरा पीने के पाप से मुक्त होता है। वैश्य का वध करने पर दो वर्ष अग्निष्टोम का अनुष्ठान, एक सौ बैल और एक सौ गायें तथा शूद्र का वध करने पर एक वर्ष अग्निष्टोम का अनुष्ठान, एक बैल और एक सौ गायें दान करे। कुत्ता, सुअर और गधे के मारने पर शूद्र के मारने का जैसा प्रायश्चित्त करना चाहिए। बिलाव, नीलकण्ठ, मेढक, कौआ, साँप और चूहे के मारने पर पशुहत्या का जैसा पाप लगता है।

अब और पापों के प्रायश्चित्त सुनो। कीड़े-मकोड़े के मारने का पाप पश्चात्ताप करने से और अन्य उपपातक एक वर्ष तक व्रत करने से नष्ट हो जाते हैं। श्रोत्रिय की स्त्री के साथ व्यभिचार करने पर तीन वर्ष तथा अन्य स्त्री-गमन करने पर दो वर्ष ब्रह्मचर्य रखकर दिन के चौथे पहर भोजन करे अथवा तीन दिन केवल जल पीकर रहे और अग्नि में आहुति दे, तो वह
६१ पाप दूर हो सकता है। जो मनुष्य बिना कारण माता-पिता और गुरु का परित्याग करता है वह पतित हो जाता है। स्त्री व्यभिचारिणी हो और घर में ही रहे तो उसे भोजन और वस्त्र देना चाहिए। व्यभिचारी पुरुष के लिए जो व्रत है, वही व्रत व्यभिचारिणी के लिए भी है। जो स्त्री अपने पति को त्यागकर नीच वर्ण के पुरुष का संसर्ग कर ले तो राजा उसे बीच बाज़ार में कुत्तों से नोचवा डाले। व्यभिचारी पुरुष और व्यभिचारिणी स्त्री को लोहे की तपती हुई शय्या पर लेटाकर उसके ऊपर लकड़ियाँ रखवाकर आग लगा दे। जो मनुष्य पाप करके एक वर्ष तक उसका प्रायश्चित्त न करे तो फिर उसे दूना प्रायश्चित्त करना चाहिए। दो वर्ष तक पतित मनुष्य का संसर्ग करने पर तीन वर्ष और चार वर्ष तक पतित का संसर्ग करने पर पाँच वर्ष मौनव्रत धारण करके भीख माँगता फिरे। जेठे भाई का विवाह होने से पहले यदि छोटा भाई अपना विवाह कर ले तो वह, उसकी स्त्री और उसका जेठा भाई तीनों पतित हो जाते हैं। उन तीनों को वैसा प्रायश्चित्त करना चाहिए जैसा वीरघाती को करना पड़ता है अथवा वे एक मास तक चान्द्रायण व्रत या कृच्छ्र व्रत करें। छोटा भाई बड़े भाई से 'आप अपनी पतोहू लीजिए' यह कह-कर अपनी अछूती स्त्री उसे दे दे, उसके बाद बड़े भाई की आज्ञा से फिर अपनी स्त्री को ग्रहण
७० कर ले। ऐसा करने पर वे तीनों उस पाप से मुक्त हो जाते हैं। गाय के अतिरिक्त अन्य पशुओं की हिंसा करने में अधिक दोष नहीं है; क्योंकि पशु-जाति पर मनुष्यों का अधिकार है। गाय की

हत्या करनेवाला मनुष्य पूँछ, और मिट्टी का बर्तन लेकर अपने पाप को प्रकट करता हुआ प्रतिदिन सात घरों में भीख माँगे और उस भीख में जो कुछ मिल जाय उसी से अपना निर्वाह करे। इस तरह घूम-फिरकर वह मनुष्य बारह दिन में उस पाप से छूट जाता है। यदि उसने पूँछ नहीं ली है तो उसे एक वर्ष इसी तरह भीख माँगनी चाहिए। जो मनुष्य दान कर सकता है उसे इस पाप के प्रायश्चित्त-स्वरूप दान करना चाहिए। जो पुरुष धर्मात्मा है वह एक गोदान करने से इस पाप से छुटकारा पा जाता है। जो व्यक्ति कुत्ता, सुअर, मनुष्य, मुर्ग या गदहे का मल-मूत्र अथवा मांस खा लेता है उसको प्रायश्चित्त करना चाहिए। सोमरस पीनेवाला ब्राह्मण यदि मदिरा पीनेवाले मनुष्य के मुँह की गन्ध सूँघ ले तो वह तीन दिन गरम पानी, तीन दिन गरम दूध पिये और तीन दिन वायु का भक्षण करे। सभी मनुष्यों को और विशेषकर ब्राह्मणों को भूल से पाप करने पर इस प्रकार प्रायश्चित्त करना चाहिए। ७८

एक सौ छासठ अध्याय

नकुल के पूछने पर भीष्म द्वारा खड्ग की उत्पत्ति का वर्णन

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, इसके बाद मौक़ा पाकर खड्ग-युद्ध में निपुण नकुल ने बाणों की शय्या पर लेटे हुए भीष्म से कहा—पितामह, लोग धनुष को ही उत्तम शस्त्र बतलाते हैं किन्तु मेरी समझ में तो तलवार सब शस्त्रों में श्रेष्ठ है। देखिए, युद्ध में धनुष टूट जाने या घोड़ों के नष्ट हो जाने पर तलवार से ही रक्षा की जा सकती है। खड्गधारी वीर पुरुष अकेला ही गदा, शक्ति और धनुषधारी वीरों का सामना कर सकता है। सब प्रकार के युद्ध में कौन शस्त्र श्रेष्ठ है? खड्ग को किसके लिए, किसने, किस प्रकार उत्पन्न किया है और इसका आचार्य कौन है? यह जानने की मेरी इच्छा है।

आचार्य द्रोण के शिष्य सुशिक्षित नकुल की बातें सुनकर धनुर्वेद-विशारद धर्मात्मा भीष्म ने युक्तिपूर्ण उत्तर देना आरम्भ किया—नकुल, तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है। मैं इसका उत्तर देता हूँ, सुनो। सृष्टि के आरम्भ में जल ही जल था; न पृथिवी थी और न आकाश। सब १० अन्धकारमय, भयानक, निःशब्द और अचिन्त्य था। तब ब्रह्माजी ने जन्म लेकर वायु, अग्नि, सूर्य, आकाश, ऊर्ध्व, अधः, पृथिवी, दिशा, चन्द्रमा, तारा, नक्षत्र, ग्रह, संवत्सर, ऋतु, मास, पक्ष, पल, क्षण आदि उत्पन्न करके तेजस्वी पुत्रों—मरीचि, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ, अङ्गिरा और भगवान् रुद्र—को उत्पन्न किया। इसके बाद दक्ष प्रजापति ने साठ कन्याएँ उत्पन्न कीं। मरीचि आदि ऋषियों ने सन्तान उत्पन्न करने के लिए उन कन्याओं का पाणिग्रहण किया। इन कन्याओं से देवता, पितर, गन्धर्व, अप्सरा, राक्षस, पशु, पक्षी, मछली, बन्दर, साँप, जल-जीव, उद्भिज, स्वेदज, अण्डज और जरायुज आदि की सृष्टि हुई। इस प्रकार क्रमशः यह संसार

२० स्थावर-जङ्गम प्राणियों से परिपूर्ण हो गया। तब ब्रह्माजी ने वेद-विहित सनातन धर्म उत्पन्न किया। देवता, आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य, सिद्ध, मरुद्गण, महर्षि भृगु, अत्रि, अङ्गिरा, वसिष्ठ, गौतम, अगस्त्य, नारद, पर्वत, कश्यप, बालखिल्य, प्रभास, सिकत, घृतपायी, सोमवायव्य, अग्निकिरण-पायी, आकृष्ट, हंस, अग्नि से उत्पन्न प्रभि, वानप्रस्थ महर्षिगण, आचार्य और पुरोहित लोग इस धर्म का पालन करने लगे। उसी समय हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष, विरोचन, शम्बर, विप्रचित्ति, प्रह्लाद, नमुचि और बलि आदि क्रोधी लोभी दानवों ने ब्रह्मा के शासन में विघ्न डालकर अधर्म करना आरम्भ किया। वे लोग देवताओं से बराबरी करने लगे। वे सब प्राणियों के साथ ३० निष्ठुरता का व्यवहार करने और दण्ड देकर सबको सताने लगे।

तब पितामह ब्रह्मा, प्रजा के हित के लिए, ब्रह्मर्षियों समेत—सौ योजन विस्तृत मणि-रत्न-खचित—बहुत ऊँचे हिमवान् के रमणीय शिखर पर जाकर रहने लगे। हज़ार वर्ष बीतने पर उन्होंने उसी स्थान पर, विधि के अनुसार, एक यज्ञ का आरम्भ किया। इस यज्ञ में यज्ञ-निपुण दीक्षित महर्षि और देवता लोग उपस्थित हुए। ब्रह्मर्षि लोग उसके सदस्य हुए। सुवर्ण के पात्रों और प्रज्वलित अग्नि से वह स्थान सुशोभित हो गया। यज्ञ का आरम्भ होते ही उस प्रज्वलित अग्नि से एक महातेजस्वी दुर्धर्ष पुरुष उत्पन्न हुआ। उसका विशाल शरीर, नील कमल के समान श्याम रङ्ग, तेज़ दाढ़ें और कृश उदर था। इस पुरुष के उत्पन्न होते ही पृथिवी हिलने ४० लगी। समुद्र में बड़े वेग से तरङ्गें उठने लगीं। आकाश से उल्काएँ गिरने लगीं। वृक्षों की शाखाएँ टूटकर गिरने लगीं। सब दिशाएँ मलिन हो उठीं। वायु प्रतिकूल चलने लगा। सब प्राणी डर के मारे घबरा उठे। ब्रह्माजी ने अग्नि से उस पुरुष की उत्पत्ति और इन अशकुनों को देखकर महर्षि, पितर और गन्धर्व लोगों से कहा—मैंने दानवों का नाश और लोक की रक्षा के लिए असि नाम के इस महापराक्रमी पुरुष का स्मरण किया है। ब्रह्मा के यह कहने पर वह पुरुष अपना पहले का रूप छोड़कर, पैना खड्ग होकर, कालान्तक के समान शोभित होने लगा। तब ब्रह्माजी ने अधर्म का नाश करने के लिए देवदेव महादेव को वह खड्ग दिया।

खड्ग लेकर शङ्कर ने अपना वह रूप बदलकर चतुर्भुज रूप धारण कर लिया। उनका सिर सूर्य को स्पर्श करने लगा। उन्होंने सुवर्ण-तारकाओं से शोभित काली मृगछाला पहन ली। उनके मुँह से अनेक रङ्गों की अग्नि-ज्वाला निकलने लगी। सूर्य के समान प्रकाशवाला एक ५० नेत्र तो उनके मस्तक पर था और दो नेत्र काले और पीले रङ्ग के थे। महादेवजी घोर रूप धारण करके, बादलों में बिजली की सी शोभा देते हुए, उस खड्ग को लेकर तिकोनी ढाल उद्यत करके युद्ध करने के लिए घूमने लगे। उनके भीषण गर्जन और हँसने के शब्द से दिशाएँ गूँज उठीं।

जब दानवों ने सुना कि रुद्रदेव ने युद्ध के लिए भयानक रूप धारण किया है तब वे बड़ी प्रसन्नता से पत्थर, अङ्गार और लोहमय घोर अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा करते हुए रुद्रदेव की ओर दौड़

पड़े। पास पहुँचकर उन्हें देखते ही सबके सब घबराकर इधर-उधर भागने लगे। उस समय रुद्रदेव हाथ में तलवार लेकर ऐसे वेग से दौड़ने लगे जिससे दानवों को उनके हज़ारों रूप मालूम पड़ें। रुद्रदेव ने दानवों के दल में घुसकर किसी को छिन्न-भिन्न, किसी को पीड़ित और घायल कर डाला। उनके खड्ग के प्रहार से असंख्य दानवों के हाथ कट गये, अनेकों की छाती फट गई। जो दानव खड्ग से घायल हो गये वे एक-दूसरे को कुचलते और चिल्लाते हुए चारों ओर भागे। कुछ पाताल को भाग गये, कुछ पर्वतों की कन्दराओं में और कुछ जल में जा छिपे। कोई-कोई आकाश-मार्ग से भाग गये। उस घोर संग्राम में पृथिवी रक्त और मांस ६० से भयानक हो उठी। रक्त से लथ-पथ दानवों की लोथों के ढेर ऐसे मालूम होते थे, मानो समरभूमि फूले हुए ढाक के वृक्षों से भरी हुई है।

रुद्रदेव ने इस प्रकार दानवों का संहार करके पृथिवी पर धर्म का प्रचार किया और अपने रुद्र-रूप का त्याग करके कल्याण करनेवाला शिव का रूप धारण कर लिया। तब देवता और ऋषि लोग प्रसन्न होकर जय-जय करने लगे। इसके बाद शङ्कर ने दानवों के रक्त से लिप्त, धर्म की रक्षा करनेवाला, वह भीषण खड्ग विष्णु को दे दिया। विष्णु ने मरीचि मुनि को, मरीचि ने महर्षियों को, महर्षियों ने इन्द्र को और इन्द्र ने लोकपालों को दिया। लोकपालों ने सूर्य के पुत्र मनु को वह खड्ग देकर कहा—तुम मनुष्यों के अधीश्वर हो, अतएव धर्म के मूल इस खड्ग को लेकर प्रजा की रक्षा करो। अपने शरीर और मन को प्रसन्न करने के लिए मनुष्य धर्म का उल्लङ्घन करें तो तुम उन्हें, धर्म के अनुसार, यथायोग्य दण्ड देना। अपराध करने पर मनुष्यों को वाक्य-दण्ड और अर्थ-दण्ड देकर शासन करना। थोड़ा अपराध करने पर ७० किसी को अङ्गहीन कर देना या मार डालना उचित नहीं। वाक्य-दण्ड आदि सम्पूर्ण दण्डों को खड्ग का रूप समझना चाहिए।

बहुत दिनों बाद राज्यकार्य छोड़कर मनु ने, प्रजा की रक्षा के लिए, वह खड्ग अपने पुत्र क्षुप को दिया। क्षुप ने इक्ष्वाकु को, इक्ष्वाकु ने पुरूरवा को, पुरूरवा ने आयु को, आयु ने नहुष को, नहुष ने ययाति को, ययाति ने पुरु को, पुरु ने अमूर्तरया को, अमूर्तरया ने भूमिशय को, भूमिशय ने भरत को, भरत ने ऐलविल को, ऐलविल ने धुन्धुमार को, धुन्धुमार ने काम्बोज-देशीय मुचुकुन्द को और मुचुकुन्द ने मरुत्त को यह खड्ग दिया; मरुत्त ने रैवत को, रैवत ने युवनाश्व को, युवनाश्व ने रघु को, रघु ने इक्ष्वाकुवंशीय हरिणाश्व को, हरिणाश्व ने शुनक को, शुनक ने उशीनर को, उशीनर ने भोज आदि यादवों को, यादवों ने शिवि को, शिवि ने प्रतर्दन को, प्रतर्दन ने अष्टक को, अष्टक ने पृषदश्व को, पृषदश्व ने भरद्वाज-तनय द्रोण को और द्रोण ने ८० कृपाचार्य को यह खड्ग दिया। अब तुम सब भाइयों ने द्रोणाचार्य और कृपाचार्य से यह उत्तम खड्ग पाया है। कृत्तिका इस खड्ग का नक्षत्र है, अग्नि इसका अधिष्ठाता देवता है,

रोहिणी इसका उत्पत्तिस्थान है और रुद्रदेव इसके गुरु हैं। इस खड्ग के जिन आठ गुप्त नामों का उच्चारण करने से युद्ध में विजय मिलती है वे ये हैं—असि, विशसन, खड्ग, तीक्ष्ण-धार, दुरासद, श्रीगर्भ, विजय और धर्मपाल। खड्ग सब अस्त्रों से श्रेष्ठ है। पुराण में वह महेश्वर के अस्त्र के नाम से प्रसिद्ध है। युद्ध में निपुण वीरों को खड्ग की पूजा करनी चाहिए। महाराज पृथु से धनुष की उत्पत्ति हुई है। धनुष के प्रभाव से उन्होंने अनेक रत्न और धन-धान्य का संग्रह करके धर्म के अनुसार पृथिवी का पालन किया था। इसलिए धनुष का भी सम्मान करना चाहिए। हे नकुल, मैंने खड्ग की उत्पत्ति का विस्तारपूर्वक वर्णन किया। इसके
८९ सुनने से इस लोक में कीर्ति मिलती और परलोक में परम सुख मिलता है।

एक सौ सड़सठ अध्याय

युधिष्ठिर के पूछने पर विदुर और भीमसेन आदि का धर्म, अर्थ और काम-विषयक
अपना-अपना मत प्रकट करना और युधिष्ठिर का मोक्ष की प्रशंसा करना

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, अब भीष्म पितामह के चुप हो जाने पर धर्मराज युधिष्ठिर अपने भाइयों और विदुर के साथ घर को गये। वहाँ धर्मराज ने विदुर और अपने भाइयों से पूछा—धर्म, अर्थ और काम के प्रभाव से निर्वाह होता है। इन तीनों में कौन श्रेष्ठ है, कौन मध्यम है और कौन निकृष्ट है तथा काम, क्रोध और लोभ को जीतने के लिए इन तीनों में से किसका अवलम्बन करना चाहिए?

यह सुनकर सबसे पहले प्रतिभाशाली तत्त्वज्ञ विदुर ने धर्मशास्त्र के अनुसार उत्तर दिया—धर्मराज! अध्ययन, तप, दान, श्रद्धा, यज्ञ, क्षमा, सरलता, दया, सत्य और संयम ये सब धर्म की सम्पत्ति हैं। इसलिए आप धर्म का ही अवलम्बन कीजिए। धर्म ही सबसे श्रेष्ठ है। धर्म के प्रभाव से ऋषि लोग संसार-सागर से पार हुए हैं। धर्म से ही सब लोकों की स्थिति है। देवताओं ने भी धर्म के ही बल से उन्नति की है। अर्थ धर्म का अनुगामी है। पण्डितों ने धर्म को सबसे श्रेष्ठ, अर्थ को मध्यम और काम को निकृष्ट बतलाया है। इसलिए सावधानी से धर्म करते रहना चाहिए। सबके साथ वैसा ही बर्ताव करे जैसा कि अपने साथ किया जाना उसे पसन्द हो।

वैशम्पायन कहते हैं कि अब धर्म और अर्थ के मर्मज्ञ अर्थशास्त्र के ज्ञाता अर्जुन ने युधि-
१० ष्ठिर से कहा—राजन्, इस कर्म-भूमि में कर्म ही सबसे बढ़कर है। कृषि, वाणिज्य, पशुओं का पालन और शिल्प आदि सब कर्म अर्थ ही है। धन के बिना धर्म और काम की सिद्धि नहीं हो सकती। धनवान् मनुष्य आसानी से बड़े से बड़ा धर्म कर सकता है और अभीष्ट वस्तुएँ प्राप्त कर सकता है। धर्म और काम अर्थ के अङ्ग-स्वरूप हैं। धन होने पर ये दोनों सुलभ

हो जाते हैं। कुलीन मनुष्य हमेशा, ब्रह्मा के समान, धनवान् की उपासना किया करते हैं। लोग ब्रह्मचारी होकर, सिर मुँड़ाकर और जटा-अजिनधारी होकर, भस्म रमाकर तथा जितेन्द्रिय होकर धन के लिए अलग-अलग निवास करते हैं। विद्वान् और शान्तिप्रिय मनुष्य भी घर-बार छोड़कर, भगवे कपड़े पहनकर, दाढ़ी रखाकर धन की खोज में भटकते हैं। कुछ लोग स्वर्ग के इच्छुक भी होते हैं। आस्तिक, नास्तिक, संयमी और कुलक्रमागत धर्म का पालन करनेवाले सभी लोग धन के भूखे होते हैं। निर्धनता अँधेरा है और धन-दौलत उजेला सा है। जो मनुष्य अपने आश्रितों को भोजन देता और शत्रुओं को परास्त करता है वही वास्तव में अर्थवान् है। मेरी राय में तो अर्थ ही सबसे श्रेष्ठ है। महाराज! मैंने अपना मत प्रकट कर दिया, अब नकुल और सहदेव अपना विचार कहने के लिए उत्सुक हैं, इनकी बातें सुनिए। २०

वैशम्पायन कहते हैं कि इसके बाद धर्म और अर्थ के जाननेवाले नकुल और सहदेव ने कहा—धर्मराज! प्रत्येक मनुष्य सोते-जागते, उठते-बैठते सभी अवस्थाओं में धन पाने के लिए अनेक प्रकार के उद्योग करता रहे। धन अत्यन्त प्रिय और अति दुर्लभ है। धन होने पर मनुष्य की सभी इच्छाएँ पूरी हो सकती हैं। धर्म-युक्त धन और अर्थ-युक्त धर्म अमृत के समान उत्तम है। धनहीन मनुष्य की कोई इच्छा पूरी नहीं हो सकती और अधर्मी को धन मिलेगा कहाँ? जो मनुष्य धर्म और धन दोनों से हीन है उससे सब लोग डरते हैं। इसलिए धर्म को श्रेष्ठ मानकर धन उपार्जन का यत्न करते रहना चाहिए। हमारी इन बातों पर जो विश्वास करेगा उसके लिए कुछ भी दुर्लभ न होगा। सारांश यह कि पहले धर्म का पालन, फिर धर्म के अनुसार धन का उपार्जन और उसके बाद काम में प्रवृत्ति होने से मनुष्य सुखी रह सकता है।

वैशम्पायन कहते हैं कि अब भीमसेन ने कहा—धर्मराज! कामना-हीन मनुष्य से धर्म, अर्थ और काम कुछ भी नहीं हो सकता। अतएव इन तीनों में कामना ही श्रेष्ठ है। फल-मूल और वायु का आहार करनेवाले, जितेन्द्रिय, वेद-वेदान्त के ज्ञाता विद्वान् महर्षि लोग काम (इच्छा) से ही श्राद्ध, यज्ञ, दान देना और लेना तथा तपस्या आदि करते हैं। बनिया, किसान, ३१ ग्वाला और शिल्पी आदि लोग काम के ही प्रभाव से अपने-अपने धन्धे में लगे रहते हैं। काम से ही अनेक लोग समुद्र में जाते हैं। काम अनेक प्रकार का है। काम से ही सभी काम होते हैं। काम से हीन कोई जीव न कभी हुआ है, न है और न होगा। इसलिए काम ही मुख्य पदार्थ है। धर्म और अर्थ काम में ही स्थित हैं। जैसे दही से मक्खन, तिल से तेल, मठे से घी, काठ से फूल और फल श्रेष्ठ होते हैं वैसे ही धर्म और अर्थ की अपेक्षा काम श्रेष्ठ है। जैसे फूलों से शहद उत्पन्न होता है वैसे ही काम से सुख उत्पन्न होते हैं। काम धर्म और अर्थ की उत्पत्ति का स्थान और आत्मा-स्वरूप है। काम (इच्छा) के बिना कोई स्वादिष्ठ मिठाई नहीं खाता और ब्राह्मणों को धन नहीं देता। सारांश यह कि मनुष्य

काम के ही प्रभाव से अनेक धन्धों में लगा रहता है। अतएव धर्म और अर्थ की अपेक्षा काम ही श्रेष्ठ है। महाराज, आप कामना के ही प्रभाव से—विविध अलङ्कारों से अलङ्कृत मत-वाली—सुन्दरी स्त्रियों के साथ विहार करते हैं। कामना से ही हम लोगों की उन्नति हुई है। धर्म, अर्थ और काम के मर्म को समझकर मैंने ऐसा निश्चय किया है। आप इसमें रत्ती-भर भी सन्देह न करें। सज्जन लोग मेरे इस विचार का अवश्य आदर करेंगे। धर्म, अर्थ और काम इन तीनों का समान रूप से सेवन करना चाहिए। इन तीनों में से केवल एक का सेवन करनेवाला मनुष्य अधम है। जो दो को समान समझकर दो का सेवन करता है वह मध्यम और जो समभाव से तीनों का अनुष्ठान करता है वह उत्तम है। चन्दन और सुन्दर
४१ मालाओं से शोभित महाबली भीमसेन इस प्रकार काम की प्रशंसा करके चुप हो गये।

अब धर्मात्माओं में श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर ने विदुर और अपने भाइयों की बातों पर विचार करके और उन्हें असार समझकर उन लोगों से कहा—हे धर्मज्ञो, तुम लोग धर्मशास्त्र के मर्म को जानते हो। तुम लोगों ने जो कुछ कहा है वह सब मैंने सुन लिया। अब तुम लोग सावधान होकर मेरी बात सुनो। जो व्यक्ति पुण्य और पाप कुछ नहीं करता; जो धर्म, अर्थ और काम की परवा नहीं करता और जो मिट्टी के ढेले और सोने को समान समझता है, वही पुरुष सुख-दुःख और अर्थ की सिद्धि से मुक्त रहता है। इस मृत्यु-लोक में सभी जीव जन्म, मृत्यु और बुढ़ापे के बन्धन में बँधे हैं; उन्होंने इस संसार का अनेक बार अनुभव करके मोक्ष की ही प्रशंसा की है। मैं नहीं जानता कि वह मोक्ष क्या पदार्थ है। ब्रह्माजी ने कहा है कि राग-द्वेष में फँसा हुआ मनुष्य मुक्ति नहीं पा सकता; मुक्ति को वही प्राप्त कर सकता है जो सांसारिक सुख-दुःख में कभी लिप्त नहीं होता इसलिए किसी वस्तु को प्रिय या अप्रिय समझना ठीक नहीं। संसार में कोई मनुष्य इच्छानुसार कर्म नहीं कर सकता। विधाता ने जो कर्म निर्धारित कर दिया है वही हम लोग करते हैं। विधाता ने सभी प्राणियों को अपने-अपने कामों में नियुक्त कर दिया है, इसलिए दैव ही बलवान् है। मनुष्य जब धर्म, अर्थ और काम से हीन होने पर मोक्ष की प्राप्ति कर सकता है तब तो, मेरी राय में, मोक्ष ही सबसे बढ़कर है।

वैशम्पायन कहते हैं कि धर्मराज के वचन सुनकर अर्जुन आदि वीर बहुत प्रसन्न हुए। सब भाइयों ने हाथ जोड़कर युधिष्ठिर को प्रणाम किया। अन्य राजाओं ने भी धर्मराज के ये मनो-हर वचन सुनकर उनकी प्रशंसा की। उन लोगों को प्रसन्न देखकर धर्मराज भी उनकी प्रशंसा
५१ करने लगे। इसके बाद धर्मराज ने फिर महामना भीष्म के पास जाकर धर्म-विषयक प्रश्न किया।

एक सौ अड़सठ अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर को मित्र के लक्षण बतलाना और अयोग्य मित्र के दृष्टान्त-स्वरूप गौतम का इतिहास कहना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, किस प्रकार का मनुष्य भला होता है? कौन मनुष्य वर्तमान और भविष्य काल में भलाई कर सकता है, यह मुझे बतलाइए। हित करनेवाला और हितकर वचनों को सुननेवाला मित्र बहुत दुर्लभ है। इसलिए, मेरी राय में तो, अतुल सम्पत्ति और बन्धु-बान्धवों की अपेक्षा मित्र ही श्रेष्ठ है।

भीष्म कहते हैं—बेटा! किन मनुष्यों के साथ मित्रता करनी चाहिए और किस प्रकार के पुरुषों से न करनी चाहिए, इसका वर्णन विस्तारपूर्वक सुनो। लोभी, अधर्मी, शठ, अधम, पापी, शङ्कितचित्त, आलसी, सुस्त, कुटिल, लोक-निन्दित, गुरुस्त्रीगामी, व्यसनी, दुरात्मा, निर्लज्ज, नास्तिक, कामी, झूठ बोलनेवाला, नियमों को न माननेवाला, नासमझ, चुग़लख़ोर, कृतघ्न, दूसरों के दोष देखनेवाला, ईर्ष्या करनेवाला, मदिरा पीनेवाला, निर्दय, दुःशील, अधीर, निठुर, ठग और हमेशा मित्र का अपकार करनेवाला, ये सब मनुष्य मित्रता करने योग्य नहीं होते। जो मनुष्य दूसरों का धन छीन लेने की इच्छा रखता है, जो मित्र के द्वारा बहुत सा धन प्राप्त करके भी सन्तुष्ट नहीं होता, जो मित्र को हमेशा अयोग्य कामों में लगाता है और जो असावधान रहता है तथा एकाएक बेमौक़े उलझ पड़ता है उससे भूलकर भी मित्रता न करनी चाहिए; जो मनुष्य कल्याण करनेवाले मित्रों को त्याग देता है, जो भूल से मित्रों द्वारा थोड़ी भी हानि हो जाने पर उनसे द्वेष मान लेता है और जो अपना ही स्वार्थ चाहता है उसको कभी मित्र न बनावे; जो बातें तो मित्रों की सी करता परन्तु बर्ताव शत्रु का सा करता है, जो हितकर काम को उलटा समझता है, जो कभी अच्छा काम नहीं करता और जो हमेशा जीव-हिंसा किया करता है, उसके साथ कभी मित्रता न करनी चाहिए। १०

अब मित्रता करने योग्य पुरुषों के लक्षण सुनो। कुलीन, सत्यवादी, ज्ञान-विज्ञानवान्, रूप-गुणवान्, सत्सङ्ग करनेवाला, दूरदर्शी और लोभ-मोह-हीन पुरुष मित्रता करने योग्य है; माधुर्य-गुण-सम्पन्न, सत्यप्रतिज्ञ, जितेन्द्रिय, परिश्रमी, कुटुम्ब की रक्षा करनेवाला और निर्दोष मनुष्य मित्रता करने योग्य है। जो मनुष्य यथाशक्ति सत्कार करने पर सन्तुष्ट होता है, जो अकस्मात् क्रोध नहीं करता और चिढ़ जाने पर भी जिसके मन में मैल नहीं आता, जो क्लेश सहकर मित्र का काम करता है और जो मित्र के साथ कभी उदासीनता का बर्ताव नहीं करता उसके साथ मित्रता करनी चाहिए; जो मनुष्य क्रोध, लोभ और मोह के वश होकर मित्र को स्त्रियों पर अत्याचार करने की सलाह नहीं देता, जो मिट्टी के ढेले और सोने को एक सा समझता है और जो अभिमान छोड़कर मित्र का काम करता है, उसके साथ मित्रता करनी चाहिए। जो २०

राजा इस प्रकार के मनुष्यों के साथ मित्रता करता है उसका राज्य, शुक्लपक्ष के चन्द्रमा के समान, प्रतिदिन बढ़ता रहता है। अस्त्र-शस्त्र-विशारद, जितक्रोध, महापराक्रमी और कुल-शील-गुण-सम्पन्न लोगों के साथ मित्रता करना सर्वथा उचित है। मैंने जितने मनुष्यों के साथ मित्रता करने को मना किया है उनमें कृतघ्न और मित्रद्रोही सबसे ख़राब हैं। अतएव ऐसे दुराचारी मनुष्यों का परित्याग कर देना चाहिए।

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, मैं विस्तारपूर्वक सुनना चाहता हूँ कि मित्रद्रोही और कृतघ्न किसे कहते हैं।

भीष्म ने कहा—धर्मराज, इस विषय में उत्तरदेश-निवासी म्लेच्छों के देश का एक प्राचीन वृत्तान्त सुनो। एक बार मध्यदेश-निवासी गौतम नाम का ब्राह्मण भीख माँगता हुआ एक मालदार गाँव में पहुँचा। उस गाँव में ब्राह्मण का एक घर भी न था। वहाँ एक धनवान् दस्यु रहता था। वह दस्यु ब्राह्मणों का भक्त, सत्यप्रतिज्ञ और बड़ा दानी था। भिक्षुक ब्राह्मण ने उसके द्वार पर जाकर उससे वर्ष भर के लिए भोजन की सामग्री और रहने को स्थान माँगा। दस्यु ने उसी दम ब्राह्मण को रहने के लिए स्थान देकर नये कपड़े और एक युवती दासी दी। तब गौतम बहुत प्रसन्न हुआ और बड़े आनन्द से उस दासी के कुटुम्ब का भरण-पोषण करता हुआ उस दस्यु के घर रहने लगा। दस्यु के साथ रहने के कारण उस ब्राह्मण को बाण चलाने की आदत हो गई। वह दस्युओं की तरह प्रतिदिन वन में जाकर वन के हंस आदि जीवों का शिकार करने लगा। लगातार दस्युओं का संसर्ग रहने से वह ब्राह्मण हिंसा-परायण निर्दय हत्यारे दस्युओं के समान आचरण करने लगा। चिड़ियों को मारना ही अपनी जीविका बनाकर वह उस दस्यु के गाँव में बड़े सुख से रहने लगा।

बहुत दिन बीतने पर एक जटा-अजिनधारी विद्वान् विनीत वेदज्ञ ब्राह्मण देवता उस गाँव में आये। वे शुद्धस्वभाव ब्रह्मचारीजी गौतम के प्रिय मित्र थे। वे कभी शूद्र का अन्न नहीं लेते थे इसलिए उस दस्यु के गाँव में ब्राह्मण का घर ढूँढ़ते, चारों ओर घूमते-फिरते अन्त को गौतम के द्वार पर आये। उसी समय गौतम भी शिकार किये हुए हंसों को कन्धे पर लटकाये धनुष-बाण लिये अपने घर आया। उसकी देह में ख़ून लगा हुआ था। अभ्यागत ब्राह्मण ने गौतम को देखते ही पहचान लिया और उससे कहा—अजी तुम तो मध्यदेश-निवासी ब्राह्मण हो; तुम अज्ञान से दस्युओं का यह निन्दित काम क्यों करने लगे? तुम अपने वेदज्ञ विख्यात ज्ञानवान् पूर्वजों का स्मरण करो। तुम उन महात्माओं के कुल में कलङ्क-रूप हो रहे हो। जो हो, अब अपना कर्तव्य समझकर सत्त्वगुण, शील, विद्या, संयम और दया के अनुवर्ती होकर शीघ्र इस स्थान को छोड़ दो।

आगन्तुक ब्रह्मचारी के ये हितकर वचन सुनकर गौतम ने दीन स्वर में कहा—महात्मन्, मैं निर्धन हूँ; मुझे वेद का ज्ञान नहीं है इसी कारण धन कमाने यहाँ आया हूँ। आज मैं आपके

बहुत दिन बीतने पर एक जटा-अजिनधारी विद्वान् विनीत वेदज्ञ ब्राह्मण देवता, उस गाँव में आये।—पृ० ३५७२

दर्शन पाकर कृतार्थ हो गया। दया करके आप आज की रात मेरे ही यहाँ रहिए। कल प्रातःकाल इस स्थान को छोड़कर मैं आपके साथ चला चलूँगा। गौतम के कहने पर ब्रह्मचारी ने, दया करके, उस रात को वहीं निवास किया; किन्तु भूखे रहने पर भी उन्होंने वहाँ कुछ खाया-पिया नहीं। ५२

एक सौ उनहत्तर अध्याय

कृतघ्न गौतम की कथा

भीष्म कहते हैं—सवेरा होते ही आगन्तुक ब्राह्मण से विदा होकर गौतम घर से निकलकर समुद्र की ओर चल पड़ा। राह में, उसी ओर जाता हुआ, बनियों का दल उसे देख पड़ा। वह उसी झुण्ड के पीछे-पीछे बड़ी प्रसन्नता से चला। कुछ देर बाद पहाड़ की गुफा से एक मतवाले हाथी ने निकलकर उन बनियों को नष्ट-भ्रष्ट कर डाला। यह देखकर गौतम बहुत डरा और किसी तरह उस हाथी से प्राण बचाकर उत्तर की ओर भागा। वह असहाय अवस्था में, अकेला, किरात के समान वन में घूमने लगा। समुद्र की ओर जाने की राह पर चलते-चलते वह एक नन्दनवन के समान सुन्दर वन में जा पहुँचा। उसने देखा कि उस वन के वृक्ष हमेशा फल-फूलों से लदे रहते हैं। आम के पेड़ सब ऋतुओं में फलते हैं। शाल, ताल, तमाल, चन्दन और कालागुरु के वृक्ष उस वन में हैं। वहाँ यक्ष और किन्नर विहार किया करते हैं। मनुष्यों के मुँह के समान भारुण्ड और भूलिङ्ग आदि—पहाड़ों और समुद्र के किनारे रहने-वाले—पक्षी मधुर गन्ध से सुगन्धित रमणीय पहाड़ की चट्टानों पर मधुर स्वर से बोल रहे हैं। १० उन पक्षियों के मनोहर शब्द सुनते हुए गौतम ने कुछ दूर चलकर सुवर्ण जैसे चमकीले बालू से आच्छादित, स्वर्ग के समान रमणीय, स्थान में एक पुराना बरगद का पेड़ देखा। उसकी डालियाँ और टहनियाँ चारों ओर फैलकर छत्र सी तन रही थीं। उस बरगद में सुन्दर फूल लगे हुए थे। गौतम बड़ी प्रसन्नता से उस मनोहर वृक्ष के नीचे बैठ गया। सुगन्धित शीतल हवा चलने लगी। उस हवा के लगने से गौतम की थकन मिट गई; वह उस पेड़ के नीचे आराम से सो गया। कुछ देर बाद सन्ध्या हो गई। उसी समय ब्रह्मा का प्रिय मित्र, कश्यप का पुत्र, नाडीजङ्घ नाम का बगला ब्रह्मलोक से अपने घर आया। उसका दूसरा नाम राजधर्मा था। वह देव-कन्या के गर्भ से उत्पन्न हुआ था और देवता के समान तेजस्वी तथा विद्वान् था। २०

चमकीले आभूषणों से शोभित उस पक्षी को देखकर गौतम बड़ा विस्मित हुआ और भूख से व्याकुल होकर उस पक्षी को मारने का विचार करने लगा। पक्षिराज राजधर्मा ने ब्राह्मण को देखकर उससे कुशल पूछकर कहा—ब्रह्मन्, आज मेरा बड़ा भाग्य है जो आप मेरे घर आये हैं। अब दिन डूब गया, इसलिए आप भोजन करके आज की रात यहीं बिताइए। कल प्रातः-काल जहाँ जाना हो वहाँ चले जाइएगा। २४

एक सौ सत्तर अध्याय

गौतम और बगले की बातचीत तथा गौतम का राक्षसराज के नगर में पहुँचना

भीष्म कहते हैं कि महाराज, बगले की मीठी बातें सुनने से गौतम को बड़ा आश्चर्य हुआ। वह कौतुक की दृष्टि से, टकटकी लगाकर, उसकी ओर देखने लगा। अब राजधर्मा ने गौतम से कहा—ब्रह्मन्, मैं कश्यप का पुत्र हूँ; दाक्षायणी मेरी माता हैं। आप मेरा अतिथि-सत्कार स्वीकार करें। इसके पश्चात् पक्षी ने ब्राह्मण का सत्कार किया। शाल के फूलों से शोभित बढ़िया आसन दिया। गङ्गाजी से बड़ी-बड़ी मछलियाँ लाकर उसके सामने रख दीं; आग जला दी। गौतम ने प्रसन्नता से भुनी हुई मछलियाँ खाईं। उसकी थकावट को दूर करने के लिए बगला अपने परों से हवा करने लगा। गौतम की थकावट दूर होने पर राजधर्मा ने उससे नाम और गोत्र पूछा। गौतम ने कहा—मैं ब्राह्मण हूँ, मेरा नाम गौतम है। अब राजधर्मा ने गौतम के लेटने के लिए पुष्पों से सुसज्जित, सुगन्धित पत्तों की, शय्या तैयार कर दी। उस पर गौतम बड़े सुख से आराम करने लगा। तब राजधर्मा ने पूछा—ब्रह्मन्, यहाँ आप किस काम से आये हैं? गौतम ने कहा—पक्षी, मैं दरिद्र हूँ; धन के लिए समुद्र-किनारे जा रहा हूँ। राजधर्मा ने कहा—ब्रह्मन्, आप घबराइए नहीं। आप शीघ्र ही धन लेकर घर लौट जायँगे। बृहस्पति ने चार प्रकार से धन का आगम बतलाया है। (१) दूसरे की सहायता, (२) भाग्य, (३) काम्य और (४) मित्रता से धन की प्राप्ति हो सकती है। आपके साथ मेरी मित्रता हो गई है इसलिए मैं ऐसा उद्योग करूँगा जिससे आप धनवान् हो जायँ। [यह कहकर बगला चुप हो गया और ब्राह्मण भी सो गया।]

१०

सवेरा होने पर राजधर्मा ने एक राह दिखलाकर गौतम से कहा—ब्रह्मन्, आप इसी मार्ग से जाने पर कृतकार्य होंगे। यहाँ से तीन योजन की दूरी पर विरूपाक्ष नाम का महापराक्रमी राक्षसराज रहता है। वह मेरा परम मित्र है। उसके पास जाने पर आपका मनोरथ पूरा होगा। राजधर्मा की बताई राह से गौतम चला। वह भर पेट अमृततुल्य फल

खाता, चन्दन अगुरु आदि वन-वृक्षों को देखता हुआ, चलते-चलते मेरुव्रज नाम के नगर में पहुँचा। उस नगर के तोरण, प्राकार, किवाड़ और अर्गल सब पत्थर के थे। गौतम के पहुँचने पर द्वारपाल ने राक्षसराज को उसके आने की ख़बर दी। राक्षसराज ने जब यह सुना कि मित्र राजधर्मा ने गौतम को भेजा है तब नौकरों को आज्ञा दी कि गौतम को नगर के द्वार पर से शीघ्र मेरे पास ले आओ। आज्ञा पाते ही नौकरों ने तेज़ी से द्वार पर पहुँचकर गौतम से कहा—महाराज, राक्षसराज आपके दर्शन करना चाहते हैं, कृपा करके शीघ्र पधारिए। यह सुनकर गौतम, राक्षसराज को देखने के लिए, विस्मय के साथ नगर की शोभा देखता हुआ शीघ्रता से चला। २१ २६

एक सौ इकहत्तर अध्याय

राक्षसराज से बहुत सा धन पाकर गौतम का फिर बगले के पास आना

भीष्म कहते हैं—जब गौतम राजभवन में पहुँचा तब राक्षसराज विरूपाक्ष ने उसको, बड़ी आव-भगत से, बैठने के लिए आसन दिया और उसका गोत्र, आचार, वेदाध्ययन तथा ब्रह्मचर्य का हाल पूछा। गोत्र, आचार आदि पूछा जाने पर गौतम केवल गोत्र बतलाकर चुप हो रहा। तब राक्षसराज ने उस ब्रह्मतेज से हीन अपढ़ ब्राह्मण से फिर पूछा—भगवन्, आपका निवासस्थान कहाँ है; आपका विवाह किस वंश की स्त्री के साथ हुआ है? ठीक-ठीक बतलाइए। गौतम ने कहा—राजन्! मैं सत्य कहता हूँ, मध्यदेश मेरी जन्म-भूमि है, किरात का घर मेरा निवासस्थान है और एक विधवा शूद्रा मेरी पत्नी है।

यह सुनकर राक्षसराज सोचने लगा कि अब क्या करना चाहिए। यह ब्राह्मण के वंश में पैदा हुआ है, महात्मा राजधर्मा का मित्र है और उन्हीं ने इसे मेरे पास भेजा है। राजधर्मा मेरे भाई, सम्बन्धी और प्रिय मित्र हैं। इसलिए मुझे वही करना चाहिए जिसमें वे सन्तुष्ट रहें। आज कार्तिकी है। आज मैं एक हज़ार ब्राह्मणों को भोजन कराऊँगा। उन्हीं के साथ इसे भी भोजन कराकर बहुत सा धन दे दूँगा। भाग्य से आज पवित्र दिन है और यह मेरे घर अतिथि आ गया है। ब्राह्मणों को देने के लिए संकल्प किया हुआ धन भी रक्खा है। १०

राक्षसराज इस प्रकार सोच रहे थे कि इतने में स्नान करके रेशमी वस्त्र पहने हुए, अनेक अलङ्कारों से भूषित, एक हज़ार विद्वान् ब्राह्मण आ गये। राक्षसेन्द्र विरूपाक्ष ने झट उठकर उन ब्राह्मणों को प्रणाम किया। आज्ञा पाकर नौकरों ने ब्राह्मणों को आसनों पर बैठाया। जब सब ब्राह्मण कुशासन पर बैठ गये तब राक्षसराज ने विधिपूर्वक तिल, कुश और जल से सबकी पूजा की। विश्वेदेवा, अग्नि और पितरों की मूर्त्तियाँ गन्ध-पुष्प आदि पूजा की सामग्री से पूजित होकर चन्द्रमा के समान शोभित होने लगीं। अब राक्षसराज ने ब्राह्मणों को घी, शहद और बढ़िया खीर से परिपूर्ण सोने के बर्तन दिये। ब्राह्मण लोग प्रति वर्ष आषाढ़ और माघ की

पूर्णिमा को इस राक्षसराज के यहाँ बड़े आदर से भोजन-सामग्री पाते थे। कार्तिक की पूर्णिमा को भी यह राक्षस ब्राह्मणों को बहुत सा धन देता था। उसी नियम के अनुसार राक्षसराज ने इस दिन दान करने के लिए मृगछाला, सोना, चाँदी, मणि, मोती, मूँगा और महामूल्य हीरा २० आदि अनेक रत्न एकत्र करके ब्राह्मणों से कहा—आप लोग इच्छानुसार ये रत्न और अपने-अपने भोजन-पात्र लेकर अपने घर जाइए। ब्राह्मणों ने अपनी इच्छा के अनुसार धन लेना आरम्भ किया। तब राक्षसराज ने अनेक देशों से आये हुए राक्षसों को, ब्राह्मणों का अनिष्ट करने से रोककर, फिर उन लोगों से कहा—"ब्राह्मणो, केवल आज के दिन आप लोगों को राक्षसों से डर नहीं है, इसलिए आप लोग अब देर न कीजिए, शीघ्र अपने-अपने स्थान को जाइए।" तब वे लोग मनमाना धन लेकर चल दिये। गौतम भी सोने का भारी बोझा लादकर वहाँ से चलकर, भूख और परिश्रम से व्याकुल हो, उसी बरगद के नीचे आ ठहरा।

कुछ देर बाद मित्रवत्सल राजधर्मा ने गौतम को आया हुआ देख कुशल पूछ करके प्रसन्नता के साथ अपने परों से हवा करके उसकी थकावट दूर की और भोजन की सामग्री लाकर ३० उसके सामने रख दी। भोजन और विश्राम करके गौतम सोचने लगा कि मैंने लोभ में आकर कुली की तरह यह बोझा तो बाँध लिया है, किन्तु मुझे बहुत दूर जाना है और राह में खाने के लिए मेरे पास कुछ है नहीं। खाने की और कोई चीज़ दिखाई भी नहीं देती, इसलिए इसी मोटे-ताज़े बगले को मारकर ले लेना चाहिए। इसका मांस राह में खाने के लिए हो जायगा। ३५ [दुरात्मा कृतघ्न गौतम यह निश्चय करके राजधर्मा को मार डालने के लिए उठा।]

एक सौ बहत्तर अध्याय

कृतघ्न गौतम का उपकारी बगले को मार डालना और गौतम का भी राक्षसराज द्वारा मारा जाना

भीष्म कहते हैं—हे धर्मराज, गौतम जिस स्थान पर लेटा हुआ था उसके पास ही आग जलाकर राजधर्मा भी बेखटके सो रहा था। पापी गौतम ने बगले को निश्चिन्त सोया हुआ देख उसी प्रज्वलित आग में झुलसा दिया। यह पाप करते समय कृतघ्न गौतम के हृदय में रत्ती-भर भी दया न आई, बल्कि वह बहुत प्रसन्न हुआ। उसने पर और रोएँ नोचकर पक्षी को अच्छी तरह भून लिया। अब वह सोने की गठरी लेकर वहाँ से रवाना हुआ।

इधर वह दिन बीत जाने पर राक्षसराज विरूपाक्ष ने मित्र राजधर्मा को न देखकर अपने पुत्र से कहा—बेटा, आज राजधर्मा क्यों नहीं दिखाई दिये? वे प्रतिदिन प्रातःकाल ब्रह्माजी को प्रणाम करने, उनके पास, जाते हैं। लौटते समय मुझसे मिले बिना किसी दिन घर

नहीं जाते। किन्तु आज दो रातें बीत गईं, वे मुझसे मिलने नहीं आये। इस कारण मेरा चित्त घबरा रहा है। तुम शीघ्र जाकर उनका पता लो। जान पड़ता है कि उस ब्रह्मतेज और विद्या से हीन अधम ब्राह्मण गौतम ने उन्हें मार डाला है। उस दुष्ट के लक्षणों से मुझे मालूम हुआ था कि यह भीषण-स्वरूप, निर्दय, दुरात्मा और दस्यु के समान अधम है। वह दुष्ट उसी ओर गया है, इसलिए मैं और भी घबरा रहा हूँ। तुम शीघ्र राजधर्मा के घर जाकर ख़बर लो कि वह जीवित है या नहीं। १०

आज्ञा पाकर उसका पुत्र, अन्यान्य राक्षसों को साथ लेकर, राजधर्मा के घर गया। वहाँ उसने बरगद के नीचे राजधर्मा की हड्डियाँ पड़ी देखीं। बगले की हड्डियाँ देखकर राक्षसराज का पुत्र बड़ा दुखी हुआ। तब वह गौतम को पकड़ने के लिए रोता हुआ बड़ी तेज़ी से अन्यान्य राक्षसों के साथ दौड़ा। बहुत दूर पर उसने देखा कि गौतम—हड्डियों, पंखों और पैरों से हीन—राजधर्मा की लाश लिये चला जा रहा है। उसने गौतम को पकड़कर, मेरुव्रज नगर में लाकर, अपने पिता के सामने खड़ा कर दिया। अपने मित्र की लाश को देखकर, मन्त्रियों और पुरोहितों समेत, राक्षसराज रोने लगा। राजधर्मा के मरने का हाल सुनकर राक्षसराज के घर में भी रोना-पीटना मच गया। बालक, बूढ़े और स्त्रियाँ सभी शोक से व्याकुल हो उठे।

तब कृतघ्न गौतम पर अत्यन्त कुपित होकर मित्रवत्सल विरूपाक्ष ने अपने पुत्र से कहा—बेटा, तुम लोग इस पापी ब्राह्मण को शीघ्र मार डालो। राक्षस लोग इसका मांस खा लें। यह बड़ा पापी है, इसलिए तुम लोगों के हाथ इसका मारा जाना ही भला है। यह आज्ञा पाकर महापराक्रमी राक्षसों ने विरूपाक्ष को प्रणाम करके कहा—महाराज, इस पापी को हम लोग नहीं खाना चाहते। आप इसे चाण्डालों को दे दीजिए। विरूपाक्ष ने राक्षसों की बात मान ली और उन लोगों से कहा—अच्छा, तो अभी इस कृतघ्न ब्राह्मण को चाण्डालों के सिपुर्द कर दो। २२

विरूपाक्ष की आज्ञा से राक्षसों ने पट्टिश से गौतम के शरीर के टुकड़े-टुकड़े करके चाण्डालों को दे दिये। किन्तु चाण्डालों ने भी उस नराधम का मांस खाना स्वीकार न किया। हे धर्मराज, कृतघ्न मनुष्य को राक्षस भी नहीं खाते। ब्रह्मघाती, चोर, खण्डित व्रतवाले और मदिरा पीनेवाले का तो निस्तार हो सकता है, किन्तु कृतघ्न मनुष्य का किसी प्रकार निस्तार नहीं हो सकता। जो अधम मनुष्य मित्रद्रोही, कृतघ्न या क्रूर होता है उसका मांस राक्षस और कीड़े भी नहीं खाते। २६

एक सौ तिहत्तर अध्याय

बगले के मरने पर इन्द्र का राक्षसराज के पास आना और
बगला तथा गौतम का फिर जीवित होना

भीष्म कहते हैं—तब प्रतापी राक्षसराज विरूपाक्ष ने अनेक रत्नों और वस्त्रों से भूषित सुगन्धमय चिता तैयार करके राजधर्मा की प्रेतक्रिया की। उसी समय राजधर्मा की माता दाक्षायणी सुरभि चिता के ऊपर आ गईं। उनके मुँह से दूध से मिला हुआ फेना निकला। वह फेना बकराज राजधर्मा की चिता पर गिर पड़ा। उस फेने का स्पर्श होते ही राजधर्मा फिर जीवित हो उठा और चिता से उतरकर राक्षसराज विरूपाक्ष के पास चला आया। उसी समय इन्द्र ने आकर विरूपाक्ष से कहा—राक्षसराज, भाग्य से तुमने राजधर्मा को फिर जीवित कर लिया है। इसका पूर्व-वृत्तान्त सुनो।

एक बार ब्रह्माजी की सभा में राजधर्मा नहीं पहुँचा। इससे कुपित होकर उन्होंने इसको शाप दे दिया कि यह मूर्ख मेरी सभा में नहीं आया, इसलिए यह जल्दी मारा जायगा। हे राक्षसराज, ब्रह्माजी के उस शाप से ही इसको गौतम ने मार डाला १० था; किन्तु अमृत के स्पर्श से यह फिर जी उठा है।

अब देवराज के चुप हो जाने पर राजधर्मा ने उनको प्रणाम करके कहा—देवराज, यदि आपकी मुझ पर दया-दृष्टि है तो आप मेरे परम मित्र गौतम को ज़िन्दा कर दीजिए। बकराज की यह प्रार्थना सुनकर इन्द्र ने प्रसन्न हो अमृत छिड़ककर गौतम को जिला दिया। इसके बाद राजधर्मा ने पापी मित्र गौतम को गले लगाकर, उसको सम्पत्ति देकर, उसे चले जाने की आज्ञा दी। बगला पहले अपने घर जाकर फिर ब्रह्मा की सभा को गया। राजधर्मा को देखकर ब्रह्मा ने उसका सत्कार किया। इधर गौतम फिर उसी किरात के घर जाकर अपनी शूद्रा स्त्री से दुष्कर्मी पुत्र पैदा करने लगा। जब गौतम ने राजधर्मा को मार डाला था तब देवताओं ने

उसे शाप दिया था कि यह पापी गौतम विधवा शूद्रा के गर्भ से अनेक पुत्र पैदा करके अन्त को नरक में गिरेगा।

हे धर्मराज! यह कथा मैंने महर्षि नारद से सुनी थी, स्मरण करके वही आज तुमको सुना दी है। कृतघ्न मनुष्य को कहीं भी स्थान, यश और सुख नहीं मिल सकता। कृतघ्न मनुष्य पर विश्वास न करना चाहिए। कृतघ्न का निस्तार कभी नहीं हो सकता। मित्र का बुरा न चेतना चाहिए। मित्रद्रोही मनुष्य को बहुत समय तक नरक का घोर दुःख सहना पड़ता है। मित्र की भलाई करना और उसका कृतज्ञ रहना सर्वथा उचित है। मित्र से सम्मान मिलता है और भोग्य वस्तुएँ प्राप्त होती हैं। मित्र के द्वारा अनेक विपत्तियों से छुटकारा मिलता है। अतएव बुद्धिमान् मनुष्य को अनेक प्रकार से मित्र का सम्मान करना चाहिए। बुद्धिमान् मनुष्य पापी कृतघ्न दुरात्मा का परित्याग कर दे। मित्र का बुरा चेतनेवाला मनुष्य कुल का नाशक और नराधम है। हे धर्मराज, मित्रद्रोही और कृतघ्न का यह वृत्तान्त मैंने कह सुनाया। अब क्या सुनना चाहते हो? २०

वैशम्पायन कहते हैं—हे जनमेजय, महात्मा भीष्म से यह उपदेश सुनकर राजा युधिष्ठिर बहुत प्रसन्न हुए। २६

मोक्षधर्मपर्व

एक सौ चौहत्तर अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से मोक्षधर्म-विषयक ब्राह्मण और सेनजित् का संवाद कहना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, आपने राजधर्म के अन्तर्गत आपद्धर्म का वर्णन किया। अब उस धर्म—मोक्ष—का वर्णन कीजिए जो कि सब आश्रमवासियों के लिए श्रेष्ठ है।

भीष्म कहते हैं—बेटा, धर्म के असंख्य द्वार हैं। धर्म कभी निष्फल नहीं होता। गृहस्थ आदि आश्रमवासियों के लिए यज्ञ प्रभृति जितने धर्म निर्दिष्ट हैं उन सब का फल परलोक में ही मिलता है, किन्तु तप का फल प्रत्यक्ष है। तप के प्रभाव से आत्मज्ञान होता, आत्मज्ञान होने से ब्रह्म का साक्षात्कार और आत्मा को परमानन्द होता है। मनुष्य जिस विषय में अनुरक्त होता है उसी विषय को अच्छा समझता है। धर्म के द्वारा चित्त की शुद्धि होने पर संसार तृण के समान तुच्छ जान पड़ता है। धन, स्त्री आदि में जो मनुष्य फँसा रहता है उसे निस्सन्देह घोर दुःखों का सामना करना पड़ता है। अतएव संसार में बुद्धिमान् मनुष्य को मोक्ष की प्राप्ति के लिए अवश्य उपाय करना चाहिए।

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह! धन के नष्ट हो जाने अथवा स्त्री, पुत्र या पिता के मर जाने पर शोक किस प्रकार दूर किया जा सकता है?

भीष्म कहते हैं—धर्मराज! धन का विनाश होने अथवा पिता, पुत्र या स्त्री के मरने पर उत्पन्न हुए शोक को शम दम आदि उपायों के द्वारा दूर करे। इस विषय में एक इतिहास सुनो। प्राचीन समय में पुत्रशोक से पीड़ित महाराज सेनजित् के पास आकर एक ब्राह्मण ने कहा—महाराज, तुम मूर्ख की तरह क्यों शोक कर रहे हो? कुछ दिनों बाद तुम्हारे लिए भी दूसरे लोग शोक करेंगे और जो लोग तुम्हारे लिए शोक करेंगे उनकी भी किसी दिन १० शोचनीय दशा होगी। सारांश यह कि क्या तुम, क्या मैं और क्या तुम्हारे नौकर-चाकर, हम सभी जहाँ से आये हैं वहीं, एक दिन, चले जायँगे।

सेनजित् ने पूछा—भगवन्! आप किस ज्ञान से, किस बुद्धि से, किस तपस्या समाधि और शास्त्र के बल से शोक से दूर रहते हैं?

ब्राह्मण ने कहा—महाराज! देवता मनुष्य पशु-पक्षी सभी जीव अपनी-अपनी करनी का फल पाते हैं। मैं अपने आत्मा को भी अपना नहीं समझता और सारे संसार तक को अपना समझता हूँ। पृथिवी की सारी वस्तुओं पर मेरे ही समान दूसरों का भी अधिकार है, यह मैं भली भाँति ध्यान में रखता हूँ। इसी से मेरे हृदय में हर्ष और विषाद नहीं उत्पन्न होता। जैसे समुद्र में बहती हुई दो लकड़ियाँ एक दूसरी से मिल जाती और फिर जुदा हो जाती हैं, वैसे ही मनुष्यों के पुत्र, पौत्र, सजातीय, सम्बन्धी आदि आत्मीय लोग मिलते और जुदा होते हैं। इस तरह जब संसार में आत्मीय लोगों का वियोग होना निश्चित है तब उनके लिए शोक करना व्यर्थ है। तुम्हारा पुत्र जिस निराकार महापुरुष से उत्पन्न हुआ था उसी में फिर लीन हो गया। तुम्हारा पुत्र तुमको नहीं जानता और तुम भी उसे नहीं पहचानते। तब तुम क्यों उसके लिए शोक करते हो? प्राप्त भोग्य वस्तुओं में सन्तोष न मानने से दुःख उत्पन्न होता है और सन्तोष कर लेने से सुख होता है; संसार में सुख और दुःख पहिये के समान घूमा करते हैं। कोई जीव हमेशा सुख या दुःख नहीं पाता रहता। तुमने पहले सुख भोग लिया है, २० इस समय दुखी हो रहे हो और कुछ दिनों बाद फिर सुख पाओगे। शरीर दुःख और सुख का स्थान है, इसलिए मनुष्य इस शरीर से जैसे काम करता है उन्हीं के अनुसार फल पाता है। शरीर के साथ जीवन उत्पन्न होता है, शरीर के साथ वर्तमान रहता है और शरीर के साथ ही नष्ट हो जाता है। अनेक विषयों में और स्नेह के बन्धन में फँसे हुए अज्ञानी मनुष्य बालू के पुल के समान नष्ट हो जाते हैं। जैसे तेली तिलों को कोल्हू में पेरता है वैसे ही अज्ञान से उत्पन्न क्लेश सब प्राणियों को संसारचक्र में पीड़ित किया करते हैं। अविवेकी मनुष्य स्त्री आदि के लिए चोरी प्रभृति पाप करता है; परन्तु उन पापों के फल को वह अकेला ही इस लोक और पर-लोक में भोगता है। जो मनुष्य स्त्री-पुत्र आदि कुटुम्बियों में अत्यन्त अनुरक्त रहता है वह दलदल में फँसे हुए बुड्ढे जङ्गली हाथी की तरह शोक-सागर में डूबता है। धन के नष्ट होने

और पुत्र, भाई आदि आत्मीय लोगों के मरने पर दावानल के समान विषम दुःख मनुष्यों के हृदय को जलाने लगता है। संसार में सुख-दुःख, सम्पत्ति-विपत्ति सब कुछ भाग्य के अधीन है। बन्धुहीन और बन्धुवाला, मित्रों से युक्त और शत्रुओं से पीड़ित, बुद्धिमान् और बुद्धिहीन सभी मनुष्य अपने भाग्य से सुख पाते हैं। बन्धु-बान्धव सुख का और शत्रु दुःख का कारण नहीं है। बुद्धि से धन नहीं पैदा होता और धन से सुख नहीं मिलता। न तो बुद्धि धन की प्राप्ति का कारण है और न मूर्खता दरिद्रता का कारण है। संसार की यह गति बुद्धिमान् लोग ही समझते हैं। बुद्धिमान्, मूर्ख, वीर, डरपोक, जड़, दूरंदेश, दुर्बल और बलवान् सभी लोग भाग्य से सुख पाते हैं। भाग्य के बिना सुख पाने का उद्योग करना व्यर्थ हो जाता है। बछड़ा, अहीर, मालिक या चोर, जो गाय का दूध पिये उसी की गाय है। उस गाय पर किसी दूसरे की ममता व्यर्थ है। संसार में जो मनुष्य सुषुप्ति अवस्था प्राप्त कर लेता है अथवा जिनको निर्विकल्प समाधि सिद्ध हो जाती है वही ब्रह्मपद प्राप्त करते हैं। भेददर्शी लोगों को अवश्य दुःख भोगना पड़ता है। पण्डित लोग समाधि या सुषुप्ति का आश्रय करते हैं, दूसरे मार्ग पर पैर रखने का इरादा नहीं करते। सुषुप्ति या समाधि से ही मनुष्यों को यथार्थ सुख मिल सकता है। जो मनुष्य बुद्धि के द्वारा स्व-स्वरूप की प्राप्ति करके सुख-दुःख से रहित और मात्सर्यहीन हो जाता है, उसे सांसारिक पदार्थों के संयोग-वियोग विचलित नहीं कर सकते। जिस पढ़े-लिखे व्यक्ति को तत्त्व-ज्ञान नहीं होता वह लगातार सुख और दुःख भोगता रहता है। अविवेकी गर्वित मूर्ख ही शत्रु का विजय और दूसरों का अपमान करता है और स्वर्ग में रहनेवाले देवताओं के समान अपने को सुखी समझता है। सुख के अन्त में दुःख मिलता है। आलस्य ही दुःख का प्रधान कारण है और बुद्धिमत्ता से ही सुख उत्पन्न होता है। ऐश्वर्य और विद्या की प्राप्ति दक्षता से ही हो सकती है। आलसी मनुष्य कभी इनको प्राप्त नहीं कर सकता। सुख-दुःख और प्रिय-अप्रिय जो कुछ आ पड़े उसको बेलाग रहकर भोग लेना ही बुद्धिमान् का कर्तव्य है। संसार में हज़ारों शोक के विषय और सैकड़ों भय के स्थान प्रतिदिन बने रहते हैं। वे मूर्खों को सताते हैं, ज्ञानी लोग उनकी परवा नहीं करते। जो मनुष्य बुद्धिमान्, निपुण, शास्त्रज्ञ, ईर्ष्याहीन, तपस्वी और जितेन्द्रिय होता है और जो स्थिरचित्त होकर समाधि द्वारा ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर लेता है उसे कभी शोक स्पर्श नहीं करता। दूसरी वस्तुओं के लिए क्या कहना, यदि शरीर का कोई अङ्ग भी शोक, भय और दुःख का कारण हो जाय तो उसे भी त्याग दे। विषयों में आसक्ति होना दुःख का कारण है और आसक्ति न रहने से ही सुख मिल सकता है। विषय-सुख का चाहनेवाला मनुष्य विषय-सुख की खोज करते-करते मर मिटता है। वैराग्य से उत्पन्न हुए सुख के सामने इस लोक के विषय-सुख और स्वर्ग के सुख सर्वथा तुच्छ हैं। पण्डित, मूर्ख, बलवान्, निर्बल सभी मनुष्य पूर्व-जन्म में किये हुए शुभ-अशुभ कर्मों का

फल भोगते हैं। इस प्रकार सुख-दुःख और प्रिय-अप्रिय विषय प्राणियों में चक्कर लगाया करते हैं। बुद्धिमान् मनुष्य इन विषयों को भली भाँति समझकर कभी इनके फन्दे में नहीं पड़ता। वह सब विषयों की निन्दा करता और क्रोध को छोड़ देता है; काम को क्रोध का कारण और
५० मनुष्यों की मृत्यु का कारण समझता है। जिसकी विषय-वासनाएँ, कछुए के अङ्गों के समान, सिमट जाती हैं वह आत्मज्योति मनुष्य अपने आत्मा में ही आत्मा का दर्शन करता है। जब मनुष्य राग-द्वेष और विषय का त्याग कर सकता है और जब मन, वचन तथा शरीर से किसी की बुराई करने का इरादा नहीं करता तथा जब न उससे किसी को भय होता है, न वह स्वयं किसी से डरता है तब वह ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति कर सकता है। जब वह सत्य-असत्य, शोक-हर्ष, भय-अभय और प्रिय-अप्रिय का परित्याग कर देता है तब उसका चित्त शान्त हो जाता है। बुद्धिहीन मनुष्य जिसे त्याग नहीं सकते, मनुष्य के वृद्ध होने पर भी जो वृद्धा नहीं होती और जो प्राण का अन्त कर देनेवाला रोग है, उस विषय-तृष्णा का जो त्याग कर देता है वही यथार्थ सुखी है।

प्राचीन समय में पिङ्गला नाम की एक वेश्या ने जो कहा था और क्लेश पाकर जिस तरह उसने सनातन धर्म (योग) प्राप्त किया था वह वृत्तान्त सुनो। एक बार सङ्केत-स्थान में अपने प्रियतम के न आने से वह वेश्या बहुत दुखी हुई। उस दुःख के कारण उसे वैराग्य हो गया। तब वह घबराकर कहने लगी—हाय, जो अन्तर्यामी निर्विकार पुरुष मेरे हृदय में रहता है उसे मैंने, काम के वश होकर, अभी तक नहीं पहचाना। हृदय को आनन्द देनेवाले उस परमात्मा की शरण एक दिन भी नहीं ली। आज मैं आत्मज्ञान के बल से, अज्ञान-स्तम्भ से युक्त, नव दरवाज़ोंवाले घर (शरीर) की ममता छोड़ दूँगी। पहले जिस मनुष्य पर अत्यन्त अनुरक्त थी उसे अब अपना प्रिय नहीं समझूँगी। अब मुझे तत्त्वज्ञान हो गया है इसलिए वह नरक-
६० रूपी धूर्त मुझे धोखा नहीं दे सकता। भगवान् की कृपा से अथवा पूर्व-जन्म की करनी से अनर्थ भी अर्थ हो जाता है। आज मैं ज्ञान के बल से विषय-वासना त्यागकर जितेन्द्रिय हो जाऊँगी। तृष्णाहीन व्यक्ति ही सुखी हैं। इस तरह तृष्णा को छोड़कर पिङ्गला बड़े सुख से रहने लगी।
६३ भीष्म कहते हैं—बेटा! महाराज सेनजित्, ब्राह्मण द्वारा यह उपदेश सुनकर, बड़े प्रसन्न हुए।

एक सौ पचहत्तर अध्याय

पिता और पुत्र के संवाद का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, सब प्राणियों का नाश करनेवाला काल बड़ी जल्दी आक्रमण करता है। इस दशा में मनुष्य किस मार्ग पर चलकर कल्याण प्राप्त करे?

भीष्म ने कहा—बेटा, इस विषय में पिता-पुत्र का संवाद एक प्राचीन इतिहास है। उसे सुनो। किसी विद्वान् ब्राह्मण के मेधावी नाम का एक बुद्धिमान् पुत्र था। मोक्ष-धर्म के ज्ञाता,

प्राचीन समय में पिङ्गला नाम की एक वेश्या ने जो कहा था............वह वृत्तान्त। सुनो वार
सङ्केत स्थान में अपने प्रियतम के न आने से वह वेश्या बहुत दुखी हुई।—पृ० ३५८२

व्यवहार-कुशल मेधावी ने एक बार पिता से पूछा—पिताजी, यह समझकर कि मनुष्य की आयु बहुत जल्द बीत जाती है, विवेकी मनुष्य किन कामों को करे? मैं आपके उपदेश के अनुसार चलूँगा।

पिता ने कहा—बेटा, मनुष्य पहले ब्रह्मचारी रहकर वेद पढ़े। फिर विवाह करके पितरों से उरिन होने के लिए सन्तान उत्पन्न करे और अन्त को विधिपूर्वक अग्न्याधान और यज्ञ करके वानप्रस्थ होकर मुनि हो जावे।

पुत्र ने कहा—पिताजी, मनुष्य हमेशा अभ्याहत और परिवारित रहता है तथा निरन्तर अमोघ विषय आते-जाते रहते हैं। आप मुझे उपदेश तो ऐसा देते हैं, किन्तु आप स्वयं कुछ न कर निश्चिन्त क्यों बैठे हैं?

पिता ने कहा—बेटा, तुम मुझे इस तरह क्यों डरवाते हो? मनुष्य किससे अभ्याहत और किससे परिवारित रहता है और कौन से अमोघ विषय लगातार आते-जाते रहते हैं?

पुत्र ने कहा—पिताजी, मनुष्य हमेशा मृत्यु से अभ्याहत (ताड़ित) और बुढ़ापे से परिवारित (घिरा हुआ) रहता है तथा आयु का अन्त कर देनेवाले दिन-रात हमेशा आते-जाते रहते हैं। आप इस ओर क्यों नहीं ध्यान देते? जब मैं समझता हूँ कि रात और दिन लगातार आकर मनुष्यों की आयु क्षीण कर रहे हैं तब क्यों अज्ञान-रूपी अन्धकार में पड़ा रहूँ? १० प्रत्येक रात्रि मनुष्य की आयु को क्षीण कर रही है तो मनुष्य का जीवन-काल बहुत ही अल्प है। जब मौत सिर पर सवार है तब, थोड़े पानी में रहनेवाले मच्छ की तरह, मनुष्य को सुख कहाँ? मनुष्य की इच्छाएँ पूरी नहीं हो पातीं, इतने में ही मौत आ जाती है और जैसे भेड़िया बकरी को ले भागता है वैसे ही विषयासक्त व्यक्ति को मौत उठा ले जाती है। इसलिए अपने हित का काम आज ही करना चाहिए। देर करना उचित नहीं; क्योंकि मौत किसी का काम पूरा होने या न होने की परवा नहीं करती। अतएव जो काम कल करने का है उसे आज और जो शाम को करने का है उसे सवेरे ही कर लेना चाहिए। क्या जाने मौत किस समय आ जाय। मनुष्य का जीवन क्षणिक है, अतएव युवावस्था से ही धर्म का आचरण करने लगना चाहिए। धर्म से ही इस लोक में कीर्ति और परलोक में सुख मिलता है। मनुष्य मोहवश करने और न करने का कुछ विचार न करके, स्त्री-पुत्र का पालन-पोषण ही करता रहता है; किन्तु जैसे बाघ सोते हुए मृग को ले भागता है वैसे ही मौत उस विषयासक्त को उठा ले जाती है। यह काम पूरा हो गया, वह काम अधूरा पड़ा है, यह काम करना है, इसी धुन में मनुष्य मौत का शिकार हो जाता है। धन-दौलत बटोरते-बटोरते ही मनुष्य मौत के मुँह में चला २० जाता है, उसके मनोरथ पूरे नहीं हो पाते। बलवान्-निर्बल, वीर-डरपोक, पण्डित-मूर्ख किसी को मौत नहीं छोड़ती। पिताजी! जब मौत, बुढ़ापा, रोग तथा और अनेक दुःख के कारण शरीर को घेरे रहते हैं तब आप क्यों निश्चिन्त बैठे हैं? पैदा होते ही मौत और बुढ़ापा पीछे लग

जाता है। बुढ़ापा और मौत जड़-चेतन सभी को घेरे रहती है। स्त्री-पुत्र आदि में आसक्त रहना मृत्यु के मुँह में रहने के समान है और वन है इन्द्रियों के निग्रह करने का स्थान, अतएव वन में रहकर तप करना ही श्रेष्ठ है। स्त्री-पुत्र आदि में आसक्त रहना ही सांसारिक बन्धन की रस्सी है। पुण्यवान् मनुष्य उस रस्सी को काटकर मुक्त हो जाता है और पापी मनुष्य उसी रस्सी में बँधा रह जाता है। जो मनुष्य मन, वाणी और शरीर से कभी किसी की हिंसा नहीं करता उसका अपकार हिंसक जीव और चोर भी नहीं करते। रोग और बुढ़ापा मौत की सेना है। उस सेना का सामना कोई नहीं कर सकता। सत्य का कभी त्याग न करना चाहिए। सत्य अमृत के समान है। अतएव सत्यव्रत, सत्ययोग और श्रद्धालु रहकर सत्य से ही मृत्यु को परास्त करना चाहिए। मृत्यु और अमृत ये दोनों शरीर में ही हैं। मनुष्य मोह के कारण
३० मृत्यु के चक्कर में फँस जाता और सत्य के प्रभाव से अमृत प्राप्त करता है। इसलिए अब मैं ब्रह्माजी के समान काम, क्रोध और हिंसा को छोड़कर—सत्यव्रती और क्षमावान् होकर—सुख-दुःख को समान समझकर मृत्यु का भय छोड़ दूँगा। उत्तरायण सूर्य होने पर मैं शान्तियज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, वाग्यज्ञ, मनोयज्ञ और कर्मयज्ञ करूँगा। मेरे समान मनुष्य कभी हिंसामूलक पशुयज्ञ या अनिष्ट फल देनेवाले क्षत्रिययज्ञ नहीं करते। जिसके मन, वाणी, तप और दान सभी कामों में सत्यता है वह निस्सन्देह परम गति पा सकता है। विद्या के समान नेत्र, सत्य के समान तपस्या, आसक्ति के समान दुःख और त्याग के समान सुख नहीं है। मैं ब्रह्म से ब्रह्म-रूप उत्पन्न हुआ हूँ। मैं ब्रह्मनिष्ठ हूँ। इसलिए मैं कभी भार्या के गर्भ से पुत्र-रूप होकर उत्पन्न नहीं हूँगा। मैं ब्रह्म से ही उत्पन्न हूँगा। एकता, समता, सत्यता, सच्चरित्रता, अहिंसा, सरलता और तपस्या का आचरण तथा यज्ञ आदि सब काम्य कर्मों का त्याग ही ब्राह्मणों का परम धर्म है। मरनेवाले के लिए ऐश्वर्य, बन्धु-बान्धव और स्त्री-पुत्र आदि से क्या प्रयोजन है? अपने पिता और पितामह कहाँ गये, इसका कुछ पता नहीं है, अतएव बुद्धि में प्रविष्ट आत्मा का ही अनुसन्धान कीजिए। भीष्म कहते हैं कि हे युधिष्ठिर, पुत्र की हितकर बातें सुनकर ब्राह्मण ने जैसा काम किया था,
३९ वैसा ही काम तुम भी—सत्य धर्म का पालन करते हुए—करो।

एक सौ छिहत्तर अध्याय

धनवान् और निर्धन मनुष्यों के सुख-दुःख का विवेचन करते हुए
शम्पाक के कथन का वर्णन

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, अपने धर्म के अनुसार चलनेवाले धनवान् और नि न मनुष्यों को सुख और दुःख कैसे मिलता है?

भीष्म कहते हैं—धर्मराज, मैं इस विषय में एक इतिहास सुनाता हूँ। कुछ दिन हुए, शम्पाक नाम के एक दरिद्र ब्राह्मण ने, भोजन-वस्त्र के क्लेश और अपनी स्त्री के दुर्व्यवहार से पीड़ित होकर, गृहस्थ आश्रम छोड़ दिया था। उसने मुझसे कहा था कि संसार में जन्म लेते ही मनुष्यों को अनेक प्रकार के सुख-दुःख घेर लेते हैं, किन्तु मनुष्य यदि सुख या दुःख की प्राप्ति भाग्य के अधीन समझता रहे तो उसे कभी हर्ष या शोक से पीड़ित न होना पड़े। तुम वासना-हीन होने पर भी चित्त का संयम न कर सकने के कारण मोक्ष-धर्म की प्राप्ति नहीं कर सकते। धन और स्त्री आदि भोग्य वस्तुओं का त्याग करके निर्द्वन्द्व रहने में ही सुख मिल सकता है। निःस्पृह व्यक्ति ही सुख से सो सकता है। दुनियादार मनुष्यों के लिए सुख का प्राप्त करना दुर्लभ है, किन्तु वासना का त्याग करनेवाला मनुष्य आसानी से सुखी रह सकता है। शुद्ध आत्मावाले निःस्पृह वैराग्यवान् मनुष्य के समान तीनों लोकों में कोई नहीं है। राज्य और निःस्पृहता की तुलना करने पर निःस्पृहता ही श्रेष्ठ पाई जाती है। इन दोनों में एक बड़ी १० विशेषता यह है कि राज्य का मालिक हमेशा काल से ग्रसित की तरह घबराता रहता है और निःस्पृह मनुष्य—ममता छोड़ देने के कारण—मौत, चोर और आग आदि किसी अनिष्ट से नहीं डरता। जो मनुष्य शान्ति गुण का अवलम्बन करके इच्छानुसार विचरता है और चाहे जहाँ हाथ को ही तकिया बनाकर धरती में सो जाता है उसकी प्रशंसा देवता भी करते हैं। धनवान् मनुष्य क्रोध और लोभ के वश होकर टेढ़ी निगाह से देखता, मुँह बनाता और भौंहें टेढ़ी करता, ओठ चबाता तथा दुर्वचन कहता है। वह यदि पृथ्वी का दान करने के लिए तैयार हो तो भी कोई उसका मुँह नहीं देखना चाहता। जैसे हवा शरद् ऋतु के बादलों को उड़ा ले जाती है वैसे ही ऐश्वर्य मूर्ख मनुष्य को मोहित कर लेता है। तब उसे यह अभिमान उत्पन्न होता है कि 'मैं साधारण मनुष्य नहीं हूँ; मैं कुलीन, रूपवान् और धनवान् हूँ'। इस अभिमान के कारण उसकी बुद्धि नष्ट हो जाती है। तब वह पिता का सञ्चित किया हुआ धन फूँककर अन्त को चोरी करने लगता है। जिस तरह व्याध बाणों से मृग का वध करता है उसी तरह राजा उस कुमार्गगामी चोर को दण्ड देने लगता है। इसके सिवा उसे अस्त्र से पीड़ित होना और आग में जलना आदि अनेक क्लेश सहने पड़ते हैं। अतएव पुत्र आदि अनित्य कामनाओं का त्याग करके, सांसारिक विषयों २० से निवृत्त होकर, अपनी बुद्धि से सब दुःखों को हटाना चाहिए। सांसारिक विषयों का त्याग किये बिना न तो मनुष्य सुख की नींद सो सकता है और न उसे सद्गति प्राप्त हो सकती है। इसलिए आप सब कुछ त्यागकर सुखी हो जाइए। हे धर्मराज, शम्पाक ने हस्तिनापुर में मुझसे इस प्रकार कहा था, अतएव सांसारिक विषयों का त्याग करना ही श्रेष्ठ है। २३

एक सौ सतहत्तर अध्याय

वैराग्य की प्रशंसा करते हुए मङ्की का इतिहास कहना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह ! यदि कोई मनुष्य खेती, वाणिज्य, यज्ञ और दान आदि के लिए धन का उपार्जन करना चाहे तो किस उपाय से सुखी हो ?

भीष्म कहते हैं—बेटा ! जो मनुष्य सर्वत्र सम दृष्टि रखता है, जिसे धन की तृष्णा नहीं होती, जो सत्यवादी है, और जो स्वार्थ को छोड़कर विरक्त हो जाता है वही सुखी है। पण्डितों ने मोक्षसाधन के यही पाँच उपाय बतलाये हैं। इनके सिवा स्वर्ग, धर्म और सुख पाने का दूसरा उपाय नहीं है। मङ्की ने विरक्त होकर जो कहा था वह पुराना इतिहास सुनो। उन्होंने धन कमाने के लिए अनेक उपाय किये, किन्तु बार-बार उनका उद्योग विफल होता रहा। अन्त को उन्होंने थोड़े से धन से दो बछड़े ख़रीदे और बड़े यत्न से उनको पाला। एक दिन मङ्की उन बछड़ों को जुवे में जोतकर, हल खींचना सिखाने के लिए, उन्हें खेत की ओर ले चले। रास्ते में एक ऊँट को बैठा हुआ देखकर बछड़े विदके और उस ऊँट के कन्धे पर जा गिरे। अपने ऊपर बछड़ों के गिर पड़ने से ऊँट कुपित होकर खड़ा हो गया और जुवे में जुते हुए बछड़ों को अपने कन्धे पर तराज़ू के पलड़ों की तरह हिलाता-डुलाता बड़े ज़ोर से भागा। इस तरह बछड़ों को ऊँट के ले भागने पर और बछड़ों को मरते देखकर मङ्की ने कहा—यदि भाग्य में नहीं होता तो बुद्धिमान् मनुष्य अनेक यत्न करने पर भी धन नहीं कमा सकता। बहुत उद्योग करने पर जब मुझे सफलता न हुई तब मैंने धन कमाने के लिए दो बछड़े ख़रीदे। अब दैव के कोप से बछड़ों १० पर यह आफ़त आ गई। मेरे प्रिय बछड़ों को यह ऊँट, रास्ता छोड़कर, गले में दो मणियों के समान लटकाये हुए भागा जा रहा है। दैव-कोप के सिवा इसका और क्या कारण है। अब इस काम में उद्योग करना निष्फल है। यदि उद्योग की महत्ता मान ली जाय तो भी अनुभव से सभी काम भाग्य के अधीन जान पड़ते हैं। जो हो, सुख पाने की इच्छा करनेवाला तृष्णा से बचा रहे। अनासक्त मनुष्य, धन की आशा छोड़कर, सुख से सो सकता है। शुकदेवजी ने सब कुछ छोड़कर घर से वन को चलते समय कहा था कि जो मनुष्य अपनी इच्छा के अनुसार सब कुछ प्राप्त कर सकता है या जो मनुष्य अपनी अभीष्ट वस्तुओं का त्याग कर देता है, उन दोनों में त्याग करनेवाला ही प्रशंसनीय है। धन आदि भोग्य वस्तुओं की इच्छा करनेवाला कोई मनुष्य आज तक तृप्त नहीं हुआ। मूर्ख मनुष्य शरीर और जीवन की रक्षा के लिए सदा यत्न करता रहता है।

अतएव हे इच्छा करनेवाले मन, तू आशा को छोड़कर वैराग्य का आश्रय करके शान्त हो जा। तेरी आशाएँ बार-बार निष्फल हो चुकी हैं तब भी तू नहीं मानता। अब तू यदि मेरा विनाश न करके मेरे साथ खेलवाड़ करना चाहता है तो मुझे वृथा धन के लोभ में फँसाकर पीड़ित न कर। तू बार-बार धन का सञ्चय करके भी उसे सुरक्षित न रख सका, तब भी

तेरी धन की आशा न गई। अब उसे कब छोड़ेगा? हाय, मैं कैसा मूर्ख हूँ कि अब भी तेरा खिलौना बना हुआ हूँ। आज तक कोई मनुष्य इच्छाओं की पूर्ति नहीं कर सका और न आगे कर सकेगा। इसलिए इच्छाओं का त्याग कर देना ही अच्छा है। आशा का त्याग कर देने से किसी के आश्रित नहीं रहना पड़ता। अब सब कुछ त्यागकर मैं मोह-निद्रा से जाग पड़ा हूँ। २०

हे इच्छा! तेरा हृदय वज्र के समान कठोर है, नहीं तो सैकड़ों अनिष्ट होने पर क्या तेरे टुकड़े टुकड़े न हो जाते? मैं तुझे और तेरी प्रिय वस्तुओं को अच्छी तरह जानता हूँ। अब मैं तेरी भलाई के लिए परमात्मा से परम सुख प्राप्त करूँगा। तू सङ्कल्प से पैदा होती है, अतएव मैं सङ्कल्प का त्याग करके तेरी जड़ उखाड़ डालूँगा। धन की इच्छा रहते हुए कभी सुख नहीं मिल सकता और धन का मिलना भी बहुत कठिन होता है। धन की प्राप्ति होने पर अनेक प्रकार की चिन्ताएँ आ घेरती हैं और धन के नष्ट हो जाने पर मृत्यु के समान घोर दुःख होता है। परिश्रम करने पर भी धन मिलने में सन्देह ही रहता है। किसी तरह धन प्राप्त हो जाने पर भी सन्तोष नहीं होता, क्रमशः धन की आशा बढ़ती ही जाती है। मैं भली भाँति समझता हूँ कि धन की आशा मेरे नाश का कारण हो जायगी इसलिए हे तृष्णा, तू मुझे छोड़ दे। जो पञ्चभूत मेरे शरीर में रहते हैं वे चाहे जहाँ चले जायँ। अहङ्कार आदि काम और लोभ के पिट्ठू हैं, अतएव उन पर मुझे रत्ती-भर भी स्नेह नहीं है। अब मैं उनका त्याग करके सत्त्वगुण का आश्रय लूँगा। मैं आत्मा का दर्शन करने के लिए योग-विधि का आश्रय लूँगा; श्रवण, मनन आदि में चित्त-वृत्ति को लगाऊँगा और मन को आत्मा में मिलाकर शान्ति और सुख से विचरूँगा। हे इच्छा, ऐसा करने से तू मुझे सांसारिक विषयों में फँसाकर फिर दुःख न दे सकेगी। तृष्णा, शोक और परिश्रम आदि सब तुझी से पैदा होते हैं। इसलिए मैं अवश्य तुझे त्याग दूँगा। धन में अनेक दोष हैं। धन नष्ट होने पर बेहद दुःख होता है। भाई-बन्धु और मित्र निर्धन मनुष्य का अनादर करते हैं। निर्धनता में बड़े-बड़े दोष हैं। धन से जो थोड़ा सा सुख मिलता है वह भी दुःखमय है। पूँजीपति को चोर तरह-तरह से सताते रहते हैं। जो हो, अब बहुत दिनों के बाद मेरी समझ में आ गया है कि तृष्णा से बढ़कर दूसरा दुःख नहीं है। जितनी ही तृष्णा बढ़ती जाती है उतना ही अधिक दुःख होता जाता है। हे इच्छा! तू शरीर को आग के समान जलाती है, तू नासमझ बालक की तरह है, तू जैसे चाहती है वैसे ही मुझे फँसाकर नचाती है। तू नहीं समझती कि कौन वस्तु सुलभ है और कौन दुर्लभ। पाताल की तरह तू किसी तरह भरी नहीं जा सकती। तू बार-बार मुझे दुःख देती है, इसलिए आज से मैं तेरा साथ छोड़ता हूँ। आज बछड़ों के नष्ट हो जाने के दुःख से मैं सांसारिक सुखों की इच्छा छोड़ता हूँ, इसलिए अब तू कभी मेरे पास नहीं फटकने पावेगी। अभी तक मूर्खता के कारण मैं तुझे नहीं समझ पाया था, इसी से अनेक प्रकार के दुःख उठाने पड़े; किन्तु अब ३० ४०

बछड़ों का नाश हो जाने से मुझे वैराग्य हो गया है इसलिए तेरा त्याग करके बेखटके रहूँगा। अब तू मुझे खिलौना नहीं बना सकेगी। कोई मुझे सतावेगा या अपमान करेगा तो मैं उसे चुपचाप सह लूँगा। किसी से न तो द्वेष रक्खूँगा और न अप्रिय वचन कहकर किसी का जी दुखाऊँगा। जो कुछ मिल जायगा उसी में सन्तुष्ट रहकर सुख मानूँगा। तू मेरी परम शत्रु है, इसलिए तुझे अपने पास न रहने दूँगा। अब मुझे वैराग्य, सुख, सन्तोष, शान्ति, सत्य, शम, दम, क्षमा और दया, ये सब प्राप्त हो गये हैं, इसलिए अब काम, लोभ, तृष्णा और दीनता मुझे छोड़ दें। मैं लोभ को छोड़कर सुखी हो गया हूँ। जो मनुष्य जितना ही इच्छाओं का त्याग कर सकता है वह उतना ही अधिक सुखी हो सकता है। काम के वश रहनेवाला मनुष्य दुःख भोगता रहता है। रजोगुण से काम की उत्पत्ति होती है और काम-क्रोध के वश में हो जाने से दुःख मिलता है। तब मनुष्य निर्लज्ज हो जाता है। इसलिए रजोगुण का त्याग कर देना चाहिए। ग्रीष्म-काल के शीतल सरोवर में जैसे मनुष्य को शान्ति मिलती है वैसे ही मैं ५० ब्रह्म का आश्रय करूँगा और सब कर्मों का त्याग करके शान्ति-सुख का अनुभव करूँगा। तृष्णा के नष्ट हो जाने में जो सुख है उसके सामने सांसारिक सुख तथा पारलौकिक सुख कोई चीज़ नहीं। अब मैं अपने परम शत्रु काम का नाश करके ब्रह्म-रूप सुखमय नगर में राजा की तरह रहूँगा। हे धर्मराज, बछड़ों के नष्ट हो जाने पर महात्मा मङ्की इस प्रकार वैराग्य के प्रभाव से ५४ विषय-वासनाओं का त्याग करके ब्रह्मानन्द-स्वरूप परम सुख भोगते हुए उत्तम गति को प्राप्त हुए।

एक सौ अठहत्तर अध्याय

वैराग्य-विषयक महात्मा बोध्य के चरित का वर्णन

भीष्म कहते हैं—युधिष्ठिर, इस सिलसिले में शान्तिप्रिय विदेहराज जनक ने कहा था कि इतना ऐश्वर्य होने पर भी मैं दरिद्र हूँ; यदि यह मिथिला नगरी जलकर भस्म हो जाय तो भी मेरी कुछ हानि नहीं है। इस विषय में महात्मा बोध्य ने उपदेश-स्वरूप जो बातें कही हैं उन्हें सुनो। एक बार राजा ययाति ने शान्त-स्वभाव शास्त्रज्ञ महर्षि बोध्य से पूछा—महर्षि, आप किस बुद्धि के अनुसार शान्ति गुण का अवलम्बन करके परम सुख से रहते हैं?

बोध्य ने कहा—महाराज! मैं तो स्वयं दूसरों के उपदेश के अनुसार चलता हूँ, किसी को कुछ उपदेश नहीं देता। जो हो, मैंने जिन-जिनसे शिक्षा ली है उनके नाम बतलाता हूँ। उन्हें सुनकर तुम स्वयं विचार कर लो। पिङ्गला, कुरर, साँप, भौंरा, बाण बनानेवाला और कन्या, ये छः मेरे गुरु हैं।

भीष्म कहते हैं—धर्मराज, आशा सबसे बढ़कर बलवती है। उसका नाश करने पर परम सुख मिल सकता है। पिङ्गला आशा को छोड़कर बेखटके हो गई थी। कुरर पक्षी को

मांस लिये हुए देखकर मांसरहित दूसरे कुरर उसे मारने दौड़ते हैं, तब वह कुरर मांस छोड़ देने पर सुखी होता है। घर का बनाना सुख का कारण नहीं है। देखो, साँप दूसरों के बनाये हुए बिल में बड़े सुख से रहता है। तपस्वी लोग भीख माँगकर भौंरे की तरह घूमते हुए शान्ति- १० पूर्वक सुख से निर्वाह करते हैं। एक कारीगर बाण बनाने में ऐसा एकाग्रचित्त था कि सामने से राजा की सवारी निकल गई पर उसे मालूम ही न हुआ। एक कन्या अपने पिता के घर, अतिथियों को भोजन कराने के लिए गुप्त रीति से धान कूट रही थी। मूसल उठाने पर उसके हाथ की शंख की चूड़ियाँ खनखनाने लगीं। तब उसने हाथों में एक-एक ही चूड़ी रहने दी। अतएव अकेले रहने से किसी के साथ विवाद होने की आशंका नहीं रहती। १३

एक सौ उन्नासी अध्याय

वैराग्य-विषयक आजगर और प्रह्लाद का इतिहास

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, मनुष्य कैसे आचरण करने पर शोक से छुटकारा पा सकता है और किन कामों के करने से उत्तम गति पाता है?

भीष्म ने कहा कि धर्मराज, इस विषय में आजगर और प्रह्लाद का संवाद सुनो। एक बार दानव-राज प्रह्लाद ने एक ब्राह्मण को शान्त भाव से विचरते देखकर पूछा—ब्रह्मन्! आप विषय-वासना और अहङ्कार से रहित, परम दयालु, जितेन्द्रिय, अनासक्त, ईर्ष्याहीन, सत्यवादी, प्रतिभाशाली और मेधावी हैं; आप बालक के समान बेखटके घूमते हैं। आप न तो किसी वस्तु के पाने की इच्छा करते हैं और न किसी वस्तु के न मिलने पर दुखी होते हैं। काम आदि विषयों के वेग से बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है; किन्तु आप उधर से मन हटाकर हमेशा सन्तुष्ट रहते और मोक्ष के लिए प्रतिबन्धक धर्म-अर्थ-काम से उदासीन रहते हैं। रूप-रस आदि विषयों की उपेक्षा करके आप मुक्त की तरह विचरते हैं—शरीर-धारण के लिए ही भोजन इत्यादि करते हैं। अतएव यदि आप उचित समझिए तो अपनी इस बुद्धि तथा अपने आचरण और शास्त्रज्ञान का परिचय दीजिए।

भीष्म कहते हैं कि प्रह्लाद के यों पूछने पर तत्त्वज्ञानी ब्राह्मण ने कहा—दानव-राज, उस अनादि परब्रह्म से ही सब प्राणियों की उत्पत्ति होती है और उसी के द्वारा पालन तथा प्रलय होता है। इसी से मैं न तो प्रसन्न होता हूँ और न उदास। आत्मसत्ता से ही सब प्रवृत्तियाँ १० उत्पन्न होती हैं। आत्मसत्ता के सिवा प्राणियों का और कोई आश्रय नहीं है। इसी से मैं ब्रह्मलोक का ऐश्वर्य पाकर भी सन्तुष्ट नहीं होता। संयोग का वियोग और सञ्चित वस्तुओं का नाश अवश्य होता है, इसी से मैं किसी वस्तु के पाने की इच्छा नहीं करता। सम्पूर्ण प्राणी जिससे उत्पन्न होते हैं उसी में लीन हो जाते हैं, यह बात समझ में आ जाने पर फिर मनुष्य

किसी पदार्थ में आसक्त नहीं होता। क्या बड़े और क्या छोटे सभी जल-जन्तु समुद्र में समा जाते हैं। पृथिवी के स्थावर और जङ्गम जीव तथा आकाश में उड़नेवाले बलवान् और निर्बल सभी पक्षी मृत्यु के अधीन हैं। आकाश-मण्डल में विचरनेवाले छोटे और बड़े सब नक्षत्र समय पाकर गिर पड़ते हैं। इस प्रकार सब प्राणियों को मृत्यु के वशीभूत देखकर मैं सबको समान दृष्टि से देखता हूँ और बेखटके रहता हूँ। मुझे कुछ भोजन मिल जाता है तो कर लेता हूँ, नहीं तो बहुत दिनों तक बिना भोजन के ही रहता हूँ। लोग मुझे कभी भर पेट स्वादिष्ठ
२० भोजन कराते और कभी थोड़ा-सा अन्न देते हैं। कभी-कभी वह भी नहीं मिलता। मैं कभी चावलों के कण, कभी तिलों की खली, कभी मांस और भात खाता हूँ। कभी महल में पलँग पर और कभी ज़मीन पर सोता हूँ। कभी चिथड़े, कभी दुपट्टा, कभी मृगछाला और कभी क़ीमती महीन कपड़े पहनता हूँ। अनायास मिल जाने पर मैं भोग्य वस्तुओं का तिरस्कार नहीं करता और दुर्लभ वस्तु को पाने की कभी इच्छा नहीं रखता।

हे दानव-राज! मैं शुद्ध भाव से इस प्रकार कभी नष्ट न होनेवाला, मङ्गल-जनक, शोक दूर करनेवाला आजगर व्रत किया करता हूँ। अविवेकी मनुष्य इस व्रत को नहीं कर सकते। ब्रह्म की प्राप्ति का यह बहुत अच्छा उपाय है। इस व्रत से मेरी बुद्धि कभी नहीं हटती। मैं अपने धर्म से भ्रष्ट नहीं हूँ। मेरी आवश्यकताएँ बहुत थोड़ी हैं। मैं भूत और भविष्य सब जानता हूँ। मैं कभी भय, क्रोध, लोभ और मोह के वश नहीं होता। मैंने जो व्रत धारण किया है इसमें खाने-पीने का कोई नियम नहीं है। इस व्रत को करके मैं अत्यन्त सुखी हो गया हूँ। अविवेकी मनुष्य इस सुख को नहीं पा सकता। अज्ञानी लोग तृष्णावश धन उपार्जन करने का यत्न करते हैं, किन्तु धन के न मिलने पर अत्यन्त दुखी होते हैं। इन बातों पर ख़ूब सोच-विचार करके मैंने इस व्रत का अवलम्बन किया है। दरिद्र मनुष्य धन के लिए भले-बुरे सभी तरह के मनुष्यों का आश्रय लेते हैं, उन्हीं को देखकर मैं शान्तिनिष्ठ और ब्रह्मपरायण हुआ हूँ। सुख, दुःख, लाभ, हानि, अनुराग, विराग, जीवन और मृत्यु सभी कुछ भाग्य के अधीन हैं, मैं इसे भली भाँति
३० समझता हूँ। मोह, अहङ्कार, भय और राग का त्याग करके शान्त भाव से जो कुछ मेरे पास आ गया उसी में—अजगर की तरह—सन्तुष्ट रहता हूँ। मैं हमेशा धैर्य और सन्तोष के साथ पदार्थों का निर्णय करता रहता हूँ। मेरे रहने और सोने का कोई नियम नहीं है। मैं स्वभाव से ही जितेन्द्रिय, व्रत नियम करनेवाला, पवित्र और सत्यवादी हूँ। कर्मों का फल सञ्चय करने में मेरी प्रवृत्ति नहीं है। परिणाम में दुःख देनेवाली विषय-वासनाएँ मुझे अपनी ओर खींचती थीं; उस दुःख से बचने के लिए और विषय-वासनाओं को दबाने की इच्छा से मैंने मन, वाणी और बुद्धि के असाधारण धर्म काम आदि की उपेक्षा की; उनसे उत्पन्न सुख को दुर्लभ और अनित्य समझकर इस आजगर-व्रत का अवलम्बन किया है। बुद्धिमान् कवियों ने, अपने और

दूसरों के मत से, बहुत तर्क-वितर्क करके इस व्रत की अनेक प्रकार से व्याख्या की है। अज्ञानी तो इस व्रत पर अनेक प्रकार के आक्षेप करते हैं, किन्तु मैं उन लोगों की बातों पर ध्यान न देकर शान्ति से विषय-वासनाओं का त्याग करके इसी तरह घूमता रहता हूँ।

भीष्म ने कहा—युधिष्ठिर ! जो अनासक्त मनुष्य भय, लोभ, मोह और क्रोध को छोड़कर इस आजगर-व्रत का अवलम्बन करता है वह निस्सन्देह सुख भोग सकता है। ३७

एक सौ अस्सी अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से गीदड़-रूपी इन्द्र और निर्धन ब्राह्मण का संवाद कहना

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह ! भाई-बन्धु, कर्म, धन और बुद्धि, इनमें से किसका अवलम्बन करके मनुष्य सुखी हो सकता है ?

भीष्म ने कहा—धर्मराज, बुद्धि ही मनुष्यों का उत्तम आश्रय है। बुद्धि ही मोक्ष और स्वर्ग की प्राप्ति का उपाय है। बलि, प्रह्लाद, नमुचि और मङ्कि ऐश्वर्य के नष्ट हो जाने पर बुद्धि-बल से अपना कल्याण कर सके हैं। मैं इस विषय में इन्द्र और काश्यप का संवाद सुनाता हूँ। एक बार एक धनवान् वैश्य ने, धन के गर्व में, कश्यप-कुल में उत्पन्न एक तपस्वी को रथ से कुचल डाला था। उस चोट से व्याकुल होकर ऋषि-कुमार पृथ्वी पर गिर पड़ा और ज़िन्दगी से ऊबकर, प्राण त्यागने का निश्चय करके, कहने लगा—संसार में निर्धन मनुष्यों का जीवन व्यर्थ है, इसलिए मैं प्राण त्याग दूँगा।

इस प्रकार व्याकुल होकर तपस्वी ने जब प्राण त्यागने का निश्चय कर लिया तब इन्द्र उसे दुखी देखकर दयाभाव से, गीदड़ का रूप धरकर, उसके पास आये और कहने लगे—तपोधन, सभी प्राणी मनुष्य-योनि चाहते हैं। मनुष्यों में ब्राह्मण होना और भी बढ़कर है। एक तो तुम मनुष्य, दूसरे ब्राह्मण और उसमें भी वेद के विद्वान् हो। इस दुर्लभ जन्म को पाकर मूर्खता के कारण प्राण त्यागने की इच्छा क्यों कर रहे हो ? धन तो अहंकार की जड़ है। तुम निर्धन होने के कारण क्यों मनुष्य-देह को नष्ट करते हो ? जिसके हाथ-पैर मौजूद हैं उसको क्या कमी है ? जिस तरह तुमको धन की चाह है उसी तरह मैं हाथ चाहता हूँ। हाथों से बढ़कर कुछ नहीं है। हाथ न होने से मैं काँटा नहीं निकाल सकता, मच्छरों और डाँसों को नहीं भगा सकता। ईश्वर ने जिसे दस अँगुलियों समेत दो हाथ दिये हैं वह उनकी सहायता से—काटनेवाले—कीड़ों से अपना बचाव कर सकता है; गर्मी, सर्दी और वर्षा से अपनी रक्षा कर सकता है। इसके सिवा भोजन, शय्या और रहने का स्थान आदि उत्तम वस्तुएँ प्राप्त कर सकता है। हाथों की ही सहायता से मनुष्य बैल आदि पर बोझा लादते हैं और अपने आराम के लिए अनेक उपायों से पशुओं को वश में रखते हैं। जिसके हाथ नहीं होते, जो बोल नहीं सकता और जो १०

निर्बल है वह अनेक प्रकार के दुःख सहता रहता है। तुम्हें उत्तम ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न होने का सौभाग्य प्राप्त है। तुमने गीदड़, चूहा, साँप, मेढक, कीड़े और अन्य किसी पापयोनि में
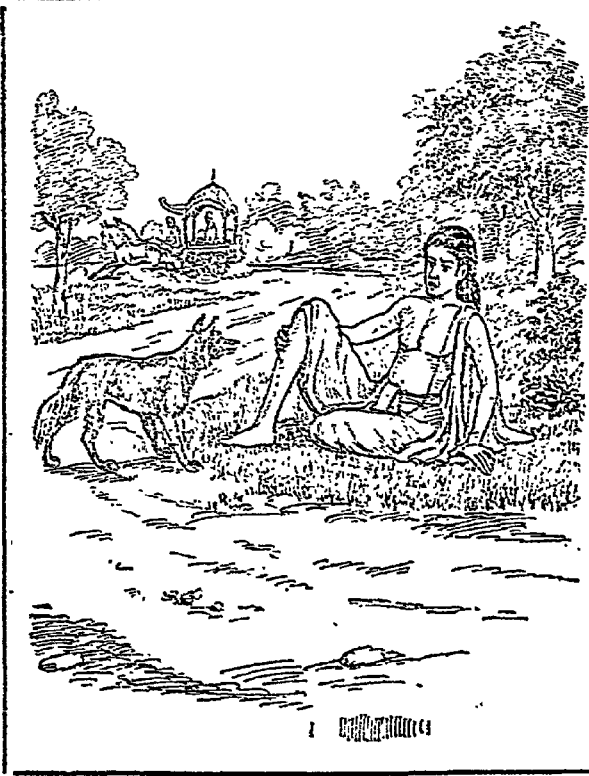
जन्म नहीं लिया है। इससे तुमको अवश्य सन्तुष्ट होना चाहिए। देखो, मुझे हमेशा कीड़े काटते रहते हैं, किन्तु हाथ न होने से मैं उनसे बचने का उपाय नहीं कर सकता। यदि मैं इस दुःख से ऊबकर प्राण त्याग दूँ तो, क्या मालूम, इससे भी बढ़कर किसी नीच योनि में मुझे जन्म लेना पड़े। इसी डर के मारे मैं मरना नहीं चाहता। मैंने जिस योनि में जन्म लिया है उससे भी बढ़कर नीच योनि संसार में मौजूद हैं। हाथ-पैर आदि होने और न होने के कारण एक जाति के जीवों की अपेक्षा दूसरी जाति के प्राणी भले ही सुखी समझे जाते हों; किन्तु क्या देवता, क्या मनुष्य और क्या पशु-पक्षी आदि कोई भी सोलहों आने सुखी नहीं देखा जाता। मनुष्य पहले धन प्राप्त करके राजा होना चाहता है, राज्य मिलने पर देवता और देवता होने पर इन्द्र होने की इच्छा करता है। यदि तुम धनवान् हो जाओ तो, ब्राह्मण होने के कारण, राज्य नहीं पा सकते। यदि किसी तरह राजा हो भी जाओ तो फिर देवता होने की इच्छा करोगे और यदि देवता भी हो गये तो उसके बाद तुम इन्द्र का पद पाने के अभिलाषी होगे। तुम धनवान् हो जाओ चाहे राजा, देवता और इन्द्र भी, किन्तु किसी दशा में सन्तुष्ट नहीं हो सकते। प्रिय वस्तुओं के प्राप्त होने से मनुष्य सन्तुष्ट नहीं होता। विषय-सुख मिलने से विषयों की लालसा शान्त नहीं होती, बल्कि ईंधन पड़ने से आग की तरह क्रमशः बढ़ती ही जाती है। देखो, शोक, हर्ष और सुख-दुःख सब तुममें मौजूद हैं, इसलिए तुम इस प्रकार विलाप न करके हर्ष के द्वारा शोक को दूर कर दो। जो मनुष्य इच्छा, सब कामों की जड़ बुद्धि और इन्द्रियों को—पिंजरे में बन्द पक्षियों की तरह—शरीर में रोक रखता है और जो कल्पित दूसरे सिर और तीसरे हाथ के कट जाने के समान द्वैतभाव छोड़ सकता है उसे कभी कोई डर नहीं रहता। देखने, सुनने और स्पर्श करने आदि कामों से ही इच्छा उत्पन्न होती है, अतएव जो मनुष्य

२०

बुद्धि के प्रभाव से रसों का ज्ञान हटा देता है उसे इच्छा कभी सता नहीं सकती। तुमने जिन चीज़ों को कभी नहीं खाया है उनके स्वाद का स्मरण तुम्हें नहीं हो सकता। देखो, मदिरा और लट्वाक पक्षी के मांस के समान स्वादिष्ट भोजन दूसरा नहीं है, किन्तु इन दोनों का स्वाद तुम नहीं जान सकते। अतएव भोजन, स्पर्श और दर्शन न करने का व्रत करके ही मनुष्य अपना कल्याण कर सकता है। देखो, हाथोंवाला बलवान् और धनवान् मनुष्य भी दूसरों की सेवा करता हुआ और बन्धन के डर से डरता हुआ भी हँसी, खेल और विहार किया करता है। अनेक बलवान् और विद्वान् मनुष्य अच्छे कामों के करने का उद्योग करते हुए भी भवितव्यता के वश ओछे काम कर डालते हैं। चाण्डाल भी, माया के प्रभाव से सन्तुष्ट रहकर, अपने को नीच नहीं समझता और मरना नहीं चाहता। पृथिवी पर असंख्य मनुष्य बिना हाथ के, पक्ष-हत (जिनको लकवा मार गया है) और रोगी रहते हैं। उनको देखकर तुम अपने को उनसे अधिक सुखी समझो। यदि तुम निडर और नीरोग हो, तुम्हारे सब अङ्ग ठीक-ठीक काम देते हैं, तो तुम समाज में निन्दित और जाति-च्युत नहीं हो सकते। इसलिए तुम प्राण त्यागने का इरादा छोड़कर धर्म करो। यदि तुम श्रद्धा के साथ मेरी बातों पर ध्यान दोगे तो निस्सन्देह वेदोक्त धर्म का फल पाओगे। अब तुम सावधानी से वेद पढ़ो, अग्निहोत्र करो तथा सत्य, दान और इन्द्रिय-संयम का आश्रय करो। किसी से लाग-डाँट न रक्खो। जो लोग विद्या पढ़ने और यज्ञ करने-कराने के अधिकारी हैं वे काहे को पछतावेंगे और काहे को किसी का बुरा चेतेंगे। जो मनुष्य शुभ नक्षत्र, शुभ मुहूर्त और शुभ तिथि में जन्म लेता है वह यज्ञ और दान करता, पुत्र उत्पन्न करता और सुख भोगता है। जो मनुष्य अशुभ तिथि, नक्षत्र और मुहूर्त में जन्म पाता है वह यज्ञ आदि शुभ-कर्मों से हीन रहकर अन्त को आसुर योनि में जन्म लेता है। मैं पूर्व-जन्म में वेदनिन्दक, कुतर्की और पाण्डित्याभिमानी था। विचार करने योग्य विषयों में कटु वाक्य कहता और ज़ोर-ज़ोर से वक्तृता देता था। इसी से मैं इस जन्म में गीदड़ हुआ हूँ और अपने कर्मों का फल भोग रहा हूँ। अब यदि मुझे फिर मनुष्य-जन्म प्राप्त हो जाय तो हमेशा सन्तुष्ट और सावधान रहकर यज्ञ, दान और तप करता हुआ ज्ञातव्य विषयों का ज्ञान प्राप्त करके त्याज्य विषयों का त्याग करूँगा। गीदड़-रूपी इन्द्र के यों कहने पर काश्यप सहसा उठ खड़े हुए और ज्योंही विस्मय के साथ बुद्धिमान् कहकर गीदड़ की प्रशंसा करने लगे त्योंही उनको दिव्य ज्ञान हो गया। उन्होंने इन्द्र को पहचान लिया। तब उन्होंने इन्द्र की यथा-विधि पूजा की और उनकी आज्ञा लेकर अपने घर की राह ली।

३० ४१ ५१ ५४

एक सौ इक्यासी अध्याय

पूर्व-जन्म के कर्मों का विषय

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह ! कृपा कर बतलाइए कि दान, यज्ञ, तप और गुरु-सेवा का कारण बुद्धि है या नहीं।

भीष्म ने कहा—धर्मराज, बुद्धि काम-क्रोध आदि से युक्त होती है तो मन को पाप-कर्मों में लगा देती है और पाप करने पर अनेक दुःख भोगने पड़ते हैं। पापी मनुष्य दरिद्र होकर बार-बार दुर्भिक्ष, क्लेश, भय और मृत्यु का कष्ट सहता है और सदाचारी संयमी मनुष्य धनवान् होकर हमेशा उत्सव, स्वर्ग और सुख का भोग करता है। आचार-हीन नास्तिक मनुष्य हथ-कड़ी डालकर नगर से निकाल दिया जाता है; वह बाघ, हाथी, साँप तथा चोरों से परिपूर्ण वन में क्लेश सहता है। जो सत्सङ्गी मनुष्य दानी होता है, देवताओं और अतिथियों का सत्कार करता है उसे जितेन्द्रिय मनुष्यों के समान उत्तम गति मिलती है। अधर्मी मनुष्य धान की भूसी और मच्छर के समान नीच गिना जाता है। पूर्वकृत कर्म सोते-जागते, उठते-बैठते, चलते-फिरते, छाया की तरह, मनुष्य का पीछा किया करते हैं। सारांश यह कि सभी मनुष्य अपने पूर्वकृत कर्मों के अनुसार फल पाते हैं। जीवों को, कर्म के अनुसार ही, काल घेरता है। जिस तरह वृक्ष अपने नियमित समय पर ही फूलते-फलते हैं उसी तरह पूर्वकृत कर्म-फल भी यथासमय प्राप्त हो जाते हैं। कर्मों का फल भोग लेने पर—मनुष्य के पूर्वकृत कर्मों के नष्ट हो जाने पर—फिर उसका मान, अपमान, लाभ, हानि, वृद्धि और क्षय कुछ भी नहीं होता। गर्भ से ही मनुष्य पूर्व-जन्मकृत कर्मों के अनुसार सुख-दुःख पाने लगता है। वह बचपन, जवानी और बुढ़ापा आदि अवस्थाओं में जिस प्रकार के शुभ-अशुभ कर्म कर रखता है उसी के अनुरूप, उसी-उसी अवस्था में, उसे उनका फल भोगना पड़ता है। जैसे बछड़ा हज़ारों गायों के बीच खड़ी हुई अपनी माता के पास जा पहुँचता है वैसे ही पूर्व-जन्म के किये हुए कर्म कर्ता के पास आ जाते हैं। विषय-वासनाओं का त्याग करने पर मनुष्य धुले हुए कपड़े के समान शुद्ध होकर मोक्ष-पद पा सकता है। बहुत दिनों तक तपस्या करने से जिसके पाप नष्ट हो गये हैं उसी की कामनाएँ सिद्ध हो सकती हैं। जैसे आकाश में पक्षियों के और जल में मछलियों के चलने पर उनके पैरों के चिह्न नहीं देख पड़ते वैसे ही ब्रह्मज्ञानी मनुष्य ब्रह्म में ही लीन हो जाता है। जो हो, अब अधिक बातें कहना और अन्यान्य दोषों का वर्णन करना व्यर्थ है। इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि मनुष्य विचारपूर्वक अपने हित के काम करने से ही कल्याण कर सकता है।
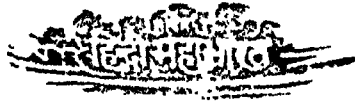
एक सौ बयासी अध्याय

भृगु और भरद्वाज का संवाद, सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह ! समुद्र, आकाश, पर्वत, बादल, पृथिवी, अग्नि और वायु तथा स्थावर-जङ्गम जीव कहाँ से उत्पन्न हुए हैं और प्रलयकाल में ये सब किसमें लीन हो जाते हैं ? प्राणियों की उत्पत्ति किस प्रकार हुई है और वर्ण-विभाग, पवित्र-अपवित्र का निर्णय और धर्म-अधर्म का निर्देश किसने किया है ? प्राणियों के प्राण किस प्रकार के हैं और शरीर छोड़ने पर प्राण कहाँ जाते हैं ? यह लोक और परलोक किस प्रकार का है ?

भीष्म ने कहा कि धर्मराज ! महर्षि भरद्वाज के पूछने पर तपोधन भृगु ने जो कथा कही थी वही कथा मैं सुनाता हूँ। एक बार भरद्वाज ने कैलास के शिखर पर तेजस्वी महर्षि भृगु को बैठे देखकर उनसे पूछा—तपोधन ! समुद्र, आकाश, पर्वत, बादल, अग्नि, पृथिवी, वायु और स्थावर-जङ्गम प्राणियों से युक्त यह संसार किससे उत्पन्न हुआ है ? वर्ण-विभाग, पवित्र-अपवित्र का निर्णय और धर्म-अधर्म का निर्देश किसने किया है ? प्राणियों का जीवन कैसे होता है और मरने पर वे कहाँ जाते हैं ? यह लोक और परलोक किस प्रकार का है ?

भरद्वाज के पूछने पर ब्रह्म के समान ब्रह्मर्षि भृगु ने कहा—महर्षि, प्राचीन महर्षियों ने बतलाया है कि मानस नाम का एक सृष्टि-स्थिति-प्रलयकर्ता, नित्य, अनादि, अनन्त, अभेद्य, अजर, अमर, अव्यय, परम देवता है। उसी देवता ने सबसे पहले महत् की सृष्टि की। महत् से अहङ्कार, अहङ्कार से आकाश, आकाश से जल, जल से अग्नि, अग्नि से वायु तथा अग्नि और वायु से पृथिवी की उत्पत्ति हुई। इसके बाद उन्हीं भगवान् स्वयम्भू ने एक तेजोमय दिव्य कमल उत्पन्न किया। उस कमल से वेद के निधान ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई। ब्रह्मा ने उत्पन्न होते ही 'सोऽहम्' शब्द का उच्चारण किया। इसी से उनका नाम अहङ्कार पड़ा। उसी समय आकाश आदि पञ्चभूतों द्वारा ब्रह्मा का शरीर बन गया। सारे पर्वत उनकी हड्डियाँ, पृथिवी मेद और मांस, चारों समुद्र रक्त, आकाश उदर, वायु श्वास, तेज अग्नि, नदियाँ उनकी नाड़ियाँ, चन्द्रमा और सूर्य उनके दो नेत्र हुए। उनका सिर आकाश में, दोनों पैर पृथिवी पर और हाथ सब दिशाओं में फैल गये। सिद्धगण भी इन महात्मा को नहीं जान सकते। हे ब्रह्मन्, जिस परमात्मा ने सब प्राणियों की उत्पत्ति के लिए अहङ्कार को उत्पन्न किया है वह विष्णु अनन्त नाम से प्रसिद्ध है। दुराचारी मनुष्य उसे नहीं जान सकता। उसी परमात्मा से यह संसार उत्पन्न हुआ है। २०

भरद्वाज ने कहा—भगवन् ! आप आकाश, पृथ्वी, वायु और सब दिशाओं का परिमाण बतलाकर मेरा सन्देह दूर कीजिए।

भृगु ने कहा—हे तपोधन ! आकाश का अन्त नहीं है, वह परम रमणीय है और चौदह भुवनों में फैला हुआ है। चन्द्रमा और सूर्य अपनी-अपनी किरणों द्वारा ऊर्ध्वतन और अधस्तन

गति से आकाश का अन्त नहीं देख सकते। आकाश का जो स्थान अप्रत्यक्ष है वहाँ अग्नि और सूर्य के समान तेजस्वी असंख्य देवता निवास करते हैं। वे देवता भी अति दुर्गम आकाश का अन्त नहीं देख पाते। पृथिवी पर समुद्र, समुद्र पर अन्धकार, अन्धकार पर जल, जल पर अग्नि, उधर रसातल पर जल, जल पर सर्पलोक, सर्पलोक पर फिर आकाश, आकाश पर फिर जल है। अतएव देवता भी आकाश, अग्नि, वायु और जल का अन्त नहीं जान सकते। अग्नि, वायु, जल और पृथ्वी आकाश से भिन्न नहीं हैं। तत्त्वज्ञान न होने से ही लोग इन पदार्थों को आकाश से भिन्न

३० समझते हैं। अनेक पुराणों और ज्योतिष ग्रन्थों में त्रैलोक्य और महासमुद्र का विस्तार जो पचास करोड़ योजन बतलाया गया है वह असमात्र है। जिसकी अन्तिम सीमा नहीं देखी गई, जो अगम्य है, उसका परिमाण कौन बतला सकता है? सिद्धों और देवताओं के निवासस्थान आकाश की सीमा चाहे बतलाई भी जा सके, किन्तु अनन्त नामवाले महात्मा मानस की सीमा का पता नहीं लगाया जा सकता। जब उनका दिव्य रूप कभी घटता और कभी बढ़ता रहता है तब उनके समान दूसरा और कौन है, जो उन्हें जान सके? इस तरह उन महात्मा ने सबसे पहले कमल से प्रजापति ब्रह्मा को उत्पन्न किया है।

भरद्वाज ने कहा—भगवन्, यदि ब्रह्मा कमल से पैदा हुए हैं तो कमल अवश्य ही उनसे पहले पैदा हुआ होगा। तो फिर क्यों आप ब्रह्मा को पूर्वज बतला रहे हैं?

भृगु ने कहा—हे भरद्वाज! महात्मा मानस की जो मूर्ति ब्रह्मा के रूप में परिणत हो गई थी, उसके आसन के लिए पृथिवी कमल-रूप से कल्पित हो गई। गगनस्पर्शी सुमेरु पर्वत

३८ उस कमल की कर्णिका है। ब्रह्मा ने उसी कर्णिका में बैठकर संसार की सृष्टि की थी।

एक सौ तिरासी अध्याय

भृगु का भरद्वाज को जल और पृथिवी आदि की उत्पत्ति बतलाना

भरद्वाज ने पूछा—भगवन्, सुमेरु पर्वत पर बैठकर ब्रह्मा ने किस तरह अनेक प्रकार के प्राणियों की उत्पत्ति की है?

भृगु ने कहा—भरद्वाज, ब्रह्मा ने कल्पना से प्रजा की सृष्टि की और उसकी रक्षा के लिए सबसे पहले जल उत्पन्न किया। जल सब प्राणियों का जीवन है। उसी से प्रजा की वृद्धि होती है और उसके अभाव में प्रजा का नाश हो जाता है। सारा संसार जल से घिरा हुआ है। पृथ्वी, पर्वत और मेघ आदि जो कुछ संसार में दिखाई देता है, सब जल से ही उत्पन्न हुआ है।

भरद्वाज ने कहा—भगवन्! जल, अग्नि, वायु और पृथिवी, ये सब किस तरह उत्पन्न हुए हैं?

भृगु ने कहा—ब्रह्मन्, कल्प के आरम्भ में ब्रह्मर्षियों ने भी इसी तरह संसार की उत्पत्ति के विषय में सन्देह किया था। इस सन्देह के दूर करने को उन्होंने खाना-पीना छोड़कर वायु

का भक्षण करते हुए मौन रहकर ध्यान करना आरम्भ किया। देवताओं के सौ वर्ष बीतने पर ब्रह्मर्षियों को यह आकाशवाणी सुनाई दी कि हे ब्राह्मणो, पहले यह असीम आकाश ही था। चन्द्र, सूर्य, वायु आदि और कोई पदार्थ नहीं था। आकाश से दूसरे आकाश के समान जल की उत्पत्ति हुई और जल से वायु उत्पन्न हुआ। जैसे साबित घड़े में पानी भरते समय उस पानी १० को भेदकर शब्द के साथ हवा निकल जाती है वैसे ही आकाश के जलपूर्ण होने पर जल को भेदकर शब्द करता हुआ वायु उत्पन्न हुआ। समुद्र से निकला हुआ वह वायु आज भी लगातार चलता रहता है। इसके बाद जल और वायु के सङ्घर्षण से आकाश-मण्डल के अन्धकार को दूर करता हुआ महापराक्रमी अग्नि उत्पन्न हुआ और वायु के संयोग से जल और आकाश को एकत्र करता हुआ घनीभूत हो गया। आकाश से लगातार अग्नि गिरते रहने के कारण उसका स्नेह घनीभूत होकर पृथिवी-रूप में परिणत हो गया। यही पृथिवी सब रस, गन्ध, स्नेह और प्राणियों की उत्पत्ति का स्थान है। १७

एक सौ चौरासी अध्याय

भृगु का वृक्ष आदि स्थावर प्राणियों को भी पाञ्चभौतिक और चैतन्य बतलाना

भरद्वाज ने कहा—भगवन्, ब्रह्मा ने सबसे पहले पृथिवी आदि जिन पाँच भूतों की सृष्टि की है वे सब क्या हैं? उसके बाद जो और सृष्टि हुई उसे छोड़कर केवल पृथिवी आदि पाँच का ही महाभूत नाम क्यों पड़ा?

भृगु ने कहा—तपोधन, अपरिमेय पदार्थ ही महाशब्दवाची हो सकता है। पृथिवी आदि पञ्चभूत अपरिमेय हैं, इसी से ये महाभूत कहलाते हैं। संसार में जो कुछ हम देखते हैं वह इन्हीं पञ्चमहाभूतों से उत्पन्न है। मनुष्यों का शरीर पञ्चभूतमय है। उनकी चेष्टा वायु, छिद्र आकाश, अग्नि तेज, उनके रक्त आदि द्रव पदार्थ जल और उनका मांस आदि पृथिवी है। स्थावर-जङ्गम सभी प्राणियों का शरीर इसी प्रकार पञ्चभूतों से बना है। प्राणियों की पाँचों इन्द्रियाँ भी पञ्चभूतमय हैं। कान आकाशमय, नाक पृथिवीमय, जीभ जलमय, त्वचा वायुमय और नेत्र तेजोमय हैं।

भरद्वाज ने कहा—ब्रह्मन्, यदि स्थावर-जङ्गम सभी प्राणियों के शरीर पञ्चभूत से बने हुए हैं तो स्थावर शरीरों में पञ्चभूत क्यों नहीं दिखाई देते? देखिए, वृक्ष-लता आदि श्रवण, दर्शन, आघ्राण, आस्वादन और स्पर्श नहीं कर सकते। उनके शरीर में रक्त आदि द्रव पदार्थ, अग्नि-रूप तेज, अस्थि-मांस-रूप पृथिवी, चेष्टा-रूप वायु और छिद्र-रूप आकाश नहीं है, तो वे किस तरह पाञ्चभौतिक कहे जा सकते हैं?

भृगु ने कहा—तपोधन! वृक्ष, लता आदि स्थावर प्राणियों के शरीर अत्यन्त घनीभूत हैं इस कारण स्थूल दृष्टि से उनमें आकाश नहीं दिखाई देता; किन्तु जब उनमें फूल-फल हमेशा आते रहते हैं तब, विशेष रूप से विचार करने पर, उनमें आकाश का अस्तित्व अवश्य मानना पड़ता
१० है। जब गरमी से उनके पत्ते, फूल, फल और उनकी छाल मुरझा जाती और सूख जाती है तब उनके स्पर्श-ज्ञान के विषय में क्या सन्देह है? जब वायु और अग्नि से तथा वज्र के शब्द से उनके फूल-फल सूख जाते हैं तब निस्सन्देह उनमें सुनने की शक्ति मौजूद है। जो जीव देख नहीं सकता वह रास्ता नहीं पा सकता। जब लताएँ वृक्ष के पास जाती हैं, उनमें लिपटती हैं और इधर-उधर फैलती हैं तब अवश्य ही मानना पड़ेगा कि उनमें देखने की शक्ति है। जब वृक्ष-लता आदि पवित्र और अपवित्र गन्ध तथा विविध धूप के द्वारा रोग-हीन होते और फूलते-फलते हैं तब उनमें निस्सन्देह घ्राण-शक्ति है। जब वे अपनी जड़ों से पानी पी सकते हैं तब उनमें जीभ का होना निश्चित है। जिस तरह मुँह में कमल की नाल लेकर उससे जल खींचा जा सकता है उसी तरह वृक्ष, वायु की सहायता से, अपनी जड़ों द्वारा जल पीते हैं। जब वृक्ष, लता आदि इस तरह सुख-दुःख का अनुभव करते और कटने पर फिर उगते हुए देखे जाते हैं तब अवश्य ही उनमें चेतनता माननी पड़ेगी। वृक्ष आदि स्थावर जीव जड़ों से जो जल पीते हैं उस जल को अग्नि और वायु पचा देते हैं। उस जल के पच जाने से ही वृक्ष हरे-भरे रहते और बढ़ते हैं।

जङ्गम प्राणियों के शरीरों में पञ्चभूत भिन्न-भिन्न रूप से रहकर उनकी अङ्ग-सञ्चालन आदि क्रिया करते रहते हैं। ये पञ्चभूत पाँच-पाँच प्रकार से जीवों के शरीर में रहते हैं।
२० पृथिवी त्वचा, मांस, अस्थि, मज्जा और स्नायु-रूप से; तेज अग्नि, क्रोध, चक्षु, ऊष्मा और जठरानल-रूप से; आकाश कान, नाक, मुँह, हृदय और कोष्ठ-रूप से; जल श्लेष्मा, पित्त, स्वेद, रस और रक्त-रूप से और वायु प्राण, व्यान, अपान, उदान और समान-रूप से स्थित है। प्राण जीवों के चलने-फिरने का काम करता है, व्यान उद्यम में लगाता, अपान गुह्य देश में और समान हृदय में रहता है। उदान वायु द्वारा सब प्राणी श्वास छोड़ते और शब्द का उच्चारण करते हैं। इस तरह ये पाँच प्रकार के वायु प्राणियों में चेष्टा उत्पन्न करते हैं। पृथिवी से गन्ध, जल से रस, तेजोमय नेत्रों द्वारा रूप और वायु द्वारा स्पर्श का ज्ञान होता है। पृथिवी में पाँच गुण हैं—गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द। उनमें गन्ध का विस्तृत वर्णन सुनो। गन्ध नव प्रकार का है—इष्ट, अनिष्ट, मधुर, कटु, उग्र, विचित्र, स्निग्ध, रूक्ष और विशद। जल में चार गुण
३० हैं—रस, रूप, स्पर्श और शब्द। रस छः प्रकार का है—मधुर, लवण, तिक्त, कषाय, अम्ल और कटु। तेज में तीन गुण हैं—शब्द, स्पर्श और रूप। तेज के प्रभाव से जितने रूप देखे जाते हैं उनका वर्णन सुनो। रूप सोलह प्रकार का है—ह्रस्व, दीर्घ, स्थूल, चतुष्कोण, वर्तुल, शुक्ल, कृष्ण, रक्त, नील, पीत, अरुण, कठिन, चिक्कण, मधुर, स्निग्ध और अति दारुण। वायु में

दो गुण हैं—शब्द और स्पर्श। स्पर्श ग्यारह प्रकार का है—उष्ण, शीत, सुखकर, दुःखदायक, स्निग्ध, विशद, खर, मृदु, रूक्ष, लघु और गुरु। आकाश में केवल शब्द गुण है। शब्द सात प्रकार का है—षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद। ये सात प्रकार के शब्द यद्यपि नगाड़े आदि में सुने जाते हैं किन्तु ये आकाश से ही उत्पन्न होते हैं। मनुष्य आदि ४० जीवों और मृदङ्ग, भेरी, शङ्ख, रथ आदि के व्यक्त-अव्यक्त जितने शब्द सुने जाते हैं उन सबकी उत्पत्ति आकाश से ही होती है। प्राणियों को शब्द का ज्ञान कराने का कारण वायु है। वायु के अनुकूल होने पर ही शब्द का ज्ञान हो सकता है; वायु प्रतिकूल हो तो शब्द नहीं सुना जा सकता। प्राणियों के शरीर में स्थित त्वचा आदि इन्द्रियाँ प्राण-वायु से ही क्रमशः बढ़ती रहती हैं। जल, अग्नि और वायु प्राणियों के शरीर में स्थित रहकर उनके जीवन की रक्षा करते हैं। यही प्राणियों के शरीर के मूल हैं। ४४

एक सौ पचासी अध्याय

भृगु का भरद्वाज को प्राण, अपान आदि पाँच वायुओं का काम बतलाना

भरद्वाज ने पूछा—भगवन्, अग्नि पाञ्चभौतिक शरीर का अवलम्बन करके किस तरह प्राणियों में रहता है और वायु सब जीवों के शरीर में रहकर उनमें किस तरह चेष्टा उत्पन्न करता रहता है ?

भृगु ने कहा—ब्रह्मन्, मैं पहले अग्नि का विषय बतलाता हूँ फिर कहूँगा कि बलवान् वायु प्राणियों के शरीर में किस तरह रहता है। अग्नि प्राणियों के सिर में रहकर उनके शरीर की रक्षा करता है और प्राण वायु, सिर में स्थित उस अग्नि से मिलकर, सारे शरीर में व्याप्त रहता है। प्राण जीवों का आत्मा, सनातन पुरुष, मन, बुद्धि, अहङ्कार और रूप आदि विषय-स्वरूप है। प्राण वायु शरीर में रहकर अग्नि को सारे शरीर में दौड़ाता रहता है। समान वायु अग्नि को पृष्ठ देश में ले जाता है। अपान वायु अग्नि को मूत्राशय और गुदा-स्थान में ले जाकर मल-मूत्र का नियमन करता रहता है। उदान वायु प्रयत्न, कर्म और बल इन तीनों में स्थित रहता है। शरीर की सन्धियों में व्यान वायु स्थित रहता है। अग्नि शरीर में फैलकर और समान वायु से सञ्चालित होकर रस और धातुओं के दोषों को शान्त करता और नाभि के नीचे स्थित अपान वायु तथा ऊपर रहनेवाले प्राण वायु को नाभि-मण्डल में स्थित करके उनकी सहायता से अन्न आदि पचाता है। मुँह से लेकर गुदा स्थान तक एक स्रोत है। इस स्रोत का १० अन्त भाग ही गुदा है। उसी स्रोत के चारों ओर से असंख्य नाड़ियाँ शरीर भर में फैली हुई हैं। जठराग्नि, शरीर में स्थित प्राण आदि पञ्चवायु की सहायता से, इन्हीं नाड़ियों के द्वारा सारे शरीर में फैला रहता है। यही जठराग्नि खाये हुए अन्न को पचाता है। अग्नि के प्रभाव

से प्राणवायु गुदा स्थान तक जाता है और वहाँ से लौटकर फिर सिर पर आकर अग्नि को भड़काता है। नाभि के नीचे पक्वाशय, नाभि के ऊपर आमाशय और जठरानल में सब इन्द्रियाँ स्थित हैं। प्राण आदि पाँच और नाग-कूर्म आदि पाँच, इन दस प्रकार के वायुओं के प्रभाव से अन्न का रस नाड़ियों के द्वारा सारे शरीर में दौड़ता है। मुँह से लेकर गुदा स्थान तक जो स्रोत होता है वही योगियों का मार्ग है। जो महात्मा इस मार्ग से आत्मा को मस्तक पर चढ़ा ले जा सकता है वही ब्रह्म पद को प्राप्त कर सकता है। ब्रह्मन्, इस प्रकार अग्नि प्रदीप्त होकर प्राण-अपान आदि पञ्चवायु की सहायता से शरीर भर में फैला रहता है। १७

एक सौ छियासी अध्याय

मरने पर फिर जीवों की उत्पत्ति के विषय में भरद्वाज का सन्देह करना

भरद्वाज ने कहा—भगवन्! यदि प्राणी वायु के द्वारा जीवित रहकर अङ्ग-सञ्चालन, श्वास का परित्याग और शब्द का उच्चारण कर सकता है और यदि जठराग्नि ही जीवों में उष्णता रखकर अन्न को पचाता है तब तो प्राणियों के जीव बिलकुल निष्फल हैं। जब प्राणियों की मृत्यु होती है तब उनके शरीर से निकलता हुआ जीव नहीं दिखाई देता। उस समय उनके शरीर में न तो गरमी रहती है और न वायु ही जान पड़ता है। यदि जीव वायुमय है अथवा वायु के साथ लिपटा हुआ है तो उसे वायुचक्र के समान समझना चाहिए। यदि वायु के साथ जीव का संयोग है तो जिस समय प्राणियों के शरीर से वायु निकल जाता है उस समय निस्सन्देह जीव का जुदा होना ज्ञात होना चाहिए। जब कुएँ में छोड़े हुए जल और आग में छोड़ी हुई चिनगारी के समान जीव का स्वरूप नष्ट हो जाता है तब उसे ब्रह्म का अंश भी नहीं माना जा सकता। यदि इस पाञ्चभौतिक शरीर में किसी एक भूत का अभाव हो जाता है तो अन्य चार भूत भी शरीर से निकल जाते हैं। भोजन न करने से जल और अग्नि, श्वास रोकने से वायु, वायु आदि के द्वारा कोष्ठ रोकने से आकाश और रोग तथा घाव आदि हो जाने से पृथिवी तत्त्व का नाश हो जाता है। इस तरह पृथिवी आदि एक पदार्थ का भी विनाश हो जाने पर दूसरे चार पदार्थ भी शरीर से निकल जाते हैं। तब जीव किसका अनुगमन करता, कैसे सुनता और कैसे बोल सकता है? १० मरने के बाद यह गाय मेरा उद्धार करेगी, यह विचार कर जो मनुष्य गोदान करता है उसका उद्धार वह गाय किस तरह कर सकेगी? जब गाय तथा उसके देने और लेनेवाले तीनों का विनाश हो जाता है तब फिर इकट्ठे कहाँ होंगे? पहाड़ से गिर पड़ने, अग्नि में भस्म हो जाने और पक्षियों द्वारा खा लिये जाने पर मनुष्य फिर चैतन्य होकर कहीं फल भोग सकता है? जैसे वृक्ष जड़ से काट देने पर फिर नहीं उग सकता वैसे मरा हुआ मनुष्य फिर किस प्रकार जन्म ले सकता है? मैं तो समझता हूँ कि पहले एक बीज

उत्पन्न हुआ होगा फिर उस बीज से क्रमशः असंख्य बीज उत्पन्न हुए और होते आ रहे हैं। सन्तान उत्पन्न करके प्राणी मर जाते हैं और उनकी सन्तानें भी सन्तान उत्पन्न करती हैं, किन्तु जो एक बार मर जाता है वह दुबारा जन्म नहीं लेता। १५

एक सौ सत्तासी अध्याय

भृगु का भरद्वाज को जीवात्मा का अविनाशित्व बतलाना

भृगु ने कहा—ब्रह्मन्, जीव का और शुभाशुभ कर्म का नाश नहीं होता। शरीर के नष्ट हो जाने पर जीव दूसरे शरीर में चला जाता है। जैसे ईंधन के जल जाने से अग्नि अदृश्य हो जाता है वैसे ही शरीर का नाश होने पर भी जीव दिखाई नहीं देता।

भरद्वाज ने कहा—महात्मन्, ईंधन के जल जाने पर अग्नि का भी तो नाश हो जाता है। ईंधन के न रहने पर भी अग्नि के मौजूद रहने का क्या प्रमाण है?

भृगु ने कहा—हे द्विजोत्तम! ईंधन के न रहने पर अग्नि दिखाई तो नहीं देता, किन्तु उसका नाश नहीं हो जाता। जब उसका आश्रय नहीं रह जाता तब वह आकाश में लीन हो जाता है, इसी से हम उस समय उसे नहीं देख सकते। इसी तरह जीवात्मा भी शरीर का त्याग करके आकाश में स्थित हो जाता है और अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण हम लोगों को दिखाई नहीं देता। अग्नि विज्ञानमय जीव-स्वरूप है। वह वायु के साथ देह में रहता है। वायु के रुक जाने से अग्नि का भी नाश हो जाता है और अग्नि का नाश होने पर शरीर अचेत होकर पृथिवी पर गिर पड़ता और पृथिवी में ही लीन हो जाता है। स्थावर-जङ्गम सभी प्राणी शरीर के, वायु आकाश के और अग्नि वायु के साथ रहता है। जैसे आकाश, अग्नि और वायु एक-दूसरे से मिलकर शरीर में रहते हैं वैसे ही जल और मिट्टी दोनों एक साथ रहते हैं। इन पञ्चभूतों में आकाश, अग्नि और वायु अदृश्य और मिट्टी तथा जल दृश्य पदार्थ हैं। १०

भरद्वाज ने कहा—महात्मन्! शरीर में जो अग्नि, वायु, मिट्टी, जल और आकाश रहता है उसका वर्णन आप विशेष रूप से कर चुके हैं। अब जीव के लक्षण बतलाइए। पाञ्चभौतिक शरीर में जीवात्मा किस तरह रहता है? मांस, रक्त, स्नायु, मज्जा और हड्डियों से बने हुए शरीर के नष्ट होने पर भी तो जीवात्मा नहीं दिखाई देता। यदि पाञ्चभौतिक शरीर में चेतना न होती तो शारीरिक या मानसिक दुःख होने पर प्राणियों को उसका अनुभव कौन कराता? आप कह चुके हैं कि जीवात्मा कानों से सुनता और आँखों से देखता है; किन्तु विशेष रूप से विचार करने पर जान पड़ता है कि सुनने और देखने आदि कामों में मन ही लगा रहता है। यदि मन का संयोग न हो तो प्राणी कभी देख-सुन नहीं सकता। मनुष्य जब सो जाते हैं तब श्रवण, भाषण, दर्शन, आघ्राण, स्पर्श, आस्वादन तथा हर्ष, विषाद, क्रोध, भय, इच्छा, द्वेष और चिन्ता

आदि कुछ भी नहीं कर सकते। इसलिए जब मन ही शरीर की सब क्रियाएँ करता है तब जीवात्मा के स्वीकार करने का क्या तात्पर्य है?

भृगु ने कहा—ब्रह्मन्, मन पञ्चभूत से अलग नहीं है। इसलिए मन के द्वारा शारीरिक क्रियाओं का होना सम्भव नहीं है। प्राणियों के शरीर में जीवात्मा व्याप्त रहकर शारीरिक क्रियाएँ कराता रहता है। जीवात्मा ही गन्ध लेता तथा रूप, आघ्राण, शब्द, स्पर्श और आस्वादन आदि करता है। वही सुख-दुःख का अनुभव करता है। जीवात्मा के न रहने पर २० शरीर कुछ भी नहीं जान सकता। जब शरीर में स्थित अग्नि-स्वरूप आत्मा शरीर से निकल जाता है तब उस शरीर को रूप-स्पर्श आदि का ज्ञान नहीं रह जाता और उसकी मृत्यु हो जाती है। सारा जगत् जलमय है और जल प्राणियों का स्वरूप है। ब्रह्माजी आत्म-रूप से उसमें स्थित हैं। आत्मा ही साधारण गुणों से युक्त होने के कारण क्षेत्रज्ञ कहलाता है और वही इन सब गुणों से हीन होने पर परमात्मा है। आत्मा कमल पर जलबिन्दु की तरह देह में स्थित रहता है। वह सब जीवों का हितकारी है। योग आदि के द्वारा आत्मा वश में हो सकता है। सत्त्व, रज और तम ये तीन उसके गुण हैं। आत्मा के सुख-दुःख भोगने के द्वार देह, इन्द्रिय और मन हैं। आत्मा के प्रभाव से ही देह आदि चैतन्य होकर सब काम करते हैं। परमात्मा निर्गुण है, उसके साथ किसी काम का सम्बन्ध नहीं है। जीवात्मा का नाश नहीं होता। जीवात्मा का नाश बतलाना मूर्खता है। जीवात्मा एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर में चला जाता है। दूसरे शरीर में जाना ही मृत्यु है।

हे द्विजोत्तम, आत्मा इस प्रकार अज्ञान से ढका रहकर गूढ़ भाव से सब भूतों में घूमता रहता है। तत्त्वदर्शी लोग ही सूक्ष्म बुद्धि के द्वारा आत्मा के स्वरूप को जान सकते हैं। पण्डित लोग योग-साधन और परिमित भोजन के प्रभाव से शुद्धचित्त होकर आत्मा का साक्षात्कार कर सकते हैं और प्रसन्न चित्त से शुभाशुभ कर्मों का त्याग करके परमात्मा में लीन होकर मोक्ष का अनुभव करते हैं। शरीर में अग्नि के समान प्रकाशमय जो मानसिक ३१ ज्योति रहती है वही जीवात्मा है।

एक सौ अट्ठासी अध्याय

भृगु का भरद्वाज से अपने कर्मों द्वारा ब्राह्मण आदि वर्णों की उत्पत्ति कहना

भृगु ने कहा—हे भरद्वाज! ब्रह्माजी ने पहले अपने तेज से सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी ब्रह्मनिष्ठ मरीचि आदि प्रजापतियों को उत्पन्न करके स्वर्ग की प्राप्ति के उपाय-स्वरूप सत्य, धर्म, तप, वेद, आचार और पवित्रता की उत्पत्ति की। उसके बाद देव, दानव, गन्धर्व, असुर, यक्ष, राक्षस, नाग, पिशाच और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, ये चार वर्ण उत्पन्न किये। तब

ब्राह्मणों को सत्त्वगुण (गोरा रङ्ग), क्षत्रियों को रजोगुण (लाल रङ्ग), वैश्यों को रजोगुण और तमोगुण (पीला रङ्ग) तथा शूद्रों को तमोगुण (साँवला रङ्ग) प्राप्त हुआ।

भरद्वाज ने कहा—ब्रह्मन्! सब मनुष्यों में सब प्रकार के गुण (रङ्ग) हो सकते हैं, इसलिए केवल गुण (रङ्ग) के द्वारा मनुष्यों का वर्ण-विभाग नहीं किया जा सकता। देखिए, सभी मनुष्य काम, क्रोध, भय, लोभ, शोक, चिन्ता, क्षुधा और परिश्रम से व्याकुल होते हैं और सभी की देह से पसीना, मल, मूत्र, कफ, पित्त और रक्त निकलता है, इसलिए गुण (रङ्ग) के द्वारा किस तरह वर्णों का विभाग किया जा सकता है?

भृगु ने कहा—तपोधन, वर्णों में कोई विशेषता नहीं है। संसार ब्रह्ममय है। सभी मनुष्य ब्रह्मा से उत्पन्न हुए हैं और अपने कर्मों द्वारा भिन्न-भिन्न वर्ण के हो गये हैं। जिन ब्राह्मणों १० ने रजोगुण के प्रभाव से कामभोगप्रिय, क्रोधी, साहसी और तीक्ष्ण होकर अपने धर्म का त्याग कर दिया वे क्षत्रिय हो गये; जो रजोगुण और तमोगुण के प्रभाव से पशुओं का पालन और कृषि करने लगे वे वैश्य हुए और जो तमोगुण के प्रभाव से हिंसा करने, झूठ बोलने, अशुद्ध तथा लोभी रहने और सब तरह के काम करके जीविका करने लगे वे शूद्र हो गये। इस प्रकार के कर्मों से ब्राह्मण लोग चार वर्णों में विभक्त हो गये। अतएव सभी वर्णों को धर्म और यज्ञ आदि करने का अधिकार है। ब्रह्माजी ने जिन्हें उत्पन्न करके वेदों का अधिकार दिया था वही लोभ के वश होकर शूद्र हो गये। ब्राह्मण लोग सदा वेद का पाठ तथा व्रत और नियम का पालन करते हैं, इसी से उनकी तपस्या नष्ट नहीं होती। जो ब्राह्मण परब्रह्म को नहीं जानता वह अति निकृष्ट है और ज्ञान-विज्ञान से हीन होकर उच्छृङ्खल पिशाच, राक्षस और प्रेत आदि अनेक म्लेच्छ जातियों में उत्पन्न होता है। पहले आदिदेव ने सृष्टि रचने की कल्पना की, उसके बाद महर्षियों ने तप के प्रभाव से वेदोक्त कर्म करनेवाली प्रजा की उत्पत्ति की। सारांश यह कि आदिदेव की मानसी सृष्टि के बाद क्रमशः ऋषियों के द्वारा मनुष्यों की सृष्टि हुई है और होती रहती है। २०

एक सौ नवासी अध्याय

भृगु का ब्राह्मण आदि वर्णों के लक्षण, और त्याग को मुक्ति का साधन बतलाना

भरद्वाज ने पूछा—तपोधन! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, इन चार वर्णों के क्या लक्षण हैं?

भृगु ने कहा—भरद्वाज! जिसके जातकर्म आदि संस्कार होते हैं; जो वेदाध्ययन करता हुआ प्रतिदिन सन्ध्या-वन्दन, स्नान, जप, होम, देवपूजा और अतिथि-सत्कार करता रहता है वही ब्राह्मण है; जो सदाचारी, नित्यव्रती, गुरुप्रिय और सत्यपरायण रहकर ब्राह्मणों को भोजन कराने से बचा हुआ अन्न खाता और जो दान, अद्रोह, कोमलता, क्षमा, दया और तपस्या करने में लगा रहता है वही ब्राह्मण है। जो वेद का अध्ययन, युद्ध और ब्राह्मणों को दान करता तथा

प्रजा से कर लेता है वह क्षत्रिय है। जो शुद्ध रहकर वेद पढ़ता और कृषि-वाणिज्य आदि करता है वह वैश्य है और जो वेदहीन तथा आचार-भ्रष्ट रहकर सब काम करता तथा सब कुछ खाता रहता है वह शूद्र है। जो मनुष्य द्विज के कुल में जन्म लेकर शूद्र के कर्म करता है वह शूद्र और जो शूद्र के वंश में पैदा होकर द्विज के समान संयमी होता है वह द्विज है। इसलिए यत्न से क्रोध और लोभ को दबाना और आत्मसंयम करना चाहिए; क्योंकि क्रोध और लोभ
१० आत्मोन्नति के बाधक हैं। बुद्धिमान् मनुष्य हमेशा क्रोध से धन, मात्सर्य से तपस्या, मान-अपमान से विद्या और प्रमाद से आत्मा को बचाता है।

कर्म-संन्यासी वही बुद्धिमान् मनुष्य है जो आसक्ति छोड़कर यज्ञ आदि कर्म तथा दान और होम करता रहता है। ज्ञानी मनुष्य सबसे मित्रता रखता और हिंसा तथा ऐश्वर्य आदि का त्याग करके बुद्धि से इन्द्रियों को वश में रखता है। लोक और परलोक में निर्भय रहने के लिए आत्मचिन्तन करना चाहिए। परलोक को जीतने की इच्छा करनेवाले तपोनिष्ठ संयमी मुनियों का पुत्र-स्त्री आदि परिवार में लिप्त रहना ठीक नहीं। स्थूल पदार्थ इन्द्रियों के द्वारा जाने जा सकते हैं किन्तु सूक्ष्म-शरीर का ज्ञान इन्द्रियों से नहीं हो सकता। उसे योगी लोग योगबल से देख सकते हैं। अतएव सूक्ष्म-शरीर के देखने की इच्छा रखनेवाला मनुष्य अश्रद्धा त्यागकर मन को जीवात्मा से मिलाकर जीवात्मा को ब्रह्म में लीन करे। वैराग्य से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। ब्राह्मण लोग वैराग्य से ही ब्रह्मपद प्राप्त करते हैं। प्राणियों पर
१८ दया रखना और सदाचारी रहकर सद्व्यवहार करना ब्राह्मणों का लक्षण है।

महाभारत के स्थायी ग्राहक बनने के नियम

(१) जो सज्जन हमारे यहाँ महाभारत के स्थायी ग्राहकों में अपना नाम और पता लिखा देते हैं उन्हें महाभारत के अङ्कों पर २०) सैकड़ा कमीशन काट दिया जाता है। अर्थात् ।।) प्रति अङ्क के बजाय स्थायी ग्राहकों को ।) में प्रति अङ्क दिया जाता है। ध्यान रहे कि डाकख़र्च स्थायी और फुटकर सभी तरह के ग्राहकों को अलग देना पड़ेगा।

(२) साल भर या छः मास का मूल्य १२) या ६), दो आना प्रति अङ्क के हिसाब से रजिस्ट्री ख़र्च सहित १३।।) या ६।।।) जो सज्जन पेशगी मनीआर्डर-द्वारा भेज देंगे, केवल उन्हीं सज्जनों को डाकख़र्च नहीं देना पड़ेगा। महाभारत की प्रतियाँ राह में गुम न हो जायँ और ग्राहकों की सेवा में वे सुरक्षित रूप से पहुँच जायँ, इसी लिए रजिस्ट्री द्वारा भेजने का प्रबन्ध किया गया है।

(३) उसके प्रत्येक खंड के लिए अलग से बहुत सुन्दर जिल्दें भी सुनहले नाम के साथ तैयार कराई जाती हैं। प्रत्येक जिल्द का मूल्य ।।।) रहता है परन्तु स्थायी ग्राहकों को वे ।।) ही में मिलती हैं। जिल्दों का मूल्य महाभारत के मूल्य से बिलकुल अलग रहता है।

(४) स्थायी ग्राहकों के पास प्रतिमास प्रत्येक अङ्क प्रकाशित होते ही बिना विलम्ब वी० पी० द्वारा भेजा जाता है। बिना कारण वी० पी० लौटाने से उनका नाम ग्राहक-सूची से अलग कर दिया जायगा।

(५) ग्राहकों को चाहिए कि जब किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार करें तो कृपा कर अपना ग्राहक-नम्बर जो कि पता की स्लिप के साथ छपा रहता है और पूरा पता अवश्य लिख दिया करें। बिना ग्राहक-नम्बर के लिखे हज़ारों ग्राहकों में से किसी एक का नाम ढूँढ़ निकालने में बड़ी कठिनाई पड़ती है और पत्र की कार्रवाई होने में देरी होती है। क्योंकि एक ही नाम के कई-कई ग्राहक हैं। इसलिए सब प्रकार का पत्र-व्यवहार करते तथा रुपया भेजते समय अपना ग्राहक-नम्बर अवश्य लिखना चाहिए।

(६) जिन ग्राहकों को अपना पता सदा अथवा अधिक काल के लिए बदलवाना हो, अथवा पते में कुछ भूल हो, उन्हें कार्यालय को पता बदलवाने की चिट्ठी लिखते समय अपना पुराना और नया दोनों पते और ग्राहक-नम्बर भी लिखना चाहिए। जिससे उचित संशोधन करने में कोई दिक़्क़त न हुआ करे। यदि किसी ग्राहक को केवल एक दो मास के लिए ही पता बदलवाना हो, तो उन्हें अपने हलके के डाकख़ाने से उसका प्रबन्ध कर लेना चाहिए।

(७) ग्राहकों से सविनय निवेदन है कि नया आर्डर या किसी प्रकार का पत्र लिखने के समय यह ध्यान रक्खें कि लिखावट साफ़ साफ़ हो। अपना नाम, गाँव, पोस्ट और ज़िला साफ़ साफ़ हिन्दी या अँगरेज़ी में लिखना चाहिए ताकि अङ्क या उत्तर भेजने में दुबारा पूछ-ताछ करने की ज़रूरत न हो। "हम परिचित ग्राहक हैं" यह सोच कर किसी को अपना पूरा पता लिखने में लापरवाही न करनी चाहिए।

(८) यदि कोई महाशय मनी-आर्डर से रुपया भेजें, तो 'कूपन' पर अपना पता-ठिकाना और रुपया भेजने का अभिप्राय स्पष्ट लिख दिया करें, क्योंकि मनीआर्डरफ़ार्म का यही अंश हमको मिलता है।

सब प्रकार के पत्रव्यवहार का पता—

मैनेजर महाभारत विभाग, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

आवश्यक सूचनायें

(१) हमने प्रथम खण्ड की समाप्ति पर उसके साथ एक महाभारत-कालीन भारतवर्ष का प्रामाणिक सुन्दर मानचित्र भी देने की सूचना दी थी। इस सम्बन्ध में हम ग्राहकों को सूचित करते हैं कि पूरा महाभारत समाप्त हो जाने पर हम प्रत्येक ग्राहक को एक परिशिष्ट अध्याय बिना मूल्य भेजेंगे जिसमें महाभारत-सम्बन्धी महत्त्व-पूर्ण खोज, साहित्यिक आलोचना, चरित्र-चित्रण तथा विश्लेषण आदि रहेगा। उसी परिशिष्ट के साथ ही मानचित्र भी लगा रहेगा जिसमें पाठकों को मानचित्र देख कर उपरोक्त बातें पढ़ने और समझने आदि में पूरी सुविधा रहे।

(२) महाभारत के प्रेमी ग्राहकों को यह शुभ समाचार सुन कर बड़ी प्रसन्नता होगी कि हमने कानपुर, उन्नाव, काशी (रामनगर), कलकत्ता, गाज़ीपुर, बरेली, मथुरा (वृन्दावन), जोधपुर, बुलन्दशहर, प्रयाग और लाहौर आदि में ग्राहकों के घर पर ही महाभारत के अङ्क पहुँचाने का प्रबन्ध किया है। अब तक ग्राहकों के पास यहीं से सीधे डाक-द्वारा प्रतिमास अङ्क भेजे जाते थे जिसमें प्रति अङ्क तीन चार आना खर्च होता था पर अब हमारा नियुक्त किया हुआ एजेंट ग्राहकों के पास घर पर जाकर अङ्क पहुँचाया करेगा और अङ्क का मूल्य भी ग्राहकों से वसूल कर ठीक समय पर हमारे यहाँ भेजता रहेगा। इस अवस्था पर ग्राहकों को ठीक समय पर प्रत्येक अङ्क सुरक्षित रूप में मिल जाया करेगा और वे डाक, रजिस्टरी तथा मनीआर्डर इत्यादि के व्यय से बच जायँगे। इस प्रकार उन्हें प्रत्येक अङ्क केवल एक रुपया मासिक देने पर ही घर बैठे मिल जाया करेगा। यथेष्ट ग्राहक मिलने पर अन्य नगरों में भी शीघ्र ही इसी प्रकार का प्रबन्ध किया जायगा। आशा है जिन स्थानों में इस प्रकार का प्रबन्ध नहीं है, वहाँ के महाभारतप्रेमी सज्जन शीघ्र ही अधिक संख्या में ग्राहक बन कर इस अवसर से लाभ उठावेंगे। और जहाँ इस प्रकार की व्यवस्था हो चुकी है वहाँ के ग्राहकों के पास जब एजेंट अङ्क लेकर पहुँचे तो ग्राहकों को रुपया देकर अङ्क ठीक समय पर ले लेना चाहिए जिसमें उन्हें ग्राहकों के पास बार बार आने जाने का कष्ट न उठाना पड़े। यदि किसी कारण उस समय ग्राहक मूल्य देने में असमर्थ हों तो अपनी सुविधानुसार एजेंट के पास से जाकर अङ्क ले आने की कृपा किया करें।

(३) हम हिन्दी-भाषा-भाषी सज्जनों से एक सहायता की प्रार्थना करते हैं। वह यही कि हम जिस विराट् आयोजन में संलग्न हुए हैं आप लोग भी कृपया इस पुण्य-पर्व में सम्मिलित होकर पुण्य-सञ्चय कीजिए, अपनी राष्ट्र-भाषा हिन्दी का साहित्य-भाण्डार पूर्ण करने में सहायक हूजिए और इस प्रकार सर्वसाधारण का हित-साधन करने का उद्योग कीजिए। सिर्फ़ इतना ही करें कि अपने दस-पाँच हिन्दी-प्रेमी इष्ट-मित्रों में से कम से कम दो स्थायी ग्राहक इस वेद तुल्य सर्वाङ्गसुन्दर महाभारत के और बना देने की कृपा करें। जिन पुस्तकालयों में हिन्दी की पहुँच हो वहाँ इसे ज़रूर मँगवावें। एक भी समर्थ व्यक्ति ऐसा न रह जाय जिसके घर यह पवित्र ग्रन्थ न पहुँचे। आप सब लोगों के इस प्रकार साहाय्य करने से ही यह कार्य्य अग्रसर होकर समाज का हितसाधन करने में समर्थ होगा।

—प्रकाशक

विषय-सूची

चित्र-सूची

एक सौ नब्बे अध्याय

सत्य को स्वर्ग और झूठ को नरक बतलाना तथा सुख और दुःख का निरूपण करना

भृगु कहते हैं—हे तपोधन, सत्य ही ब्रह्म और तप है तथा सत्य ही प्रजा की सृष्टि और प्रजा का पालन करता है। सत्य से ही स्वर्ग की प्राप्ति हो सकती है। झूठ अन्धकार-स्वरूप है। इसी अन्धकार की बदौलत मनुष्यों का अधःपात होता है। मनुष्य इस अन्धकार से ढक जाने पर सत्य-रूप प्रकाश को नहीं देख सकता। सत्य-रूपी प्रकाश स्वर्ग और अन्धकार-रूपी झूठ नरक है। कर्मों के फल से मनुष्य को स्वर्ग और नरक मिलते हैं। सत्य में धर्म, प्रकाश और सुख तथा झूठ में अधर्म, अन्धकार और दुःख रहता है। जो सत्य है वही धर्म है, जो धर्म है वही प्रकाश है और जो प्रकाश है वही सुख है। असत्य ही अधर्म है; जो अधर्म है वही अन्धकार है और जो अन्धकार है वही दुःख है। संसार में शारीरिक और मानसिक दुःख तथा दुःख का परिणाम-स्वरूप सुख मनुष्यों को होता रहता है, यह समझकर बुद्धिमान् लोग कभी मोह में नहीं फँसते। विवेकी मनुष्य को दुःख से बचने के लिए हमेशा यत्न करते रहना चाहिए। सांसारिक और पारलौकिक सुख अनित्य है। जैसे राहुग्रस्त होने पर चन्द्रमा की चाँदनी छिप जाती है वैसे ही अविवेकी मनुष्यों का सुख ढका रहता है। सुख दो प्रकार का है—शारीरिक और मानसिक। सुख के लिए मनुष्य अनेक उपाय करते हैं। सुख से बढ़कर त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ और काम) का और कोई फल नहीं है। सुख पाने की इच्छा सभी करते हैं। सुख आत्मा का विशेष गुण है। धर्म और अर्थ ही सुख का मूल है। सुख के लिए ही धर्म और अर्थ का आरम्भ किया जाता है।

भरद्वाज ने कहा—हे तपोधन, आपने जो सुख को श्रेष्ठ कहा है उसका तात्पर्य मेरी समझ में नहीं आया। देखिए, महर्षि लोग आत्मा के गुण-विशेष सुख की कुछ परवा न करके ध्यान में मन लगाते हैं। सुना जाता है कि ब्रह्माजी ने सुख की इच्छा न करके ब्रह्मचर्य रखकर तप किया था। उमापति ने काम को देखकर जला डाला। इन दृष्टान्तों से जान पड़ता है कि महात्मा लोग सुख की इच्छा नहीं करते थे। इसलिए सुख आत्मा का विशेष गुण नहीं कहा जा सकता। आपने जो कहा है कि सुख से बढ़कर और कुछ नहीं है, इस बात पर मुझे विश्वास नहीं होता। यह भी प्रवाद है कि पुण्य से सुख और पाप से दुःख की उत्पत्ति होती है। १०

भृगु ने कहा—भरद्वाज! झूठ से अज्ञान उत्पन्न होता है और अज्ञान से क्रोध, लोभ और हिंसा का भाव पैदा होता है। झूठ की ही बदौलत मनुष्य धर्म को छोड़कर अधर्म करने लगता है और उसे हमेशा अनेक प्रकार की व्याधि, रोग, चिन्ताएँ, वध, बन्धन, भूख, प्यास, आँधी-पानी, गरमी-सरदी, बन्धुओं का वियोग और धन का नाश आदि दुःख सताते रहते हैं। इसलिए झूठ बोलनेवाले को सुख कैसे मिल सकता है? जिस मनुष्य को इस प्रकार के शारीरिक और मानसिक दुःख नहीं हैं वही सुख का अनुभव कर सकता है। ये सब दुःख स्वर्ग-

लोक में नहीं होते। स्वर्ग में हमेशा शीतल-मन्द-सुगन्ध पवन चलता रहता है तथा वहाँ भूख, प्यास, श्रम, बुढ़ापा और पाप नहीं है। सारांश यह कि स्वर्गलोक में सुख ही सुख और नरक में हमेशा दुःख ही रहता है। संसार में सुख और दुःख दोनों हैं, इसलिए सुख ही सबसे बढ़कर है। स्त्री-जाति सब प्राणियों की उत्पत्ति करनेवाली पृथिवी-स्वरूप है, पुरुष प्रजापति-स्वरूप और शुक्र तेज-स्वरूप है। ब्रह्माजी ने स्त्री-पुरुष के सहयोग और शुक्र के प्रभाव से संसार की सृष्टि का नियम बना दिया है। मनुष्य उसी नियम के अनुसार काम करता हुआ, अपने-अपने कर्म के अनुसार, सुख-दुःख भोगता है। १६

एक सौ इक्यानबे अध्याय

चारों आश्रमों के धर्मों का वर्णन

भरद्वाज ने पूछा—महात्मन्! दान, धर्म, आचार, तप, वेदाध्ययन और होम करने का क्या फल है?

भृगु ने कहा—ब्रह्मन्! होम करने से पाप शान्त हो जाता है, वेद पढ़ने से शान्ति मिलती है, दान से भोग और तप से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। दान दो प्रकार का है—सांसारिक और पारलौकिक। जो दान सत्पात्र को दिया जाता है वह पारलौकिक सुख और जो असत्पात्र को दिया जाता है वह सांसारिक सुख देता है। जो जैसा दान करता है वह वैसा फल भोगता है।

भरद्वाज ने पूछा—महर्षि! कौन धर्म किसका है, धर्म के क्या लक्षण हैं और धर्म कितने प्रकार का है?

भृगु ने कहा—ब्रह्मन्, जो बुद्धिमान् मनुष्य अपने-अपने धर्म का पालन करते हैं वे स्वर्ग का सुख पा सकते हैं और जो इसके विरुद्ध करते हैं वे मूढ़ हैं।

भरद्वाज ने कहा—महात्मन्, प्राचीन महर्षियों ने चार आश्रमों के जो धर्म बतलाये हैं और उन्होंने स्वयं जिन धर्मों का आचरण किया है उनका आप वर्णन कीजिए।

भृगु ने कहा—ब्रह्मन्, पहले ब्रह्माजी ने प्रजा के हित और धर्म की रक्षा के लिए चार आश्रम बनाये। चारों आश्रमों में ब्रह्मचर्य सबसे श्रेष्ठ है। इस आश्रम में रहनेवाले पवित्रता, संस्कार, विनय, नियम और व्रत का पालन करते हुए प्रातःकाल सूर्य और सायङ्काल अग्नि की उपासना करें; निद्रा और आलस्य छोड़कर गुरु की आज्ञा का पालन और उनकी सेवा, प्रार्थना किया करें तथा वेद का पढ़ना और सुनना, तीन बार स्नान, अग्नि की रक्षा और नित्य भिक्षा-वृत्ति आदि करना उनका कर्तव्य है। इस प्रकार वे अपने आत्मा को पवित्र करते रहें। शास्त्र का वचन है कि जो ब्रह्मचारी गुरु की सेवा करके वेद पढ़ता है उसे स्वर्ग की प्राप्ति होती है और उसके मनोरथ सिद्ध होते हैं। गार्हस्थ्य दूसरा आश्रम है। इस आश्रम के धर्म और

लक्षण सुनो। ब्रह्मचर्य आश्रम समाप्त करके सदाचार और धर्म का आचरण करता हुआ जो फल पाने की इच्छा करता है उसी के लिए गृहस्थाश्रम का विधान है। इस आश्रम में धर्म, अर्थ और काम, इस त्रिवर्ग की प्राप्ति होती है। सोने आदि की खान से अथवा वेदाध्ययन के प्रभाव से या यज्ञ-होम आदि कर्मों के फल-स्वरूप देवता के प्रसाद से जो धन प्राप्त हो उसी से गृहस्थ मनुष्य अपना निर्वाह करे। यही आश्रम सब आश्रमों का मूल है। गुरुकुल में रहनेवाले, परिव्राजक और अन्यान्य व्रत-नियमों का पालन करनेवाले, सभी गृहस्थ के आश्रित हैं। वानप्रस्थ १० आश्रम में रहनेवालों के लिए धन का संग्रह करना निषिद्ध है। वे लोग सदा वेद का पाठ, तीर्थ-यात्रा और देशों के देखने के लिए पृथिवी-पर्यटन करते रहते हैं। उनको देखकर खड़े हो जाना, प्रणाम करना और खुले दिल से मीठी बातें करके उन्हें आसन, शय्या और भोजन देना तथा सब तरह से उनका सत्कार करना गृहस्थों का धर्म है। शास्त्र का वचन है कि जो गृहस्थ यथासाध्य अतिथि-सत्कार नहीं करता उसके घर से हताश होकर लौटते समय अतिथि अपना सञ्चित पाप उसे देकर उसका उपार्जित सब पुण्य ले लेता है। गृहस्थाश्रम में यज्ञ करने से देवता, श्राद्ध और तर्पण करने से पितर, वेद आदि के पढ़ने, सुनने और मनन करने से ऋषि और पुत्र उत्पन्न करने से ब्रह्माजी सन्तुष्ट होते हैं। सब प्राणियों से प्रेम रखना और सबसे मीठी बातें करना चाहिए। निन्दा, कठोर वचन, अवज्ञा, अहङ्कार और दम्भ से गृहस्थों को बचना चाहिए। सत्य बोलना और हिंसा तथा क्रोध न करना सभी आश्रमवासियों के लिए तप-स्वरूप है। गृहस्थ आश्रम में माला, गहने और कपड़े पहनना, तेल और उबटन लगाना, नाच देखना, गाना-बजाना और खाने-पीने आदि की अनेक वस्तुओं के स्वाद लेना, ये सब अभीष्ट सुख प्राप्त होते हैं। जो मनुष्य गृहस्थाश्रम में रहकर त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ और काम) तथा सत्त्व, रज और तमोगुण का उपयोग करता है वह इस लोक में सुख पाकर अन्त को सद्गति पाता है। जो गृहस्थ इच्छाओं को त्यागकर उञ्छवृत्ति से निर्वाह करता हुआ अपने धर्म का पालन करता है उसके लिए स्वर्ग की प्राप्ति दुर्लभ नहीं है। १८

एक सौ बानबे अध्याय

वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम के लक्षण कहना तथा हिमालय के उत्तर में परलोक बतलाना

भृगु कहते हैं—हे भरद्वाज! वानप्रस्थी लोग अपने धर्म के अनुसार तीर्थ, नदी और झरने आदि अनेक स्थानों में घूमते तथा मृग, भैंसे, वराह, सिंह और जङ्गली हाथियों से भरे हुए वन में तप करते हैं। ग्राम्य वस्त्र, भोजन और उपभोग उन्हें पसन्द नहीं आते। वे लोग वन के फल, मूल, पत्ते और ओषधि का परिमित आहार करते; पृथिवी, पत्थर, बालू, कँकरीली

ज़मीन और भस्म के ऊपर सोते; कुश, काश, चमड़ा और वल्कल पहिनते; सिर के बाल, दाढ़ी, नख और रोएँ रखते तथा नियमित समय पर स्नान और नियमानुसार बलि तथा होम करते हैं। वे लोग होम के लिए लकड़ी, कुश और फूल आदि पूजा की सामग्री इकट्ठा किये बिना विश्राम नहीं करते। हमेशा गरमी-सरदी और आँधी-पानी को सहते हैं। अनेक प्रकार के नियम और संयम करते रहने के कारण उनकी खाल सिकुड़ जाती तथा मांस और रक्त सूख जाता है। उनके शरीर में केवल हड्डी और खाल रह जाती है। वे लोग बड़े धैर्यवान् होते हैं। ब्रह्मर्षियों के बतलाये हुए नियमों का जो इस प्रकार पालन करता है वह, अग्नि के समान, दोषों को जलाकर दुर्जय लोक प्राप्त करता है।

अब संन्यासियों के आचरण सुनो। संन्यासी लोग अग्नि, धन, स्त्री और अन्यान्य भोग्य वस्तुओं का त्याग करके स्नेह के बन्धन से छूटकर विचरते रहते हैं। वे महात्मा लोग मिट्टी और सोने को बराबर समझते हैं। धर्म, अर्थ और काम में वे आसक्त नहीं होते। वे शत्रु, मित्र और उदासीन, सभी को समान भाव से देखते हैं और मन-वचन-शरीर से किसी का अपकार नहीं करते। उनके रहने का कोई स्थान निश्चित नहीं रहता। वे पहाड़ों पर, नदियों के किनारे, पेड़ों के नीचे और मन्दिरों में घूमा करते हैं। वे किसी नगर में लगातार पाँच दिन और किसी गाँव में एक दिन से अधिक नहीं ठहरते। वे जब कभी गाँव या नगर में जाते हैं तब किसी सदाचारी ब्राह्मण के यहाँ ठहरते हैं। वे कभी किसी से कुछ माँगते नहीं; जो कुछ मिल जाता है उसी में सन्तुष्ट रहते हैं। वे कभी न तो काम, क्रोध, लोभ और मोह के वश होते हैं और न अहंकार, दूसरों की निन्दा या हिंसा करते हैं। शास्त्र का वचन है कि जिससे किसी प्राणी को भय नहीं होता उसे भी किसी का भय नहीं रहता। जो अपने शरीर में स्थित अग्नि में अग्निहोत्र करके उस अग्नि के उद्देश्य से अपने मुँह में, भिक्षा से प्राप्त अन्न का हवन करता है वह अग्निहोत्र करनेवालों के लोक को प्राप्त करता है। जो वासनाहीन होकर शुद्ध चित्त से शास्त्र के अनुसार मोक्ष आश्रम का आश्रय लेता है वह, बिना ईंधन की आग के समान, शान्त होकर ब्रह्मलोक को जाता है।

भरद्वाज ने कहा—ब्रह्मन्, सुना जाता है कि इस लोक से परे कोई दूसरा लोक भी है किन्तु उस लोक को किसी ने कभी नहीं देखा। तो वह लोक किस प्रकार का है?

भृगु ने कहा—तपोधन, उत्तर दिशा में हिमालय के पास सर्वगुणसम्पन्न परम पवित्र मंगलजनक पापहीन एक लोक है। वही परलोक कहलाता है। लोभ-मोह से रहित शुद्ध-चित्त पुण्यात्मा मनुष्य उस लोक में शान्ति से रहते हैं। वहाँ अकालमृत्यु और रोग नाम के

१० लिए भी नहीं है। इन सब गुणों के होने से ही वह देश स्वर्ग के समान है। उस स्थान में रहनेवाले मनुष्य अपनी-अपनी स्त्रियों में अनुराग रखते हैं; वे दूसरे की स्त्री का लोभ नहीं

करते। एक-दूसरे को कभी नहीं सताते और कभी विस्मय नहीं करते। उनमें अधर्म नहीं होता। किसी को किसी विषय में सन्देह नहीं होता और वहाँ सब कर्मों का फल प्रत्यक्ष हो जाता है। उस लोक में कोई तो महलों में निवास करके सोने के गहनों से भूषित होकर श्रेष्ठ वस्तुओं को खाता-पीता हुआ अपनी सब इच्छाएँ पूर्ण करता है और कोई भोग की इच्छाओं को त्यागकर परमात्मा का ध्यान करता है। कोई कठिन परिश्रम करके योगबल प्राप्त कर लेता है। इस लोक की अपेक्षा वह लोक सर्वथा उत्तम है। इस लोक में कोई धर्मात्मा, कोई निठुर, कोई सुखी, कोई दुखी, कोई धनवान् और कोई निर्धन रहता है। मूर्ख लोग हमेशा श्रम, भय, मोह, भूख और धन के लोभ में फँसे रहते हैं। इस लोक में धर्म और अधर्म की चर्चा होती रहती है। जो बुद्धिमान् मनुष्य इन दोनों को भली भाँति जानता है वह पाप में लिप्त नहीं होता। जो मनुष्य दम्भ, चोरी, दूसरों की निन्दा, ईर्ष्या, हिंसा और दुष्टता करता, झूठ बोलता और दूसरों को सताता है उसकी तपस्या नष्ट हो जाती है। जो विवेकी मनुष्य इन दोषों से बचा रहता है उसकी तपस्या बढ़ती है। इस लोक में धर्म-अधर्म का विचार और कर्म अनेक प्रकार के हैं। इस लोक का नाम कर्मभूमि है। मनुष्य इस लोक में शुभ और अशुभ कर्म करते हैं। जो शुभ कर्म करता है उसे शुभ फल और जो अशुभ कर्म करता है उसे अशुभ फल मिलता है। प्रजापति ब्रह्मा, देवताओं और ऋषियों ने तप के प्रभाव से पवित्र होकर ब्रह्मलोक की प्राप्ति की है। २० जो लोग इस लोक में शुभ कर्म और योग का अभ्यास करते हैं उन पुण्यात्माओं को उत्तर दिशा का पूर्वोक्त लोक प्राप्त होता है और जो अशुभ कर्म करते हैं उनकी आयु क्षीण हो जाती है। वे मरने पर तिर्यग्योनि में जन्म पाते हैं। एक-दूसरे को सतानेवाले लोभी और मोहान्ध लोग उत्तर दिशा में स्थित परलोक को प्राप्त नहीं कर सकते। वे बार-बार इस लोक में जन्म लेते हैं। जो ब्रह्मचारी नियम का पालन करते हुए गुरु की सेवा करते हैं वे बुद्धिमान् लोग सब लोकों के मार्ग को समझ सकते हैं। ब्रह्मन्, मैंने यह वेदोक्त धर्म संक्षेप में बतला दिया। जो मनुष्य संसार में कर्तव्य और अकर्तव्य को अच्छी तरह समझ सकता है वही बुद्धिमान् है।

भीष्म कहते हैं—हे धर्मराज, महर्षि भृगु के इन वचनों को सुनकर प्रतापी धर्मात्मा भरद्वाज को बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने भृगु की यथोचित पूजा की। मैंने यह सृष्टि की उत्पत्ति का विषय बतला दिया। अब तुम्हें और क्या पूछना है? २७

एक सौ तिरानबे अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से सदाचार का निरूपण करना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, मेरी राय में आप बड़े बहुदर्शी हैं। मैं आपके मुँह से सदाचार का वर्णन सुनना चाहता हूँ।

भीष्म ने कहा—बेटा! दुराचारी, दुश्चेष्ट, दुर्बुद्धि और बेसमझे-बूझे काम कर डालने-वाले मनुष्य दुर्जन और सदाचारी मनुष्य सज्जन कहलाते हैं। सज्जन बड़ी सड़कों पर, अन्न में और गायों के रहने की जगहों में कभी मल-मूत्र नहीं त्यागते। आवश्यक शुद्धि के बाद स्नान करे और स्नान करके देवताओं का तर्पण करे। सूर्य की उपासना नित्य करनी चाहिए। सूर्य के उदय होने पर सोना उचित नहीं। प्रातःकाल पूर्व की ओर और सायङ्काल पश्चिम की ओर मुँह करके गायत्री का जप करे। हाथ-पैर और मुँह धोकर पूर्वमुख बैठकर चुपचाप भोजन करना चाहिए। भोजन की निन्दा न करे। स्वादिष्ट भोजन करे, पानी पीकर उठे और गीले पैरों रात में न सोवे। ये आचरण के लक्षण देवर्षि नारद ने बतलाये हैं। यज्ञ आदि के स्थान, बैल, देव-मन्दिर, चौराहे, धार्मिक ब्राह्मण और चैत्यवृक्ष की प्रतिदिन प्रदक्षिणा करनी चाहिए। अतिथि, नौकर-चाकर और अपने परिवार के लोगों को एक ही तरह का भोजन कराना चाहिए। प्रातःकाल और सन्ध्या के समय मनुष्यों को भोजन करना उचित है। अन्य १० समय भोजन न करे। सबेरे और शाम को भोजन करने से उपवास का फल मिलता है। होम करने के समय होम करने और परस्त्री का संसर्ग न करके अपनी स्त्री के साथ ऋतुकाल में सहवास करने से ब्रह्मचर्य रखने का फल मिलता है। ब्रह्माजी ने ब्राह्मणों के भोजन करने से बचे हुए अन्न को माता के हृदय के समान हितकर बतलाया है। जो ब्राह्मणों के भोजन कर चुकने पर भोजन करता है वह सत्पुरुष सत्यलोक को जाता है। व्यर्थ ढेला तोड़नेवाले, तिनका तोड़नेवाले, दाँतों से नाखून काटनेवाले, हमेशा कुछ न कुछ खाते रहनेवाले और लोभी कामी मनुष्य की आयु कम हो जाती है। जिसने मांस खाना छोड़ दिया हो वह यजुर्वेद के जानने-वाले ब्राह्मण द्वारा संस्कार किया हुआ मांस भी न खाय। बिना संस्कार किया हुआ मांस तथा श्राद्ध से बचा हुआ मांस तो खाना ही न चाहिए। देश में हो या विदेश में, अतिथि को भूखा न रक्खे। भीख में जो कुछ अन्न आदि मिले उसे माता-पिता प्रभृति को दे दे। बड़े-बूढ़ों को बैठने के लिए आसन देना और उनको प्रणाम करना चाहिए। बड़े-बूढ़ों का आदर करने से आयु, कीर्ति और धन की वृद्धि होती है। उदय होते हुए सूर्य और नङ्गी परस्त्री को न देखे। ऋतुकाल में स्त्री-संसर्ग करे, किन्तु एकान्त में। सब तीर्थों में गुरु और सब पवित्र वस्तुओं में अग्नि श्रेष्ठ है। गाय की पूँछ का स्पर्श आदि जिन कामों को सज्जन करते हैं वे काम प्रशंसनीय हैं। किसी के मिलने पर उससे क्षेम-कुशल पूछना चाहिए। सबेरे और शाम को, ब्राह्मणों को प्रणाम अवश्य किया करे। देवमन्दिर, गायों के रहने के स्थान, ब्राह्मणों २० के धर्म-कर्म, वेदाध्ययन और भोजन में दाहिने हाथ से काम लेना चाहिए। प्रातः और सन्ध्या समय ब्राह्मणों की पूजा करने का फल प्रत्यक्ष मिल जाता है; यही सबसे बढ़कर व्यापार और खेती है। ब्राह्मणों की पूजा करने से सुन्दरी स्त्री और अन्न-वस्त्र आदि की कमी नहीं रहती। ब्राह्मणों

को भोजन कराते समय 'सम्पन्नं', पानी देते समय 'तर्पणं' और खीर, खिचड़ी तथा तिलोदन देते समय 'श्रृतं' कहना चाहिए। रोगी मनुष्य क्षौरकर्म करने, छींकने, स्नान और भोजन करने पर ब्राह्मणों को प्रणाम करे। ऐसा करने से रोगी की उम्र बढ़ती है। न तो सूर्य की ओर मुँह करके पेशाब करे और न कभी अपने मल को देखे। स्त्री के साथ भोजन और शयन न करे। अपने से श्रेष्ठ लोगों को 'तुम' कहना और उनका नाम लेकर पुकारना ठीक नहीं। बराबरवालों को और अपने से छोटों को 'तुम' कहने में कोई दोष नहीं है। पापियों के मुँह और उनकी आँखों का विकार देखने से उनके मन का भाव मालूम हो जाता है। मूर्ख लोग जान-बूझकर पाप करके फिर उसे छिपाना चाहते हैं, किन्तु अन्त को उस छिपे पाप के कारण उनका नाश हो जाता है। पाप मनुष्यों से भले ही छिपा लिया जा सके, किन्तु देवता तो उसे देख ही लेते हैं। छिपाने से पाप बढ़ता है और धर्म को गुप्त रक्खा जाय तो उसकी वृद्धि होती है। मूढ़ मनुष्य पाप करके उसकी कुछ चिन्ता भी नहीं करता, किन्तु जैसे समय आने पर राहु चन्द्रमा के पास पहुँच जाता है वैसे ही पाप-कर्म भी यथासमय उस पाप करनेवाले के पास आ जाता है। किसी आशा से द्रव्य का सञ्चय करके उसका भोग करना बहुत कठिन है, क्योंकि मृत्यु किसी बात की प्रतीक्षा नहीं करती। इसी से समझदार लोग इस प्रकार के सञ्चय की निन्दा करते हैं। ३० विद्वानों का मत है कि मनुष्यों का मन ही धर्म उपार्जन करने का मूल है, इसलिए हमेशा मन से दूसरों का भला मनाते रहना सज्जनों का काम है। धर्म करने के लिए किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं, धर्म-कार्य अकेले ही करना चाहिए। धर्म करने से ही मनुष्यत्व और देवत्व प्राप्त होता है। धर्म के प्रभाव से मनुष्यों का सम्मान होता और परलोक में परम सुख मिलता है। ३२

एक सौ चौरानबे अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर को अध्यात्म-योग बतलाना

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, शास्त्र में मनुष्यों के लिए जो अध्यात्म (योग-धर्म) बतलाया गया है वह किस प्रकार का है? वह किससे उत्पन्न हुआ है और प्रलयकाल में वह किसमें लीन हो जायगा?

भीष्म कहते हैं—धर्मराज, तुमने जिस धर्म को मुझसे पूछा है उस श्रेयस्कर सुख-स्वरूप धर्म के तत्त्व का मैं वर्णन करता हूँ। आचार्यों ने सृष्टि और प्रलय का विषय विशेष रूप से कहा है। जो मनुष्य उस विषय को भली भाँति समझता है उसे प्रीति और सुख प्राप्त होता है। पृथिवी, वायु, आकाश, जल और तेज, इन पाँच महाभूतों से सब प्राणी उत्पन्न और नष्ट होते हैं। ये सब महाभूत समुद्र की तरङ्गों के समान बार-बार जिससे उत्पन्न होते हैं उसी में लीन हो जाते हैं। जैसे कछुआ अपने अङ्गों को बार-बार फैलाता और सिकोड़ता है वैसे ही

सृष्टिकर्ता बार-बार संसार की सृष्टि और प्रलय करता रहता है। परमात्मा ने प्राणियों के शरीर में पञ्चमहाभूतों को स्थापित कर दिया है, किन्तु देहाभिमानी जीव उनके वैषम्य को नहीं समझ सकता अर्थात् यह नहीं जान सकता कि शरीर का कौन भाग पृथिवी का अंश और कौन जल आदि का है। शब्द, श्रोत्र और सम्पूर्ण छिद्र आकाश के गुण हैं। स्पर्श, चेष्टा और त्वचा, ये तीन वायु के; रूप, नेत्र और परिपाक तेज के; रस, क्लेद और जिह्वा जल के तथा गन्ध, नासिका और शरीर पृथिवी के गुण हैं। इस प्रकार ये पाँच महाभूत और छठा मन
११ जीवात्मा को सब विषयों का ज्ञान कराते हैं। इन्द्रियाँ विषय को ग्रहण करती हैं, मन उस विषय में सन्देह उत्पन्न करता है और बुद्धि उस विषय का ठीक-ठीक निर्णय करती है। जीवात्मा शरीर में साक्षी के समान रहकर सिर से पैर तक देखता रहता है। वह शरीर के सब अङ्गों में व्याप्त रहता है। सत्त्व, रज और तम, ये तीन गुण इन्द्रियों का आश्रय करके शरीर में रहते हैं। इसलिए मनुष्यों को इन्द्रियों की परीक्षा भली भाँति करते रहना चाहिए। बुद्धि के प्रभाव से उत्पत्ति और प्रलय का स्थान मालूम हो जाने पर मनुष्यों को शान्ति मिलती है। तम आदि तीनों गुण बुद्धि को वश में रखते हैं, बुद्धि पाँचों इन्द्रियों को और मन को विषयों में आसक्त रखती है, अतएव बुद्धि के अभाव में तीनों गुण और इन्द्रिय आदि कोई भी काम नहीं कर सकते। स्थावर-जङ्गम सभी प्राणी बुद्धिसम्पन्न होने से ही उत्पन्न और बुद्धिहीन होने से नष्ट हो जाते हैं। इसी से प्राणियों को बुद्धिमय कहा है। बुद्धि के प्रभाव से ही आँखों से देखा जाता, कानों से सुना जाता, नाक से सूँघा जाता, जिह्वा से स्वाद और त्वचा से स्पर्श का ज्ञान
२० होता है तथा मन से सोच-विचार किया जाता है। आँख, कान आदि इन्द्रियाँ बुद्धि को विषयों का ज्ञान कराने के लिए केवल द्वार-स्वरूप हैं। जीवात्मा इन इन्द्रियों को अपने-अपने काम में लगाता है। बुद्धि प्राणियों की देह में आश्रय करके कभी प्रसन्नता और कभी सन्ताप उत्पन्न करती है। जैसे बड़ी तरङ्गोंवाला समुद्र अपनी सीमा से बाहर नहीं जाता वैसे ही बुद्धि सुख, दुःख और मोह इन तीन भावों को नहीं लाँघ सकती। बुद्धि कभी-कभी सुख-दुःख आदि भावों का त्याग तो कर देती है, किन्तु उस समय उसे मन में ठहर जाना पड़ता है और रजोगुण के प्रभाव से फिर उन्हीं सुख-दुःख आदि भावों में आना पड़ता है। बुद्धि रजोगुण से युक्त होकर इन्द्रियों का ज्ञान, सत्त्वगुण से युक्त होने पर यथार्थ ज्ञान और तमोगुण से युक्त होने पर मोह आदि उत्पन्न करती है। शम, दम, काम, क्रोध, भय और विषाद आदि सब इन्हीं तीन गुणों में विद्यमान रहते हैं। मैंने विस्तार के साथ यह बुद्धि के विषय का वर्णन किया।

बुद्धिमान् मनुष्य को सब इन्द्रियाँ अपने अधीन रखनी चाहिएँ। सत्त्व, रज और तम, ये तीनों गुण हमेशा प्राणियों का आश्रय करते हैं। सभी प्राणियों में सात्त्विकी, राजसी और तामसी, यह तीन प्रकार की बुद्धि देखी जाती है। सत्त्वगुण के प्रभाव से सुख और रजोगुण के

प्रभाव से दुःख उत्पन्न होता है। तमोगुण के प्रभाव से सुख और दुःख तो नहीं होता; किन्तु उससे मोह उत्पन्न होता है। मनुष्यों के शरीर और मन में जो प्रीतियुक्त भाव उत्पन्न होता है ३० वह सात्त्विक भाव, जो अप्रीति और दुःखयुक्त भाव पैदा होता है वह राजस भाव और जो मोहयुक्त भाव उत्पन्न होकर मूढ़ बना देता है वह तामस-भाव कहलाता है। राजस भाव उत्पन्न होने पर उसे दूर करने का उद्योग करना चाहिए। उससे डरकर दुखी और चिन्तित न हो। सत्त्वगुण से हर्ष, प्रीति, आनन्द और शान्त भाव उत्पन्न होता है। रजोगुण से असन्तोष, सन्ताप, शोक, लोभ और असहनशीलता तथा तमोगुण से अपमान, मोह, प्रमाद, स्वप्न और आलस्य पैदा होता है। जिसका मन दुर्लभ वस्तुओं की प्राप्ति और विविध विषयों के विचार में लगा रहता है तथा जो दीन भाव और नियमित वृत्ति से रहता है वह दोनों लोकों में सुख पाता है।

अब बुद्धि और आत्मा का भेद सुनो। बुद्धि से अहङ्कार आदि गुणों की उत्पत्ति होती है, किन्तु आत्मा इन बातों से अलग रहता है। जैसे गूलर के फल और उनके भीतर रहनेवाले पतङ्गे तथा पानी से अलग न रहनेवाली मछली और पानी, ये भिन्न-भिन्न पदार्थ हैं वैसे ही बुद्धि और आत्मा सदा एक साथ रहने पर भी स्वभावतः अलग-अलग हैं। अहङ्कार आदि गुण आत्मा ४० को नहीं जानते किन्तु आत्मा इन गुणों को जानता रहता है। आत्मा अहङ्कार आदि गुणों का द्रष्टा होकर उन्हें अपने से उत्पन्न हुआ मानता है। जैसे घड़े में रक्खा हुआ दीपक, घड़े के छेदों से, अपना तेज प्रकाशित करके वस्तुओं का ज्ञान कराता है वैसे ही परमात्मा—चेष्टाशून्य आत्मज्ञान-रहित—बुद्धि और इन्द्रियों के द्वारा समस्त अर्थ प्रकाशित करता है। बुद्धि गुणों को उत्पन्न करती है और आत्मा उनको देखता है। आत्मा और बुद्धि का यह सम्बन्ध अनादि है। बुद्धि और आत्मा का और कोई आश्रय नहीं है। बुद्धि मन को प्रकाशित करती है किन्तु अहङ्कार आदि गुणों का प्रकाश नहीं कर सकती। जब आत्मा बुद्धि के द्वार-स्वरूप सब इन्द्रियों को नियन्त्रित करता है तब, घड़े के भीतर रक्खे हुए प्रज्वलित दीपक की शिखा के समान, स्वयं प्रकाशित होता है। मनुष्य संन्यास-धर्म का अवलम्बन करके आत्मनिष्ठ और ध्यान-निरत होकर ब्रह्मज्ञान उत्पन्न करके निस्सन्देह उत्तम गति प्राप्त कर सकता है। जैसे हंस जल में रहता हुआ भी जल से लिप्त नहीं होता वैसे ही विवेकी मनुष्य संसार में रहता हुआ सांसारिक कामों में लिप्त नहीं होता। जो मनुष्य संसार में लिप्त न होकर अपनी बुद्धि से शोक, हर्ष और मात्सर्य को त्यागकर ब्रह्मनिष्ठ और जीवन्मुक्त हो सकता है वह—जैसे मकड़ी जाला पैदा करती है वैसे ही—सब गुणों की उत्पत्ति कर सकता है। कोई तो कहते हैं कि जीवन्मुक्त मनुष्य के सब गुण एकबारगी नष्ट नहीं हो जाते और किसी की सम्मति में ये सब एक साथ नष्ट हो जाते हैं। जो जीवन्मुक्त मनुष्यों के सब गुणों का विनाश नहीं मानते वे कहते हैं कि वेद में इनके विनाश हो जाने का कोई प्रमाण नहीं है, केवल स्मृतियों में प्रमाण है।

अतएव जीवन्मुक्त मनुष्यों के गुणों का विनाश स्वीकार करना ठीक नहीं। विवेकी मनुष्य अपनी
५१ बुद्धि से इन दोनों मतों को अच्छी तरह समझकर काम करे। बुद्धि को भ्रम में डालनेवाले सन्देहों को दूर करके सुख से रहे। कभी शोक से व्याकुल न हो। मलिन हृदयवाला मनुष्य बुद्धि-रूपी नदी में गोता लगाने से शुद्ध हो जाता है। बुद्धि से बढ़कर पवित्र और कुछ नहीं है। नदियों का पार देख लेने से कुछ फल नहीं होता, नाव आदि द्वारा उसके पार जाने पर ही मनुष्य कृतकार्य हो सकता है; किन्तु बुद्धि-रूपी नदी को जान लेने से ही सिद्धि हो जाती है। उसके पार जाने के लिए नाव आदि किसी आधार की आवश्यकता नहीं पड़ती। जिसे निर्विषयक अध्यात्म-ज्ञान उत्पन्न होता है वही श्रेष्ठ बुद्धि प्राप्त कर सकता है। जो मनुष्य प्राणियों की उत्पत्ति और उनके विनाश पर विशेष रूप से विचार करता रहता है वह अनन्त सुख प्राप्त करता है। जो मनुष्य धर्म, अर्थ और काम को नश्वर समझकर उनका त्याग कर देता है वही ध्यानशील और तत्त्वदर्शी होकर आत्मा का दर्शन करता हुआ तृप्त रहता है। रूप-रस आदि विषयों में आसक्त दुर्निवार इन्द्रियों को संयत किये विना आत्मदर्शन होना असम्भव है। आत्मज्ञान से बढ़कर दूसरा ज्ञान नहीं है। मनस्वी मनुष्य आत्मा का ज्ञान प्राप्त करके अपने को कृतार्थ मानता है। अविवेकी मनुष्यों को जिससे भय बना रहता है उससे ज्ञानी मनुष्यों को रत्ती भर भी डर नहीं रहता। मुक्ति सभी की एक सी है। जो सगुण हैं उनके गुणों की तुलना होती
६० है; किन्तु जो निर्गुण हैं उनकी—किसी प्रकार की—तुलना नहीं की जा सकती। जो निष्काम होकर कर्म करता है उसके पूर्वकृत कर्मों के सब दोषों का संशोधन हो जाता है और उसके पुराने या नये कर्म उसके लिए बन्धन का कारण नहीं होते। कर्म के द्वारा मनुष्यों को मोक्ष प्राप्त होना असम्भव है। विवेकी मनुष्य काम क्रोध आदि व्यसनों में आसक्त मनुष्यों को धिक्कारते हैं। निन्दित कामों के करनेवाले मनुष्य अपने जीवन-काल में सबके निन्दापात्र रहते और मरने पर पशु आदि नीच योनियों में जन्म पाते हैं। पापी लोग स्त्री-पुत्र आदि के मरने पर दुखी होते हैं; किन्तु ज्ञानी मनुष्य स्त्री-पुत्र आदि का नाश होने पर भी शोक नहीं करता। इन विषयों पर
६३ शान्त चित्त से विचार करना चाहिए।

एक सौ पञ्चानबे अध्याय

ध्यान-योग का वर्णन

भीष्म ने कहा—हे युधिष्ठिर! अब मैं चार प्रकार के उस ध्यान का वर्णन करता हूँ, जिसे भली भाँति जानकर महर्षियों ने सिद्धि प्राप्त की है। मोक्ष के चाहनेवाले ज्ञानवान् महर्षि लोग वही काम करते हैं जिससे निर्विघ्न ध्यान हो सके और राग-द्वेष आदि से बचकर परमात्मा में मन लगाते हैं। उन्हें फिर संसार में जन्म नहीं लेना पड़ता। काम-क्रोध-लोभ आदि को

त्यागकर, आत्मनिष्ठ होकर, सरदी-गरमी आदि द्वन्द्वों को सहन करते हुए सत्त्वगुणावलम्बी और प्रतिग्रहशून्य होकर, ऐसे स्थान में स्थिर भाव से बैठकर परमात्मा में मन लगावे जहाँ स्त्री आदि का संसर्ग और ध्यानविरोधी वस्तुएँ न हों। ध्यान में इस तरह मग्न रहे कि उस समय कानों से शब्द, त्वचा से स्पर्श, आँखों से रूप, जीभ से रस और नाक से गन्ध का ज्ञान न हो। उस समय ध्यान के प्रभाव से इन्द्रियों के सब काम रुके रहें। जो शब्द आदि विषय कान आदि पाँच इन्द्रियों को व्याकुल किये रहते हैं उनमें फिर उसकी इच्छा न रहे।

विवेकी मनुष्य इन्द्रियों को मन के साथ मिलाकर फिर चञ्चल मन को स्थिर करे। मन कभी स्थिर नहीं रहता, वह इन्द्रियों को हमेशा विषयों में प्रेरित करता रहता है। पाँच इन्द्रियाँ उसके पाँच द्वार हैं। अतएव ध्यान-मार्ग में सबसे पहले मन का साधन करना चाहिए। पाँच १० इन्द्रियों से युक्त आत्मा के छठे अङ्ग मन को इस प्रकार रोकने पर भी, बादलों में बिजली के प्रकाश की तरह, वह बार-बार विषयों को ग्रहण करने के लिए चलायमान हुआ करता है। जैसे पत्ते पर पड़ी हुई पानी की बूँद हिलती-डुलती रहती है वैसे ही ध्यान-मार्ग में स्थित जीवात्मा का मन चञ्चल बना रहता है। यदि किसी क्षण ध्यान में मन स्थिर किया भी जाता है तो वह नाड़ी-मार्ग में प्रवेश करके फिर अति चञ्चल हो उठता है। उस समय ध्यान-योग के मर्मज्ञ लोग, आलस्य छोड़कर, ध्यान के प्रभाव से फिर मन को स्थिर करें। योगी लोग योग का आरम्भ करने के पहले विचार, विवेक और वितर्क नाम के ध्यान करते हैं। चञ्चल मन को एकाग्र करके अपना भला करना चाहिए। योगी पुरुष योग के विषय में कभी ऊबे नहीं। जैसे धूलि, राख और सूखे गोबर के चूर्ण पर पानी छिड़कने से वह जल्दी गीला नहीं हो सकता, देर तक छिड़कते रहने पर ही गीला होता है वैसे ही मन धीरे-धीरे वश में किया जाता है। ध्यान-मार्ग में स्थित जो मनुष्य मन और इन्द्रियों को क्रमशः वश में कर सकता है वह अन्त को मन और इन्द्रियों समेत आत्मा को शान्त कर लेता है। अभ्यास करते-करते मन और इन्द्रियों को शान्त कर लेने पर योगी स्वयं शान्त भाव को प्राप्त होता है। योगी लोग योग के प्रभाव से जैसा सुख प्राप्त कर सकते हैं वैसा २० सुख दूसरे लोग भाग्य या उद्योग के द्वारा कभी नहीं पा सकते। हे धर्मराज, योगी लोग ध्यान के प्रभाव से आनन्दपूर्वक मोक्ष पद प्राप्त करते हैं। २२

एक सौ छानबे अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर को जप का फल बतलाना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह! आपने चारों आश्रमों के धर्म, राज-धर्म, अनेक इतिहास और अनेक प्रकार की कथाओं का वर्णन किया और उन सबको मैंने अच्छी तरह सुना। अब मुझे एक और प्रश्न करना है। जापक लोगों को कौन सा फल मिलता है और मरने पर

वे किस लोक को जाते हैं ? जप करने की क्या विधि है ? जप करनेवालों को सांख्य का मत माननेवाले, योगी या यज्ञ करनेवाले, क्या समझना चाहिए ?

भीष्म कहते हैं—हे धर्मराज ! इस विषय में एक ब्राह्मण, यम, काल और मृत्यु का प्राचीन इतिहास सुनो। मोक्ष-धर्म के जानकार मुनि लोग सांख्य और योग-धर्म का जो वर्णन कर गये हैं उसमें, सांख्य के मत से, जप न करना ही बतलाया गया है। इस मत में तो अपने मन में ही ब्रह्म की उपासना का विधान है। सांख्य और योग का मत है कि जब तक आत्मा का साक्षात्कार न हो जाय तब तक प्रणव का जप करने से लाभ होता है; किन्तु आत्मा का साक्षात्कार हो जाने पर जप करने का कोई प्रयोजन नहीं है। जो मनुष्य स्वर्ग आदि प्राप्त करने की इच्छा से जप करे उसे चित्त-संयम, इन्द्रिय-निग्रह, सत्य व्यवहार, अग्नि की उपासना, एकान्त-वास, ध्यान, तप और परिमित भोजन करना चाहिए; वह काम-क्रोध और ईर्ष्या आदि का त्याग ११ करके क्षमावान् और शान्त रहे। जो मनुष्य निष्काम होकर जप करे उसे सब कर्मों का त्याग करके केवल कुशों पर बैठना, कुशों को धारण करना, कुशों से शिखा बाँधना, कुशों को ओढ़ना और सब विषयों का त्याग करके मन को आत्मा में लगाना चाहिए। वह इच्छाओं का त्याग करके गायत्री आदि का जप करते-करते समाधि लगावे और अन्त को जप करना भी छोड़ दे। गायत्री आदि का जप करने से समाधि का ज्ञान उत्पन्न होता है। शुद्धचित्त, जितेन्द्रिय, काम-द्वेष-हीन, राग, मोह और द्वन्द्व से रहित मनुष्य न किसी विषय में आसक्त होता है और न कभी सोच करता है। ऐसे मनुष्य न तो कोई कर्म करते हैं और न उन्हें किसी कर्म का फल भोगना पड़ता है। वे अहङ्कार के वश होकर किसी विषय में मन नहीं लगाते। न तो वे धन प्राप्त करने की इच्छा करते हैं और न किसी का अनादर तथा अकार्य करते हैं। लगातार ध्यान में मग्न रहकर चित्त को एकाग्र २० करके फिर क्रमशः उसका भी त्याग कर देते हैं। जो सब वासनाओं को छोड़कर इस अवस्था में शरीर का त्याग करता है वह ब्रह्म में लीन हो जाता है। यदि वह ब्रह्म में लीन होना पसन्द नहीं करता तो ब्रह्मलोक को जाता है; उसे फिर जन्म नहीं लेना पड़ता। जो आत्मा का साक्षा-२३ त्कार कर लेता है वह रजोगुण से हीन, जरा-मरण-रहित विशुद्ध आत्मा को प्राप्त करता है।

एक सौ सत्तानबे अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर को जापक का उपाख्यान सुनाना

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, आपने जप करनेवालों की जो गति बतलाई है उसके सिवा उनकी और भी कोई गति होती है या नहीं ?

भीष्म ने कहा—बेटा, जप करनेवाले जिस तरह नरकगामी होते हैं सो ध्यान देकर सुनो। जो व्यक्ति श्रद्धा, भक्ति तथा हर्ष-सहित विधिपूर्वक जप नहीं करता और जो अभिमान

में आकर दूसरों का अनादर करता है उसे नरक में गिरना पड़ता है। किसी फल के लिए जप करनेवाला भी नरक में गिरता है। जो जप करनेवाला ऐश्वर्य के लिए लालायित रहता है वह ऐश्वर्य-लाभ-रूप नरक से कभी छुटकारा नहीं पाता। जप करनेवाले की जिन विषयों में प्रीति होती है वे सब उसे मिलते हैं। जो जापक दुर्बुद्धि, ज्ञानहीन और चञ्चल स्वभाव का होता है उसे चञ्चल गति मिलती है या नरक भोगना पड़ता है। जो व्यक्ति बालकस्वभाव, अविवेकी और मोह के वश रहकर जप करता है और जो दृढ़प्रतिज्ञ होने पर भी पूर्ण रूप से जप नहीं कर सकता उसे नरकगामी होकर पछताना पड़ता है। ११

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, जप करवाले भी तो स्वाभाविक अव्यक्त ब्रह्मभाव को प्राप्त करते हैं तो फिर उन्हें क्यों इस लोक में जन्म लेना पड़ता है?

भीष्म ने कहा—बेटा, जप की क्रियाएँ बहुत कठिन हैं। जो बुद्धिहीन मनुष्य उपर्युक्त दोषों का त्याग किये बिना जप करता है उसे नरक प्राप्त होता है। १३

एक सौ अट्ठानबे अध्याय

जापक का उपाख्यान

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, विधिपूर्वक जप न करनेवाले किस नरक को जाते हैं? यह सुनने के लिए मुझे बड़ा कौतूहल हो रहा है।

भीष्म ने कहा—धर्मराज, तुम धर्म के अंश से उत्पन्न और स्वभावतः धार्मिक हो। अतएव सावधान होकर मेरे धर्ममूलक वचन सुनो। दिव्यदेहधारी महामति चारों लोकपाल, शुक्राचार्य, बृहस्पति, अश्विनीकुमार, मरुत्, विश्वेदेवा, साध्य, रुद्र, आदित्य, वसु और अन्यान्य देवताओं के दिव्य इच्छाचारी विमान, सभा, विविध क्रीड़ास्थान और सुवर्णमय कमलों से शोभित जो सरोवर हैं वे सब परमात्मा-रूप स्थान से अत्यन्त निकृष्ट और नरक-स्वरूप हैं। परमात्मा-रूप स्थान इन सबसे अलग है। वहाँ मृत्यु का भय नहीं है। वह स्थान स्वभावतः क्लेशहीन, राग-द्वेष आदि से रहित, प्रिय-अप्रिय-विहीन, पञ्चभूत इन्द्रिय मन बुद्धि वासना कर्म वायु और अविद्या से शून्य, हेतुवर्जित, ज्ञेय ज्ञान और ज्ञातृभाव से हीन, दर्शन श्रवण मनन और विज्ञान इन चार प्रकार के लक्षणों से रहित, रूप आदि चतुर्विध कारणों से शून्य और हर्ष, आनन्द तथा रोग-शोक से रहित है। परमात्मा काल से परे है। वह काल और स्वर्ग दोनों का अधीश्वर है। जो व्यक्ति आत्मतत्त्व का ज्ञान प्राप्त करके परमात्मा के परमस्थान को जाता है उसे कभी सन्ताप नहीं होता। हे धर्मराज, मैंने तुमसे सब नरकों का वर्णन कर दिया। ये सब स्थान ब्रह्मपद की अपेक्षा अत्यन्त निकृष्ट हैं और नरक कहलाते हैं। ११

एक सौ निन्नानबे अध्याय

जापक के उपाख्यान में काल, मृत्यु, यम और ब्राह्मण का संवाद

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह ! आपने जो पहले काल, मृत्यु, यम, इक्ष्वाकु और ब्राह्मण का इतिहास कहने को कहा था उसे विस्तार से कहिए।

भीष्म कहते हैं—धर्मराज ! इक्ष्वाकु, यम, ब्राह्मण, काल और मृत्यु का संवाद-स्वरूप जो आख्यान प्रसिद्ध है उसे सुनो। हिमालय के पास परम धार्मिक महायशस्वी, पीपल का दण्ड धारण करनेवाला एक जप-परायण ब्राह्मण रहता था। वह ब्राह्मण साङ्गोपाङ्ग वेद का विद्वान् था। वह गायत्री आदि का जप करता हुआ ब्रह्म की आराधना-स्वरूप कठोर तप कर रहा था। हज़ार वर्ष बीतने पर भगवती सावित्री ने उसके सामने आकर कहा—बेटा, मैं तुझ पर प्रसन्न हूँ। वेदमाता का दर्शन करके और उनके वचन सुनकर भी ब्राह्मण ने उन्हें कुछ उत्तर न दिया। वह चुपचाप जप करता रहा। ब्राह्मण को जप में एकाग्रचित्त देखकर सावित्री बहुत प्रसन्न हुईं और ब्राह्मण की प्रशंसा करने लगीं। कुछ देर बाद जब जप समाप्त हुआ तब उठकर ब्राह्मण ने देवी के चरणों पर सिर रखकर प्रणाम किया और कहा—भगवती, मेरा बड़ा भाग्य है जो आज आपने मुझे दर्शन दिये। यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे यह वर दीजिए १० कि मेरा मन सदा जप में लगा रहे।

सावित्री ने कहा—हे ब्राह्मण ! बतलाओ, मैं तुम्हारा क्या हित करूँ। तुम्हारे सब मनोरथ पूरे होंगे। सावित्री के यों कहने पर ब्राह्मण ने कहा—देवि, मेरी जप करने की इच्छा और मेरे मन की एकाग्रता दिन-प्रतिदिन बढ़ती रहे। तब सावित्री ने मधुर वाणी से 'ऐसा ही हो' कहकर ब्राह्मण के हित के लिए फिर कहा—ब्रह्मन्, विधिहीन जप करनेवाले ब्राह्मण जिन लोकों को जाते हैं उनमें तुम्हें न जाना पड़ेगा। तुम अति श्रेष्ठ ब्रह्मलोक को जाओगे। तुमने मुझसे जो कुछ माँगा है वह सब तुम्हें मिलेगा। तुम एकाग्रचित्त होकर जप करो। धर्म, काल, मृत्यु और यम तुम्हारे पास आकर तुमसे विवाद करेंगे।

बस, सावित्री देवी अपने स्थान को चली गईं। सत्यप्रतिज्ञ, राग-द्वेष-हीन ब्राह्मण मन लगाकर जप करने लगा। देवताओं के सौ वर्ष बीतने पर धर्मराज प्रसन्न होकर उस ब्राह्मण के पास आये। उन्होंने ब्राह्मण से कहा—ब्रह्मन्, मैं धर्म हूँ। तुम्हें देखने आया हूँ। जप करने २० का जो फल तुमको मिला है वह बतलाता हूँ। तुमने जप के प्रभाव से मनुष्यों के और देवताओं के लोकों को जीत लिया है। अतएव अब इस शरीर को छोड़कर अपने अभीष्ट लोक को जाओ। ब्राह्मण ने कहा—महात्मन्, मैं किसी लोक को नहीं जाना चाहता। आप सुखपूर्वक अपने स्थान को जाइए। अनेक दुःख-सुख भोगनेवाले इस शरीर को छोड़कर मैं फिर जन्म नहीं लेना चाहता। मैं तो इसी शरीर से मुक्त होना चाहता हूँ।

ब्राह्मण को जप में एकाग्रचित्त देखकर सावित्री बहुत प्रसन्न हुई और ब्राह्मण की प्रशंसा करने लगीं। कुछ देर बाद जब जप समाप्त हुआ तब उठकर ब्राह्मण ने देवी के चरणों पर सिर रखकर प्रणाम किया और कहा—भगवती, मेरा बड़ा भाग्य है जो आज आपने मुझे दर्शन दिये।—पृ० ३६१८

धर्म ने कहा—ब्रह्मन्, तुमको शरीर तो अवश्य त्यागना चाहिए। अतएव तुम इस शरीर को छोड़कर स्वर्गलोक या और किसी अभीष्ट लोक को जाओ।

ब्राह्मण ने कहा—महात्मन्, इस शरीर के बिना मैं स्वर्गवास करना नहीं चाहता। आप अपने स्थान को जाइए।

धर्म ने कहा—ब्रह्मन्, तुम इस शरीर के न त्यागने का हठ छोड़ दो। तुम इस देह का त्याग करके रजोगुण से हीन स्वर्गलोक में जाकर सुख से रहो। वहाँ तुमको किसी प्रकार का शोक न होगा।

ब्राह्मण ने कहा—महाभाग, मैं जप करने में परम सन्तुष्ट हूँ। मुझे सनातन लोक प्राप्त करने का क्या प्रयोजन है? मैं तो जप छोड़कर इस शरीर से भी स्वर्ग जाना पसन्द नहीं करता।

धर्म ने कहा—महात्मन्! तुम तो यह शरीर छोड़ना नहीं चाहते हो किन्तु यह देखो, यम, काल और मृत्यु तुम्हारे पास आ गये हैं।

भीष्म कहते हैं कि धर्म के यों कहते ही यम, काल और मृत्यु, ये तीनों ब्राह्मण के पास आ गये। यम ने कहा—ब्रह्मन्, मैं यम हूँ। मैं यह कहने आया हूँ कि तुमने तपस्या और सच्चरित्रता का महान् फल पाया है। काल ने कहा—ब्रह्मन्, मैं काल हूँ। मैं बतलाता हूँ कि तुमने जप के प्रभाव से उत्तम फल प्राप्त किया है। शीघ्र स्वर्गलोक को जाओ। यह तुम्हारे स्वर्गलोक जाने का समय है। मृत्यु ने कहा—हे ब्राह्मण, मैं मृत्यु हूँ। आज मैं काल के कहने से तुमको इस लोक से ले जाने के लिए शरीर धारण करके आई हूँ। यम, काल और मृत्यु के यों कहने पर ब्राह्मण ने उन सबसे कुशल-प्रश्न करके अपनी शक्ति के अनुसार उन्हें अर्घ्य-पाद्य देकर उनसे कहा—महाशयो, अब मुझे क्या आज्ञा है? ३०

धर्म आदि देवताओं के आ जाने पर तीर्थयात्रा करते हुए महाराज इक्ष्वाकु भी वहाँ आ गये। धर्म आदि को देखकर वे बड़े प्रसन्न हुए। सबको प्रणाम करके उन्होंने सबसे कुशल-प्रश्न किया। इसके बाद ब्राह्मण ने इक्ष्वाकु को पाद्य, अर्घ्य और आसन देकर कुशल पूछकर कहा—महाराज, मेरे लिए क्या आज्ञा है? मैं यथाशक्ति उसका पालन करूँगा।

इक्ष्वाकु ने कहा—ब्रह्मन्, मैं राजा हूँ और आप अध्ययन-अध्यापन आदि षट्कर्म करनेवाले ब्राह्मण हैं। अतएव बतलाइए कि मैं आपको कितना धन दूँ।

ब्राह्मण ने कहा कि महाराज, ब्राह्मण दो प्रकार के होते हैं—एक तो कर्म करनेवाले (प्रवृत्ति-मार्ग) और दूसरे कर्मत्यागी (निवृत्ति-मार्ग)। धर्म भी दो प्रकार का है—प्रवृत्त और निवृत्त। मैंने अब दान लेना छोड़ दिया है। जो ब्राह्मण दान लेते हों उन लोगों को आप जाकर दान दीजिए। मैं दान नहीं लूँगा। अब आप और क्या चाहते हैं? मैं तपोबल से आपकी इच्छा पूरी करूँगा। ४०

राजा ने कहा—ब्रह्मन्! मैं क्षत्रिय हूँ, मैं हाथ पसारना जानता ही नहीं। माँगने के नाम मैं तो युद्ध ही माँगा करता हूँ।

ब्राह्मण ने कहा—महाराज, आप अपने धर्म का पालन करते हुए सन्तुष्ट रहते हैं और मैं अपना धर्म पालन करता हुआ प्रसन्न रहता हूँ। हम लोगों को किसी से कुछ माँगना नहीं है, तो भी आपकी कुछ इच्छा हो तो कहिए।

राजा ने कहा—ब्रह्मन्, आप पहले अपनी शक्ति के अनुसार मेरा काम करना स्वीकार कर चुके हैं, इससे मैं आपकी आज्ञा के अनुसार यह वर माँगता हूँ कि आप मुझे अपने जप का फल दीजिए।

ब्राह्मण ने कहा—महाराज, आपने अभी कहा है कि युद्ध के सिवा आप और कुछ नहीं माँगते। जब मेरे साथ आपको युद्ध करना है नहीं, तब फिर आप मुझसे क्यों माँगते हैं?

राजा ने कहा—ब्रह्मन्, क्षत्रिय लोग बाहुबल से युद्ध करते हैं। ब्राह्मण तो ऐसा करते नहीं। वे तो वाग्युद्ध करते हैं। इसलिए मैं आपके साथ घोर वाग्युद्ध करने को उद्यत हुआ हूँ।

ब्राह्मण ने कहा—महाराज, मैंने जो प्रतिज्ञा की है उस पर मैं दृढ़ हूँ। बतलाइए, मैं अपनी शक्ति के अनुसार आपको क्या दूँ।

राजा ने कहा—ब्रह्मन्, यदि आप मेरा मनोरथ पूरा करना चाहते हैं तो आपने जो देवताओं के सौ वर्ष तक जप किया है, उसका सब फल मुझे दे दीजिए।

ब्राह्मण ने कहा—महाराज, मैंने जप करके जो फल सञ्चय किया है उसका आधा भाग आप ले लीजिए या आप पूरा फल ही लेना चाहते हों तो सब ले जाइए। ५०

राजा ने कहा—ब्रह्मन्, आपके जप का सम्पूर्ण फल मैं नहीं लेना चाहता। मैंने जिस फल के लिए आपसे प्रार्थना की है वह फल क्या है?

ब्राह्मण ने कहा—महाराज, मैं अपने जप का फल पाने के विषय में कुछ नहीं जानता। किन्तु जो कुछ जप मैंने किया है वह आपको दिया। धर्म, काल, यम और मृत्यु ये सब उसे भली भाँति जानते हैं।

राजा ने कहा—ब्रह्मन्, यदि आप अपने जप का फल नहीं बतला सकते तो मैं उस अज्ञात फल को लेकर क्या करूँगा ! आप उस फल को अपने पास रखिए; अब मैं चला।

ब्राह्मण ने कहा—राजन्, मुझे और कुछ कहना नहीं है। आपने मेरे जप का फल माँगा था सो मैंने दे दिया। यहाँ तक आपकी और मेरी, दोनों की, बात प्रामाणिक रही। मैंने आरम्भ से लेकर अभी तक फल पाने की इच्छा से जप नहीं किया है, तो भला किस तरह उस जप का फल जान सकूँ। आपने मुझसे मेरे जप करने का फल माँगा और मैंने उसे देना स्वीकार किया। अब अपने वचन को मैं कैसे तोड़ सकता हूँ ? अतएव आप अपने मन को स्थिर करके सत्य का पालन कीजिए। यदि आप मेरी बात नहीं मानेंगे तो निस्सन्देह आपको असत्य का पाप लगेगा। हम दोनों को अपनी-अपनी बात पर दृढ़ रहना चाहिए। अतएव यदि आप सत्यप्रतिज्ञ हैं तो आपने जो मुझसे माँगा था और मैंने जो आपको दिया था उसे अब ले लीजिए। मिथ्यावादी होने से न तो इस लोक में आपका कल्याण होगा और न परलोक में ६० ही और अपने पूर्वजों का उद्धार करने की योग्यता भी आपमें न रह जायगी। सत्य बोलने से इस लोक में और परलोक में जैसा कल्याण होता है वैसा यज्ञ, दान और नियम करने से नहीं हो सकता। हज़ारों वर्ष की तपस्या भी सत्य की बराबरी नहीं कर सकती। सत्य ही अविनाशी ब्रह्म, अक्षय तपस्या, अक्षय यज्ञ और अक्षय वेद-स्वरूप है। वेदों में सत्य की ही महिमा है। सत्य के प्रभाव से श्रेष्ठ फल मिलता है। तपस्या, धर्म, दम, यज्ञ, तन्त्र, मन्त्र, सरस्वती, स्वर्ग, वेद, वेदाङ्ग, विद्या, विधि, व्रतचर्या, ओङ्कार और प्राणियों का जन्म तथा सन्तान आदि सब कुछ सत्य के प्रभाव से प्राप्त हो सकता है। सत्य के प्रभाव से हवा चलती, सूर्य तपते और आग जलती है। सत्य और धर्म को तराज़ू में तोलने पर सत्य का ही पलड़ा भारी होगा। धर्म सत्य का अनुगामी है। सत्य के बल से सब प्रकार की उन्नति हो सकती है। तो फिर आप क्यों असत्य काम करने का इरादा करते हैं ? सत्य में अपने मन को स्थिर कीजिए। मुझसे ७० जप का फल माँगकर अब उसका लेना आप क्यों अस्वीकार करते हैं ? यदि आप मेरा दिया हुआ जप का फल नहीं लेंगे तो निस्सन्देह आपको धर्म-भ्रष्ट होकर संसार में भटकना पड़ेगा। जो मनुष्य देने को कहकर फिर नहीं देता और जो मनुष्य पहले तो माँगता है और मिलने पर उसे नहीं लेता, वे दोनों मिथ्यावादी हैं। आपको मिथ्यावादी होना उचित नहीं।

राजा ने कहा—ब्रह्मन्! क्षत्रिय लोगों का धर्म युद्ध करना, दान देना और प्रजा की रक्षा करना है। तो भला मैं किस तरह आपसे दान ले सकता हूँ?

ब्राह्मण ने कहा—महाराज ! लेने के लिए मैंने आपको मनाया नहीं था, और न मैं देने के लिए आपके घर ही गया था। आपने स्वयं मेरे यहाँ आकर माँगा है। अब आप लेने से इन्कार क्यों कर रहे हैं ?

ब्राह्मण और इक्ष्वाकु का इस प्रकार वाग्युद्ध होने पर धर्म ने कहा—आप लोग व्यर्थ झगड़ा न करें। मैं स्वयं धर्म यहाँ उपस्थित हूँ। ब्राह्मण तो दान के फल के और राजा सत्य के फल के भागी हैं।

उसी समय स्वर्ग भी शरीर धारण करके वहाँ आ गया और कहने लगा—हे धर्मात्माओ! यह देखो, मैं स्वर्ग हूँ और तुम लोगों के पास सदेह आया हूँ। अब तुम लोग झगड़ो मत। तुम दोनों ही तुल्य-फल के भागी हो। तब राजा ने कहा—स्वर्ग, मैंने तुमको नहीं बुलाया। तुम अपने स्थान को जाओ। यदि ब्राह्मण ने तुमको बुलाया हो तो ये, मेरे किये हुए पुण्य को भी लेकर, तुमको प्राप्त करें।
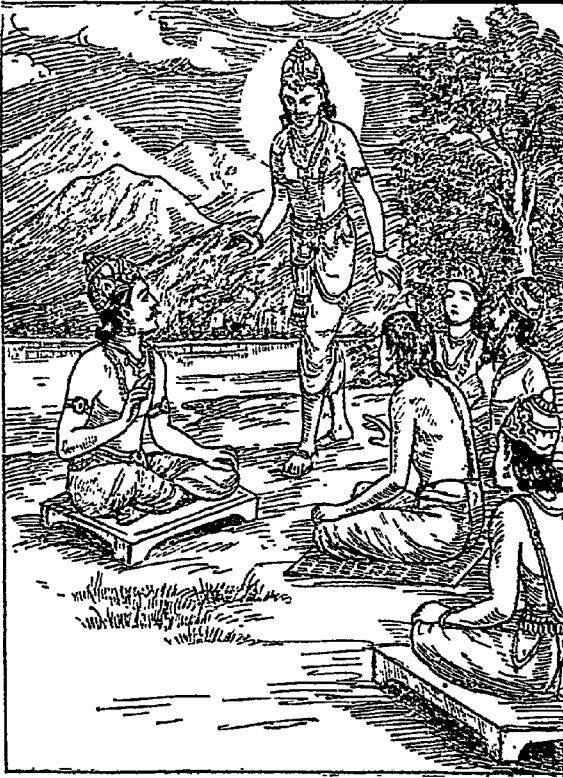
ब्राह्मण ने कहा—महाराज! मैंने बालकपन में अज्ञान से चाहे किसी से कुछ माँगा हो, किन्तु अब मैं बहुत दिनों से सब कामों से निवृत्त होकर गायत्री का जप करता हुआ धर्म की उपासना करता हूँ। अतएव आप मुझे स्वर्ग मिलने का लोभ क्यों दिखाते हैं? मैं स्वयं अपना काम कर लूँगा। मैं तपस्वी और स्वाध्यायशील हूँ। दान लेना मैं छोड़ चुका हूँ। आपके किये हुए पुण्य का फल मैं नहीं लेना चाहता।

८०

राजा ने कहा—ब्रह्मन्, यदि आप अपने जप का फल मुझे अवश्य ही देना चाहते हैं तो उसका आधा फल मुझे दीजिए और मेरे किये हुए धर्म का आधा फल आप ले लीजिए। इससे हम दोनों तुल्यफलभागी होंगे। ब्राह्मण लोग दान लेते और क्षत्रिय दान देते हैं। यदि आप यह धर्म जानते हैं तो मेरे धर्म का आधा फल लेकर आप मेरे समान-फल-भागी हो जायँ। यदि आप मेरे समान-फल पाने की इच्छा नहीं रखते तो मेरे धर्म का पूरा फल ले लीजिए। यदि मुझ पर आपकी दया है तो मेरे किये हुए पुण्य का फल आप ले लें।

भीष्म कहते हैं—राजा और ब्राह्मण का इस प्रकार विवाद हो रहा था कि इतने में कराल-रूपधारी दो पुरुष, एक दूसरे के कन्धे पर हाथ रक्खे हुए, वहाँ आ गये। उन दोनों में एक का नाम विरूप और दूसरे का विकृत था। विकृत ने विरूप से कहा—भाई, तुम मेरे

ऋणी नहीं हो। विरूप ने कहा—नहीं, मैं तुम्हारा ऋणी हूँ। तब विकृत ने कहा—इस समय यहाँ प्रजा पर शासन करनेवाले राजा मौजूद हैं। मैं इनके सामने सत्य कहता हूँ, तुम मेरे ऋणी नहीं हो। विरूप ने कहा—तुम झूठ कहते हो, मैं तुम्हारा ऋणी हूँ। इस तरह वे दोनों झगड़ते हुए कुपित होकर राजा से कहने लगे—महाराज, आप ऐसा उपाय बतलाइए जिसमें हम दोनों को पाप से दूषित न होना पड़े। तब विरूप ने कहा—महाराज, मैं विकृत से गोदान का फल लेकर उनका ऋणी हो गया हूँ। अब मैं वह ऋण चुका देना चाहता हूँ, किन्तु ये उसे लेना नहीं चाहते। विकृत ने कहा—महाराज, यह विरूप मेरा ऋणी नहीं है। इस समय यह आपके सामने झूठ बोल रहा है। तब राजा ने विरूप से पूछा—विरूप, तुम किस तरह विकृत के ऋणी हो? ठीक-ठीक बतलाओ। मैं तुम्हारी बातें सुनकर उपाय बताऊँगा। ९०
विरूप ने कहा—महाराज, मैं जिस तरह विकृत का ऋणी हूँ उसका पूरा-पूरा हाल सुनिए। इन विकृत ने पहले, धर्म-उपार्जन करने के लिए, किसी तपस्वी विद्वान् ब्राह्मण को अच्छे लक्षणोंवाली एक गाय दी थी। मैंने इनसे उस गोदान का फल माँगा और इन्होंने शुद्ध हृदय से वह फल मुझे दे दिया। उसके बाद मैंने अपने आत्मा को शुद्ध करने के लिए पुण्य-कार्य किये; दूध देती हुई, बछड़ों समेत, दो कपिला गायें मोल लेकर विधि के अनुसार श्रद्धा के साथ उञ्छवृत्ति करनेवाले एक ब्राह्मण को दान कर दीं। पहले मैंने विकृत से जो फल उधार लिया था उसका दूना अब इन्हें देना चाहता हूँ। हम दोनों में कौन दोषी है और कौन निर्दोष, यह विवाद करते-करते हम लोग आपके पास आये हैं। आप फ़ैसला कर दीजिए। विकृत ने पहले जो ऋण मुझे दिया है उसे अब ये लेना नहीं चाहते। अतएव आप हम दोनों को धर्म-मार्ग पर लगा दीजिए।

राजा ने कहा—विकृत, विरूप ने तुमसे जो ऋण लिया था उसे तुम लेते क्यों नहीं? तुमने इनको जितना दिया है, वह इनसे ले लो।

विकृत ने कहा—महाराज! 'मैं तुम्हारा ऋणी हूँ' यह कहकर विरूप वह ऋण चुकाना चाहते हैं, किन्तु वास्तव में ये मेरे ऋणी नहीं हैं। इसलिए अब ये जहाँ चाहें, जा सकते हैं। १००

राजा ने कहा—विकृत, विरूप तुम्हारा ऋण चुका देना चाहते हैं; किन्तु तुम उसे लेते नहीं हो। यह बात मुझे बिलकुल उलटी समझ पड़ती है। मेरी राय से तुम्हें दण्ड मिलना चाहिए।

विकृत ने कहा—महाराज, मैं एक बार जो दे चुका हूँ उसे फिर कैसे वापस ले सकता हूँ? अतएव इसमें मेरा जैसा अपराध हो वैसा दण्ड मुझे आप दीजिए।

विरूप ने कहा—विकृत, मैंने तुमसे जो ऋण लिया था उसे चुकाता हूँ, किन्तु तुम उसे लेना नहीं चाहते। अब धर्म के रक्षक ये राजा तुमको इसका दण्ड अवश्य देंगे।

विकृत ने कहा—विरूप! तुम्हारे माँगने पर मैंने गोदान का फल तुम्हें दिया था, भला अब उसे कैसे वापस ले लूँ? अतएव तुम मेरी आज्ञा मानकर चाहे जहाँ चले जाओ।

अब ब्राह्मण ने राजा से कहा—राजन्, इन दोनों की बातें आपने सुन लीं। मैंने आपको देने के लिए जो कह दिया है उसे आप ले लीजिए। तब राजा सोचने लगे कि इन दोनों मनुष्यों की तरह इस ब्राह्मण की बात भी बहुत कठिन है। यदि मैं इसके आग्रह को नहीं मानता हूँ अर्थात् इसके पुण्य का फल नहीं लेता हूँ तो निस्सन्देह मुझे घोर पाप लगेगा।

इसके बाद धर्मात्मा राजा ने विकृत और विरूप से कहा—तुम्हारा काम हो गया, अब अपने घर जाओ। मुझे राजा समझकर तुम लोग मेरे पास आये हो और मुझे अपने राजधर्म को निष्फल करना उचित नहीं। शास्त्र की आज्ञा है कि राजा को राजधर्म का पालन करना चाहिए। किन्तु ब्राह्मण का धर्म बहुत कठिन है, मैं उसे रत्ती भर भी नहीं जानता और इस समय वह धर्म मुझे पीड़ित कर रहा है।

तब जापक ब्राह्मण ने कहा—महाराज, आपके माँगने पर जो मैंने आपको देने की प्रतिज्ञा

१० की है उसे आप ले लीजिए। आप न लेंगे तो मैं आपको शाप दे दूँगा।

राजा ने कहा—ब्रह्मन्, जिस धर्म के अनुसार इस प्रकार के कामों का निश्चय किया जाता है उस राजधर्म को धिक्कार है। जो हो, अब मैं आपका समान-फल-भागी हूँगा, इसी शर्त पर आपके जप का फल ले सकता हूँ। मैंने आज तक कभी कुछ लेने के लिए हाथ नहीं फैलाया; इस समय आपकी आज्ञा से ऐसा काम कर रहा हूँ। आप पर जो कुछ मेरा ऋण हो वह दे दीजिए।

ब्राह्मण ने कहा—महाराज, मैंने गायत्री का जप करके जितना पुण्य सञ्चय किया है वह सब आप ले लीजिए।

राजा ने कहा—भगवन्, मैं भी हाथ में जल लिये हूँ। आप भी मेरा दान लीजिए, जिससे मैं और आप दोनों तुल्यफल-भागी हो जावें।

इतने में विरूप बोल उठा—महाराज, हम दोनों काम और क्रोध हैं। हमीं ने आपको जापक से उनके जप का फल माँगने के लिए प्रेरित किया है। अब आप दोनों महानुभाव, आपके कहने के अनुसार, समान लोक प्राप्त करें। विकृत मेरा ऋणी नहीं है, आपको बोध कराने के लिए ही हम लोग अर्थी और प्रत्यर्थी बनकर यहाँ आये हैं। काल, धर्म, मृत्यु और हम दोनों आपकी परीक्षा लेने आये हैं। अब आप, अपने कर्म के फल से प्राप्त, उस लोक को जाइए जहाँ जाने की आपकी इच्छा हो।

भीष्म ने कहा—धर्मराज, जप करनेवालों को जो फल मिलता है वह मैंने तुमको बता दिया। वे लोग ब्रह्मलोक और अन्य जिन लोकों को प्राप्त कर सकते हैं वह सब तो तुमने समझ ही लिया होगा। गायत्री का जप करनेवाले महात्मा लोग परमेष्ठी ब्रह्मा के, अग्नि के अथवा सूर्य के लोक को प्राप्त करते हैं। यदि वे इन लोकों में अनुराग रखकर विहार करते हैं तो इनमें

१२० मोहित होकर इन सब लोकों के गुण प्राप्त करते हैं। राग मनुष्यों के पार्थिव शरीर के समान

चन्द्र, वायु और आकाशात्मक शरीर में होने पर सब गुणों को प्राप्त कराता है। यदि जापक लोग अन्य किसी लोक में जाने की इच्छा न करके केवल मोक्ष की प्राप्ति के लिए यत्न करें तो उनकी इच्छा पूरी हो। रागहीन जापक मनुष्य उद्योग करने पर परमेष्ठी भाव को, उससे कैवल्य और अन्त को दुःख तथा बुढ़ापे से हीन अक्षय ब्रह्मलोक को प्राप्त करके क्षुधा, तृष्णा, शोक और मोह आदि से रहित ब्रह्म में लीन हो जाते हैं। जो जापक राग के वशीभूत होकर ब्रह्म में लीन होना नहीं चाहते और अन्य लोकों को जाने की इच्छा करते हैं उनको वे लोक मिलते हैं। जो सब लोकों को नरक समझते हैं और जो किसी विषय की इच्छा नहीं करते वे संसार से मुक्त होकर निर्गुण ब्रह्म में लीन हो जाते और परम सुख पाते हैं। महाराज, जप करनेवालों को जो गति मिलती है वह मैंने विस्तार से कह दी। अब क्या सुनना चाहते हो? १२८

दो सौ अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से जप का फल कहते हुए जापक का उपाख्यान समाप्त करना

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, इसके बाद राजा और ब्राह्मण ने विरूप को क्या उत्तर दिया और विरूप की बात मानकर वे दोनों महानुभाव किस लोक को गये? उन लोगों में फिर क्या बातचीत हुई?

भीष्म ने कहा कि धर्मराज! उसके बाद जापक ब्राह्मण ने धर्म, यम, काल, मृत्यु, स्वर्ग और आये हुए ब्राह्मणों की पूजा करके राजा से कहा—महाराज, आप मेरे जप का फल लेकर श्रेष्ठता प्राप्त करें और मुझे फिर जप करने की आज्ञा दें। सावित्री देवी ने मुझे वर दिया है कि 'जप में तुम्हारी श्रद्धा बनी रहेगी'।

राजा ने कहा—ब्रह्मन्, जब आपको जप करने में ऐसी श्रद्धा है तब अपने जप का फल मुझे दे देने से आपकी कुछ हानि भी न होगी बल्कि दान देने से उसकी वृद्धि होगी। आइए, हम दोनों एक-समान फल भोगें।

ब्राह्मण ने कहा—महाराज, आप इन महात्माओं के सामने बार-बार अपने समान फल-भागी होने का मुझसे अनुरोध करते हैं अतएव मैं आपकी बात स्वीकार करता हूँ। अब मेरी और आपकी समान गति हो। ब्राह्मण के यों कहने पर देवराज इन्द्र, ब्राह्मण और राजा का अभिप्राय जानकर, लोकपालों और देवताओं के साथ वहाँ आये। उसी समय देवी सरस्वती, ९ नारद, पर्वत, विश्वावसु, हाहा, हूहू, सपरिवार चित्रसेन, सिद्धगण, ब्रह्मा, सहस्रशिरा, विष्णु, साध्य, विश्वेदेवा, मरुत्, नदी, पर्वत, समुद्र, तीर्थ, तपस्या, वेदान्त, वेद, स्तोत्र और मुनि लोग वहाँ आ गये। आकाश में नगाड़े और तुरही आदि बाजे बजने लगे और अप्सराएँ नाचने लगीं। आकाश से फूलों की वर्षा होने लगी। तब स्वर्ग शरीर धारण करके ब्राह्मण से बोला—हे महानुभावो, तुम दोनों पुरुष सिद्ध हो।

इसके बाद जापक ब्राह्मण और राजा ने एक साथ सब विषयों से अपने मन को हटा लिया। पहले (मूलाधार चक्र से कुण्डलिनी को उठाकर) प्राण, अपान, उदान, समान और व्यान, इन पाँचों वायुओं को हृदय (अनाहत चक्र) में रोककर प्राण और अपान के साथ मन को मिलाया। फिर प्राण और अपान को रोककर नासिका के अग्रभाग को देखते हुए मन के साथ प्राण और अपान को भौंहों के बीच (आज्ञाचक्र) में ले गये। इस तरह मन को जीत लेने पर उनका मन मस्तक में स्थिर हुआ। तब महात्मा ब्राह्मण के ब्रह्मरन्ध्र को भेदकर एक अति प्रकाशमान ज्योति स्वर्ग को चली गई। उस समय सब दिशाओं में कोलाहल मच गया। सब लोग उस ज्योति की स्तुति करने लगे। वह ज्योति लोकपितामह ब्रह्मा के पास पहुँची। ब्रह्माजी ने उसका स्वागत किया। उसी समय प्रादेश* भर का एक पुरुष वहाँ आया। उसने कहा कि जप करनेवालों को योगियों के समान फल मिलता है। निरे योगियों को समाधि के समय ही ब्रह्म का साक्षात्कार होता है किन्तु जप करनेवालों का, ब्रह्म में लीन होने के लिए, पहले ही ब्रह्म के साथ ऐक्य हो जाता है। यह कहकर उस प्रादेश भर के पुरुष ने ब्रह्म के साथ ब्राह्मण की एकात्मता करा दी। तब ब्राह्मण ब्रह्म के मुँह में समा गया। राजा ने भी, ब्राह्मण की तरह, लोकपितामह के मुँह में प्रवेश किया।
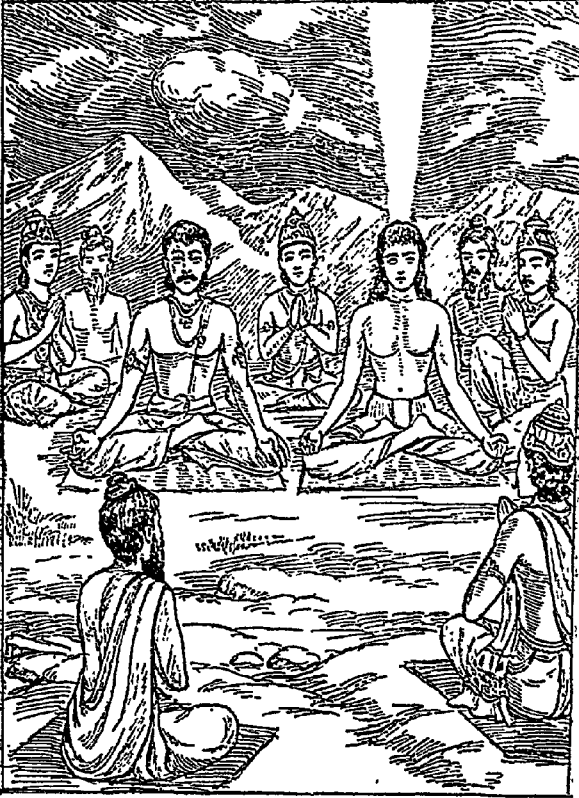
२०

अब देवताओं ने भगवान् स्वयम्भ को प्रणाम करके कहा—भगवन्, आपने जप करनेवालों के लिए बड़ी उत्तम गति निर्धारित की है। हम लोग इस जापक ब्राह्मण की सद्गति देखने आये हैं। आपने राजा और ब्राह्मण को एक सा फल दिया है। योग और जप करने का फल आज हम लोगों ने देख लिया। वे लोग सब लोकों को लाँघकर मनमाने लोक को जा सकते हैं। तब ब्रह्माजी ने कहा—हे देवताओ, जो लोग महास्मृति और अनुस्मृति आदि पढ़ते हैं या

* प्रादेश = अँगूठा और उसके पास की उँगली को फैलाकर नापने का नाम।

जो लोग योग करते हैं वे मरने के बाद निस्सन्देह मेरे लोक को प्राप्त करते हैं। अब तुम लोग अपने स्थान को जाओ। ३१

बस, ब्रह्माजी अन्तर्धान हो गये। देवता भी अपने-अपने स्थान को चले गये। अन्य महात्मा लोग, धर्म की पूजा करके, प्रसन्नता से धर्म के अनुसार चलने लगे। हे धर्मराज, जप करनेवालों का जो फल मैंने सुना था वह तुमको सुना दिया। अब क्या सुनना चाहते हो? ३४

दो सौ एक अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर के पूछने पर ज्ञानयोग आदि का फल और परमात्म-ज्ञान-विषयक मनु और बृहस्पति का संवाद कहना

युधिष्ठिर ने पूछा—हे पितामह! ज्ञानयोग का, नियम का और सब वेदों का क्या फल है और जीवात्मा किस तरह जाना जाता है?

भीष्म ने कहा कि धर्मराज, इस विषय में प्रजापति मनु और महर्षि बृहस्पति का संवाद सुनो। प्राचीन समय में, देवर्षियों में श्रेष्ठ महात्मा बृहस्पति ने अपने गुरु प्रजापति मनु को प्रणाम करके पूछा—भगवन्, जगत् का कारण क्या है? कर्मकाण्ड की उत्पत्ति किस लिए हुई? ज्ञान का क्या फल है? वेद-वाक्यों से भी कौन सा विषय प्रकट नहीं होता? त्रिवर्ग शास्त्र के जाननेवाले, वेदमन्त्रज्ञ, मनुष्य गोदान और अनेक यज्ञ आदि करके जो सुख पाते हैं वह किस प्रकार का है, किस तरह प्राप्त होता है और वह आत्मा में ही रहता है या उससे अलग? पृथिवी, वायु, आकाश, स्वर्ग, देवता, स्थावर-जङ्गम जीव, जल और जलचर का उत्पादक कौन है? मनुष्य को जिस विषय का ज्ञान होता है उसी विषय में प्रवृत्ति होती है। मुझे पुराण-पुरुष के विषय में रत्ती भर भी ज्ञान नहीं है, तो भला उधर मेरी प्रवृत्ति कैसे होगी? मैंने ऋक्, साम, यजु, छन्द, निरुक्त, ज्योतिष, व्याकरण, कल्प और शिक्षा का अध्ययन किया है; तो भी आकाश आदि महाभूतों के उत्पादक का मुझे ज्ञान नहीं है। अब आप इन सब विषयों का और जिस तरह आत्मा एक शरीर का त्याग करके दूसरे शरीर में जाता है उसका विस्तार से वर्णन कीजिए।

मनु ने कहा—महर्षि, जो विषय जिसे प्रिय होता है वह उसे सुख देनेवाला और जो अप्रिय होता है वह दुःख देनेवाला है। 'इससे मेरा हित होगा, अहित न होगा' यह विचारकर मनुष्य काम करता है। जिसे ज्ञान हो जाता है वह हित और अहित कुछ भी नहीं चाहता। वेद में कर्मयोग को कामात्मक कहा है। ज्ञान के प्रभाव से मनुष्य उस कर्मयोग से छुटकारा पाकर ब्रह्मपद प्राप्त करता है। जो मनुष्य सुख की इच्छा से कर्म करता है उसे स्वर्ग या नरकगामी होना पड़ता है। १०

बृहस्पति ने कहा—भगवन्, दुःख को हटाकर सुख प्राप्त करना सभी चाहते हैं। सुख की प्राप्ति कर्मों से ही होती है। इसलिए कर्म ही मनुष्यों का कर्तव्य जान पड़ता है।

मनु ने कहा—महर्षि, मनुष्य पहले यज्ञ आदि कर्म करके फिर ब्रह्मज्ञान की इच्छा से कर्मों का त्याग करे और फिर परम पदार्थ प्राप्त करे। इसी लिए कर्म की सृष्टि हुई है। जो बहुत दिनों तक इच्छा के वशीभूत रहकर कर्म करता है उसे स्वर्ग आदि की प्राप्ति होती है और जो मुक्त होने की इच्छा से कर्मों का त्याग करके आत्मज्ञान प्राप्त करता है उसे ब्रह्मपद मिलता है। मन और कर्म मनुष्यों की उत्पत्ति के कारण हैं और ये ही दोनों उन्हें ब्रह्म-प्राप्ति के मार्ग-स्वरूप हैं। कर्म के प्रभाव से मनुष्यों को मोक्ष और सामान्य फल दोनों मिल सकते हैं। सारांश यह कि कर्म का फल त्याग करके मोक्ष प्राप्त करने में मन लगावे। जैसे आँखें रात बीतने पर प्रातःकाल अपने तेज से काँटे आदि देख सकती हैं वैसे ही बुद्धि, विवेक-गुण-सम्पन्न होने पर, अशुभ कामों को समझ सकती है। मनुष्य साँप, कुश-कण्टक और कुएँ को देखने पर ही उन सबसे बच सकता है; किन्तु इनके न जानने पर उनमें गिर पड़ता है। अतएव विचार करो कि अज्ञान की अपेक्षा ज्ञान कितना श्रेष्ठ है। विधिपूर्वक मन्त्रों का उच्चारण, यज्ञ का अनुष्ठान, दान-दक्षिणा, अन्न का दान और मन की समाधि, ये पाँच प्रकार के कर्म फल देनेवाले हैं। शास्त्र के अनुसार कर्म सत्त्व आदि तीन गुणों से युक्त हैं। इसी से कर्ममूल मन्त्र भी तीन प्रकार के और विधि भी तीन प्रकार की है। जो मनुष्य जिस गुण का अनुयायी होकर कर्म करता है उसे उसी गुण के अनुरूप फल मिलता है। कर्म-फल स्वर्गलोक में मिलता है और ज्ञान का फल २० जीवित दशा में ही मिल जाता है, इसलिए कर्म की अपेक्षा ज्ञान श्रेष्ठ है। मनुष्य इस शरीर से जैसे कर्म करता है वैसे ही फल दूसरे शरीर में भोगता है। शरीर ही सुख-दुःख भोगने का साधन है। मन और वाणी से किये हुए कर्मों के द्वारा मन-वाणी से अगोचर ब्रह्म की प्राप्ति नहीं हो सकती। जो मनुष्य जिस गुण का अवलम्बन करके कर्म करता है उसे उसी गुण के अनुरूप शुभ और अशुभ फल भोगना पड़ता है। जैसे पानी का बहाव मछली को बहा ले जाता है वैसे ही पूर्व-जन्म के शुभाशुभ कर्मों का फल मनुष्य को मिलता ही है। मनुष्यों को पूर्व जन्म में किये हुए पुण्य के अनुसार सुख और पाप के अनुसार दुःख मिलता है। अब जो सृष्टि-कर्ता हैं और जो मन्त्र तथा शब्द से परे हैं उनका वर्णन सुनो। वे रूप, रस, गन्ध, शब्द और स्पर्श से पृथक् रहकर भी प्रजा के लिए इन सबकी उत्पत्ति करते हैं। वे अव्यक्त, वर्णहीन और गुणातीत हैं। उन्हें स्त्री, पुरुष या नपुंसक अथवा परमाणु, शून्य और मायामय नहीं कहा जा सकता। कभी उनका विनाश नहीं होता। मन को जीत लेनेवाला ज्ञानी महात्मा ही २७ उस अक्षय पदार्थ को प्राप्त कर सकता है।

दो सौ दो अध्याय

मनु और बृहस्पति का संवाद

मनु ने कहा—हे महर्षि ! उसी अविनाशी पुरुष से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से यह पृथिवी और पृथिवी से यहाँ के सब पदार्थ उत्पन्न हुए हैं। पृथिवी पर पार्थिव शरीर धारण करनेवाले जितने प्राणी हैं वे इस शरीर का त्याग करके पहले जल में, जल से अग्नि में, अग्नि से वायु में और वायु से आकाश में जाते हैं। उनमें जो आकाश को भी पार करके परमात्मा में लीन हो जाता है उसी को मोक्ष मिलता है। उसे फिर जन्म लेना नहीं पड़ता। परमात्मा उष्ण, शीत, मृदु या तीक्ष्ण नहीं है। वह अम्ल, कषाय, मधुर और तिक्त आदि सब रसों से शून्य और शब्द, गन्ध तथा रूप आदि गुणों से रहित है। पर-ब्रह्म स्वभाव (प्रमाता, प्रमेय आदि त्रिपुटी) से हीन है। त्वचा से स्पर्श, जीभ से रस, नाक से गन्ध, कान से शब्द और आँख से रूप का ज्ञान होता है। जो मनुष्य आत्मविद्या नहीं जानता वह त्वचा आदि इन्द्रियों के द्वारा स्पर्श आदि गुणों के सिवा और कुछ (ब्रह्म का) अनुभव नहीं कर सकता। जो मनुष्य रस से रसना को, गन्ध से नाक को, शब्द से कानों को, स्पर्श से त्वचा को और रूप से आँखों को निवृत्त कर सकता है वह आत्मस्वरूप को समझ सकता है। महर्षियों ने कहा है कि जो कर्ता, कर्म, करण, देश, काल, सुख, दुःख, प्रवृत्ति और अनुराग आदि का कारण है उसी को स्वभाव कहते हैं। स्वभाव (आत्मस्वरूप) ही व्याप्य नाम का जीव और व्यापक नाम का ईश्वर है। मन्त्रों में इसके प्रमाण मिलते हैं। अकेला स्वभाव ही सब काम करता है। वही कारण है, उसके सिवा और सब कार्य हैं। जैसे पुण्य और पाप परस्पर विरुद्ध होने पर भी मनुष्य के शरीर में इकट्ठा रहते हैं वैसे ही ज्ञान जड़ न होने पर भी जड़ शरीर में बँधा रहता है। जैसे दीपक प्रज्वलित होकर अन्य विषयों का बोध करा देता है वैसे ही ज्ञान मनुष्यों को इन्द्रियों के विषय का बोध कराता है। जैसे मन्त्री लोग राजा को सब बातें जताते रहते हैं वैसे ही इन्द्रियाँ ज्ञान को सब विषयों का बोध कराती हैं। राजा के समान, ज्ञान इन्द्रियों की अपेक्षा श्रेष्ठ है। जैसे अग्नि की शिखा, वायु का वेग, सूर्य की किरणें और नदी का पानी, ये सब चलते रहते हैं वैसे ही प्राणियों के शरीर बार-बार नष्ट होते और फिर उत्पन्न होते रहते हैं। जैसे लकड़ी को कुल्हाड़ी से काटकर कोई उसके भीतर धुआँ या आग नहीं देख सकता (यद्यपि अग्नि उसमें व्याप्त है) वैसे ही मनुष्य का पेट चीरकर या उसके हाथ-पैर काटकर उसमें ज्ञानमय आत्मा नहीं देखा जा सकता। किन्तु जैसे लकड़ियों को रगड़ने से धुआँ और आग दोनों उसमें दिखाई देते हैं वैसे ही जीवात्मा, ज्ञान के बल से, बुद्धि और परमात्मा दोनों को देख सकता है। जैसे मनुष्य स्वप्न में अपने शरीर को आत्मा से अलग और पृथिवी में पड़ा हुआ देखता है पर जागने पर शरीर से अपने को अलग नहीं पाता वैसे ही

१०

मन और बुद्धि के साथ कान आदि दस इन्द्रियों तथा प्राण आदि पञ्च वायु से युक्त जीवात्मा शरीर त्यागने पर फिर दूसरे शरीर में चला जाता है। सुख-दुःख देनेवाले कर्म के प्रभाव से परमात्मा की न तो उत्पत्ति होती है न वृद्धि, न क्षय और न मृत्यु ही। परमात्मा में रूप आदि कोई गुण नहीं हैं। आँख आदि इन्द्रियों से उसका ज्ञान नहीं हो सकता, किन्तु वह सब कुछ देखता रहता है। जैसे जलती हुई किसी वस्तु में आग का रूप देखा जाता है वैसे ही जड़ शरीर में परमात्मा का चेतन-स्वरूप देख पड़ता है। आत्मा एक शरीर को छोड़कर, अदृश्य भाव से, दूसरे शरीर में प्रवेश करके अपने को उस शरीर के गुणों से गुणवान् समझता है। प्राणी की मृत्यु होने पर उसका शरीर आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी में मिल जाता है और कान आदि सब इन्द्रियाँ अपने-अपने तत्त्व में जा मिलती हैं। कान आकाश के गुण शब्द को, नाक पृथ्वी के गुण गन्ध को, आँख तेज के गुण रूप को, रसना जल के गुण रस को और २० त्वचा वायु के गुण स्पर्श को धारण करती है। पाँच इन्द्रियों के शब्द आदि पाँच गुण आकाश आदि पञ्चभूत के और आकाश आदि पञ्चभूत कान आदि पाँच इन्द्रियों के आश्रित रहते हैं। इसके सिवा शब्द आदि पाँच गुण, आकाश आदि पञ्चभूत और कान आदि पाँच इन्द्रियाँ मन के, मन बुद्धि के और बुद्धि स्वभाव के अनुगत है। मनुष्य अपने कर्मों द्वारा उपार्जित नये शरीर में पूर्व-जन्म के किये हुए पाप-पुण्य को भोगता है और जैसे जोंक अनुकूल स्रोत को जाती है वैसे ही मन बुद्धि का अनुसरण करता है। जैसे नाव आदि पर चढ़कर चलते समय नदी-किनारे के वृक्ष चलते हुए जान पड़ते हैं, किन्तु नाव के ठहरने पर वह भ्रम दूर हो जाता है वैसे ही ज्ञानवान् मनुष्य की बुद्धि स्थिर होने पर उसे ईश्वर का ठीक-ठीक स्वरूप ज्ञात हो जाता है। जैसे ऐनक लगाने से छोटे अक्षर बड़े मालूम होते हैं और अपना मुँह अपने से अदृश्य होने पर भी दर्पण में देखा जा सकता है वैसे ही परमात्मा अति सूक्ष्म और अदृश्य होने पर २३ भी बुद्धि के द्वारा देखा जाता है और महान् जान पड़ता है।

दो सौ तीन अध्याय

मनु और बृहस्पति का संवाद

मनु ने कहा—ब्रह्मन्, जीव इन्द्रियों द्वारा अनुभव की हुई बातों को बहुत दिनों बाद भी स्मरण कर सकता है और इन्द्रियों के विलीन हो जाने पर बुद्धि-रूप परम स्वभाव (आत्मा) उन बातों का अनुभव करता है। यही स्वभाव अनेक समय इस जन्म और परजन्म में देखे-सुने आदि इन्द्रियों के विषयों को, धारण किये हुए के समान, प्रकट कर देता है और स्वभाव ही परस्पर विभिन्न भूत, भविष्य आदि तीनों अवस्थाओं में साक्षी-रूप से चलता रहता है। आत्मा केवल परस्पर विरुद्ध सत्त्व, रज और तमोगुण से उत्पन्न सुख-दुःख आदि का ज्ञान रखता

है, उसे उनका भोग नहीं करना पड़ता। जैसे वायु ईंधन में स्थित अग्नि में प्रवेश करता है वैसे ही आत्मा सब इन्द्रियों में प्रविष्ट रहता है। न तो परमात्मा आँखों से देखा जा सकता है और न स्पर्श-इन्द्रिय उसका स्पर्श कर सकती है। उसको आँख आदि इन्द्रियों से देखने और स्पर्श करने का उद्योग करना व्यर्थ है। आँख-कान आदि इन्द्रियाँ जब आत्मा को ही देख-सुन नहीं सकतीं तो परमात्मा के विषय में क्या कहना है, किन्तु सर्वज्ञ सर्वदर्शी परमात्मा हमेशा उन सबको देखता रहता है। जैसे हिमालय के पार्श्व को और चन्द्रमा के पृष्ठ को किसी के न देखने पर भी उसकी सत्ता अबाधित है वैसे ही सूक्ष्म ज्ञान-स्वरूप परमात्मा की सत्ता विद्यमान रहने पर भी इन्द्रियों द्वारा कोई उसका अनुभव नहीं कर सकता। जैसे चन्द्रमा के मण्डल में संसार का सूक्ष्म रूप देखकर भी कोई उसका ज्ञान नहीं कर सकता वैसे ही मनुष्य को आत्म-ज्ञान होने पर भी परमात्मा का पूरा ज्ञान नहीं हो सकता। आत्मज्ञान अपने से ही उत्पन्न होता है, उसके लिए दूसरे किसी विषय का आश्रय लेने की आवश्यकता नहीं। पण्डित लोग जिस तरह रूपवान् वृक्ष को, आदि से अन्त तक मिट्टी-रूप होने के कारण, अपनी बुद्धि द्वारा रूपहीन अर्थात् मिट्टीमय देखते हैं और सूर्य की गति प्रत्यक्ष न देखी जाने पर भी वे उसे अपने बुद्धि-बल से प्रत्यक्ष के समान देखते हैं उसी तरह आत्मा अति दुर्लक्ष्य होने पर भी बुद्धि-दीप के प्रकाश द्वारा देखा जा सकता है। विवेकी मनुष्य प्रत्यक्ष देखी जानेवाली पास की वस्तुओं को ज्ञेय परमात्मा में विलीन करने की इच्छा करते हैं। उपाय के बिना कोई काम सिद्ध नहीं होता। १० जैसे मछुवे जाल डालकर मछलियाँ पकड़ते हैं; मृग के द्वारा मृग, पक्षी से पक्षी और हाथी के द्वारा हाथी पकड़ा जाता है वैसे ही ज्ञेय पदार्थ ज्ञान द्वारा जाना जाता है। सुना जाता है कि जैसे साँप ही साँप के पैर देख सकता है वैसे ही ज्ञान से, शरीर में ज्ञेय, सूक्ष्म पदार्थ प्रत्यक्ष होता है। जैसे इन्द्रियों के द्वारा इन्द्रियाँ नहीं जानी जा सकतीं वैसे ही स्थूल शरीर में स्थित ज्ञेय आत्मा को बुद्धि नहीं देख सकती। जैसे चन्द्रमा अमावास्या को, विद्यमान रहने पर भी, देख नहीं पड़ता वैसे ही आत्मा को, मनुष्यों के शरीर में मौजूद रहने पर भी, कोई देख नहीं सकता। जैसे चन्द्रमा अमावास्या को, स्थूल स्वरूप के बिना, प्रकाशित नहीं होता वैसे ही आत्मा—मनुष्य का शरीर नष्ट हो जाने पर भी—प्रकाशित नहीं होता। जैसे चन्द्रमा फिर स्थूल शरीर धारण करके प्रकाशित होता है वैसे ही आत्मा दूसरा शरीर प्राप्त करने पर प्रकट हो जाता है। चन्द्रमा का जन्म, वृद्धि और नाश प्रत्यक्ष देख पड़ता है, चन्द्रमा के स्थूल शरीर के ये ही गुण हैं; ये सब गुण मनुष्य के स्थूल शरीर में ही आरोपित किये जा सकते हैं, आत्मा में नहीं। जैसे चन्द्रमा अमावास्या के बाद क्रमशः बढ़ते रहने पर भी चन्द्रमा ही कहलाता है वैसे ही शरीर का जन्म-मरण होते रहने पर भी आत्मा के स्वरूप में कुछ अन्तर नहीं पड़ता। जैसे राहु चन्द्रमा को किस तरह ग्रसता और कैसे छोड़ता है, यह कोई नहीं जान सकता वैसे ही आत्मा

२० किसे प्रकार शरीर में प्रविष्ट होता और कैसे निकलता है, यह किसी को नहीं मालूम होता। चन्द्रमा और सूर्य पर आक्रमण करने पर ही जैसे राहु जाना जाता है वैसे ही शरीर में प्रविष्ट होने पर ही आत्मा का अनुमान किया जाता है। राहु जैसे चन्द्रमा और सूर्य का त्याग करने पर दिखाई नहीं देता वैसे ही आत्मा शरीर को छोड़ने पर अनुमान में नहीं आता। जैसे अमावास्या में अदृश्य रहने पर भी चन्द्रमा को नक्षत्र नहीं त्यागते वैसे ही आत्मा, शरीर से
२३ निकलने पर भी, कर्मफल से नहीं छूट सकता।

दो सौ चार अध्याय

मनु और बृहस्पति का संवाद

मनु ने कहा—महात्मन्, जैसे स्वप्नावस्था में मनुष्य का स्थूल शरीर शय्या पर पड़ा रहता है और सूक्ष्म शरीर उससे निकलकर सुख-दुःख का भोग करता है वैसे ही कर्मशील मनुष्य के मरने पर उसका स्थूल शरीर तो नष्ट हो जाता है और सूक्ष्म शरीर पाप-पुण्य का फल भोगता है। और, जैसे स्वप्नावस्था में ज्ञान सूक्ष्म शरीर से अलग होता है वैसे ही कर्मत्यागी मनुष्य के मरने पर उसका ज्ञान सूक्ष्म शरीर से निकलकर ब्रह्मानन्द का अनुभव करता है। जैसे साफ़ पानी में परछाईं देख पड़ती है वैसे ही इन्द्रियों के प्रसन्न होने पर ज्ञान द्वारा आत्मा का साक्षात्कार होता है। किन्तु जैसे गँदले पानी में प्रतिबिम्ब नहीं देख पड़ता वैसे ही इन्द्रियों के चञ्चल रहने पर आत्मज्ञान होना सम्भव नहीं। अज्ञान से अबुद्धि उत्पन्न होती, अबुद्धि से मन दूषित होता और मन दूषित होने पर पाँचों कर्मेन्द्रियाँ दूषित हो जाती हैं। अज्ञानी मनुष्य को विषयों से किसी प्रकार तृप्ति नहीं हो सकती। पाप-पुण्य के कारण जीव विषय-वासनाओं में फँसे रहने से बार-बार जन्म लेते हैं। तृष्णा के रहने पर कभी विषय-वासना की शान्ति नहीं हो सकती। जब तृष्णा का नाश हो जाता है तब विषय-वासना भी नष्ट हो जाती है। विषयों में लगे रहने से तृष्णा बढ़ती ही जाती है, मोक्ष कभी नहीं मिल सकता। पाप का नाश होने पर ज्ञान उत्पन्न होता है। तब जैसे निर्मल दर्पण में मुँह देख पड़ता है वैसे ही अपनी बुद्धि में आत्मा का दर्शन होता है। इन्द्रियों के विषय-वासना में फँसे रहने से दुःख, और इन्द्रियों का दमन होने पर सुख मिलता है। अतएव इन्द्रियों का दमन करना आवश्यक
१० है। इन्द्रियों से मन, मन से बुद्धि, बुद्धि से जीवात्मा और जीवात्मा से परमात्मा श्रेष्ठ है। परमात्मा से जीवात्मा, जीवात्मा से बुद्धि और बुद्धि से मन उत्पन्न होता है। कान आदि इन्द्रियों से संयुक्त रहकर मन शब्द आदि विषयों में लिप्त रहता है। जो मनुष्य शब्द आदि विषयों और स्थूल कारणों का त्याग कर सकता है वही अमृत के रस का स्वाद पा सकता है। जैसे सूर्यदेव उदय होकर अपनी किरणें फैलाते और फिर उन सबको समेटकर अस्त हो जाते

हैं वैसे ही अन्तरात्मा इन्द्रियों का काम करता है और फिर उन्हें समेटकर शरीर से निकल जाता है। मनुष्य बार-बार अपने कर्मों के अनुसार गति पाकर सुख-दुःख भोगता रहता है। विषय-भोग का त्याग कर देने पर विषय-वासना दूर हो जाती है और जब आत्मा के साथ साक्षात्कार हो जाता है तब वासनाओं का रस भी जाता रहता है। विषयों का त्याग करके बुद्धि जब मन के साथ मिलती है तब मनुष्य को ब्रह्मज्ञान होता है। कान, नाक आदि इन्द्रियों से और अनुमान से ब्रह्म का ज्ञान नहीं होता। केवल बुद्धि ही उस श्रेष्ठ पदार्थ में प्रवेश कर सकती है। जैसे मन से कल्पित घट आदि स्थूल पदार्थ मन में ही लीन हो जाते हैं वैसे ही मन बुद्धि में, बुद्धि जीवात्मा में और जीवात्मा ब्रह्म में लीन हो जाता है। इन्द्रिय, मन और बुद्धि, इनमें से कोई भी अपने कारण को नहीं समझ पाता; किन्तु सूक्ष्म-स्वरूप ज्ञानमय आत्मा इन सबको देखता रहता है। २०

दो सौ पाँच अध्याय

मनु और बृहस्पति का संवाद

मनु ने कहा—हे महर्षि, शारीरिक या मानसिक दुःखों के बने रहने पर योगाभ्यास नहीं होता। इसलिए दुःख की चिन्ता न करना परम आवश्यक है। चिन्ता का त्याग करना ही दुःख के दूर करने की ओषधि है। चिन्ता करने से दुःख नहीं मिट सकता बल्कि बढ़ता ही जाता है। बुद्धि से मानसिक और ओषधि से शारीरिक दुःख दूर करना चाहिए। बच्चों की तरह दुःख में व्याकुल हो उठना ठीक नहीं। आत्मज्ञानी लोग कभी रूप, यौवन, जीवन, धन-दौलत, आरोग्य और प्रिय जनों के सहवास आदि अनित्य विषयों की वासना न करें। विपत्ति के समय दुखी होना उचित नहीं, बल्कि शोक न करके उसके हटाने का उपाय करना चाहिए। जीवन में सुख की अपेक्षा दुःख ही अधिक है। जो मनुष्य इन्द्रियों के वश होकर काम करता है उसे निस्सन्देह दुःख सहने पड़ते हैं और जो सुख-दुःख दोनों का त्याग कर देता है वह ब्रह्म में लीन हो जाता है, इसलिए ज्ञानी लोग दुःख में शोक नहीं करते। अर्थ (धन) से महान् अनर्थ होते हैं। एक तो धन का उपार्जन करने में ही बड़ा क्लेश मिलता है, दूसरे उसकी रक्षा करने में भी बड़े दुःख मिलते हैं, इसलिए धन का नाश हो जाने पर चिन्ता करना कदापि उचित नहीं। ज्ञान आत्मा से उत्पन्न होता है। ज्ञान मन का धर्म है। मन ज्ञान-इन्द्रिय से मिलकर विषयों का ज्ञान कराता है। वही ज्ञान शुद्ध होने पर जब मन के साथ मिलता है तब योग-समाधि के द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति होती है। जैसे पानी पर्वत की चोटी से निकलकर बहता है वैसे १० ही इन्द्रिय-ज्ञान-सम्पन्न बुद्धि अज्ञानरूपी अन्धकार से निकलकर रूप आदि विषयों की ओर दौड़ती है। जब वह बुद्धि इन विषयों से अलग हो जाती है तब जैसे कसौटी पर कसे हुए सोने

में सन्देह नहीं रह जाता वैसे ही उस समय बुद्धि निस्सन्देह ब्रह्म को प्राप्त करती है। मन केवल इन्द्रियों के गुण—रूप-रस आदि—का बोधक है; इसके द्वारा रूप-रस आदि गुणों से हीन ब्रह्म की प्राप्ति सम्भव नहीं है। इन्द्रियों को रोककर उन्हें संकल्पात्मक मन में और मन को बुद्धि में एकाग्र करने पर ब्रह्म की प्राप्ति होती है। जैसे शब्द तन्मात्रा आदि तत्त्वों के लुप्त होने पर पञ्च-महाभूत लुप्त हो जाते हैं वैसे ही अहङ्कार तत्त्व में बुद्धि के लीन हो जाने पर इन्द्रियाँ भी लीन हो जाती हैं। जब निश्चयात्मक बुद्धि अहङ्कार में स्थिर हो जाती है तब मन के साथ उसकी भिन्नता नहीं रहती। अहङ्कार, ध्यान के प्रभाव से उत्कर्ष पाकर, रूप आदि विषयों के साथ सत्त्व आदि मूल प्रकृति को प्राप्त करके, गुणों को त्यागकर निर्गुण पदार्थ को प्राप्त करता है। अव्यक्त के स्वरूप का वर्णन नहीं किया जा सकता। चिन्तन मनन करने, शम-दम आदि गुणों का अवलम्बन करने, वेदान्त सुनने और चित्त के शुद्ध होने पर ब्रह्म के जानने की इच्छा करे। तत्त्व-ज्ञानी मनुष्य—तर्क से अगम्य आनन्द-स्वरूप—परम ब्रह्म को अपने शरीर के भीतर और बाहर २० सर्वत्र ढूँढ़ने का उद्योग करते हैं। जैसे आग ईंधन में प्रवेश करती है वैसे ही बुद्धि भी शब्द आदि विषयों में घूमती रहती है। जब बुद्धि विषय-वासना को छोड़ देती है तब ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है और जब विषय-वासना में लीन होती है तब ज्ञान जाता रहता है। जैसे स्वप्नावस्था में इन्द्रियाँ अपना-अपना काम छोड़ देती हैं वैसे ही आनन्द-स्वरूप परम ब्रह्म हमेशा सब कामों से अलग रहता है। मनुष्य अज्ञता से कर्मों में लगे रहते हैं। जो मनुष्य कर्मों का त्याग कर देता है वह मोक्ष पद पाता है और जो उनमें आसक्त रहता है वह स्वर्गलोक को जाता है। जीव, प्रकृति, बुद्धि, इन्द्रिय, अहङ्कार और अभिमान को 'भूत' कहते हैं। सबसे पहले इन पदार्थों की उत्पत्ति ईश्वर से हुई है। उसके बाद इन पदार्थों से और सृष्टि हुई है। इन सब पदार्थों का धर्म के प्रभाव से कल्याण और अधर्म से अमङ्गल होता है। विषयों में आसक्त रहनेवाला मनुष्य मरने २६ के बाद फिर जन्म लेता है और त्यागी मनुष्य, आत्मज्ञान के प्रभाव से, मुक्त हो जाता है।

दो सौ छः अध्याय

मनु और बृहस्पति का संवाद

मनु ने कहा—हे महर्षि! शब्द आदि पाँचों गुणों के साथ पाँचों इन्द्रियों, मन और बुद्धि को मिला देने पर—मणि में पिरोये हुए सूत के समान—आत्मा का दर्शन होता है। जैसे सूत सोना, मोती, मूँगा, चाँदी और मिट्टी की वस्तुओं में पिरोया रहता है वैसे ही आत्मा अपने कर्म के प्रभाव से गाय, घोड़ा, मनुष्य, हाथी, मृग और कीट-पतङ्ग आदि योनियों में जन्म पाता है। प्राणी जिन-जिन शरीरों को पाने के लिए जो-जो कर्म करता है वह उन्हीं शरीरों को पाकर उन कर्मों के फल भोगता है। बुद्धि आत्मा द्वारा प्रेरित होकर अपने पूर्वकृत कर्मों का

स्मरण करती है। ज्ञान से इच्छा, इच्छा से प्रयत्न, प्रयत्न से कर्म और कर्म से फल उत्पन्न होता है। इस कारण फल कर्म से, कर्म बुद्धि से, बुद्धि ज्ञान से और ज्ञान आत्मा से उत्पन्न होता है। देह और आत्मा के भेद का, फल बुद्धि और कर्म का, विनाश होने पर जो दिव्य-ज्ञान उत्पन्न होता है वही ब्रह्मज्ञान है। योगी लोग कर्मों का त्याग करके नित्य सिद्ध परम पदार्थ का दर्शन करते हैं। विषयों में आसक्त अज्ञानी मनुष्य कभी उसका दर्शन नहीं पा सकता। पृथिवी से जल, जल से तेज, तेज से वायु, वायु से आकाश, आकाश से मन, मन से बुद्धि, १० बुद्धि से काल और काल से जगत्कर्ता शुद्ध ब्रह्म का महत्त्व अधिक है। परब्रह्म का न तो आदि है, न मध्य और न अन्त; इसी से वह अव्यय है। नश्वर पदार्थ ही दुःख-रूप हैं, किन्तु परब्रह्म इससे परे है। मोक्षाभिलाषी मनुष्य सांसारिक विषयों से बचकर मोक्ष को प्राप्त करते हैं। जो मनुष्य निवृत्ति-धर्म को समझ लेता है वह मुक्त हो सकता है। ऋक्, यजु और सामवेद मनुष्यों के सूक्ष्म शरीर का आश्रय करके जीभ के अग्रभाग में रहते हैं। ये सब यत्न-साध्य और नश्वर हैं, किन्तु ब्रह्म को शरीर आदि के आश्रय की आवश्यकता नहीं, उसकी प्राप्ति ज्ञान के द्वारा होती है। वह परम पदार्थ सर्वव्यापी है। अव्यय होने के कारण वह दुःख से हीन और मान-अपमान से रहित है। विषयों में लिप्त रहने के कारण मनुष्य उस अदृश्य ब्रह्म को प्राप्त करने का उपाय नहीं सोच सकता। सिद्ध पुरुष, समाधि के प्रभाव से, ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने के योग्य होकर भी यदि अणिमादि ऐश्वर्य की इच्छा करते हैं तो उन्हें ब्रह्म के दर्शन नहीं हो सकते। विषयी मनुष्यों को विषयों के देखने से विषय-भोग करने की इच्छा होती है, इस २० कारण वे विषयों से छूटकर ब्रह्म-प्राप्ति की इच्छा नहीं कर सकते। तुच्छ बाह्य गुणों में आसक्त मूढ़ मनुष्य क्या कभी योगियों के जानने योग्य श्रेष्ठ गुणों को जान सकता है? ब्रह्म के स्वरूप-भूत श्रेष्ठ आन्तरिक गुणों के द्वारा परमब्रह्म प्राप्त हो सकता है। सूक्ष्म मन के द्वारा ब्रह्म का ज्ञान होता है, वाणी से उसका वर्णन नहीं हो सकता। मनन से मन को और अभेद बुद्धि से दर्शन को स्थिर, ज्ञान से बुद्धि को सन्देहहीन, बुद्धि से मन को शुद्ध और मन के द्वारा इन्द्रियों को स्थिर करने पर ब्रह्म की प्राप्ति होती है। ध्यान के पुष्ट होने पर जिसकी विषय-वासना दूर हो जाती है वह इच्छारहित निर्गुण ब्रह्म को प्राप्त कर सकता है। ईंधन में गुप्त अग्नि पर जैसे वायु का प्रभाव नहीं पड़ता वैसे ही विषयासक्त मनुष्य परमात्मा का दर्शन नहीं कर सकता। ध्यान के बल से विषयों को आत्मा में लीन कर देने पर, बुद्धि से परे, ब्रह्म की प्राप्ति होती है। ध्यान के समय सब विषयों को आत्मा से जुदा कर देने पर, बुद्धि-कल्पित, ऐश्वर्य प्राप्त होता है। जो मनुष्य इस प्रकार विचार करके सब विषयों को आत्मा में लीन कर देता है वह ब्रह्म पद प्राप्त कर सकता है। आत्मा अव्यक्त है और उसके कर्म भी अव्यक्त हैं। मनुष्यों के मरने पर वह अव्यक्त भाव से ही उनकी देह से निकल जाता है। हम केवल इन्द्रियों के कर्म और

सुख-दुःख को आत्मा के कर्म और सुख-दुःख समझते हैं। किन्तु वास्तव में आत्मा न कोई कर्म करता है और न सुख-दुःख का भोग ही करता है। वह शरीर में रहकर इन्द्रियों के प्रभाव से ही कर्म में प्रवृत्त होता है, किन्तु ईश्वर की इच्छा के बिना वह और कोई कर्म नहीं कर सकता। जैसे मनुष्य पृथिवी का अन्त नहीं देख सकता, किन्तु कहीं न कहीं अवश्य ही उसका अन्त है वैसे ही सुख-दुःख आदि का अन्त भी समझ में तो नहीं आता, पर जब सुख-दुःख आदि उत्पन्न पदार्थ हैं तो निस्सन्देह उनका अन्त निर्दिष्ट है। जैसे हवा समुद्र में पड़े हुए तृण आदि को बहाकर किनारे लगा देती है वैसे ही कर्म संसार में लिप्त जीव को परब्रह्म में लीन कर

३० देता है। जैसे सूर्य पहले अपनी किरणों को फैलाकर फिर धीरे-धीरे समेट लेता है वैसे ही मनुष्य विषय-भोग करके अन्त को, अहङ्कार छोड़कर, गुणातीत परब्रह्म में लीन हो जाता है। सारांश यह कि जो जन्म नहीं लेता, जिसके रहने का कोई स्थान नियत नहीं है, जो पुण्यवान् मनुष्यों की परमगति है, जिसमें सब कार्यों का लोप हो जाता है, जो मोक्ष-स्वरूप और अविनाशी

३२ है तथा जो आदि-मध्य और अन्त से हीन है उसी परब्रह्म का ज्ञान होने पर मोक्ष मिल सकता है।

दो सौ सात अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर को संसार की सृष्टि का प्रकार बतलाना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह ! जो सबकी उत्पत्ति करते हैं, जिनकी उत्पत्ति किसी से नहीं हुई और जो पुण्डरीकाक्ष, अच्युत, विष्णु, हृषीकेश, गोविन्द और केशव आदि नामों से विख्यात हैं उन भूतभावन नारायण का वृत्तान्त मैं सुनना चाहता हूँ। आप विस्तार से वर्णन कीजिए।

भीष्म कहते हैं—महाराज ! मैंने जमदग्नि के पुत्र परशुराम, देवर्षि नारद और कृष्ण द्वैपायन से यह वृत्तान्त सुना है। भगवान् असित देवल, महातपस्वी वाल्मीकि और महर्षि मार्कण्डेय नारायण का यह अद्भुत वृत्तान्त कहते हैं। मैंने महात्माओं के मुँह से सुना है कि भगवान् नारायण पुरुषप्रधान ईश्वर और सर्वव्यापी हैं। अब मैं पुराण के जानकार ब्राह्मणों का वर्णन किया हुआ, महात्मा विष्णु का, वृत्तान्त सुनाता हूँ।

भगवान् पुरुषोत्तम आकाश, वायु, पृथिवी, तेज और जल, इन पाँच महाभूतों को उत्पन्न करके फिर स्वयं जल के ऊपर सो गये। इसके बाद उन्होंने मन और अहङ्कार को उत्पन्न

१० किया। अहङ्कार ही समस्त प्राणियों और भूत भविष्यत् आदि को धारण किये हुए है। अहङ्कार की उत्पत्ति के बाद जलशायी नारायण की नाभि से सूर्य के समान तेजस्वी एक दिव्य कमल उत्पन्न हुआ। उसी कमल से लोक-पितामह ब्रह्मा उत्पन्न हुए। ब्रह्मा के उत्पन्न होते ही उनके तेज से सब दिशाएँ प्रकाशमान हो उठीं। भगवान् ब्रह्मा की उत्पत्ति के बाद मधु नाम का एक तमोगुणी महाअसुर पैदा हुआ और वह ब्रह्मा को खा जाने के लिए झपटा। तब
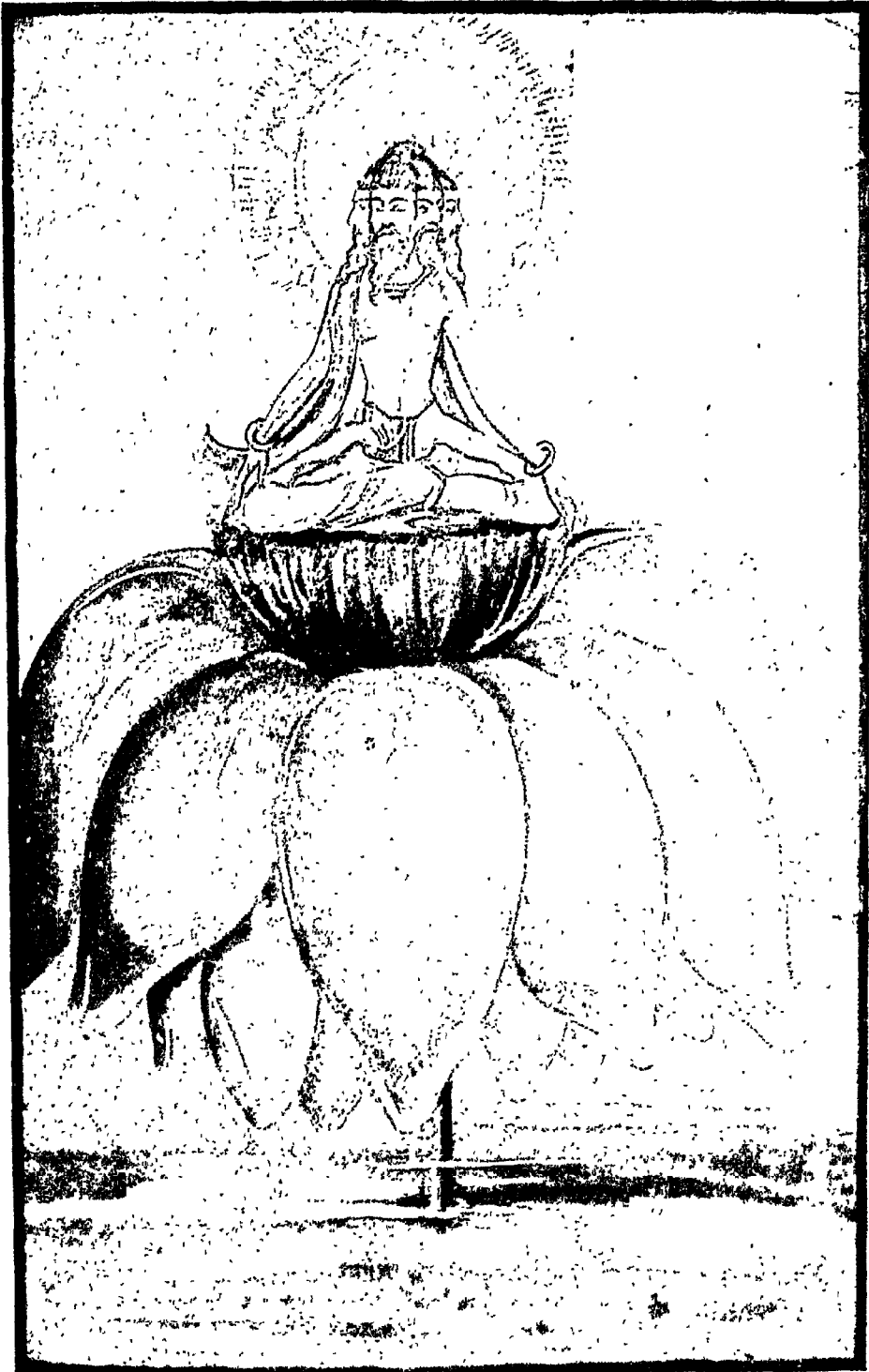
उसी कमल से लोक-पितामह ब्रह्मा उत्पन्न हुए।—पृ० २६२६

नारायण ने, ब्रह्मा की रक्षा के लिए, उस उग्रकर्मा भयङ्कर असुर को मार डाला। उस असुर को मार डालने से देव-दानव-मानव आदि सब हृषीकेश को मधुसूदन कहने लगे।

मधु दैत्य के मारे जाने पर ब्रह्मा ने मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह और क्रतु नाम के मानस-पुत्र उत्पन्न किये। मरीचि ने कश्यप को उत्पन्न किया। वेद-विद्या के विद्वान् मरीचि मुनि की उत्पत्ति से पहले ब्रह्मा ने अपने अँगूठे से एक और पुत्र उत्पन्न किया था। उनका नाम दक्ष प्रजापति है। दक्ष ने तेरह कन्याएँ उत्पन्न कीं। इन कन्याओं में दिति सबसे बड़ी है। सब धर्मों के मर्मज्ञ, महायशस्वी कश्यप स्वयं इन सब कन्याओं के पति हुए। २०

अब प्रजापति दक्ष ने दस कन्याएँ और पैदा करके धर्म को दे दीं। धर्म ने उन कन्याओं के गर्भ से वसु, रुद्र, विश्वेदेवा, साध्य और वायु आदि पुत्रों को उत्पन्न किया। दक्ष ने और सत्ताईस कन्याएँ पैदा कीं। इन कन्याओं के पति चन्द्रमा हुए। कश्यप की स्त्री अदिति के गर्भ से महापराक्रमी देवश्रेष्ठ आदित्यगण उत्पन्न हुए। इन्हीं आदित्यगणों में वामन-रूपी विष्णु का अवतार हुआ। उन वामनदेव के विक्रमण के प्रभाव से देवताओं की वृद्धि तथा दानवों और असुरों की अवनति हुई। दनु से विप्रचित्ति आदि दानव और दिति से महापराक्रमी असुर पैदा हुए। कश्यप की और स्त्रियों ने गन्धर्व, घोड़ा, चिड़िया, गाय, किन्नर, मछली और उद्भिज जीवों को पैदा किया।

इसके बाद भगवान् मधुसूदन ने दिन, रात, काल, ऋतु, पूर्वाह्न, पराह्न, बादल, पृथिवी और स्थावर-जङ्गम प्राणियों की सृष्टि की। फिर उनके मुँह से एक सौ ब्राह्मण, भुजाओं से एक सौ क्षत्रिय, जाँघों से एक सौ वैश्य और पैरों से एक सौ शूद्र उत्पन्न हुए। हे युधिष्ठिर, मधुसूदन ने इस प्रकार चार वर्णों की सृष्टि करके वेद के विधाता ब्रह्मा को सब प्राणियों का अध्यक्ष, भगवान् विरूपाक्ष को भूत और मातृगण का अध्यक्ष, यमराज को पापियों और पितरों का शासक, कुबेर को धन का रक्षक, जल के स्वामी वरुणदेव को जल-जन्तुओं का अध्यक्ष और इन्द्र को सब देवताओं का अधीश्वर बना दिया। उस समय जो मनुष्य जितने दिन जीना चाहता था उतने दिनों तक जीता रहता था, किसी को मृत्यु का भय नहीं था। उस समय स्त्री-प्रसङ्ग करने की आवश्यकता नहीं थी, इच्छा से ही सन्तान की उत्पत्ति हो जाती थी। उस समय का नाम सत्ययुग था। सत्ययुग के बाद त्रेतायुग हुआ। उस युग में भी मैथुन धर्म नहीं था; स्त्री का स्पर्श करने से ही सन्तान की उत्पत्ति हो जाती थी। द्वापर युग से मैथुन धर्म प्रचलित हुआ और कलियुग में मनुष्य द्वन्द्वभाव को प्राप्त होंगे। ३० ४०

हे धर्मराज, मैंने सब प्राणियों के अधीश्वर नारायण का वृत्तान्त कहा; अब पापियों का वृत्तान्त सुनो। दक्षिण देश में उत्पन्न नरवर, अन्ध्रक, गुह, पुलिन्द, शबर, चूचुक, मद्रक और उत्तर देश-निवासी यौन, काम्बोज, गान्धार, किरात और बर्बरगण हमेशा पाप करते रहते हैं। वे

लोग चाण्डाल, गिद्ध और कौए के से आचरण करते हैं। उनकी उत्पत्ति सत्ययुग में नहीं हुई थी। त्रेतायुग से उनकी बढ़ती होने लगी। उनकी संख्या अधिक हो जाने और उनके कारण पृथिवी के पीड़ित होने पर, भगवान् भूतभावन की इच्छा से, वे सब आपस में लड़ने लगे।

हे कुरुश्रेष्ठ, इस प्रकार परमात्मा से यह सृष्टि हुई है। सब लोकों के ज्ञाता देवर्षि नारद ने भी वासुदेव को सर्वश्रेष्ठ कहकर उनका नित्यत्व माना है। ये सत्य-पराक्रमी महाबाहु श्रीकृष्ण साधारण मनुष्य नहीं हैं, इनकी महिमा अपार है। ४९

दो सौ आठ अध्याय

मरीचि आदि ब्रह्मा के पुत्रों के वंश का और प्रत्येक दिशा में
निवास करनेवाले महर्षियों का वर्णन

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, पहले कौन-कौन प्रजापति हो गये हैं और किस-किस दिशा में कौन-कौन महर्षि थे ?

भीष्म ने कहा—बेटा, प्राचीन प्रजापतियों और महर्षियों का वर्णन सुनो। पहले अकेले भगवान् ब्रह्मा थे। उन्होंने मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वसिष्ठ, ये अपने समान सात पुत्र उत्पन्न किये। पुराण में इन सात महर्षियों को सात ब्रह्मा कहा गया है।

अब प्रजापति का वृत्तान्त सुनो। महात्मा अत्रि के वंश में ब्रह्मयोनि भगवान् प्राचीनबर्हि की उत्पत्ति हुई। प्राचीनबर्हि से दस प्रचेता उत्पन्न हुए। दस प्रचेताओं के एक पुत्र पैदा हुआ। उसका नाम दक्ष है। संसार में वे 'दक्ष' और 'क' दो नामों से प्रख्यात हुए। मरीचि के पुत्र के दो नाम थे—कश्यप और अरिष्टनेमि। अत्रि के पुत्र वीर्यवान् राजा सोम हुए, जो देवताओं के हज़ार युगों तक जीवित रहेंगे। भगवान् अर्यमा और उनके पुत्रों ने संसार का शासन और नियमों का संस्थापन किया। महाराज शशबिन्दु के दस हज़ार स्त्रियाँ थीं। १० उन स्त्रियों के गर्भ से एक-एक हज़ार पुत्र पैदा हुए। इस प्रकार महात्मा शशबिन्दु के दस लाख पुत्र हो गये। उन्हीं से सारी प्रजा की उत्पत्ति हुई है। प्राचीन ब्राह्मण लोग शशबिन्दु के पुत्रों को प्रजापति कह गये हैं। यशस्वी प्रजापतियों का वृत्तान्त मैंने कह सुनाया, अब तीनों लोकों के अधीश्वर देवताओं का वर्णन सुनो।

भग, अंश, अर्यमा, मित्र, वरुण, सविता, धाता, विवस्वान्, त्वष्टा, पूषा, इन्द्र और विष्णु, ये बारह आदित्य महात्मा कश्यप के पुत्र हैं। नासत्य और दस्र नाम के दो अश्विनीकुमार महात्मा अष्टम मार्तण्ड से उत्पन्न हुए। ये सब देवता और पितर के नाम से प्रसिद्ध हुए। विश्वरूप यशस्वी, अनैकपाद्, अहिर्बुध्न्य, विरूपाक्ष और रैवत, ये त्वष्टा के पुत्र हैं। हर, बहुरूप, त्र्यम्बक, सुरेश्वर, २० सावित्र, जयन्त, पिनाकी और अपराजित, ये अष्टवसु के नाम से प्रसिद्ध हैं। प्रजापति मनु के

अधिकार के समय ये देवता थे। प्राचीन समय में यही देवता और पितर कहलाते थे। ऋभु और मरुद्गण आदि देवता हैं। इन देवताओं और दोनों अश्विनीकुमारों में आदित्यगण क्षत्रिय, मरुद्गण वैश्य, तपस्वी अश्विनीकुमार शूद्र और अङ्गिरा के वंश में उत्पन्न देवतागण ब्राह्मण हैं। इस प्रकार देवता भी चार वर्णों में विभक्त हैं। जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर इन देवताओं का नाम लेता है वह अपने किये हुए तथा दूसरे के संसर्ग से उत्पन्न सब पापों से छूट जाता है।

अङ्गिरा के पुत्र यवक्रीत, रैभ्य, अर्वावसु, परावसु, औषज, कक्षीवान् और बल तथा त्रिलोकपावन सप्तर्षि-मण्डल और महर्षि मेधातिथि के पुत्र कण्व और बर्हिपद पूर्व दिशा में; उन्मुच, विमुच, स्वस्त्यात्रेय, प्रमुच, इध्मवाह और मित्रावरुण के पुत्र अगस्त्य, ये सब ब्रह्मर्षि दक्षिण दिशा में; उषङ्गु, कवष, धौम्य, परिव्याध, एकत, द्वित, त्रित और अत्रि के पुत्र भगवान् सारस्वत, ये सब महात्मा पश्चिम दिशा में; और भगवान् आत्रेय, वसिष्ठ, काश्यप, गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र और ऋचीक के पुत्र जमदग्नि, ये सात महर्षि उत्तर दिशा में रहते हैं। ये तेजस्वी महर्षि जिन दिशाओं में रहते हैं उनका वर्णन मैंने किया। ये सब महात्मा तीनों लोकों के साक्षी हैं। इनका स्मरण करने से मनुष्य सब पापों से छूट जाता है। जो मनुष्य इन महर्षियों के रहने की दिशाओं में जाकर इनकी शरण लेता है वह सब पापों से छूटकर निर्विघ्न अपने घर को जाता है। ३० ३७

दो सौ नव अध्याय

वराह भगवान् के अवतार का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह! अविनाशी सर्वेश्वर श्रीकृष्ण के तेज, उनके कर्म और तिर्यग्योनि में उनके जन्म लेने का कारण सुनने की मेरी इच्छा है। आप विस्तार से वर्णन कीजिए।

भीष्म कहते हैं—बेटा, एक बार शिकार के लिए घूमते-घामते मैंने महर्षि मार्कण्डेय के आश्रम पर पहुँचकर देखा कि वहाँ हज़ारों मुनि बैठे हैं। मुनियों ने मधुपर्क देकर मेरा सत्कार किया और मैंने सब महर्षियों को प्रणाम किया। उसके बाद महर्षि कश्यप ने मुझे एक मनोहर कथा सुनाई। मैं वह कथा कहता हूँ, मन लगाकर सुनो।

प्राचीन काल में क्रोध-लोभ के वशीभूत महापराक्रमी नरक आदि दानव, देवताओं का ऐश्वर्य और सुख सहन न कर सकने के कारण, अनेक प्रकार के उपद्रव करने लगे। देवता और देवर्षिगण उनके उपद्रव से पीड़ित और व्याकुल होकर इधर-उधर भागने लगे। देवताओं ने देखा कि घोररूप महापराक्रमी दानवों से भर जाने के कारण पृथिवी, दुःख के मारे, रसातल में धँसी जा रही है। पृथिवी की यह दुर्दशा देखने से देवताओं को और भी डर लगा। अब देवताओं और ऋषियों ने ब्रह्माजी के पास जाकर कहा—भगवन्, दानव लोग हमारे साथ बड़ा अत्याचार कर रहे हैं। हम लोग उनके उपद्रव को कहाँ तक सहन करें? १०

ब्रह्माजी ने कहा—देवताओं, इस विपत्ति को दूर करने का उपाय मैंने कर दिया है। दानव लोग इस समय दल बाँधकर पाताल में रहते हैं। वे देवताओं से पाये हुए वरदान, बल और अहङ्कार के कारण मोहित होने से नहीं जान सकते कि—अव्यक्त-स्वरूप, देवताओं से भी अधृष्य—भगवान् विष्णु ने वराह का रूप धारण किया है। वही वराह-रूप भगवान् बड़े वेग से पाताल में जाकर इन दुष्टों का नाश करेंगे। ब्रह्माजी की यह बात सुनकर और अपने दुःख का अन्त समझकर देवता लोग बहुत सन्तुष्ट हुए।

अब महातेजस्वी विष्णु भगवान् ने वराह का रूप धारण करके, पाताल में जाकर, दानवों पर धावा किया। वराह का दिव्य बल देखकर कुपित दानव लोग उन्हें पकड़कर चारों ओर खींचने लगे; किन्तु उनका कुछ भी न बिगाड़ सके। इससे दानवों को बड़ा आश्चर्य और भय पैदा हुआ। उन्हें अपने जीवन का सन्देह होने लगा। २०

देवाधिदेव वराह भगवान् योग के बल से, दानवों को डरवाने के लिए, बड़े ज़ोर से गरजने लगे। उनके गरजने का भीषण शब्द तीनों लोकों में व्याप्त हो गया; उस शब्द से दसों दिशाएँ गूँज उठीं। इन्द्र आदि देवता डर गये। पृथिवी के स्थावर-जङ्गम सब प्राणी सन्नाटे में आ गये। उस शब्द से डरकर और विष्णु के तेज से मोहित होकर दानव लोग पृथिवी पर गिरने और मरने लगे। वराह भगवान् ने खुरों से दानवों का मांस, मेद और उनकी हड्डियाँ रौंद डालीं। नारायण ने वराह का रूप धारण करके जो भीषण शब्द किया इसी से उनका नाम सनातन पड़ा। देवताओं ने वराह भगवान् का गरजना सुनकर डर के मारे जगत्पति ब्रह्माजी के पास जाकर कहा—भगवन्, यह कैसा शब्द हो रहा है और यह शब्द किसने किया है, जिससे सारा संसार विह्वल हो रहा है। इस शब्द से देवता और दैत्य सभी मोहित हो रहे हैं। हम लोग इसे नहीं समझ पाते।

देवता लोग ब्रह्माजी से यों कह ही रहे थे कि इतने में वराहरूपी भगवान् विष्णु, दानवों का संहार करके, पाताल लोक से उठे। महर्षि लोग उनकी स्तुति करने लगे। अब ब्रह्माजी ने वराह को देखकर देवताओं से कहा—यह देखो, महाकाय महाबली सब विघ्नों का नाश करनेवाले भूतभावन वराहरूपी भगवान् कृष्ण दानवों का विनाश करके आ रहे हैं। तुम लोगों को अब कोई डर नहीं है। धैर्य धरो। अब शोक, सन्ताप और भय को छोड़ दो। ये वराह-रूपी कृष्ण ही विधि, प्रभाव और संहार करनेवाले काल हैं। इन्होंने लोकों की रक्षा करने के लिए यह घोर शब्द किया है। सब लोग इनको नमस्कार करते हैं। ये सबके आदि और सबके ईश्वर हैं। ३०, ३६

दो सौ दस अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से गुरु-शिष्य-संवाद-रूप योग का वर्णन करना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, अब आप मोक्ष की प्राप्ति के कारण स्वरूप योग का वर्णन कीजिए।

भीष्म ने कहा—धर्मराज, इस विषय में गुरु-शिष्य-संवाद नाम का आख्यान सुनो। एक बार एक परम मेधावी शिष्य ने, अपने कल्याण की इच्छा से, तेजस्वी सत्यप्रतिज्ञ जितेन्द्रिय आचार्य को प्रणाम करके हाथ जोड़कर कहा—भगवन्, यदि आप मेरी सेवा से प्रसन्न हैं तो मेरे सन्देह को दूर कीजिए। मेरा और आपका उत्पन्न करनेवाला कौन है? सबके शरीर की रचना के सब उपादान एक से होने पर भी किसी की उन्नति और किसी की अवनति होती रहती है, इसका क्या कारण है? और वेदों में लौकिक तथा वर्णाश्रम-धर्म की जो व्यवस्था है उसका वर्णन कीजिए।

आचार्य ने कहा—बेटा, उस अध्यात्म योग का वर्णन सुनो जो कि चारों वेदों में भी गुप्त है और जो सब विद्याओं तथा शास्त्रों का सार है। वासुदेव सम्पूर्ण संसार और वेदों के आदि हैं। वेदवित् पण्डितों ने कहा है कि विश्वव्यापी सनातन पुरुष सत्य, ज्ञान, तितिक्षा, यज्ञ और मृदुता-स्वरूप हैं। उन्हीं से संसार की सृष्टि, स्थिति और प्रलय होता है। वे अव्यक्त शाश्वत ब्रह्म हैं। ब्राह्मण ब्राह्मण को, क्षत्रिय क्षत्रिय को, वैश्य वैश्य को और शूद्र शूद्र को वासुदेव का माहात्म्य सुनाते हैं, इसलिए तुम मुझसे यह माहात्म्य सुनने के लिए उपयुक्त पात्र हो। १० अब मेरी बातों को सावधान होकर सुनो। वासुदेव साक्षात् कालचक्र, अनादि और अनन्त हैं। यह त्रैलोक्य उन्हीं के द्वारा, पहिये की तरह, घूमता रहता है। उनको लोग अविनाशी, अव्यक्त और नित्य कहते हैं। उन्हीं महात्मा से देवता, पितर, ऋषि, यक्ष, राक्षस, नाग, असुर और मनुष्य उत्पन्न हुए हैं। उन्हीं से युग के प्रारम्भ में वेद-शास्त्र, शाश्वत धर्म और प्रकृति की सृष्टि हुई है। जैसे वसन्त आदि ऋतुओं में वृक्ष फूलते हैं वैसे ही प्रत्येक कल्प में ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर सृष्टि-स्थिति-प्रलय के कर्ता हैं। युग के प्रारम्भ में काल के योग से जिन पदार्थों की उत्पत्ति होती है उन्हीं पदार्थों से, लोक-यात्रा के विधान से उत्पन्न, ज्ञान पैदा होता है।

युग के आदि में भगवान् स्वयम्भू की आज्ञा से महर्षियों ने तप के प्रभाव से, छिपे हुए, वेद और इतिहास को प्राप्त किया। संसार के हित के लिए ब्रह्माजी ने वेद, बृहस्पति ने वेदाङ्ग,
२० शुक्राचार्य ने नीति-शास्त्र, देवर्षि नारद ने सङ्गीतशास्त्र, भरद्वाज ने धनुर्विद्या, गार्ग्य ने देवर्षियों के चरित, कृष्णात्रेय ने चिकित्साशास्त्र और अन्यान्य महर्षियों ने न्यायशास्त्र आदि की उत्पत्ति की। इन महर्षियों ने युक्ति, वेद और प्रत्यक्ष प्रमाण से जिस ब्रह्म का निरूपण किया है उसी की उपासना करो। देवता और ऋषिगण उस अनादि ब्रह्म का निरूपण नहीं कर सकते, केवल लोक-विधाता भगवान् नारायण ही उसको जानते हैं। महर्षियों, देव-दानवों और प्राचीन राजर्षियों ने नारायण से इस दुःख के विनाश के ओषधि-स्वरूप ब्रह्म को जाना। पुरुष के आलोचित सब भावों को प्रकृति प्रकट करती है। धर्म-अधर्म से युक्त यह संसार प्रकृति से ही उत्पन्न हुआ है। जैसे एक दीपक से हज़ारों दीपक जलाये जा सकते हैं वैसे ही प्रकृति से सब पदार्थ उत्पन्न होते हैं। अनन्त होने से प्रकृति का कभी नाश नहीं होता। अव्यक्त ईश्वर से बुद्धि, बुद्धि से अहङ्कार, अहङ्कार से आकाश, आकाश से वायु, वायु से तेज, तेज से जल और जल से पृथिवी की उत्पत्ति हुई। ये अहङ्कार आदि आठ पदार्थ मूल-प्रकृति हैं; संसार इन्हीं पदार्थों में स्थित है। उक्त आठ प्रकृतियों से पाँच ज्ञानेन्द्रियों, पाँच कर्मेन्द्रियों, पाँच विषयों और मन की उत्पत्ति हुई है। आँख, कान, जीभ, नाक और त्वचा, ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। हाथ, पैर, उपस्थ (लिङ्ग और योनि), गुदा
३० और वाणी, ये कर्मेन्द्रियाँ हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, ये पाँच विषय हैं। इन सब इन्द्रियों और विषयों में मन व्याप्त रहता है। मन ही रसना के द्वारा रस का स्वाद लेता और वाक् इन्द्रिय द्वारा शब्द का प्रयोग करता है। इन्द्रियों से युक्त मन ही बुद्धि आदि आन्तरिक, आकाश आदि बाह्य और महत् आदि व्यक्त पदार्थों में गिना जाता है। दस इन्द्रियाँ, पाँच विषय और मन, ये सोलह देवता-स्वरूप हैं। ये सब शरीर में रहकर शरीर की उत्पत्ति करनेवाले ज्ञान-स्वरूप परमात्मा की उपासना करते हैं। रस जल का, गन्ध पृथिवी का, श्रोत्र आकाश का, नेत्र तेज का, स्पर्श वायु का, मन बुद्धि का और बुद्धि आत्मा का गुण है। सब प्राणियों के आत्मभूत ईश्वर में ज्ञान का निवास है। ये सत्त्व आदि गुण प्रकृति के पीछे चलकर, प्रवृत्तिशून्य ईश्वर का आश्रय करके, स्थावर-जङ्गम-रूपी संसार का सब काम करते हैं।

नव द्वारों और शब्द आदि गुणों से युक्त परम पवित्र देह-रूपी पुर में निवास करके आत्मा शयन करता है, इसी से वह पुरुष कहलाता है। वह अजर, अमर, व्यक्त, अव्यक्त, सर्वव्यापी, सगुण, सूक्ष्म और सब प्राणियों के गुणों का आश्रय है। जैसे दीपक—बड़ा हो या छोटा—प्रकाश करता है वैसे ही पुरुष, उपाधि-भेद से महान् हो या लघु, सब प्राणियों में ज्ञान-स्वरूप निवास करके सब वस्तुओं का ज्ञान कराता है। वह कान और आँख के द्वारा स्वयं सुनता और देखता है। शरीर शब्द आदि विषयों की प्राप्ति का कारण है और आत्मा सब

कार्यों का कर्ता है। जैसे काठ के भीतर की आग काठ को काटकर देखने पर भी नहीं देख पड़ती वैसे ही शरीर को काट डालने पर भी उसमें आत्मा का दर्शन नहीं हो सकता। जैसे काठ के रगड़ने पर उसके भीतर की आग प्रत्यक्ष हो जाती है वैसे ही, योग के प्रभाव से, देह में स्थित आत्मा का साक्षात्कार हो जाता है। नदी और जल तथा सूर्य और किरण का जैसा सम्बन्ध है वैसा ही सम्बन्ध शरीर और आत्मा का है। देह और आत्मा का सम्बन्ध तोड़ने के लिए योग के सिवा और कोई उपाय नहीं है। स्वप्नावस्था में जैसे आत्मा शरीर से निकलकर पाँच इन्द्रियों से युक्त हो अन्यत्र चला जाता है वैसे ही मृत्यु होने पर शरीर का त्याग करके वह दूसरा शरीर प्राप्त कर लेता है। आत्मा अपने कर्मों के प्रभाव से ही पूर्व-शरीर छोड़ देता है और अपने कर्मों के प्रभाव से ही दूसरे शरीर में जाता है। आत्मा जिस प्रकार एक शरीर का त्याग करके दूसरे शरीर में जाता है उसका वर्णन आगे करूँगा। ४०–४६

दो सौ ग्यारह अध्याय

योग का वर्णन

भीष्म ने कहा—हे धर्मराज, संसार में स्थावर-जङ्गम चार प्रकार के जीव हैं। उनके जन्म और मरण समझ से बाहर की बातें हैं। मन अव्यक्त आत्मा का स्वरूप है, इसलिए वह भी अव्यक्त है। जैसे छोटे से बीज से पीपल का भारी पेड़ पैदा होता है वैसे ही अव्यक्त परमात्मा से सारा संसार उत्पन्न होता है। जैसे लोहा चुम्बक की ओर खिंचता है वैसे ही पूर्व-जन्म के शुभ-अशुभ कर्म जीव के पास आ जाते हैं और मोह से उत्पन्न काम आदि इन्द्रियों के विषय तथा चित्तानन्द आदि सब भाव भी दूसरे जन्म में प्राणी का आश्रय लेते हैं। पहले पृथिवी, आकाश, स्वर्ग, महाभूत, प्राण और शान्ति तथा काम आदि गुण कुछ भी नहीं थे। केवल आत्मा की सत्ता थी। पृथिवी आदि के साथ जीव का कोई सम्पर्क नहीं है। जीव के साथ पृथिवी आदि का जो सम्बन्ध ज्ञात होता है उसका कारण माया है। जीव सर्वव्यापी, अनिर्वचनीय और नित्य है। वह पहले की अपनी इच्छा के प्रभाव से ही अपने को मनुष्य, पशु या अन्य कोई प्राणी समझता है। उसी इच्छा के वश होकर जीव कर्म करता है और कर्मों के वश से उसे फिर इच्छा पैदा होती है। इसी प्रकार जीव के कर्म और उसकी इच्छा दोनों, पहिये के समान, घूमते रहते हैं। उसके जन्म और मरण का प्रवाह-रूप चक्र हमेशा चलता रहता है। बुद्धि और वासना इस चक्र की नाभि, देह और इन्द्रिय आदि इसके अर (नाभि और नेमि को धारण करनेवाला काठ), ज्ञान और क्रिया आदि इसकी नेमि, रजोगुण इसका अक्ष और आत्मा इस चक्र का अधिष्ठाता है। जैसे तेली तिलों को पेरता है वैसे ही अज्ञान से उत्पन्न सुख-दुःख का भोग इस चक्र में संसार को पेरता रहता है। वही चक्र, फल

पाने की इच्छा से, अभिमान के वशीभूत होकर कर्म करता है। इच्छा ही कार्य और कारण के संयोग का कारण है। कार्य कारण को और कारण कार्य को लाँघ नहीं सकता। काल कार्य के साधन का प्रधान कारण है। प्रकृति और विकृति उस पुरुष का आश्रय करके, कर्म से युक्त होकर, एक दूसरी से मिलती हैं। जैसे धूल हवा से उड़ाई जाकर हवा के साथ चलती है वैसे ही जीवात्मा शरीर से निकलकर राजस तामस भाव तथा पूर्वकृत कर्म और विद्या के बल से युक्त होकर परमात्मा का अनुगमन करता है। और, जैसे हवा धूल को उड़ाकर भी उससे अछूती बनी रहती है वैसे ही आत्मा राजस आदि भावों से युक्त रहने पर भी उनमें लिप्त नहीं होता। पण्डित लोग, वायु के साथ धूल के समान, सत्त्व आदि गुणों के साथ जीवात्मा का पृथक् भाव जानते हैं। हे धर्मराज, शिष्य को सन्देह होने पर आचार्य ने इस प्रकार उसका सन्देह दूर कर दिया। सुख-दुःख के त्याग करने का उपाय सभी मनुष्यों को सोचना चाहिए। जैसे आग में झुलसे हुए बीज नहीं उगते वैसे ही ज्ञानरूपी आग में सब क्लेशों को जला देने पर फिर जीवात्मा को जन्म नहीं लेना पड़ता। १०-१७

दो सौ बारह अध्याय

योग का वर्णन

भीष्म ने कहा—हे धर्मराज! अविवेकी मनुष्य जैसे सांसारिक कर्मों को, श्रेष्ठ समझकर, करता है वैसे ही विवेकी महात्मा लोग विज्ञान तत्त्व का ही अवलम्बन करते हैं। विज्ञान के सिवा किसी कर्म में उनकी प्रवृत्ति नहीं होती। वेदोक्त कर्मों को करते हुए विद्वान् पुरुषों में विरला ही मनुष्य अपनी महानुभावता से मोक्ष-मार्ग का आश्रय करने की इच्छा करता है। कर्म का त्याग करना महात्माओं का काम है और वह काम समाज में प्रशंसनीय है। कर्मों से निवृत्ति होने पर ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। देह का अभिमान करनेवाले, क्रोध-लोभ के वशीभूत, मूढ़ लोग राजस और तामस गुणों में फँसकर सांसारिक विषयों में उलझे रहते हैं। अतएव मोक्ष चाहनेवाले पुरुष, कर्म के द्वारा, आत्मज्ञान का द्वार तैयार करते हैं; किन्तु कर्मों के फल से मिलनेवाले स्वर्ग आदि को प्राप्त करने की इच्छा नहीं करते। लोहा मिले हुए सोने की तरह, राग आदि दोषों से दूषित विज्ञान शोभित नहीं होता। जो मनुष्य काम, क्रोध और लोभ के वश होकर धर्म-मार्ग को छोड़कर अधर्म करता है वह निस्सन्देह विपत्ति में पड़ता और नष्ट हो जाता है। अतएव राग के वश होकर शब्द आदि विषयों में फँसा रहना अच्छा नहीं। जो मनुष्य विषयों में फँसा रहता है उसे क्रोध, हर्ष और विपत्ति सहनी पड़ती है। जब सभी के शरीर पञ्चभूतमय और सत्त्व, रज, तम गुण से युक्त हैं तब दूसरे की स्तुति या निन्दा करना व्यर्थ है। मूढ़ मनुष्य ही अज्ञान से रूप, रस, स्पर्श आदि

विषयों में आसक्त रहता है। वह अपने शरीर को पार्थिव नहीं समझता। जैसे मिट्टी का घर मिट्टी से लीपा जाता है वैसे ही यह मिट्टी का बना हुआ शरीर मिट्टी से ही पुष्ट होता है। शहद, तेल, दूध, घी, मांस, नमक, गुड़, अन्न, फल-मूल आदि सब वस्तुएँ पानी और मिट्टी से पैदा होती हैं। जैसे वन में रहनेवाले संन्यासी लोग मिष्टान्न आदि भोजन की इच्छा न करके शरीर की रक्षा के लिए साधारण भोजन करते हैं वैसे ही गृहस्थों को भी अपने जीवन की रक्षा के लिए, रोगी मनुष्य के ओषधि-सेवन के समान, साधारण भोजन करना चाहिए। उदारचित्त मनुष्य सत्यवादिता, बाह्य और आन्तरिक पवित्रता, सरलता, वैराग्य, अध्ययन आदि से उत्पन्न तेज, विक्रम, क्षमा, धैर्य, बुद्धि, मन और तपस्या के प्रभाव से सब विषयात्मक भावों पर दृष्टि रखता हुआ शान्ति प्राप्त करने की इच्छा से इन्द्रियों का दमन करे। प्राणी अपने अज्ञान से ही सत्त्व, रज और तमोगुण में मोहित होकर संसार में चक्र के समान बार-बार घूमते रहते हैं। अतएव अज्ञान से होनेवाले दोषों को समझकर अज्ञान से उत्पन्न अहङ्कार को छोड़ दे। महाभूत, इन्द्रियाँ, सत्त्व आदि तीनों गुण, ईश्वर समेत तीनों लोक और कर्म, ये सब अहङ्कार में स्थित हैं। जैसे काल सब ऋतुओं के गुण प्रकट कर देता है वैसे ही अहङ्कार प्राणियों के कर्म उत्पन्न करता है। अन्धकार के सदृश मोहरूपी तमोगुण अज्ञान से पैदा होता है। सत्त्व आदि तीनों गुणों में ही प्राणियों के सुख-दुःख बँधे रहते हैं। इन तीनों गुणों से और जो गुण उत्पन्न होते हैं उनका वर्णन सुनो। प्रीति, असन्देह, धैर्य और स्मरण सत्त्वगुण से; काम, क्रोध, असावधानी, लोभ, मोह, भय और दुःख रजोगुण से तथा विषाद, शोक, मान, दर्प और अनार्यता ये तमोगुण से उत्पन्न होते हैं। शरीर में स्थित इन गुणों में से प्रत्येक की अधिकता और न्यूनता को मनुष्य हमेशा देखता रहे। १० २०

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह! मोक्ष का चाहनेवाला मनुष्य किन दोषों का मन से त्याग करे और किन दोषों को बुद्धि से शिथिल करे? कौन दोष बार-बार आते और कौन दोष मोह के वश दुर्बल से जान पड़ते हैं? विवेकी लोग, बुद्धि और हेतु के द्वारा, किन दोषों के बलाबल का विचार करते हैं? इन विषयों में मुझे सन्देह है, आप समाधान कीजिए।

भीष्म ने कहा—धर्मराज, विशुद्धचित्त मनुष्य सब दोषों को नष्ट करके मुक्त हो जाता है। जैसे लोहे की कुल्हाड़ी लोहे से बनी हुई ज़ञ्जीर को काटकर स्वयं भी टूट जाती है वैसे ही ध्यान से शुद्ध की हुई बुद्धि महात्माओं के, रजोगुण से उत्पन्न, स्वाभाविक दोषों को नष्ट करके शान्ति प्राप्त करती है। सत्त्व आदि तीनों गुण शरीर की प्राप्ति के बीज-स्वरूप हैं, किन्तु मन को जीत लेनेवाले मनुष्य का सत्त्वगुण ही ब्रह्म की प्राप्ति का एकमात्र उपाय है। इसलिए आत्मज्ञानी मनुष्य को रजोगुण और तमोगुण का त्याग कर देना चाहिए। मनुष्य का रजोगुण और तमोगुण हट जाने पर सत्त्व गुण बढ़ता और निर्मल हो जाता है। कोई-कोई तो चित्त-शुद्धि के कारण-स्वरूप मन्त्रयुक्त यज्ञ आदि कर्मों को अनावश्यक कहते हैं, किन्तु वास्तव में यज्ञ आदि कर्म

३० वैराग्य करानेवाले और शम आदि गुणों की रक्षा के कारण हैं। रजोगुण के प्रभाव से अधर्मयुक्त अर्थ और कामरूपी सब कर्मों के फल मिलते हैं। हिंसा करनेवाले, आलसी, निद्रा के वशीभूत, अविवेकी मनुष्य तमोगुण के प्रभाव से लोभ और क्रोधयुक्त कर्मों का फल भोगते हैं। श्रद्धावान्
३३ श्रीमान् मनुष्य सत्त्व गुण का अवलम्बन करके शुद्ध सात्त्विक भाव का आश्रय करते हैं।

दो सौ तेरह अध्याय

योग का वर्णन

भीष्म ने कहा—महाराज! रजोगुण के प्रभाव से मोह तथा तमोगुण के प्रभाव से क्रोध, लोभ, भय और दर्प उत्पन्न होते हैं। जो इनका नाश कर देता है उसका चित्त शुद्ध हो जाता है। शुद्धचित्त मनुष्य ही उस अविनाशी अव्यक्त सर्वव्यापी परमात्मा को जान सकता है। मनुष्य उसी परमात्मा की माया से रूप आदि बाह्य पदार्थों में आसक्त, ज्ञानभ्रष्ट, अविवेकी और क्रोधी हो जाता है। क्रोध से काम, लोभ और मोह पैदा होते हैं। उसके बाद मान (अपने को बड़ा समझना), दर्प (उच्छृङ्खलता) और अहङ्कार (दूसरे को तुच्छ समझना) उत्पन्न हो जाते हैं। अहङ्कार से कर्म, कर्म से स्नेह और स्नेह से शोक पैदा होता है। मनुष्य शुभ-अशुभ कर्मों को करता हुआ बार-बार जन्म लेता और मरता रहता है। वह तृष्णा के वशीभूत होने के कारण, उसकी पूर्ति के लिए, शुक्र-शोणित से उत्पन्न—मल-मूत्र से भरे—गर्भ में रहता है। स्त्रियाँ ही प्राणियों की उत्पत्ति का कारण हैं। जैसे प्रकृति पुरुष को बाँधे हुए है वैसे ही सन्तान की उत्पत्ति की क्षेत्रभूत स्त्री जाति भी प्राणियों को बाँधे हुए है। अतएव विवेकी मनुष्य उनके संसर्ग से बचा रहे। ये घोर-रूप स्त्रियाँ अविवेकी मनुष्यों को मोहित कर लेती हैं। इनका रूप रजोगुण में सूक्ष्म रूप से स्थित रहता है, वे साक्षात् इन्द्रियों के द्वारा बनी हैं, उन पर पुरुषों का अनुराग होने से जीवों की उत्पत्ति होती है। मनुष्य जैसे अपने शरीर में उत्पन्न कीड़ों को, अनात्मीय समझकर, शरीर से निकाल देता है वैसे ही अपने आत्मा और शरीर से उत्पन्न पुत्रों को भी अनात्मीय
१० समझता हुआ त्याग दे। शरीर के वीर्य-रूप स्नेह के अंश से पुत्र और शरीर के स्वेद-स्वरूप स्नेह से अथवा स्वभाव से या कर्मों से कीड़े पैदा होते हैं। अतएव विवेकी मनुष्य कीड़ों के समान पुत्रों की भी उपेक्षा कर देता है। सत्त्वगुण रजोगुण में स्थित रहता है, वह तमोगुण में स्थित है और तमोगुण अज्ञान है; ज्ञान में तमोगुण के स्थिर रहने से बुद्धि और अहङ्कार प्रकट होते हैं। वही अज्ञान (तमोगुण) प्राणियों की उत्पत्ति का बीज (कारण) है और अज्ञान का अधिष्ठान ज्ञान ही जीव कहलाता है। वह काल से युक्त कर्म के प्रभाव से सांसारिक कामों को करता है। जैसे जीव स्वप्नावस्था में मन को लेकर, देहवान् के समान, क्रीड़ा करता है वैसे ही वह कर्म से उत्पन्न अहङ्कार आदि गुणों के साथ माता के गर्भ में निवास करता है। वहाँ पूर्व-जन्म के कर्मों के

प्रभाव से वह जिस-जिस विषय का स्मरण करता है उन विषयों को ग्रहण करनेवाली इन्द्रियाँ, रागयुक्त मन के द्वारा, अहङ्कार से उत्पन्न हो जाती हैं। शब्द की इच्छा से कान, रूप की इच्छा से आँखें, गन्ध की इच्छा से नाक और स्पर्श की इच्छा से त्वक् इन्द्रिय उत्पन्न होती है। प्राण-अपान आदि पञ्चवायु उसकी देहयात्रा में सहायक होते हैं। इस प्रकार मनुष्य अपने पूर्वकृत कर्मों के प्रभाव से इन्द्रियों समेत शरीर धारण करता है। उसे आदि से अन्त तक शारीरिक और मानसिक दुःख भोगने पड़ते हैं। ये दुःख माता के गर्भ में मनुष्य के शरीर और इन्द्रियों के धारण करने से उत्पन्न होते और अभिमान के द्वारा बढ़ते हैं। शरीर छोड़ने पर भी दुःखों की कमी नहीं होती, अतएव दुःखों का नाश करना ही श्रेष्ठ है। दुःख का नाश होने पर मोक्ष मिलता है। इन्द्रियों की उत्पत्ति और विनाश रजोगुण से होता है। अतएव रजोगुण के नाश से इन्द्रियों का निरोध और इन्द्रियों का निरोध होने से दुःख का नाश होता है। तृष्णाहीन मनुष्यों की ज्ञानेन्द्रियाँ विषयों की उपस्थिति में भी उधर आकृष्ट नहीं होतीं। अतएव जो मनुष्य इन्द्रियों का दमन कर देता है उसे फिर जन्म नहीं लेना पड़ता। २१

दो सौ चौदह अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से ब्रह्मचर्य का वर्णन करते हुए योग का विवेचन करना

भीष्म ने कहा—हे धर्मराज, शास्त्र-रूपी नेत्रों से इन्द्रियों के जीतने का जो उपाय देखा गया है उसका वर्णन सुनो। इस उपाय को जान लेने से ज्ञान के द्वारा शान्ति आदि गुणों का अवलम्बन करने पर परम गति प्राप्त होती है। सब प्राणियों में मनुष्य, मनुष्यों में ब्राह्मण और ब्राह्मणों में मन्त्रज्ञ ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं। सब प्राणियों के आत्मभूत, वेद-शास्त्र के ज्ञाता, सर्वज्ञ ब्राह्मण लोग परमार्थ को भली भाँति जानते हैं। ज्ञान-हीन मनुष्य अन्धे-बहरे के समान हमेशा दुःख पाते रहते हैं; इसी से ब्रह्मवित् ज्ञानी महात्माओं को ही श्रेष्ठ समझना चाहिए। धार्मिक पुरुष शास्त्र के अनुसार यज्ञ आदि कर्म करते हैं किन्तु उन कर्मों के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती। धर्मात्मा पुरुषों ने वाणी देह और मन की पवित्रता, क्षमा, सत्य, धृति और स्मृति, इन सब सद्गुणों को धर्म का मूल बतलाया है। यज्ञ आदि कर्मों के करने से केवल ये सद्गुण ही प्राप्त होते हैं। ब्रह्मचर्य धर्म ब्रह्म-स्वरूप और सब धर्मों से श्रेष्ठ है। इस धर्म से मोक्ष मिलता है। प्राण, मन, बुद्धि और दस इन्द्रियों के साथ ब्रह्मचर्य का संयोग नहीं है। वह शब्द और स्पर्श से हीन है। मनुष्य उद्योग करने पर इस पापशून्य ब्रह्मस्वरूप ब्रह्मचर्य का ज्ञान प्राप्त कर सकता है। जो मनुष्य पूर्ण रूप से ब्रह्मचर्य धर्म का पालन करता है वह ब्रह्मलोक को जाता है, जो अधूरा पालन करता है वह सत्यलोक को जाता है और जो निकृष्ट श्रेणी का पालन करता है वह विद्वान् श्रेष्ठ ब्राह्मण का जन्म पाता है। १०

ब्रह्मचर्य बहुत कठिन है। अब उसका उपाय सुनो। ब्राह्मण लोग (काम आदि) रजोगुण के उत्पन्न होने और बढ़ने पर उसको रोकें। ब्रह्मचारी को स्त्रियों की बातें सुनना और उन्हें नङ्गी देखना उचित नहीं। यदि कभी नङ्गी स्त्री को देखने से किसी ब्रह्मचारी का मन चञ्चल हो जावे तो वह तीन दिन कृच्छ्र व्रत करे और यदि बहुत ही विकल हो तो पानी में खड़ा रहे। यदि स्वप्न में वीर्यपात हो जावे तो पानी में गोता लगाये रहकर तीन बार अघमर्षण मन्त्र का जप करे। बुद्धिमान् मनुष्य ज्ञानयुक्त मन के द्वारा रजोमय आन्तरिक पापों को हमेशा जलाता रहे। मल रोकने की नाड़ी के समान देह, आत्मा का, दृढ़ बन्धन-स्वरूप है। सब रस नाड़ियों के द्वारा मनुष्यों के वात, पित्त, कफ, रक्त, त्वचा, मांस, स्नायु, मज्जा और मेद को बढ़ाते हैं। मनुष्यों के शरीर में वात आदि को वहन करनेवाली दस नाड़ियाँ हैं। उनका सञ्चालन पाँच इन्द्रियों के गुणों द्वारा होता है। उक्त दस नाड़ियों की शाखा-रूप हज़ारों सूक्ष्म नाड़ियाँ शरीर भर में फैली हुई हैं। जैसे सब नदियाँ यथासमय समुद्र को बढ़ाती रहती हैं वैसे ही ये सब नाड़ियाँ शरीर की वृद्धि करती हैं। मनुष्यों के हृदय में मनोवहा नाम की एक नाड़ी है। वह नाड़ी मनोविकार से उत्तेजित वीर्य को, सारे शरीर से खींचकर, लिङ्ग की ओर दौड़ा देती है। सारे शरीर में व्याप्त रहनेवाली
२० दूसरी नाड़ियाँ तेज के गुण को लेकर आँखों में देखने की शक्ति पहुँचाती हैं। जैसे मथानी से मथने पर दूध से घी निकलता है वैसे ही स्त्री को देखने, स्पर्श करने और इच्छा करने से वीर्य उत्तेजित हो उठता है। स्वप्नावस्था में, स्त्री-संसर्ग के अभाव में भी, जब मन में इच्छा और आसक्ति उत्पन्न होती है तब मनोवहा नाड़ी वीर्य को छोड़ देती है। वीर्य की उत्पत्ति का हाल महर्षि अत्रि विशेष रूप से जानते हैं। अन्न का रस, मनोवहा नाड़ी और इच्छा, ये तीन वीर्य के बीज-स्वरूप हैं। इन्द्र वीर्य के देवता हैं, इसी से उसका नाम इन्द्रिय है। जो लोग वीर्य की गति को ही प्राणियों के वर्णसङ्कर होने का कारण समझते हैं वे विरागी और इच्छाहीन होकर मोक्ष पद प्राप्त कर सकते हैं। योगी लोग बाह्य प्रवृत्ति को त्यागकर, योग के बल से गुणों की समता करके, अन्तकाल में सत्यलोक को पहुँचानेवाली सुषुम्ना नाड़ी के मार्ग से प्राण वायु को निकालकर परम गति प्राप्त करते हैं। मनुष्य का मन सध जाने पर ज्ञान का उदय होता है। ज्ञान हो जाने पर सम्पूर्ण विषय स्वप्न से हो जाते हैं और मन भी प्रकाशमान्, वासनाहीन, मन्त्रसिद्ध और शक्तिमान् हो जाता है। अतएव मनुष्य मन को वश में करने के लिए, रजोगुण और तमोगुण का त्याग करके, निवृत्ति-रूप कर्म करता हुआ परमगति को प्राप्त करे। युवावस्था में उपार्जित ज्ञान वृद्धावस्था में, बुढ़ापे के कारण, दुर्बल हो जाता है। किन्तु विवेकी मनुष्य पुण्य के प्रताप से इच्छाओं को सङ्कुचित रखते हैं। जो मनुष्य इन्द्रियों को, दुर्गम मार्ग के समान, जीतकर
२९ दोषों का त्याग कर देता है वही मोक्ष-रूपी अमृत पीने में समर्थ होता है।

दो सौ पन्द्रह अध्याय

योग का वर्णन

भीष्म ने कहा—हे धर्मराज, मनुष्य दुर्निवार इन्द्रियों के सुख में आसक्त रहने के कारण दुःख पाता रहता है। जो महात्मा पुरुष इन सुखों में आसक्त नहीं होता वही परम गति पा सकता है। विवेकी मनुष्य संसार को जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि और मानसिक दुःखों से भरा हुआ समझकर मोक्ष पद पाने का उद्योग करे और मन वाणी तथा शरीर से पवित्र, अहङ्कार-शून्य, शान्त तथा ज्ञानवान् होकर बेधड़क भिक्षावृत्ति करता हुआ विचरता रहे। प्राणियों पर मोह-ममता रखने से मन का बन्धन हो जाता है। इसलिए योगियों को किसी पर मोह-ममता न रखनी चाहिए। अच्छे काम करने से चाहे दुःख भी उठाना पड़े तो भी हमेशा अच्छे ही काम करे। जो मनुष्य अहिंसा, सत्य, दया और क्षमा का व्यवहार करता तथा सावधान रहता है वही यथार्थ सुखी है। इसलिए सब जीवों पर समान दृष्टि रखनी चाहिए। दूसरों का बुरा चेतना, ईर्ष्या करना, स्त्री-पुत्र आदि के न होने या उनके नष्ट हो जाने पर चिन्ता करना उचित नहीं। ज्ञान प्राप्त करने में मन को दृढ़ता से लगा दे। वेदान्त-वचनों का अनुशीलन करने से ज्ञान उत्पन्न होता है। जो मनुष्य सत्य बोलने और सूक्ष्म धर्म के जानने की इच्छा रखता हो उसे हिंसा, निन्दा, दुष्टता, कठोरता और क्रूरता को छोड़कर मितभाषी होना और सत्य बोलना चाहिए। ११ संसार के सब काम वचनों से ही होते हैं, इसलिए सत्य बोलना ही अच्छा है। संसार से जिसको वैराग्य हो जाता है वह अपने हिंसा आदि तामसिक कामों को अपने मुँह से प्रकट कर देता है। जो रजोगुण के प्रभाव से सांसारिक कामों में फँसा रहता है वह घोर दुःख भोगता हुआ नरक में गिरता है। जैसे डाकू चोरी का माल ढोते हैं वैसे ही अविवेकी मनुष्य संसार का भार लादे रहते हैं और जैसे चोर पुलिस के डर से चोरी का माल छोड़कर भागते हैं वैसे ही मनुष्य संसार के डर से डरकर सात्त्विक और राजस सब कामों को छोड़कर संसार के दुःखों से छूट जाते हैं। जो निःस्पृह, सब बन्धनों से मुक्त, निर्जन स्थान में रहनेवाले, मिताहारी और जितेन्द्रिय हैं; जिन्होंने ज्ञान के प्रभाव से सब दुःखों का नाश करके मन को जीतकर योग में लगा दिया है वे निस्सन्देह परमगति प्राप्त करते हैं। धैर्यवान्, बुद्धिमान् मनुष्य पहले अपनी बुद्धि को स्थिर करे; फिर बुद्धि के बल से मन को और मन के द्वारा शब्द आदि विषयों को जीते। मन को वश में कर लेने से ब्रह्म में लीन हो जाता है। इन्द्रियों के साथ मन की एकता हो जाने पर ब्रह्मज्ञान उत्पन्न होता है, तब मन ब्रह्म-भाव को प्राप्त हो जाता है। योगी लोग अपने योग-महत्त्व २० को प्रकट न करें। वे योग के प्रभाव से इन्द्रियों का निग्रह ही करते रहें। योगियों को शुद्ध आचरण से रहकर क्रम से भीख में मिले हुए चावलों के कण, पके हुए उड़द, शाक, भाप में पकाया हुआ जौ का आटा, सत्तू और फल-मूल आदि खाना चाहिए। देश-काल की गति को

देखकर भोजन का नियम बना ले। योग का आरम्भ करके फिर उसमें विघ्न न पड़ने दे। अग्नि के समान उसे क्रमशः बढ़ाता रहे। ऐसा करने से, सूर्य की तरह, ब्रह्मज्ञान का प्रकाश हो जाता है। ज्ञान के साथ ही रहनेवाला अज्ञान जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तीनों अवस्थाओं में मनुष्य को घेरे रहता है और बुद्धि-वृत्ति का अनुगामी ज्ञान भी अज्ञान से दब जाता है। मनुष्य जब तक तीनों अवस्थाओं से हीन परमात्मा को इन अवस्थाओं से युक्त समझता है तब तक उसे कुछ भी ज्ञान नहीं हो सकता और जब उसकी भिन्नता और अभिन्नता को अच्छी तरह समझ जाता है तब उसकी सब इच्छाएँ नष्ट हो जाती हैं और वह जरा-मृत्यु को जीतकर नित्य परमब्रह्म २७ को प्राप्त करने का अधिकारी होता है।

दो सौ सोलह अध्याय

योग का वर्णन

भीष्म ने कहा—धर्मराज, जो मनुष्य ब्रह्मचर्य को निर्दोष करने का इरादा करे उसे स्वप्न के दोषों पर ध्यान देकर निद्रा का त्याग कर देना चाहिए। सोने में मनुष्यों को रजोगुण और तमोगुण घेर लेते हैं और निद्रा का त्याग कर देने से कामनाएँ नहीं रह जातीं, इससे ऐसा प्रतीत होता है मानों उसे दूसरी देह मिल गई है। ज्ञान का अभ्यास और अनुसन्धान करते रहने से मनुष्यों को जागरण करने का अभ्यास होता है और ज्ञान की प्राप्ति हो जाने पर मनुष्य सदा जागरित रहता है। स्वप्न में देखे हुए इन्द्रियों के कर्मों की तरह मनुष्य अपने को विषया-सक्त सा समझे। स्वप्न सत्य हैं या असत्य? योगेश्वर हरि ने कहा है कि स्वप्न सङ्कल्पमात्र हैं। महर्षियों ने भी इसी की पुष्टि की है। इन्द्रियों के थक जाने पर सपना देख पड़ता है; स्वप्न में भी मन सजग रहता है। काम-काज में उलझे हुए मनुष्यों के मनोरथ के समान स्वप्न सङ्कल्पमात्र है। किन्तु निद्रा की अवस्था में, इन्द्रियों के चलायमान न होने से, स्वप्न सत्य के समान समझ पड़ता है। विषयासक्त मनुष्य को, पूर्व-जन्म के संस्कार से, स्वप्न आदि का ऐश्वर्य मिलता है। परमात्मा ही साक्षी रूप से उन ऐश्वर्यों का प्रकाश करता है। पूर्व-जन्म के कर्मों से मनुष्य के शरीर में सत्त्व, रज और तमोगुण—सुख-दुःख का भोग कराने के लिए—पैदा हो जाते हैं। मन पर जब जैसे संस्कारों का प्रभाव पड़ता है तब सूक्ष्म भूत, प्राणी को, स्त्री आदि १० भिन्न-भिन्न आकार दिखलाते रहते हैं। अज्ञान के कारण मनुष्य—रजोगुण और तमोगुण के प्रभाव से—वात, पित्त और कफ प्रधान जिस शरीर को देखता है उसे, पूर्व-वासना की प्रबलता से, देखने की उपेक्षा करना बहुत कठिन है। जाग्रत् अवस्था में इन्द्रियों के सजग रहने से मन में जो सङ्कल्प उठते हैं उन सङ्कल्पों को मन स्वप्न में, इन्द्रियों के सचेत न रहने से, देखता है। आत्मा के प्रभाव से मन सब भूतों में व्याप्त रहता है; आत्मज्ञान प्राप्त करना परम आवश्यक है; क्योंकि

आत्मज्ञान होने पर सर्वज्ञता प्राप्त हो जाती है। सुषुप्ति अवस्था में मन, स्वप्न देखने के द्वारभूत, स्थूल शरीर में स्थिर रहकर आत्मा से जा मिलता है और अहङ्कार आदि भी मन में ही लीन हो जाते हैं। योगी लोग आत्मा को प्रसन्न करने के लिए ज्ञान-वैराग्य आदि ईश्वरीय गुण प्राप्त करते हैं। जिस योगी का मन विषयों में आसक्त नहीं होता वही इस ऐश्वर्य को पा सकता है और जिसका मन अज्ञान को नष्ट कर सकता है वही प्रकाश-स्वरूप परम पवित्र ब्रह्मभाव को प्राप्त करता है। देवता लोग अग्निहोत्र आदि करते हैं और दानव लोग उन कामों में विघ्न डालते हैं, इसलिए ब्रह्म की प्राप्ति न तो देवताओं को होती है और न दानवों को ही। देवता लोग सत्त्वगुण का और दानव लोग रजोगुण तथा तमोगुण का अवलम्बन करते हैं; किन्तु ब्रह्म तो इन सब गुणों से परे ज्ञान-स्वरूप है। जो मनुष्य उस ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त कर लेता है वही परम गति पा सकता है। ब्रह्म अविनाशी, अमृत और ज्योति-स्वरूप है। तत्त्वदर्शी लोग ब्रह्म को सगुण तथा निर्गुण बतलाते हैं और विषयों से इन्द्रियों को हटाकर योग के बल से उस अव्यक्त ब्रह्म को अवगत करते हैं। २०

दो सौ सत्रह अध्याय

योग का वर्णन

भीष्म कहते हैं—हे धर्मराज ! जो मनुष्य स्वप्न, सुषुप्ति तथा सगुण, निर्गुण ब्रह्म को और नारायण के कहे हुए व्यक्त-अव्यक्त स्वरूप को नहीं जानता उसे ब्रह्म का ज्ञान नहीं हो सकता। वेद का वचन है कि आत्मा का व्यक्त भाव मृत्यु का मुख और अव्यक्त भाव अमृत पद है। फल की प्रवृत्ति रखकर जो धर्म किया जाता है उससे तीनों लोकों का आधिपत्य तक (कर्मफल) मिलता है और फलेच्छा से निवृत्त होकर जो कर्म किया जाता है उस कर्म के फल से अव्यक्त नित्य परब्रह्म की प्राप्ति होती है। प्रजापति ने कहा है कि प्रवृत्ति ही धर्म का स्वरूप है; किन्तु प्रवृत्ति-धर्म के अनुसार कर्म करने से संसार में फिर जन्म लेना पड़ता है और निवृत्ति-धर्म का अवलम्बन करने से मोक्षपद प्राप्त होता है। शुभ-अशुभ कर्म के जानकार, निवृत्तिधर्म के उपासक आत्मज्ञानी मुनियों को ही परमगति मिलती है। अतएव सबसे पहले प्रकृति और पुरुष का ज्ञान प्राप्त करे, उसके बाद जो प्रकृति और पुरुष से महान् विचक्षण व्यक्ति है उस क्लेश आदि से शून्य परमात्मा का साक्षात्कार करे। प्रकृति और पुरुष दोनों ही अनादि, अनन्त, अव्यक्त, नित्य, निश्चल और महत् से भी महत्तर हैं। उन दोनों के गुणों में इतना ही अन्तर है कि प्रकृति तीनों गुणों का अवलम्बन करके संसार की सृष्टि करती है; किन्तु पुरुष उन गुणों से अलग रहता है। वह प्रवृत्ति और महत् आदि पदार्थों का द्रष्टा है, दृश्य नहीं; इसी प्रकार ईश्वर और पुरुष भी तीनों गुणों से रहित तथा नेत्रों से अग्राह्य हैं। ईश्वर और पुरुष का भेद औपाधिक

१० मात्र है। प्रकृति और पुरुष के संयोग से जीव की उत्पत्ति होती है। जीव कर्ता है। वह इन्द्रिय आदि के द्वारा जिन कर्मों को करता है उन कर्मों का कर्ता कहलाता है। आत्मज्ञान होने के पहले जीव अपने को ब्रह्म से अलग समझता है, इसी से ब्रह्म की खोज करता है; किन्तु आत्मज्ञान होने पर अपने को ही ब्रह्म समझ जाता है। जैसे पगड़ी बाँधनेवाला मनुष्य पगड़ी से अलग है वैसे ही मनुष्य सत्त्व-रज-तमोगुण से युक्त रहने पर भी उन सबसे भिन्न है। प्रकृति, पुरुष और जीव का साधर्म्य तथा वैधर्म्य मैंने विस्तार से कहा। इसे ठीक-ठीक समझ जाने से सिद्धान्त के समय भूल नहीं होती। जो मनुष्य ब्रह्मज्ञान प्राप्त करना चाहता हो उसे शरीर, मन और वाणी से कठोर नियमों का पालन करते हुए निष्काम योग करना चाहिए। चैतन्य प्रकाशरूपी आन्तरिक तप (योग) के द्वारा मनुष्य तीनों लोकों में व्याप्त हो सकता है। तप के प्रभाव से ही सूर्य और चन्द्रमा आकाश-मण्डल में प्रकाशित होते हैं। योग का फल ज्ञान है। रजोगुण और तमोगुण का नाश करनेवाला कर्म ही योग है। ब्रह्मचर्य और अहिंसा शारीरिक तप तथा वाणी और मन का संयम करना मानसिक तप है। नियम से रहनेवाले द्विजातियों का अन्न लेना ही श्रेष्ठ है। नियमपूर्वक उस अन्न के खाने से राजस पाप नष्ट हो जाते हैं और विषय-भोग करने की इच्छा शिथिल हो जाती है। योगी धन को न लेकर केवल शरीर की रक्षा के लिए अन्न ही लें। इस प्रकार योगयुक्त मन के द्वारा क्रमशः जो आत्मज्ञान प्राप्त होता है उसे यदि योगी शान्तचित्त होकर अभ्यास द्वारा बढ़ाता जाय तो अन्त में

२० मुक्त हो जायगा। बाह्य इन्द्रियों की प्रवृत्ति को छोड़कर मनुष्य योग के बल से स्थूल शरीर का त्याग करके सूक्ष्म शरीर धारण करता है और स्थूल तथा सूक्ष्म शरीर के भोग की इच्छा छोड़कर प्रकृति में लीन हो जाता है। जो मनुष्य स्थूल, सूक्ष्म और कारण, इन तीनों शरीरों से मुक्त हो जाता है वह शीघ्र मोक्षपद पा जाता है। अविद्या के प्रभाव से प्राणियों की उत्पत्ति और मृत्यु होती है। ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाने पर फिर धर्म-अधर्म से कोई प्रयोजन नहीं रह जाता। जो प्रकृति आदि को आत्मा समझता है उसकी बुद्धि महत् आदि पदार्थों के विनाश और उदय का विचार करने लगती है। ऐसे लोगों के लिए मोक्ष की प्राप्ति बहुत दूर हो जाती है। योगी लोग केवल आसन की दृढ़ता से शरीर धारण करते हैं। जो लोग विवेक द्वारा चित्त की वृत्ति को विषयों से हटा लेते हैं अर्थात् जिनकी इन्द्रियाँ विषयों से निवृत्त हो जाती हैं वे इन्द्रियों को देह से सूक्ष्म समझकर भेद-बुद्धि हटा देते हैं। उनमें कोई-कोई तो शास्त्र के अनुसार धीरे-धीरे भेद-बुद्धि को त्यागकर अन्त को विवेक-बल से परम पद प्राप्त करते हैं और कोई आचार्य के उपदेश के अनुसार चलकर, योग के द्वारा शुद्धबुद्धि होकर, अव्यक्त से भी श्रेष्ठ परम-पुरुष को प्राप्त करते हैं। कोई तो सगुण ब्रह्म की उपासना करते हैं और कोई निर्गुण ब्रह्म की। कोई तप के प्रभाव से निष्पाप होकर ब्रह्म को प्राप्त करते हैं। उन सभी को

मोक्षपद मिलता है। शास्त्ररूपी नेत्रों से सगुण ब्रह्म के सूक्ष्म भेद देखे जा सकते हैं। स्थूल देह का अभिमान न करनेवाले, सांसारिक बन्धनों से मुक्त, योगी लोग ईश्वर से भिन्न नहीं हैं। विद्या के प्रभाव से मनुष्य पहले मर्त्यलोक से छूट जाता है, उसके बाद रजोगुण से हीन और ब्रह्मभूत होकर मोक्षपद पाता है। वेद के जानकार पण्डितों ने इस प्रकार ब्रह्म-प्राप्ति-विषयक धर्म का वर्णन किया है। ३०

जो इस धर्म की उपासना करते हैं वे श्रेष्ठ गति पाते हैं। शास्त्र के ज्ञान से जो राग आदि का त्याग कर देते हैं वे भी उत्तम गति पा सकते हैं। जो ज्ञानवान् मनुष्य बन्धनों से छूटकर, शुद्ध भाव से, जन्म-मरण से रहित अव्यक्त भगवान् विष्णु की उपासना करते हैं वे आत्मज्ञान प्राप्त कर सकते हैं और अन्त को अक्षय परमपद पाते हैं। भ्रान्त मनुष्य संसार को सत्य समझता है, किन्तु अभ्रान्त (आत्मज्ञानी) लोग इसे मिथ्या जानते हैं। यह संसार तृष्णा के वशीभूत रहकर चक्र के समान घूमता रहता है। जैसे कमल की नाल के सूत उसके भीतर रहते हैं वैसे ही तृष्णा मनुष्यों के शरीर में स्थित रहती है। दर्ज़ी जैसे कपड़े को सूई-तागे से टाँक देता है वैसे ही यह संसार तृष्णा से ओत-प्रोत है। कार्य, कारण और सनातन पुरुष का ज्ञान होने पर तृष्णा से छुटकारा होता है और मोक्षपद मिलता है। भगवान् नारायण ने प्राणियों पर दया करके मोक्ष का यह उपाय और संसार की गति बतला दी है। ३८

दो सौ अठारह अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से महर्षि पञ्चशिख और मिथिला-नरेश का संवाद कहना

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, मोक्ष-धर्म के अभिज्ञ मिथिला के राजा ने किस उपाय से मानवीय भोगों की इच्छाओं का त्याग करके मोक्ष पद प्राप्त किया है?

भीष्म कहते हैं—हे धर्मराज, राजा जनदेव ने जिस उपाय से मोक्षपद पाया है उसका वर्णन सुनो। मिथिला के महाराज जनदेव हमेशा ब्रह्म की प्राप्ति का उपाय सोचते रहते थे। एक सौ आचार्य उनके यहाँ रहते थे और उन्हें आश्रमों के धर्म का उपदेश दिया करते थे; किन्तु वे वेद-पाठ में आसक्त रहते थे, इससे जन्म-मरण के उपदेश से सन्तुष्ट नहीं होते थे।

एक बार कपिला के पुत्र पञ्चशिख नाम के एक महर्षि पर्यटन करते हुए मिथिला में आये। ये महर्षि संन्यास-धर्म के यथार्थ मर्मज्ञ, निर्द्वन्द्व, निःशङ्क, ऋषियों में अद्वितीय, इच्छाहीन और सदा मनुष्यों की भलाई चाहनेवाले थे। इनको देखने से जान पड़ता था कि सांख्यशास्त्र के प्रवर्तक महर्षि कपिल स्वयं अपना नाम पञ्चशिख रखकर लोगों को विस्मित करते हुए यहाँ आये हैं। ये महात्मा आसुरि के शिष्य और दीर्घजीवी थे। इन्होंने हज़ार वर्ष तक मानस यज्ञ किया था। १०

महर्षि पञ्चशिख जिस तरह कपिला के पुत्र हुए, वह वृत्तान्त मार्कण्डेयजी ने मुझसे कहा था, उसे सुनो। एक बार कपिल के मत को माननेवाले बहुत से महर्षि एक स्थान पर बैठे थे। उसी समय निःशङ्क, अन्नमय आदि पञ्च कोषों के अभिज्ञ, ब्रह्मपरायण, शम आदि पाँचों गुणों से युक्त महर्षि पञ्चशिख ने वहाँ आकर अनादि अनन्त परमार्थ के विषयों को महर्षियों से पूछा। उन महर्षियों में महात्मा आसुरि भी बैठे हुए थे। उन्होंने पञ्चशिख को उपदेश देना आरम्भ किया। महात्मा आसुरि ने, आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिए, कपिलदेव के शिष्य होकर शरीर और शरीरी के विषय को भली भाँति अवगत किया था। वहाँ कपिला नाम की एक ब्राह्मणी थी। उसने प्रिय शिष्य पञ्चशिख को दूध पिलाया था, इसी से वे ब्रह्मनिष्ठ हुए और कपिला के पुत्र कहलाये।

कपिला के पुत्र होने का पञ्चशिख का यही वृत्तान्त है। अब राजा जनदेव का वृत्तान्त सुनो। धर्मज्ञ पञ्चशिख ने मिथिलानरेश को सब आचार्यों पर समान भाव से अनुरक्त देखकर, अपने ज्ञान के प्रभाव से, आचार्यों को मोहित कर दिया। इससे उक्त महाराज सब आचार्यों को त्यागकर महर्षि पञ्चशिख के अनुगामी हो गये। तब महर्षि ने विनीत और समझदार २० मिथिलापति को सांख्यमत के अनुसार मोक्ष-धर्म का उपदेश देना आरम्भ किया। उन्होंने पहले जन्म का दुःख, फिर कर्म का दुःख, उसके बाद ब्रह्मलोक की प्राप्ति-पर्यन्त सब दुःखों को बतलाया। अन्त को उन्होंने उस अविश्वासी विनाशी क्षणभङ्गुर मोह का वर्णन किया जिसके प्रभाव से मनुष्य धर्म और कर्म के फल की इच्छा करता है।

नास्तिकों का कहना है कि आत्मा का विनाश प्रत्यक्ष देखने पर भी जो लोग वेद का प्रमाण देकर शरीर नष्ट होने के बाद आत्मा का अस्तित्व मानते हैं उनका मत निर्मूल है और जो मोह के वश मृत्यु को आत्मा के स्वरूप का अभाव तथा दुःख, बुढ़ापा या रोग आदि के कारण इन्द्रियों के नाश को आत्मा का आंशिक नाश बतलाते हैं उनका मत भी ठीक नहीं है। यदि वेद इस तरह प्रत्यक्ष के विरुद्ध मनुष्यों में व्यवहृत होता है तो राजा को अजर और अमर होने का आशीर्वाद देने के समान वह झूठा है। यह सत्य है या झूठ, ऐसा सन्देह होने पर यदि कोई निश्चय न किया जा सके तो उसका निर्णय करना बिलकुल असम्भव है। अनुमान और आगम (शास्त्र) का मूल प्रत्यक्ष है। प्रत्यक्ष प्रमाण मिल जाने पर आगम की आवश्यकता नहीं रह जाती और प्रत्यक्ष के अभाव में अनुमान या शास्त्र के द्वारा कुछ प्रमाणित नहीं हो सकता। केवल अनुमान का अवलम्बन करके विचार करना व्यर्थ है। सारांश यह कि शरीर से जीवात्मा अलग नहीं है, यही नास्तिकों का मत है। जिस तरह बीज में पत्ते, फूल, फल, जड़, छाल और रूप-रस आदि उत्पन्न करनेवाली शक्ति मौजूद रहती है; गाय के खाये हुए भूसे आदि से जैसे दूध और घी पैदा हो जाता है; दो-तीन दिन किसी अन्न को पानी में भिगो रखने से

जैसे उसमें मादकता पैदा हो जाती है उसी तरह वीर्य से बुद्धि, अहङ्कार, चित्त, शरीर और गुण आदि उत्पन्न हो जाते हैं। जैसे दो लकड़ियों के रगड़ने से आग पैदा हो जाती है, जैसे सूर्य की किरणें पड़ने से सूर्यकान्त मणि आग पैदा कर देती है और जैसे आग में जलती हुई वस्तुएँ पानी को सोख लेती हैं वैसे ही जड़ पदार्थ आत्मा के साथ मन का संयोग होने पर स्मरण-ज्ञान उत्पन्न होता है। जैसे चुम्बक पत्थर लोहे को खींचता है वैसे ही ज्ञान के प्रभाव से इन्द्रियाँ चलायमान होती हैं। इसलिए आत्मा शरीर से भिन्न पदार्थ नहीं है।

यह नास्तिकों का मत ठीक नहीं है; क्योंकि मृत्यु होने पर शरीर से चेतनता निकलती है, इस कारण देह के अतिरिक्त आत्मा का अस्तित्व मानना चाहिए। यदि देह चेतन होती तो मुर्दे में भी चेतनता बनी रहती; किन्तु यह बात नहीं है। इससे आत्मा का अस्तित्व शरीर से अलग सिद्ध है। नास्तिक लोग परलोक को जानेवाले सूक्ष्म शरीर को भी नहीं मानते; किन्तु वे लोग शीतज्वर को हटाने के लिए जिन देवताओं की प्रार्थना करते हैं उन देवताओं को तो अवश्य ही सूक्ष्म मानते होंगे। यदि उनके देवता पञ्चभूतमय स्थूल शरीरवाले होते तो वे घड़े आदि की तरह अवश्य दिखाई देते। उनके न दीखने पर भी जैसे नास्तिक उक्त देवताओं का अस्तित्व मानते हैं वैसे ही अगोचर आत्मा का अस्तित्व क्यों न माना जाय? इसके सिवा यदि आत्मा शरीर से भिन्न पदार्थ न होता तो शरीर का विनाश होने पर उसके पाप-पुण्य आदि कर्म भी निष्फल हो जाते। देह से भिन्न आत्मा को न माननेवाले नास्तिकों के ३० मत में जिन जड़ पदार्थों को आत्मा की उत्पत्ति का कारण बतलाया गया है वे सजीव पदार्थ के कारण नहीं हो सकते; क्योंकि यदि मूर्त (क्रियाशील) पदार्थों से अमूर्त (निष्क्रिय) की उत्पत्ति हो सकती तो पृथिवी आदि चार भूतों से आकाश की भी उत्पत्ति होती। अतएव मूर्त पदार्थ कभी अमूर्त के समान नहीं हो सकते।

बौद्धों का कहना है कि अविद्या, कर्मों की इच्छा, लोभ, मोह और अन्यान्य दोष ही पुनर्जन्म के कारण हैं। अविद्या-रूपी खेत में पूर्वकृत कर्म-रूपी बीज के डालने से और तृष्णा-रूपी जल से सींचने पर मनुष्यों का पुनर्जन्म होता है। अविद्या आदि दोष शरीर में छिपे रहते हैं। शरीर के नष्ट होने पर वे सब फिर दूसरे शरीर में उत्पन्न हो जाते हैं। यदि अविद्या आदि दोषों को ज्ञान के प्रभाव से नष्ट कर दिया जाय तो देह का नाश होने पर फिर जन्म न लेना पड़े। इसी का नाम मोक्ष है।

यह मत भी ठीक नहीं। बौद्ध लोग क्षणिक विज्ञान को आत्मा मानते हैं, इसलिए उनके मत में मोक्ष का मिलना सम्भव नहीं है। देखो, विज्ञान कई प्रकार का है। मोक्ष चाहनेवालों को बाह्य ज्ञान होता है और मोक्ष के समय आ-लय विज्ञान होता है। अतएव यदि विज्ञान को आत्मा माना जावे तो मानना पड़ेगा कि बाह्य ज्ञान के मोक्ष की इच्छा से आ-लय विज्ञान की

मुक्ति होगी। किन्तु यह बिलकुल असङ्गत है। एक मनुष्य कर्म करे और उन कर्मों का फल दूसरा भोगे, यह सर्वथा विरुद्ध है। जब एक मनुष्य दान, विद्या का उपार्जन और तप करे और उन कर्मों का फल कोई दूसरा ही भोगे, तब तो कर्मों का करना ही व्यर्थ है। यदि वे लोग कहें कि प्रत्येक मनुष्य का ज्ञान अलग-अलग है, मनुष्यों के एक ज्ञान का विनाश होने पर दूसरे ज्ञान का और दूसरे के नष्ट होने पर तीसरे ज्ञान का उदय हो जाता है, इस प्रकार मनुष्यों का ज्ञान लगातार उत्पन्न होता रहता है; तो उन लोगों से यह पूछना चाहिए कि एक ज्ञान के नष्ट होने पर दूसरे ज्ञान के उदय होने का कारण क्या है। ज्ञान क्षणिक है, इसलिए पूर्व-क्षण में उत्पन्न हुआ ज्ञान उसका कारण नहीं हो सकता। यदि वे लोग कहें कि पूर्व-ज्ञान का नष्ट होना ही इस ज्ञान का कारण है, तो यह युक्ति के विरुद्ध है। क्योंकि तब तो किसी का शरीर मूसल से कूट डालने पर उससे दूसरा शरीर उत्पन्न हो जाना चाहिए। विशेषकर जैसे ज्ञान की अनन्त धारा से ऋतु, वर्ष, युग, सरदी, गरमी, प्रिय और अप्रिय क्रमशः बदलते रहते हैं वैसे ही मोक्ष भी बार-बार मिलता और छूटता रहेगा। कोई-कोई विज्ञान की धारा को आत्मा का धर्म कहते हैं, सो भी असङ्गत है। क्योंकि जैसे घर का सब सामान
४० नष्ट हो जाने पर घर का नाश हो जाता है और इन्द्रिय, मन, वायु, रक्त, मांस और हड्डी, ये सब जैसे नष्ट होकर स्वभाव में लीन हो जाते हैं वैसे ही आत्मा भी विज्ञान का नाश होने पर नष्ट हो जायगा। आत्मा को बुद्धि आदि का आश्रय और निर्लिप्त नहीं कहा जा सकेगा। यदि आत्मा कर्ता और भोक्ता न होता तो दान आदि कर्मों की कोई आवश्यकता न थी और आत्मा को सुख देनेवाले वैदिक तथा लौकिक सब कर्मों का लोप हो जाता।

महाराज, अनेक लोगों के मन में इस प्रकार के तर्क-वितर्क उत्पन्न होते रहते हैं। जो आत्मा को शरीर से अतिरिक्त नहीं मानते उनका मत सबसे श्रेष्ठ नहीं माना जा सकता। कोई-कोई मनुष्य इस प्रकार के विचार में प्रवृत्त होकर किसी एक विषय को सोचते हैं। उनकी बुद्धि उसी में प्रविष्ट रहकर क्रमशः लीन हो जाती है। सभी मनुष्य इस प्रकार के अर्थ और अनर्थ के वशीभूत रहते हैं। किन्तु जैसे महावत हाथी को चलाता है वैसे ही केवल वेद ही मनुष्यों को मार्ग बतलाते हैं। जो मनुष्य शरीर को अनित्य और बन्धु-बान्धव, स्त्री आदि को व्यर्थ समझकर उन सबका त्याग कर देता है वह शरीर को छोड़कर फिर जन्म नहीं लेता। यह शरीर नश्वर है—इससे कोई लाभ नहीं होता। जो मनुष्य शरीर को पृथ्वी, आकाश, जल, अग्नि और वायु से बना हुआ समझता है वह क्या कभी
४९ इसकी रक्षा के लिए यत्न करेगा?

दो सौ उन्नीस अध्याय

पञ्चशिख और जनदेव का संवाद

भीष्म कहते हैं कि धर्मराज, महर्षि पञ्चशिख के वचनों को सुनकर मिथिला-नरेश ने उनसे प्राणियों के मरने पर संसार का और मोक्ष का हाल पूछा—महर्षि, यदि मोक्ष प्राप्त होने पर विशेष ज्ञान नहीं होता तो ज्ञान और अज्ञान का विशेष फल क्या है? जब शरीर नष्ट होने पर संयम-नियम आदि सबका नाश हो जाता है तब मनुष्यों की प्रमत्तता और अप्रमत्तता से क्या हानि-लाभ है? यदि मोक्षदशा में विषयों के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रहता या रहता है तो चिरस्थायी नहीं होता तो किस फल के लिए लोग मोक्ष पाने की इच्छा करते हैं?

ये बातें सुनकर महात्मा पञ्चशिख ने उन्हें, अज्ञान से घिरा हुआ और आतुर के समान, भ्रान्त समझकर समझाते हुए कहा—महाराज! शरीर, इन्द्रिय, मन और बुद्धि आदि का नाश हो जाना कुछ मोक्ष नहीं है और इन सबके रहने पर भी मोक्ष मिलने की सम्भावना नहीं है। किन्तु ज्ञान के प्रभाव से बुद्धि, मन आदि को जीत लेने पर अविद्या को नाश करनेवाले आनन्द-स्वरूप की जो प्राप्ति हो जाती है वही असली मोक्ष है। शरीर, इन्द्रिय और मन, ये एक-दूसरे का आश्रय करके काम करते हैं। उनमें से एक का भी नाश होने से सब के सब नष्ट हो जाते हैं। जल, आकाश, वायु, अग्नि और पृथ्वी, ये पाँच तत्त्व मनुष्यों के शरीर में रहते और निकल जाते हैं। सारांश यह कि मनुष्य का शरीर आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी का संग्रह-मात्र है। मनुष्य के शरीर में ज्ञान, जठराग्नि और प्राण; ये तीन कर्मों के करानेवाले हैं। इन्हीं तीनों से इन्द्रियाँ, शब्द आदि विषय, चेतना, मन, प्राण और अपान उत्पन्न होते हैं और अन्न आदि का परिपाक होता है। आँख, कान, नाक, जीभ और त्वचा, ये पाँच इन्द्रियाँ मन से उत्पन्न होती हैं। विज्ञानयुक्त चेतना तीन प्रकार की है— १० सुखयुक्त, दुःखयुक्त और सुख-दुःख दोनों से हीन। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द और आकार, इन छः गुणों के द्वारा मनुष्यों को ज्ञान की सिद्धि होती है। कान आदि इन्द्रियों से ही स्वर्ग के साधन-कर्म, ब्रह्मलोक को प्राप्त करानेवाले संन्यास और वास्तविक अर्थ का निश्चय होता है। पण्डितों ने तत्त्व के निश्चय को मोक्ष लाभ का बीज-स्वरूप और बुद्धि को ब्रह्म की प्राप्ति का कारण बतलाया है। जो लोग इन गुणों को ही आत्मा समझ बैठते हैं वे अपने अज्ञान के कारण घोर दुःख भोगते हैं और जो लोग 'दृश्य पदार्थ कभी आत्मा नहीं हो सकता' ऐसा समझकर अहङ्कार और ममता को त्याग देते हैं उनको सांसारिक दुःखों से छुटकारा मिल जाता है।

महाराज, त्याग से ही मन का सन्देह दूर होता है। मैं उस त्याग का वर्णन करता हूँ। वही तुमको मोक्ष दिलाने के लिए उपयोगी होगा। मोक्ष चाहनेवाले महात्माओं के लिए कर्म का त्याग करना ही उचित है। जो मनुष्य विवेकी होकर भी कर्मों का त्याग नहीं करता उसे

सदा क्लेश भोगने पड़ते हैं। पण्डितों ने द्रव्य का त्याग करने के लिए यज्ञ आदि कर्म, भोग का त्याग करने के लिए व्रत, सुख का त्याग करने के लिए तपस्या और सब कुछ त्याग देने के निमित्त योग का साधन करने का उपदेश दिया है। सब कुछ त्याग देना ही त्याग की पराकाष्ठा है। महात्माओं को दुःख से छुटकारा पाने के निमित्त योग बतलाया गया है। सब प्रकार का त्याग योग द्वारा ही हो जाता है। जो इस संन्यास-धर्म का आश्रय नहीं लेते वे दुर्दशा में पड़े २० रहते हैं। मन और कान-आँख आदि ज्ञानेन्द्रियाँ बुद्धि में और प्राण तथा कर्म करनेवाले हाथ, चलनेवाले पैर, सन्तान उत्पन्न करने और आनन्द देनेवाला लिङ्ग, मल त्यागनेवाली गुदा और बोलनेवाली वाणी, ये सब कर्मेन्द्रियाँ मन में स्थित रहती हैं। बुद्धिमान् मनुष्य यह समझकर बुद्धि के द्वारा इन ग्यारहों से सम्बन्ध त्याग दे। जैसे कान, शब्द और मन, ये तीन सुनने के कारण हैं वैसे ही स्पर्श, रूप, रस और गन्ध के ज्ञान में भी तीन-तीन कारण हैं। इन पन्द्रह गुणों के द्वारा शब्द आदि का ज्ञान होता है। ये पन्द्रह गुण सत्त्व, रज तथा तम के भेद से और तीन-तीन प्रकार के हो जाते हैं। सत्त्वगुण के प्रभाव से मनुष्यों के मन में अकस्मात् या किसी कारण-वश हर्ष, सुख और शान्ति आदि पैदा होते हैं। रजोगुण के प्रभाव से असन्तोष, परिताप, शोक, लोभ और अक्षमा तथा तमोगुण के प्रभाव से अविवेक, मोह, प्रमाद, स्वप्न और आलस्य उत्पन्न होते हैं। जिस भाव के उदय से मनुष्यों का शरीर और मन प्रसन्न रहता है उसका नाम सात्त्विक भाव है; जिस भाव के उदय से शरीर और मन में असन्तोष पैदा होता है ३० वह राजस भाव और जिसके उदय से मनुष्यों को मोह होता है उसका नाम तामस भाव है। इन तीनों में सात्त्विक भाव ग्रहण करने योग्य और दूसरे दोनों त्यागने योग्य हैं। कान आकाश-तत्त्व के स्वरूप हैं, शब्द आकाश के आश्रित है। इसलिए आकाश और कान शब्द के आधार हैं। शब्द का ज्ञान आकाश और श्रोत्र इन्द्रिय के ज्ञान का कारण नहीं है; किन्तु यदि आधार और आधेय की एकता स्वीकार की जाय तो शब्द-ज्ञान को आकाश और श्रोत्र के ज्ञान का कारण कहा जा सकता है। इसी प्रकार त्वक् इन्द्रिय वायु-तत्त्व का, नेत्र अग्नि-तत्त्व का, जिह्वा जल-तत्त्व का और नाक पृथिवी-तत्त्व का स्वरूप है। त्वचा और वायु स्पर्श के, चक्षु और तेज रूप के, जीभ और जल रस के तथा नाक और पृथिवी गन्ध के आश्रय हैं। स्पर्श आदि का ज्ञान त्वचा और वायु आदि के ज्ञान का कारण नहीं है। किन्तु आधार और आधेय की एकता स्वीकार करने पर स्पर्श आदि ज्ञान को त्वचा और शब्द आदि के ज्ञान का कारण कहा जा सकता है। इन पाँच ज्ञानेन्द्रियों और पाँच विषयों में मन स्थित रहता है; क्योंकि विषय में इन्द्रिय का संयोग होते ही मन को उसका ज्ञान हो जाता है। सोते समय—जाग्रत् अवस्था के समान—इन्द्रिय, विषय, मन और बुद्धि एकत्र नहीं रहते। किन्तु यह न समझना चाहिए कि ऐसी अवस्था में आत्मा का नाश हो जाता है; क्योंकि सुषुप्ति तमोगुण का काम है। उस समय केवल इन्द्रियाँ

काम करने योग्य नहीं रहतीं। यदि ऐसा न होता तो जागने पर पहले की तरह फिर इन्द्रिय, विषय, मन और बुद्धि इकट्ठे न हो सकते। पहले की देखी और सुनी हुई बातें, इन्द्रियों के विषय का सम्बन्ध रहने के कारण, स्वप्नावस्था में देख पड़ने लगती हैं। अतएव स्वप्नावस्था में भी—जाग्रत् अवस्था के समान—इन्द्रिय, विषय, मन और बुद्धि एकत्र होते हैं। जिस समय मन तमोगुण से युक्त होकर, प्रवृत्ति करानेवाले आत्मा से अलग होकर, इन्द्रियों को विषयों से अलग कर देता है वही समय स्वप्नावस्था है। निद्रा का लाना तमोगुण का काम है। मनुष्य तमोगुण के प्रभाव से ही मोह के वश होकर, अन्त में दुःख पाने का विचार न करके, वेद-विरुद्ध काम करने लगते हैं।

मैंने सब गुणों का वर्णन कर दिया। मनुष्य इन्हीं गुणों के वशीभूत होकर अनेक काम करते हैं। कोई-कोई तो इन गुणों के अधीन हो जाते हैं और कोई इन्हें त्याग देते हैं। अध्यात्म-विद्या के जानकार लोग मन और इन्द्रिय आदि के संयोग को क्षेत्र कहते हैं और उस क्षेत्र के कारण मन में जो आत्मा निवास करता है उसे क्षेत्रज्ञ कहते हैं। अतएव जब आत्मा शरीर से ४० भिन्न होता है तब शरीर के नाश होने पर उसका नष्ट होना कैसे सम्भव है? जैसे छोटी नदियाँ बड़ी नदियों में और बड़ी नदियाँ समुद्र में मिलकर अपना-अपना नाम और रूप त्यागकर उसमें लीन हो जाती हैं वैसे ही जीव की स्थूल उपाधियाँ सूक्ष्म में और सूक्ष्म उपाधियाँ शुद्ध आत्मा में लीन होती हैं। जीव जब तक उपाधियुक्त रहता है तभी तक उसे स्थूल और सूक्ष्म कहा जा सकता है; किन्तु जब उसकी सब उपाधियाँ शुद्ध आत्मा में लीन हो जाती हैं तब उसे पहले की तरह स्थूल और सूक्ष्म कैसे कहा जा सकता है? जो मनुष्य मोक्ष-विषयक बुद्धि को प्राप्त करके सावधानी से आत्मा के जानने की इच्छा करता है वह, जैसे पानी में पड़ा हुआ कमल का पत्ता पानी में नहीं भीगता वैसे ही, अनिष्ट करनेवाले कर्म के फल में लिप्त नहीं होता। जो मनुष्य यज्ञ आदि कर्मों और पुत्र आदि के स्नेह से छूटकर सुख-दुःख का त्याग कर देते हैं वे संसार से मुक्त और सूक्ष्म शरीर से हीन होकर परमगति प्राप्त करते हैं। शास्त्रोक्त शम-दम आदि गुणों के द्वारा मनुष्यों के पाप-पुण्य का नाश और सब कर्मफल नष्ट हो जाने पर वे जरा-मृत्यु से निडर होकर आकाश के समान निर्लिप्त अशरीरी परमब्रह्म को बुद्धितत्त्व में देखते हैं। जैसे मकड़ी धागों से बनाये गये जाले में रहती है वैसे ही अविद्या के वशीभूत जीव भी कर्म-रूपी घर में निवास करता है और जैसे मकड़ी जाले को छोड़ देती है वैसे ही मुक्त पुरुष कर्ममय घर का त्याग कर देता है। कर्मों का त्याग कर देने पर मनुष्यों के दुःख, पत्थर पर पटके हुए मिट्टी के ढेले के समान, नष्ट हो जाते हैं। जैसे मृग पुराने सींगों को और साँप केंचुल को छोड़ देता है वैसे ही मुक्त पुरुष के दुःख आसानी से दूर हो जाते हैं। जैसे पक्षी पानी में गिरते हुए वृक्ष को छोड़कर उड़ जाता है वैसे ही मुक्त मनुष्य सुख-दुःख का त्याग

करके सबसे श्रेष्ठ स्थान को चला जाता है। मिथिला नगरी को आग से जलती हुई देखकर
५८ तुम्हारे पूर्व-पुरुष राजा जनक ने कहा था कि इसमें हमारा कुछ नहीं जलता।

हे धर्मराज! महर्षि पञ्चशिख के इन अमृतमय वचनों को सुनकर और उनके मर्म को समझकर मिथिलानरेश महाराज जनदेव तत्त्वज्ञान प्राप्त करके, शोकहीन होकर, बड़े सुख से रहने लगे। जो मनुष्य मोक्ष का ज्ञान करानेवाले इस इतिहास को पढ़ता है उसके सब दुःख छूट जाते हैं और वह शान्त होकर, महात्मा पञ्चशिख के अनुगृहीत राजा जनदेव के
५९ समान, मोक्षपद प्राप्त करता है।

दो सौ बीस अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से दम गुण की प्रशंसा करना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, मनुष्य किस काम के करने से सुख और किस काम के करने से दुःख पाता है तथा किस काम के करने से उसे सिद्धि होती है और वह निर्भय होकर संसार में विचरता है?

भीष्म कहते हैं—बेटा, विद्वान् बूढ़े लोग दम गुण की ही प्रशंसा करते हैं। दम गुण का आश्रय सब वर्णों को, विशेषकर ब्राह्मणों को, अवश्य करना चाहिए। मनुष्य इन्द्रियों को वश में किये बिना किसी काम को ठीक-ठीक नहीं कर सकता। क्रिया, तपस्या और सत्य, ये सब दम गुण में स्थित हैं। इन्द्रियों को वश में रखने से मनुष्यों का तेज बढ़ता है। पण्डितों ने इस (दम) गुण को परम पवित्र बतलाया है। दम गुण से युक्त मनुष्य पापहीन और निर्भय होकर श्रेष्ठ फल पाता है। वह सोते-जागते प्रति समय सुखी रहता है और उसका मन हमेशा प्रसन्न रहता है। वह दम गुण के प्रभाव से अपने तेज के वेग को दबाये रहता है किन्तु दम गुण से हीन मनुष्य ऐसा करने में असमर्थ होकर काम आदि शत्रुओं के अधीन हो जाता है। दम गुण से हीन मनुष्यों से सब प्राणी उसी तरह डरते रहते हैं जिस तरह कि बाघ आदि हिंसक जीवों से। इसी लिए विधाता ने दम गुण से हीन मनुष्यों का दमन करने के लिए राजा को उत्पन्न किया है। सभी आश्रमवालों के लिए दम गुण श्रेयस्कर है। सब आश्रमों के धर्म से जो फल मिलता है उससे भी अधिक फल दम गुण के द्वारा प्राप्त होता है। अदीनता, विषयों से अरुचि, सन्तोष, श्रद्धा, क्षमा, सरलता, गुरु की पूजा, किसी की निन्दा न करना, गर्व न करना, ईर्ष्या न करना, प्राणियों पर दया करना और निष्कपट रहना आदि गुण तथा स्तुति-निन्दा का त्याग करना और झूठ न बोलना, ये सब दम गुण से उत्पन्न होते हैं। दान्त मनुष्य मोक्ष को चाहता हुआ जो सुख मिलता है उसी का भोग करता है; वह भावी सुख-दुःख की
११ चिन्ता करके न तो प्रसन्न होता है और न दुखी ही। शत्रुता और शठता से हीन, सच्चरित्र,

विशुद्धचित्त, धैर्यवान्, जितेन्द्रिय मनुष्य इस लोक में सम्मानित होकर अन्त को स्वर्ग का सुख भोगता है। जो दयालु मनुष्य अकाल के समय ग़रीबों को अन्न आदि देता है वह बड़े सुख से जीवन बिताता है। जो मनुष्य सब प्राणियों की भलाई करता है और किसी से द्वेष नहीं रखता वह भारी सरोवर के समान प्रसन्न रहता है। दान्त पुरुष सब मनुष्यों में पूज्य हो जाता है; न तो उससे कोई जीव डरता है और न उसे किसी का डर रहता है। जो मनुष्य बहुत-सा धन पाने पर भी अति प्रसन्न और भारी विपत्ति पड़ने पर भी अत्यन्त दुखी नहीं होता वह दान्त कहलाता है। दम गुण से युक्त विद्वान् मनुष्य सज्जनों के किये हुए शुभ कर्मों को करता हुआ उनका फल पाता है। दुरात्मा लोग अनसूया, क्षमा, शान्ति, सन्तोष, प्रियवादिता, सत्य, दान और सरलता को छोड़कर काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या और गर्व के वश में रहते हैं। ब्राह्मण लोग ब्रह्मचारी, जितेन्द्रिय और व्रतपरायण होकर काम-क्रोध का त्याग करके कठोर तप और काल की प्रतीक्षा करते हुए देहाभिमानी के समान सब लोकों में विचरते हैं। २०

दो सौ इक्कीस अध्याय

उपवास और तप का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह! व्रत-परायण द्विज लोग, स्वर्ग और पुत्र आदि की इच्छा से, यज्ञ करते और यज्ञ का अवशिष्ट खाते हैं। उनका यह काम उचित है या नहीं?

भीष्म ने कहा—धर्मराज, जो लोग वेदोक्त व्रतनिष्ठ न होकर सुख के निमित्त अभोज्य मांस आदि खाते हैं वे स्वेच्छाचारी हैं। वे संसार में पतित कहलाते हैं और जो शास्त्रोक्त विधि से मांस खाते हैं वे व्रतधारी हैं। उनको स्वर्ग का सुख मिलता है; उसके बाद वे फिर इस लोक में आते हैं।

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, लोगों ने उपवास को भी तप कहा है। वास्तव में उपवास तप है या नहीं?

भीष्म ने कहा—धर्मराज, अविवेकी लोग एक पक्ष या एक मास के व्रत को तपस्या कहते हैं; किन्तु सज्जनों के मत में यह तपस्या नहीं है। इससे आत्मज्ञान में विशेष हानि पहुँचती है। त्याग और नम्रता ही श्रेष्ठ तप है। धर्मात्मा ब्राह्मण लोग तो स्त्री-पुत्र आदि से युक्त होने पर भी हमेशा उपवासी, ब्रह्मचारी, मुनि, देवतानिष्ठ, श्रद्धावान्, निद्रात्यागी और विघसाशी होते हैं। वे मांस न खाकर हमेशा पवित्रता से रहते, देवता के समान ब्राह्मणों की पूजा, अतिथि का सत्कार और स्वादिष्ट भोजन करते हैं।

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह! ब्राह्मण लोग किस प्रकार के कर्म करते हुए उपवासी, ब्रह्मचारी, विघसाशी और अतिथि-सत्कार-परायण होते हैं?

भीष्म ने कहा—धर्मराज ! जो ब्राह्मण एक बार दिन में और एक बार रात में भोजन करता है, इसके सिवा दिन और रात के बीच में भोजन नहीं करता वह सदा उपवासी कहलाता
१० है। जो सत्यवादी और ज्ञानवान् ब्राह्मण केवल ऋतुकाल में सम्भोग करता है वह ब्रह्मचारी है। जो वृथा मांस नहीं खाता वह मांस का न खानेवाला है। जो दानशील और पवित्र भाववाला होता है तथा दिन में नहीं सोता वही निद्रात्यागी कहलाता है। जो मनुष्य नौकरों और अतिथियों को भोजन देकर भोजन करता है वही अमृताशी है। जो ब्राह्मण अतिथियों को भोजन दिये बिना नहीं खाता वह स्वर्ग का अधिकारी होता है। जो देवतों, पितरों, अतिथियों और नौकरों को खिलाकर खाता है वह विघसाशी है। इस प्रकार के ब्राह्मणों को अक्षय ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। देवता लोग अप्सराओं समेत उनका सत्कार करते हैं। जो देवताओं और
१७ पितरों के साथ भोजन करके पुत्र-पौत्रों समेत सुख से रहता है वह उत्तम गति पाता है।

दो सौ बाईस अध्याय

इन्द्र और प्रह्लाद का संवाद। इन्द्र के पूछने पर प्रह्लाद द्वारा ज्ञान का उपाय बतलाया जाना

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह ! इस लोक में जो शुभ और अशुभ कर्म मनुष्यों को फल देते हैं, उन कर्मों का कर्ता मनुष्य है या नहीं ?

भीष्म ने कहा—धर्मराज, इस विषय में तुम्हें इन्द्र और प्रह्लाद का संवाद सुनाता हूँ। एक बार देवराज इन्द्र, प्रसिद्ध कुल में उत्पन्न निष्पाप अहङ्कारहीन एकान्त में रहनेवाले, सात्त्विक प्रह्लाद के पास जाकर उनकी धर्मबुद्धि जानने की इच्छा से बोले—दानवराज, मनुष्यों के जितने श्रेष्ठ गुण हैं वे सब आपमें हैं। आपकी बुद्धि राग-द्वेष से हीन है। आप संसार में किस
१० वस्तु को आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिए अच्छा साधन समझते हैं ? आप शत्रु के हाथ में पड़ने, क़ैद होने, राज्य के नष्ट और तेज से हीन हो जाने पर रत्ती भर भी शोक नहीं करते। यह आपकी बुद्धि का फल है या धैर्य का ?

दानवराज प्रह्लाद कर्मों के फल को न चाहनेवाले, उत्साही, शम-दम आदि गुणों से युक्त, प्राणियों की सृष्टि और संहार के जानकार, आत्मज्ञान में स्थिर, सर्वज्ञ और सब प्राणियों पर समान दृष्टि रखनेवाले थे। वे स्तुति-निन्दा, प्रिय-अप्रिय, सोना-मिट्टी, सबको बराबर समझते थे। इन्द्र के वचन सुनकर उन्होंने अपनी धर्म-बुद्धि के अनुसार कहा—देवराज, जो मनुष्य जीवों के जन्म-मरण का विषय नहीं जानता वह अज्ञान के वश मोहित रहता है और जो इस विषय को भली भाँति समझता है वह कभी मोहित नहीं होता। स्थूल और सूक्ष्म सब पदार्थ प्रकृति से उत्पन्न होते और उसी में लीन हो जाते हैं। पुरुष स्वयं कोई काम नहीं करता; किन्तु

पुरुष के विना कोई काम हो भी नहीं सकता। प्रकृति जड़ है। लोहा जैसे चुम्बक पत्थर के साथ होने से चलने लगता है वैसे ही प्रकृति पुरुष के साथ रहने से ही चैतन्य होकर सब काम करती है। यद्यपि पुरुष स्वयं कोई काम नहीं करता तो भी अविद्या के प्रभाव से, शरीर में स्थित, आत्मा को कर्मों के करने का अभिमान होता है। जो लोग पुरुष को कर्ता मानते हैं उनकी बुद्धि दूषित है। उनको तत्त्वज्ञान नहीं है। यदि पुरुष कर्ता होता तो उसका प्रत्येक कार्य सफल होता। जब कोई-कोई मनुष्य उपाय करने पर भी अनिष्ट होने और अभीष्ट के सिद्ध न होने का दुःख उठाते हैं और कोई-कोई किसी उपाय के विना ही अनिष्ट को नष्ट करके अभीष्ट फल भोगते हैं और जब बुद्धिमान् मनुष्यों को साधारण अल्पबुद्धिवाले मनुष्यों से धन की आशा करते देखा जाता है तब तो, मेरे मत से, मोक्ष की प्राप्ति और आत्मज्ञान सब कुछ प्रकृति से ही उत्पन्न होते हैं। यदि प्रकृति से ही सब कुछ उत्पन्न होता है तो मनुष्यों का कर्तृत्व आदि का अभिमान करना निरर्थक है।

२०

संसार में कर्म के प्रभाव से मनुष्यों को शुभ-अशुभ फल मिलते हैं। अब मैं आपसे कर्म का विषय कहता हूँ। जैसे कौवा अन्न खाते समय बोलकर खाने की बात प्रकट कर देता है वैसे ही सब काम प्रकृति की ओर सङ्केत करते हैं। सब काम प्रकृति के परिचायक हैं। जो मनुष्य प्रकृति को नहीं जानता, केवल प्रकृति के कामों को जानता है वह अज्ञान से मोहित रहता है और जो प्रकृति को भली भाँति समझता है वह कभी मोहित नहीं होता। जो संसार के सब पदार्थों को प्रकृति से उत्पन्न समझकर इसी सिद्धान्त पर दृढ़ रहता है उसे न तो दर्प होता है और न अभिमान। जब मेरी समझ में यह बात आ गई कि धर्म-कर्म आदि सब काम प्रकृति से उत्पन्न और सब पदार्थ नश्वर हैं; और जब ममता, अहङ्कार, शुभ-कामना तथा सब बन्धनों से मुक्त होकर मैं जन्म-मरण का हाल अच्छी तरह जानता हूँ तब फिर शोक क्यों करूँ? जो ज्ञानवान् मनुष्य दम गुण से युक्त और निःस्पृह होकर अविनाशी ब्रह्म का साक्षात्कार कर

३० लेता है उसे कभी कोई क्लेश नहीं होता। क्या प्रकृति और क्या विकृति, किसी से मुझे राग या द्वेष नहीं है। मैं किसी को अपना शत्रु या मित्र नहीं समझता और स्वर्ग, मर्त्य तथा पाताल, किसी लोक की इच्छा नहीं करता। शास्त्र के ज्ञान, अनुभव और ज्ञान के विषय से मुझे कोई प्रयोजन नहीं है।

इन्द्र ने कहा—प्रह्लाद, जिस उपाय से इस प्रकार का ज्ञान और शान्ति मिल सकती है उसका विस्तार से वर्णन कीजिए।

प्रह्लाद ने कहा—देवराज! सरलता, सावधानी, चित्तशुद्धि, जितेन्द्रियता की प्राप्ति और ज्ञानवान् लोगों की सेवा करने से मोक्ष मिलता है। सत्त्वप्रधान प्रकृति से तत्त्वज्ञान और शान्ति तथा रजप्रधान प्रकृति से मायिक ज्ञान उत्पन्न होता है।

हे धर्मराज, दानवराज प्रह्लाद के यों कहने पर इन्द्र बड़े प्रसन्न और विस्मित हुए। ३७ उन्होंने प्रह्लाद के वचनों का बड़ा सम्मान किया। उनका आदर करके वे अपने स्थान को चले गये।

दो सौ तेईस अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से इन्द्र और बलि का संवाद कहना। इन्द्र द्वारा अपमानित बलि का गर्व की निन्दा करना

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, राज्य के नष्ट हो जाने और भारी विपत्ति में पड़ जाने पर राजा किस बुद्धि का अवलम्बन करे?

भीष्म ने कहा कि धर्मराज, इस विषय में बलि और इन्द्र का संवाद सुनाता हूँ। प्राचीन समय में इन्द्र ने सब असुरों को जीतकर, ब्रह्मा के पास जाकर, हाथ जोड़कर उनसे पूछा—पितामह! हमेशा दान करते रहने पर भी जिनका धन नष्ट नहीं हुआ; जो वायु, वरुण, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि और जल-स्वरूप थे; जिनके प्रभाव से सब दिशाएँ अन्धकारमय और प्रकाशित होती थीं और जो ठीक समय पर पानी बरसाते थे, वे राजा बलि इस समय कहाँ हैं?

ब्रह्मा ने कहा—देवराज, राजा बलि का हाल पूछना तुमको उचित नहीं। किन्तु किसी के पूछने पर झूठा उत्तर न देना चाहिए इसलिए मैं तुमको बलि का वृत्तान्त सुनाता हूँ। राजा बलि ऊँट, बैल, गधा या घोड़ा होकर किसी ख़ाली घर में रहते हैं।

इन्द्र ने कहा—भगवन्! यदि मैं किसी स्थान पर, ख़ाली घर में, राजा बलि को देखूँ १० तो उन्हें मार डालूँ या नहीं? आपकी क्या आज्ञा है?

ब्रह्मा ने कहा—इन्द्र, बलि को मारना मत। वे मारने योग्य नहीं हैं। तुम उनके पास जाकर न्याय की बात पूछो।

भीष्म कहते हैं कि ब्रह्मा के यों कहने पर इन्द्र, दिव्य आभूषण पहनकर, ऐरावत हाथी पर सवार हो पृथिवी पर घूमने लगे। उन्होंने एक ख़ाली घर में, गधे के रूप में, राजा बलि को देखा। तब इन्द्र ने उनसे कहा—दानवराज, इस समय तुम घास चरनेवाले अधम गधे की योनि में हो। पहले तुम अपने जातिवालों के साथ दिव्य विमान पर बैठकर हम लोगों का तिरस्कार करते और सब लोकों में अपना प्रताप फैलाये हुए थे। तुम्हारा ऐश्वर्य देखकर और दानव लोग तुम्हारे आज्ञाकारी थे। तुम्हारे प्रताप से खेतों में बिना ही जोते उपज होती थी। किन्तु आज शत्रुओं के अधीन होने से तुम श्रीभ्रष्ट, बन्धु-बान्धवों से और पराक्रम से हीन होकर इस दुर्दशा में हो। भला तुमको अपनी इस दुर्दशा पर दुःख होता है या नहीं? जब तुम समुद्र के पूर्वी किनारे पर बैठकर अपने जातिवालों को धन देते थे, जब बयालीस
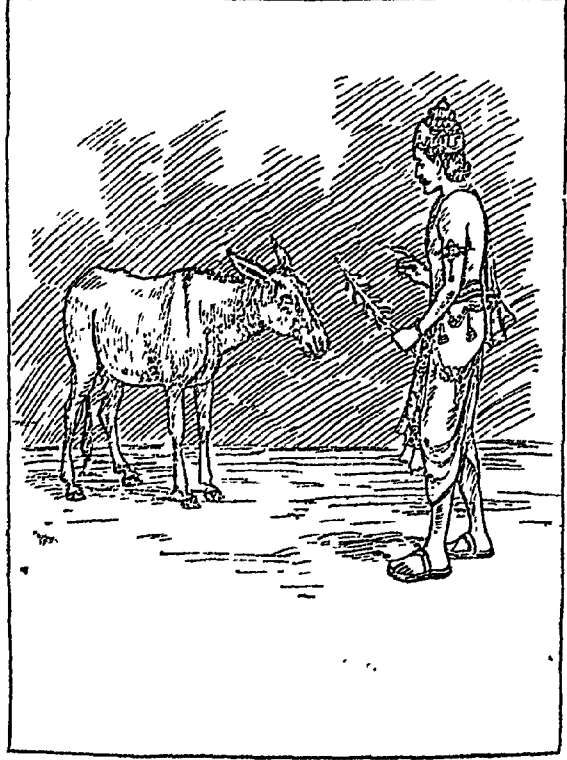
हज़ार गन्धर्व और दिव्य मालाएँ पहने हुए हज़ारों अप्सराएँ तुम्हारे विहार के समय नाचती थीं, जब तुम्हारे अनेक रत्नों से जड़ा हुआ सोने का छत्र था, जब यज्ञ करके सोने का भारी यज्ञ-यूप गाड़कर तुमने हज़ारों गोदान किये थे और शम्याक्षेप विधि के अनुसार तुमने सारी पृथिवी का दान कर दिया था, तब भला तुम्हारे चित्त की वृत्ति कैसी थी और इस समय कैसी है? दानवराज! इस समय तुम्हारा गड़ुआ, छत्र, दोनों चँवर और ब्रह्मा की दी हुई माला कहाँ है? २०

बलि ने कहा—इन्द्र! इस समय तुम मेरा गड़ुआ, छत्र, दोनों चँवर और ब्रह्मा की दी हुई मेरी माला को नहीं देख सकते। मेरी वे सब वस्तुएँ इस समय छिपी हुई हैं। किन्तु जब मेरे दिन फिरेंगे तब तुम फिर उनको देखोगे। अपने को समृद्धिशाली समझकर इस प्रकार मेरी निन्दा करना तुम्हारे यश और कुल के अनुरूप नहीं है। ज्ञानवान् क्षमाशील विद्वान् मनुष्य विपत्ति में सन्ताप और सम्पत्ति में हर्ष नहीं करता। तुम साधारण बुद्धि से मेरी निन्दा कर रहे हो, किन्तु जब तुम मेरी दशा में होगे तब ऐसा न कहोगे। ३०

दो सौ चौबीस अध्याय

इन्द्र और बलि का संवाद। काल को ही भले-बुरे सब कामों का कर्ता बतलाना

भीष्म ने कहा कि धर्मराज! दानवराज बलि यों कहकर, हाथी की तरह, लम्बी साँस खींचने लगे। तब उनकी हँसी उड़ाते हुए इन्द्र ने फिर कहा—दानवराज, तुम अपने जातिवालों के साथ वाहनों पर सवार होकर सब लोकों का शासन और हम लोगों का उपहास करते थे। पहले सब लोक तुम्हारे अधीन थे, इसलिए तुम बड़े प्रसन्न रहते थे। किन्तु इस समय तुम्हारी दुर्दशा देखकर तुम्हारे बन्धु-बान्धवों और मित्रों ने भी तुम्हें त्याग दिया है। बतलाओ, तुमको अपनी इस दुर्दशा का सोच है या नहीं।

बलि ने कहा—इन्द्र, कोई वस्तु नित्य नहीं है। समय आने पर सबका नाश हो जाता है। इसी से मैं किसी के लिए शोक नहीं करता। काल के वश सब काम होते हैं, इसलिए मैं अपने को गधा होने का अपराधी नहीं मानता। प्राणियों के शरीर भी नश्वर हैं। उनके प्राण और शरीर एक साथ उत्पन्न होते, बढ़ते और नष्ट हो जाते हैं। जब मैं गधे की योनि में आकर भी अपने को किसी के अधीन नहीं समझता हूँ तो फिर सोच क्यों करूँ? जैसे सब नदियाँ समुद्र में गिरती हैं वैसे ही सब प्राणी मौत के मुँह में समा जाते हैं। जो मनुष्य इस विषय को अच्छी तरह जानता है वह कभी सोच न करेगा। नासमझ मनुष्य इस विषय

१० को न समझ सकने के कारण दुःख पाते रहते हैं। ज्ञान प्राप्त कर लेने पर मनुष्य सब पापों का नाश कर सकता है। पाप का नाश होने पर सत्त्वगुण आ जाता है और सत्त्वगुण प्राप्त हो जाने पर मोह से उत्पन्न सब दुःख दूर हो जाते हैं। जो सत्त्वगुण से हीन रहकर रज और तमोगुण के अधीन रहता है उसे बार-बार जन्म लेना पड़ता है; वह इन्द्रियों के वशीभूत होकर हमेशा दुःख पाता है। मैं कभी अर्थ-अनर्थ, जीवन-मरण और सुख-दुःख में राग-द्वेष नहीं करता। काल से मारे हुए को ही लोग मार सकते हैं। जो दूसरे को मारता है वह भी काल के द्वारा नष्ट होगा। इसलिए जो मनुष्य 'मैं किसी को मारता हूँ' यह समझे और जो 'मैं किसी से मारा जाता हूँ' यह जानकर दुखी हो, वे दोनों मूर्ख हैं। अतएव जो मनुष्य किसी को जीतकर या किसी का विनाश कर अभिमान करे कि 'मैंने यह किया' तो उसका वह अभिमान उचित नहीं। वास्तव में वह उस काम का करनेवाला नहीं है। उसका कर्ता तो स्वतन्त्र है। संसार में कोई मनुष्य किसी की उत्पत्ति या किसी का विनाश नहीं कर सकता। ईश्वर-कृत कर्मों को करके, अपने को कर्ता मानकर, मनुष्य अभिमान करता है। मैं जब पृथिवी, वायु, आकाश, जल और तेज, इन पाँच महाभूतों को प्राणियों की उत्पत्ति का कारण समझता हूँ और जब यह जानता हूँ कि भारी विद्वान्, साधारण विद्वान्, बलवान्, निर्बल, रूपवान्, कुरूप, भाग्यवान् और अभागे, सभी मनुष्यों को काल समान भाव से समेट लेता है,

तो फिर मुझे सोच क्यों हो? काल के ही द्वारा मनुष्यों को लाभ, वस्तुओं का दाह और विनाश होता है। मैं बहुत विचार करने पर भी इस कालरूपी समुद्र के द्वीप या इसके पार को नहीं समझ पाता हूँ। सारांश यह कि जो काल सब प्राणियों का नाश करता है उसे मैं यदि न जानता तो मुझे हर्ष, दर्प और क्रोध घेरे रहते। २०

मैं इस समय गधे का शरीर धारण किये हुए सूने घर में हूँ, यह देखकर तुम मेरी निन्दा करते हो। किन्तु मैं चाहूँ तो इसी समय अनेक भयङ्कर रूप धारण कर लूँ, जिनको देखते ही तुम डरकर भाग जाओ। काल ही सबको देता और वही सबसे छीन लेता है। काल के प्रभाव से ही सब काम सिद्ध होते हैं। इसलिए तुम अपने पौरुष का व्यर्थ अभिमान न करो। पहले मेरे कुपित होने पर सारा संसार काँपता था। मनुष्यों की कभी उन्नति और कभी अवनति होती रहती है, यह संसार का नियम है। ऐश्वर्य का मिलना और न मिलना किसी मनुष्य के अधीन नहीं है। तुम भी इस विषय को समझो और अपनी नासमझी छोड़ दो। आज भी तुम्हारी बुद्धि बालक की सी है। तुम भली भाँति जानते हो कि देवता, मनुष्य, पितर, गन्धर्व, साँप और राक्षस सब मेरे अधीन थे और मैं जिस दिशा में रहता था उस दिशा को सब लोग प्रणाम करते थे; किन्तु मैं पहले की उस उन्नति और इस समय की अवनति पर ध्यान देकर रत्ती भर भी दुखी नहीं होता। इसके सिवा मैं निश्चित रूप से अपने को ईश्वर के अधीन समझता हूँ। जब कुलीन प्रतापी राजा को मन्त्रियों समेत दुःख पाते हुए और नीच कुल में उत्पन्न मूर्ख मनुष्य को मन्त्रियों समेत सुख की अवस्था में देखता हूँ, जब अच्छे लक्षणोंवाली परम सुन्दरी अभागिनी और कुलक्षणा कुरूपा स्त्री भाग्यवती देखी जाती है तब भवितव्यता ही सब कामों का कारण जान पड़ती है। हे इन्द्र, न तो तुम्हारे प्रताप से मेरी यह दुर्दशा हुई है और न मेरी असावधानी से तुमको इन्द्रत्व मिला है। सम्पत्ति और विपत्ति काल के फेर से आती-जाती हैं। आज मैं तुमको अपने सामने बहुत प्रसन्न और गरजता हुआ देखता हूँ; यदि मैं इस प्रकार दिनों के फेर में न पड़ा होता तो वज्रधारी होने पर भी तुम्हें इसी दम घूँसा मारकर गिरा देता। किन्तु क्या करूँ, यह समय पराक्रम दिखाने का नहीं है, यह तो शान्त रहने का समय है। समय से ही ऊँचा पद मिलता है और समय ही गिरा देता है। मैं दानवों का राजा था, जब मुझ पर काल का आक्रमण हुआ तब किस गरजते और तपते हुए पर काल का फेरा न होगा? मैं अकेला बारह सूर्यों का तेज रखता था। मैं ही पानी खींचता (आकर्षित करता) और मैं ही बरसाता था। मैं ही तीनों लोकों को तपाता और मैं ही प्रकाशित करता था। सब लोकों का पालन, संहार, दान, ग्रहण, बन्धन और मोचन मैं ही करता था। मैं तीनों लोकों का स्वामी था; किन्तु काल के फेर से इस समय मेरा वह प्रभुत्व नहीं रहा। तुम, मैं या अन्य कोई भी कर्ता नहीं है। काल के फेर से ही मनुष्यों ३० ४०

का पालन और संहार होता है। विद्वानों ने काल को परमेश्वर कहा है। मास और पक्ष काल-रूपी ईश्वर का शरीर है, वह शरीर दिन और रात से ढका हुआ है। ग्रीष्म आदि ऋतुएँ उसकी इन्द्रियाँ और वर्ष उसका मुँह है। कोई-कोई महात्मा अपनी बुद्धि से विचार करके इन दृश्य पदार्थों को ब्रह्म कहते हैं; किन्तु वेद में अन्नमय आदि पाँच कोषों को ही ब्रह्म का स्वरूप बतलाया गया है। ब्रह्म समुद्र के समान अगम्य और अपार है। वह जड़ भी है और चेतन भी। उसका न तो आदि है और न अन्त। वह सूक्ष्म शरीर से हीन होने पर भी मनुष्यों के सूक्ष्म शरीर में निवास करता है। तत्त्वदर्शी लोगों ने उसे नित्य बतलाया है। वह अविद्या के प्रभाव से चेतन-स्वरूप जीव को जड़ बना देता है, किन्तु वास्तव में जीव जड़
५० पदार्थ नहीं है; क्योंकि तत्त्वज्ञान हो जाने पर फिर उसे जन्म नहीं लेना पड़ता। अतएव इस जीव की एक-मात्र गति काल-रूपी परमब्रह्म को लाँघकर तुम कहाँ जाओगे? बड़े वेग से दौड़ने पर भी कोई मनुष्य काल को लाँघ नहीं सकता। पाँचों ज्ञानेन्द्रियों से उसका ज्ञान नहीं हो सकता। उसे कोई अग्नि, कोई प्रजापति, कोई ऋतु, कोई मास, कोई पक्ष, कोई दिन, कोई क्षण, कोई पूर्वाह्न, कोई मध्याह्न, कोई अपराह्न और कोई मुहूर्त्त कहते हैं। उस ब्रह्म के रूप तो अनेक बतलाये गये हैं; किन्तु वह काल-स्वरूप है। उसी के अधीन सब कुछ है। उसी काल के प्रभाव से तुम्हारे समान बलवान् हज़ारों इन्द्र हो चुके हैं। हे देवराज, उसी के प्रभाव से एक दिन तुम भी न रह जाओगे। काल ही सबका संहार करता है, यह समझकर तुम शान्त रहो। क्या तुम, क्या मैं और क्या पूर्वज लोग, कोई भी काल को नहीं हटा सकता। तुम जिस राजश्री को पाकर सर्वश्रेष्ठ और स्थायी समझते हो वह सदा एक के पास नहीं रहती। वह तुम्हारे जैसे हज़ारों इन्द्रों के पास रह चुकी है। अब मुझे छोड़कर तुम्हारे पास गई है और शीघ्र ही तुमको भी छोड़कर किसी दूसरे के पास चली जायगी। इसलिए
६० तुम शान्त रहो, वृथा गर्व करके मेरी निन्दा न करो।

दो सौ पच्चीस अध्याय

बलि को त्यागकर लक्ष्मी का इन्द्र के पास चला जाना

भीष्म कहते हैं कि हे धर्मराज, महात्मा बलि के यों कहते ही एक रूपवती स्त्री उनके शरीर से निकल आई। उसे देखकर इन्द्र को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने बलि से पूछा—दानवराज, तुम्हारे शरीर से निकलकर यह जो बाज़ूबन्द पहने सुन्दर केशोंवाली रूपवती स्त्री अपने तेज से शोभित हो रही है, यह कौन है? बलि ने कहा—इन्द्र! यह न तो देवी है, न आसुरी और न मानुषी। तुम कुछ पूछना चाहते हो तो इसी से पूछो।

तब इन्द्र ने कहा—हे सुन्दरी, तुम कौन हो और दानवराज को छोड़कर मेरे पास क्यों आ रही हो? यह मैं नहीं समझ पाता, इसलिए तुम्हीं बताओ।

लक्ष्मी ने कहा—देवराज, मुझे न तो विरोचन जानते थे और न विरोचन के पुत्र ये बलि ही जानते हैं। पण्डित लोग मुझे दुस्सहा, विधित्सा, भूति, लक्ष्मी और श्री कहते हैं। तुम और अन्यान्य देवता भी मुझे नहीं जान सकते।

इन्द्र ने कहा—आर्ये, तुम बहुत दिनों से बलि के पास रहती हो। इस समय बलि में कौन सा दोष और मुझमें कौन सा गुण देखकर उन्हें छोड़कर मेरे पास आती हो?

लक्ष्मी ने कहा—देवराज, मुझे एक स्थान से दूसरे स्थान पर धाता और विधाता कोई नहीं हटा सकता। मैं काल के प्रभाव से ही एक को छोड़कर दूसरे के पास जाती हूँ। इस-लिए तुम बलि का अनादर न करो। १०

इन्द्र ने पूछा—सुन्दरी, तुमने बलि को क्यों छोड़ दिया और मुझे क्यों नहीं छोड़ती हो?

लक्ष्मी ने कहा—देवराज! जहाँ सत्य, दान, व्रत, तपस्या, पराक्रम और धर्म रहता है वहीं मैं रहती हूँ। इस समय बलि इन सबसे विमुख हो गये हैं। ये सत्यवादी, जितेन्द्रिय और ब्राह्मणों के हितैषी थे; किन्तु अब ये ब्राह्मणों से ईर्ष्या करते हैं और इन्होंने जूठे हाथ से घी छू लिया है। यज्ञ करते रहने पर भी ये मेरी ही ख़ुशामद किया करते हैं। इन्होंने सबसे यह कहना आरम्भ किया कि मैं हमेशा लक्ष्मी का भोग करता रहूँगा। इन्हीं कारणों से मैं इनको छोड़कर तुम्हारे पास आती हूँ। तुम सावधान होकर, तपस्या और पराक्रम से मेरी रक्षा करना।

इन्द्र ने कहा—हे कमलों में रहनेवाली! देवता, मनुष्य और अन्यान्य प्राणियों में ऐसा कोई भी नहीं है जो हमेशा तुम्हारी रक्षा कर सके।

लक्ष्मी ने कहा—देवराज! तुम ठीक कहते हो। देवता, गन्धर्व, असुर, राक्षस कोई भी मुझे हमेशा नहीं रख सकता।

इन्द्र ने पूछा—देवि, तो फिर मैं कौन सा काम करूँ जिससे तुम हमेशा मेरे पास रहो?

लक्ष्मी ने कहा—देवेन्द्र, तुम वेदोक्त विधि से मुझे चार हिस्सों में बाँटकर चार जगह रक्खो तो मैं हमेशा तुम्हारे पास बनी रहूँ।

इन्द्र ने कहा—देवि, मैं भरसक तुम्हारी रक्षा करता रहूँगा; तुम मुझे कभी न छोड़ना। २० मेरी समझ में तुम्हारा पहला हिस्सा पृथिवी धारण कर सकती है।

लक्ष्मी ने कहा—देवराज! लो, यह मैंने अपना पहला हिस्सा पृथिवी पर रख दिया। बताओ, दूसरा हिस्सा कहाँ रक्खूँ।

इन्द्र ने कहा—देवि, तुम्हारे दूसरे हिस्से को जल धारण कर सकता है।

लक्ष्मी ने कहा—अच्छा, मैं अपना दूसरा पद जल में रखती हूँ। तीसरा कहाँ रक्खूँ?

इन्द्र ने कहा—देवि ! वेद, यज्ञ और देवता अग्नि में स्थित रहते हैं, अतएव आप अपना तीसरा हिस्सा अग्नि में रखिए।

लक्ष्मी ने कहा—देवराज, तुम्हारे कहने से मैंने तीसरा पद अग्नि में रख दिया। अब चौथे पद के रखने का स्थान बतलाओ।

इन्द्र ने कहा—जहाँ ब्राह्मणों और वेदों की रक्षा करनेवाले सत्यवादी लोग रहते हों वहाँ अपना चौथा पद रखिए।

लक्ष्मी ने कहा—अच्छा, मैं अपना चौथा पद सज्जनों में रखती हूँ। अब मैं चार भागों में विभक्त होकर प्राणियों में स्थित हो गई। तुम सावधानी से मेरी रक्षा करो।

इन्द्र ने कहा—देवि, मैंने तुमको चार हिस्सों में बाँटकर स्थापित कर दिया है। जो कोई चोरी आदि करके तुम्हारा अमङ्गल करेगा उसे मैं दण्ड दूँगा।

इस प्रकार बलि को त्यागकर इन्द्र के पास लक्ष्मी के चले जाने पर बलि ने कहा—इन्द्र! काल के प्रभाव से सूर्य पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर, चारों दिशाओं में तपते हैं। जब जिस दिशा में वे देख पड़ते हैं तब उस दिशा के लोग सुखी और जहाँ नहीं देख पड़ते वहाँ के लोग दुखी होते हैं। जैसे मनुष्य सूर्य को देखने और न देखने से सुखी और दुखी होते हैं वैसे ही मैं इस समय तुमसे परास्त होकर दुखी हुआ हूँ और समय आने पर तुमको परास्त करके सुखी ३१ हूँगा। जब सूर्य आकाश-मण्डल में एक स्थान पर स्थिर रहकर सब लोकों को भस्म कर देंगे और जब इस वैवस्वत मन्वन्तर का अन्त हो जायगा तब मैं देवासुर-संग्राम में तुमको जीतूँगा।

इससे कुपित होकर इन्द्र ने कहा—बलि ! ब्रह्माजी ने मुझे मना किया है इससे मैं तुम्हारे सिर पर वज्र नहीं मारता। अब तुम चाहे जहाँ चले जाओ। सूर्य आकाश में स्थिर होकर कभी संसार को भस्म न करेंगे। ब्रह्माजी ने पहले ही जो नियम बना दिया है उसी नियम के अनुसार वे सब लोकों को तपाते हुए हमेशा घूमते रहेंगे। वे छः महीने उत्तरायण और छः महीने दक्षिणायन रहते हुए सब लोकों को गरमी और सरदी पहुँचाते रहेंगे।

भीष्म ने कहा—धर्मराज, इन्द्र के यों कहने पर दानवराज बलि दक्षिण दिशा को चले ३८ गये और इन्द्र ने भी अपने घर की राह ली।

दो सौ छब्बीस अध्याय

इन्द्र और नमुचि का संवाद। इन्द्र के पूछने पर नमुचि का
सोच की निरर्थकता बतलाना

भीष्म कहते हैं—धर्मराज, मैं अब अहङ्कार त्यागने के विषय में इन्द्र और नमुचि का संवाद सुनाता हूँ। प्राणियों की उत्पत्ति और विनाश का हाल जाननेवाले नमुचि, ऐश्वर्यहीन

होने पर भी, समुद्र के समान विचलित नहीं हुए। इन्द्र ने उनके पास जाकर पूछा—दैत्यराज! तुम राज्य से भ्रष्ट, शत्रु के वशीभूत और वन्दी होने पर भी किसी प्रकार का सोच क्यों नहीं करते?

नमुचि ने कहा—देवराज, सोच करने से अपने शरीर को दुःख देने और शत्रुओं को प्रसन्न करने के सिवा और कोई सहायता नहीं मिलती। इसी से मैं सोच नहीं करता। संसार में जो कुछ देख पड़ता है वह सब नश्वर है। सन्ताप करने से रूप, श्री, आयु और धर्म का नाश हो जाता है। अतएव बुद्धिमान् मनुष्य सन्ताप को छोड़कर हृदय में स्थित परमात्मा का ध्यान करे। परमात्मा का ध्यान करने से मनुष्यों की सब कामनाएँ सिद्ध होती हैं। परमात्मा के सिवा दूसरा कोई इस संसार का नियन्ता नहीं है। वह परमात्मा गर्भ में स्थित बालक की भी देख-रेख करता है। जैसी प्रभु की आज्ञा होती है वैसा ही किया करता हूँ। मैं बन्धन और मोक्ष दोनों को जानता हूँ, तो भी कल्याणकारी मोक्ष के प्राप्त करने का उपाय नहीं कर सकता। परमात्मा से नियुक्त किया हुआ मैं कभी धर्म और कभी अधर्म में प्रवृत्त होता हूँ। जो जिसे मिलना चाहिए वह उसे अवश्य मिलता है। होनहार को कोई नहीं टाल सकता। १० विधाता ने प्राणियों को बार-बार जिस-जिस गर्भ में रहने को नियुक्त कर दिया है उन्हें उन गर्भों में रहना पड़ता है। कोई प्राणी अपनी इच्छा के अनुसार गर्भ में नहीं जाता। जो मनुष्य सुख और दुःख आ जाने पर होनहार को ही उसका कारण मानता है वह कभी मोहित नहीं होता। काल के प्रभाव से ही मनुष्य सुख-दुःख पाता है। कोई मनुष्य किसी को सुख-दुःख नहीं दे सकता। अतएव अपने को कर्त्ता समझना मूर्खता है। तपस्वी, देवता, दानव, वेदों के जानकार और वनवासी मुनि, किस पर विपत्ति नहीं आती? किन्तु भले-बुरे के जानकार महात्मा लोग विपत्ति को देखकर घबरा नहीं जाते। हिमालय के समान स्थिर स्वभाववाले पण्डितों को कभी क्रुद्ध, विषयासक्त, दुखी या प्रसन्न नहीं देखा जाता। वे लोग भारी विपत्ति में भी सोच नहीं करते। बहुत सा धन मिलने पर जो प्रसन्न नहीं होते, दुःख पड़ने पर जो मोहित नहीं होते और सुख, दुःख तथा सुख-दुःख मिली हुई अवस्था का जो सावधानी से भोग करते हैं वे धुरन्धर मनुष्य हैं। मनुष्य चाहे जिस अवस्था में हो, उसे सन्ताप छोड़कर सन्तोष करना चाहिए। जिस सभा में मनुष्यों को धर्म-अधर्म का भय न हो वह सभा ही नहीं है और उस सभा के लोग सभ्य कहलाने योग्य नहीं। जो बुद्धिमान् मनुष्य धर्म के मर्म को जानकर उसके अनुसार काम करता है वही सभ्य है। बुद्धिमान् मनुष्य का काम अति दुर्ज्ञेय है। वह मोह के समय भी मोहित नहीं होता। महर्षि गौतम, गृहस्थाश्रम नष्ट होने के कारण, घोर विपत्ति में पड़ने पर भी मोहित नहीं हुए थे। जब मनुष्य मन्त्र के बल, पराक्रम, बुद्धि, पौरुष, चरित्र, व्यवहार और धन के प्रभाव से किसी अलभ्य वस्तु को नहीं प्राप्त कर सकता तब किसी वस्तु के प्राप्त न होने पर रोना-धोना व्यर्थ है। विधाता ने जो काम मेरे लिए २०

निर्दिष्ट कर दिये हैं उन्हीं को मैं करता हूँ। इसलिए मुझे मौत से रत्ती भर भी डर नहीं है। जो सुख-दुःख मिलना है वह अवश्य मिलेगा। जो वस्तु मिलनी है वही मिलेगी और जिस स्थान को जाना है वहाँ जाना पड़ेगा। जो मनुष्य इन बातों को अच्छी तरह जानकर मोहित २३ नहीं होता वह दुःख के समय को भी निर्विघ्न बिता देता है और वास्तव में वही धनवान् है।

दो सौ सत्ताईस अध्याय

इन्द्र और बलि का संवाद। बलि द्वारा काल की महिमा का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, आप हमारे हितचिन्तक हैं। अतएव मुझे बतलाइए कि बन्धुओं के मरने और राज्य का नाश होने के कारण घोर विपत्ति में पड़ जाने पर राजा अपने कल्याण के लिए क्या करे।

भीष्म ने कहा—धर्मराज, स्त्री-पुत्र के मरने या धन का नाश होने की घोर विपत्ति आ पड़ने पर धैर्य रखने में ही मनुष्य की भलाई है। धैर्य रखने से शरीर नष्ट नहीं होता। जो मनुष्य चिन्ता नहीं करता वह हमेशा सुखी और नीरोग रहता है। नीरोग रहने से शरीर में तेज रहता है। जो बुद्धिमान् मनुष्य सात्त्विक वृत्ति से रहता है उसी में धैर्य, ऐश्वर्य और अच्छे कामों के करने का उत्साह हो सकता है। यहाँ इन्द्र और बलि का संवाद फिर सुनाता हूँ। पहले देवताओं और दानवों में घोर संग्राम हुआ था। इस युद्ध में असंख्य दैत्य-दानवों का संहार हो गया। अन्त को दैत्यराज बलि तीनों लोकों के अधीश्वर हुए। कुछ दिनों बाद भगवान् विष्णु ने वामन का रूप धारण करके, बलि को धोखा देकर, इन्द्र को तीनों लोकों का राजा बना दिया। राजा हो जाने पर इन्द्र को देवता लोग यज्ञ कराने लगे, चारों वर्णों के नियम स्थापित हुए और तीनों लोक समृद्धिशाली हो उठे, इससे ब्रह्माजी बहुत प्रसन्न हुए। अब इन्द्र सुन्दर चार दाँतोंवाले ऐरावत हाथी पर सवार होकर अश्विनीकुमार, रुद्र, वसु, आदित्य, ऋषि, गन्धर्व, साँपों के राजा, सिद्धगण और अन्यान्य देवताओं के साथ तीनों लोकों में घूमने १० लगे। घूमते-घूमते उन्होंने समुद्र के किनारे एक कन्दरा में दानवराज बलि को देखा। वे उनके पास गये। ऐरावत पर सवार, देवताओं समेत, इन्द्र को देखकर दानवराज बलि को न तो भय हुआ और न कुछ दुःख ही। उनको निडर और निश्चिन्त देखकर इन्द्र ने पूछा—दानवराज, तुम निडर क्यों हो? तुम वीरता से ऐसे शान्त हो या वृद्धों की सेवा से, तप से या धैर्य से? इस प्रकार शान्त रहना तो बहुत कठिन है। तुम पहले अपने बाप-दादे का राज्य करते थे, अपने जातिवालों में श्रेष्ठ होकर अनेक सुख भोगते थे; किन्तु अब

शत्रुओं ने तुम्हारा सर्वस्व छीन लिया है। स्त्री तक को तुम्हारे पास नहीं रहने दिया। तुम हमारे वज्र से आहत हुए और वरुण के पाश में बाँधे जाकर हमारे अधीन हो गये। अब तुम्हारा वह ऐश्वर्य और तेज कुछ भी नहीं रह गया। इतने पर भी तुमको पछतावा नहीं है, इसका क्या कारण है? ऐसी दशा में चिन्ता न करना बहुत कठिन है। तुम बड़े धैर्यवान् हो। तीनों लोकों का राज्य नष्ट हो जाने पर तुम्हारे सिवा दूसरा कौन जीवित रह सकता है?

इन्द्र ने इस प्रकार की और भी कड़वी बातें कहकर जब बलि का अनादर किया तब उन्होंने कहा—देवराज, मैं अब तुम्हारे अधीन हो गया हूँ इसलिए मेरा अनादर करने में तुम्हारी वीरता नहीं है। आज तुम मेरे सामने वज्र उठाये खड़े हो। पहले तुम बिलकुल अशक्त थे, अब कुछ शक्तिमान् हुए हो। तुम्हारे सिवा दूसरा कोई व्यक्ति, इस अवस्था में, मुझसे ऐसी कड़वी बातें न कहता। शत्रु को अधीन करके, स्वयं बलवान् होने पर भी, जो शत्रु पर दया करता है वही पुरुष है। दो व्यक्तियों में युद्ध होने पर किसी एक का विजयी होना पहले से निश्चित नहीं रहता। युद्ध में एक पक्ष की विजय और दूसरे की पराजय अवश्य होती है। अतएव तुम यह समझकर, कि मैंने अपने पराक्रम से तीनों लोकों के अधीश्वर को जीत लिया, गर्व न करो। तुम्हारी उन्नति और मेरी अवनति का कारण न तो मैं हूँ और न तुम्हीं हो। पहले जो मेरा आधिपत्य था उसे अब तुमने प्राप्त किया है; किन्तु एक दिन मेरी सी दुर्दशा तुम्हारी भी होगी। अतएव तुम मुझे जीतकर, वीरता का गर्व करके, मेरा अनादर न करो। मनुष्य दुःख के बाद सुख और सुख के बाद दुःख भोगता रहता है। तुम भी उसी क्रम से इन्द्र हुए हो। तुमने अपनी वीरता से तीनों लोकों को नहीं जीता। हम तुम दोनों ही काल के अधीन हैं, इसी से मैं इस समय तुम्हारे समान आधिपत्य नहीं पा सकता हूँ और तुम भी मेरी सी दुर्दशा में नहीं हो। माता-पिता की सेवा और देव-पूजा करने से कोई मनुष्य, काल के विरुद्ध, सुखी नहीं हो सकता। विद्या, तपस्या, दान और बन्धु-बान्धव कोई भी समय के सताये मनुष्य की रक्षा नहीं कर सकते। काल के द्वारा होनेवाले अनर्थ, बुद्धि-बल के सिवा, अन्य उपायों से नहीं हटाये जा सकते। समय के फेर में पड़े हुए मनुष्य की रक्षा कोई नहीं कर सकता। अतएव जब सब काम काल के प्रभाव से ही होते हैं तब तुम जो अपने को कर्ता समझते हो, यह दुःख की बात है। यदि मनुष्य कर्ता होता तो उसका उत्पन्न करनेवाला कोई न होता; जब कि मनुष्य दूसरे से उत्पन्न होता है तब कर्ता कैसे कहला सकता है? काल के प्रभाव से मैंने तुमको जीता था और काल के फेर से ही अब तुमने मुझे जीत लिया है। काल के प्रभाव से ही सब मनुष्य अपने-अपने काम करते हैं। सब मनुष्य काल के ही वश में हैं। तुम अपनी साधारण बुद्धि से नहीं समझ पाते हो कि एक दिन प्रलयकाल आवेगा। तुमने अपने पराक्रम से इन्द्रत्व प्राप्त किया है, यह समझकर दूसरे लोग तुम्हारी प्रशंसा भले ही करें; किन्तु

मुझे उससे तनिक भी दुःख नहीं होता। संसार की गति जाननेवाला मेरे समान कोई व्यक्ति, दुःख की अवस्था में, अपने को काल के फेर में पड़ा हुआ समझकर क्या कभी शोक और मोह के वशीभूत हो सकता है ? मेरी या मेरे समान अन्य व्यक्ति की बुद्धि क्या कभी, काल के फेर से आई हुई, विपत्ति के समय टूटे हुए जहाज़ के समान नष्ट हो जाती है ? क्या तुम्हारी, क्या मेरी और क्या आगे होनेवाले दूसरे इन्द्र की, सभी की पहले के इन्द्रों की सी गति होगी। तुम इस समय बड़े दुर्धर्ष ४० और अपने तेज से प्रकाशमान हो रहे हो; किन्तु समय आने पर तुम भी मेरी सी दुर्दशा भोगोगे। अब तक हज़ारों इन्द्र हो चुके हैं; किन्तु काल को कोई नहीं लाँघ सका। तुम तीनों लोकों का आधिपत्य पाकर, सब प्राणियों की उत्पत्ति करनेवाले ब्रह्मा के समान, अपने को श्रेष्ठ समझते हो; परन्तु स्मरण रक्खो, किसी का ऐश्वर्य चिरस्थायी नहीं होता। मूर्खता से तुम अपने ऐश्वर्य को स्थायी समझते हो। तुम काल के फेर से विश्वास के अयोग्य पर विश्वास करते हो और अनिश्चित विषय को निश्चित समझते हो। तुम मोह के वश में होकर ही राजलक्ष्मी को अपनी समझते हो; किन्तु लक्ष्मी किसी की नहीं हुई। यह बहुतों के पास रही, पर निभाया किसी को नहीं। आज यह तुम्हारे पास है; किन्तु कुछ दिनों बाद, जैसे गाय एक स्थान को छोड़कर दूसरे स्थान पर चली जाती है वैसे ही यह चञ्चल-स्वभाव की राजलक्ष्मी तुमको छोड़कर किसी दूसरे के पास चली जायगी। तुमसे पहले असंख्य इन्द्र हो चुके हैं और तुम्हारे बाद भी बहुत से इन्द्र होंगे। वृक्षों और ओषधियों से भरी हुई, अनेक रत्नों से सम्पन्न, समुद्र समेत इस पृथिवी का भोग पहले जितने राजा कर गये हैं आज वे कहाँ हैं ? पृथु, ऐल, मय, भीम, नरक, ५० शम्बर, अश्वग्रीव, पुलोमा, राहु, अमितध्वज, प्रह्लाद, नमुचि, दक्ष, विप्रचित्ति, विरोचन, ह्रीनिषेव, सुहोत्र, भूरिहा, पुष्पवान्, वृष, सत्येषु, ऋषभ, बाहु, कपिलाश्व, विरूपक, बाण, कार्तस्वर, वह्नि, विश्वदंष्ट्र, नैर्ऋति, सङ्कोच, वरीताक्ष, वराहाश्व, रुचिप्रभ, विश्वजित्, प्रतिरूप, वृषाण्ड, विष्कर, मधु, हिरण्यकशिपु और कैटभ आदि महापराक्रमी असंख्य दैत्य-दानव और राक्षस राजा हो गये हैं। इनमें से किसी को काल ने नहीं छोड़ा। काल बड़ा बली है। हे देवराज, कुछ तुम्हीं ने सौ यज्ञ नहीं किये हैं। सभी इन्द्र सौ-सौ यज्ञ कर गये हैं और सब धर्मपरायण, सदा यज्ञ करनेवाले, आकाशचारी, सम्मुख युद्ध करनेवाले, अस्त्रबल-सम्पन्न, मायावी और कामरूपी थे। उन सब की भुजाएँ परिघ के समान थीं। उनमें से किसी को युद्ध में हारा हुआ नहीं सुना गया। वे सब दाक्षायणी के पुत्र, महापराक्रमी, तेजस्वी, प्रतापी, सत्यवादी, विद्वान्, ६० प्रसिद्ध, इच्छाचारी और यथेष्ट ऐश्वर्यवान् थे। वे सुपात्र को दान देते थे। उनमें से किसी ने ऐश्वर्य का गर्व नहीं किया; किन्तु उन्हें भी काल ने नहीं छोड़ा। हे देवराज, तुम जब इस पृथिवी का भोग कर चुकोगे और यह तुमसे छूट जायगी तब तुम भी अपने शोक को सँभाल न सकोगे। इसलिए सुख भोगने की इच्छा और ऐश्वर्य के गर्व को छोड़ दो। राज्य का नाश

होने पर तुमको भी शोक सहन करना पड़ेगा। अतएव तुम शोक के समय शोक और हर्ष के समय हर्ष न करो। तुम बीती हुई और आनेवाली बातों की चिन्ता को छोड़कर वर्तमान अवस्था में सन्तुष्ट रहो। मैं हमेशा लगन के साथ काम करता हूँ, अतएव जब मुझ पर काल का आक्रमण हुआ तब तुम भी शीघ्र ही काल के फेर में पड़ोगे। तुम ऊटपटाँग बातें कहकर मुझे डरवाने का उद्योग करते हो और मुझे विपत्ति में पड़ा हुआ समझकर अभिमान दिखाते हो। आज मैं काल के फेर में पड़ा हुआ हूँ इसी से तुम मेरे सामने गर्जन-तर्जन कर रहे हो; किन्तु समझ रक्खो कि वह काल तुम्हारे पीछे-पीछे दौड़ रहा है। पहले जब मैं क्रोध करके युद्धभूमि में उतरता था तब क्या मेरे सामने कोई ठहरता था? इस समय तुम्हारा बड़ा भाग्य है जो तुम मेरे सामने ठहर सके हो। इस समय तुम स्वर्ग के अधिकारी हो, किन्तु हज़ार वर्ष बीत जाने पर तुम भी इन्द्रत्व ७० से भ्रष्ट होकर मेरी तरह दुखी होगे। तुमने कोई शुभ काम करके इस अद्भुत जीव-लोक में इन्द्रत्व नहीं पाया है और मैं भी कोई अशुभ कर्म करने से राज्य से भ्रष्ट नहीं हुआ हूँ। तुम्हारी उन्नति और मेरी अवनति का कारण काल ही है। विद्वान् मनुष्य सम्पत्ति, विपत्ति, सुख, दुःख जन्म और मरण में अधिक सुखी या दुखी नहीं होते। हे इन्द्र, तुम मुझे जानते हो और मैं तुम्हें जानता हूँ फिर तुम निर्लज्जता से मेरा अनादर क्यों कर रहे हो? तुम मेरे पराक्रम को पहले ही देख चुके हो। मैंने आदित्य, रुद्र, साध्य, वसु और मरुद्गण को जीत लिया था। देवासुर-संग्राम में सब देवता मुझसे हार गये थे, यह तुम भली भाँति जानते हो। हिंसक जीवों से भरे हुए जङ्गलों से युक्त अनेक पहाड़ मैंने तुम्हारे सिर पर पटक दिये थे; किन्तु इस समय क्या करूँ! काल का फेर बहुत कठिन होता है, उसे कोई नहीं हटा सकता। यदि मैं काल के फेर में न होता तो एक घूँसा मारकर वज्र समेत तुमको गिरा देता। परन्तु करूँ क्या, यह समय सह लेने का है—पराक्रम दिखलाने का नहीं। इसी से तुम्हारी इन बातों को सहे लेता हूँ। मैं काल-रूपी अग्नि ८० से ढका हुआ और काल के पाश में बँधा हुआ हूँ, इसी से तुम मेरा अनादर कर रहे हो। दुरतिक्रमणीय कालरूपी भीषण पुरुष ने, पशु के समान, मुझे बाँध रक्खा है। लाभ-हानि, सुख-दुःख, जन्म-मरण और बन्धन-मोक्ष, सब काल के ही प्रभाव से होते हैं। तुम या मैं कोई किसी विषय का कर्ता नहीं है। काल ही सबका कर्त्ता है। वही काल मुझे, वृक्ष में स्थित फल के समान, परिपक्व अवस्था में ले आया है। पुरुष जिन कामों के करने से सुखी होता है उन्हीं कामों को करता हुआ वह, काल के फेर से, दुःख भोगता है। अतएव जो मनुष्य काल की महिमा को जानता है उसे, काल का आक्रमण होने पर, शोक न करना चाहिए। शोक करने से दुःख नहीं मिट सकता, बल्कि शक्ति का नाश हो जाता है। इसी से मैं बेखटके हूँ।

बलि के यों कहने पर कुपित होकर इन्द्र ने कहा—बलि! वरुण का पाश और वज्र उठाये हुए मेरे बाहु को देखकर दूसरों की बात तो दूर रही, सबका नाश करनेवाली मौत भी

९० डरती है; किन्तु तुम अपनी तत्त्वदर्शिता के प्रभाव से इस समय दुखी नहीं होते हो। निस्सन्देह तुम बड़े धैर्यवान् हो। संसार को नश्वर समझकर कौन व्यक्ति धन और शरीर पर विश्वास करेगा? मैं भी तुम्हारी तरह इस लोक को अनित्य और कालरूपी अग्नि में पड़ा हुआ समझता हूँ। इस लोक में छोटे-बड़े सभी काल का ग्रास हो जाते हैं। कोई भी काल का ईश्वर नहीं है। काल सावधानी से हमेशा प्राणियों का शासन करता और असावधान मनुष्यों पर दृष्टि जमाये रहता है। काल सृष्टि के आरम्भ से सब पर समान आधिपत्य करता आ रहा है। न तो प्राचीन समय में कोई काल का उल्लङ्घन कर सका है और न इस समय कर सकता है। जैसे-बनिया अपनी बढ़ी हुई चीज़ों को समेटता है वैसे ही काल काष्ठा, कला, क्षण, पहर, दिन-रात और मास आदि अपने सूक्ष्म अंशों को एकत्र करके स्थूल करता है। अनेक लोग 'मैं यह काम आज करूँगा, वह काम कल करूँगा' इस तरह के इरादे किया करते हैं; किन्तु वे अपने अभीष्ट कामों को किये बिना ही मृत्यु के मुँह में चले जाते हैं। जो व्यक्ति मर जाता है उसे लोग 'अरे, कल तो मैंने इन्हें देखा था, कैसे मर गये' कहकर रोते हैं। धन, सुख, ऐश्वर्य

१०० और प्राण कुछ भी स्थायी नहीं है। काल सबको हर लेता है। उन्नत का अधःपात और विद्यमान का नाश अवश्य होता है। सभी पदार्थ अनित्य हैं, ऐसा निश्चय करना बहुत कठिन है। संसार को काल के वशीभूत और अनित्य समझ लेना कोई सरल काम नहीं है। तुम्हारी बुद्धि अचल और तत्त्वदर्शिनी है, इसी से तुम दुखी नहीं होते। तुम पहले तीनों लोकों के अधीश्वर थे और अब उस बात को मन में भी नहीं लाते हो। काल छोटे-बड़े की परवा नहीं करता; वह तो आक्रमण करके सभी का संहार कर डालता है। मनुष्य काल के वशीभूत रहने पर भी उसके प्रभाव को न जानकर ईर्ष्या, काम, क्रोध, लोभ, भय और मोह में आसक्त रहता है। किन्तु तुम अपने तप, तत्त्वज्ञान और विद्या के प्रभाव से करामलकवत् काल को अच्छी तरह देखते हो। तुम काल की गति के जानकार, सब शास्त्रों के ज्ञाता, पुण्यात्मा और पण्डितों में प्रशंसनीय हो। जान पड़ता है, तुम बुद्धिबल से सब लोकों का ज्ञान प्राप्त करके सबसे मुक्त हो गये हो। तुमको कभी मोह और विषयों में अनुराग नहीं होता। तुम राग-द्वेष से शून्य हो। तुम जितेन्द्रिय हो, इसी से रजोगुण और तमोगुण तुम्हें स्पर्श नहीं करते। तुमको सब प्राणियों का सुहृद्, वैरभावशून्य और शान्तचित्त देखकर मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हुआ हूँ।

१० तुम जैसे ज्ञानी को, बन्धन की दशा में, मार डालने की मेरी इच्छा नहीं है। इस समय मुझे तुम पर दया आती है। अब मैं तुम्हारे साथ नृशंसता न करूँगा। तुम्हारा कल्याण हो। समय के फेर से प्रजा के अधार्मिक होने पर तुम वरुण के पाश से छूट जाओगे। जब बहू बूढ़ी सास पर हुकूमत करेगी और पुत्र मोह के वश होकर पिता को काम में लगावेगा, शूद्र बेधड़क होकर ब्राह्मणों से पैर धुलावेंगे और ब्राह्मणी के साथ भोग करेंगे तब तुम सब बन्धनों

वह नक्षत्रों के समान चमकीले आभूषण पहने, मोतियों की माला धारण किये, साक्षात् लक्ष्मी का मनोहर वेष रक्खे—अप्सराओं के आगे आगे—अग्नि की शिखा के समान, उनकी ओर आने लगी।—पृ० २६७७

से छूट जाओगे; पुरुष जब योनि के अतिरिक्त अन्यत्र वीर्य गिरावेंगे, अपवित्र पात्र में पूजा का सामान रक्खेंगे और जब चारों वर्ण मर्यादाहीन हो जायँगे तब तुम एक-एक करके सब बन्धनों से छूट जाओगे। अब तुम मेरी ओर से बेखटके रहो। तुम निश्चिन्त और नीरोग होकर समय की प्रतीक्षा करो।

ऐरावत हाथी पर सवार इन्द्र दानवराज बलि से यों कहकर और अन्यान्य असुरों को जीतकर तीनों लोकों को अपने अधिकार में करके बहुत प्रसन्न हुए। महर्षि लोग उनकी स्तुति करके अग्नि में विधिपूर्वक आहुति देने लगे। देवता लोग इन्द्र को अमृत देकर निश्चिन्त हो गये। महातेजस्वी इन्द्र इस प्रकार इन्द्रत्व पाकर बड़े आनन्द से अपने लोक को गये। ११९

दो सौ अट्ठाईस अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर को भावी उन्नति और अवनति के लक्षण बतलाते हुए इन्द्र और लक्ष्मी का संवाद कहना

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, मनुष्यों की भावी उन्नति और अवनति के पूर्व लक्षण क्या हैं?

भीष्म ने कहा—धर्मराज, मनुष्यों को उनका मन भावी उन्नति और अवनति के लक्षण बतला देता है। इस सम्बन्ध में लक्ष्मी और इन्द्र का संवाद सुनो। ब्रह्माजी के समान तेजस्वी निष्पाप महातपस्वी नारद, अपनी तपस्या के प्रभाव से, ब्रह्मलोक-निवासी ऋषियों के तुल्य होकर इच्छा के अनुसार तीनों लोकों में घूमने लगे। वे एक दिन प्रातःकाल उठकर, स्नान करने की इच्छा से, ध्रुवलोक में गङ्गा-किनारे गये। उसी समय शम्बर का नाश करनेवाले वज्रधारी इन्द्र भी वहाँ आये। महर्षि नारद और इन्द्र स्नान तथा नित्य कर्म करके गङ्गा-किनारे चमकीली बालू से परिपूर्ण पृथिवी पर बैठकर देवर्षियों की कही हुई प्राचीन कथा कहने लगे। थोड़ी देर बाद किरणें फैलाते हुए सूर्यदेव उदय हुए। तब नारद और इन्द्र ने उठकर भक्ति से १० उनकी स्तुति की। उसी समय सूर्य के समीप, उन्हीं के समान प्रकाशवाली, एक और ज्योति देख पड़ी। उस ज्योति का तेज तीनों लोकों में फैल गया। इन्द्र और देवर्षि नारद उस ज्योति को देखने लगे। अब वह ज्योति धीरे-धीरे उनकी ओर चली। वह नक्षत्रों के समान चमकीले आभूषण पहने, मोतियों की माला धारण किये, साक्षात् लक्ष्मी का मनोहर वेष रक्खे—अप्सराओं के आगे-आगे—अग्नि की शिखा के समान, उनकी ओर आने लगी। देखते-देखते कमलों में निवास करनेवाली कमला देवी विमान से उतरकर तीनों लोकों के अधीश्वर इन्द्र और देवर्षि नारद के पास आ गई। नारद समेत इन्द्र ने देवी की पूजा करके हाथ जोड़कर कहा—सुन्दरी, आप कौन हैं? कहाँ से किसलिए यहाँ आई हैं और अब आपको कहाँ जाना है?

लक्ष्मी ने कहा—देवराज, संसार में स्थावर-जङ्गम सभी प्राणी मुझे पाने के लिए यत्न करते
२० हैं। मैं सब प्राणियों के ऐश्वर्य के निमित्त, सूर्य की किरणों द्वारा विकसित, कमल से उत्पन्न हुई हूँ। मैं लक्ष्मी, भूति, श्री, श्रद्धा, मेधा, सन्नति, विजिति, स्थिति, धृति, सिद्धि, स्वाहा, स्वधा, नियति, स्मृति और तुम्हारी सम्पत्ति-स्वरूप हूँ। मैं विजय करनेवाले धार्मिक राजाओं के सेनापति, ध्वज, राज्य और अन्तःपुर में तथा डटकर संग्राम करनेवाले सत्यवादी, धर्मात्मा, बुद्धिमान्, ब्रह्मनिष्ठ, दानशील वीरों में निवास करती हूँ। मैं पहले सत्य-धर्म के बन्धन में रहकर असुरों के यहाँ रहती थी; किन्तु अब उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है इसलिए तुम्हारे पास आना चाहती हूँ।

इन्द्र ने पूछा—देवि, आपने पहले दैत्यों का आश्रय क्यों लिया था और अब उन्हें त्यागकर मेरे पास क्यों आना चाहती हैं?

लक्ष्मी ने कहा—देवराज! जो मनुष्य धैर्यवान्, अपने धर्म में निरत, स्वर्ग के अभिलाषी और सत्त्वगुणी होते हैं उन्हीं पुरुषों पर मैं अनुरक्त रहती हूँ। दानव लोग पहले दान, अध्ययन और यज्ञ करते थे। वे देवताओं और पितरों की आराधना, गुरु और अतिथि का
३० सत्कार करते तथा सत्यवादी होते थे। वे जितेन्द्रिय, दान्त, ब्राह्मणों के हितैषी, श्रद्धावान्, क्रोधहीन और ईर्ष्यारहित थे। पुत्र, स्त्री और मन्त्रियों का पालन करते थे। वे कभी क्रोध करके आपस में लड़ते-झगड़ते नहीं थे। दूसरे का ऐश्वर्य देखकर डाह नहीं करते थे। वे दाता, गृहीता, आर्य, विनीत, सरल, दृढ़ भक्त, कृतज्ञ, प्रियवादी, लज्जावान् और व्रतधारी थे; वे पर्व के दिनों में नित्य स्नान करते थे। वे लोग विद्वान्, उपवास और तप करनेवाले, विश्वस्त, ब्रह्मवादी, प्रतिष्ठित और धन संग्रह करने में यत्नवान् थे। वे सूर्योदय के पहले उठते थे। वे न तो प्रातःकाल सोते थे और न दिन में ही। वे रात में दही और सत्तू न खाते थे। वे पवित्र और ब्रह्मवादी रहते हुए प्रातःकाल घी और मङ्गल वस्तुओं का दर्शन, ब्राह्मणों की पूजा और आधी रात को शयन करते थे; वे दीन, अनाथ, बूढ़े, दुर्बल, पीड़ित और स्त्रियों पर दया करते थे, उनको धन
४० देते और प्रसन्न रखते थे। डरपोक, खिन्न, घबराये हुए, रोगी, दुर्बल, हृतसर्वस्व और दुखी मनुष्यों को आश्वासन देते थे। वे सब धर्म में तत्पर रहते थे। वे हमेशा सत्य और तप में लगे रहते थे; गुरुओं और वृद्धों की सेवा करते थे। वे देवताओं, पितरों और अतिथियों का सत्कार करते और उनसे बचा हुआ भोजन करते थे। वे न तो अकेले भोजन करते थे और न परस्त्री-गमन करते थे। वे सब प्राणियों पर दया करते थे। वे लोग शून्य स्थान में, पशुओं में और अयोनि में वीर्यपात नहीं करते थे। वे पर्व के दिनों में मैथुन नहीं करते थे। वे सब दान, दक्षता, सरलता, उत्साह, निरहङ्कार, मित्रभाव, सत्य, तपस्या, पवित्रता, दया, प्रिय वाक्य और मित्रों के साथ अद्रोह आदि श्रेष्ठ गुणों से युक्त थे। निद्रा, आलस्य, द्वेष, ईर्ष्या, असावधानी, विषाद और आसक्ति आदि दोष उनमें नहीं थे।

उक्त गुणों से युक्त होने के कारण सृष्टि के आरम्भ से लेकर अभी तक मैं दानवों के पास रही हूँ। काल के प्रभाव से अब वे लोग सब गुणों को त्यागकर काम और क्रोध के वशीभूत हो गये हैं। उनमें धर्म नहीं रह गया है। धार्मिक बूढ़े सभासदों के धर्म की बात कहने पर ५० युवक लोग उनकी हँसी उड़ाते और उनसे ईर्ष्या करते हैं। धर्मात्मा वृद्धों के आने पर युवक लोग, पहले की तरह, न तो उठकर खड़े होते हैं और न प्रणाम करके उनका सम्मान करते हैं। पिता के मौजूद रहने पर पुत्र मालिक बन बैठता है। दासत्व स्वीकार करके भी निर्लज्जता से अपने को स्वाधीन बतलाते हैं और निन्द्य काम करके धन संग्रह करना चाहते हैं। रात में ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाते हैं। अब अग्नि का तेज कम हो गया है। पुत्र पिता की आज्ञा नहीं मानते और स्त्री स्वामी का कहना नहीं मानती। वे सन्तान की रक्षा नहीं करते; माता, पिता, गुरु, वृद्ध, आचार्य और अतिथि में श्रद्धा नहीं रखते। भीख नहीं देते; देवता, अतिथि और गुरु का सत्कार किये बिना भोजन कर लेते हैं। उनके रसोइये बड़ी अपवित्रता से रसोई बनाते हैं और बड़े-बूढ़ों के मना करने पर भी भोजन की सब सामग्री खुली हुई रखते हैं। अन्न बिखरा पड़ा रहता है जिसे पशु-पक्षी ख़राब किया करते हैं और दूध खुला हुआ रहता है। वे लोग जूठे हाथ से घी छू लेते हैं। कुदाल, फावड़ा, पिटारी और बर्तन घर में इधर-उधर पड़े रहने पर स्त्रियाँ उनकी परवा नहीं करतीं। वे घर की चहारदीवारी या दीवार गिर जाने पर उसे नहीं बनवाते। ६० पशुओं को बाँधकर उन्हें चारा-पानी नहीं देते। नौकरों और लड़कों के सामने, उन्हें दिये बिना, स्वयं चीज़ें खाते हैं। वे लोग वृथा-मांस खाते और अपने ही भोजन के लिए खीर, खिचड़ी (कृसर), पुआ और पूड़ी बनवाते हैं। दिन निकल आने पर भी वे लोग शय्या नहीं छोड़ते। उनके घरों में दिन-रात झगड़े हुआ करते हैं। वे लोग बड़े-बूढ़ों का सम्मान नहीं करते। वे सब धर्म-भ्रष्ट होकर आश्रमवासियों से द्वेष रखते हैं। उनमें कोई भी पवित्र नहीं रहता। वे वर्णसङ्कर होने लगे। वे न तो वेदज्ञ ब्राह्मणों का सम्मान करते और न वेदहीन ब्राह्मणों को दण्ड देते हैं। दासियाँ दुराचार करती हुई माला और कङ्कण आदि पहनने लगीं। स्त्रियाँ पुरुष का वेष और पुरुष स्त्री का वेष बनाकर क्रीड़ा करने में बड़े प्रसन्न होते हैं। पूर्वजों द्वारा सत्पात्र में दान दिये जाने का फल उनके पुत्र-पौत्र आदि को मिल चुका; किन्तु नास्तिकता के कारण उनमें अब कोई उस फल के भोगने का अधिकारी नहीं है। किसी की कोई चीज़ खो जाती है तो वह विश्वासपात्र मित्र पर सन्देह करके उससे उस चीज़ के बाबत पूछने लगता है। ७ अच्छे वंश में उत्पन्न लोग भी दूसरों का धन हड़प लेने की घात में रहने लगे हैं। शूद्र तपस्या करने लगे और कोई-कोई तो वृथा नियम करके और कोई बिना नियम के ही अध्ययन करते हैं। कोई-कोई शिष्य गुरु की सेवा नहीं करते और कुछ गुरु लोग शिष्यों के साथ मित्रता का व्यवहार करते हैं। बूढ़े पिता-माता पुत्र पर दबाव रखने में असमर्थ होकर दीन भाव से उससे भोजन

माँगते हैं। आचार्य लोग शिष्यों की रुचि के अनुसार प्रातःकाल उनसे कुशल पूछते और उनके कहने पर चलते हैं। समुद्र के समान गम्भीर, विद्वानों में श्रेष्ठ बुद्धिमान् मनुष्य खेती आदि करने लगे हैं। मूर्ख लोग श्राद्ध में भोजन करते हैं। सास-ससुर के सामने बहू नौकरों पर हुकूमत करती और गर्व के साथ अपने स्वामी को बुलाकर उससे बातचीत करती है। पिता बड़े यत्न से पुत्र को प्रसन्न रखता है। अनेक लोग तो क्रोध से पुत्रों को धन बाँटकर स्वयं कष्ट भोगते हैं। किसी का धन राजा या चोरों द्वारा हरे जाने अथवा आग से जल जाने पर उसके भाई-बन्धु उससे द्वेष करके उसकी हँसी उड़ाते हैं। सारांश यह कि दानवों के वंश में सब के सब कृतघ्न, नास्तिक, पापी, गुरु की स्त्री हरनेवाले, अभक्ष्यभोजी, नियमहीन और श्रीभ्रष्ट हो गये हैं।

हे देवेन्द्र, दानवों के इस प्रकार दुराचारी हो जाने के कारण अब मैं उनके पास नहीं
८० रहूँगी। इसी से तुम्हारे पास आई हूँ। तुम मेरी संवर्धना करो; इससे सब देवता भी मेरा सम्मान करेंगे। मैं जहाँ रहती हूँ वहीं मेरी प्रिय सखी जया, आशा, श्रद्धा, धृति, क्षान्ति, विजिति, सन्नति और क्षमा, ये आठ देवियाँ भी रहती हैं। जया सब से श्रेष्ठ है। हम सब इस समय असुरों का त्याग करके तुम्हारे पास आई हैं। अब हम धर्मपरायण देवताओं के पास रहेंगी।

लक्ष्मी के यों कहने पर देवर्षि नारद और इन्द्र ने उनको प्रसन्न करने के लिए बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। उसी समय शीतल सुगन्धित पवन देवताओं के घरों में मन्द-मन्द चलने लगा। सब देवता लक्ष्मी सहित इन्द्र को बैठे हुए देखने की लालसा से पवित्र स्थानों में बैठ गये। अब हरे रङ्ग के घोड़े जुते हुए रथ पर सवार होकर इन्द्र, लक्ष्मी और अपने प्रिय मित्र महर्षि नारद के साथ, अपनी सभा को गये। वहाँ देवताओं ने उनका बड़ा सम्मान किया। तब नारद ने इन्द्र के मन का
९० भाव समझकर, लक्ष्मी के सम्मानार्थ, महर्षियों समेत उनसे स्वागत-प्रश्न किया। अब स्वर्ग से अमृत की वर्षा होने लगी। सब नगाड़े अपने-आप बजने लगे। दिशाएँ प्रसन्न और शोभित हो उठीं। अन्न पैदा करने के लिए बादल ठीक समय पर बरसने लगे। अब कोई धर्म के मार्ग से विचलित नहीं होता। पृथिवी सब रत्नों की खानि हो गई। सर्वत्र वेद की ध्वनि होने लगी। सब मनुष्य पुण्यात्मा, मनस्वी और सदाचारी हो गये। देवता, किन्नर, यक्ष, राक्षस और मनुष्य समृद्धिशाली तथा उदार हो गये। हवा चलने पर वृक्षों से, फलों की कौन कहे, फूल भी अकाल में नहीं गिरते। सब गायें दूध देनेवाली और कामधेनु हो गईं। कोई किसी को कड़वी बात नहीं कहता।

हे धर्मराज, इन्द्र आदि देवता इस प्रकार लक्ष्मी का सम्मान करने लगे। जो ब्राह्मणों की सभा में जाकर इसका पाठ करते हैं उनके सब मनोरथ सिद्ध होते हैं और उन्हें लक्ष्मी प्राप्त होती है। तुमने उन्नति और अवनति के विषय में जो पूछा था उसके उदाहरण-स्वरूप मैंने यह
९६ इतिहास कहा है। तुम चित्त को स्थिर करके इसके मर्म को समझो।

दो सौ उन्तीस अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर को वैराग्य का माहात्म्य बतलाते हुए जैगीषव्य और देवल का संवाद कहना

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह ! मनुष्य कैसे चरित्र, आचार, विद्या और पराक्रम के प्रभाव से ब्रह्मपद पा सकता है ?

भीष्म ने कहा कि धर्मराज, मोक्ष-धर्मपरायण मिताहारी जितेन्द्रिय मनुष्य ही माया से रहित ब्रह्मपद को प्राप्त कर सकता है। मैं इस सम्बन्ध में जैगीषव्य और देवल का संवाद सुनाता हूँ। एक बार महर्षि असित देवल ने हर्ष-क्रोध से रहित भगवान् जैगीषव्य से पूछा—महर्षि, आप प्रशंसा करने से प्रसन्न और निन्दा करने से कुपित नहीं होते। मैं जानना चाहता हूँ कि आपकी यह बुद्धि कैसी है। यह आपको कहाँ से मिली और इसका क्या फल है ?

यों पूछे जाने पर महर्षि जैगीषव्य ने असन्दिग्ध, पवित्र और सार्थक वचनों का कहना आरम्भ किया—महर्षि, पुण्य कर्म करनेवाले मनुष्यों ने जिस बुद्धि के प्रभाव से परम गति और शान्ति प्राप्त की है मैं उस बुद्धि का वर्णन करता हूँ। जो स्तुति और निन्दा को समान समझते हैं वे दूसरों की की हुई स्तुति या निन्दा किसी से नहीं कहते। ज्ञानी मनुष्य शत्रु द्वारा निन्दित होने पर भी उसकी निन्दा नहीं करते और मारने के लिए उद्यत मनुष्य को भी मारने की इच्छा नहीं करते; बीती हुई और आनेवाली बातों का सोच न करके वर्तमान कामों को करते हैं। कभी प्रतिज्ञा नहीं करते। पूजा का समय उपस्थित होने पर, व्रत-निरत होकर, यथासाध्य धन १० खर्च करते हैं। हमेशा जितक्रोध और जितेन्द्रिय रहते हैं। मन, वचन और शरीर से न तो किसी का अपकार करते हैं और न किसी की समृद्धि देखकर जलते हैं। जो लोग किसी की निन्दा या प्रशंसा नहीं करते वे अपनी निन्दा या प्रशंसा की भी परवा नहीं करते। सब प्राणियों के हितैषी शान्तबुद्धि मनुष्य ही हर्ष, क्रोध और अपकार को छोड़कर जीव को शरीर से भिन्न समझते और बड़े सुख से विचरते हैं। जिसका कोई शत्रु या मित्र नहीं है और जो स्वयं भी किसी का मित्र या शत्रु नहीं है वह बड़े सुख से रहता है। जो धर्मज्ञ होकर धर्म के अनुसार चलता है वह हमेशा सन्तुष्ट रहता है और जो धर्म के मार्ग को त्याग देता है वह दुःख भोगता है। मैंने धर्म के मार्ग का अवलम्बन कर लिया है तो फिर मैं क्यों दूसरों से निन्दित होकर निन्दा करनेवालों से ईर्ष्या करूँ और प्रशंसा करनेवालों पर प्रसन्न होऊँ ? जो मनुष्य जिससे जिस वस्तु के पाने की इच्छा करता है उसे उससे वही प्राप्त होती है। मुझे उस मनुष्य से कोई ईर्ष्या नहीं है। प्रशंसा या निन्दा से न तो मेरा कुछ लाभ है न हानि ही। तत्त्वदर्शी लोग अपमानित होकर, अपमान को २० अमृत के समान समझकर, सन्तुष्ट होते और सम्मानित होने पर सम्मान को विष-तुल्य जानकर घबरा उठते हैं। जिन महात्माओं में एक भी दोष नहीं होता वे अपमानित होने पर भी सुखी

रहते हैं; किन्तु जो मनुष्य उनका अनादर करते हैं वे बेचैन हो जाते हैं। जो महात्मा परम गति प्राप्त करना चाहते हैं उनकी इच्छा इन्हीं नियमों का पालन करने से पूर्ण होती है। जितेन्द्रिय मनुष्य निष्काम होकर, शास्त्र के अनुसार, सब यज्ञों का अनुष्ठान करके ब्रह्मपद प्राप्त करते हैं।
२५ देवता, गन्धर्व, पिशाच, राक्षस, कोई भी उस पद को नहीं प्राप्त कर सकता।

दो सौ तीस अध्याय

उग्रसेन के पूछने पर श्रीकृष्ण द्वारा नारद के माहात्म्य का वर्णन

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह! संसार में कौन मनुष्य सबका प्रिय, सब गुणों से युक्त और सब प्राणियों का पूज्य है?

भीष्म ने कहा कि महाराज, श्रीकृष्ण ने उग्रसेन से नारद के विषय में जो कहा था वही मैं तुमसे कहता हूँ। एक बार उग्रसेन ने श्रीकृष्ण से कहा—कृष्णचन्द्र, देवर्षि नारद के गुणों की प्रशंसा सब लोग करते हैं इसलिए उनके गुणवान् होने में कोई सन्देह नहीं है। अतएव तुम उनके गुणों का वर्णन करो। तब श्रीकृष्ण ने कहा—भगवन्, देवर्षि नारद के गुणों को संक्षेप में कहता हूँ। वे सच्चरित्र और विद्वान् होने पर भी अपनी सच्चरित्रता और विद्वत्ता का अभिमान नहीं करते। क्रोध, चपलता, भय और आलस्य उनको छू तक नहीं गया। वे सबके पूज्य हैं। उन्होंने काम या लोभ के वश होकर कभी अपने वचन को मिथ्या नहीं किया। वे अध्यात्म-विद्या के विद्वान्, शक्तिमान्, क्षमाशील, जितेन्द्रिय, सरल, सत्यवादी, तेजस्वी, यशस्वी, बुद्धिमान्, विनीत, ज्ञानवान्,
१० वयोवृद्ध, तपोवृद्ध, सुशील, वाग्मी, मृदुभाषी, शुद्ध भोजन करनेवाले, पवित्र और ईर्ष्याहीन हैं। वे हमेशा सबका कल्याण करते रहते हैं। वे सर्वथा निष्पाप हैं। वेद का श्रवण और उच्चारण करके उन्होंने सब विषयों को जीत लिया है। उनको न तो कोई प्रिय है और न अप्रिय। वे सबको समान समझते और सबके पसन्द की बात कहते हैं। वे अनेक शास्त्रों के जानकार, विचित्र बातें कहनेवाले और कामना, शठता, दीनता, क्रोध तथा लोभ से हीन हैं। उन्होंने अर्थ और काम के निमित्त न तो कभी किसी से विवाद किया और न यत्न ही। वे सर्वथा निर्दोष हैं। वे दृढ़ भक्त, अनिन्द्य और दयालु हैं। वे संसर्गहीन होने पर भी संसर्गी के समान देख पड़ते हैं। वे सबके चित्त की वृत्ति को देखते हैं; किन्तु कभी किसी की निन्दा या प्रशंसा नहीं करते। वे कभी किसी
२० शास्त्र से ईर्ष्या नहीं करते। उन्होंने बड़े परिश्रम से यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर लिया है तो भी वे समाधि से तृप्त नहीं हुए। वे न तो ख़ाली रहते हैं और न असावधानी करते हैं। लोग उन्हें अच्छे कामों में नियुक्त करते हैं। वे कभी किसी की गुप्त बात प्रकट नहीं करते। वे धन के मिलने पर प्रसन्न और न मिलने पर दुखी नहीं होते। इसी से सब जगह सब लोग उनका
२४ सम्मान करते हैं। सब गुणों से युक्त ऐसा पुरुष किसकी भलाई न करेगा?

दो सौ इकतीस अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से शुकदेव के प्रति वेदव्यास के उपदेश का वर्णन करना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह! युग-भेद से सब प्राणियों का आदि, अन्त, ध्यान, कर्म, काल और आयु, ये सब किस प्रकार के होते हैं तथा प्राणियों की सद्गति, दुर्गति, उत्पत्ति और प्रलय किसके द्वारा होता है? यह सब जानने की मेरी इच्छा है। अतएव आप हम लोगों पर कृपा करके बतलाइए। महर्षि भृगु और भरद्वाज का संवाद सुनने से मेरी बुद्धि परम धर्मिष्ठ हो गई है। मुझे योग-धर्म में निष्ठा भी है। इसी से यह वृत्तान्त फिर सुनाने के लिए आपसे निवेदन कर रहा हूँ।

भीष्म ने कहा—धर्मराज, वेदव्यास ने अपने पुत्र शुकदेव से जो कहा था वही इतिहास तुमको सुनाता हूँ। सम्पूर्ण वेद, वेदाङ्ग और उपनिषदों को पढ़कर—धर्म में निपुणता प्राप्त करके—जन्मभर ब्रह्मचर्य रखने की इच्छा से शुकदेव ने धर्मार्थ का संशय नष्ट कर देनेवाले वेद-व्यास से पूछा—पिताजी, प्राणियों का कर्ता कौन है? काल के परिमाण द्वारा क्या निश्चय किया जाता है और ब्राह्मणों का क्या कर्तव्य है?

तब सब धर्मों के विद्वान्, भूत-भविष्य के जानकार, वेदव्यास ने कहा—बेटा! अनादि, अनन्त, अजन्मा, ज्योति-स्वरूप, अजर, अमर, अव्यय, तर्क और ज्ञान से परे परब्रह्म सबसे श्रेष्ठ है। महर्षियों ने पन्द्रह निमेष को काष्ठा, तीस काष्ठाओं को कला, तीन काष्ठाओं और तीस कलाओं का मुहूर्त, तीस मुहूर्त का रात-दिन, तीस रात-दिन का एक महीना और बारह महीनों का एक वर्ष बतलाया है। पण्डितों ने वर्ष को भी उत्तरायण और दक्षिणायन दो भागों में विभक्त किया है। सूर्य की गति से मनुष्यों के दिन-रात बनते हैं। मनुष्य दिन में अपना-अपना काम करते और रात में सोते हैं। मनुष्यों के एक महीने में पितरों का एक दिन-रात होता है। उसमें शुक्लपक्ष उनका दिन और कृष्णपक्ष उनकी रात है। मनुष्य के एक वर्ष में देवताओं का एक दिन-रात होता है। उसमें उत्तरायण उनका दिन और दक्षिणायन उनकी रात है। मनुष्यों के जो दिन-रात मैंने बतलाये हैं उन्हीं के हिसाब से ब्रह्मा के दिन-रात और वर्ष बतलाता हूँ। देवताओं के चार हज़ार आठ सौ वर्ष तक सत्य, तीन हज़ार छः सौ वर्ष तक त्रेता, दो हज़ार चार सौ वर्ष तक द्वापर और एक हज़ार दो सौ वर्ष का कलियुग होता है। यही चतुर्युग-रूप काल हमेशा मनुष्यों को आया करता है। यही काल ब्रह्मज्ञ मनुष्यों का परब्रह्म-स्वरूप है। सत्ययुग में धर्म और सत्य के चारों चरण रहते हैं। उस युग में कोई मनुष्य किसी प्रकार का अधर्म नहीं करता। त्रेता आदि युगों में क्रमशः धर्म का एक-एक चरण नष्ट होता जाता है। इसलिए उन युगों में चोरी, मिथ्या और हिंसा आदि के द्वारा अधर्म की वृद्धि होती रहती है। सत्ययुग में मनुष्य नीरोग और सिद्धकाम रहकर चार सौ वर्ष तक जीते हैं। त्रेता में तीन सौ, द्वापर

१०

२१

में दो सौ और कलियुग में सौ वर्ष की परमायु होती है। इन युगों में वेद-विहित धर्म, कर्म का फल, और वेद का फल क्षीण हो जाता है। क्रमशः युग का ह्रास होने के कारण सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि में मनुष्यों के भिन्न-भिन्न धर्म हैं। सत्ययुग में तपस्या, त्रेतायुग में ज्ञान, द्वापर में यज्ञ और कलियुग में दान श्रेष्ठ धर्म है। इस प्रकार देवताओं के बारह हज़ार वर्ष में चारों युग होते हैं। हज़ार युग बीतने पर ब्रह्मा का एक दिन और फिर हज़ार युग बीतने पर एक रात होती है। ब्रह्मा के दिन में जीवों की सृष्टि और रात में प्रलय होता है। प्रलय के प्रारम्भ में ईश्वर इस संसार को अपने में लीन करके योगनिद्रा में सो जाता है और

३० प्रलय के अन्त में जागता है। काल के मर्मज्ञ पण्डितों ने इस प्रकार देवताओं के एक हज़ार युग में ब्रह्मा का एक दिन और फिर दूसरे एक हज़ार युग में एक रात बतलाई है। निद्रा का त्याग करके वह अक्षय ब्रह्म-स्वरूप ईश्वर अहङ्कार की सृष्टि करता है। उसी अहङ्कार से

३२ पञ्चभूतात्मक मन उत्पन्न होता है।

दो सौ बत्तीस अध्याय

व्यासजी का शुकदेव को सृष्टि की उत्पत्ति बतलाना

व्यासजी कहते हैं—बेटा, तेजोमय ब्रह्म ही सबका बीज-स्वरूप है। उसी से सारा संसार उत्पन्न हुआ है। उस परमात्मा ने किसी की सहायता के बिना ही पहले जड़-स्वरूप माया और चेतन-स्वरूप पुरुष को उत्पन्न किया। उसके बाद पुरुष ने, माया के द्वारा, संसार की सृष्टि की। माया से महत्तत्त्व, महत्तत्व से अहङ्कार और अहङ्कार से आकाश आदि पञ्चभूतात्मक मन की उत्पत्ति हुई। दूरगमनशील बहुधागामी और प्रार्थना तथा संशयात्मक मन ईश्वर द्वारा प्रेरित होकर सृष्टि करने लगा। पहले मन से शब्दगुणवाले आकाश की उत्पत्ति हुई। आकाश से अति पवित्र बलवान् स्पर्शगुणवाले वायु की, वायु से प्रकाशमान रूपगुणवाले अग्नि की, अग्नि से रसगुणवाले जल की और जल से गन्धगुणवाली पृथ्वी की उत्पत्ति हुई। इन पाँच महाभूतों में जो जिससे उत्पन्न हुआ उसने उसका गुण भी ग्रहण कर लिया। आकाश किसी महाभूत से उत्पन्न नहीं हुआ इसलिए उसमें अपने गुण (शब्द) के सिवा दूसरा कोई गुण नहीं है। वायु में शब्द और स्पर्श; अग्नि में शब्द, स्पर्श और रूप; जल में शब्द, स्पर्श, रूप और रस; पृथ्वी में शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, ये पाँचों गुण हैं। कोई-कोई मनुष्य अपनी मूर्खता के कारण जल और वायु में गन्ध को बतलाकर उसे इन दोनों का भी गुण कहते हैं, किन्तु उनका कहना युक्ति के विरुद्ध है; क्योंकि गन्ध पृथ्वी का ही गुण है। पृथ्वी में मिलने से ही जल और वायु गन्धयुक्त होते हैं—गन्ध उनका गुण नहीं है।

ये महत्तत्त्व आदि सात पदार्थ अलग-अलग रहने से सृष्टि नहीं कर सकते। इन सबके मिलने से ही हाथ-पैर आदि से युक्त स्थूल शरीर बनता है। यह स्थूल शरीर घर है और उस घर में निवास करनेवाले का नाम पुरुष है। उसके बाद पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ; शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध और मन, इन सोलह पदार्थों से बना हुआ लिङ्ग-शरीर—अपने कर्मों के साथ—स्थूल शरीर में प्रवेश करता है। सब प्राणियों के सृष्टिकर्त्ता, तप करने के निमित्त, माया आदि को लेकर लिङ्ग-शरीर में प्रविष्ट हुए। संसार उन्हें प्रजापति कहता है। उन्होंने पहले स्थावर-जङ्गम प्राणियों की सृष्टि करके फिर देवता, ऋषि, पितर, नदी, लोक, समुद्र, दिशाएँ, पर्वत, वृक्ष, नर, किन्नर, राक्षस, पशु, पक्षी, मृग, सर्प और नित्य-अनित्य सब पदार्थों की सृष्टि की। आदि-सृष्टि के समय जिस पदार्थ ने जिन गुणों को ग्रहण कर लिया वह फिर उत्पन्न होने के समय बार-बार उन्हीं गुणों का अधिकारी होता है। इस जन्म में मनुष्य का मन हिंसा-अहिंसा, मृदुता-क्रूरता, धर्म-अधर्म और सच-झूठ आदि जिन विषयों में लगा रहता है उन्हीं विषयों में वह दूसरे जन्म में भी लग जाता है। परमात्मा ने ही आकाश आदि पञ्चभूत, रूप आदि इन्द्रियों के विषय और सब पदार्थों के अनेक प्रकार के स्वरूप उत्पन्न करके भोग्य और भोक्ता का भाव निर्दिष्ट कर दिया है। कोई उद्योग को, कोई भाग्य को और कोई स्वभाव को कर्मों का कारण बतलाता है। कोई तो इन तीनों में किसी एक की प्रधानता न मानकर इनकी एकता से ही सब कामों का सिद्ध होना बतलाता है। कोई उद्योग को कारण कहते हैं और कोई उसको कारण नहीं मानते; कोई भाग्य को, कोई भाग्य और उद्योग दोनों को, और कोई इन दोनों को भी कारण न मानकर अनेक प्रकार के विवाद करते हैं। किन्तु तत्त्वज्ञ लोग परब्रह्म को ही सब कर्मों का कारण बतलाते हैं। १०—२१

योग से ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। मन और बाह्य इन्द्रिय का निग्रह करना ही योग का मूल है। मनुष्य शुद्धचित्त होकर योगबल से ही सब कामनाएँ पूरी कर सकता है। संसार की उत्पत्ति करनेवाले जगदीश्वर की प्राप्ति योग से ही होती है। जिस मनुष्य में योग-बल है वही परब्रह्म को प्राप्त होता है, वही सब का प्रभु है। पूर्व जन्म में पढ़े हुए वेद का, योग-बल से ही, महर्षियों ने स्मरण किया है। सृष्टि के आदि में जगदीश्वर ने अनादि अनन्त वाङ्मयी वेदरूपा विद्या को उत्पन्न करके उसी में ऋषियों के नाम, देवताओं की उत्पत्ति, मनुष्यों के अनेक कर्मों के मन्त्र और मन्त्रों के नाम बतलाये हैं। वेदों में अध्ययन, गार्हस्थ्य, तपस्या (वानप्रस्थ), सन्ध्योपासन आदि नित्यकर्म, नैमित्तिक कर्म, यज्ञ, जलाशय आदि की प्रतिष्ठा, ध्यान, धारणा और समाधि; ये दस मोक्ष के उपाय बतलाये गये हैं। वेद और वेदान्त में वेदज्ञ पण्डितों ने जिसे परब्रह्म निरूपित किया है वह परब्रह्म इन्हीं दस उपायों से प्रत्यक्ष हो सकता है। देहा-भिमानी जीव कर्मों के द्वारा सुख-दुःखयुक्त भेदबुद्धि उत्पन्न करता है; किन्तु तत्त्वज्ञानी पुरुष बल-

पूर्वक मोक्ष प्राप्त कर सकता है। शब्द-ब्रह्म और परब्रह्म दोनों का ज्ञान होना आवश्यक है। जिसको शब्द-ब्रह्म का ज्ञान भली भाँति हो जाता है वह आसानी से परब्रह्म का साक्षात्कार कर ३० सकता है। ब्राह्मणों को ब्रह्म की उपासना, क्षत्रियों को देवताओं की तृप्ति के लिए पशु-हिंसा, वैश्यों को देवताओं और ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करने के लिए अन्न का उपार्जन करना और शूद्रों को तीनों वर्णों की सेवा करनी चाहिए। सत्ययुग में यज्ञ करने की आवश्यकता नहीं थी। त्रेता में यज्ञ का विधान हुआ और द्वापर में उसका नाश होने लगा। कलियुग में यज्ञ का नाम-निशान भी न रह जायगा। सत्ययुग में मनुष्य ऋक्, साम और यजुर्वेद में बतलाये हुए यज्ञों को त्याग कर केवल योग-धर्म का आश्रय लेते थे। त्रेतायुग में महापराक्रमी पुरुषों ने जन्म लेकर स्थावर-जङ्गम सब प्राणियों का शासन किया। उस समय सब मनुष्य वेद पढ़ते, यज्ञ करते और धर्म-शास्त्र का मनन करते थे। द्वापर युग में मनुष्यों की आयु कम होने लगी, इसी से वेदाध्ययन आदि कर्मों में कमी हो गई। कलियुग में सम्पूर्ण वेद कहीं-कहीं देख पड़ेंगे, यज्ञ का लोप हो जायगा और सब मनुष्य अधर्म करने लगेंगे। सत्ययुग में जिस प्रकार का चतुष्पाद धर्म मौजूद था वह कलियुग में किसी-किसी जितेन्द्रिय तपस्वी विद्वान् ब्राह्मण में देख पड़ेगा। वेदज्ञ लोग अपने धर्म का पालन करते हुए भी—युग-धर्म के कारण—इच्छापूर्वक यज्ञ, व्रत और तीर्थ-स्नान आदि करते हैं। जैसे वर्षा ऋतु में पानी बरसने से अनेक प्रकार के नये-नये स्थावर-जङ्गम जीव पैदा हो जाते हैं वैसे ही प्रत्येक युग में नये-नये धर्म उत्पन्न होते हैं। जैसे शीत आदि ऋतुएँ एक बार बीतकर जब फिर आने लगती हैं तब उनके विशेष चिह्न देख पड़ते हैं वैसे ही प्रलय के बाद जब फिर सृष्टि होनेवाली होती है तब ब्रह्मा आदि का पूर्ववत् अधिकार ४० हो जाता है। मैंने पहले प्रजा की सृष्टि और प्रलय करनेवाले, जन्म-मरण-रहित, जिस विविधरूप काल का वर्णन किया है उसी काल के प्रभाव से प्रजा की उत्पत्ति और प्रलय होता है। संसार में जितने जीव सुख-दुःख भोगते हुए स्वभाव के अनुसार कर्म करते हैं उनका आश्रय और पालन-कर्त्ता काल ही है। मैंने तुमसे सृष्टि, काल, यज्ञ आदि, वेद, कर्त्ता, कार्य ४३ और क्रिया के फल का विस्तार से वर्णन कर दिया।

दो सौ तेंतीस अध्याय

संसार के प्रलय का वर्णन

व्यासजी कहते हैं—बेटा, भगवान् विश्वयोनि सृष्टि के अन्त (प्रलय) में जिस प्रकार संसार को सूक्ष्म करके अपनी आत्मा में लीन कर लेते हैं उसका वृत्तान्त सुनो।

प्रलय के समय सूर्य और अग्नि अपने तेज से सारे संसार को भस्म कर देते हैं। पृथ्वी के स्थावर-जङ्गम सब प्राणी उसी में लीन हो जाते हैं। पृथ्वी पर पेड़ और घास-फूस कुछ

नहीं रह जाता; वह कछुए की पीठ की तरह दीखने लगती है। जल जब पृथ्वी के गुण को ग्रहण कर लेता है तब वह कारण रूप में परिवर्तित हो जाती है। उस समय जल गम्भीर शब्द करता हुआ बड़े वेग से चारों ओर उमड़ पड़ता है। अब अग्नि जल के गुण को ग्रहण कर लेता है, इससे जल उसमें लीन हो जाता है। उसके बाद अग्नि की सब शिखाएँ सूर्य-मण्डल में लीन हो जाती हैं और आकाश ज्वालाओं से परिपूर्ण होकर प्रज्वलित हो उठता है। तब वायु अग्नि के गुण रूप को ग्रहण कर लेता है। ऐसा होते ही अग्नि शान्त हो जाता है और वायु अपनी उत्पत्ति के स्थान आकाश में व्याप्त होकर वेग से चारों ओर दौड़ने लगता है। १० तब आकाश वायु के गुण स्पर्श को ले लेता है और वायु शान्त हो जाता है। आकाश रूप-स्पर्श-गन्ध आदि गुणों से शून्य होकर अव्यक्त शब्द के समान हो जाता है। अव्यक्त शब्द के समान स्थित आकाश के गुण शब्द को सूक्ष्मस्वरूप मन ग्रास कर लेता है। इसी का नाम स्थूल ब्रह्माण्ड का प्रलय है।

उसके बाद चन्द्रमा मन को ग्रस लेता है। मन के साथ ज्ञान वैराग्य आदि उसके सब गुण चन्द्रमा में लीन हो जाते हैं। चन्द्रमा में लीन हुआ मन सङ्कल्प के अधीन हो जाता है। तब ब्रह्म में अभेद-ज्ञान-स्वरूप सङ्कल्प चन्द्रमा में लीन हुए मन को, श्रेष्ठ ज्ञान सङ्कल्प को, काल उस श्रेष्ठ ज्ञान और बलरूप अपनी शक्ति को तथा विद्या उस काल को ग्रहण कर लेती है। उसके बाद वह विद्या अव्यक्त शब्द में मिल जाती है और अव्यक्त शब्द आत्मा में प्रविष्ट हो जाता है। आत्मा ही नित्य, अव्यक्त परमब्रह्म है। इस प्रकार आकाश आदि सब महाभूत पर-ब्रह्म में लीन हो जाते हैं। बेटा, मैंने तुमको विद्वान् और समझदार देखकर योगियों के जानने-योग्य ब्रह्म और प्रकृति तथा दो हज़ार युग पर्यन्त ब्रह्मा के दिन-रात का विषय बतला दिया। १९

दो सौ चौंतीस अध्याय

व्यासजी का शुकदेव को ब्राह्मणों का धर्म बतलाना

व्यासजी कहते हैं—बेटा, जगदीश्वर ने जिस प्रकार महाभूतों की सृष्टि की है उसे मैं कह चुका। अब ब्राह्मणों के कर्तव्य कर्म का वर्णन करता हूँ। ब्राह्मण का पिता उसके जात-कर्म से लेकर समावर्तन पर्यन्त सब संस्कार करे। ब्राह्मण वेद-पारदर्शी आचार्य से वेदों का पढ़ना समाप्त करके गुरु की सेवा करता हुआ उनके ऋण से उरिन होवे। उसके बाद गुरु की आज्ञा से वह या तो गृहस्थाश्रम में जावे और वहाँ विवाह करके पुत्र उत्पन्न करे तथा जन्म भर इसी आश्रम में रहे; या ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करता हुआ वानप्रस्थ अथवा संन्यास धर्म का अवलम्बन करे। गृहस्थ आश्रम सब धर्मों का मूल है। गृहस्थ मनुष्य दम गुण से युक्त और

काम-क्रोध आदि से रहित होने पर आसानी से सब सिद्धियाँ प्राप्त कर सकता है। ब्राह्मण पुत्र-वान्, वेद-पारदर्शी और याज्ञिक होकर पितरों, ऋषियों और देवताओं के ऋण से उरिन होवे; उसके बाद अन्यान्य आश्रमों में जावे। उसे जो उत्तम स्थान जान पड़े वहाँ रहे। यशस्वी होने का यत्न हमेशा करता रहे। कठिन तप, विद्या की पारदर्शिता, यज्ञ और दान के द्वारा ब्राह्मणों की कीर्ति बढ़ती है। जिस ब्राह्मण की कीर्ति जितने दिनों तक संसार में रहती है वह उतने ही
१० समय तक पुण्यात्माओं के लोक में निवास करता है। यजन, याजन, अध्ययन और अध्यापन ब्राह्मणों के कर्म हैं। वृथा दान करना और वृथा दान लेना उन्हें उचित नहीं। यजमान से धन मिलने पर उस धन से यज्ञ कर दे, शिष्य से धन मिलने पर उसे दान कर डाले और कन्या-पक्ष से मिला हुआ धन दूसरों को बाँट दे—स्वयं ही उसका उपयोग न कर ले। गृहस्थ ब्राह्मणों को देवताओं, पितरों, ऋषियों और गुरुजनों की सेवा करनी चाहिए। इन सब कामों के करने के लिए दान लेने के सिवा और कोई उपाय नहीं है। स्वयं क्लेश सहकर भी वृद्ध, आतुर, भूखे और शत्रु द्वारा सताये हुए मनुष्यों को भोजन देना चाहिए। योग्य पुरुषों के लिए कोई वस्तु अदेय नहीं है। सज्जन यदि उच्चैःश्रवा घोड़ा (बढ़िया चीज़) भी लेना चाहे तो, जिस तरह हो सके, उसे भी देने की चेष्टा करनी चाहिए। महाव्रतधारी राजा सत्यसन्ध ने विनीत भाव से अपना जीवन दान करके ब्राह्मण की रक्षा की थी। रन्तिदेव ने महात्मा वसिष्ठ को शीतोष्ण जल दिया था। अत्रि के पुत्र बुद्धिमान् इन्द्रदमन ने सत्पात्र को बहुत सा दान किया था। उशीनर के पुत्र शिवि ने ब्राह्मण के लिए अपना अङ्ग और अपना पुत्र दे दिया था। काशीपति
२० प्रतर्दन ने ब्राह्मण को अपनी आँखें दे दी थीं। देवावृध ने आठ सोने की तीलियों से युक्त श्रेष्ठ छत्र दिया था। अत्रि के पुत्र सांकृति ने अपने शिष्यों को निर्गुण ब्रह्म का उपदेश दिया था। महा-प्रतापी अम्बरीष ने ब्राह्मणों को ग्यारह अर्बुद गोदान, सावित्री ने ब्राह्मण को दो दिव्य कुण्डल, जनमेजय ने ब्राह्मण के लिए अपना शरीर, युवनाश्व ने ब्राह्मण को सब रत्नों सहित अपनी प्रियतमा पत्नी और बहुत सुन्दर निवास-स्थान दिया था। निमि ने ब्राह्मणों को अपना राज्य और जमदग्नि के पुत्र परशुराम ने ब्राह्मणों को सारी पृथिवी दे दी थी। इन महात्माओं ने—इस लोक और स्वर्ग-लोक—दोनों लोकों में कीर्ति प्राप्त की थी। पानी न बरसने पर महर्षि वसिष्ठ ने, दूसरे प्रजापति के समान, प्रजा की रक्षा की थी। करन्धम के पुत्र राजा मरुत ने महर्षि अङ्गिरा को अपनी कन्या, बुद्धिमान् पञ्चालराज ब्रह्मदत्त ने ब्राह्मणों को महानिधि शङ्ख और राजा मित्रसह ने
३० महर्षि वसिष्ठ को अपनी पत्नी (मदयन्ती) दे दी थी। राजर्षि सहस्रजित् ने ब्राह्मण के लिए अपना शरीर त्याग दिया था। शतद्युम्न ने मुद्गल को सोने का घर और शाल्व देश के राजा महाप्रतापी द्युतिमान् ने ऋचीक को अपना राज्य दान कर दिया था। राजर्षि लोमपाद ने अपनी कन्या शान्ता ऋष्यशृङ्ग को और मदिराश्व ने अपनी सुमध्यमा कन्या हिरण्यहस्त को

दी थी। महातेजस्वी राजा प्रसेनजित् ने ब्राह्मणों को बछड़ों समेत एक लाख गायें देकर स्वर्गलोक प्राप्त किया था। ये और इनके सिवा अन्यान्य जितने जितेन्द्रिय राजा दान और तप करके स्वर्ग को गये हैं उनकी कीर्ति प्रलय-काल तक संसार में रहेगी। ३८

दो सौ पैंतीस अध्याय

ब्राह्मण का धर्म बतलाते हुए ज्ञान की प्रशंसा करना

व्यासजी कहते हैं—शुकदेव ! चारों वेदों (ऋक्, साम, यजु और अथर्व) तथा शिक्षा, कल्प आदि वेदाङ्ग को ब्राह्मण अवश्य पढ़ें। वेदोक्त षट् कर्मों में ईश्वर नित्य स्थित रहता है। वेद-वेदाङ्ग के विद्वान् अध्यात्मकुशल सत्त्वगुणावलम्बी महात्मा ही परब्रह्म का साक्षात्कार कर सकते हैं। ब्राह्मण इन्हीं धर्मों के अनुसार यज्ञ का अनुष्ठान करके अपना निर्वाह करे; पर दूसरों को कष्ट न पहुँचे। सज्जनों से ज्ञान सीखें, शास्त्र पढ़ें; शिष्ट, सत्त्वगुणी और अपने धर्म में अनुरक्त रहकर वेदोक्त षट् कर्म और पाँच प्रकार के यज्ञ करते रहें। धैर्यवान्, सावधान, जितेन्द्रिय, धर्मात्मा, आत्मतत्त्वज्ञ और हर्ष-क्रोधहीन ब्राह्मण कभी दुखी नहीं होता। दान, अध्ययन, यज्ञ, तपस्या, लज्जा, सरलता और दम गुण के द्वारा तेज की वृद्धि और पाप का नाश हो जाता है। बुद्धिमान् ब्राह्मण पापहीन, स्वल्पभोजी और जितेन्द्रिय होकर—काम-क्रोध को वश में करके—ब्रह्मपद पाने की इच्छा करे। हिंसा और कड़वी बातों को त्यागकर अग्नि और ब्राह्मणों की पूजा तथा देवताओं को प्रणाम करना ब्राह्मणों का कर्तव्य है। जो ब्राह्मण शास्त्र का ज्ञान प्राप्त करके ऐसे आचरण करता हुआ यज्ञ आदि करता है वह सिद्धि पा सकता है। बुद्धिमान् मनुष्य पञ्चेन्द्रिय-रूप जल, क्रोध-रूप कीचड़ और लोभ-रूप तटवाली संसार-रूपी अथाह नदी को पार कर सकता है। मोहित करनेवाले काल को सदा समुद्यत देखते रहना चाहिए। स्वभाव-रूप स्रोत, वर्ष-रूप भँवर, मास-रूप तरंग, ऋतु-रूप वेग, पक्ष-रूप लता और तृण, निमेष और उन्मेष-रूप फेन, दिन-रात और अर्थ-रूप जल, काम-रूप ग्राह, वेद और यज्ञ-रूप नाव, धर्म-रूप द्वीप, सत्य वचन और मोक्ष-रूप तीर, अहिंसा-रूप वृक्ष, युग-रूप कुण्ड से युक्त ब्रह्म से उत्पन्न महाबलशाली काल-रूपी महानदी संसार को प्रवाहित करती है। काल ही सब प्राणियों को शान्त कर देता है। बुद्धिमान् लोग ज्ञानरूपी नाव द्वारा काल-रूपी महानदी को पार करते हैं; किन्तु बुद्धिहीन मनुष्य उसे पार नहीं कर सकते। ज्ञानी मनुष्य दूर से ही सब विषयों के गुण-दोषों को देखता रहता है, इसलिए काल रूपी नदी का पार करना उसके लिए कठिन नहीं है। किन्तु चञ्चल स्वभाव का बुद्धिहीन कामी मनुष्य हमेशा सन्देह में पड़ा रहता है अतएव वह इस नदी को कैसे पार कर सकता है? यदि ज्ञान-रूपी नाव से विहीन पुरुष अपने दोषों को छिपाने की इच्छा से बड़े यत्न से कुछ ज्ञान प्राप्त करता है तो भी, कामी

(मार्जिन संख्याएँ: १०, २०)

होने के कारण, उसका ज्ञान काल-नदी में नाव का काम नहीं दे सकता। अतएव श्रेष्ठ ज्ञानी मनुष्य ही उसे पार करने का उद्योग करें। ब्रह्मज्ञ लोग ही काल-नदी को पार कर सकते हैं। मनुष्य शुद्ध कुल में जन्म लेकर ईश्वर, जीव और मुक्ति इन तीन प्रकार के कर्मों में अनुरक्त होता है, अतएव बुद्धिमान् मनुष्य इन सन्देहों और सब कर्मों को त्यागकर ज्ञान के द्वारा काल-रूपी नदी को पार करने का उद्योग करे। संस्कारसम्पन्न, दम गुण से युक्त, संयतात्मा बुद्धिमान् मनुष्य दोनों लोकों में सिद्धि पा सकता है। गृहस्थ मनुष्य क्रोध और ईर्ष्या का त्याग करके—शम दम आदि गुणों से युक्त होकर पाँच प्रकार के नित्य यज्ञ करता हुआ—सबको भोजन कराकर भोजन करे। हिंसा का त्याग करके सज्जनों के धर्म का अनुष्ठान, शिष्टाचार का आश्रय और किसी को दुःख न देकर अपनी जीविका करे। वेद के मर्मज्ञ, सदाचारी, अपने धर्म में स्थित, क्रियावान्, धर्म-संकर-रहित, श्रद्धावान्, दानी, ईर्ष्याहीन, धर्म-अधर्म के ज्ञाता ज्ञानी मनुष्य सब कठिनाइयों को पार कर सकते हैं। हर्ष-क्रोध से हीन, धैर्यवान्, सावधान, जितेन्द्रिय, धर्मात्मा आत्मतत्त्वज्ञ ब्राह्मण कभी दुखी नहीं होता। धैर्य, सावधानी, जितेन्द्रियता आदि सद्व्यवहार का आश्रय ब्राह्मण ले। जो ब्राह्मण ज्ञानी होकर यज्ञ आदि कर्म करता है
३० वह सिद्धि पा सकता है। मूर्ख मनुष्य धर्म की इच्छा से अधर्म करता है और धर्म को अधर्म समझता है। जो मनुष्य धर्म की इच्छा से अधर्म और अधर्म की इच्छा से धर्म करता है वह बालक के समान इन दोनों को नहीं जानता, इसलिए बार बार जन्म-मरण होने के
३२ कारण उसे दुःख भोगना पड़ता है।

दो सौ छत्तीस अध्याय

ज्ञान के द्वारा सिद्धि की प्राप्ति बतलाना

व्यासजी कहते हैं—शुकदेव, जो मनुष्य मोक्ष पाना चाहे उसे ज्ञानवान् होना चाहिए। समुद्र की ऊँची-ऊँची तरङ्गों में डूबता-उतराता हुआ मनुष्य जैसे नाव को पाकर पार हो सकता है वैसे ही ज्ञान को प्राप्त करके आसानी से संसार-सागर से छुटकारा मिल सकता है। जो ज्ञानी है वह ज्ञान के द्वारा अज्ञानियों को भी मोक्ष पाने का अधिकारी बना सकता है; किन्तु जिसने ज्ञान का उपार्जन नहीं किया वह न तो स्वयं मुक्ति पा सकता है और न दूसरों को मुक्त करा सकता है। जो मनुष्य ध्यान में मन लगाना चाहे उसे एकान्त स्थान में निवास करना, योग को सिद्ध करनेवाले कर्म करना, योग से प्रेम रखना, शरीर की रक्षा के लिए फल-मूल खाना, आसन आदि योग, वैराग्य, वेद-वाक्यों में विश्वास, इन्द्रियनिग्रह, भोजन का नियम, स्वाभाविक विषयों की प्रवृत्ति का संकोच, मन का संयम करना और दुःख का सदा विचार करना

चाहिए। जो मनुष्य श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त करना चाहे वह बुद्धि-बल से वाणी और मन का संयम करे। जो शान्ति प्राप्त करना चाहे वह ज्ञान के द्वारा आत्मसंयम करे। ब्राह्मण वेद का ज्ञाता हो अथवा न हो, याज्ञिक-धार्मिक हो या पापिष्ठ, सर्वश्रेष्ठ पुरुष हो या क्लेश पा रहा हो—किसी अवस्था में क्यों न हो—यदि वह सब विषयों का त्याग कर देगा तो निस्सन्देह जरा-मरण-स्वरूप समुद्र को पार कर सकेगा। योग का आरम्भ करने और आत्मा के शान्त होने की कौन कहे, योग करने की इच्छा होते ही सब कर्मों का त्याग कर देना चाहिए।

अब ब्रह्म की प्राप्ति का उपाय सुनो। मनुष्य का शरीर रथ-स्वरूप है। यज्ञ आदि धर्म सारथी के बैठने का स्थान है; अकार्य से निवृत्ति उसका वरूथ है, वैराग्य और आसन आदि योग उस रथ के धुरे हैं। अपान उसका अक्ष है, प्राण जुवा है, प्रज्ञा उसका सार है, जीव उसका बन्धन, सावधानी उसके ढाल रखने का स्थान, चरित्र उसकी नेमि, दर्शन-स्पर्शन-घ्राण और श्रवण, ये चार उस रथ के घोड़े हैं; प्रज्ञा रथी के बैठने का स्थान, समस्त सिद्धान्त-शास्त्र चाबुक, ज्ञान सारथी, आत्मा उसका अधिष्ठाता, श्रद्धा और इन्द्रियनिग्रह सहित त्याग उसका परम उपकारी सेवक और ध्यान उसका प्राप्य अर्थ है। यह रथ मुमुक्षु पुरुष द्वारा जोते जाने पर विशुद्ध मार्ग से ब्रह्मलोक में जा पहुँचता है। १०

जो मनुष्य शीघ्र ब्रह्मलोक प्राप्त करने की लालसा से इस रथ को जोतना चाहे उसके लिए एक सरल उपाय बतलाता हूँ। एक ही विषय में चित्त लगा देने को धारणा कहते हैं। धारणा के सात विषय हैं—पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, तेज, अहङ्कार और बुद्धि। संयमी मनुष्य क्रमशः ये सात प्रकार की धारणाएँ करके इनका फल प्राप्त करे। इन सात प्रकार की धारणाओं के सिवा दूर रहनेवाले सूर्य और चन्द्रमा तथा नासाग्र आदि पदार्थों में अनेक धारणाओं के विषय शास्त्र में बतलाये हैं। इसके सिवा नियम का पालन करते हुए अव्यक्त धारणा का फल भी संयमी पुरुष प्राप्त करें। शास्त्र में बताये हुए नियमों के अनुसार योग में प्रवृत्त पुरुष जिस प्रकार सिद्ध हो सकता है उसका वर्णन सुनो। आत्मा को स्थूल शरीर से भिन्न समझनेवाला योगी सबसे पहले अपने हृदय में, आकाशस्थित सूक्ष्म नीहार के समान, पदार्थ देखता है। उसके बाद वह धुएँ के रूपवाला स्वरूप हट जाता है और हृदय में जलरूप देख पड़ता है। जलरूप का अन्तर्धान होने पर अग्निरूप, उसके हटने पर सबका संहार करनेवाला वायुरूप देख पड़ता है और उसके भी सूक्ष्म हो जाने पर उसका रूप ऊन के धागे के समान देख पड़ने लगता है। उसके बाद योग की शुद्ध गति प्राप्त होने पर रूपहीन आकाश के समान प्रतीत होने लगता है। इन सब रूपों के देख पड़ने के बाद योगियों को जिस प्रकार का फल मिलता है वह बतलाता हूँ। जो योगी पार्थिव ऐश्वर्य की सिद्धि प्राप्त कर लेता है वह, प्रजापति ब्रह्मा के समान, अपने शरीर से सृष्टि कर सकता है। जिसको वायु सिद्ध हो जाता है वह हाथ, २०

पैर और अँगूठे से पृथ्वी को कँपा सकता है। आकाश-सिद्ध पुरुष आकाश के समान होकर आकाश में प्रकाशित हो सकता और अपने शरीर को अन्तर्धान कर सकता है। जल-सिद्ध पुरुष चाहे तो कुएँ-तालाब आदि को सोख सकता है। अग्नि-सिद्ध मनुष्य का रूप, तेज के प्रभाव से, दूसरों को नहीं दिखाई दे सकता; किन्तु अग्नि को शान्त करते ही उसका स्वरूप प्रत्यक्ष हो जाता है। योगी को अहङ्कार की सिद्धि होने पर पञ्चभूत उसके वश में हो जाते हैं। पञ्चभूत और अहङ्कार को जीत लेने पर सन्देह-रहित ज्ञान उत्पन्न होता है। उस ज्ञान के प्रभाव से बुद्धि-रूप आत्मा की समझ में अव्यक्त ब्रह्म-रूप आ जाता है। बुद्धि आदि सब पदार्थ कार्य में प्रवृत्त होते हैं, इसी से वे व्यक्त कहलाते हैं। अब अव्यक्त का वर्णन करने के पहले सांख्यशास्त्र में बतलाये हुए व्यक्त का विषय सुनाता हूँ। उसके बाद अव्यक्त का वर्णन विस्तार से करूँगा। सांख्य और योगशास्त्र में २५ तत्त्व बतलाये गये हैं। सब से पहले उन्हीं को बतलाता हूँ। जन्म, वृद्धि, जरा और मृत्यु, इन चार लक्षणों से युक्त महत् ३० आदि २३ तत्त्व व्यक्त कहलाते हैं और जन्म आदि चार लक्षणों से रहित मूल प्रकृति और पुरुष को अव्यक्त कहते हैं। वेद और अन्यान्य सिद्धान्त-शास्त्रों में जीवात्मा और परमात्मा, ये दो प्रकार के आत्मा बतलाये गये हैं। जीवात्मा महत् आदि तत्त्वरूप उपाधियुक्त, चतुर्वर्ग फल का चाहनेवाला और परमात्मा से उत्पन्न है। शास्त्र में उसे व्यक्त कहा है। जीवात्मा और परमात्मा, दोनों चेतन-स्वरूप होने पर भी जड़ शरीर आदि के साथ अभिन्न भाव से रहते हैं। मैंने जड़ और चेतन का यह विषय तुमसे कहा। विषयों में अनुरक्त मनुष्यों के लिए ही वेद में दो प्रकार के आत्मा बतलाये गये हैं। तत्त्वज्ञानी लोग परमात्मा का दर्शन करते हैं।

उपनिषदों के जानकार लोग विषयों से मन को हटा लेना परम आवश्यक बतलाते हैं। जो ममता और अहङ्कार से शून्य, सुख-दुःख आदि से रहित तथा निस्सन्देह है; जिसके शरीर में क्रोध और द्वेष का लेश नहीं है; जो कभी झूठ नहीं बोलता तथा जो अपमानित होने और पीटे जाने पर भी मित्रभाव दिखलाता है वही ब्रह्म को प्राप्त कर सकता है। जो किसी का बुरा नहीं चेतता; जो शरीर, मन और वाणी से किसी को दुःख नहीं देता और जो सब प्राणियों को समान भाव से देखता है वही ब्रह्म को प्राप्त कर सकता है। जो विषयों के पाने की इच्छा न करके आसानी से मिली हुई वस्तुओं द्वारा निर्वाह करता है; जो निर्लोभ, दुःखहीन तथा जितेन्द्रिय है; जो यज्ञ आदि काम्य कर्मों से अलग रहता है; जो कभी किसी का अपमान और किसी से अश्रद्धा नहीं करता वही मोक्ष पा सकता है। जो सबके साथ समान भाव रखता है; जो सोने और मिट्टी को बराबर समझता है; जो प्रिय-अप्रिय को देखकर हर्ष-विषाद नहीं करता; निन्दा और स्तुति को जो समान समझता है और जो इच्छाहीन, ब्रह्मचारी तथा अहिंसक है वही योगी मोक्ष पद पा सकता है। जिस प्रकार के योग से मुक्ति हो सकती है उसे सुनो। अणिमा आदि

योग के ऐश्वर्य को तुच्छ समझनेवाला ही मुक्ति का अधिकारी है। मैंने तत्त्व का बोध करानेवाली बुद्धि का वर्णन कर दिया। इस प्रकार जो शरीर, मन और वाणी से योग का अभ्यास करता है वह ब्रह्म को प्राप्त कर सकता है। ४१

दो सौ सैंतीस अध्याय

प्राणियों में न्यूनता-अधिकता दिखाते हुए आत्मज्ञान की प्रशंसा करना

व्यासजी ने कहा—बेटा! विवेकी मनुष्य संसार-रूपी समुद्र में डूबता और उतराता हुआ, पार होने के लिए, ज्ञानरूपी नाव का अवलम्बन करे।

शुकदेव ने पूछा—पिताजी, जिस ज्ञान के प्रभाव से जन्म और मृत्यु से छुटकारा मिल जाता है वह कौन सा ज्ञान है? प्रवृत्ति धर्म से मुक्ति हो सकती है या निवृत्ति धर्म से?

व्यासजी ने कहा—बेटा, जो ईश्वर के अस्तित्व को न मानकर केवल प्रकृति को कारण बतलाता है और मुमुक्षु शिष्यों को इसी प्रकार का उपदेश देता है वह मूर्ख है। जो निश्चित रूप से प्रकृति को ही कारण मानते हैं उन्हें, ऋषियों का उपदेश सुनने से भी, तत्त्वज्ञान नहीं हो सकता। जो प्रकृति को कारण मानकर निश्चिन्त हो गया है वह कभी अपना कल्याण नहीं कर सकता। अतएव अविवेकी मनुष्यों के मन में जो यह विचार दृढ़ हो गया है कि प्रकृति ही सबका कारण है वह विचार उनके विनाश का हेतु है। मैं बतलाता हूँ कि प्रकृति संसार का कारण क्यों नहीं है। यदि प्रकृति ही सब पदार्थों का कारण होती तो खेती आदि के लिए मनुष्यों को उद्योग करने की क्या आवश्यकता थी! सब चीज़ें अपने-आप पैदा हुआ करतीं। किन्तु बुद्धिमान् मनुष्य खेती करते; उससे पैदा हुए अन्न का संग्रह करते; यान, आसन, रहने के लिए घर, खेलने के लिए स्थान बनवाते तथा रोग की ओषधि आदि सब काम करते हैं। बुद्धि से ही सब काम सिद्ध होते हैं और कल्याण होता है। बुद्धि से ही राजा राज्य करता है। बुद्धि से ही सब प्राणियों का स्थूल-सूक्ष्म भेद जाना जाता है। विद्या के प्रभाव से सब पदार्थों की उत्पत्ति हुई है और विद्या में ही सब कुछ लीन हो जायगा। संसार में जीव चार प्रकार के हैं—जरायुज, अण्डज, उद्भिज और स्वेदज। जङ्गम जीवों में चलने-फिरने की शक्ति होती है इसलिए वे स्थावर प्राणियों से श्रेष्ठ हैं। जङ्गम जीवों में दो पैरवाले और अनेक पैरोंवाले जीव भी होते हैं। किन्तु अनेक पैरोंवालों की अपेक्षा दो पैरोंवाले ही श्रेष्ठ हैं। दो पैरोंवाले भी दो प्रकार के हैं—मनुष्य और आकाशचारी आदि। मनुष्य अन्न आदि का सुख भोगते हैं, इसलिए वे आकाशचारी आदि से श्रेष्ठ हैं। मनुष्य भी दो प्रकार के हैं—उत्तम और मध्यम। उत्तम मनुष्य शुद्ध ज्ञान प्राप्त करते हैं इससे वे मध्यम पुरुषों की अपेक्षा श्रेष्ठ हैं। मध्यम श्रेणी के मनुष्य जाति-धर्म का पालन करते हैं इसलिए वे भी नीच मनुष्यों १०

की अपेक्षा श्रेष्ठ हैं। मध्यम मनुष्य भी दो प्रकार के हैं—धर्मज्ञ और धर्म के अनभिज्ञ। धर्मज्ञ मनुष्य कर्तव्य और अकर्तव्य को समझ सकता है इसलिए वह धर्म के अनभिज्ञ मनुष्यों की अपेक्षा श्रेष्ठ है। धर्मज्ञ मनुष्य भी दो प्रकार के होते हैं—वेद के जाननेवाले और वेद के न जाननेवाले। वेद के जाननेवालों में भी दो भेद हैं—वेद के वक्ता और तदन्य। वेद के वक्ता वेद, वेद में बतलाई हुई क्रियाओं और यज्ञ की विधियों को जानते तथा उनका प्रचार करते हैं। वेद के वक्ता भी दो प्रकार के हैं—आत्मज्ञानी और आत्मज्ञानहीन। आत्मज्ञानी लोग जन्म-मरण
२० के कारण को समझते हैं इसलिए वे आत्मज्ञानहीन वक्ताओं से श्रेष्ठ हैं। जो प्रवृत्ति और निवृत्ति रूप दोनों धर्मों को जानता है वही सर्वज्ञ, सर्ववित्, त्यागी, सत्य-सङ्कल्प, पवित्र और ईश्वर है। देवताओं ने वेदज्ञ और ब्रह्मज्ञानी मनुष्यों को ही ब्राह्मण कहा है। जो ब्राह्मण बाह्य और अन्तःस्थित आत्मा का दर्शन करता है वही देवता है। उन्हीं मनुष्यों के द्वारा यह विश्व स्थित है। उनके माहात्म्य के समान श्रेष्ठ और कुछ नहीं है। वे जन्म, मृत्यु और सब कर्मों को जीतकर
२५ सब प्राणियों के ईश्वर होते हैं।

दो सौ अड़तीस अध्याय

युगभेद से धर्म का भेद और धर्म के विषय में मनुष्यों का मतभेद बतलाना

व्यासजी कहते हैं—बेटा, ब्राह्मणों के जो कर्म बतला चुका हूँ उनको ब्राह्मण अवश्य करें। कर्म नित्य है या ज्ञान से उत्पन्न होने के कारण काम्य है, इस सन्देह को छोड़कर ज्ञानवान् मनुष्य यदि यज्ञ आदि करे तो उसे अवश्य सिद्धि मिल सकती है। ज्ञान से उत्पन्न कर्मों को काम्य कहना ठीक नहीं; क्योंकि कर्म से ब्रह्म को प्राप्त करानेवाला ज्ञान उत्पन्न होता है इसलिए कर्म को नित्य मानना पड़ेगा। अब मैं युक्ति और अनुभव से देखे हुए कर्मों का विषय बतलाता हूँ। कोई उद्योग को, कोई भाग्य को और कोई प्रकृति को कार्यों का कारण बतलाता है। कोई-कोई तो इन तीनों में प्रत्येक की प्रधानता न मानकर इन सबके एकत्र होने को ही सब कार्यों का कारण बतलाते हैं। कर्म-निरत मनुष्यों में कोई उद्योग को कारण मानता है, कोई उद्योग को कारण नहीं कहता, कोई उद्योग और भाग्य दोनों को कारण बतलाता तथा कोई विवाद करते हैं कि ये दोनों कारण नहीं हैं। किन्तु योगी लोग ब्रह्म को ही सब कार्यों का कारण मानते हैं।

सत्ययुग में सब मनुष्य तपस्वी, संशयहीन और सत्त्वगुणी थे। त्रेता, द्वापर और कलियुग में मनुष्यों को सन्देह होने लगा। सत्ययुग में मनुष्य ऋक्, साम और यजुर्वेद में भेद नहीं मानते थे और राग-द्वेष को छोड़कर केवल तपस्या करते थे। तपस्वी धर्मात्मा संयमी मनुष्य तपोबल से अपने सब मनोरथ पूर्ण कर सकते हैं। सृष्टि करनेवाले परमात्मा की प्राप्ति

तपस्या से हो सकती है। जो पुरुष तपोबल से परब्रह्म को प्राप्त कर लेता है वही सब प्राणियों का ईश्वर है। वेद (कर्मकाण्ड) में ब्रह्म को इन्द्र आदि देवता-रूप बतलाया गया है इसलिए १० वेद (कर्मकाण्ड) के जानकार लोग ब्रह्म को नहीं जान सकते। वेद (ज्ञानकाण्ड) में ब्रह्म को व्यक्तरूप कहा है, इसी से वेद (ज्ञानकाण्ड) का विद्वान् मनुष्य ही ब्रह्म का साक्षात्कार कर सकता है। ब्राह्मणों के लिए जप, क्षत्रियों के लिए देवताओं की पूजा के निमित्त पशुहिंसा, वैश्यों को देवताओं और ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करने के लिए अन्न का उपार्जन करना और शूद्रों को तीनों वर्णों की सेवा यज्ञ कहा गया है। ब्राह्मण स्वाध्यायनिरत, कर्मनिष्ठ और सबका हित-चिन्तक हो तो वह दूसरे कर्म करे या न करे, उसे मैत्र ब्राह्मण कहते हैं। त्रेतायुग में वेद का अध्ययन, यज्ञ, वर्ण और आश्रम के नियम, ये सब विशेष रूप से प्रचलित थे। द्वापरयुग में मनुष्यों की आयु कम होने लगी इसलिए इन सब कर्मों का नाश होने लगा। कलियुग में वेद आदि कहीं तो कुछ रहेंगे और कहीं उनका बिलकुल लोप हो जायगा। कलियुग के अन्त में ये सब लुप्त हो जायँगे। कलियुग में मनुष्य अपने धर्म से भ्रष्ट और अधर्मी होंगे; गायें, भूमि तथा सब ओषधियाँ रसहीन हो जायँगी। जल में मधुरता न रहेगी। वेदाध्ययन का और वेद में बतलाये हुए आश्रमों के धर्मों का लोप हो जायगा। धर्मात्मा मनुष्य दुःख भोगेंगे और स्थावर-जङ्गम सभी में विकार हो जायगा। जैसे पानी बरसने से उद्भिज प्राणियों की वृद्धि होती है वैसे ही योग के यम-नियम आदि सब अङ्ग वेद का अध्ययन करनेवाले को पुष्ट करते हैं। मैंने आदि-अन्त से शून्य, अनेक रूपधारी, जिस काल का वर्णन पहले किया है उसी काल के द्वारा सब प्राणियों की सृष्टि और सबका संहार होता है। काल ही सब प्राणियों का नियन्ता और सबकी उत्पत्ति तथा विनाश का कारण है। जीवगण उसी काल के आश्रित रहकर प्रकृति में स्थित हैं। यह मैंने सृष्टि, काल, धैर्य, वेद, कर्ता, कार्य और क्रिया का फल विस्तार से कहा। २१

दो सौ उन्तालीस अध्याय

ब्रह्मज्ञान और उसके साधन बतलाना

भीष्म कहते हैं कि धर्मराज! महर्षि व्यास के वचनों को सुनकर, उनकी प्रशंसा करके, मोक्ष-धर्म पूछने के लिए उत्सुक शुकदेव ने कहा—पिताजी! प्रज्ञावान्, याज्ञिक, असूयाहीन, श्रोत्रिय लोग प्रत्यक्ष और अनुमान से अज्ञात ब्रह्म को किस प्रकार प्राप्त करते हैं? तप, ब्रह्मचर्य, सर्वत्याग, ज्ञान, आत्म-अनात्म का विचार या अष्टाङ्ग योग, किस उपाय से ब्रह्म का साक्षात्कार हो सकता है? मन और इन्द्रियों की एकाग्रता किस उपाय से हो सकती है? यह सब मुझे बतलाइए।

व्यासजी ने कहा—बेटा! विद्या, तप, इन्द्रियनिग्रह और सर्वत्याग के सिवा और किसी उपाय से सिद्धि नहीं मिल सकती। परमात्मा ने पृथिवी आदि महाभूतों को उत्पन्न करके उन

सबको प्राणियों के शरीर में भर दिया है। मनुष्य उन महाभूतों को आत्मा से अलग नहीं समझते। पृथिवी से प्राणियों के शरीर, जल से स्नेह, अग्नि से आँखें, वायु से प्राण और अपान बने हैं। उनके कान आकाश तत्त्व के स्वरूप हैं। भोग की इच्छा से प्राणियों के पैरों में विष्णु, हाथों में इन्द्र, पेट में अग्नि, कानों में दिशाएँ और जिह्वा में सरस्वती निवास करती है। कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। शब्द आदि ज्ञान के द्वार-स्वरूप हैं।
१० शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध—ये इन्द्रियों के विषय हैं। इन्हें इन्द्रियों से अलग समझना चाहिए। जैसे सारथी घोड़ों को हाँकता है वैसे ही मन इन्द्रियों को विषय में लगाता है। जीव हृदय में निवास करके मन को नियुक्त करता है। मन सब इन्द्रियों का और आत्मा मन का ईश्वर है। इन्द्रियाँ, रूप-रस आदि विषय, शीत-उष्ण आदि धर्म, चेतना, मन, प्राण, अपान और जीव ये सब मनुष्यों के शरीर में रहते हैं। सत्त्व आदि गुण और बुद्धि आदि जीव के आश्रय नहीं हैं। उसका आश्रय तो परमात्मा ही है। परमात्मा जीव का स्रष्टा है; गुण जीव की सृष्टि नहीं कर सकते। विद्वान् ब्राह्मण शब्द आदि पाँच विषय, दस इन्द्रियाँ और मन, इन सोलह गुणों से युक्त जीवात्मा को मन के द्वारा बुद्धि में देख सकता है। परमात्मा आँख-कान आदि इन्द्रियों द्वारा नहीं जाना जा सकता। केवल दीपक-स्वरूप शुद्ध मन से ही परमात्मा का ज्ञान हो सकता है। परमात्मा अव्यय, अशरीरी, इन्द्रियहीन और शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध से हीन है। योगी लोग उस परमात्मा को अपने शरीर में ही देखते हैं। जड़-शरीर में अव्यक्त भाव से स्थित परमात्मा का जो साक्षात्कार कर लेता है वह शरीर छोड़कर ब्रह्म को प्राप्त होता है। पण्डित लोग क्या विद्वान् कुलीन ब्राह्मण, क्या गाय, हाथी, कुत्ता और क्या चाण्डाल, सबमें ब्रह्म का दर्शन करते हैं। वह परमात्मा स्थावर-जङ्गम सब प्राणियों में निवास करता है। यह
२० सारा संसार उसी का फैलाव है। जीव जब अपने को सब प्राणियों से और सब प्राणियों को अपने से भिन्न नहीं समझता तब उसे ब्रह्म की प्राप्ति हो सकती है। जो आत्मा को अपने शरीर में और दूसरे के शरीर में समान रूप से देखता है वही मुक्ति पा सकता है। ब्रह्म को प्राप्त करने की इच्छा से जो सब प्राणियों को अपने समान समझता है और जो सब प्राणियों की भलाई चाहता है उस महात्मा के मार्ग पर चलने में असमर्थ होकर देवता भी मोहित हो जाते हैं। जैसे आकाश में चिड़ियों के और जल में मछलियों के चलने के चिह्न नहीं देख पड़ते वैसे ही ज्ञानियों की गति दूसरों को नहीं मालूम हो सकती। काल सब प्राणियों का नाश करता है; किन्तु जिसके प्रभाव से काल का नाश होता है उसे कोई नहीं जान सकता। वह परमात्मा ऊपर, नीचे, बीच में और इधर-उधर कहीं भी नहीं देख पड़ता। ये सब लोक उसी परमात्मा के पेट में हैं। उसके बाहर कुछ भी नहीं है। यदि कोई धनुष से छूटे हुए बाण के और मन के समान वेग से दौड़े तो भी उस परमात्मा का अन्त नहीं पा सकता। वह सूक्ष्म से सूक्ष्म और

स्थूल से भी स्थूल है; उसकी नाप-जोख कोई नहीं कर सकता। उसके हाथ, पैर, मुँह, आँख, कान और सिर सर्वत्र फैले हुए हैं। वह सब लोकों में व्याप्त है। यद्यपि वह सब प्राणियों के शरीर में स्थित रहता है तो भी उसे कोई नहीं देख सकता। परमात्मा अक्षर और क्षर दो प्रकार का है। उसमें अविनाशी चेतन अक्षर और स्थावर-जङ्गम रूपी जड़ देह क्षर कहलाता है। स्थावर-जङ्गमात्मक सब पदार्थों का अधीश्वर, निश्चल, निरुपाधिक परमात्मा नवद्वारयुक्त नगर में प्रविष्ट होकर हंस-स्वरूप प्रतीत होता है। पण्डितों ने महत् आदि पदार्थों से सञ्चित, नश्वर, सुख-दुःख, विपर्यय और अनेक कल्पनाओं से युक्त शरीर में जन्म-रहित जीवात्मा को हंस-रूप बतलाया है। ज्ञानी पुरुष जीवात्मा और परमात्मा में भेद नहीं समझते। जो उस परमात्मा को प्राप्त कर लेता है वह उपाधि और जन्म को त्याग देता है। ३०, ३४

दो सौ चालीस अध्याय

व्यासजी का शुकदेव को योग की विधि बतलाना

व्यासजी ने कहा—बेटा, मैंने आत्मा और परमात्मा का यह विषय विस्तार से कह दिया। अब योग का वर्णन सुनो। पण्डितों ने बुद्धि, मन और इन्द्रियों को बाह्य वृत्ति से रोककर सर्वव्यापी परमात्मा में लीन करानेवाले ज्ञान को श्रेष्ठ कहा है। अतएव योगी लोग शान्तस्वभाव, जितेन्द्रिय, ध्याननिष्ठ, ईश्वर में अनुरक्त, शास्त्रों के मर्मज्ञ और पवित्र होकर काम, क्रोध, लोभ, भय और स्वप्न, योग के इन पाँच दोषों को त्यागकर आचार्य से उस श्रेष्ठ ज्ञान को प्राप्त करते हैं। शान्तस्वभाव होने तथा क्रोध और इच्छा का त्याग करने से काम जीता जा सकता है। सत्त्वगुणी होने से निद्रा जीती जा सकती है। मनुष्य धैर्य के सहारे काम और खाने की इच्छा से बचे; आँखों की सहायता से हाथ-पैरों को बचावे; मन से आँखों और कान की तथा अच्छे काम करके मन और वाणी की रक्षा करे। सावधानी से भय को और ज्ञानी पुरुषों की सेवा से पाखण्ड को त्याग दे। योगी लोग इस प्रकार आलस्यहीन होकर योग के दोषों को त्याग दें। मन को दहलानेवाले हिंसायुक्त वचन न कहें; अग्नि और ब्राह्मणों की पूजा तथा देवताओं को प्रणाम करें। तेजोमय ब्रह्म स्थावर-जङ्गम सब प्राणियों का बीज और रस-स्वरूप है। सब प्राणी उसी परमात्मा के आश्रित हैं। ध्यान, वेदाध्ययन, दान, सत्य, लज्जा, सरलता, क्षमा, शौच और इन्द्रियनिग्रह द्वारा तेज की वृद्धि होती, पाप नष्ट हो जाता तथा अभीष्ट-सिद्धि और विज्ञान की प्राप्ति होती है। सब प्राणियों पर समान दृष्टि रखनेवाले, जो कुछ मिल जाय उसी में सन्तुष्ट, पापहीन, तेजस्वी, मिताहारी, जितेन्द्रिय मनुष्य काम-क्रोध को वश में करके ब्रह्मपद पाने की इच्छा करते हैं। योग जानने की इच्छा करनेवाले मनुष्य, मन और इन्द्रियों को विषयों से हटाकर, रात के पहले और पिछले पहर में बुद्धि को मन के साथ मिलावें। १०

पाँच इन्द्रियों में से एक इन्द्रिय के विषय में भी आसक्त रहने पर मनुष्य की शास्त्रीय बुद्धि उस इन्द्रिय-रूप द्वार से, छेदवाली मशक से जल के समान, निकल जाती है। अतएव जैसे मछुवा पहले जाल काट डालनेवाली मछलियों के रोकने का प्रबन्ध करके तब दूसरी मछलियों को पकड़ता है वैसे ही योगी लोग पहले मन को रोककर उसके बाद इन्द्रियों का दमन करें। योग के जानकार पुरुष आँख, कान, नाक और जीभ, इन चार इन्द्रियों के विषयों को खींचकर मन में और मन को इच्छा से हटाकर बुद्धि में मिलावें। मन इन्द्रियों को लेकर जब बुद्धि में स्थित हो जाता है तब योगी पुरुष धूमहीन प्रज्वलित अग्नि की शिखा के समान, दीप्तिमान् सूर्य के समान और आकाश-मण्डल में स्थित बिजली के प्रकाश के समान तेजस्वरूप सर्वव्यापी

२० परब्रह्म को अपने हृदय में देख सकता है। सब प्राणियों का हित चाहनेवाले धैर्यवान् ज्ञानी महात्मा ब्राह्मण योग के प्रभाव से परमात्मा का साक्षात्कार कर सकते हैं। जो मनुष्य निर्जन स्थान में अकेला बैठकर, मन को स्थिर करके, इस प्रकार योग का अभ्यास करता है वह छः महीने में ही ब्रह्मभाव को प्राप्त हो जाता है।

तत्त्वदर्शी लोग चित्त की चञ्चलता और मोह-क्रोध आदि को त्याग दें। योगी पुरुष को योग के प्रभाव से जब दिव्य गन्ध, शब्द, रूप, रस, स्पर्श, सरदी-गरमी, अन्तर्धान, आकाश की गति, सब शास्त्रों का ज्ञान और सुन्दरी स्त्रियों की प्राप्ति हो जाय तब वह इन सबको तुच्छ समझकर त्याग दे।

इस प्रकार प्रातःकाल, पूर्वरात्रि और अपर रात्रि के समय पहाड़ की चोटी पर, चैत्य वृक्ष के नीचे अथवा किसी वृक्ष के सामने योग का साधन किया करे। योग के जानकार पुरुष इन्द्रियों का दमन करके, धन की चिन्ता करनेवाले मनुष्य के समान, एकाग्रचित्त होकर उस अक्षय-धन परब्रह्म का ध्यान करें। जिस तरह हो सके, चञ्चल मन को रोकें और कभी योगाभ्यास से मन को न हटने दें। साधक पुरुष चित्त को स्थिर रखने के लिए पहाड़ की कन्दरा में, देवता के मन्दिर में अथवा निर्जन घर में रहें और मन-वचन-कर्म से दूसरों का संसर्ग छोड़कर सबकी उपेक्षा करते हुए लाभ-हानि को समान समझें और नियमित भोजन करें। किसी के मुँह से अपनी प्रशंसा या निन्दा सुनकर, उन दोनों को समान समझकर,

३० उसका भला-बुरा कुछ भी न सोचें। लाभ होने पर हर्ष और हानि होने पर खेद न करें। सब प्राणियों को समान दृष्टि से देखें और सर्वस्पर्शी वायु की तरह पवित्र रहें। जो महात्मा इस प्रकार समदर्शी और शुद्धचित्त होकर लगातार छः महीने योग का साधन करते हैं उन्हें ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता है। मिट्टी और सोने को एक समान समझनेवाले पुरुष दूसरों को धन के लिए दुखी देखकर धन पैदा करने का उद्योग कभी न करें और कभी उससे मोहित न हों। शूद्र हो चाहे स्त्री, जो कोई इस प्रकार का साधन करेगा उसे परमगति प्राप्त होगी।

स्थिरचित्त योगी पुरुष इन्द्रियों का दमन करके उस अनादि, निर्विकार, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म, स्थूल से भी स्थूल अनन्त ब्रह्म का दर्शन करते हैं। जो लोग महर्षियों के इन वचनों पर भली भाँति ध्यान देते हैं वे ब्रह्म के सदृश होकर परमगति पाते हैं। ३६

दो सौ इकतालीस अध्याय

कर्म और ज्ञान का स्वरूप बतलाना

शुकदेव ने कहा—पिताजी! वेद में ज्ञानवान् के लिए कर्मों का त्याग और कर्मनिष्ठ के लिए कर्मों का करना, ये दो विधान हैं। किन्तु कर्म और ज्ञान, ये दोनों एक-दूसरे के प्रतिकूल हैं। अतएव मैं जानना चाहता हूँ कि कर्म करने से मनुष्यों को क्या फल मिलता है और ज्ञान के प्रभाव से कौन सी गति मिलती है।

व्यासजी ने कहा—बेटा, नश्वर कर्म और अविनाशी ज्ञान का विषय तुमको बतलाता हूँ। कर्म करने से जो फल मिलता है और ज्ञान के प्रभाव से जो गति प्राप्त होती है उसे ध्यान देकर सुनो। ये दोनों विषय अत्यन्त दुर्ज्ञेय हैं। धर्म का अस्तित्व माननेवाला पुरुष जैसे धर्म के अभाव का प्रतिपादन सुनकर घबरा उठता है वैसे ही तुम्हारे मुँह से ज्ञान और कर्म दोनों की प्रधानता सुनकर मैं सन्न हो गया हूँ। ख़ैर, तुम्हारे प्रश्न का उत्तर देता हूँ। वेद में प्रवृत्ति और निवृत्ति दो प्रकार के धर्म बतलाये गये हैं। कर्म के प्रभाव से जीव संसार के बन्धन में बँधा रहता है और ज्ञान के प्रभाव से मुक्त हो जाता है, इसी से पारदर्शी संन्यासी लोग कर्म नहीं करते। कर्म करने से जीव फिर जन्म लेता है; किन्तु ज्ञान के प्रभाव से नित्य अव्यक्त अव्यय परमात्मा को प्राप्त हो जाता है। कम समझ के लोग कर्म की प्रशंसा करते हैं, इसी से उन्हें बार-बार शरीर धारण करना पड़ता है। जो मनुष्य सर्वश्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त कर लेता है और जो धर्म को भली भाँति समझ जाता है वह, जैसे नदी के किनारेवाला मनुष्य कुएँ का आदर नहीं करता वैसे ही, कर्म की प्रशंसा नहीं करता। कर्म करने से सुख-दुःख और जन्म-मृत्यु की प्राप्ति होती है; किन्तु जहाँ जन्म, मरण और शोक कुछ भी नहीं है तथा जहाँ जाने से फिर लौटना नहीं पड़ता वह स्थान ज्ञान के सिवा और किसी उपाय से नहीं मिल सकता। ज्ञान होते ही मनुष्य के हृदय में अव्यक्त स्थिर निश्चल अमृत सर्वव्यापी ब्रह्म प्रकाशित हो जाता है। तब जीव को सुख-दुःख सहन नहीं करना पड़ता, उसकी इच्छाएँ और मोह नष्ट हो जाता है। उस अवस्था में जीव सब प्राणियों के साथ भलाई करता है और सबके साथ समान मित्र भाव रखता है। कर्मनिष्ठ और ज्ञानी मनुष्य में बड़ा अन्तर है। जिस तरह अमावास्या का चन्द्रमा अदृश्य रहता है—उसका नाश नहीं होता—उसी तरह ज्ञानी पुरुष हमेशा अविनाशी रहता है। और, जैसे टेढ़ा चन्द्रमा घटता-बढ़ता रहता है वैसे ही कर्मनिष्ठ मनुष्य जन्म-मृत्यु के चक्कर में पड़ा १०

रहता है। महर्षि लोग ज्ञान और कर्म का फल इस प्रकार बतला गये हैं। मन और सोलह कलाओं से युक्त लिङ्ग-शरीर कर्म के द्वारा प्राप्त होता है। उसी लिङ्ग-शरीर में, कमल के पत्ते पर पड़ी हुई पानी की बूँद की तरह, जो देवता निवास करता है वही क्षेत्रज्ञ है। मनुष्य योग-बल से उसका साक्षात्कार कर सकता है। सत्त्व, रज और तम, ये तीन बुद्धि के गुण हैं; बुद्धि जीवात्मा का गुण है और जीवात्मा परमात्मा का गुण है। आत्मज्ञानी पुरुषों का कहना है कि शरीर जड़ है, वह चेतन-स्वरूप जीव के साथ युक्त रहने से ही चैतन्य होता है। जीव ही शरीर को सचेत और
२० जीवित करता है। इस जीव से श्रेष्ठ एक और परम पदार्थ है, उसी से सातों भुवन उत्पन्न हुए हैं।

दो सौ बयालीस अध्याय

व्यासजी का शुकदेव से ब्रह्मचर्य धर्म का वर्णन करना

शुकदेव ने कहा—पिताजी! आपने महत्तत्त्व, अहङ्कार और शब्द आदि विषयों से युक्त इन्द्रियों को ईश्वर से उत्पन्न और अन्यान्य सब पदार्थों को बुद्धि के प्रभाव से कल्पित बतलाया है। अब मैं यह जानना चाहता हूँ कि संसार में सज्जन पुरुष कैसा आचरण कर गये हैं। और, वेद में तो कर्म करने और कर्म त्यागने का भी विधान है, अतएव यह निर्णय किस प्रकार किया जावे कि उन दोनों में कौन करने योग्य है और कौन करने योग्य नहीं। मैं आपके उपदेश से पवित्र और धर्म-अधर्म का अभिज्ञ हो गया हूँ। मैं अब बुद्धि को स्थिर करके देह का अभिमान छोड़कर आत्मा का साक्षात्कार करूँगा।

व्यासजी ने कहा—बेटा! ब्रह्माजी ने जैसा विधान कर दिया है वैसा ही आचार-व्यवहार ऋषि लोग करते आये हैं। महर्षियों ने अपने कल्याण के लिए ब्रह्मचर्य का पालन करके सब लोकों पर विजय प्राप्त की है। जो फल-मूल खाता, दृढ़ता से तपस्या करता, पवित्र स्थान में रहता और अहिंसा-परायण है तथा जो मूसल के शब्द से शून्य धूम-रहित वानप्रस्थ की कुटी पर भिक्षा के लिए जाता है वही ब्रह्मपद प्राप्त कर सकता है। अतएव तुम स्तुति, नमस्कार और शुभाशुभ आदि सब विषयों को त्यागकर अकेले वन में जाकर किसी तरह निर्वाह करते हुए अपनी इच्छा के अनुसार विचरो।

शुकदेव ने कहा—पिताजी, कर्म करना चाहिए और कर्म को त्याग देना चाहिए, ये वेद
१० के दोनों वाक्य परस्पर-विरुद्ध हैं। इन वाक्यों का निर्णय कैसे किया जाय? आप इन दोनों वचनों की प्रामाणिकता बतलाइए और यह भी बतलाइए कि कर्म का विरोध किये बिना मोक्ष की प्राप्ति किस प्रकार हो सकेगी।

भगवान् वेदव्यासजी शुकदेव के वचनों की प्रशंसा करते हुए कहने लगे—बेटा! ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी, जो कोई राग-द्वेष आदि का त्याग करके शास्त्र के

अनुसार व्यवहार करे वही परमगति पा सकता है। ब्रह्म में चार आश्रमों की सीढ़ी लगी है। उसी सीढ़ी पर चढ़कर मनुष्य ब्रह्मलोक को जा सकता है। धर्म और अर्थ का जानकार ब्रह्मचारी, ईर्ष्याहीन होकर, गुरु अथवा गुरुपुत्र के पास जीवन का एक-चौथाई भाग बितावे। गुरु के घर में रहते समय उनके सो जाने पर सोवे और उनके उठने के पहले उठे। शिष्य और सेवक के करने योग्य सब काम करे और गुरु के पास बैठे। सब कामों से छुट्टी मिलने पर अध्ययन करे। वह हमेशा सरल स्वभाव रक्खे, किसी की निन्दा न करे। आचार्य के बुलाने पर उसी दम उनके पास जावे। थोड़ी दूर पर बैठकर गुरु की ओर ताकता रहे और उनसे बातचीत करे। आचार्य के खा-पी लेने पर खावे-पीवे, बैठने के बाद बैठे और सोने के बाद सोवे। हाथ फैलाकर मृदु भाव से दहिने हाथ से गुरु का दहिना पैर और बाँयें हाथ से उनका बायाँ पैर छूकर प्रणाम करके उनसे कहे—भगवन्! मुझे शिक्षा दीजिए, मैं इन कामों को कर चुका हूँ और ये काम करूँगा, और आप जो करने की आज्ञा दें उसे भी करने को तैयार हूँ। गुरुभक्त ब्रह्मचारी इस प्रकार गुरु से सब हाल कहे और सब काम कर चुकने के बाद उनसे निवेदन कर दे। ब्रह्मचर्य के समय ब्रह्मचारी रस और गन्ध का सेवन न करे। उनका व्यवहार समावर्तन के बाद करे। शास्त्र में ब्रह्मचर्य के जो नियम बतलाये गये हैं उन सबका पालन करता हुआ ब्रह्मचारी आचार्य के अधीन रहे। इस प्रकार गुरु को प्रसन्न रखता हुआ वह दूसरे आश्रम में जावे। वेद का अध्ययन और उपवास आदि करते हुए, गुरुकुल में जीवन का एक-चौथाई भाग समाप्त होने पर, आचार्य को दक्षिणा देकर वहाँ से समावर्तन करे (वापस आवे)। उसके बाद गृहस्थाश्रम में रहकर धर्मपत्नी के साथ अग्नि-स्थापन करे और उस आश्रम के नियमों का पालन करता हुआ जीवन का दूसरा चतुर्थांश बितावे। २० ३०

दो सौ तैंतालीस अध्याय

गृहस्थ-धर्म का वर्णन

व्यासजी कहते हैं—शुकदेव, पण्डितों ने गृहस्थों की जीविका के चार उपाय बतलाये हैं। उन्हीं के अनुसार कोई तीन साल के लिए और कोई एक साल के लिए अन्न रख लेता है। कोई प्रतिदिन खाने की चीज़ें लाता है और कोई उञ्छवृत्ति करके अपना निर्वाह करता है। इन चार प्रकार के गृहस्थों में पहली की अपेक्षा दूसरी, दूसरी की अपेक्षा तीसरी और तीसरी की अपेक्षा चौथी श्रेणी के मनुष्य श्रेष्ठ हैं। इनमें पहली श्रेणी के गृहस्थों को यजन आदि छः कर्म, दूसरी श्रेणी के लोगों को अध्ययन, दान और प्रतिग्रह, तीसरी श्रेणी के मनुष्यों को अध्ययन और दान तथा चौथी श्रेणी के पुरुषों को केवल अध्ययन करना चाहिए। गृहस्थों के नियम सब आश्रमवासियों के नियमों से श्रेष्ठ बतलाये गये हैं। केवल अपना पेट भरने के लिए भोजन बनाने

और पशु का वध करने की आज्ञा देना गृहस्थों को उचित नहीं। वे यज्ञ के लिए यजुर्वेद का मन्त्र पढ़कर बकरे आदि के सिर या पीपल आदि को काटें। दिन में तथा रात के पहले और पिछले पहर में सोना, दिन-रात के बीच दो बार से अधिक भोजन करना और ऋतुकाल के सिवा अन्य समय में सम्भोग करना गृहस्थों के लिए वर्जित है। गृहस्थ मनुष्य अपने घर आये हुए ब्राह्मण को, पूजा करके, भोजन करावे और वेद के विद्वान्, अपने धर्म के अनुसार जीविका करनेवाले, जितेन्द्रिय, क्रियावान्, तपस्वी, श्रोत्रिय के अतिथि होने पर यथोचित सत्कार करके उन्हें सन्तुष्ट करे। अपने को धर्मात्मा सिद्ध करने की इच्छा से नख और बाल रखनेवाला पाखण्डी, अग्निहोत्र न करनेवाला, गुरु का अप्रियकारी या चण्डाल, कोई भी क्यों न घर आ जाय
११ उसको भोजन देना गृहस्थों का कर्त्तव्य है। गृहस्थ मनुष्य प्रतिदिन ब्रह्मचारी, संन्यासी और अन्यान्य प्राणियों को भोजन दे। घी मिली हुई, यज्ञ से बची, भोजन की वस्तुएँ अमृत-स्वरूप हैं। भरण-पोषण करने योग्य अपने अधीन मनुष्यों को खिलाने का नाम विघस है। जो गृहस्थ उनको भोजन देकर खाता है वह विघसाशी है। पण्डितों ने यज्ञ से बचे हुए भोजन को अमृत कहा है। ऋत्विक्, पुरोहित, आचार्य, मामा, अतिथि, आश्रित, वृद्ध, बालक, रोगी, वैद्य, सजातीय, सम्बन्धी, बान्धव, पिता, माता, सगोत्रा स्त्री, भाई, पुत्र, पत्नी, कन्या और नौकर-चाकरों के साथ हेलमेल रखनेवाला, अपनी भार्या में सन्तुष्ट, असूयाहीन, जितेन्द्रिय गृहस्थ सब पापों से छूटकर सब लोकों पर विजय पाता है। पण्डितों ने आचार्य को ब्रह्मलोक का, पिता को प्रजापति-लोक का, अतिथि को इन्द्रलोक का, ऋत्विक् को देवलोक का और सगोत्रा स्त्री को अप्सरालोक का अधिपति बतलाया है। उन्होंने सजातीयों को विश्वेदेवलोक का, सम्बन्धियों और बान्धवों को सब दिशाओं का, माता और मामा को पृथ्वी का तथा वृद्ध, बालक, पीड़ित, दुर्बल मनुष्यों को आकाश का अधीश्वर बतलाया है। अतएव गृहस्थ लोग, आचार्य आदि की सेवा करके, ब्रह्मलोक प्राप्त कर सकते हैं। बड़ा भाई पिता के समान, स्त्री और पुत्र अपने शरीर
२० के समान, दास-दासी छाया-स्वरूप और कन्या कृपा-पात्र है। अतएव शान्तस्वभाव धर्मात्मा विद्वान् गृहस्थ बड़े भाई आदि से तिरस्कृत होने पर उस तिरस्कार को शान्ति से सहन कर ले। धर्मात्मा गृहस्थ, फल की इच्छा से, कोई काम न करे। जिस प्रकार ब्रह्मचर्य की अपेक्षा गार्हस्थ्य, गार्हस्थ्य की अपेक्षा वानप्रस्थ और वानप्रस्थ की अपेक्षा संन्यास आश्रम श्रेष्ठ है उसी प्रकार गृहस्थों के लिए अन्न सञ्चित करने की अपेक्षा सञ्चय न करना और सञ्चय न करने की अपेक्षा कपोतवृत्ति श्रेष्ठ है। गृहस्थ मनुष्य शास्त्रोक्त नियमों का पालन अवश्य करें। वर्ष भर के लिए अन्न रखनेवाले तथा कपोतवृत्ति और उञ्छवृत्ति करनेवाले गृहस्थ जिस राज्य में सम्मानित होकर रहते हैं वह राज्य उत्तरोत्तर बढ़ता है। जो व्यक्ति सावधानी से इस प्रकार गृहस्थाश्रम के धर्म का पालन करता है वह चक्रवर्ती राजा की गति पाता है और उसके आगे-पीछे की दस-

दस पीढ़ियों तक के पुरुष पवित्र हो जाते हैं। जितेन्द्रिय उदार गृहस्थों को विमान समेत परम रमणीय स्वर्गलोक प्राप्त होता है। मनुष्य विधिपूर्वक ब्रह्मचर्य आश्रम के नियमों का पालन करने के बाद गृहस्थ आश्रम में रहकर स्वर्ग का सा सुख भोगे। गृहस्थ आश्रम के बाद मनुष्यों को वानप्रस्थ आश्रम में जाना चाहिए। अब उस आश्रम के धर्म सुनो। २९

दो सौ चवालीस अध्याय

वानप्रस्थ-धर्म का वर्णन

भीष्म कहते हैं—युधिष्ठिर, विद्वानों के बतलाये हुए गृहस्थ-धर्म का वर्णन मैं कर चुका। अब पवित्र देशवासी, भले-बुरे का विचार रखनेवाले, सब आश्रमों के धर्म से युक्त वानप्रस्थ के धर्म का वर्णन करता हूँ।

व्यासदेव ने शुकदेव से फिर कहा—बेटा, जब गृहस्थ अपने शरीर की खाल लटकी हुई और बालों को सफ़ेद देखे और जब उसके बेटे के बेटा पैदा हो जाय तब उसे वानप्रस्थ आश्रम में चला जाना चाहिए। वानप्रस्थ आश्रम में रहकर वह अपने जीवन का तीसरा भाग वन में बितावे। इस आश्रम में रहकर गार्हपत्य आदि तीनों अग्नियों की उपासना, देवताओं की पूजा, भोजन का नियम, दिन के छठे भाग में भोजन, अग्निहोत्र की रक्षा, गौ का पालन, सब यज्ञों का अनुष्ठान, बिना जोती हुई पृथिवी में पैदा हुआ अन्न, जौ, नीवार और विघस भोजन करे। वानप्रस्थ आश्रम में भी चार प्रकार की वृत्ति बतलाई गई है। उसके अनुसार यज्ञ और अतिथि-सत्कार करने के लिए कोई एक दिन, कोई एक महीने, कोई एक वर्ष और कोई बारह वर्ष के लिए द्रव्य सञ्चय करता है। वानप्रस्थी लोग वर्षा के समय बरसात को सहें, हेमन्त ऋतु में पानी में रहें और गरमी के दिनों में पञ्चाग्नि तापें। परिमित भोजन, पृथिवी पर शयन और तीनों काल में स्नान-सन्ध्या करें। पैर के अँगूठे के बल खड़े हों, ख़ाली पृथिवी या आसन पर बैठें। कोई वानप्रस्थी तो अन्न को दाँतों से चबाकर और कोई पत्थर से कूटकर खाते हैं। १० कोई शुक्लपक्ष में और कोई कृष्णपक्ष में केवल एक बार लप्सी खाते हैं। कोई जो कुछ मिल गया वही खा लेते हैं। कोई कन्द-मूल, कोई फल और कोई केवल फूल खाकर रह जाते हैं। वानप्रस्थियों के इनके सिवा और भी अनेक नियम हैं। संन्यास चौथा आश्रम है। इसका सब आश्रमियों को अधिकार है। इस युग में महर्षि अगस्त्य, सप्तर्षि, मधुच्छन्द, अघमर्षण, सांकृति, एक स्थान पर न रहनेवाले सुदिवातण्डि, अहोवीर्य, काव्य, ताण्ड्य, मेधातिथि, कर्णनिर्वाक्, शून्यपाल ये सब महात्मा और सत्यसङ्कल्प आदि धर्म से युक्त यायावरगण इस वानप्रस्थ धर्म का पालन करके देवलोक को गये हैं। कृच्छ्र चान्द्रायण आदि व्रत करनेवाले जितेन्द्रिय धर्मात्मा वैखानस वालखिल्य, सैकतगण और ग्रह-नक्षत्रों के अतिरिक्त अन्यान्य ज्योतिष्क- २०

गण तथा अनेकानेक निपुण धर्मज्ञ तपस्वी महर्षियों ने वानप्रस्थ धर्म का अवलम्बन किया था। अत्यन्त वृद्ध और रोग से पीड़ित हो जाने पर जीवन के अन्तिम भाग में, वानप्रस्थ आश्रम को त्यागकर, संन्यास आश्रम में चला जाना चाहिए।

ब्राह्मण एक दिन में समाप्त हो जानेवाला यज्ञ और जीवित अवस्था में अपना श्राद्ध आदि करके, पुत्र-स्त्री और अग्निहोत्र को त्यागकर, आत्मनिष्ठ हो अपने आत्मा में ही आनन्द करे। मनुष्य में जब तक योगाभ्यास करने की योग्यता न हो तभी तक उसे ब्रह्मयज्ञ और दर्श-पूर्णमास आदि यज्ञ करना चाहिए। संन्यासी अपने जीवन भर के लिए गार्हपत्य आदि तीनों अग्नियों का त्याग कर दे। उसके लिए यही यज्ञ है। संन्यासी अन्न की निन्दा न करके, यजुर्वेद के मन्त्र पढ़ता हुआ, पाँच या छः ग्रास भोजन करे। वानप्रस्थ आश्रम के धर्म का पालन करके पवित्र होकर, बाल और रोएँ मुड़ाकर, नख कटाकर संन्यास-धर्म का अवलम्बन करे। जो ब्राह्मण सब प्राणियों को अभय करता हुआ संन्यास-धर्म का पालन करता है वह तेजोमय लोकों को प्राप्त करके परमब्रह्म में लीन हो जाता है। सुशील, निष्पाप, आत्मज्ञानी पुरुष इस लोक और परलोक के लिए कोई कर्म नहीं करता। वह क्रोध, मोह, सन्धि-विग्रह सब कुछ छोड़कर उदासीन भाव से रहता है। जो अहिंसा आदि संयम और स्वाध्याय आदि नियमों का पालन नहीं करता, जो संन्यास की विधि के अनुसार आत्मा की खोज करता और यज्ञोपवीत उतार देता है वही आत्मज्ञानी मोक्ष पद पा सकता है। धर्मात्मा जितेन्द्रिय मनुष्य की मुक्ति होने में क्या सन्देह है? अब अनेक सद्गुणों से युक्त सर्वश्रेष्ठ चौथे आश्रम का वर्णन करता हूँ। ३१

दो सौ पैंतालीस अध्याय

संन्यास-धर्म का वर्णन

शुकदेव ने कहा—पिताजी! ब्रह्म को प्राप्त करने की इच्छा रखनेवाला मनुष्य, वानप्रस्थ आश्रम की तरह संन्यास आश्रम में रहकर किस प्रकार परमात्मा के साथ जीवात्मा को मिलावे?

व्यासदेव ने कहा—बेटा, गृहस्थ और वानप्रस्थ दोनों आश्रमों में चित्त को शुद्ध करके उसके बाद जो करना चाहिए वह बतलाता हूँ। ब्रह्मचर्य आदि तीन आश्रमों में मन के दोषों का संशोधन करके संन्यास आश्रम का अवलम्बन करना चाहिए। अतएव तुम चित्त के दोषों को दूर करने का अभ्यास करो। संन्यासी, सिद्धि पाने के लिए, किसी की सहायता न लेकर अकेला ही धर्म का अनुष्ठान करे। जो आत्मा का साक्षात्कार करके अकेला घूमता रहता है उसे आत्मा कभी नहीं त्यागता। ऐसे पुरुष को कभी मोक्षपद से भ्रष्ट नहीं होना पड़ता। निरग्नि होकर और वासस्थान से शून्य होकर भोजन के लिए गाँव-गाँव में भीख माँगना, केवल एक दिन के लिए भोजन लेना, चित्त को एकाग्र करना, अल्पाहार करना, कमण्डलु धारण करना,

वृक्ष के नीचे आश्रय लेना, रँगे कपड़े पहनना, अकेले रहना और सबसे उदासीन रहना संन्यासी का लक्षण है। जो दूसरों की कड़वी बातें सुनकर भी उन्हें कटु वचन न कहे वही संन्यासी होने योग्य है। न तो कभी किसी की निन्दा करे और न सुने। विशेषकर ब्राह्मणों की निन्दा करना तो उचित ही नहीं। हमेशा ब्राह्मणों के हित की बात कहे। दूसरों के मुँह से ब्राह्मण की निन्दा सुनकर धैर्य के साथ चुप रहना ही अच्छा है। जो अपने को सर्वव्यापी और मनुष्यों से भरे हुए स्थान को भी शून्य स्थान समझे, जो कुछ मिल जाय वही भोजन कर ले, साधारण कपड़े पहने, जहाँ जी चाहे वहाँ घूमे और जो जन-समाज को साँप के समान समझे, उसी को देवता वास्तविक ब्राह्मण कहते हैं; जो मिष्टान्न से होनेवाली तृप्ति को नरक के समान और स्त्रियों को मुर्दे के समान समझता है, जिसे सम्मान होने पर हर्ष और अपमान होने पर क्रोध नहीं होता और जो सब जीवों को निर्भय रखता है उसी को देवता लोग सच्चा ब्राह्मण कहते हैं। संन्यासी को न तो जीवन प्रिय है और न मरण अप्रिय। जैसे नौकर मालिक के हुक्म की राह देखा करता है वैसे ही संन्यासी को काल की प्रतीक्षा करते रहना चाहिए। मन और वाणी के दोषों को त्यागकर वह सब पापों से मुक्त हो जाय। जिसका कोई शत्रु नहीं होता उसे किसी का भय नहीं रहता। जिस मनुष्य से किसी प्राणी को डर नहीं होता उसे भी किसी का डर नहीं रहता। सारांश यह कि मोहहीन मनुष्य को कोई आशङ्का नहीं है। जैसे हाथी के पैर में सभी के पैर समाते हैं वैसे ही अहिंसा धर्म के अन्तर्गत अन्यान्य सब धर्म आ जाते हैं। जो हिंसा नहीं करता वह मौत से निडर होकर बहुत दिनों तक जीवित रहता है। जो बुद्धिमान्, शान्तस्वभाव, सत्यवादी, धैर्यवान्, जितेन्द्रिय और सब प्राणियों की रक्षा करनेवाला है वह अति उत्तम गति पाता है। मृत्यु इस प्रकार के ज्ञानवान्, निर्भीक और निर्लोभ मनुष्य का कुछ नहीं कर सकती, बल्कि वह पुरुष मृत्यु को जीत लेता है। जो सब विषयों से मुक्त और शान्त होकर आकाश के समान अलिप्त रहता है, जिसका कोई आत्मीय नहीं है, जो अकेला रहता है, जिसका धर्म ही जीवन है, दूसरों का उपकार करना ही जिसका धर्म है, जो दिन-रात पुण्य किया करता है, जो किसी प्रकार की इच्छा की पूर्ति के लिए काम नहीं करता, जो स्तुति करने से प्रसन्न नहीं होता और जो सब इच्छाओं को त्याग देता है उसे देवता लोग यथार्थ ब्राह्मण कहते हैं। सभी प्राणी सुख में प्रसन्न और दुःख में पीड़ित होते हैं, अतएव ऐसा काम कभी न करे जिससे दुःख हो। जीवों को अभय दान देने से बढ़कर दूसरा दान नहीं है। जो हिंसा नहीं करता वह सब प्राणियों के साथ निडर होकर रह सकता है। मुँह फैलाकर पञ्चग्रास-रूप प्राणाहुति देना संन्यासी का धर्म नहीं है; क्योंकि तीनों लोकों का आत्मस्वरूप अग्नि संन्यासी के शरीर में निवास करता है। वह उस 'प्रादेश' भर के हृदयाकाश में स्थित अग्नि में मन और सब इन्द्रियों की आहुति देता है। इस आहुति के देने से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड तृप्त हो जाता है। जो तीनों

गुणों से युक्त मायामय जीवात्मा को सर्वश्रेष्ठ परमात्म-रूप समझ लेता है वह क्या मृत्युलोक और क्या स्वर्गलोक सब जगह प्रशंसनीय होकर सम्मान पाता है। जो चारों वेद, कर्मकाण्ड, आकाश आदि पदार्थ, परलोक और परमार्थ विषय को अपने आत्मा में ही समझता है और अलिप्त, अपरिमेय, ज्ञानमय परमात्मा को अपने हृदय में स्थित जानता है उसकी सेवा करने
३० के लिए देवता भी तैयार रहते हैं। छहों ऋतुएँ जिसकी नाभि, बारहों महीने जिसका अर और अमावास्या आदि जिसके पर्व हैं, जिसका कभी अन्त नहीं होता और जो हमेशा घूमता रहता है, वह कालचक्र योगियों के हृदय में रहता है। संसार में स्थावर-जङ्गम प्राणियों के जितने शरीर हैं उन सबमें स्थित रहकर जीवात्मा प्राण आदि देवताओं को तृप्त करता है। उनकी तृप्ति होने पर वह स्वयं भी तृप्त हो जाता है। जो स्वयं तेजोमय नित्य और अपरिमेय है, जो किसी प्राणी से नहीं डरता और जिससे किसी प्राणी को भय नहीं रहता वही पुरुष भयहीन अनन्तलोक को प्राप्त कर सकता है। जो किसी की निन्दा नहीं करता और जिसकी कोई निन्दा नहीं करता उसी को परमात्मा का साक्षात्कार हो सकता है। निष्पाप मोहहीन पुरुष क्या यह लोक और क्या परलोक, कहीं भी सुख भोगने की इच्छा नहीं करता। जो पुरुष सोना और मिट्टी, प्रिय और अप्रिय तथा निन्दा और स्तुति को एक समान समझता है; जो सन्धि, विग्रह, राग और मोह नहीं करता और जो निर्धन होने पर भी निःस्पृह बना
३६ रहता है वही सच्चा संन्यासी है।

दो सौ छियालीस अध्याय

संन्यास-धर्म का वर्णन

व्यासजी ने कहा—बेटा! जीवात्मा प्रकृति के विकार, मन, बुद्धि और इन्द्रियों से युक्त होकर इन सबको जानता रहता है; किन्तु वे जीवात्मा को नहीं जानते। मनुष्य, सारथी से हाँके हुए पराक्रमी सुशिक्षित श्रेष्ठ घोड़ों के समान, पाँच इन्द्रियों और मन के द्वारा सब काम करता है। इन्द्रियों की अपेक्षा शब्द-स्पर्श आदि विषय, विषयों की अपेक्षा मन, मन की अपेक्षा बुद्धि, बुद्धि की अपेक्षा महत्तत्त्व, महत्तत्त्व की अपेक्षा अव्यक्त प्रकृति और अव्यक्त प्रकृति की अपेक्षा परब्रह्म श्रेष्ठ है। ब्रह्म से श्रेष्ठ और कोई नहीं है। वही सबके प्राप्त करने योग्य पदार्थ और परम गति है। वह परमात्मा सब प्राणियों के शरीर में छिपा रहता है। तत्त्वज्ञ योगी लोग, सूक्ष्म बुद्धि के द्वारा, उसका दर्शन करते हैं। योगी लोग चिन्ता और अभिमान छोड़कर, बुद्धि के द्वारा, इन्द्रियों और उनके विषयों को महत्तत्त्व में लीन करके और मन को तत्त्वदर्शिनी बुद्धि के द्वारा शुद्ध तथा ध्यान के द्वारा दबाकर शान्तचित्त हो ब्रह्मपद प्राप्त करते हैं। जो मनुष्य इन्द्रियों के अधीन और चञ्चलचित्त होकर काम-क्रोध आदि के वशीभूत रहता है वह निस्सन्देह

मौत का शिकार होता है। अतएव योगी लोग इच्छाओं को त्यागकर, स्थूल बुद्धि को सूक्ष्म बुद्धि में प्रविष्ट करके, कालञ्जर पर्वत के समान स्थिरस्वभाव हो जाते हैं। योगी लोग मन की एकाग्रता के प्रभाव से ही सब पाप-पुण्य का त्याग करके, शुद्ध-चित्त और अपने स्वरूप में स्थित होकर, अनन्त सुख भोगते हैं। सोते हुए मनुष्य के समान सुख-दुःखहीन और वायु से सुरक्षित जलते हुए दीपक के समान निश्चल रहना ही प्रसन्नचित्त मनुष्य के लक्षण हैं। जो मनुष्य थोड़ा भोजन करता है और शुद्धचित्त होकर रात के पहले और पिछले भाग में परमात्मा के साथ जीवात्मा को मिलाता है उसी को जीवात्मा में परमात्मा के दर्शन होते हैं। १०

हे पुत्र, मैंने ऋग्वेद के दस हज़ार मन्त्र-रूप समुद्र को मथकर सब धर्मों का और सत्यो-पाख्यान का सारभूत वेदविहित अलौकिक अनुभवगम्य आत्म-साक्षिक शास्त्रामृत तुम्हारे लिए उद्धृत किया है। जैसे दही से मक्खन निकलता और लकड़ी से आग पैदा होती है वैसे ही तुम्हारे लिए वेदशास्त्र से यह ज्ञान निकाला गया है। स्नातक व्रतधारी मनुष्यों को ही इस ज्ञान का उपदेश देना चाहिए। अप्रशान्त, अजितेन्द्रिय, तपस्याहीन, यथेच्छाचारी, वेद का अनभिज्ञ, ईर्ष्या करनेवाला, कुटिल और व्यर्थ तर्क-वितर्क करनेवाला मनुष्य इस ज्ञान का अधिकारी नहीं है। प्रशंसनीय, प्रशान्त, तपस्वी मनुष्य प्रिय पुत्र और अनुगत शिष्यों को ही इस गूढ़ धर्म की शिक्षा दें। तत्त्वज्ञ मनुष्य रत्नों से पूर्ण पृथिवी पाने की अपेक्षा इस ज्ञान की प्राप्ति को श्रेष्ठ समझता है। इसके बाद मैं इससे भी गूढ़ वेद-निर्दिष्ट आत्मतत्त्व का वर्णन करूँगा। अब तुम क्या पूछना चाहते हो? २३

दो सौ सैंतालीस अध्याय

शुकदेव के पूछने पर व्यासजी का अध्यात्म विषय कहना

शुकदेव ने कहा—भगवन्! अध्यात्म क्या है? आप इसे जैसा जानते हों उसका वर्णन विस्तार से फिर कीजिए।

व्यासजी ने कहा—बेटा! अध्यात्म का विषय सुनो। जैसे समुद्र की तरङ्गें अलग-अलग न होने पर भी अनेक प्रकार की देख पड़ती हैं वैसे ही पृथिवी-जल आदि सब महाभूत एकत्र रहते हुए भी जरायुज आदि सब प्राणियों में भिन्न रूप से स्थित हैं। जैसे कछुआ अपने सब अङ्ग फैलाता और सिकोड़ लेता है वैसे ही पृथिवी आदि सब महाभूत, देह में स्थित रहकर, उत्पत्ति और विनाश करते हैं। ये स्थावर-जङ्गम सब प्राणी पञ्चभूतमय हैं। इन्हीं पञ्चभूतों से सबकी उत्पत्ति और नाश होता है। सृष्टिकर्ता परमात्मा ने सब प्राणियों में, न्यूनता-अधिकता के अनुसार, महाभूतों का सन्निवेश कर दिया है।

शुकदेव ने कहा—भगवन्, पृथिवी आदि महाभूत जो शरीर की न्यूनता-अधिकता के अनुसार उनमें सन्निविष्ट हैं वे किस तरह जाने जा सकते हैं और यह किस तरह मालूम हो सकता है कि कौन इन्द्रिय किस महाभूत की है तथा शब्द आदि गुण किस-किसके हैं।

व्यासजी ने कहा—बेटा! तुमने जो विषय पूछा है उसे ध्यान लगाकर सुनो। शब्द, कान और शरीर के सब छिद्र आकाश के गुण हैं; प्राण, चेष्टा और स्पर्श वायु के गुण हैं; रूप, १० चक्षु और जठराग्नि अग्नि के गुण हैं; रस, स्वाद और स्नेह जल के गुण हैं तथा गन्ध, नासिका और शरीर पृथिवी के गुण हैं। यह पाञ्चभौतिक इन्द्रियों का वर्णन है। अब जिसका जो गुण है, वह भी सुनो। स्पर्श वायु का, रस जल का, रूप अग्नि का, शब्द आकाश का और गन्ध पृथिवी का गुण है। मन, बुद्धि और वासना लिङ्ग-शरीर में उत्पन्न होते हैं। वे इन्द्रियों को प्राप्त होकर शब्द आदि गुण ग्रहण करते हैं। जैसे कछुआ अपने अङ्गों को फैलाता और सिकोड़ लेता है वैसे ही बुद्धि सब इन्द्रियों को विषयों में लगाती और हटा भी सकती है। बुद्धि के प्रभाव से ही मनुष्यों में अहङ्कार उत्पन्न होता है। शब्द आदि गुणों को बुद्धि प्रकाशित करती और मन को इन्द्रियों के साथ लगा देती है। बुद्धि की सहायता के बिना शब्द आदि गुण, मन और सब इन्द्रियाँ कोई काम नहीं कर सकतीं। शरीर में पाँच इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि और क्षेत्रज्ञ रहते हैं। रूप आदि विषयों के ज्ञान का कारण नेत्र आदि इन्द्रियाँ हैं, उन विषयों के सन्देह का कारण मन है और उस सन्देह का निर्णय करनेवाली बुद्धि है। इन्द्रिय, मन और बुद्धि का साक्षी आत्मा है। सत्त्व, रज और तम, ये तीनों गुण मन से उत्पन्न होते हैं। ये गुण सब प्राणियों में होते हैं। कार्य के ही द्वारा उनकी परीक्षा होती है। जो गुण आत्मा को २० प्रसन्न, प्रशान्त और निष्पाप रखता है उसका नाम सत्त्वगुण है। जिस गुण से शरीर और मन में सन्ताप उत्पन्न होता है वह रजोगुण है और जिससे आत्मा मोह से युक्त अव्यक्त अचिन्तनीय और दुर्ज्ञेय अवगत होता है वह तमोगुण है। किसी कारण-वश अथवा अकारण ही जिससे हर्ष, प्रीति, आनन्द, समता और सुस्थचित्तता उत्पन्न हो वह सत्त्वगुण का कार्य है; जिससे अभिमान, असत्यता, लोभ, मोह और असहिष्णुता पैदा हो वह रजोगुण का चिह्न है २५ और मोह, प्रमाद, निद्रा, आलस्य और जागरण तमोगुण का कार्य है।

दो सौ अड़तालीस अध्याय

ज्ञान के साधन बतलाना

व्यासजी कहते हैं—शुकदेव, कर्म की उत्पत्ति का नियम तीन प्रकार का है। पहले तो मन में अनेक प्रकार के भाव उत्पन्न होते हैं। उसके बाद बुद्धि द्वारा उन भावों का निश्चय किया जाता है। फिर अहङ्कार के प्रभाव से उनकी अनुकूलता और प्रतिकूलता का ज्ञान होता है।

इन्द्रियों से विषय, विषयों से मन, मन से बुद्धि और बुद्धि से आत्मा श्रेष्ठ है। जब बुद्धि, आत्मा के साथ अभिन्न रूप से स्थित होकर, घट आदि का ज्ञान उत्पन्न करती है तब उसे मन कहते हैं। इन्द्रियों के विषय अलग-अलग होने के कारण एक ही बुद्धि अनेक प्रकार की हो जाती है। बुद्धि श्रवण-ज्ञान-युक्त होने से कान, स्पर्श-ज्ञान-युक्त होने से त्वचा, दर्शन-ज्ञान-युक्त होने से दृष्टि, रस-ज्ञान-युक्त होने से रसना और गन्ध के ज्ञान से युक्त होने के कारण घ्राण-इन्द्रिय कहलाती है। बुद्धि के विकार इसी तरह के हैं। इन्हीं विकारों को इन्द्रिय कहते हैं। ज्ञानमय आत्मा इन इन्द्रियों का अधिष्ठाता है। बुद्धि मनुष्यों के शरीर में तीन प्रकार से स्थित रहकर उन्हें कभी प्रसन्न, कभी दुखी और कभी सुख-दुःखहीन करती रहती है। जैसे समुद्र नदियों के वेग को मेट देता है वैसे ही बुद्धि सात्त्विक आदि तीनों भावों को छिपा लेती है। मनुष्य जब कोई इच्छा करता है तब उसकी बुद्धि मन के रूप में परिणत होती है। दर्शन आदि इन्द्रियों को, अलग-अलग होने पर भी, बुद्धि के अन्तर्गत समझना चाहिए। इन्द्रियों को अपने अधीन कर ले। इन्द्रियाँ जब बुद्धि के अनुगत हो जाती हैं तब वह स्थिर बुद्धि, विकृत होने के कारण, मन में अनेक प्रकार के ज्ञान उत्पन्न करती है। जैसे रथ पहियों के सहारे चलता है वैसे ही सत्त्व आदि तीनों गुण मन, बुद्धि और अहङ्कार के भरोसे काम करते हैं। मन को विषयों से हटाकर, योग में लगाकर, बुद्धि और इन्द्रियों के प्रभाव से दीपक के समान करके मनुष्य अज्ञान-रूपी अन्धकार को दूर करे। जो मनुष्य संसार को बुद्धि द्वारा कल्पित समझता है वह कभी मोहित नहीं होता। उसके हर्ष, विषाद और ईर्ष्या आदि सब दूर हो जाते हैं। यदि इन्द्रियाँ विषयों में लिप्त रहती हैं तो अशुद्ध चित्तवाले दुरात्माओं की बात तो दूर रही, पुण्यात्मा लोग भी आत्मा का साक्षात्कार नहीं कर सकते। किन्तु जब मन के प्रभाव से इन्द्रियाँ अपने अधीन हो जाती हैं तब आत्मा, दीपक की प्रभा के समान, प्रकाशित हो जाता है। जैसे जलचर पक्षी पानी में चलने पर भी उससे लिप्त नहीं होते वैसे ही देहाभिमान-शून्य ज्ञानी योगी, विषयों का भोग करके, कभी उनके दोषों में लिप्त नहीं होता। जो पहले के किये हुए सब कामों को त्यागकर केवल परमात्मा में अनुरक्त रहता है और जो सब प्राणियों को समान भाव से देखता है उसकी बुद्धि विषय-वासनाओं में न फँसकर ज्ञान में ही लगती है। आत्मा गुणों का निरीक्षक और नियन्ता है। गुण आत्मा को नहीं जान सकते; किन्तु आत्मा उन सबको जानता रहता है। प्रकृति और पुरुष में यही भेद है कि प्रकृति विषयों की उत्पत्ति करती है; किन्तु पुरुष इन सबके सृष्टि-कार्य से बिलकुल अलग है। जैसे पानी और मछली, पतङ्गे और गूलर, सींक और मूँज ये सब एक-दूसरे से भिन्न होने पर भी एक साथ रहते हैं वैसे ही प्रकृति और पुरुष भी, स्वभावतः स्वतन्त्र होने पर भी, एक-दूसरे की सहायता के लिए एकत्र रहते हैं। १० २० २४

दो सौ उनचास अध्याय

व्यासजी का शुकदेव से ज्ञान की प्रशंसा करना

व्यासजी कहते हैं—बेटा! सत्त्व आदि गुण प्रकृति के साथ मिलकर, जैसे मकड़ी जाला पूरती है वैसे ही, विषयों को उत्पन्न करते हैं और आत्मा अलिप्त रहकर इन सब गुणों का अधिष्ठाता है। कोई कहते हैं कि गुणों का नाश हो जाने पर वे फिर उत्पन्न हो जाते हैं और कोई कहते हैं कि तत्त्वज्ञान के प्रभाव से जब गुणों का नाश कर दिया जाता है तब वे फिर नहीं उत्पन्न हो सकते। क्योंकि यदि इन गुणों की फिर उत्पत्ति होती तो तत्त्वज्ञानी पुरुषों के कार्य गुणों के अनुयायी देखे जाते। मनुष्य इन दोनों मतों को ध्यान में रखकर, सिद्धान्त स्थिर करके, आत्मनिष्ठ होवे। आत्मा का आदि-अन्त नहीं है। आत्मा के स्वरूप को जानकर मनुष्य क्रोध, हर्ष और मत्सरता को छोड़ दे। देह में आत्माभिमान और अनित्य वस्तुओं का शोक न करके, सन्देहहीन होकर, परम सुख से रहे। तैरना न जाननेवाला मनुष्य जैसे नदी में डूब जाता और दुखी होता है वैसे ही अविवेकी मनुष्य आत्म-स्वरूप को न जानकर संसार-सागर में डूबता-उतराता रहता है। किन्तु जैसे तैराक मनुष्य तैरकर पार हो जाता है वैसे ही आत्म-तत्त्वज्ञ पुरुष संसार से मुक्त होकर क्लेश से छूट जाता है। मनुष्य को चाहिए कि संसार में प्राणियों के बन्ध-मोक्ष के विषय को तथा दोनों के तारतम्य को अच्छी तरह जानकर शान्ति प्राप्त करे। ब्राह्मणों को शान्ति प्राप्त करना और आत्मज्ञान उपार्जन करना चाहिए। यही दो
१० उन्हें मोक्ष देने के लिए पर्याप्त हैं। इन दोनों के प्राप्त हो जाने पर स्वभाव शुद्ध हो जाता है। आत्मा से बढ़कर ज्ञातव्य और कोई पदार्थ नहीं है। विद्वानों ने आत्मज्ञान प्राप्त करके मोक्ष पद पाया है। परलोक में अविवेकी मनुष्यों को भय होता है किन्तु विवेकी पुरुषों को रत्ती भर भी भय नहीं है। विवेकी मनुष्य को जैसी सनातन गति मिलती है वैसी श्रेष्ठ गति और किसी को नहीं मिल सकती। कोई तो दोषी को देखकर उससे ईर्ष्या करते हैं और कोई उसको देखकर शोक करते हैं; किन्तु जो कार्य-अकार्य का विचार कर सकते हैं वे विवेकी कभी शोक नहीं करते। पहले किये हुए सकाम कर्मों को निष्काम कर्म नष्ट कर देते हैं; किन्तु ज्ञानी मनुष्य
१४ के, पूर्व जन्म के किये हुए, कर्म उसका प्रिय या अप्रिय कुछ नहीं कर सकते।

दो सौ पचास अध्याय

ज्ञान के उपाय बतलाना

शुकदेव ने कहा—पिताजी! आप उसी धर्म का वर्णन कीजिए जिससे बढ़कर दूसरा धर्म नहीं है।

व्यासजी ने कहा—बेटा! मैं ऋषियों का बतलाया हुआ सर्वश्रेष्ठ प्राचीन धर्म बतलाता हूँ, मन लगाकर सुनो। मनुष्य यत्न से अपनी सन्तान के समान, कुमार्गगामी, इन्द्रियों का—

बुद्धि द्वारा—दमन करके एकाग्रचित्त हो जावे। मन और इन्द्रियों की एकाग्रता ही श्रेष्ठ तपस्या और सर्वोत्तम धर्म है। अतएव मनुष्य सांसारिक विषयों की चिन्ता को छोड़कर बुद्धि के द्वारा पाँच इन्द्रियों और मन को वश में करके शुद्धचित्त हो जावे। जब तुम्हारी इन्द्रियाँ बाहरी और भीतरी सब विषयों को त्यागकर परब्रह्म में स्थित हो जायँगी तब तुम अपने आत्मा में सनातन परब्रह्म का साक्षात्कार कर सकोगे। ब्रह्मज्ञानी महात्मा ही सर्वव्यापी, निर्धूम अग्नि के समान, परब्रह्म के दर्शन पा सकता है। जैसे अनेक शाखाओंवाला फल-फूलों से युक्त वृक्ष यह नहीं समझ सकता कि उसके किस स्थान में फूल और किस स्थान में फल हैं वैसे ही उपाधि-युक्त जीव यह नहीं समझता कि मैं कहाँ से आया हूँ और कहाँ को जाऊँगा; किन्तु अन्तरात्मा सब कुछ देखता है। मनुष्य आत्मज्ञान-रूप प्रज्वलित दीपक के द्वारा परमात्मा को देख सकता है। अतएव तुम आत्मज्ञान के प्रभाव से परब्रह्म का साक्षात्कार करके, सर्वज्ञ होकर, देह का आत्मभाव त्याग दो। १०
जो मनुष्य केंचुल छोड़े हुए साँप की तरह सब पापों से छूट जाता है वह इस लोक में श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त करके फिर जन्म नहीं पाता और जीवन्मुक्त हो जाता है। भवसागर में जानेवाली देह-रूपी नदी अव्यक्त-रूप से उत्पन्न हुई है। पाँचों इन्द्रियाँ उसके जलजन्तु, मन और सङ्कल्प उसके किनारे, लोभ और मोह उसके तृण, काम और क्रोध उसके साँप, सत्य उसका घाट, मिथ्या उसकी चञ्चलता, क्रोध उसका कीचड़, जिह्वा उसका भँवर और वासना उसकी अथाह गहराई है। यह नदी सब स्थानों में बड़ी-बड़ी तरङ्गें फैलाती हुई सब जीवों को बहाये लिये जा रही है। जो मनुष्य इन्द्रियों के वशीभूत है वह कभी इस नदी को पार नहीं कर सकता। धैर्यवान् विवेकी मनुष्य ही इस नदी के पार उतर सकता है। तुम ज्ञान के बल से इस देह-रूपी नदी के पार उतरो। ऐसा करने से ही विषयों से मुक्त, आत्मज्ञानी और पवित्र होकर श्रेष्ठ बुद्धि प्राप्त करके ब्रह्मस्वरूप हो सकोगे। पहाड़ पर स्थित मनुष्य जैसे पृथिवी पर के लोगों से अलग होकर उन्हें देखता है वैसे ही अब तुम संसार से मुक्त होकर सबको देखो। हर्ष, क्रोध और निठुरता को छोड़ने पर ही सब प्राणियों की उत्पत्ति और विनाश के मर्म को समझ सकोगे। धर्मात्मा तत्त्वदर्शी पण्डितों ने इस देह-नदी के पार उतरने को ही सब धर्मों से श्रेष्ठ धर्म बतलाया है। आत्मज्ञानी संयमी अनुगत मनुष्यों को इस धर्म का उपदेश देना चाहिए। यह आत्मज्ञान का सर्वश्रेष्ठ अति गूढ़ विषय २०
मैंने तुम्हें बतला दिया। सुख-दुःख से हीन—भूत-भविष्य का कारण—परब्रह्म न तो पुरुष है, न स्त्री और न नपुंसक ही। क्या स्त्री, क्या पुरुष, जो कोई उसे जान लेता है उसे फिर संसार के बन्धन में नहीं रहना पड़ता। मैंने सब मतों का वर्णन विशेष रूप से कर दिया। जो मनुष्य इसके अनुसार काम करता है उसी को सिद्धि मिल सकती है। हे पुत्र, जिस तरह मैंने तुमको उपदेश दिया है उसी तरह दयावान् गुणवान् पुत्र के पूछने पर मनुष्य प्रसन्नता से उन्हें सदुपदेश करें। २५

दो सौ इक्यावन अध्याय

आत्मज्ञान के साधन और उसके उपाय बतलाना

व्यासजी कहते हैं—शुकदेव! जो मनुष्य गन्ध, रस आदि विषयों में न तो आसक्त होता और न उनसे द्वेष ही रखता है, तथा जो कीर्त्ति और सम्मान नहीं चाहता वही सच्चा ब्रह्मज्ञानी है। केवल ऋक्, यजु और सामवेद के पढ़ने, गुरु की सेवा करने और ब्रह्मचर्य रखने से कोई ब्राह्मण नहीं हो जाता। यथार्थ ब्राह्मण वही है जो सब प्राणियों पर दयालु, सर्वज्ञ और सब वेदों का विद्वान् होकर मृत्यु को अपने अधीन कर सकता है। विधि को छोड़कर केवल बड़ी दक्षिणावाले अनेक प्रकार के यज्ञ करने से ब्राह्मणत्व नहीं मिल सकता। जिससे किसी को डर न हो और जो स्वयं भी किसी प्राणी से न डरे, जिसे लोभ और द्वेष न हो और जो मन-वचन-कर्म से किसी का बुरा न चेते वही सच्चा ब्राह्मण है। संसार में विषयों के बन्धन के सिवा और कोई बन्धन नहीं है। विवेकी मनुष्य, घने बादलों से निकले हुए चन्द्रमा के समान, निष्पाप ब्रह्म-स्वरूप होकर धैर्यपूर्वक काल की प्रतीक्षा करता है। जिस मनुष्य की विषय-वासनाएँ, समुद्र में लीन हो गये नदियों के जल के समान, आत्मा में लीन हो जाती हैं वही मोक्ष पा सकता है। विषयी मनुष्य मोक्ष पाने का अधिकारी नहीं हो सकता। ब्रह्मज्ञ मनुष्य की सब वासनाएँ पूरी हो जाती हैं; किन्तु विषयाभिलाषी मनुष्य की इच्छाएँ कभी पूर्ण नहीं होतीं। इच्छा होने के कारण वह स्वर्ग को जाता है और वहाँ से लौटकर संसार में जन्म लेता है। वेद का रहस्य सत्य, सत्य का रहस्य इन्द्रिय-निग्रह, इन्द्रिय-निग्रह का रहस्य दान, दान का रहस्य तपस्या, तपस्या का रहस्य त्याग, त्याग का रहस्य आत्मज्ञान, आत्मज्ञान से बढ़कर समाधि और समाधि से बढ़कर ब्रह्मभाव की प्राप्ति है। विषय-वासना, शोक और सन्ताप ये सब मन को क्लेश देते हैं अतएव तुम सन्तुष्ट रहकर मोक्ष के उपाय सत्त्वगुण का अवलम्बन करो। जो मनुष्य शोक, मोह और ईर्ष्या को छोड़कर सन्तोष, शान्ति और प्रसन्नता का अवलम्बन करता है वही सच्चा ज्ञान प्राप्त करके मोक्षपद पा सकता है। जो मनुष्य श्रवण, मनन और निदिध्यासन के द्वारा शोक-मोह-हीन आत्मा को जान लेता है वह अन्त में सर्वव्यापी ब्रह्म को प्राप्त करता है। ज्ञानी पुरुष जन्म-मरण-हीन निर्मल ब्रह्म को प्राप्त कर परम सुख पाता है। मन को स्थिर करके ब्रह्म में लगा देने पर जैसा सन्तोष होता है वैसा दूसरे किसी उपाय से नहीं हो सकता। जिसकी महिमा से भूखा और दरिद्र मनुष्य भी तृप्त होता तथा आश्रयहीन भी बलवान् हो सकता है उस परब्रह्म को जिसने जान लिया है वही यथार्थ वेदज्ञ है। जो इन्द्रियों को रोककर ध्यान में मग्न रहता है उसी को ब्रह्मज्ञ, शिष्ट और आत्माराम कहते हैं। जो विषय-वासना और प्राणियों के प्रति पक्षपात को छोड़कर सर्वश्रेष्ठ आत्मतत्त्व में लग जाता है उसका आत्मसुख चन्द्र-मण्डल के समान क्रमशः बढ़ता रहता है और दुःख ऐसे नष्ट हो जाता है जैसे सूर्य के उदय होने पर घना

अन्धकार। तब उस विषय-वासना-हीन कर्मत्यागी ब्रह्मज्ञ पुरुष का जन्म और मृत्यु कुछ नहीं बिगाड़ सकते। वह राग-द्वेष-हीन और सर्वत्यागी होकर इन्द्रियों और इन्द्रियों के विषयों को जीत लेता है। इस प्रकार जो देहादिभाव का त्याग करके परमब्रह्म को प्राप्त हो जाता है उसे फिर जन्म नहीं लेना पड़ता। २१ २४

दो सौ बावन अध्याय

व्यासजी का शुकदेव से आकाश आदि महाभूतों के गुणों का वर्णन करना।

व्यासजी कहते हैं—शुकदेव! मान-अपमान के सहनेवाले, धर्मार्थ में तत्पर, मोक्ष-जिज्ञासु शिष्य को गुणवान् वक्ता पहले पूर्वोक्त वचन सुना दे, फिर उपदेश दे। आकाश, वायु, ज्योति, जल और पृथिवी तथा जन्म, मृत्यु और काल, ये सब प्राणियों में विद्यमान हैं। आकाश छिद्ररूप और श्रवण-इन्द्रिय आकाश रूप है। पण्डितों ने शब्द को आकाश का गुण बतलाया है। प्राण, अपान, त्वक्-इन्द्रिय और चलना-फिरना, ये वायु के कार्य हैं और स्पर्श उसका गुण है। आँच, पाक, प्रकाश, गरमी और आँखें तेज के कार्य हैं; ताम्र, गौर और कृष्ण आदि उसके गुण हैं। पसीना, द्रवीकरण, स्वाद, जिह्वा, रक्त और मज्जा आदि जल के कार्य हैं और रस उसका गुण है। धातु, हड्डी, दाँत, नख, दाढ़ी, रोएँ, बाल, नाड़ियाँ, स्नायु, चमड़ी आदि और घ्राण-इन्द्रिय, ये सब पृथिवी के कार्य हैं और गन्ध उसका गुण है। आकाश का गुण शब्द है; वायु के गुण शब्द और स्पर्श हैं; तेज के गुण शब्द, स्पर्श और रूप हैं; जल के गुण शब्द, स्पर्श, रूप और रस हैं; पृथिवी के गुण शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध हैं। महर्षियों ने यही पञ्चभूत, उनके कार्य और गुण बतलाये हैं। मनुष्यों के शरीर में पञ्चभूत, प्रकृति, महत्तत्त्व, अहङ्कार, मन, बुद्धि और जीवात्मा ये सब पदार्थ रहते हैं। बुद्धि निश्चयात्मक, मन संशयात्मक और देहाभिमानी जीव कर्म का आश्रय है। सत्ययुग आदि कालकृत पुण्य-पाप से युक्त होने पर भी जीव यदि अपने को उनसे अलिप्त समझता है तो उसे मोहित नहीं होना पड़ता। १२

दो सौ तिरपन अध्याय

योगियों की प्रशंसा और उनके प्रभाव का वर्णन

व्यासजी ने कहा—बेटा, योगी लोग शास्त्र में बतलाये हुए योग आदि कर्मों के द्वारा देहहीन परमात्मा के दर्शन करते हैं। जैसे आकाश में सूर्य की किरणें स्थूल दृष्टि से न देखी जाकर युक्ति से उनका अनुमान किया जाता है वैसे ही स्थूल शरीर को छोड़कर संसार में घूमते हुए जीवों को स्थूल दृष्टि से नहीं देखा जा सकता; वे ज्ञान दृष्टि से ही देख पड़ते हैं। जितेन्द्रिय योगी लोग, पानी में सूर्य की परछाहीं के समान, जीवित शरीर में प्रकाशित लिङ्ग-शरीर को

देखते हैं। जो जाग्रत् और स्वप्नावस्था में मन के कल्पित काम आदि को और योगैश्वर्य को त्याग-कर योग करता है वही लिङ्ग-शरीर को अपने अधीन कर सकता है। उसी का जीव महत्तत्त्व, अहङ्कार, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द, इन सात गुणों से युक्त होने पर भी जन्म-मृत्यु को जीतकर इन्द्र आदि लोकों में विचरता है। जो मनुष्य मन और बुद्धि के वश में रहता है वह अन्य प्राणियों को अपने से पृथक् समझता है, स्वप्न में जाग्रत् अवस्था के समान पदार्थों को देखता है, पुण्य-पाप करता है, सुख-दुःख भोगता है, काम-क्रोध के वश में रहकर इच्छाओं से युक्त रहता १० और बहुत सा धन पाकर सन्तुष्ट होता है। जीव माता के गर्भ में दस महीने रहकर, खाये हुए अन्न की तरह, पच नहीं जाता। ईश्वर के अंशस्वरूप, सब प्राणियों के हृदय में रहनेवाले, जीवात्मा को रज और तमोगुण से युक्त मनुष्य किसी उपाय से नहीं देख सकता। जो मनुष्य योग करके जीवात्मा के दर्शन करना चाहे उसे स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर का अतिक्रमण करना चाहिए। महर्षियों ने संन्यासियों के भिन्न-भिन्न कर्म बतलाये हैं; किन्तु शाण्डिल्य मुनि ने शान्ति देनेवाली समाधि को ही सर्वश्रेष्ठ कहा है। मनुष्य महत्तत्त्व, अहङ्कार, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द इन सात गुणों का, प्रकृति के विकार संसार का तथा सर्वज्ञता, नित्यतृप्ति, नित्यबोध, स्वाधीनता, अलुप्तदृष्टि और अनन्तशक्ति, इन छः गुणों से युक्त परमेश्वर का ज्ञान प्राप्त १५ करके परब्रह्म का साक्षात्कार कर सकता है।

दो सौ चौवन अध्याय

काम आदि दोषों की शक्ति बतलाना

व्यासजी ने कहा—बेटा, लोभी मनुष्य लोहे की ज़ञ्जीररूपी शरीर और विषय-वासनाओं में बँधे रहने के कारण हृदय में स्थित काम-वृक्ष को चारों ओर से घेरकर—फल पाने की इच्छा से—उसकी उपासना करते हैं। यह महावृक्ष मोह से उत्पन्न होता है। क्रोध और अभिमान उसके स्कन्ध हैं, कर्तव्य की इच्छा उसका थाला है, अज्ञान उसकी जड़ है, प्रमाद उसके सींचने का जल है, ईर्ष्या उसके पत्ते हैं, पूर्व जन्म के किये हुए पाप उसका सार है, मोह और चिन्ता उसकी छोटी डालियाँ हैं, शोक उसकी बड़ी डाली और भय उसका अङ्कुर है। मोहजनक तृष्णा-रूप लताएँ उस वृक्ष से लिपटी रहती हैं। जो मनुष्य मोहपाश से छूटकर इस वृक्ष को काट सकता है वही सुख-दुःख से अपने को बचा सकता है। जो मनुष्य भोग्य विषय के द्वारा इस वृक्ष को बढ़ाता है वह, विष से मरे हुए रोगी के समान, इन विषयों द्वारा नष्ट हो जाता है। पुण्यात्मा मनुष्य इस बद्धमूल वृक्ष की अज्ञान-रूप जड़ को योग के बल से, समाधि-रूप तलवार द्वारा, काट डालते हैं। जो मनुष्य जन्म-मृत्यु-रूप बन्धन को काम्य कर्मों का फल समझकर उससे निवृत्त हो जाता है उसे दुःख नहीं सहना पड़ता। महर्षियों ने शरीर को नगर-स्वरूप बतलाया

है। बुद्धि उसकी स्वामिनी और मन उस बुद्धि का मन्त्री है। इन्द्रियाँ उस नगर की प्रजा हैं, ये बुद्धि के भोग करने के लिए काम करती हैं। उस नगर में रज और तम नाम के दोष भी रहते हैं। बुद्धि, मन और इन्द्रिय आदि पुरवासी इन दोषों के कारण सुख-दुःख भोगते हैं। १०
राजस और तामस अहङ्कार अनुचित मार्ग से उत्पन्न सुख-दुःख का आश्रय करते हैं। उस नगर में—विकृत मन के साथ मिलकर—बुद्धि भी दूषित हो जाती है और इन्द्रियाँ, उस विकृत मन के डर से, चञ्चल हो जाती हैं। दूषित बुद्धि जिस विषय को हितकर समझती है वह विषय, अनिष्ट फल देकर, नष्ट हो जाता है और मन उस नष्ट वस्तु का स्मरण करके बहुत दुखी होता है। मन के दुखी होने पर बुद्धि पीड़ित होती है और बुद्धि के पीड़ित होने पर आत्मा को दुःख होता है। सारांश यह कि मन ही, रजोगुण के साथ मित्रता करके, आत्मा और इन्द्रिय आदि पुरवासियों को दुःख में डाल देता है। १४

दो सौ पचपन अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से पृथिवी आदि महाभूतों के गुणों का फिर वर्णन करना

भीष्म ने कहा—धर्मराज, इसके बाद प्रज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी वेदव्यासजी ने अपने पुत्र शुकदेव से फिर जिस प्रकार पञ्चभूतों का वर्णन किया था उसको ध्यान लगाकर सुनो। स्थिरता, गुरुता, कठिनता, उत्पन्न करने की शक्ति, गन्ध, सूँघने की शक्ति, सङ्घात, सब प्राणियों का आश्रय, सहनशीलता और स्थूलता, ये सब पृथिवी के गुण हैं। शीतलता, क्लेद, द्रवत्व, स्नेह, सौम्यता, प्रस्रवण, जिह्वा, बर्फ़ और ओले के रूप में जम जाना तथा चावल आदि को पकाना, ये सब जल के गुण हैं। दुर्धर्षता, जलाना, ताप, पाक, प्रकाशन, शोक, राग, शीघ्रगामिता, तीक्ष्णता और ऊपर को चलना, ये अग्नि के गुण हैं। स्पर्श, वाक् इन्द्रिय का स्थान, चलने में स्वतन्त्रता, शीघ्रगामिता, शूरता, छोड़ना, फेंकना, श्वास आदि लेना, जन्म और मरण, ये सब वायु के गुण हैं। शब्द, सर्वव्यापकता, छिद्र-सम्पन्नता, अनाश्रयता, अनालम्बता, अव्यक्तता, विकृति, अविकारिता, अप्रतिघात और भूतत्व, ये आकाश के गुण हैं। पञ्चमहाभूत इन पचास गुणों से अलङ्कृत हैं। तर्क-वितर्क-कौशल, स्मरण, भ्रान्ति, कल्पना, सहिष्णुता, भले-बुरे कामों में प्रवृत्ति का होना और चञ्चलता, ये मन के गुण हैं। सुषुप्ति, उत्साह, चित्त की एकाग्रता, सन्देह और प्रत्यक्ष आदि का प्रमाणित कराना, ये पाँच गुण बुद्धि के हैं। १०

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह! बुद्धि को पाँच गुणों से युक्त कैसे समझा जावे और इन्द्रियों को ही पञ्चमहाभूतों का गुण कैसे मान लिया जाय?

भीष्म ने कहा—धर्मराज! बुद्धि के पाँच गुण पहले मैंने बतलाये हैं सही, किन्तु वास्तव में बुद्धि के साठ गुण हैं। पञ्चमहाभूत और पञ्चमहाभूतों के जो पचास गुण बतलाये हैं उन सबको

तथा निद्रा, उत्साह आदि पाँचों को मिलाने से बुद्धि के साठ गुण होते हैं। ये सब गुण चैतन्य के साथ मिले हुए हैं। इन गुणों की सृष्टि परमेश्वर ने की है। ये सब अनित्य हैं। संसार की उत्पत्ति के विषय में पहले जितने मत दिखलाये गये हैं वे सब वेद-विरुद्ध और विचार-
१३ दूषित हैं। मैंने जो वेदोक्त मत बतलाया है इसे समझकर तुम बुद्धि को शान्त कर लो।

दो सौ छप्पन अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से नारद और अकम्पन का संवाद तथा नारद का अकम्पन से ब्रह्मा और महादेव का संवाद कहना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, दस हज़ार हाथियों का बल रखनेवाले भीमपराक्रमी राजा लोग अपने समान तेजस्वी वीरों द्वारा मारे जाकर रणभूमि में पड़े हुए हैं। उनका मारनेवाला कोई दूसरा नहीं है। इस समय ये जो महाबली राजा मरे पड़े हैं, इनको मरा हुआ क्यों समझा जाय? इस विषय में मुझे बड़ा सन्देह हुआ है। अतएव मुझे बतलाइए कि मृत्यु क्या है, वह किस पुरुष से उत्पन्न हुई है और सब प्राणियों का संहार क्यों करती है।

भीष्म ने कहा—बेटा, सत्ययुग में अकम्पन नाम का एक राजा संग्राम में हारकर शत्रु के अधीन हो गया था। उसके हरि नाम का, नारायण के समान बलवान्, एक पुत्र था। वह पुत्र सेना के साथ संग्राम में मारा गया। महाराज अकम्पन शत्रु के वश में होने और पुत्र के मारे जाने के कारण बड़े दुखी हुए। उन्होंने एक बार महर्षि नारद को देखकर पुत्र के
१० मारे जाने और शत्रु के हाथ में अपने पड़ने का सब हाल उनसे कहा।

सब हाल सुनकर दयालु महर्षि नारद ने पुत्र का शोक हटाने योग्य एक कथा उनसे कही कि महाराज, मैंने एक कथा सुनी है वह तुम्हें सुनाता हूँ। एक बार प्रजा की संख्या बढ़ते देखकर ब्रह्माजी को बड़ी चिन्ता हुई। वे सोच-विचार करने लगे कि इस समय संसार असंख्य जीवों से भर गया है, अब इसका संहार कैसे होगा। जब संसार के संहार करने का कोई उपाय उनकी समझ में न आया तब वे बड़े कुपित हुए। क्रोध के मारे उनकी इन्द्रियों से आग निकलने लगी। ब्रह्माजी के उस क्रोधानल से दसों दिशाएँ जलने लगीं।

ब्रह्माजी के कोपानल में स्थावर-जङ्गम प्राणियों से परिपूर्ण पृथ्वी, स्वर्ग और आकाश-मण्डल को जलते देखकर वेदपति यज्ञेश्वर महादेव, प्रजा का हित करने के लिए, ब्रह्माजी की शरण में गये। उनको देखकर ब्रह्माजी ने कहा—महेश्वर! तुम जिस मनोरथ से मेरे पास
२१ आये हो वह बतलाओ, मैं उसे पूरा करूँगा।

दो सौ सत्तावन अध्याय

ब्रह्मा और महादेव का संवाद। मृत्यु को उत्पन्न करके प्राणियों के संहार की आज्ञा देना

महादेव ने कहा—ब्रह्मन्, मेरी प्रार्थना है कि आप प्रजा की सृष्टि करें। यह सारी प्रजा आपकी ही उत्पन्न की हुई है, इसलिए इस पर कोप करना आपको उचित नहीं। हे देव, आपके तेज से प्रजा जली जा रही है, यह देखकर मुझे बड़ी दया आती है। अब आप उस पर क्रोध न करें।

ब्रह्मा ने कहा—महेश्वर, न तो मैंने प्रजा पर क्रोध किया है और न मैं प्रजा का नाश ही करना चाहता हूँ। मैं तो केवल पृथ्वी का भार हलका करने के लिए प्रजा का नाश कर रहा हूँ। यह पृथ्वी प्राणियों के बोझ से रसातल में धँसी जा रही है। इसकी प्रार्थना सुनकर मैं सोचने लगा कि प्रजा का संहार किस प्रकार करूँ। जब बहुत सोचने पर भी मुझे कोई उपाय न सूझ पड़ा तब मुझे क्रोध आ गया।

महादेव ने कहा—भगवन्, अब आप प्रसन्न हों। इस स्थावर-जङ्गमरूपी सारी प्रजा का नाश न करें। देखिए, ये चर-अचर चारों प्रकार के जीव नष्ट हो रहे हैं। संसार में हाहाकार मच गया है। इसलिए मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप इन प्राणियों पर दया करें। प्रजा का नाश हो जाने पर फिर वह नहीं लौट सकती। अब आप अपने तेज के प्रभाव से इस अपने तेज का नाश कीजिए। प्रजा के हित के लिए ऐसा उपाय कीजिए, जिसमें सारी प्रजा भस्म न हो जावे। आपने मुझे अधिदेव नियुक्त किया है, इसलिए ऐसा उपाय कीजिए १० जिसमें प्रजा का समूल विनाश न हो और वह बार-बार मरती और पैदा होती रहे।

महादेव के ये वचन सुनकर ब्रह्माजी ने कृपापूर्वक अपने तेज को शान्त करके प्राणियों के जन्म-मरण का नियम स्थापित कर दिया। उन्होंने जब क्रोध से उत्पन्न अपने तेज को शान्त किया तब उनकी इन्द्रियों से—पीले रङ्ग के कपड़े पहने हुए, काली आँखोंवाली दिव्य कुण्डल-धारिणी, दिव्य आभूषण पहने—एक कन्या उत्पन्न होकर दक्षिण दिशा में बैठ गई। ब्रह्मा और महादेव उसको देखने लगे। इसके बाद ब्रह्माजी ने उस कन्या को बुलाकर कहा—मृत्यु, तुम इस सम्पूर्ण प्रजा का [क्रम से] नाश किया करो। प्रजा का नाश करने के लिए ही मैंने, क्रोध करके, तुम्हारा स्मरण किया है। अतएव तुमको मेरी आज्ञा से पण्डित और मूर्ख सभी का नाश करना पड़ेगा। तुम्हारा कल्याण हो। कमल की माला पहने हुए मृत्यु यह बात सुनते ही, दुखी होकर, आँसुओं की धारा बहाने और उसे अपने हाथों में लेने लगी। २२

दो सौ अट्ठावन अध्याय

मृत्यु और ब्रह्मा का संवाद सुनाकर नारद का अकम्पन के पुत्रशोक को दूर करना

नारदजी ने कहा कि महाराज! इसके बाद विशाल नेत्रोंवाली मृत्यु ने किसी तरह अपने दुःख को रोककर, हाथ जोड़कर, विनीत भाव से ब्रह्माजी से कहा—भगवन्, मुझ जैसी स्त्री आपसे उत्पन्न होकर किस तरह सब प्राणियों को भयभीत करती हुई क्रूर कर्म कर सकेगी? मैं अधर्म से बहुत डरती हूँ, अतएव आप कृपा करके मुझे कोई ऐसा काम बतलाइए जो धर्मानुकूल हो। बालक, बूढ़े और जवान मनुष्यों ने मेरा क्या अपराध किया है, जो मैं उनका नाश करूँ? मनुष्यों के प्रिय पुत्रों, मित्रों, माता-पिता और भाइयों का नाश मैं न कर सकूँगी। मेरे हाथ में पड़कर मनुष्य बड़े दुखी होंगे और मुझे शाप दे देंगे। उन बेचारों के आँसू मुझे अनन्त काल तक दुःख देंगे। इसी से मैं बहुत डरती हूँ और आपकी शरण हूँ। पापियों को यम के यहाँ पहुँचाने का काम मुझे करना पड़ेगा। अतएव मेरी यही प्रार्थना है कि आप कृपा करके प्राणियों के नाश करने का काम मुझे न सौंपें। अब मैं आपको प्रसन्न करने के लिए तपस्या करने जा रही हूँ।

ब्रह्माजी ने कहा—हे मृत्यु, मैंने प्रजा का संहार करने के ही लिए तुम्हें उत्पन्न किया है अतएव
१० तुम शीघ्र जाकर अपना काम करो। मैंने जो कुछ कह दिया है उसमें उलट-पलट नहीं हो सकता। ब्रह्माजी के यों कहने पर मृत्यु ने कुछ उत्तर न दिया। वह चुपचाप उनके मुँह की ओर देखने लगी। प्रजा का नाश करने की ब्रह्माजी की बार-बार आज्ञा सुनकर वह मुरदा सी हो गई। मृत्यु की यह दशा देख, क्रोध त्याग करके ब्रह्माजी प्रसन्नता से मुसकुराकर प्रजा की ओर देखने लगे।

ब्रह्माजी का क्रोध शान्त होने पर मृत्यु, प्रजा का संहार करने की बात न मानकर, गो-तीर्थ को चली गई। वहाँ एक पैर से खड़े होकर उसने पन्द्रह पद्म वर्ष तक कठिन तपस्या की। तब ब्रह्माजी ने फिर मृत्यु से कहा कि मृत्यु, तुम अब मेरी आज्ञा मान लो; किन्तु मृत्यु उसे स्वीकार न करके फिर बीस पद्म वर्ष तक एक पैर से खड़ी रही। इसके बाद वह दस हज़ार पद्म वर्ष तक, पशुओं के साथ, वन में घूमती रही और बीस हज़ार वर्ष केवल वायु का भक्षण
२० करके, आठ हज़ार वर्ष पानी में खड़े रहकर, उसने मौन व्रत धारण किया। फिर गण्डकी नदी के किनारे जाकर वह जल और वायु का भक्षण करती हुई तपस्या करने लगी। प्रजा का हित करने के लिए वह भागीरथी के किनारे और सुमेरु पर्वत पर घूमती हुई पत्थर के समान निश्चल रहने लगी। इसके बाद हिमालय की जिस चोटी पर देवता लोग यज्ञ करते हैं वहाँ जाकर, ब्रह्माजी को प्रसन्न करने के लिए, निखर्व वर्ष तक अँगूठे के बल खड़ी रही।

तब ब्रह्माजी ने उसके पास जाकर कहा—बेटी, तुम तप के झमेले में क्यों पड़ी हो? मैंने जो कहा है वही करो। मृत्यु ने कहा—भगवन्, मैं प्रजा का संहार न कर सकूँगी। मैं आपको प्रसन्न करने के लिए फिर तप करूँगी। यह सुनकर और उसे अधर्म के डर से डरी

हुई देखकर ब्रह्माजी ने फिर कहा—कल्याणी, प्रजा का संहार करने से तुमको रत्ती भर भी अधर्म नहीं होगा। तुम बेखटके प्रजा का संहार करो। मैंने जो कहा है उसके विरुद्ध कभी नहीं हो सकता। प्रजा का संहार करके तुम सनातन धर्म प्राप्त करोगी। अन्यान्य देवताओं समेत मैं तुम्हारा हित करता रहूँगा। अब मैं तुम्हारी इच्छा के अनुसार यह वर देता हूँ कि प्रजा रोग से पीड़ित होकर मरेगी, वह तुमको दोष नहीं देगी। तुम पुरुष होकर पुरुषों का, स्त्री होकर स्त्रियों का और नपुंसक होकर नपुंसकों का संहार करो।

ब्रह्माजी के यों कहने पर मृत्यु ने हाथ जोड़कर कहा—भगवन्, मैं यह काम न कर सकूँगी। तब पितामह ने फिर कहा—मृत्यु, तुम निडर होकर प्रजा का संहार करो। मैं ऐसा उपाय करूँगा जिससे तुमको अधर्म न लगे। तुमने जो अपने आँसुओं को हाथों में ले लिया था वे सब रोग बनकर यथासमय प्राणियों का नाश करेंगे। जीवों के मरने के समय तुम उनके मन में काम और क्रोध को पैदा कर देना। वही मनुष्यों के नाश का साधन होंगे। तुममें राग और द्वेष नहीं है, इससे तुमको अधर्म नहीं बल्कि धर्म होगा। अतएव तुम इस धर्म का पालन करो। अब अपना अधिकार लेकर जीवों का संहार करना ही तुम्हारा कर्तव्य है।

ब्रह्माजी के शाप से डरकर विवश हो मृत्यु ने प्राणियों का संहार करना स्वीकार कर लिया। तभी से मृत्यु, काम और क्रोध को प्रेरित करके, जीवों का नाश करती आ रही है। मृत्यु के आँसुओं की बूँदें रोग हैं। इन्हीं रोगों से मनुष्य रोगी हो जाते हैं। अतएव प्राणियों के मरने पर शोक करना व्यर्थ है। जैसे मनुष्यों की इन्द्रियाँ, सोते समय, विषयों से अलग हो जाती हैं और जागने पर फिर अपने-अपने विषय में लग जाती हैं वैसे ही मनुष्य परलोक को जाता और फिर वहाँ से लौट आता है। भीषण शब्द करनेवाला महातेजस्वी वायु, जीवों का जीवन-स्वरूप होकर, प्राणियों के शरीर में अनेक प्रकार से स्थित रहता है। इसी से वायु को ही इन्द्रियों का स्वामी कहते हैं। समय-समय पर देवता तो मनुष्य और मनुष्य देवता

३०

४०

होते रहते हैं। आपका पुत्र स्वर्ग में सुख से रहता है, अतएव आप उसके लिए शोक न कीजिए। महाराज! मृत्यु इस प्रकार ब्रह्माजी से उत्पन्न हुई है और अपने आँसुओं की बूँदों की सहायता से, समय-आने पर, प्राणियों का संहार करती है। ४२

दो सौ उनसठ अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर को धर्म के लक्षण बतलाना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, साधारण मनुष्य धर्म के विषय में दुविधा में पड़े हुए हैं; वे नहीं जानते कि धर्म क्या पदार्थ है और कहाँ से उत्पन्न हुआ है। इस लोक में कल्याण के लिए जो काम किया जाता है वही धर्म है या परलोक के निमित्त जो किया जाता है वह धर्म है अथवा लोक-परलोक दोनों के लिए किये जानेवाले कामों को धर्म कहते हैं?

भीष्म ने कहा—धर्मराज! वेद, स्मृति, सदाचार और अर्थ (उपकार) इन चारों से धर्म का ज्ञान होता है। मनुष्य आरम्भ किये हुए धर्म का, निर्णय करके, पालन करते हैं। लोक-व्यवहार के लिए धर्म की मर्यादा स्थापित हुई है। धर्म करने से इस लोक में और परलोक में सुख मिलता है। जो मनुष्य धर्म की परवा नहीं करता उसे निस्सन्देह पाप भोगना पड़ता है। पापी को पाप से कभी छुटकारा नहीं मिलता; किन्तु कोई-कोई मनुष्य विपत्ति के समय पाप करने पर निष्पाप और झूठ बोलने पर भी सत्यवादी तथा धार्मिक कहलाते हैं। सदाचार धर्म का आश्रय है, उसी सदाचार का अवलम्बन करने से धर्म का ज्ञान होता है। [मनुष्यों का स्वभाव ही ऐसा है कि वे अपना पाप तो छिपाये रहते हैं; किन्तु दूसरों के पाप प्रकट कर देते हैं।] अराजक राज्य में चोरी करके चोर बेधड़क अपने को धर्मात्मा बतलाता है; किन्तु जब उसका धन दूसरा चुरा लेता है तब वह राजा के पास जाकर उस चोर का नाम बतला देता है। उस समय भी उसे अपने धन में सन्तुष्ट मनुष्यों का धन चुराने का लोभ रहता है। जिसका स्वभाव शुद्ध है और जो अपने को सर्वथा निर्दोष समझता है वह निडर होकर राज-द्वार पर जा सकता है। मनुष्यों को हमेशा सत्य बोलना चाहिए। सत्य से बढ़कर कुछ नहीं है। सत्य में सब कुछ प्रतिष्ठित है। पापी और उग्र स्वभाववाले मनुष्य भी सत्य के १० प्रभाव से नियम बनाकर, एक-दूसरे की बुराई न करके, परस्पर एकता स्थापित कर सकते हैं। वे यदि मर्यादा को तोड़ दें तो निस्सन्देह परस्पर नष्ट हो जावें। दूसरों का धन न चुराना चाहिए, यह सनातन धर्म है। कोई-कोई बलवान् मनुष्य दूसरों का धन न चुराने को दुर्बलता समझते हैं। दैव ऐसे लोगों के प्रतिकूल है। संसार में कोई मनुष्य सबसे बढ़कर बलवान् या सुखी नहीं है। अतएव सबको सरलस्वभाव रहना चाहिए। जो किसी का बुरा न चेत-कर पवित्र भाव से निडर रहता है उसे चोर, बदमाश और राजा का डर नहीं रहता। बस्ती में

आये हुए हिरन के समान चोर सबसे डरता रहता है और अपनी तरह दूसरों को भी पापी समझता है। जिसका स्वभाव शुद्ध है वह प्रसन्नता से सब जगह बेधड़क घूमा करता है और कभी किसी से अपना अनिष्ट होने का सन्देह नहीं करता। जो सब प्राणियों का भला चाहते हैं उन्होंने दान धर्म का विधान किया है। किन्तु धनी लोग, दैव के प्रतिकूल होने के कारण, इस विधान को दरिद्रों का बनाया हुआ समझते हैं। उनका यह समझना उचित नहीं। संसार में सबसे बढ़कर धनवान् और सुखी कोई नहीं हो सकता। जब मनुष्य दूसरों के द्वारा किया हुआ अपना अनिष्ट नहीं सह सकता तब क्या उसे दूसरों का अनिष्ट करना चाहिए? जो मनुष्य २० स्वयं किसी स्त्री का उपपति हो उसे दूसरे का दोष सह लेना चाहिए; किन्तु वह किसी दूसरे को उस स्त्री का उपपति होते देखकर उसके दोष को सहन नहीं कर सकता। जो मनुष्य स्वयं जीवित रहना चाहता हो उसे दूसरे के प्राण लेना कदापि उचित नहीं। मनुष्य अपने लिए जो-जो बातें हितकर समझे, वैसा ही दूसरों के लिए भी समझना चाहिए। अपने मतलब भर के लिए धन रखकर और सब दरिद्रों को दे दिया करे। इसी से, धन की वृद्धि के लिए, 'कुसीद' वृत्ति बनाई गई है। जिस मार्ग पर चलने से देवताओं का साक्षात्कार होता है उसी मार्ग पर हमेशा चले। यदि किसी तरह का स्वार्थ न हो तो भी धर्म के ही मार्ग पर चलना चाहिए। विद्वानों ने हिंसा का त्याग करके शान्ति-मार्ग का अवलम्बन करने को ही धर्म बतलाया है। हे धर्मराज, मैंने इस समय धर्म-अधर्म के जो लक्षण बतलाये हैं इन्हीं को तुम ठीक समझो। विधाता ने धर्म को दया-प्रधान बतलाया है। सज्जन लोग उसी परम धर्म को प्राप्त करने के लिए सदा सावधान रहते हैं। मैंने धर्म का यह स्वरूप बतला दिया। तुम इसे ध्यान में रखकर सरलता का अवलम्बन करो। कभी छल का काम न करना। २७

दो सौ साठ अध्याय

धर्म की प्रामाण्यता पर युधिष्ठिर का आक्षेप

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, आपने वेदोक्त सूक्ष्म धर्म के जो लक्षण बतलाये उनको मैं समझ गया। मैं अनुमान से उसको कह भी सकता हूँ। मेरे हृदय में उठी हुई शङ्काओं का समाधान आपने कर दिया। अब मैं कुतर्क न करके एक और प्रश्न करता हूँ। जिस धर्म के प्रभाव से प्राणियों की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय होता है वह केवल शास्त्र के पढ़ने से नहीं मालूम हो सकता। विपत्तिहीन मनुष्यों का जो धर्म है वही धर्म विपत्ति में पड़े हुए मनुष्यों के लिए नहीं है। विपत्तियाँ असंख्य हैं इसलिए आपद्धर्म भी अनेक प्रकार के हैं। अतएव शास्त्र के पढ़ने से सब आपद्धर्म कैसे जाने जा सकते हैं? शास्त्र में सज्जनों के आचरण को धर्म और जो धर्म का आचरण करते हैं उनको सज्जन कहा है। इस लक्षण से प्रकट

है कि कर्म और सज्जन का सापेक्ष सम्बन्ध है। इससे, इस लक्षण के द्वारा, यह नहीं जाना जा सकता कि सज्जन कौन है, और धर्म क्या है। देखिए, मोक्ष पाने की इच्छा से धर्म की वृद्धि के लिए वेदान्त आदि सुनने से शूद्रों को अधर्म होता है और यज्ञ के लिए हिंसा करना महर्षियों का धर्म है। तो फिर धर्म का निर्णय किस तरह किया जा सकता है? प्रत्येक युग में वेदों का ह्रास होता रहता है इस कारण सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि, इन चारों युगों का धर्म अलग-अलग है। जब इस तरह समय-समय पर वैदिक धर्म बदलता रहता है तब वेदवाक्यों को यथार्थ बतलाना केवल मनुष्यों का मनोरञ्जन करना है। वेद से ही स्मृतियाँ निकली हैं, अत-
१० एव यदि वेद अप्रामाणिक हैं तो उनसे उत्पन्न स्मृतियाँ भी प्रमाण नहीं माना जा सकता। कभी-कभी ऐसा होता है कि धार्मिक लोगों के किसी काम में प्रवृत्त होने पर बलवान् दुरात्मा उसके जिस अंश में विघ्न डालते हैं उतना अंश उस समय नष्ट हो जाता है। इसलिए धर्म का निर्णय करना सरल काम नहीं है। सारांश यह कि मुझे मालूम हो या न हो और दूसरों के उपदेश करने पर समझ में आवे या न आवे, धर्म का मर्म छुरे की धार से भी बढ़कर सूक्ष्म और पहाड़ से भी अधिक वज़नी है। यज्ञ आदि धर्म पहले तो गन्धर्वों के नगर के समान अद्भुत मालूम होते हैं किन्तु जब पण्डित लोग उन्हें अनित्य कहते हैं तब वे बिलकुल तुच्छ जान पड़ते हैं। मनुष्य गायों के पानी पीने के लिए छोटा गड्ढा और खेत सींचने के लिए नहरें खोदते हैं; जैसे ये सब धीरे-धीरे सूख जाते हैं वैसे ही वैदिक धर्म प्रत्येक युग में क्षीण होता हुआ कलियुग में बिलकुल नष्ट हो जाता है। पाखण्डी लोग अग्निहोत्र आदि कर्म कराते, वेतन लेकर विद्या पढ़ाते और अन्यान्य काम करने के लिए अनुचित आचरण करते हैं। सज्जन लोग जिस काम को धर्म समझते हैं उसे मूर्ख लोग प्रलाप समझकर और सज्जनों को पागल कहकर उनकी दिल्लगी उड़ाते हैं। देखिए, आचार्य द्रोण आदि महात्माओं ने अपने धर्म को त्यागकर क्षात्रधर्म का आश्रय किया था। अतएव सबका हितकारी धर्म कहीं व्यवहृत नहीं होता। कोई-कोई क्षत्रिय, ब्राह्मणों के धर्म का पालन करके, क्षात्रधर्म पर चलनेवाले ब्राह्मण की निन्दा करते हैं और कोई-कोई ब्राह्मण ब्रह्मधर्म और क्षत्रिय-धर्म दोनों को उचित कहते हैं, अतएव धर्म धोखे की जड़ है। मुझे तो यह जान पड़ता है कि वेद और स्मृति धर्म के निर्णायक नहीं हैं। प्राचीन
२० विद्वान् लोग जिसे धर्म बतला गये हैं वही आज धर्म कहलाता है।

दो सौ इकसठ अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर को जाजलि और तुलाधार का संवाद सुनाना

भीष्म ने कहा—धर्मराज, मैं इस विषय में तुमको तुलाधार और जाजलि का संवाद सुनाता हूँ। जाजलि नामक एक ब्राह्मण, समुद्र-किनारे जाकर, कठिन तपस्या करने लगे। इन

बुद्धिमान् संयमी ब्राह्मण ने चीर, मृगछाला और जटा धारण करके—भस्म लगाकर—नियमित भोजन करते हुए बहुत वर्षों तक तप किया। एक बार ये महातेजस्वी जाजलि, तप के प्रभाव से, जल में स्थित होकर ध्यान के बल से सब लोकों को देखकर मन ही मन यह सोचने लगे कि संसार में मेरे समान कोई नहीं है। जल में स्थित होकर आकाश के ग्रह-नक्षत्र आदि के जानने में मेरे सिवा कोई समर्थ नहीं है।

तपस्वी जाजलि के यों कहते ही पिशाचगण बोल उठे—महाशय, आपका यह सोचना ठीक नहीं। काशी में तुलाधार नाम के एक महायशस्वी व्यापारी रहते हैं, वे भी ऐसी बात नहीं कह सकते।

यह सुनकर महातपस्वी जाजलि ने कहा कि राक्षसो, मैं उन वणिक्-धर्मावलम्बी यशस्वी तुलाधार के दर्शन करना चाहता हूँ। तब राक्षसों ने उन्हें समुद्र से निकालकर कहा कि द्विजोत्तम, तुम इस मार्ग से काशी को चले जाओ। राक्षसों के बताये हुए मार्ग से चलकर महर्षि जाजलि ने, काशी में पहुँचकर, तुलाधार के दर्शन किये। १०

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, जाजलि ने पहले कौन सा कठिन काम किया था जिससे उन्हें उक्त सिद्धि प्राप्त हुई?

भीष्म ने कहा—धर्मराज! वानप्रस्थी महातेजस्वी जाजलि कठोर तपस्या करते हुए सन्ध्या और प्रातःकाल स्नान, हवन, एकाग्रचित्त होकर वेदपाठ और पृथिवी पर शयन करते थे। गरमी में खुली जगह में रहते और सरदी के दिनों में पानी में रहकर घोर कष्ट सहते थे; किन्तु यह न सोचते थे कि 'मैं धार्मिक हूँ'। वे बरसात के दिनों में आकाश से गिरती हुई जल की धारा में भीगते रहते थे। हमेशा वन में घूमते रहने के कारण उनकी जटाओं में धूल भर गई थी और बाल उलझ गये थे। इसके बाद वे वायु का भक्षण करते हुए काठ की तरह अचल खड़े हो गये। तब उन्हें लकड़ी समझकर उनकी जटाओं के बीच चिड़ियों ने घोंसले बना लिये; किन्तु दयालु महर्षि २०

जाजलि ने इसकी परवा न की। वे ठूँठ की तरह खड़े थे और चिड़ियों का जोड़ा उनके सिर पर अपने घोंसले में बेखटके रहता था। बरसात बीतने पर शरद् ऋतु में काम से मोहित हो उस गौरैया ने गर्भ धारण किया और महर्षि के सिर पर अण्डे दिये। यह जानकर भी धर्मात्मा ब्राह्मण को कुछ घबराहट न हुई। गौरैयों का जोड़ा भी बड़ी प्रसन्नता से इधर-उधर घूमता और फिर अपने घोंसले में आकर, बेखटके, जाजलि के सिर पर रहता था। कुछ दिनों बाद अण्डे पुष्ट हो गये, उन्हें फोड़कर बच्चे निकल आये। बच्चे भी वहीं रहकर बढ़ने लगे; किन्तु व्रतधारी धर्मात्मा जाजलि अटल भाव से खड़े रहे। धीरे-धीरे बच्चों के पर निकल आये। उन्हें देखकर महर्षि को बड़ी प्रसन्नता हुई। गौरैयों का जोड़ा अपने बच्चों को बढ़ते देख बहुत प्रसन्न होता था और ऋषि के सिर पर बड़ी खुशी के साथ रहता था। कुछ दिनों बाद

३०

जाजलि ने सन्ध्या के समय बच्चों को अपने मा-बाप के साथ इधर-उधर उड़ते देखा। इसके बाद वे माता-पिता को छोड़कर अकेले उड़ जाने लगे। कभी सारा दिन बिताकर साँझ को अपने घोंसले में आते और कभी पाँच-पाँच, छः-छः दिन बाद लौटते थे। इतने पर भी महात्मा जाजलि को रत्ती भर भी घबराहट नहीं हुई। इस तरह बच्चों ने उड़ने का अभ्यास कर लिया। जब वे बच्चे जाजलि के सिर पर से उड़कर कहीं चले गये और एक महीने तक नहीं लौटे तब उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ और वे अपने को सिद्ध समझने लगे। उनके सिर पर बच्चे पैदा हुए और वहीं बड़े होकर अपनी इच्छा के अनुसार उड़ गये, यह सोच करके जाजलि के आनन्द की सीमा न रही। अब वे

४० नदी में स्नान और अग्नि में हवन करके उदय होते हुए सूर्य के सामने खड़े होने लगे।

अपने सिर पर चिड़ियों के बच्चे पैदा होने और बड़े होकर उनके उड़ जाने की याद करके महर्षि जाजलि को बड़ा आश्चर्य और अपनी तपस्या पर गर्व हुआ। उसी समय आकाशवाणी हुई—हे जाजलि, तुम तुलाधार के समान धार्मिक नहीं हो। तुलाधार नाम के एक बुद्धिमान् काशी में रहते हैं, वे भी तुम्हारी तरह गर्व नहीं करते। यह आकाशवाणी सुनकर जाजलि

को बड़ा क्रोध हुआ। तुलाधार को देखने के लिए, पर्यटन करते हुए, बहुत दिनों बाद काशी में पहुँचकर उन्होंने देखा कि महात्मा तुलाधार अपनी दूकान पर बैठे दूकानदारी कर रहे हैं। जाजलि को देखते ही वे उठ खड़े हुए और उनका स्वागत करके नम्रता से बोले—ब्रह्मन्, आप मेरे ही पास आये हैं। अब मेरी बात सुनिए। आपने समुद्र के किनारे तपस्या तो बड़ी कठिन की है; किन्तु आप धर्म की महिमा नहीं जान पाये। तपस्या सिद्ध होने पर आपके सिर पर चिड़िया के बच्चे पैदा हुए। आपसे उन्हें रत्ती भर भी भय नहीं हुआ। किन्तु जब उन बच्चों के पर निकल आये और वे इधर-उधर उड़ गये तब अपने को तपस्वी समझकर आपको बड़ा गर्व हो गया। उसी समय आकाशवाणी के द्वारा मेरा वृत्तान्त सुनकर, ईर्ष्या के वश हो, आप मेरे पास आये हैं। बतलाइए, मैं आपका क्या हित करूँ? ५१
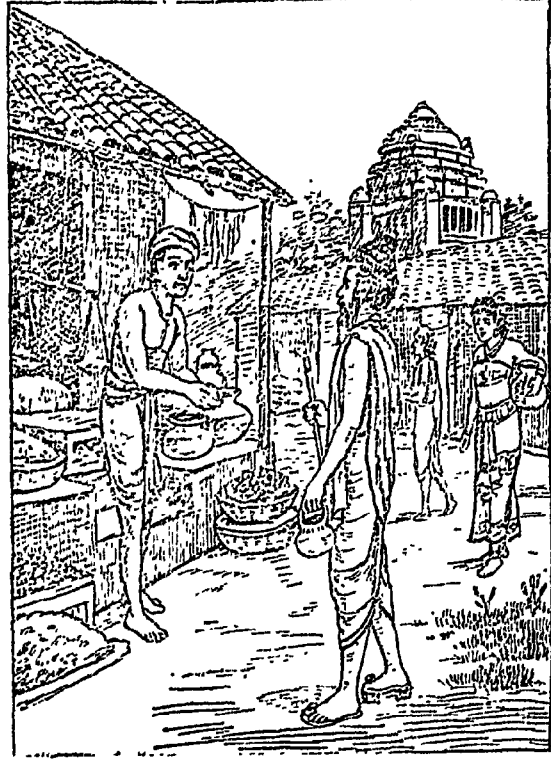
दो सौ बासठ अध्याय

तुलाधार का जाजलि को उपदेश

भीष्म ने कहा कि धर्मराज, महात्मा तुलाधार की बातें सुनकर जप करनेवाले बुद्धिमान् जाजलि ने कहा—हे दूकानदार! तुम ओषधि, फल-मूल, गन्ध और नमक-मिर्च आदि सब रस बेचते हो; फिर तुम्हें इस प्रकार का ज्ञान और निश्चल बुद्धि कैसे प्राप्त हुई?

वैश्य-कुल में उत्पन्न धर्मार्थतत्त्वज्ञ ज्ञानी तुलाधार ने कहा—जाजलि, मैं सबके हितकारी प्राचीन सनातन धर्म को जानता हूँ। हिंसा न करना अथवा विपत्ति के समय थोड़ी हिंसा करके अपनी जीविका कर लेना प्रधान धर्म है। मैं उसी धर्म के अनुसार केवल सूखी लकड़ी और तृण आदि बेचकर अपना निर्वाह करता हूँ। मैं लाख, पद्मक, तुङ्गकाष्ठ और कस्तूरी आदि विविध गन्ध तथा अनेक रस ईमानदारी से बेचता हूँ। मद्य नहीं बेचता। सच्चा धर्मात्मा वही है जो सबका मित्र है और जो मन-वचन-कर्म से सबका हित करता है। अनुरोध-विरोध, द्वेष और

१० कामना को त्यागकर मैं सब प्राणियों को समान दृष्टि से देखता हूँ। यही मेरे नियम हैं। जैसे आकाश-मण्डल, बादल आदि के सहयोग से अनेक रूप धारण करता है वही हाल संसार का है। यह विचारकर मैं किसी के काम की प्रशंसा या निन्दा नहीं करता। मैं सब जीवों को एक समान समझता हूँ। मैं मिट्टी और सोने में कुछ भेद नहीं समझता। मैं अन्धे, बहरे और पागल की तरह विषयों का भोग छोड़े हुए हूँ। बूढ़े, रोगी और दुर्बल मनुष्यों के सदृश मुझे भी अर्थ, काम और भोग के विषयों का लोभ नहीं है। मनुष्य जब इच्छा, द्वेष और भय छोड़ देता है, दूसरों को भय नहीं दिखाता और मन-वचन-कर्म से किसी का बुरा नहीं चेतता तब उसे मोक्षपद प्राप्त होता है। अभयदान के समान श्रेष्ठ धर्म दूसरा नहीं है। जो मनुष्य कटुवादी और ऐसा कठोर दण्ड देनेवाला है कि जिससे लोग बुरी तरह घबराते हैं उसे भारी भय उपस्थित होगा। पुत्र-पौत्र से युक्त, हिंसारहित, बड़े-बूढ़े जैसा व्यवहार करते हैं वैसा ही मैं करता हूँ। मूर्ख लोग सदाचार के कुछ अंश को विरुद्ध देखकर सम्पूर्ण सनातन धर्म को छोड़ देते हैं; किन्तु विद्वान् जितेन्द्रिय मनुष्य विरुद्ध अंश को छोड़कर सनातन धर्म द्वारा संसार से

२० मुक्त हो जाते हैं। जो बुद्धिमान् मनुष्य इस प्रकार संयम करके, द्रोह छोड़कर, सज्जनों के योग्य आचरण करता है उसको शीघ्र ही धर्म की प्राप्ति होती है। जैसे नदी की धारा में बहती हुई लकड़ियाँ परस्पर मिलती और जुदा होती रहती हैं वैसे ही कर्म के प्रवाह द्वारा पिता-पुत्र आदि का संयोग-वियोग हुआ करता है। जो व्यक्ति कभी किसी प्राणी को भयभीत नहीं करता वह हमेशा सब प्राणियों से निर्भय रहता है। गुर्रानेवाले भेड़िये के समान जिस मनुष्य से लोग डरते हैं उस मनुष्य को भी सबसे डर रहता है। जो व्यक्ति अभयदान-रूप धर्म का पालन करता है वह सहायवान्, उत्तम भोग करनेवाला और भाग्यवान् होकर श्रेष्ठता प्राप्त करता है। जिसके हृदय में थोड़ी सी धर्म में प्रवृत्ति होती है वह, कीर्ति पाने के लिए, अभयदान-रूप धर्म करता है और जो मनुष्य धर्म के विषय में पारदर्शी होता है वह, ब्रह्म को प्राप्त करने के लिए, सब प्राणियों को अभयदान देता है। तपस्या, यज्ञ, दान और ज्ञान के उपदेश द्वारा जो फल मिलता है वह फल केवल अभयदान द्वारा प्राप्त हो सकता है। जो मनुष्य सब प्राणियों को निर्भय करता है उसे सम्पूर्ण यज्ञों का फल मिलता और किसी का भय नहीं रहता। सारांश यह कि अहिंसा से बढ़कर कोई धर्म नहीं है। जिस

३० मनुष्य से किसी प्राणी को डर नहीं रहता उसे भी किसी प्राणी का डर नहीं है और जिस मनुष्य से, घर में रहनेवाले साँप की तरह, सब लोग डर के मारे घबराते रहते हैं उसे क्या यह लोक और क्या परलोक कहीं धर्म नहीं प्राप्त हो सकता। जो मनुष्य सब जीवों को अपने समान समझता है वह यद्यपि ब्रह्मलोक आदि पद से रहित है तो भी देवता उसके मार्ग को देखकर ललचाते हैं।

अभयदान सब दानों से श्रेष्ठ है। काम्य कर्म करनेवाला मनुष्य उन कर्मों के फल से भाग्यवान् और उस फल के समाप्त हो जाने पर फिर भाग्यहीन होता है, इसलिए ज्ञानवान् मनुष्य

नश्वर काम्य कर्मों की निन्दा करते हैं। धर्म बहुत सूक्ष्म पदार्थ है। कोई धर्म बिना कारण का नहीं है। वेदशास्त्र में ब्रह्म की प्राप्ति और स्वर्ग आदि की प्राप्ति, ये दो प्रकार के धर्म बतलाये गये हैं। उनमें स्वर्ग आदि की प्राप्ति करानेवाला धर्म स्थूल और ब्रह्म को प्राप्त करानेवाला अभयदान-रूप धर्म सूक्ष्म है। सूक्ष्म धर्म अत्यन्त गूढ़ है इसलिए सब लोग आसानी से उसे नहीं जान सकते। विरले सज्जन इस धर्म को जानते हैं। जो मनुष्य बैलों को वधिया करते, बाँधते, पीटते, उनकी नाक छेदते और उन पर अधिक बोझा लादते हैं; जो अनेक जीवों को मारकर उनका मांस खाते हैं; जो दूसरे मनुष्यों को दास बनाकर उनसे सब काम कराते हुए सुख भोगते हैं; जो वध और बन्धन के दुःख को जानकर भी दूसरों को उसी तरह के दुःख देते हैं; उनकी निन्दा न करके आप मुझे क्यों निन्दनीय समझते हैं? पाँच इन्द्रियों से युक्त सभी प्राणियों में सूर्य, चन्द्रमा, वायु, ब्रह्मा, प्राण, विष्णु और यम आदि देवता निवास करते हैं; ४० अतएव जो मनुष्य जीवों को बेचकर अपनी जीविका करते हैं वे, आपकी समझ में, क्या निन्दनीय नहीं हैं? बकरी में अग्नि, भेड़ में वरुण, घोड़े में सूर्य, पृथ्वी में विराट् तथा गाय और बछड़े में चन्द्रमा निवास करते हैं। अतएव जो मनुष्य इनको बेचता है वह कभी सिद्ध नहीं हो सकता; किन्तु तेल, घी, शहद और ओषधि बेचने से कोई पाप नहीं लगता। डाँस-मच्छरों से रहित स्थान में रहनेवाले, सुख से बढ़े हुए, अपनी माता के प्यारे पशुओं को मनुष्य—खेती आदि का काम लेने के लिए—डाँसों से भरे हुए कीचड़वाले स्थानों में ले जाते हैं और बोझा ढोने के अयोग्य बैलों पर भारी बोझा लादकर उन्हें दुःख देते हैं। मेरी समझ में तो ये सब काम भ्रूणहत्या से भी बढ़कर निन्दनीय हैं। लोग खेती की बड़ी प्रशंसा करते हैं; किन्तु वह बड़ा निन्द्य काम है। देखो, ज़मीन जोतने पर हज़ारों जीव मर जाते हैं और हल खींचनेवाले बैल बड़ा दुःख पाते हैं। वेद में बैलों का अघ्न्य नाम है, अतएव उन्हें मारना या सताना किसी को उचित नहीं। जो मनुष्य बैल या गाय का वध करता है वह घोर पापी है।

[महाराज नहुष ने मधुपर्क देते समय गो-वध किया था तब] तत्त्वदर्शी ऋषियों ने उनसे कहा था कि महाराज, आपने माता के समान गाय और प्रजापति के सदृश बैल का वध करके बड़ा ही निन्द्य काम किया है; अतएव आपके यज्ञ में होम करने की हम लोगों की इच्छा नहीं होती। आपके इस काम से हम लोगों को बड़ा दुःख हो रहा है। यों कहकर तपस्वियों ५० ने राजा नहुष का बड़ा तिरस्कार किया; किन्तु कुछ देर बाद अपने तपोबल से ध्यान करके जब उन्होंने देखा कि नहुष ने जान-बूझकर यह काम नहीं किया है तब नहुष के किये हुए उस पाप को एक सौ एक हिस्सों में बाँटकर सब प्राणियों पर रोग-स्वरूप फेंक दिया और उनसे कहा—महाराज, तुम्हारा यह गोवध का पाप अज्ञान से होने पर भी सब जीवों को दुःख देनेवाला हो गया। हे जाजलि, आप पूर्वजों के आचरण देखकर वैसे ही काम कीजिए; किन्तु जो आचरण

इस प्रकार का अशुभ करनेवाले हैं उन्हें आप नहीं समझ सके। जिन कामों के करने से सब जीव निर्भय रहें वही काम धर्म्य कहलाते हैं। केवल लोकाचार धर्म नहीं हो सकता। जो मनुष्य मुझे सताता है अथवा जो मेरी प्रशंसा करता है, उन दोनों को मैं एकसा समझता हूँ। न तो कोई मेरा प्रिय है न अप्रिय। पण्डित लोग इसी प्रकार के धर्म की प्रशंसा करते हैं और
५५ धर्मात्मा महात्मा लोग, यतियों के किये हुए, इसी परम धर्म का पालन करते हैं।

दो सौ तिरसठ अध्याय

तुलाधार का जाजलि को उपदेश

जाजलि ने कहा—हे वैश्य, वाणिज्य कर्म और इस प्रकार का धर्म करते हुए तुम सब प्राणियों की जीविका और स्वर्ग का द्वार रोक रहे हो। खेती करने से अन्न पैदा होता है। तुम भी उसी अन्न को खाकर जीते हो। अन्न और पशुओं से ही मनुष्यों का निर्वाह होता है। जीवित रहकर मनुष्य यज्ञ आदि कर्म करते हैं। तुम तो नास्तिकों की सी बातें करते हो। जीविका छोड़कर क्या कोई कभी जी सकता है?

तुलाधार ने कहा—ब्रह्मन्, मनुष्यों को जिस तरह अपना निर्वाह करना चाहिए वह सुनिए। आप मुझे नास्तिक समझते हैं, किन्तु मैं नास्तिक नहीं हूँ। मैं यज्ञ की निन्दा भी नहीं करता, परन्तु यज्ञ करने की विशेष जानकारी रखनेवाला मनुष्य दुर्लभ है। ब्राह्मणों के करने योग्य अन्तर्यज्ञ को और अन्तर्यज्ञ करनेवाले महात्माओं को मैं प्रणाम करता हूँ। जो हो, इस समय ब्राह्मण लोग अपने करने योग्य अन्तर्याग का त्याग करके, क्षत्रियों के करने योग्य, ज्योतिष्टोम आदि यज्ञ करने लगे हैं। देखिए, लालची आस्तिक लोग वेद के वचनों का ठीक-ठीक मर्म न समझकर, सत्य के समान देख पड़नेवाले, मिथ्यामय, क्षत्रियों के योग्य (हिंसामय) यज्ञ करते और यजमान को अनेक वस्तुओं का दान करने के लिए उत्साह दिलाते हैं। उन वस्तुओं को एकत्र करने के लिए यजमान अनेक अनुचित उपाय करता है और इसी लिए चोरी आदि नीच कर्म होते हैं। होम करने योग्य जो वस्तु न्याय से पैदा की जाती है उसी के होम से देवता सन्तुष्ट होते हैं। शास्त्र में बतलाया गया है कि नमस्कार, हवि, स्वाध्याय और ओषधि द्वारा देवताओं की पूजा करनी चाहिए। जो मनुष्य किसी कामना से इष्टापूर्त आदि यज्ञ करता है उसके उस यज्ञ के प्रभाव से लोभी सन्तान पैदा होती है। लोभी रहने से लोभी पुत्र और राग-द्वेष आदि से शून्य रहने से राग-द्वेष-हीन पुत्र पैदा होता है। यजमान और ऋत्विक् के सकाम होने से पुत्र भी सकाम और निष्काम होने से उसकी सन्तान भी निष्काम होती है। जैसे आकाशमण्डल से साफ़ पानी बरसता है
१० वैसे ही यज्ञ करने से प्रजा की उत्पत्ति होती है। अग्नि में दी हुई आहुति सूर्यमण्डल में जाती है।

उसके बाद सूर्य से वृष्टि, वर्षा होने से अन्न और अन्न से सन्तान की उत्पत्ति होती है। पूर्वजों ने सब कामनाएँ छोड़कर यज्ञ किया था और यज्ञ करके अपनी इच्छाएँ पूरी कर ली थीं। वे लोग अपना मनोरथ पूरा करने के लिए हिंसा नहीं करते थे। उस समय हल से जोते बिना ही खेतों में बहुत उपज होती थी। संसार की ही भलाई के लिए लता आदि उत्पन्न होती हैं। वे लोग यज्ञ को फल देनेवाला और आत्मा को फल का भागी नहीं मानते थे।

यज्ञ का फल मिलेगा या नहीं, यह सन्देह करके जो मनुष्य यज्ञ करता है वह दूसरे जन्म में दुष्ट, धूर्त और लोभी होता है। जो मनुष्य कुतर्क के द्वारा वेदों को अशुभ फल देनेवाले सिद्ध करता है वह कृतघ्न अपने अशुभ कर्मों के प्रभाव से पापियों की गति पाता है। जो नित्यकर्म को कर्तव्य समझता है; जो ब्रह्म को हवि-मन्त्र-अग्नि आदि के रूप में स्थित जानता है और जो अपने कर्म पर अभिमान नहीं करता वही यथार्थ ब्राह्मण है। उसके कर्मों के किसी अङ्ग की हानि हो जाय तो भी वह श्रेष्ठ गिना जाता है। यदि कुत्ता, सुअर आदि अशुद्ध जीव उसके यज्ञ में विघ्न डाल दें तो भी वह श्रेष्ठ है; किन्तु जो मनुष्य सकाम होकर कर्म करता है उसे यदि इस प्रकार का व्याघात उपस्थित हो तो उसे प्रायश्चित्त करके शुद्ध होना चाहिए। परम पुरुषार्थ पाने का इच्छुक, वैराग्ययुक्त, ईर्ष्याहीन पुरुष सत्यपरायण और जितेन्द्रिय होता है। जो देह और आत्मा का तत्त्व जानता है, योग ही जिसका प्रधान कर्म है और जो हमेशा प्रणव का जप करता है वह अनायास दूसरों को सन्तुष्ट कर सकता है। ब्रह्म ही सम्पूर्ण देवता है, जो इस ब्रह्म को जानता है उसका आश्रय देवता भी लेते हैं। उसके सन्तुष्ट होने पर देवता भी सन्तुष्ट होते हैं और भोग-सुख में उसके तृप्त होने पर वे भी तृप्त हो जाते हैं। २० जैसे कोई मनुष्य सब रसों का स्वाद लेकर तृप्त हो जाने पर किसी वस्तु की इच्छा नहीं करता वैसे ही ज्ञानतृप्त लोगों को अन्य किसी विषय में सुख नहीं मिलता। जिनका धर्म ही आधार है और जो कार्य-अकार्य का विचार कर सकते हैं, तथा जो धर्म में ही सुखी रहते हैं उनका अन्तरात्मा परमात्मा का साक्षात्कार कर सकता है। संसार-सागर को पार करने के अभिलाषी ज्ञानवान् लोग उस परमपावन ब्रह्मलोक को जाते हैं जहाँ शोक, दुःख और पतन का भय नहीं है। वे स्वर्ग, यश और धन पाने की इच्छा से यज्ञ नहीं करते; केवल सज्जन-सेवित मार्ग पर चलते हैं और हिंसा-रहित यज्ञ आदि कर्म करते हैं। ये सब महात्मा वनस्पति, ओषधि और फल-मूल को ही यज्ञ का साधन समझते हैं। लोभी ऋत्विक् लोग, उनसे कुछ मिलने की आशा न देखकर, उनको यज्ञ नहीं कराते। ज्ञानवान् ब्राह्मण अपने को यज्ञ की सामग्री समझकर, प्राणियों पर दया करने के निमित्त, मानसिक यज्ञ करते हैं। लोभी ऋत्विक् लोग स्वर्ग चाहनेवाले मनुष्यों को यज्ञ कराते हैं और अपने धर्म के द्वारा मनुष्यों को स्वर्ग पाने का उपाय कर देते हैं। मैं इन दोनों प्रकार के कामों को देखकर शुभ कर्मों का ही अनुसरण करता हूँ।

सकाम ब्राह्मण हिंसात्मक यज्ञ और ज्ञानी ब्राह्मण मानसिक यज्ञ करते हैं। ये दोनों ही देवताओं के निर्दिष्ट मार्ग पर चलते हैं; किन्तु उनमें जो सकाम हैं वे फिर पृथिवी पर जन्म लेते हैं और ३० ज्ञानी लोग मुक्त हो जाते हैं। ज्ञानवान् पुरुषों की इच्छा होते ही बैल स्वयं गाड़ी में जुतकर उनकी सवारी ले चलते हैं और गायें दूध देने लगती हैं। वे इच्छा करते ही यूप और दान-दक्षिणा समेत मानसिक यज्ञ करने में समर्थ हो जाते हैं। इस प्रकार योग के बल से जिनका चित्त शुद्ध हो जाता है वे यज्ञ में गो-हत्या भी कर सकते हैं। यद्यपि इन्हें गो-वध का पाप नहीं लग सकता तो भी वे पशु का वध न करके ओषधियों से ही यज्ञ करते हैं और सकाम मूर्ख लोग, ओषधियों को छोड़कर, पशुहिंसा करके यज्ञ करते हैं जिसका कि उन्हें अधिकार नहीं।

हे तपोधन, सकाम और निष्काम ज्ञानवान् पुरुषों में आत्मज्ञानियों के कामों को ही श्रेष्ठ समझकर मैंने उन्हीं का विषय विशेष रूप से बतलाया है। अब मैं संक्षेप में बतलाता हूँ कि ज्ञान की प्राप्ति किस प्रकार से हो सकती है। जो कर्म का फल मिलने की आशा और कर्म करने का उद्योग नहीं करते; जो दूसरों का नमस्कार लेने और दूसरों को नमस्कार करने से हमेशा बचते हैं; जो अपनी स्तुति सुनकर न तो प्रसन्न होते हैं और न स्वयं किसी की स्तुति करते हैं; जिन्होंने सब कर्मों का त्याग कर दिया है और जो ब्रह्मानन्द से परिपूर्ण हैं वे ही सच्चे ज्ञानवान् ब्राह्मण हैं। जो मनुष्य न तो दूसरों को ज्ञान का उपदेश देता है, न यज्ञ करता है और न दान ही देता है; केवल अपनी इच्छा के अनुसार भोग्य वस्तुओं का भोग करता है वह क्या तो देवमार्ग और क्या पितृमार्ग किसी मार्ग से नहीं जा सकता। किन्तु जो व्यक्ति निष्काम धर्म का अवलम्बन करता है उसको ब्रह्म की प्राप्ति होती है।

जाजलि ने कहा—हे वैश्य, मैंने मानसिक यज्ञ का तत्त्व कभी नहीं सुना। वह बहुत कठिन है। प्राचीन महर्षियों में बहुतों ने तो इसका उल्लेख ही नहीं किया और जिन्होंने किया भी है, वे भी इसका भली भाँति प्रचार नहीं कर सके। जो हो, इस समय अविवेकी मनुष्य मानसिक यज्ञ नहीं कर सकते। उन्हें किस काम के करने से सुख मिल सकता है, उसे विस्तार से बतलाओ। मुझे तुम्हारी बातों पर बड़ी श्रद्धा है।

तुलाधार ने कहा—तपोधन, जिन पाखण्डियों के यज्ञ उनके दोष के कारण निष्फल हो जाते हैं उन्हें किसी यज्ञ के करने का अधिकार नहीं है। जो श्रद्धावान् और समर्थ हैं वे घी, दूध, दही और पूर्णाहुति से यज्ञ करते हैं और जो असमर्थ हैं वे गाय की पूँछ से पितरों का तर्पण, गाय के सींग से अभिषेक और गाय के पैर की धूल से यज्ञ करते हैं। इस प्रकार केवल गाय से ही समर्थ और असमर्थ दोनों के यज्ञ हो सकते हैं। जो घी आदि से यज्ञ करते हैं उनकी केवल श्रद्धा ही सहधर्मिणी का काम देती है। इस प्रकार श्रद्धा के साथ यह यज्ञ करने से ब्रह्मपद प्राप्त हो सकता है। अतएव पशु-हिंसा की अपेक्षा पुरोडाश द्वारा यज्ञ

करना श्रेष्ठ है। सब नदियाँ सरस्वती के समान शुद्ध करनेवाली और सब पर्वत परम पवित्र हैं। सारांश यह कि जिस स्थान पर मन और आत्मा का संयोग (समाधि) हो सके वही श्रेष्ठ ४० तीर्थ है। अतएव तुम तीर्थयात्रा के लिए भटकते मत फिरो। जो मनुष्य ज्ञानवान् होकर इस प्रकार का धर्माचरण करता है वह निस्सन्देह शुभ लोकों को प्राप्त कर सकता है। हे युधिष्ठिर, तुलाधार ने इस प्रकार सज्जन-सेवित युक्तिसङ्गत धर्म की विशेष रूप से प्रशंसा की थी। ४२

दो सौ चौंसठ अध्याय

तुलाधार का जाजलि को उपदेश

तुलाधार ने फिर कहा—ब्रह्मन्! अहिंसा-रूप धर्म का पालन सज्जन करता है या दुर्जन, यह मालूम हो जाने पर अहिंसा की प्रधानता प्रकट हो जायगी। देखिए, आपके सिर पर पैदा हुए पक्षी इस स्थान पर उड़ रहे हैं और अपने पंख-पैर आदि समेटकर अपने-अपने घोंसले में घुस रहे हैं। आप अपने पुत्र के समान इन पर स्नेह रखते और ये सब पिता के समान आपका सम्मान करते थे। आप इनके पिता के तुल्य हैं। इस समय इन्हें बुलाइए। 'अहिंसा प्रधान धर्म है या नहीं' यह आपका सन्देह इन्हीं से दूर हो जायगा।

अब महर्षि जाजलि ने चिड़ियों को बुलाया। चिड़ियों ने आकर जाजलि से कहा—ब्रह्मन्, अहिंसा आदि कर्म दोनों लोकों में मनुष्यों की रक्षा करते हैं और हिंसा आदि कर्म मनुष्यों का विश्वास नष्ट कर देते हैं। विश्वासघातक मनुष्य शीघ्र नष्ट हो जाता है। जो शम-दम आदि गुणों से युक्त होकर लाभ-हानि को समान समझता है और फल की इच्छा छोड़कर शास्त्र की आज्ञा के अनुसार यज्ञ करता है उसी को धर्म का यथार्थ फल मिलता है। सत्त्व गुण से ब्रह्म में श्रद्धा पैदा होती है। वह श्रद्धा सबकी रक्षा करती और सबको शुद्ध जन्म देती है। वह श्रद्धा ध्यान और जप से भी श्रेष्ठ है। कर्म मन्त्रहीन या व्यग्रता के कारण अङ्गहीन होने पर भी श्रद्धा के प्रभाव से सिद्ध हो जाता है। किन्तु श्रद्धा न होने पर मन्त्र, अनुष्ठान और यज्ञ कुछ भी सिद्ध नहीं हो सकता। इस विषय में पूर्व वृत्तान्त के जानकारों ने ब्रह्म के जो वाक्य कहे हैं उन्हें सुनो। श्रद्धाहीन पवित्र और पवित्रताहीन श्रद्धावान् इन दोनों १० के धन को तथा वेदज्ञ कृपण और अत्यन्त दानी वृद्धिजीवी (सूदख़ोर) इन दोनों के अन्न को देवता यज्ञ में एक सा समझते थे। यह देखकर भगवान् प्रजापति ने उनसे कहा—हे देवताओ, तुम्हारी यह समझ ठीक नहीं है। श्रद्धावान् व्यक्ति यदि अपवित्र है और पवित्र व्यक्ति यदि श्रद्धाहीन है तो, श्रद्धा न होने के कारण, पवित्र मनुष्य ही निन्दनीय है और वेदज्ञ कृपण तथा अतिदानी वृद्धिजीवी, इन दोनों में वेदज्ञ कृपण का अन्न ग्रहण करने योग्य है; किन्तु वृद्धिजीवी मनुष्य अतिदानी ही क्यों न हो, उसका अन्न लेना उचित नहीं। सारांश यह कि श्रद्धाहीन मनुष्य

को यज्ञ करने का अधिकार नहीं है और उसका अन्न अग्राह्य है। अश्रद्धा से बढ़कर पाप और श्रद्धा से बढ़कर पुण्य नहीं है। जैसे साँप पुरानी केंचुल छोड़ देता है वैसे ही श्रद्धावान् मनुष्य, श्रद्धा के प्रभाव से, पाप का नाश कर देता है। श्रद्धा की सहायता से विषयों से निवृत्त हो जाना सब पवित्रताओं से बढ़कर है। जो मनुष्य राग-द्वेष आदि का त्याग करके श्रद्धावान् हो सकता है वही यथार्थ पवित्र है। उसे तपस्या, आचार-व्यवहार और अन्यान्य धर्म करने की आवश्यकता नहीं। संसार के सभी प्राणी श्रद्धावान् हैं। मनुष्यों को सत्त्व, रज और तम इन तीनों में से किसी न किसी गुण में श्रद्धा अवश्य होती है। जिन्हें सत्त्वगुण में श्रद्धा होती है वे सात्त्विक, जिन्हें रजोगुण में श्रद्धा होती है वे राजस और जिन्हें तमोगुण में श्रद्धा होती है वे तामस हैं। धर्मार्थ के जानकार सज्जनों ने इस प्रकार धर्म का वर्णन किया है। अतएव आप श्रद्धावान् हो जाइए और तदनुकूल आचरण कीजिए, इसी से धर्म की प्राप्ति होगी। अपने मार्ग पर चलनेवाला श्रद्धावान् मनुष्य ही धार्मिक और सबसे श्रेष्ठ है।

भीष्म कहते हैं—हे धर्मराज, इसके बाद महर्षि जाजलि और तुलाधार अपने-अपने स्थान को चले गये और बहुत दिनों बाद अपने-अपने कर्म के प्रभाव से स्वर्ग में जाकर सुख भोगने लगे। इस तरह तुलाधार के मुँह से सनातन धर्म को सुनकर महात्मा जाजलि ने शान्ति २३ प्राप्त की थी। मैंने यह तुलाधार की कथा तुम्हें सुना दी। अब क्या सुनना चाहते हो?

दो सौ पैंसठ अध्याय

राजा विचख्नु की वक्तृता; अहिंसा-धर्म की प्रशंसा

भीष्म ने कहा—हे धर्मराज, प्राणियों पर दया करके राजा विचख्नु जो कुछ कह गये हैं वह प्राचीन इतिहास सुनो। राजा विचख्नु ने गोमेध यज्ञ में निर्दय ब्राह्मणों और घायल बैलों को देखकर तथा गायों का आर्तनाद सुनकर दयाभाव से कहा—ओह, गायों को कैसा कष्ट मिल रहा है! सब लोकों में अब गायों का कल्याण हो। मूर्ख, नास्तिक, सन्देह-युक्त मनुष्य ही हिंसा-यज्ञ को श्रेष्ठ कहते हैं। मनुष्य अपनी इच्छा के वशीभूत होकर ही यज्ञभूमि में पशुहिंसा करते हैं। धर्मात्मा मनु ने अहिंसा की ही प्रशंसा की है। अतएव उसी प्रमाण के अनुसार सूक्ष्म धर्म का अनुष्ठान करना पण्डितों का कर्त्तव्य है। अहिंसा सब धर्मों से श्रेष्ठ है। ज्ञानवान् मनुष्य दृढ़व्रत होकर, वेदोक्त धर्म के फल और गृहस्थ-धर्म को छोड़कर, संन्यास-धर्म का अवलम्बन करते हैं। क्षुद्र स्वभाव के मनुष्य ही फल पाने की इच्छा करते हैं। यूप बनाने के लिए वृक्षों का काटा जाना और 'वृथा-मांस' खाना निन्दनीय है। धूर्त लोग तिलों की खिचड़ी, मदिरा, मांस, मछली, शहद और ताड़ी खाते-पीते हैं। वेद में इनके खाने-१० पीने का विधान नहीं है। काम, लोभ और मोह के वश से ही मनुष्य ये चीज़ें खाते-पीते हैं।

वेदज्ञ ब्राह्मण लोग यज्ञ में विष्णु का आविर्भाव मानकर वेदकल्पित यज्ञ के वृक्ष, पुष्प और स्वादिष्ठ खीर के द्वारा उनकी आराधना करते हैं। शुद्धभाव-सम्पन्न महानुभावों ने जिन वस्तुओं को श्रेष्ठ बतलाया है वही देवता को चढ़ाई जा सकती हैं।

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह! विपत्ति शरीर को सुखा देती है और शरीर विपत्ति को नष्ट कर देने की इच्छा करता है, अतएव बिलकुल हिंसा न करने से संसार में किस तरह निर्वाह हो सकता है?

भीष्म ने कहा—बेटा, ऐसा काम करना चाहिए जिससे शरीर का नाश तो हो नहीं और अहिंसा-धर्म का पालन होता रहे। १४

दो सौ छाछठ अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से चिरकारी का उपाख्यान कहना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, जटिल समस्याओं को सुलझाने का उपदेश देने में आप मेरे परम गुरु हैं। अब यह बतलाइए कि किसी काम के करने का इरादा होने पर उसे शीघ्र कर डाले या उसमें देरी करे।

भीष्म ने कहा—धर्मराज, मैं इस विषय में महर्षि अङ्गिरा के वंश में उत्पन्न चिरकारी का प्राचीन इतिहास सुनाता हूँ। जो मनुष्य बहुत सोच-विचारकर काम करता है उससे भूल नहीं होती। महर्षि गौतम के चिरकारी नामक पुत्र था। वह बुद्धिमान्, कार्यकुशल और ख़ूब सोच-समझकर काम करनेवाला था। वह देर तक प्रत्येक काम को सोचता, देर तक सोता और देर तक जागता था। वह देर में करने और न करने योग्य काम को समझ लेता था इसलिए लोग उसे चिरकारी कहने लगे। नासमझ लोग उसे आलसी कहते थे। एक बार महर्षि गौतम ने अपनी स्त्री को व्यभिचारिणी जानकर, कुपित हो, पुत्र को आज्ञा दी कि बेटा, तुम अपनी माता को मार डालो। यह आज्ञा देकर महर्षि गौतम वन को चले गये। चिरकारी अपने स्वभाव के अनुसार उक्त आज्ञा को सुनकर देर तक यों सोचने लगा कि पिता की आज्ञा का पालन करने पर माता का वध करना पड़ेगा और यदि माता का वध न करूँ तो पिता की आज्ञा का उल्लङ्घन होगा, अतएव अब किस तरह इस धर्म-सङ्कट से बचूँ। पुत्र माता और पिता दोनों के अधीन है। इसलिए पिता की आज्ञा का पालन और माता की रक्षा ये दोनों ही कर्तव्य पुत्र के हैं। इन दोनों में किसी की अवहेलना करने से पुत्र को पाप लगता है। कोई कभी माता का नाश करके सुखी और पिता की आज्ञा टालकर प्रतिष्ठित नहीं हो सकता। अतएव ऐसा करना चाहिए जिसमें पिता की आज्ञा का तो उल्लङ्घन हो नहीं और माता की रक्षा हो जाय। पिता स्वयं अपने शील, गोत्र और कुल की रक्षा करने के लिए पत्नी में, पुत्र-रूप से, आत्मा को स्थापित १०

करता है। मैं तो पिता और माता दोनों का ही पुत्र हूँ। जातकर्म और यज्ञोपवीत के समय पिता ने जो वाक्य कहे हैं उन्हीं से उनका गौरव प्रकट होता है। भरण-पोषण और अध्यापन करने के कारण पिता प्रधान गुरु है। वेद में यह भी आज्ञा है कि पिता पुत्र को जो आज्ञा दे उसका पालन करना पुत्र का परम धर्म है। पुत्र पिता पर केवल स्नेह रख सकता है, किन्तु पिता का पुत्र पर सोलहों आने अधिकार है; क्योंकि वह पुत्र को शरीर आदि सब कुछ देता है। अतएव बिना सोच-विचार किये पिता की आज्ञा मानना पुत्र का कर्तव्य है। ऐसा करने से पुत्र सब पापों से बच जाता है। पिता पुत्र को उत्पन्न करता, अन्न-वस्त्र देता, पढ़ाता-लिखाता और
२० लोकाचार सिखाता है। पिता स्वर्ग, धर्म और तपस्या-स्वरूप है। पिता पर स्नेह रखने से देवता भी सन्तुष्ट होते हैं। पिता पुत्र को जो कुछ आज्ञा देता है वह सब पुत्र के लिए आशीर्वाद के समान है। वृक्ष से फूल-फल गिर पड़ते हैं, किन्तु पिता गाढ़े सङ्कट में भी पुत्र को नहीं छोड़ता। पुत्र के लिए पिता साधारण वस्तु नहीं है। ख़ैर, यह तो मैंने सोच लिया, अब माता के विषय में सोचूँ।

जैसे अरणि लकड़ी अग्नि की उत्पत्ति का कारण है वैसे ही माता इस पाञ्चभौतिक शरीर का प्रधान हेतु है। दुखी के लिए माता ही सुख का एकमात्र आधार है। जब तक माता जीवित रहती है तब तक मनुष्य अपने को सहायवान् समझता है; माता के न रहने पर वह अनाथ सा हो जाता है। माता को पुकारकर घर में प्रविष्ट होने पर दुखी पुत्र का सब दुख दूर हो जाता है। जिसकी माता जीवित होती है वह पुत्र-पौत्रवाला और सौ वर्ष का होने पर भी अपने को बालक के समान समझता है। पुत्र योग्य, अयोग्य, मोटा, दुबला कैसा ही हो, माता हमेशा उसकी रक्षा करती है। माता के समान पुत्र का पालन करनेवाला कोई नहीं है। माता के मरते ही लोग अपने को बूढ़ा और दुखी समझते हैं; सारा संसार उनके
३० लिए सूना हो जाता है। माता के समान शोक दूर करनेवाला स्थान, गति, रक्षक और प्रिय वस्तु और कोई नहीं है। माता गर्भ में धारण करने से धात्री, जन्म का कारण होने से जननी, अङ्ग आदि को पुष्ट करने से अम्बा और पुत्र का प्रसव करने के कारण वीरसू कहलाती है। बालकपन में माता पुत्र का पालन करती है, इसलिए माता की सेवा करना पुत्र का कर्तव्य है। पुत्र माता से उत्पन्न होता है इसलिए माता पुत्र का दूसरा शरीर-स्वरूप है। तब कौन मनुष्य आत्महत्या के समान मातृहत्या करने को तैयार होगा? समागम के समय माता और पिता दोनों ही श्रेष्ठ पुत्र पैदा होने की लालसा करते हैं; किन्तु यह लालसा पिता की अपेक्षा माता में अधिक होती है। किसके वीर्य से और किसके गोत्र में पुत्र पैदा हुआ है, यह बात माता ही जानती है। पालन-पोषण करने के कारण पुत्र पर माता का बहुत अधिक स्नेह रहता है। इधर पुत्र पर पिता का ही पूरा अधिकार है। यदि पुरुष अपनी व्याहता स्त्री को छोड़कर व्यभिचारी हो जाय तो वह निन्दनीय हो जाता है। स्त्री का भरण करने से पुरुष उसका भर्ता और पालन

करने से पति कहाता है। इन दोनों कामों के न करने से वह भर्ता और पति कहलाने योग्य नहीं। सारांश यह कि किसी विषय में स्त्री का कोई अपराध नहीं है। मेरी माता ने इन्द्र का ४० अपने पति का सा स्वरूप देखकर उसके साथ भोग किया है, इसलिए उन्हें व्यभिचार का दोष नहीं लग सकता। सब बातों में पुरुषों का ही अपराध है; क्योंकि स्त्रियाँ तो पुरुषों के अधीन हैं इसलिए वे अपराधिनी नहीं हो सकतीं। मेरी माता ने भोग-सुख के लिए इन्द्र से प्रार्थना नहीं की है, इसलिए उन्हें पाप कैसे लग सकता है? बल्कि इन्द्र ने उनसे अनुरोध किया है इससे वही पापी है। सभी स्त्रियाँ अवध्य हैं, फिर पतिव्रता माता तो किसी प्रकार वध करने योग्य नहीं है। बुद्धिहीन पशु भी इस बात का अनुमोदन करेगा। पिता में सब देवता स्थित हैं; किन्तु माता में देवता और मनुष्य दोनों रहते हैं। इसलिए पिता केवल पारलौकिक सुख दे सकता है; किन्तु माता इस लोक और परलोक दोनों लोकों के सुख का कारण है।

अपनी दीर्घसूत्रिता के कारण चिरकारी इस प्रकार बहुत तर्क-वितर्क करते रहे। उधर तपोधन महाप्राज्ञ गौतम, अपनी स्त्री के वध को अनुचित समझकर, बहुत दुखी हुए और आँखों में आँसू भरकर कहने लगे कि त्रिलोकपति इन्द्र, ब्राह्मण का वेष बनाकर, अतिथि के रूप में मेरे आश्रम पर आये। मैंने स्वागत करके पाद्य, अर्घ्य आदि देकर उनकी यथोचित पूजा की और कहा कि मैं आपके अधीन हूँ। मैंने उस समय यह सोचा कि ऐसा शिष्टाचार करने से इन्द्र मुझ पर प्रसन्न होंगे। किन्तु उन्होंने अपनी चपलता से जो मेरी स्त्री को भ्रष्ट कर दिया तो इसमें मेरी स्त्री को व्यभिचार का दोष कैसे लग सकता है? अब मेरी समझ में आता है कि इस मामले में मेरी स्त्री, मैं और अतिथि इन्द्र कोई भी अपराधी नहीं है। इसका अपराध तो केवल स्त्री को सुरक्षित न रखना ही है। महर्षियों का कहना है कि ईर्ष्या से व्यसन उत्पन्न ५० होता है। मैंने ईर्ष्या से ही स्त्री की हत्या करने का पाप किया है। स्त्री तो भरण करने योग्य होने से भार्या कहलाती है। आज मैंने अपनी पतिव्रता भार्या को मरवा डाला। अब इस पाप से मुझे कौन बचावेगा? मैंने उदारबुद्धि चिरकारी को, अपनी स्त्री के, वध करने की आज्ञा भूल से दी है। यदि चिरकारी आज अपने नाम के अनुरूप काम करे तो निस्सन्देह इस पाप से मुझे बचा ले। बेटा चिरकारी, तुम्हारा कल्याण हो। यदि आज तुमने अपने नाम के अनुरूप काम किया होगा तो तुम्हारा नाम सार्थक है। तुम आज मुझे, अपनी मा को और माता के वध-रूप पाप से अपने को बचाओ जिससे मेरी बहुत दिनों की तपस्या नष्ट न हो जाय। आज तुम सच्चे चिरकारी हो जाओ। बुद्धि की प्रखरता के कारण तुम स्वभाव से ही देर में काम करते हो, आज उसके विरुद्ध न हो। ओह, तुम्हारी माता ने बहुत दिनों तक तुम्हें गर्भ में रक्खा था और तुमसे अपने भले की आशाएँ की थीं। आज तुम अपनी दीर्घसूत्रिता का परिचय देकर अपनी माता की शुभ आशाओं को सफल करो। किसी काम को करने के लिए मेरी आज्ञा पाने पर तुम

सन्ताप के भय से उसमें देर करते हो और किसी काम के रोकने पर भी उचित-अनुचित को विचारते हुए देर लगाते हो, अतएव आज मुझे और मेरी स्त्री को इस चिर सन्ताप से बचा लो।

महर्षि गौतम बड़े दुःख से रोते और शोक करते हुए घर लौट आये। उन्होंने देखा कि उनका पुत्र चिरकारी चिन्तित बैठा हुआ है। पिता गौतम को देखकर चिरकारी शस्त्र ६० फेंककर, उनको प्रसन्न करने के लिए, दुःखित चित्त से उनके पैरों पर गिर पड़ा। पुत्र को विनीत और स्त्री को लज्जा के मारे पाषाण सदृश देखकर गौतम बहुत सन्तुष्ट हुए। माता का वध न करनेवाला, पैरों पर पड़ा हुआ, चिरकारी अपनी नम्रता से पिता की कठिन आज्ञा को भूल सा गया था। तब गौतम ने पुत्र को अपने पैरों पर पड़ा देखकर सोचा कि चिरकारी डर के मारे शस्त्र-ग्रहण की चपलता को छिपा रहा है।

अब गौतम ने चिरकारी का माथा सूँघकर, उसे छाती से लगाकर, उसके काम की प्रशंसा करके प्रसन्न होकर कहा—बेटा! तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हारी आयु बढ़े। तुमने मेरी आज्ञा का पालन करने में विलम्ब करके मेरा बड़ा उपकार किया है। मेरी आज्ञा का उल्लङ्घन करने के कारण तुम रत्ती भर भी खेद न करो।

अब महात्मा गौतम धैर्यवान् चिरकारी को यह उपदेश देने लगे—हितैषी का वध और कार्य का परित्याग ख़ूब सोच-विचार करके करना चाहिए। बहुत सोच-विचार करने के बाद जो मित्रता स्थापित होती है वही स्थायी होती है। क्रोध, दर्प, अभिमान, ७० अनिष्ट-चिन्तन, अप्रिय और पाप-कर्म करने में विलम्ब करना चाहिए। बन्धु, मित्र, सेवक और स्त्री के अपराध को अच्छी तरह जाने बिना उन्हें झटपट दण्ड न दे दे।

हे युधिष्ठिर, महर्षि गौतम अपने पुत्र चिरकारी की यह चिरकारिता देखकर बहुत प्रसन्न हुए। अतएव प्रत्येक काम को ख़ूब सोच-समझकर करना चाहिए। जो मनुष्य क्रोध को रोक सकता है और सोच-समझकर काम करता है उसे अन्त को पछताना नहीं पड़ता। बड़े-बूढ़ों के साथ देर तक रहे। देवताओं का ध्यान करके पूजा करे। प्रत्येक काम और धर्म देर

तक करे। देर तक पण्डितों का सत्सङ्ग, सज्जनों की सेवा और आत्म-चिन्तन करने से मनुष्य सबका सम्मान-पात्र होता है। धर्म का उपदेश देनेवाले से यदि कोई विषय पूछा जावे तो उसे बहुत सोच-विचारकर उत्तर देना चाहिए। हे धर्मराज, महातपस्वी महर्षि गौतम उसी आश्रम में बहुत दिनों तक निवास करके पुत्र के साथ देवलोक को गये। ७८

दो सौ सड़सठ अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से प्रजा का पालन करने के विषय में
द्युमत्सेन और सत्यवान् का संवाद कहना

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, राजा हिंसा किये बिना प्रजा का पालन किस प्रकार करे ?

भीष्म ने कहा—बेटा, मैं इस सम्बन्ध में महाराज द्युमत्सेन और उनके पुत्र सत्यवान् का इतिहास सुनाता हूँ। एक बार सत्यवान् के पिता ने किसी मनुष्य को प्राणदण्ड की आज्ञा दी थी। सत्यवान् ने उस मनुष्य को पिता के पास लाकर कहा—पिताजी, इसका वध करना आपको उचित नहीं। कभी-कभी धर्म की अधर्म में और अधर्म की धर्म में गिनती हो जाती है, यह बात तो सही है; किन्तु वध को कभी धर्म नहीं कहा जा सकता।

द्युमत्सेन ने कहा—बेटा, यदि तुम अपराधी के वध को भी अधर्म समझते हो तो फिर धर्म क्या वस्तु है ? चोरों को दण्ड न देने से सभी लोग धीरे-धीरे कुमार्ग पर चलने लगेंगे। कलियुग में मनुष्य दूसरों की वस्तु ले लेने की चेष्टा करते हैं। इस दशा में दण्ड के बिना संसार का निर्वाह कैसे हो सकता है ? बिना दण्ड के निर्वाह होने का कोई उपाय जानते हो तो बतलाओ।

सत्यवान् ने कहा—पिताजी ! क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र तीनों वर्णों को ब्राह्मणों की आज्ञा का पालन करना चाहिए। जब ये तीनों वर्ण धर्मानुसार चलने लगेंगे तो सूत-मागध आदि भी धर्म करने लगेंगे। कोई मनुष्य यदि ब्राह्मण का कहना न माने तो ब्राह्मण इसकी सूचना राजा को दे। सूचना पाकर राजा उद्दण्ड मनुष्य को दण्ड दे। शासन ऐसा करना चाहिए जिससे किसी को प्राणदण्ड देने की नौबत ही न आवे। अपराधी के काम और नीतिशास्त्र पर भली भाँति विचार किये बिना प्राणदण्ड देना ठीक नहीं। चोरों को प्राणदण्ड देने पर उनके माता-पिता और स्त्री-पुत्र भी काल का ग्रास हो जाते हैं यद्यपि वे निरपराधी होते हैं, अतएव राजा को चोरों के विषय में खूब समझ-बूझकर अपना कर्तव्य स्थिर करना चाहिए। १० कभी-कभी दुर्जन भी सज्जन होकर अच्छे आचरण करने लगता है और कभी दुर्जन से भी अच्छी सन्तान पैदा हो सकती है। अतएव मनुष्यों को प्राणदण्ड देना उचित नहीं। दण्ड के योग्य मनुष्यों का वध न करके उनका सर्वस्व हर लेना, क़ैद कर लेना और सिर मुड़ा देना आदि दण्ड दिये जायँ। उनका वध करके उनके कुटुम्बियों को क्लेश पहुँचाना अच्छा नहीं।

अपराधी यदि पुरोहित की शरण में जाकर कहे कि 'मैं अब ऐसा काम कभी न करूँगा' तो उसे दण्ड न देकर छोड़ देना चाहिए। विधाता का यही विधान है। ब्राह्मण अपराधी हो तो उसे मृगछाला और दण्ड धारण कराकर उसका सिर मुड़ा देना चाहिए। गुरुओं के अपराधी होने पर उन्हें एक बार क्षमा कर दे; किन्तु बार-बार अपराध करने पर क्षमा करना उचित नहीं।

द्युमत्सेन ने कहा—बेटा, प्रजा को अच्छी राह पर लगाना राजा का कर्तव्य है। यदि प्रजा राजा की आज्ञा न मानकर बुरे मार्ग पर चले तो, जिस उपाय से हो सके, राजा उसे अच्छी राह पर लगाने का उद्योग करे। धर्म के विरुद्ध आचरण करनेवालों को दण्ड नहीं दिया जाता तो उनके द्वारा जनता को क्लेश मिलता है। प्राचीन समय में मनुष्यों का स्वभाव कोमल होता था, उनकी रुचि सत्य की ओर होती थी, द्रोह उन्हें कम पसन्द था और क्रोध की मात्रा भी उनमें कम थी, इसलिए उस समय धिग्दण्ड (चेतावनी) देना पर्याप्त था; किन्तु उसके बाद मनुष्यों में अपराध की प्रवृत्ति उत्तरोत्तर बढ़ती गई तब वाग्दण्ड और अर्थदण्ड प्रचलित हुआ। अब कलियुग में मनुष्य अपराध बहुत करने लगे हैं, इस कारण वधदण्ड का प्रचार हुआ। इस समय तो वध-
२० दण्ड से भी काम नहीं चलता। संसार में कोई किसी का नहीं है; फिर डाकुओं के साथ मनुष्यों, देवताओं, गन्धर्वों और पितरों का कोई सम्बन्ध नहीं है; [अतएव उनका वध करने पर उनके कुटुम्बियों को अधिक कष्ट होने की क्या सम्भावना है ?] जो लोग श्मशान से मुर्दों के ज़ेवर और कपड़े उठा लाते हैं उन्हें शपथ आदि के द्वारा अच्छी राह पर कौन ला सकता है ?

सत्यवान् ने कहा—पिताजी, यदि आप हिंसा किये बिना डाकुओं को सुमार्ग पर न ला सकें तो नरमेध यज्ञ के द्वारा उनका संहार कीजिएगा। राज्य में डाकुओं का उपद्रव उपस्थित होने पर राजाओं को लज्जित होना पड़ता है, इसलिए वे प्रजा का हित करने की इच्छा से, डाकुओं का उपद्रव मेटने के लिए, तपस्या करते हैं—उपाय सोचते हैं। जब भय दिखाकर प्रजा को सदाचारी बनाया जा सके तब उसका वध कर देना ठीक नहीं। अतएव राजा सद्व्यवहार से ही प्रजा का शासन करे। श्रेष्ठ लोग जैसा व्यवहार करते हैं वैसा ही आचरण साधारण लोग भी धीरे-धीरे करने लगते हैं। जो राजा अपना आचरण शुद्ध न रखकर प्रजा के आचरण सुधारना चाहता है उस विषयासक्त राजा का अवश्य उपहास होता है। जो मनुष्य पाखण्ड और मोह के वश होकर राजा का थोड़ा सा भी अहित करे तो राजा, जैसे बने वैसे, उसका शासन करके उसे उस पाप से छुड़ा दे। जो राजा अपराधियों को अच्छे रास्ते पर लाने की इच्छा रखता हो उसे पहले अपना चित्त शुद्ध कर लेना चाहिए। भाई और पुत्र के अपराध करने पर भी राजा उन्हें कठोर दण्ड दे। जिस राज्य में पापी नीच लोग दुःख नहीं
३० पाते उसमें निस्सन्देह पाप की वृद्धि और धर्म का ह्रास हो जाता है। एक दयालु विद्वान् ब्राह्मण ने मुझे इस प्रकार का उपदेश दिया था और पूर्व पितामह लोग भी मुझे इसी तरह

बतला गये हैं। सत्ययुग में राजा समझा-बुझाकर और दया दिखाकर प्रजा को अपने अधीन करते थे। यद्यपि त्रेतायुग में धर्म के तीन चरण, द्वापर में दो चरण और कलियुग में धर्म का एक ही चरण रह जाता है तो भी इन युगों में प्राणदण्ड न देकर दूसरे प्रकार के दण्ड देना ही राजा का कर्तव्य है। राजा के अनुचित बर्ताव से कलियुग की प्रबलता होने पर धीरे-धीरे धर्म के एक चरण का सोलहवाँ हिस्सा रह जाता है; किन्तु उस समय भी प्राणदण्ड देना उचित नहीं। अहिंसा-रूप दण्ड के द्वारा प्रजा का पालन करने पर सज्जनों को क्लेश नहीं होता; अतएव राजा आयु, शक्ति और काल का विचार करके प्रजा को दण्ड दे। स्वायम्भुव मनु प्राणियों पर दया करना बतला गये हैं। जो लोग ब्रह्म को प्राप्त करना चाहें उन्हें कभी तत्त्वज्ञान का त्याग न करना चाहिए। ३६

दो सौ अड़सठ अध्याय

फल की इच्छा न करके यज्ञ आदि कर्म करने के विषय में गो-कपिल-संवाद

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह! मनुष्य अहिंसक रहकर योग के प्रभाव से महातेजस्वी हो सकता है, यह आपने विस्तार से बतलाया। अब मुझे वह धर्म बतलाइए जिसका अवलम्बन करने से भोग और मोक्ष दोनों प्राप्त हो सकें। गृहस्थ-धर्म और योग-धर्म, दोनों से मुक्ति हो सकती है, इसमें सन्देह नहीं; किन्तु इन दोनों में कौन धर्म श्रेष्ठ है?

भीष्म ने कहा—धर्मराज, ये दोनों धर्म श्रेष्ठ हैं। दोनों ही श्रेष्ठ फल देनेवाले और सज्जनों के उपास्य हैं; किन्तु इनका पालन करना बहुत कठिन है। जो हो, तुम्हारा सन्देह दूर करने के लिए गो-कपिल-संवाद कहता हूँ। ध्यान लगाकर सुनो। एक बार महर्षि त्वष्टा अतिथि-रूप से राजा नहुष के घर आये। राजा नहुष ने, वेद की विधि के अनुसार, उन्हें मधुपर्क देने के लिए गोवध करने का इरादा किया। इतने में ज्ञानवान् संयमी महात्मा कपिल वहाँ आ गये। उन्होंने नहुष को गोवध करने के लिए उद्यत देखकर अपनी नैष्ठिकी बुद्धि के प्रभाव से कहा कि ऐसे वेद को धिक्कार है। उसी समय स्यूमरश्मि नाम के एक महर्षि ने, योगबल से गाय के शरीर में प्रविष्ट होकर, कपिल से कहा—महर्षि, आपने वेद-विहित हिंसा को देखकर वेद का अनादर किया है; किन्तु आप जिस हिंसा-रहित धर्म का अवलम्बन करते हैं क्या वह वेद-विहित नहीं है? धैर्यवान् ज्ञानी तपस्वी लोग वेदों को परमेश्वर का वाक्य बतलाते हैं। परमेश्वर को किसी विषय में राग, द्वेष या लोभ नहीं है। कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड दोनों ही उसके लिए समान हैं। १०

कपिल ने कहा—न तो मैं वेद की निन्दा करता हूँ और न कर्मकाण्ड तथा ज्ञानकाण्ड की पारस्परिक श्रेष्ठता की तुलना ही करना चाहता हूँ। क्या संन्यास, क्या वानप्रस्थ, क्या गृहस्थ

और क्या ब्रह्मचर्य, मनुष्य चाहे जिस आश्रम-धर्म का पालन करे, अन्त को उसे श्रेष्ठ गति मिलती है। संन्यासी आदि चार प्रकार के आश्रमवासियों के लिए चार प्रकार की गति निर्दिष्ट है। संन्यासी मोक्ष को, वानप्रस्थ ब्रह्मलोक को, गृहस्थ स्वर्गलोक को और ब्रह्मचारी ऋषिलोक को जाते हैं। कर्म करने का और न करने का, दोनों ही विधान वेद में हैं। इसलिए वेद के अनुसार इन दोनों विधानों का बलाबल विचारना बहुत कठिन है। यदि आपने वेद के अतिरिक्त अन्य किसी युक्ति या अनुमान से अहिंसा की अपेक्षा और किसी धर्म को श्रेष्ठ माना है तो बतलाइए।

स्यूमरश्मि ने कहा—महर्षि, वेद की आज्ञा है कि स्वर्ग की इच्छा से यज्ञ करे। पहले फल की कल्पना करके तब यज्ञ करना चाहिए। बकरा, भेड़, घोड़ा, गाय, पक्षी आदि ग्राम्य और जङ्गली सब जीव तथा ओषधियाँ प्राणियों का भोजन हैं। प्रति दिन सवेरे और सन्ध्या के समय इनसे निर्वाह किया करे। भगवान् प्रजापति ने अन्न और सब पशुओं को यज्ञ का प्रधान २० अङ्ग बतलाकर यज्ञ की सृष्टि की है। उन्होंने स्वयं यज्ञ करके देवताओं की पूजा की थी। गाय, बकरा, मनुष्य, घोड़ा, भेड़, खच्चर और गधा, ये सात ग्राम्य तथा सिंह, बाघ, सुअर, भैंसा, हाथी, रीछ और वानर, ये सात जङ्गली, इन चौदह प्रकार के जीवों से यज्ञ होता है। पशु आदि यज्ञ के प्रधान अङ्ग हैं और प्राचीन महात्माओं ने यज्ञ में इनके उपयोग का अनुमोदन किया है। सभी पुरुष अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार यज्ञ में पशु का वध करते हैं। मनुष्य, पशु, वृक्ष और ओषधि आदि सभी स्वर्ग की इच्छा करते हैं; किन्तु उन्हें यज्ञ के सिवा स्वर्ग प्राप्त करने का दूसरा उपाय नहीं है। ओषधि, पशु, वृक्ष, लता, घी, दूध, दही, पुरोडाश आदि हवन करने योग्य वस्तुएँ, पृथ्वी, दिशा, श्रद्धा, काल, ऋक्, यजु, साम, यजमान और अग्नि, ये सत्रह पदार्थ यज्ञ के अङ्ग हैं। सब प्राणियों का आधार यज्ञ ही है। गाय का घी, दूध, दही, गोबर, आमिक्षा (दही मिला दूध), बैल का चमड़ा, गाय का सींग, पूँछ और पैर धोया हुआ जल, इन सब वस्तुओं से यज्ञ होता है। इन वस्तुओं को और दक्षिणा तथा ऋत्विक् लोगों को ३० एकत्र करके प्राचीन लोग यज्ञ किया करते थे। जो मनुष्य फल की इच्छा न करके, केवल कर्तव्य समझकर, यज्ञ करता है वह न तो जीव-हिंसा करता है और न दूसरों का अनिष्ट करता है। ये सब शास्त्रोक्त यज्ञ के अङ्गभूत द्रव्य एक दूसरे की सहायता करते हैं। ऋषियों का बनाया हुआ स्मृतिशास्त्र पढ़ने से जान पड़ता है कि वेद उसी में स्थित है। स्मृतिशास्त्र को कर्म में प्रवृत्ति करानेवाला समझकर विद्वानों ने उसी पर विश्वास किया है। ब्राह्मण और वेद यज्ञ के मुख्य कारण हैं। यज्ञ की सब सामग्री ब्राह्मणों को दे देनी चाहिए। संसार से यज्ञ की और यज्ञ से संसार की रचना होती है। प्रणव वेद का आदि है, अतएव पहले प्रणव का उच्चारण करके तब यज्ञ की क्रिया करनी चाहिए। वेद का वचन है और महर्षियों ने भी कहा है कि जो मनुष्य यथाशक्ति यज्ञ में प्रणव, नमः, स्वाहा और वषट् शब्द का प्रयोग करता है उसे तीनों

लोकों में कोई भय नहीं है। जो ऋक्, यजु, साम और साम-पूरक शब्दों को जानता है वही यथार्थ ब्राह्मण है। अग्निहोत्र, सोमयाग और अन्यान्य यज्ञों का जो फल मिलता है उसे आप भली भाँति जानते हैं। अतएव मनुष्य स्वयं यज्ञ करे और दूसरों को भी यज्ञ करने का उपदेश दे। यज्ञ करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। जो यज्ञ नहीं करता उसे न तो इस लोक में सद्गति मिलती है और न परलोक में ही। वेद के पण्डितों ने कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड दोनों को ही प्रामाणिक माना है। ४०

दो सौ उनहत्तर अध्याय

गाय के शरीर में प्रविष्ट स्यूमरश्मि और कपिल का संवाद

गाय के शरीर में स्थित महात्मा स्यूमरश्मि की बातें सुनकर कपिल ने कहा—योगियों ने कर्म के फल की अनित्यता देखकर ज्ञान-मार्ग का आश्रय करके परमात्मा को प्राप्त किया है। वे इच्छा करते ही सब लोकों को जा सकते हैं। जो हर्ष-विषाद और नमस्कार-आशीर्वाद नहीं करते; जो शुद्धस्वभाव, निर्मलचित्त और सब पापों से मुक्त रहते हैं तथा जो विषय-वासनाओं को त्यागकर और मोक्ष प्राप्त करने का निश्चय करके ब्रह्म-स्वरूप हो जाते हैं वे सरलता से नित्य सिद्धलोक को जा सकते हैं। जो मनुष्य इस प्रकार की श्रेष्ठ गति पा सके उसे गृहस्थ आश्रम से क्या प्रयोजन है?

स्यूमरश्मि ने कहा—महर्षि, माना कि ब्रह्मज्ञानी संन्यासी लोग तत्त्वज्ञान और परम गति पा सकते हैं; किन्तु गृहस्थों का आश्रय किये बिना कोई किसी धर्म का पालन नहीं कर सकता। जैसे सब प्राणी माता के आश्रित रहकर जीते हैं वैसे ही सब आश्रमी लोग गृहस्थधर्म के प्रभाव से जीवन धारण करते हैं। गृहस्थ मनुष्य ही यज्ञ और तपस्या कर सकता है। गृहस्थधर्म ही सुख का मूल है। सन्तान का उत्पन्न करना मनुष्यों के सुख का प्रधान कारण है; किन्तु गृहस्थाश्रम के सिवा अन्य किसी आश्रम में सन्तान की उत्पत्ति सम्भव नहीं। गृहस्थ लोग ही तृण, अन्न और पहाड़ों पर पैदा हुई सोमलता आदि सब ओषधियों को एकत्र करते हैं। अन्न से सब मनुष्यों की रक्षा होती है, इसलिए गृहस्थाश्रम ही सबसे प्यारा और जीवन का कारण है। कौन मनुष्य गृहस्थाश्रम को मोक्ष का प्रतिबन्धक कह सकता है? श्रद्धाहीन, पूर्वापर-विचार-हीन, नासमझ, आलसी, गृहस्थ-धर्म का पालन करने में असमर्थ मनुष्य ही संन्यास आश्रम का अवलम्बन करके शान्ति का उपाय करते हैं। नित्यसिद्ध वेदमर्यादा ही त्रैलोक्य की रक्षा का ११ कारण है। वेद के ज्ञाता पुरुष जन्म से ही सबके पूज्य हैं। गर्भाधान से लेकर विवाह पर्यन्त ब्राह्मणों के सब संस्कार तथा लोक और परलोक-सम्बन्धी कर्म वेद के मन्त्रों से होते हैं। मृत शरीर का दाहकर्म, श्राद्ध, तर्पण, पिण्ड को जल में प्रवाह करना और मृतक को स्वर्ग-प्राप्ति होने के उद्देश्य से गोदान आदि करना, ये सब काम मन्त्रों से होते हैं। अर्चिष्मान्, बर्हिषद् और क्रव्याद नाम के

पितरों ने इन सब कामों को मन्त्रमूलक बतलाया है। मनुष्य जब देवताओं, ब्राह्मणों और पितरों के ऋणी रहते हैं और जब वेदमन्त्रों में कर्मकाण्ड की विधि निर्दिष्ट है तब मोक्ष कैसे मिल सकता है? श्रीहीन आलसी मनुष्य ही मिथ्या-स्वरूप मोक्ष को सत्य कहते हैं। जो ब्राह्मण वेद के अनुसार यज्ञ आदि कर्म करता है, पाप उसका कुछ नहीं कर सकता। वह, यज्ञ में मारे गये पशु के साथ, स्वर्ग को जाता है। जिस तरह पशुओं से उसकी तृप्ति होती है, उसी तरह उससे पशुओं को आनन्द मिलता है। वेदोक्त कर्मों का अनादर, दुष्टता और कपट करने से मनुष्य को परब्रह्म की प्राप्ति नहीं हो सकती। वैदिक कर्मों के करने से ही मोक्ष मिल सकता है।

कपिल ने कहा—जो बुद्धिमान् पुरुष चित्त-शुद्धि के लिए हिंसा-रहित दर्श, पौर्णमास, २० अग्निहोत्र और चातुर्मास्य यज्ञ करते हैं उन्हीं का आश्रय सनातन धर्म करता है। आसक्ति-रहित, धैर्यवान्, ब्रह्मज्ञ महात्मा ही ब्रह्म का साक्षात्कार करके अमृत के अभिलाषी देवताओं को सन्तुष्ट कर सकते हैं। जो मनुष्य सब प्राणियों को आत्म-तुल्य समझता है उसके मार्ग में देवता भी मोहित होते हैं। ज्ञानी मनुष्य जीव को जरायुज आदि चार श्रेणियों में विभक्त और उसके मन, बुद्धि, अहङ्कार और चित्त को चार मुख तथा हाथ, वाणी, पेट और उपस्थ (लिङ्ग और योनि) को चार द्वार बतलाते हैं। जीव हाथ आदि चार द्वारों का रक्षक है। अतएव इन द्वारों की रक्षा अवश्य करनी चाहिए। जो बुद्धिमान् मनुष्य जुआ नहीं खेलता, चोरी नहीं करता, नीच जाति के मनुष्यों को यज्ञ नहीं कराता और क्रोध में आकर किसी पर प्रहार नहीं कर बैठता उसी का हस्त-द्वार रक्षित रहता है। जो मनुष्य सत्यवादी, मितभाषी और सावधान रहकर क्रोध, असत्य, कुटिलता और दूसरों की निन्दा का त्याग कर देता है उसी का वाग्-द्वार सुरक्षित रहता है। जो मनुष्य अधिक भोजन और लोभ न करके शरीर की रक्षा के लिए परि-मित भोजन और हमेशा सज्जनों की सङ्गति करता है वही पेट-द्वार की रक्षा कर सकता है। जो मनुष्य एक स्त्री के मौजूद रहने पर दूसरा विवाह नहीं करता तथा ऋतु-समय के अतिरिक्त भोग और परस्त्री-गमन नहीं करता उसी का लिङ्ग-द्वार सुरक्षित रहता है। जो महात्मा इस प्रकार चारों द्वारों की रक्षा कर सकता है उसी को ब्रह्मज्ञानी कहते हैं। जो मनुष्य इन द्वारों की रक्षा नहीं कर सकता उसके सब कार्य निष्फल हो जाते हैं। वह तपस्या, यज्ञ और शरीर के द्वारा कोई फल नहीं पा सकता। जो मनुष्य चदरा और उत्तम शय्या को त्यागकर हाथ का ही ३० तकिया लगाकर पृथिवी पर सोता है उसे देवता लोग ब्रह्मज्ञ कहते हैं। जो दूसरों के सुख-दुःख की चिन्ता नहीं करता; जो स्त्री-पुरुष को परस्पर अनुरक्त देखकर उनसे ईर्ष्या न करके अकेला आनन्द से रहता है; जो सब प्राणियों की गति, प्रकृति और विकृति आदि को जान सकता है तथा जो सब प्राणियों को आत्म-स्वरूप समझकर न तो किसी से डरता और न किसी को डरवाता है उसी को देवता लोग ब्रह्मज्ञ कहते हैं। फलाभिलाषी पुरुष दान-यज्ञ आदि के फल-

स्वरूप चित्त की शुद्धि न कर सकने के कारण गुरु के बतलाये हुए तत्त्वज्ञान को नहीं जान सकते, इसी से वे स्वर्ग आदि प्राप्त करने की इच्छा करते हैं। आश्रमी पुरुष अपने कर्म और नित्यसिद्ध निष्काम धर्म का आश्रय करके, आत्मज्ञानी होकर, संसारमूलक अज्ञान का नाश कर देते हैं। किन्तु फलाभिलाषी मनुष्य उस निष्काम धर्म का पालन नहीं कर सकता इसलिए वह आपत्ति, आचार, प्रमाद और पराभव से हीन; प्रत्यक्ष फल देनेवाले अविनाशी धर्म को निरर्थक और दूषित समझता है। सारांश यह कि निष्काम धर्म, यज्ञ के अनुष्ठान आदि, सकाम धर्म की अपेक्षा श्रेष्ठ है। पहले तो यज्ञ आदि का स्वरूप समझना ही कठिन है, यदि वह किसी तरह मालूम भी हो जाय तो यज्ञ करना सहज काम नहीं है। और यदि यज्ञ का अनुष्ठान भी हो सके तो उससे अनन्त सुख मिलने की सम्भावना नहीं है। अतएव यज्ञ आदि का फल नश्वर समझकर तत्त्वज्ञान का ही आश्रय करना चाहिए।

स्यूमरश्मि ने कहा—भगवन्! वेद में कर्म के करने और कर्म के त्यागने, दोनों का विधान है। इन दोनों का तत्त्व आप मुझे बतलाइए।

कपिल ने कहा—विवेकी लोग कर्म का त्याग करके, ब्रह्मप्राप्ति-रूप सुमार्ग पर चलकर, अनुभव के द्वारा ब्रह्म को प्रत्यक्ष के समान देखते हैं; किन्तु आप जिस स्वर्ग की प्रशंसा करके यज्ञ आदि का अनुष्ठान करना बतलाते हैं उससे इस लोक में कौन सी विशेषता देखते हैं? ४०

स्यूमरश्मि ने कहा—ब्रह्मन्, मेरा नाम स्यूमरश्मि है। तत्त्वज्ञान प्राप्त करने की इच्छा से आपके पास आकर, इस गाय के शरीर में प्रवेश करके, मैंने आपसे प्रश्न किया है। आपके विपक्ष में होकर मैं अपना कोई सिद्धान्त स्थापित करना नहीं चाहता। आपने सुमार्ग पर स्थित होकर अनुभव द्वारा ब्रह्म का दर्शन किया है; वह ब्रह्म का अनुभव किस प्रकार का है, इस विषय में मुझे बड़ा सन्देह है, आप उसे दूर कीजिए। वेद-विरोधी तर्कशास्त्र की उपेक्षा करके मैंने केवल आगम के अर्थ को जाना है। वेद ही आगम है और वेद के अर्थ का निर्णय करनेवाले मीमांसाशास्त्र को भी आगम कहते हैं। प्रत्येक आश्रम में इसी आगम की प्रतिपादित विधि का पालन करने से सिद्धि हो सकती है। कोई नाव दूसरे देश की नाव में बँधी रहने से जैसे अपने सवार को गन्तव्य स्थान पर नहीं ले जा सकती वैसे ही, पूर्व वासनाओं में बँधे रहने के कारण, कर्म हम लोगों को जन्म-मृत्यु के प्रवाह से पार नहीं लगा सकते। जो हो, अब मैं आपके पास आया हूँ। आप मुझे इस विषय में उपदेश दीजिए। मनुष्यों में सर्वत्यागी, सन्तुष्ट, शोकहीन, नीरोग, इच्छा-रहित, निष्कर्मा और किसी से सम्पर्क न रखनेवाला कोई भी नहीं है। आप भी हम लोगों की तरह शोक और हर्ष के वशीभूत हैं और दूसरे मनुष्यों के समान आपकी इन्द्रियाँ भी विषयोन्मुख हैं। अतएव आप बतलाइए कि चारों वर्णों और चारों आश्रमों का अक्षय सुख क्या है।

कपिल ने कहा—ब्रह्मन्! कर्म किसी शास्त्र के अनुसार क्यों न किया जाय, वह फल का देनेवाला होता ही है। जिस शास्त्र के अनुसार शम-दम आदि गुणों का अवलम्बन किया

जा सकता है उसी से, सब दोषों से रहित, ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है। विवेकी मनुष्य को संसार में किसी वस्तु पर अनुराग नहीं होता। अज्ञान से ही जन्म-मरण-रूप शृङ्खला द्वारा
५० प्राणियों को अनेक प्रकार के क्लेश मिलते हैं। आप लोग ज्ञानवान् और नीरोग हैं; किन्तु आप लोगों को कभी जीवात्मा और परमात्मा का अभेद-ज्ञान नहीं होता। शास्त्रों के मर्म को न जाननेवाले अनीश्वरवादी मूर्ख लोग इच्छा, द्वेष, मोह और अहङ्कार के वशीभूत तथा शम-दम आदि गुणों से हीन होकर ज्ञान को निष्फल कहते हैं; वे ज्ञान के ऐश्वर्य आदि गुणों का अनुसरण नहीं करते। उन लोगों का एकमात्र आश्रय तमोगुण ही है। जिसकी जैसी प्रकृति होती है वह वैसा ही आचरण करता है। जो मनुष्य तमोगुण के वशीभूत है उसके काम, क्रोध, द्वेष और दम्भ आदि निरन्तर बढ़ते रहते हैं। जो उत्तम गति पाने की इच्छा रखते हों वे स्वकर्म-निरत संन्यासी इस प्रकार विचार कर शुभ और अशुभ दोनों का त्याग कर दें।

स्यूमरश्मि ने कहा—ब्रह्मन्, मैंने शास्त्र के अनुसार आपसे कर्म की प्रशंसा और कर्मत्याग की निन्दा की है। शास्त्र के मर्म को भली भाँति समझे बिना शास्त्रोक्त कर्मों में किसी की प्रवृत्ति नहीं होती। न्याय के अनुसार आचरण करना ही शास्त्र है और जो न्याय से हीन है वही अशास्त्र है। न्याय का उल्लङ्घन करने से शास्त्रीय प्रवृत्ति नहीं होती। जो वेद-वचनों के विरुद्ध है वह शास्त्र ही नहीं। जो लोग केवल प्रत्यक्ष वस्तुओं का ही अस्तित्व मानते हैं वे इसी लोक का विश्वास करते हैं। जिनकी बुद्धि अज्ञान से ढकी रहती है वे अविवेकी लोग शास्त्र में कहे गये दोषों को न समझकर उन्हीं के अनुसार काम करते हैं। उन्हीं की तरह हम लोगों को हमेशा शोक करना पड़ेगा। देखिए, सभी मनुष्य आपकी तरह सरदी-गरमी सहन करते हैं; किन्तु उनके और आपके कामों में जो भेद देख पड़ता है वह अत्यन्त विस्मयजनक
६० है। इस प्रकार आपने सब शास्त्रों के सिद्धान्त के अनुसार अनन्त-स्वरूप ब्रह्म का विषय बतलाकर चारों वर्णों और चारों आश्रमों में मेरे हृदय को शान्त-रस से तर कर दिया है। आपने जो कहा है वह सर्वोत्तम है; किन्तु उसका करना सहज नहीं है। जो जितेन्द्रिय निर्विवादी पुरुष योगयुक्त और कृतकार्य होकर केवल शरीर धारण करके निर्वाह कर सकता है वही कर्म से अलिप्त रहकर मोक्ष-पद पा सकता है; किन्तु जो मनुष्य परिवार के साथ रहता है वह कभी मुक्ति देने योग्य कर्म नहीं कर सकता। जब दान, अध्ययन, यज्ञ, सन्तान की उत्पत्ति और सरलता का व्यवहार करने पर भी मुक्ति नहीं मिल सकती तब मुक्ति के चाहनेवाले मनुष्य को, मुक्ति को और मुक्ति पाने के लिए निरर्थक परिश्रम को धिक्कार है। जो हो, इस समय मुझे मोक्ष के विषय में सन्देह उत्पन्न हुआ है, इसलिए आप ठीक-ठीक उसका वर्णन कीजिए। मैं आपके पास आया हूँ, मुझे
६८ उपदेश दीजिए। आप मुक्ति का विषय जैसा जानते हैं वैसा मुझे भी बतलाइए।

दो सौ सत्तर अध्याय

स्यूमरश्मि और कपिल का संवाद

कपिल ने कहा—महर्षि! सब लोग वेद को प्रमाण मानते हैं, वेद की कोई अवज्ञा नहीं करता। ब्रह्म दो प्रकार का है—शब्दब्रह्म और परब्रह्म। शब्दब्रह्म का ज्ञान होने पर परब्रह्म की प्राप्ति होती है। पिता पुत्र को उत्पन्न करके वेद-मन्त्र के द्वारा उसके शरीर का संस्कार करता है। संस्कार-सम्पन्न होने पर पुत्र शुद्ध शरीर और ब्राह्मणत्व प्राप्त करके ज्ञान का उपार्जन करने के उपयुक्त पात्र होता है। कर्म का फल चित्त की शुद्धि है। अब चित्त-शुद्धि का विषय सुनिए। चित्त शुद्ध हुआ या नहीं, इसको कर्म करनेवाला मनुष्य ही जान सकता है। दूसरा मनुष्य वेद या अनुमान के द्वारा इसका निश्चय नहीं कर सकता। जो लोग निर्लोभ और राग-द्वेषहीन होकर, धन का संग्रह न करके, केवल धर्म को ही अपना कर्तव्य समझकर यज्ञ करते हैं वे धन्य हैं। उनके धन का उपयोग सत्पात्र को दान देने में ही होता है। प्राचीन समय में अनेक ज्ञानवान्, क्रोधहीन, ईर्ष्या-रहित, निरहङ्कार, सब प्राणियों का हित चाहनेवाले कर्मनिष्ठ गृहस्थ, राजा और ब्राह्मण थे। वे कभी पाप नहीं करते थे। इच्छा करते ही उनके सब काम सिद्ध हो जाते थे। वे शीलवान्, सन्तुष्ट, पवित्र और परब्रह्म में श्रद्धालु थे। वे नियम से ब्रह्मचर्य का पालन करते थे; घोर विपत्ति पड़ने पर भी धर्म को नहीं छोड़ते थे। उन लोगों को यह सुभीता था कि वे मिल-जुलकर धर्म का अनुष्ठान करते थे। उनको कभी प्रायश्चित्त नहीं करना पड़ता था। सत्य के प्रभाव से वे महातेजस्वी थे। वे किसी धर्म को अपनी बुद्धि के बल से न करके केवल शास्त्र के अनुसार श्रेष्ठ धर्म का पालन करते थे। धर्म में वे कभी छल नहीं करते थे। इन नियमों का पालन करने से प्रायश्चित्त नहीं करना पड़ता। जो लोग इन नियमों का पालन नहीं करते उन्हीं को प्रायश्चित्त करना पड़ता है। प्राचीन समय में असंख्य ब्राह्मण वेदों के विद्वान्, पवित्र, सद्-व्यवहार-सम्पन्न, यशस्वी, निर्लोभ, बन्धनमुक्त, याज्ञिक, काम-क्रोध-हीन, अपने-अपने कर्मों से विख्यात, नम्रस्वभाव, शान्तगुणावलम्बी और कर्मनिष्ठ हो गये हैं। वे लोग यज्ञ, वेद, शास्त्र, शास्त्र के अनुसार कर्म और सङ्कल्प को ब्रह्म-स्वरूप मानते थे। प्राचीन समय में केवल ब्रह्मार्पण बुद्धि से सब काम किये जाते थे। अन्त को जब मनुष्य इस सूक्ष्म धर्म की रक्षा नहीं कर सके तब उक्त धर्म चार भागों में विभक्त कर दिया गया। कोई तो ब्रह्मचर्य के बाद गृहस्थ और कोई गृहस्थ के बाद वानप्रस्थ का अवलम्बन करके परमगति प्राप्त करते थे। वे सब ब्राह्मण तेजोमय देह धारण करके आकाशमण्डल में तारागण हो गये। उनमें से अनेक ब्राह्मण (अगस्त्य वशिष्ठ आदि) ब्रह्मभाव को प्राप्त हो गये हैं। यदि वे संसार में जन्म लेते हैं तो कर्म के फल में लिप्त नहीं होते। जो ब्राह्मण इन महात्माओं के समान गुरु की सेवा करके, दृढ़सङ्कल्प होकर, ब्रह्मचर्य का पालन करता है वही ब्राह्मण के नाम को सार्थक करता है।

दूसरों का ब्राह्मण नाम धारण करना विडम्बना मात्र है। जब कर्म के द्वारा ब्राह्मण और अब्राह्मण का निरूपण किया गया है तब कर्म को ही पुरुषों के मङ्गल और अमङ्गल का ज्ञापक समझना चाहिए। जो इस प्रकार निष्काम कर्म और गुरु के उपदेश द्वारा चित्त को शुद्ध कर लेता है वह अपने चित्त में सबको ब्रह्ममय देखता है। विषय-वासनाओं से रहित, शुद्ध चित्त-वाले महात्माओं का केवल समाधि ही परमधर्म है। क्षत्रिय आदि अन्य वर्ण भी इन सद्गुणों से युक्त होकर इस धर्म का पालन कर सकते हैं। शुद्ध चित्तवाले ब्राह्मण (जिज्ञासु) ही ब्रह्म ३० की प्राप्ति कर सकते हैं। नित्यसन्तुष्ट कर्मफलत्यागी पुरुष को ही ब्रह्मज्ञान हो सकता है। संन्यास-धर्म गुरु-परम्परागत है। वह कभी-कभी दूसरे धर्मों के साथ मिल जाता है। जो पुरुष ब्रह्मपद पाने की इच्छा करके त्याग के बल से इस धर्म का अवलम्बन कर सकता है वही संसार से मुक्त हो सकता है। त्याग के बिना कोई मनुष्य इस धर्म का पालन नहीं कर सकता।

स्यूमरश्मि ने कहा—भगवन्! जो लोग विषयों का भोग, दान और यज्ञ करते तथा वेद का अध्ययन करते हैं और जो विषयों का त्याग करके संन्यास-धर्म का अवलम्बन करते हैं, वे सब शरीर त्यागने के बाद स्वर्ग को जाते हैं। किन्तु उनमें श्रेष्ठ कौन हैं?

कपिल ने कहा—ब्रह्मन्, गृहस्थ लोग अनेक गुणों से सम्पन्न होकर विषय-सुख भोगते हैं; किन्तु उन्हें त्याग-सुख का अनुभव नहीं हो सकता।

स्यूमरश्मि ने कहा—महर्षि, शास्त्र का वचन है कि प्रत्येक आश्रम के द्वारा मुक्ति की प्राप्ति हो सकती है। आपने ज्ञान के प्रभाव से जो फल प्राप्त किया है उसे गृहस्थ लोग कर्म के प्रभाव से प्राप्त कर सकते हैं। इस विषय में मुझे बड़ा सन्देह उत्पन्न हुआ है। शास्त्र के अनुसार मुझे समझाइए कि ज्ञान और कर्म, ये दोनों समान हैं अथवा कर्म ज्ञान का अङ्ग है।

कपिल ने कहा—ब्रह्मन्, कर्म के द्वारा स्थूल और सूक्ष्म शरीर की शुद्धि होती है और ज्ञान मोक्ष की प्राप्ति का साधन है। कर्म के द्वारा चित्त के दोषों का नाश होता है और शास्त्रोक्त ब्रह्मज्ञान के द्वारा दया, क्षमा, शान्ति, अहिंसा, सत्य, सरलता, इच्छाओं का त्याग, सहनशीलता और लज्जा उत्पन्न होती है तथा द्रोह और अभिमान का नाश हो जाता है। ये सब गुण ब्रह्म को प्राप्त करने के उपाय-स्वरूप हैं। मनुष्य इन्हीं गुणों के द्वारा परब्रह्म को प्राप्त कर सकता है। आत्मज्ञानी मनुष्य, वैराग्य द्वारा चित्त के दोषों के नष्ट हो जाने को ही कर्मों का फल समझता ४० है। शुद्ध चित्तवाले आत्मज्ञानी ब्राह्मण जिस गति को प्राप्त करते हैं वही श्रेष्ठ गति है। जो मनुष्य वेद, वेद में बतलाये हुए कर्म, कर्मों के अनुष्ठान और ब्रह्मज्ञान को अच्छी तरह जान लेते हैं वही वेद के विद्वान् हैं और जिन्हें इनका ज्ञान नहीं होता उनका जन्म व्यर्थ है। वे केवल भस्त्रिका (धौंकनी) के समान श्वास लेते हैं। वेद में सभी विषयों का वर्णन है, इसलिए वेदज्ञ मनुष्य सब कुछ जान सकता है। वेद में संसार का अस्तित्व और अभाव दोनों देखे जाते हैं। अविवेकी

मनुष्य जगत् का अस्तित्व ही मान बैठते हैं; किन्तु विवेकी मनुष्य उसकी वास्तविकता को स्वीकार नहीं करते। जो मनुष्य जीवात्मा और परमात्मा में भेद नहीं समझता वही परब्रह्म को प्राप्त कर सकता है। मोक्ष ही अविनाशी ब्रह्मानन्द का एकमात्र आधार है। पण्डितों ने मोक्ष को नित्य-सिद्ध, सब प्राणियों में स्थित, सब लोकों में विख्यात, ज्ञातव्य, स्थावर-जङ्गम सब प्राणियों का आत्मा और देह-स्वरूप, सुख और मङ्गल का देनेवाला, परब्रह्म का आधार तथा अक्षय बतलाया है। तत्त्वज्ञ पुरुष ज्ञान के बल से तेज, क्षमा और शान्ति के द्वारा जगत् के कारण-स्वरूप जिस निरामय सनातन परम पदार्थ को प्राप्त करते हैं उस ब्रह्मज्ञान से अभिन्न परमब्रह्म को मैं प्रणाम करता हूँ। ४७

दो सौ इकहत्तर अध्याय

भीष्म का अर्थ और काम की अपेक्षा धर्म को श्रेष्ठ बतलाते हुए कुण्डधार की कथा कहना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह! वेद में धर्म, अर्थ और काम, तीनों की प्रशंसा की गई है; किन्तु इन तीनों में किसका प्राप्त करना सबसे श्रेष्ठ है?

भीष्म ने कहा—धर्मराज! प्राचीन समय में कुण्डधार नाम के मेघ ने प्रसन्न होकर एक ब्राह्मण का उपकार किया था, उसका इतिहास सुनो। एक बार एक दरिद्र ब्राह्मण ने, फल की इच्छा करके, यज्ञ करने का निश्चय किया। किन्तु यज्ञ धन से होता है, यह विचारकर धन प्राप्त करने के लिए वह ब्राह्मण घोर तपस्या करने लगा। ब्राह्मण ने बड़ी भक्ति के साथ बहुत दिनों तक देवताओं की पूजा की; किन्तु इतने पर भी उसे धन न मिला। तब वह सोचने लगा कि जिस देवता की आराधना किसी मनुष्य ने कभी न की हो, मैं अब उसी की उपासना करूँगा। वही

देवता शीघ्र मुझ पर प्रसन्न होगा। ब्राह्मण यह सोच रहा था कि इतने में कुण्डधार नाम का मेघ वहाँ आया। उसको देखकर ब्राह्मण के हृदय में उसके प्रति बड़ी भक्ति उत्पन्न हुई। ब्राह्मण

ने सोचा कि इनसे किसी मनुष्य ने कभी वर न माँगा होगा। ये देवलोक के पास रहते हैं और इनका आकार भी भारी है। अतएव ये शाघ्र ही मुझे धन दे सकते हैं। यह निश्चय करके ब्राह्मण ने दिव्य गन्ध, धूप आदि पूजा की सामग्रियों से कुण्डधार की पूजा आरम्भ की।

१० ब्राह्मण की भक्ति देख कुण्डधार प्रसन्न होकर बोला—हे ब्राह्मण! सज्जनों ने ब्रह्महत्यारे, मदिरा पीनेवाले, चोर और व्रतहीन मनुष्यों के प्रायश्चित्त का विधान किया है; किन्तु कृतघ्न व्यक्ति का किसी प्रकार प्रायश्चित्त नहीं हो सकता। आशा का पुत्र अधर्म, ईर्ष्या का पुत्र क्रोध और निर्धनता या कपट का पुत्र लोभ है; किन्तु कृतघ्नता बाँझ है। यह कहकर कुण्डधार चुप हो गया।

इसके बाद तपस्वी ब्राह्मण रात को कुशासन पर सो गया। कुण्डधार के प्रभाव से स्वप्न में ब्राह्मण ने सब प्राणियों को देखा। तेजस्वी यक्षराज मणिभद्र मनुष्यों के शुभाशुभ कर्मों के अनुसार, देवताओं की आज्ञा से, उनको धन आदि देता और अशुभ कर्मों के फल से फिर ले लेता है। वह कुण्डधार, यक्षों के सामने, देवताओं के साप पृथिवी पर पड़ा है। उसे देखकर देवताओं ने मणिभद्र से उसका हाल पूछने को कहा। यक्षराज ने वहाँ आकर पूछा—कुण्डधार, तुम क्या चाहते हो? कुण्डधार ने कहा—यक्षराज, यदि देवता मुझ पर प्रसन्न हैं तो मेरे परम

२० भक्त इस ब्राह्मण को जिस तरह कुछ सुख मिले वैसी कृपा इस पर करें। तब मणिभद्र ने देवताओं की आज्ञा पाकर मेघ से कहा—कुण्डधार! तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हारा मनोरथ पूरा होगा, उठो। तुम्हारा भक्त यह ब्राह्मण धन चाहता हो तो इसकी इच्छा पूरी कर दो। यह जितना धन माँगेगा उतना मैं, देवताओं की आज्ञा के अनुसार, इसे दूँगा। तब कुण्डधार ने मनुष्य-शरीर को अनित्य और क्षणभङ्गुर समझकर तथा ब्राह्मणों के तप करने को ही श्रेयस्कर विचारकर कहा—यक्षराज, मैं इस ब्राह्मण के लिए धन की प्रार्थना नहीं करता। देवताओं को इस पर दूसरी तरह की कृपा करनी पड़ेगी। मैं इसके लिए रत्नों से परिपूर्ण पृथिवी नहीं माँगता। मैं चाहता हूँ कि देवताओं की कृपा से यह धर्मपरायण हो जावे। इसकी बुद्धि धर्म में स्थिर हो और धर्म में ही शान्ति प्राप्त करे। तब मणिभद्र ने कहा—कुण्डधार, यह ब्राह्मण शारीरिक दुःखों से छुटकारा पाकर धर्म के फल-स्वरूप राज्य और अनेक सुख भोगेगा। देवताओं की इस बात पर कुण्डधार सहमत नहीं हुआ। वह ब्राह्मण के लिए बार-बार धर्म की ही प्रार्थना करने लगा। कुण्डधार का यह आग्रह देखकर देवताओं को बड़ा सन्तोष हुआ। इसके बाद मणिभद्र ने कहा—कुण्डधार, देवगण तुमसे और इस ब्राह्मण से बहुत सन्तुष्ट हैं। अब यह ब्राह्मण धर्मपरायण हो गया; इसकी बुद्धि हमेशा धर्म में स्थिर रहेगी। यह बात सुनकर,

३० दुर्लभ अभीष्ट वर पाकर, कुण्डधार बहुत प्रसन्न हुआ।

स्वप्न में यह घटना देखकर ब्राह्मण ने फ़िर देखा कि उसके चारों ओर कफ़न पड़ा हुआ है। यह देखने से उसके हृदय में वैराग्य उत्पन्न हुआ। वह सोचने लगा कि मैंने कुण्डधार

की आराधना की है; किन्तु वह व्यक्ति प्रत्युपकार करनेवाला नहीं है। अब दूसरे से क्या आशा की जाय? अतएव मैं धन की आशा छोड़कर धर्म करने के लिए वन को जाता हूँ।

देवताओं की कृपा से ब्राह्मण को वैराग्य उत्पन्न हो गया। वह वन में जाकर घोर तपस्या और देवताओं की पूजा करता हुआ, अतिथियों को भोजन देकर, फल-मूल खाने लगा। उसकी बुद्धि क्रमशः धर्म में दृढ़ होने लगी। कुछ दिनों बाद फल-मूल का त्याग करके वह केवल पत्ते खाकर रहने लगा। उसके बाद पत्तों को भी छोड़कर केवल पानी पीकर और फिर उसे भी छोड़कर वायु का आहार करके बहुत समय तक तपस्या करता रहा। किन्तु इस प्रकार भोजन छोड़ देने पर भी उसका बल

नहीं घटा। उसको देखकर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। ऐसी कठिन तपस्या करने पर बहुत दिनों बाद ब्राह्मण को दिव्य ज्ञान हो गया। तब उसने सोचा कि यदि मैं प्रसन्न होकर किसी को धन दूँ तो वह निस्सन्देह धनी हो जायगा। मैं अब तप के प्रभाव से सिद्ध हो गया हूँ, इसलिए जो कुछ कह दूँगा उसके विरुद्ध न होगा। यह सोचकर प्रसन्नता से वह फिर तपस्या करने लगा। कुछ दिनों बाद पहले से भी बढ़कर सिद्धि मिलने पर वह सोचने लगा कि यदि अब मैं प्रसन्न होकर किसी को राज्य दूँ तो वह अवश्य राजा हो जायगा। मेरा वचन निष्फल न होगा। ४०

उसी समय ब्राह्मण के तपोबल से और उसके साथ मित्रता होने के कारण कुण्डधार वहाँ आया। उसको देखकर ब्राह्मण ने विस्मित हो उसका यथोचित सत्कार किया। तब कुण्डधार ने ब्राह्मण से कहा—हे तपोधन, तपस्या के प्रभाव से आपको दिव्य दृष्टि प्राप्त हुई है। उससे आप राजाओं और अन्य मनुष्यों की गति देख सकते हैं। यह सुनकर ब्राह्मण ने दिव्य दृष्टि के द्वारा दूर से ही राजाओं को नरक में पड़ा देखा। कुण्डधार ने कहा—ब्राह्मण, भक्तिपूर्वक मेरी पूजा करके यदि आप दुःख भोगते रहते तो मुझसे आपको क्या लाभ होता? जब कि मनुष्यों के लिए स्वर्ग-प्राप्ति में काम-क्रोध आदि बाधक हैं तब क्या मनुष्यों को इच्छाओं के वश में रहना चाहिए?

कुण्डधार के कहने पर ब्राह्मण ने देखा कि असंख्य मनुष्य काम, क्रोध, लोभ, भय, निद्रा, तन्द्रा और आलस्य के वशीभूत हैं। तब कुण्डधार ने कहा—ब्रह्मन्, काम-क्रोध आदि में सब

मनुष्य फँसे रहते हैं। देवता लोग भी काम आदि के कारण मनुष्यों से डरते हैं और ये काम आदि, देवताओं की आज्ञा के अनुसार, मनुष्यों के सब कामों में विघ्न डालते हैं। सारांश यह कि देवताओं के अनुग्रह बिना कोई मनुष्य धार्मिक नहीं हो सकता। यह देखिए, अब आप तप के प्रभाव से मनुष्यों को राज्य और बहुत सा धन दे सकते हैं।

कुण्डधार की ये बातें सुनकर ब्राह्मण ने प्रणाम करके उससे कहा—भगवन्, आपने मुझ ५० पर बड़ी कृपा की है। मैंने आपके इस स्नेहपूर्ण स्वभाव को समझे बिना, काम और लोभ के वश होकर, जो आपके प्रति अश्रद्धा प्रकट की है उस मेरे अपराध को क्षमा कर दीजिए।

'मैंने आपका अपराध क्षमा किया' यह कहकर कुण्डधार ने ब्राह्मण को गले से लगा लिया। इसके बाद वह अन्तर्धान हो गया। कुण्डधार की कृपा से, तप के प्रभाव से सिद्ध होकर, ब्राह्मण भी अपनी इच्छा के अनुसार सब लोकों में विचरने लगा। मतलब यह कि धर्म का पालन और योगाभ्यास करने से आकाश-मार्ग से चलने की सामर्थ्य, इच्छाओं की सिद्धि और श्रेष्ठ गति मिलती है। धार्मिक पुरुषों का सम्मान देवता, ब्राह्मण, यक्ष, मनुष्य और चारण आदि करते हैं; धनवान् कामी का कभी आदर नहीं करते। हे धर्मराज, तुमको धर्मात्मा समझकर देवता लोग तुम पर बहुत ५६ प्रसन्न हैं। धन से थोड़ा सा सुख मिल सकता है; अनन्त सुख तो धर्म के प्रभाव से मिलता है।

दो सौ बहत्तर अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से अहिंसात्मक यज्ञ का माहात्म्य कहना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, यज्ञ तो अनेक प्रकार के हैं; आप उस यज्ञ का वर्णन कीजिए जिसके द्वारा शुद्ध धर्म प्राप्त होता हो। स्वर्ग आदि फल देनेवाले यज्ञों का ब्योरा मैं नहीं सुनना चाहता।

भीष्म ने कहा—बेटा! तपस्वियों में श्रेष्ठ नारदजी ने यज्ञ के विषय में, उञ्छवृत्ति करनेवाले सत्य नाम के ब्राह्मण का, जो इतिहास कहा था वह मैं तुम्हें सुनाता हूँ। धर्मप्रधान विदर्भ देश में सत्य नाम का एक ब्राह्मण, उञ्छवृत्ति करता हुआ, यज्ञ करता था। वह साँवाँ, सूर्यपर्णी, सुवर्चला और अन्यान्य तीखे नीरस शाक खाता था; किन्तु उसकी तपस्या के प्रभाव से ये सब शाक बड़े स्वादिष्ठ हो जाते थे। वह वानप्रस्थ आश्रमी था और दरिद्रता के कारण पशु आदि तो पाल नहीं सकता था, इसलिए फल-मूल को ही पशु-रूप समझकर उनसे हिंसाप्रधान यज्ञ करता था। पुष्करधारिणी नाम की शुद्ध स्वभाववाली उसकी पत्नी थी। वह इतने व्रत उपवास आदि किया करती थी कि उसकी देह दुबली हो गई थी। वह कपड़ों की जगह मोर की पूँछ से गिरे हुए पंख पहनती थी। यद्यपि वह स्त्री अपने पति की मानसिक वृत्ति को हिंसामय देखकर उनके अनुकूल काम करना पसन्द नहीं करती थी तो भी उसे, शाप के डर से, स्वामी की आज्ञा मानकर हिंसामय यज्ञ करना पड़ता था।

पुष्करधारिणी नाम की शुद्ध स्वभाववाली उसकी पत्नी थी। वह इतने व्रत उपवास आदि किया करती थी कि उसकी देह दुबली हो गई थी।—पृ० ३७५०

एक बार वह ब्राह्मण यज्ञ कर रहा था, इतने में उसका हितैषी धर्म मृग का रूप धारण करके उसके पास आकर बोला—सत्य, तुम अङ्गहीन यज्ञ करके बड़ा दुष्कर्म कर रहे हो। तुम मुझे अग्नि में होम दो और अनिन्दित होकर स्वर्ग को जाओ। मृग के यों कहते ही, रूप धारण करके, सावित्री देवी वहाँ आ गई और सत्य से कहने लगीं—ब्राह्मण! तुम इस पशु का, मेरे प्रीत्यर्थ, अग्नि में होम कर दो; किन्तु ब्राह्मण इसके लिए तैयार न हुआ। उसने कहा कि हाय, यज्ञ में कैसा अकार्य होता है। अब देवी सावित्री, पाताल लोक देखने के लिए, यज्ञ की आग में प्रवेश कर गई। तब वह मृग, अपना वध करने के लिए, सत्य से बार-बार प्रार्थना करने लगा। किन्तु सत्य ने उसकी बात

१०

नहीं मानी और उसे गले लगाकर कहा—तुम शीघ्र यहाँ से चले जाओ। तब वह मृग आठ पैर चलकर फिर लौट आया और बोला—ब्रह्मन्, आप मेरा वध कीजिए। यज्ञ में वध होने से मुझे सद्गति मिलेगी। आप मेरी दी हुई दिव्य दृष्टि के द्वारा आकाश में स्थित गन्धर्वों के विचित्र विमानों और अप्सराओं को देखिए। मृग के यों कहने पर ब्राह्मण ने अप्सराओं और विमानों को देखकर स्वर्ग का भोग करने की इच्छा से मृग का वध करना उचित समझा। तब मृग-रूपी धर्म ने ब्राह्मण की उस कुप्रवृत्ति को बदलने के लिए कहा—ब्रह्मन्, हिंसा करके यज्ञ करना श्रेयस्कर नहीं है। यह सुनकर ब्राह्मण की हिंसा-प्रवृत्ति जाती रही; किन्तु उसने मन में मृग का वध करने का निश्चय किया था, इसलिए उसकी बहुत बड़ी तपस्या नष्ट हो गई। अतएव यज्ञ में पशु-हिंसा करना उचित नहीं है।

इसके बाद [मृग का रूप त्यागकर] भगवान् धर्म ने स्वयं उस ब्राह्मण को यज्ञ कराया। ब्राह्मण ने भी तप के प्रभाव से, पत्नी के साथ, अहिंसा धर्म का अवलम्बन किया। हे धर्मराज! मैं तुमसे सत्य कहता हूँ, अहिंसा अति श्रेष्ठ धर्म है; हिंसा से बढ़कर कोई पाप नहीं है। सत्यवादी पुरुषों ने अहिंसा धर्म को ही सादर ग्रहण किया है। २०

दो सौ तिहत्तर अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर को धर्म की श्रेष्ठता बतलाना

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, किन कर्मों के करने से मनुष्य को पाप लगता है और किन कर्मों के द्वारा धर्म, वैराग्य और मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है ?

भीष्म ने कहा—धर्मराज, ऐसा कोई धर्म नहीं है जिसे तुम नहीं जानते। तुम केवल आत्मज्ञान दृढ़ करने के लिए मुझसे पूछते हो। जो हो, मैं मोक्ष, वैराग्य, पाप और धर्म की प्राप्ति का वर्णन विस्तार से करता हूँ। मनुष्य रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द इन पाँच भोग्य विषयों में से किसी एक का स्वाद लेकर राग-द्वेष के वश में हो जाता है। तब वह अभीष्ट वस्तुओं की प्राप्ति और जिससे द्वेष रखता है उसका अनिष्ट करने का उद्योग करता है। इस कारण वह भयङ्कर काम कर बैठता है और हमेशा रूप-रस आदि का भोग करने के लिए यत्न करता रहता है। इसके बाद उसके हृदय में लोभ, मोह, राग और द्वेष उत्पन्न होते हैं। लोभ और मोह के वशीभूत होकर तथा राग और द्वेष से घिरी रहकर मनुष्य की धर्म-बुद्धि नष्ट हो जाती है। तब वह कपट-धर्म और छल-पूर्वक धन का संग्रह करने लगता है। दूसरों को धोखा देने से जब धन पैदा होने लगता है तब इसी तरह धन पैदा करने का उसे चस्का लग जाता है। उसके मित्र और पण्डित लोग यदि उसे ऐसा करने से रोकते हैं तो वह बहाने बनाने लगता है। वह पापी मनुष्य राग और मोह से उत्पन्न पाप-कर्म करता है। पाप में ही उसका मन लगा रहता है और वह पाप की बातें करता है। उसके १० इन अधर्मों को सज्जन देखा करते हैं। पापी लोग अपने ही जैसे मनुष्यों के साथ मित्रता करते हैं। न तो उन्हें इस लोक में ही सुख मिलता है और न परलोक में ही।

अब धर्मात्माओं के काम बतलाता हूँ। धर्मात्मा मनुष्य दूसरों की भलाई मनाते हुए अपनी भलाई चाहते हैं। परोपकार के द्वारा परम गति मिलती है। जो मनुष्य सुख-दुःख का विचार कर सकता है और ऊपर बतलाये हुए सब दोषों को ज्ञान के प्रभाव से देखता हुआ सत्सङ्गति करता है उसकी धर्म-बुद्धि बढ़ती है और वह धर्म का पालन करता हुआ अपना जीवन व्यतीत करता है। धार्मिक मनुष्य धर्म से ही धन का उपार्जन करता है; वही काम करता है जिसके करने से गुणों की प्राप्ति होती है। वह अपने ही सदृश मनुष्यों के साथ मित्रता करता है। सुशील मित्र और धर्म से उपार्जित धन के द्वारा वह इस लोक और परलोक में सुख भोगता है। धर्मात्मा मनुष्य धर्म के प्रभाव से रूप, रस, गन्ध, शब्द और स्पर्श, सब विषयों का सुख पा सकता है।

धर्मात्मा मनुष्य धर्म का फल पाकर सन्तुष्ट नहीं हो जाता। वह ज्ञान के प्रभाव से वैराग्य का अवलम्बन करता है। रूप, रस, गन्ध आदि भोग्य विषयों से मन को हटा लेने पर वह सब कर्मों का त्याग कर देता है और सब लोकों को नश्वर समझकर निष्काम कर्म

करता हुआ मोक्षपद पाने का यत्न करने लगता है। जो मनुष्य पाप-कर्मों को त्यागकर धीरे-धीरे वैराग्य की ओर बढ़ने लगता है वही धर्मात्मा है और वही मोक्षपद पा सकता है। २१

मैंने पाप, पुण्य, मोक्ष और वैराग्य का वर्णन कर दिया। अतएव तुम सब अवस्थाओं में धर्म का पालन करो। धार्मिक मनुष्य परम पद प्राप्त कर सकता है। २४

दो सौ चौहत्तर अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर को मोक्ष का उपाय बतलाना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, आपने कहा है कि उपाय करने से ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। अतएव मोक्ष प्राप्त करने का उपाय विशेष रूप से मुझे बतलाइए।

भीष्म ने कहा—धर्मराज, तुम हमेशा उपाय के द्वारा धर्म आदि को प्राप्त करने की इच्छा करते हो सो तुम्हारा यह प्रश्न ठीक ही है। जैसे घड़ा बनाते समय उसके बनाने की इच्छा ही उसका कारण होती है और घड़ा तैयार हो जाने पर वह इच्छा-बुद्धि जाती रहती है वैसे ही धर्म करते समय मनुष्य की बुद्धि उस धर्म का कारण होती है और योग आदि मोक्ष-धर्म की सिद्धि हो जाने पर उस इच्छा का लोप हो जाता है। जैसे पूर्वीय समुद्र के मार्ग पर जानेवाला मनुष्य पश्चिम के समुद्र पर नहीं पहुँच सकता वैसे ही अन्य धर्म का पालन करनेवाला मनुष्य मोक्ष-धर्म को नहीं पा सकता। इस धर्म का तो एक ही मार्ग है। उस मार्ग को मैं विस्तार से बतलाता हूँ। मनुष्य क्षमा के द्वारा क्रोध को, इच्छा का त्याग करने से विषय-वासना को, सत्त्व-गुण का अवलम्बन करने से निद्रा को, सावधान रहने से बदनामी को, आत्मा का मनन करने से श्वास को, धैर्य से काम और द्वेष को, तत्त्वज्ञान के प्रभाव से भ्रम प्रमाद और संशय को, ज्ञान का अभ्यास करने से अनुसन्धान और न करने योग्य कामों की विचारशक्ति को अधीन कर लेता है; वह परिमित हितकर और सुपक्व भोजन करने से रोग और शारीरिक क्लेश को, सन्तुष्ट रहने से लोभ और मोह को, दया के प्रभाव से अधर्म को, हमेशा पालन करते रहने से धर्म को, भविष्य का विचार करने से आशा को, लोभ का त्याग करने से धन को, सब वस्तुओं को अनित्य समझ जाने पर स्नेह को, योग के प्रभाव से क्षुधा को, दीनता से आत्माभिमान को, उद्योग से आलस्य को, वेद पर विश्वास करने से सन्देह को, मौन रहने से वाचालता को और षट् रिपुओं को वश में करके संसार के भय को जीत लेता है। पहले बुद्धि के बल से मन और वाणी को संयत करके ज्ञानचक्षु के द्वारा बुद्धि को अपने अधीन करे। उसके बाद आत्मज्ञान के प्रभाव से उस ज्ञान को वश में करके जीवात्मा और परमात्मा के भेद को दूर कर दे। शान्ति और निष्काम धर्म द्वारा परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करना ही सर्वथा उचित है। पण्डितों ने काम, क्रोध, लोभ, भय और निद्रा, इन पाँच दोषों को योग के साधन में विघ्न रूप बतलाया ११

है। अतएव इन सब का त्याग करके योग की सिद्धि के उपायस्वरूप दान, ध्यान, अध्ययन, सत्य, लज्जा, सरलता, क्षमा, चित्तशुद्धि, आहारशुद्धि और इन्द्रियसंयम करना चाहिए। इन कामों के करने से तेज की वृद्धि, इच्छाओं की सिद्धि और अनेक प्रकार के विज्ञान की उत्पत्ति होती है तथा सब पाप नष्ट हो जाते हैं। निष्पाप, तेजस्वी, मितभोजी, जितेन्द्रिय मनुष्य काम-क्रोध को अपने अधीन करके ब्रह्मपद प्राप्त करने की इच्छा करें। शरीर, मन और वाणी का संयम करना तथा मूर्खता, विषयों की इच्छा, काम, क्रोध, दीनता, अहङ्कार, घबराहट और घर, १९ इन सबका त्याग करना, ये मोक्ष प्राप्त करने के उपाय हैं।

दो सौ पचहत्तर अध्याय

पृथिवी आदि महाभूतों की उत्पत्ति और विनाश के विषय में नारद और देवल का संवाद

भीष्म ने कहा कि युधिष्ठिर, तुम्हें नारद और देवल का संवाद सुनाता हूँ। एक बार देवर्षि नारद ने बुद्धिमान् वृद्ध असित देवल को बैठे देखकर उनसे पूछा—ब्रह्मन्, यह स्थावर-जङ्गमरूपी संसार किससे उत्पन्न हुआ है और प्रलय के समय किसमें लीन होगा?

देवल ने कहा—नारद, सृष्टि के समय परमात्मा ने जिन वस्तुओं से प्राणियों की उत्पत्ति की है उन वस्तुओं को विज्ञानवान् महात्मा लोग पञ्चमहाभूत कहते हैं। परमात्मा से प्रेरित होकर जीवात्मा इन महाभूतों के द्वारा अन्यान्य प्राणियों को सृष्टि करता है। जो लोग परमात्मा, जीवात्मा और पञ्चमहाभूतों के सिवा अन्य किसी चेतन या अचेतन को सृष्टि का कारण बतलाते हैं उनकी बातें निर्मूल हैं। ये पञ्चभूत तेजस्वरूप, नित्य और निश्चल हैं। जीव उनका छठा अङ्ग है। पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश, यही पाँच महाभूत हैं। इन पञ्चभूतों के अतिरिक्त संसार में और कोई पदार्थ नहीं है। पञ्चमहाभूतों से ही शरीर बनता है। ये पञ्चभूत और जीव जिस शरीर के कारण हैं उसके नष्ट होने में कोई सन्देह नहीं। पञ्चभूत, जीव, पूर्व संस्कार और अज्ञान, यही आठ प्राणियों के जन्म-मरण के कारण हैं। प्राणी इन आठों के द्वारा उत्पन्न होता और इन्हीं में लीन हो जाता है। मरने पर प्राणियों के शरीर पाँच हिस्सों में १० बँट जाते हैं। उनकी उत्पत्ति के समय पृथिवी से शरीर, आकाश से कान, तेज से आँखें, वायु से प्राण और जल से रक्त उत्पन्न होता है। आँख, कान, नाक, त्वचा और जिह्वा, ये पाँच इन्द्रियाँ हैं। बाह्य पदार्थों को देखना, सुनना, सूँघना, स्पर्श का ज्ञान करना और स्वाद लेना, ये पाँच उन इन्द्रियों के काम हैं। ये इन्द्रियाँ रूप, रस आदि अपने विषयों का अनुभव स्वयं नहीं कर सकतीं; इनका अनुभव इन्द्रियों के द्वारा आत्मा ही करता है। इन्द्रियों से चित्त, चित्त से मन, मन से बुद्धि और बुद्धि से आत्मा श्रेष्ठ है। मनुष्य पहले, इन्द्रियों के द्वारा, रूप आदि विषयों का अनुभव करता है, उसके बाद मन के द्वारा उनका विचार और फिर बुद्धि के द्वारा उनका

निश्चय करता है। पाँच इन्द्रियाँ, मन, चित्त और बुद्धि, ये आठ ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। हाथ, पैर, गुदा, लिङ्ग और मुँह, ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। बोलने और खाने के लिए मुँह, चलने-फिरने के लिए पैर, काम करने के लिए हाथ, मल त्यागने के लिए गुदा और वीर्य निकालने के लिए लिङ्ग इन्द्रिय है। २१ इन पाँचों के सिवा एक और कर्मेन्द्रिय है। उसका नाम प्राण है। वह छठी इन्द्रिय है।

थक जाने के कारण जब इन्द्रियाँ अपना काम रोक देती हैं तब मनुष्य सो जाता है। इन्द्रियों के विश्राम करने पर भी मन काम करता रहता है। वह विषयों का अनुभव करता है, इसी से मनुष्यों को स्वप्न देख पड़ते हैं। मन के भाव तीन प्रकार के हैं—सात्त्विक, राजस और तामस। सात्त्विक सबसे श्रेष्ठ है। इन तीनों भावों के प्रभाव से जाग्रत् अवस्था में की हुई इच्छाएँ निद्रा-अवस्था में स्वप्न-रूप से देख पड़ती हैं। सात्त्विक पुरुष के हृदय में जाग्रत् अवस्था में सुख, ऐश्वर्य, ज्ञान और वैराग्य, ये चारों विराजमान रहते हैं, इसलिए वह स्वप्न में भी इन्हीं का अनुभव करता है। सात्त्विक पुरुषों के समान ही राजस और तामस पुरुषों के हृदय में उनके मनोभाव के अनुरूप जो-जो भाव उत्पन्न होते हैं उन्हीं का अनुभव वे स्वप्न में करते हैं। मनुष्य के शरीर में पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और सात्त्विक आदि तीन भाव, ये सत्रह गुण रहते हैं। अठारहवाँ जीवात्मा है जो अविनाशी है। ये जो सत्रह गुण शरीर में रहते हैं इन सबसे अदृश्य रहकर जीवात्मा इन गुणों में और शरीर में निवास करता है। जीवात्मा समेत इन अठारह गुणों, देह और जठराग्नि, कुल बीस पदार्थों के एकत्र होने से पाञ्चभौतिक समूह तैयार होता है। जीव प्राणवायु को लेकर शरीर की रचा करता ३० है और वही शरीर के नष्ट होने का कारण है। जीव पाञ्चभौतिक शरीर का आश्रय करता है और प्रारब्ध का नाश होने पर शरीर को त्याग देता है। उसके बाद इस शरीर के द्वारा किये हुए पुण्य-पाप को लेकर फिर दूसरे शरीर में जाता है। जैसे मनुष्य पुराना घर छोड़कर नये घर में चला जाता है वैसे ही जीव अपने कर्मों के फल से उत्पन्न एक शरीर का त्याग करके दूसरा शरीर धारण कर लेता है। जो मनुष्य इन बातों को भली भाँति समझ जाता है वह पुत्र-स्त्री आदि कुटुम्बियों के मरने पर खेद नहीं करता। अविवेकी मनुष्य ही उनके लिए रोते और शोक करते हैं। संसार में कोई किसी का नहीं है। केवल जीव मनुष्यों को सुख-दुःख देता हुआ उनके शरीर में निवास करता है। वह न तो पैदा होता और न मरता है। वह ज्ञान उत्पन्न होने पर, कर्मों का त्याग करके, इस पाञ्चभौतिक शरीर को छोड़कर मोक्षपद प्राप्त करता है। पुण्य-पाप का नाश करने के लिए सांख्यशास्त्र का ज्ञान होना आवश्यक है। पुण्य-पाप का नाश होते ही जीव ब्रह्मरूप होकर परमगति प्राप्त करता है। ३८

दो सौ छिहत्तर अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर को जनक और माण्डव्य के संवाद में तृष्णा का त्याग बतलाना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह! जब हम लोगों ने राज्य के लोभ से पिता, भाई, पौत्र, सजातीय और मित्रों का नाश किया है तब हमारे समान क्रूर और पापी कोई न होगा। हम लोगों ने तृष्णा से ही यह घोर पाप किया है। अब वह उपाय बतलाइए जिससे हम लोगों की यह तृष्णा दूर हो जाय।

भीष्म ने कहा कि बेटा, मैं इस विषय में एक प्राचीन कथा कहता हूँ। यह कथा राजा जनक ने माण्डव्य से कही थी। विदेहराज ने माण्डव्य से कहा—महात्मन्, यद्यपि किसी वस्तु पर मुझे ममता नहीं है तो भी मैं बड़े सुख से रहता हूँ। विदेह-नगरी के भस्म हो जाने पर भी मेरा कुछ नहीं जलेगा। ज्ञानी महात्मा लोग ब्रह्मलोक को भी दुःख का कारण समझते हैं; किन्तु अविवेकी मनुष्य असार विषयों में ही हमेशा मोहित रहते हैं। तृष्णा का नाश होने पर जो शुद्ध सुख मिलता है उसके सामने संसार के और स्वर्ग के सब सुख सोलह आने में एक आने भर भी नहीं हैं। जैसे बैल के बढ़ने के साथ-साथ उसके सींग भी बढ़ते रहते हैं वैसे ही ऐश्वर्य की जितनी वृद्धि होती जाती है उतनी ही अधिक तृष्णा भी बढ़ती जाती है। मनुष्य को यदि रत्ती भर वस्तु पर भी ममता होती है तो उसका नाश होने से उसको अवश्य शोक होता है। इच्छाओं का दास होना उचित नहीं। इच्छाओं में आसक्त रहने से निस्सन्देह दुःख भोगना पड़ेगा। अतएव धन प्राप्त करके, इच्छाओं को त्यागकर, धर्म के कामों में उसे ख़र्च कर देना चाहिए। ज्ञानवान् मनुष्य सब प्राणियों को अपने समान समझता है और शुद्ध-
१० चित्त तथा कृतकृत्य होकर सब पुण्य-पापों का त्याग कर देता है। सत्य, मिथ्या, शोक, हर्ष, प्रिय, अप्रिय, भय और अभय, सब कुछ त्याग देने से ही मनुष्य शान्तचित्त और निरामय हो जाता है। अविवेकी लोग जिसका त्याग करना दुःसाध्य समझते हैं, वृद्धावस्था में भी जो नहीं बुढ़ाती और महात्मा लोग जिसे प्राण का अन्त कर देनेवाला रोग कहते हैं उस तृष्णा का त्याग करने से ही परम सुख मिल सकता है। धर्मात्मा लोग शुद्ध आचरण करके इस लोक और परलोक में सुख का अनुभव करते और यशस्वी होते हैं। विदेहराज की यह कथा सुनकर
१४ महर्षि माण्डव्य बहुत प्रसन्न हुए और उनको धन्यवाद देकर मुक्ति प्राप्त करने का यत्न करने लगे।

दो सौ सतहत्तर अध्याय

आयु शीघ्र नष्ट हो जाती है, इसलिए करने योग्य काम को जल्दी करना चाहिए,
इस विषय में पिता और पुत्र का संवाद

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह! सब प्राणियों को भय देनेवाला यह काल धीरे-धीरे बीता जा रहा है, अतएव मुझे उपदेश दीजिए कि किस काम के करने से कल्याण होगा।

भीष्म कहते हैं—धर्मराज, मैं इस विषय में एक इतिहास कहता हूँ जिसमें पिता और पुत्र का संवाद है। किसी विद्वान् ब्राह्मण के मेधावी नाम का एक बुद्धिमान् पुत्र था। मोक्ष-धर्म के जानकार मेधावी ने एक बार स्वाध्याय-निरत अपने पिता को मोक्ष-धर्म का अनभिज्ञ समझकर उनसे पूछा—पिताजी! मनुष्यों की आयु बहुत शीघ्र बीत जाती है, यह जानता हुआ विद्वान् मनुष्य किस प्रकार के आचरण करे? मैं भी उसी के अनुसार धर्म का पालन करूँ।

पिता ने कहा—बेटा! मनुष्य पहले ब्रह्मचर्य आश्रम में रहकर वेद का अध्ययन करे, उसके बाद गृहस्थ आश्रम में जाकर पितरों को तृप्त करने के लिए पुत्र उत्पन्न करे और अग्नि का स्थापन करके नियमानुसार यज्ञ करे। अन्त को वन में जाकर मुनियों के धर्म का अवलम्बन करे।

पुत्र ने कहा—पिताजी, जब मनुष्य इस प्रकार नष्ट और आक्रान्त हो रहे हैं तथा अविनाशिनी सदा आती-जाती रहती है तब आप निश्चिन्त की तरह यह क्या कह रहे हैं?

पिता ने पूछा—बेटा, मनुष्यों को कौन नष्ट और कौन उन पर आक्रमण कर रहा है? और जो अविनाशिनी लगातार आती-जाती है, वह कौन है?

पुत्र ने कहा—पिताजी! मृत्यु मनुष्यों का विनाश और बुढ़ापा उन पर आक्रमण करता है तथा दिन-रात अविनाशिनी है, वह हमेशा आती-जाती रहती है। आप इनकी ओर ध्यान क्यों नहीं देते? जब मैं निश्चित रूप से जानता हूँ कि मौत किसी को नहीं छोड़ेगी तब अज्ञान में पड़ा रहकर काल की प्रतीक्षा क्यों करूँ? जब मनुष्यों की आयु दिन प्रतिदिन घटती जा रही है तब, थोड़े जल में रहनेवाली मछली के समान, किसी को सुख की आशा नहीं है। जैसे मनुष्य वन में बेधड़क फूल तोड़ रहा हो और उसी बीच कोई हिंसक जीव उस पर आक्रमण कर दे वैसे ही विषय-भोग में लगे हुए मनुष्य को, उसकी तृष्णा पूरी होने के पहले ही, सहसा मौत आकर दबोच लेती है। जिस काम को कल करना हो उसे आज करे और जिसे दूसरे पहर करना है उसे इसी पहर कर डाले; क्योंकि काम पूरा हुआ या नहीं, इसकी प्रतीक्षा मृत्यु नहीं करती। कोई नहीं जानता कि किस समय किसकी मौत होगी। काम पूरा होने के पहले ही मौत आ जाती है, अतएव जो काम करना हो उसे आज ही कर डाले। बुढ़ापे की प्रतीक्षा न करके तरुण अवस्था में ही धर्म का आचरण करे। धर्म करने से दोनों लोकों में सुख मिलता है। मनुष्य मोह के वश होकर, उचित-अनुचित सब तरह के काम करके, स्त्री और पुत्रों को सन्तुष्ट रखता है; किन्तु जैसे नदी सोये हुए बाघ को अपने वेग में बहा ले जाती है और जैसे भेड़िया भेड़ को ले भागता है वैसे ही मृत्यु, स्त्री-पुत्र आदि से सम्पन्न, मनुष्य को उठा ले जाती है। 'यह काम हो गया, अब यह करना है और यह काम अधूरा पड़ा है' इस प्रकार की चिन्ता में पड़े हुए मनुष्य पर सहसा मौत का आक्रमण हो जाता है। काल किसी काम के पूरे होने और उसका फल मिलने की प्रतीक्षा नहीं करता। खेत, दूकान

और घर के कामों में लगे हुए, दुर्बल, बलवान्, बुद्धिमान्, शूर-वीर, मूर्ख और पण्डित, किसी को काल नहीं छोड़ता। जब मनुष्य मौत, बुढ़ापा, रोग और अनेक कारणों से उत्पन्न दुःखों को हटाने में असमर्थ है तब आप क्यों निश्चिन्त बने रहते हैं? मनुष्य का जन्म होते ही बुढ़ापा और मौत उसके साथ हो लेती है। स्थावर-जङ्गम सभी प्राणी इन दोनों के वशीभूत हैं। मृत्यु की सेना को सत्य-बल के सिवा और कोई नहीं हटा सकता। सत्य ही अमृत का आश्रय है, और बस्ती में रहने की इच्छा ही मौत का निवासस्थान है। वेद का वचन है कि वन देवताओं के रहने का स्थान है और गाँव (बस्ती) में रहने की इच्छा ही बन्धन की रस्सी है। पुण्यवान् मनुष्य इस रस्सी को काटकर देवताओं के निवासस्थान वन का आश्रय करते हैं; किन्तु पापी मनुष्य उसे नहीं काट सकता। जो मन, वाणी और शरीर से किसी का बुरा नहीं चेतता और जो किसी की जीविका नहीं हरता उसे किसी का डर नहीं रहता। सत्य का पालन करके, शम-दम आदि गुणों से युक्त होकर, सत्य के बल से मौत को जीतना चाहिए। मृत्यु और अमृत दोनों इसी शरीर में स्थित हैं। मोह के वश होने से मृत्यु होती है और सत्य-मार्ग का अवलम्बन करने से अमृत की प्राप्ति होती है। अतएव मैं हिंसा और काम-क्रोध को ३० त्यागकर, सत्य का अवलम्बन करके, अमर के समान मौत का उपहास करूँगा और सूर्य के उत्तरायण होने पर शान्ति-मार्ग का अवलम्बन, वेद का अध्ययन तथा कर्म मन और वाणी का संयम करूँगा। मेरे समान मनुष्य को हिंसामय पशुयज्ञ अथवा पिशाच के समान विनाशक क्षत्रिय-यज्ञ की दीक्षा लेनी उचित नहीं। मैं अपने आत्मा से स्वयं उत्पन्न हुआ हूँ; मैं आत्म-निष्ठ होकर, पुत्र उत्पन्न करने की इच्छा छोड़कर, परमात्मा में जीवात्मा की आहुति दूँगा। मेरा कल्याण पुत्र से न होगा। जिसकी वाणी और मन संयत है और तपस्या, दान तथा योग ही जिसका परमधर्म है वह इनके प्रभाव से अपना कल्याण कर सकता है। ज्ञान के समान नेत्र, राग के समान दुःख और त्याग के समान सुख नहीं है। एकाग्रता, सब प्राणियों के साथ सम भाव, सत्य, अपने धर्म में स्थिति, दण्ड का और कर्मों का परित्याग तथा सरलता ये काम ही ब्राह्मणों के परम धन हैं। पिताजी! जब मरना निश्चित है तब आप क्यों धन, बन्धु-बान्धव और स्त्री-पुत्र की इच्छा करते हैं? अब इस शरीर में स्थित आत्मा का ध्यान कीजिए। आपके पिता और पितामह आदि पूर्व-पुरुष कहाँ गये?

हे धर्मराज, ज्ञानवान् पुत्र के यों कहने पर पिता ने उसकी बातों पर विश्वास करके सत्य-धर्म का अनुष्ठान किया था। तुम भी उसी तरह सत्यधर्म का पालन करते हुए परम सुख ३९ से जीवन व्यतीत करो।

दो सौ अठहत्तर अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर को मोक्ष के साधन बतलाना

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह ! मनुष्य किस प्रकार के चरित्र, आचार, ज्ञान और आश्रय से युक्त होने पर सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मपद प्राप्त कर सकता है ?

भीष्म ने कहा—बेटा ! ब्रह्मपद को वही पा सकता है जो कि मोक्ष-धर्म में लगा रहता, परिमित भोजन करता और जितेन्द्रिय होता है। अतएव किसी वस्तु के मिलने और न मिलने को समान समझे और उपस्थित सामग्री की परवा न करके गृहस्थाश्रम को त्यागकर संन्यास-धर्म का अवलम्बन कर ले। क्या सामने और क्या पीठ पीछे, मन वाणी और सङ्केत के द्वारा किसी की निन्दा न करे। हिंसा का त्याग करके सबके साथ मित्रता रक्खे। इस नश्वर शरीर को धारण करके किसी मनुष्य के साथ शत्रुता करना उचित नहीं। यदि कोई निन्दा करे तो उसे सह ले। दूसरों से अपने को श्रेष्ठ समझकर दर्प करना बड़ा निन्दित काम है। यदि कोई निन्दा करके क्रोध दिलाना चाहे तो उससे प्रिय वचन बोले और यदि कोई प्रहार करे तो उसके हित की बात कहे। किसी मनुष्य के अनुकूल या प्रतिकूल होना संन्यासियों का धर्म नहीं है। यदि वे बहुत से घरों में भटकने पर भी भीख न पावें तो भी किसी गृहस्थ के बुलाने पर भोजन के लिए उसके घर न जायँ। मूर्ख मनुष्य द्वारा अपमानित होने पर भी उसे कठोर वचन न कहे। हमेशा अपने धर्म का पालन करना, दयावान् होना, किसी के अपकार करने पर बदले में उसका अपकार न करना तथा निर्भय और अहङ्कार-हीन रहना चाहिए। जब गृहस्थों के घर में धुआँ न देख पड़े, जब उनके घरों में मूसल की आवाज़ न हो रही हो और जब बर्तनों के धरने-उठाने का शब्द न सुनाई दे तब उनके घरों में भिक्षा के लिए संन्यासियों को जाना चाहिए। कोई अधिक परिमाण में भोजन की सामग्री दे तो अपने शरीर की रक्षा भर के लिए ही ले ले। वस्त्र आदि का सञ्चय करना तो दूर रहा, खाने की वस्तुओं का भी संग्रह करना उचित नहीं। मिलने पर प्रसन्न और न मिलने पर असन्तुष्ट न होना चाहिए। चन्दन-माला आदि सर्वसाधारण के योग्य वस्तुओं की भी वे इच्छा न करें। १० निमन्त्रित होकर भोजन करना उन्हें उचित नहीं। उन्हें भोजन की प्रशंसा या निन्दा न करनी चाहिए। वे निर्जन स्थान में बैठें और सोवें। उन्हें सूने घर, पेड़ के नीचे, वन, पहाड़ की कन्दरा या अन्य किसी जनशून्य स्थान में रहना चाहिए। वे मान और अपमान को समान समझें और निश्चल रहें। कर्म करके पुण्य-पाप का उपार्जन न करें। सब कुछ त्यागकर हमेशा सन्तुष्ट, प्रसन्नमुख, निर्भय, जप-परायण और मौन रहें। प्राणियों का जन्म-मरण बार-बार होता है और सबके शरीर और इन्द्रियाँ नश्वर हैं, इन बातों को ध्यान में रखकर किसी विषय का लोभ न करना, सब प्राणियों को समान दृष्टि से देखना, अपने आत्मा में ही प्रसन्न रहना,

थोड़ा भोजन करना, शान्तचित्त और जितेन्द्रिय होकर अन्न आदि या फल-मूल खाकर निर्वाह करना उनका कर्तव्य है। वे वाणी, मन, क्रोध, उदर और इन्द्रिय के वेग को सँभाले रहें। निन्दा और प्रशंसा को समान समझकर मध्यस्थ के सदृश रहना संन्यास आश्रम का प्रधान धर्म है। संन्यासी महात्माओं को दमगुण से युक्त, सहायहीन, गृहशून्य, शान्तचित्त और सावधान रहना चाहिए। वे एक बार से अधिक किसी स्थान पर भिक्षा के लिए न जावें। वानप्रस्थ आश्रमी या गृहस्थ से विशेष मेल-जोल न रक्खें। हर्ष में डूब न जाना और अपने आप मिली हुई अनिन्दित
२० वस्तु का भोजन करना उनका कर्तव्य है। महात्मा हारीत ने संन्यास-धर्म को ही मोक्ष प्राप्त करने का प्रधान साधन बतलाया है। ज्ञानवान् मनुष्य ही इस धर्म का आश्रय करके मोक्षपद पा सकते हैं। अविवेकी लोग यदि इस धर्म का पालन करने की चेष्टा करते हैं तो परिश्रम के सिवा उनके हाथ और कुछ नहीं लगता। सारांश यह कि जो पुरुष सब प्राणियों को अभयदान देकर, गृहस्था-
२२ श्रम का त्याग करके, संन्यास-धर्म का पालन करता है वही परम ब्रह्म को प्राप्त कर सकता है।

दो सौ उन्नासी अध्याय

भीष्म का धर्म के विषय में शुक्राचार्य और वृत्रासुर का संवाद कहना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, मनुष्य हम लोगों को धन्य कहते हैं; किन्तु हम लोगों से बढ़कर दुखी कोई नहीं है। देखिए, संसार में प्रतिष्ठित और धर्म आदि देवताओं के पुत्र होने पर भी हम लोगों को घोर कष्ट सहना पड़ा है। अतएव जान पड़ता है कि शरीर धारण करना ही दुःख का कारण है। हाय, हम लोग दुःखनाशक संन्यास-धर्म का आश्रय कब करेंगे? महर्षि लोग पाँच प्राण, मन, बुद्धि, पाँच ज्ञानेन्द्रियों, पाँच कर्मेन्द्रियों, मुक्ति के विरोधी काम-क्रोध आदि तथा शब्द आदि इन्द्रियों के विषयों और सत्त्व आदि गुणों से मुक्त होकर संसार से छुटकारा पाते हैं। फिर उन लोगों को जन्म नहीं लेना पड़ता। हाय, हम लोग राज्य को छोड़कर महर्षियों के समान संन्यास आश्रम का अवलम्बन कब करेंगे?

भीष्म ने कहा—धर्मराज, दुःख का अन्त अवश्य होता है। संसार में ऐसा कुछ भी नहीं है जिसका अन्त न होता हो। मुक्त हो जाना ही पुनर्जन्म का अन्त है। सभी विषयों की एक-एक सीमा निर्दिष्ट है। संसार के अनुराग का कारण होने से ऐश्वर्य दूषित तो अवश्य है, किन्तु उससे तुम लोगों का कुछ अपकार न होगा। तुम लोग धर्मात्मा हो, इसलिए शम-दम आदि गुणों के द्वारा मोक्ष प्राप्त कर सकोगे। मनुष्य पुण्य-पाप का कर्ता नहीं है, बल्कि पुण्य-पाप अज्ञान के द्वारा उसे घेरे रहते हैं। जैसे हवा धूल के कारण काले, पीले और लाल रङ्ग की देख पड़ती है वैसे ही जीव कर्मों के फल से युक्त और अज्ञान के वश होकर—स्वयं वर्णशून्य होने
१० पर भी—गौरत्व आदि देह के धर्म का अवलम्बन करके देह-देह में घूमा करता है। ज्ञान के

प्रभाव से मनुष्य जब अज्ञान से उत्पन्न अन्धकार को नष्ट कर देता है तब उसे सनातन ब्रह्म की प्राप्ति होती है। उद्योग करने से ब्रह्म का साक्षात्कार होता है, इसलिए हमेशा महर्षियों की सङ्गति करनी चाहिए। तुम भी महात्माओं की सङ्गति करो। ब्रह्म की प्राप्ति यत्नसाध्य है, इसलिए महर्षि लोग हमेशा यत्नवान् रहते हैं। शत्रु से पराजित, राज्य से भ्रष्ट, असहाय दानवराज वृत्र ने शत्रु के विषय में जो कुछ कहा था उसे ध्यान देकर सुनो।

प्राचीन समय में दैत्यगुरु शुक्राचार्य ने वृत्रासुर को ऐश्वर्य-भ्रष्ट देखकर पूछा कि दानवराज, तुम शत्रु से हार जाने पर भी दुखी क्यों नहीं हुए? तब वृत्र ने कहा—आचार्य, मैं प्राणियों की मृत्यु और मुक्ति के विषय को तपस्या और वेद-वाक्यों के प्रभाव से भली भाँति जानता हूँ, इसलिए मैं कभी शोक से पीड़ित और हर्ष से विह्वल नहीं होता। बहुत से जीव काल से प्रेरित होकर नरक में गिरते हैं और बहुत से देवलोक में जाकर सुख भोगते हैं। जीव स्वर्ग और नरक में निर्दिष्ट समय बिताकर अवशिष्ट पुण्य-पाप के प्रभाव से बार-बार जन्म लेते हैं। उनको हज़ारों बार तिर्यक् योनि में जन्म लेना और नरक में जाना पड़ता है। मैं जीवों के विषय में यही जानता हूँ। शास्त्र में बतलाया गया है कि जिसके जैसे कर्म होते हैं उसे वैसी ही गति मिलती है। २० जीव कर्म के अनुसार ही तिर्यक्, मनुष्य और देवयोनि में जाता और कर्मों के फल से ही बार-बार नरक का दुःख सहन करता है। कर्मों के प्रभाव से ही उसे मृत्यु के बाद सुख-दुःख और प्रिय-अप्रिय मिलता है। सभी जीव परलोक में कर्म का फल भोग करके पृथ्वी पर आते हैं।

वृत्रासुर के मुँह से ये सज्जनोचित बातें सुनकर और सृष्टि-स्थिति के एकमात्र आश्रय परमात्मा पर उनकी दृढ़ भक्ति देखकर शुक्राचार्य ने कहा कि दानवराज, तुम असुर होने पर भी इस तरह की बातें कैसे कह रहे हो? वृत्र ने कहा—भगवन्, यह सब जानने के लिए पहले मैंने जो कठिन तपस्या की थी उसे आप और दूसरे लोग सब जानते हैं। मैंने गन्ध-रस आदि विषयों और अन्यान्य भोग्य वस्तुओं पर अधिकार करके, अपने तेज के प्रभाव से, तीनों लोकों का अभ्युदय प्राप्त किया था। मैं प्रभामण्डल में व्याप्त होकर आकाश में बेखटके घूमता था। उस समय मुझे कोई नहीं जीत सकता था। मैंने तपस्या के प्रभाव से ऐसा ऐश्वर्य प्राप्त किया था और अपने कर्मों के दोष से ही मैं भ्रष्ट हुआ हूँ। मैं इस समय केवल अपने धैर्य के बल से उसका शोक नहीं करता। जब मैं इन्द्र से युद्ध करने जा रहा था तब मुझे वैकुण्ठनाथ विष्णु के दर्शन हुए थे। मैं निश्चित रूप से समझता हूँ कि मुझे विष्णु के दर्शन-स्वरूप तप का फल मिलना अभी बाकी है। मैं उसी भाग्य के प्रभाव से आपसे कर्मों के फल का विषय पूछता हूँ। ३० ब्रह्मरूप महान् ऐश्वर्य किस वर्ण में है और उस ऐश्वर्य से मनुष्य किस तरह भ्रष्ट होते हैं? प्राणियों की उत्पत्ति किससे होती है और किसके द्वारा वे जीवित रहते हैं? जीव किस फल के प्रभाव से ब्रह्म-स्वरूप होता है? जिस फल के द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति होती है वह फल किस कर्म या ज्ञान

से मिलता है? यह सब आप विस्तार से कहिए। हे धर्मराज, इसके बाद महर्षि शुक्राचार्य
३४ ने जो कुछ कहा था उसे तुम भाइयों समेत सावधान होकर सुनो।

दो सौ अस्सी अध्याय

भीष्म का सनत्कुमार द्वारा वर्णित विष्णु का माहात्म्य कहना

शुक्राचार्य ने कहा—दानवराज! यह भूमण्डल जिनका निम्न भाग, आकाशमण्डल जिनका मध्यभाग और मोक्ष धाम जिनका मस्तक है, उन नारायण को प्रणाम करके मैं उनका माहात्म्य कहता हूँ।

वृत्रासुर और शुक्राचार्य में इस तरह बातें हो ही रही थीं कि इतने में धर्मात्मा सनत्कुमार, सन्देह दूर करने के लिए, वहाँ आ गये। वृत्रासुर और शुक्राचार्य ने सनत्कुमार को देखकर उनकी यथोचित पूजा की और उन्हें योग्य आसन पर बैठाया। महात्मा सनत्कुमार के बैठ जाने पर शुक्राचार्य ने कहा कि महात्मन्, आप दानवराज वृत्र से विष्णु का माहात्म्य कहिए। तब महात्मा सनत्कुमार वृत्रासुर से कहने लगे—दानवराज, मैं तुमको विष्णु का माहात्म्य ६ सुनाता हूँ। यह संसार उन्हीं विष्णु में स्थित है। वही परम पुरुष, काल की सहायता से, सब प्राणियों की बार-बार सृष्टि और संहार करते हैं। ये सब जीव उन्हीं से उत्पन्न और उन्हीं में लीन हो जाते हैं। उन परमपुरुष की प्राप्ति न तो शास्त्र के ज्ञान, न तपस्या और न यज्ञ करने से ही हो सकती है; उनकी प्राप्ति तो इन्द्रिय-संयम से ही होती है। जो निष्काम यज्ञ और १० शम-दम आदि के द्वारा चित्त को शुद्ध कर लेता है वही मोक्ष पा सकता है। सोना आदि धातुएँ जैसे सुनार के द्वारा बार-बार तपाई जाने पर शुद्ध होती हैं वैसे ही मनुष्य बार-बार जन्म लेने पर शुद्ध होता जाता है। कोई-कोई तो एक ही जन्म में बड़े यत्न से यज्ञ करने और शम-दम आदि गुणों के प्रभाव से शुद्ध हो जाते हैं। शरीर का मैल धो डालने के समान दोषों को दूर कर देना चाहिए। जैसे तिल और सरसों आदि में एक बार थोड़े से फूल रखने पर भी तिल और सरसों आदि की गन्ध पूरे तौर से नहीं निकल जाती वैसे ही एक जन्म में थोड़े से सत्त्वगुणों के द्वारा सब दोष दूर नहीं किये जा सकते। जैसे तिल और सरसों में कई बार अधिक परिमाण में फूल रखने से उनकी गन्ध जाती रहती है वैसे ही बार-बार जन्म लेने पर और सत्त्वगुण की अधिकता होने से, स्त्री-पुत्र आदि के स्नेह से उत्पन्न, सब दोष नष्ट हो जाते हैं।

हे दानवराज, अब तुमको बतलाता हूँ कि कर्म में अनुरक्त और कर्म से विरक्त मनुष्य ८ किस प्रकार कर्म करते हैं और किस तरह कर्म को त्याग देते हैं। अनादि अनन्त भगवान् नारायण स्थावर-जङ्गम सब प्राणियों की सृष्टि करते हैं। देह और जीव-रूप से वे सब प्राणियों २० में विराजमान रहते हैं और ग्यारह इन्द्रिय-स्वरूप होकर संसार का भोग करते हैं। उनके पैर पृथ्वी, सिर स्वर्ग, भुजाएँ चारों दिशाएँ, कान आकाश, आँखें सूर्य, मन चन्द्रमा, बुद्धि

ज्ञान और रसना जल-रूप से स्थित है। धर्म उनके हृदय में और सम्पूर्ण ग्रह उनकी भौंहों में रहते हैं। नक्षत्र-गण उनकी आँखों से उत्पन्न हुए हैं और सत्त्व, रज तथा तम ये तीनों गुण उन्हीं का स्वरूप हैं। वे सब आश्रमों, जप आदि कर्मों और संन्यास-धर्म के फल-स्वरूप हैं। उनके रोएँ वेद और वाणी प्रणव है। वही सब आश्रमों के आश्रय हैं। उनका मुख सर्वत्र है। वही ब्रह्म, वही परम धर्म, तपस्या, शुभ और अशुभ काम, मन्त्र, शास्त्र, यज्ञ के पात्र, सोलह ऋत्विजों से युक्त यज्ञ, ब्रह्मा, विष्णु, अश्विनीकुमार, इन्द्र, मित्र, वरुण, यम और कुबेर-स्वरूप हैं। ऋत्विक् लोग उन्हें इन्द्र-महेन्द्र आदि अनेक रूपों में अलग-अलग देखकर भी अद्वितीय कहते हैं। यह सम्पूर्ण जगत् उन्हीं अद्वितीय भगवान् नारायण के अधीन है। वेद में उनको सब प्राणियों का कारण बतलाया गया है। जीव जब ज्ञान के प्रभाव से सब प्राणियों को परमात्म-स्वरूप देखता है तब उसे ब्रह्मज्ञान होता है।

स्थावर प्राणी हज़ार करोड़ कल्प तक रहते हैं; इतने ही समय तक जङ्गम जीव विचरते हैं। ३० एक योजन चौड़ी, पाँच सौ योजन लम्बी और एक कोस गहरी हज़ारों बावलियों के पानी में से यदि प्रतिदिन केवल एक बार बालों के द्वारा बूँदें फेंकी जावें और इसी तरह फेंकने से उन सब बावलियों का पानी जितने दिनों में सूखे उतने दिनों में एक बार सृष्टि और एक बार प्रलय होता है। प्राणियों के रङ्ग छः प्रकार के हैं—कृष्ण, धूम्र, नील, रक्त, हरिद्र और शुक्ल। ये सब वर्ण क्रमशः एक से एक बढ़कर सुख देनेवाले हैं। तमोगुण की प्रधानता से कृष्ण वर्ण अर्थात् स्थावरयोनि, रजोगुण और तमोगुण की प्रधानता से धूम्र वर्ण अर्थात् तिर्यक्योनि, रजोगुण की प्रधानता से नील वर्ण अर्थात् मनुष्ययोनि, रजोगुण और सत्त्वगुण की प्रधानता से रक्त वर्ण अर्थात् प्राजापत्य, सत्त्व की प्रधानता से हारिद्र वर्ण अर्थात् देवत्व प्राप्त होता है और केवल शुद्ध सत्त्वगुण के प्रभाव से शुक्ल वर्ण अर्थात् जीवन्मुक्ति मिलती है। शुक्ल वर्ण के प्रभाव से जीव निष्पाप, शोकहीन और श्रमहीन होकर सिद्धि प्राप्त करता है; किन्तु वह अत्यन्त दुर्लभ है। जीव हज़ारों बार जन्म लेकर शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करके अन्त को उन्हीं शास्त्रों में बतलाई हुई गति पाता है। शुक्ल आदि वर्णों के प्रभाव से गति मिलती है और सत्य आदि युगों के प्रभाव से वर्ण प्राप्त होते हैं। शुक्ल वर्ण को छोड़कर अन्य सब वर्णों की गति चौदह प्रकार की है। इन चौदह प्रकार की गतियों के और भी बहुत से भेद हैं। गुणों के प्रभाव से ही जीव श्रेष्ठ लोक को जाता, वहाँ निवास करता और फिर संसार में आता है। कृष्ण वर्ण की गति अति निकृष्ट है। इस वर्ण के प्रभाव से जीव नरक में जाता, लाखों वर्ष नरक का दुःख भोगता और फिर धूम्र वर्ण को प्राप्त होता है। इस धूम्र वर्ण के प्रभाव से जीव को सरदी-गरमी आदि का दुःख सहना पड़ता है। अन्त को पाप का नाश होने पर उसके चित्त में वैराग्य उत्पन्न होता है, तब वह नील वर्ण प्राप्त करता है। जब सत्त्वगुण की अधिकता होती है तब वह तमोगुण से मुक्त होकर

रक्त वर्ण प्राप्त करता है और अपनी बुद्धि के प्रभाव से, अपना कल्याण करने के लिए, उद्योग करता हुआ मनुष्य-लोक में घूमता है। वह एक कल्प तक पुण्य-पाप की शृङ्खला में बँधा रहकर उसके
४० बाद हारिद्र वर्ण प्राप्त करता है। उसके बाद सौ कल्पों तक देवता रहकर मनुष्य-योनि में आता है। फिर मनुष्य-योनि को त्यागकर देवता हो जाता है और अनेक कल्पों तक स्वर्ग में रहता है। उसके बाद क्रमशः उन्नीस हज़ार गतियाँ पाकर अन्त को सब कर्मों से मुक्त हो जाता है। मनुष्य-योनि के समान सभी योनियों से क्रमशः उन्नति और अवनति होती रहती है। देवलोक में विहार करके जीव फिर मनुष्य होता है और एक सौ आठ कल्प तक मनुष्य-शरीर में रहकर शुभ कर्म करके अन्त को मुक्त हो जाता है। यदि जीव देवलोक से मृत्युलोक में आकर पाप-कर्म करने लगता है तो उसे निकृष्ट कृष्ण वर्ण प्राप्त होता है।

हे दानवराज! जीव को जिस प्रकार सिद्धि मिल सकती है वह मैं विशेष रूप से बतलाता हूँ, सुनो। जीव सात सौ देव कल्प तक रक्त, हारिद्र और शुक्ल वर्ण का भोग करता है। महात्मा लोग शुक्ल वर्ण प्राप्त करके, अपनी इच्छा के अनुसार, अनेक लोकों को जाते हैं। शुक्ल वर्ण की गति जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति तीनों से भिन्न है। योगी लोग एक कल्प तक महर्लोक आदि चार लोकों में रहते हैं। इस कल्प के बीतने पर उनकी मुक्ति हो जाती है। जो राग आदि दोषों से रहित होने पर भी ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं कर सकते और योग के ऐश्वर्य से भ्रष्ट हो जाते हैं वे सौ कल्प तक भूर्लोक आदि सात लोकों में रह करके अन्त को वहाँ से लौटकर फिर मनुष्य-योनि में आकर महत्त्व पाते हैं। उसके बाद फिर मृत्युलोक से निकलकर क्रमशः ऊपर के सात लोकों में भ्रमण करते हैं। इन लोकों में भ्रमण करते समय मनुष्यों का बार-बार जन्म-मरण देखकर उन्हें वैराग्य उत्पन्न होता है। तब वे ऊपर के लोकों को भी अनित्य समझकर, उनका अनादर करके, जीवलोक को चले आते हैं। उसके बाद उन्हें अक्षयलोक प्राप्त होता है। इस लोक को कोई महादेव का,
५० कोई विष्णु का, कोई ब्रह्मा का, कोई अनन्त का, कोई नर का और कोई ब्रह्म का लोक कहते हैं। मोक्षपद प्राप्त करते समय सज्जन लोग सब इन्द्रियों और प्रकृति आदि सहित स्थूल और सूक्ष्म शरीर को भस्म करके ब्रह्म को प्राप्त करते हैं। जन्म लेकर जीव अपने-अपने कर्मों के अनुसार निर्दिष्ट स्थान में रहते हैं; प्रलयकाल में वे सब प्रकृति के साथ ब्रह्म में लीन हो जाते हैं। जो महात्मा सिद्ध-लोक से भ्रष्ट हुए हैं वे प्रलय काल के समय उसी लोक को जाते हैं। ब्रह्मज्ञानी पुरुष जितने दिनों तक इस लोक में इन्द्रियों का संयम करके, शुद्धचित्त होकर, सुख-दुःख में हर्ष-विषाद नहीं करता उतने ही समय तक उसके शरीर में वेदविद्या और ब्रह्मविद्या का प्रकाश रहता है। उस समय उसे जीवन्मुक्त और सर्वमय कहा जा सकता है। मनुष्य पहले शुद्ध मन के द्वारा अनुसन्धान करके विशुद्ध चेतन-रूप ब्रह्म का साक्षात्कार करे और अन्त को दूसरों के लिए अति दुर्लभ मोक्ष-स्वरूप ब्रह्म को प्राप्त करे। हे दैत्यराज, यह मैंने नारायण के माहात्म्य और मोक्ष का वर्णन किया।

दानवराज वृत्र ने सनत्कुमारजी से कहा—महर्षि, आपका कहना ठीक है। संसार को अनित्य समझकर मुझे किसी प्रकार का शोक नहीं होता। अब आपके ये वचन सुनकर मैं निष्पाप और शोक-मोह-हीन हो गया हूँ। भगवान् विष्णु का यह अनन्त कालचक्र सदा चलता रहता है। इसी चक्र के प्रभाव से सब पदार्थों की सृष्टि होती है। उन्हीं पुरुषश्रेष्ठ में यह संसार स्थित है।

भीष्म ने कहा—हे धर्मराज, इसके बाद दैत्यराज वृत्र ने अपने आत्मा को परब्रह्म में लीन करके प्राण त्यागकर परमगति प्राप्त की।

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, महर्षि सनत्कुमार ने वृत्रासुर से जिन भगवान् विष्णु का माहात्म्य कहा था वे विष्णु क्या यही श्रीकृष्ण भगवान् हैं? ६०

भीष्म ने कहा—धर्मराज, चेतन-स्वरूप परब्रह्म अपने असीम तेज के प्रभाव से अनेक रूप धारण करके अवतार लेते हैं। ये श्रीकृष्ण उन्हीं के आठवें अंश हैं और ये तीनों लोक भी उन्हीं परब्रह्म के आठवें अंश से उत्पन्न हुए हैं। कल्पान्त में विराट् पुरुष का नाश हो जाता है, उस समय केवल भगवान् विष्णु जल में सो रहते हैं। प्रलय-काल में सब लोकों का नाश हो जाने पर यही अनादि अनन्त केशव फिर संसार की सृष्टि करते हैं। यह विचित्र संसार इन्हीं में स्थित है।

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह! मुझे मालूम होता है कि दानवराज वृत्र अपनी सद्गति स्वयं देखते थे इसी से उन्हें रत्ती भर भी शोक नहीं था, बल्कि वे बड़े सुख से रहते थे। तिर्यक् योनि और नरक से वही मुक्त होता है जो कि शुक्ल वर्ण में स्थित है, अच्छे वंश में उत्पन्न हुआ है और सिद्ध है; उसे फिर जन्म नहीं लेना पड़ता। जो हारिद्र और रक्त वर्ण में स्थित रहता है उसे कभी-कभी दुर्भाग्यवश तामस कार्यों में आसक्त होकर तिर्यक् योनि में जाना पड़ता है। हम लोग हमेशा दुःख-सुख में आसक्त रहते हैं, इसलिए हमें कृष्णवर्ण या कोई उससे भी बढ़कर नीच गति मिलेगी।

भीष्म ने कहा—हे पाण्डवो, एक तो तुम लोग व्रतधारी हो फिर श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न हुए हो। अतएव तुम लोग देवलोक को जाकर फिर मृत्युलोक में आओगे। उसके बाद फिर देवलोक में जाकर सुख भोग करके अन्त को सिद्ध पुरुषों में गिने जाओगे। तुम लोग डरो मत। ७०

दो सौ इक्यासी अध्याय

भीष्म का इन्द्र और वृत्रासुर के युद्ध का वर्णन करना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, महातेजस्वी ज्ञानी विष्णुभक्त दानवराज वृत्र बड़े धर्मात्मा थे। दैत्य होकर उन्होंने किस तरह भगवान् विष्णु की दुर्ज्ञेय महिमा को जाना? आपने वृत्रासुर की जो कथा कही है उसे मैंने बड़ी श्रद्धा से सुना। अब वृत्रासुर का पूरा वृत्तान्त सुनने की मेरी इच्छा है। वेदान्त के मर्मज्ञ परम धार्मिक वृत्र को इन्द्र ने किस तरह मारा? आप विस्तार से कहिए कि दानवराज वृत्र किस तरह इन्द्र से पराजित हुए और उन दोनों में किस तरह युद्ध हुआ।

भीष्म ने कहा—धर्मराज ! प्राचीन समय में इन्द्र, वृत्र के साथ युद्ध करने की इच्छा से, देवताओं समेत रथ पर सवार होकर चले। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि पाँच सौ योजन ऊँचे और तीन सौ योजन चौड़े शरीरवाले वृत्र, दानवों की सेना के आगे, पर्वत के समान शोभित हैं। तीनों लोकों में अजेय दुर्जय महाबली वृत्र को देखकर सब देवता डर गये। उनका १० भयङ्कर रूप देखकर इन्द्र भी शिथिल से हो गये। अब संग्रामभूमि में दोनों ओर बाजे बजने और सिंहनाद होने लगे। इन्द्र को युद्ध में आया हुआ देखकर दानवराज वृत्र को न तो रत्ती भर डर लगा और न घबराहट हुई।

इसके बाद इन्द्र और वृत्रासुर का घोर युद्ध होने लगा। तलवार, भल्ल, शूल, शक्ति, तोमर, मुद्गर, शिला, धनुष और अग्नि तथा उल्का आदि अनेक दिव्य अस्त्रों से संग्रामभूमि भर गई। पितामह ब्रह्मा और असंख्य देवता, महर्षि, सिद्ध, अप्सरा और गन्धर्वगण दिव्य विमानों पर चढ़कर युद्ध देखने के लिए आकाश-मार्ग में आ गये। धर्मात्मा वृत्र ने इन्द्र के चारों ओर शिलाओं की वर्षा करके आकाश-मण्डल को पाट दिया। यह देखकर देवताओं ने भी क्रोध में आकर, लगातार बाण बरसाकर, शिलाओं की वृष्टि को रोक दिया। तब महापराक्रमी २० मायावी दानवराज ने युद्ध में ऐसी माया फैलाई कि इन्द्र की एक न चली।

युद्ध में वृत्र की माया से जब इन्द्र की यह दशा हो गई तब महर्षि वसिष्ठ ने सामवेद के मन्त्रों का पाठ करके उन्हें सचेत किया और कहा—देवराज ! तुम देवश्रेष्ठ, असुरों का नाश करनेवाले और महापराक्रमी होकर इस तरह क्यों घबराते हो ? देखो, पितामह ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, चन्द्रमा और अनेक महर्षि उपस्थित हैं। तुम साधारण मनुष्यों के समान घबराओ मत ; युद्ध में मन लगाकर शत्रुओं को परास्त करो। यह देखो, सब लोकों के पूज्य लोकगुरु महादेवजी तुम्हारी ओर देख रहे हैं। तुम सावधान हो जाओ। देखो, बृहस्पति आदि ब्रह्मर्षिगण तुम्हारी विजय-कामना से तुम्हारी प्रशंसा कर रहे हैं।

वसिष्ठजी के यों कहने पर महातेजस्वी इन्द्र ने अतुल बल धारण किया। उन्होंने युक्ति से वृत्रासुर की माया को हटा दिया। इसके बाद अङ्गिरा के पुत्र बृहस्पति और अन्यान्य महर्षियों ने, वृत्र के पराक्रम को देखकर, संसार के हित के लिए महादेवजी के पास जाकर कहा—भगवन्, आप ऐसा उपाय कीजिए जिससे दानवराज वृत्र मारा जाय। महर्षियों के यों ३० कहने पर महादेवजी का तेज, ज्वर-रूप होकर, वृत्र के शरीर में प्रविष्ट हो गया। उसी समय सब लोकों के रक्षक और सब लोकों के पूज्य भगवान् विष्णु ने भी इन्द्र के वज्र में प्रवेश किया। तब बुद्धिमान् बृहस्पति, महातेजस्वी वसिष्ठ और अन्य महर्षियों ने पास जाकर इन्द्र से कहा कि देवराज, अब वृत्र को मारो। महादेवजी ने भी कहा—देवराज! यह वृत्र महापराक्रमी, सर्वत्र-गामी और बड़ा मायावी है। यह दानव तुम्हारा परम शत्रु है अतएव तुम शीघ्र इस त्रैलोक्य-

विजयी असुर का वध करो। अब देर करने का काम नहीं है। इस दानव ने बलवान् होने के लिए साठ हज़ार वर्ष तक कठिन तपस्या की थी। इसने उस तपस्या के प्रभाव से ब्रह्मा का वर पाकर योगियों का महत्त्व, महामाया, महान् पराक्रम और अतुल तेज प्राप्त किया है। इस समय तुम्हारे शरीर में हमारा तेज प्रविष्ट होता है। तुम इस तेज के प्रभाव से वज्र के द्वारा शीघ्र इसका संहार करो।

इन्द्र ने कहा—भगवन्! आपकी कृपा से, आपके सामने ही, वज्र द्वारा इस दुर्धर्ष दानव का वध करता हूँ।

भीष्म कहते हैं—धर्मराज, जब ज्वर-रूप होकर महादेवजी का तेज वृत्र के शरीर में प्रविष्ट हो गया तब देवता और ऋषि लोग प्रसन्न होकर कोलाहल मचाने लगे। दुन्दुभि, शङ्ख, मुरज और डिंडिभ आदि हज़ारों बाजे बजने लगे। दम भर में दानवों की माया का लोप हो गया और उनकी स्मरण-शक्ति नष्ट हो गई। देवता और ऋषि लोग वृत्र को ज्वर से पीड़ित देखकर, महादेव और इन्द्र की स्तुति करने तथा इन्द्र को वृत्र से युद्ध करने के लिए जल्दी मचाने लगे। संग्रामभूमि में जिस समय ऋषि लोग इन्द्र को उत्तेजित कर रहे थे उस समय रथ पर सवार इन्द्र का स्वरूप दुर्लक्ष्य हो रहा था। ४० ४४

दो सौ बयासी अध्याय

इन्द्र द्वारा वृत्रासुर का मारा जाना और इन्द्र की ब्रह्महत्या का अग्नि आदि में बाँटा जाना

भीष्म ने कहा—हे धर्मराज, दानवराज वृत्र जिस समय ज्वर से आक्रान्त हुए थे उस समय उनके शरीर में जो चिह्न देख पड़ते थे उनको सुनो। उनका चेहरा लाल हो उठा, शरीर काँपने लगा, रोंगटे खड़े हो गये और शरीर का रङ्ग बदल गया। वे लम्बी साँस खींचने लगे। उनकी स्मरण-शक्ति जाती रही। उनके पास ही उल्कापात होने लगा। गिद्ध, कौए और बगुले भयङ्कर शब्द करने लगे और चक्र के समान बनकर उड़ते हुए उनके सिर पर घूमने लगे।

अब रथ पर सवार इन्द्र ने वज्र उठाकर वृत्र की ओर देखा। ज्वर के मारे उन्हें जमुहाई आ रही थी। वज्रधारी इन्द्र को देखकर वे सिंह के समान गरजने लगे। वृत्र को जमुहाते देखकर इन्द्र ने उन पर वज्र का प्रहार किया। प्रलयकाल की आग के समान महातेजस्वी वज्र के लगने पर दानवराज वृत्र की मृत्यु हो गई। वृत्रासुर को मरा हुआ देखकर देवता खुशी के मारे गरजने लगे। दानवों के शत्रु महायशस्वी देवराज, वृत्रासुर को मारकर, विष्णु से युक्त अपने वज्र को लेकर स्वर्ग को चले गये। इन्द्र के चले जाने पर दानवराज वृत्र के शरीर से मुण्डमालाधारिणी ब्रह्महत्या निकली। उसका रङ्ग काला, बाल बिखरे हुए और आँखें डरावनी थीं; बड़े-बड़े दाँत होने से वह भयावनी थी। वह बल्कल पहने हुए थी। वृत्र के शरीर से निकलकर ब्रह्महत्या वज्रधारी इन्द्र को ढूँढ़ने लगी। कुछ दिनों बाद एक बार देवराज मनुष्यों के हित के लिए बाहर निकले, उसी समय ब्रह्महत्या उनके सामने जा खड़ी हुई। ब्रह्महत्या लगने पर इन्द्र बहुत डरे और वहाँ से भागकर मृणाल-तन्तु में बहुत वर्षों तक छिपे रहे। ब्रह्महत्या लगने से इन्द्र का तेज नष्ट हो गया। ब्रह्महत्या को हटाने के लिए इन्द्र ने बड़ा यत्न किया किन्तु वे किसी तरह उसको दूर न कर सके। जब ब्रह्महत्या से छूटने का उन्हें कोई उपाय न सूझा तब वे पितामह ब्रह्माजी के पास जाकर उनके पैरों पर गिर पड़े। उन्होंने इन्द्र की यह दशा देखकर ब्रह्महत्या को समझाते हुए कहा—हे कल्याणी, तुम हमारे कहने से इन्द्र को छोड़ दो और जो चाहो सो हमसे माँग लो।

तब ब्रह्महत्या ने कहा—पितामह, आप तीनों लोकों के पूज्य और सृष्टिकर्ता हैं। आप मुझ पर प्रसन्न हैं, इसी से मैं कृतकार्य हो चुकी। आप मेरे रहने के लिए कोई स्थान बतलाइए। सब लोकों की रक्षा के लिए आपने ही यह नियम बना दिया है कि यदि कोई ब्राह्मण का वध करेगा तो उसे ब्रह्महत्या लगेगी। इसी से मैंने इन्द्र पर आक्रमण किया है। अब आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मैं इन्द्र के शरीर से निकली आती हूँ; मेरे रहने को स्थान बतला दीजिए।

इन्द्र के चले जाने पर दानवराज वृत्र के शरीर से मुण्डमालाधारिणी ब्रह्महत्या निकली। उसका रङ्ग काला, बाल बिखरे हुए, और आँखें डरावनी थीं; बड़े-बड़े दाँत होने से वह भयावनी थी। वह वल्कल पहने हुए थी। वृत्र के शरीर से निकलकर ब्रह्महत्या वज्रधारी इन्द्र को ढूँढ़ने लगी।—पृ० ३७६८

ब्रह्महत्या की बात मानकर ब्रह्माजी ने उसे इन्द्र की देह से निकाल दिया। अब उन्होंने अग्नि का स्मरण किया। उसी दम अग्निदेव वहाँ आ गये और बोले—भगवन्, मैं आ गया। कहिए, क्या आज्ञा है? ब्रह्माजी ने कहा—अग्नि, इन्द्र को ब्रह्महत्या से छुड़ाने के लिए आज मैं ब्रह्महत्या के चार भाग करूँगा। उसका एक हिस्सा तुम लो। अग्नि ने कहा—पितामह, मैं इस ब्रह्महत्या से कैसे छूटूँगा? ब्रह्माजी ने कहा—अग्नि! तुमको प्रज्वलित देखकर जो मनुष्य तमोगुण के प्रभाव से बीज, ओषधि और रस लाकर तुममें आहुति न देगा उसे यह ब्रह्महत्या लगेगी। तुम शोक न करो। ब्रह्माजी के यों कहने पर अग्नि ने उनकी बात मानकर ब्रह्महत्या का चौथा भाग ले लिया। ३०

अब ब्रह्माजी ने वृक्ष, ओषधि और तृणों को बुलाकर ब्रह्महत्या का एक भाग लेने के लिए उनसे अनुरोध किया। ब्रह्माजी की बात सुनकर वे सब भी अग्नि की तरह दुखी हुए और बोले—पितामह, हम लोग किस तरह इस पाप से छूटेंगे? देखिए, हम लोग हमेशा सरदी-गरमी और वायु को सहन करते हैं। इसके सिवा मनुष्य हम लोगों को काटते रहते हैं। हम लोग तो दैव के कोप से योंही पीड़ित हैं, अब आप अधिक दुःख न दीजिए। आज आपकी आज्ञा से यह ब्रह्महत्या हमको लगेगी, अतएव आप इससे छुटकारा पाने का कोई उपाय बतला दीजिए। ब्रह्माजी ने कहा—जो मनुष्य मोह के वश होकर पर्व के दिन तुम लोगों को काटेगा उसे इस ब्रह्महत्या का पाप लगेगा। यह सुनकर—ब्रह्माजी को प्रणाम करके—वृक्ष, ओषधि और तृण अपने-अपने स्थान को चले गये। ४०

अब ब्रह्माजी ने अप्सराओं को बुलाकर मधुर वचन कहे—हे अप्सराओ, यह ब्रह्महत्या इन्द्र के शरीर से निकली है। मैं अनुरोध करता हूँ कि इसका चौथाई हिस्सा तुम ले लो। अप्सराओं ने कहा—पितामह, आपकी आज्ञा से ब्रह्महत्या का एक हिस्सा तो हम लिये लेती हैं; किन्तु आप इससे छुटकारा पाने का उपाय भी बतला दीजिए। ब्रह्माजी ने कहा—अप्सराओ, जो मनुष्य रजस्वला स्त्री का संसर्ग करेगा उसे यह ब्रह्महत्या लगेगी। तुम खेद न करो। यह सुनकर अप्सराएँ प्रसन्नता से अपने स्थान को चली गईं।

अब ब्रह्माजी ने जल का स्मरण किया। याद करते ही जल वहाँ आ पहुँचा और प्रणाम करके बोला—भगवन्, आज्ञा पाकर मैं आ गया हूँ। मुझे क्या आज्ञा है? ब्रह्माजी ने कहा—वृत्रासुर के शरीर से निकलकर यह भयङ्कर ब्रह्महत्या इन्द्र को लगी थी। इसका चौथाई हिस्सा तुम ले लो। जल ने कहा—भगवन्! आपकी आज्ञा का पालन करने के लिए मैं तैयार हूँ, किन्तु इससे छुटकारा पाने का भी कोई उपाय कर दीजिए। आप ही संसार के एकमात्र आश्रय हैं, अतएव इस पाप से छुटकारा पाने के लिए आपके सिवा और किससे प्रार्थना करूँ? ब्रह्माजी ने कहा—जो मनुष्य तुम्हें साधारण समझकर तुम्हारे ऊपर मल-मूत्र फेंकेगा उसे यह ब्रह्महत्या लगेगी। तब तुम्हारा इससे छुटकारा होगा। ५०

हे धर्मराज, ब्रह्माजी ने इस तरह इन्द्र के शरीर से ब्रह्महत्या को निकाल दिया। ब्रह्माजी के बतलाये हुए स्थानों को ब्रह्महत्या भी चली गई। अब इन्द्र ने, ब्रह्मा की आज्ञा से, अश्वमेध यज्ञ किया। तब कहीं उन्हें सम्पूर्ण रूप से ब्रह्महत्या से छुटकारा मिला। उन्हें फिर उनकी सम्पत्ति मिली। वे शत्रुओं को जीतकर सुख से रहने लगे। वृत्रासुर के रक्त से शिखण्ड नाम ६० का वृक्ष पैदा हुआ है। दीक्षितों, तपस्वियों और ब्राह्मणों को उसे न खाना चाहिए।

ब्राह्मण सबसे श्रेष्ठ हैं, अतएव तुम हमेशा ब्राह्मणों का प्रिय करते रहो। वे पृथिवी पर देवता-स्वरूप हैं। इन्द्र ने सूक्ष्म बुद्धि से इस उपाय द्वारा वृत्रासुर का संहार किया था। तुम इन्द्र के समान पृथिवी पर अजेय होगे। जो मनुष्य प्रत्येक पर्व के समय, ब्राह्मणों के बीच, इन्द्र और वृत्रासुर की यह कथा कहेगा उसे कभी पाप नहीं भोगना पड़ेगा। इन्द्र के अद्भुत ६५ काम का हाल तुम सुन चुके। अब क्या सुनना चाहते हो?

दो सौ तिरासी अध्याय

दक्ष के यज्ञ में अंश न पाने से शङ्कर का रुष्ट होना; उनके पसीने से अग्नि-रूप ज्वर की उत्पत्ति

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, आप सब शास्त्रों के विद्वान् और बुद्धिमान् हैं। वृत्रासुर के वध का वृत्तान्त सुनकर मैं आपसे एक बात और पूछना चाहता हूँ। आपने कहा है कि जब दानवराज वृत्र ज्वर से मोहित हो गये तब इन्द्र ने उन्हें वज्र से मार डाला। तो वह ज्वर किस तरह कहाँ से उत्पन्न हुआ?

भीष्म ने कहा—धर्मराज, ज्वर की उत्पत्ति का वर्णन सुनो। प्राचीन समय में सुमेरु पर्वत पर, अनेक रत्नों से विभूषित, तीनों लोकों का पूज्य, सावित्र नाम का अनुपम शिखर था। उस शिखर पर कोई नहीं जा सकता था। सुवर्ण से विभूषित सुमेरु पर्वत की उस चोटी पर भगवान् शङ्कर रहते थे। हिमाचल की पुत्री पार्वती भी उनके पास रहती थीं। देवता, वसु, अश्विनीकुमार, यक्ष, ११ कुवेर, महर्षि शुक्र, अङ्गिरा, सनत्कुमार आदि देवर्षि, विश्वावसु गन्धर्व, नारद, पर्वत, अप्सराएँ, विद्याधर, सिद्धगण और तपस्वी लोग वहाँ जाकर महादेवजी की उपासना किया करते थे। वहाँ हमेशा सुगन्धित पवित्र हवा चलती रहती थी। ऋतु-ऋतु के फूल फूले रहते थे। अनेक-रूपधारी महापराक्रमी भयङ्कर भूत, पिशाच और राक्षस आदि अनुचरगण हथियार लिये सदा शङ्कर के पास रहते थे। भगवान् नन्दीश्वर चमकीला शूल धारण किये वहीं रहते थे। सब तीर्थों के जल से उत्पन्न गङ्गाजी, स्वरूप धारण करके, भगवान् शङ्कर की उपासना करती थीं। इस प्रकार शङ्करजी देवताओं और देवर्षियों से पूजित होकर सुमेरु पर्वत की उस चोटी पर निवास करते थे।

कुछ समय के बाद प्रजापति दक्ष ने यज्ञ का आरम्भ किया। उस यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए, महादेव की आज्ञा से, इन्द्र आदि सब देवता, अग्नि और सूर्य के समान प्रकाशमान विमानों पर चढ़कर हरिद्वार को चले। पार्वती ने देवताओं को जाते देखकर शङ्करजी से पूछा—भगवन्, इन्द्र आदि देवता कहाँ जा रहे हैं? २१

महादेवजी ने कहा—देवि, प्रजापति दक्ष ने अश्वमेध यज्ञ का आरम्भ किया है। निमन्त्रित होकर सब देवता वहाँ जा रहे हैं। पार्वती ने पूछा—महात्मन्, आप क्यों नहीं जाते? आपको कौन सी रुकावट है? महादेवजी ने कहा—प्रिये, पहले यज्ञ में भाग लगाते समय देवताओं ने मुझे हिस्सा नहीं दिया था। उसी पुरानी रीति के अनुसार उन्होंने आज भी मुझे भाग नहीं दिया है। पार्वती ने कहा—महाभाग! आप गुण, यश, तेज और प्रभाव में सबसे श्रेष्ठ हैं। अतएव यज्ञ में आपको भाग न मिलने की बात सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ है। भीष्म ने कहा कि धर्मराज, महादेवजी से यों कहकर मारे दुःख के पार्वती चुप हो गई। ३०

पार्वती का अभिप्राय जानकर महादेवजी नन्दी को वहाँ रहने की आज्ञा देकर योगबल से, अपने अनुचरों के साथ, दक्ष की यज्ञभूमि में जाकर यज्ञ का ध्वंस करने लगे। उनके अनुचरों में कोई चिल्लाता, कोई हँसता, कोई यज्ञ की आग में रक्त बरसाता, कोई यूप को उखाड़कर इधर-उधर घूमता और कोई अपना भीषण मुँह फैलाकर यज्ञ के कर्मचारियों को खाने के लिए दौड़ता था।

गणों ने जब इस प्रकार उपद्रव करना आरम्भ किया तब यज्ञ पीड़ित होकर, मृग का रूप धारण करके, आकाश-मार्ग से भागा। मृग-रूप यज्ञ को भागते देखकर महादेवजी को बड़ा क्रोध हो आया। उन्होंने धनुष-बाण लेकर उसका पीछा किया। यज्ञ के पीछे दौड़ते-दौड़ते उनके माथे से पसीने की बूँदें निकलकर पृथिवी पर टपक पड़ीं। बूँदें गिरते ही उनसे प्रलयकाल के अग्नि के समान आग उत्पन्न हुई। उस आग से काले रङ्ग का महापराक्रमी एक नाटा सा पुरुष पैदा हो गया। वह पुरुष लाल रङ्ग के कपड़े पहने था। उसकी आँखें लाल थीं और दाढ़ी-मूँछें

४० हरे रङ्ग की थीं। उसका शरीर बाज़ और उल्लू पक्षी के समान लोमश था। जैसे आग घास के ढेर को जला देती है वैसे ही वह पुरुष मृग-रूपी यज्ञ को भस्म करके बड़े वेग से ऋषियों और देवताओं की ओर झपटा। उसे देखकर डर के मारे देवता लोग भाग खड़े हुए। उस महापराक्रमी पुरुष के भार से पृथिवी काँपने लगी। संसार में हाहाकार मच गया।

संसार को इस प्रकार विपद्ग्रस्त देखकर ब्रह्माजी ने कहा—महेश्वर! यह देखिए, सब लोक नष्ट हुए जा रहे हैं। ये सब ऋषि और देवता आपको कुपित देखकर घबरा रहे हैं। अतएव आप शीघ्र अपने क्रोध को शान्त कीजिए। अब देवता लोग आपको यज्ञ में भाग दिया करेंगे। आपके पसीने से जो पुरुष उत्पन्न हुआ है वह पृथिवी में ज्वर नाम से विख्यात होगा; किन्तु आपके इस तेज-समूह को सम्पूर्ण पृथिवी भी धारण नहीं कर सकती। अतएव आप इसको कई भागों में विभक्त कर दीजिए।

यह कहकर ब्रह्माजी ने शङ्करजी को यज्ञ में भाग मिलने का निश्चय कर दिया। महादेवजी ५० ने भी प्रसन्नता से अपना भाग स्वीकार कर लिया। इसके बाद उन्होंने प्राणियों की शान्ति के लिए ज्वर के अनेक भाग कर दिये। हाथियों के सिर में दर्द, पर्वत पर शिलाजीत, पानी की सेवार, साँपों की केंचुल, गाय-बैलों के पैर का रोग, पृथिवी के ऊसर, पशुओं की आँखों की बीमारी, घोड़े के गले का रोग, मोर की चोटी, कोयल का नेत्ररोग, भेड़ का पित्तभेद, तोते की हिचकी और सिंह की थकावट, ये सब ज्वर नाम से प्रसिद्ध हुए। इसके सिवा वह ज्वर अपने नाम से प्रसिद्ध होकर मनुष्यों के शरीर में—जन्म, मृत्यु और अन्य समय में—प्रविष्ट होता है। महादेवजी का वह ज्वर नामक भीषण तेज प्राणियों के प्रणाम करने योग्य और उनका मान्य है। दानवराज वृत्र इसी ज्वर से पीड़ित होकर जमुहाई ले रहे थे, उसी समय इन्द्र ने उन पर वज्र चलाया था। वज्र के लगने से दानवराज का शरीर विदीर्ण हो गया। वे विष्णु के परम ६० भक्त थे, इसलिए युद्ध में मारे जाने पर उन्हें विष्णुलोक प्राप्त हुआ।

हे धर्मराज, मैंने वृत्रासुर के वृत्तान्त के प्रसङ्ग में विस्तार से ज्वर की उत्पत्ति कह दी। अब जो कुछ सुनना चाहते हो वह पूछो। जो मनुष्य सावधान होकर ज्वर की उत्पत्ति का ६३ वर्णन पढ़ता है वह रोगहीन और सुखी होकर प्रसन्नता से मनोवाञ्छित फल पाता है।

महाभारत के स्थायी ग्राहक बनने के नियम

(१) जो सज्जन हमारे यहाँ महाभारत के स्थायी ग्राहकों में अपना नाम और पता लिखा देते हैं उन्हें महाभारत के अङ्कों पर २०) सैकड़ा कमीशन काट दिया जाता है। अर्थात् ।।) प्रति अङ्क के बजाय स्थायी ग्राहकों को ।) में प्रति अङ्क दिया जाता है। ध्यान रहे कि डाकख़र्च स्थायी और फुटकर सभी तरह के ग्राहकों को अलग देना पड़ेगा।

(२) साल भर या छः मास का मूल्य १२) या ६), दो आना प्रति अङ्क के हिसाब से रजिस्ट्री ख़र्च सहित १३।।) या ६।।।) जो सज्जन पेशगी मनीआर्डर-द्वारा भेज देंगे, केवल उन्हीं सज्जनों को डाकख़र्च नहीं देना पड़ेगा। महाभारत की प्रतियाँ राह में गुम न हो जायँ और ग्राहकों की सेवा में वे सुरक्षित रूप से पहुँच जायँ, इसी लिए रजिस्ट्री द्वारा भेजने का प्रबन्ध किया गया है।

(३) उसके प्रत्येक खंड के लिए अलग से बहुत सुन्दर जिल्दें भी सुनहले नाम के साथ तैयार कराई जाती हैं। प्रत्येक जिल्द का मूल्य ।।।) रहता है परन्तु स्थायी ग्राहकों को वे ।।) ही में मिलती हैं। जिल्दों का मूल्य महाभारत के मूल्य से बिलकुल अलग रहता है।

(४) स्थायी ग्राहकों के पास प्रतिमास प्रत्येक अङ्क प्रकाशित होते ही बिना विलम्ब वी० पी० द्वारा भेजा जाता है। बिना कारण वी० पी० लौटाने से उनका नाम ग्राहक-सूची से अलग कर दिया जायगा।

(५) ग्राहकों को चाहिए कि जब किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार करें तो कृपा कर अपना ग्राहक-नम्बर जो कि पता की स्लिप के साथ छपा रहता है और पूरा पता अवश्य लिख दिया करें। बिना ग्राहक-नम्बर के लिखे हज़ारों ग्राहकों में से किसी एक का नाम ढूँढ निकालने में बड़ी कठिनाई पड़ती है और पत्र की कारवाई होने में देरी होती है। क्योंकि एक ही नाम के कई-कई ग्राहक हैं। इसलिए सब प्रकार का पत्र-व्यवहार करते तथा रुपया भेजते समय अपना ग्राहक-नम्बर अवश्य लिखना चाहिए।

(६) जिन ग्राहकों को अपना पता सदा अथवा अधिक काल के लिए बदलवाना हो, अथवा पते में कुछ भूल हो, उन्हें कार्यालय को पता बदलवाने की चिट्ठी लिखते समय अपना पुराना और नया दोनों पते और ग्राहक-नम्बर भी लिखना चाहिए। जिससे उचित संशोधन करने में कोई दिक़्क़त न हुआ करे। यदि किसी ग्राहक को केवल एक दो मास के लिए ही पता बदलवाना हो, तो उन्हें अपने हलके के डाकख़ाने से उसका प्रबन्ध कर लेना चाहिए।

(७) ग्राहकों से सविनय निवेदन है कि नया आर्डर या किसी प्रकार का पत्र लिखने के समय यह ध्यान रक्खें कि लिखावट साफ़ साफ़ हो। अपना नाम, गाँव, पोस्ट और ज़िला साफ़ साफ़ हिन्दी या अँगरेज़ी में लिखना चाहिए ताकि अङ्क या उत्तर भेजने में दुबारा पूछ-ताछ करने की ज़रूरत न हो। "हम परिचित ग्राहक हैं" यह सोच कर किसी को अपना पूरा पता लिखने में लापरवाही न करनी चाहिए।

(८) यदि कोई महाशय मनी-आर्डर से रुपया भेजें, तो 'कूपन' पर अपना पता-ठिकाना और रुपया भेजने का अभिप्राय स्पष्ट लिख दिया करें, क्योंकि मनीआर्डरफ़ार्म का यही अंश हमको मिलता है।

सब प्रकार के पत्रव्यवहार का पता—

मैनेजर महाभारत विभाग, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।